पटियालाराज्यान्तर्गतटकसालनिवासिपण्डितद्वारकादासात्मजाऽऽयुर्वेदोद्धारकवैद्यपञ्चाननवैद्यरत्नराजवैद्यपण्डितरामप्रसादवैद्योपाध्यायः ।

॥ श्रीः ॥

चरकसंहिता ।

श्रीमन्महर्षिप्रवरचरकप्रणीता ।

पटियालाराज्यान्तर्गतटकसालनिवासिपण्डितठक्कुरका-
दासात्मजाऽऽयुर्वेदोद्धारकवैद्यपञ्चाननवैद्यरत्नराज-
वैद्यपण्डितरामप्रसादवैद्योपाध्यायविरचित-

प्रसादनी-

भाषाटीकासहिता ।

तत्रायं

प्रथमो भागः १.

क्षेमराज-श्रीकृष्णदास-श्रेष्ठिना

मुम्बय्यां

स्वकीये "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-मुद्रणयन्त्रालये

मुद्रयित्वा प्रकाशितः ।

संवत् १९७२, शके १८४४.
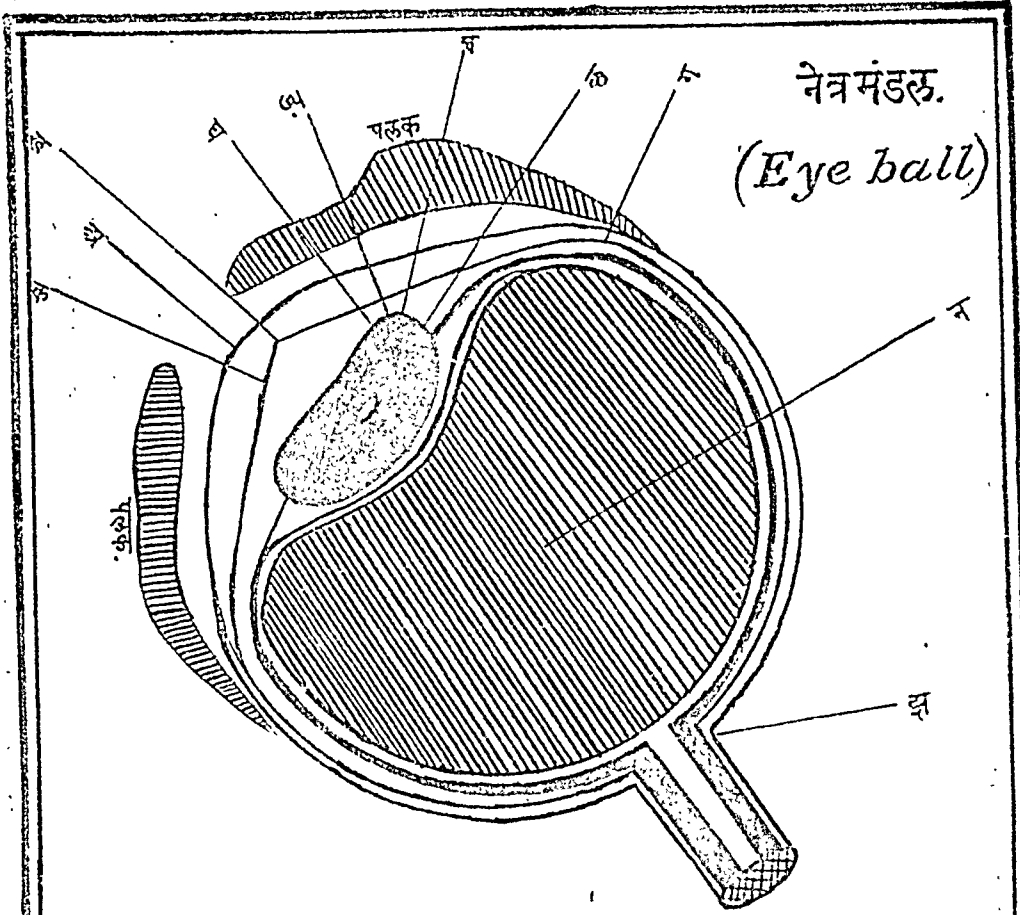
इसमें "अ" नेत्रका प्रथमपटल अर्थात् सुपेद परदा.

"क" स्वच्छ भाग.

"ख" नेत्र भित्तिका द्वितीयपटल अर्थात् स्याह परदा.

"ग" इसके नीचेका स्वच्छभाग.

"घ" वहस्थान जहां सदैव जल भरा रहताहै.

"ङ" तृतीय पटल अर्थात् पुतलीवाला परदा.

"च" पुतली अर्थात् कृष्ण भाग.

"छ" काचपटल चतुर्थ अर्थात् आंखकाशीशा.

"ज" नेत्रगत द्रव पदार्थ अर्थात् लेशदारशैकी जगह

"झ" दृष्टिशिराअर्थात् बीनाईकी रग.

आयुर्वेदज्ञ वैद्य नेत्रोंमें चार पटल (परदे) मानते हैं और यूनानी हकीम सात तवके मानतेहैं और डाक्टर तीनही परदे मानते हैं.

अस्थिप्रदर्शक पार्श्व चित्र.

(Bones)
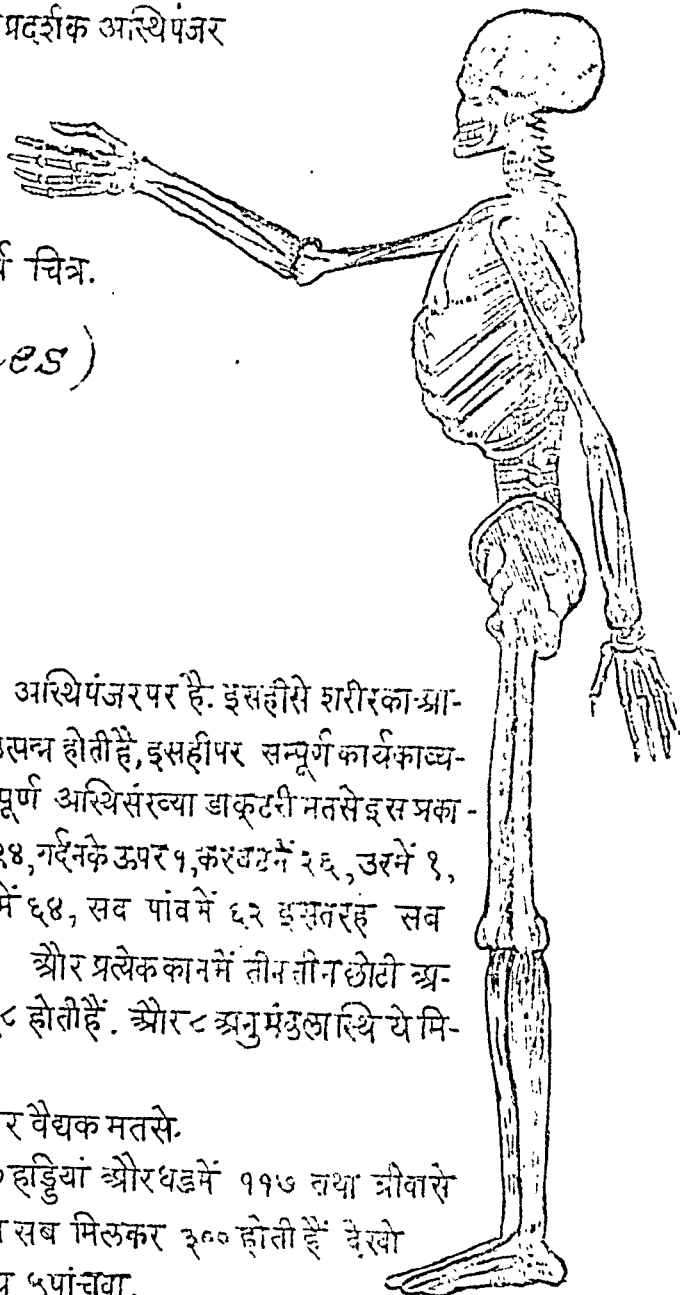
शरीरका मुख्य आधार अस्थिपंजरपर है. इसहीसे शरीरका आकार, दृढता, गमनशक्ति उत्पन्न होतीहै, इसहीपर सम्पूर्ण कार्यकाव्यवहार निर्भरहै शरीरमें संपूर्ण अस्थिसंख्या डाक्टरी मतसे इस प्रकारहै. खोपड़ीमें ८, चहरामें १४, गर्दनके ऊपर १, करंडमें २६, उरमें १, पांसूमें २४, सम्पूर्ण हाथमें ६४, सद पांवमें ६२ इसतरह सब मिलकर २००हैं दांत ३२ और प्रत्येक कानमें तीन तीन छोटी अस्थिहैं सबमिलकर २३८ होतीहैं. और ८ अनुमंडलास्थि ये मिलकर २४६ हैं.

और वैद्यक मतसे.

चारोंहाथ पावोंमें १२० हड्डियां औरधड़में ११७ तथा ग्रीवासे ऊपर ६३ हड्डियांहैं. ऐसे सब मिलकर ३०० होती हैं देखो शारीरकस्थान अध्याय ५पांचवा.

शिरा प्रदर्शक चित्र.
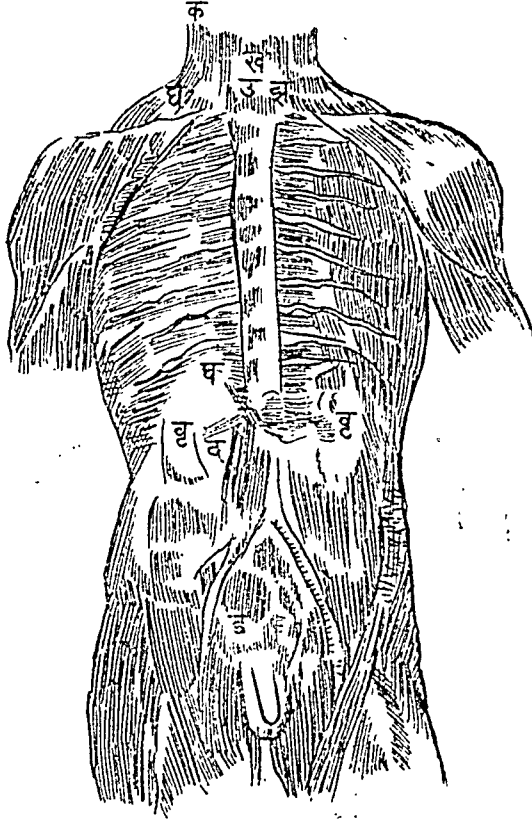
इस शिरा प्रदर्शक चित्रमें क ख ग्रीवा पार्श्वस्थ बाह्य तथा अभ्यंतर कंठशिरा.

ग अनारव्यातशिरो
घ जत्रुनिम्नशिरा
वृ वृक्कद्वय.
द वृक्कशिरा.
ध ऊर्द्धवृक्कग्रंथिशिरा.
ड रेतोरज्जूशिरा.
थ वाह्यवस्तिशिरा.

जत्रुके नीचे ऊर्द्धस्थ महाशिरा तथा बस्तीसे अधस्थ महाशिरा.

आश्विन शुक्ल १० सोमवार.
संवत् १९६८

रामप्रसाद वैद्य
राजवैद्य रियाव्य

आयुर्वेदस्वरूपम्
आयुर्वेदाभिमानी
धन्वंतरिस्वरूपम्.
प्रजापति श्रोता.
ब्रह्मा वक्ता.

प्रजापतिर्वक्ता.
अश्विनीकुमारौ श्रोतारौ
भरद्वाज श्रोता.
इंद्रोवक्ता.

भरद्वाजोवक्ता.
जमदग्नि वसिष्ठ कश्यपाद्याः
ऋषयः श्रोतारः
शिष्याश्श्रोतारः
पराशरः
भेलः
जतुकर्ण
अग्निवेश.
पुनर्वसुः गुरुः वक्ता.

१८. त्रिशोफीय अध्याय।

वक्ता
आत्रेयः श्रोता
अग्निवेशो लोके उपदेष्टा
ग्रंथकर्ता
दृढबलः

ज्वर १ ला.

वीभत्सज्वर.

त्रिशिराज्वर

४. प्रमेहनिदान।

५. कुष्ठनिदान।

६. शोषनिदान।

कापिल ज्वर.

भस्मविक्षेपज्वर.

इति विमानस्थानकी अनुक्रमणिका ।

अथ शारीरस्थान ।

१. कतिधापुरुषीय अध्याय ।

त्रिपादज्वर.

विषय.	पृष्ठांक.

५. पुरुषविचय शारीर अध्याय।

६. शरीरविचय शारीर अध्याय।

उत्कटास्यज्वर.

विषय. पृष्ठांक.

अथेन्द्रियस्थान।

१. वर्णस्वरीय इन्द्रियाध्याय।

२. पुष्पित इन्द्रियाध्याय।

३. परिमर्षणीय इन्द्रियाध्याय।

विषय. पृष्ठांक.

४. इन्द्रियानीकइन्द्रियाध्याय।

५. पूर्वरूपीय इन्द्रियाध्याय।

६. कतमानिशरीरीय इंद्रियाध्याय।

७. पन्नरूपीय इन्द्रियाध्याय।

इति इन्द्रियाध्यायकी विषयानुक्रमणिका।

महोदरज्वर.

कुष्ठनाशक १० द्रव्य ।

खदिराभयामलकहरिद्रारुष्करसप्तपर्णारग्वधकरवीरविडङ्ग-जातिप्रवाला इति दशेमानि कुष्ठघ्नानि भवन्ति ॥ ३७ ॥

खैरसार, हरड, आमले, हलदी, भलावे, सप्तपर्ण, अमलतास, कनेर, विडंग, चमेलीकी कोपलें, यह दश औषध कुष्ठनाशक हैं ॥ ३७ ॥

खर्जूनाशक १० द्रव्य ।

चन्दननलदकृतमालनक्तमालनिम्बकुटजसर्षपमधुकदारुहरिद्रामुस्तानीति दशेमानि कण्डूघ्नानि भवन्ति ॥ ३८ ॥

रक्तचंदन, खस, अमलतास, कंजा, निंव, कुडा, सरसों, मुलैठी, दारुहलदी, नागरमोथा, यह दशक खाजनाशक हैं ॥ ३८ ॥

कृमिनाशक १० द्रव्य ।

अक्षीवमरिचगण्डीरकेबूकविडङ्गनिर्गुण्डीकिणही श्वदंष्ट्रावृषपर्णिकाआखुपर्णिका इति दशेमानि कृमिघ्नानि भवन्ति ॥ ३९ ॥

सुहांजना, मिर्च, गंडीर (समठशाक), केवुक (केमुकवृक्ष), विडंग, संभालू, कटभी (मालकांगुनी या कटभीलता), गोखरू, वृषपर्णी, आखुपर्णी, यह दशक कृमिनाशक है ॥ ३९ ॥

विषनाशक १० द्रव्य ।

हरिद्रामंजिष्ठासुवहासूक्ष्मैलापालिन्दीचन्दनकतकशिरीषसिन्धुवारश्लेष्मातका इति दशेमानि विषघ्नानि भवन्ति ॥ ४० ॥

इति षट्कः कषायवर्गः ।

हलदी, मंजीठ, रास्ना, इलायची छोटी, सारिवा, चंदन, निर्मलीका फल, सिरस, संभालु, लिसोडे, यह दशक विषनाशक है । यह ६ कषायोंका वर्ग है॥४०॥

स्तनोंमें दूधको वढानेवाले १० द्रव्य ।

वीरणशालीषष्टिकेक्षुवालिकादर्भकुशकाशगुन्द्रेत्कटकत्तृणमूलानीति दशेमानि स्तन्यजननानि भवन्ति ॥ ४१ ॥

खस, शालिधान्य, षाष्टिकधान, इक्षुवालिका (वडी किस्मकी डाभ), दर्भ, कुशा, कास, गुंद्रप, टेर, उत्कट (वरू), कत्तृण(रोहिसतृण) यह दशक स्तनोंमें दूध उत्पन्न करनेवाला है ॥ ४१ ॥

ज्वलद्विग्रहज्वर.

शरीरकी धातुओंमें और वातादिदोषोंमें विषमता (यथोचित न होना) विकार अर्थात् रोग कहाजाताहै। और इनका ठीक होना आरोग्यता कहाहै । सो आरोग्यताको सुख कहतेहैं । रोगको दुःख कहतेहैं ॥ २ ॥

चिकित्सा ल० ।

चतुर्णांभिषगादीनांशस्तानांधातुवैकृते ।
प्रवृत्तिर्धातुसाम्यार्थाचिकित्सेत्यभिधीयते ॥ ३ ॥

धातुदोष आदिकी विकृतिमें उनको ठीक अर्थात् साम्याऽवस्थामें करनेके लिये वैद्य आदि चारों पादोंकी जो योग्यतासे प्रवृत्ति है वह चिकित्सा कही जातीहै ॥ ३ ॥

वैद्यके चार गुण ।

श्रुतेपर्य्यवदातृत्वंबहुशोदृष्टकर्मता ।
दाक्ष्यंशौचमितिज्ञेयंवैद्येगुणचतुष्टयम् ॥ ४ ॥

शास्त्रको अच्छीतरहसे जाननेवाला, दूरदर्शी, (रोगादिमें भविष्यत्को जाननेवाला) क्रियामें कुशल, शुद्धता, यह वैद्यके चार गुण हैं ॥ ४ ॥

औषधिगुण चतुष्टय ।

बहुतातत्रयोग्यत्वमनेकविधकल्पना ।
सम्पच्चेतिचतुष्कोऽयंद्रव्याणांगुणउच्यते ॥ ५ ॥

अच्छे गुणयुक्त, रोगके अनुसार, अनेक प्रकारसे कल्पनापूर्वक प्रयोग, और कीडे आदिसे रहित नवीन होना, यह चार गुण औषधके कहेहैं ॥ ५ ॥

सेवकके चार गुण ।

उपचारज्ञतादाक्ष्यमनुरागश्चभर्त्तरि ।
शौचञ्चेतिचतुष्कोऽयगुणःपरिचरेजने ॥ ६ ॥

प्रेमसे सेवा करना, सब कार्यका जाननेवाला होना, चतुरता, स्वामीका भक्त होना, यह चार गुण परिचारक (सेवक) के होने चाहिये ॥ ६ ॥

रोगीके चार गुण ।

स्मृतिर्निर्देशकारित्वमभीरुत्वमथापिच ।
ज्ञापकत्वञ्चरोगाणामातुरस्यगुणाःस्मृताः ॥ ७ ॥

स्मरण रखना, वैद्यकी आज्ञामें चलना, निर्भय होना (घबरानेवाला न होना) अपने रोगोंको यथार्थ कहना यह चार गुण रोगीके कहे हैं ॥ ७ ॥

मूर्ख वैद्यके लक्षण ।

पाणिचारायथाचक्षुरज्ञानाद्भीतभीतवत् ।
नौर्मारुतवशेवाज्ञोभिषक्चरतिकर्मसु ॥ १४ ॥

अन्धा मनुष्य जैसे चलते समय आगेको हाथ मारता है और अति पवनके वेगसे जैसे नाव डगमगाती है ऐसे ही चिकित्साके समय मूर्ख वैद्य डगमगाताहुआ अंटसंट यत्न करताहै ॥ १४ ॥

कुत्सित वैद्यका कर्म ।

यदृच्छयासमापन्नमुत्तार्य्यानियतायुषम् ।
भिषग्मानीनिहन्त्याशुशतान्यानियतायुषाम् ॥ १५ ॥

मूर्ख वैद्यके हाथसे यदि कोई दैववश एक पुरुष भी अच्छा होजाय फिर वह उसको दृष्टांतमें रख "मैं ऐसा योग्य वैद्य हूं" यह कहकर वह दुष्ट सैकडों मनुष्योंकी आयुको नष्ट करताहै ॥ १५ ॥

वैद्यको प्राणदातृत्व ।

तस्माच्छास्त्रेऽर्थविज्ञानेप्रवृत्तौकर्मदर्शने ।
भिषक्चतुष्टयेयुक्तः प्राणाभिसरउच्यते ॥ १६ ॥

इसलिये जिस वैद्यने शास्त्र और उसके मर्मको समझाहो, औषध और औषधके प्रयोगको जाना हो तथा चिकित्साक्रमको अच्छी तरह देखलियाहो वह गुणचतुष्टय युक्त वैद्य प्राणोंको देनेवाला कहा जाता है ॥ १६ ॥

राजयोग्य चिकित्सकके लक्षण ।

हेतौलिङ्गेप्रशमनेरोगाणामपुनर्भवे ।
ज्ञानंचतुर्विधंयस्यसराजार्हुभिषक्तमः ॥ १७ ॥

जो वैद्य रोगके कारण और लक्षण तथा रोगनाशक उपाय और जिस प्रकार फिर रोग न होय ऐसी स्वास्थ्यरक्षा इन चार प्रकारोंके विषयको जानता है वह राजाओंकी चिकित्सा करने योग्य वैद्यराज होता है ॥ १७ ॥

वैद्यका कर्तव्यकर्म ।

शस्त्रंशास्त्राणिसलिलंगुणदोषप्रवृत्तये ।
पात्रापेक्षीण्यतःप्रज्ञांचिकित्सार्थंविशोधयेत् ॥ १८ ॥

शस्त्र, शास्त्र, जल, यह गुण और दोषमें पात्रकी अपेक्षा करतेहैं अर्थात् शस्त्र योग्य शूरवीरके हाथमें होनेसे गुणदायक होताहै और नालायक दुष्ट आदिके

Brain and Spine and abdomen.
नं॰ १
शिर और धड के स्थूल अवयव प्रदर्शक चित्र.
नासारंध्र
मुख
दक्षिण फुप्फुस
फुप्फुस
पित्ता
जिगर
दिल
आमाशय (स्टमक)
प्लीहा
वृक्क
वृक्क
भुजा
वाम भुजा
अंतड़ियां
मसानावस्ति
मलाशय
गुदा
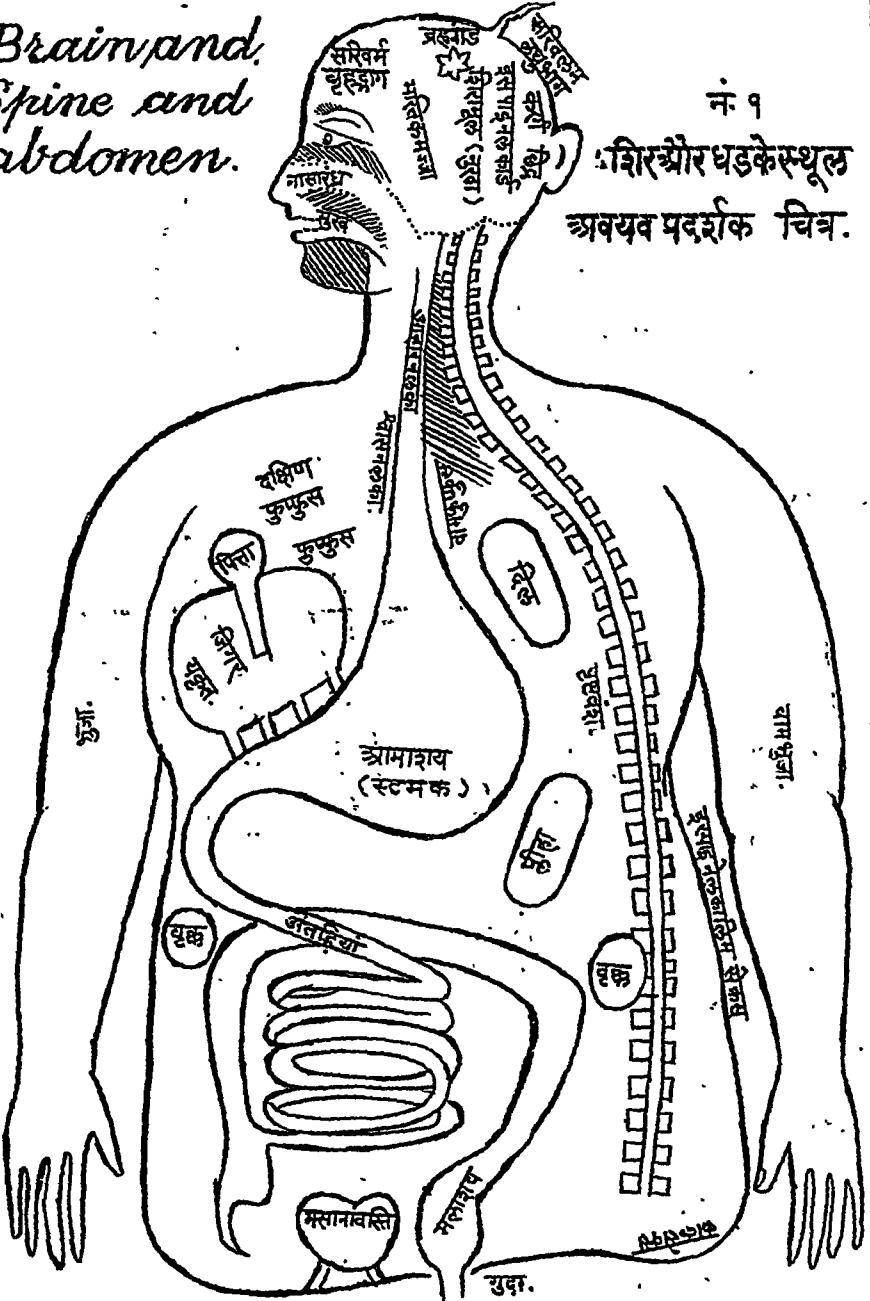
वैद्यके उपदेश।

चिकित्सितेत्रयःपादायस्माद्वैद्यव्यपाश्रयाः।
तस्मात्प्रयत्नमातिष्ठेद्भिषक्स्वगुणसम्पदि ॥ २३ ॥

चिकित्साके तीन पाद (आतुर, परिचारक, भेषज) वैद्यके ही अधीनहैं इसालिये वैद्यको उचित है, कि अपने गुणोंमें पूर्ण रूपसे संपन्न रहनेमें यत्नवान् रहै ॥२३॥

वैद्यकी चार प्रकारकी वृत्ति।

मैत्रीकारुण्यमार्त्तेषुशक्येप्रीतिरुपेक्षणम्।
प्रकृतिस्थेषभूतेषुवैद्यवृत्तिश्चतुर्विधेति ॥ २४ ॥

वैद्यको रोगियोंमें मित्रभाव और दयाभाव रखना योग्य है तथा साध्य रोगोंमें साहसपूर्वक यत्न करना उचित है और स्वस्थ मनुष्योंमें जिस प्रकार वह रोगी न हों यह यत्न रखना आवश्यक है इस चार प्रकारकी बुद्धिको ब्राह्मी बुद्धि कहतेहैं ॥ २४ ॥

अध्यायका संक्षिप्त विवरण।

तत्रश्लोकौ।

भिषग्द्रव्याण्युपस्थाताचतुष्पादंपादःपादश्चतुर्गुणः। भिषक्प्रधानंपादे-भ्योयस्माद्वैद्यस्तुयद्गुणः ॥२५ ज्ञानानिबुद्धिर्ब्राह्मीचभिष-जांयाचतुर्विधा।सर्वमेतच्चतुष्पादेखुड्डाकेसम्प्रकाशितमिति ॥२६॥

खुड्डाकचतुष्पादाध्यायःसमाप्तः ॥ ९ ॥

चिकित्साके चार पाद और एक एक पादके चार चार गुण उन सबमें वैद्यकी प्रधानता, वैद्यके चार प्रकारके गुण और ज्ञान ब्राह्मी बुद्धि, यह इस खुड्डाकचतुष्पाद अध्यायमें वर्णन किया गयाहै ॥ २५ ॥ २६ ॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदीयसंहितायां पटियालाराज्यांतर्गतटकसालनिवासिवैद्यपञ्चानन वैद्यरत्न पं० रामप्रसादवैद्योपाध्यायविरचितप्रसादन्याख्यभाषाटीकायां खुड्डाकचतुष्पादो नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

अंत्र (आंतडे) प्रदर्शक चित्र जिसमें कंठ से मलाशय तक कुल आहार नलका (एलीमेंटरी कनाल Alimentary Canal का स्फुट आकार है.
१ और २ के अंक का स्थान कंठ है जहां पे दोनों नलियां १ आहार नलका और २ श्वासनलका जुदी होती हैं.
इस चित्र में १ के चिन्ह से ३ के अंक तक आहार नलका Œsophagus है
४ आमाशय Stomach है ५ से ६ तक तन्वंत्र का ऊपरी भाग ७ यह जिजुनम और ८ एलिअम. इन तीनों को तन्वंत्र बारीक आंतें Small Intestines कहते हैं. ९ इसे स्थूलांत्र का अधोभाग - सीकम और १० यह एसिंडिंग कोलन और ११ ट्रांसवर्स कोलन १२ डिसेंडिंग कोलन कहलाती है. इनको स्थूलांत्र मोटी आंतें Large Intestines कहते हैं - १३ को मलाशय Rectum कहते हैं - १४-१५ ये दोनों वृक्क Kidney हैं १६ वस्ति मूत्राशय Bladder है १७ यकृत Liver है १८ पित्ता Gall-bladder है १९ प्लीहा Spleen है तथा जहां २ का अंक है वह कंठकी दूसरी श्वासनलका Trachea है. २० और २१ ये दोनों फुप्फुस Lungs हैं. और २२ यह हृत्कमल Heart है तथा कं और खं दोनों मूत्र मूत्रनली हैं और "गं" गुदा तथा मलद्वार है.
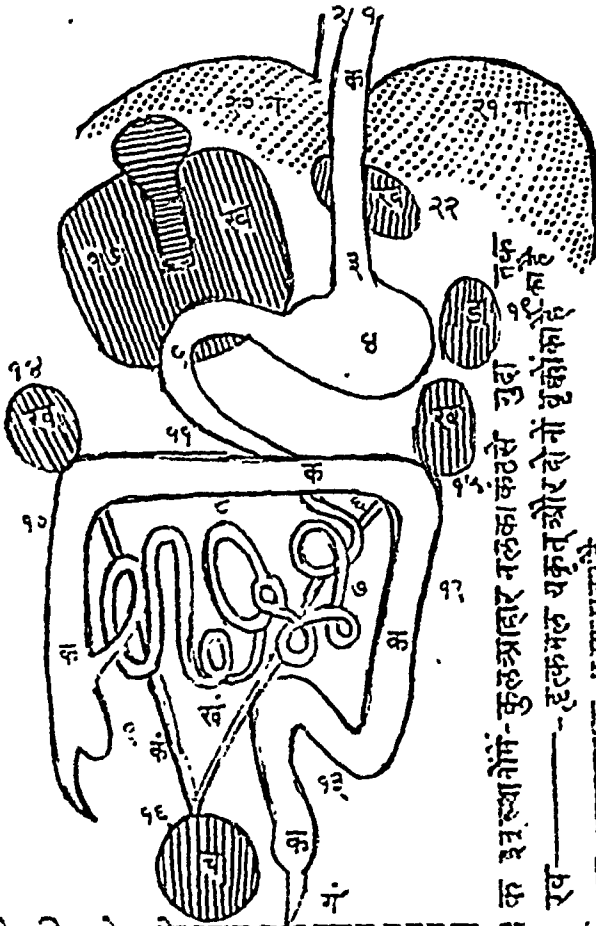
आत्रेयकी अनुभूत चिकित्सा ।

इदंचेदंचनः प्रत्यक्षंयदनातुरेणभेषजेनातुरंचिकित्सामः। क्षाम-मक्षामेनकृशंदुर्बलमाप्याययामः ॥६॥ स्थूलंमेदस्विनमपतर्पयामः । शीतेनोष्णाभिभूतमुपचरामः । शीताभिभूतमुष्णेन । न्यूनान् धातून्पूरयामः।व्यतिरिक्तान्ह्रासयामः।व्याधीन्मूलविपर्ययेणोपचरन्तः सम्यक्प्रकृतौस्थापयामः।तेषांनस्तथाकुर्वतामयंभेषजसमुदायः कान्ततमोभवति ॥ ७ ॥

हे मैत्रेय ! यह हमारा साक्षात् अनुभव है कि हम रोगीको रोगसे विपरीत गुण वाली (आरोग्यकारक) औषधिसे, और कमजोरको शक्तिवाली औषधसे चिकित्सा कर आरोग्य करलेतेहैं । ऐसे ही कृश और दुर्बलको तर्पण औषधीद्वारा पुष्ट करतेहैं । स्थूल और मेदवालेको रूक्षण कर कृश करलेतेहैं । एवं गर्मीसे पीडितको शीतल क्रिया द्वारा, शीतसे पीडितको उष्णक्रिया द्वारा, अच्छा करतेहैं। रसरक्तादि धातुएं कम होगईहों तो औषध द्वारा वढा देतेहैं।वढीहुई हों तो कमकर देतेहैं। विषम होगईहों तो यथोचित कर देतेहैं । इसी प्रकार जिसको जो रोग हो उस रोगके कारणसे विपरीत चिकित्सा कर रोगको दूर करके उसको स्वस्थ कर देतेहैं इस प्रकार जिस २ को जो २ रोग हो उस २ रोगमें उसी २ प्रकारकी चिकित्साका प्रयोग करनेपर हमारी औषधियें परम लाभदायक होतीहैं ॥ ६ ॥ ७ ॥

भवंतिचात्र ।

साध्यासाध्यविभागज्ञोज्ञानपूर्वंचिकित्सकः ।
कालेचारभतेकर्मयत्तत्साधयतिध्रुवम् ॥ ८ ॥

इसीलिये कहाहै। जो वैद्य रोगको साध्य और असाध्य विचारकर ठीक समय पर हेतु और रोगके विपरीत चिकित्सा करताहै वह वैद्य औषधसाध्य रोगोंको अवश्य जीतलेताहै ॥ ८ ॥

असाध्यरोगकी चिकित्साका फल ।

स्वार्थविद्यायशोहानिमुपक्रोशमसंग्रहम् ।
प्राप्नुयान्नियतंवैद्योयोऽसाध्यंसमुपाचरेत् ॥ ९ ॥

जो वैद्य असाध्यरोगमें चिकित्सा आरंभ करताहै उसके स्वार्थ(धनादि)विद्या, यश, नष्ट होजातेहैं और अपयश फैलताहै तथा उद्योग व्यर्थ जाताहै । इसलिये असाध्य रोगमें यत्न करना वृथा है ॥ ९ ॥
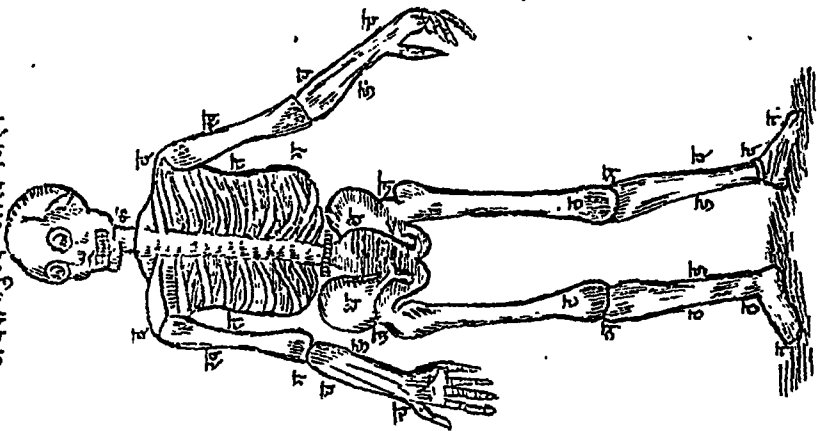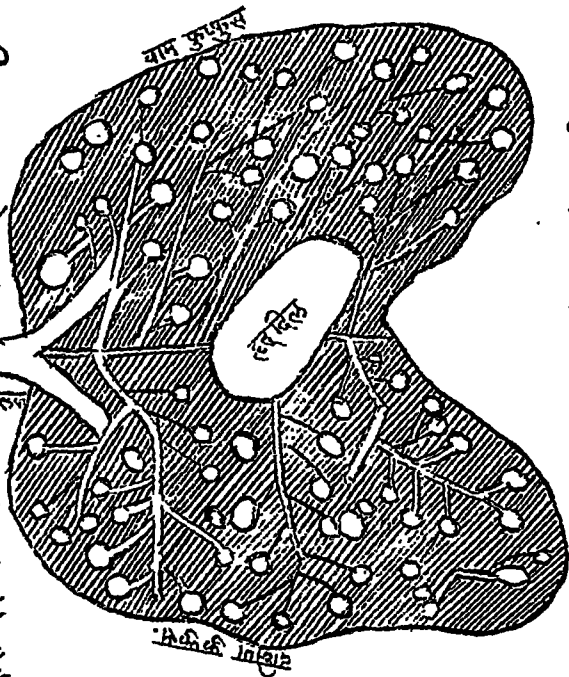
कुप्फुस-फेंफडोंका चित्र.
अँगरेजीमें फेंफडोंको लंग्स कहते हैं और अरबीमें रीया कहते हैं-बाहरका
वायु श्वासद्वारा इसीमें प्रवेश करता है. (Lungs.)
दहिना फुप्फुस
वाम फुप्फुस
इसमें जो श्वास नलका है यह आहार नलकासे जुदी है अर्थात् यह श्वास नलका अ-
गाडी होती है. और इससे पीछे आहार नलका दूसरी होती है जो मुंहसे आमाशय
को जाती है।
नरकङ्काल. Skeleton
अथवा मनुष्य अस्थि पंजर.

विद्यादेकपथंरोगंनातिपूर्णचतुष्पदम् । द्विपथंनातिकालंवाकृच्छ्रसाध्यंद्विदोषजम् ॥ १७ ॥ शेषत्वादायुषोयाप्यमसाध्यं पथ्यसेवया । लब्ध्वाल्पसुखमल्पेनहेतुनाशप्रवर्तकम् ॥ १८॥

जिस व्याधिमें निमित्त, पूर्वरूप, रूप, यह मध्यम बलवाले हों और समय, स्वभाव, और दूष्य (रसरक्तादि) इनके साथ रोगकी तुल्यता होय। गर्भिणी, बालक, वृद्ध, इनके रोग, और जिनमें बहुत बढेहुए उपद्रव नहीं तथा जिन रोगोंमें शस्त्र, क्षार, अग्नि इनका प्रयोग करनापडे, और बहुत दिनका रोग, यह सब कष्टसाध्य होतेहैं । एक दोषज और एकमार्गी रोग भी चिकित्साके चार पादोंके विना कष्टसाध्य होताहै । द्विमार्गगामी (ऊर्ध्वगामी और अधोगामी) शीघ्र प्रगटहुआ तथा द्विदोषज रोग भी कष्टसाध्य होताहै ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ यदि आयुबल बाकी हो तो असाध्य रोगमें भी पथ्य आदि सेवनसे कुछ समय व्यतीत होजाताहै और वह रोग कुछ दबासा रहताहै ऐसे रोगको याप्य कहतेहैं । इस रोगमें थोडासा कुपथ्य करनेसे भी यह रोग बढजाताहै जैसे पुराना अर्श और श्वास ॥ १८ ॥

द्विदोषज तथा कष्टसाध्य व्याधिके लक्षण ।

गम्भीरंबहुधातुस्थमर्म्मसन्धिसमाश्रितम् । नित्यानुशायिनं रोगंदीर्घकालमवस्थितम् ॥ १९ ॥ विद्याद्द्विदोषजंतद्वत्प्रत्याख्येयंत्रिदोषजम् । क्रियापथमतिक्रान्तंसर्वमार्गानुसारिणम् ॥ २० ॥ औत्सुक्यारतिसंमोहकरमिन्द्रियनाशनम् । दुर्बलस्य सुसंवृद्धंव्याधिसारिष्टमेवच ॥ २१ ॥

(असाध्य) जो रोग गंभीर हो, बहुत धातुओंमें स्थित हो, मर्मस्थान और संधियोंमे पहुंचाहुआ होय, जिसमें नित्य उपद्रव बढतेहों ऐसा द्विदोषज अथवा त्रिदोषज रोग जबाब देनेयोग्य होताहै अर्थात् यत्नकरनेयोग्य नहीं । जब व्याधि चिकित्सायोग्य न रहीहो । संपूर्णमार्गगामी होगईहो । और रोगीके शरीरमें व्यग्रता (घबराहट) बीमारी अशक्ति और मोह उत्पन्न होय तथा इंद्रियोंकी शक्ति नष्ट होगईहो तथा दुर्बल मनुष्यकी बढीहुई और मरणख्यापक व्याधिका यत्न करना उचित नहीं वह रोग असाध्य होतेहैं ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥

वैद्यको शिक्षा ।

भिषजाप्राक्परीक्ष्यैवंविकाराणांसुलक्षणम् । पश्चात्कार्य्यसमारम्भःकार्य्यःसाध्येषुधीमता ॥ २२॥ साध्यासाध्यविभाग-

सबका अंत है । यह संदेह कैसे हुआ उसको कहतेहैं (॥ १ ॥) कुछ लोग प्रत्यक्ष-वादी हैं वह कहते हैं कि हमको कोई परलोकको जाता या परलोकसे आकर जन्म-लेता दिखाई नहीं देता इसलिये पुनर्जन्म या परलोकको हम नहीं मानते जो इंद्रि-यद्वारा प्रत्यक्ष है उसीको हम मानतेहैं अप्रत्यक्ष नहीं । इस प्रकार नास्तिकताको ग्रहण करते हैं (॥ २ ॥) दूसरे (आस्तिकलोग) अनुमानसे तथा आप्तवाक्यसे और श्रुतिवाक्यसे पुनर्जन्म सिद्ध है ऐसा मानते हैं (॥३॥) तीसरे जन्मका कारण माता पिता ही होते हैं सदासे ऐसा ही चला आयाहै इनसे सिवाय और कोई कारण नहीं (॥ ४ ॥) चौथे स्वभावको ही मानते हैं, अर्थात् जीव अपने आप ही जन्म लेता है अन्य कारण नहीं (॥ ५ ॥) पांचवें कहते हैं कि कोई इस संसा-रको रचनेवाला है वही इस जीवको उत्पन्न करताहै (॥ ६ ॥) छठे कहतेहैं यह विश्वमें एक ऐसी शक्ति है जिससे मनुष्यादि उत्पन्न होते हैं और इसको रचनेवाला कोई नहीं । इसलिये संशय होता है कि पुनर्भव (पुनर्जन्म) होताहै या नहीं । अब समाधान करतेहैं कि धृष्टतासे नास्तिक ही बनजाना और युक्ति प्रमाण इत्या-दिक न मानना इसका तो कुछ यत्न ही नहीं । यदि तुम कहो पुनर्जन्म प्रत्यक्ष नहीं अर्थात् दीखता नहीं; सो संसारमें प्रत्यक्ष बहुत कम है और अप्रत्यक्ष बहुत है अर्थात् ऐसी बहुत वस्तुएं हैं जो प्रत्यक्ष तो नहीं परन्तु आप्तोपदेश, अनुमान, युक्ति इनसे स्पष्ट प्रतीत होती हैं। और देखिये तो सही "जिन इंद्रियोंद्वारा हमको प्रत्यक्षकी उपलब्धि होती है वह इंद्रियें ही अप्रत्यक्ष हैं तो प्रत्यक्ष न होनेसे क्या इंद्रियोंका अभाव मानोगे ? (कभी नहीं) ॥ ५ ॥

प्रत्यक्षके बाधक ।

सताञ्चरूपाणामतिसन्निकर्षादतिविप्रकर्षादावरणात्करणदौ-र्बल्यान्मनोऽनवस्थानात्समानाभिहारादभिभवादतिसौक्ष्म्या-च्चप्रत्यक्षानुपलब्धिः । तस्मादपरीक्षितमेतदुच्यतेप्रत्यक्षमे-वास्तिनान्यदस्तीतिश्रुतयश्चैतानकारणंयुक्तिविरोधात् ॥ ६ ॥

औरभी देखिये अनेक प्रकारसे रूपवाली वस्तुके विद्यमान रहते भी प्रत्यक्ष नहीं होता । जैसे अति समीपहोनेसे अर्थात् नेत्रमें जो अंजन या अन्य कोई पदार्थ नेत्रसे छुआ देनेसे दिखाई नहीं पडता ऐसेही बहुत दूर होनेसे भी प्रत्यक्ष नहीं होता । एवं बीचमें कोई भीत आदि होनेसे, इंद्रियकी दुर्बलतासे अथवा मनकी चञ्चलतासे अर्थात् मनके संयोगके बिना भी इंद्रियसे प्रत्यक्ष होने योग्य वस्तु-का प्रत्यक्ष नहीं होता । ऐसे ही समान वस्तुओंमें मिलजानेसे अर्थात् एक चावल

मस्तिष्क संबन्धिचित्र. (Brain)
इस मस्तिष्क संबंधी चित्रमें १-२-३-४ चिन्ह इत्यादि से लेकर १८-१९-२० चिन्हपर्यंत मस्तिष्क का नीचेका प्रतिरूप तिन्होंमें
१ क्षुद्रमस्तिष्क.
३ मस्तिष्कका अग्रखंड.
४ घ्राणस्नायु.
७ दर्शनस्नायु.
८ दर्शनस्नायुप्रदेश.
९ नेत्रस्पंदक स्नायु
१० दृष्टिसन्धि
१२ पश्चाच्छिद्रान्वितप्रदेश.
हस्तशिराप्रदर्शकचित्र.
चरणशिराप्रदर्शकचित्र.
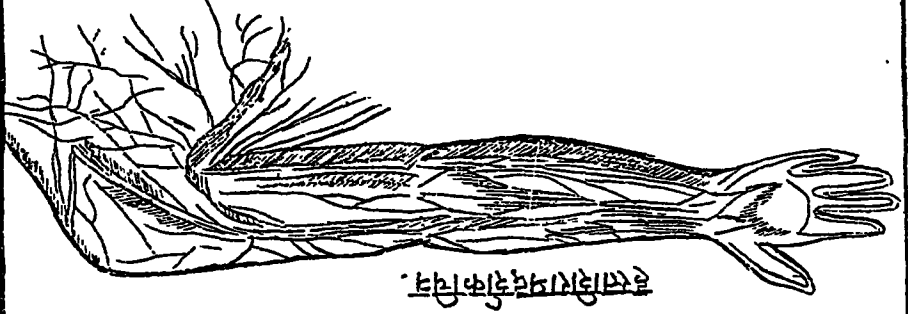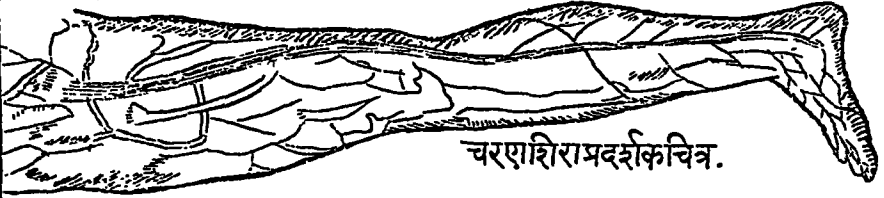
स्वभाववादियोंके मतका खण्डन ।

विद्यात्स्वाभाविकंषण्णांधातूनांयत्स्वलक्षणम् ।
संयोगेचवियोगेचतेषांकर्मैवकारणम् ॥ १० ॥

यदि कहो कि यह स्वाभाविक धर्म है कि पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश और आत्मा इनके संयोग होनेसे उत्पत्ति और वियोग होनेसे नाश होजाताहै तो बतलाइये इन सबके संयोग और वियोग होनेमें कारण कौन है यदि कहो पूर्व-जन्मका कर्म कारण है तो पुनर्जन्म सिद्ध होगया । नहीं तो संयोग वियोगमें कोई हेतु नहीं दीखता ॥ १० ॥

परनिर्माणवादियोंका खण्डन ।

अनादेश्चेतनाधातोर्नेष्यतेपरनिर्मितिः ।
परआत्मासचेद्धेतुरिष्टोऽस्तुपरनिर्मितिः ॥ ११ ॥

और अनादि चैतन्य आत्मा कोई बना भी नहीं सकता क्योंकि जो वस्तु बनाई जाती हैं वह जिस दिन बनी वह दिन उसकी आदिका है इसलिये जो अनादि है उसको कोई बना नहीं सकता । यदि कहो परमातमा इसका बनानेवाला है तो इसमें कोई आपत्ति नहीं; क्योंकि परमात्माको कर्त्ता माननेमें आस्तिकतामें कोई हानि नहीं ॥ ११ ॥

यदृच्छावादियोंका विषय ।

नपरीक्षानपारीक्ष्यंनकर्ताकारणंनच । नदेवानर्षयःसिद्धाः कर्म्मकर्म्मफलंनच ॥ १२ ॥ नास्तिकस्यास्तिनैवा-त्मायदृच्छोपहतात्मनः । पातकेभ्यःपरञ्चैतत्पातकंनास्तिक-ग्रहः ॥ १३ ॥ तस्मान्मतिंविमुच्येताममार्गप्रसृतांबुधः । सतां बुद्धिप्रदीपेनपश्येत्सर्वंयथातथम् ॥ १४ ॥ इति ॥

यदि कहो प्रमाणसे कोई परीक्षा नहीं और न परीक्षाका कोई विषय है । न कोई कर्ता है।न कारण है।न ऋषि है।न देवता है।न सिद्ध है।न कुछ कर्म है।न कर्मका फल होताहै । न और कुछ है । न आत्मा है । मरण जन्म भी ऐसे ही है इसकाभी कोई कारण नहीं । ऐसे अंटसंट बकनेवालेके समीप जाना भी पापोंसे बढकर महापाप है । क्योंकि इस मूर्ख निंदक नास्तिक को किसी प्रकार मानना तो हैही नहीं, इससे बात करना भी मूर्खता है ॥ १२ ॥ १३ ॥ इसलिये धृष्टता और कुमा-

प्रत्यक्षपूर्वक तीन प्रकारका अनुमान होताहै । कार्य लिङ्गानुमान,कारण लिङ्गानुमान, कार्यकारण लिङ्गानुमान; अथवा यों कहिये पूर्ववत्, शेषवत्, सामान्यतोदृष्ट, यह तीनप्रकारका अनुमान अतीत, अनागत, वर्तमान, इन तीन कालोंके ज्ञानका बोधक होताहै । जैसे धूमके दर्शनसे अग्निका बोध होजाना यह वर्तमानकालिक अनुमान है । गर्भवतीको देखकर यह बोध होना इससे पहले मैथुन कियाहै यह अतीतकालिक अनुमान है।बीजोंको देखकर यह बोध होना कि इनसे ऐसे फल होंगे यह भविष्यत्कालिक अनुमान है अथवा यों कहिये इन बीजोंसे ऐसे फल होंगे और ऐसे फलोंसे ही यह बीज हुए इसको कार्यकारणानुमान कहतेहैं ॥१९॥२०॥

युक्तिका लक्षण ।

जलकर्षणबीजर्त्तुसंयोगाच्छस्यसंभवः । युक्तिःषड्धातुसंयोगाद्गर्भाणांसम्भवस्तथा ॥ २१ ॥ मथ्यमन्थनमन्थानसंयोगादग्निसम्भवः । युक्तियुक्ताचतुष्पादसम्पद्व्याधिनिबर्हणी॥ ॥ २२ ॥ बुद्धिःपश्यतियाभावान्बहुकारणयोगजान् । युक्तिस्त्रिकालासाज्ञेयात्रिवर्गःसाध्यतेयया ॥ २३ ॥

युक्तिके लक्षण जैसे—जल, खेत, बीज, ऋतु, इन चारोंके योगसे शस्य (अन्नकी खेती) उत्पन्न होतीहै। ऐसे ही पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, और आत्माके योगसे गर्भ उत्पन्न होताहै। और जैसे मंथ और मंथन (यज्ञमें घिसकर अग्नि पैदा करनेकी दोनों लकडियोंको मंथ और मंथन कहतेहैं) तथा मंथनकर्ता, इनके संयोगसे अग्निकी उत्पत्ति होतीहै इसी प्रकार चतुष्पादसम्पन्न चिकित्सासे व्याधि भी नष्ट होजातीहै। इसप्रकार जो बुद्धि अनेक कारणोंसे पैदाहुए अनेक भावोंको देखनेमें समर्थ होतीहै उसीको युक्ति कहतेहैं यह युक्ति भूत, भविष्यत, वर्तमान, इन तीन कालोंमें ही व्यापक होनेवाली है। इसीके द्वारा धर्म अर्थ काम की सिद्धि होती है ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥

एषापरीक्षानास्त्यन्याययासर्वंपरीक्ष्यते ।
परीक्ष्यंसदसच्चैवंतयाचास्तिपुनर्भवः ॥ २४ ॥

सम्पूर्ण सत् और असत्के जाननेके लिये यह चार प्रकारकी परीक्षा है अर्थात यह चार प्रमाण हैं । इन चारोंसे अधिक परीक्षा अर्थात् पाँचवां कोई प्रमाण नहीं यद्यपि कोई२ अर्थापत्ति अनुपलब्धि आदि अन्य प्रमाणभी,मानतेहैं परंतु अनुमान और युक्तिके अंतर्गत अर्थापत्ति आदिके आजानेसे इन चारोंसे अन्य प्रमाण कल्पना

स्नायुप्रदर्शक चित्र. (Nerves)
इस चित्रमें क मस्तकस्थ
बृहत् मस्तिष्क
क
ख
ग
घ
ङ
ज
च
छ
झ
ठ
ट
ड
अ
टि
ढ
ण
ख क्षुद्रमस्तिष्क.
ग ग्रीवास्नायु.
घ वदनस्नायु.
ङ प्रगंडसन्धिस्नायु.
ज प्रगंडस्नायु.
च प्रकोष्ठस्नायु.
छ प्रकोष्ठनिम्नस्नायु.
झ करतलस्नायु.
ठ नितम्बस्नायु.
अ पर्शुकाभ्यंतर स्नायु.
ड जानुपश्चात्स्नायु.
ट जान्वभिमुखस्नायु.
ण पदतलस्नायु.
टि कटिस्नायु.
त ऊरुस्नायु.
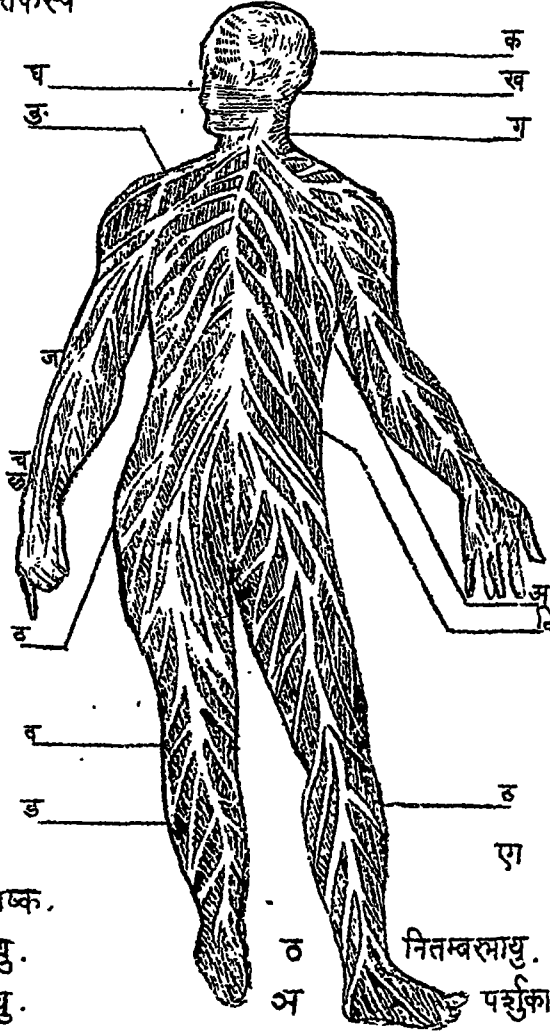
दितस्तनपानहासत्रासादीनाञ्चप्रवृत्तिलक्षणोत्पत्तिःकर्मसामान्येफलविशेषोमेधाक्वचित्क्वचित्कर्मण्यमेधाजातिस्मरणमिहागमनमितश्च्युतानाञ्चभूतानांसमदर्शनेप्रियाप्रियत्वमतएवानुमीयते । यत् स्वकृतमपरिहार्य्यमविनाशिपौर्वदेहिकंदेवसंज्ञकमानुबन्धिकंकर्म्मतस्यैतत्फलमितश्चान्यद्भविष्यतीतिफलाद्बीजमनुमीयते । फलञ्च बीजात् ॥ २७ ॥

और यह देखनेमें भी आताहै कि संतानके शरीरावयव-माता पिताके समान नहीं होते। और एकही माता पितासे पैदा हुए पुत्रोंके भी वर्ण, स्वर, आकृति, सत्त्व, बुद्धि, और भाग्यमें भेद (फरक)होताहै अर्थात् सब एकसे नहीं होते। ऐसे ही कुल जन्म, दास्य, ऐश्वर्य, इनमें भी बडाई छोटाई तथा किसीकी सुखायु और किसीकी दुःखायु व्यतीत होती दिखाई देतीहै । इसी प्रकार आयुमें न्यूनता अधिकता, और इस जन्ममें कियेहुए बहुतसे कर्मोंका फल इसी जन्ममें न होना, विना ही किसीसे सीखे जन्मलेते ही बच्चेका रोना, स्तनपान करना, हँसना, दुःखित होना, इनसे भी पुनर्जन्म सिद्ध है । ऐसे ही बालकके जन्मसे शुभ तथा अशुभ लक्षणोंसे कर्म तुल्य होतेहुए भी फलमें भेद होनेसे, एककामके करनेमें बुद्धिभेद होनेसे और इस लोकसे मरकर फिर इसी लोकमें आकर जन्म लियाहै ऐसा बहुत मनुष्योंको स्मरण होजाताहै इससे तथा एकही वस्तुमें एकका प्रेम दूसरेका विरोध देखनेमें आताहै, ऐसे २ हेतुओंसे स्पष्ट प्रतीत होताहै कि जो २ जिस २ ने पूर्वजन्ममें कियाहै वह किसीसे मिटाया नहीं जाता वह अविनाशी है, उसी कर्मको लोकमें दैव उसीको अनुबन्धी कर्म (पुरारब्ध) कहतेहैं जिसका फल इस जन्ममें भोगना पडताहै । ऐसे ही इस जन्मके कियेकर्मके फलको आगेको होनेवाले जन्ममें भोगना पडेगा । जैसे फलसे बीज और बीजसे फल होता हैं, ऐसे ही कर्माधीन जन्म होता जाता है॥२७॥

युक्तिसे पुनर्जन्मकी सिद्धि ।

युक्तिश्चैषाषड्धातुसमुदयाद्गर्भजन्मकर्तृकरणसंयोगात्क्रियाकृतस्यकर्मणःफलंनाकृतस्यनांकुरोत्पत्तिरबीजात् । कर्मसदृशंफलंनान्यस्माद्बीजादन्यस्योत्पत्तिरितियुक्तिः ॥ २८ ॥

---

१ पूर्वाऽभ्यस्तस्मृत्यनुबन्धाज्जातस्य हर्षभयशोकसंप्रतिपत्तेः) न्या० भा० । जातः खल्वयं कुमारकोऽस्मिञ्जन्मन्यग्रहीतेषु हर्षभयशोकहेतुषु हर्षभयशोकान् प्रतिपद्यते लिंगानुमेयान् ते च स्मृत्यनुबन्धादुत्पद्यन्ते नान्यथा । स्मृत्यनुबन्धश्च पूर्वाभ्यासमन्तरेण न भवति पूर्वाभ्यासश्च पूर्वजन्मनि सति नान्यथा ।

उपस्तम्भादि त्रिक ।

अथखलुत्रयउपस्तम्भाः, त्रिविधबलम्, त्रीण्यायतनानि, त्रयोरोगाः, त्रयोरोगमार्गाः; त्रिविधाभिषजः, त्रिविधमौषधमिति ॥ ३१ ॥

यहां—तीन उपस्तंभ अर्थात् खम्भे हैं । तीन प्रकारका बल है तीन आयतन हैं तीन रोग हैं । तीन रोगमार्ग हैं । तीन प्रकारके वैद्य हैं । तीन प्रकारकी औषधि हैं ॥ ३१ ॥

उपस्तंभोंका वर्णन ।

त्रयउपस्तम्भाइत्याहारःस्वप्नोब्रह्मचर्य्यमितिएभिस्त्रिभिर्युक्तियुक्तैरुपस्तब्धमुपस्तम्भैःशरीरंबलवर्णोपचयोपचितमनुवर्त्तते यावदायुषःसंस्कारात् ॥ ३२ ॥

(३ उपस्तंभ) आहार, निद्रा, ब्रह्मचर्य, यह तीन शरीरके उपस्तंभ—खम्भ हैं । इन तीनों युक्तियुक्त स्तंभोंके ठीक सेवनसे शरीरमें बल और वर्णकी वृद्धि होती रहेगी और आयुकी वृद्धि होगी । इसी प्रकार इनके अनुचित व्यवहारसे आयुकी हानि करनेवाले रोग होते हैं उनका इसी अध्यायमें कथन करेंगे ॥ ३२ ॥

तीनप्रकारका बल ।

संस्कारसहितमनुपसेवमानस्य यइहैवोपदेक्ष्यते । त्रिविधंबलमितिसहजंकालजंयुक्तिकृतञ्चसहजंयच्छरीरसत्त्वयोःप्राकृतम् । कालकृतमृतुविभागजंवयःकृतञ्च । युक्तिकृतंपुनस्तदाहारचेष्टायोगजम् ॥ ३३

(३ प्रकारका बल) सहजबल, कालकृतबल, युक्तिकृतबल, यह तीन प्रकारका बल होताहै । इनमें शरीर और मनका जो स्वाभाविक बल है उसको सहजबल कहतेहैं । और ऋतुविशेष या अवस्थाजन्य जो बल है उसको कालकृतबल कहतेहैं । एवं आहार, कसरत, अथवा किसी औषध आदि योग या अभ्याससे प्राप्त किये हुए बलको युक्तिकृत बल कहतेहैं ॥ ३३ ॥

तीन आयतनोंका वर्णन ।

त्रीण्यायतनानीतिअर्थानांकर्म्मणः कालस्यचातियोगायोगाभियोगाः । तत्रातिप्रभावतांदृश्यानामतिमात्रंदर्शनमतियोगः

धन्यवाद ।

हमारे आयुर्वेदिक शास्त्रोंमें चरक ही एक ऐसा अनुपम ग्रन्थ है कि जिसकी प्रशंसा आयुर्वेदके तत्त्वज्ञाता मुक्तकण्ठ हो करतेहैं । जिस महर्षि पतञ्जलिके व्याकरणमहाभाष्य तथा योगदर्शनको विचारते समय कुशाग्रबुद्धि प्रतिभासम्पन्न भी विद्वान् उन्हें वश्यवाक् समझतेहैं जिनकी कृपासे मनुष्योंकी वाणी संस्कृत होकर अपशब्दोंके दोषोंसे बचतीहै उन्हीं महर्षि पतञ्जलिने मनुष्योंकी नीरोगताके लिये आयुर्वेदशास्त्रकी शिरोमणि यह चरकसंहिता बनाई है चरकसंहिताके उद्धार करनेवाले वही (पतञ्जलि ही) चरक हैं इसमें यही प्रसिद्ध श्लोक–(योगेन चित्तस्य पदेन वाचां मलं शरीरस्य च वैद्यकेन । अपाकरोद्यः प्रवरं मुनीनां पतञ्जलिं प्राञ्जलिरानतोऽस्मि) प्रमाण है । जो कुछभी हो इस ग्रन्थमें वह उत्तान गम्भीर आशय और चिकित्सामें वैद्यकी बुद्धि यदि उत्तम हो तो एक योगसे कितने ही योग नवीन कल्पित कर लेना इत्यादि अलौकिक बात लिखीहुई हैं ।

समयानुकूल अब इसकी हिन्दी टीकाकी बडी आवश्यकता होगई है । एक आवृत्ति यह पण्डित मिहिरचन्द्रजीकी बनाई हुई टीकासहित छपचुकी है अबकी बार पटियालाराज्यान्तर्गत टकसालग्रामनिवासी आयुर्वेदोद्धारक वैद्यपञ्चानन पण्डित रामप्रसादजी वैद्योपाध्याय द्वारा प्रसादनीनामक सरल हिन्दीभाषामें टीका बनवाई है आनन्दकी बात है, कि इस टीकामें उक्त वैद्यजीने अतिकठिन स्थलोंपर भी ऐसी सरलटीका बनाईहै कि लोग विना परिश्रम इस ग्रन्थका अभिप्राय समझ जायँगे ।

इस सर्वोपकारक कार्य करनेके लिये हम वैद्यजीको अनेक धन्यवाद देतेहैं और आशा करतेहैं कि और भी उत्तम उत्तम ग्रन्थोंकी भाषाटीका बना आयुर्वेदके प्रचार करनेमें आप भाग लियाकरेंगे ।

खेमराज श्रीकृष्णदास,

"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् यन्त्रालयाध्यक्ष–बम्बई.

वाह्लीकका मत।

तच्छ्रुत्वावाक्यंकाङ्क्षायनोवाह्लीकाभिषगुवाच । एवमेतद्यथा भगवानाह । एतान्येववातप्रकोपनानिभवन्ति। अतोविपरी-तानिखल्वस्यप्रशमनानिभवन्ति । प्रकोपनविपर्य्ययोहिधातू-नांप्रशमकारणमिति ॥ ४ ॥

यह वाक्य सुनकर "कांक्षायन-वाह्लीक वैद्य" कहनेलगे जैसे आपने कहाहै वैसे ही है। यही रूक्षादिगुणयुक्त द्रव्यादि वातके कोप करनेमें कारण होतेहैं । इससे विपरीत स्निग्धादिगुण प्रभाव युक्त द्रव्यों या कर्मोंसे वातकी शान्ति होतीहै क्योंकि प्रकोपके कारणसे विपरीतगुणोंवाले द्रव्यादिकोंका सेवन ही धातुओं (वातादिकोंसे ही यहां धातुशब्दका लक्षण है) को शांत करनेके कारण होतेहैं ॥ ४ ॥

बडिशधामार्गवका मत।

तच्छ्रुत्वावाक्यंबडिशोधामार्गवउवाच । एवमेतद्यथाभगवा-नाह । एतान्येववातप्रकोपप्रशमनानिभवन्ति । यथाह्येनमसं-घातमवस्थितमनासाद्यप्रकोपनप्रशमनानिप्रकोपयन्तिप्रशम-यन्तिवा । तथानुव्याख्यास्यामः । वातप्रकोपनानिखलुरूक्ष-लघुशीतदारुणखरविषदशुषिरकराणिशरीराणांतथाविधेषुशरी-रेषुवायुराश्रयंगत्वाआप्याय्यमानःप्रकोपमापद्यते।वातप्रशम-नानिपुनःस्निग्धगुरूष्णश्लक्ष्णमृदुपिच्छिलघनकराणिशरीरा-णांतथाविधेषुशरीरेषुवायुरासज्यमानश्चरन्प्रशान्तिमापद्यते ५

यह सुनकर "बडिश धामार्गव" बोले, जैसे आपने कहा है ठीक ऐसे ही है। यह ही वायुके प्रकोप और शांतिके कारण होतेहैं । जिस प्रकार इस सूक्ष्म और चल वायुको प्राप्त हो कोपकारक और शांतिकारक द्रव्य प्रकुपित और शमनको प्राप्त होतेहैं उनका वर्णन भी करतेहैं। वह ऐसेहैं वातको प्रकुपित करनेवाले पदार्थ अपने रूक्ष, लघु, शीतल, दारुण, खर, विशद और शुषिर करनेवाले गुणोंसे वातस्वभाव-वाले शरीरोंमें वायुके आश्रय होकर वायुके कोपको प्राप्त होतेहैं अर्थात् रूक्षादि गुणोंवाले पदार्थ वातप्रधान शरीरमें अपने रूक्षादि गुणोंसे वायुको बढाकर कुपित करदेतेहैं। (तात्पर्य यह हुआ कि अपने रूक्षादि गुणोंको प्राप्त हो वायु बढ़कर कुपित होजाताहै)। ऐसे ही वातको शान्त करनेवाले द्रव्य शरीरोंमें-चिकनाई गुरुता उष्णता श्लक्ष्णता, कोमलता पिच्छिलता और घनताको करतेहैं । फिर

और जो, बेर, कुलथी इनके यूष, गुड, खांड, अनारका रस, दही, और त्रिकुटा इनके योगसे स्नेहपान करावे, इस प्रकार स्नेहके योगका संग्रह कहा है। तिल,स्नेह,फाणित,इनका मिलाकर भोजनसे पहले सेवन करे तो शरीरको चिकना करते हैं ॥ ८३ ॥

कृशराश्चबहुस्नेहास्तिलकाम्बलिकास्तथा । फाणितंशृङ्गवेरश्चतैलञ्चसुरयासह ॥८४ ॥ पिबेद्रूक्षोघृतैर्मांसैर्जीर्णेऽश्नीयाच्च भोजनम् । तैलंसुरायामण्डेनवसांमज्जानमेववा ॥ ८५ ॥ पिबेत्सफाणितंक्षीरंनरःस्निह्यतिवातिकः ॥ धारोष्णंस्नेहसंयुक्तंपीत्वासशर्करंपयः ॥ ८६ ॥

खिचडी तिल कांबालिक वहुतसे स्नेहको साथ सेवन करनेसे शरीर चिकना होताहै एवं फाणित, सोंठ, तैल, सुरा,इनको मिलाकर पीवे,जीर्ण होनेपर घृतऔर मांसरससे भोजन करे तो रूक्ष शरीर भी स्निग्ध होय । वातप्रधान मनुष्य वारुणमिंडके साथ तैल मिलाके पीवे अथवा केवल वसा और मज्जाको पानकरे॥८४॥८५॥अथवा फाणितके साथ दूध पीनेसे वातप्रधान मनुष्यका शरीर चिकना होताहै । अथवा धारोष्णदूध, घृत और खांड मिलाके पीवे ॥ ८६ ॥

स्निग्धकरना ।

नरःस्निह्यतिपीत्वावासरंदध्नःसफाणितम्। पाञ्चप्रसृतिकीपेया पायसोमाषमिश्रकः ॥ ८७ ॥ क्षीरसिद्धोबहुस्नेहःस्नेहयेदचिरान्नरम् । सर्पिस्तैलवसामज्जातण्डुलप्रसृतैः कृता॥ ८८ ॥ पाञ्चप्रसृतिकीपेयापेयास्नेहनमिच्छता । ग्राम्यानूपौदकंमांसं गुडंदधिपयस्तिलान् ॥८९॥ कुष्ठीशोषीप्रमेहीचस्नेहनेनप्रयोजयेत् । स्नेहैर्यथास्वंतान्सिद्धैःस्नेहयेदविकारिभिः ॥ ९० ॥

अथवा दहीकी मलाई और फाणितके पीनेसे मनुष्य स्निग्ध होजाताहै ।अथवा आगे कहीहुई पांचप्रसृतिपेया या दूधमें सिद्ध कीहुई उडदोंकी खीर अत्यंत चिकनी होनेसे मनुष्यको शीघ्र स्निग्ध करदेतीहै । घी, तेल, वसा,मज्जा और चावलोंको दो२छटांक लेकर इकट्टेकर पकावे इसको पांचप्रसृतिकी पेया कहतेहैं अपने शरीरको चिकना करनेकी इच्छा करनेवाला इस पेयाको पीवे । कोढी,शोथवाला, प्रमेहरोगी स्नेहनके लिये ग्राम्य और अनूप संचारी जीवोंके मांसरस तथा जलसंचारी मांस

भूमिका ।

आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः ।

आयुर्वेदके उपदेशोंको परम आदरसे धारण करना चाहिये । यह क्यों ? इसलिये कि, यह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार पुरुषार्थोंकी आधारभूत मनुष्यकी आरोग्यताकी प्राप्ति और आयुकी रक्षाके लिये है । और "हिताहितं सुखं दुःखमायुस्तस्य हिताहितम् । मानञ्च तच्च यत्रोक्तमायुर्वेदः स उच्यते ॥" अर्थात् जिस शास्त्रमें आयुसंबधी हित अवस्था, अहित अवस्था, सुखी अवस्था; दुःखी अवस्था, आयु, आयुका हित और अहित तथा आयुका परिमाण यथार्थ रूपसे कहे हों उसे आयुर्वेद कहतेहैं । महात्मा धन्वन्तरिजीने सुश्रुतसे कहाहै कि, "एकोत्तरं मृत्युशतमथर्वाणःप्रचक्षते।तत्रकः कालसंज्ञस्तु शेषास्त्वागन्तवःस्मृताः॥" अर्थात्–अथर्ववेदके जाननेवाले '१०१ मृत्युएँ होतीहैं' ऐसा कहतेहैं, उनमेंसे जो अवश्यम्भावी समयोचित एक मृत्यु है उसको कालमृत्यु कहतेहैं, शेष सौ मृत्यु-ओंको आगन्तुक,(अकालमृत्यु) कहतेहैं। उन १०० मृत्युओंसे बचनेके लिये ही आयुर्वेदके उपदेशोंको परम आदरसे धारण करना चाहिये क्योंकि, यह आयुर्वे-दही धर्मादि चतुर्विध पुरुषार्थका साधनभूत आयुका रक्षक है ।

यह आयुर्वेद प्रथम ब्रह्माके हृदयमें आविर्भूत हुआ, ब्रह्माने दक्ष प्रजापतिको पढाया, दक्षसे अश्विनीकुमारोंने पढा, अश्विनीकुमारोंने इन्द्रको पढाया, इन्द्रके यहांसे भरद्वाज (आयुर्वेदको) लाये और सांगोपांग ऋषियोंको सुनाया । और इसी आ-युर्वेदको महात्मा आत्रेयजीने आत्रेयसंहितानामक पचास हजार श्लोकोंमें एक संहिता बनाकर अग्निवेश आदि अपने छः शिष्योंको पढाया । फिर इन छःओं शिष्योंने भगवान् आत्रेयजीसे आयुर्वेदको पढकर अपने २ नामसे छः संहितायें बनाई उन सबोंमें अग्निवेशकृत संहिता अत्युत्तम मानी गई, इस संहिताकी ऋषि और देव-ताओंने भी प्रशंसा की । यह संपूर्ण संहितायें आज कल लुप्तप्राय सी होगई हैं ।

इनके सिवाय शल्यशालाक्य तंत्रमें भगवान् धन्वंतरिजीकी संहिता अत्युत्तम मानी गई । भगवान् धन्वतरिजीने सुश्रुत आदि अपने शिष्योंको शल्यशालाक्य प्रधान जो आयुर्वेदका उपदेश किया उसको महात्मा नागार्जुनने संग्रह किया, वह ग्रंथ "सुश्रुतसंहिता" नामसे प्रख्यात और अति उत्तम तथा शल्यशालाक्य चिकि-त्सामें अति श्रेष्ठतम मानागया । और वृद्धवाग्भट्ट वाग्भट्टआदि और संहितायें भी चरक और सुश्रुतसे पीछे बनीं ।

और दुःख, पुष्टता और कृशता, बल तथा निर्बलता, वृषता तथा क्लीवता, ज्ञान और अज्ञान एवं जीवन और मरण यह सब निद्राके अधीन है ॥ ३६ ॥ वे समय सोनेसे बहुत ज्यादा सोनेसे, एवं एकसाथ ही निद्राका त्याग देनेसे मनुष्योंका सुख और आयु रात्रिके प्रातःकालके समान किंचित् शेष रहजाताहै, तात्पर्य यह कि जैसे दो घडी रात बाकी रहनेपर रात्रि नष्टप्राय ही होतीहै ऐसेही निद्राकी विपरीततासे मनुष्यका सुख और आयु भी नष्टप्राय समझना चाहिये ॥ ३७ ॥ और वही निद्रा यदि युक्तिपूर्वक ठीक सेवन कीजावे तो जैसे योगी पुरुष सिद्धिको प्राप्त होकर सत्यबुद्धिका लाभ करलेताहै उसी प्रकार उचित रीतिसे निद्रासेवन करनेवाला मनुष्य सुख और दीर्घायुको प्राप्त होताहै ॥ ३८ ॥

गीताध्ययनमद्यस्त्रीकर्मभाराध्वकर्षिताः । अजीर्णिनःक्षताः क्षीणावृद्धाबालास्तथाबलाः ॥ ३९ ॥ तृष्णातीसारशूलार्त्ताः श्वासिनःशूलिनःकृशाः । पतिताभिहतोन्मत्ताःक्लान्तायान-प्रजागरैः ॥४०॥ क्रोधशोकभयक्लान्तादिवास्वप्नोचिताश्चये । सर्वएतेदिवास्वप्नंसेवेरन्सार्वकालिकम् ॥ ४१ ॥

जो मनुष्य गायन, अध्ययन, मद्यपान, स्त्रीसंग, कर्म, भार और मार्गसे थकगये हैं एवं-अजीर्णरोगी, उरक्षतवाला, क्षीण, वृद्ध, बालक, दुर्बल तथा प्यास, अति-सार, शूलसे पीडित, श्वासरोगी, हिचकीसे ग्रसाहुआ और कृश तथा गिरपडा हुआ एवं जिनके चोट लगीहो, बावला और सवारीसे थकाहुआ, जो रात्रिमें जागाहो, क्रोधी, शोकाकुल, भयातुर, दिनमें सोनेके अभ्यासवाला इन सब मनुष्योंको सब ऋतुओंमें दिनमें भी सोना अनुचित नहीं (इनसे सिवाय अन्य मनुष्योंको दिनमें सोना नहीं चाहिये) ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥

धातुसाम्यात्तथाह्येषांबलश्चाप्युपजायते ॥ श्लेष्मापुष्यतिचा-ङ्गानिस्थैर्य्यंभवतिचायुषः ॥४२॥ श्लेष्माचादानरूक्षाणांवर्द्ध-मानेचमारुते । रात्रीणांचातिसंक्षेपाद्दिवास्वप्नःप्रशस्यते ॥४३॥

ऊपर कहेहुए मनुष्योंके दिनमें सोनेसे सब धातु साम्यावस्थामें आकर बलकी वृद्धिको प्राप्त होते हैं और श्लेष्मा इनके अंगोंको पुष्ट करताहै जिससे इनके आयुमें स्थिरता प्राप्त होती है ॥ ४२ ॥ ग्रीष्मऋतुमें मनुष्योंके शरीर आदानकालके आक-र्षणसे रूक्ष होते हैं और वायुका संचय होता है तथा रात्रि बहुत छोटी होती हैं इसलिये गर्मियोंमें दिनका सोना भी उत्तम कहाहै ॥ ४३ ॥

चरक भगवान्को शेष भगवान्का अवतार कहाजाताहै इन्होंने आत्मिक मल दूर करनेके लिये "योगदर्शन", वाणीका मल दूर करनेके लिये व्याकरण "अष्टाध्यायी" पर "महाभाष्य" और शारीरिक मलोंको दूर करनेके लिये यह "चरकसंहिता" बनाई ।

अग्निवेशकृत संहिताको ही महर्षि चरकजीने विधिवत् संस्कारकर जो विषय अत्यंत बढेहुए थे उनको संक्षिप्त और जो अत्यंत सूक्ष्म थे उनको किंचित् बढाकर और विना कथन किये विषयोंको सम्मेलित कर यह अद्वितीय, अनुपम "चरकसंहिता" ग्रंथ बनाया। चिकित्सामें इसके समान अन्य कोई ग्रंथ आयुर्वेदके ज्ञाताओंकी दृष्टिमें माननीय न हुआ । इस ग्रंथमें १७ अध्याय चिकित्सास्थानके, कल्प और सिद्धिस्थान महात्मा दृढबलने अग्निवेश आदि संहिताओंमेंसे संग्रहकर मिलायेहैं इसलिये कोई ऐसी शंका भी करतेहैं कि,यह संपूर्ण संहिता महर्षि चरकप्रणीत नहीं है ।परन्तु कुछ भी हो यह चरकसंहिता चिकित्सा शास्त्रमें अद्वितीय है इसीलिये कहा है कि "यदिहास्ति तदेवास्ति यन्नेहास्तिन तत्क्वचित्" । अर्थात् जो विषय इस संहितामें लिखा है वही और तंत्रोंमें भी मिलसकताहै परन्तु जो इसमें नहीं है वह कहीं भी नहीं । यद्यपि भावमिश्र आदिकोंने फिरंग आदि एक आध विषयको विशेषरूपसे लिखकर यह माना है कि, यह नवीन रोग हमने ही अपने ग्रन्थमें लिखाहै और फिरंगियोंके संसर्गसे यह फिरंगरोग उत्पन्न हुआ परन्तु चरकसंहितामें ऐसे अनेक विषय सूक्ष्मरूपसे कहे गयेहैं जिनको देश व कालके भेदसे विभक्तकर स्थूलरूपसे यदि लिखाजाय तो "भावप्रकाश" जैसे पचासों ग्रन्थ तैयार करनेपर भी संपूर्ण विषय नहीं लिखे जा सकते । इसलिये कहा है कि "एकस्मिन्नपि यस्येह शास्त्रे लब्धास्पदा मतिः।स शास्त्रमन्यदप्याशु युक्तिज्ञत्वात् प्रबुध्यते"॥ अर्थात् जिसकी मति इस एकही शास्त्रको यथोचित रीतिसे जानगईहै वह इस तंत्रकी युक्तियोंको जानलेनेसे अन्य शास्त्रोंकोभी शीघ्र जानसकताहै, तात्पर्य यह कि, जिसको यह चरकसंहिता यथोचित रीतिसे आतीहै वह अन्य शास्त्रोंको इस चरककी युक्तियों द्वारा शीघ्र जानलेताहै। "इदमखिलमधीत्य सम्यगर्थान्विमृशति यो विमलः प्रयोगनित्यः । स मनुजसुखजीवितप्रदानाद्भवति धृति-स्मृति-बुद्धि-धर्मवृद्धः॥" अर्थात् जो मनुष्य इस संपूर्ण संहिताको यथोचित पढकर इसके विषयोंको भले प्रकार समझ चिकित्साका प्रयोग करताहै वह मनुष्योंको सुख और जीवनको देनेवाला होनेसे धृति,स्मृति,बुद्धि और धर्ममें सबसे बडा मानाजाताहै ।

"यस्य द्वादशसाहस्री हृदि तिष्ठति संहिता ।

शोषार्शोग्रहणीदोषैर्व्याधिभिःकर्शिताश्चये ।
तेषांक्रव्यादमांसानांबृंहणालघवोरसाः ॥ २४ ॥

जो मनुष्य शोष, अर्श, ग्रहणी आदि रोगोंसे क्षीण होगये हों उनको मांस भक्षण करनेवाले जीवोंका मांसरस बृंहण कर्ता तथा लघु कहा गया है ॥ २४ ॥

स्नानमुत्सादनंस्वप्नोमधुराःस्नेहवस्तयः ।
शर्कराक्षीरसर्पींषिसर्वेषांविद्धिबृंहणम् ॥ २५ ॥

स्नान, उत्सादन, निद्रा, मधुर पदार्थ, स्नेहवस्ती, शर्करा, दूध और घी ये सब मनुष्योंके लिये बृंहण (पुष्ट) करनेवाले हैं ॥ २५ ॥

रूक्षण ।

कटुतिक्तकषायाणांसेवनं स्त्रीष्वसंयमः ।
खलीपिण्याकतक्राणांमध्वादीनांचरूक्षणम् ॥ २६ ॥

कडुवे, कषैले, चर्परे रसोंका सेवन, स्त्रियोंका अत्यन्त सेवन, खल, तिलकल्क, छाछ और मधु आदि रूखे पदार्थ सब मनुष्योंको रूक्षणकर्ता कहे जाते हैं॥२६॥

अभिष्यन्दामहादोषामर्मस्थाव्याधयश्चये ।
ऊरुस्तम्भप्रभृतयोरूक्षणीयानिदर्शिताः ॥ २७ ॥

जिनके शरीरमें अधिक मोटा होनेके कारण अथवा दोषोंकी वृद्धिके कारण गिलगिलाहट उत्पन्न होगई हो और कफ वढाहुआ हो वे तथा मर्मस्थानमें वढे हुए दोष एवम् ऊरुस्तम्भ आदि रोग रूक्षण करनेके योग्य हैं ॥ २७ ॥

स्नेह्यस्वेद्य ।

स्नेहाःस्नेहयितव्याश्चस्वेदाःस्वेद्याश्चयेनराः ।
स्नेहाध्यायेमयोक्तास्तेस्वेदाख्येचसविस्तराः ॥ २८ ॥

सब प्रकारके स्नेह और स्नेहनके योग्य मनुष्य तथा सब प्रकारके स्वेद और स्वेदनयोग्य मनुष्य हम स्नेह स्वेदाध्यायमें विस्तारपूर्वक वर्णन कर चुके हैं ॥२८॥

स्तंभनके योग्य ।

द्रवंतनुसरंयावच्छीतीकरणमौषधम् ।
स्वादुतिक्तंकषायञ्चस्तम्भनंसर्वमेवतत् ॥ २९ ॥

द्रव, तनु, सर, शीतल, स्वादु, तिक्त और कषाय द्रव्य स्तम्भन कहेजातेहैं २९॥

सोऽर्थज्ञः स विचारज्ञश्चिकित्साकुशलश्च सः ।
रोगास्तेषां चिकित्साश्च स किमर्थं न बुध्यते ॥

अर्थात्-यह बारह हजार श्लोकात्मक संहिता जिसके हृदयमें स्थित है वह अर्थका जाननेवाला, संपूर्ण वैद्यकीय विषयोंको समझनेवाला, विचारवान् और चिकित्सामें कुशल होताहै ऐसे कौन रोग और उनकी चिकित्सायें हैं जिनको इस संहिताका जाननेवाला वैद्य न समझताहो । परन्तु शोक है कि आज इस चरकसंहिताके पढने पढानेवाले और आयुर्वेदीय ज्ञानके समझने तथा समझानेवालोंका प्रायः अभाव ही सा होगयाहै जिससे इस समय आयुर्वेदकी अत्यंत अवनत दशा है।

यद्यपि आजकल सुननेमें आताहै कि आयुर्वेदकी उन्नति होने लगीहै।कहीं आयुर्वेदविद्यापीठ, कहीं वैद्य महासभा, कहीं नये ढंगकी शिक्षा, कहीं आरोग्यभवन और कहीं आयुर्वेदीय महौषधालय खोलेगयेहैं । कोई २ महाशय तो खास धन्वन्तरिसे ही गुप्तप्रयोग सीखआयेहैं, किसी किसीने वनस्पतियोंका अद्वितीय उद्धार ही करमारा है परन्तु क्या इन सब बातोंसे आयुर्वेदकी उन्नति होनेका कोई ढंग दिखाई पडताहै ? विचारसे देखिये तो उन्नतिबाजोंने इस जीर्ण शीर्ण आयुर्वेदको सर्वथा नष्ट करनेकाही सूत्रपात करादियाहै । अब सम्भव है कि आयुर्वेदके जाननेवालोंको भी किसी आईनके अन्दर बन्द होना पडेगा । यह सब अदूरदर्शी उन्नतिबाजोंके झूठे चटकीले विज्ञापनोंका फल नहीं तो और क्या है? अब आप विचारसे देखिये कि औषधालयों और विज्ञापनों द्वारा आयुर्वेदकी कितनी उन्नति हुई । यद्यपि औषधालय भी आयुर्वेदके अंग हैं,आयुर्वेद विद्यापीठसे भी बहुत कुछ लाभ पहुंच सकताहै और वैद्य महासभायें भी आयर्वेदको उन्नत अवस्थामें ला सकती हैं परन्तु कब ? जबकि आयुर्वेदके प्रेमसे आकर्षित हों, जब आयुर्वेदके पुनरुद्धारार्थ स्वार्थको त्याग दें, जब आयुर्वेदके महत्वको जान, आयुर्वेदके गौरवको समझ,भूतपूर्व आयुर्वेदकी उन्नत अवस्थाको यादकर और पूर्वज महर्षियोंकी परोपकारितापर ध्यान दे, प्रेमभरे हृदयसे ऐहलौकिक और पारलौकिक उन्नत्तिका आधार आयुर्वेदको ही मानने लगें ।

इसमें कोई संदेह नहीं कि अब आयुर्वेदकी उन्नतिके लिये ऋषियोंके समान हिमालय और देवलोकमें जानेकी आवश्यकता नहीं । क्योंकि यह आयुर्वेद भण्डार इस जीर्ण शीर्ण दशामें भी किसी अंगमें अपूर्ण नहीं है । निरूहण,अनुवासन,(गुदद्वारा पिचकारियोंका करना) आदि बस्तिकर्म, उत्तरबस्ति (मूत्रमार्गसे कैथीटरआदि प्रवेशकर मूत्राशय और उसके मार्गको दोषरहित करना)शिराबस्ति (शरीरकी नसोंमें सूक्ष्म पिचकारी द्वारा औषध पहुंचाना) अर्शके मस्से काटना, पथरी

सेवन तथा खाज और कुष्ठके नाश करनेवाले. चूर्ण तथा प्रदेह आदिकोंका सेवन करना चाहिये ॥ ६ ॥ ७ ॥

संतर्पणजनित रोगनाशक क्वाथ ।

त्रिफलारग्वधंपाठांसप्तपर्णसवत्सकम्। मुस्तंनिम्बंसमदनंजलेनोत्क्वथितंपिबेत् ॥ ८ ॥ तेनमोहादयोयान्तिनाशमभ्यस्यतांध्रुवम् । मात्राकालप्रयुक्तेनसन्तर्पणसमुत्थिताः ॥ ९ ॥

त्रिफला, अमलतास, पाटला, सतवन, कुडाकी छाल, नागरमोथा, नीमका छिलका और मैनफल इन सबका क्वाथ (काढा) बनाकर मात्रा और कालको विचारकर सेवन करनेसे संतर्पणसे उत्पन्नहुए मोह (बेहोसी) आदि रोग नष्ट होतेहैं ॥ ८ ॥ ९ ॥

मुस्तमारग्वधः पाठात्रिफलादेवदारुच। श्वदंष्ट्राखदिरोनिम्बो हरिद्रात्वक्चवत्सकात् ॥ १० ॥ रसमेषांयथादोषंप्रातःप्रातः पिबेन्नरः । सन्तर्पणकृतैःसर्वैर्व्याधिभिर्विप्रमुच्यते ॥ ११ ॥

नागरमोथा, अमलतास, पाठा, त्रिफला, देवदारु गोखरू, कत्था, नीमका छिलका, हल्दी, कुडाकी छाल इन सबका क्वाथ (काढा) नित्य प्रातःकाल पीनेसे संतर्पणसे उत्पन्नहुई सब प्रकारकी व्याधियां नष्ट होतीहैं ॥ १० ॥ ११ ॥

एभिश्चोद्वर्त्तनोद्धर्षस्नानयोगोपयोजितैः ।
त्वग्दोषाःप्रशमंयान्तितथास्नेहोपसंहितैः ॥ १२ ॥

इन ऊपर कही हुई औषधियोंके तैलसे अथवा इन सबका उवटन बना मालिश करनेसे किंवा इनके क्वाथमें स्नान करनेसे संतर्पणसे उत्पन्नहुए त्वचाके रोग दूर होतेहैं ॥ १२ ॥

संतर्पणजनित मूत्रदोषोंपर क्वाथ ।

कुष्ठंगोमेदकंहिङ्गुक्रौञ्चास्थित्र्यूषणंवचाम् । वृषकैलेश्वदंष्ट्रांच खराह्वाश्मभेदिकम् ॥१३॥ तक्रेणदधिमण्डेनबदराम्लरसेनवा । मूत्रकृच्छ्रंप्रमेहञ्चपीतमेतद्व्यपोहति ॥ १४ ॥

कडुआ कूट, गोमेदक नामका पत्थर, हींग, कमलगट्टेकी गिरू, सोंठ पीपल, मिर्च, वच, अडूसा, इलायची, गोखरू, अजमोद, पाषाणभेद इन सब औषधियोंके चूर्णको छाछ अथवा दहीका जल या बेरके क्वाथके साथ पीनेसे संतर्पण जनित मूत्रकृच्छ्र और प्रमेह दूर होतेहैं ॥ १३ ॥ १४ ॥

निकालना और क्षारकर्म आदि यह सब आयुर्वेदके चिकित्साका अनुकरण करके ही आज उन्नतशील शुभराजमें डाक्टरी विद्याकी उन्नति हो रही है। इस इतनी उन्नत अवस्थामें भी बहुतसी शल्यचिकित्सा इण्डियन सर्जरी कहीजाती है। आंख बनाना भारतके सामान्य वैद्योंका अनुकरण है। आयुर्वेदके शल्यशालाक्य जाननेवालोंने जो २ कार्य किये हैं उनको अभी उन्नतशील चिकित्सकोंने स्वप्नमें भी नहीं देखा होगा। जैसे अश्विनीकुमारोंका दक्षका कटाहुआ शिर लगादेना, ब्रह्माका मस्तक जोडना, भोजका मस्तक चीरकर कपालके भीतरसे जीवोंका निकालना आदि अनेक प्रकारकी क्रियायें कैसी विचित्र थीं। परन्तु समय भगवान्‌के हेरफेरसे आज वह सब कहानी मात्र रहगई। जिसको अनुकरण मानतेहैं वह डाक्टरी विद्या अब शल्य-क्रियामें इतनी उन्नत होतीजाती है बिचारे आयुर्वेदाभिमानी उनकी बाततक नहीं समझ सकते। हा! समय भगवान् क्या नहीं कर सकते? परिवर्त्तनशील जगत्‌में ऐसी कौनसी वस्तु है जिसको समय भगवान्‌ने अपने झपाटेमें न लिया हो!। आज जिसको राजा महाराजा ऋषि और देवता भी महान् सत्कारसे देखते हों कल उसीकी ओर देखकर तुच्छ प्राणी भी बड़ी घृणासे नाक चढाने लगतेहैं। आज जिसका झण्डा आकाशमें फहराताहै कालचक्रसे कल वह मटियामेट होकर मानो कभी था ही नहीं ऐसा प्रतीत होनेलगताहै। काल भगवान्‌की विचित्र महिमा है। जिस आयु-र्वेदको ऋषिगण देवलोकसे लायेथे, जिस आयुर्वेदको ब्रह्मासे प्राप्त न होनेके रोषमें भैरव जलकर मरनेलगेथे, जिस आयुर्वेदको ऋषियोंने हिमालयकी चोटियोंपर पहुँच अनेक प्रयासोंसे प्राप्तकर निःस्वार्थभावसे जगत्‌के हितके लिये प्रचार कियाथा आज उन्हीं ऋषियोंकी संतान झूठे विज्ञापनों द्वारा ठगीकर उस आयुर्वेदको लाञ्छित करना मुख्य उन्नति माननेलगी।

यह कभी नहीं कहा जासकता कि, सब संसार ही एकसा होताहै, अब भी बहु-तेरे योग्य पुरुष परोपकारी सद्वैद्य और आयुर्वेदकी महिमाको जाननेवाले हैं जिनकी कृपासे औरंगजेबी जमानेके महाआघातसे बचेहुए ग्रंथ इस उन्नतशील श्रीभारत-सरकारके शुभ राज्यमें बडी आसानीसे छपछपकर प्राप्त होनेलगे हैं।

परन्तु खेदका विषय है कि, और सब विद्याओंकी उन्नति होतेहुए भी आयुर्वेदकी रक्षा व जीर्णोद्धारका कोई प्रबंध अभी तक नहीं दीखता। उचित प्रबंध नहीं होनेके अनेक कारणोंमें सबसे बडे चार कारण हैं, जिनके बिना आयुर्वेद अपने चमत्कारकी गर्जना नहीं करसकता। वह चार कारण यह हैं-राजाओंकी ओरसे आयुर्वेदीय सर्वांग शिक्षाका कोई प्रबन्ध न होना १। आयुर्वेदके जिस अंगके जो ज्ञाता हैं उनका स्वच्छ हृदयसे आयुर्वेदका प्रचार न करना २। आयुर्वेदीय शिक्षाके

निमिश्चराजावैदेहोबडिशश्चमहामतिः । काङ्कायनश्चबाह्लीको बाह्लीकभिषजांवरः ॥३॥ एतेश्रुतवयोवृद्धाजितात्मानोमहर्षयः । वनेचैत्ररथेरम्येसमीयुर्विजिहीर्षवः ॥ ४ ॥तेषांतत्रोपविष्टानामियमर्थवतीकथा । बभूवार्थविदांसम्यक्रसाहारविनिश्चये ॥ ५ ॥

एक समय आत्रेय भद्रकाप्य शाकुन्तेय, पूर्णाक्ष, मौद्गल्य, हिरण्याक्ष, कौशिक, महात्मा कुमारशिरा भरद्वाज, बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ श्रीमान् राजर्षि वार्योविद, निमि॰ राजर्षि वैदेह, विशालबुद्धि बडिश, कांकायन, बाह्लीक (वैद्योंमें श्रेष्ठ) यह सम्पूर्ण विद्यामें और आयुमें वृद्ध, जितेन्द्रिय, महात्मालोग,रमणकरनेयोग्य चैत्र॰ रथ प्रभृति स्थानोंमें विचरण करते हुए एक स्थानमें एकत्रित हुए । उस समय इन ऋषियोंकी सभामें रसाहारसम्बन्धी सिद्धान्त निश्चय करनेके लिये आन्दोलन आरंभ हुआ ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥

एकएवरसइत्युवाचभद्रकाप्योयंपञ्चानामिन्द्रियार्थानामन्यतमं जिह्वावैषयिकंभावमाचक्षतेकुशलाः।सपुनरुदकादनन्य इति॥६॥

प्रथम भद्रकाप्य बोले कि रस १ एक प्रकारका होताहै । और यह रस सब प्रकारके इन्द्रियार्थोंमें जिह्वाग्राह्य है और जिह्वेन्द्रिय जलीय है इसलिये रस जलके सिवाय और कोई वस्तु नहीं ॥ ६ ॥

द्वौरसावितिशाकुन्तेयोब्राह्मणश्छेदनीयश्चोपशमनीयश्चेति॥ ७ ॥

यह सुनकर शाकुन्तेय ब्राह्मण कहनेलगे कि रस दो प्रकारका होताहै। १ छेदनकर्ता २ उपशमनकर्ता ॥ ७ ॥

त्रयोरसाइतिपूर्णाक्षःमौद्गल्यश्छेदनीयोपशमनीयौ साधारणश्च ॥ ८ ॥

पूर्णाक्ष मौद्गल्य कहनेलगे कि रस तीन प्रकारका होताहै १ छेदन-(शोधन) कर्ता २ शमनकर्त्ता ३ साधारण ॥ ८ ॥

चत्वारोरसाइतिहिरण्याक्षःकौशिकः स्वादुर्हितश्चस्वादुरहितश्चअस्वादुरहितश्चास्वादुर्हितश्चेति ॥ ९ ॥

हिरण्यकौशिक कहनेलगे कि हितकर स्वादु, अहितकर स्वादु,अहितकर अस्वादु और हितकर अस्वादु इन भेदोंसे ४ प्रकारका रस है ॥ ९ ॥

योग्य मनुष्योंका सीखनेमें यत्न न करना ३। आयुर्वेदीय औषधिसंग्रह आदि नियम न रखकर दुकानोंकी पुरानी गली, सडी औषधियोंसे चिकित्सा करना ४। यदि आयुर्वेदीय शिक्षाका यथोचित प्रबन्ध होजाय तो फिर भी आयुर्वेद उसी उन्नत अवस्थामें पहुंच सकताहै। उन्नतिके लिये कुछ बाहरसे लानेकी आवश्यकता नहीं। उन्हीं पुराने ऋषिप्रणीत संहिताओंकी सर्वांग शिक्षाका प्रबन्ध होजाय तो सब कुछ होसकताहै।

चरक, सुश्रुत आदि ग्रन्थोंसे ऐसा कौन विषय बचा है जो स्थूल वा सूक्ष्मरूपसें इनके भीतर न भराहो।

विचारशील महाशयगण, जरा विचार करें कि, पहलेके आप्त वैद्य किसप्रकारसे औषधोंको सिद्ध करतेथे और निदानज्ञानपूर्वक कैसी उत्तम रीतिसे औषधप्रयोग करतेथे जिससे वे पीयूषपाणि कहे जातेथे और रोगी निस्सन्देह नीरोग होतेथे। परन्तु आजकलके बहुतसे चिकित्सकनामधारी महाशय तो इन सब आयुर्वेदीय क्रियाओंको छोडकर आलस्यग्रस्त हो अमृतसागर भाषा पढपढ कर अण्टसण्ट संस्कृत असंस्कृत जैसे तैसे गोलियें बना अपनेको रसवैद्य—देववैद्य होताहै ऐसा माननेलगे।

ऐसे वैद्य ऐसी रस गोलियोंको पास रख रोगीको देखकर निदान कहने और रोगानुसार चिकित्सा करनेकी कठिनतासे निरन्तर बचे रहतेहैं और इसी कारण इनकी योग्यताकी पोल भी नहीं खुलनेपाती परन्तु इनकी कृपासे आयुर्वेदीय असली क्रिया नष्ट होकर आगेको प्रायः निर्मूल होतीजातीहै और इनकी उन गोलियोंके खानेसे क्या होताहै इसे तो खानेवाले या उनके परिवारके लोग या ईश्वरही जा०

बहुतसे लोगोंको चरक, सुश्रुत आदि ग्रन्थोंका रहस्य जानने और इनके अनुसार क्रिया करनेका उत्साह भी होताहै तो यह विचारे "चरक" जैसे सर्व युक्तिसंपन्न ग्रन्थको किससें पढे!। यद्यपि इस ग्रंथकी भोजवृत्ति और वाचस्पतिकी टीका संपूर्ण नहीं मिलती तथापि चक्रपाणिकृत संस्कृतटीका तथा गंगाधर शास्त्रीकृत संस्कृतटीका (पुरानी) संपूर्ण मिलतीहै। जिससे इस ग्रन्थकी योग्यतासे विद्वान् लोगोंको लाभ उठाना कठिन नहीं परन्तु केवल भाषामात्र जाननेवालोंको "चरकका" भाव जाननेके लिये भाषाटीकाको छोड और कोई उपाय नहीं। यद्यपि

मः । तत्रमधुरोरसःशरीरसात्म्याद्रसरुधिरमांसमेदोऽस्थिमज्जौजःशुक्राभिवर्द्धनआयुष्यःषडिन्द्रियप्रसादनोबलवर्णकरः पित्तविषमारुतघ्नस्तृष्णाप्रशमनस्त्वच्यःकेश्यःकण्ठ्यःप्रीणनो जीवनस्तर्पणःस्नेहनःस्थैर्य्यकरःक्षीणक्षतसन्धानकरोघ्राणमुखकण्ठौष्ठतालुप्रह्लादनोदाहमूर्च्छाप्रशमनःषट्पदपिपीलिकानामिष्टतमःस्निग्धःशीतोगुरुश्च ॥ ५८ ॥

अव उन ६ रसोंमें एक एक द्रव्यमें पृथक् २ होनेसे जो गुण, कर्म होतेहैं उनका वर्णन करते हैं। मधुर रस शरीरके सात्म्य होनेसे रस, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, ओज, शुक्र इन धातुओंकी वृद्धि करताहै तथा आयुको वढाता है । पंचेन्द्रिय और एक अतीन्द्रिय (मनको) प्रसन्नता देताहै, वल तथा वर्णको उत्तम वनाता है । पित्त, विष, वायु, और तृषाको नष्ट करताहै । त्वचा, केश, और कण्ठको उत्तम करताहै तथा प्रीणन (शरीरको पुष्ट करना) जीवन, तर्पण, स्नेहन करताहै तथा आयुको स्थिर करताहै । क्षीण, क्षतपीडित मनुष्योंको सन्धान करता है नाक, मुख, कण्ठ, ओष्ठ, और तालुको प्रसादन करता है। दाह, तथा मूर्च्छाको शान्त करता है । भ्रमर, चींटी आदिकोंको अत्यन्त प्रिय है । तथा स्निग्ध, शीतल और भारी गुणयुक्त है ॥ ५८ ॥

सएवंगुणोऽप्येकएवात्यर्थमुपयुज्यमानःस्थौल्यंमार्दवमालस्यमतिस्वप्नंगौरवमनन्नाभिलाषमग्नेर्दौर्बल्यमास्यकण्ठमांसाभिवृद्धिं श्वासकासप्रतिश्यायालसकशीतज्वरानाहास्यमाधुर्य्यवमथुसंज्ञास्वरप्रणाशगण्डमालाश्लीपदगलशोफबस्तिधमनीगुदोपलेपाक्ष्यामयानमभिष्यन्दमित्येवंप्रभतीन्कफजान्विकारानुपजनयति ॥ ५९ ॥

इस प्रकार गुणयुक्त होनेपर भी मधुररसको सदैव और निरंतर सेवन करनेसे मनुष्योंके शरीरमें मोटापन, नम्रता, आलस्य, निद्राधिक्य, गौरवता, मंदाग्नि, अरुचि, मुख तथा कण्ठके मांसकी वृद्धि, श्वास, खांसी, प्रतिश्याय, अलसक, शीतज्वर, अफारा, मुखमें मीठापन, छर्दि, संज्ञा और स्वरका नाश, गलगण्ड, गण्डमाला, श्लीपद, गलशोथ आदि रोगोंको करताहै तथा वस्ति, धमनी और मलद्वारमें दोषका उपलेपसा करताहै । एवम् नेत्रोंके अभिष्यन्द आदि रोगोंको तथा कफके विकारोंको उत्पन्न करताहै ॥ ५९ ॥

इन दो टीकाएं हिन्दी भाषामें पहिले भी छपचुकी हैं परन्तु [illegible] हैं
मर्मको अच्छी तरह न समझानेके कारण आयुर्वेद रसिकोंको आदरणीय [illegible]
इसलिये यह पुस्तक "श्रीवेंकटेश्वर" स्टीम्-प्रेसके स्वत्त्वाधिकारी श्रीमान् सेठ खेम-
राज श्रीकृष्णदासजीने संवत् १९६६ में हिन्दीभाषामें मूलानुसार सरल उत्तम
टीका बनानेके लिये मुझे दिया। इस डेढसालके बीचमें यद्यपि अनेक प्रकार आध्या-
त्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक आपत्तियोंके असामयिक आक्रमणोंसे
अभिभूत होनेके कारण इस ग्रंथकी टीका बनानेके लिये मुझे यथेष्ट अवकाश न मिल-
सका, तथापि इस टीकामें अपनी मति गतिके अनुसार निरालस होके कठिनसे
कठिन भावोंको सर्वसाधारणके समझने योग्य करनेमें त्रुटि नहीं की है, और यथा-
स्थल औषधनिर्माणक्रियायें इस तौर लिखी गई हैं कि फिर किसीसे कुछ पूछनेकी
आवश्यकता नहीं। शीघ्रतावश यदि कहीं कुछ त्रुटि रहगई हो तो बुध जन क्षमा-
कर मुझे सूचित करेंगे जिससे दूसरी वार छपनेमें वह ठीक होजावें ।

और पं० हरिदत्त शर्म्मा शास्त्रीजीने इसका शोधन करते:समय, शीघ्रताके
कारण पुनरुक्ति, वाक्योंमें कर्मणि कर्त्तरी प्रयोगभेद आदिको दुरुस्त कर हमारी
बडी भारी सहायता की है इस लिये उन्हें अनेकशः धन्यवाद हैं ।

इस प्रसादनीनामक भाषाटीका सहित चरकसंहिताको 'त्वदीयं वस्तु गोविन्द
तुभ्यमेव समर्पितम्' के तौर श्रीमान् सेठ खेमराज श्रीकृष्णदास अध्यक्ष श्रीवेङ्क-
टेश्वर" स्टीम् प्रेस बम्बई को सर्वाधिकार सहित सादर अर्पण करताहूं और कोई
महाशय इसके छापने आदिका साहस न करें, नहीं तो लाभके बदले हानि उठानी
पडेगी.

[illegible]
[illegible] २४
बे:
आश्विन शुक्ल १० सोमवार,
संवत् १९६८

विनीत-
रामप्रसाद वैद्योपाध्याय,
राजवैद्य रियासत पटियाला.

उष्णवीर्य नहीं किन्तु शीतवीर्य होताहै। और आक, अगर, गिलोय तिक्तरस होने-पर भी उष्णवीर्य कहे जाते हैं ॥ ७५ ॥

रसोंमें प्रधानता ।

किञ्चिदम्लंहिसंग्राहिकिञ्चिदम्लंभिनत्तिच । यथाकपित्थंसं-ग्राहिभेदिचामलकंतथा॥ पिप्पलीनागरंवृष्यंकटुचावृष्यमुच्य-ते ॥ ७६ ॥ कषायःस्तम्भनःशीतःसोऽभयात्वन्यथामता । तस्माद्रसोपदेशेननसर्वंद्रव्यमादिशेत् ॥ ७७ ॥दृष्टेतुल्यरसेऽ-प्येवंद्रव्येद्रव्येगुणान्तरम् । रौक्ष्यात्कषायोरूक्षाणामुत्तमोम-ध्यमः कटुः ॥ ७८ ॥ तिक्तोऽवरस्तथोष्णानामुष्णत्वाल्लवणः परः । मध्योऽम्लःकटुकश्चान्त्यःस्निग्धानांमधुरःपरः। मध्योऽ-म्लोलवणश्चान्त्योरसःस्नेहान्निरुच्यते ॥ ७९ ॥

कोई अम्लरस संग्राही अर्थात् मलको बांधनेवाला होता है और कोई अम्लरस मलको भेदन करनेवाला (दस्त लानेवाला) होता है जैसे—कपित्थका फल संग्राही अर्थात् मलको बांधनेवाला है और आमलाका फल भेदनकर्त्ता होताहै । कटुरस—प्रायः वृष्य नहीं होता परन्तु पीपल, सोंठ आदि कटु होनेपर भी वृष्य होते हैं । इसी प्रकार कषायरस मलको रोकनेवाला और शीतल होताहै परन्तु हरड कषा-यरस होनेपर भी दस्तावर और उष्ण है । इसीलिये रसमात्रके गुणसे ही द्रव्योंका गुण नहीं करना चाहिये क्योंकि एकसे रसवाले द्रव्योंमें भी दो प्रकारके गुण पाये जाते हैं । कषायरस सब प्रकारके रूक्ष रसोंमें प्रधान होता है । कटुरस मध्यम है और तिक्तरस रूक्षतामें कनिष्ठ होताहै एवम् सब प्रकारके उष्णतामें लवण रस प्रधान है । अम्ल रस मध्यम है । कटु रस कनिष्ठ है । स्निग्धविशिष्ट रसोंमें मधुर रस प्रधान है ।अम्ल रस मध्यम है।लवण रस कनिष्ठ होताहै॥७६॥७७॥७८॥७९॥

मध्यःकृष्टावराःशैत्यात्कषायस्वादुतिक्तकाः तिक्तात्कषायोम-धुरःशीताच्छीततरःपरः । स्वादुर्गुरुत्वादधिकःकषायाल्लवणोऽ-वरः ॥ ८० ॥

इसी प्रकार शीतलतामें मीठा रस प्रधान है और कषाय रस मध्यम है तथा कषाय और तिक्त रस कनिष्ठ है जैसे तिक्तसे कषायसे मधुर शीतलताके गुणमें श्रेष्ठ माने जाते हैं । और गुरुतामें मधुररस प्रधान है, कषाय मध्यम है और लवण रस कनिष्ठ होता है ॥ ८० ॥

॥ श्रीः ॥

अथ चरकसंहिता-

विषयानुक्रमणिका ।

सूत्रस्थान १.

१, दीर्घजीवित अध्याय ।

[illegible]तीय अध्याय ।

अम्लरस–विपाक होने पर पित्तको करताहै, मल, मूत्र निकालताहै, वीर्यको नष्ट करताहै । ऊपर कहेहुए मधुर अम्ल और कटु इन विपाकोंमें मधुर विपाक गुरु हैं अम्ल मध्यम है और कटु कनिष्ठ है ॥ ८७ ॥

विपाकलक्षणस्याल्पमध्यभूयस्त्वमेवच ।
द्रव्याणांगुणवैशेष्यात्तत्रतत्रोपलक्षयेत् ॥ ८८ ॥

वैद्यको उचित है कि विपाक लक्षणोंकी अल्पता, मध्यता, अधिकता विचारकर द्रव्यमात्रके गुणकी विशेषता आदिको जाने ॥ ८८ ॥

वीर्यका वर्णन ।

तीक्ष्णंरूक्षंमृदुस्निग्धंलघूष्णंगुरुशीतलम् ।वीर्य्यमष्टविधंकेचि-त्केचिद्द्विविधमास्थिताः ॥ ८९॥ शीतोष्णमितिवी१र्य्यन्तुक्रि-यतेयेनयाक्रिया।नावीर्य्यंकुरुतेकिंचित्सर्वावीर्य्यकृताक्रिया ॥९०॥

किसीके मतसे तीक्ष्ण, रूक्ष, मृदु, स्निग्ध, लघु, उष्ण, गुरु और शीतल इन भेदोंसे द्रव्योंका वीर्य आठ प्रकारका होताहै । कोई शीतल और उष्ण इन दो भेदोंसे २ प्रकारका ही मानते हैं । जिस शक्तिद्वारा शरीरमें क्रिया होतीहै उसको वीर्य कहते हैं । जितने द्रव्य हैं विना वीर्यके वह कुछ नहीं करसकते क्योंकि संपूर्ण क्रिया वीर्यके ही अधीन है । इसी लिये वीर्य नष्टहुआ द्रव्य किसी कामका नहीं होता ॥ ८९ ॥ ९० ॥

रसविपाक वीर्यके लक्षण ।

रसो२निपातेद्रव्याणांविपाकःकर्म्मनिष्ठया ।
वीर्य्यंयावदधीवासान्निपाताच्चोपलभ्यते ॥ ९१ ॥

---

१ उष्णशीतगुणोत्कर्षाद्बुधैर्वीर्यं द्विधा स्मृतम् । यत्सर्वमग्निषोमीयं दृश्यते भुवनत्रयम् ॥

२ रसादीनामेकद्रव्यनिविष्टानां भेदज्ञानार्थं लक्षणमाह–रसो निपात इत्यादि। निपात इति रसना योगे, कर्म्मनिष्ठयेति कर्मणो निष्ठा निष्पत्तिः कर्म्मनिष्ठा क्रियापरिसमाप्तिः ॥ रसो योगे सति योन्त्याहारपरिणामकृतः कर्म्मविशेषः कफशुक्राभिवृद्ध्यादिलक्षणः तेन विपाको निश्चीयते अधि-वासः सहावस्थानं, यावदधिवासादिति यावच्छरीरनिवासात्, एतच्च पाकात् पूर्व्वं निपाताच्चोर्द्ध्वं ज्ञेयम्, निपाताच्चेति शरीरसंयोगमात्रात् तेन किंचिद्वीर्यमधीवासादुपलभ्यते यथा आनूपमांसादेरुष्णत्वम् किञ्चिच्च निपातादेव लभ्यते यथा मरीचादीनां दीपनीयादीनामेव। एतेन रसः प्रत्यक्षणैव विपाकस्तु नित्यपरोक्षस्तत्कार्येणानुमीयते। वीर्य्यन्तु किंचिदनुमानेन यथा सैंधवगतं शैत्यं आनूपमांसगतं वा औष्ण्यम् । किंचिच्च वीर्यं प्रत्यक्षेणैव यथा राजिकागतं तैक्ष्ण्यं घ्राणेन पिच्छिलविशदस्निग्धरूक्षादयः चक्षुःस्पर्शनाभ्यां निश्चीयन्ते इति वाक्यार्थः। एतच्च वीर्य्यं सहजं कृत्रिमं च ज्ञेयम् । तत्राद्यं माषाणां गौरवं, मुद्गानां लाघवमित्यादि। कृत्रिमन्तु लाजादीनां लघुत्वादि एतच्च यथासम्भवं गुरुलघ्वादिषु वीर्य्येषु लक्षण ज्ञेयमुपयुज्यमानद्रव्याणाम्। एतच्च वीर्य्यलक्षणं पारिभाषिकमेव ।

कोई द्रव्य रससे, कोई वीर्यसे, कोई गुणसे, कोई विपाकसे एवम् कोई प्रभाव अपनी क्रियाको करतेहैं ॥ ९६॥ इन रस आदिकोंकी साम्यतामें विपाकक्रिया करनेमें रससे बलवान् है ।वीर्य-रस, विपाक इन दोनोंसे बलवान् है एवम् प्रभाव रस, वीर्य, विपाक इन तीनोंसे बलवान् है ।इस प्रकार रसादिकोंमें पहिलेसे दूसरी क्रिया करनेमें गुणकी अधिकता रखताहै॥ ९७ ॥ इस प्रकार विपाक वीर्य और प्रभावका वर्णन किया गया है ॥ ९८ ॥

मधुरादि ६ रसोंके स्वरूप ।

षण्णांरसानांविज्ञानमुपदेक्ष्याम्यतःपरम्। स्नेहनप्रीणनाह्लाद-मार्दवैरुपलभ्यते ॥ ९९ ॥ मुखस्थोमधुरश्चास्यंव्याप्नुवँल्लिम्प-तीवच । दन्तहर्षान्मुखस्रावात्स्वेदनान्मुखबोधनात् । विदाहाच्चास्यकंठस्यप्राश्यैवाम्लंरसंवदेत् ॥ १०० ॥

अब आगे ६ प्रकारके रसोंके विज्ञानका वर्णन करतेहैं । जैसे मधुर रस स्नेहन, प्रीणन, आह्लादन, मधुर यह गुण मधुर पदार्थके मुखमें रखते ही प्रतीत होने लगतेहैं और ऐसा प्रतीत होताहै कि मुखमें मधुर रस, मानो लिपसा गया । इन लक्षणोंसे मधुर रसका ज्ञान होताहै अम्लरस-मुखमें धारण करते ही दंतहर्ष होना,मुखसे स्राव होना, पसीने आना, मुखका उद्बोधन होना, खाते ही कण्ठमेंसे दाह सा निकलना इन लक्षणोंसे खट्टे रसका विज्ञान होताहै ॥ ९९ ॥ १०० ॥

प्रलीयन्क्लेदविष्यन्दलाघवंकुरुतेमुखे ।
यःशीघ्रंलवणोज्ञेयःसविदाहान्मुखस्यच ॥ १०१ ॥

जो मुखमें देते ही झट लीन होजाय और गीलापन होकर लार बहनेलगे; शीघ्र लाघवताको करे, तथा मुखमें दाहको करे उसको लवणरस कहतेहैं ॥ १०१ ॥

संवेजयेद्योरसानांनिपातेतुदतीवच ।
विदहन्मुखनासाक्षिसंस्रावीसकटुःस्मृतः ॥ १०२ ॥

जो रस मुखमें डालते ही घबराहट सी पैदा करे, जीभमें सूईसी चुभे,मुखमें दाह और चरचराहट उत्पन्न करे एवम् मुख, नासिका और नेत्रमेंसे पानीका स्राव करे उसको कटु रस कहतेहैं ॥ १०२ ॥

प्रतिहन्तिनिपातेयोरसनंस्वदतेनच ।
सतिक्तोमुखवैशद्यशोषप्रह्लादकारकः ॥ १०३ ॥

विरुद्ध आहारोंका वर्णन ।

तत्रयान्याहारमधिकृत्यभूयिष्ठमुपयुज्यन्तेतेषामेकदेशंवैरोधिक-
मधिकृत्योपदेक्ष्यामः ॥ १०७ ॥

उनमें जो द्रव्य सदैव आहारमें भोजनके उपयोगमें लिये जातेहैं उनके एकांशमें विरोधकारक होनेका वर्णन करतेहैं ॥ १०७ ॥

नमत्स्यान्पयसासहाभ्यवहरेदुभयंह्येतन्मधुरंमधुरविपाकान्म-
हाभिष्यन्दिशीतोष्णत्वाद्विरुद्धवीर्य्यंविरुद्धवीर्य्यत्वाच्छोणित-
प्रदूषणायमहाभिष्यन्दित्वान्मार्गोपरोधायच ॥ १०८ ॥

मछलियोंको दूधके संयोगसे सेवन करनेसे विरोध आजाताहै, क्योंकि यह दोनों मधुर हैं और मधुरविपाकवाले होनेसे महा अभिष्यंदी हैं । परंतु शीत और उष्णवीर्य होनेसे विरोधीभावको प्राप्त हो रक्तको दूषित करतेहैं और महाअभिष्यंदी होनेसे मार्गोंको रोकदेतेहैं । इसीलिये रसमें आविरुद्ध होतेहुए भी वीर्य गुण विरुद्ध होनेसे रक्तको दूषित कर कुष्ठ आदि रोगोंको उत्पन्न करते हैं ॥ १०८ ॥

तदनन्तरमात्रेयवचनमनुनिशम्यभद्रकाप्योऽग्निवेशमुवाच ।
सर्वानेवमत्स्यान्पयसासहाभ्यवहरेत्, अन्यत्रैकस्माच्चिलिचि-
मात् । सपुनःशकलीसर्वतोलोहितराजिःरोहितप्रकारःप्रायो
भूमौचरतितञ्चेत्पयसासहाभ्यवहरेन्निःसंशयंशोणितजानांवि-
बन्धजानांवाव्याधीनामन्यतममथवामरणंप्राप्नुयादिति ॥१०९॥

इसके उपरान्त आत्रेय भगवान्के इस उपदेशको सुनकर भद्रकाप्य ऋषि अग्निवेशसे कहनेलगे कि चिलचिमनामक मछलीके सिवाय और मछलियोंको दूधके संयोगसे चाहे खाया भी जाय परंतु चिलचिम मछलीको कभी न खाना चाहिये । चिलचिम मछलीके शरीरमें कांटे और लालवर्णकी रेखा होती हैं तथा लोहित मछलीके आकारकी होतीहै और कीचड पर फिरा करतीहै यदि उसको दूधके साथ सेवन कियाजाय तो निश्चय ही रक्तजन्य तथा विबंधजानित रोग उत्पन्न होकर खानेवाला मृत्युको प्राप्त होजाय ॥ १०९ ॥

नेतिभगवानात्रेयः । सर्वानेवमत्स्यान्नपयसाभ्यवहरेद्विशेषत-
स्तुचिलिचिमंसहिमहाभिष्यन्दितमत्वास्थूललक्षणतरानेता-
न्व्याधीनुपजनयत्यामविषमुदीरयाति च ॥ ११० ॥

चाहिये ऐसा करनेसे मृत्यु होतीहै अथवा बल, वर्ण, तेज और वीर्य नष्ट होतेहैं और महारोग तथा नपुंसकता उत्पन्न होतीहै । कोई कहते हैं कि मूलमें जातूशाक जो लिखा है वह बांसकी कोंपलका वाचक है ॥ ११४ ॥

तदेवालिकुचपक्वंनमाषसूपगुडसर्पिर्भिःसहोपयोज्यंवैरोधकत्वात् ॥११५॥ तथाम्रातकमातुलुङ्गलिकुचकरमर्दमोचदन्तशठबदरकोशाम्रभव्यजाम्बवकपित्थातिन्तिडीकपारावताक्षोटपनसनालिकेरदाडिमामलकान्येवम्प्रकाराणिचान्यानिसर्वंचाम्लंद्रव्यमद्रवंचपयसासहविरुद्धम् ॥ ११६ ॥

इसी प्रकार पकेहुए कटहरको उडदकी दाल, गुड, और घीके संग नहीं खाना चाहिये क्योंकि यह भी विरोधकारक हैं ॥ ११५ ॥ अम्वाडा, बिजौरा, कटहर, करौंदा, मोच (सहँजनेकी फली), जंभीरी नींबु, वेर, कोशाम्र, भव्यफल (कमरख), जामुन, कैथ इमली, पारावत (लवलीफल) अखरोट, पीलू, वडहर, नारियल, अनार, आँवले एवम् जितने प्रकारके खटाई तथा खट्टे फल तथा कांजी आदि द्रवपदार्थ हैं उन्हें दूधके साथ नहीं खाना चाहिये ॥ ११६ ॥

कंगुवरकमकुष्ठककुलत्थमाषनिष्पावाःपयसासहविरुद्धाःपद्मोत्तारिकाशाकंशार्करोमैरेयोमधुचसहोपयुक्तंविरुद्धंवातश्चातिकोपयति ॥ ११७ ॥ हारिद्रकःसर्षपतैलभृष्टोविरुद्धःपित्तश्चातिकोपयतिश्लेष्माणंचातिकोपयति पायसोमन्थानुपानोविरुद्धः। उपोदिकातिलकल्कसिद्धाहेतुरतीसारस्य ॥ ११८ ॥ बलाकावारुण्याकुल्माषैरपिविरुद्धा । सैवशूकरवसापरिभृष्टासद्यो व्यापादयति ॥ ११९ ॥

कंगुधान्य, वरक (चीना) धान्य, मोठ, कुलथी, उडद, मटर इन सबको भी दूधके साथ मिलाकर नहीं खाना चाहिये। कसोंमाका साग, शर्करासे बने मद्य, और शहद तथा मैरेय मद्य इन सबको एकसाथ मिलाकर खानेसे विरुद्ध भोजन होताहै तथा वायुका अत्यन्त कोपकारक है ॥ ११७ ॥ हारिद्रकको सरसोंके तेलमें भूनकर खाना विरुद्ध है और पित्तको कुपित करताहै जलमें मिलेहुए घी और सत्तू खाकर ऊपरसे खीर खाना अनुपान विरुद्ध है तथा कफको अत्यन्त कुपित करता है । तिलके कल्कमें सिद्ध किया हुआ पोईका साग अतिसारको उत्पन्न करताहै ॥ ॥ ११८ ॥ वारुणी मद्यके साथ एवम् कुल्माषके साथ वगुलेका मांस विरुद्ध है

यच्चापिदेशकालाग्निसात्म्यासात्म्यानिलादिभिःसंस्कारतोवीर्यतश्चकोष्ठावस्थाक्रमैरपि ॥ १२७ ॥ परिहारोपचाराभ्यां पाकात्संयोगतोऽपिच । विरुद्धंतच्चनहितंहृत्संपद्विधिभिश्च यत् ॥ १२८ ॥

जो द्रव्य देश, काल और अग्नि, सात्म्य, असात्म्य, इनसे विरुद्ध हो और वायु आदिको विगाडकर प्रतिकूल हो तथा संस्कारसे अथवा वीर्यसे अथवा परिपाकसे, परिहार अथवा उपचारसे, परिपाकसे अथवा संयोगसे अथवा हार्दिक सम्पत्तिसे विरुद्ध हो वह सब पदार्थ हानिकारक और रोगोत्पादक होते हैं १२७ ॥ १२८ ॥

विरुद्धंदेशतस्तावद्रूक्षतीक्ष्णादिधन्वनि ।
आनूपेस्निग्धशीतादिभेषजंयन्निषेव्यते ॥ १२९ ॥

अब देशविरुद्धोंका वर्णन करतेहैं । रूक्ष और तीक्ष्ण पदार्थ मिलाकर सेवन करना धन्व (जलरहित) देशमें विरुद्ध है । स्निग्ध और शीत आदि पदार्थ मिलाकर खाना अनूपदेशमें विरुद्ध है ॥ १२९ ॥

कालतोऽपिविरुद्धंयच्छीतरूक्षादिसेवनम् ।
शीतेकालेतथोष्णेचकटुकोष्णादिसेवनम् ॥ १३० ॥

शीत और रूक्ष पदार्थोंको मिलाकर शीतकालमें सेवन करना कालविरुद्ध है तथा उष्ण, कटु पदार्थोंका उष्णकालमें सेवन करना कालविरुद्ध होताहै ॥ १३० ॥

विरुद्धमनलेतद्वन्नानुरूपंचतुर्विधे । मधुसर्पिःसमधृतंमात्रया तद्विरुध्यते ॥ १३१ ॥ कटुकोष्णादिसात्म्यस्यस्वादुशीतादिसेवनम् । यत्तत्सात्म्यविरुद्धन्तुविरुद्धंत्वनलादिभिः ॥ १३२ ॥

जो ४ प्रकारकी अग्निसे प्रतिकूल हो वह अग्निविरुद्ध होताहै । मधु और घृतको समान भागमें मिलाकर खाना मात्राविरुद्ध होताहै । उष्ण प्रकृतिके मनुष्योंको चरपरा आदि उष्ण पदार्थ सात्म्य विरुद्ध है । एवम् शीतल और मधुर आदि सेवन असात्म्य विरुद्ध है । जो पदार्थ अग्नि आदिसे विरुद्ध होताहै वह सब ही सात्म्यविरुद्ध जानना ॥ १३१ ॥ १३२ ॥

यत्समानगुणाभ्यासविरुद्धान्नौषधक्रिया ।
संस्कारतोविरुद्धन्तद्यद्भोज्यंविषवद्व्रजेत् ॥ १३३ ॥

संयोगतोविरुद्धंतद्यथाम्लंपयसासह
अमनोरुचितंयच्चहृद्विरुद्धंतदुच्यते ॥ १४१ ॥

खट्टे पदार्थोंको दूधमें मिलाकर खाना संयोगाविरुद्ध होताहै । मनको बुरा लगनेवाला पदार्थ हृदयसे विरुद्ध कहा जाताहै ॥ १४१ ॥

सम्पद्विरुद्धंतद्विद्यादसञ्जातरसन्तुतत् ।
अतिक्रान्तरसंवापिविपन्नरसमेववा ॥ १४२ ॥

जिस पदार्थमें यथोचित परिपक्व होकर उचित रस न उत्पन्न हुआ हो उसको सम्पद्‌विरुद्ध कहतेहैं । एवम् जिसका रस खराव होगयाहो अथवा नष्ट होगयाहो उसको भी सम्पद विरुद्ध कहतेहैं ॥ १४२ ॥

ज्ञेयंविधिविरुद्धन्तुभुज्यतेनिभृतेनयत् ।
तदेवंविधमन्नंस्याद्विरुद्धमुपयोजितम् ॥ १४३ ॥

जो मनुष्य भोजन कियाहुआ होने पर फिर भोजन करे अथवा कच्चा भोजन करे या स्वेदन आदिसे नम्र होनेपर एकदम अंटसंट भोजन करजाय उसको विधिविरुद्ध कहतेहैं । इस प्रकार भोजनकी विरुद्धताका वर्णन कियागयाहै ॥ १४३ ॥

सात्म्यतोऽल्पतथावापिदीप्ताग्नेस्तरुणस्यच ।
स्नेहव्यायामबलिनोविरुद्धंवितथंभवेत् ॥ १४४ ॥

अपनी प्रकृतिसे किंचित् विरुद्ध पदार्थ और बलवान् अग्निवाले पुरुष तथा तरुण पुरुष एवम् स्नेह या व्यायाम आदिसे बलवान् पुरुषको भी प्रकृतिसे किंचित् विरुद्ध होनेपर भी हानिकारक होताहै ॥ १४४ ॥

विरुद्ध अन्न सेवन रोगोत्पत्ति ।

षांढ्यान्ध्यवीसर्पदकोदराणांविस्फोटकोन्मादभगन्दराणाम् ।
मूर्च्छामदाध्मानगलग्रहाणांपाण्डामयस्यामविषस्यचैव॥१४५॥
किलासकुष्ठग्रहणीगदानांशोषास्रपित्तज्वरपीनसानाम् । सन्तानदोषस्यतथैवमृत्योर्विरुद्धमन्नंप्रवदन्तिहेतुम् ॥ १४६ ॥

विरुद्ध भोजन करनेसे-नपुंसकता, अंधापन, विसर्प, उदररोग, विस्फोटकरोग, उन्माद, भगंदर, मूर्च्छा, मद, आध्मान, गलग्रह, पांडु, विषैली आम, किलास, कुष्ठ, ग्रहणी, शोष, रक्तपित्त, ज्वर, अतिश्याय, त्रिदोष तथा, संतानदोष एवम् मरण होताहै ॥ १४५ ॥ १४६ ॥

अब अध्यायका उपसंहार करतेहैं:-कि इस आत्रेय भद्रकाप्यीय अध्यायमें रसोंके विषयमें महर्षियोंके मत द्रव्योंके गुण, कर्म, द्रव्यसंख्या, रसका आश्रय, रसोंका कारण, रससंख्या, रस तथा अनुरसके लक्षण, पर,अपरादि-विशेष गुणोंका वर्णन, रसोंका पंचभूतात्मक होना और उनके ६ भेद तथा उनका कारण, भूतगुण-विशिष्ट रसोंसे ऊर्ध्वशोधन, और अनुलोमन ६ रसोंके यथोचित विभाग, द्रव्योंके गुण कर्मके सम्बन्धमें उद्देश और अपवाद, गौरव आदि गुणोंमें रसोंकी प्रधानता, मध्यता एवम् निकृष्टता, विपाक और प्रभावके लक्षण, वीर्य, संख्या आस्वादन द्वारा ६ रसोंके पृथक्पृथक् लक्षण, जो द्रव्य जिससे मिलाये जानेपर विरुद्ध होताहै और जो द्रव्य विरुद्ध होनेपर जिस जिस प्रकार विकार करताहै एवम् विरुद्ध भोजनसे उत्पन्न हुए रोगोंकी चिकित्सा यह सब भगवान् पुनर्वसुजीने वर्णन कियाहै ॥ १४९ ॥ १५० ॥ १५१ ॥ १५२ ॥ १५३ ॥ १५४ ॥ १५५ ॥

इति श्रीमहर्षिचरक० पं०रामप्रसादवैद्य०भाषाटीकायामात्रेयभद्रकाप्यीयो नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

सप्तविंशोऽध्यायः ।

अथातोऽन्नपानविधिमध्यायंव्याख्यास्यामइतिहस्माहभगवानात्रेयः ।

अब हम अन्नपानविधि नामके अध्यायकी व्याख्या करतेहैं ऐसा आत्रेय भगवान् कहने लगे ।

अन्नपानकी उत्कृष्टता ।

इष्टवर्णगन्धरसस्पर्शंविधिविहितमन्नपानंप्राणिनांप्राणसंज्ञकानांप्राणमाचक्षतेकुशलाः । प्रत्यक्षफलदर्शनात्तदिन्धनाह्यन्तराग्नेःस्थितिस्तदेवसत्त्वमूर्जयति । तच्छरीरधातुव्यूहबलवर्णेन्द्रियप्रसादकरंयथोक्तमुपसेव्यमानंविपरीतमहितायसम्पद्यते ॥ १ ॥

सुन्दर गंधवर्णवाले तथा सुसंपन्न रसवाले और पवित्र स्पर्शयुक्त एवम् यथाथरीति पर बनायेहुए अन्नपान प्राणियोंके प्राण मानेजातेहैं बुद्धिमानोंका ऐसा कथन है । यथार्थ देखनेमें भी ऐसा ही आताहै कि उत्तम आहार ही अतराग्निके लिये

परमतोवर्गसंग्रहेणाहारद्रव्याण्यनुव्याख्यास्यामः ॥ ४ ॥

अब हम आगे वर्गसंग्रहपूर्वक आहारद्रव्योंकी व्याख्या करतेहैं ॥ ४ ॥

वर्गोंके नाम ।

शूकधान्यशमीधान्यमांसशाकफलाश्रयान् । वर्गान्हारितमद्याम्बुगोरसेक्षुविकारिकान् ॥ ५ ॥ दशद्वौचपरौवर्गौकृतान्नाहारयोगिनाम् । रसवीर्यविपाकैश्चप्रभावैश्चोपदेक्ष्यते ॥ ६ ॥

जैसे शूकधान्यवर्ग, शमीधान्यवर्ग, मांसवर्ग, शाकवर्ग, फलवर्ग, हरितवर्ग, मद्यवर्ग, जलवर्ग, गोरसवर्ग, इक्षुवर्ग यह अलग अलग दश वर्ग तथा कृतान्नवर्ग, तैलवर्ग और शुण्ठ्यादिवर्ग यह सब आहारके उपयोगी होनेसे रस, वीर्य, विपाक तथा प्रभावोंसहित वर्णन करतेहैं ॥ ५ ॥ ६ ॥

अथ शूकधान्यवर्गः ।

रक्तशालिर्महाशालिःकलमःशकुनाहृतः । चूर्णकोदीर्घशूकश्च गौरःपाण्डुकलांगुलौ ॥ ७ ॥ सुगन्धिकालोहवालाःशालिवाख्याःप्रमोदकाः । पतङ्गास्तपनीयाश्चयेचान्येशालयःशुभाः ॥ ॥ ८ ॥ शीतारसेविपाकेचमधुराःस्वल्पमारुताः । बद्धाल्पवर्चसःस्निग्धाबृंहणाः शुक्रमूत्रलाः ॥ ९ ॥

रक्तशालि, महाशालि, कलमशालि, शकुनाहृत, चूर्णक, दीर्घशूक, गौर, पाण्डुक, कांगुल, सुगंधिक, लोहवाल, शालिका, शालिव, प्रमोदक, तपनीय, पतंग इनके सिवाय और भी जो उत्तम २ चावलोंकी जातियें हैं वह सब शीतवीर्य, रस और पाकमें मधुर किंचित् वातकारक, मलको बांधनेवाले, अल्पमलकारक, चिकने, बृंहण, वीर्य तथा मूत्रको बढानेवाले होतेहैं । प्रायः यह उत्तम जातिके चावलोंके गुण हैं ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥

शालिधान्योंके ।

रक्तशालिर्वरस्तेषांतृष्णाघ्नस्त्रिमलापहः ।
महांस्तस्यानुकलमस्तस्याप्यनुततःपरे ॥ १० ॥

लालरंगके शालिचावल इनमें श्रेष्ठमानेगयेहैं तथा तृषा और त्रिदोषको नष्ट करतेहैं। रक्तशालि चावलोंकी अपेक्षा मोटे शालिचावल और मोटे शालिचावलोंकी अपेक्षा कलमचावल हीनगुण होते हैं । इसी प्रकार पहिलेसे दूसरे हीनगुण जानने चाहिये ॥ १० ॥

हस्तिश्यामाकनीवारतोयपर्णीगवेधुकाः । प्रशातिकाम्भःश्यामाकलौहित्याणुप्रियङ्गवः ॥ १६ ॥ मुकुन्दझिण्टिगर्मूटीचरुकावरकास्तथा । शिविरोत्कटजूर्णाह्वःश्यामाकसदृशा गुणैः॥ १७ ॥

हस्तिश्यामाक, नीवार, तोयपर्णी, गवेधुक, प्रशातिक,जलजश्यामाक, लौहित्यश्यामाक, अनुश्यामाक, कंगुनी, मुकुंद, झिंटी,गर्मुटी,चरुका,वरका,शिविर,उत्कट, जवार इन सबके गुण श्यामाक (सौंक) चावलके समान जानना ॥१६॥१७॥

यवके गुण ।

रूक्षःशीतोगुरुःस्वादुःबहुवातशकृद्यवः ।
स्थैर्य्यकृत्सकषायस्तुबल्यःश्लेष्मविकारनुत् ॥ १८ ॥

जब--रूखे, शीतल,गुरु,स्वादु, बहुत वायु और बलके करनेवाले, स्थिरताकारक, कषाय, बलकारक एवम् कफविकारनाशक हैं ॥ १८ ॥

वेणुयवके गुण ।

रूक्षःकषायानुरसोमधुरःकफपित्तहा ।
मेदःक्रिमिविषघ्नश्चबल्योवेणुयवोमतः ॥ १९ ॥

वेणुयव--रूक्ष, कसैले, मधुर, कफपित्तनाशक, मेदको हरनेवाले, कृमि तथा विषको नाश करनेवाले एवम् बलकारक होतेहैं ॥ १९ ॥

गेहूंके गुण ।

सन्धानकृद्वातहरोगोधूमः स्वादुशीतलः ।
जीवनोबृंहणोवृष्यःस्निग्धःस्थैर्य्यकरोगुरुः ॥ २० ॥

गोधूम (गेहूं)-संधानकर्त्ता, वातहर,स्वादु, शीतल, जीवनकर्त्ता, पुष्टकर्ता,वीर्यवर्द्धक, स्निग्ध, दृढकारक एवम् भारी होताहै ॥ २० ॥

नान्दीमुख और मधूलीके गुण ।

नान्दीमुखीमधूलीचमधुरस्निग्धशीतले ।इत्ययंशूकधान्यानां पूर्वोवर्गःसमाप्यते ॥ २१ ॥ इतिशूकधान्यवर्गः ।

नान्दीमुखी तथा मधूलिका (गेहूंका भेद)-मधुर स्निग्ध और शीतल होतेहैं । इस प्रकार यह शूकधान्योंका वर्ग समाप्त हुआ ॥ २१ ॥

**सकषायाविरूक्षणाः ॥ २७ ॥ पित्तश्लेष्मणिशस्यन्तेसूपेष्वा-
लेपनेषुच । तेषांमसूरःसंग्राहीकषायोवातलःपरम् ॥ २८ ॥**

चना, मसुरी, दोनों प्रकारके मटर-यह लघु, शीतल, मधुर, कषाय, रूक्ष एवम् पित्तकफके विकारोंमें इनका यूष और आलेपन उत्तम कहाजाताहै । इनमें मसूरी संग्राही और कषाय तथा वातल होती है ॥ २७ ॥ २८ ॥

तिलके गुण ।

**स्निग्धोष्णमधुरस्तीक्ष्णःकषायःकटुकास्तिलः ।
त्वच्यःकेश्यश्चबल्यश्चवातघ्नःकफपित्तकृत् ॥ २९ ॥**

तिल-चिकने, उष्ण, मधुर, तीक्ष्ण, कषाय, कटु, त्वचाको सुन्दर बनानेवाले, केशोंको बढानेवाले, बलकारक, वातनाशक तथा कफपित्तको उत्पन्न करनेवाले हैं॥२९॥

शिम्बीके गुण ।

**गुर्व्योऽथमधुराःशीताबलघ्नारूक्षणात्मिकाः । सस्नेहाबलिभि-
र्भोज्याविविधाःशिम्बिजातयः ॥ ३० ॥ शिम्बीरूक्षाकषाया
च कोष्ठेवातप्रकोपनी ॥ न च वृष्या नचक्षुष्या विष्टभ्य च
विपच्यते ॥ ३१ ॥**

सब प्रकारकी शिम्बी (सेम)-भारी, मधुर,शीतल, बलघ्न, रूक्षस्वभाववाली, स्नेहयुक्त, बलवान् पुरुषोंके खानेयोग्य होती है ॥ ३० ॥ सेम--रूक्ष, कषाय,कोष्ठमें वायुको कुपित करनेवाली, शरीरको दुर्बल करनेवाली, विष्टम्भकारक, दुर्जर तथा नेत्रोंकी हितकारी नहीं है ॥ ३१ ॥

अरहर आदिके गुण ।

**आढकीकफपित्तघ्नीवातलाकफवातनुत्[१] । अवल्गुजःसैडगजो
निष्पावावातपित्तलाः ॥ ३२॥ काकाण्डोलात्मगुप्तानांमाषव-
त्फलमादिशेत् । द्वितीयोऽयंशमीधान्यवर्गःप्रोक्तोमहर्षिणा॥३३॥
इतिशमीधान्यवर्गः ।**

अरहर--कफ और पित्तको नष्ट करनेवाली और वातकारक होती है । बावचीके बीज--वात और कफको नाश करते हैं । मनवाड (चक्रमर्द)के बीजमें भी यही गुण हैं । निष्पाव (सेमविशेष) वातपित्तको करनेवाला है । कोलासिम्बी और कोंचके बीजोंमें भी उडदोंके समान गुण जानना । इस प्रकार, महर्षि आत्रेयजीने यह शमीधान्यवर्गनामक दूसरा वर्ग कथन किया ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

---

१ कफवातनुदित्यवल्गुजैडगजयोर्बीजस्य गुणः ।

म्बुकुक्कुटी । आरानन्दीमुखीवाटीसुमुखाःसहचारिणः॥४२॥ रोहिणीकामकालीचसारसोरक्तशीर्षकः । चक्रवाकास्तथान्ये चखगाःसन्त्यम्बुचारिणः ॥ ४३ ॥

कूर्म, केंकडा, मत्स्य, सूंस (सिनसुमार), तिमिंगल मछली, सीप, शंख, उद्र, कुंभीर (घडियाल), चिरुकी, मगर इन सबको जलेशय जीव कहते हैं । हंस,क्रौंच बलाका, काकबक, बगुला, कारण्डव, प्लव, शरारी, पुष्कर, केशरी, मानतुण्डिक, मृणालकंठ, मद्गु, कादम्ब, काकतुण्ड, उत्क्रोश, पुण्डरीक, मेघराव,जलकुकूकुट, आरा, नंदीमुखी, वाटी, सुमुखा, सहचारिण, रोहिणी, कामकाली, सारस, रक्त-शीर्षक, चकवा यह सब जलचारी कहे जाते हैं तथा और भी जलमेंसे मछलियें पकडनेवाले पक्षीविशेष जलचारी कहातेहैं ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

जाङ्गल पशुओंके नाम ।

पृषतःशरभोवामःश्वदंष्ट्रामृगमातृकाः । शशोरणौकुरङ्गश्चगो-कर्णःकोटकारकः ॥ ४४ ॥ चारुष्कोहरिणैणौचशम्बरःका-लपुच्छकः । ऋष्यश्चतरपोतश्चविज्ञेयाजाङ्गलामृगाः ॥ ४५ ॥

चित्रहरण, महाशृंग, हरिण, कस्तूरीमृग,श्वदंष्ट्रा, मृगमात्रिका,खरगोश, उरण, कुरंग, गोकर्ण, कोटकारक, चारुष्क, हरिण, ताम्रवर्णका हरिण; सावर, कालपु-च्छक, ऋष्य, तरपोत इन सबको जंगलके मृग कहते हैं ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

विष्किरपक्षियोंके नाम ।

लावोवर्तीरकश्चैववार्तीकः सकपिञ्जलः। चकोरश्चोपचक्रश्चकु-क्कुटोरक्तवर्त्तकः ॥ ४६ ॥ लावाद्याविष्किरास्त्वेतेवक्ष्यन्तेवर्त्त-कादयः । वर्त्तकोवर्त्तिकश्चैवबर्हीतित्तिरिकुक्कुटौ ॥ ४७ ॥ कङ्कसारपदेन्द्राभगोनर्दगिरिवर्त्तकाः । क्रकरोऽवकरश्चैववरा[१]-हश्चेतिविष्किराः ॥ ४८ ॥

लवा, बटेर, वार्तीक, कपिंजल, चकोर, उपचक्र, कुक्कुट, लालवर्त्तक, वर्तिका, बर्हीं, तित्तरी, मुर्गा, कंक, सारपद, इन्द्राभ, सारस, गिरिवर्त्तक कुकर,अवकर, वराह इन सबको विष्किर कहते हैं ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

प्रतुदपक्षियोंके नाम ।

शतपत्रोभृङ्गराजःकोयष्टीजीवजीवकः। कैरातः कोकिलोऽत्यू-

---

१ वारटाश्चेति पाठान्तरम् ।

गुरु, उष्ण, स्निग्ध, मधुर, बलवर्द्धक, पुष्टिजनक, वीर्यवर्द्धक, परमवातनाशक, कफपित्तवर्द्धक होताहै। व्यायाम करनेवाले और दीप्ताग्नि मनुष्योंको हितकारक है ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

प्रसहानांविशेषेणमांसंमांसाशिनांभिषक् । जीर्णार्शोग्रहणी-
दोषशोषार्त्तानांप्रयोजयेत् ॥ ५७ ॥

वैद्यको उचित है कि पुरानी बवासीर और संग्रहणी तथा शोषसे पीडित मनुष्योंको प्रसहजीवोंका मांस उपयोग करे ॥ ५७ ॥

लावाद्योविष्किरोवर्गःप्रतुदाजाङ्गलामृगाः । लघवःशीतमधुराः
सकषायाहितानृणाम् ॥ ५८ ॥ पित्तोत्तरेवातमध्येसन्निपाते
कफानुगे । विष्किरावर्त्तकाद्यास्तुप्रसहाल्पान्तरागुणैः ॥५९॥

लवासे लेकर विष्किरवर्ग तथा प्रतुद,और जांगल जीवोंका मांस,हलका,शीतल, मधुर, कषाय होताहै । इन जीवोंके मांसका यूष पित्तप्रधान, वातमध्य, कफहीन सन्निपातमें प्रयोग करना चाहिये । वर्तकसे आदि लेकर विष्किरपक्षियोंका मांस प्रसह जातियोंके पक्षियोंसे किंचित् अल्पगुणवाला होता है ॥ ५८ ॥५९ ॥

बकरेके मांसका गुण ।

नातिशीतगुरुस्निग्धंमांसमाजमदोषलम् ।
शरीरधातुसामान्यादनभिष्यन्दिबृंहणम् ॥ ६० ॥

बकरेका मांस न तो अधिक शीतल न अधिक भारी एवम् न अधिक स्निग्ध होता है अतएव दोषोंको कुपित नहीं करता । मनुष्योंके शरीर और धातुके अनुकूल होनेसे अनभिष्यन्दी तथा पुष्टकारी होता है ॥ ६० ॥

भेडेआदिके मांसके गुण ।

मांसंमधुरशीतत्वाद्गुरुबृंहणमाविकम् ।योनावजाविकेमिश्रेगो-
चरत्वादनिश्चिते ॥ ६१ ॥ सामान्येनोपदिष्टानांमांसानांस्व-
गुणैःपृथक् । केषाञ्चिद्गुणवैशेष्याद्विशेषउपदेक्ष्यते ॥ ६२ ॥

भेडका मांस मधुर शीतल होनेसे भारी तथा बृंहण है । बकरा और मेढा यह देखनेमें मिलेजुलेसे होतेहैं और ग्राम्य तथा वन्य भेदसे कई प्रकारके होतेहैं । इस लिये इनके गुणोंको उपरोक्त भेदसे अलग अलग जानना। किसी २ जीवोंके मांसमें गुण विशेष होनेसे विशेषरूपसे वर्णन करते हैं ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

लवाका मांस-कषाय, मधुर,हलका, अग्निवर्द्धक होताहै तथा सन्निपातको शान्त करताहै एवम् विपाकमें कटु होताहै ॥ ६८ ॥

कबूतरोंके मांसका गुण ।

कषायमधुराःशीतारक्तपित्तनिबर्हणाः । विपाकेमधुराश्चैवकपोतागृहवासिनः ॥ ६९ ॥ तेभ्योलघुतराःकिञ्चित्कपोतावनवासिनः । शीताःसंग्राहिणश्चैवस्वल्पयूषाश्चतेमताः ॥ ७० ॥

घरमें रहनेवाले कबूतरका मांस-कषाय, मधुर, शीतल, रक्तपित्तनाशक तथा वनके रहनेवाले कबूतरोंका मांस- घरके कबूतरोंकी अपेक्षा हलका है, विपाकमें मधुर है, शीतल है, संग्राही है, थोडा यूषवाला है ॥ ६९ ॥ ७० ॥

शुकमांसके गुण ।

शुकमांसंकषायाम्लंविपाकेरूक्षशीतलम् ।
शोषकासक्षयहितंसंग्राहिलघुदीपनम् ॥ ७१ ॥

तोतेका मांस--कसैला, विपाकमें अम्ल, रूक्ष तथा शीतल है । शोष, खांसी, क्षयमें अच्छा है, संग्राहि, हलका और अग्निवर्धक है ॥ ७१ ॥

खरगोशके मांसका गुण ।

कषायविशदोरूक्षःशीतःपाकेकटुर्लघुः ।
शशः स्वादुःप्रशस्तश्चसन्निपातेऽनिलावरे ॥ ७२ ॥

खरगोशका मांस--कसैला, विषद, रूक्ष, शीतल, पाकमें कटु, हलका और मधुर होताहै । इसका मांसरस, हीनवात सन्निपातमें हितकर होताहै ॥ ७२ ॥

चिडियाके मांसके गुण ।

चटकामधुराःस्निग्धाबलशुक्रविवर्द्धनाः ।
सन्निपातप्रशमनाःशमनामारुतस्यच ॥ ७३ ॥

चिडियाका मांस--मधुर,चिकना, बलवर्द्धक, शुक्रजनक, सन्निपातनाशक तथा वायुको शान्त करनेवाला होताहै ॥ ७३ ॥

गदिडके मांसके गुण ।

मधुराःकटुकाःपाकेत्रिदोषशमनाःशिवाः ।
लघवोबद्धविण्मूत्राःशीताश्चैणाःप्रकीर्त्तिताः ॥ ७४ ॥

गदिडका मांस--मधुर, पाकमें कटु और त्रिदोषको शान्त करनेवाला होताहै । काले हरिणका मांस हलका, मल, मूत्र विबंधक और शीतल होताहै ॥ ७४ ॥

गवयमांसका गुण ।

गवयंकेवलेवातेपीनसेविषमज्वरे ।
शुष्ककासश्रमात्यग्निमांसक्षयहितञ्चयत् ॥ ८१ ॥

गवयंका मांस--जिस जगह केवल वात ही प्रधान हो और कफ तथा पित्त न हो एवम् प्रतिश्याय एवम् विषमज्वरमें सूखी खांसी, भ्रम, भस्मकाग्नि और यक्ष्मा हितकारी होताहै ॥ ८१ ॥

महिषमांसका गुण ।

स्निग्धोष्णमधुरंवृष्यंमाहिषंगुरुतर्पणम् ।
दार्ढ्यंबृहत्त्वमुत्साहंस्वप्नञ्चजनयत्यपि ॥ ८२ ॥

भैंसेका मांस--चिकना, उष्ण, मधुर, वृष्य, बृंहण, शरीरको दृढ करनेवाला एवम् बृहत्व, साहस, निद्रा इनको उत्पन्न करनेवाला होताहै ॥ ८२ ॥

अण्डोंके गुण ।

धार्त्तराष्ट्रचकोराणांदक्षाणांशिखिनामपि । चटकानाञ्चयानि स्युरण्डानिचहितानिच ॥ ८३ ॥ रेतःक्षीणेषुकासेषुहृद्रोगेषु क्षतेषु च । मधुराण्यवपाकीनिसद्योबलकराणिच ॥ ८४ ॥

हंस, चकोर, मुर्गा, मोर, चिडे इनके अंडे हृद्रोग और क्षतरोगमें हितकारी हैं तथा मधुर, अविपाकी, शीघ्र बलवर्द्धक होतेहैं ॥ ८३ ॥ ८४ ॥

मांसकी उत्कृष्टता ।

शरीरबृंहणेनान्यत्दार्ढ्यंमांसाद्विशिष्यते ।
इतिवर्गस्तृतीयोऽयंमांसानांपरिकीर्त्तितः ॥ ८५ ॥

इति मांसवर्गः ।

जितने प्रकारके पदार्थ शरीरको पुष्ट करनेवाले हैं उनमें मांस प्रधान होताहै । इस प्रकार यह मांसवर्गनामक तीसरा वर्ग कथन किया गया ॥ ८५ ॥

अथ शाकवर्गः ।

पाठातुषाशठीशाकंवास्तुकंसुनिषण्णकम् ।
विद्याद्ग्राहित्रिदोषघ्नंभिन्नवर्चस्तुवास्तुकम् ॥ ८६ ॥

१-सूत्रस्थाने पञ्चविंशेऽध्याय, षड्विंशतितमे सूत्रे अहिततमेषु गोमांसस्य गणना कृता अतः अहिततमः गव्यमांसो विषमज्वरेप्यहिततम एव परं तथापि गव्यमिति पाठान्तरं दृष्टम् ।

अथ निदानस्थान ।

१. ज्वरनिदान ।

२. रक्तपित्तनिदान ।

३. गुल्मनिदान ।

चौलाईका शाक ।

रूक्षोमदविषघ्नश्चप्रशस्तोरक्तपित्तिनाम् ।
मधुरोमधुरःपाकेशीतलस्तण्डुलीयकः ॥ ९२ ॥

चौलाईका शाक रूक्ष, मदविकार तथा विषविकारनाशक, रक्तपित्तमें हितकारी, रस तथा पाकमें मधुर एवम् शीतल होताहै ॥ ९२ ॥

मण्डूकपर्ण्यादिशाकोंके गुण ।

मण्डूकपर्णीवेत्राग्रंकुचेलावनतिक्तकम् । कर्कोटकावल्गुजकौ पटोलंशकुलादनी।वृषपुष्पाणिशार्ङ्गेष्ठाकेवूकंसकटिल्लकम्॥९३॥ नाडीकलायंगोजिह्वावार्त्ताकंतिलपर्णिका । कुलकंकर्कशंनिम्बं शाकंपर्पटकश्चयत् । कफपित्तहरंतिक्तंशीतंकटुविपच्यते॥९४॥

मण्डूकपर्णी (ब्राह्मी) वेतकी कोपल,कुचेला (विद्धकर्णी), वनतिक्तक,ककौडाके फल, वल्गुज (वनमूल), पटोल, शकुलादानी (कंचटशाक), वृष (अडूसा या ऋषभक) के फूल,शार्ङ्गेष्ठा (महाकरंज), केबूक, करैला, नाडी, मटर, गोभी, वडीकटेरीके फल, तिलपर्णी, कुलक (करैलीकी जाति),छोटा ककौडा, नीम, पर्पट ये सब कफपित्तनाशक, कडुए, शीतल एवम् पाकमें कटु होतेहैं ॥ ९३ ॥ ९४ ॥

सूप्य शाकोंके गुण ।

सर्वाणिसूप्यशाकानिफञ्जीचिल्लीकतुम्बुकः ॥ आलुकानिचसर्वाणिसपत्राणिकटिञ्जरः । शणशाल्मलिपुष्पाणि कर्बुदारः सुवर्च्चला ॥ ९५ ॥निष्पावःकोविदारश्चपत्तुरश्चाखुपर्णिका । कुमारजीवोलोट्टाकपालङ्क्यामारिषस्तथा ॥ ९६ ॥ कलम्बोनालिकाश्मर्य्युःकुसुम्भवृकधूमकौ । लक्ष्मणश्चप्रपुन्नाडोनलिनीकाकुवेरकः ॥ ९७ ॥लोणिकायवशाकश्चकूष्माण्डकमवल्गुजः । यातुकःशालकल्याणीत्रिपर्णीपीलुपर्णिका ॥ ॥ ९८ ॥ शाकंगुरुचरूक्षञ्चप्रायोविष्टभ्यजीर्य्यति । मधुरंशीतवीर्य्यञ्चपुरीषस्यचभेदनम् ॥ ९९ ॥ ।

सब प्रकारके सूप्यशाक (मटर, सेम आदि), फंजी, चिल्लिक, तुंवा, सब प्रकारके आलू तथा आलुओंके पत्र, कटिंजर, सण तथा सेमरके फूल, सफेद कचनारकी कली, सुवर्चला (हुलहुल), सेमरके फूल, लालकचनार,पत्तूर, मूसाकर्णी,

मुखप्रियश्चरूक्षश्चमूत्रलंत्रपुसंत्वाति । एर्वारुकश्चसंपकंदाह-तृष्णाक्लमार्त्तिनुत् । वर्चोभेदीन्यलावूनिरूक्षशीतगुरूणि च ॥ १०७ ॥

तिलशाक तथा वेतका शाक तथा क्षुद्र एरंडका शाक वातल,कटु, तिक्त,अम्ल और मलको निकालनेवाला है ॥ १०५ ॥ कुसुम्भेका शाक--रूक्ष, अम्ल, उष्ण, कफनाशक तथा पित्तवर्द्धक होताहै । खीरे और ककडीका शाक--मधुर, भारी, विष्टम्भकारक, शीतल, सुस्वादु और रूक्ष होताहै । इनमें खीरा बहुत मूत्रको लानेवाला और पकी हुई आर्या ककडी--दाह, तृषा और वलगमकी पीडाको शान्त करती है । तुंवेका शाक मलवेधक,रूक्ष और भारी होताहै ॥ १०६ ॥ १०७ ॥

चिर्भिटयेर्वारुकेतद्वद्वर्चोभेदाहितेतुते। कूष्माण्डमुक्तंसक्षारंमधुराम्लंतथालघु ॥ १०८॥ सृष्टमूत्रपूरीषश्चसर्वदोषानिवर्हणम्। केलूटश्चकदम्वश्चनदीमाषकमैन्दुकम् ॥ विषदंगुरुशीतंचसमभिष्यान्दिचोच्यते ॥ १०९ ॥

चिरभिट (चचेंड) और तर्वूजका शाक--मलको वेधन करनेवाला और हितकर्त्ता होताहै । कुंभडा (कोंहडा और कद्दू) का शाक मधुर, अम्ल, क्षार एवं हलका होताहै तथा मलमूत्रको निकालनेवाला और सर्वदोषोंको हरनेवाला होताहै । केलूट, कदम्ब, नदीमाष, ऐन्दुक ये सब--विशद, भारी, शीतल तथा अभिष्यन्दी होते हैं ॥ १०८ ॥ १०९ ॥

उत्पलानिकषायाणिपित्तरक्तहराणिच । तथातालप्रलम्बश्च उरःक्षतरुजापहम् ॥११०॥ खर्जूरंतालशस्यश्चरक्तपित्तक्षयापहम् ॥ भरूटंबिसशालूकक्रौञ्चादनकशेरुकम् । शृङ्गाटकंकलोड्यश्चगुरुविष्टम्भिशीतलम् ॥ १११ ॥ कुमुदोत्पलनालास्तु सपुष्पाःसफलाःस्मृताः । शीताःस्वादुकषायास्तुकफमारुतकोपनाः ॥ ११२ ॥

सब प्रकारके कमल--कसैले और रक्तपित्त नाशक होते हैं । तालजटा (ताडकी कोमल जटा) उरःक्षत विकारको शान्त करताहै । खजूरकी कोंपल--रक्तपित्त और क्षयको नष्ट करती है ॥ ११० ॥ कह्लारका कंद, भिस, शालूक, पद्मबीज, कसेरू, सिंघाडा, छोटा कमलकंद,ये सब भारी,विष्टंम्भकर्त्ती और शीतल होते हैं॥१११॥

इति निदानस्थानकी विषयानुक्रमणिका ।

अथ विमानस्थान ।

१. रसविमान ।

अथफलवर्गः ।

दाखके गुण ।

तृष्णादाहज्वरश्वासरक्तपित्तक्षतक्षयान् । वातपित्तमुदावर्तं स्वरभेदंमदात्ययम् ॥११९॥ तिक्तास्यतामास्यशोषंकासञ्चा-शुव्यपोहति । मृद्वीकाबृंहणीवृष्यामधुरास्निग्धशीतला ॥१२०॥

मुनक्का--तृषा, दाह,ज्वर, श्वास, रक्तपित्त, क्षत, क्षय, वातपित्त, उदावर्त्त, स्वर-भेद, मदात्यय, मुखकी कडुआहट,शोष,खांसी इन सबको नष्ट करताहै तथा पुष्टि-कारक, वीर्यवर्द्धक, मधुर, स्निग्ध और शीतल है॥ ११९ ॥ १२० ॥

खजूरके गुण ।

मधुरंबृंहणंवृष्यंखर्जूरंगुरुशीतलम् ।
क्षयेऽभिघातेदाहेचवातपित्तेचतद्धितम् १२१ ॥

खजूरका फल--मधुर, पुष्टिकारक, वीर्यवर्द्धक, भारी, शीतल होताहै तथा क्षय, अभिघात, दाह और वातपित्तमें हितकारक होताहै ॥ १२१ ॥

फल्गु-फालसा-महुआ ।

तर्पणंबृंहणंफल्गुगुरुविष्टम्भिशीतलम् ।
परूषकंमधूकञ्चवातपित्तेचशस्यते ॥ १२२ ॥

कठूमरका फल--तृप्तिकारक, बृंहण, भारी,विष्टम्भी और शीतल होताहै।फालसा और महुआ--वातपित्तमें हितकारी होते हैं ॥ १२२ ॥

आंवडेके गुण ।

मधुरंबृंहणंबल्यमाम्रातंतर्पणंगुरु ।
सस्नेहंश्लेष्मलंशीतंवृष्यंविष्टभ्यजीर्य्यति ॥ १२३ ॥

पका हुआ आमडाका फल--पुष्टिकारक, बलवर्द्धक, तर्पण, मीठा, कफकारक, शीतल, वृष्य और विष्टम्भ होकर पाचन होनेवाला है ॥ १२३ ॥

ताल-नारियल ।

तालशस्यानिसिद्धानिनारिकेलफलानिच ।
बृंहणस्निग्धशीतानिबल्यानिमधुराणिच ॥ १२४ ॥

सिद्ध किया ताडका फल और नारियलका फल-पुष्टिकर्ता,चिकना,शीतल,बल-कारक और मधुर होताहै ॥ १२४ ॥

षष्ठोऽध्यायः ।

शोषनिदानम् ।

अथातःशोषनिदानं व्याख्यास्यामइति हस्माह भगवानात्रेयः ।

अव हम शोषके निदानकी व्याख्या करते हैं ऐसे भगवान् आत्रेयजी कथन करनेलगे ।

शोषोंके आयतनोंकी संख्या ।

इहखलुचत्वारिशोषस्यायतनानि । तद्यथा-
साहसंसन्धारणं क्षयोविषमाशनमिति ॥ १ ॥

इस शरीरमें शोषरोग होनेके चार कारण होते हैं । जैसे अपनी ताकतसे वढकर साहस करना सन्धारण (मलमूत्रादि वेगोंको रोकना) धातुओंका क्षय होना और विषमभोजन करना ॥ १ ॥

साहसका वर्णन ।

तत्रयदुक्तंसाहसंशोषस्यायतनमितितदनुव्याख्यास्यामः । यदापुरुषोदुर्वलोहिसन्वलवतासहविगृह्णातिअतिमहतावाधनुषाव्यायच्छतिजल्पतिवातिमात्रमतिमात्रंवाभारमुद्वहतिअप्सुवाप्लवतेचातिदूरमुत्सादनपदाघातेनवातिप्रगाढमासेवते अतिप्रकृष्टंवाध्वानंद्रुतमभिपततिअभिहन्यतेवान्यद्वाकिञ्चिदेवंविधंविषममतिमात्रंवाव्यायामजातमारभतेतस्यातिमात्रेणकर्मणाउरःक्षण्यतेतस्यउरःक्षतमुपप्लवतेवायुः । सतत्रावस्थितःश्लेष्माणमुरःस्थमुपसंगृह्यशोषयन्विहरत्यूर्द्ध्वमधस्तिर्य्यक्च ॥ २ ॥

उनमें प्रथम साहस जो शोषका कारण कथन कियाहै उसकी व्याख्या करतेहैं। जव दुर्वल मनुष्य वलवान् मनुष्यसे मल्लयुद्ध करताहै अथवा वडे भारी धनुषको अधिक वलसे खींचताहै एवम् वहुत जोरसे वहुत वोलताहै और अपनी सहनशक्तिसे वढकर भारको उठाताहै एवम् जलमें अधिक तैरता है । अत्यन्त वलपूर्वक अपनी छातीमें तैल आदिका मालिश कराताहै अथवा लात आदिकी वलवान् चोट लगजानेसे या वहुत ज्यादे पैरोंको हिलाताहै अथवा अत्यन्त कठिन मार्गमें वहुत भागताहै

दोहा ।

मनुजनके जीवन मरण, विषयक पूरण ज्ञान ॥
जानाचाहैं भिषक् जो, पढलें इन्द्रिय स्थान ॥ १ ॥
द्वादश अध्यायन विषे, ऋषिजन वाक्य विचार ॥
सो प्रसादनीयुत भयो, तिलकित भलेप्रकार ॥ २ ॥
वैद्यजननको चाहिये, राखैं नित निज ध्यान ॥
ऋषिप्रणीत इस तंत्रमें, पूरण पंचमस्थान ॥ ३ ॥

॥ इतीन्द्रियस्थानं पञ्चमम् ॥

विषय.	पृष्ठांक.

२. अतुलगोत्रीय शारीर अध्याय ।

३. खुड्डीकागर्भावक्रान्तिशारीर अध्याय ।

४. महतीगर्भावक्रान्तिशारीर अध्याय ।

इति शारीरस्थानकी विषयानुक्रमणिका।

॥ श्रीः ॥

अथ चरकसंहिता ।

भाषाटीकासहिता ।

सूत्रस्थान

प्रथम अध्याय १.

मंगलाचरण ।

यत्सेवया जडधियोऽपि हि तां प्रतिष्ठां
गच्छन्ति यां न विबुधा अमितप्रयासैः ॥
तां वै प्रसादसुमुखीं गिरिराजकन्यां
सर्वस्य चास्य जननीं हृदि भावयामि ॥ १ ॥
अथाहीशप्रणीतायाः संहितायाः प्रसादनी ॥
रामप्रसादवैद्येन भाषा वै क्रियते मया ॥ २ ॥

दोहा—जाकी सेवा जडहु नर, लभहिं प्रतिष्ठा जोय ।
अतिप्रयास करि करि विबुध, पायसकैं नहिं सोय ॥ १ ॥
सो प्रसन्नमुख गिरिसुता, जो सब जगकी माय ।
कारज रामप्रसादके, होवहु सदा सहाय ॥ २ ॥
चरकरचित या ग्रंथकी, भाषा लिखौं बनाय ।
रामप्रसाद प्रसादनी, जो सबके मन भाय ॥ ३ ॥

अथातो दीर्घंजीवितमध्यायं व्याख्यास्याम इति ह स्माह भगवानात्रेयः ॥

भगवान् आत्रेय कहने लगे कि अब हम दीर्घंजीवितीय अध्यायका विस्तारपूर्वक कथन करतेहैं क्योंकि संसारमें धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष, इन चार पुरुषार्थोंकी प्राप्तिके लिये ही सत्पुरुषोंकी प्रवृत्ति होतीहै इन सब पुरुषार्थोंके साधनके लिये दीर्घजीवनकी आवश्यकता है वह दीर्घजीवन अरोगिता (तंदुरुस्ती) रहनेपर होसक्ती है अरोगिता रखनेके लिये ही आयुर्वेदकी प्रवृत्ति है इसलिये अरोगिताको मुख्य रखते हुए प्रथम दीर्घजीवितीय अध्यायका कथन करतेहैं ॥ १ ॥

आयुर्वेदावतरणक्रम ।

दीर्घंजीवितमन्विच्छन्भरद्वाजउपागमत् ।
इन्द्रमुग्रतपावुद्धाशरण्यममरेश्वरम् ॥ १ ॥

पूर्वकालमें वर्तमान समयकी समान किसीवातको जाननेके लिये सहस्रों प्राणियों का प्राण अर्पण करनेकी आवश्यकता नहीं होतीथी। उस समय महात्मा तपस्वी अपने तप और योग वलसे भूत भविष्यत्को जानकर उसका उचित उपाय अपने तपोवलसे जानलेतेथे फिर वह कार्य जिसरीतिसे सिद्ध होनेवाला हो वह प्रयत्न करलेतेथे। सो वही इसमें लिखा है कि दीर्घजीवनकी इच्छा करते हुए तपोवलशाली महात्मा भरद्वाजजी देवताओंके पति इंद्रको इस कार्यकी सिद्धिके योग्य समझकर उनके पास गये ॥ १ ॥

ब्रह्मणाहियथाप्रोक्तमायुर्वेदंप्रजापतिः । जग्राहनिखिलेनादावश्विनौतुपुनस्ततः ॥ २ ॥ अश्विभ्यांभगवाञ्छक्रःप्रतिपेदेहिकेवलम् । ऋषिप्रोक्तोभरद्वाजस्तस्माच्छक्रमुपागमत् ॥ ३ ॥

क्योंकि पहलेपहल ब्रह्माने संपूर्णरूपसे आयुर्वेद दक्षप्रजापतिके पास कथन कियाथा। फिर प्रजापतिसे अश्विनीकुमारोंने क्रमपूर्वक संपूर्ण ग्रहण किया। अश्विनीकुमारोंसे केवल इंद्रने ही पढा इसलिये ऋषियोंके कहनेसे महर्षि भरद्वाज इंद्रके पास गये ॥ २ ॥ ३ ॥

आयुर्वेदका प्रयोजन ।

विघ्नीभूतायदारोगाःप्रादुर्भूताःशरीरिणाम् । उपवासतपःपाठब्रह्मचर्य्यव्रतायुषाम् ॥ ४ ॥ तदाभूतेष्वनुक्रोशंपुरस्कृत्य महर्षयः । समेताःपुण्यकर्म्माणः पार्श्वे हिमवतःशुभे ॥ ५ ॥

असलमें भरद्वाजका इंद्रके पास जाकर आयुर्वेदके जाननेका कारण यह था कि जव मनुष्योंके उपवास, तप, पठन, पाठन, ब्रह्मचर्य, व्रत,आयु,इनके नष्ट करनेवाले अथवा यों कहिये कि इनमें विघ्न डालनेवाले रोग प्रगट हुए। तव पुण्यकर्मा महात्मा ऋषि प्राणियोंपर दया करके हिमवान् पर्वतके एक सुंदर पार्श्वमें इकट्ठे हुए॥४॥५॥

ऋषियोंका एकत्रित हो विचार करना ।

आंगिराजमदग्निश्चवासिष्ठःकश्यपो भृगुः । आत्रेयोगौतमः सांख्यः पुलस्त्योनारदोऽसितः ॥ ६ ॥ अगस्त्योवामदेवश्चमा-

र्कण्डेयाश्वलायनौ । पारीक्षिद्भिक्षुरात्रेयो भरद्वाजःकपिष्ठलः ॥ ७ ॥ विश्वामित्राश्वरथ्यौचभार्गवश्च्यवनोऽभिजित् । भार्ग्यःशाण्डिल्यकौण्डिन्यौवार्क्षिर्देवलगालवौ ॥८॥ साङ्कृत्योवैजवापिश्चकुशिकोबादरायणः । वडिशःशरलोमाचकाप्यकात्यायनावुभौ ॥ ९ ॥ कांकायनःकैकशेषोधौम्योमारीचिकाश्यपौ । शर्कराक्षोहिरण्याक्षो लौगाक्षिः पैंगिरेवच ॥ १० ॥ शौनकःशाकुनेयश्चमैत्रेयो मैमतायनिः । वैखानसावालखिल्यास्तथाचान्येमहर्षयः ॥ ११ ॥

जो ऋषि हिमालयके एकपार्श्वमें इकट्ठे हुए थे उनके नाम लिखते हैं–अंगिरा, जमदग्नि, वशिष्ठ, काश्यप, भृगु, आत्रेय, गौतम, सांख्य, पुलस्त्य, नारद, असित, अगस्त्य, वामदेव, मार्कण्डेय, आश्वलायन, पारीक्षित्, भिक्षु, अत्रि, भरद्वाज,कपिष्ठल, विश्वामित्र, अश्वरथ्य, भार्गव,च्यवन, अभिजित्, गर्ग, शांडिल्य, कौंडिन्य वार्क्षि, देवल, गालव, सांकृत्य, वैजवापि, कुशिक, बादरायण, वडिश, शरलोमा, काप्य, कात्यायन, कांकायन, कैकशेष, धौम्य, मरीचि,कश्यप शर्कराक्ष,हिरण्याक्ष, लौगाक्षि पैंगि शौनक, शाकुनेय, मैत्रेय, मैमतायनि, वैखानस, वालखिल्य, तथा अन्य महर्षिलोग आनकर इकट्ठे हुए ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९॥१० ॥ ११ ॥

ब्रह्मज्ञानस्यनिधयोदमस्यनियमस्यच । तपसातेजसादीप्ताहूयमानाइवाग्नयः ॥ १२ ॥ सुखोपविष्टास्तेतत्रपुण्यांचक्रुरिमां कथाम् । धर्म्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यंमूलमुत्तमम् ॥ १३ ॥ रोगास्तस्यापहर्त्तारःश्रेयसोजीवितस्यच । प्रादुर्भूतोमनुष्याणामन्तरायोमहानयम् ॥१४॥

यह सब महात्मा ब्रह्मके जाननेमें और इंद्रियोंके दमन करनेमें तथा नियमोंके पालनेमें समुद्र थे, तप और तेजके प्रभावसे हवन करनेसे प्रज्वलित अग्निके समान प्रकाशमान होरहे थे। यह सब महात्मा सुखपूर्वक बैठेहुए उस हिमालयके शिखरमें यह पवित्र कथा कहने लगे–कि धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इनका उत्तम मूल आरोग्यता ही है अर्थात् आरोग्यता रहनेपर ही धर्मादि चतुर्विध पुरुषार्थकी प्राप्ति

होसकती है। सो रोग (बीमारियां) इस आरोग्यताके हरलेनेवाले हैं। आरोग्यता न रहनेसे जीवन और कल्याण (सुख) भी नष्ट ही होजाताहै। इस लिये यह मनुष्योंके लिये महान् अन्तराय (भारी विघ्न) आन उपस्थित हुआ है ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥

उपायका निश्चय।

कःस्यात्तेषांशमोपायइत्युक्त्वाध्यानमास्थिताः। अथतेशरणं शक्रंददृशुर्ध्यानचक्षुषा ॥ १५ ॥ सवक्ष्यतिशमोपायंयथावद-मरप्रभुः। कःसहस्राक्षभवनंगच्छेत्प्रष्टुंशचीपतिम् ॥ १६ ॥

सो अब इन रोगोंके शांत करनेका क्या उपाय करना चाहिये इसके जाननेके लिये सब ऋषियोंने ध्यान लगाया, इसके अनंतर उन ऋषियोंने इस विघ्नसे बचानेका यत्न इंद्रके पास जानेसे प्राप्त होगा यह अपनी समाधिमें ध्यान करके जान लिया। फिर नेत्र खोलकर सब आपसमें कहने लगे कि इन रोगोंकी शांतिका ठीक २ उपाय हमको देवताओंके पति इंद्र बतलावेंगे, परन्तु उन शचीपति इंद्रके भवनमें इस उपायको सीखने कौन जावेगा ॥ १५ ॥ १६ ॥

अहमर्थेनियुज्येयमत्रेतिप्रथमंवचः।
भरद्वाजोऽब्रवीत्तस्मादृषिभिःसनियोजितः ॥ १७ ॥

इस आन्दोलनको सुनकर भरद्वाजजीने सबसे पहले कहा कि यह काम मुझे सौंपाजाय मैं इस कार्यको करूंगा इसलिये सब ऋषियोंने इनहीको नियुक्त किया कि आप ही जाइये ॥ १७ ॥

भरद्वाजका इंद्रभवनमें जाना।

सशक्रभवनंगत्वासुरर्षिगणमध्यगम्। ददर्शबलहन्तारंदीप्य-मानमिवानलम् ॥ १८ ॥ सोऽभिगम्यजयाशीर्भिरभिनन्द्यसु-रेश्वरम्। प्रोवाचभगवान्धीमानृषीणांवाक्यमुत्तमम् ॥ १९ ॥

ऋषियोंसे विदा होकर भरद्वाज इंद्रके स्थानमें (स्वर्गमें) पहुंचे वहां जाकर देवर्षिगणोंके मध्यमें सिंहासनपर प्रदीप्त अग्निके समान तेजस्वी इन्द्रको देखा। फिर बुद्धिमान् भगवान् भरद्वाजने इंद्रके पास जाकर आशीर्वादादिसे प्रसन्न कर ऋषियोंके उत्तम वाक्योंको कथन किया ॥ १८ ॥ १९ ॥

व्याधयोहिसमुत्पन्नाःसर्वप्राणिभयंकराः।तद्ब्रूहिमेशमोपायं यथावदमरप्रभो ॥ २० ॥ तस्मैप्रोवाचभगवानायुर्वेदंशतक्रतुः । पदैरल्पैर्मतिंबुद्ध्वाविपुलांपरमर्षये ॥ २१ ॥

कि हे देवेश ! पृथ्वीमें संपूर्ण मनुष्योंको दुःख देनेवाले भयंकर रोग उत्पन्न होगये हैं कृपा करके उन रोगोंके शांतिकारक उपायका कथन कीजिये । यह सुनकर भगवान् इन्द्रने भरद्वाजजीको विपुलबुद्धिशाली जानकर संक्षेपमें ही आयुर्वेद शास्त्रका उपदेश करादिया ॥ २० ॥ २१ ॥

आयुर्वेदका स्वरूप तथा भरद्वाजका इंद्रसे उसे प्राप्तकरना ।

हेतुलिंगौषधज्ञानंस्वस्थातुरपरायणम्। त्रि(१)सूत्रंशाश्वतं पुण्यंबुबुधेयंपितामहः ॥ २२ ॥ सोऽनन्तपारंत्रिस्कन्धमायुर्वेदंमहामतिः। यथावदचिरात्सर्वंबुबुधेतन्मनामुनिः ॥ २३ ॥ तेनायुरमितंलेभेभरद्वाजःसुखान्वितः । ऋषिभ्योऽनधिकन्तञ्चशशंसाऽनवशेषयन् ॥ २४ ॥

जिस शास्त्रमें हेतु अर्थात् रोगके उत्पन्न करनेवाला कारण और रोगबोधक चिह्न तथा औषधज्ञान होनेका भलीप्रकार वर्णन है । और आरोग्य (तन्दुरुस्त) तथा रोगियोंको परम उपयोगी है । जिसमें हेतु, लिङ्ग, और औषधज्ञान यह तीन प्रधान सूत्र हैं ऐसे इस सनातन पवित्र आयुर्वेदशास्त्रको पहले पितामहने जाना अर्थात् इसका आविर्भाव पहले ब्रह्माके हृदयमें हुआ।सो इस अनन्तपार आयुर्वेदको "जिसमें निघंटु, निदान,चिकित्सा, अथवा वही हेतु, लिङ्ग, औषधज्ञान, यह तीन स्कंध अर्थात् कंधे हैं" महामति भरद्वाजजीने चित्त लगाकर थोडे ही कालमें संपूर्णरूपसे जानलिया । फिर इस आयुर्वेदके प्रतापसे भरद्वाजजी दीर्घायु और सुखको प्राप्त हुए । और यह शास्त्र क्रमपूर्वक ऋषियोंको पढादिया ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥

भरद्वाजसे ऋषियोंका आयुर्वेदका ग्रहण करना ।

ऋषयश्चभरद्वाजाजगृहुस्तंप्रजाहितम्। दीर्घमायुश्चिकीर्षन्तो वेदंवर्धनमायुषः ॥२५॥ महर्षयस्तेददृशुर्यथावज्ज्ञानचक्षुषा॥ सामान्यञ्चविशेषञ्चगुणान्द्रव्याणिकर्म्मच ॥ २६ ॥ समवायंचतज्ज्ञात्वातन्त्रोक्तंविधिमास्थिताः । लेभिरेपरमंशर्म्मंजीवितंचापिनिर्गदम् ॥ २७ ॥

---

(१) त्रीणि हेत्वादीनि सूत्र्यते यस्मिन् येन वा तत्त्रिसूत्रमिति चक्रपाणिः ।

ऋषियोंने भी दीर्घायु होनेकी इच्छा करतेहुए प्रजाके हितके लिये इस आयुर्वर्द्धक शास्त्रको भलीभांति ग्रहण किया । फिर इस शास्त्रके ज्ञानरूपी नेत्रद्वारा ऋषियोंने सामान्यतासे और अधिकतासे द्रव्योंके गुण व स्वरूप तथा प्रयोग और कर्मको भलीप्रकार जाना । फिर इन सबके सूक्ष्म स्थूल समवायको तथा जिसप्रकार पांच भूतोंसे आरंभ हो शारीरिक व द्रव्योंके सूक्ष्म अंशोंद्वारा चयापचय कोप शमन होताहै इन सबको जानकर आयुर्वेदोक्त विधिका अनुसरण करतेहुए परम आनंद और रोगरहित जीवनको प्राप्त किया ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥

पुनर्वसुका छः शिष्योंको आयुर्वेद उपदेश ।

अथमैत्रीपरःपुण्यमायुर्वेदंपुनर्वसुः। शिष्येभ्योदत्तवान्षड्भ्यः सर्वभूतानुकम्पया॥२८॥अग्निवेशश्चभेलश्चजतूकर्णःपराशरः॥ हारीतःक्षारपाणिश्चजगृहुस्तन्मुनेर्वचः ॥ २९ ॥ बुद्धेर्विशेषस्तत्रासीन्नोपदेशान्तरं मुनेः । तन्त्रप्रणेताप्रथममग्निवेशो यतोऽभवत् ॥ ३० ॥ अतोभेलादयश्चक्रुःस्वंस्वंतन्त्रकृतानिच। श्रावयामासुरात्रेयंसर्षिसंघंसुमेधसः ॥ ३१ ॥

इसके अनंतर मित्रतापरायण पुनर्वसुजीने संपूर्ण प्राणियोंपर कृपा करके यह पवित्र आयुर्वेद ६ शिष्योंको पढाया और १ अग्निवेश २ भेल ३ जतूकर्ण ४ पराशर ५ हारीत ६ क्षारपाणी इन छहों शिष्योंने भी मुनिके कहे आयुर्वेदको ग्रहण किया । यद्यपि । महर्षि आत्रेय (पुनर्वसु) जीके उपदेशमें कुछ भेद न था वह सबकेलिये एकसाही था परंतु इन छः शिष्योंमें अग्निवेश सबमें अधिक बुद्धिवाले थे इसलिये प्रथम तंत्र (ग्रंथ) कर्ता अग्निवेश ही हुए फिर भेल आदि पांचोंने भी अपने २ नामसे संहिताएँ बनाकर ऋषियोंमें विराजमान आत्रेयजीको (अपने गुरु पुनर्वसुको) सुनाई ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥

अग्निवेशादि छः संहिताओंमें ऋषियोंकी अनुमति ।

श्रुत्वासूत्रणमर्थानामृषयःपुण्यकर्म्मणाम् । यथावत्सूत्रितमिति प्रहृष्टास्तेऽनुमेनिरे ॥ ३२ ॥ सर्वएवाऽस्तुवंस्तांश्चसर्वभूतहितैषिणः । सर्वभूतेष्वनुक्रोशइत्युच्चैरब्रुवन्समम् ॥ ३३ ॥ तंपुण्यंशुश्रुवुः शब्दं दिविदेवर्षयः स्थिताः। सामराःपरमर्षीणांश्रुत्वामुमुदिरेपरम् ॥ ३४ ॥ अहोसाध्वितिवोपश्चलोकां-

त्रीनन्ववादयत् । नभसिस्निग्धगम्भीरोहर्षाद्भुतैरुदीरितः ॥
॥ ३५ ॥ शिवोवायुर्ववौसर्वाभाभिरुन्मीलितादिशः । निपे-
तुःसजलाश्चैवदिव्याःकुसुमवृष्टयः ॥ ३६ ॥

इनकी बनाईहुई संहिताओंको सुनकर संपूर्ण ऋषि प्रसन्न हुए और मनमें कहने-लगे कि बहुत अच्छे प्रकारसे सूत्रोंका क्रम रखकर ग्रंथोंको बनायाहै, फिर संपूर्ण सृष्टिके हितैषी वह ऋषि इनकी स्तुति करके कहनेलगे कि आपने सब प्राणियोंपर दया की है आपको धन्य है । ऋषियोंकी कीहुई इस पवित्र आनन्दध्वनिको सुनकर स्वर्गके देवता अत्यंत प्रसन्न हुए और बहुत अच्छा हुआ २ यह प्रेमसे कहाहुआ शब्द तीनों लोकोंमें उत्तम गुञ्जार करता हुआ आकाशसे प्रतिशब्द देनेलगा । उस समय कल्याणकारी मंद सुगंध पवित्र वायु चलनेलगा और सब दिशा प्रकाशमय हो शोभा देनेलगीं देवलोकसे जलसे भीगे हुए सुगंधित दिव्यपुष्पोंकी वृष्टि होने-लगी ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

अथाग्निवेशप्रमुखान्विविशुर्ज्ञानदेवताः। बुद्धिःसिद्धिःस्मृति-
र्मेधाधृतिःकीर्त्तिःक्षमादया ॥ ३७ ॥ तानिचानुमतान्येषां
तन्त्राणिपरमर्षिभिः । भावायभूतसंघानां प्रतिष्ठां भुविले-
भिरे ॥ ३८ ॥

इसके अनंतर इस पुण्य कर्मके फलसे अग्निवेश आदि छहों ग्रंथकर्ताओंके शरी-रमें बुद्धि, सिद्धि, स्मृति, मेधा, धृति, कीर्ति, क्षमा, दया यह ज्ञानदेवता प्रविष्ट हुए अर्थात् यह सब उत्तम गुण उनमें निवास करनेलगे । और ऋषियोंसे सम्मान पाएहुए इनके ग्रंथ संपूर्ण मनुष्योंके कल्याणकारक होतेहुए पृथिवीमें प्रतिष्ठाको प्राप्त हुए ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

आयुर्वेदका लक्षण ।

हिताहितंसुखंदुःखमायुस्तस्यहिताहितम् ।
मानञ्चतच्चयत्रोक्तमायुर्वेदःसउच्यते ॥ ३९ ॥

अब प्रथम आयुर्वेद शब्दकी निरुक्ति कहतेहैं। जिस शास्त्रमें आयुके हित (अच्छी) अवस्था, अहित (खराब) अवस्था, सुखयुक्त अवस्था, दुःखयुक्त अवस्था आयु और आयुका हित, अहित, तथा आयुका परिमाण कथन कियाहुआ हो या यों कहिये जिसके द्वारा यह सब जानाजाय उसको आयुर्वेद कहतेहैं ॥ ३९ ॥

आयुके नाम ।

शरीरेन्द्रियसत्त्वात्मसंयोगोधारिजीवितम् ।
नित्यगश्चानुवन्धश्च पर्य्यायैरायुरुच्यते ॥ ४० ॥

शरीर, इंद्रियें, मन, आत्मा, इनके संयोगको आयु कहते हैं । उसीको धारी, जीवित, नित्यग, और अनुबंध भी कहतेहैं यह आयुके पर्यायवाचक शब्द हैं ॥४०॥

आयुर्वेदका महत्त्व ।

तस्यायुषःपुण्यतमोवेदोवेदविदांमतः ।
वक्ष्यतेयन्मनुष्याणांलोकयोरुभयोर्हितः ॥ ४१ ॥

वेदके जाननेवालोंने उस आयुके वेदको अर्थात् इस आयुर्वेद (वैद्यक) शास्त्रको परमोत्तम मानाहै, यह मनुष्योंके लिये इस लोकमें और परलोकमें परमहितकारी है। सो उसीका यहां वर्णन करतेहैं ॥ ४१ ॥

वृद्धिह्रासके कारण व सामान्य और विशेषके लक्षण ।

सर्व्वदासर्व्वभावानांसामान्यंवृद्धिकारणम् ।
ह्रासहेतुर्विशेषश्चप्रवृत्तिरुभयस्यतु ॥ ४२ ॥
सामान्यमेकत्वकरंविशेषस्तुपृथक्त्वकृत् ।
तुल्यार्थताहिसामान्यंविशेषस्तुविपर्य्ययः ॥ ४३॥

द्रव्य गुण कर्मोंकी समानता उनकी वृद्धि करनेमें कारण होतीहै जैसे चिकनें पदार्थके सेवनसे उसीके समान चिकने स्वभाववाली मेदकी वृद्धि होती है । और शोकातुर अवस्थामें शोकयुक्त वात सुननेसे शोकवृद्धि होती है सर्दीके मौसममें उसीके स्वभाववाली शीतल पवन चलनेसे शीतकी वृद्धि होती है । आठ घटोंमें समान गुणवाले दो घट और मिलादेनेसे घटोंकी संख्यामें वृद्धि होती है. वातप्रकृतिवालेको वातकारक समानगुणवाले पदार्थसे वातवृद्धि होती है । इसी प्रकार द्रव्यादिकोंकी असमानता घटानेका कारण है, जैसे-मेदसे असमान गुणवाला रूक्षपदार्थ मेदको घटाने (ह्रास) का कारण होताहै । शोकातुर चित्तमें आनंददायक वातके आनेसे शोक कम होताहै इस प्रकार द्रव्य गुण कर्मोंकी समानतासे प्रवृत्तिवृद्धि और असमानतासे प्रवृत्तिह्रासका कारण होती है। यहां सामान्यका अर्थ एकत्व करनेवाला जानना । और विशेषका अर्थ अलग २ करनेवाला जानना । तुल्यार्थता जैसे मेदमें

स्नेह तुल्य अर्थ करता है उसको सामान्य कहते हैं और विपर्यय. अर्थात् उलटे अर्थके करनेवालेको विशेष कहते हैं ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

आयुर्वेदका अधिकार।

सत्त्वमात्माशरीरञ्चत्रयमेतत्त्रिदण्डवत्।लोकस्तिष्ठतिसंयोगा-त्तत्रसर्वंप्रतिष्ठितम् ॥ ४४ ॥ सपुमांश्चेतनंतच्चतच्चाधिकरणं स्मृतम् । वेदस्यास्यतदर्थंहिवेदोऽयंसम्प्रकाशितः ॥ ४५ ॥

मन शरीर आत्मा इन तीनोंका तीन दंडोंकी समान परस्पर संबंध है इन तीनोंके संबंधको वैद्यक शास्त्रमें पुरुष कहाजाताहै और सम्पूर्ण संसार इन तीनोंके संबंधसे ही है । इस वैद्यक शास्त्रमें इन तीनोंके संबंधरूप पुरुषको ही पुमान्, चेतन और आयुर्वेदका अधिकरण मानते हैं । और इस पुरुषके लिये ही इस आयुर्वेदका प्रकाश किया गया है ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

द्विविध द्रव्य ।

खादीन्यात्मामनःकालोदिशश्चद्रव्यसंग्रहः ।
सेन्द्रियंचेतनंद्रव्यंनिरिन्द्रियमचेतनम् ॥ ४६ ॥

आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, आत्मा, मन, काल, दिशा इन सबको द्रव्य कहते हैं ! इंद्रियवालोंको चेतन और इंद्रियरहितको अचेतन कहते हैं । मनुष्य पशु पक्षी आदि इंद्रियवालोंको चेतन और वृक्षादि जड पदार्थोंको अचेतन कहते हैं ॥ ४६ ॥

गुण कर्म ।

सार्थागुर्वादयोबुद्धिः प्रयत्नान्ताःपरादयः ।
गुणाःप्रोक्ताःप्रयत्नादिकर्म्मंतच्चेदमुच्यते ॥ ४७ ॥

शब्द, स्पर्श, गंध, रस, रूप, (यह अर्थ अर्थात् इंद्रियोंके विषय कहे जातेहैं) और गुरु, लघु, शीत, उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष, मंद, तीक्ष्ण, स्थिर, सर, मृदु, कठिन, विशद, पिच्छल, खर, मसृण, स्थूल, सूक्ष्म, सांद्र, द्रव यह बीस द्रव्यके गुण हैं । बुद्धि, इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, प्रयत्न, पर, अपर, युक्ति, संख्या, संयोग, विभाग, पृथक्त्व, परिमाण, संस्कार, अभ्यास यह सब गुण कहाते हैं और प्रयत्न चेष्टा आदि कर्म कहे जाते हैं ॥ ४७ ॥

समवाय ।

समवायोऽपृथग्भावोद्रव्यादीनांगुणैर्मतः ।
सनित्योयत्रहिद्रव्यंनतत्रानियतागुणाः ॥ ४८ ॥

द्रव्य और उनके गुण आपसमें अलग नहीं होते द्रव्य और गुणका नित्य संबंध है उस नित्य संबंधको समवाय संबंध कहते हैं जहां द्रव्य रहते हैं उनमें गुणभी नियत रहते हैं ॥ ४८ ॥

समवायिकारण ।

यत्राश्रिताःकर्मगुणाःकारणंसमवायियत् ।
तद्द्रव्यंसमवायी तु निश्चेष्टःकारणंगुणः ॥ ४९ ॥

जिसमें गुण कर्म मिलेहुए रहते हों और जो गुण कर्मका समवायि हो उसको द्रव्य कहते हैं । जो द्रव्यमें समवाय और व्यापार रहित हुआ कारण हो उसको गुण कहते हैं ॥ ४९ ॥

कर्मलक्षण ।

संयोगेचवियोगेचकारणंद्रव्यमाश्रितम् ।
कर्त्तव्यस्यक्रियाकर्मकर्मनान्यदपेक्षते ॥ ५० ॥

जो द्रव्यके संयोग और वियोगमें कारण हैं और द्रव्यके आश्रय हैं उनको कर्म कहते हैं कर्तव्यकी जो क्रिया है उसीको कर्म कहते हैं इसके सिवाय कर्म किसी औरका नाम नहीं । तात्पर्य यह है, जो करते समय उस कर्तव्यकी अपेक्षासे क्रिया आरम्भ कीजाती है उसको कर्म कहते हैं ॥ ५० ॥

वैद्यकका प्रयोजन ।

इत्युक्तंकारणंकार्यंधातुसाम्यमिहोच्यते ।
धातुसाम्यक्रियाचोक्तातन्त्रस्यास्यप्रयोजनम् ॥ ५१ ॥

इस प्रकार यहां पर सामान्यतासे कार्य कारणका कथन करदिया अब रसरक्त आदि धातुओंकी साम्यावस्था और उनका साम्यावस्थामें रखनेका क्रम कहा जायगा क्योंकि इस शास्त्रका प्रयोजन ही धातुओंकी साम्यता (आरोग्यता) का है ॥ ५१ ॥

व्याधियोंके हेतु और आश्रय।

कालबुद्धीन्द्रियार्थानांयोगोमिथ्यानचातिच।
द्वयाश्रयाणांव्याधीनांत्रिविधोहेतुसंग्रहः॥ ५२ ॥
शरीरंसत्त्वसंज्ञंचव्याधीनामाश्रयोमतः।
तथासुखानांयोगस्तुसुखानांकारणंशमः॥ ५३ ॥

काल, बुद्धि, इंद्रिय, विषय इनका मिथ्या योग अयोग और अतियोग यह तीन प्रकारका व्यापार होना ही शारीरिक तथा मानसिक व्याधियोंका कारण है। शरीर और मन यह दोनों ही रोगोंके अधिष्ठान हैं अर्थात् रोग शरीरमें और मनमें ही होतेहैं। और काल, बुद्धि, इंद्रियोंके विषय, इनका उचित योग रहनेसे रोग न होकर सुख प्राप्त होताहै॥ ५२ ॥ ५३ ॥

आत्माका लक्षण।

निर्विकारःपरस्त्वात्मासत्त्वभूतगुणेन्द्रियैः।
चेतनेकारणंनित्योद्रष्टापश्यतिहिक्रियाः॥ ५४ ॥

आत्मा निर्विकार है, पर है, और मन, भूतगण और इंद्रियें इनके चैतन्यमें कारण है, नित्य है, द्रष्टा है, सब क्रियाओंको देखताहै॥ ५४ ॥

रोगोंके कारण।

वायुःपित्तंकफश्चोक्तःशारीरोदोषसंग्रहः।
मानसःपुनरुद्दिष्टोरजश्चतमएवच॥ ५५ ॥

वात, पित्त, कफ, यह तीन शारीरिक दोष हैं। रजोगुण और तमोगुण मानसिक दोष हैं। अर्थात् वात, पित्त, कफ यह बिगडकर शरीरमें रोग करतेहैं और रज,तम मनमें रोग करनेवाले हैं॥ ५५ ॥

दोषोंका प्रशमन।

प्रशाम्यत्यौषधैःपूर्वोद्रव्ययुक्तिव्यपाश्रयैः।
मानसोज्ञानविज्ञानधैर्यस्मृतिसमाधिभिः॥ ५६ ॥

शारीरिक रोग द्रव्योंकी युक्तियोंसे सम्बन्ध रखनेवाले औषधों द्वारा शांत होतेहैं और मानसिक रोग ज्ञान, विज्ञान, धैर्य, स्मृति, समाधि आदिसे शांत होतेहैं ५६॥

वायुके गुण और शमनका उपाय ।

रूक्षःशीतोलघुःसूक्ष्मश्चलोऽथविषदःखरः ।
विपरीतगुणैर्द्रव्यैर्मारुतःसंप्रशाम्यति ॥ ५७ ॥

तीनों दोषोंमें प्रथम वायुका स्वभाव लिखतेहैं । वायु रूक्ष, शीतल, लघु, सूक्ष्म, चंचल, विशद, खर होताहै । इसके विपरीत स्निग्ध, उष्ण, आदि गुणोंवाले द्रव्योंसे शांतिको प्राप्त होताहै ॥ ५७ ॥

पित्तके गुण और शमनोपाय ।

सस्नेहमुष्णंतीक्ष्णंचद्रवमम्लंसरंकटु ।
विपरीतगुणैःपित्तंद्रव्यैराशुप्रशाम्यति ॥ ५८ ॥

पित्त-स्नेहयुक्त, उष्ण, तीक्ष्ण, पतला, खट्टा, सारक और कटुस्वभाववाला है । अपनेसे विपरीत रूक्ष, शीतादिगुणवाले द्रव्योंसे शांत होताहै ॥ ५८ ॥

कफके गुण और शमनका उपाय ।

गुरुशीतमृदुस्निग्धमधुरस्थिरपिच्छिलाः ।
श्लेष्मणः प्रशमंयान्तिविपरीतगुणैर्गुणाः ॥ ५९ ॥

कफ-भारी, शीतल, मृदु, चिकना, मधुर, स्थिर, पिच्छिलस्वभाववाला है और अपनेसे विपरीत हलके, उष्ण, चरपरे, रूक्ष गुणोंवाले द्रव्योंसे शांत होताहै ॥५९॥

चिकित्साका साधारण निर्देश ।

विपरीतगुणैर्देशमात्राकालोपपादितैः ।
भेषजैर्विनिवर्त्तन्तेविकाराःसाधुसंमताः ॥ ६० ॥
साधनंनत्वसाध्यानांव्याधीनामुपदिश्यते ।
भूयश्चातोयथाद्रव्यंगुणकर्मप्रवक्ष्यते ॥ ६१ ॥

कारण और कारणसे उत्पन्नहुई व्याधिसे विपरीत गुणवाले द्रव्योंको देश, काल और मात्रा विचारकर उपयोग करनेसे साध्य व्याधियोंकी शांति होतीहै । परन्तु जो संपूर्ण लक्षणोंसे असाध्य रोग हैं उनकी शांति नहीं होती । फिर भी द्रव्योंमें गुण तथा कर्मको कथन करतेहैं ॥ ६० ॥ ६१ ॥

रसस्वरूपनिदर्शन ।

रसनार्थोरसस्तस्यद्रव्यमापः क्षितिस्तथा ।
निर्वृत्तौचविशेषेचप्रत्ययाः खादयस्त्रयः ॥ ६२ ॥

रसका स्वाद जीभद्वारा होताहै क्योंकि रस, रसना (जीभ) इंद्रियका विषय है। उस रसका कारण पृथ्वी और जल ही मानेगयेहैं। वैसे तो उस रसमें कमी और अधिकता पहुंचानेमें आकाश, अग्नि, वायु, इन तीनोंको भी कारण मानाहै ॥६२॥

रसोंकी संख्या और नाम ।

स्वादुरम्लोऽथलवणोकटुकस्तिक्त एवच ॥
कषायश्चेतिषट्कोऽयंरसानांसंग्रहःस्मृतः ॥ ६३ ॥

मीठा, खट्टा, नमकीन, चर्परा, कडुवा, कषेला, यह छः रस हैं ॥ ६३ ॥

रसोंका कार्य ।

स्वाद्वम्ललवणावायुंकषायस्वादुतिक्तकाः ।
जयन्तिपित्तंश्लेष्माणंकषायकटुतिक्तकाः ॥ ६४ ॥

इनमें मीठा, खट्टा, नमकीन, यह तीन रस वायुको शांत करतेहैं । कषैला, मीठा, कडुवा, यह तीन रस पित्तको शांत करतेहैं । कषैला, चर्परा, कडुवा, यह तीन कफको शांत करतेहैं ॥ ६४ ॥

द्रव्यके तीन प्रकार ।

किञ्चिद्दोषप्रशमनंकिञ्चिद्धातुप्रदूषणम् ।
स्वस्थवृत्तौहितंकिञ्चिद्द्रव्यंत्रिविधमुच्यते ॥ ६५ ॥

कोई द्रव्य दोषोंको शमन करनेवाला होताहै कोई द्रव्य ऐसे हैं जो रस रक्त आदि धातुओंको दूषित करतेहैं । कोई ऐसे हें जो स्वस्थ अवस्थाकी रक्षा रखतेहैं । इसप्रकार द्रव्य तीन प्रकारके होते हैं ॥ ६५ ॥

जङ्गमादिभेदसे फिर तीनप्रकार ।

तत्पुनस्त्रिविधंज्ञेयंजाङ्गमौद्भिदपार्थिवम् ॥ ६६ ॥

फिर वह द्रव्य जंगम, औद्भिद, पार्थिव, इन भेदोंसे तीन प्रकारके हैं ॥ ६६ ॥

जाङ्गमवर्णन ।

मधूनिगोरसाःपित्तंवसामज्जासृङ्मांसमिषम् । विण्मूत्रचर्मरेतोऽस्थिस्नायुशृङ्गखरानखाः । जङ्गमेभ्यःप्रयुज्यन्तेकेशालोमानिरोचनाः ॥ ६७ ॥

उनमें–शहद, दूध, पित्त चरबी, मज्जा, रक्त, मांस, मल, मूत्र, चर्म, वीर्य, हड्डियां, स्नायु, सींग, नख, खुर, केश, लोम, रोचन यह द्रव्य जंगमों (फिरने तुरनेवालों) से लिएजातेहैं ॥ ६७ ॥

पार्थिवद्रव्यवर्णन ।

सुवर्णसमलाःपञ्चलोहाःससिकतासुधा।मनःशिलालेमणयो लवणंगैरिकाञ्जने॥६८॥भौममौषधमुद्दिष्टमौद्भिदन्तुचतुर्विधम् ॥

सोना, चाँदी, ताँवा, शीशा, रांगा, लोहा और इनके मल, सिकता; (वालू) चूना, मनसिल, हरिताल, हीरा आदि मणियें, लवण, अंजन; गेरू, यह सब पार्थिव द्रव्य कहे हैं ॥६८॥

औद्भिदद्रव्यवर्णन ।

वनस्पतिर्वीरुधश्चवानस्पत्यस्तथौपधिः ॥ ६९॥ फलैर्वनस्पतिः पुष्पैर्वानस्पत्यःफलैरपि । ओपध्यःफलपाकान्ताः प्रतानैर्वीरुधःस्मृताः ॥ ७० ॥

औद्भिद द्रव्य ४ प्रकारके हैं जैसे-वनस्पति, वीरुध वानस्पत्य, ओषधी इनमें जिनमें केवल फल ही लगें उनको वनस्पति कहते हैं जिनमें फूल फल दोनों लगें उनको वानस्पत्य कहते हैं । जो फल पकने पर सूख जावें उनको ओषधी कहते हैं । जो फैलती हैं उनको वीरुध (वेल) कहते हैं ॥ ६९ ॥ ७० ॥

मूलत्वक्सारनिर्यासनाडस्वरसपल्लवाः । क्षाराःक्षीरंफलंपुष्पं भस्मतैलानिकण्टकाः॥ ७१ ॥ पत्राणिशुङ्गाःकन्दाश्चप्ररोहाश्चौद्भिदोगणः । मूलिन्यःपोडशैकोनाः[१] न्योविपरीतकाः ॥ ७२ ॥

जड, त्वचा, सार, गोंद, नाडी, रस, कोंपल, खार, दूध, फल, पुष्प, भस्म, तेल, कांटे, पत्र, शुंग, कंद, अंकुर, यह सब औद्भिदद्रव्योंके ग्रहण किये जाते हैं । इनमें सोलह १६ प्रकारकी औषधियोंकी जड ही लीजाती हैं । उन्नीस प्रकारकी फल प्रधान मानीजाती हैं। वाकी सवके फल फूल मूल त्वक् रस आदि उपयोगमें आते हैं ॥ ७१ ॥ ७२ ॥

स्नेहादिद्रव्यवर्णन ।

महास्नेहाश्चचत्वारःपंचैवलवणानिच।अष्टौमूत्राणिसंख्याता-न्यष्टावेवपयांसिच ॥७३ ॥ शोधनार्थाश्चपड्वृक्षाःपुनर्वसुनिदर्शिताः । यएतान्वेत्तिसंयोक्तुंविकारेपुसवेदवित् ॥ ७४ ॥

---

१ फि... स्मृताः इत्यपि पाठः ।

चार महास्नेह, पांच लवण, आठ मूत्र और आठ प्रकारके ही दूध कहे हैं। और वमन विरेचन आदि संशोधन कार्यके लिये पुनर्वसुजीने ६ प्रकारके वृक्ष कहे हैं जो इन सबका विकारोंमें, विधिवत् उपयोग करना जानताहै वह आयुर्वेदका जाननेवाला मानाजाताहै ॥ ७३ ॥ ७४ ॥

मूलप्रधान द्रव्य।

हस्तिदन्तीहैमवतीश्यामात्रिवृदधोगुडा। सप्तलाश्वेतनामा च प्रत्यक्श्रेणीगवाक्ष्यपि ॥ ७५ ॥ ज्योतिष्मतीचबिम्बीचशणपुष्पीविषाणिका। अजगन्धाद्रवन्तीचक्षीरिणीचात्रषोडशी ॥ ७६ ॥ शणपुष्पीचबिम्बीचछर्दनेहैमवत्यपि। श्वेताज्योतिष्मतीचैवयोज्याशीर्षविरेचने ॥ ७७ ॥ एकादशावशिष्टायाःप्रयोज्यास्ताविरेचने। इत्युक्तानामकर्माण्यांमूलिन्यः फलिनीःशृणु ॥ ७८ ॥

अब क्रमसे ऊपर कहेहुए द्रव्योंका वर्णन करते हैं।नागदंती,वच,काली निशोथ, लाल निशोथ, विधायरा, सातला, सफेद अपराजिता वा सफेद वच, दंती,इंद्रायण, मालकांगुनी, कंदूरी, शणपुष्पी, घंटारवा (छुनछुना), विषाणिका (मेंजासिंगी या आंवर्तकी), अजगंधा, द्रवंती(छोटीदंती),दूधली यह १६ द्रव्य मूलप्रधान हैं अर्थात् जहां इनका कोई अंग कहाहो तो मूल ही लेना चाहिये क्योंकि इनके मूलों ही अधिक गुण है इनमें शणपुष्पी, कंदूरी, वच, यह तीनों वमन करानेके काममें लीजाती हैं। श्वेता और मालकांगुनी शिरोविरेचनमें प्रयुक्त की जाती हैं। और बाकी एकादश औषधियां विरेचन करानेमें काम आती हैं। यह तो १६ मूलप्रधान कहीं अब फलप्रधानोंको सुनो ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ ७८ ॥

फलप्रधान द्रव्य।

शंखिन्यथविडङ्गानित्रपुषंमदनानिच। आनूपं स्थलजंचैव क्लीतकंद्विविधंस्मृतम् ॥ ७९ ॥ प्रकीर्य्याचोदकीर्य्याचप्रत्यक्पुष्पीतथाभया। अन्तःकोटरपुष्पीचहस्तिपर्ण्याश्चशारदम् ॥ ॥ ८० ॥ कम्पिल्लकारग्वधयोःफलंयत्कुटजस्य च। धामार्गवमथेक्ष्वाकुजीमूतंकृतवेधनम् ॥ ८१ ॥ मदनंकुटजंचैव

हस्तिपर्णिनी । एतानिवमनेचैवयोज्यान्यास्थापनेषु च॥८२॥ दशयान्यवशिष्टानितान्युक्तानिविरेचने । नामकर्म्मभिरुक्तानिफलान्येकोनविंशतिः ॥ ८३ ॥

शंखपुष्पी, वायविडंग, त्रपुष (खीरा), मैनफल, अनूपज और जलज; मुलहठी, धामार्गव (अपामार्ग या कटुतुम्बी), इक्ष्वाकु (कडुई तोरई),जीमूत और कृतवेधन (यह दोनों भी तोरईके भेद हैं), कंजा, लताकरंज, चिरचिटा, हरड, अंतःकोटरपुष्पी), नीलिनी (हस्तिपर्णीके फल (मोरट या लाल एरंडका फल), कमीला, मलतास,और इंद्रजौ यह उन्नीस फलप्रधान हैं। इनमेंसे कडुई तोरई,कडुई घीया, कडुई तुंबी,कृतवेधन (यह भी तोरईका ही भेद है), मैनफल, इंद्रजौ, खीरा, हस्तिपर्णी,यह नव द्रव्य वमन और आस्थापनमें काम आते हैं।प्रत्यक्पुष्पी (चिरचिरा) नस्य और वमनमें प्रयुक्त कीजाती है। बाकी दश फलप्रधान द्रव्य विरेचनमें प्रयुक्त किये जाते हैं । इस प्रकार फलप्रधान १९ औषधियोंके नाम और कर्मको कथन किया है ॥ ७९ ॥ ८० ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ ८३ ॥

चारप्रकारके स्नेह ।

सर्पिस्तैलंवसामज्जास्नेहोदृष्टश्चतुर्विधः । पानाभ्यञ्जनवस्त्यर्थं नस्यार्थंचैवयोगतः ॥८४ ॥ स्नेहनाजीवनावल्यावर्णोपचयवर्धनाः । स्नेहाह्येतेषुविहितावातपित्तकफापहाः ॥ ८५ ॥

घी, तेल, चरवी,मज्जा, यह चार प्रकारके स्नेह देखनेमें आतेहैं।यह प्रायःपीनेमें, मालिश करनेमें, वस्तिकर्ममें, और नस्यमें प्रयुक्त कियेजाते हैं । यह चतुर्विध स्नेह, स्नेहन, जीवन, वर्णकारक और वलवर्धक हैं तथा वात,पित्त,कफ;इन तीनों दोषोंको दूर करते हैं ॥ ८४ ॥ ८५ ॥

लवणपञ्चक ।

सौवर्चलंसैन्धवञ्चविडमौद्भिदमेवच । सामुद्रेणसहैतानिपञ्च स्युर्लवणानिच ॥ ८६ ॥ स्निग्धान्युष्णानितीक्ष्णानिदीपनीयतमानिच । आलेपनार्थेयुज्यन्तेस्नेहस्वेदविधौतथा ॥ ८७ ॥ अधोभागोर्द्ध्वभागेषुनिरूहेष्वनुवासने । अभ्यञ्जनेभोजनार्थे शिरसश्चविरेचने ॥८८॥ शस्त्रकर्म्मणिवस्त्यर्थमञ्जनोच्छादनेषुच । अजीर्णानाहयोर्वातेगुल्मेशूलेतथोदरे ॥ ८९ ॥

संचर, सेंधा, विड, उद्भिद् (खारी), सामुद्र यह पांच प्रकारके नमक होते हैं, यह चिकने, गर्म, तीक्ष्ण, अत्यंत क्षुधावर्द्धक होते हैं और लेप, स्नेह, स्वेद आदि कर्ममें शरीरके नीचेऊपरके भागोंमें प्रयुक्त किये जाते हैं तथा निरूहण, अनुवासन, अभ्यंग, भोजन, शिरोविरेचन, शस्त्रकर्म, वर्ती, अञ्जन, उत्सादन, अजीर्ण, अफरा, बादी, गोला, शूल, और उदररोग इनमें इनका प्रयोग किया जाताहै ॥ ८९ ॥

मूत्राष्टक तथा उपयोग ।

उक्तानिलवणान्यूर्द्ध्वंमूत्राण्यष्टौनिबोधमे । मुख्यानियानिह्यष्टानिसर्वाण्यात्रेयशासने ॥ ९० ॥

ऊपर सब लवणोंका कथन करचुके हैं अब आठ प्रकारके मूत्रोंका वर्णन सुनो, जो आठ प्रकारके प्रधान हैं ॥ ९० ॥

अविमूत्रमजामूत्रंगोमूत्रंमाहिषंतथा । हस्तिमूत्रमथोष्ट्रस्यहयस्यचखरस्यच ॥ ९१ ॥ उष्णन्तीक्ष्णमथोस्निग्धंकटुकंलवणान्वितम् । मूत्रमुत्सादनेयुक्तं युक्तमालेपनेषुच ॥ ९२ ॥ युक्तमास्थापनेयुक्तंमूत्रश्चापिविरेचने । स्वेदेष्वपिचतद्युक्तमानाहेषुगदेषुच ॥९३॥ उदरेष्वथचार्शस्सुगुल्मकुष्ठकिलासिषु । तद्युक्तमुपनाहेषुपरिषेकेतथैवच॥ ९४ ॥ दीपनीयंविषघ्नंचक्रिमिघ्नंचोपदिश्यते।पांडुरोगोपसृष्टानामुत्तमंशर्मचोच्यते ॥९५॥ श्लेष्माणंशमयेत्पीतंमारुतश्चानुलोमयेत्।कर्षेत्पित्तमधोभागमित्यस्मिन्गुणसंग्रहः ॥ ९६ ॥सामान्येनमयोक्तंतुपृथक्त्वेन प्रवक्ष्यते ॥ ९७ ॥

भेडका मूत्र, बकरीका मूत्र, गोमूत्र, भैंसका मूत्र, हथिनीका मूत्र, ऊंटनीका मूत्र, घोडेका मूत्र, गधेका मूत्र यह आठ मूत्र हैं । यह-गर्म, तीक्ष्ण, चिकने, कटु और नमकीन हैं । इन मूत्रोंका उत्सादन, लेप, आस्थापन, विरेचन, स्वेदन, अफारा, उदररोग, अर्श, गुल्म, कुष्ठ, किलास, उपनाह (पुलटिस), परिषेक इनमें प्रयोग किया जाताहै । तथा अग्निको दीपन करताहै और विष तथा कृमियोंको नष्ट करताहै । इन मूत्रोंका प्रयोग सब किसमके पाण्डुरोगोंमें परम उत्तम मानाहै । इनके पीनेसे कफ शान्त होताहै । वायुका अनुलोमन होताहै और बढा हुआ पित्त नीचे

गमन कर निकल जाताहै । यह सामान्यतासे मूत्रोंके लक्षण कथन किये हैं । अब विशेषतासे श्रवण करो ॥ ९१-९७ ॥

मेषादिमूत्रके गुण ।

अविमूत्रंसतिक्तंस्यात् स्निग्धंपित्ताविरोधिच॥आजंकषायमधुरं पथ्यंदोपान्निहन्तिच । गव्यंसमधुरंकिञ्चिद्दोषघ्नंक्रिमिकुष्ठ-नुत् ॥ ९८ ॥ कण्डूलंशमयेत्पीतंसम्यग्दोषोदरेहितम्।अर्शः-शोफोदरघ्नन्तुसक्षारंमाहिषंसरम् ॥ ९९ ॥ हास्तिकंलवणंमूत्रं हितन्तुक्रिमिकुष्ठिनाम्।प्रशस्तंबद्धविण्मूत्रविषश्लेष्मामयार्श-साम् ॥ १०० ॥ सतिक्तंश्वासकासघ्नमर्शोघ्नंचौष्ट्रमुच्यते । वाजिनांतिक्तकटुकंकुष्ठव्रणविषापहम् ॥१०१॥ खरमूत्रमप-स्मारोन्मादग्रहविनाशनम् । इतीहोक्तानिमूत्राणियथासाम-र्थ्ययोगतः ॥ १०२ ॥

भेडका मूत्र-कडुआ, चिकना, गर्म तथा पित्तको कुपित नहीं करनेवाला होता है । बकरीका मूत्र-कषैला, मीठा, पथ्य और त्रिदोषनाशक है । गोमूत्र-कषैला, मीठा, कुछ कुछ दोषोंको नष्ट करनेवाला, कृमि तथा कुष्ठको नष्ट कर्ता, खाजनाशक और पीयाहुआ उदरके सब विकारोंको शांत करताहैं । भैसका मूत्र-अर्श, शोथ और उदररोगोंको नष्ट करताहै तथा खारा और दस्तावर है । हस्तीका मूत्र-नमकीन है और कृमि, कुष्ठ और मल मूत्रके अवरोधको नष्ट करताहै, तथा विष-विकार, कफ और अर्शवालोंको हित है । ऊंटका मूत्र-कटुतायुक्त, श्वासकासनाशक, और अर्शजित् है । घोडेका मूत्र-कडवा है, चर्परा है, और कुष्ठ, घाव, विष, इनको नष्ट करताहै । गधेका मूत्र-मिरगी, उन्माद, ग्रहदोष इनको नष्ट करता है । इस प्रकार क्रमपूर्वक मूत्रोंके गुण कथन करदिये हैं ॥ ९८-१०२ ॥

भेडी बकरी गाय आदिके दूधोंका वर्णन ।

अतःक्षीराणिवक्ष्यन्तेकर्मचैषांगुणाश्चये । अविक्षीरमजाक्षीरं गोक्षीरंमाहिषंचयत् ॥ १०३ ॥ उष्ट्रीणामथनागीनांवडवायाः स्त्रियास्तथा।प्रायशोमधुरंस्निग्धंशीतंस्तन्यंपयःस्मृतम् ॥१०४॥

प्रीणनंबृंहणंवृष्यंमेध्यंबल्यंमनस्करम् । जीवनीयंश्रमहरंश्वासकासनिबर्हणम् ॥ १०५ ॥ हन्तिशोणितपित्तञ्चसन्धानंविहतस्यच । सर्वप्राणभृतांसात्म्यंशमनंशोधनंतथा ॥ १०६ ॥ तृष्णाघ्नंदीपनीयंचश्रेष्ठंक्षीणक्षतेषुच। पाण्डुरोगेऽम्लपित्तेचशोषेगुल्मेतथोदरे॥ १०७॥अतीसारज्वरेदाहेश्वयथौचविधीयते ॥ योनिशुक्रप्रदोषेषुमूत्रेष्वप्रसरेषुच ॥ १०८ ॥ पुरीषेग्रथितेपथ्यं वातपित्तविकारिणाम् ।नस्यालेपावगाहेषुवमनास्थापनेषुच ॥ ॥ १०९ ॥ विरेचनेस्नेहनेचपयःसर्वत्रयुज्यते । यथाक्रमंक्षीरगुणानेकैकस्यपृथक्पृथक् ॥ ११० ॥ अन्नपानादिकेऽध्यायेभूयो वक्ष्याम्यशेषतः ॥ १११ ॥

अब दूधोंका और उनके गुण कर्म का कथन करते हैं। भेड, बकरी, गौ, भैंस, ऊँटनी, हथनी, घोडी, स्त्री इन आठोंके दूध-मीठे, चिकने, शीतल, स्तनोंमें दूध वढानेवाले, पालनकर्त्ता, मांसवर्द्धक, वीर्यजनक, बुद्धि, बल, मनको ताकत देनेवाले, जीवनकर्ता, श्रमहर्ता, श्वासकासनाशक, रक्तपित्तके हरनेवाले, संधानकर्ता (टूटे स्थानको जोडनेवाले), संपूर्ण प्राणियोंको सात्म्य, दोषोंको शमन और शोधन करनेवाले, तृषानाशक, दीपनीय हैं और क्षतक्षीणमें अत्यन्त पथ्य हैं तथा पाण्डुरोग, अम्लपित्त, शोष, गुल्म, उदररोग, अतिसार, ज्वर, दाह,सूजन, योनिदोष, शुक्रदोष, मूत्ररोग, मलकी गांठसी बंधना, इनमें पथ्य हैं और वात पित्तके रोगियोंको हितकर्ता हैं, इनका प्रयोग नस्य, लेप, अवगाहन, वमन, आस्थापन, विरेचन, स्नेहन इन कर्मोंमें किया जाताहै। इस प्रकार सामान्यतासे दूधोंके गुणोंका वर्णन करादियाहै । आगे अन्नपानादिवर्णनाध्यायमें सबके गुणोंका अलग २ वर्णन किया जायगा ॥ १०३-१११ ॥

बहेडा और थूहरके दूधके गुण।

अथापरेत्रयोवृक्षाः पृथग्येफलमूलिभिः।स्नुह्यर्काश्मन्तकास्तेषामिदंकर्म्मपृथक्पृथक् ॥ वमनेऽश्मन्तकंविद्यात्स्नुहीक्षीरं विरेचने ॥ ११२ ॥

अब फलप्रधान व मूलप्रधान वृक्षोंसे अन्य तीन वृक्षोंका वर्णन करते हैं। वह यह है-१ थोहर, २ आक, ३ अश्मंतक (कोविदार) इनमें अश्मंतक वमन करानेमें, थोहरका दूध रेचन करानेमें ॥ ११२ ॥

अर्कक्षीरके गुण ।

क्षीरमर्कस्यविज्ञेयंवमनेसविरेचने ॥ ११३ ॥

आकका दूध, विरेचन, और वमनमें प्रयुक्त किया जाताहै ॥ ११३ ॥

त्वचाप्रधान ३ वृक्ष ।

इमांस्त्रीनपरान्वृक्षानाहुर्येषांहितास्त्वचः । पूतिकः कृष्णगन्धाचतिल्वकश्चतथातरुः । विरेचनेप्रयोक्तव्यःपूतिकस्तिल्वकस्तथा ॥ ११४ ॥ कृष्णगन्धापरीसर्पेशोथेष्वर्शस्सुचोच्यते । दद्रुविद्रधिगण्डेषुकुष्ठेष्वप्यलजीषुच॥११५ ॥ षड्वृक्षाञ्शोधनानेतानपिविद्याद्विचक्षणः ॥ ११६ ॥

जिनकी त्वचा प्रयुक्त कीजाती है इन तीन वृक्षोंका और कथन कियाहै । वह यह हैं–१ पूतिकरंज, २ सुहाँजना, ३ पठानीलोध । इनमें पूतिकरञ्ज और लोध विरेचन कर्ममें प्रयुक्त करने चाहिये । और सुहाँजना–विसर्प, शोथ और अर्श रोगोंमें प्रयुक्त किया जाताहै । बुद्धिमान् वैद्यको उचित है कि थोहर, आँक, अश्मंतक, पूतिकरंज, सुहांजना, लोध, इन छः वृक्षोंको दद्रु, विद्रधि, गलगंड, कुष्ठ, अलजी, (अजीर्णरोगका भेद और पादरोग) और संशोधन कर्ममें प्रयुक्त करे ॥ ११४–११६ ॥

इत्युक्ताःफलमूलिन्यः स्नेहाश्चलवणानिच ।
मूत्रंक्षीराणिवृक्षाश्चषड्येदृष्टाःपयस्त्वचः ॥ ११७ ॥

इस प्रकार १९ फलप्रधान द्रव्य, १६ मूलप्रधान, ४ स्नेह, ५ लवण, ८ मूत्र, ८ दूध और जिनके दूध वे त्वचाका वर्णन कियाहै वह ६ वृक्ष इन सबका वर्णन किया जा चुका है ॥ ११७ ॥

गडरिये आदियोंसे औषधिका ज्ञान ।

ओषधीर्नामरूपाभ्यांजानतेह्यजपावने ।
अविपाश्चैवगोपाश्चयेचान्येवनवासिनः ॥११८ ॥

अब ओषधियोंके जाननेकी विधि लिखते हैं कि बकरी, भेड और गौओंके चरानेवालोंसे और वनमें रहने और विचरनेवालोंसे वनौषधियोंके नाम और रूप जानना चाहिये ॥ ११८ ॥

औषधियोंके ज्ञानकी कठिनता।

ननामज्ञानमात्रेणरूपज्ञानेनवापुनः ।
औषधीनांपरांप्राप्तिंकश्चिद्वेदितुमर्हति ॥ ११९ ॥

क्योंकि कोई भी मनुष्य संपूर्ण औषधियोंके नाम और रूपोंको नहीं जानसकता कोई २ पुरुष ऐसे होंगे जो बहुतसी औषधियोंको जानते हैं परन्तु उनमें उसीको औषधियोंके तत्त्वका जाननेवाला कहना चाहिये जो उनके नाम रूप और प्रयोग करनेकी विधि जानता हो ॥ ११९ ॥

औषधी जाननेवालेकी प्रशंसा।

योगज्ञस्तस्यरूपज्ञस्तासांतत्त्वविदुच्यते ।
किंपुनर्योविजानीयादोषधीःसर्वदाभिषक् ॥ १२० ॥
रूपन्तासान्तुयोविद्याद्देशकालोपपादितम् ।
पुरुषंपुरुषंवीक्ष्य सविज्ञेयोभिषक्तमः ॥ १२१ ॥

जो वैद्य औषधियोंका नाम रूप प्रयोग और किस किस कालमें कौन २ औषधि कैसे २ संपादन कर उसका कैसे २ प्रयोग करना यह विधि जानताहै उसका तो कहना ही क्या है अर्थात् उसको धन्य है। हरेक मनुष्यको देख देख कर शास्त्रविधिसे जो उसके अनुकूल हो वह औषध देना चाहिये ॥ १२० ॥ १२१ ॥

औषध विज्ञान सम्बन्धी वैद्यको उपदेश।

यथाविषंयथाशस्त्रंयथाग्निरशनिर्यथा। तथौषधमविज्ञातंविज्ञातममृतंयथा ॥ १२२ ॥ औषधंह्यनभिज्ञातंनामरूपगुणैस्त्रिभिः। विज्ञातंवापिदुर्युक्तंयुक्तिबाह्येनभेषजम्। योगादपिविषं तीक्ष्णमुत्तमंभेषजंभवेत् ॥ १२३ ॥ भेषजंवापिदुर्युक्तंतीक्ष्णं सम्पद्यतेविषम् । तस्मान्नभिषजायुक्तंयुक्तिबाह्येनभेषजम् ॥ ॥ १२४ ॥ धीमताकिञ्चिदादेयंजीविताराेग्यकांक्षिणा॥कुर्यान्निपतितोमूर्ध्निसशेषंवासवाशनिः ॥ १२५ ॥

क्योंकि विना जानी औषधका प्रयोग कियाहुआ जैसें विष, शस्त्र, अग्नि, विद्युत मनुष्यको मारडालते हैं ऐसे अनर्थकारक होता है । विचारकर जानीहुई औषधी अमृतके समान गुणको करती है । जो औषध नाम, रूप, गुण इन तीनोंसे जानी हुई नहीं अथवा जानीहुई होनेपर भी अनुचित रीतिसे प्रयुक्त कीगई हो वह औषधी महाअनर्थको करती है । इसीप्रकार अच्छीतरह जानकर प्रयोगमें लायाहुआ विष भी उत्तम औषधीके गुणको करताहै । और उत्तम औषधी अनुचित विधिसे देनेसे विषकी समान मारडालती है । इसलिये वैद्योंको उचित है कि विना युक्तिसे कभी औषधीका प्रयोग न करें॥१२२॥१२३॥१२४॥१२५॥

मूर्ख वैद्यके औषधका निषेध ।

सशोपमातुरंकुर्य्यान्नत्वज्ञमतमौषधम् । दुःखितायशयानाय श्रद्दधानायरोगिणे ॥ १२६ ॥ योभेषजमविज्ञायप्राज्ञमानीप्रयच्छति । तस्याथमृत्युदूतस्यदुर्मतेस्त्यक्तधर्मणः ॥ ॥ १२७ ॥ नरोनरकपातीस्यात्तस्यसम्भाषणादपि । वरमाशीविषाद्विषंक्वथितंताम्रमेववा ॥ १२८ ॥ पीतमत्यग्निसन्तप्ता भक्षितावाप्ययोगुडाः । नतुश्रुतवतावेदंविभ्रताशरणागतात् १२९ ॥ गृहीतमन्नंपानंवावित्तंवारोगपीडितात् । भिषक्बुभूर्षुर्मतिमानतः स्याद्गुणसम्पदि ॥ १३० ॥ परंप्रयत्नमातिष्ठेत्प्राणदःस्याद्यथानृणाम् । तदेवयुक्तंभैपज्यंयदारोग्यायकल्पते ॥ १३१ ॥ सचैवभिषजांश्रेष्ठोरोगेभ्योयःप्रमोचयेत् । सम्यक्प्रयोगंसर्वेषांसिद्धिराख्यातिकर्म्मणाम् ॥ १३२ ॥ सिद्धिराख्यातिसर्वैश्चगुणैर्युक्तंभिषक्तमम् इति ॥ १३३ ॥

जीवन और आरोग्यताकी इच्छावालेको कभी अयोग्यरीतिसे औषध सेवन न करना चाहिये । यदि इंद्रलोकसे वज्र गिरकर मनुष्यके शिरमें लगे वह अच्छा है क्योंकि उससे भी शायद मनुष्य जीवित रहसकता हो, परंतु अज्ञ (मूर्ख) की दीहुई औषधी उस वज्रसे भी अधिक दुर्गुण करती है अर्थात् मारही डालती है जो वैद्य दुःखसे व्याकुल शय्यापर पडे श्रद्धालु रोगीको विनाजानी औषधी देदेताहै उस धर्मरहित, पापी, नरकगामी मृत्युके दूतसे बोलनेमें भी मनुष्य नरकगामी होजाता है । सांपविष पीलेना अच्छा है, लाल कियाहुआ तपाहुआ ताम्रभी

पीना अच्छा है. परंतु पाखंडसे विद्वान् वैद्यकासा रूप धारणकर शरणागत रोगियोंको भ्रममें डालकर उनसे अन्न पान धन आदि लेना कदापि उचित नहीं । इसलिये वैद्य होनेकी इच्छावाला बुद्धिमान् मनुष्य पहले जो जो वैद्योंके गुण कहे हैं (आगे लिखेंगे) उनको अपनेमें उत्पन्न करे फिर मनुष्योंके प्राणोंकी रक्षाके लिये सदैव यत्नवान् रहै क्योंकि वैद्य मनुष्योंके प्राणोंका देनेवाला होता है । औषधी वही उत्तम होतीहै जो रोगसे छुडाकर आरोग्य बनावे । और जो रोगोंसे छुडादे उसीको उत्तम वैद्य कहते हैं । सम्पूर्ण कर्मोंका विधिवत् प्रयोग कियाहुआ संपूर्ण गुणोंसे युक्त वैद्यको सिद्धि और ख्यातिको देता है ॥ १२६-१३३ ॥

तत्र श्लोकाः।आयुर्वेदागमोहेतुरागमस्यप्रवर्त्तनम् । सूत्रणं साभ्यनुज्ञानमायुर्वेदस्यानिर्णयः ॥ १३४ ॥ सम्पूर्णकारणंज्ञेयं आयुर्वेदप्रयोजनम् । हेतवश्चैवदोषाश्चभेषजंसंग्रहेणच ॥ ॥ १३५ ॥ रसाःसप्रत्ययद्रव्यास्त्रिविधोद्रव्यसंग्रहः । मूलिन्यश्चफलिन्यश्च स्नेहाश्चलवणानिच ॥ १३६ ॥ मूत्रंक्षीराणिवृक्षाश्चषड्येक्षीरत्वगाश्रयाः । कर्माणिचैषांसर्वेषां योगायोगगुणागुणाः॥१३७ ॥ वैद्यापवादोयत्रस्थाःसर्वेचाभिषजांगुणाः । सर्वमेतत्समाख्यातंपूर्वेऽध्यायेमहर्षिणा ॥१३८॥

इति दीर्घजीविताध्यायः ॥ १ ॥

अब इस अध्यायका उपसंहार कहते हैं इस अध्यायमें आयुर्वेदका आगमन, और उसके आनेका कारण, आयुर्वेदकी प्रवृत्ति, अग्निवेशादिकोंका संहिताएं बनाना, आयुर्वेदका निर्णय, संपूर्ण कारण और कार्य,आयुर्वेदका प्रयोजन, हेतु, दोष संक्षेपसे औषधसंग्रह कथन,छःरस,द्रव्य तीन प्रकारका द्रव्यसंग्रह, फलप्रधान, मूलप्रधान द्रव्य, स्नेह, लवण, मूत्राष्टक, दूधवर्ग, छःवृक्ष जिनके दूध और छिलके काम आते हैं । इन सबके कर्म तथा योग, अयोग, गुण, अगुण, वैद्यके दोष और वैद्यकी सिद्धि ख्यातिका प्रकार यह सब इस प्रथमाध्यायमें वर्णन किया है ॥ १३४-१३८ ॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदीयसंहितायां पटियालाराज्यांतर्गतटकसालनिवासि-
वैद्यपंचानन वैद्यरत्न पं० रामप्रसादवैद्योपाध्यायविरचितप्रसादन्याख्यभा-
षाटीकायां दीर्घजीवितीयो नाम प्रथमोध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः ।

—○:•:○—

प्रतिज्ञावर्णन ।

अथातोऽपामार्गतण्डुलीयमध्यायं व्याख्यास्याम्

इतिह स्माहभगवानात्रेयः ।

भगवान् आत्रेय कहने लगे कि अब हम अपामार्गतण्डुलीय नामक दूसरे अध्यायका कथन करते हैं ॥ १ ॥

ऊर्द्धगतरोगनाशक द्रव्य ।

अपामार्गस्यबीजानिपिप्पलीर्मरिचानिच । विडङ्गान्यथाशिग्रूणिसर्षपांस्तुम्बुरूणिच ॥ १ ॥ अजाजींचाजगन्धांचपीलून्येलांहरेणुकाम् । पृथ्वीकांसुरसांश्वेतांकुठेरकफणिज्जकौ ॥ २ ॥ शिरीषबीजंलशुनंहरिद्रेलवणद्वयम् । ज्योतिष्मतींनागरञ्चविद्यान्मूर्द्धविरेचने ॥३॥ गौरवेशिरसःशूलेपीनसेऽर्द्धावभेदके । क्रिमिव्याधावपस्मारेघ्राणनाशेप्रमोहने ॥ ४ ॥

अपामार्गके बीज, पीपल, कालीमिर्च, वायविडंग, सुहांजनेके बीज, सरसों, तुंवरू, काला जीरा, अजमोद, पीलू, इलायची, रेणुका, बड़ी इलायची, तुलसीके बीज. सफेद कोयलके बीज, छोटी तुलसीके बीज, सिरसके बीज, लहसन, दोनों हलदियें. सेंधा और संचर नमक, मालकांगुनीके बीज, सोंठ, इन सब औषधियोंको शिरोविरेचनमें देवे । मस्तकके भारीपनमें, शिरकी पीडामें, पीनस रोगमें, आधाशीशीमें, मस्तकके कृमियोंमें, अपस्मारमें, गंध लेनेकी शक्तिके जाते रहनेमें. बेहोशीमें, इतने रोगोंमें प्रयोग करे ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥

वान्तिकारक द्रव्य ।

मदनंमधुकंनिम्बंजीमूतंकृतवेधनम् । पिप्पलींकुटजेक्ष्वाकूण्येलांधामार्गवाणिच ॥ ५ ॥ उपस्थितेश्लेष्मपित्तेव्याधावामाशयाश्रये । वमनार्थंप्रयुञ्जीतभिषग्देहमदूषयन् ॥ ६ ॥

मैनफल. मुलैठी, नीम, जीमूत(कड़वी तोरईका भेद),कृतवेधन (तोरई),पीपल, इन्द्र जौ.कड़ुतुंबा, बड़ी इलायची, कड़वी तोरई इन औषधियोंको आमाशयमें स्थित

पित्त कफकी व्याधियोंमें जिस प्रकार देह दूषित न हो उस प्रकार वमन करानेके लिये प्रयुक्त करे ॥ ५ ॥ ६ ॥

विरेचक द्रव्य ।

त्रिवृतांत्रिफलांदन्तींनीलिनींसप्तलांवचाम् ।कम्पिल्लकंगवाक्षीश्वक्षीरिणीमुदकीटिकाम्॥ ७ ॥ पीलून्यारग्वधंद्राक्षांद्रवन्तींनिचुलानिच । पक्वाशयगतेदोषेविरेकार्थंप्रयोजयेत्॥ ८ ॥

निशोत, हरड, बहेडा, आमला,दंती, नीलिनी,सप्तला, वच, कमीला, इंद्रायण, हरी दूधली, करंजुवा, पीलू, अमलतास, मुनक्का, छोटीदंती, निचुल (हिंज्जल) इन सबको पक्वाशयमें स्थित दोष निकालनेको विरेचनके लिये प्रयुक्त करे॥७॥८॥

उदावर्तादिमें वस्तिदेनेयोग्य द्रव्य ।

पाटलाश्चाग्निमन्थाश्चबिल्वंश्योनाकमेवच । काश्मर्य्यंशालपर्णींचपृश्निपर्णींनिदिग्धिकाम् ॥९ ॥ बलां श्वदंष्ट्रांबृहतींमेरण्डं सपुनर्नवम्। यवान्कुलत्थान्कोलानिगुडूचीं मदनानिच॥१०॥ पलाशंकत्तृणंचैवस्नेहांश्चलवणानिच । उदावर्तेविबन्धेषुयुंज्यादास्थापनेसदा ॥ ११ ॥

पाढ, अरणी, वेलगिर, सोनापाठा, धमार वृक्ष, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, कटेली, खरटी, गोखरू,बडीकटेली, एरंड, पुनर्नवा, यव, कुलथी, वेर, गिलोय, मैनफल, पलास, रोहिसतृण, और चतुःस्नेह, पंचलवण,इनको उदावर्त,मल मूत्रका अवरोध तथा आस्थापन, वस्तीकर्म आदिमें प्रयुक्त करे ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥

वातनाशक पांचकर्मिक संग्रह ।

अतएवौषधगतात्संकल्प्यमनुवासनम् । मारुतघ्नमितिप्रोक्तः संग्रहःपाञ्चकर्मिकः ॥ १२ ॥ तान्यपस्थितदोषाणांस्नेहस्वेदोपपादनैः । पञ्चकर्माणिकुर्वीतमात्राकालौविचारयन् ॥ १३ ॥ मात्राकालाश्रयायुक्तिःसिद्धिर्युक्तौप्रतिष्ठिता । तिष्ठत्युपरियुक्तिज्ञोद्रव्यज्ञानवतांसदा ॥ १४ ॥

और यही उपरोक्त द्रव्य अनुवासनवस्तिमें भी प्रयुक्त किये जाते हैं।तथा यही द्रव्य वातनाशक होनेसे पंचकर्मोंमें प्रयुक्त कियेजाते हैं । जिन मनुष्योंके शरीरोंमेंसे दोष निकालना हो उनको पहले स्नेहन स्वेदन कराकर फिर मात्रा और कालका विचार

रखते हुए "वमन, विरेचन, नस्य, निरूहण, अनुवासन" यह पञ्चकर्म करावे । औषधीकी मात्रा और समयका विचार युक्तिके अधीन है जो बुद्धिमान् वैद्य युक्ति द्वारा विचारकर काम करता है उसीको सिद्धिकी प्राप्ति होती है । औषधी जाननेवाले वैद्योंमें युक्तिक्रम जाननेवाला वैद्य सदा शिरोमणि रहताहै ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥

अनेक यवागुकल्पना और उनके गुण ।

अतऊर्ध्वंप्रवक्ष्यामियवागूर्विविधौषधाः । विविधानांविकारा-
णांतत्साध्यानांनिवृत्तये ॥१५॥ पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्याचि-
त्रकनागरैः । यवागूर्दीपनीयास्याच्छूलघ्नीचोपसाधिता ॥१६॥

अब अनेक प्रकारकी औषधियोंसे सिद्ध कीहुई यवागुओंका वर्णन जो रोग युवागूद्वारा शांत होते हैं उन रोगोंकी शांतिके लिये करते हैं । पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, इन पांचोंसे सिद्ध कीहुई यवागू अग्निको दीपन करतीहै और उदरके शूलको नष्ट करती है ॥ १५ ॥ १६ ॥

दधित्थबिल्वचाङ्गेरीतक्रदाडिमसाधिता ।
पाचनीग्राहणीपेयासवातेपाञ्चमूलिका ॥ १७ ॥

कैथ, बिल्व, चूका, तक्र, अनारदाना, इनसे सिद्ध कीहुई यवागू पाचन और संग्राही है । लघुपञ्चमूलसे सिद्ध कीहुई यवागू वातातिसारमें हितकारक है ॥ १७ ॥

शालपर्णीबलाबिल्वैःपृश्निपर्ण्याचसाधिता ।
दाडिमाम्लाहितापेयापित्तश्लेष्मातिसारिणाम् ॥ १८ ॥

शालिपर्णी, खरैटी, बिल्वगिरी, पृष्ठपर्णी, इनसे सिद्ध कीहुई यवागू खट्टे अनारसे खट्टी करके पीहुई यवागू पित्त कफके अतिसारमें हितकारक है॥ १८ ॥

पयस्यर्द्धोदकेछागेह्रीवेरोत्पलनागरैः ।
पेयारक्तातिसारघ्नीपृश्निपर्ण्याचसाधिता ॥ १९ ॥

बकरीके दूधमें दूधसे आधा जल मिलाकर उसमें सुगन्धवाला, नीलोफर, सोंठ पृष्ठपर्णी, इनसे सिद्ध कीहुई पेया रक्तातिसारको नष्ट करती है ॥ १९ ॥

दद्यात्सातिविषांपेयांसामेसाम्लांसनागराम् ।
श्वदंष्ट्राकण्टकारीभ्यांमूत्रकृच्छ्रेसफाणिताम् ॥ २० ॥

अनारके रससे खट्टी कीहुई और अतीस तथा सोंठसे सिद्ध की हुई पेया आमातिसारमें देना चाहिये । गोखरू और कटेलीसे सिद्ध कीहुई पेयामें फाणित मिलाकर मूत्रकृच्छ्रकी शांतिके लिये देवे ॥ २० ॥

विडङ्गपिप्पलीमूलशिग्रुभिर्मरिचेनच ।
तक्रसिद्धायवागूःस्यात्क्रिमिघ्नीससुवर्चिका ॥ २१ ॥

वायविडंग, पीपलामूल, सुहांजना, काली मिर्च, और तक्र इनसे सिद्ध कीहुई पेयामें सञ्चर नमक मिलाकर पीनेसे पेटके कृमि नष्ट होते हैं ॥ २१ ॥

मृद्वीकाशारिवालाजपिप्पलीमधुनागरैः ।
पिपासाघ्नीविषघ्नीचसोमराजीविपाचिता ॥ २२ ॥

मुनक्का, सारिवा, धानोंकी खील, पीपल, सोंठ इनसे सिद्ध कीहुई पेया शहद मिलाकर पीनेसे प्यासको शांत करती है । बावचीसे सिद्ध कीहुई पेया विषविकारको शांत करती है ॥ २२ ॥

सिद्धावराहनिर्यूहेयवागूर्बृंहणीमता ।
गवेधुकानांभृष्टानांकर्षणीयासमाक्षिका ॥ २३ ॥

वाराहीकन्दसे सिद्ध कीहुई पेया देहको पुष्ट करती है । गवेधुका (ऋषियोंका अन्न) को भूनकर उसकी पेयाको ठंढाकर शहद मिलाकर पीनेसे स्थूलता नष्ट होती है ॥ २३ ॥

सर्पिष्मतीबहुतिलास्नेहनीलवणान्विता ।
कुशामलकनिर्यूहेश्यामाकानांविरूक्षणी ॥ २४ ॥

घृत और बहुतसे तिलोंकी सिद्ध कीहुई पेया लवण युक्त कर पीनेसे शरीर चिकना होता है । कुशा और आमलोंसे सिद्ध कीहुई श्यामाकके चावलोंकी पेया शरीरको रूखा करती है ॥ २४ ॥

दशमूलीशृताकासहिक्काश्वासकफापहा ।
यमकेमदिरासिद्धापक्वाशयरुजापहा ॥ २५ ॥

दशमूलसे सिद्ध कीहुई यवागू--खांसी, हिचकी, श्वास, और कफको नाश करती है । घृत, तेल, मद्य इनके साथ सिद्ध कीहुई यवागू पक्वाशयके सब रोगोंको नष्ट करती है ॥ २५ ॥

शाकैर्मांसैस्तिलैर्माषैःसिद्धावर्चोनिरस्यति ।

जम्ब्वाम्रास्थिदधित्थाम्लाबिल्वैःसांग्राहिकीमता ॥ २६ ॥

फलपत्रोंके शाक, मांस, तिल, उडद, इनसे सिद्ध हुई यवागू मलको निकालतीहै। जामुन, आमकी गुठली, कथका गुद्दा, कांजी, बेलगिर, इनसे सिद्ध यवागू संग्राही (दस्तरोकनेवाली) होती है ॥ २६ ॥

क्षारचित्रकहिङ्ग्वम्लवेतसैर्भेदनीमता ।

अभयापिप्पलीमूलविश्वैर्वातानुलोमनी ॥ २७ ॥

खार (जवाखार), चीता, हींग, अम्लवेत इनसे बनाई हुई यवागू भेदिनी (दस्तावर) होती है ॥ हरड, पीपलामूल, सोंठ इनसे सिद्ध यवागू वायुको अनुलोमन करती है ॥ २७ ॥

तक्रसिद्धायवागूःस्याद्घृतव्यापत्तिनाशिनी ।

तैलव्यापदिशस्तातुतक्रपिण्याकसाधिता ॥ २८ ॥

तक्र (मट्ठा) से सिद्ध कीहुई यवागू अधिक घृत खानेसे पैदाहुए विकारको शांत करती है॥ ऐसे ही तिलोंकी खल और छाछसे सिद्ध यवागू तेलके खानेसे हुए विकारोंकी शांति करती है ॥ २८ ॥

गव्यैर्मांसरसैःसाम्लाविषमज्वरनाशिनी ।

कण्ठ्यायवानांयमकेपिप्पल्यामलकैःश्रिता ॥ २९ ॥

पञ्चगव्य या गोदूध और हरिणादिके मांसके रससे सिद्ध और अनारदानेसे खट्टी कीहुई यवागू विषमज्वरको नष्ट करती है ॥ घृत, तेल, पीपल और आँवलोंके साथ सिद्ध जौवोंकी यवागू कंठके रोगोंमें हितकारी है ॥ २९ ॥

ताम्रचूडरसेसिद्धारेतोमार्गरुजापहा ।

समाषविदलावृष्याघृतक्षीरोपसाधिता ॥ ३० ॥

मुर्गेके मांससे सिद्ध पेया वीर्यमार्गके रोगोंको शांत करती है । उडदकी दाल, घी, और दूधकी पेया वीर्यको उत्पन्न करती है ॥ ३० ॥

उपोदिकादधिभ्यान्तुसिद्धामदविनाशिनी ॥

क्षुधंहन्यादपामार्गक्षीरगोधारसेश्रिता ॥ ३१ ॥

पोईका शाक और दहीसे सिद्ध यवागू उन्मत्तताको नष्ट करती है । अपामार्गके बीज, दूध और गोधानृटीके रस अथवा गोधाके मांसके रससे सिद्ध यवागू क्षुधाको नष्ट करती है ॥ ३१ ॥

द्वितीयाध्यायका उपसंहार ।

तत्रश्लोकाः॥अष्टाविंशतिरित्येतायवाग्वःपरिकीर्तिताः । पंचकर्माणिचाश्रित्यप्रोक्तोभैषज्यसंग्रहः ॥ ३२ ॥ पूर्वमूलफलज्ञानहेतोरुक्तंयदौषधम् । पञ्चकर्माश्रयज्ञानहेतोस्तत्कीर्त्तितंपुनः ॥ ३३ ॥ स्मृतिमान्युक्तिहेतुज्ञोजितात्माप्रतिपत्तिमान् । भिषगौषधसंयोगैः चिकित्सांकर्त्तुमर्हति ॥ ३४ ॥

इति भेषजचतुष्केऽपामार्गतण्डुलीयो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

इस प्रकार इस अध्यायमें अट्ठाईस प्रकारकी यवागुओंका और पंचकर्मके आश्रयीभूत औषधियोंका कथन कियाहै।जो पहले मूलफलके ज्ञानार्थ कहआयेहैं पंचकर्ममें आश्रय होनेके कारण वे यहां फिर कहेगयेहैं स्मृतिमान् जितेंद्रिय, औषध और रोग तथा युक्तिको जाननेवाला वैद्य औषधियोंके संयोगसे चिकित्सा करे ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदसंहितायां पटियालाराज्यान्तर्गतटकसालनिवासिवैद्यपञ्चानन वैद्यरत्न पं० रामप्रसादवैद्योपाध्यायकृतप्रसादन्याख्यटीकायामपामार्गतण्डुलीयो नाम द्वितीयोध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ।

अथातआरग्वधीयमध्यायंवक्ष्यामः

इति हस्माह भगवानात्रेयः ।

अब हम आरग्वधीय अध्यायकी व्याख्या करेंगे ऐसे भगवान् आत्रेय कहने लगे ॥ १ ॥

कुष्ठ किलास आदिपर लेप ।

आरग्वधःसैडगजःकरञ्जोवासागुडूचीमदनंहरिद्रे । श्याह्वः सुराह्वःखदिरोधवश्चनिम्बोविडङ्गंकरवीरकत्वक् ॥ १ ॥ ग्रन्थिश्चभौर्जोलशुनःशिरीषः सलोमशोगुग्गुलुकृष्णगन्धे । फणि-

ज्झकोवत्सकसप्तपर्णौपीलूनिकुष्ठंसुमनःप्रवालाः ॥ २ ॥
वचाहरेणुस्त्रिवृतानिकुम्भोभल्लातकंगैरिकमञ्जनंच । मनः-
शिलालेगृहधूमएलाकासीसमुस्तार्जुनरोध्रसर्जाः ॥ ३ ॥
इत्यर्द्धरूपैर्विहिताःपडेते गोपित्तपीताःपुनरेवपिष्टाः । सिद्धाः
परंसर्पपतैलयुक्ताश्चूर्णप्रदेहाभिषजाप्रयोज्याः ॥ ४ ॥ कुष्ठा-
निकृच्छ्राणिनवं किलासंसुरेन्द्रलुप्तंकिटिमंसदद्रु । भगन्दरा-
र्शांस्यपचींसपामांहन्युः प्रयुक्तास्त्वचिरान्नराणाम् ॥ ५ ॥

१ अमलतास, पनवाड, करंज, अडूसा, गिलोय, मैनफल, दोनों हलदी ।२ सरल-वृक्ष, देवदारु, खैरसार, मुस्तक, नीम, वायविडंग, कनेरकी छाल । ३ गठिवन, भोजपत्र, लहसन, सिरसके वीज, जटामांसी, गूगल, सुहांजना । ४ वनतुलसी, सतोना पीलू (अखरोटविशेष), कूठ, चमेली । ५ वच, रेणुका, निशोत, दंती, भिलावे, गेरु, रसोत या सुर्मा । ६ मनसिल, हरिताल, घरका धूमसा, इलायची, कसीस, मोथे, अर्जुनकी छाल, लोध, राल, । यह आधे २ श्लोक में ६ गण कहे हैं । इन-मेंसे किसी एक गणके चूर्णको गौके घृतमें मिलाकर खूब घोटे फिर ससोंके तेलमें मिलाले तो यह उत्तम प्रलेप तयार हो । इस प्रकार वनाया हुआ किसी एक गणका प्रलेप वैद्यको अत्यंत प्रयोजनीय है । इसके लेपसे मनुष्योंके कष्टसाध्य कुष्ठ, नवीन किलास कुष्ठ, इंद्रलुप्त, किटिभ, दद्रु, भगंदर, अर्श, अपची, खुजली यह सव शीघ्र नष्ट होतेहैं ॥ परंतु यह कुष्ठहर लेप उन रोगियोंको लाभदायक होतेहैं जिनको वमन विरेचन द्वारा शुद्ध देह होनेपर प्रयोग किये जावें । पहले अध्यायमें शोधनकारी द्रव्य लिखचुके हैं।उनसे कल्पस्थान और सिद्धिस्थानमें कही विधिके अनुसार शुद्धकाय करके फिर इन वाह्यदोषहर लेपोंका प्रयोग करे ॥ १ ॥ २ ॥ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥

दूसरा लेप ।

कुष्ठंहरिद्रेसुरसंपटोलंनिम्बाश्वगन्धेसुरदारुशिग्रु । ससर्पपंतु-
म्बुरुधान्यवन्यंचण्डांसचूर्णानिसमानिकुर्यात् ॥ ६ ॥ तैस्तक्र-
युक्तैःप्रथमंशरीरंतैलाक्तमुद्वर्त्तयितुंयतेत । तथास्यकण्डूःपिड-
काःसकोठाः कुष्ठानिशोफाश्चशमंव्रजन्ति ॥ ७ ॥

कूठ, दोनों हलदी, तुलसी, पटोलपत्र, नीम, असगंध, देवदारु, सोंभांजन, सरसों, तुंबुरु, धानिया, केवटीमुस्तक, चंडा (गठौनेका भेद), इन सवके चूर्णको छाछ और ससोंके तेलमें घोटकर शरीर पर मालिश करनेसे खुजली, फुनसियें, चकत्ते, कुष्ठ, सूजन यह सव नष्ट होते हैं ॥ ६ ॥ ७ ॥

खाज और पामानाशक लेप।

कुष्ठामृतासङ्गकटंकटेरीकाशीशकाम्पिल्लकरोध्रमुस्ताः। सौग-
न्धिकंसर्जरसोविडङ्गमनःशिलालेकरवीरकत्वक् ॥ ८ ॥
तैलाक्तगात्रस्यकृतानिचूर्णान्येतानिदद्यादवचूर्णनार्थम्। दद्रुः
सकण्डुः किटिभानिपामाविचर्चिकाचैवतथैतिशान्तिम् ॥९ ॥

कूठ, गिलोय, तुत्थ, दोनों हलदी, कसीस, कमीला, नागरमोथा, लोध, गंधक, राल, वायबिडंग, मनसिल, हरिताल, कनेरकी छाल, इन सबके चूर्णको सरसोंके तेलमें पकाकर देहपर मलनेसे दाद, खाज, किटिभ, पामा, विचर्चिका यह सब नष्ट होते हैं ॥ ८ ॥ ९ ॥

कुष्ठ आदि रोगोंपर अनेक लेप।

मनःशिलालेमरिचानितैलमार्कम्पयःकुष्ठहरःप्रदेहः। तुल्यं
विडङ्गंमरिचानिकुष्ठंलोध्रञ्चतद्वत्समनःशिलंस्यात् ॥ १० ॥
रसाञ्जनंसप्रपन्नाडबीजंयुक्तःकपित्थस्यरसेनलेपः। करञ्जबी-
जैडगजंसकुष्ठंगोमूत्रपिष्टश्चपरःप्रदेहः ॥ ११ ॥

मनसिल, हरिताल, कालीमिर्च, तेल, आकका दूध इन सबको एकजीव कर लेप करनेसे शरीरपरका कुष्ठ नष्ट होताहै। ऐसे ही विडंग, मिर्च, कूठ, लोध, मनसिल, इन सबको बराबर ले चूर्णकर तेलके योगसे लेप मालिस करनेसे कुष्ठ दूर होता है ॥ १० ॥ रसौत, पनवाडके बीज, कूठ इनको कैथके रसमें मिला लेपकरनेसे कुष्ठ दूर होताहै। अथवा–करंजुवेके बीज, पनवाडके बीज, कूठ, इनको गोमूत्रमें पीसकर मालिस करनेसे कुष्ठ नष्ट होताहै ॥ ११ ॥

उभेहरिद्रेकुटजस्यबीजं करञ्जबीजं सुमनःप्रवालान्।
त्वचंसचव्यांहयमारकस्यलेपंतिलक्षारयुतंविदध्यात् ॥ १२ ॥

अथवा–दोनों हलदी, इंद्रजौ, करंजुवेके बीज, चमेलीकी कोंपलें, कनेरकी छाल और उसके भीतरका सार, तिलोंका खार इन सबका लेप कुष्ठको नष्ट करताहै॥ १२॥

मनःशिलात्वक्कुटजात्सकुष्ठःसलोमशःसैडगजः करञ्जः। ग्र-
न्थिश्च भौर्जःकरवीरमूलंचूर्णानिसाध्यानितुषोदकेन ॥ १३ ॥
पलाशनिर्दाहरसेनचापिकर्षोद्धृतान्याढकसम्मितेन। दर्वीप्र-
लेपंप्रवदंतिलेपमेतत्परंकुष्ठनिषूदनाय ॥ १४ ॥

अथवा–मनसिल, कूठ, कुडाकी छाल, जटामांसी, पनवाडके बीज, करंजुवेके बीज, भोजपत्रकी गांठ, कनेरकी जडकी छाल, इन सबको एक २ कर्ष लेकर एक आढक तुषोंके पानीमें और एक आढक ढाकके खार मिले जलमें पकावे जब गाढी होकर कडछीसे लिपटने लगे तो इसको उतारलेवे इसके लेपसे अवश्य ही कुष्ठ नाशको प्राप्त होता है ॥ १३ ॥ १४ ॥

पर्णानिपिष्ट्वाचतुरंगुलस्यतक्रेणपर्णान्यथकाकमाच्याः ।
तैलाक्तगात्रस्यनरस्यकुष्ठान्युद्वर्त्तयेदश्वहनच्छदैश्च ॥ १५ ॥

आरग्वधके पत्र, मकोहके पत्र इनको छाछमें घोकटर अथवा कनेरके पत्रोंको तेलमें पकाकर शरीरपर मलनेसे कुष्ठ दूर होता है ॥ १५ ॥

वातजन्यरोगोंपर लेप ।

कोलंकुलत्थाःसुरदारुरास्नामाषातसीतैलफलानिकुष्ठम् ।
वचाशताह्वायवचूर्णमम्लमुष्णानिवातामयिनांप्रदेहः ॥ १६ ॥

बेर, कुलथी, देवदारु, उडद, अलसी, तिल, सरसों, सूह, राई, एरंडबीज, कूठ, वच, सोंफ, जौ इनके चूर्णको कांजीमें घोटकर वायुके रोगीके शरीरपर लेप करे ॥ १६ ॥

आनूपमत्स्यामिषवेशवारैरुष्णैःप्रदेहःपवनापहःस्यात् ।
स्नेहैश्चतुर्भिर्दशमूलमिश्रैर्गन्धौपधैर्वानिलजित्प्रदेहः ॥ १७ ॥

जलयुक्त भूमिमें रहनेवाले जीवोंका तथा मछलीका मांस, हींग, मिर्च, अदरक, जीरा, हलदी, धनियां इनको घोटकर गर्म करके लेप करनेसे वायुका रोग शांत होताहै । अथवा चतुःस्नेहमें दशमूलका चूर्ण, और गंधद्रव्योंको मिलाकर गर्म २ लेपसे वायुकी उग्रपीडा शांत होती है ॥ १७ ॥

उदरपीडाहर लेप ।

तक्रेणयुक्तंयवचूर्णमुष्णंसक्षारमार्त्तिंजठरेनिहन्यात् ।
कुष्ठंशताह्वांसवचांयवानांचूर्णंसतैलाम्लमुपन्तिवाते ॥ १८ ॥

छाछमें यवोंका चूर्ण और जवाखार मिलाकर गर्म करके पेटपर लेप करनेसे पेटकी पीडा नष्ट होती है । कूठ, सोंफ, वच यवोंकाचूर्ण, तेल, कांजी इनको पकाकर गर्म २ लेप करनेसे वायुकी पीडा शांत होती है ॥ १८ ॥

वातरक्त पर लेप ।

उभेशताह्वेमधुकंमधूकंबलांपियालञ्चकशेरुकञ्च ।
घृतंविदारींञ्चसितोपलाञ्चकुर्यात्प्रदेहंपवनेसरक्ते ॥ १९ ॥

सोया, सौंफ, मुलैठी, खरैंटी, महुआ, चिरौंजी, कसेरू, घृत, विदारीकंद, मिसरी, इनको मिलाकर किया हुआ लेप वातरक्तको शांत करताहै ॥ १९ ॥

वातरक्तपर लेप ।

रास्नांगुडूचींमधुकंबलेद्वेसजीवकंसर्षभकम्पयश्च ।
घृतञ्चसिद्धंमधुशेषयुक्तंरक्तानिलार्त्तिंप्रणुदेत्प्रदेहः ॥ २० ॥

रास्ना, गिलोय, मुलैठी, खरैंटी, गंगेरण, जीवक, ऋषभक इन औषधियोंके चूर्णसे चारगुना घी और १६ गुना दूध मिलाकर घृतपाकविधिसे घृत सिद्ध करे इस घृतमें शहद मिलाकर लेप करनेसे वातरक्तको शांत करताहै ॥ २० ॥

वातेसरक्तेसघृतःप्रदेहोगोधूमचर्णंछगलीपयश्च ॥ २१ ॥

अथवा घी, गेहूंका चूर्ण, वकरीका दूध इनको पकाकर लेप करना भी वातरक्तमें हित है ॥ २१ ॥

शिरःपीडा पर लेप ।

नतोत्पलंचन्दनकुष्ठयुक्तंशिरोरुजायांसघृतःप्रदेहः ।
प्रपौण्डरीकंसुरदारुकुष्ठंयष्ट्याह्वमेलाकमलोत्पलेच ।
शिरोरुजायांसघृतःप्रदेहोलोहैरकापद्मकचोरकैश्च ॥ २२ ॥

तगर, कमल, चंदन, कूठ, इनके चूर्णको घृतसे लेप करे तो मस्तकपीडा शांत होती है । अथवा पंडचारा, दवदारु, कूठ, मुलैठी, इलायची, कमल, नीलोफर इनको पीसकर घृत मिलाकर लेप करनेसे मस्तकपीडा शांत होतीहै । अथवा अगर, एरकघास, पद्माख, गठिवन इनको जलमें पीस लेप करनेसे मस्तकपीडा शांत होती है ॥ २२ ॥

पार्श्वपीडा पर लेप ।

रास्नाहरिद्रेनलदंशताह्वेद्वेदेवदारूणिसितोपलाश्च ।
जीवन्तिमूलंसघृतंसतैलमालेपनंपार्श्वरुजासुकोष्णम् ॥ २३ ॥

रास्ना, हलदी, दारुहल्दी, खस, सौंफ, सोया, देवदारु, मिसरी, जीवन्तीकी जड इनको घृत और तेलमें मिलाकर थोडा गर्म लेप किया हुआ पसवाडेके शूलको नष्ट करता है ॥ २३ ॥

दाहनिवारक लेप ।

शैवालपद्मोत्पलवेत्रतुङ्गंप्रपौण्डरीकाण्यमृणाललोध्रम् ।
प्रियंगुकालीयकचन्दनानिनिर्वापणःस्यात्सघृतःप्रदेहः ॥ २४ ॥

पानीकी काई, कमलगट्टा, नीलोफर, बेत, तुंग पुंडरिया, कमलकी डंडी, पठानी-लोध, गोंदनीके फूल, कालीयक, (काली अगर) चंदन इनको घृतयुक्त कर लेप करनेसे दाह दूर होता है ॥ २४ ॥

सिताललतावेतसपद्मकानियष्ट्याह्वमैन्द्रीनलिनानिदूर्वा ।

यवासमूलंकुशकाशयोश्चनिर्वापणःस्याज्जलसेरकाच ॥ २५ ॥

सफेद दूब, बेतसमजनु, पद्माख, मुलेठी इंद्रायण, कमल, दूर्वा, जवासेकी जड, कुशा, कांसकी जड, जलमेंके पटेरेकी जड, इन सबको जलसे पीस लेप करनेसे दाह दूर होता है ॥ २५ ॥

विषघ्न लेप ।

शैलेयमेलागुरुणीसकुष्टेचण्डानतंत्वक्सुरदारुरास्ना ।

शीतंनिहन्यादचिरात्प्रदेहोविषंशिरीषस्तुससिन्धुवारः ॥ २६ ॥

भूरिछरीला, इलायची, अगर, कूठ, गठिवन, तगर, दारचीनी, देवदारु, रास्ना, इनका लेप शीतताको शीघ्र नष्ट करताहै । ऐसेही सम्भालू और सिरसका लेप विषको शीघ्र नष्ट कर देता है ॥ २६ ॥

देहदुर्गंधनाशक लेप ।

शिरीषलामज्जकहेमलोध्रैस्त्वग्दोषसस्वेदहरःप्रघर्षः ।

पत्राम्बुलोध्राभयचन्दनानिशरीरदौर्गन्ध्यहरःप्रदेहः ॥ २७ ॥

सिरस, खस, नागकेशर, लोध इनके चूर्णका उबटना मलनेसे त्वचाका दोष और पसीना नष्ट होता है । तेजपत्र, नेत्रवाला, पठानी लोध, खस, चन्दन इन सबको पीसकर लेप करनेसे देहकी दुर्गन्धि नष्ट होती है ॥ २७ ॥

उक्त अध्यायका उपसंहार ।

तत्र श्लोकः । इहात्रिजःसिद्धतमानुवाचद्वात्रिंशतंसिद्धमहर्षिपूज्यः । चूर्णप्रदेहान्विविधामयघ्नानारग्वधीयेजगतो हितार्थम् ॥२८॥

इति भेषजचतुष्के आरग्वधीयो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

इस प्रकार इस आरग्वधीय अध्यायमें सिद्ध और महर्षियोंके पूज्य आत्रेय भगवान्ने अनेक रोगोंको नष्ट करनेवाले ३२ प्रकारके चूर्णोंके प्रलेपोंका कथन जगत्के हितार्थ किया है ॥ २८ ॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतसंहितायां पटियालाराज्यांतर्गतटकसालनिवासिवैद्यपंचानन-वैद्यरत्न पं० रामप्रसादवैद्योपाध्यायकृतप्रसादन्याख्यभाषाटीकायामारग्वधीयो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ।

अथातःषड्विरेचनशताश्रितीयमध्यायं व्याख्यास्याम इति हस्माह भगवानात्रेयः ।

अब हम षड्विरेचनशताश्रितीय अध्यायका कथन करेंगे ऐसा भगवान् आत्रेय कहनेलगे ।

अध्यायभरके विषय ।

इहखलुषड्विरेचनशतानिभवन्ति । षड्विरेचनाश्रयाः। पंचकषायशतानि । पंचकषाययोनयः । पञ्चविधंकषायकल्पनम् । पञ्चाशन्महाकषायाइतिसंग्रहः ॥ १ ॥

इस ग्रंथमें ६०० योग विरेचनके हैं । उन छः सौ विरेचनोंको ६ स्थानोंमें आश्रयीभूत मानाहै और ५०० क्वाथ तथा ५ क्वाथोंके कारण पांचमकारकी क्वाथोंकी कल्पना, पचास ५० महाकषाय, यह संग्रह इस अध्यायमें वर्णन कियाहै ॥ १ ॥

षड्विरेचनशतानीतियदुक्तंतदिहसंग्रहेणोदाहृत्यविस्तरेणकल्पोपनिषदिव्याख्यास्यामः ॥ २ ॥

जो ६०० विरेचन इस अध्यायमें कहेहैं इनको संक्षेपसे यहां कहकर आगे कल्पस्थानमें विशेषतासे वर्णन करेंगे ॥ २ ॥

योगकल्पना ।

त्रयस्त्रिंशद्योगशतंप्रणीतंफलेष्वेकोनचत्वारिंशज्जीमूतकेषु योगाः ॥ पञ्चचत्वारिंशदिक्ष्वाकुषुधामार्गवः । षष्टिधाभवति योगयुक्तः ॥ ३ ॥ कुटजस्त्वष्टादशधायोगमेतिकृतवेधनंषष्टिधाभवतियोगयुक्तम् । श्यामात्रिवृद्योगशतंप्रणीतंदशापरे चात्रभवन्तियोगाः ॥ ४ ॥ चतुरंगुलोद्वादशधायोगमेतिलोध्रं विधौषोडशयोगयुक्तम् । महावृक्षोभवतिविंशतियोगयुक्तः एकोनचत्वारिंशत्सप्तलाशंखिन्योर्योगाः ॥ ५ ॥ अष्टाचत्वारिंशद्दन्तीद्रवन्त्योरितिषड्विरेचनशतानि ॥ ६ ॥

इनमें १३३ विरेचन मैनफलके योगसे होतेहैं। ३९ योग जंगली तोरीके संयोगसे। ४५ कडवी तुम्बीके संयोगसे । ६० प्रकारके धामार्गव (अपामार्ग) के योगसे । १८ प्रकारके कुटजके योगसे । ६० प्रकारके कृतवेधन (कडुवी तोरी) के योगसे। ११० प्रकारके दाक्षिणी निशोथ (काली निशोथ) के योगसे । १२ प्रकार अमलतासके योगसे । १६ प्रकारके लोध्रके योगसे। २० प्रकार थोहरके योगसे । ३९ सातला और शंखिनीके योगसे । ४८ प्रकार दंती और द्रवंतीके योगसे । इसप्रकार सब मिलाकर ६०० प्रकारके विरेचनके योग होतेहैं ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥

षड्विरेचनाश्रयाः क्षीरमूलत्वक्पत्रपुष्पफलानीति ॥ ७ ॥

विरेचनके छः आश्रय हैं जैसे—दूध, मूल, छाल. पत्र, फूल, फल । इन छहों द्वारा ही विरेचन होतेहैं ॥ ७ ॥

५ कषाययोनि ।

पञ्चकषाययोनयइति मधुरकषायोऽम्लकषायःकटुकषायस्तिक्तकषायः कषायकषायश्चेतितन्त्रेसंज्ञा ॥ ८ ॥

मधुरकषाय, अम्लकषाय, कटुकषाय, तिक्तकषाय, कषायकषाय यह पांच प्रकारसे शास्त्रमें कषाययोनि मानी है । या ऐसे कहिये कि जिन द्रव्योंसे कषाय (क्वाथ) बनताहै उनको कषाययोनि अर्थात् कषायका कारण कहते हैं वह द्रव्य मधुरादि पांच रसोंके आश्रयीभूत होनेसे कषाययोनि ५ प्रकारकी है ॥ ८ ॥

कषायकल्पना ।

पञ्चविधंकषायकल्पनमिति। तद्यथा।स्वरसःकल्कःशृतःशीतः फाण्टःकषायइति ॥ ९ ॥ "यन्त्रप्रपीडनाद्द्रव्याद्रसःस्वरस उच्यते । यत्पिण्डंरसपिष्टानांतत्कल्कंपरिकीर्त्तितम् ॥ १० ॥ वह्नौतुक्वथितंद्रव्यंशृतमाहुश्चिकित्सकाः । द्रव्यादापोत्थितात्तोयेतत्पुनर्निशिसंस्थितात् ॥ ११ ॥ कषायोयोऽभिनिर्यातिस शीतःसमुदाहृतः । क्षिप्त्वोष्णतोयेमृदितं तत्फाण्टंपरिकीर्त्तितम्" ॥ १२ ॥ तेषां यथापूर्वंबलाधिक्यम्। अतःकषायकल्पनाव्याध्यातुरबलापेक्षिणीनत्वेवंखलुसर्वाणिसर्वत्रोपयोगीनिभवन्ति । पञ्चाशन्महाकषायाइतियदुक्तंतदनुव्याख्यास्यामः ॥ १३ ॥

ऐसे ही कषायोंकी कल्पना भी पांच प्रकारकी है जैसे स्वरस, कल्क, शृत, शीत और फांट यह पांच कषाय हैं। १ यंत्र आदिसे औषधको दवाकर जो उसमेंसे रस निकले उसको स्वरस कहते हैं। २ जो द्रव्यको गीला ही पीसकर चटनीकी समान गोलासा बना लिया जाय उसको कल्क कहते हैं। ३ जो द्रव्य पानीमें डालकर आगपर पकायाजाय उसको शृत (क्राथ, काढा) कहते हैं। ४ द्रव्य (औषधि) को थोडा कूटकर शीतल पानीमें सायंकाल भिगोदेवे और रात्रिभर पडा रहनेदे फिर प्रातःकाल मलकर छानले इसको शीत (शीतकषाय, हिम)कहते हैं। ५ द्रव्यके चूर्णको गर्म जलमें डालकर मसले फिर छानलेवे इसको फांट कहते हैं ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ १२ ॥ इनमें फांटसे हिममें, हिमसे क्राथमें, क्राथसे कल्कमें, कल्कसे स्वरसमें अधिक गुण होताहै। यह क्राथ विना विचारे सर्वत्र ही उपयुक्त नहीं किये जाते। रोग और रोगीका वलावल विचारकर जो जहां उपयोगी हो उसीका वर्ताव करना चाहिये। अव जो पचास महाकषाय कह आये हैं उनकी व्याख्या करते हैं ॥ १३ ॥

जीवनीयादि ६ कषायवर्ग।

तद्यथा । जीवनीयोबृंहणीयोलेखनीयोभेदनीयःसन्धानीयो दीपनीयइतिषट्कःकषायवर्गः ॥ १४ ॥

वह सव इसप्रकार हैं-जीवनीय, (जीवनके बढानेवाले) बृंहणीय (मांसको पुष्ट करनेवाले) लेखनीय (मलको उखाडकर निकालनेवाले) भेदनीय (मलको फाडनेवाले) संधानीय (टूटेहुएको जोडनेवाले) दीपनीय (जठराग्निको चैतन्य करनेवाले) इसप्रकार यह छः कषायोंका वर्ग हुआ ॥ १४ ॥

वलकारकादि ४ कषाय०।

वल्योवर्ण्यःकण्ठ्योहृद्यःइतिचतुष्कःकषायवर्गः ॥ १५ ॥

वलकारक, वर्णकर्ता, कंठ्य (स्वरशोधक), हृद्य (हृदयको हितकारी) यह चार प्रकारका कषायवर्ग है ॥ १५ ॥

तृप्तिनाशकादि ६ कषाय०।

तृप्तिघ्नोऽर्शोघ्नःकुष्ठघ्नःकण्डूघ्नः क्रिमिघ्नोविषघ्नइतिषट्कः कषायवर्गः ॥ १६ ॥

तृप्तिनाशक (रुचिकारक), अर्शनाशक, कुष्ठनाशक, कंडू (खाज) नाशक, क्रमिनाशक, विषनाशक, यह छः प्रकारके क्राथ हैं ॥ १६ ॥

स्तन्य आदि ४ कषाय० ।

स्तन्यजननःस्तन्यशोधनःशुक्रजननःशुक्रशोधनइतिचतुष्कः कषायवर्गः ॥ १७ ॥

स्तन्य (स्तनोंमें दूध) जनक. स्तन्यशोधक, शुक्रजनक, शुक्रशोधक, यह चार प्रकारके क्वाथ हैं ॥ १७ ॥

स्नेहके उपयोगी आदि ७ कषाय० ।

स्नेहोपगःस्वेदोपगोवमनोपगोविरेचनोपगआस्थापनोपगोऽनुवासनोपगःशिरोविरेचनोपगइतिसप्तकःकषायवर्गः ॥ १८ ॥

स्नेहकर्मोपयोगी. स्वेदोपयोगी. वमनोपयोगी, विरेचनोपयोगी, आस्थापनोपयोगी. अनुवासनोपयोगी. शिरोविरेचनोपयोगी, यह सात प्रकारके क्वाथ हैं॥१८॥

छर्दिनिग्रहण आदि ३ कषाय० ।

छर्दिनिग्रहणस्तृष्णानिग्रहणोहिक्कानिग्रहणइतित्रिकःकषायवर्गः ॥ १९ ॥

छर्दिनिग्रहण (छर्दिको रोकनेवाले), प्यासको रोकनेवाले, हिचकी रोकनेवाले यह तीन प्रकारके कषाय हैं ॥ १९ ॥

पुरीषसंग्रहणीयआदि ५ कषाय० ।

पुरीषसंग्रहणीयः पुरीषविरेजनीयोमूत्रसंग्रहणीयोमूत्रविरेजनीयोमूत्रविरेचनीय इतिपञ्चकःकषायवर्गः ॥ २० ॥

मलको बांधनेवाले. मलको शुद्ध करनेवाले, अधिक मूत्रको रोकनेवाले, मूत्रको शुद्ध करनेवाले. मूत्रको लानेवाले, यह पांच कषायोंका वर्ग है ॥ २० ॥

कासहरआदि ५ कषाय० ।

कासहरःश्वासहरःशोथहरोज्वरहरःश्रमहरइतिपञ्चकःकषायवर्गः ॥ २१ ॥

खांसीको हरनेवाला. श्वासको हरनेवाला, सूजनको हरनेवाला, ज्वरको हरनेवाला, श्रमको हरनेवाला. यह पांच प्रकारका कषायवर्ग है ॥ २१ ॥

दाहप्रशमनआदि ५ कषाय० ।

दाहप्रशमनःशीतप्रशमनउदर्दप्रशमनोऽङ्गमर्दप्रशमनःशूलप्रशमन इतिपञ्चकःकषायवर्गः ॥ २२ ॥

दाहको शमन करता शीतको शांत करनेवाला, उदर्दरोगको शांत करनेवाला, अंगमर्द (अँगडाई) को शांत करनेवाला,शूलको शांत करनेवाला यह पांच प्रकारका काथोंका वर्ग है ॥ २२ ॥

शोणितास्थापन आदि ५ कषाय० ।

शोणितास्थापनोवेदनास्थापनःसंज्ञास्थापनःप्रजास्थापनोवयः-स्थापनइतिपञ्चकःकषायवर्गः । इतिपञ्चाशन्महाकषायाः ॥२३॥

रक्तको स्थापन करनेवाला, पीडाको हटानेवाला, बुद्धिको ठहरानेवाला, संतानकारक, आयुवर्द्धक,यह पांचप्रकारका कषाय है । इसप्रकार पचास महाकषाय होतेहैं ॥ २३ ॥

५०० कषाय ।

महताञ्चकषायाणांलक्षणोदाहरणार्थंव्याख्याताभवन्ति।तेषा-मैकैकस्मिन्महाकषायेदशदशावयविकान्कषायाननुव्याख्या-स्यामः । तान्येवपञ्चकषायशतानिभवन्ति ॥ २४ ॥

ऊपर कहे पचास ५० कषायोंके लक्षण उदाहरणके लिये कहेहैं । अब उनहींमेंसे एक २ के दश २ अंगोंका वर्णन करतेहैं । वही सब मिलकर पांच सौ होतेहैं ॥ २४॥

जीवनीय १० द्रव्य ।

तद्यथा । जीवकर्षभकौमेदामहामेदाकाकोलीक्षीरकाकोलीमु-द्गमाषपर्णीजीवन्तीमधुकमितिदशेमानिजीवनीयानिभव-न्ति ॥ २५ ॥

जैसे–जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, जीवंती, मुलहटी, यह दश औषधियोंका जीवनीय गण है ॥ २५ ॥

बृंहणीय १० द्रव्य ।

क्षीरिणीराजक्षवकबलाकाकोलीक्षीरकाकोलीवाटयायनीभद्रो-दनीभारद्वाजीपयस्यर्ष्यगन्धाइतिदशेमानिबृंहणीयानिभव-न्ति ॥ २६ ॥

क्षीरविदारी, राजक्षवक (दूधिया), खरटी, काकोली, क्षीरकाकोली, सफेद खरटी, सहदेई, वनकपास, विदारीकन्द, विधायरा, यह दश औषध बृंहणीय गण हैं ॥ २६ ॥

लेखनीय १० द्रव्य।

मुस्तकुष्ठहारिद्रादारुहरिद्रावचातिविषाकटुरोहिणीचित्रकाचिरविल्वहैमवत्यइतिदशेमानिलेखनीयानिभवन्ति ॥ २७ ॥

नागरमोथा, कूठ, हलदी, दारुहलदी, वच, अतीस, कुटकी, चित्रक करंज, सफेद वच, यह लेखनीय दशक है ॥ २७ ॥

भेदनीय १० द्रव्य।

सुवहार्कोरुबूकाग्निमुखीचित्राचित्रकाचिरबिल्वशंखिनीशकुलादनीस्वर्णक्षीरिण्यइतिदशेमानिभेदनीयानिभवन्ति ॥ २८ ॥

निशोत, आक, एरंड, भलावे, दंती, चित्रक, कंजा, शंखिनी (गुलाचीन) कुटकी, स्वर्णक्षीरी (सत्यानासी) यह दश औषधी भेदन करनेवाली हैं ॥ २८ ॥

सन्धानीय १० द्रव्य।

मधुकमधुपर्णीपृश्निपर्ण्यम्बष्ठकीसमङ्गामोचरसधातकीलोध्रप्रियंगुकट्फलानीतिदशेमानिसंधानीयानि भवन्ति ॥ २९ ॥

मुलहटी, गिलोय, पृष्ठपर्णी, पाटला, वाराहक्रांता, मोचरस, धावेके फूल, लोध, प्रियंगु, कायफल, यह दश औषध संधानीय (जोडनेवाली) हैं (कहीं संधारणीय पाठ है जिसका अर्थ मलको धारणकरनेवाली होसकताहै) ॥ २९ ॥

दीपनीय १० द्रव्य।

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकशृङ्गवेराम्लवेतसमरिचाजमोदाभल्लातकास्थिहिंगुनिर्यासाइतिदशेमानिदीपनीयानिभवन्ति ॥ ३० ॥

इतिषट्ककषायवर्गः।

पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, अम्लवेत मिर्च, अजवायन, भलावेकी मींगी, हींग, यह दश औषध अग्निको दीपन करनेवाली हैं यह ६ कषायोंका वर्ग है ॥ ३० ॥

बलकारक १० द्रव्य।

ऐन्द्रीऋषभ्यतिरसर्ष्यप्रोक्तापयस्यश्वगंधास्थिरारोहिणीवलातिबलाइतिदशेमानिबल्यानिभवन्ति ॥ ३१ ॥

इंद्रायणं, कौंच, सतावर, विधायरा, बिदारीकंद; असगंध, शालपर्णी, कुटकी- बला, अतिबला, यह दश बलदायक औषध हैं ॥ ३१ ॥

वर्णशोधक १० द्रव्य।

चन्दनतुङ्गपद्मकोशीरमधुकमंजिष्ठाशारिवापयस्यासितालता इति दशेमानिवर्ण्यानिभवन्ति ॥ ३२ ॥

चंदन, तुंग, नागकेशर, पद्मकाष्ठ, खस, मुलैठी, मजीठ, सारिवा, क्षीरका- कोली, सफेद दूब यह दश औषध वर्णकारक (देहका रंग सुधारक) हैं ॥ ३२ ॥

उत्तम कण्ठ करनेवाले १० द्रव्य

शारिवेक्षुमूलमधुकपिप्पलीद्राक्षाविदारीकैटर्यहंसपदीबृहतीक- ण्टकारिकइतिदशेमानिकण्ठयानिभवन्ति॥ ३३ ॥

सारिवा, इक्षुमूल, मुलैठी, पीपल, मुनक्का, बिदारीकंद, कायफल, लाजवंती, बडी कटेली, कटेली, यह दश औषध कंठको शुद्ध करती हैं ॥ ३३ ॥

हृदयके हितकारक १० द्रव्य।

आम्राम्रातकनिकुचकरमर्दवृक्षाम्लाम्लवेतसकुवलबदरदाडि- मस्मातुलुङ्गानीतिदशेमानिहृद्यानिभवन्ति ॥ ३४ ॥ इति चतुष्कःकषायवर्गः।

आम, अंबाडा, बडहर, करौंदा, इमली, अम्लवेत, कलमी बेर, जंगली बेर, दाडिम, बिजोरा, यह दश हृदयको प्रिय हैं ॥ यह चार कषायोंका वर्ग हुआ ॥ ३४ ॥

तृप्तिनाशक १० द्रव्य।

नागरचित्रकचव्यविडङ्गमूर्वागुडूचीवचामुस्तपिप्पलीपटोला- नीतिदशेमानितृप्तिघ्नानिभवन्ति ॥ ३५ ॥

सोंठ, चीता, चव्य, विडंग, मूर्वा, गिलोय, वच, मोथे, पीपल, पटोल, यह दश औषध तृप्तिनाशक (रुचिकारक) हैं ॥ ३५ ॥

अर्शोनाशक १० द्रव्य।

कुटजबिल्वचित्रकनागरातिविषाभयाधन्वयशकदारुहरिद्राव- चाचव्यानीतिदशेमानिअर्शोघ्नानिभवन्ति ॥ ३६ ॥

कुडा, वेल, चीता, सोंठ, इलायची, हरड, जवासा, दारुहलदी, वच, चव्य यह दश औषध तृप्तिनाशक हैं ॥ ३६ ॥

दुग्धशोधक १० द्रव्य ।

पाठामहौषधसुरदारुमुस्तमूर्वागुडूचीवत्सकफलकिराततिक्तक-टुरोहिणीशारिवाइतिदशेमानिस्तन्यशोधनानिभवन्ति ॥ ४२॥

पाठा, सोंठ, देवदारु, मोथा, मूर्वा, गिलोय. इंद्रजौं, चिरायता, कुटकी, सारिवा, यह दशक स्तनोंके दूधको शुद्ध करताहै ॥ ४२ ॥

वीर्यउत्पन्नकरनेवाले १० द्रव्य ।

जीवकर्षभककाकोलीक्षीरकाकोलीमुद्गपर्णीमाषपर्णीमेदावृक्षरु-हाजटिलाकुलिङ्गाइतिदशेमानिशुक्रजननानिभवन्ति ॥ ४३ ॥

जीवक, ऋषभक, काकोली, क्षीरकाकोली. मुद्गपर्णी, माषपर्णी, मेदा. वंदा, जटामांसी, कुलिंग (काकडासिंगी) यह दशक शुक्रको पैदाकरताहै ॥ ४३ ॥

वीर्यशोधक १० द्रव्य ।

कुष्ठैलवालुककट्फलसमुद्रफेणकदम्बनिर्यासेक्षुकाण्डेक्षिवक्षुर-कवसुकोशीराणीतिदशेमानिशुक्रशोधनानिभवन्ति ॥ ४४ ॥

इति चतुष्कः कषायवर्गः ।

कूठ, एलवालुक, कायफल, समुद्रफेन, कदंबका गोंद, ईख, कांस, तालमखाने, अगस्तियाके फूल, खस, यह दशक शुक्रको शुद्ध करताहैं । यह चार कषायोंका वर्ग है ॥ ४४ ॥

स्नेहके उपयोगी १० द्रव्य ।

मृद्वीकामधुकमधुपर्णीमेदाविदारीकाकोलीक्षीरकाकोलीजीवक-जीवन्तीशालपर्ण्यइतिदशेमानिस्नेहोपगानिभवन्ति ॥४५ ॥

मुनक्का, मुलैठी, गिलोय, मेदा, विदारीकंद, काकोली, क्षीरकाकोली, जीवक, जीवंती, शालपर्णी, यह दशक स्नेहकर्ममें उपयोगी है ॥ ४५ ॥

पसीना उत्पन्न करनेवाले १० द्रव्य ।

शोभाञ्जनकैरण्डार्कवृश्चीरपुनर्नवायवतिलकुलत्थमाषबदराणी-तिदशेमानिस्वेदोपगानिभवन्ति ॥ ४६ ॥

सुहांजना, आक, एरंड, सफेद पुनर्नवा, लाल पुनर्नवा, जौ, तिल, कुलथी, उडद, बेर, यह दशक पसीना देनेमें उपयोगी है ॥ ४६ ॥

वमनकारक १० द्रव्य ।

मधुमधुककोविदारकर्बुदारणीपाविदुलविम्बीशणपुष्पीसदापुष्पीप्रत्यक्पुष्प्यइति दशेमानिवमनोपगानिभवन्ति ॥ ४७ ॥

शहद, मुलेठी, लाल कचनार, सफेद कचनार, कदंब, जलवेत, कंदूरी, शणपुष्पी, आक, अपामार्ग. यह दशक वमनकरानेमें उपयोगी है ॥ ४७ ॥

विरेचन प्रवर्त्तक १० द्रव्य ।

द्राक्षाकाश्मर्य्यपरूषकाभयामलकविभीतककुवलबदरकर्कन्दुपीलूनीतिदशेमानिविरेचनोपगानिभवन्ति ॥ ४८ ॥

दाख, कंभारी, फालसा, हरड आमले, बहेडे, वडाबेर, बेर, झडबेर, पीलूफल यह दशक विरेचनमें उपयोगी है ॥ ४८ ॥

मलवन्धक १० द्रव्य ।

त्रिवृद्बिल्वपिप्पलीकुष्ठसर्षपवचावत्सकफलशतपुष्पामधुकमदनफलानीतिदशेमान्यास्थापनीयोपगानिभवन्ति ॥ ४९ ॥

निशोत, विल्व, पीपल, कूठ, सरसों, वच, इंद्रजौं, सौंफ, मुलैठी, मैनफल, यह दशक आस्थापन वस्तीमें उपयोगी है ॥ ४९ ॥

सुगन्धिकारक १० द्रव्य ।

रास्नासुरदारुविल्वमदनशतपुष्पावृश्चीरपुनर्नवाश्वदंष्ट्राग्निमन्थश्योणाकाइतिदशेमानिअनुवासनोपगानिभवन्ति ॥ ५० ॥

रास्ना, देवदारु, विल्व, मैनफल, सौंफ, सफद पुनर्नवा लाल, पुनर्नवा, गोखरू, अरणी, सोनापाटा, यह दशक अनुवासन वस्तीमें उपयोगी है ॥ ५० ॥

शिरोविरेचनीय १० द्रव्य ।

ज्योतिष्मतीक्षवकमारिचपिप्पलीविडङ्गशिग्रुसर्षपापामार्गतण्डुलश्वेतामहाश्वेताइतिदशेमानिशिरोविरेचनोपगानिभवन्ति ५१॥

इति सप्तकः कषायवर्गः ॥

मालकांगुनी, नकछिकनी, मिरच, पीपल, वायाविडंग, सुहांजना, सरसों, अपामार्गके बीज, सफेद कोयल, बडी कोयलका वृक्ष, यह दशक शिरोविरेचनमें उपयोगी है। इसप्रकार सात कषायोंका वर्ग है ॥ ५१ ॥

वमन विनाशक १० द्रव्य ।

जम्ब्वाम्रपल्लवमातुलुङ्गाम्लवदरदाडिमयवयष्टिकोशीरमृल्लाजा इति दशेमानिछर्दिनिग्रहाणिभवन्ति ॥ ५२ ॥

जामनके पत्र, आमके पत्र, बिजौरा, खट्टा बेर, दाडिम, जव, मुलैठी, खस सोरठकी मट्टी (गोपीचन्दन), लाजा (धानकी खील), यह दशक वमन रोकनेवाला है ॥ ५२ ॥

तृषानिग्रहकर १० द्रव्य ।

नागरधन्वयवासकमुस्तपर्प्पटकचन्दनकिराततिक्तकगुडूचीह्रीवेरधान्यकपटोलानीतिदशेमानितृष्णानिग्रहाणिभवन्ति॥ ५३ ॥

सोंठ, जवासा, नागरमोथा, पापडा, चन्दन, चिरायता, गिलोय, खस, धनियां, पटोलपत्र, यह दश औषध प्यासको रोकती है ॥ ५३ ॥

हिचकी निवारक १० द्रव्य ।

शटीपुष्करमूलवदरवीजकण्टकारिकावृहतीवृक्षरुहाभयापिप्पलीदुरालभाकुलीरशृङ्गय इतिदशेमानिहिक्कानिग्रहाणिभवन्ति ॥ ५४ ॥

इति त्रिकःकषायवर्गः ।

कचूर पोहकरमूल, बेरकी मींगी, कटेली, बडी कटेली, आकाशवेल, हरड, पपिल, जवासा, काकडासिंगी, यह दश औषध हिचकीको हटाती हैं । यह तीन कषायोंका वर्ग है ॥ ५४ ॥

मलरोधक १० द्रव्य ।

प्रियंग्वनन्ताम्रास्थिकट्वङ्गलोध्रमोचरससमङ्गाधातकीपुष्पपद्मापद्मकेशराणीतिदशेमानिपुरीषसंग्रहणानिभवन्ति ॥ ५५ ॥

प्रियंगु, सारिवा, आमकी गुठली, सोनापाठा, लोध, मोचरस, समंगाधावेके फूल भाडंगी, कमलकी केशर, यह दश औषष मलको बांधती हैं ॥ ५५ ॥

पुरीष शोधक १० द्रव्य ।

जम्बुशल्लकीत्वक्कच्छुरामधूकशाल्मलीश्रीवेष्टकभृष्टमृत्पयस्योत्पलतिलकणा इतिदशेमानिपुरीषविरेजनीयानिभवन्ति ॥५६

जामनकी छाल, छल्के वृक्षकी छाल, जवासा मुलेठी, सेमलकी छाल, सरलका गोंद, भुनीहुई मिट्टी, क्षीरकाकोली, कमल, तिल, यह, दशक मलको शुद्ध करनेवाला है ॥ ५६ ॥

मूत्रके शोधक १० द्रव्य ।

जम्ब्वाम्रप्लक्षवटकपीतनोदुम्बराश्वत्थभल्लातकाश्मन्तकसोमवल्काइतिदशेमानिमूत्रसंग्रहणानिभवन्ति ॥ ५७ ॥

जामन, आम, पाकर, वड, अंबाडा, गूलर, पीपल वृक्ष, भिलावा, अश्मन्तक (कोविदार), खैर यह दश औषध अधिकमूत्रकी रोकनेवाली हैं ॥ ५७ ॥

मूत्रशोधक तथा मूत्र विरेचनीय १० द्रव्य ।

वृक्षादनीश्वदंष्ट्रावसुकोशीरपाषाणभेददर्भकुशकाशगुन्द्रोत्कटमूलानीति दशेमानिमूत्रविरेचनीयानिभवन्ति ॥ ५८ ॥

वंदा, गोखुरू, वसुक (अगस्तिया वृक्ष) हुलहुल,पाषाणभेद, दर्भ,कुश, काँस, गुदपटेर, वरू, यह दश औषध मूत्र लानेवाली हैं ॥ ५८ ॥

पद्मोत्पलनलिनकुमुदसौगन्धिकपुण्डरीकशतपत्रमधुकाप्रियंगुधातकीपुष्पाणीतिदशेमानिमूत्रविरजनीयानिभवन्ति ॥५९॥

इति पञ्चकः कषायवर्गः ।

कमल, नीलकमल, नलिनकमल, कुमुद (भबूल), सौगंधिक कमल, पुंडरीक कमल, गुलाब, मुलैठी,फूल, प्रियंगु, धावेके फूल, यह दश औषधी मूत्रको शुद्ध करनेवाली हैं । यह पांच प्रकारका कषायवर्ग है ॥ ५९ ॥

कासहारक १० द्रव्य ।

द्राक्षाभयामलकापिप्पलीदुरालभाशृङ्गीकण्टकारिकावृश्चीरपुनर्नवातामलक्यइतिदशेमानिकासहराणिभवन्ति ॥ ६० ॥

दाख, हरड, आमला, पीपल, जवासा, ककडासिंगी, कटेली, सफेद पुनर्नवा, लाल पुनर्नवा, भूमिआमला, यह दशक खांसीको नष्टकरनेवाली औषधियोंका है॥६०॥

श्वासहर १० द्रव्य ।

शटीपुष्करमूलाम्लवेतसैलाहिंग्वगुरुसुरसातामलकीजीवन्तीचण्डाइतिदशेमानिश्वासहराणिभवन्ति ॥ ६१ ॥

कचूर, पोहकरमूल, अमलवेत, छोटी इलायची, हींग, अगर, तुलसी, भूमिआमला, जीवंति, गठौना, यह दश औषधी श्वासको हरनेवाली हैं ॥ ६१ ॥

शोथहारक १० द्रव्य ।

पाटलाग्निमन्थबिल्वश्योणाककाश्मर्य्यकण्टकारिकाबृहतीशा-
लपर्णीपृश्निपर्णीगोक्षुरकाइतिदशेमानिशोथहराणिभवन्ति ॥६२॥

पाटला, अरणी, बेल सोनापाठा, कंभारी, कटेली, बडी कटेली, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, गोखरू यह दश औषधि सूजनको हरनेवाली हैं ॥ ६२ ॥

ज्वरनाशक १० द्रव्य ।

शारिवाशर्करापाठामंजिष्ठाद्राक्षापीलपरूषकाभयामलकविभी-
तकानीतिदशेमानिज्वरहराणिभवन्ति ॥ ६३ ॥

सारिवा, शर्करा (तरंजवीन और शीरखीस्त या खांड), पाठा, मजीठ, मुनक्का, पीलू, फालसा; हरड, आमले, वहेडे यह दश औषध ज्वरनाशक हैं ॥ ६३ ॥

श्रमनाशक १० द्रव्य ।

द्राक्षाखर्जूरपियालवदरदाडिमफल्गुपरूषकेक्षुयवषष्टिकाइति-
दशेमानिश्रमहराणिभवन्ति ॥६४॥ इति पञ्चकः कषायवर्गः

दाख, खजूर, चिरोंजी, वेर, अनार, गूलर, फालसा, ईख, जौ, साठीके चावल; यह दश औषधि श्रमको हरती हैं । यह पांचप्रकारका कषायवर्ग है ॥ ६४ ॥

दाहनाशक १० द्रव्य ।

लाजाचन्दनकाश्मर्य्यफलमधुकशर्करानीलोत्पलोशीरशारि-
वागुडूचीह्रीवेराणीतिदशेमानिदाहप्रशमनानिभवन्ति ॥ ६५ ॥

धानकी खील, चंदन, कंभारी, मुलैठी, मिसरी, नीलोफर, खस, शारिवा, गिलोय, नेत्रवाला, यह दश औषध दाहको शांत करतीहैं ॥ ६५ ॥

शीतप्रशामक १० द्रव्य ।

तगरागुरुधान्यकशृंगवेरभूतीकवचाकण्टकारिकाग्निमन्थश्यो-
णाकपिप्पल्यइतिदशेमानिशीतप्रशमनानिभवन्ति ॥६६॥

तगर, अगर, धनियां, सोंठ, अजवायन, वच, कटेली, अरणी, श्योनाक, पीपल, यह दश औषध शीतको हरनेवाली हैं ॥ ६६ ॥

उदर्दशामक १० द्रव्य ।

तिन्दुकपियालवदरखदिरकदरसप्तपर्णाश्वकर्णार्जुनासनारिमे-
दाइतिदशेमान्युदर्दप्रशमनानिभवन्ति ॥६७॥

तिंदुक (कंद) चिरौंजी, बेर, खैरसार, सफेद कत्था, सप्तवर्ण, सालवृक्ष, अर्जुनवृक्ष, विजैसार, अग्निमंद यह दश औषध उदर्दको शांत करती हैं ॥ ६७ ॥

अंगमर्दनाशक १० द्रव्य ।

विदारिगन्धापृश्निपर्णीबृहतीकण्टकारिकैरण्डकाकोलीचन्दनो-शीरैलामधुकानीतिदशेमान्यङ्गमर्दप्रशमनानिभवन्ति ॥६८॥

शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, बडी कटेली, छोटी कटेली, एरंडकी जड, काकोली, चन्दन, उशीर, इलायची, मुलैठी, यह दश औषध अंगमर्दको रोकतीहैं ॥ ६८ ॥

शूलनाशक १० द्रव्य ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकशृङ्गवेरमरिचाजमोदाजगंधा-जाजीगण्डीराणीतिदशेमानिशूलप्रशमनानिभवन्ति ॥ ६९ ॥

इति पञ्चकःकषायवर्गः ।

पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, मिर्च, अजवायन, अजमोद, जीरा, गंडीर, यह दश औषध शूलको शांत करतीहैं। यह पांचप्रकारका कषायवर्ग हुआ६९

रुधिरस्थापक १० द्रव्य ।

मधुमधुकरुधिरमोचरसमृत्कपाललोध्रगैरिकप्रियंगुशर्कराला-जाइतिदशेमानिशोणितस्थापनानिभवन्ति ॥७०॥

शहद. मुलैठी, रुधिर (रक्तचन्दन या केशर), मोचरस, मट्टीका ठीकरा, लोध, गेरू, प्रियंगु, मिश्री, लाजा (खील) यह दश औषध रुधिरको स्थापन करती हैं ॥ ७० ॥

पीडानिवारक १० द्रव्य ।

शालकट्फलकदम्बपद्मकतुंगमोचरसशिरीषवंजुलैलावालुका-शोकाइतिदशेमानिवेदनास्थापनानिभवन्ति ॥ ७१ ॥

शाल, कायफल, कदंब, पद्मकाष्ठ,नागकेशर, मोचरस, सिरस, बेत, एलवालुक, अशोक, यह दश औषधियोंका वर्ग पीडा नष्ट करताहै ॥ ७१ ॥

संज्ञास्थापक १० द्रव्य ।

हिंगुकैटर्य्यारिमेदवचाजीरकवयःस्थागोलोमीजटिलापलंकषा-शोकरोहिण्यइतिदशेमानिसंज्ञास्थापनानिभवन्ति ॥७२॥

हींग, कैर्य्य (वकायन), अरिमेद, (दुर्गंधिवाला खैर), बच, ग्रंथिपर्ण, ब्राह्मी, जटामांसी, छड़, गूगल, कुटकी, यह दश औषध संज्ञास्थापक (बेहोशी दूरकरनेवाले हैं ॥ ७२ ॥

सन्तानस्थापन १० द्रव्य।

ऐन्द्रीब्राह्मीशतवीर्य्यासहस्रवीर्य्यामोघाव्यथाशिवारिष्टावाट्यपुष्पीविश्वक्सेनकान्ताइतिदशेमानिप्रजास्थापनानिभवन्ति ७३॥

ऐंद्री (इलायची या इंद्रायण), ब्राह्मी, दूर्वा, सफेददूर्वा,पाड़र, आमला, हरड, कुटकी, खरटी, प्रियंगु यह दश औषध प्रजास्थापक हैं ॥ ७३ ॥

वयस्थापन १० द्रव्य ।

अमृताभयाधात्रीमुक्ताश्वेताजीवन्त्यतिरसामण्डूकपर्णीस्थिरा पुनर्नवाइति दशेमानिवयस्थापनानिभवन्ति ॥ ७४ ॥ इति पञ्चकःकषायवर्गः ।

गिलोय, हरडे, आँवला, रास्ना, सफेद कोयल, जीवंती, शतावर, मंजीठ, शालिपर्णी, पुनर्नवा, यह दश औषध अवस्था (आयु) को स्थापन करते हैं। यह पांच कषायोंका वर्ग है ॥ ७४ ॥

इति पञ्चकषायशतान्यभिसमस्यपञ्चाशन्महाकषायाः महताञ्चकषायाणां लक्षणोदाहरणार्थंव्याख्याताभवन्ति ॥ ७५॥ नहिविस्तरस्यप्रमाणमस्तिनचाप्यतिसंक्षेपोऽल्पबुद्धीनांसामर्थ्यायोपकल्पतेतस्मादनतिसंक्षेपेणानातिविस्तरेणचोदिष्टाः । एतावन्तोह्यल्पबुद्धीनांव्यवहारायबुद्धिमताञ्चस्वालक्षण्यानुमानयुक्तिकुशलानामनुक्तार्थज्ञानायेति ॥ ७६ ॥

इसप्रकार यह पांच सौ महाकषाय और इनके लक्षण उदाहरणके लिये कहदिये हैं । क्योंकि यदि इनका विस्तार करनेलगें तो अप्रमाण बढजायँगे । और अत्यंत संक्षेपसे कहनेसे अल्पबुद्धिवाले समझनेमें असमर्थ होंगे ।इसलिये न अति विस्तारसे और न अति संक्षेपसे इन कषायोंका वर्णन करादिया है । इतना कहना ही अल्पबुद्धिवालोंको व्यवहारके लिये उत्तम है और बुद्धिमान् तो लक्षण,अनुमान,युक्ति द्वारा जो विषय कहनेसे रहगया उसको भी समझसकेंगे ॥ ७५ ॥ ७६ ॥

एवं वादिनंभगवन्तमात्रेयमाग्निवेशउवाच । नैतानिभगवन्प-ञ्चकषायशतानिपूर्य्यन्ते । तानितानिह्येवाङ्गानिसंप्लवन्तेतेषु-तेषुमहाकषायेष्विति ॥ ७७ ॥ तमुवाचभगवानात्रेयः । नैत-देवं बुद्धिमताद्रष्टव्यमग्निवेश ! एकोऽपिह्यनेकांसंज्ञांलभतेका-र्य्यान्तराणिकुर्व्वन् । तद्यथापुरुषोबहूनांकर्म्मणांकरणेसमर्थो भवति । स यद्यत्कर्मकरोतितस्यतस्यकर्मणः कर्त्तृकरणकार्य्य-संप्रयुक्तंतत्तद्गौणंनामविशेषंप्राप्नोति । तद्वदौषधद्रव्यमपिद्रष्ट-व्यम् । यदिचैकमेवकिञ्चिद्द्रव्यमासादयामस्तथागुणयुक्तंय-त्सर्व्वकर्मणांकरणेसमर्थंस्यात्कस्ततोऽन्यदिच्छेदुपधारयितु-मुपदेष्टुंवाशिष्येभ्यइति ॥ ७८ ॥

इसप्रकार कहतेहुए आत्रेयभगवान्से अग्निवेश कहनेलगे हे भगवन् ! यह पांचसौ कषाय पूरे नहीं होसकते क्योंकि वही २ अंग और कषायोंमें भी हैं । जैसे मुलैठी कई जगह कषायोंमें गिनी जाचुकी और अलग २ एक २ अंगसे ५०० कषाय पूर्ण करनेहैं फिर मुलैठीके कषायको किनमें लियाजाय?इसकि अनेक जगह आनेसे गणना भी पूरी नहीं होती॥७७॥यह प्रश्न सुनकर भगवान् आत्रेय कहनेलगे कि हे अग्निवेश ! बुद्धिमानोंको इसप्रकार कहना उचितनहीं क्योंकि एक वस्तुभी अलग२कार्योंके करनेसे अनेकसंज्ञाको प्राप्त होतीहै जिसे एकही पुरुष अनेक कर्मोंको अलग २ करनेकी साम-र्थ्य रखता है । फिर वह जिस २ समय जिस २ कामको करताहै उस२समय उसी२ कामको करनेवाला होनेसे उसी २ गौण नामको प्राप्त होता है । उसीप्रकार औषध भी अलग २ कार्य करते अलग २ नामोंको प्राप्त होती हैं । यदि एक ही द्रव्य सब कर्मोंमें गुणकर्ता प्राप्त होजाय और उसीसे सब कार्य सिद्ध होसकें तो फिर और द्रव्योंका अपने शिष्योंको उपदेश करना ही वृथा है (सो इन ५० दशकोंमें एक २ कषायमें अंगभूत होनेसे मधुयष्टी आदिको कहना ही था इन दशों२को ही कषायत्व है । एक २ में दश २ होनेसे ५०० संज्ञा होगई) ॥ ७८ ॥

अध्यायका उपसंहार ।

तत्र श्लोकाः । यतोयावन्तियैर्द्रव्यैर्विरेचनशतानिषट् । उक्ता-निसंग्रहेणेहतथैवैषांषडाश्रयाः ॥ ७९ ॥ रसालवणवर्ज्याश्चक-

ग्रायाइतिसंज्ञिताः । तस्मात्पञ्चविधायोनिःकषायाणामुदा-
हृता ॥ ८० ॥ तथाकल्पनमप्येषामुक्तंपञ्चविधंपुनः । महताञ्च
कषायाणांपञ्चाशत्परिकीर्तिता ॥ ८१ ॥

यहां अध्यायका उपसंहार करते श्लोक कहते हैं । संक्षेपसे ६०० विरेचन संग्रहके लिये कहेहैं और उनके ६ आश्रय कहेहैं । छै रसोंमें नमकको छोड पांच रसोंवाले कषाय होते हैं इसीलिये कषायोंकी पांच प्रकारकी योनि है । इसीप्रकार कषायोंकी कल्पना भी पांचप्रकारकी कही है । और पचास महाकषाय कहे हैं ॥ ७९ ॥ ८० ॥ ८१ ॥

पञ्चचापिकषायाणांशतान्युक्तानिभागशः ।
लक्षणार्थंप्रमाणंहिविस्तरस्यनाविद्यते ॥ ८२ ॥

फिर उनको ५०० कषायोंमें विभागसे कथन करदियाहै लक्षणार्थ कहनेमें विस्तारसे कथन करनेकी आवश्यकता नहीं ॥ ८२ ॥

नचालमतिसंक्षेपःसामर्थ्यायोपकल्प्यते ।
अल्पबुद्धेरयंतस्मान्नातिसंक्षेपाविस्तरः ॥ ८३ ॥
मन्दानांव्यवहारायबुधानांबुद्धिवृद्धये ।
पञ्चाशत्कोह्ययंवर्गःकषायाणामुदाहृतः ॥ ८४ ॥

और अति संक्षेपसे कहना भी अल्पबुद्धिवालोंके लिये समझनेमें कठिन होगा । इसलिये न अति संक्षेपसे और न विस्तारसे, साधारण मनुष्योंके व्यवहारके लिये और बुद्धिमानोंकी बुद्धिकी वृद्धिके लिये यह पांचसौ कषायोंका वर्ग कहा है ॥ ८३ ॥ ८४ ॥

तेषांकर्मसुबाह्येषुयोगमाभ्यन्तरेषुच ।
संयोगंचवियोगञ्चयोवेदसभिषग्वरः ॥ ८५ ॥
इति भेषजचतुष्कषड्विरेचनशताश्रितीयोनाम चतुर्थोऽध्यायः ॥

सो जो मनुष्य इन ६०० विरेचनोंका और ५०० कषायोंका बाह्यकर्मोंमें और आभ्यंतर कर्मोंमें संयोग और वियोग भलीप्रकार जानकर उपयोग करताहै वही वैद्योंमें श्रेष्ठ है ॥ ८९ ॥

इति श्रीचरकप्रणीतायुर्वेदीयसंहितायां पटियालाराज्यांतर्गतटकसालनिवासिविद्यपञ्चानन वैद्यरत्न पं० रामप्रसादवैद्योपाध्यायविरचितप्रसादन्याख्यभाषाटीकायां षड्विरेचनशताश्रितीयो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः ।

अथातोमात्राश्रितीयमध्यायंव्याख्यास्यामः ।
इतिहस्माहभगवानात्रेयः ।

अब हम मात्राश्रितीय अध्यायका कथन करतेहैं।ऐसा भगवान् आत्रेय कहनेलगे ॥

मात्राविचार ।

मात्राशीस्यात् । आहारमात्रापुनरग्निवलापेक्षिणी ॥ यावद्ध्यस्याशनमाशितमनुपहत्यप्रकृतिंयथाकालंजरांगच्छतितावदस्यमात्राप्रमाणं वेदितव्यंभवति॥ तत्रशालिषष्टिकमुद्गलावकपिञ्जलैणशशशरभशम्बरादीन्याहारद्रव्याणिप्रकृतिलघून्यपि मात्रापेक्षीणिभवन्ति ॥ तथापिष्टेक्षुक्षीरविकृतिमापानूपौदकपिशितादीन्याहारद्रव्याणिप्रकृतिगुरूण्यपिमात्रामेवापेक्षन्ते॥ नचैवमुक्तेद्रव्येगुरुलाघवमकारणं मन्यते । लघूनिहिद्रव्याणिवाय्वग्निगुणवहुलानिभवन्ति । पृथिवीसोमगुणवहुलानीतराणि । तस्मात्स्वगुणादपिलघून्यग्निसन्धुक्षणस्वभावान्यल्पदोषाणिचोच्यन्ते अपिसौहित्योपयुक्तानिगुरूणिपुनर्नाग्निसन्धुक्षणस्वभावान्यसामान्यादतश्चातिमात्रंदोपवान्तिसौहित्योपयुक्तानिअन्यत्रव्यायामाग्निवलात् ।सैपाभवत्यग्निवलापेक्षिणीमात्रानचनापेक्षेतद्रव्यम् । द्रव्यापेक्षयाचात्रिभागसौहि-

त्यमर्द्धसौहित्यंवागुरूणामुपादिश्यते । लघूनामपिचनातिसौ-
हित्यमग्नेर्युक्त्यर्थम् । मात्रावद्ध्यशनमशितमनुपहत्यप्रकृतिं
बलवर्णसुखायुषायोजयत्युपयोक्तारमनुष्यमिति ॥ १ ॥

मनुष्यको उचित मात्रासे भोजन करना चाहिये वह मात्रा अर्थात् आहारका परिमाण मनुष्यकी जठराग्निके बलके आधीन है। जो भोजन कियाहुआ मनुष्यके स्वभावमें कुछ फर्क न लावे और ठीक समयपर पचजावे उस मनुष्यके लिये वही परिमित (ठीक मात्रा) भोजन है । शालीचावल, साठीचावल, मूंग, लवा, तित्तर, कृष्णसार, शशा, शरभ, शावर यह स्वभावसे ही हलके होतेहैं। परंतु फिर भी मात्रासे अधिक सेवन करना उचित नहीं । इसीतरह पिष्टपदार्थ, खांड, गुड आदि, दूधका विकार, खोआ, रवडी आदि, उडद और अनूपसंचारी जीवोंका मांस यह स्वभावसे ही गुरु (भारी) हैं। यह भी जितने ठीक पचसकें उतनी मात्रासे सेवन करने चाहिये। यहां पर जो इन द्रव्योंकी गुरुता, लघुता, कहीहै वह निष्प्रयोजन नहीं । क्योंकि जितने हलके पदार्थ हैं उनमें वायु और अग्निका गुण अधिक होताहै । इसप्रकार गुरुपदार्थोंमें पृथ्वीका गुण और सोमगुण अधिक होता है। इसी कारणसे हलके पदार्थ ठीक मात्रासे खाये हुए अपने गुणके सबबसे स्वभावसे ही अग्निदीपन और अल्पदोष होतेहैं । और भारी पदार्थ स्वभावसे ही अग्निके मन्द करनेवाले होतेहैं इसलिये अधिक मात्रासे उपयोग कियेहुए दोषोंको प्रवल करतेहैं । और विना व्यायाम (कसरत) और जठराग्निकी ताकतसे गुरु (भारी) भोजन करना उचित नहीं । तात्पर्य यह हुआ कि हलके पदार्थ यथेच्छ पेट भरकर खाय परंतु भारी पदार्थ वहुत पेट भरकर न खावे किंतु आहारकी मात्रा जठराग्निके वल पर निर्भर है द्रव्यके हलकेभारीपन पर नहीं । असलमें सव पदार्थोंके खानेका क्रम यह है कि जितने हलके पदार्थ हैं उनको तीन भाग पेटभरकर खाना हित है।और जितने भारी हैं उनको आधा पेट भर कर खाना हित है और हलका पदार्थ भी अधिक पेट भरकर खाना–जठराग्निको मंद करताहै । ठीक मात्रासे किया भोजन प्रकृति (स्वभाव) को नहीं विगाडता इसलिये ठीकमात्रासे कियाहुआ भोजन मनुष्योंको वल, वर्ण, सुख, आयु इनको देनेवाला होताहै ॥ १ ॥

भोजन करने पर तुरत भोजन निषेध ।

भवन्तिचात्र ॥ गुरुपिष्टमयंतस्मात्तण्डुलान्पृथुकानपि ।
नजातुभुक्तवान्खादेन्मात्रांखादेद्बुभुक्षितः ॥ २ ॥

अब यहां कहतेहैं कि जब तक पहले कियाहुआ आहार पाचन न होलेवे तब तक उसके ऊपर कोई भारी पदार्थ या पिष्टपदार्थ (मैदा, पिष्टी आदि) खीर, चावल, चिडुवा, कदापि न खावे । जब अन्न जीर्ण होकर भूख लगी होय तब परिमाणसे भोजन करे ॥ २ ॥

न खानेयोग्य पदार्थ ।

वल्लूरंशुष्कशाकानिशालूकानिबिसानिच । नाभ्यस्येद्गौरवान्मांसंकृशंनैवोपयोजयेत् ॥ ३ ॥ कूर्चिकांश्चकिलाटांश्चशौकरंगव्यमाहिषे । मत्स्यान्दधिचमाषांश्च यवकांश्चनशीलयेत् ४॥

शुष्क मांस, शुष्कशाक, शालूक (कमलकी डंडी), बिस, अनूपादिमांस इन सबको भारी होनेके कारण नित्य खानेका अभ्यास न करे और रोगादिसे सूखे जीवका मांस न खाय । छाछसे तथा और तरहसे फटाहुआ दूध, सूअरका मांस, गोमांस, (भैंसका मांस) इनको कभी भी ग्रहण न करे । मछली; दही, उडद, जौ; इनको नित्य खानेका अभ्यास न करे ॥ ३ ॥ ४ ॥

सेवन योग्य पदार्थ ।

षष्टिकाञ्शालिमुद्गांश्चसैन्धवामलकेयवान् ।
आन्तरिक्षंपयःसर्पिर्जाङ्गलंमधुचाभ्यसेत् ॥ ५ ॥
तच्चनित्यंप्रयुञ्जीतस्वास्थ्यंयेनानुवर्त्तते ।
अजातानांविकाराणामनुत्पत्तिकरञ्चयत् ॥ ६ ॥

सट्टीके चावल, शाली चावल, मूँग, सेंधानमक, आमले, गेहूं, अगस्त्योदयसे शुद्ध आकाशका जल, दूध, घी, जांगल पदार्थ, सहद, इनको नित्य खायाकरे । जो द्रव्य देहकी स्वस्थावस्थाको न बिगाडे, और रोगोंको उत्पन्न न करे वह पदार्थ खाना चाहिये ॥ ५ ॥ ६ ॥

अतऊर्द्ध्वंशरीरस्यकार्य्यमभ्यञ्जनादिकम् ।
स्वस्थवृत्तमभिप्रेत्यगुणतःसंप्रवक्ष्यते ॥ ७ ॥

अब इसके उपरांत स्वस्थताकी रक्षाके लिये अभ्यंजनादि शरीरके कृत्य और उनके गुणोंका कथन करतेहैं ॥ ७ ॥

अंजन लगाना ।

सौवीरमञ्जनंनित्यंहितमक्ष्णोःप्रयोजयेत् ।
पञ्चरात्रेऽष्टरात्रेवास्रावणार्थेरसाञ्जनम् ॥ ८ ॥

१ गामिषमिति पाठान्तरम् ।

सफेद सुर्मा शुद्धतापूर्वक बनाया हुआ नित्यप्रति दोनों नेत्रोंमें डालना नेत्रोंको हितकारी है।और पांचवीं या आठवीं रात्रीमें आंखोंसे जल निकालनेके लिये रसोत डालना चाहिये ॥ ८ ॥

दिनमें लेखन अंजनका निषेध ।

नहिनेत्रामयंतस्यविशेषाच्छ्लेष्मतोभयम् । दिवातन्नप्रयाक्तव्यंनेत्रयोस्तीक्ष्णमञ्जनम् ॥ ९ ॥ विरेकदुर्बलादृष्टिरादित्यं प्राप्यसीदति । तस्मात्स्राव्यंनिशायान्तुध्रुवमञ्जनमिष्यते ॥ ॥ १० ॥ ततःश्लेष्महरंकर्महितंदृष्टेःप्रसादनम् ॥ ११ ॥

ऐसा करनेसे मनुष्यको नेत्ररोगका आंखोंमें नजला आनेका भय नहीं होता।नेत्रोंको स्रावित करनेवाला तीक्ष्ण अंजन दिनमें नहीं डालना चाहिये क्योंकि नेत्रोंका जल निकलकर निर्मल नेत्रोंमें सूर्यका प्रकाश लगनेसे दृष्टि कमजोर पडजातीहै । इसलिये जल निकालनेवाला अंजन रात्रीको ही डालना चाहिये।और इसी कारणसे कफको नष्ट करनेवाला तीक्ष्ण अंजन रात्रिमें डालना नेत्रोंकी ज्योतिको प्रसन्न रखता है ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥

अञ्जनके गुण ।

यथाहिकणकादीनांमलिनांविविधात्मनाम् । धौतानांनिर्मलाशुद्धिस्तैलचेलकचादिभिः ॥१२ ॥ एवंनेत्रेषुमर्त्यानामञ्जनाश्च्योतनादिभिः । दृष्टिर्निराकुलाभातिनिर्मलेनभसीन्दुवत् ॥ १३ ॥

जैसे सुवर्णादि धातु तेल कपडा बाल आदिके संयोगसे धुलकर स्वच्छ होजातेहैं ऐसे ही मनुष्योंके नेत्र अंजन और आश्च्योतन आदि कर्मसे स्वच्छ होकर जैसे निर्मल आकाशमें चन्द्रमा प्रकाशमान होताहै ऐसे निर्मल प्रकाशमान नेत्र रहतेहैं॥ १२॥ १३॥

नजलानाशक धूमपान ।

हरेणुकांप्रियंगुञ्चपृथ्वीकांकेशरंनखम् । ह्रीवेरंचन्दनंपत्रंत्वगेलोशीरपद्मकम् ॥ १४ ॥ ध्यामकंमधुकंमांसीगुग्गुल्वगुरुशर्करम् । न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थप्लक्षलोध्रत्वचःशुभाः ॥ १५ ॥ वन्यंसर्जरसंमुस्तंशैलेयंकमलोत्पले । श्रीवेष्टकंशल्लकीञ्चशुक-

न्र्हमथापिच॥ १६ ॥ पिष्टालिम्पेच्छिराषिकांतांवर्त्तियवसं-
निभाम्। अंगुष्ठसंमितांकुर्य्यादष्टांगुलसमांभिषक् ॥ १७ ॥
शुष्कांविगर्भांतांवर्त्तिधूमनेत्रार्पितांनरः। स्नेहाक्तामग्निसंप्लुष्टां
पिबेत्प्रायोगिकींसुखाम् ॥ १८ ॥

रेणुक, प्रियंगु, कालाजीरा, नागकेशर, नख, सुगंधवाला, चन्दन, तेजपत्र, तज, इलायची, खस, पद्माख, रोहिषतृण, मुलैठी, जटामांसी, गुग्गुल, अगर, मिश्री, वड़, गूलर, पीपलवृक्ष, प्लक्ष, पठानीलोध, वंशलोचन, वडा नरसल, राल, मोथा, छारछबीला, कमल, उत्पल, सरलका गोंद, छल्लवृक्ष, शुकवर्ह (सिरस या ग्रंथिवर्ण) इन सबको पीसकर आठ अंगुल लंबे काने (सरपतेकी सींख) पर एक जौके समान मोटा लेप करके अंगूठेके समान मोटा करके सुखालेवे सूखनेपर उसमेंसे सींख निकालडाले फिर इस वत्तीको घीमें भिगोकर एकतर्फसे नालमें लगादे दूसरी तर्फसे आग लगादेवे फिर इसके धूमको पान करे यह धूम नजलेको नष्ट करता- है ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥

वसाघृतमधूच्छिष्टैर्युक्तियुक्तैर्वरौषधैः।
वर्तिंमधुरकैःकृत्वास्नैहिकींधूममाचरेत् ॥ १९ ॥

चर्बी, घी, मोम और जीवनीय दश औषधि इनको मिलाकर इनका धूम पीवे इसको स्नेहिक धूमपान कहते हैं ॥ १९ ॥

शिरोविरेचनं धूम।

श्वेताज्योतिष्मतीचैवहरितालंमनःशिला।
गन्धाश्चागुरुपत्राद्याधूमोमूर्द्धविरेचनम् ॥ २० ॥

सफेद कोयल, मालकांगुनी, हरिताल, मनासिल, अगर, पत्रजआदि गंधद्रव्य मिला कर वत्ती बनावे इसका धूआं पीनेसे शिरका विरेचन होता है ॥ २० ॥

धूम्रपानके गुण।

गौरवंशिरसःशूलंपीनसार्द्धावभेदकौ। कर्णाक्षिशूलंकासश्चाहि-
क्काश्वासौ गलग्रहः ॥ २१ ॥ दन्तदौर्बल्यमास्रावःश्रोत्रघ्राणा-
क्षिदोपजः। पूतिघ्राणास्यगन्धश्चदन्तशूलमरोचकः ॥ २२ ॥
हनुमन्याग्रहःकंडूःक्रिमयःपाण्डुतामुखे । श्लेष्मप्रसेकोवैस्व-
र्य्यंगलशुण्ड्यपजिह्विका ॥ २३ ॥ खालित्यंपिञ्जरत्वञ्चकेशा-

नांपतनन्तथा । क्षवथुश्चातितन्द्राचबुद्धेर्मोहोऽतिनिद्रता॥२४॥ धूमपानात्प्रशाम्यंतिबलंभवतिचाधिकम् । शिरोरुहकपालाना-मिन्द्रियाणांस्वरस्यच ॥२५॥ नचवातकफात्मानोबलिनोऽप्यूर्द्ध्वजत्रुजाः । धूमवक्त्रकपानस्यव्याधयःस्युःशिरोगताः ॥ २६ ॥

धूआं पीनेसे भारीपन,मस्तक पीडा,पीनस,अर्धावभेदक,कानकी पीडा, नेत्रपीडा, खांसी, हिचकी, श्वास, गलेका रुकना, दांतोंकी दुर्बलता, रोममार्गका वंद होना, कान नासिका और नेत्रोंका बहना तथा दुर्गंधि, दंतपीडा, अरोचक,हनुग्रह, मन्यास्तंभ, खाज, कृमि, पांडु, मुखसे कफका गिरना, स्वरभंग, गलशुंडी, उपजिह्व, खालित्य,बालोंका पीलापन व गिरना,छींक, तंद्रा, बेहोशी,अतिनिद्रा यह सब नष्ट होतेहैं । और बाल,शिर, इंद्रिय,स्वर इनका बल बढताहै ।जो मनुष्य मुखसे धूँएंको पीकर नासिका द्वारा निकालताहै उस मनुष्यके ऊर्ध्वजत्रुवोंमें वात कफके बलवान् रोग नहीं होते और शिरमें होनेवाली वात कफकी व्याधियें नहीं होतीं॥२१-२६॥

धूमपानके काल ।

प्रयोगपानेतस्याष्टौकालाःसम्परिकीर्त्तिताः । वातश्लेष्मसमुत्क्लेशःकालेष्वेषुहि लक्ष्यते ॥ २७ ॥ स्नात्वाभुक्त्वासमुल्लिख्यक्षुत्त्वादन्तान्विघृष्यच । नावनाञ्जननिद्रान्तेचात्मवान्धूमपो भवेत् ॥ २८ ॥ तथावातकफात्मानोनभवन्त्यूर्द्ध्वजत्रुजाः । रोगास्तस्यतुपेयाःस्युरापानास्त्रिस्त्रयस्त्रयः ॥२९॥ परंद्विकालपायीस्यादह्नःकालेषुबुद्धिमान्।प्रयोगेस्नैहिकेत्वेवं विरेच्यंत्रिश्चतुःपिबेत् ॥ ३० ॥

धुँएंके पीनेके आठ काल हैं क्योंकि वात कफके बलवान् होनेके भी यही आठ काल हैं । स्नान करके,भोजन करके, वमन करके, छींकें लेकर, दतौनके पीछे, नास लेनेंके पीछे, अंजन करके, और सोकर उठके बुद्धिमान् मनुष्य धूमपान करे।इस प्रकार धूमपान करनेसे ऊर्द्ध्वजत्रु (गर्दनसे ऊपर) के होनेवाले वात और कफके रोग कभी नहीं होते । यह धूमपानके आठ काल कहे हैं,इनमें एक २समय तीन २ बार धूमपान करना चाहिये।यही धूमपानका क्रम है यद्यपि धूमपानके आठ समय कहे गये तथापि एक दिनमें प्रायोगिक धूम दो समय, स्नैहिक धूम एक बार, विरेचन धूम एकदिनमें तीन चार बार पीवे ॥ २७-३० ॥

उचित धूमपानके लक्षण ।

हृत्कण्ठेन्द्रियसंशुद्धिर्लघुत्वंशिरसःशमः ।यथेरितानांदोषाणां सम्यक्पीतस्यलक्षणम् ॥ ३१ ॥

उत्तम रीतिसे धूम्रपान किया-हृदय, कंठ, इंद्रिय इनकी शुद्धि करताहै और शिरमें हलकापन लाताहै तथा सब दोषोंको चलायमान कर यथास्थानमें ठीक करदेताहै यह अच्छे धूमपानके लक्षण हैं ॥ ३१ ॥

असमय धूमपानके उपद्रव ।

बाधिर्य्यमान्ध्यंमूकत्वंरक्तपित्तंशिरोभ्रमम् ।
अकालेचातिपीतश्चधूमःकुर्य्यादुपद्रवान् ॥ ३२ ॥

अकाल धूमपान और अतिधूमपान कियाहुआ-बाधिर्य,जडता,मूकता, रक्तपित्त शिरमें चक्कर इन उपद्रवोंको पैदा करताहै ॥ ३२ ॥

उपद्रवशान्तिके उपाय ।

तत्रेष्टंसर्पिषःपानंनावनाञ्जनतर्पणम् । स्नेहिकंधूमजेदोषेवायुःपित्तानुगोयदि ॥ ३३ ॥ शीतन्तुरक्तपित्तेस्याच्छ्लेष्मपित्तेविरूक्षणम् । परन्त्वतःप्रवक्ष्यामिधूमोयेषांविगर्हितः ॥ ३४ ॥

धूम्रपानसे हुए उपद्रवोंको शांत करनेके लिये घी पिलाना, नस्य, अंजन, और तर्पण करना हित है।यदि धूमपानसे वात पित्त कुपित हों तो चिकनी क्रिया करनी चाहिये यदि रक्तपित्त कुपित हो तो शीतल क्रिया करनी और कफ पित्त कुपित हों तो रूक्ष क्रिया करना हित है । अब जिनको धूमपान न करना चाहियें उनको कहते हैं ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

धूमपानके अनाधिकारी ।

नाविरिक्तःपिबेद्धूमंनकृतेवास्तिकर्मणि । नरक्तीनाविषेणार्त्तो नशोचीनचगर्भिणी ॥ ३५ ॥

दस्त करायेहुए मनुष्यको धूमपान न करना चाहिये तथा वस्तिकर्मके पीछे, रक्तविकारवाला, विषार्त, शोकातुर, गर्भवती स्त्री, यह सब धूमपान न करें ॥ ३५ ॥

नश्रमेनमदेनामेनपित्तेनप्रजागरे । नमूर्च्छाभ्रमतृष्णासुनक्षीणेनापिचक्षते ॥ ३६ ॥ नमद्यदुग्धेपीत्वाचनस्नेहंनचमाक्षि-

कम् । धूमंनभुक्त्वादध्नाचनरूक्षःक्रुद्धएवच ॥ ३७ ॥ नतालुशोषेतिमिरेशिरस्यभिहते न च । नशंखकेनरोहिण्यांनमेहेनमदात्यये ॥ ३८ ॥ एषुधूममकालेषुमोहात्पिबतियोनरः । रोगास्तस्यप्रवर्द्धन्तेदारुणाधूमविभ्रमात् ॥ ३९ ॥

एवं श्रमयुक्त, मद्य पीकर, आमाजीर्णवाला, पित्तकी कुपित अवस्थामें रात्रिमें जागाहुआ, यह भी धूमपान न करे । ऐसे ही मूर्छा, भ्रम, तृषा, क्षतक्षीण, इनसे ग्रसित मनुष्य, और मद्य, दूध,स्नेह,शहद,इनको पानकर भी धूम न पीवे । दही खाकर,रूक्ष,क्रोधयुक्त, तालुशोषी, तिमिररोगी, जिसके सिरमें चोट लगीहो, कनपटीके रोगवाला, रोहिणीरोगमें, प्रमेहमें, मदात्ययमें, इनमें भी धूमपान न करे । जो मनुष्य इन वर्जित रोगोंमें और अकालमें मोहवश धूमको पान करताहै उस मनुष्यके धूमपानकी खराबीसे दारुण रोग वृद्धिको प्राप्त होते हैं ॥ ३६--३९ ॥

विशेष रोगोंमें विशेषस्थानोंसे धूमपान ।

धूमयोग्यःपिबेद्दोषेशिरोघ्राणाक्षिसंश्रये । घ्राणेनास्येनकण्ठस्थेमुखेनघ्राणपोवमेत् ॥ ४० ॥ आस्येनधूमकवलान्पिबन्घ्राणेननोद्वमेत् । प्रतिलोमंगतोह्याशुधूमोहिंस्याद्धिचक्षुषी॥४१॥ ऋज्वङ्गचक्षुस्तच्चेताः सूपविष्टस्त्रिपर्ययम् । पिबेच्छिद्रंपिधायैकं नासयाधूममात्मवान् ॥ ४२ ॥

जिसके मस्तक, नाक, नेत्रोंको वातादि दोष आक्रमण करलेवे तो धूमपानयोग्य वह मनुष्य नासिकाद्वारा धूमपान करके मुखमेंको धूम निकालदेवे । किंतु मुखद्वारा धूम पीकर नाकद्वारा न निकाले क्योंकि प्रतिलोम होकर धूम नेत्रोंको विगाडदेताहै, सब अंगोंको नरम करके सुखपूर्वक बैठा हुआ धूमपानमें मन लगाकर नाकका एक छिद्र बंदकर दूसरे छिद्र द्वारा बुद्धिमान् मनुष्य तीन बार धूम्रपान करे ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

नेचा प्रमाण ।

चतुर्विंशतिकंनेत्रंस्वंगुलीभिर्विरेचने । द्वात्रिंशदंगुलंस्नेहेप्रयोगेऽध्यर्द्धमिष्यते ॥ ४३ ॥ ऋजुत्रिकोषाफलितंकोलास्थ्यग्रप्रमाणितम् । वस्तिनेत्रसमद्रव्यं धूमनेत्रंप्रशस्यते ॥ ४४ ॥ दूराद्विनिर्गतः पर्वच्छिन्नोनाडीतनूकृतः । नेन्द्रियंबाधतेधूमो

मात्राकालनिषेवितः ॥ ४५ ॥ यदाचोरश्चकण्ठश्चशिरश्चलघु-
तांव्रजेत् । कफश्चतनुतांप्राप्तःसुपीतंधूममादिशेत् ॥ ४६ ॥

विरेचन धूम्रमें २४ अंगुल लंबी नाली लेना चाहिये। स्नेह धूम्रपानमें ३२ अंगुली और प्रायोगिक धूम्रपानमें १६ अंगुलकी नली लेवे धूम्रपानकी नली मुखकी तर्फसे क्रमपूर्वक सीधी होनी चाहिये इसके जोडमें भीतर छिद्र रहना चाहिये । इसमें तीन टुकडे होतेहैं इसकी नलीका छिद्र बेरकी गुठलीके समान होना चाहिये । जिन द्रव्योंसे वस्तीके नेत्र बनतेहैं उनहीसे धूमनेत्र बनाए जातेहैं दूसरे निकलकर खिंचता हुआ धूम नालके जोडमेंको होताहुआ बंधकर नलीकी ओर आवे ऐसी नली लेना चाहिये । इस प्रकार मात्रा और कालके अनुसार पीया हुआ धूम इंद्रियोंको बाधा नहीं करता । धूम पान करते जब छाती, कंठ, मस्तक, यह हलके प्रतीत होनेलगे और कफ पतला होकर निकलने लगे तो जानना कि ठीक धूमपान किया गया ॥ ४३-४६ ॥

धूमपान ठीक न होनेके दोष ।

अविशुद्धःस्वरोयस्यकंठश्चसकफोभवेत् । स्तिमितोमस्तकश्चै-
वमपीतंधूममादिशेत् ॥ ४७ ॥ तालुमूर्द्धाचकण्ठश्चशुष्यतेप-
रितप्यते । तृष्यतेमुह्यतेजन्तरक्तश्चस्रवतेऽधिकम् ॥ ४८ ॥

यदि धूमपानसे स्वर शुद्ध न हो (बिगडजाय) कंठमें कफ बोले, मस्तक भारी होजाय, तो समझो कि धूम ठीक नहीं पीयागया ॥ ४७॥ अति धूम्रपानसे तालु, मूर्द्धा, कंठ, यह सूखने लगतेहैं, और तपने लगतेहैं, प्याससे और चक्कर आनेसे जीव व्याकुल होने लगताहै लोहू गिरने लगता है ॥ ४८ ॥

शिरश्चभ्रमतेऽत्यर्थंमूर्च्छाचास्योपजायते ।
इन्द्रियाण्युपतप्यन्तेधूमेऽत्यर्थंनिषेविते ॥ ४९ ॥

शिरमें बहुत चक्कर आने लगतेहैं, मूर्च्छा आने लगतीहै सब इंद्रिय व्याकुल होजातीहैं, इस प्रकारके उपद्रव होतेहैं ॥ ४९ ॥

अणुतैलका प्रयोग ।

वर्षेवर्षेऽणुतैलंचकालेषुत्रिषुनाचरेत् ।
प्रावृट्शरद्वसन्तेषुगतमेघेनभस्तले ॥ ५० ॥

अत्यंत धूमपानसे यदि देहके छिद्रोंसे रुधिर निकलनेलगे तो अणुतैलका शरीरपर मालिश करावे। परन्तु वर्षा, शरद, वसंत इन ऋतुओंमें अणुतैल न लगावे और मेघाच्छन्न आकाशके दिन भी अणुतैल न लगावे ॥ ५० ॥

अणुतैलकी नस्यके गुण।

नस्यकर्म्मयथाकालंयोयथोक्तंनिषेवते । नतस्यचक्षुर्नघ्राणंन श्रोत्रमुपहन्यते ॥ ५१॥ नस्युःश्वेतानकपिलाःकेशाःश्मश्रूणि वापुनः । नचकेशाःप्रलुठ्यन्तेवर्द्धन्तेचविशेषतः ॥ ५२ ॥ मन्यास्तम्भःशिरःशूलमर्दितंहनुसंग्रहः। पीनसार्द्धावभेदौच शिरःकम्पश्चशाम्यति ॥५३ ॥ शिराःशिरःकपालानांसन्धयः स्नायुकण्डराः । नावनप्रीणिताश्चास्यलभन्तेऽभ्यधिकंबलम् ॥ ५४ ॥ मुखंप्रसन्नोपचितंस्वरःस्निग्धःस्थिरोमहान्। सर्वे- न्द्रियाणांवैमल्यंबलंभवतिचाधिकम् ॥ ५५ ॥ नचास्यरोगाः सहसाप्रभवन्त्यूर्द्धजत्रुजाः। जीर्य्यतश्चोत्तमाङ्गेचजरानलभते बलम् ॥ ५६ ॥

जो मनुष्य शास्त्रोक्त रीतिसे विधिपूर्वक ठीक समय नसवार लेता है उसके नेत्र, नासिका और कानोंकी शक्ति कभी नष्ट नहीं होती। और केश, डाढी, मूँछ सफेद तथा पीले नहीं होते और बाल बढते हैं।कभी उखडकर नहीं गिरते। उस मनुष्यके मन्यास्तंभ, शिरकी पीडा, अर्दितवायु, हनुस्तंभ, पीनस, अधसिरा, शिरका कांपना, यह सब रोग शांत होते हैं।और उचित नस्यके फलसे मनुष्यके मस्तक और कपाल- की शिरा,संधि, स्नायु, कंडरा,तृप्त हो बलवान् होती है मुख प्रसन्न और शुद्ध रहता है। आवाज तर और बलवान् होजाती है।सब इंद्रियें निर्मल और अधिक बलवाली होतीहैं।और गलेसे ऊपर होनेवाले रोग अपना प्रभाव नहीं दिखाते बुढापा आनेपर भी इसके बाल सफेद नहीं होते ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

अणुतैल विधि ।

चन्दनागुरुणीपत्रंदार्वीत्वक्मधुकंबलाम् । प्रपौण्डरीकंसूक्ष्मै- लांविडङ्गंबिल्वमुत्पलम् ॥ ५७ ॥ ह्रीवेरमभयंवन्यंत्वङ्मुस्तं सारिवां स्थिराम् । सुरावंपृश्निपर्णीञ्चजीवन्तीञ्चशतावरीम्॥ ॥ ५८ ॥ हरेणुंबृहतींव्याघ्रींसुरभींपद्मकेशरम्। विपाचयेच्छत-

गुणेसाहेन्द्रेविमलेऽम्भसि ॥ ५९ ॥ तैलाद्दशगुणंशेषंकषाय-
मवतारयेत् । तेनतैलंकषायेणदशकृत्वोविपाचयेत् ॥ ६० ॥
अथास्यदशमेपाकेसमांशंछागलंपयः । दद्यादेषोणुतैलस्य
नावनीयस्यसंविधिः ॥ ६१ ॥ तस्यमात्रांप्रयुञ्जीततैलस्यार्द्ध-
पलोन्मिताम्।स्निग्धस्विन्नोत्तमाङ्गस्यपिचुनानावनैस्त्रिभिः॥६२॥
त्र्यहात्र्यहाच्चसप्ताहमेतत्कर्म्मसमाचरेत् ।निवातोष्णसमाचा-
रीहिताशीनियतेन्द्रियः ॥ ६३ ॥

अणुतैलकी विधि लिखते हैं-चंदन, अगर, तेजपत्र, दारुहलदी, दालचीनी, मुलैठी, खरेंटी, पंडयारा, छोटी इलायची, वायविडंग, बेलगिरी, कमल, नेत्रवाला, खस, केवटीमोथा, तज, नागरमोथा, शारिवा, शालिपर्णी, देवदारु, पृष्ठपर्णी, जीवंती, शतावर, रेणुका, वडी कटेली, छोटी कटेली, शल्लकी, कमलकी केशर, इन सब औषधियोंको कूटकर सौगुने वर्षाके निर्मल जलमें पकावे जब चतुर्थांवशेष रहे तो उतार छानले फिर इससे दशवां हिस्सा तेल लेकर उसमें तेलकी वरावर क्वाथ डालकर पका. . पानी जलकर तेल रहनेपर एक भाग क्वाथ फिर मिलावे इसी प्रकार दशवारमें सब क्वाथ तेलमें जलादे परन्तु दशवीं वार इसमें वरावरका वकरीका दूध डालकर पकावे तेलमात्र शेष रहनेपर छानले इस तेलको अणु (सूक्ष्म) तेल कहते हैं । इसके नस्यकी यह विधि है, दो तोला तेल लेकर पहले मस्तकको स्निग्ध करे फिर मस्तकको पसीना दे फिर तीन २ दिनके अन्तरसे रूईके फोहेके साथ इस तेलकी नसवार देवे इस प्रकार एक सप्ताह करे और नस्य लेनेके पीछे हवासे वचकर रहे गर्मजलका व्यवहार करे, पथ्य और मित भोजन करे, जितेन्द्रिय रहे ॥ ५७-६३ ॥

तेलके गुण ।

तैलमेतत्त्रिदोषघ्नमिन्द्रियाणांवलप्रदम् ।
प्रयुञ्जानोयथाकालंयथोक्तानश्नुतेगुणान् ॥ ६४ ॥

यह तेल त्रिदोषनाशक है और इंद्रियोंको वल देता है । यह उचित रीतिसे काल आदि विचारकर सेवन कियाहुआ अनेक गुणोंको करता है ॥ ६४ ॥

दन्तधावन ।

आपोथिताग्रंद्वौकालौकषायंकटुतिक्तकम् ।
भक्षयेद्दन्तपवनंदन्तमांसान्यबाधयन् ॥ ६५ ॥

नित्य प्रातः और सायंकाल दोनों समय कूचीयुक्त नम्र दतौन करे दतौन कषैले, कडुए, चरपरे वृक्षकी होनी चाहिये । इसकी नरम कूचीसे एक २ दांतको इस प्रकार साफ करे जिससे मसूडे न छिलजायँ ॥ ६५ ॥

दन्तधावनके गुण ।

निहन्तिगन्धवैरस्यंजिह्वादन्तास्यजंमलम् ।
निष्कृष्यरुचिमाधत्तेसद्योदन्तविशोधनम् ॥ ६६ ॥

दतौन करना मुखकी दुर्गन्धि और विरसताको दूर करताहै तथा जीभ, दांत और मुखकी मैलको दूर करताहै और रुचिको उत्पन्न करताहै । दांतोंको शीघ्र साफ करताहै ॥ ६६ ॥

सुवर्णादिकी जिभ्भी ।

सुवर्णरूप्यताम्राणित्रपुरीतिमयानिच ।
जिह्वानिर्लेखनानिस्युरतीक्ष्णान्यनृजूनिच ॥ ६७ ॥

जीभका मैल दूर करनेको-सुवर्ण, चांदी, ताँवा, शीशा, पीतल, इनमेंसे किसीकी जिभ्भी होनी चाहिये वह टेढी कुछ २ नरम जो जीभको न काटडाले ऐसी होनी चाहिये ॥ ६७ ॥

जिह्वाकी स्वच्छतासे लाभ ।

जिह्वामूलगतंयच्चमलमुच्छ्वासरोधिच ।
सौगन्ध्यंभजतेतेनतस्माज्जिह्वांविनिर्लिखेत् ॥ ६८ ॥

उससे जीभका मैल दूर करे (कोई वृक्षकी भी मानतेहैं) जीभका मैल उतारनेसे श्वासको रोकनेवाला मल दूर होकर मुख सुगंधित होताहै इसलिये जीभका मैल उतारडाले ॥ ६८ ॥

दन्तधावनके श्रेष्ठ वृक्ष ।

करञ्जकरवीरार्कमालतीककुभासनाः ।
शस्यन्तेदन्तपवनेयेचाप्येवंविधाद्रुमाः ॥ ६९ ॥

दतौन, कंजा, कनेर, आक, मालती, कोह, विजेसार तथा और भी गुणदोषादि विचारकर ऐसे वृक्षकी सीधी नरम टहनीकी करनी चाहिये ॥ ६९ ॥

लवंगादि मुखमें रखनेके लाभ ।

धार्य्याण्यास्येनवैशद्यरुचिसौगन्धमिच्छता । जातीकटुकपगानां लवङ्गस्यफलानिच ॥ ७० ॥ कक्कोलकफलंपत्रंताम्बूलस्यशुभं तथा । तथाकर्पूरनिर्य्यासःसूक्ष्मैलायाःफलानिच ॥ ७१ ॥

मुखका शुद्धि, रुचि, और सुगंधिकी इच्छा करनेवाले मनुष्यको जायफल, लताकस्तूरी, सुपारी, लौंग, कंकोल, शुद्ध पान, कपूर, छोटी इलायची इनको मुखमें धारण करना चाहिये ॥ ७० ॥ ७१ ॥

तैलगण्डूषका फल ।

हन्वोर्बलंस्वरबलंवदनापचयःपरः । स्यात्परश्चरसज्ञानमन्नेच रुचिरुत्तमा ॥ ७२ ॥ नचास्यकण्ठशोषःस्यान्नौष्ठयोःस्फुटना- द्भयम् । नचदन्ताःक्षयं यान्तिदृढमूलाभवन्तिच ॥ ७३ ॥

मुखमें तेलको धारण करके कुल्ले करदेना ठोडीको बल देताहै स्वरको बलवान् करताहै । मुखकी पुष्टि, रसका परिज्ञान और अन्नमें परमरुचिको पैदा करताहै ७२ तथा मुख और कण्ठका सूखना, होठोंका फटना यह कदापि नहीं होता । और दांत गिरते नहीं उनकी जड दृढ होजातीहैं ॥ ७३ ॥

नशूलन्तेनचाम्लेनहृष्यन्तेभक्षयन्तिच ॥ परानपिपरान्भ- क्ष्यान्तैलगण्डूपसेवनात् ॥ ७४ ॥

तथा दांतोंमें पीडा, और खट्टे पदार्थके खानेसे दांत खट्टे नहीं होते और बहुत कडी वस्तुको भी तोडसके यह मुखमें तेल धारणकरनेका फल है ॥ ७४ ॥

शिरमें तैल मर्दनके गुण ।

नित्यंस्नेहार्द्रशिरसःशिरःशूलंनजायते । नखालित्यंनपालित्यं नकेशाःप्रपतन्ति च ॥ ७५ ॥ बलंशिरःकपालनांविशेषेणा- भिवर्द्धते । दृढमूलाश्चदीर्घाश्चकृष्णाःकेशाभवन्तिच ॥ ७६ ॥ इन्द्रियाणिप्रसीदन्तिसुत्वग्भवतिचामलम् । निद्रालाभःसुखं चस्यान्मूर्ध्नितैलनिषेवणात् ॥ ७७ ॥

प्रतिदिन मस्तकमें तेल डालनेसे-मस्तकपीडा, खालित्य (गंज), बालोंका सफेद होना, बालोंका टूटना यह कभी नहीं होते । और मस्तक तथा कपालमें बल

आताहै । केश चिकने, दृढमूल,लंबे, और काले होतेहैं॥७५॥७६॥ तेलको शरीरपर मालिस करना सब इंद्रिय और त्वचाको प्रसन्न और नरम करताहै तथा निद्राको और सुखको देताहै ॥ ७७ ॥

कर्ण और शरीरमें तेलसे लाभ ।

नकर्णरोगावातोत्था नमन्याहनुसंग्रहः । नोच्चैःश्रुतिर्नबाधिर्यंस्यान्नित्यंकर्णतर्पणात् ॥७८॥ स्नेहाभ्यङ्गाद्यथाकुम्भश्चर्मस्नेहविमर्दनात् । भवत्युपाङ्गादक्षश्चदृढःक्लेशसहोयथा॥७९॥ तथाशरीरमभ्यङ्गाद्दृढंसत्वक्प्रजायते । प्रशान्तमारुतावाधं क्लेशव्यायामसंग्रहम् ॥ ८० ॥ स्पर्शनेचाधिकोवायुःस्पर्शनञ्च त्वगाश्रितम् । त्वच्यश्चपरमोभ्यङ्गस्तस्मात्तंशीलयेन्नरः ॥८१॥ नचाभिघाताभिहतंगात्रमभ्यङ्गसेविनः । विकारंभजतेऽत्यर्थं वलकर्मणिवाक्वचित् ॥ ८२ ॥ सुस्पर्शोपचिताङ्गश्चबलवान् प्रियदर्शनः । भवत्यभ्यङ्गनित्यत्वान्नरोऽल्पोजरएवच ॥ ८३ ॥

प्रतिदिन कानोंमें तेल डालना-वातजनित कानके रोग, मन्यास्तंभ, हनुस्तम्भ, ऊंचा सुनना, और वहरापन इनको दूर करताहै॥७८॥ चिकनाईके संयोगसे जैसा घड़ा मजबूत होताहै और चमड़ा नरम होताहै, तथा रथका पाहिया मजबूत और घूमनेवाला होताहै, ऐसे ही स्नेह मर्दनसे शरीर भी मजबूत, नरम क्लेशसहनकी शक्तिवाला दृढ होजाताहै बादी नष्ट होकर रोग रहित होजाता, क्लेश और श्रमको सह सकता है । स्पर्शमें वायुकी अधिकता है और वह स्पर्श त्वचाके आधीन है। तेलका मालिश करना त्वचाको बलवान् करताहै इसलिये मालिस करनेका नित्य अभ्यास करे ॥ ७९ ॥ ८० ॥ ८१ ॥ नित्य स्नेह मर्दन करनेवालेके शरीरमें चोट आदि असर नहीं करती।कहीं जोरका काम करनेमें इसको कष्ट नहीं होता ॥८२॥ और उत्तम नरम अंगोंवाला, बलवान्, खूबसूरत, बुढापारहित, नित्य स्नेहमर्दनके प्रभावसे होता है ॥ ८३ ॥

पांवमें तेल लगानेके गुण ।

खरत्वंशुष्कतारौक्ष्यंश्रमःसुप्तिश्चपादयोःसद्यएवोपशाम्यन्ति पादाभ्यङ्गनिषेवणात् ॥८४ ॥ जायतेसौकुमार्य्यंबलंस्थैर्य्यश्चपादयोः । दृष्टिःप्रसादंलभतेमारुतश्चोपशाम्यति ॥ ८५ ॥

नचस्याद्गृध्रसीवातःपादयोःस्फुटनंनच । नाशिरास्नायुसङ्कोचः पादाभ्यङ्गेनपादयोः ॥ ८६ ॥

और पैरोंका-खरदरापन, सुखापन रूखापन, थकावट, पैरोंका सोजाना, यह सब पैरोंपर तेल मर्दनसे शीघ्र शांत होतेहैं और पैरोंमें सुकुमारता बल, दृढ़ता यह होजाते हैं । दृष्टि प्रसन्न होतीहै वायु शांत होजाती है।और पादाभ्यंग करनेवालेके गृध्रसी आदि वायुके रोग, परोंका फटना, शिरा और स्नायुओंका संकोच यह कभी नहीं होते ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ ८६ ॥

स्नानके महाफल ।

दौर्गन्ध्यंगौरवंतन्द्रांकण्डूमलमरोचकम् । स्वेदंबीभत्सतांहन्तिशरीरपरिमार्जनम् ॥ ८७ ॥ पवित्रंवृष्यमायुष्यंश्रमस्वेदमलापहम् । शरीरबलसन्धानंस्नानमोजस्करंपरम् ॥ ८८ ॥

शरीरको स्पंज या गीले कपडेसे अथवा उबटनसे मर्दन करे तो शरीरकी दुर्गंध, भारीपन, तंद्रा, खुजली, मैल, अरुचि, पसीना, बीभत्सता यह सब दूर होते हैं ॥ ८७ ॥ स्नान करना-पवित्रताकारक, वृष्य, आयुवर्द्धक, श्रमनाशक, स्वेदनाशक, मलनाशक, बलकारक और तेजको करनेवाला है ॥ ८८ ॥

स्वच्छवस्त्रपरिधानके फल ।

काम्यंयशस्यमायुष्यमलक्ष्मीघ्नंप्रहर्षणम् ।
श्रीमत्पारिषदंशस्तंनिर्मलाम्बरधारणम् ॥ ८९ ॥

निर्मल वस्त्रोंको धारण करनेसे-शोभा, यश, आयु, लक्ष्मी, आनंद, और सभ्यता वढतीहै तथा प्रशंसा होतीहै ॥ ८९ ॥

सुगन्धि पुष्पोंका धारण ।

वृष्यंसौगन्ध्यमायुष्यंकाम्यंपुष्टिबलप्रदम् ।
सौमनस्यमलक्ष्मीघ्नंगन्धमाल्यनिषेवणम्॥ ९० ॥

चंदन और सुगंधित फूल माला धारण करना-वृष्यता, सुगंधि, आयु, सुंदरता, पुष्टि और बल को बढातीहै । तथा अलक्ष्मीका नाश करताहै ॥ ९० ॥

रत्नयुक्त भूषणधारणकरनेका फल ।

धन्यंमङ्गल्यमायुष्यंश्रीमद्व्यसनसूदनम् ।
हर्षणंकाम्यमोजस्यंरत्नाभरणधारणम् ॥ ९१ ॥

रत्न, और आभूषण धारण करना-संपत्ति, मंगल, आयु, इनको वढाताहै, धन-वानोंके दोषोंको दूर करताहै, तथा आनंद,काम्यता और ओजको वढ़ाता है॥९१॥

पाँव आदि धोनेके गुण ।

मेध्यम्पवित्रमायुष्यमलक्ष्मीकलिनाशनम् ।
पादयोर्मलमार्गाणांशौचाधानमभीक्ष्णशः ॥ ९२ ॥

नित्य पैरों और गुदा आदि मलमार्गोंका धोकर शुद्ध रखना-बुद्धि, पवित्रता, आयु, इनको देताहै और अलक्ष्मी तथा कलियुगके दोषोंको दूर करताहै ॥ ९२ ॥

डाढीमूछके वालोंको स्वच्छ रखनेका फल ।

पौष्टिकंवृष्यमायुष्यंशुचिरूपविराजनम् ।
केशश्मश्रुनखादीनांकल्पनंसंप्रसाधनम् ॥ ९३ ॥

क्षौरकर्म कराने, नख कटानेसे तथा कंघी आदिसे केशोंको साफ रखनेसे-पुष्टि, वृष्यता, आयु, पवित्रता, और सुंदरताकी वृद्धि होती है ॥ ९३ ॥

जूतेधारणके फल ।

चक्षुष्यंस्पर्शनाहितंपादयोर्व्यसनापहम् ।
वल्यंपराक्रमसुखंवृष्यंपादत्रधारणम् ॥ ९४ ॥

जूता पहनना-नेत्रों और स्पर्शको हितकारी है तथा वल, पराक्रम, सुख, वीर्य, इनको करताहै ॥ ९४ ॥

छत्र आर दण्ड धारणका फल ।

ईतःप्रशमनंबल्यंगुप्त्यावरणसंकरम् । घर्मानिलरजोम्बुघ्नं छत्रधारणमुच्यते । स्खलतःसंप्रतिष्ठानं शत्रूणाञ्चनिषेधनम् ।अवष्टम्भनमायुष्यंभयघ्नंदण्डधारणम् ॥ ९५ ॥

छतरी धारणकरना-टीडी आदि जानवरोंका गिरना, ओस, धूप, वायु, जल, धूल, पिशाच आदिकोंसे रक्षा करताहै और वल देताहै । हाथमें डंडा रखना-पांव चूककर गिरनेसे वचताहै, शत्रुओंको भय देताहै, देहको सहारा देताहै, और आयु तथा वलको वढाताहै ॥ ९५ ॥

शरीररक्षावृत्ति धर्मपूर्वक है ।

नगरीनगरस्यैवरथस्यैवरथीसदा ।
स्वशरीरस्यमेधावीकृत्येष्ववहितोभवेदिति ॥ ९६ ॥

जैसे नगरका रक्षक नगरकी रक्षाके लिये और रथ हाकनेवाला रथकी रक्षाके लिये सावधान रहताहै ऐसे ही बुद्धिमान् मनुष्यको अपने शरीरके कृत्योंमें सावधान रहना चाहिये ॥ ९६ ॥

योग्य वृत्तिकी आज्ञा ।

भवतिचात्र । वृत्त्युपायान्निषेवेत येस्युर्धर्माविरोधिनः ।
शममध्ययनञ्चैवसुखमेवंसमश्नुते ॥ ९७ ॥

मनुष्यको उचित है कि धर्मसे अविरोधि अर्थात् धर्मयुक्त जीविकाके उपायोंको करे (अधर्मसे जीवन निर्वाह न करे) और इंद्रियोंको तथा चित्तवृत्तियोंको शांत भावसे रखताहुआ अध्ययन आदि करे ऐसा करनेसे दोनों लोकोंमें सुख प्राप्त होताहै ॥ ९७ ॥

तत्रश्लोकाः । मात्राद्रव्याणिमात्राञ्चसंश्रित्यगुरुलाघवम् । द्रव्याणांगर्हितोभ्यासोयेषांयेषांञ्चशस्यते ॥ ९८ ॥ अञ्जनं धूमवर्त्तिश्चत्रिविधावर्त्तिकल्पना । धूमपानगुणाःकालाः पानमानंचयस्ययत् ॥ ९९ ॥ व्यापत्तिचिह्नंभैषज्यंधूमोयेषांविगर्हितः।पेयोयथायन्मयंचनेत्रंयस्यचयद्विधम्॥१००॥नस्यकर्म्मगुणानस्तःकार्य्यंयच्चयथायदा।भक्षयेद्दन्तपवनंयथायद्गुणञ्चयत्॥१०१॥यदर्थंयानिचास्येनधार्य्याणिकवलग्रहे । तैलस्ययेगुणादृष्टाः शिरस्तैलगुणाश्चये ॥ १०२ ॥ कर्णेतैलंतथाभ्यङ्गे पादाभ्यङ्गे च मार्जने । स्नानेवाससिशुद्धेचसौगन्ध्येरत्नधारणे॥१०३॥शौचेसंहरणेलोम्नांपादत्रच्छत्रधारणम्। गुणमात्राश्रितीयेऽस्मिन् यथोक्तादण्डधारणे ॥ १०४ ॥

इति अग्निवेशकृतेतन्त्रेचरकप्रतिसंस्कृतेश्लोकस्थानेमात्राश्रितीयोनामपञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

अब अध्यायका उपसंहार करतेहैं। इस अध्यायमें मात्रा, द्रव्य, और मात्राकों लेकर गुरु द्रव्य और हलके द्रव्य, निंदनीय द्रव्य, द्रव्योंका निंदित अभ्यास और जिनको गुरुपदार्थ पच सकतेहैं इनका वर्णन कियाहै। इसके उपरान्त क्रमसे अञ्जन धूमवत्ती, तीन प्रकारकी वत्तियें धूमपानके गुण, समय, प्रमाण, धूमपानके दोष, उनका यत्न, जिनको धूम न पीना चाहिये, जैसे पीना जैसे धूमपानकी नली बनाना, जिन चीजोंसे पीना यह सब वर्णन कियाहै तथा नस्य कर्मके गुण, जो नस्य जिस प्रकार जब लेना, दतौनकी विधि, गुण, वृक्ष,कवल, तेल मुखमें धारण करनेके गुण, मस्तकमें तेल लगानेका गुण,कानमें तेल डालनेका गुण,शरीरपर तेल मलनेका गुण, पैरोंमें तेल मलनेका गुण, देहको उबटने या गीले वस्त्रसे मांजनेका गुण, स्नान,शुद्धवस्त्रधारण,सुगंधित चन्दनादिधारण,रत्नाभरणधारण,शौच,क्षौरकर्म,जूता पहनना, छत्र, दंडा, इन सबको धारण करनेके गुण इस मात्राश्रितीय अध्यायमें वर्णन कियेहैं ॥ ९८ ॥ १०४ ॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदीयसंहितायां पटियालाराज्यान्तर्वर्तिटकसालनिवासिवैद्य-पञ्चानन वैद्यरत्न पं० रामप्रसादवैद्योपाध्यायविरचितप्रसादन्याख्यभाषाटीकायां मात्राश्रितीयो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः ।

अथातःतस्याशितीयमध्यायंव्याख्यास्यामः । इतिहस्माह भगवानात्रेयः ॥

अब हम तस्याशितीय (जो पहले भोजनसम्बन्धी कह चुके हैं उसीके विषयमें) अध्यायकी व्याख्या करतेहैं। ऐसा भगवान् आत्रेय कहने लगे।

मात्रा और ऋतुके अनुकूल भोजनसे लाभ।

तस्याशितीयाद्याहाराद्बलंवर्णश्चवर्द्धते ।
तस्यतुसात्म्यंविदितंचेष्टाहारव्यपाश्रयम् ॥ १ ॥

ठीक मात्रासे उचित रीतिपर कियाहुआ भोजन बल और वर्णको बढाता है परन्तु जिसऋतुमें जैसा आहार और विहार शरीरके अनुकूल हो वैसा करनाही बल और वर्णकी वृद्धि करताहै ॥ १ ॥

ऋतुद्वारा वर्षकी अङ्गकल्पना ।

इहखलुसंवत्सरंषडङ्गमृतुविभागेनविद्यात्तदादित्यस्योदगयनमादानं च त्रीनृतूञ्शिशिरादीन् ग्रीष्मान्तान् व्यवस्येत्वर्षादीन्पुनर्हेमन्तान्तान्दक्षिणायनंविसर्गञ्च ॥ २ ॥

ऋतुओंके विभागसे संवत्सर छः भागोंमें बांटाहुआहै । इन छहोंमें शिशिर, वसंत, ग्रीष्म इन तीन ऋतुओंमें सूर्यका उत्तरायण काल है इसीको आदानकाल कहतेहैं (इस कालमें सूर्य अपनी किरणों द्वारा रसको ग्रहण करताहै) और वर्षा, शरद, हेमन्त इन तीन ऋतुओंमें सूर्य दक्षिणायन होताहै इसको विसर्ग काल कहतेहैं । (इस कालमें सूर्य रसादिको त्यागताहै अर्थात् छोडताहै) ॥ २ ॥

आदान और विसर्गकालके गुण दोष ।

विसर्गेचपुनर्वायवोनातिरूक्षाःप्रवान्तीतरेपुनरादानेसोमश्चाव्याहतवलः।शिशिराभिर्भाभिरापूरयञ्जगदाप्याययतिशश्वदतोविसर्गः सौम्यः ॥ ३ ॥

विसर्गकालकी पवन-अत्यन्त रूखी नहीं होती । किंतु आदानकालकी पवन अत्यन्त रूखी होतीहै । विसर्गकालमें चन्द्रमा वलवान्, सुंदर शीतल अपने प्रकाशसे जगत्को सुख देनेवाला होताहै इस कारण विसर्गकाल सौम्य होताहै ॥ ३ ॥

आदानंपुनराग्नेयंतावेतावर्कवायूसोमश्चकालस्वभावमार्गपरिगृहीताः कालर्तुरसदोषदेहवलनिर्वृत्तिप्रत्ययभूताः समुपदिश्यन्ते ॥ ४ ॥

आदानकाल-अग्नितत्त्ववाला होता है और अत्यन्त रूक्ष होताहै । आदानकाल और विसर्गकाल. तथा सूर्य, वायु. चंद्रमा, यह सव अपने २ कालस्वभाव और गतिमें प्रवृत्तहुए काल. ऋतु. दोष. देहवल, इनको प्रवृत्त करनेवाले अर्थात् रचनेवाले कहे जातेहैं ॥ ४ ॥

तत्ररविर्भाभिराददानोजगतः स्नेहंवायवस्तीव्ररूक्षाश्चोपशोषयन्तः शिशिरवसन्तग्रीष्मेषुयथाक्रमंरौक्ष्यमुत्पादयन्तोरूक्षान्रसान्तिक्तकषायकटुकांश्चाभिवर्द्धयन्तो नृणांदौर्वल्यमावहन्ति ॥ ५ ॥

आदानकालमें सूर्य्य अपनी तीक्ष्ण किरणोंसे जगत्के रसको खींचताहै। संपूर्ण वायु तीव्र और रूखा होनेसे चिकनाईको शोषण करताहै इसप्रकार सूर्य और वायु क्रमसे शिशिर, वसंत, ग्रीष्म ऋतुओंमें रूक्षताको करतेहुए कडुए, कषैले, और चर्परे रसप्रधान द्रव्योंको प्रगट करतेहैं। इसलिये आदानकालमें रूक्षतासे मनुष्योंको दुर्बल करतेहैं ॥ ५ ॥

वर्षाशरद्धेमन्तेषुतुदक्षिणाभिमुखेऽर्ककालमार्गमेघवातवर्षाभि-हतप्रतापेशशिनिचाव्याहतबलेमाहेन्द्रसलिलप्रशान्तसन्तापे जगत्यरूक्षारसाः प्रवर्द्धन्तेऽम्ललवणमधुरायथाक्रमंतत्रबल-मुपचीयन्तेनृणामिति ॥ ६॥ भवतिचात्र ॥ आदावन्तेचदौ-र्बल्यंविसर्गादानयोर्नृणाम्। मध्ये मध्यंवरन्त्वन्तेश्रेष्ठमग्रेचनि-र्दिशेत् ॥ ७ ॥

वर्षा, शरद और हेमंत ऋतुमें सूर्य दक्षिणमें होनेसे सूर्यके प्रतापको काल, मार्ग, मेघ, वायु, वर्षा, दवा रखतेहैं। तब चंद्रमाका प्रताप बलवान् रहताहै। वर्षाके जलसे जगत्का संताप दबजाताहै इसी कारण संपूर्ण चिकने रसोंवाले द्रव्योंकी सामग्री बढतीहै। और अम्ल, लवण, मधुर रस यथाक्रम बढकर मनुष्योंके बलको बढातेहैं ॥ ६ ॥ विसर्गकालके प्रथम (वर्षाऋतुमें) और आदानकालके अंत (ग्रीष्म) में मनुष्यआदिकोंम निर्बलता होतीहै। ऐसे ही आदान और विसर्गके मध्य(शरद, वसंत) में मध्यबल होताहै। और विसर्गके अंत (हेमंत) में आर आदानके आदि (शिशिर) में सब मनुष्यादिकोंमें पूर्ण बल होताहै ॥ ७ ॥

शीतकालका वर्णन।

शीतेशीतानिलस्पर्शसंरुद्धोबालिनांबली। पक्ताभवतिहेमन्ते मात्राद्रव्यगुरुक्षमः ॥ ८ ॥ सयदानेन्धनंयुक्तंलभतेदेहजं तदा। रसंहिनस्त्यतोवायुःशीतःशीते प्रकुप्यति ॥ ९ ॥

शीतकालमें ठंढे पवनके लगनेसे शरीरके भीतर रुककर बलवान् मनुष्योंकी जठराग्नि बलवाली होतीहै। इसीलिये शीतकालमें जठराग्नि भारी मात्रा और गुरुभोजनको पाचन करसकती है। यदि चैतन्य जठराग्निको इंधन (आहार) न मिले तो वह देहके रसको फूंकदेतीहै। रसके सूखनेसे शरीर रूखा होजाताहै इसलिये रूक्ष, गुणयुक्त शीतल शारीरिक वायु शीतकालमें कुपित होतीहै ॥ ८ ॥ ९ ॥

तस्मात्तुपारसमयेस्निग्धाम्ललवणान्रसान् । औदकानूपमांसानांमेध्यानामुपयोजयेत् ॥ १० ॥ बिलेशयानांमांसानिप्रसहानांभृतानिच । भक्षयेन्मदिरांसीधुंमधुचानुपिबेन्नरः ॥११॥

इसलिये शीतकालमें चिकने, खट्टे, नमकीन, रसयुक्त पदार्थोंको और जलचारी (मछली आदि) अनूपसंचारी जीवोंके मांस और प्रसह आदि बिलमें रहनेवालोंके मांस, मद्य, सीधु, और मधु इनका सेवन करे ॥ १० ॥ ११ ॥

हेमन्तमें कृत्य ।

गोरसानिक्षुविकृतीर्वसांतैलंनवौदनम् । हेमन्तेऽभ्यस्यतस्तोयमुष्णञ्चायुर्नहीयते ॥ १२ ॥ अभ्यंगोत्सादनंमूर्ध्नितैलंजैन्ताकमातपम् । भजेद्भूमिगृहञ्चोष्णमुष्णंगर्भगृहंतथा ॥ १३ ॥ शीतेसुखंवृतंसेव्यंयानंशयनमासनम् । प्रावाराजिनकौषेयप्रवेणीकुथकास्तृतम् ॥ १४ ॥ गुरूष्णवासादिग्धाङ्गोगुरुणाऽगुरुणासदा । शयनेप्रमदांपीनांविशालोपचितस्तनीम् ॥ १५ ॥ आलिङ्गयाऽगुरुदिग्धाङ्गींसुप्यात्समदमन्मथः । प्रकामञ्चनिषेवेतमैथुनंशिशिरागमे ॥ १६ ॥

हेमंत ऋतुमें-दूध, खांड, आदि मिठाई वसा, तैल, नवीन अन्न, और गर्म जलसे स्नान इनका सेवन करनेसे आयु क्षीण नहीं होती तथा शरीर पर मालिश, उवटना, सिरमें तेल लगाना, जेंताक स्वेद, धूप, गर्म घर, घरके बीचका कमरा, चारों तरफसे ढकी हुई सवारी, शय्या, आसन, वाघम्बर, शाणीके और रेशमके कपडे रंग बेरंगे कंवल, गर्म और भारी वस्त्र, इनका सेवन करे तथा गाढे अगरका लेपन कियाकरे और तीखे पुष्ट स्तनोंवाली, अगरसे सुगंधित लेपन कीहुई कामदेवको भी मोहित करनेवाली स्त्रीसे लिपटकर शयन करे और इच्छापूर्वक मैथुन करे ॥ १२-१६ ॥

शिशिर कृत्य ।

वर्जयेदन्नपानानिलघूनिवातलानिच । प्रवातंप्रमिताहारमुदमन्थं हिमागमे ॥ १७ ॥

शिशिर ऋतुमें भी हेमन्तके समान क्रिया करे।और,हलके,रूक्ष,वातल, अन्नपान, वायुका वेग, अल्पाहार, जलमें घुले सत्तू शर्बत आदि सेवन न करे॥ १७ ॥

हेमन्त और शिशिरके कार्य ।

हेमन्तशिशिरेतुल्येशिशिरेऽल्पंविशेषणम् ।रौक्ष्यमादानजंशीतंमेघमारुतवर्षजम्॥ १८ ॥ तस्माद्धैमन्तिकःसर्वःशिशिरेविधिरिष्यते॥निवातमुष्णमधिकं शिशिरेगृहमाश्रयेत् ॥ १९ ॥ कटुतिक्तकषायाणिवातलानिलघूनिच। वर्जयेदन्नपानानिशिशिरेशीतलानिच ॥ २० ॥ हेमन्तेनिचितःश्लेष्मादिनकृद्भाभिरीरितः । कायाग्निबाधतेरोगांस्ततःप्रकुरुतेबहून् ॥ २१ ॥

हेमन्त और शिशिर यह दोनों ऋतु बराबर ही हैं किन्तु शिशिरमें आदानजन्य रूक्ष शीत होताहै और वृष्टि, वायु आदिसे शीत अधिक होताहै इतनी विशेषता है ॥ १८ ॥ इसीलिये शिशिर ऋतुमें सब क्रिया हेमंतके समान ही करनी चाहिये । विशेषतासे निर्वात और गर्म स्थानमें रहना चाहिये । तथा कडुए, कषैले, तीते, वायुके करनेवाले हलके, शीतल पदार्थोंको त्यागदेना चाहिये ॥ १९ ॥ २० ॥ हेमंतमें शीतसे संचित हुआ कफ वसन्तऋतुमें सूर्यकी किरणोंसे पिघलकर शरीरमें सञ्चालित हुआ शरीरकी अग्निको बिगाडकर अनेक रोगोंको उत्पन्न करताहै २१॥

वसन्तमें वमनादि कर्म धारणीय द्रव्य तथा भोज्य पदार्थ ।

तस्माद्वसन्तेकर्माणिवमनादीनिकारयेत् । गुर्वम्लस्निग्धमधुरं दिवास्वप्नञ्चवर्जयेत्॥ २२ ॥ व्यायामोद्वर्त्तनंधूमकवलग्रहमञ्जनम् । सुखाम्बुनाशौचविधिंशीलयेत्कुसुमागमे ॥ २३ ॥ चन्दनागुरुदिग्धाङ्गोयवगोधूमभोजनः। शारभशाशमैणेयंमागंलावकंपिञ्जलम्॥ २४ ॥ भक्षयेन्निगदंसीधुपिबेन्माध्वीकमेववा । वसन्तेनुपिबेत्स्त्रीणांकामिनीनाञ्चयौवनम्॥ २५ ॥

इसालिये वसन्तमें वमन विरेचनादिसे बढेहुए दोषको निकाल देना चाहिये।भारी, खट्टे,चिकने,और मीठे पदार्थ तथा दिनमें सोना इनको त्याग देवे।व्यायाम,मालिस. धूमपान, कवलग्रहण, अंजन, सुखोष्ण जलसे स्नान शौचादि, अगुरु चंदनका लेपन

इनका सेवन करे । तथा जव, गेंहू, शावर, शशा, हिरन, लवा, सफेद तीतर, इनका भोजन करे और आसव, सीधु, अथवा माध्वकि इनको पीवे । और वसन्तऋतुमें बगीचों तथा स्त्रीकी जवानीका आनन्द लेवे ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥

ग्रीष्मके गुण तथा उसमें सेवनीय पदार्थ ।

मयूखैर्जगतःसारंग्रीष्मेपेपीयतेरविः।स्वादुशीतंद्रवंस्निग्धमन्नपानंतदाहितम्॥२६ ॥शीतंसशर्करंमन्थंजाङ्गलान्मृगपक्षिणः। घृतंपयःसशाल्यन्नंभजन्ग्रीष्मेनसीदति ॥ २७॥मद्यमल्पंनवापेयमथवासुबहूदकम् । लवणाम्लकटूष्णानिव्यायामश्चात्रवर्जयेत्॥२८॥दिवाशीतगृहेनिद्रानिशिचन्द्रांशुशीतले । भजेच्चन्दनदिग्धाङ्गःप्रवातहर्म्यमस्तके ॥२९॥ व्यजनैःपाणिसंस्पर्शैश्चन्दनोदकशीतलैः।सेव्यमानोभजेदास्यांमुक्तामणिविभूषितः ॥ ३० ॥ काननानिचशीतानिजलानिकुसुमानिच । ग्रीष्मकालेनिषेवेतमैथनाद्विरतोनरः ॥ ३१ ॥

ग्रीष्मऋतुमें सूर्यभगवान् अपनी किरणोंसें जंगत्के सारको पीजाते हैं इसलिये ग्रीष्मऋतुमें पतले, शीतल और चिकने आहारका सेवन करना चाहिये ऐसे ही शीतल, सुगंधित, मीठे जल पीने उचित हैं।और ठंढे मिसरी मिले मंथ, जंगली जीवोंका मांस, घृत, दूध, शालीचावल, इनका भोजन करनेसे मनुष्य गर्मीसे दुःखित नहीं होता।ग्रीष्मऋतुमें मद्य पीना उचित नहीं यदि पीनेकी आवश्यकता भी हो तो थोडा मद्य अधिक जल मिलाकर पीवे । गर्मीमें नमकीन, खट्टे, चरपरे, और उष्ण पदार्थ सेवन नहीं करना चाहिये । दिनमें शीतल स्थानमें रात्रीको जहाँ चन्द्रमाकी किरण पडतीहों और हवा आती हो ऐसे स्थानमें मकानके शिखर पर शीतल चन्दनादि लगाकर शयन करे और शतिल चन्दनादिसे सुगंधित जलसे भीगे पङ्खेकी पवनका सेवन करे । तथा माणि मुक्ता आदि आभूषणोंको पहने । और घने वृक्षोंके जंगल शीतल जल, सुगंधित फूल इनको सेवे।परन्तु गर्मीमें स्त्रीका सेवन न करे॥२६-३१॥

वर्षामें जठराग्निका दुर्बल होना ।

आदानदुर्बलेदेहेपक्ताभवतिदुर्बलः ।
स वर्षास्वनिलादीनांदूषणैर्बाध्यतेपुनः ॥ ३२ ॥

आदानकालके आकर्षणसे दुर्बलहुए देहमें जठराग्नि भी दुर्बल होजातीहै। फिर वह जठराग्नि वर्षाकालके जल वायु आदिसे और भी क्षीण होजाती है ॥ ३२ ॥

पवनका कोप।

भवाष्यान्मेघनिस्यन्दात्पाकादम्लाज्जलस्यच।
वर्षास्वग्निबलेक्षीणेकुप्यन्तिपवनादयः ॥ ३३ ॥

वर्षाकालमें पृथ्वीकी भांफ निकलनेसे, वर्षाके होनेसे, जलका खट्टा परिपाक होनेसे अग्नि दुर्बल होकर वातादि दोष कुपित होते हैं ॥ ३३ ॥

वर्षामें त्यागनेयोग्य कर्म।

तस्मात्साधारणःसर्वोविधिर्वर्षासुवक्ष्यते।उदमन्थंदिवास्वप्नमवश्यायंनदीजलम्॥ ३४ ॥व्यायाममातपञ्चैवव्यवायञ्चात्र वर्जयेत्। पानभोजनसंस्कारान् प्रायःक्षौद्रान्वितान्भजेत् ॥ ॥ ३५॥ व्यक्ताम्ललवणस्नेहंवातवर्षाकुलेऽहनि। विशेषशीते भोक्तव्यंवर्षास्वनिलशान्तये ॥ ३६ ॥ अग्निसंरक्षणवतायवगोधूमशालयः।पुराणाजाङ्गलैर्मांसैर्भोज्ययूषैश्चसंस्कृतः॥३७॥ पिबेत्क्षौद्रान्वितञ्चाल्पंमाध्वीकारिष्टमम्बुवा। माहेन्द्रंतप्तशीतंवाकौपंसारसमेववा ॥ ३८॥ प्रघर्षोद्वर्त्तनस्नानगन्धमाल्यपरोभवेत्। लघुशुद्धाम्बरःस्थानंभजेदक्लेदिवार्षिकम् ॥ ३९ ॥

इसलिये वर्षाकालमें त्रिदोष नाशक साधारण क्रियाका सेवन करे वर्षाऋतुमें– शर्बत आदि जलके मंथ, दिनमेंसोना, ओस, नदीका पानी, कसरत,धूपमें फिरना, मैथुन, इनको त्यागदेवे। खाने पीनेके पदार्थोंमें–प्रायःशहदका प्रयोग करना हितकारक है। जिसदिन हवा और वर्षा होनेसे ठंढा हारहाहो उसदिन खट्टे नमकीन, चिकने, पदार्थ खाने चाहिये। ऐसा करनेसे वर्षाकालकी वायुकी शांति होतीहै। जठराग्निकी रक्षा करनेवालेको–यव, गेहूं, पुराने चावल, और जीवनके देनेवाले जंगली जीवोंके मांसका यूष, मधुयुक्त माध्वीक और अरिष्ट, और आकाशका जल या गर्मकरके ठंढा कियाहुआ अथवा कूएका जल सेवन करना चाहिये। देहको भीगे वस्त्रसे घिसना, उवटन लगाना, स्नान करना, गंध लगाना, माला पहनना, हलके सूखे वस्त्र, इनको धारण करना चाहिये और कीचवाले तथा गीले स्थानमें न रहे ॥ ३४–३९ ॥

वर्षामें रहनेके नियम ।

वर्षाशीतोचिताङ्गानांसहसैवार्करश्मिभिः।तप्तानामाचितंपित्तं प्रायःशरदिकुप्यति ॥ ४० ॥ तत्रान्नपानंमधुरंलघुशीतंसतिक्त-कम् । पित्तप्रशमनंसेव्यंमात्रयासुप्रकाङ्क्षितैः ॥४१॥ लावा-न्कपिञ्जलानेणानुरभ्राञ्शरभाञ्शशान् । शालीनयवगोधूमा-न्सेव्यानाहुर्घनात्यये ॥४२॥ तिक्तस्यसर्पिषः पानंविरेकोरक्त-मोक्षणम् । धाराधरात्ययेकार्य्यमातपस्यचवर्जनम् ॥ ४३ ॥ वसांतैलमवश्यायमौदकानूपमामिषम् । क्षारंदधिदिवास्वप्नं प्राग्वातश्चात्रवर्जयेत् ॥ ४४ ॥

वर्षाऋतुके शीतसे संचित हुआ पित्त-शरदूऋतुमें सूर्यकी किरणोंसे तपायमान होकर कुपित होताहै । इसलिये शरद् ऋतुमें-मधुर, हलके, शीतल, कडुए, पित्त-नाशक, पदार्थ क्षुधाके समय परिमाणसे खाने चाहिये । और लवा, सफेद तीतर, हिरन, मेढा, शावर, शशा, इनका मांस चावल, जो, गेहूं इनका भोजन करना हित । शरद्ऋतुमें तिक्तपदार्थका सेवन, घृतपान, विरेचन, रक्तमोक्षण इनको करे और धूपमें न फिरे । तथा-वसा, तेल, ओस, मछली, अनूपसंचारी जीवोंका मांस खार, दही, दिनमें शयन, पूर्वकी वायु इनका सेवन न करे ॥ ४०-४४ ॥

पीनेयोग्य जल: तथा हंसोदक ।

दिवासूर्य्यांशुसन्तप्तंनिशिचन्द्रांशुशीतलम् । कालेनपक्वंनि-र्दोषमगस्त्येनाविषीकृतम् ॥ ४५ ॥ हंसोदकमितिख्यातंशारदं विमलंशुचि । स्नानपानावगाहेषुशस्यतेतद्यथामृतम् ॥ ४६ ॥ शारदानिचमाल्यानिवासांसिविमलानिच । शरत्कालेप्रशस्य-न्तेप्रदोषेचंद्ररश्मयः ॥ ४७ ॥

शरदऋतुमें जल-दिनमें सूर्यकी किरणोंसे तपकर रात्रिको चन्द्रमाकी किरणोंसे शीतल हो कालके प्रभावसे निर्दोष होजाताहै और अगस्त्यऋषिके उदय होनेसे निर्विष होजाताहै । वह शरद्ऋतुका निर्मल जल हंसोदक कहाजाताहै इस पवित्र जलको स्नान. पान, अवगाहन आदिमें अमृतके समान गुणकारी मानाहै शरद्-ऋतुमें उत्तम फूलमाला, स्वच्छवस्त्र, और सायंकालकी चांदनी इनका सेवन करना चाहिये ॥ ४५-४७ ॥

ओकसात्म्य ।

इत्युक्तमृतुसात्म्यंयच्चेष्टाहारव्यपाश्रयम् । उपशेतेयदौचित्यादोकसात्म्यंतदुच्यते ॥ ४८ ॥

इस प्रकार जिस २ ऋतुमें जैसा २ आहार विहार सात्म्य (शरीरानुकूल) है उसका कथन करदियाहै । आहार विहारका सुखकारी अभ्यास "ओकसात्म्य" कहा जाताहै ॥ ४८ ॥

सात्म्यका लक्षण ।

दोषाणामामयानाञ्चविपरीतगुणं गुणैः । सात्म्यमिच्छन्तिसात्म्यज्ञाश्चेष्टितंचाद्यमेवच ॥ ४९ ॥ इति ।

जो आहार विहार दोषोंसे और रोगोंसे विपरीत गुण करनेवाला अर्थात् रोगसे बचाकर आरोग्य रखनेवाला है उसको "सात्म्य" कहते हैं । सात्म्यके जाननेवाले ओकसात्म्यको भी सात्म्य ही कहते हैं ॥ ४९ ॥

तत्रश्लोकः । वृतावृतोनृभिःसेव्यमसेव्यंयच्चकिञ्चन । तस्याशितीयेनिर्दिष्टंहेतुमत्सात्म्यमेवचेति ॥ ५० ॥

इति अग्निवेशकृतेतन्त्रेचरकप्रतिसंस्कृतेतस्याशितीयोऽध्यायः ॥ ६ ॥

यहां अध्यायकी पूर्तिका श्लोक है कि इस तस्याशितीय अध्यायमें जो २ पदार्थ जिस २ ऋतुमें सेवन करने योग्य हैं उन उनका वर्णन किया गयाहै कारणके अनुसार सात्म्य अर्थात् शरीरानुकूल हैं ॥ ५० ॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदसंहितायां पटियालाराज्यान्तर्गतटकसालनिवासिवैद्यपञ्चानन वैद्यरत्न पं० रामप्रसादकृतप्रसादन्याख्यभाषाटीकायां तस्याशितीयो नाम षष्ठोध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः ।

अथातो न वेगान्धारणीयमध्यायंव्याख्यास्यामः । इति हस्माहभगवानात्रेयः ।

अब हम "न वेगान्धारणीय" नामके अध्यायकी व्याख्या करतेहैं । ऐसा भगवान् आत्रेय कहने लगे ।

वेगोंके रोकनेका निषेध ।

नवेगान्धारयेद्धीमाञ्जातान्मूत्रपुरीषयोः । नरेतसोनवातस्यन
वच्छर्द्याःक्षवथोर्नच ॥१॥ नोद्गारस्यनजृम्भायानवेगान्क्षुत्पिपा-
सयोः । नवाष्पस्यननिद्राया न श्वासस्यश्रमेणच ॥ २ ॥
एतान्धारयतोजातान्वेगान्रोगाभवन्तिये। पृथक्पृथक्चिकि-
त्सार्थं तन्मेनिगदतःशृणु ॥ ३ ॥

बुद्धिमान् मनुष्यको उचित है कि--मूत्र, मल, रेत, अधोवायु, छर्दि, छींक. डकार, जंभाई, भूख, प्यास, अश्रुपात, निद्रा, श्रमजन्यश्वास, इनके वेगोंको कभी न रोके । इनके वेग रोकनेसे जो जो रोग पैदा होतेहैं उनको अलग २ आगे वर्णन करतेहैं सो तुम सुनो ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥

मूत्रके वेगको रोकनेके दोष ।

वस्तिमेहनयोःशूलंमूत्रकृच्छ्रंशिरोरुजा ।
विनामोवङ्क्षणानाहःस्याल्लिङ्गंमूत्रनिग्रहे ॥ ४ ॥

मूत्रका वेग रोकनेसे वस्ति और लिंगमें पीडा होतीहै । मूत्रकृच्छ्र, मस्तकमें पीडा देहका नँवना, पेटमें पीडा, और अफारा यह उपद्रव होते हैं ॥ ४ ॥

मूत्र रुकनेपर उपाय ।

स्वेदावगाहनाभ्यङ्गान्सर्पिषश्चावपीडकम् ।
मूत्रेप्रतिहतेकुर्य्यात्त्रिविधंवस्तिकर्मच ॥ ५ ॥

(यत्न) मूत्रके रुकनेमें--पसीना देना, जलमें बैठना, मालिस करना, घृतपान करना, और निरूहण, अनुवासन, उत्तरवस्ति यह तीन प्रकारका वस्तिकर्म करना ॥ ५ ॥

मलरोकनेमें दोष ।

पक्वाशयशिरःशूलंवातवर्चोनिरोधनम् ।
पिण्डिकोद्वेष्टनाध्मानं पुरीषेस्याद्विधारिते ॥ ६ ॥

मलका वेग रोकनेसे--पक्वाशयमें और शिरमें पीडा, अधोवायु और विष्ठाका रुकना, पिंडरियोंमें पीडा, अफारा यह उपद्रव होते हैं ॥ ६ ॥

मलरोकनेमें चिकित्सा।

स्वेदाभ्यङ्गावगाहाश्चवर्त्तयोवस्तिकर्म्मच । हितंप्रतिहतेवर्च्चस्यन्नपानं प्रमाथिच ॥ ७ ॥

(यत्न) मलके रुकनेमें-स्वेदन, मालिश, गरमजलमें बैठना, तीन प्रकारकी वर्ती, वस्तिकर्म, और वायुको अनुलोम करनेवाले अन्नपान, इनका सेवन करे ॥ ७ ॥

वीर्यके वेगके रोकनेमें उपद्रव और यत्न।

मेढ्रेवृषणयोःशूलमङ्गमर्द्दोहृदिव्यथा । भवेत्प्रतिहतेशुक्रे विबद्धंमूत्रमेवच ॥ ८ ॥ तत्राभ्यङ्गावगाहाश्चमदिराचरणायुधाः । शालिःपयोनिरूहाश्चशस्तंमैथुनमेवच ॥ ९ ॥

रेत (वीर्य) के आयेहुए वेगको रोकनेसे-लिंग और पोतोंमें पीडा अंगोंका टूटना, हृदयमें व्यथा, और मूत्रका रुकना यह उपद्रव होतेहैं। (यत्न) मालिश, अवगाहन, मद्यपान, मुरगेका मांस, चावल, दूध, निरूहनवस्ती, मैथुन यह वीर्यके वेग रोकनेके उपद्रवोंको शांत करतेहैं ॥ ८ ॥ ९ ॥

अधोवायुके रोकनेमें उपद्रव।

वातमूत्रपुरीषाणांसङ्गोध्मानंक्लमोरुजा ।
जठरेवातजाश्चान्येरोगाःस्युर्वातनिग्रहात् ॥ १० ॥

अधोवायुका वेग रोकनेसे-वात, मूत्र, मल, इनका रुकना तथा अफारा आलस्य, शूल, पेटमें दर्द, और वायुके रोग उत्पन्न होतेहैं ॥ १० ॥

उपाय।

स्नेहस्वेदविधिस्तत्रवर्त्तयोभोजनानिच ।
पानानिवस्तयश्चैवशस्तंवातानुलोमनम् ॥ ११ ॥

अधोवायुके वेग रोकनेके विकारशांतिके लिये-स्नेहन, स्वेदन, त्रिविधवर्तीका धूमपान, वातका अनुलोमन करनेवाले अन्न पान और वास्तिकर्म करना हित है ११॥

वमन रोकनेसे रोग और उनका उपाय।

कण्डूकोठाऽरुचिव्यङ्गशोथपाण्ड्वामयज्वराः । कुष्ठहृल्लासवीसर्पाश्छर्दिनिग्रहजागदाः ॥ १२ ॥ भुक्त्वाप्रच्छर्दनंधूमोल्लंघनं रक्तमोक्षणम् । रूक्षान्नपानंव्यायामोविरेकश्चात्रशस्यते ॥ १३ ॥

वमनका वेग रोकनेसे-खाज, कोठेमें पीडा, अरुचि, व्यंग (छांईं), सूजन, पांडु, ज्वर, कुष्ठ, हृल्लास, विसर्प यह रोग होते हैं । (यत्न) वमन रोकनेसे हुए रोगोंमें भोजनके पीछे वमन कराना, धूम्रपान, लंघन, सिरामोक्षण (फस्त), रूक्ष अन्नपानका सेवन, व्यायाम, विरेचन यह कर्म करने हितकारी हैं ॥ १२ ॥ १३ ॥

छींक रोकनेके उपद्रव और उपाय ।

मन्यास्तम्भःशिरःशूलमर्दितावर्द्धभेदकौ । इन्द्रियाणाञ्चदौर्ब-ल्यंक्षवथोःस्याद्विधारणात् ॥ १४ ॥ तत्रोर्ध्वजत्रुकेऽभ्यङ्गः स्वेदोधूमंसनावनः । हितंवातघ्नमाद्यञ्चघृतञ्चोत्तरभक्तिकम् ॥१५॥

छींकके रोकनेसे-गरदनका अकडना, शिरमें पीडा, अर्दितवायु, अधासिरा, इंद्रियोंकी दुर्बलता यह उपद्रव होतेहैं । (यत्न) छींकका वेग रोकनेसे हुए रोगोंमें-गर्दनकी नाडियोंपर मालिश करना, स्वेदन, धूम्रपान, नस्य, और वायुकी नाश करनेवाली क्रिया भोजनके पीछे घृतपान करना, यह क्रियाएँ हित हैं॥ १४ ॥१५॥

डकारके रोकनेमें उपद्रव ।

हिक्काकासेऽरुचिःकम्पोविबन्धोहृदयोरसोः ।
उद्गारनिग्रहात्तत्रहिक्कायास्तुल्यमौषधम् ॥ १६ ॥

डकारका वेग रोकनेसे-हिचकी, खांसी, अरुचि, कम्प, हृदय और छातीका जकडना और भारी होना यह लक्षण होतेहैं (यत्न) जो यत्न हिचकीके होतेहैं सो करे ॥ १६ ॥

जँभाईके रोकनेमें उपद्रव ।

विनामाक्षेपसङ्कोचाः सुप्तिःकम्पःप्रवेपनम् ।
जृम्भायानिग्रहात्तत्रसर्वंवातघ्नमौषधम् ॥ १७ ॥

जँभाईका वेगरोकनेसे-अंगोंका नँवना, आक्षेपक, संकोच, तंद्रा या अंगोंका सोना, कंप, यह उपद्रव होतेहैं (यत्न) वातनाशक क्रिया करना हित है ॥ १७ ॥

क्षुधा रोकनेके उपद्रव ।

कार्श्यदौर्बल्यवैवर्ण्यमङ्गमर्दोऽरुचिर्भ्रमः ।
क्षुद्वेगनिग्रहात्तत्रस्निग्धोष्णंलघुभोजनम् ॥ १८ ॥

क्षुधाका वेग रोकनेसे-कृशता, दुर्बलता विवर्णता, अंगमर्द, अरुचि, भ्रम, यह उपद्रव होतेहैं । (यत्न) इसमें उत्तम, स्निग्ध, हलके भोजन कराना हितकारक है ॥ १८ ॥

प्यासके रोकनेमें उपद्रव ।

कण्ठास्यशोषोबाधिर्य्यंश्रमःश्वासोहृदिव्यथा ।
पिपासानिग्रहात्तत्रशीतंतर्पणमिष्यते ॥ १९ ॥

प्यासका वेग रोकनेसे-कंठ और मुखका सूखना,कानोंसे न सुनना,श्रम,श्वास, हृदयमें व्यथा, यह उपद्रव होतेहैं । (यत्न) इसमें शीतल और तर्पण (दूध शर्वत आदि पिलाना) हित है ॥ १९ ॥

आँसू रोकनेमें उपद्रव और उपाय ।

प्रतिश्यायोऽक्षिरोगश्चहृद्रोगश्चारुचिर्भ्रमः ।
बाष्पनिग्रहणात्तत्रस्वप्नोमद्यंप्रियाःकथाः ॥ २० ॥

आंसुओंका वेग रोकनेसें प्रतिश्याय, नेत्ररोग, हृद्रोग, अरुचि,भ्रम, यह उपद्रव होतेहैं (यत्न) इसमें सोना मद्यपीना, मीठी वातें सुनना हितकारक हैं ॥ २० ॥

निद्रारोकनेमें उपद्रव और उपाय ।

जृम्भाङ्गमर्दस्तन्द्राचशिरोरोगाक्षिगौरवम् ।
निद्राविधारणात्तत्रस्वप्नःसंवाहनानिच ॥ २१ ॥

निद्राका वेग रोकनेसे-जंभाई, अंगमर्द (अंगडाई),तंद्रा, मस्तक और नेत्रोंका भारी प्रतीत होना यह उपद्रव होतेहैं । (यत्न) इसमें आनंदसे सोना,शरीरको धीरे२ दबाना, या पाँवोंको हाथोंसे मलना यह हित है ॥ २१ ॥

श्वासरोकनेमें उपद्रव और उपाय ।

गुल्महृद्रोगसंमोहाःश्रमनिश्वासधारणात् ।
जायन्तेतत्रविश्रामोवातघ्नाश्चक्रियाहिताः ॥ २२ ॥

परिश्रमका श्वास रोकनेसे--गुल्म, हृदयमें रोग और मोंह होताहै । (यत्न) विश्राम करना और वातनाशक क्रिया यह सव हित हैं ॥ २२ ॥

वेगोंको कदापि न रोके ।

वेगानिग्रहजारोगायएतेपरिकीर्त्तिताः ।
इच्छंस्तेषामनुत्पत्तिंवेगानेतान्नधारयेत् ॥ २३ ॥

यह वेगोंको रोकनेसे जो रोग होतेहैं उन रोगोंके उत्पन्न न होने देनेकी इच्छावाला मनुष्य इन वेगोंको कभी न रोके ॥ २३ ॥

धारणकरनेयोग्य वेग ।

इमांस्तुधारयेद्वेगान्हितैषीप्रेत्यचेहच।साहसानामशस्तानांमनो-वाक्कायकर्म्मणाम् ॥२४॥ लोभशोकभयक्रोधमानवेगान् नि-धारयेत् । नैर्लज्जेर्ष्यातिरागाणामभिध्यायाश्चबुद्धिमान्॥ २५॥ परुषस्यातिमात्रस्यसूचकस्यानृतस्यच। वाक्यस्याकालयुक्तस्य धारयेद्वेगमुत्थितम् ॥ २६ ॥ देहप्रवृत्तिर्याकाचित्वर्त्ततेपरपी-डया । स्त्रीभोगस्तेयहिंसाद्यातस्यावेगान्विधारयेत् ॥ २७ ॥

इस लोक और परलोकके सुखकी इच्छावाले मनुष्यको नीचे लिखे वेगोंको रोकना चाहिये. जैसे-अयोग्य रीतिपर-साहस, मनका वेग, वाणीका वेग, शरीरका वेग, कर्मका वेग, तथा लोभ, शोक, भय, क्रोध, अभिमान इनके वेगोंको रोकना चाहिये। और बुद्धिमान्को उचित है कि निर्लज्जता, ईर्ष्या, अत्यंत राग इनको भी त्याग देवे । कठोर, गंदे, मिथ्या, वेसमय, असंगत वाक्योंके कहनेका स्वभाव या वेग भी रोकना उचित है । जिस कार्यसे किसीको दुःख हो ऐसा कार्य कभी न करे और परस्त्रीगमन, चोरी, तथा हिंसा आदि अयोग्य कार्योंको भी न करे ॥ २४ ॥ २५ ॥ ॥ २६ ॥ २७ ॥

पुण्यके लाभ ।

पुण्यशब्दोविपापत्वान्मनोवाक्कायकर्म्मणाम् । धर्मार्थकामा-न्पुरुषःसुखोभुङ्क्तेचिनोतिच ॥ २८ ॥

जो मनुष्य, मन, वाणी-देह, इन कर्मोसे निष्पाप है अर्थात् मन, वाणी, देहसे कोई पाप नहीं करता वह पवित्र धर्मात्मा पुरुष; धर्म, अर्थ, काम इनके सुखको भोगता है और मोक्ष साधनके लिये धर्मको संचय करता है ॥ २८ ॥

व्यायामके लाभ ।

शरीरचेष्टायाचेष्टास्थैर्य्यार्थावलवर्धिनी। देहव्यायामसंख्याता मात्रयातांसमाचरेत् ॥२९॥ लाघवंकर्मसामर्थ्यंस्थैर्य्यंक्लेशस-हिष्णुता। दोषक्षयोऽग्निवृद्धिश्च व्यायामादुपजायते ॥ ३० ॥

जिस शारीरिक चेष्टासे-शरीरकी दृढता और बल बढ़े उस चेष्टाको व्यायाम (कसरत) कहते हैं । वह व्यायाम जितनी शरीरकी सामर्थ्य हो उतना-

ही करना चाहिये ॥२९॥ व्यायाम करनेसे देहमें हलकापन, कामकरनेकी सामर्थ्य दृढता, और कष्ट सहलेनेकी सामर्थ्य वढती है। तीनों दोष शांत होते हैं तथा जठराग्नि बलवान् होती है ॥ ३० ॥

अत्यन्त कसरतके उपद्रव ।

श्रमःक्लमःक्षयस्तृष्णारक्तपित्तंप्रतामकः । अतिव्यायामतः कासोज्वरश्छर्दिश्चजायते ॥ ३१ ॥ व्यायामहास्यभाष्याध्वग्राम्यधर्मप्रजागरान् । नोचितानपिसेवेतबुद्धिमानातिमात्रया ३२

अतिव्यायाम करनेसे थकावट, ग्लानि, क्षय, तृषा, रक्तपित्त, तमक, श्वास, खांसी, ज्वर, और वमन, होतेहैं ॥ ३१ ॥ बुद्धिमान्को उचित है कि व्यायाम, हास्य, भाषण, रस्ताचलना, मैथुन, जागना इनको अधिकतासे सेवन न करे ॥ ३२ ॥

शक्तिके बाहर कोई कार्य न करे ।

एतानेवंविधांश्चान्यान्योऽतिमात्रंनिषेवते। गजःसिंहमिवाकर्षन्सहसासविनश्यति ॥ ३३ ॥

इन ऊपर लिखे कामोंको जो पुरुष बहुत अधिकतासे करताहै अथवा अन्य ऐसेही कामोंको अधिकतासे करताहै वह पुरुष जैसे सिंहको खैंचनेसे हाथी नष्ट होताहै ऐसा शीघ्र नष्ट होजाताहै ॥ ३३ ॥

हिताहितका विचार करे ।

उचितादहिताद्धीमान्क्रमशोविरमेन्नरः। हितंक्रमेणसेवेतक्रमश्चात्रोपदिश्यते ॥ ३४ ॥ प्रक्षेपापचयेताभ्यांक्रमःपादांशिको भवेत् । एकान्तरंततश्चोर्ध्वंद्व्यन्तरं त्र्यन्तरंतथा ॥ ३५ ॥ क्रमेणापचितादोषाःक्रमेणोपचितागुणाः । सन्तोयान्त्यपुनर्भावमप्रकम्प्याभवंतिच ॥ ३६ ॥

जो अफीम आदि अहित पदार्थ हैं उन्हें शरीरके अनुकूल होनेपर भी सेवन न करे, यदि उनको सेवनका अभ्यास हो तो क्रमसे त्यागदेवे । इसी प्रकार दुग्धादि हित पदार्थोंका सेवन अनुकूल न होनेपर भी क्रमसे अभ्यास करे । यहां सेवन और त्यागके क्रमको दिखातेहैं-जिस द्रव्यको त्यागना या ग्रहण करना चाहे उसको एकवार ही त्यागना या ग्रहण करना उचित नहीं । जिसको त्यागना चाहे उसमेंसे प्रथम दिन एक अंश (छोटासा हिस्सा) कम करदे दो दिन या चार दिन बीचमें

देकर एक अंश और कम करे, इस प्रकार चार चार दिनके अंतरसे एक२अंश कम करते२ अहित पदार्थको त्यागदेवे । इसी प्रकार एक२ अंश वढाते हुए हित पदार्थका अभ्यास करे । ऐसे ही जो २ अवगुण (दोष) हों उनको क्रमसे छोडता २ त्यागदेवे । और गुणोंको क्रमपूर्वक अभ्यास करते २ ग्रहण करलेवे । ऐसा करनेसे गुण निश्चल हो शरीरमें निवास करते हैं और दोष अपना वल नहीं करसकते॥३४·३६॥

वातादिकी समता विषमता ।

समपित्तानिलकफाःकेचिद्गर्भादिमानवाः । दृश्यन्तेवातलाः केचित्पित्तलाःश्लेष्मलास्तथा ॥३७॥ तेषामनातुराःपूर्वेवातलाद्याःसदातुराः।दोषानुशयिता ह्येषांदेहप्रकृतिरुच्यते ॥३८॥ विपरीतगुणस्तेषांस्वस्थवृत्तेर्विधिर्हितः । समसर्वरसंसात्म्यं समधातोःप्रशस्यते ॥ ३९ ॥

कोई पुरुष ऐसे भाग्यवान् होते हैं जिनके शरीरमें गर्भसे ही वात, पित्त, कफ साम्यावस्थावाले होते हैं । किसीकी प्रकृति वातकी, किसीकी पित्तकी, तथा किसीकी कफप्रधान होतीहै । इन सब मनुष्योंमें पहले कहेहुए (समप्रकृतिके) नीरोग रहतेहैं और वाकी तीन सदा रोगी रहतेहैं । जिसके शरीरमें जो दोष प्रधान होताहै उसके अनुसार उसकी प्रकृति कही जातीहै॥३७ ॥३८ ॥ जिनके शरीरमें वातादि दोष वढेहुए हैं उनके शरीरमें वायुआदि दोषोंसे विपरीत गुणवाली क्रिया हितकारक होतीहैं (जैसे वातप्रकृतिवालेको उष्ण और स्निग्ध तथा लवणरसयुक्त पदार्थोंका सेवन हितकर है) । और जिसके शरीरमें वातादिक और धातुसाम्य हों उसके शरीरमें तो सव रस सात्म्य (शरीरानुकूल) ही होतेहैं ॥ ३९ ॥

शरीरगत छिद्रोंका वर्णन ।

द्वेअधःसप्तशिरसिखानिस्वेदमुखानि च ।
मलायनानिबाध्यन्तेदुष्टैर्मात्राधिकैर्मलैः ॥ ४० ॥

शरीरके नीचेके भागमें गुदा, लिंग यह दो मलमार्ग होतेहैं । ऊपरके भागमें दो नेत्र, दो कान, दो नासिका, एक मुख यह सात मलमार्ग होते हैं और इनसे अन्य रोममार्ग पसीना निकालनेके मार्ग हैं।इन सबको मलमार्ग कहते हैं । मल दुष्ट होने अथवा अधिक होनेसे मलमार्गोंको दूषित करते हैं ॥ ४० ॥

मलवृद्धि आदिका ज्ञान ।

मलवृद्धिंगुरुत्वेनलाघवान्मलसंक्षयम् । मलायनानांवुद्ध्येतसङ्गोत्सर्गादतीनिच ॥ ४१ ॥

यदि मलमार्ग भारी हों तो मल बढे हुए जानना और मलमार्गोंके हलकेपनसे मलका क्षय जानना चाहिये । अथवा यों कहिये कि मलमार्गोंसे मल अधिक निकले तो मल बढाहुआ समझे और अत्यन्त कम होनेसे मलकी क्षीणता जाने ॥ ४१ ॥

साध्य रोगकी चिकित्सा करे ।

तान्दोषलिंगैरादिश्यव्याधीन्साध्यानुपाचरेत् । व्याधिहेतुप्रतिद्वन्द्वैर्मात्राकालौविचारयेत् ॥ ४२ ॥

वैद्यको उचित है कि दोषोंके चिह्नोंसे रोगको समझकर जो साध्य रोग हैं उनमें रोगसे और रोगके कारणसे विपरीत गुणवाली चिकित्सा मात्रा और कालको विचारकर करे ॥ ४२ ॥

विषमस्वस्थवृत्तानामेतेरोगास्तथापरे ।
जायन्तेऽनातुरस्तस्मात्स्वस्थवृत्तपरोभवेत् ॥ ४३॥

जो मनुष्य स्वस्थ अवस्थामें ही अपनी आरोग्यताकी रक्षाका यत्न नहीं रखता उसको यह रोग तथा अन्यान्य रोग होतेहैं इसलिये अपने स्वास्थ्यकी रक्षामें सदैव सावधान रहना चाहिये ॥ ४३ ॥

दोष दूर करने (शोधन) का समय ।

माधवप्रथमेमासिनभस्यप्रथमेपुनः ।
सहस्यप्रथमेचैवहारयेद्दोषसञ्चयम् ॥ ४४ ॥

स्निग्धस्विन्नशरीराणामूर्ध्वञ्चाधश्चबुद्धिमान् । वस्तिकर्मततःकुर्य्यान्नस्तःकर्मचबुद्धिमान् ॥ ४५ ॥ यथाक्रमंयथायोगमतऊर्ध्वंप्रयोजयेत् । रसायनानिसिद्धानिवृष्ययोगांश्चकालवित् ॥ ॥४६॥रोगास्तथानजायन्तेप्रकृतिस्थेषुधातुषु । धातवश्चाभिवर्द्धन्तेजराचान्त्यमुपैतिच ॥ ४७ ॥ विधिरेषविकाराणामनुत्पत्तौनिदर्शितः । निजानामितरेषान्तुपृथगेवोपदिश्यते ॥ ४८ ॥

बुद्धिमान् मनुष्य चैत्र, श्रावण, मार्गशीर्ष, इन तीन महीनोंमें एक २ वार शरीरको स्नेहन और स्वेदन करके वमन, विरेचन आदिसे शरीरके और नस्य आदिसे मस्तकके दोष निकाले तथा वस्ति कर्म करे । यदि उचित समझे तो नसोंमेंसे रक्तस्राव करे। फिर यथाक्रम शरीरकी सत्ता ठीक होनेपर जैसे उचित हो वैसे रसायन और वृष्य योगोंको समय आदिको जाननेवाला वैद्य प्रयुक्त करे ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ इस प्रकार दोषोंको दूर करनेसे नीरोग मनुष्यके शरीरमें रोग उत्पन्न नहीं होते और

प्रकृतिमें स्थित हुई धातुएँ वृद्धिको प्राप्त होती हैं तथा बुढापा शीघ्र नहीं आता ४७॥ स्वस्थ मनुष्यकी आरोग्यताकी रक्षाके लिये यह विधि कहचुकेहैं । अब शारीरिक आगंतुक, मानसिक, रोगोंके विषयमें अलग कथन करतेहैं ॥ ४८ ॥

आगन्तुरोगोंका कारण ।

येभूताविषवाय्वग्निसंप्रहारादिसम्भवाः । नृणामागन्तवोरोगाः प्रज्ञातेष्वपराध्यति ॥ ४९ ॥ ईर्ष्याशोकभयक्रोधमानद्वेषादय-श्चये । मनोविकारास्तेऽप्युक्ताःसर्वेप्रज्ञापराधजाः ॥ ५० ॥

भूत, विष, वायु, अग्नि, प्रहार आदिसे उत्पन्नहुए रोगोंको आगंतुक रोग कहतेहैं। यह रोग मनुष्योंकी बुद्धिके दोषसे होतेहैं, अर्थात् किसी असावधानतासे होतेहैं यादि बुद्धिमान् विचारपूर्वक बचकर रहे तो यह रोग नहीं होते । इन रोगोंमें बुद्धिका दोष होनेसे इनको प्रज्ञापराधज कहाजाताहै ॥४९॥ और ईर्ष्या, शोक, भय, क्रोध, मान, द्वेष आदि सब मनके विकार (मानसिक रोग) भी बुद्धिके दोषसे ही होतेहैं॥५०॥

आगन्तुरोगोंकी शान्ति ।

त्यागःप्रज्ञापराधानामिन्द्रियोपशमःस्मृतिः । देशकालात्मवि-ज्ञानंसद्वृत्तस्यानुवर्त्तनम्॥५१ ॥आगन्तूनामनुत्पत्तावेषमार्गो निदर्शितः । प्राज्ञःप्रागेवतत्कुर्य्याद्धितंविद्यात्तदात्मनः ॥५२॥ आप्तोपदेशःप्राज्ञानांप्रतिपत्तिश्चकारणम् । विकाराणामनुत्प-त्तावुत्पन्नानाञ्चशान्तये ॥ ५३ ॥

इन रोगोंमें बुद्धिके कुविचारोंका त्याग, इन्द्रियोंको वशमें रखना,शास्त्रोंके उपदेशोंका स्मरण, देश काल और आत्माका ज्ञान,अच्छे महात्माओंके सुयोग्य आचरणोंका सेवन,यह आगंतुक रोगोंके न होनेका मार्ग दिखायाहै अर्थात् इन आचरणोंके सेवनसे आगंतुक रोग होतेही नहीं । इसलिये बुद्धिमान्को आत्माके हितकार्यका प्रथमसे ही सेवन करना चाहिये ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ प्रामाणिक भद्रपुरुषोंके उपदेश और प्राज्ञपुरुषोंके सिद्धांत पर चलना आगन्तुक विकारोंको उत्पन्न नहीं होनेदेता और उत्पन्नहुए विकारोंकी शांति करताहै ॥ ५३ ॥

दूषित पुरुषके संगके दोष ।

पापवृत्तवचःसत्त्वाःसूचकाःकलहप्रियाःमर्मोपहासिनोलुब्धाः परवृद्धिद्विषःशठाः॥ ५४॥ परापवादरतयः परनारीप्रवेशिनः । निर्घृणास्त्यक्तधर्माणःपरिवर्ज्यानराधमाः ॥ ५५ ॥

पापके आचरणवाले ,पापयुक्त वाक्य कहनेवाले, पापी मनवाले, झूठे, दंभी, कलहप्रिय, दूसरोंके चित्तोंको दुःखप्रद हास्य करनेवाले, अतिलोभी, पराई समृद्धिको देखकर जलनेवाले, शठ, पराई निंदामें रत रहने वाले, परस्त्रीगामी, निर्दयी, धर्मसे विहीन ऐसे अधम मनुष्योंका संग कभी नहीं करना चाहिये ॥ ५४ ॥ ५५ ॥

सेवन करने योग्य पुरुष।

बुद्धिविद्यावयःशीलधैर्य्यस्मृतिसमाधिभिः । वृद्धोपसेविनो वृद्धाःस्वभावज्ञागतव्यथाः ॥ ५६ ॥ सुमुखाःसर्वभूतानांप्रशान्ताःशंसितव्रताः । सेव्याःसन्मार्गवक्तारःपुण्यश्रवणदर्शनाः ॥ ५७ ॥

जो मनुष्य बुद्धि, विद्या, अवस्था, शीलता, धैर्य, स्मृति, समाधि, इन गुणोंसे युक्त हो तथा वृद्ध पुरुषोंकी सेवा कियाहुआ हो और स्वयं भी योग्य या वृद्ध हो, जिसको दुनियाके हाल मालूम हों, जिसके चित्तमें ईर्ष्या आदि विकार न हों, उत्तम सत्य, मीठे वाक्य बोलनेवाला हो, जो सबसे शांतिपूर्वक वर्तावबाला हो, और जिनका शुद्ध आचार हो तथा अच्छे मार्गका उपदेश करनेवाला हो जिसका दर्शन पुण्यकारक हो, ऐसे भद्रपुरुषका संग अवश्य करना चाहिये ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

भोजन आदिमें नियम।

आहाराचारचेष्टासुसुखार्थीप्रेत्यचेहच । परंप्रयत्नमातिष्ठेद्बुद्धिमान् हितसेवने ॥ ५८ ॥ ननक्तंदधिभुञ्जीतनचाप्यघृतशर्करम् । नामुद्गसूपंनाक्षौद्रंनोष्णंनामलकैर्विना ॥ ५९ ॥ अलक्ष्मीदोषयुक्तत्वान्नक्तन्तुदधिवर्जितम् । श्लेष्मणंस्यात्ससर्पिष्कंदधिमारुतसूदनम् ॥६०॥ नचसन्धुक्षयेत्पित्तमाहारञ्च विपाचयेत् । शर्करासंयुतंदद्यात्तृष्णादाहनिवारणम् ॥ ६१ ॥ मुद्गसूपेनसंयुक्तंदद्याद्रक्तानिलापहम् । सुरसश्चाल्पदोषश्चक्षौद्रयुक्तंभवेद्दधि ॥ ६२ ॥ उष्णंपित्तास्रकंदोषान्धात्रीयुक्तन्तुनिर्हरेत् । ज्वरासृक्पित्तवीसर्पकुष्ठपाण्ड्वामयभ्रमान् ॥६३॥ प्राप्नुयात्कामलाञ्चोग्रांविधिंहित्वादधिप्रियइति ॥६४॥

बुद्धिमान् मनुष्य इस लोक और पर लोकके सुखकी इच्छा करताहुआ हितकारक आहार विहारका यत्नसे सेवन करताहै ॥ ५८ ॥ रात्रिके समय दही न खावे ।

इसी प्रकार घी खांडके विना अथवा मूंग या आमलेके यूष विना, या शहतके विना मिलाये दही न खावे और गरम करके भी दही न खाय, रात्रिमें दही खानेसे लक्ष्मीका नाश होताहै इस लिये रात्रिको दही नहीं खाना चाहिये।घीयुक्त दही कफको करताहै और वायुको हरताहै और पित्तको कुपित नहीं करता, तथा भोजनको पचाताहै खांड मिलाकर दही खानेसे दाह और तृषा शांत होतेहैं।मूंगके यूषके साथ दही खानेसे वायु शांत होताहै। शहत मिली दही सुस्वाद होतीहै और उसमें कफका दोष क्षीण होजाताहै।गर्म दही रक्तपित्तको करतीहै।आमलेके यूषसे त्रिदोषको हरतीहैं। जो मनुष्य विना विधिसे दहीका सेवन करताहै उसको ज्वर, रक्तपित्त, विसर्प, कुष्ठ, पांडु, भ्रम, कामला, आदि रोग उत्पन्न होतेहैं ॥ ५९।६०।६१।६२।६३।६४॥

अध्यायका उपसंहार ।

अत्र श्लोकाः ॥

वेगावेगसमुत्थाश्चरोगास्तेषाञ्चभेषजम् । येषांवेगाविधार्य्याश्च मदर्थंयाद्धिताहितम् ॥उचितेचाहितेवर्ज्येसेव्येचानुचितेक्रमः । यथाप्रकृतिचाहारोमलायनगदौषधम् ॥६५॥ भविष्यतामनुत्पत्तौरोगाणामौषधञ्चयत् । वर्ज्याःसेव्याश्चपुरुषाधीमतात्मसुखार्थिना ॥ ६६ ॥ विधिनादधिसेव्यञ्चयेनयस्मात्तदात्रिजः । नवेगानूधारणेऽध्याये सर्वमेवावदन्मुनिरिति ॥ ६७ ॥

इति अग्निवेशकृततन्त्रेचरकप्रतिसंस्कृते न वेगान्धारणीयोध्यायः ॥

अब अध्यायका उपसंहार करतेहैं । इस अध्यायमें वेग रोकनेका निषेध, और वेगोंके रोकनेसे पैदाहुए रोग, एवं उनकी चिकित्सा रोकने योग्य वेग और मनुष्यके लिये हित तथा अहित,उचित अभ्यास करना और अनुचितका त्यागना और उनका क्रम, वातादि प्रकृतिके आहार, मलोंके मार्ग, रोगोंकी औषधी, जिससे रोग ही न प्रगट हों ऐसा क्रम, प्रगटहुए रोगोंकी औषध, आत्मसुखकी इच्छावाले बुद्धिमान्को सेवनीय और त्याज्य कर्म, विधिसे दहीका सेवन, इन सब बातोंको भगवान् पुनर्वसुजीने इस नवेगान् धारणीय अध्यायमें वर्णन कियाहै ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदीयसंहितायां पटियालाराज्यांतर्गतटकसालग्रामनिवासिवैद्यपंचानन वैद्यरत्न पं० रामप्रसादवैद्योपाध्यायविरचितप्रसादन्याख्यभाषाटीकायां नवेगान्धारणीयो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः ।

अथातइन्द्रियोपक्रमणीयमध्यायं व्याख्यास्याम इतिहस्माह भगवानात्रेयः ।

भगवान् आत्रेय कहतेहैं कि अब हम इन्द्रियोपकरणीय अध्यायकी व्याख्या करतेहैं ।

इन्द्रियोंका वर्णन तथा मनकी अनेकता ।

इहखलुपञ्चेन्द्रियाणिपञ्चेन्द्रियद्रव्याणि । पञ्चेन्द्रियाधिष्ठानानिपञ्चेन्द्रियार्थाः । पञ्चेन्द्रियाधिकारेअतीन्द्रियं पुनः मनः सत्त्वसंज्ञकश्चेत्याहुरेकेतदर्थात्मसम्पत्तदायत्तचेष्टम् ॥ चेष्टाप्रत्ययभूतमिन्द्रियाणाम् ॥१॥ स्वार्थेन्द्रियार्थसंकल्पव्याभिचरणाच्चानेकमेकस्मिन्पुरुषेसत्त्वम् । रजस्तमःसत्त्वगुणयोगाच्चन चानेकत्वंनानेकंह्येककालमनेकेषुप्रवर्त्तते ॥ २ ॥ तस्माच्चानेककालासर्वेन्द्रियप्रवृत्तिः । यद्गुणंचाभिक्ष्णंपुरुषमनुवर्त्तते सत्त्वंतत्सत्त्वमेवोपदिशान्तिऋषयोबाहुल्यानुशयात् ॥ ३ ॥ मनःपुरःसराणीन्द्रियाण्यर्थग्रहणसमर्थानिभवन्ति ॥ ४ ॥

पांच इन्द्रियें हैं । पाँच ही इन्द्रियोंके द्रव्य हैं । पांच इन्द्रियोंके अधिष्ठान हैं । और पांच ही इन्द्रियोंके विषय हैं । तथा पांच इन्द्रियोंकी बुद्धि हैं । ऐसा इन्द्रियाधिकारमें कहाहै । और मन अतीन्द्रिय है, कोई मनको सत्त्व भी कहतेहैं । मनविषय ही आत्माकी संपत्ति है तथा आत्माके और मनके सन्निकर्षसे चेष्टाएँ निर्वाहित हैं । ऐसे ही सब इन्द्रियोंकी चेष्टाका कारणभूत भी मन ही है । यदि कहें कि स्वार्थ, इंद्रियार्थ, और संकल्पकी पृथक्तासे एकही पुरुषमें अनेक मन हैं और सत्त्व, रज, तम, इन प्रकृतिके गुणोंसे भी मन अनेक हैं ऐसा प्रतीत होताहै । सो ठीक नहीं । क्योंकि एक पुरुष एक ही कालमें सब गुणोंमें या स्वार्थ आदि सब कार्योंमें प्रवृत्त नहीं होता । इसीलिये अनेक कालोंमें सब इंद्रियोंकी प्रवृत्ति

होतीहै अर्थात् जब चक्षु इंद्रियसे मनका संयोग होता तो देखताहै. जब श्रवणेन्द्रियसे संयोग होताहै तब सुनताहै । किन्तु एक ही कालमें सब इन्द्रियोंकी प्रवृत्ति नहीं होती और एक कालमें सब गुण ही पाए जातेहैं इसलिये मन एक है अनेक नहीं । जो गुण जिसके मनमें अधिकतासे निरंतर रहताहै उसके अनुसार ही ऋषिलोग उसकी वृत्तिको कथन करतेहें अर्थात् सत्त्वगुणकी अधिकतासे सतोगुणी, रजोगुणसे रजोगुणी, तमोगुणसे तमोगुणी वृत्ति कही जाती है । मनकी अनुगामिनी होकर इंद्रियें अपने अर्थको ग्रहण करनेमें समर्थ हो सकती हैं ॥ १-४ ॥

इन्द्रियोंके नाम द्रव्य और अधिष्ठान ।

तत्रचक्षुःश्रोत्रघ्राणंरसनंस्पर्शनामितिपञ्चेन्द्रियाणि ॥ पञ्चे-न्द्रियद्रव्याणिखंवायुर्ज्योतिरापोभूरिति । पञ्चेन्द्रियाधिष्ठा-नान्याक्षिणीकर्णौनासिकेजिह्वात्वक्चेति ॥ ५ ॥

चक्षु, श्रवण, घ्राण, रसन, स्पर्श यह पांच इंद्रियें हैं । और तेज, आकाश, पृथ्वी, जल, वायु, यह क्रमसे पांच इंद्रियोंके पांच द्रव्य हैं । आंख, कान, नासिका, जीभ, त्वचा, यह क्रमसे पांच इंद्रियोंके आधिष्ठान (रहनेके स्थान)हैं ॥ ५ ॥

इन्द्रियोंके विषयादि ।

पञ्चेन्द्रियार्थाःशब्दस्पर्शरूपरसगन्धाः ।
पञ्चेन्द्रियबुद्धयश्चक्षुर्बुद्ध्यादिकास्ताः ॥ ६ ॥

रूप, शब्द, गंध, रस, स्पर्श, यह क्रमसे पांचों इन्द्रियोंके अर्थ (विषय) हैं । देखनेकी बुद्धि, सुननेकी बुद्धि, गंधलेनेकी बुद्धि, रसज्ञानकी बुद्धि, स्पर्शकी बुद्धि यह क्रमसे पांच इंद्रियोंकी बुद्धि (बोध) हैं ॥ ६ ॥

पुनरिंद्रियेन्द्रियार्थसत्त्वात्मसन्निकर्षजाः ।
क्षणिकानिश्चयात्मिकाश्चेत्येतत्पञ्चपञ्चकम् ॥ ७ ॥

इन्द्रियबुद्धि यह (बोध, ज्ञान) इंद्रिय और उस इन्द्रियका अर्थ (विषय) तथा मन और आत्मा इन सबके सन्निकर्षसे होतीहैं । फिर वह बुद्धि क्षणिका और निश्चयात्मिका इन भेदोंसे दो प्रकारकी है । यह इंद्रियपंचकका पंचक कहागया अर्थात् एक २ इन्द्रियका एकएक पंचक होनेसे पांच पंचक कहेगयेहैं ॥ ७ ॥

अध्यात्मिकद्रव्यगण ।

मनोमनोरथोबुद्धिरात्माचेत्यध्यात्मद्रव्यगणसंग्रहःशुभाशुभ-प्रवृत्तिनिवृत्तिहेतुश्चद्रव्याश्रितंकर्मयदुच्यते क्रियेति ॥ ८ ॥

मन, मनके विषय, बुद्धि, आत्मा, यह अध्यात्मद्रव्योंके गणका संग्रह है। शुभ तथा अशुभ कार्योंमें प्रवृत्त और निवृत्त होनेका हेतु भी यही आध्यात्मिक द्रव्यगण है। द्रव्यके आश्रयीभूत जो कर्म है उसको क्रिया कहतेहैं ॥ ८ ॥

इन्द्रियोंमें विशेषता।

तत्रानुमानगम्यानांपञ्चमहाभूतविकारसमुदायात्मकानाम-पिसतामिन्द्रियाणांतेजश्चक्षुषिश्रोत्रेनभः घ्राणेक्षितिरापोर-सने स्पर्शनेऽनिलोविशेषेणोपदिश्यते ॥ ९ ॥

यह अनुमान द्वारा सिद्ध है कि पांचों इन्द्रियां पांच महाभूतोंके ही विकार हैं। इनमें तेज नेत्रोंमें, आकाश कानोंमें, और नासिकामें पृथ्वी, जीभमें जल, स्पर्शमें वायु, विशेषतासे रहतेहैं ॥ ९ ॥

तत्रयद्यदात्मकमिन्द्रियंविशेषात्तदात्मकमेवार्थमनुधावति तत्स्वभावाद्विभुत्वाच्च ॥ १० ॥

इनमें जो इंद्रिय जिस महाभूतसे बनीहुई है वह उसीके स्वभाववाली होनेसे और विभु होनेसे उसी महाभूतके गुणको ग्रहण करनेवाली होतीहै ॥ १० ॥

इन्द्रियोंके विपरीत होनेका कारण।

तदर्थातियोगायोगमिथ्यायोगात्समनस्कमिन्द्रियंविकृतिमाप-द्यमानंयथास्वबुद्ध्युपघातायसम्पद्यते ॥११॥ समयोगात्पुनः प्रकृतिमापद्यमानंयथास्वंबुद्धिमाप्याययति ॥ १२ ॥

इनके विषयोंका अतियोग, अयोग, मिथ्यायोग होनेसे मन और इन्द्रिय विकृत होजातेहैं और बुद्धि भी नाशको प्राप्त होती है। ऐसे ही ठीक योग होनेसे मन और इंद्रिय ठीक प्रकृतिस्थ रहतेहैं और बुद्धि भी बढतीहै ॥ ११ ॥ १२ ॥

मनका विषय।

मनसस्तुचिन्त्यमर्थः।तत्रमनसोबुद्धेश्चतएवसमानातिहीनमि-थ्यायोगाःप्रकृतिविकृतिहेतवोभवन्ति ॥ १३ ॥ तत्रेन्द्रियाणां समनस्कानामनुपतप्तानामनुपतापायप्रकृतिभावेप्रयतित-व्यमेभिर्हेतुभिः ॥ १४ ॥

मनका विषय चिंतन करनाहै। यहां पर मन और बुद्धिका ठीक योग होना प्रकृति (तंदुरुस्ती) का कारण है और अतियोग, मिथ्यायोग, अयोग, विकृति व्याधिका कारण है। इसलिये जिस योगसे मन और इंद्रिय अपनी शक्तिसे

वृत्त न हों और अपने ठीक स्वभावमें रहें इस योगका अनुसरण करना चाहिये ॥ १३ ॥ १४ ॥

प्रकृति स्थिर रखनेके हेतु ।

तद्यथासात्म्येन्द्रियार्थसंयोगेनबुद्ध्यासम्यगवेक्ष्यावेक्ष्यकर्मणां सम्यक्प्रतिपादनेनदेशकालात्मगुणाविपरीतोपसेवनेनचेति ॥ तस्मादात्महितंचिकीर्षतासर्वेणसर्वंसर्वदास्मृतिमास्थायसद्वृत्तमनुष्ठेयम्। तद्ध्यनुष्ठानंयुगपत्सम्पादयत्यर्थद्वयमारोग्यमिन्द्रियविजयश्चेति ॥ १५ ॥

इन नीचे कहेहुए हेतुओंसे असात्म्य विषयोंका सेवन न करना, और आत्माके अनूकूल अर्थोंका सेवन करना, इस लिये आत्महितच्छावालेको सब कार्योंको विचारपूर्वक देश, काल, और आत्माके अनूकूल जानकर सेवन करना चाहिये सत्कार्योंका सेवन करे । ऐसा करनेसे आरोग्यताका लाभ और इन्द्रियोंका वल ठीक रहसकताहै ॥ १५ ॥

सेवनयोग्य सत्कार्योंका वर्णन ।

तत् सद्वृत्तमखिलेनोपदेक्ष्यामः । तद्यथा ॥ देवगोब्राह्मणगुरुवृद्धसिद्धाचार्यानर्चयेत् । अग्निमनुचरेत् । ओषधीःप्रशस्ताधारयेत् ॥ द्वौकालावुपस्पृशेत् ॥ मलायतनेष्वभीक्ष्णंपादयोश्चवैमल्यमादध्यात् । त्रिपक्षास्यकेशश्मश्रुलोमनखान्संहारयेत् । नित्यमनुपहतवासाःसुगन्धिः स्यात् ॥ १६ ॥

सो अव हम उसी संपूर्ण सद्वृत्तका कथन करतेहैं वह ऐसा है कि देवता, गौ, ब्राह्मण, गुरु, वृद्धपुरुष, सिद्ध, आचार्य, इनका पूजन करे । अग्निमें हवन करे । पवित्र उत्तम ओषधियोंको धारण करे । प्रातःकाल और सायंकाल जलसे आचमन आदि करे (संध्या करे) मलमार्ग और हाथ पांवोंको पवित्र रखना चाहिये, एक पक्षमें (१५ दिनमें) तीन वार क्षौरकर्म दाढी नख आदि ठीक करावे मैले और फटे वस्त्रोंको न पहने । मनको प्रसन्न रक्खे । उत्तम सुगंधीको धारण करे ॥ १६ ॥

साधुवेशःप्रसाधितकेशोमूर्द्धश्रोत्रपादतैलनित्योधूमपःपूर्वाभिभाषीसुमुखः । दुर्गेष्वभ्युपपत्ताहोतायष्टादाताचतुष्पथानांनमस्कर्त्ताबलीनामुपहर्त्ताअतिथीनांपूजकःपितृणांपिण्डदःकाले-

हितमितमधुरार्थवादी ।वश्यात्मधर्मात्माहेतुवीर्य्यःफलेष्वनीर्षुः। निश्चिन्तोनिर्भीकोधीमान्ह्रीमान्महोत्साहःदक्षःक्षमावान्धार्मिकःआस्तिकःविनयबुद्धिविद्याभिजनवयोवृद्धसिद्धाचार्य्याणामुपासिता । छत्रीदण्डीमौनीसोपानत्कोयुगमात्रदृग्विचरेत् ॥ १७ ॥

श्रेष्ठ पुरुषोंकी समान वेष धारण करे। केशोंको साफ और संवारकर रक्खे। मस्तक, कान, नाक, और पैरोंके तलुवोंमें नित्य तैल लगायाकरे,धूमपान करे, जब कोई भले पुरुष घर आवें उनका आदर सत्कारसे सम्मान करे अथवा जिनसे मिलें पहले ही मीठे वचनोंसे प्रसन्न करले, भयसे व्याकुलको धैर्य देवे, कठिन कार्योंकी प्राप्तिके लिये होम, यज्ञ, दान,इनको करे, चतुष्पथको नमस्कार करे, वलिआदिसे अग्निदेवता,भद्रपुरुष और दीन आदिकोंको प्रसन्न रक्खे। अतिथियोंका पूजन करे, पितरोंको पिंड आदि देवे, समय विचारकर हितयुक्त और मधुर अर्थवाला संभाषण करे, आत्माको वशमें रखनेमें तत्पर रहे, धर्मात्मा होय, जिसकार्यमें सबका भला हो वह करे, कार्यको कर फलके लिये ईर्षा न करे, निश्चित रहे, भयभीत न हो, बुद्धि, लज्जा, उत्साह, चातुरी, क्षमा इनको धारण करे।धर्म करे, आस्तिकतावाला होय,और विनय,बुद्धि,विद्या, इनमें जो वृद्ध हों और सिद्ध तथा आचार्य हों उनकी उपासना,सेवा करे, छत्री, यष्टि, पगडी, उपानह इनको धारण करे, मार्ग चलते समय आगेको चार हाथ मार्ग देखकर चले ॥ १७ ॥

मङ्गलाचारशीलःकुचैलास्थिकण्टकामेध्यकेशतुषोत्करभस्मकपालस्नानबलिभूमीनांपरिहर्त्ताप्राक्श्रमाद्व्यायामवर्जीस्यात् । सर्वप्राणिषुबन्धुभूतःस्यात्क्रुद्धानामनुनेताभीतानामाश्वासयितादीनानामभ्युपपत्ता । सत्यसन्धः । सामप्रधानः। परपरुषवचनसहिष्णुःअमर्षघ्नः । प्रशमगुणदर्शी ॥ १८ ॥

सदाही मंगलवस्तुओं और मंगल(शुभ)कार्योंका सेवन करे,खराव वस्त्र,अस्थि,कांटे अमेध्य(विष्ठाआदि),केश, तुष,कंकड आदि, भस्म, ठीकडे वाली भूमिमें और जहां स्नान करनेका जल वहरहाहो तथा जिस भूमिमें बलि दी हो एवं श्मशान आदि भूमिमें न जावे। थकावट होनेसे पहले कसरत छोडदेवे अर्थात् अत्यंत व्यायाम न करे। सब प्राणियोंसे बंधुओंकी समान प्रेम रक्खे क्रोधयुक्तोंको नम्रतासे शांत करले। भयभीतोंको आश्वासन करे अर्थात् दिलासा देवे,दीन पुरुषों पर दया करे,सत्यभा-

पणमें तत्पर रहे, और साम, दान, दंड, भेद, इन चारोंमें सामगुणका अवलम्बन करे, पराये कहेहुए कठोर वचनोंको सहन करनेवाला होय, आप क्रोध और अहंभाव न लावे, उत्तम शांतिदायक गुणोंका अवलम्बन करे ॥ १८ ॥

अकर्तव्योंका वर्णन ।

रागद्वेषहेतूनांहन्ता ॥ नानृतंब्रूयात् ।नान्यस्वमाददीत । नान्यस्त्रियमभिलषेत् । नान्यश्रियंनवैरंरोचयेत् । नकुर्यात् पापंन पापेऽपिपापीस्यात् । नान्यदोषान्ब्रूयात् । नान्यरहस्यमागमयेत् ॥ १९ ॥ नाधार्मिकैर्नरेन्द्रद्विष्टैःसहासीत । नोन्मत्तैर्नपतितैर्नभ्रूणहन्तृभिर्नक्षुद्रैर्नदुष्टैः ।नदुष्टयानान्यारोहेत् । नजानुसमंकठिनमासनमध्यासीत ॥२० ॥नानास्तीर्णमनुपाहितमविशालमसमंवाशयनंप्रपद्येत । नगिरिविषममस्तकेष्वनुचरेत । नद्रुममारोहेत । न जलोग्रवेगमवगाहेत । कुलच्छायां नोपासीत । नाग्न्युत्पातमभितश्चरेत् । नोच्चैर्हसेत् । नशब्दवन्तंमारुतंमुञ्चेत् । नासंवृतमुखो जृम्भांक्षवथुंहास्यंवाप्रवर्त्तयेत् । ननासिकांकुष्णीयात् । नदन्तान्विघट्टयेत् । ननखान्वादयेत् । नास्थीन्यभिहन्यात् । नभूमिंविलिखेत् । नाछिंद्यात्तृणम् ॥ नलोष्टंमृद्नीयात् ॥ २१ ॥ नविगुणसङ्गैश्चेष्टेत । ज्योतींष्यग्निश्चामेध्यमशस्तञ्चनाभिवीक्षेतनहुंकुर्याच्छवम् । नचैत्यध्वजगुरुपूज्याशस्तच्छायामाक्रामेत् । नक्षपास्वमरसदनचैत्यचत्वरचतुष्पथोपवनश्मशानायतनान्यासेवेत । नैकः शून्यगृहंनचाटवीमनुप्रविशेत् । नपापवृत्तान्स्त्रीयमित्रभृत्यान्भजेत् । नोत्तमैर्विरुध्येत्नावरानुपासीतनाजिह्मंरोचयेत् । नाऽनार्य्यमाश्रयेत् ।नभयमुत्पादयेत् । नसाहसातिस्वप्नप्रजागरस्नानपानाशनान्यासेवेत । नोर्द्ध्वजानुश्चिरंतिष्ठेत् । नव्यालानुपसर्पन्नदंष्ट्रिणःनविषाणिनः । पुरोवातातपावश्यायातिप्रवाताअप्रातकालेनारभेत । नानिभृतोऽग्निमुपासीत ।

नोच्छिष्टोनाधःकृत्वाप्रतापयेत् । नाविगतक्लमोमानाप्लुतवदनोननग्नउपस्पृशेत् । नस्नानशाटयास्पृशेदुत्तमाङ्गम् । नकेशाग्राण्यभिहन्यात् । नोपस्पृशेतएववाससीविधृयात् । नास्पृष्ट्वारत्नाज्यपूज्यमंगलसुमनसोऽभिनिष्क्रामेत् । नपूज्यमंगलान्यपसव्यंगच्छेत् । नेतराण्यनुदक्षिणम् ॥ २२ ॥

राग और द्वेषके कारणोंको न रहनेदे । झूठ न बोले । पराई वस्तु न लेवे । परस्त्रीकी कभी भी इच्छा न करे । परसंपत्ति देखकर डाह न करे । किसीसे विरोध न करे । पाप न करे । पापीसे भी पाप न करे । किसीके भी दोष अपने मुखसे न कहे किसीकी भी गुप्त बात को प्रगट न करे ॥ १९ ॥ अधर्मी और राजद्रोही पुरुषके पास भी न जाय । उन्मत्त, पतित, भ्रूणहत्यारे (गर्भगिरानेवाले), और क्षुद्र तथा दुष्ट पुरुषोंका संग न करे । खराब घोडे आदिपर सवारी न करे । जानु (गोड़े,) औंधे करके अथवा जिस तरह बैठनेसे कष्ट हो वैसे न बैठे ॥ २० ॥ जिस शय्यापर वस्त्र न बिछा हो, और ओढनेको कपडा न हो, तथा जो लम्बी चौडी ठीक न हो, और नष्ट भ्रष्ट हो तथा टेढी हो ऐसी शय्यापर शयन न करे । पर्वत और पर्वतोंकी खराब घाटियोंपर न चढे । वृक्षपर न चढे । अधिक वेगवाली चढी हुई नदीमें स्नान न करे । अपने कुलकी छाया या बेरीके वृक्षकी छायामें न बैठे । अग्नि लगे स्थानमें न जाय ऊंचे स्वरसे न हँसे । सभा आदिमें अपान वायुका शब्द न करे । मुखको विना ढके जंभाई, छींक, हास्य न करे । नाकको न कुरेले । दांतोंको न कटकटावे । नखोंको न बजावे, हड्डियोंको हनन न करे, (मटकावे नहीं), पृथ्वीको न कुरेले । तिनके न तोडा करे । वृथा मट्टीके डेले न फोडाकरे ॥ २१ ॥ दुष्टाचारी मनुष्योंका संग अथवा उनसे कोई व्यवहार न करे । तेज, ज्योति, अग्नि, पवित्र और निंदितोंके सामने न देखे । मुर्देको देखकर हुंकार न करे । चैत्यस्थान ध्वजा, गुरु, माता पिता आदि पूज्य जनोंकी छायाको और खराब छायाको उल्लंघन न करे । रात्रिमें—देवालय, चैत्य, आंगन, चतुष्पथ, बाग, श्मशान और हिंसाकी भूमिमें न रहे । शून्य स्थान अथवा शून्य वनमें अकेला न जाय । पापवृत्तिवाले—स्त्री, मित्र, नौकर, आदिको अपने पास न रक्खे । भद्रपुरुषोंसे विरोध न करे । कुटिल पुरुषका संग न करे । कपटी पुरुषसे मेलजोल न करे । खोटे पुरुषका आश्रय न लेय । किसीको भी भय न देवे । बहुत साहस बहुत सोना, बहुत जागना, बहुत स्नान करना, बहुत पानी और बहुत भोजन करना उचित नहीं, अर्थात् इनको बहुत न करे । जानुओंको ऊपरको कर

बडी देर तक न बैठे । सांप सिंहादि, और सींगवाले, जीवोंके पास न जाय, पूर्वकी वायु, सूर्यकी धूप, हिम, वहुत वेगवाली पवन इनको त्यागदेवे । कलह न छेडे । दावानल आदि अग्निके समीप न जाय । उच्छिष्ट होकर या शय्या आदिके नीचे रख अग्नि न सेके । जवतक थकावट दूर होकर पसीना न सूखजाय तवतक स्नान न करे । नंगा होकर न न्हावे । जिस कपडेसे स्नान कियाहो उससे मस्तकादि उत्तम अंगको न पोंछे । केशोंके अग्रभागको पकडकर न झटके । जिस कपडेसे शरीर पोछा हो या स्नान किया हो उस गीले वस्त्रको न पहिरे । रत्न, घृत, पूज्य और मंगलवस्तुओंका स्पर्श करके प्रसन्न मन हो घरसे निकले । पूज्य और मंगल वस्तुओंको वांई ओर करकें न जाय । ऐसेही अपूज्य और अमंगलको दाहनी ओर करके न जाय ॥ २२ ॥

भोजन करनेके नियम ।

नारत्नपाणिर्नास्नातोनोपहतवासानाऽजपित्वानाहुत्वादेवताभ्योऽनारूप्यपितृभ्योनाऽदत्त्वा गुरुभ्योनातिथिभ्योनोपाश्रितेभ्योनापुण्यगन्धोनामालीनाप्रक्षालितपाणिपादवदनोनाऽशुद्धमुखोनोदङ्मुखोनविमनाभक्ताशिष्टाशुचिक्षुधितपरिचरोनापात्रीष्वमेध्यासुनादेशनाऽकालेनाकीर्णेनाऽदत्त्वाग्रमग्नयेनाप्रोक्षितंप्रोक्षणोदकैर्नमन्त्रैरनभिमान्त्रितंनकुत्सयन्नकुत्सितंनप्रतिकूलोपहितमन्नमाददीतानपर्य्युपितमन्यत्रमांसहरितशुष्कशाकफलभक्ष्येभ्यः ॥ २३ ॥

हाथोंमें रत्नको धारण किये विना, न्हाये विना, मैले तथा फटे कपडे पहनकर, विना जपाकिये, हवन किये विना, देवताओंको अर्पण किये विना, पितृजनों, गुरुजनों और अतिथियोंको दिये विना, अपने आश्रित पुरुषोंको दिये विना, पवित्र चन्दन गंध आदि धारण किये विना, माला पहने विना, हाथ, पांव, मुख धोये विना अशुद्ध मुखसे, उत्तरको मुख करके भोजन न करे । और अपमानित, अभक्त, दुष्ट, अपवित्र, और भूखे नौकरके पास रहते हुए, अशुद्ध पात्रमें, निंदित स्थानमें, विना समय, वहुत मनुष्योंमें अकेले, अग्निमें आहुति डाले विना, प्रोक्षणोदकसे प्रोक्षण किये विना, मंत्रोंसे अभिमंत्रित किये विना, भोजनकी निंदा करते हुए, निंदित पदार्थोंको, शत्रुके हाथसे दियेको ऐसे भोजनको न करे । और मांस, हरितपर्णा, सूखे शाक, फलोंसे और पेडा आदि मिठाईसे सिवाय वासी पदार्थ न खाय॥२३॥

नाऽशेषभुक्स्यादन्यत्रदधिमधुलवणसक्तुसर्पिर्भ्यः। ननक्तंदधि भुञ्जीत । नसक्तूनेकानश्नीयात् ॥ २४ ॥ ननिशिनभुक्त्वान वहूनद्विर्नोदकान्तारितान् ॥ २५ ॥

भोजन करेत समय दधि, मधु, लवण, और सत्तुओंके विना सव पदार्थ थोडे२ छोडकर भोजन करने चाहिये ॥ रातको दही न खाय । केवल सत्तू (घी मीठे विना) न खाय । रात्रिको और भोजनके पीछे तथा वहुत किस्मके मिलेहुए सत्तू न खाय । दो वार सत्तू न खाय । सूखे सत्तू न फांके ॥ २४ ॥ २५ ॥

नछित्त्वाद्विजैर्भक्षयेत् । नाऽनृजुःक्षुयान्नाद्यान्नशयीत। नवेगितोऽन्यकार्य्यःस्यात्। नवाय्वग्निसलिलसोमार्कद्विजगुरुप्रतिमुखंनिष्ठीविकावातवर्च्चोमूत्राण्युत्सृजेत् । नपन्थानमवमूत्रयेन्नजनवतिनान्नकाले नजप्यहोमाध्ययनबलिमङ्गलक्रियासुश्लेष्मसिंघाणकंमुञ्चेत । नस्त्रियमवजानीत । नातिविश्रम्भयेत् नगुह्यमनुश्रावयेन्नाधिकुर्य्यात्। नरजस्वलांनातुरांनामेध्यांनाशस्तांनानिष्टरूपाचारोपचारांनादक्षिणांनाकामांनान्यकामां नान्यस्त्रियंनान्ययोनिंनायोनौनचैत्यचत्वरचतुष्पथपवनश्मशानायतनसलिलौषधिद्विजगुरुसुरालयेषुनसन्ध्ययोर्नातिनानिषिद्धतिथिषुनाशुचिर्नजग्धभेषजोनाप्रणीतसङ्कल्पोनानुपस्थितप्रहर्षोनाभुक्तवान् नात्यशितोनविषमस्थोनमूत्रोच्चारपीडितोन श्रमव्यायामोपवासक्रमाभिहतोनाऽरहसिव्यवायंगच्छेत् ॥२६॥

दांतोंसे कुचले विना न खाय । शरीरको टेढा करके छींकना, खाना, सोना उचित नहीं । मलादिकके वेगको रोककर कोई कार्य न करे । वायु, अग्नि, जल, चंद्रमा, सूर्य, ब्राह्मण, गुरु, इनके सामने थूक, अपानवायुका त्याग, मलत्याग, मूत्र, यह न करे । मार्गमें मल मूत्र न करे । वहुत मनुष्योंमें भोजनके समय, जप होम, पठन, पाठन, वलि, तथा मंगलकार्यमें थूक और नाककी मैलको न त्यागे । स्त्रीको वहुत अपमानित न करे और उसका अत्यंत विश्वास भी न करे तथा अपनी गुप्त वातोंको भी स्त्रीसे प्रगट न करे और कुल अपने कारोवारकी मालिक भी न वनावे। ऐसे ही रजस्वला, रोगिणी, अशुद्ध अश्रेष्ठा, कुरूपा, खोटे आचारवाली, कुबुद्धिनी विना इच्छावाली, दूसरे पुरुषकी इच्छावाली, परस्त्री, इनसे मैथुन न करे । स्त्रीकी

योनिसे विना अयोनिमैथुन न करे। चैत्य, चत्वर (देवालय मंदिर आदि), चौराहा उपवन, श्मशान, वधस्थान, जल, औषधीदेनेके स्थान, द्विजस्थान, गुरुस्थान, देवमंदिर, इन स्थानोंमें भी स्त्रीगमन न करे। दोनों संध्याओंमें एकादशी आदि निषिद्ध तिथिमें, अपवित्र अवस्थामें, औषधी खाकर, विना निश्चय किये, विना कामेच्छा प्रगटहुए, भूखे, वहुत भोजन करके विषमरीतिसे, मलमूत्रके वेगमें, थकाहुआ, व्यायाम करके, व्रत करके, आलस्य युक्त भी मैथुन न करे। एकांत स्थानके विना भी स्त्रीसंग न करे॥ २६॥

अध्ययनकालके नियम।

नसतोनगुरून्परिवदेत्। नाशुचिरभिचारकर्मचैत्यपूज्यपूजाध्ययनमभिनिवर्त्तयेत्। नविद्युत्स्वनार्त्तवीष्वनाभ्युदितासुदिक्षु नाग्निसंप्लवेनभूमिकम्पेनमहोत्सवेनोल्कापातेनमहाग्रहोपगमनेनष्टचन्द्रायांतिथौनसन्ध्ययोर्नमुखाद्गुरोर्नावपतितंनातिमात्रंनतान्तंनविस्वरंनानवस्थितपदंनातिद्रुतंनविलम्बितंनातिक्लीवंनात्युच्चैर्नातिनीचैः स्वरैरध्ययनमभ्यसेत्। नातिसमयंद्रुह्यात्। ननियमंभिन्द्यात्॥ २७॥

श्रेष्ठ महात्माओंकी और गुरुजनोंकी निन्दा न करे। विना शुद्ध हुए मंत्र तंत्र, देवमंदिर पीपल आदिका पूजन, पूज्योंका पूजन, विद्याध्ययन, न करे। अकाल विद्युत्पात होनेपर, दिग्दाह होनेपर भूकंप होनेपर, वडे उत्साहमें, उल्कापातके समय, सूर्य चंद्रके ग्रहणमें, अमावस्याको, दोनों संध्याओंमें, ऐसे ही गुरुमुखसे सिवाय, अत्यंत मात्रासे, वहुत जोरसे, खराव स्वरसे, पदोंको तोड फोड कर वहुत जल्दी २, वहुत देरमें, वहुत दुर्वलतासे, वहुत ऊंचे स्वरसे, वहुत नीचे स्वरसे, अध्ययन न करे। पढनेके समयको व्यर्थ न खोवे। पढनेके नियमको न विगाडे॥ २७॥

अन्य नियम।

न नक्तंनादेशेचरेत्। नसन्ध्यास्वभ्यवहाराध्ययनस्त्रीस्वप्नसेवी स्यात्। नबालवृद्धलुब्धमूर्खक्लिष्टक्लीवैःसहसख्यंकुर्यात्। न मद्यद्यूतवेश्याप्रसङ्गरुचिःस्यात्। नगुह्यंविवृणुयात्। नकञ्चिदवजानीयात्। नाहंमानीस्यात्। नदक्षोनादक्षिणोनासूयको नदक्षिणान्परिवदेत्। नगवांदण्डमुद्यच्छेत्। नवृद्धान्नगु-

रूक्षगणान्ननृपान्नाधिक्षिपेत्नचातिब्रूयात् ॥ नबान्धवानुरक्तकृच्छ्राद्वितीयगुह्यज्ञान्बहिःकुर्यात् ॥ २८ ॥

रात्रिके समय और खराव स्थानमें न फिरे । संध्याके समय भोजन, अध्ययन, मैथुन, और शयन, न करे । वालक,अतिवृद्ध,लोभी, मूर्ख, रोगी, और नपुंसकोंसे मित्रता न करे। मद्यपान,जूआ और वेश्याओंमें कभी रुचि न करे।घरकी गुप्त वातें किसीसे न कहे।किसीका भी अपमान न करे।अहंकार (मैं वडा हूं वा वडा गुणी हूं) न करे। चतुराई रहित, सूम, तथा किसीको दोष लगानेवाला न होवे। ब्राह्मण आदिकोंकी निंदा न करे । गौओंपर डंडा न चलावे । वृद्धपुरुषों, गुरुजनों, वहुत दलवालों तथा राजाओंकी निंदा आदि न करे । न इनके सामने वहुत वोले । अपने वांधवोंको अपने प्रेमियोंको आपत्तिमें सहायता करनेवालोंको, अपने रहस्य जाननेवालोंको, न छोडै ॥ २८ ॥

विशेष उपयोगी नियम ।

नाधीरोनात्युच्छ्रितसत्त्वःस्यात्। नाभृतभृत्योनविश्रब्धास्वजनोनैकःसुखी । नदुःखशीलाचारोपचारोनसर्वविश्रम्भी ।नसर्वाभिशंकी । नसर्वकालविचारी ॥ नकार्य्यकालमतिपातयेत्। नापरीक्षितमभिनिविशेत् । नेन्द्रियवशगःस्यात् ॥ २९ ॥

धैर्यरहित और वडा सात्त्विक न वनै। नौकरोंकी नौकरी न रक्खे। आदमियोंसे विश्वासरहित भी न वने । कुटुंवके विना अकेला ही सुख न भोगे । और दूसरोंको दुःख मिलनेवाला आचरण न करे । सभीका विश्वास भी न करे । प्रत्येक मनुष्यके झूठा होनेका भ्रम भी न करे । सदा सोचता भी न रहे । कामके समयको व्यर्थ नष्ट न करे । विना जाने कार्यमें प्रवेश न करे। इंद्रियोंके वशमें न होजाय ॥ २९ ॥

नचञ्चलंमनोभ्रामयेत् । नबुद्धीन्द्रियाणामतिभारमादध्यात्॥ नचातिदीर्घसूत्रीस्यात् । नक्रोधहर्षावनुविदध्यात् । नशोकमनुविशेत् । नसिद्धावौत्सुक्यंगच्छेन्नासिद्धौदैन्यम्॥प्रकृतिमभीक्ष्णंस्मरेत् ।हेतुप्रभावनिश्चितःस्यात् । हेत्वारंभानित्य। नकृतमित्याश्वसेत् ॥ नवीर्यंजह्यात् । नापवादमनुस्मरेत्॥ ३० ॥

मन स्वयं ही चंचल होताहै इसको और भी भ्रमित न करे अर्थात मनको टिकाकर रक्खे । बुद्धि और इंद्रियोंपर वहुत भार न दे अर्थात् जिससे रोग होजाय इतना काम न लेय । कामको वहुत देरमें करनेवाला न होय । क्रोध और हर्षको वढने न

दे । शोकातुर न बनारहे । कार्य सिद्ध होनेसे अत्यंत प्रसन्न न होय । कार्यके न होनेसे अति दीनता भी न प्रगट करे। अपने जन्म कर्म आदिका सदैव स्मरण रक्खे। जिस कार्यका आरंभ करे उसके फल (नतीजे) को पहले सोचलेवे । उन्नतिके हेतुओंको नित्य आरंभ करतारहे । अपने आपको कभी कृतकृत्य न समझे । अपने पराक्रमको न छोडे । किसीने अपमान कियाहो तो, उसको याद न करे ॥ ३० ॥

हवनादिके नियम ।

नाशुचिरुत्तमाज्याक्षततिलकुशसर्षपैरग्निंजुहुयात् । आत्मानमाशीर्भिराशासानः॥ अग्निर्मेनापगच्छेच्छरीरात् । वायुर्मेप्राणानादधातु । विष्णुर्मेबलमादधातु । इन्द्रोमेवीर्य्यंशिवामां प्रविशंस्त्वापः ॥ आपोहिष्ठेत्यपःस्पृशेत् ॥ द्विःपरिमृजेदोष्ठौ पदौचाभ्युक्ष्यमूर्ध्निखानिचोपस्पृशेत् । अद्भिरात्मानंहृदयंशिरश्चब्रह्मचर्य्यंज्ञानदानमैत्रीकारुण्यहर्षोपेक्षाप्रशमपरश्चस्यादिति ॥ ३१ ॥

शुद्ध पवित्र होकर घी, चावल, तिल, कुशा, सर्सों इनको अग्निमें हवन करे । होम करनेके पीछे अपनेको इस प्रकार आशीर्वाद दे " अग्नि हमारे शरीरमेंसे मत जाय, वायु हमारे प्राणोंकी रक्षा करे, विष्णु हमारे शरीरमें बल दे । इंद्र हमारे वीर्यको वढावे । शुभकारक जल हमारे शरीरमें प्रवेश करे । इस प्रकार कहके आपोहिष्ठामयोभुवः इत्यादि मंत्रोंसे अपने शरीरको छींटे दे। दो वार होठोंको दोनों पावोंको ऊपरके सब द्वारोंको जलसे छींटे देकर मस्तक और आकाशको छींटे दे । जलसे शरीर, हृदय, मस्तक प्रोक्षण करे । ब्रह्मचर्य, ज्ञान, दान, मैत्री, कृपा, तथा आनंदको चाहे और शांतचित्त रहे ॥ ३१ ॥

अध्यायका संक्षिप्त वर्णन ।

अत्र श्लोकाः ।

पञ्चपञ्चकमुद्दिष्टंमनोहेतुचतुष्टयम् । इन्द्रियोपक्रमेऽध्यायेसद्वृत्तमखिलेनच॥ ३२ ॥स्वस्थवृत्तंयथोद्दिष्टंयःसम्यगनुतिष्ठति । ससमाःशतमव्याधिरायुपानवियुज्यते ॥ ३३ ॥ नृलोकमापूरयतेयशसासाधुसम्मतः । धर्मार्थौचातिभूतानांबन्धुतामुपगच्छति ॥ ३४ ॥ परान्सुकृतिनोलोकान्पुण्यकर्माप्रपद्यते ॥

तस्माद्वृत्तमनुष्ठेयमिदंसर्वेणसर्वदा ॥ ३५ ॥ यच्चान्यदपिकिञ्चित्स्यादनुक्तमिहपूजितम् । वृत्तंतदपिचात्रेयःसदैवाभ्यनुमन्यते ॥ ३६ ॥

इति स्वस्थवृत्तचतुष्कः ॥ अग्निवेशकृतेतन्त्रेचरकप्रतिसंस्कृते इन्द्रियोपक्रमणीयोऽष्टमोध्यायः ॥ ८ ॥

अब अध्यायका उपसंहार करतेहैं इस इन्द्रियोपक्रमणीय अध्यायमें-पांच पंचक मन, हेतुचतुष्टय, संपूर्ण सद्वृत्त, स्वास्थ्यरक्षा, भलेप्रकार कहेगयेहैं । इनका जो मनुष्य अनुसरण करेगा वह रोगरहित, शतायु,साधुसम्मत, यशस्वी-मनुष्यलोकको अपनी शोभासे परिपूर्ण करनेवाला होगा । सब लोग उसको धर्मात्मा कहकर उससे मित्रभाव करेंगे । वह पुण्यकर्मा सब मनुष्योंसे उत्तमलोकोंको प्राप्त होताहै।इसलिये यह सद्वृत्त सबको ही ग्रहण करना चाहिये। जो इस अध्यायमें कहनेसे रहेहुए सदाचरण हों महात्मा आत्रेयजीने उनकी भी प्रशंसा की है ॥ ३२-३६ ॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदसंहितायां पटियालाराज्यान्तर्गतटकसालनिवासिवैद्यपञ्चानन वैद्यरत्न पं० रामप्रसादवैद्योपाध्यायविरचितप्रसादन्याख्यभाषाटीकाया-मिंद्रियोपक्रमणीयो नामाष्टमोध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः ।

अथातःखुड्डाकचतुष्पादमध्यायंव्याख्यास्यामः ।
इतिहस्माहभगवानात्रेयः ॥

अब हम खुड्डाक चतुष्पाद नामके अध्यायका व्याख्यान करेंगे । ऐसा भगवान् आत्रेयजी कहनेलगे ।

चिकित्साके चार पाद ।

भिषग्द्रव्याण्युपस्थातारोगीपादचतुष्टयम् ।
गुणवत्कारणंज्ञेयंविकारव्युपशांतये ॥ १ ॥

वैद्य, औषधी, परिचारक, और रोगी यह चिकित्साके चार पाद हैं यदि यह चारों यथोचित गुणोंवाले हों तो रोगोंकी शांति अवश्य होजातीहै ॥ १ ॥

विकार और स्वास्थ्यका लक्षण ।

विकारोधातुवैषम्यंसाम्यंप्रकृतिरुच्यते ।
सुखसंज्ञकमारोग्यंविकारोदुःखमेवच ॥

१६ गुणोंमें वैद्यकी प्रधानता ।

कारणंषोडशगुणंसिद्धौपादचतुष्टयम् ।
विज्ञाताशासितायोक्ताप्रधानंभिषगत्रतु ॥ ८ ॥

वैद्य आदि चार पादोंका जो चतुष्टय है अर्थात् सोलह गुण सम्पन्न होनेसे रोगी आरोग्य होताहै । इन सबमें ज्ञाता, उपदेश करता, औषधि आदिके क्रमको बताकर आरोग्यकारक पथपर चलानेवाला होनेसे वैद्य प्रधान होताहै ॥ ८ ॥

पक्तौहिकारणंपक्तुर्यथापात्रेन्धनानलाः। विजेतुर्विजयेभूमिश्च-मःप्रहरणानिच ॥ ९ ॥ आतुराद्यस्तथासिद्धौपादाःकारणसं-ज्ञिताः । वैद्यस्यातश्चिकित्सायांप्रधानंकारणंभिषक् ॥ १० ॥

जैसे भोजन बनानेमें वर्तन, लकडी, अग्नि आदि अन्य पाकके कारण होनेपर भी बनानेवाला ही मुख्य मानाजाताहै । और विजयमें–भूमि, सेना, अस्त्र शस्त्र आदि विजयके कारण होतेहुए भी सेनापति ही मुख्य माना जाता है । ऐसे ही आरोग्य करनेमें रोगी, परिचारक, औषध, इनके कारण होनेपर भी वैद्यको ही प्रधान कारण समझना चाहिये ॥ ९ ॥ १० ॥

मृद्दण्डचक्रसूत्राद्याःकुम्भकाराहृतेयथा । नावहन्तिगुणंवैद्या-हृतेपादत्रयंतथा ॥ ११ ॥

जैसे घट आदि मट्टीका पात्र वनाते समय मट्टी, दंड, चक्र, सूतका डोरा आदि सब होतेहुए भी कुम्हारके विना घडा नहीं बनासकते । ऐसेही वैद्यके विना सेवक, औषध, रोगी, आरोग्यता प्राप्त नहीं करसकते ॥ ११ ॥

रोगोंमें वैद्यको कारणता ।

गन्धर्वपुरवन्नाशंयद्विकाराःसुदारुणाः । यान्तियच्चेतरेवृद्धिमा-शूपाय-प्रतीक्षिणः॥ १२ सतिपादत्रयेज्ञाज्ञौभिषजावत्रकार-णम् । वरमात्माहुतोज्ञेननचिकित्साप्रवर्त्तिता ॥ १३ ॥

रोगी, औषध, और परिचारक, यह चिकित्साके तीन पाद होतेहुए भी इन्द्रजालके समान जो रोग शीघ्र निवृत्त होजाताहै अथवा ठीक उपाय न होनेसे बढजाताहै इसमें भी सर्वज्ञ अथवा अज्ञ वैद्यको ही कारण मानना चाहिये अर्थात् अन्य पादत्रय होनेपर भी वैद्य अच्छा होनेसे रोगका नाश और वैद्यके मूर्ख होनेसे रोगकी वृद्धि होतीहै । इसीसे कहतेहैं कि अपने आप मरजाना अच्छा है परन्तु मूर्खसे चिकित्सा कराना अच्छा नहीं ॥ १२ ॥ १३ ॥

हाथमें होनेसे दोषकारक (दुःखदायक) होताहै । जल उत्तम पात्रमें शुद्ध और उत्तम होताहै, मलिन पात्रमें निंदनीय होताहै अथवा यों कहिये नीममें जानेसे कडुआ और इक्षुमें मीठा होताहै इसी प्रकार शास्त्र भी बुद्धिके आधार पर है । इसलिये वैद्यको निर्मल (उत्तम) बुद्धिकी आवश्यकता है ॥ १८ ॥

वैद्यके षड्गुण।

विद्यावितर्कोविज्ञानंस्मृतिस्तत्परताक्रिया ।
यस्यैतेषड्गुणास्तस्यनसाध्यमतिवर्त्तते ॥ १९ ॥

जिस वैद्यमें-विद्या, युक्ति, विज्ञान, स्मृति, तत्परता (दत्ताचित्तता) और क्रियाकुशल होना, यह छः गुण विद्यमान हैं उस वैद्यको कोई भी रोग असाध्य नहीं होता ॥ १९ ॥

वैद्यकी निष्पत्ति ।

विद्यामतिः कर्मदृष्टिरभ्यासःसिद्धिराश्रयः ।
वैद्यशब्दाभिनिष्पत्तौबलमेकैकमप्यदः ॥ २० ॥

विद्या, बुद्धि, वैद्यकार्यमें बहुत दृष्टि, अभ्यास, सिद्धि, आश्रय, इनमेंसे एक एक गुण पूर्ण होना भी वैद्यशब्दकी निष्पत्तिके लिये हो सकताहै यदि संपूर्ण अर्थात् छः गुण हों तो फिर कहना ही क्या है अर्थात् बहुत ही अच्छा है ॥ २० ॥

सुखदाता वैद्यके लक्षण ।

यस्यत्वेतेगुणाःसर्वेसन्तिविद्यादयःशुभाः ।
सवैद्यशब्दंसद्भूतमर्हन्प्राणिसुखप्रदः ॥ २१ ॥

जिस वैद्यमें यह सब गुण हैं वही वैद्य संमानके योग्य और सबको सुख देनेवाला होताहै ॥ २१ ॥

दोषोंसे वचनेका उपाय।

शास्त्रंज्योतिःप्रकाशार्थंदर्शनंबुद्धिरात्मनः ।
ताभ्यांभिषक्सुयुक्ताभ्यांचिकित्सन्नापराध्यति ॥ २२ ॥

शास्त्र सूर्यकी समान सब वस्तुओं और रोग द्रव्यादिकोंमें प्रकाशकारक है और इसके प्रकाशमें नेत्रोंकी समान सब वस्तुओंको देखनेवाली अपनी बुद्धि है । इसलिये जो वैद्य शास्त्र और बुद्धिके संयोगसे अर्थात् शास्त्र और बुद्धि इन दोनोंको मिलाकर काम लेताहै वह चिकित्सा करनेमें दोषका भागी नहीं होता अर्थात् यशको प्राप्त होताहै ॥ २२ ॥

दशमोऽध्यायः ।

—○:•:○—

अथातोमहाचतुष्पादमध्यायंव्याख्यास्यामः ।
इतिहस्माह भगवानात्रेयः ॥

अब हम महाचतुष्पाद नामक अध्यायकी व्याख्या करतेहैं । ऐसा आत्रेय भगवान् कहने लगे ।

औषधसे आरोग्यलाभ ।

चतुष्पादंषोडशकलंभेषजमितिभिषजोभाषन्ते । यदुक्तंपूर्वाध्यायेषोडशगुणमितितद्भेषजम् । युक्तियुक्तमलमारोग्यायेति भगवान्पुनर्वसुरात्रेयः १ ॥

वैद्य जन षोडशकलासंपन्न चतुष्पादको ही औषध अर्थात् चिकित्सा मानतेहैं । सो षोडशगुणसंपन्न चिकित्सा इससे पहले अध्यायमें कह आए हैं, वह युक्तियुक्त चिकित्सा आरोग्यताप्राप्तिके लिये बहुत है ऐसा भगवान् पुनर्वसुजीने कथन किया ॥ १ ॥

उक्तविषयमें मैत्रेयका प्रतिवाद ।

नेतिमैत्रेयःकिंकारणंदृश्यन्तेह्यातुराःकेचिदुपकरणवन्तश्चपरिचारकसम्पन्नाश्चात्मवन्तश्चकुशलैश्चभिषग्भिरनुष्ठिताःसमुत्तिष्ठमानास्तथायुक्ताश्चापरेम्रियमाणास्तस्माद्भेषजमकिञ्चित्करं भवति ॥ २ ॥

यह सुनकर मैत्रेयजी कहनेलगे ऐसा नहीं होता क्योंकि हमने देखाहै कि बहुतसे रोगी तो योग्य औषध, उत्तम सेवक, बुद्धिमान्, और कुशल वैद्यकी चिकित्साद्वारा आरोग्य (तंदुरुस्त) होजातेहैं । और बहुतसे सर्वगुणयुक्त औषधादि होनेपर और योग्य चिकित्सकसे चिकित्सा किये जाने पर भी मृत्युको प्राप्त होतेहैं । इसमें क्या कारण है कि उसी प्रकार चिकित्सा करनेसे बहुतसे लोग आरोग्य होजातेहैं और उसी प्रकारकी चिकित्सासे बहुतसे मृत्युवश होतेहैं । इसलिये जानपडताहै कि मनुष्यका जीवन मरण दैवाधीन है औषध आदिसे कुछ नहीं होता ॥ २ ॥

दृष्टान्त ।

तद्यथा—श्वभ्रेसरसिचप्रासिक्तमल्पमुदकम्, नद्यांस्यन्दमाना-यांपांशुधानेपांशुमुष्टिप्रकीर्णइति । तथापरेदृश्यन्तेअनुपकरणाश्चापरिचारिकाश्चानात्मवन्तश्चाकुशलैश्चभिषग्भिरनुष्ठिताः समुत्तिष्ठमानाः । तथायुक्ताम्रियमाणाश्चापरेयतश्चप्रातिकुर्वन् सिद्ध्यतिप्रातिकुर्वन्म्रियतेअप्रातिकुर्वन्म्रियतेततश्चिन्त्यतेभेषजमभेषजंनाविशिष्टमितिमैत्रेयः ॥ ३ ॥

उसको इसतरहसे समझिये कि जैसे एक बडे भारी गढेमें अथवा तालावमें जलकी अंजली डालदेना अथवा किसी वहतीहुई नदी या रेतके बडे भारी ढेर पर एक वालू रेतकी मुट्ठी वखेरदेना किसी गणनामें नहीं होती । इसी प्रकार असंख्य प्राणियोंके मरणमें एक दो का अच्छा हो जाना भी किस गणनामें है । और देखनेमें भी आता है कि वहुतसे रोगी योग्य परिचारकके विना, उत्तम औषधादि न होनेपर, खोटे स्वभावके होनेपर, और अयोग्य वैद्यसे अथवा विना ही वैद्यसे आरोग्य होजाते हैं । एवं योग्य चतुष्पादी चिकित्सासे भी अनेक २ प्राणी मरजाते हैं । कोई यत्न न करनेसे मरजाते हैं वस, जव यत्न करनेपर भी मरजाते हैं और विना यत्न भी आरोग्य होजाते हैं तो चिकित्सा करना और न करना एकसा ही प्रतीत होता है । इस प्रकार मैत्रेयजीने कहा ॥ ३ ॥

उक्त विषयमें आत्रेयका खण्डन ।

मिथ्याचिन्त्यतइत्यात्रेयःकिंकारणंयेह्यातुराःषोडशगुणसमुदितेनानेनभेषजेनोपपद्यमानाइत्युक्तंतदनुपपन्नंनहिभेषजसाध्यानांव्याधीनांभेषजमकारणंभवति। येपुनरातुराःकेवलाद्भेषजादृतेसमुत्तिष्ठन्तेनतेषांसम्पूर्णभेषजोपपादनायसमुत्थानविशेषोऽस्तियथाहिपतितंपुरुषंसमर्थमुत्थानायोत्थापयन्पुरुषोवलमस्योपादध्यात् । साक्षिप्रतरमपरिक्लिष्टएवोत्तिष्ठेत्तद्वत्सम्पूर्णभेषजोपलम्भादातुराःयेचातुराःकेवलाद्भेषजादपिम्रियन्तेनच सर्वएवतेभेषजोपपन्नाःसमुत्तिष्ठेरन्नहिसर्वेव्याधयोभवन्त्युपायसाध्याः ॥ ४ ॥ नचोपायसाध्यानांव्याधीनामनुपायेन सिद्धिरस्तिनचासाध्यानांव्याधीनांभेषजसमुदायोऽस्तिनह्यलं

ज्ञानवान्भिषङ्मुमूर्षुमातुरमुत्थापयितुम् । परीक्ष्यकारिणोहि कुशलाभवन्ति । यथाहियोगज्ञोभ्यासानित्यइष्वासोधनुरादायेषुमपास्यन्नातिविप्रकृष्टमहतिकायेनापबाधोभवति।सम्पादयतिचेष्टकार्य्यम्। तथाभिषक्स्वगुणसम्पन्नउपकरणवान्वीक्ष्यकर्मारम्भमाणःसाध्यरोगमनपराधःसम्पादयत्येवातुरमारोग्येणनतस्मान्नभेषजमभेषजेनाविशिष्टंभवति ॥ ५ ॥

यह सुनकर आत्रेय कहनेलगे हे मैत्रेय ! यह शंका करना आपका वृथा है । क्या कारण है जो षोडश गुण संपन्न चिकित्सासे रोगी मरजातेहैं और आरोग्य होजातेहैं आप ऐसा कहतेहैं ।जो रोग भेषजसाध्य है उसमें षोडशगुणयुक्त चिकित्सा की हुई कभी निष्फल नहीं जाती।और जो कहतेहो विना चिकित्सासे ही रोगी अच्छे होते देखेहैं उनके रोगमें विशेषतासे संपूर्ण चिकित्साकी आवश्यकता नहीं उनके अल्पदोषवाली व्याधि स्वयं भी परिपाकको प्राप्त हो शांत होजातीहै । जैसे कोई मनुष्य गिरपडा हो वह अपने आप उठनेको तैयार है परंतु दूसरेका दिया सहारा मिलनेसे वह और भी सुखपूर्वक उठ जाताहै । और दूसरेके सहारेसे उठनेका बल प्राप्त होनेसे विना कष्ट खडा होताहै । ऐसाही साध्य रोगोंमें औषधोंके प्रयोगसे रोगी शीघ्र आरोग्य होजातेहैं । और जो औषधीके प्रयोगसे रोगी शीघ्र आरोग्य होजातेहैं । और जो औषध सेवन करनेपर भी मरजातेहैं सो संपूर्ण रोग भेषजसाध्य नहीं होते अर्थात् असाध्य रोग औषधसे साध्य नहीं हैं ॥ ४ ॥ और जो रोग चिकित्सा करनेसे दूर होतेहैं वह चिकित्साके विना शांत होही नहीं सकते । ऐसे ही असाध्य रोग संपूर्ण यत्नोंसे भी साध्य नहीं होते । और मरणोन्मुख रोगीको ज्ञानवान् वैद्य भी आरोग्य नहीं कर सकता । इसलिये, साध्य, असाध्य, कष्टसाध्यकी परीक्षा करके चिकित्सा करनेवाले कुशल वैद्य निदानद्वारा रोगको जानकर चिकित्सा करनेसे व्याधिको जीतलेतेहैं । जैसे बाण चलानेमें चतुर तथा नित्यका अभ्यासवाला धनुषधारी सामने आयेहुए बडे शरीरवालेको बाण मारकर विद्ध करताहुआ आप उस बडे बलवालेसे अबाध्य रहताहै । और अपने इच्छित कार्यको सिद्ध करलेताहै । ऐसे ही योग्य वैद्य भी अपने गुणोंके बलसे और उपकरण (औषधादि) के बलसे विचारपूर्वक चिकित्सा करताहुआ साध्य और कष्टसाध्य रोगोंमें निर्विघ्नतासे रोगियोंको आरोग्य कर लेताहै । इसलिये चिकित्सा करना और न करना बराबर नहीं हो सकता ॥ ५ ॥

साध्यासाध्यरोगोंके भेद ।

सुखसाध्यंमतंसाध्यंकृच्छ्रसाध्यमथापिच ।
द्विविधश्चाप्यसाध्यंस्याद्याप्यंयदनुपक्रमम् ॥ १० ॥

साध्य व्याधियें दो प्रकारकी होतीहैं एक साध्य और कृच्छ्रसाध्य । ऐसे ही असाध्य भी दो प्रकारकी होतीहैं जैसे याप्य और अचिकित्स्य ॥ १० ॥

साध्यके अन्य भेद ।

साध्यानांत्रिविधश्चाल्पमध्यमोत्कृष्टतांप्रति ।
विकल्पोनत्वसाध्यानांनियतानांविकल्पना ॥ ११ ॥

साध्य रोगोंके और भी तीन भेद कहेहैं जैसे अल्प मध्य, उत्कृष्ट, परंतु असाध्य रोगके भेद नहीं यह प्राणनाशक होताहै । और जो चिकित्सायोग्य हैं उनमें भेद अवश्य होताहै ॥ ११ ॥

सुखसाध्यके लक्षण ।

हेतवःपूर्वरूपाणिरूपाण्यल्पानियस्यच । नचतुल्यगुणोदूष्यो न दोषःप्रकृतिर्भवेत् ॥ १२ ॥ नचकालगुणस्तुल्योनदोषो दुरुपक्रमः । गतिरेकानवत्वञ्चरोगस्योपद्रवोनच ॥ १३ ॥ दोषश्चैकःसमुत्पत्तौदेहःसर्वौषधक्षमः । चतुष्पादोपपत्तिश्चसुखसाध्यस्यलक्षणम् ॥ १४ ॥

(सुखसाध्यके लक्षण) जिस व्याधिके हेतु (रोगोत्पादक कारण) और पूर्वरूप, तथा रूप यह सब अल्प हों और दूष्य, देश, प्रकृति, काल, इनके साथ रोगकी साम्यता न होय । और रोग दुरुपक्रम न हो अर्थात् यत्न करनेयोग्य हो। और रोग एकही गतिवाला हो तथा जो रोग नवीन हो और उपद्रवरहित हो जो एक दोषसे ही उत्पन्न हुआहो । जिस रोगीकी देह सब तरहसे चिकित्साक्रम सहन करसकतीहो । तथा चिकित्साके चारों पाद संपन्न हों । यह जिस रोगमें होय वह सुखसाध्य जानो ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥

कृच्छ्रसाध्यके लक्षण ।

निमित्तपूर्वरूपाणांरूपाणांमध्यमे बले । कालप्रकृतिदुष्टानां सामान्योऽन्यतमस्यच ॥ १५ ॥ गर्भिणीवृद्धबालानांनात्युपद्रवपीडितम् । शस्त्रक्षाराग्निकृत्यानामनवंकृच्छ्रदोषजम् ॥ १६ ॥

ज्ञेयःसम्यक् प्रतिपत्तिमान् । नसमैत्रेयतुल्यानांमिथ्याबुद्धिं प्रकल्पयेत् । इति ॥ २३ ॥

मतिमान् योग्य वैद्यको चाहिये कि इस प्रकार पहले रोगोंकी परीक्षा करके यदि रोग साध्य प्रतीत हों तो उनका यत्न आरंभ करे । जो वैद्य साध्य और असाध्य रोगोंको अच्छी तरहसे जानताहै जो लक्षणद्वारा रोग जानकर चिकित्सा करताहै जो गुण और सामग्रीयुक्त है वह चिकित्सासे साध्य रोगीको आरोग्य कर सकताहै हे मैत्रेय ! उसकी चिकित्सामें आपको मिथ्याशंका करना उचित नहीं ॥२२॥२३॥

अध्यायका संक्षिप्तवर्णन ।

तत्रश्लोकौ । इहौषधंपादगुणाःप्रभावौभेषजाश्रयः आत्रेयमैत्रेयमतीमातिद्वैविध्यनिश्चयः ॥ २४ ॥ चतुर्विधविकल्पाश्च व्याधयःस्वस्वलक्षणाः । उक्तामहाचतुष्पादेयेष्वायत्ताभिषग्जितामिति ॥ २५ ॥

अग्नीत्यादि ॥ महाचतुष्पादाध्यायःसमाप्तः ॥

इस महाचतुष्पाद अध्यायमें–औषध, पादगुण, और औषधका प्रभाव तथा आत्रेय और मैत्रेयजीका पक्ष प्रतिपक्ष और मतभेद तथा उनका निश्चय और व्याधिके चार भेद, तथा व्याधियें और उनके लक्षण, कथन किये गयेहैं जिस वैद्यको इस महाचतुष्पादका ज्ञान है वह औषधि द्वारा रोगोंको जीत सकताहै ॥२४॥२५॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदीयसंहितायां पटियालाराज्यान्तर्गतटकसालनिवासिवैद्यपञ्चानन वैद्यरत्न पं० रामप्रसादवैद्योपाध्यायविरचितप्रसादन्याख्यभाषाटीकायां महाचतुष्पादो नाम दशमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

एकादशोऽध्यायः ।

अथातस्तिस्रैषणीयमध्यायंव्याख्यास्याम इतिहस्माहभगवानात्रेयः ॥

अब हम तिस्रैषणीय (तीन एषणावाले) अध्यायकी व्याख्या करतेहैं, ऐसा आत्रेय भगवान् कहनेलगे ।

एषणाओंका निर्देश ।

इहखलुपुरुषेणानुपहतसत्त्वबुद्धिपौरुषपराक्रमेणाहितमिहचा-
मुष्मिंश्चलोकेसमनुपश्यतातिस्रएषणाःपर्य्येष्टव्याभवन्ति १॥

इस संसारमें मन, बुद्धि, पुरुषार्थ और पराक्रमवाले पुरुषको इस लोक और परलोकके सुखकी इच्छा करतेहुए तीन प्रकारकी एषणा अर्थात् चाहनाएं प्राप्त करनी योग्य हैं ॥ १॥

एषणाओंका वर्णन ।

तद्यथा। प्राणैषणाधनैषणापरलोकैषणेतिआसान्तुखल्वेषणा-
नांप्राणैषणांतावत्पूर्वतरमापद्येतकस्मात्प्राणपरित्यागेहिसर्व-
त्यागः तस्यानुपालनंस्वस्थस्यस्वस्थवृत्तिरातुरस्यविकारप्रश-
मनेऽप्रमादस्तदुभयमेतदुक्तंवक्ष्यतेच । तद्यथोक्तमनुवर्तमानः
प्राणानुपालनाद्दीर्घमायुरवाप्नोतीति । प्रथमैषणाव्याख्याता
भवति ॥ २ ॥

वह तीन एषणा यह हैं । १ प्राणैषणा, २ धनैषणा, ३ परलोकैषणा, इन तीन एषणाओंमें प्राणैषणा अर्थात् प्राणरक्षामें यत्नवान् होना सबसे प्रथम कहाहै क्योंकि प्राणोंके परित्याग होने पर ही सब वस्तुओंका परित्याग होजाताहै । इसीसे आरोग्य पुरुषको अपनी आरोग्यता (तन्दुरुस्ती) की सावधानीसे रक्षा करना अत्यावश्यक है और रोगयुक्तको सर्वथा रोगको शांत करनेका उपाय करना चाहिये । यह बात कह भी चुकेहैं और आगेको भी कहतेहैं कि जैसे स्वास्थ्यरक्षाके लिये पहले कथन करचुकेहैं या कथन किये जायंगे उनके अनुसार वर्ताव करते हुए प्राणोंका पालन करनेसे दीर्घायु होताहै । यह प्रथम एषणाका कथन किया गया ॥ २ ॥

धनकी एषणा ।

अथद्वितीयांधनैषणामापद्यते । प्राणेभ्योह्यनन्तरंधनमेवपर्य्ये-
ष्टव्यंभवति । नह्यतःपापात्पापीयोऽस्तियदनुपकरणस्यदीर्घ-
मायुःतस्मादुपकरणानिपर्य्येष्टुंयतेततत्रोपकरणोपायाननुव्या-
ख्यास्यामः ॥ ३ ॥

अब दूसरी धनैषणा अर्थात् धनप्राप्तिके लिये यत्न करनेका कथन करतेहैं क्योंकि प्राणरक्षाके अनंतर धनकी आवश्यकता होतीहै।इस पापसे बढकर संसारमें कोई भी

दुःखदायक पाप नहीं कि आयु तो दीर्घ होय परन्तु धन पास न होय । इसलिये जीवनका परम उपकरण आरोग्यताके अनन्तर धन होताहै सो उस धनके प्राप्त करनेके लिये यत्नवान् रहना चाहिये अब उस धनप्राप्तिके यत्नोंको कथन करते हैं ॥ ३ ॥

धनप्राप्तिके उपाय ।

तद्यथा । कृषिपाशुपाल्यवाणिज्यराजोपसेवादीनि । यानिचान्यान्यपिसतामविगर्हितानिकर्माणिवृत्तिपुष्टिकराणिविद्यात्तान्यारभेतकर्त्तुम् । तथाकुर्वन्दीर्घजीवितमनुवसतःपुरुषोभवतीति । द्वितीयाधनैषणाव्याख्याताभवति ॥ ४ ॥

जैसे खेती करना, पशुओंको पालना, वाणिज्य (व्यापार आदि) करना, राजसेवा अर्थात् नौकरी आदि करना, तथा और भी ऐसे २ धनप्राप्तिके उपाय "जिनके करनेसे श्रेष्ठ पुरुषोंमें निंदा और अपयश न होय" और धन तथा जीवनकी वृद्धि होय वैसे २ यत्नोंको करे । ऐसा करनेसे मनुष्य श्रेष्ठतापूर्वक दीर्घजीवनका आनन्द प्राप्त करसकताहै । यह दूसरी धनकी एषणाका कथन कियागयाहै ॥ ४ ॥

परलोककी एषणामें विवाद ।

अथतृतीयांपरलोकैषणामापद्येतसंशयश्चात्रकथंभविष्यामइतश्च्युतानवेतिकुतःपुनःसंशयइतिउच्यतेसन्तिह्येकेप्रत्यक्षपराःपरोक्षत्वात्पुनर्भवस्यनास्तिक्यमाश्रिताःसन्तिचागमप्रत्ययादेवपुनर्भवमिच्छन्तिश्रुतिभेदाच्च ।

"मातरंपितरञ्चैकेमन्यन्तेजन्मकारणम् । स्वभावंपरनिर्माणं यदृच्छाञ्चापरेजनाः ॥"

इत्यतःसंशयः ।किंनुखल्वस्तिपुनर्भवोनवेति ।तत्रबुद्धिमान्नास्तिक्यबुद्धिंजह्याद्विचिकित्साञ्चाकस्मात्प्रत्यक्षंह्यल्पमनल्पमप्रत्यक्षमस्तियदागमानुमानयुक्तिभिरुपलभ्यते । यैरेवतावदिन्द्रियैःप्रत्यक्षमुपलभ्यतेतान्येवसन्तिचाप्रत्यक्षाणि ॥ ५ ॥

अब इसके उपरांत तीसरी परलोक एषणाको कहतेहैं । सो यहां यह संशय होताहै कि इस लोकसे पतित होनेपर अर्थात् यह शरीर छोडने पर हम फिर कहीं प्रगट होंगे या नहीं, अथवा शरीरत्यागके अनन्तर हम किसी रूपमें रहेंगे या शरीरांतमें ही

उठाकर फिर चावलोंके बडे ढेरमें मिलादो तो फिर वह प्रत्यक्ष नहीं होता। एक वस्तु दूसरेसे बढजाय तबभी प्रत्यक्ष नहीं होता जैसे सूर्यके प्रकाशसे तारागण रहते हुए भी दिखाई नहीं देते और अत्यंत सूक्ष्म होनेसे (जैसे परमाणु) भी प्रत्यक्ष नहीं होता इसलिये यह कहदेना कि जो हमारी इंद्रियोंसे प्रत्यक्ष है वह ही है और कुछ नहीं यह कहना अप्रामाणिक बकवाद है श्रुतिवाक्यसे तथा युक्तिसे भी पुनर्जन्मके न होनेमें कोई हेतु नहीं अर्थात् पुनर्जन्म युक्ति और शास्त्रसे सिद्ध है ॥ ६ ॥ (यह प्रत्यक्षवादियोंका खंडन हो चुका) ।

जन्मकारणपर विवाद ।

आत्मामातुःपितुर्वायःसोपत्यंयदिसञ्चरेत्। द्विविधंसञ्चरेदात्मा सर्वोवावयवेनवा ॥ ७ ॥ सर्वश्चेत्सञ्चरेन्मातुःपितुर्वामरणं भवेत् । निरन्तंरनावयवःकश्चित्सूक्ष्मस्यचात्मनः ॥ ८ ॥ बुद्धिर्मनश्चनिर्णीतेयथैवात्मातथैवते । येषाञ्चैषामतिस्तेषांयो निर्नास्तिचतुर्विधा ॥ ९ ॥

अब यदि कहो कि माता और पिताका आत्मा ही पुत्र रूपसे पैदा होताहै या माता अथवा पिताके आत्मासे पुत्रका आत्मा उत्पन्न होताहै तो यह भी नहीं होसकता। क्योंकि माता या पिताका आत्मा दो प्रकारसे अपत्यरूपमें आसकता है या तो संपूर्ण रूपसे, अथवा अंशविभाग अर्थात् हिस्सेसे यदि कहो कि संपूर्ण आत्मा ही अपत्य (संतान) रूपसे संचार करताहै तो माता या पिताका संपूर्ण आत्मा पुत्रमें आनेसे माता या पिताका मृत्यु होजाना चाहिये । यदि कहो आत्माका कोई भाग संतानरूपसे पैदा होताहै तो यह भी नहीं होसकता । क्योंकि सूक्ष्म आत्माके विभाग नहीं होसकते। इसलिये यह कहना कि कर्माधीन पुनर्जन्म नहीं होता माता पितासेही आत्माकी उत्पत्ति होतीहै-वृथा है ॥ यदि कहो कि माता पिता की बुद्धि, और मन संतान रूपसे पैदा होतेहैं, यह कहना भी ठीक नहीं, क्योंकि बुद्धि,मन भी आत्माके समान सूक्ष्म हैं और उनके भी विभाग नहीं होसकते दूसरे यह भी बात है जो माता पितासे ही संतानकी उत्पत्ति मानोगे तो उनके मतमें स्वेदज, अंडज, जरायुज, उद्भिज्ज, यह चार प्रकारकी योनि नहीं होसकती क्योंकि बताओ स्वेदसे उत्पन्न होनेवालोंके और जमीनकी पानीयुक्त भाफसे पैदा होनेवालोंके माता पिता कौन हैं अर्थात् कोई नहीं ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥

---

१ इन्द्रिय और अर्थके सन्निकर्षसे व्यभिचार रहित निश्चयात्मक ज्ञानको प्रत्यक्ष कहतेहैं ।

गेगामी कुबुद्धिको त्यागकर श्रेष्ठबुद्धिरूप दीपकसे जैसा जो कुछ यथार्थ (ठीक् २) हो उसकी परीक्षा करे अर्थात् देखलेवे ॥ १४ ॥

सत्असत्की परीक्षा ।

द्विविधमेवखलुसर्वंसच्चासच्चतस्यचतुर्विधापरीक्षा ।
आप्तोपदेशः प्रत्यक्षमनुमानंयुक्तिश्चेति ॥ १५ ॥

संपूर्ण जगत्में भला और बुरा यह दो भेद हैं । सत् सत्यको कहतेहैं और असत् झूठको कहतेहैं । इन सत् और असत्के जाननेके लिये चार प्रकारकी परीक्षा है अर्थात् चार प्रमाणों द्वारा यावन्मात्रका सत् और असत् निर्णय होसकता है । वह चार परीक्षा (प्रमाण) यह हैं । १ आप्तोपदेश, २ प्रत्यक्ष, ३ अनुमान और ४ युक्ति ॥ १५ ॥

आप्त तथा उनका उपदेश ।

आप्तास्तावत् ।

रजस्तमोभ्यांनिर्मुक्तास्तपोज्ञानबलेनये । येषांत्रिकालममलं ज्ञानमव्याहतंसदा ॥ १६ ॥ आप्ताःशिष्टविबुद्धास्तेतेषांवाक्य-मसंशयम् । सत्यंवक्ष्यन्तितेकस्मादसत्यंनीरजस्तमाः॥ १७ ॥

अब पहले आप्तके लक्षण कहतेहैं । जिन महात्माओंका रजोगुण और तमोगुण तप तथा ज्ञानके बलसे नष्ट होगयाहै और जो भूत, भविष्यत्, वर्तमान के जानने-वाले हैं तथा जिनका निर्मल ज्ञान कभी नष्ट नहीं होता उन महात्माओंको आप्त शिष्ट और ज्ञानी कहतेहैं इनके वाक्य निःसंदेह सत्य होतेहैं क्योंकि, रज तमसे निर्मुक्त होनेके कारण यह असत्य बोलतेही नहीं इसलिये इनके वाक्य (आप्तोप-देश) निःसन्देह सत्य माननीय हैं ॥ १६ ॥ १७ ॥

प्रत्यक्षका लक्षण ।

आत्मेन्द्रियमनोऽर्थानांसान्निकर्षात्प्रवर्त्तते ।
व्यक्तातदात्वेयाबुद्धिःप्रत्यक्षंसानिरुच्यते ॥ १८ ॥

आत्मा, इंद्रिय, मन और इंद्रियका विषय इन सबका सन्निकर्ष होनेसे जो निश्चयात्मक ज्ञान होताहै उसको प्रत्यक्ष कहते हैं ॥ १८ ॥

अनुमानका लक्षण ।

प्रत्यक्षपूर्वंत्रिविधंत्रिकालश्चानुमीयते । वह्निर्निगूढोधूमेनमै-थुनंगर्भदर्शनात् ॥ १९ ॥ एवंव्यवस्यन्त्यतीतंबीजात्फलम-नागतम् । दृष्ट्वाबीजात्फलं जातमिहैवसदृशंबुधाः॥ २० ॥

करना वृथा है । इन चार परीक्षाओंसे ही सभीका परीक्षण होजाताहै । इन चार परीक्षाओं द्वारा ही सत्, असत् और पुनर्भव जानाजाता है ॥ २८ ॥

आप्तागमका लक्षण, फल ।

तत्राप्तागमस्तावद्वेदोयश्चान्योऽपिकश्चिद्वेदार्थादविपरीतःपरीक्षकैःप्रणीतः । शिष्टानुमतोलोकानुग्रहप्रवृत्तःशास्त्रवादः सचाप्तागमः । आप्तागमादुपलभ्यते दानतपोयज्ञसत्याहिंसाब्रह्मचर्य्याण्यभ्युदयनिःश्रेयस्कराणीति । नचानतिवृत्तसत्त्वदोषाणामदोषैरपुनर्भवोधर्म्यद्वारेषूपदिश्यते ॥ २९ ॥

सबसे बढकर प्रमाणिक वेद है और भी जो वेदके आशयसे विरुद्ध न हों ऐसे वाक्य तथा आप्तऋषियोंके रचेहुए शास्त्र एवं श्रेष्ठ पुरुषोंके मानेहुए और लोकपरंपरासे प्रचलित शास्त्रोंके वाक्य वेदसे अविरुद्ध आप्तागम कहेजातेहैं । इन आप्तागम (प्रामाणिक वाक्य) द्वारा—दान, तप, यज्ञ, सत्य, अहिंसा, और ब्रह्मचर्य इनकी प्राप्ति होतीहै इसीसे इस लोक और परलोकमें सुखकी प्राप्ति होतीहै आप्तोंका उपदेश है कि जबतक रजोगुण और तमोगुण दूर होकर मनकी शुद्धि नहीं होती तब तक मोक्षकी प्राप्ति नहीं होसकती ॥ २९ ॥

धर्मद्वारावहितैश्चव्यपगतभयरागद्वेषलोभमोहमानैर्ब्रह्मपरैराप्तैः कर्मविद्भिरनुपहतसत्त्वबुद्धिप्रचारैःपूर्वैःपूर्वतरैर्महर्षिभिर्दिव्यचक्षुर्भिर्दृष्ट्वोपदिष्टपुनर्भवइतिव्यवस्येदेवं प्रत्यक्षमपिचोपलभ्यते ॥ २६ ॥

जो धर्ममें रत हैं और जिनके भय,राग,द्वेष,लोभ,मोह, मान, यह समूल नाशको प्राप्त होचुकेहैं तथा ब्रह्मके जाननेवाले, आप्त, कर्मके जाननेवाले, और जिनके मन, बुद्धि निश्चल हैं तथा जो सदैव ज्ञानयुक्त हैं उन पहले होनेवाले प्राचीनतम महर्षियोंने ज्ञानके नेत्रोंद्वारा पुनर्जन्मको देखकर उसे सिद्ध किया है और प्रत्यक्षमें भी पुनर्जन्मकी उपलब्धि होतीहै ॥ २६ ॥

पुनर्जन्ममें अनुमान ।

मातापित्रोर्विसदृशान्यपत्यानितुल्यसम्भवानांवर्णस्वराकृतिसत्त्वबुद्धिभाग्यविशेषाः प्रवरावरकुलजन्मदास्यैश्वर्य्यसुखासुखमायुः । आयुषोवैषम्यमिहकृतस्यावाप्तिरशिक्षितानाञ्चरु-

और यह युक्तिसे भी सिद्ध है कि पांच महाभूत और छठी आत्मा इन छहोंके संवन्धसे ही गर्भकी उत्पत्ति होती है और गर्भमें आकर जन्म लेनेमें आत्माके पूर्वजन्मका संबंध है क्योंकि कर्ता और कारणके संयोग होने पर ही क्रियाका आरंभ होताहै। कियेहुए कर्मका ही फल होता है विना कियेका नहीं होता। जैसे विना बीजके अंकुरकी उत्पत्ति नहीं होसकती। जैसा कोई कर्म करताहै उसी प्रकारका फल भोगना पडताहै। जैसे जवके बीजसे जवकी उत्पत्ति सर्षपसे सर्षपकी उत्पत्ति होती है अन्य बीजसे अन्यकी उत्पत्ति नहीं होती ऐसे ही जैसा कर्म होताहै उसका वैसाही फल होता है। यह युक्ति है॥ २८॥

एवंप्रमाणैश्चतुर्भिरुपदिष्टैःपुनर्भवोधर्म्मद्वारेष्वनुविधीयते ॥२९॥

इस प्रकार चारों प्रमाणोंसे पुनर्जन्म स्पष्ट सिद्ध है इन चार प्रमाणोंद्वारा पुनर्जन्ममें आस्तिकता होनेसे मनुष्य धर्मपरायण होसकता है जिन कार्योंके करनेसे मनुष्यका परलोक अच्छा होसकता है उन धर्मकार्योंको कथन करतेहैं॥ २९॥

परलोकैषणामें कर्त्तव्य कर्म।

तद्यथागुरुशुश्रूषायामध्ययनेव्रतचर्य्यायांदारक्रियायामपत्योत्पादनेभृत्यभरणेऽतिथिपूजायांदानेनाभिध्यायांतपस्यनसूयायांदेहवाङ्मनसेकर्म्मण्यक्लिष्टेदेहेन्द्रियमनोऽर्थबुद्ध्यात्मपरीक्षायांमनःसमाधाविति। यानिचान्यान्यप्येवंविधानिकर्म्माणिसतामविगर्हितानिस्वर्ग्याणिवृत्तिपुष्टिकराणिविद्यात्तान्यारभेतकर्तुम्। तथा कुर्वन्निहचैवयशोलभतेप्रेत्यचस्वर्गमिति। तृतीयापरलोकैषणाव्याख्याताभवति॥ ३०॥

वह परलोकको उत्तम बनानेवाले कर्म इस प्रकार हैं गुरुशुश्रूषा, अध्ययन, और व्रत करना शास्त्रोक्त रीतिसे विवाहकर धर्मसे सन्तान पैदा करना, भृत्योंका पालन, अतिथिपूजन, और दान करना, पराये द्रव्यमें लोभ न करना, तप, करना, अनसूया (किसीकी निन्दा न करना), शरीर, मन, वाणीसे, कोई अशुभ काम न करना, आलस्य न करना, और देह इंद्रिय, मनके विषय, बुद्धि, और आत्मा इनकी परीक्षामें विषयोंसे मनको रोकनेमें तत्पर रहना। तथा और भी जो २ इसप्रकारके सत्कार्य स्वर्गदायक हों और जो श्रेष्ठपुरुषोंसे अनिंदित कार्य जीविकाकी वृद्धि करनेवाले समझे उनको भी किया करे। ऐसा करनेसे इस लोकमें यशकी प्राप्ति और परलोकमें स्वर्गकी प्राप्ति होती है। यह तीसरी परलोक एषणा कही गई है॥ ३०॥

सर्वशोऽदर्शनमयोगः । अतिसूक्ष्मातिविप्रकृष्टरौद्रभैरवाद्भुतद्विष्टबीभत्सविकृतादिरूपदर्शनंमिथ्यायोगः ॥ ३४ ॥

(३ आयतन) इंद्रियार्थ, कर्म, काल, इन तीनोंका अतियोग, अयोग, मिथ्यायोग, तीन प्रकारके आयतन अर्थात् रोगोंके पैदा करनेवाले कारण कहे जातेहैं । उनमें अत्यंत कांतिवाले पदार्थको बहुत गौरसे अधिक देर देखना यह अतियोग है । और एकदम सबतरहसे देखना बंद करदेना अयोग कहाताहै । इसी प्रकार बहुत बारीक, अत्यंत समीप, तथा बहुत दूर, अतिभयंकर, अद्भुत, बुरा लगनेवाला, जिसके देखनेसे ग्लानि हो, तथा विकृत आदि वस्तुओंके देखनेको मिथ्यायोग कहतेहैं (यह दर्शनेन्द्रियका अतियोग, अयोग, मिथ्यायोग हुआ ॥ ३४ ॥

शब्दातियोगादिका वर्णन ।

तथातिमात्रस्तनितोपहतकुष्टादीनांशब्दानामतिमात्रश्रवणमतियोगः । सर्वशोऽश्रवणमयोगः । पुरुषेष्टविनाशोपघातप्रधर्षणभीषणादिशब्दश्रवणंमिथ्यायोगः ॥ ३५ ॥

इसीप्रकार, वज्रपातके शब्दको सुनना, नगारे आदिका अथवा किसी वस्तुपर अन्यवस्तुके लगनेके तीक्ष्ण शब्दका सुनना, अत्यंत तीक्ष्ण अनुक्रोश आदि शब्दका सुनना अथवा किसी शब्दका बहुत देर तक सुनना श्रवणेन्द्रियका अतियोग होताहै कुछ भी न सुनना अयोग कहाताहै । ऐसे ही–कठोरवाक्य, प्यारी वस्तुका नाश, वज्रघात, रोमांचकारक शब्द, भयकारक शब्द, ऐसे २ शब्द सुननेको श्रवणेंद्रियका मिथ्यायोग कहाजाताहै । यह श्रवणका अतियोग, अयोग, मिथ्यायोग हुआ ॥ ३५ ॥

गन्धातियोगादिवर्णन ।

तथातितीक्ष्णोग्राभिष्यन्दिनांगन्धानामतिमात्रंघ्राणमतियोगः सर्वशोऽघ्राणमयोगः । पूतिद्विष्टामेध्यक्लिन्नविषपवनकुणपगन्धादिघ्राणंमिथ्यायोगः ॥ ३६ ॥

अतितीक्ष्ण अतिउग्र, और अभिष्यंदि आदि गन्ध अत्यंत सूंघना अतियोग कहाजाताहै । कुछ भी न सूंघना अयोग और दुर्गंधित, द्वेषयुक्त गंधवाला, अपवित्र, भीगाहुआ विषयुक्त पवन, मुर्देकी गंध, इनके सूंघनेको मिथ्यायोग कहतेहैं । यह घ्राणका–अतियोग, अयोग, मिथ्यायोग हुआ ॥ ३६ ॥

रसातियोगादिका वर्णन ।

तथारसानामत्यादानमतियोगः । अनादानमयोगः । मिथ्यायोगोराशिवर्ज्येष्वाहारविधिविशेषायतनेषूपादेक्ष्यते ॥ ३७ ॥

रसके अधिक सेवन करनेको अतियोग, कुछ, भी न खानेको अयोग, और आहारके मिथ्यासेवनको मिथ्यायोग कहतेहैं । मिथ्यायोगको अपरिमित भोजनके वर्णनमें विशेषरूपसे कहेंगे ॥ ३७ ॥

स्पर्शातियोगादिका वर्णन ।

तथातिशीतोष्णानांस्पृश्यानांस्नानाभ्यङ्गोत्सादनादीनाञ्चात्युपसेवनमतियोगः । सर्वशोऽनुपसेवनमयोगः । विषमस्थानाभिघाताशुचिभूतसंस्पर्शादयश्चेतिमिथ्यायोगः ॥ ३८ ॥

अत्यंत शीतल और अतिउष्ण जलसे देर तक स्नान करना, मालिश, उद्वर्तन आदिका अतिसेवन अतियोग कहाताहै । एकदम किसी स्पर्शकारक वस्तुका सेवन न करना अयोग है । ऐसे ही विषमस्थानमें फिरना, बैठना, सोना, चोट लगना तथा अपवित्र वस्तुके स्पर्शआदिको मिथ्यायोग कहतेहैं । यह स्पर्शके अतियोगादि हुए ॥ ३८ ॥

स्पर्शनेन्द्रियकी सर्वव्यापकता ।

तत्रैकंस्पर्शनेन्द्रियमिन्द्रियाणामिन्द्रियव्यापकंततः समवायिस्पशनव्यासेर्व्यापकमपिचचेतस्तस्मात्सर्वेन्द्रियाणांव्यापकः स्पर्शकृतोयोभावविशेषःसोऽयमनुपशयात्पञ्चविधस्त्रिविधविकल्पोभवत्यसात्म्येन्द्रियार्थसंयोगः । सात्म्यार्थोह्युपशयार्थः ॥ ३९ ॥

सब इंद्रियोंमें एक स्पर्शनेंद्रिय ही नेत्र,कर्ण, रसन, आदिमें व्यापक है क्योंकि सब इंद्रियोंमें स्पर्शेंद्रिय विद्यमान है । और सब इंद्रियें अपने विषयमें संयोग स्पर्श द्वारा ही क्रिया करसकती हैं (जैसे शब्दके परमाणु, जब कर्णेन्द्रियसे स्पर्श करतेहैं तब कर्णेन्द्रिय शब्दको जान सकती है ऐसे ही सबमें जानो) इन्द्रिय और इन्द्रियके विषयके स्पर्शमें मन व्यापक है । इसलिये स्पर्श होनेवाली वायु (स्पर्शशक्ति)सबमें प्रधान होसो स्पर्शजन्य भाव पांचों इंद्रियोंमें व्यापक होनेसे पांच प्रकारका होताहै। यह पांच प्रकारका इंद्रिय और विषयका संयोग अतियोग, अयोग, मिथ्यायोग, इन भेदोंसे तीन प्रकारका है और यह तीनप्रकारका योग असात्म्य अर्थात् आत्माके प्रतिकूल होताहै, और यथोचित संयोग आत्माके अनुकूल होताहै॥ ३९॥

कर्मकृत आयतनका वर्णन ।

कर्मवाङ्मनःशरीरप्रवृत्तिः । तत्रवाङ्मनःशरीरातिप्रवृत्तिरतियोगःसर्वशोऽप्रवृत्तिरयोगः ॥४०॥

वाणी, मन, और शरीरकी प्रवृत्तिको कर्म कहतेहैं । मन, वाणी, शरीर, इनकी अत्यंत प्रवृत्तिको अतियोग कहतेहैं और सर्वथा अप्रवृत्तिको अयोग कहते हैं ॥४०॥

वाणीके मिथ्यायोगका वर्णन ।

सूचकानृताकालकलहाप्रियाबद्धानुपचारपरुष-वचनादिर्वाङ्मिथ्यायोगः ॥ ४१ ॥

इनमें-निंदा करना, झूठा बोलना, विनासमय कहना, कलह करना, अप्रिय बोलना, अंट संट बकना, असंगत अश्रद्धेय वाक्य कहना और दुखदाई वाक्य कहना वाणीका मिथ्यायोग है ॥ ४१ ॥

मानस मिथ्यायोग ।

भयशोकक्रोधलोभमोहमानेर्ष्यामिथ्यादर्शनादिर्मानसोमिथ्या-योगः ॥ ४२ ॥

भय, शोक, क्रोध, लोभ, मोह, अभिमान, ईर्ष्या, मिथ्यादर्शन(कुछका कुछ मानलेना) आदि मनका मिथ्यायोग है ॥ ४२ ॥

शारीरिक मिथ्यायोग ।

वेगधारणोदीरणविषमस्खलनपतनाङ्गप्रणिधानाङ्गप्रदूषणप्र-हारमर्दनप्राणोपरोधसंक्लेशनादिःशारीरोमिथ्यायोगः ॥ ४३ ॥

मलमूत्रादिकोंके वेगको रोकना,एवं विना वेग त्यागना विषमतासे वैठना सोना आदि, गिरना, फिसलना. अंगोंको दूषित करना, शरीरमें चोट आदि लगाना, शरीरको बेहिसाव मलना,बेहिसाव श्वासका रोकना और शरीरको पीडा देना। यह शरीरका मिथ्यायोग है ॥ ४३ ॥

कर्मके मिथ्याभोगका संक्षिप्त वर्णन ।

संग्रहेणचातियोगायोगवर्जकर्म्मवाङ्मनःशरीरजमहितमनुप-दिष्टंयत्तच्च मिथ्यायोगंविद्यादिति । त्रिविधविकल्पंत्रिविधमे-वकर्म्मप्रज्ञापराध इतिव्यवस्येत् ॥ ४४ ॥

यह संक्षेपसे कहागयाहै इनसे अन्य, और भी अतियोग और अयोगसे भिन्न जो वाणी, मन, शरीर, इनके अहित कर्म हैं उनको भी मिथ्यायोग कहतेहैं । यह जो वाणी, मन, शरीर, इन तीनोंके कर्मोंका तीन प्रकारका अतियोगादि विकल्प कहाहै यह बुद्धिके दोषसे ही होताहै ॥ ४४ ॥

कालातियोगादिका वर्णन ।

शीतोष्णवर्षालक्षणाःपुनर्हेमन्तग्रीष्मवर्षासंवत्सरःसकालः । तत्रातिमात्रस्वलक्षणःकालःकालातियोगः । हीनस्वलक्षणः कालयोगः।यथास्वलक्षणविपरीतलक्षणस्तुकालोमिथ्यायोगः कालःपुनःपरिणामउच्यते ॥ ४५ ॥

जाड़ा, गर्मी, वर्षात, इन तीनोंमें क्रमसे शीत होना गर्मीपडना, वर्षावरसना इन तीनोंका लक्षण है, इन तीन कालोंके समुदायको संवत्सर (वर्ष) कहतेहैं इसीका नाम काल है। सो इस कालमें अपने २ समयपर सर्दी, गर्मी, वर्षा, का अत्यंत होना कालका अतियोग कहाजाताहै। न होना अयोग कहाताहै । एवं अपने २ समयसे आगे पीछे होनेको और समयके विपरीत लक्षणोंको कालका मिथ्यायोग कहतेहैं कालको ही परिणाम भी कहतेहैं ॥ ४५ ॥

इत्यसात्म्येन्द्रियार्थसंयोगः प्रज्ञापराधःपरिणामश्चेति ॥ ४६ ॥

इस प्रकार असात्म्य (आत्माके प्रतिकूल) इंद्रिय तथा विषयोंका संयोग,बुद्धिके दोष और कालका वर्णन किया गया है ॥ ४६ ॥

रोगोंके कारण ।

त्रयस्त्रिविधविकल्पाःकारणंविकाराणाम् ।
समयोगयुक्तास्तुप्रकृतिहेतवोभवन्ति ॥ ४७ ॥

इंद्रियार्थसंयोग, बुद्धि और कालका अतियोग, अयोग, और मिथ्यायोग यह तीन प्रकारका विकल्प-रोगोंके उत्पन्न होनेका कारण है और इन तीनोंका ही सुप्रयोग होना आरोग्यताका कारण है ॥ ४७ ॥

सर्वेषामेवभावानांभावाभावौनान्तरेणयोगायोगातियोगमिथ्यायोगात्समुपलभ्येते । यथासंयुक्तयापेक्षिणौहिभावाभावौ४८॥

संपूर्ण वस्तुओंका अभाव और सद्भाव यह दोनों मनुष्यके शरीरमें क्रिया करतेहैं। यह क्रिया सम्यक् योग अयोग, अतियोग मिथ्यायोग, इन भेदोंसे अलग २ हैं। यह भाव और प्रभाव योगमें युक्तकी अपेक्षा करतेहैं अर्थात् मन, वाणी, शरीर इनका युक्ति पूर्वक योग सुखका हेतु और अयुक्ति योग दुखका हेतु होताहै ॥ ४८ ॥

तीनप्रकारके रोग।

त्रयोरोगाइतिनिजागन्तुमानसाःतत्रनिजःशरीरदोषसमुत्थः।

आगन्तुर्भूतविषवाय्वग्निसम्प्रहारादिसमुत्थः । मानसःपुन-
रिष्टस्यालाभाल्लाभाच्चानिष्टस्योपजायते ॥ ४९ ॥

निज अर्थात् शारीरिक, आगंतुक, मानासिक, इन भेदोंसे रोग तीन प्रकारके होतेहैं । उनमें शरीरस्थ वात, पित्त, कफके कारणसे जो व्याधि उत्पन्न हो उसको निज अर्थात् शारीरिक व्याधि कहतेहैं । भूत, विष, बाहरसे आकर लगनेवाला वायु और अग्निप्रहार आदिसे होनेवाली व्याधिको आगंतुक कहतेहैं । इसी प्रकार मनको प्रिय अर्थात् इच्छितपदार्थके न मिलनेसे अप्रिय वस्तुके मिलनेसे जो मनमें शोकादिक होतेहैं । उनको मानासिक रोग कहतेहैं ॥ ४९ ॥

हितकर्तव्य ।

तत्रबुद्धिमतामानसव्याधिविपरीतेनापिसताबुद्ध्याहिताहि-
तमवेक्ष्यावेक्ष्यधर्मार्थकामानामहितानामनुपसेवनेहिताना-
ञ्चोपसेवनेप्रयतितव्यम् ॥ ५० ॥

मानासिक व्याधिमें अथवा मानसिक व्याधिके विना भी बुद्धिमान्को उचित हैं कि, अपने हित और अहितका विचार कर अहितकारक धर्म अर्थ कामका त्याग और हितकारक धर्म अर्थ कामका सेवन करनेमें यत्नवान् होना चाहिये ॥ ५० ॥

नह्यन्तरेणलोकेत्रयमेतन्मानसंकिञ्चिन्निष्पद्यतेसुखंवादुःखंवा
तस्मादेतच्चानुष्ठेयम् । तद्विद्यावृद्धानाञ्चोपसेवनेप्रयतित-
व्यम् । आत्मदेशकालबलशक्तिज्ञानेयथावच्चेति ॥ ५१ ॥

क्योंकि इस लोकमें धर्म अर्थ कामके विना कोई भी मानासिक दुःख,सुख नहीं होसकता इसलिये हितकारक धर्म अर्थ कामका सेवन करे । उस धर्मादि त्रिविध पुरुषार्थको हितकर बनानेके लिये योग्य बुद्धिमानों और वृद्धजनोंका सेवन तथा सत्संग करना चाहिये । और आत्मा, देश, काल, बल, शक्ति, इनके यथावत् ज्ञानमें तत्पर रहे अर्थात् इनसे विरुद्ध आचरण न करे ॥ ५१ ॥

भवतिचात्र । मानसंप्रतिभैषज्यंत्रिवर्गस्यान्ववेक्षणम् । तद्वि-
द्यसेवाविज्ञानमात्मादीनाञ्चसर्वशइति ॥ ५२ ॥

यहां पर श्लोक है कि–धर्म अर्थ काम इस त्रिवर्गको यथोचित जानकर सेवन करना, और इस त्रिवर्गके ज्ञाता वृद्धजनोंकी सेवा यथा आत्म आदिकके ज्ञानमें तत्पर रहना यह मानासिक व्याधिकी औषधि है ॥ ५२ ॥

रोगोंके तीन मार्ग ।

त्रयोरोगमार्गाइति । शाखामर्मास्थिसन्धयःकोष्ठश्च । तत्रशाखारक्तादयोधातवस्त्वक्चवाह्योरोगमार्गः ।मर्माणिपुनर्वस्तिहृदयमूर्द्धादीन्यस्थिसन्धयोऽस्थिसंयोगास्तत्रोपनिवद्धाश्चस्नायुकण्डरासमध्यमोरोगमार्गः । कोष्टंपुनरुच्यंतेमहास्रोतःशरीरमध्यंमहानिम्नमामपकाशयश्चेतिपर्य्यायशब्दैः सरोगमार्ग आभ्यन्तरः ॥ ५३ ॥

रोगमार्ग तीन प्रकारके हैं । वह इस प्रकार हैं १ शाखा, २ मर्म अस्थिसंधि, ३ कोष्ठ इनमें शाखाशब्दसे रक्तादिधातुएं और त्वचा लेना इनको वाह्यमार्ग कहतेहैं । और वस्ति, हृदय, मूर्द्धा आदिक मर्मस्थान, अस्थिसन्धि और अस्थिसंयोग स्थान, एवं उन २ स्थानोंमें वंधीहुई स्नायु, और कंडरा, इनको मध्य रोग मार्ग कहतेहैं । कोष्ठशब्दसे कोष्ठके अन्य पर्याय जैसे महास्रोत, शरीरमध्य, महानिम्न, आमाशय, पक्वाशय, इनको आभ्यंतर रोगमार्ग कहतेहैं ॥ ५३ ॥

वहिर्मार्गज रोगोंके नाम ।

तत्रगण्डःपीडकालज्यपचीचर्म्मकीलाधिमांसालसककुष्ठव्यङ्गादयोविकाराबहिर्मार्गजाः ॥ ५४ ॥

इनमें गंड (गलगंड) पीडका, अलजी, अपची, चर्मकील, अर्बुद, अधिमांस, अलस (पावका रोग), कुष्ठ, और व्यंग आदि रोग वाह्य रोगमार्गसे पैदा होतेहैं ॥ ५४ ॥

शाखानुसारीरोग ।

वीसर्पश्वयथुगुल्माशोंविद्रध्यादयः शाखानुसारिणोभवन्ति रोगाः ॥ ५५ ॥

वीसर्प, शोथ, गुल्म, ववासीर, विद्रधि आदि रोग शाखानुसारी कहेजातेहैं ५५ ॥

मध्यममार्गानुसारी रोग ।

पक्षवधग्रहापतानकार्दितशोपराजयक्ष्मास्थिसंधिशूलगुदभ्रंशादयःशिरोहृद्वस्तिरोगादयश्चमध्यममार्गानुसारिणोभवन्ति रोगाः ॥ ५६ ॥

पक्षवध (पक्षाघात, अर्धांग), ग्रह (अंगग्रह, किसी अंगका रहजाना) अपतानक, अर्दित, सोजा, राजयक्ष्मा, अस्थिशूल, संधिशूल, गुदभ्रंश, और शिरोगत रोग, हृदयगत रोग, एवं वस्तिगत रोग, मध्यममार्गानुसारी कहेजातेहैं ॥ ५६ ॥

कोष्ठानुसारी रोग ।

ज्वरातीसारछर्द्यलसकविषूचिकाश्वासहिक्कानाहोदरप्लीहादयोऽन्तर्मार्गजाश्च । विसर्पश्वयथुगुल्माशोंविद्रध्यादयःकोष्ठमार्गानुसारिणोभवन्तिरोगाः ॥ ५७ ॥

ज्वर, आतिसार, वमन, अलसक (अजीर्णका भेद), विसूचिका, श्वास, कास, हिचकी, अफरा, उदररोग, प्लीहरोग, यह आभ्यंतरमार्गजन्य रोग हैं। वीसर्प, शोथ, गुल्म, अर्श, तथा विद्रधिआदि कोष्ठमार्गानुसारी रोग होते हैं ॥ ५७ ॥

तीनप्रकारके वैद्य ।

त्रिविधाभिषजइति । भिषक्छद्मचराःसन्तिसन्त्येकेसिद्धसाधिताः । सन्तिवैद्यागुणैर्युक्तास्त्रिविधाभिषजोभुवि ॥ ५८ ॥

तीन प्रकारके वैद्य हैं । छद्मचर वैद्य १, सिद्धसाधित वैद्य २, वैद्यगुणसम्पन्न वैद्य ३ ॥ ५८ ॥

भिषक्छद्मचरके लक्षण ।

वैद्यभाण्डौषधैःपुस्तैःपल्लवैरवलोकनैः ।
लभन्तेयेभिषक्शब्दमज्ञास्तेप्रतिरूपकाः ॥ ५९ ॥

इनमें दूसरे वैद्योंके पात्र, औषध, पुस्तक, पत्र आदि देखकर आपभी उनकी समान रूप बनाकर वैद्य कहलानेवाले प्रतिरूपक या छद्मचर वैद्य कहातेहैं ॥ ५९ ॥

सिद्धसाधितवैद्यके लक्षण ।

श्रीयशोज्ञानसिद्धानांव्यपदेशादतद्विधाः ।
वैद्यशब्दंलभन्तेयेज्ञेयास्तेसिद्धसाधिताः ॥ ६० ॥

जो वैद्य वैद्यगुणसम्पन्न तो नहीं परन्तु धनवान् यशवाले ज्ञानवान् और सिद्ध लोगोंने उनकी प्रशंसा फैलादी हो उनको सिद्धसाधित वैद्य कहतेहैं ॥ ६० ॥

वैद्यगुणयुक्तके लक्षण ।

प्रयोगज्ञानविज्ञानसिद्धिसिद्धाःसुखप्रदाः ।
जीविताभिसरास्तेस्युर्वैद्यत्वंतेष्ववस्थितामिति ॥ ६१ ॥

जो वैद्य औषधप्रयोग आदिमें कुशल हैं तथा हेतु, रोग, चिकित्साके ज्ञान विज्ञानमें सिद्धिसम्पन्न हैं, वह सुखके और जीवनके देनेवाले सद्वैद्य वैद्यगुणसम्पन्न वैद्य होते हैं इनहीमें वैद्य शब्दकी स्थिति है ॥ ६१ ॥

औषधियोंके भेद ।

त्रिविधमौषधमिति । दैवव्यपाश्रयंयुक्तिव्यपाश्रयंसत्त्वावजयश्च। तत्रदैवव्यपाश्रयंमन्त्रौषधिमणिमङ्गलनियमप्रायश्चित्तोपवासस्वस्त्ययनप्रणिपाततीर्थगमनादि । युक्तिव्यपाश्रयंपुनराहारौषधद्रव्याणांयोजना । सत्त्वावजयःपुनरहितेभ्योऽर्थेभ्यो मनोनिग्रहः ॥ ६२ ॥

तीन प्रकारकी औषध होती हैं। दैवव्यपाश्रय १ युक्तिव्यपाश्रय २, सत्त्वावजय ३ इनमें मन्त्र, मंगल, औषधी, रत्न इनका धारण, मंगलाचरण, बलि, पूजन, होम, नियम, प्रायश्चित्त, उपवास, स्वस्तिवाचन, प्रणाम, तीर्थगमन आदिको दैवव्यपाश्रय औषध कहतेहैं। युक्तिपूर्वक आहार और औषधके सेवनको युक्तिव्यपाश्रय कहते हैं । अहित अर्थोंसे मनको रोकनेका नाम सत्त्वावजय औषध है ॥ ६२

शारीरिक रोगोंमें औषधभेद ।

शरीरदोपप्रकोपेखलुशरीरमेवाश्रित्यप्रायशस्त्रिविधमौपधमिच्छन्ति । अन्तःपरिमार्जनंवहिःपरिमार्जनंशास्त्रप्रणिधानञ्चेति । तत्रान्तःपरिमार्जनंयदन्तःशरीरमनुप्रविश्यौपधमाहारजातव्याधीन्प्रतिमार्ष्टि ।यत्पुनर्वहिःस्पर्शमाश्रित्याभ्यङ्गस्वेदप्रदेहपरिषेकोन्मर्दनाद्यैरामयान्प्रमार्ष्टितद्वहिःपरिमार्जनम्॥६३॥ शस्त्रप्रणिधानंपुनश्छेदनभेदनव्यधनदारणलेखनोत्पाटनप्रच्छन्नसीवनैपणक्षारजलौकाश्चेति ॥ ६४ ॥ प्राज्ञोरोगेसमुत्पन्ने वाह्येनाभ्यन्तरेणवा । कर्मणालभतेशर्मशस्त्रोपक्रमणेनवा॥६५॥

शारीरिक दोषोंके कोपको शान्त करनेके लिये बहुत करके तीन प्रकारकी औषधका प्रयोग किया जाताहै।वह तीन प्रकारके औषध यह हैं—अंतःपरिमार्जन, वाहिःपरिमार्जन और शस्त्रप्रणिधान । इनमें जो औषध शरीरके भीतर जाकर मिथ्या आहारादि हुए रोगको नष्ट करे उसको अंतःपरिमार्जन कहते हैं । जो औषध वाहिरके आश्रयसे अर्थात् मालिश, पसीना, प्रलेप, परिषेक उद्वर्तन आदिके संयोगसे

रोगको नष्ट करे उसको बाहि:परिमार्जन कहतेहैं । शस्त्रद्वारा-छेदन, भेदन, व्यधन, विदारण, लेखन, उत्पाटन, पृच्छन, सीवन, एषण तथा क्षारकर्म और जलौका आदिके प्रयोगको शस्त्रप्रणिधान कहतेहैं ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ बुद्धिमान् मनुष्य उत्पन्न हुए रोगकी शांतिके लिये अंतःपरिमार्जन अथवा बाह्यपरिमार्जन या शस्त्रप्रणिधान, इन तीन उपायोंको करनेसे ही सुखको प्राप्त होसकताहै ॥ ६५ ॥

बालकोंकी अज्ञानताका फल ।

बालस्तुखलुमोहाद्वाप्रमादाद्वानबुध्यते । उत्पद्यमानंप्रथमं रोगं शत्रुमिवाबुधः ॥ ६६ ॥ अग्राहिप्रथमंभूत्वारोगःपश्चाद्विवर्द्धते । सजातमूलोमुष्णातिबलमायुश्चदुर्मतेः ॥ ६७ ॥ नमर्त्योलभतेश्रद्धांतावद्यावन्नपीड्यते । पीडितस्तुमतिंपश्चात् कुरुतेव्याधिनिग्रहे ॥ ६८ ॥ अथपुत्रांश्चदारांश्चजातींश्चाहूय भाषते । सर्वस्वेनापिमेकश्चिद्भिषगानीयतामिति ॥ ६९ ॥ तथाविधश्वकःशक्तोदुर्बलंव्याधिपीडितम् । कृशंक्षीणेन्द्रियं दीनंपरित्रातुंगतायुषम् ॥ ७० ॥ सत्रातारमनासाद्यबालस्त्यजतिजीवितम्। गोधालांगूलबद्धेवाकृष्यमाणाबलीयसा ॥ ७१ ॥

बालक अर्थात् अज्ञानी मनुष्य पहले तो उत्पन्न होते हुए रोगको मोह अथवा प्रमादवश तुच्छ मानताहै । जैसे मूर्खपुरुष अपने शत्रुको तुच्छ समझताहै ॥ ६६ ॥ परन्तु जब पहले उत्पन्न होते ही रोगका यत्न नहीं किया जाता फिर वह रोग वृद्धिको प्राप्त होकर जड पकड जाताहै और पहले ही यत्न न करनेवाले मूर्खके बलको तथा आयुको नष्ट करदेताहै ॥ ६७ ॥ जब तक मूर्खमनुष्यको रोग अत्यंत पीडित नहीं करदेता तब तक उस रोगको यत्न करनेके लिये उसकी श्रद्धा नहीं होती । जब रोगसे व्याकुल होजाताहै फिर यत्न करानेके लिये प्रयत्नवान् होताहै । और अपने पुत्र स्त्री तथा बांधवोंको बुलाकर कहताहै कि चाहे सर्वस्व भी खर्च होजाय परंतु किसी योग्य वैद्यको बुलाकर मेरी चिकित्सा करो ॥ ६८ ॥ ॥ ६९ ॥ फिर वैसे दुर्बल, असाध्य व्याधिसे पीडित हुए, कृश, तथा क्षीण इंद्रिय होनेपर दीन, और गतायुकी रक्षा करनेको कौन समर्थ होसकताहै अर्थात् कोई नहीं । फिर जब उसकी कोई चिकित्सा नहीं करसकता तब वह मूर्ख अपनी आयुको त्याग देताहै अर्थात् रोगवश होकर मृत्युको प्राप्त होताहै जैसे गोहकी पूंछको कोई

वलवान् जानवर पकडकर खींचताहै तव वह आगेको वलपूर्वक भागतीहुई अपने जीवनको त्यागदेतीहै ऐसे ही रोगोंसे खींचाहुआ मनुष्य भी अपने जीवनको त्यागदेताहै ॥ ७० ॥ ७१ ॥

मनुष्यका कर्तव्य ।

तस्मात्प्रागेवरोगेभ्योरोगेषुतरुणेषुवा । भेषजैःप्रतिकुर्वीतय-इच्छेत्सुखमात्मनः ॥ ७२ ॥

इसलिये रोग होनेसे पहले ही अथवा रोगके वलवान् होनेसे पहलेही औषधद्वारा अपने सुखके लिये यत्न करे ॥ ७२ ॥

अध्यायका उपसंहार ।

तत्रश्लोकौ ॥ एषणाःसमुपस्तम्भावलकारणमामयाः । तिस्रै-षणीयेमार्गाश्चभिषजोभेषजानिच ॥ ७३ ॥ त्रित्वेनाष्टौसमु-द्दिष्टाःकृष्णात्रेयेणधीमता । भावाभावेषुशक्तेनयेषुसर्वंप्रतिष्ठि-तम् । इति ॥ ७४ ॥

अशीत्यादि ॥ एकादशास्तिस्रैषणीयाध्यायः समाप्तः ।

यहां इस अध्यायकी पूर्तिमें दो श्लोक हैं. कि इस तिस्रैषणीयाध्यायमें वैराग्यवान् बुद्धिसंपन्न कृष्णात्रेयजीने एषण, उपस्तंव, वल, कारण, रोग, रोगमार्ग, वैद्य, औषध इन आठोंके तीन २ भेद कथन कियेहैं । और सवके भावाभाव कहेहैं । जिसमें समस्त प्रतिष्ठित है अर्थात् जिसके आधार पर समस्त वैद्यक है ॥७३॥७४॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदीयसंहितायां पटियालाराज्यांतर्गतटकसालनिवासिवैद्यपंचानन वैद्यरत्न पं० रामप्रसादवैद्योपाध्यायविरचितप्रसादन्याख्यभाषाटीकायां तिस्रैषणीयो नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः ।

अथातोवातकलाकलीयमध्यायंव्याख्यास्याम इतिहस्माहभगवानात्रेयः ।

वायुके विषयमें ऋषियोंका प्रश्न ।

वातकलाकलाज्ञानमधिकृत्यपरस्परमतानिजिज्ञासमानाःस-मुपविश्यमहर्षयःपप्रच्छुरन्योन्यंकिंगुणोवायुःकिमस्यप्रकोप-

नमुपशमनानिवास्यकानि । कथश्चैनमसङ्घातमनवस्थित-
मनासाद्यप्रकोपनप्रशमनानिप्रकोपयन्तिप्रशमयन्तिवा ।
कानि चास्यकुपिताकुपितस्यशरीराशरीरचरस्यशरीरेषुचरतः
कर्माणिबहिःशरीरेभ्योवेति ॥ १ ॥

अब हम वातकलाकलीय अध्यायका कथन करतेहैं ऐसा भगवान् आत्रेयजी कहनेलगे महर्षिलोग एक स्थानमें एकत्रित होकर बैठेहुए वातकलाकलीय अर्थात् वायुको सूक्ष्मविचार करनेका उद्देश्य रखकर परस्पर जाननेकी इच्छा करतेहुए आपसमें इस प्रकार आंदोलन करने लगे कि वायुके क्या गुण हैं इसके प्रकोपका कारण क्या है, और इसकी शांति किस प्रकार होतीहै । और किस प्रकार इस असंहत और अनवस्थित वायुको प्रकोपकारक द्रव्य प्राप्त होकर प्रकुपित करतेहैं । और कैसे शमनकारक शमन करते हैं । जब यह वायु कुपित होकर, अथवा विना शुद्ध हुएही शरीरके भीतर या बाहर विचरतीहै तब इसकी क्या क्रिया होतीहै । और शरीरके भीतर रहकर किन कर्मोंको करतीहै तथा शरीरके बाहर रहकर किन कर्मोंको करती है ॥ १ ॥

सांकृत्यायनकुशका मत ।

अत्रोवाचकुशःसांकृत्यायनः । रूक्षलघुशीतदारुणखराविषदाः
षडिमेवातगुणाभवन्ति ॥ २ ॥

उन ऋषियोंमें कुश–सांकृत्यायन ऋषि कहनेलगे कि वायुमें रूक्ष, लघु, शीतल, दारुण, खर, विशद, यह छः गुण हैं ॥ २ ॥

भरद्वाजका मत ।

तच्छ्रुत्वावाक्यंकुमारशिराभरद्वाजउवाच एवमेतद्यथाभगवा-
नाहएतएववातगुणाभवन्ति । सत्वेवंगुणैरेवंद्रव्यैरेवंप्रभावै-
श्चकर्म्मभिरभ्यस्यमानैर्वायुःप्रकोपमापद्यतेसमानगुणाभ्यासो
हिधातूनांवृद्धिकारणमिति ॥ ३ ॥

यह सुनकर " कुमारशिरा भरद्वाज " कहनेलगे जैसे आपने कहा है ठीक वायुमें यही गुण होतेहैं वह वायु वैसे ही रूक्षादि गुणयुक्त द्रव्योंसे तथा वैसे ही रूक्षादि प्रभाववाले कर्मोंके अभ्याससे कुपित होतीहै । क्योंकि समानगुणोंवाले द्रव्यों तथा कर्मोंका अभ्यास ही धातुओंकी वृद्धिका कारण होताहै जैसे ' सर्वदा सर्वभावानां ' यह पहले अध्यायमें कहचुके हैं ॥ ३ ॥

स्निग्धादि गुणयुक्त शरीरमें विचरता हुआ वायु स्निग्धादिगुणोंसे मिलकर शान्तिको प्राप्त होताहै। अर्थात् वातसे विपरीत चिकने आदि गुणयुक्त पदार्थोंसे स्निग्धता आदि गुण प्राप्त होनेपर रूक्षता आदि गुण त्यागताहुआ शांत होजाताहै ॥ ५ ॥

वार्योविदका मत।

तच्छ्रुत्वाबडिशवचनमवितथमृषिगणैरनुमतमुवाचवार्योविदो राजर्षिः। एवमेतत्सर्वमनपवादंयथाभगवानाह। यानितुखलुवायोःकुपिताकुपितस्यशरीराशरीरचरस्यशरीरेषुचरतःकर्म्माणिबहिःशरीरेभ्योवाभवन्तितेषामवयवान्प्रत्यक्षानुमानोपमानैः साधयित्वानमस्कृत्यवायवेयथाशक्तिप्रवक्ष्यामः ॥ ६ ॥

इस प्रकार कहेहुए यथार्थ, और ऋषियोंके बहुमत अर्थात् मानेहुए बडिशके वाक्यको सुनकर राजर्षि वार्योविद कहनेलगे कि आपने जैसे कहाहै यह निर्विवाद है अर्थात् सबको मंतव्य और यथार्थ है। अब शरीरसे बाहिर विचरतेहुए कुपित अथवा शान्तिको प्राप्त हुए वायुके जो २ कार्य शरीरके भीतर और बाहर होतेहैं अर्थात् कुपित या विना कुपितवायु शरीरमें अथवा बाहिर जो २ कार्य करताहै उनसबको प्रत्यक्ष अनुमान और आप्तोपदेश द्वारा सिद्ध करतेहुए वायुको नमस्कार करके यथाशक्ति वर्णन करताहूं ॥ ६ ॥

वायुके भेद और कर्म।

वायुस्तन्त्रयन्त्रधरःप्राणोदानसमानव्यानापानात्माप्रवर्त्तकश्चेष्टानामुच्चावचानांनियन्ताप्रणेताचमनसः। सर्वेन्द्रियाणामुद्द्योतकः। सर्वेन्द्रियार्थानामभिवोढासर्वशरीरधातुव्यूहाकरः सन्धानकरःशरीरस्यप्रवर्त्तकोवाचःप्रकृतिःस्पर्शशब्दयोःश्रोत्रस्पर्शनयोर्मूलहर्षोत्साहयोर्योनिःसमीरणोऽग्नेर्दोषसंशोषणः। क्षेप्ताबहिर्मलानांस्थूलाणुस्रोतसांभेत्ताकर्त्तागर्भाकृतीनामायुषोऽनुवृत्तिप्रत्ययभूतोभवत्यकुपितः ॥ ७ ॥

इस शरीरतंत्र और शरीररूपी यंत्रके धारण करनेवाला वायु—प्राण, उदान, समान, व्यान, अपान, इन भेदोंसे पांच प्रकारका है। यह चलना फिरना आदि शरीरकी चेष्टाका प्रवर्तक है, और ऊंची नीची क्रियाका नियंता है। मनका प्रणेता, सब इंद्रियोंमें उद्योग करनेवाला, सब इंद्रियोंको चलानेवाला, सब शरीरकी धातुओंका वाहक, शरीरका संधान करनेवाला, वाणीको प्रवृत्त करनेवाला, शब्द और

स्पर्श स्वभाववाला शब्द और स्पर्शके वोधका कारण, हर्ष और उत्साहका कारण, अग्निको प्रेरण करनेवाला, दोषोंका शोषण करनेवाला, मलोंको निकालकर वाहिर फेंकनेवाला, स्थूल और सूक्ष्म स्रोतोंको भेदन करनेवाला, गर्भकी आकृति वनानेवाला, और आयुका आधारभूत है । यह कर्म प्रकृतिस्थ अर्थात् कोपको विना प्राप्त हुए वायुके हैं ॥ ७ ॥

कुपितवायुके कर्म ।

कुपितस्तुखलुशरीरेशरीरंनानाविधैर्विकारैरुपतपतिवलवर्णसुखायुपामुपघातायमनोव्याहर्षयतिसर्वेंद्रियाण्यपहन्ति । विहन्तिगर्भान्विकृतिमापादयत्यतिकालंधारयति । भयशोकमोहदैन्यातिप्रलापाञ्जनयतिप्राणांश्चोपरुणद्धि। प्रकृतिभूतस्यखल्वस्यलोकेचरतःकर्माणीमानिभवन्ति ॥ ८ ॥

शरीरस्थ वायु कुपित होनेपर शरीरको अनेक प्रकारके रोगोंसे पीडित करताहै । तथा वल, वर्ण, सुख और आयुको नष्ट करताहै। और गर्भको नष्ट अथवा विकारयुक्त करदेताहै या प्रसवमें अतिकाल अर्थात् विलम्ब करदेताहै। भय, शोक, मोह, वकवाद, दीनता, इनको उत्पन्न करदेताहै । तथा प्राणोंकी गतिको रोकदेताहै यह शरीरमें कुपित हुए वायुके कार्य हुए ॥ ८ ॥

वाह्य वायुके कर्म ।

तद्यथा। धरणीधारणंज्वलनोज्ज्वालनम्। आदित्यचन्द्रनक्षत्रग्रहगणानांसन्तानगतिविधानंसृष्टिश्चमेघानाम् । अपाञ्चविसर्गःप्रवर्तनंस्रोतसांपुष्पफलानाञ्चाभिनिर्वर्त्तनमुद्भेदनञ्चौद्भिदानामृतूनांप्रविभागः । विभागोधातूनांधातुमानसंस्थानव्यक्तिः । वीजाभिसंस्कारःशस्याभिवर्द्धनंविक्लेदोपशोषणमवैकारिकविकारश्चेति ॥ ९ ॥

वाह्यवायु–प्रकृतिस्थ अर्थात् अपने उचित स्वभावमें रहनेसे संसारमें विचरता हुआ इन कर्मोंको करताहै ।

जैसे–पृथ्वीका धारण, अग्निका ज्वालन, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, और ग्रहगणोंको अपने क्रमपूर्वक गतिसे घुमाना तथा मेघ आदिको उत्पन्न करना, आकाशसे जलोंका पातन करना, स्रोतों (सोतों) अर्थात् झरनोंमेंसे जलका प्रवर्तन करना, पुष्प, फल आदिकोंका अपने २ समयमें उत्पन्न होना, वृक्षादि उद्भिज्ज सृष्टिका

ठीक उत्पन्न होना, ६ ऋतुओंका ठीक होना, संपूर्ण पार्थिव धातुओंका विभागे तथा घनता और आकृतिका ठीक होना, बीजोंमेंसे अंकुरादि निकलना, खेती तथा घासका वढना, क्लेदका हरना, विकारयुक्त वस्तुको विकाररहित बनादेना। ऐसे ऐसे शुभ कार्योंको प्रकृतिस्थ बाह्य वायु करताहै ॥ ९ ॥

कुपित वाह्य वायुके कर्म।

प्रकुपितस्यखल्वस्यलोकेषुचरतः कर्माणीमानि भवन्ति॥१०॥

प्रकुपित हुए वाह्यवायुके यह कर्म (आगे कहे हुए) होतेहैं ॥ १० ॥

तद्यथा । उत्पीडनंसागराणामुद्वर्त्तनंसरसांप्रतिसरणमापगा-नामाकम्पनञ्चभूमेराधमनमम्बुदानांशिखरिशिखरावमथन-मुन्मथनमनोकहानांनिहारानिर्ह्रादपांशुसिकतामत्स्यभेकोर-गक्षाररुधिराश्माशनिविसर्गोव्यादनञ्चषण्णामृतूनांशस्याना-मसंघातोभूतानाञ्चोपसर्गोभावानाञ्चाभावकरणम् । चतुर्यु-गान्तकराणांमेघसूर्य्यानलानांविसर्गः, साहिभगवान्प्रभव-श्चाव्ययश्चभूतानांभावानामभावाकरः ॥ ११ ॥

वह ऐसे हैं समुद्रोंको डगमगा देना, तालाओंके जलोंका आलोडन करडालना नदियोंको उलटा करदेना, भूकंप होना, मेघोंका इधर उधर चालन होना, पर्वतोंके शिखरोंका टूटना, वृक्षोंका उखाडना नीहार (पानी मिली हवा), गूंजदार शब्द, गरदा, रेत, मत्स्य, मेडक, सांप, खार, रुधिर, पत्थर, वज्र, इनका आकाशसे गिरना, छहों ऋतुओंमें विकृति होना, खेतीका विगडना, भूत आदि गणोंकी वाधा होना, होनेयोग्य वस्तुओंका न होना, यह उपद्रव होतेहैं । चारों युगोंके नष्टकर्ता अर्थात् प्रलयकारक मेघ, सूर्य, वायु और अग्निको फैलाना, यह वायु भग-वान् ही भूत सृष्टिकी उत्पत्ति, स्थिति और नाशको करनेवाला है ॥ ११ ॥

वायुके साधारण धर्म।

सुखासुखयोर्विधातामृत्युर्यमोनियन्ताप्रजापतिरदितिर्विश्व-कर्माविश्वरूपःसर्वगःसर्वतन्त्राणां विधाता । भावानामणुर्वि-भुर्विष्णुःक्रान्तालोकानांवायुरेवभगवानिति ॥ १२ ॥

यह वायु ही सुख दुःखको देनेवाला मृत्यु, यम, नियंता, प्रजापति, आदिती, विश्वकर्मा, विश्वरूप, सर्वगामी, सर्वतंत्रोंको रचनेवाला है । और सब भावोंमें— अणु, विभु, विष्णु, तीनों लोकोंमें व्यापक, और भगवान् है ॥ १२ ॥

मारीचिका प्रश्न ।

तच्छ्रुत्वावाक्यविद्वचोमारीचिरुवाच। यद्यप्येवमेतात्किमर्थस्या-स्यवचनेविज्ञानेवासामर्थ्यमस्तिभिषग्विद्यायाम् । भिषग्वि-द्यांवाधिकृत्यकथाप्रवर्त्तते । वार्योविदउवाच । भिषक्पवनम-तिवलमतिपरुषमतिशीघ्रकारिणमात्यायिकञ्चेन्नानुनिशम्येत् ॥ ॥ १३ ॥ सहसाप्रकुपितमतिप्रयतःकथमग्रेऽभिरक्षितुमभिधा-स्यति । प्रागेवैनमत्ययभयाद्वीति । वायोर्यथार्थास्तुतिरपिभव-त्यारोग्यायवलवर्णवृद्ध्येवर्चस्वित्वायोपचयायच । ज्ञानोपप-त्तयेपरमायुःप्रकर्षायचेति ॥ १४ ॥

वार्योविदके इस वाक्यको सुनकर मरीचि ऋषि बोले । जैसा आप कहतेहैं यदि वायु ऐसा ही है तो इस वायुके कहने और स्वरूप जाननेके लिये वैद्यकशास्त्रमें क्या प्रयोजन है अर्थात् बाह्यवायुका इस प्रकारका प्रस्ताव पदार्थविद्यामें होना चाहिये वैद्यकका संवन्ध इस प्रस्तावसे नहीं क्योंकि इस समय आयुर्वेदको आश्रय करके ही इस कथा (वात ज्ञान) की प्रवृत्ति है । यह प्रश्न सुनकर वार्योविद बोले कि यहां पर इस कथनका यह प्रयोजन है कि वैद्यजन पवनको अतिवेगसे चलता हुआ, अति-कठोर, अतिशीघ्रकारी, और विकारोंको करनेवाला जानलेवें ॥१३॥ फिर शीघ्र ही उसके कोपसे होनेवाले अनिष्टोंसे वचानेके यत्नमें समर्थ हों यदि वैद्य पवनकी गतिसे उसके विकार आदिको न समझेगा तो होनेवाले भयसे पहले ही रक्षा किसप्रकार करसकेगा । शुद्ध वायुका यथार्थ सेवन करनेसे आरोग्यताकी प्राप्ति, वल और वर्णकी वृद्धि होती है । तेजस्विता और पुष्टता प्राप्त हो और ज्ञानकी प्रतिपत्ति तथा आयुकी वृद्धि होती है ॥ १४ ॥

पित्तकी ऊष्माका वर्णन ।

मारीचिरुवाच । अग्निरेवशरीरेपित्तान्तर्गतःकुपिताकुपितःशु-भाशुभानिकरोति ॥

तद्यथा ।

पक्तिमपक्तिदर्शनमदर्शनंमात्रामात्रत्वमूष्मणःप्रकृतिविकृति-वर्णौशौर्यंभयंक्रोधंहर्षंमोहंप्रसादमित्येवमादीनिचापराणि द्वन्द्वानीति ॥ १५ ॥

मारीचि ऋषि कहनेलगे कि शरीरमें अग्नि ही पित्तमें रहकर अकुपित और कुपित होकर शुभ तथा अशुभको करती है। वह इसप्रकार है जैसे विपाक और अविपाक, दर्शन, अदर्शन, गर्मीको ठीक रखना या बेठीक रखना, प्रकृति या विकृति, वर्ण और अवर्ण, शूरता, अशूरता, ऐसे ही भय, क्रोध, हर्ष, मोह, प्रसन्नता आदि और भी दो दो हिस्सेमें करता है अर्थात् कुपित अग्नि अशुभ और अकुपित शुभकारक होता है ॥ १९ ॥

शरीरमें सोमकी प्रधानता।

तच्छ्रुत्वामारीचिवचः काश्यपउवाच। सोमएवशरीरेश्लेष्मान्तर्गतःकुपिताकुपितःशुभाशुभानिकरोति।

तद्यथा।

दार्ढ्यंशैथिल्यमुपचयंकार्श्यमुत्साहमालस्यंवृषतांक्लीबतांज्ञानमज्ञानंबुद्धिमोहमेवमादीनिचापराणिद्वन्द्वादीनीति ॥ १६ ॥

इस प्रकार मारीचिके वाक्यको सुनकर काश्यप बोले कि सोम ही शरीरकें कफमें रहकर विना कुपित हुआ शुभ और कुपित हुआ अशुभ करताहै। जैसा दृढता, शिथिलता; पुष्टता, कृशता; उत्साह, आलस्य; पुरुषार्थता, क्लीवता; ज्ञान अज्ञान; बुद्धि, मोह आदि अन्य कार्य भी प्रकृतिस्थ होनेपर शुभ और कुपित होनेपर अशुभ करताहै ॥ १६ ॥

पुनर्वसुका सिद्धांत।

तच्छ्रुत्वाकाश्यपवचोभगवान्पुनर्वसुरात्रेयउवाच। सर्वएवभवन्तःसम्यगाहुरन्यत्रैकान्तिकवचनात् ॥ सर्वएवखलुवातपित्तश्लेष्मणःप्रकृतिभूताःपुरुषमव्यापन्नेन्द्रियंबलवर्णसुखोपपन्नमायुषामहतोपपादयन्ति । सम्यगेवाचरिताधर्मार्थकामानिश्रेयसेनमहतोपपादयंतिपुरुषमिहचामुष्मिंश्चलोके । विकृतास्त्वेनंमहताविपर्य्ययेणोपपादयन्ति। ऋतवस्त्रयइवविकृतिमापन्नालोकमशुभेनोपघातकालेइत्येतदृषयः सर्वएवानुमेनिरे वचनमात्रेयस्यभगवतोऽभिननन्दुश्चेति ॥ १७ ॥

यह काश्यपका वचन सुनकर भगवान् पुनर्वसु आत्रेयजी बोले कि आप सबने ही वात पित्त और कफके विषयमें ठीक कहा। यह तीनों (वात पित्त कफ) ही

अपनी प्रकृति (स्वभाव, ठीक प्रमाण) में स्थित हुए पुरुषकी इंद्रियोंको बलवान् करते हैं और बल, वर्ण तथा सुखको उत्पन्न करते हैं । और दीर्घ आयुको देतेहैं । जिसके प्रभावसे मनुष्य(धर्म अर्थ काम मोक्ष)इन पुरुषार्थोंका साधन करसकता है अर्थात् इस लोक और परलोकका सुख प्राप्त करसकता है । और विकारको प्राप्तहुए यह तीनों ऊपर कहे हुए गुणोंसे विपरीत (दोषोंको) करते हैं । जैसे जाडा गर्मी, वर्षा यह तीन ऋतुभी विकारको प्राप्त हुई संसारमें प्रलय कालमें अशुभ करती हैं ऐसे ही यह वात, पित्त, कफ, तीनों शरीरमें विकारको प्राप्त होनेसे अशुभ करतेहैं । इस प्रकार भगवान् आत्रेयके कहे वचनको सुनकर सब ऋषि आनन्दसे अनुमोदन करने लगे ॥ १७ ॥

भवतिचात्र । तदात्रेयवचःश्रुत्वासर्वएवानुमेनिरे । ऋषयोऽभिननन्दुश्चयथेन्द्रवचनंसुराः ॥ १८ ॥

जैसे इन्द्रके वचनको सुन सब देवता अनुमोदन करनेलगे वैसे ही भगवान् आत्रेयके वचनको सुनकर सब ऋषि ठीककहा २ कहकर आशंसा करनेलगे ॥१८॥

अध्यायका संक्षिप्त वर्णन ।

तत्रश्लोकौ । गुणाःषड्द्विविधोहेतुर्विविधंकर्म्मतत्पुनः । वायोश्चतुर्विधंकर्म्मपृथक्चकफपित्तयोः ॥ १९ ॥ महर्षीणांमतिर्यायापुनर्वसुमतिश्चया । कलाकलीयेवातस्यतत्सर्वंसम्प्रकाशितम् ॥ इति ॥ २० ॥

निर्देशचतुष्कम् ।

अशीत्यादिवातकलाकलीयोऽध्यायःसमाप्तः ।

अध्यायकी पूर्तिमें यह दो श्लोक हैं इस वातकलाकलीय नामके अध्यायमें वायुके छः गुण, दोषकारक हेतु और अनेक प्रकारके वायुके कर्म, कुपित अकुपित भेदसे पित्त और कफके दो कर्म, वात पित्त कफ के सम्बन्धमें ऋषियोंका मत, तथा पुनर्वसुजीका मत वर्णन किया गया है ॥ १९ ॥ २० ॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदसंहितायां पटियालाराज्यान्तर्गतटकसालनिवासिवैद्य-पञ्चानन वैद्यरत्न पं० रामप्रसादवैद्योपाध्यायविरचितप्रसादन्याख्यभाषाटीकायां वातकलाकलीयो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः ।

अथातःस्नेहाध्यायं व्याख्यास्याम इतिहस्माह भगवाना-त्रेयः ॥

अब हम स्नेहाध्यायकी व्याख्या करते हैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहनेलगे ।

अग्निवेशका प्रश्न ।

सांख्यैःसंख्यातसंख्येयैःसहासीनं पुनर्वसुम् । जगद्धितार्थंपप्र-च्छवह्निवेशः सुसंशयम् ॥ १ ॥ किंयोनयःकतिस्नेहाःकेचस्नेहगु-णाःपृथक् । कालानुपानेकेकस्यकतिकाश्चविचारणाः ॥ २ ॥ कतिमात्राःकथंमानाकाचकेषूपदिश्यते। कश्चकेभ्योहितःस्नेहः प्रकर्षःस्नेहनेचकः ॥३॥ स्नेह्याः केकचनस्निग्धाःस्निग्धाति-स्निग्धलक्षणम् ।किंपानात्प्रथमंपीतेजीर्णेकिञ्चहिताहितम् ४॥ केमृदुक्रूरकोष्ठाःकाव्यापदःसिद्धयश्चकाः।अच्छेसंशोधनेचैवस्ने-हेकावृत्तिरिष्यते ॥ ५ ॥ विचारणाःकेषुयोज्याविधिनाकेनतत् प्रभो । स्नेहस्यामितविज्ञानज्ञानामिच्छामिवेदितुम् ॥ ६ ॥

सांख्य शास्त्रके विख्यात और प्रसिद्ध २ ऋषियोंमें विराजमान पुनर्वसुजीसे संसारके हितके लिये अग्निवेश अपने संशयको पूछनेलगे ॥ १ ॥ हे प्रभो ! स्नेहके कारण कौन २ द्रव्य हैं । स्नेह कितने प्रकारके हैं स्नेहोंके अलग २ कौनसे गुण हैं किस समय कौनसे स्नेहको पान करना चाहिये और उनके अनुपान क्या हैं । स्नेह कितने प्रकारके हैं विचारणा कितनी और कौन हैं। कितनीमात्रासे सेवन करना, इसका मान कैसा है । कैसा किसके लिये कहाहै । कौन स्नेह किसको हितकारकहैं सब स्नेहोंमें उत्तम स्नेह कौनसा है किसको स्नेहन करना चाहिये किसको नहीं करना । स्निग्ध और अतिस्निग्धके क्या २ लक्षणहैं । स्नेह पीनेसे पहले और स्नेह पीनेसे पीछे तथा स्नेहके जीर्ण होनेपर कौन क्रिया हित है और कौन अहित है मृदु कोष्ठ और क्रूर कोष्ठ कौन होतेहैं । स्नेहपानके अयोगसे क्या खराबी होतीहै और उसका यत्न क्या है अच्छस्नेह और संशोधन स्नेहमें क्या बर्ताव करना चाहिये ।

विचारणा स्नेह किस विधिसे किनको देना । हे अमितज्ञान ! स्नेहनके प्रकारोंको जाननेकी मेरी इच्छा है इसलिये कृपया स्नेहशास्त्रका विधान कीजिये ॥ २-६ ॥

पुनर्वसुका उत्तर ।

अथतत्संशयच्छेत्ताप्रत्युवाचपुनर्वसुः । स्नेहानांद्विविधाचासौ योनिःस्थावरजङ्गमा ॥ ७ ॥ तिलःपियालाभिषुकौविभीतकश्चित्राभयैरण्डमधूकसर्षपाःकुसुम्भबिल्वारुकमूलकातसीनिकोचकाक्षोडकरञ्जशिग्रुकाः ॥ ८॥ स्नेहाश्रयाःस्थावरसंज्ञितास्तथास्युर्जाङ्गमामत्स्यमृगाःसपक्षिणः।तेषांदधिक्षीरघृतामिषं वसास्नेहेषुमज्जाचतथोपदिश्यते ॥ ९ ॥

अग्निवेशके इस प्रश्नको सुनकर इस संशयके दूर करनेवाले पुनर्वसुजी कहनेलगे। हे सौम्य ! स्नेहोंकी योनि (कारण) स्थावर और जंगम इन दो भेदोंसे दो प्रकारकी है ॥ ७ ॥ उनमें तिल, चिरौंजी, पहाडोंपर होनेवाले फलोंकी मींग, बहेडे, चित्रा (जमालगोटा या पहाडी एरंड), हरड, महुवा, सर्षप, कसूंभेके बीज, बिल्व, भिलावा, मूलीके बीज, अलसी, निकोटक, अखरोट, कंजेके बीज, सुहांजनेके बीज, यह सब स्थावर स्नेहोंके योनि हैं अर्थात् इनमेंसे जो तैलादि निकलतेहैं वह स्थावर स्नेह हैं । ऐसे ही गौ, भैंस, बकरी आदि तथा मछली, मृग, पशु, पक्षियोंको जंगम स्नेहकी योनि कहते हैं इनके दही, दूध, घी, तथा मछली आदिके मांस, चरबी, और मज्जा जंगमस्नेह कहे जाते हैं ॥ ८ ॥ ९ ॥

रोग विशेषोंमें तैलोंकी उत्कृष्टता ।

सर्वेषांतैलजातानांतिलतैलंविशिष्यते । बलार्थेस्नेहनेचाग्र्यमेरण्डन्तुविरेचने ॥ १० ॥ सर्पिस्तैलंवसामज्जासर्वस्नेहोत्तमामताः । एष्वप्यथैवोत्तमंसर्पिःसंस्कारस्यानुवर्त्तनात् ॥ ११ ॥

चिकनाईके लिये मर्दन आदिसे बल बढानेको सब प्रकारके तैलोंमें तिलोंका तेल उत्तम होताहै । और जुलाब करानेके लिये एरंडतैल उत्तम होताहै ॥ १० ॥ सब प्रकारके स्नेहोंमें-घी, तैल, चरबी, मज्जा यह उत्तम होतेहैं । इन सबमें घी बहुत उत्तम है क्योंकि इसको यदि औषधियोंसे सिद्ध कियाजाय तो यह उन औषधियोंके गुणको भी करताहै और अपना गुण भी करताहै ॥ ११ ॥

घृतकेगुण ।

घृतंपित्तानिलहरंरसशुक्रौजसांहितम् ।
निर्वापणंमृदुकरंस्वरवर्णप्रसादनम् ॥ १२ ॥

घृत-वात और पित्तको नष्ट करताहै। रस, शुक्र, बल, इनको बढाताहै, अग्निको मंदकरनेवाला, शरीरको मृदुकारक, स्वर तथा वर्णको प्रसन्न अर्थात् उज्ज्वल करनेवाला है ॥ १२ ॥

तैलके गुण ।

मारुतघ्नंनचश्लेष्मवर्द्धनंबलवर्द्धनम् ।
त्वच्यमुष्णंस्थिरकरंतैलंयोनिविशोधनम् ॥ १३ ॥

तैल-वातनाशक है, कफको बढाता नहीं, बलको बढानेवाला, और त्वचाको उत्तम बनानेवाला, उष्ण, दृढकारक, और योनिको शुद्ध करताहै ॥ १३ ॥

वसाके गुण ।

विद्धभग्नाहतभ्रष्टयोनिकर्णशिरोरुजि ।
पौरुषोपचयेस्नेहेव्यायामेचेष्यतेवसा ॥ १४ ॥

चरबी-छिदेहुए और कटेहुएमें हित करतीहै । योनिभ्रंश, कानका शूल, शिरपीडा, इनको दूर करतीहै। तथा पुरुषार्थकी वृद्धिकारक, चिकना करनेवाली, कसरतमें हितकारी है ॥ १४ ॥

मज्जाके गुण ।

बलशुक्ररसश्लेष्ममेदोमज्जाविवर्द्धनः ।
मज्जाविशेषतोऽस्थ्नाञ्चबलकृत्स्नेहनेहितः ॥ १५ ॥

मज्जा-बल, वीर्य, रस, कफ, मेद, मज्जा, इनको बढातीहै और विशेषतासे हड्डियोंमें बल देतीहै और चिकनाई करनेमें हित है ॥ १५ ॥

स्नेहपानका समय ।

सर्पिश्शरदिपातव्यंवसामज्जाचमाधवे । तैलंप्रावृषिनात्युष्णं शीतेस्नेहंपिबेन्नरः ॥ १६ ॥ वातपित्ताधिकेरात्रावुष्णेचापिपि- बेन्नरः । श्लेष्माधिकोदिवाशीतेपिबेच्चामलभास्करे ॥ १७ ॥

घीका शरद ऋतुमें, चरबी और मज्जाका वसंतमें, तेलका वर्षामें उपयोग करें। और जिस कालमें अधिक गर्मी तथा अधिक सर्दी न हो उस समय स्नेह पीवे ॥ १६ ॥ वात और पित्तकी अधिकतामें तथा गर्म ऋतुमें रात्रिके समय स्नेहपान करो।कफकी अधिकतामें और शीतकालमें निर्मल आकाश होनेपर दिनमें स्नेहपान करे ॥ १७ ॥

अत्युष्णेवादिवापीतेवातपित्ताधिकेनच। मूर्च्छांपिपासामुन्मा-
दंकामलांवासमीरयेत् ॥ १८ ॥

वात पित्तकी अधिकतामें अतिगर्मीके समयमें दिनमें स्नेह पान करनेसे--मूर्च्छा, प्यास, उन्माद और कामलारोग होतेहैं ॥ १८ ॥

शीतेरात्रौपिबेत्स्नेहंनरः श्लेष्माधिकोऽपिवा ।
आनाहमरुचिंशूलंपाण्डुतांवासमृच्छति ॥ १९ ॥

कफकी अधिकतामें और शीतकालमें रात्रिके समय स्नेहपान करनेसे अफारा, अरुचि, शूल, पांडुरोग यह रोग होतेहैं ॥ १९ ॥

स्नेहपर अनुपान ।

जलमुष्णंघृतेपेयंयूषस्तैलेऽनुशस्यते ।
वसामज्जोऽस्तुमण्डःस्यात्सर्वेषूष्णमथाम्बुवा ॥ २० ॥

घृतपान करके ऊपरसे गर्म जल पीना चाहिये । और तैल पीकर ऊपरसे मांस-रस पीना चाहिये । वसा और मज्जाके पीछे मांड पीना चाहिये । अथवा सब स्नेहोंके पीछे गर्म जल पीवै ॥ २० ॥

स्नेहकी विचारणा ।

ओदनश्चविलेपीचरसोमांसंपयोदधि । यवागूःसूपशाकौचयूषः
काम्बलिकःखडः ॥ २१ ॥ सक्तवस्तिलपिष्टञ्चमद्यंलेहास्तथै-
वच । भक्ष्यमभ्यञ्जनंवस्तिस्तथाचोत्तरबस्तयः ॥ २२ ॥ ग-
ण्डूषःकर्णतैलञ्चनस्तःकर्णाक्षितर्पणम् । चतुर्विंशतिरित्येताः
स्नेहस्यप्रविचारणाः ॥ २३ ॥

भात आदि अन्न, गोइ, मांसरस, मांस, दूध, दही, यवागू, सूप, साग, कांवलि-कयूष, पद्वयूष, सत्तू, तिलपिष्टक, सुरा, अवलेह, सब प्रकारके भोजन, मालिश, वस्ति, उत्तरबस्ति, गंडूष, कानकी औषधी डालना, नस्य कर्म, कानका तर्पण, नेत्र-तर्पण, इन भेदोंसे स्नेहकी चौबीस प्रकारकी विचारणा है ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥

असंयुक्तस्नेहका वर्णन ।

अच्छपेयस्तुयःस्नेहोनतमाहुर्विचारणाम् ।
स्नेहस्यसभिषग्दृष्टःकल्पःप्राथमकल्पिकः ॥ २४ ॥

जो स्नेह किसी अन्य द्रव्यसे न मिला हो उसको विचारणा नहीं कहते उसका नाम अच्छस्नेह है। और किसी अन्य द्रव्यके योगसे स्नेहको विचारणा कहतेहैं। अच्छस्नेह अर्थात् स्वच्छस्नेहको वैद्य लोग स्नेहका प्रथम कल्प मानतेहैं ॥ २४ ॥

स्नेहकी चौंसठ विचारणा।

रसैश्चोपहतःस्नेहःसमासव्यासयोगिभिः। षड्भिस्त्रिषष्टिधासंख्याःप्राप्नोत्येकश्चकेवलः ॥ २५ ॥ एवमेषाचतुःषष्टिःस्नेहानांप्रविचारणा। सात्म्यर्तुव्याधिपुरुषान्प्रयोज्याजानताभवेत् ॥२६॥

मधुर, अम्ल, लवण, कटु, तिक्त, कषाय, इन छः रसोंके मिलाप, विकल्प और अंशयोगसे रस ६३ प्रकारके होते हैं इन तिरसठोंके संयोग भेदसे स्नेह भी ६३ प्रकारके होतेहैं। और एक अच्छस्नेह (केवल स्नेहमात्र) है इस प्रकार रस संयोगभेदसे ६३ और विना किसी संयोगसे केवल एक यह सब मिलाकर स्नेहकी६४ प्रकारकी विचारणा हुई, स्नेहके प्रकरण और प्रयोगको जाननेवाला वैद्य शरीरका सात्म्य, ऋतु भेद, व्याधि, मनुष्यका वलावल विचारकर स्नेहका प्रयोग करे ॥ २५ ॥ २६ ॥

मात्राओंका वर्णन।

अहोरात्रमहःकृत्स्नमर्द्धाहश्चप्रतीक्ष्यते।प्रधानामध्यमाह्रस्वास्नेहमात्राजरांप्रति ॥ २७ ॥ इतितिस्रःसमुद्दिष्टामात्राःस्नेहस्य मानतः। तासांप्रयोगान्वक्ष्यामिपुरुषंपुरुषंप्रति ॥ २८ ॥

प्रधानमात्रा मध्यम मात्रा ह्रस्वमात्रा इन भेदोंसे स्नेहोंकी मात्रा (खुराक)तीनप्रकारकी होतीहै। जो मात्रा एकादिन रातमें परिपाकको प्राप्त होउसको प्रधान मात्रा कहतेहैं। जो केवल दिन में ही पाचन होजाय उसको मध्यम मात्रा कहतेहैं। जो आधे दिनमें ही पाचन होजाय उसको ह्रस्वमात्रा कहतेहैं। अव उन स्नेहकी मात्राओंको पुरुषभेदसे कथन करतेहैं ॥ २७ ॥ २८ ॥

उत्तममात्राके योग्य पुरुष।

प्रभूतस्नेहनित्यायेक्षुत्पिपासासहानराः। पावकश्चोत्तमबलो येषांयेचोत्तमाबले ॥२९॥ गुल्मिनः सर्पदष्टाश्चविसर्पोपहताश्चये। उन्मत्ताःकृच्छ्रमूत्राश्चगाढवर्चसएवच ॥ ३० ॥

---

(१) सुश्रुतके उत्तर तंत्रके ६३ वे अध्यायमें।

जो मनुष्य स्नेहपानेके अभ्यासवाले हों, जो भूख प्यासके सहन करनेकी शक्ति-वाले हों, जिसकी जठराग्नि उत्तम बलवान् हो, जो शरीरमें बलिष्ठ हो, गुल्मरोगवाला सांपका काटाहुआ, विसर्परोगवाला, उन्मत्त, मूत्रकृच्छ्रयुक्त, और जिसका मल कठोर हो, इन उपरोक्त मनुष्योंको स्नेहकी प्रधान मात्रा देनी उचित है २९॥३०॥

प्रधानमात्राके गुण ।

पिबेयुरुत्तमांमात्रांतस्याःपानेगुणाञ्छृणु। विकाराञ्शमयत्येषा शीघ्रंसम्यक्प्रयोजिता ॥ ३१ ॥ दोषानुकर्षिणीमात्रासर्वमार्गा-नुसारिणी । बल्यापुनर्नवकरीशरीरेन्द्रियचेतसाम् ॥ ३२ ॥

इन मनुष्योंको प्रधान मात्रासे स्नेह पान करानेसे जो गुण होतेहैं सो सुनो। इस प्रधानमात्राका विधिसे प्रयोग किया हुआ सब विकारोंको शीघ्र नष्ट करताहै। बढेहुए दोषोंको खींचकर निकालदेताहै । शरीरके सब छिद्रोंमें स्नेहका प्रवेश होजाताहै, शरीरका बल बढताहै और शरीर, मन, इंद्रियें इनमें नवीनता आजातीहै ३१॥३२॥

मध्यममात्राके योग्य पुरुष ।

अरुष्कस्फोटपिडकाकण्डुपामाभिरर्दिताः । कुष्ठिनश्चप्रमीढाश्च वातशोणितकाश्चये ॥ ३३ ॥ नातिबह्वाशिनश्चैवमृदुकोष्ठास्त-थैवच । पिबेयुर्मध्यमांमात्रांमध्यमाश्चापियेबले ॥ ३४ ॥ मात्रैपामन्दविभ्रंशानचातिबलहारिणी। सुखेनचस्नेहयतिशो-धनार्थंचयुज्यते ॥ ३५ ॥

और पिडिका, विस्फोटक, अरुंषिका, खाज, पामा, कुष्ठ, प्रमेह, वातरक्त, इन रोगोंसे पीडितोंको तथा सामान्य आहार करनेवालोंको, मृदुकोष्ठयुक्तोंको और साधारण बलवालोंको स्नेहकी मध्यम मात्रा देनी चाहिये, क्योंकि मध्यम मात्रा न तो अधिक विरेचन करतीहै और न शरीरमें अधिक शिथिलता लातीहै। यह मात्रा विना किसी तकलीफके स्नेहन करनेवाली है और शोधनके लिये प्रयुक्त कीजातीहै ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

ह्रस्वमात्राके योग्य पुरुष ।

येतुवृद्धाश्चबालाश्चसुकुमाराःसुखोचिताः । रिक्तकोष्ठत्वमहितं येषांमन्दाग्नयश्चये ॥ ३६ ॥ ज्वरातीसारकासश्चयेषांचिरसमु-त्थितः । स्नेहमात्रांपिबेयुस्तेह्रस्वांयेचावराबले ॥ ३७ ॥

परिहारेसुखाचैषामात्रास्नेहनबृंहणी। वृष्यावल्यानिराबाधा चिरञ्चाप्यनुवर्त्तते ॥ ३८ ॥

इसीप्रकार अतिवृद्ध, बालक, सुकुमार, सुखमें रहनेवाले, जिनका कोष्ठ अहितकारी विरेचनसे खाली हो, मंदाग्निवाले, ज्वर, अतिसार, खांसी, यह जिनको बहुत दिनोंसे हों, जो बलहीन हैं, इन सबको स्नेहकी ह्रस्वमात्रा पिलानी चाहिये । यह मात्रा इन मनुष्योंको सुख देनेवाली है, अंतमें कष्ट नहीं देती शरीरको चिकना करतीहै । वीर्य और बलको बढातीहै । बहुत काल सेवन करनेसे भी कोई कष्ट नहीं देती (इस समय ह्रस्वमात्रा ही बहुतसे लोगोंको हितकर होतीहै) ॥ ३६ ॥ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

घृतपानके योग्य व्यक्ति ।

वातपित्तप्रकृतयोवातपित्तविकारिणः । चक्षुःकामाःक्षताः क्षीणावृद्धाबालास्तथाबलाः ॥३९॥ आयुःप्रकर्षकामाश्चबलवर्णस्वरार्थिनः । पुष्टिकामाःप्रजाकामाःसौकुमार्य्यार्थिनश्चये ॥ ४० ॥ दीप्त्योजःस्मृतिमेधाग्निबुद्धीन्द्रियबलार्थिनः । पिबेयुःसर्पिरार्त्ताश्चदाहशस्त्रविषाग्निभिः ॥ ४१ ॥

वात और पित्तकी प्रकृतिवालेको, वात पित्तके विकारियोंको, दृष्टिकी शक्तिकी इच्छावालेको, क्षत और क्षीणको, वृद्धको, बालकको, दुर्बलको, दीर्घायुकी इच्छावालेको, बल, वर्ण और स्वरके उत्तम करनेको, पुष्टताकी इच्छावालेको, संतानकी कामनावालेको, सुकुमारताकी इच्छावालेको, कांति, ओज, स्मरणशक्ति, मेधा, अग्नि, बुद्धि और इंद्रियोंके बलकी इच्छावालेको, दाह शस्त्र, विष, अग्नि, इनसे पीडितको घृतपान करना बहुत उत्तम है ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥

तैलपानके योग्य व्यक्ति ।

प्रवृद्धश्लेष्ममेदस्काश्चलस्थूलगलोदराः । वातव्याधिभिराविष्टावातप्रकृतयश्चये ॥ ४२ ॥ बलंतनुत्वंलघुतांदृढतांस्थिरगात्रताम् । स्निग्धश्लक्ष्णतनुत्वक्तांयेचकांक्षन्तिदेहिनः ॥ ४३॥ कृमिकोष्ठाःक्रूरकोष्ठास्तथानाडीभिरर्दिताः । पिबेयुःशीतले कालेतैलंतैलोचिताश्चये ४४ ॥

कफ और चरबी जिनकी बढीहुई हो जिनका गला और पेट स्थूल हो तथा हिलता हो, जो वातव्याधिसे पीडित हों, वातके स्वभाववाले हों तथा बल, तनुता,

हलकापन, दृढता, अंगोंकी मजबूती; चिकनाहट, श्लक्ष्णतायुक्त शरीर और त्वचाको करना चाहते हों, और जिनके कोष्ठमें कृमि हों तथा कठिन कोष्ठवाले, नासूर तथा नाडीरोगसे पीडित, और भी जो तैलयोग्य मनुष्य हों अथवा तैलपान या तैलमर्दनके अभ्यासवाले हों उनको शीतकालमें उचित मात्रासे तैलपान करना हितकारी है ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

वसापानके योग्यपुरुष ।

वातातपसहायेचरूक्षाभाराध्वकर्षिताः । संशुष्करेतोरुधिरा निष्पीतकफमेदसः ॥ ४५ ॥ अस्थिसन्धिशिरास्नायुमर्मकोष्ठमहारुजः । वलवान्मारुतोयेषांखानिचावृत्यतिष्ठति ॥४६॥ महच्चाग्निवलंयेषांवसासात्म्याश्चयेनराः । तेषांस्नेहयितव्यानां वसापानंविधीयते ॥ ४७ ॥

जो मनुष्य वायु और धूप सहसकते हों, रूक्ष शरीरवाले, भार उठाने तथा रास्ता चलनेसे कृश हुए हों, जिनका वीर्य और रक्त क्षीण होगयाहो, जिनके शरीरमेंसे कफ और मेद नष्ट होचुका हो, जिनके अस्थि, संधि, शिरा, स्नायु, मर्मस्थान तथा कोष्ठ पीडायुक्त हों । जिनके शरीरके छिद्रोंको वढे हुए वायुने आवृत करलियाहो, जिनका अग्नि और वल उत्तम हो तथा जो चरवी पीनेके अभ्यासवाले हों । उन स्नेहयोग्य मनुष्योंको वसापान करना चाहिये ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

मज्जापानके योग्य पुरुष ।

दीप्ताग्नयःक्लेशसहाघस्मराःस्नेहसेविनः ।
वातार्त्ताःक्रूरकोष्ठाश्चस्नेह्यामज्जानमाप्नुयुः ॥ ४८ ॥

जिनकी अग्नि वलवान् हो, जो क्लेश सहसकते हों, वहुत खाते हों, स्नेहके अभ्यासवाले हों, वातसे पीडित हों, कठिन कोष्ठवाले हों, स्नेहन योग्य हों ऐसे मनुष्योंको मज्जा का प्रयोग करावे ॥ ४८ ॥

स्नेहपानकी अवधि ।

येभ्योयेभ्योहितोयोयःस्नेहःसपरिकीर्तितः ।
स्नेहनस्यप्रकर्षोतुसप्तरात्रात्रिरात्रको ॥ ४९ ॥

जिन मनुष्योंको जो जो स्नेह हितकारी हो उनका कथन कियागया है । स्नेहकर्ममें स्नेहकी अधिकता होनेसे या न्यूनता होनेसे सात दिन या तीन दिनके अंतरसे स्नेहपान करावे ॥ ४९ ॥

स्नेहकर्मके योग्य पुरुष ।

स्वेद्याःशोधयितव्याश्चरूक्षवातविकारिणः ।
व्यायाममद्यस्त्रीनित्याःस्नेह्याःस्युर्येचचिन्तकाः ॥ ५० ॥

रूक्ष मनुष्य, वायुकी अधिकतावाला जिनको स्वेदन तथा शोधन कराना हो एवं कसरत करनेवाले, मद्यपान करनेवाले, नित्य स्त्रीगमन करनेवाले, और जिनको शोचने विचारनेका काम अधिक रहता हो वह मनुष्य स्नेहन करने योग्य हैं ॥५०॥

स्नेहकर्मके अयोग्य व्यक्ति ।

संशोधनादृतेयेषांरूक्षणंसंप्रवक्ष्यते । नतेषांस्नेहनंशस्तमुत्सन्नकफमेदसाम्॥५१॥अभिष्यन्दाननगुदानित्यमन्दाग्नयश्चये । तृषामूर्च्छापरीताश्चगर्भिण्यस्तालुशोषिणः ॥ ५२ ॥ अन्नद्विषश्छर्दयन्तोजठरामगरार्दिताः । दुर्बलाश्चप्रतान्ताश्चस्नेहग्लानामदातुराः ॥ ५३ ॥ नस्नेह्यावर्त्तमानेषुननस्तोवास्तिकर्म्मसु । स्नेहपानात्प्रजायन्तेतेषांरोगाःसुदारुणाः ॥ ५४ ॥

जिन मनुष्योंको संशोधन नहीं करना और रूक्षण करना है अर्थात् जो मनुष्य रूक्षण करनेके योग्य हैं उनको स्नेहपान कराना हितकर नहीं है। कफप्रकृतिवालेको और मेदवालेको भी स्नेहन नहीं करना । एवं जिनके मुखसे और गुदासे स्राव होताहै, जो मंदाग्निवाले हों, तृष्णा तथा मूर्छायुक्त हों, जो गर्भवती हों उनको तथा तालुशोषमें, अरुचिमें, वमनमें, उदररोगमें, आमदोष तथा गरदोषमें; दुर्बल, बहुत कृश, स्नेहपानसे ग्लानि माननेवालेको, मदात्ययवालेको, नस्यकर्म कियेहुएको, बस्तिकर्म कियेहुएको स्नेहपान करना उचित नहीं । यदि इनको स्नेहपान करावे तो दारुण रोग उत्पन्न होजातेहैं ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

अस्निग्धके लक्षण ।

पुरीषंग्रथितंरूक्षंवायुरप्रगणोमृदुः ।
पक्ताखरत्वंरौक्ष्यश्चगात्रस्यास्निग्धलक्षणम् ॥ ५५ ॥

स्नेहन न होनेके यह लक्षण होतेहैं। जैसे—मलका गांठदार और रूक्ष होना, वायुका बिलोम होना, अग्निका मंद होना, पाचक, देह कठोर और रूक्ष होना ॥ ५५ ॥

सम्यक् स्निग्धके लक्षण ।

वातानुलोम्यंदीप्तोग्निर्वर्चःस्निग्धमसंहतम् ।
मार्दवंस्निग्धताचाङ्गेस्निग्धानामुपजायते ॥ ५६ ॥

ठीक स्नेहन हुए मनुष्यके वायुका ठीक अनुलोमन होना, अग्नि चैतन्य होना, मल गांठरहित स्निग्ध होना, शरीरमें नम्रता तथा चिकनाहट होना यह लक्षण होतेहैं ॥ ५६ ॥

अतिस्निग्धके लक्षण ।

पाण्डुतागौरवंजाड्यंपुरीषस्याविपक्वता ।
तन्द्राह्यरुचिरुत्क्लेशःस्यादतिस्निग्धलक्षणम् ॥ ५७ ॥

अत्यंत स्नेहन होनेसे-पांडु, गुरुता, जडता, मलका, कच्चा गिरना, तंद्रा, अरुचि, जी मचलाना, यह लक्षण होतेहैं ॥ ५७ ॥

स्नेहपानके पूर्व कर्तव्य कर्म ।

द्रवोष्णमनभिष्यन्दिभोज्यमन्नंप्रमाणतः ।
नातिस्निग्धमसंकीर्णंश्वःस्नेहंपातुमिच्छता ॥ ५८ ॥

स्नेहपान करनेसे पहले दिन पतला, उष्ण, हलका, थोडीसी चिकनाईयुक्त, खिचडी आदि प्रमाणसे भोजन करे ॥ ५८ ॥

स्नेहपानके पश्चात्कर्म ।

पिबेत्संशमनंस्नेहमन्नकालेप्रकांक्षितः ।
शुद्ध्यर्थंपुनराहारेनैशेजीर्णेपिबेन्नरः ॥ ५९ ॥

संशमन स्नेह अर्थात् वातकी शांतिके लिये भोजनके समय पान करे । जब रातका किया भोजन पचचुकाहो उस समय (प्रातःकाल) संशोधन स्नेहपान करे ॥ ५९ ॥

पीतस्नेहव्यक्तिके कर्तव्य कर्म ।

उष्णोदकोपचारीस्याद्ब्रह्मचारीक्षपाशयः ।शकृन्मूत्रानिलोद्गारानुदीर्णांश्चनधारयेत् ॥ ६० ॥ व्यायाममुच्चैर्वचनंक्रोधशोकौहिमातपौ । वर्जयेदप्रवातञ्चसेवेतशयनासनम् ॥ ६१ ॥

स्नेहपान करके गरम पानी पीना चाहिये । और इंद्रियोंको वशमें रक्खे । दिनमें न सोवे । मल, मूत्र, और डकारके वेगको न रोके । व्यायाम, ऊंचा बोलना, क्रोध, शोक, हिम, धूप, इनको त्यागदेवे जिस स्थानमें अधिक पवन न लगतीहो उसमें बैठे और शयन करे ॥ ६० ॥ ६१ ॥

अधिक स्नेहपानके दोष ।

स्नेहंपीत्वानरःस्नेहंप्रतिभुञ्जानएव च ।
स्नेहमिथ्योपचाराद्धिजायन्तेदारुणागदाः ॥ ६२ ॥

जब तक पहला स्नेहपान कियाहुआ जीर्ण न होलेवे उसके उपर फिर स्नेह नहीं पीना चाहिये। यदि उसके ऊपर फिर स्नेहपान करे तो इस मिथ्या उपचारसे अनेक दारुण रोग उत्पन्न होते हैं ॥ ६२ ॥

कोष्ठानुसार स्नेहपानविधि।

मृदुकोष्ठस्त्रिरात्रेणस्निह्यत्यच्छोपसेवया।
स्निह्यतिक्रूरकोष्ठस्तुसप्तरात्रेणमानवः ॥ ६३ ॥

जिस मनुष्यका कोष्ठ नरम होताहै वह तीन दिन अच्छा स्नेहपान करनेसें स्निग्ध होजाता है। और क्रूर कोष्ठवाला सात दिन स्नेहपान करनेसे स्निग्ध होता है ॥ ६३ ॥

मृदुकोष्ठव्यक्तिके विरेचन द्रव्य।

गुडमिक्षुरसंमस्तुक्षीरमुल्लोडितंदधि। पायसंकृसरंसर्पिः काश्मर्य्यत्रिफलारसम् ॥ ६४ ॥ द्राक्षारसंपीलुरसंजलमुष्णमथापिवा। मद्यंवातरुणंपीत्वामृदुकोष्ठोविरिच्यते ॥६५॥ विरेचयन्तिनैतानिक्रूरकोष्ठंकदाचन। भवतिक्रूरकोष्ठस्यग्रहण्यत्युल्वणानिला ॥ ६६ ॥

गुड, इक्षुरस, दहीका पानी, दूध, अधबिलोया दही, खीर, कृसरा, घी, काश्मरीके फलोंका क्वाथ, त्रिफलेका क्वाथ, मुनक्काका क्वाथ, पीलूका क्वाथ, अथवा गर्म जल, इनके पीनेसे ही मृदुकोठेवालेको विरेचन होजाताहै। परन्तु क्रूर कोठेवालेको इन वस्तुओंसे विरेचन नहीं होता क्योंकि क्रूर कोष्ठवालेकी ग्रहणीकला वातप्रधान होती है इसीलिये कोष्ठमें क्रूरता और वातजन्य रूक्षता होनेसे विरेचन नहीं होता ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

मृदुकोष्ठके लक्षण।

उदीर्णपित्ताल्पकफाग्रहणीमन्दमारुता।
मृदुकोष्ठस्यतस्मात्ससुविरेच्योनरःस्मृतः ॥ ६७ ॥

जिसकी ग्रहणीकलामें पित्त प्रधान है और कफ अल्प तथा वायु मंद है उसका कोष्ठ मृदु (नरम)होताहै। इसलिये उसको सहजमें ही विरेचन होसकताहै॥६७॥

स्नेहयुक्त अग्निका तीव्रत्व।

उदीर्णपित्ताग्रहणीयस्यचाग्निबलंमहत्। भस्मीभवतितस्याशु स्नेहःपीतोऽग्नितेजसा॥६८॥सजग्ध्वास्नेहमात्रांतामोजःप्रक्षा-

लयन्वली । स्नेहाग्निरुत्तमांतृष्णांसोपसर्गामुदीरयेत् ॥ ६९ ॥
वालंस्नेहसमृद्धस्यशमायान्नंसुगुर्वपि।सचेतसुशीतंसलिलं ना-
सादयतिदह्यते॥७०॥यथैवाशीविषःकक्षमध्यगःस्वाविषाग्निना ७१

जिस मनुष्यकी ग्रहणीकिलामें पित्त वहुत वढाहुआ है और अग्निका वल अधिक है वह मनुष्य यदि स्नेह पीवे तो अग्निके वलसे वह स्नेह भस्म होजाता है। फिर वह वढाहुआ आग्नि स्नेहको जलाकर शरीरके ओजतेजको दहन करने लगताहै और घोर प्यासको प्रगट करताहै,उस समय स्नेहसे वढे हुए अग्निमें भारी अन्न भी वहुत नहीं होता अर्थात् उस भस्मकाग्निमें यदि भारी भोजन और शीतल जल न दिया जाय तो वह शरीरकी धातुओंको ऐसे दहन करदेता है जैसे कक्षांमं स्थित आशीविष अपने विषरूप आग्निसे दहन करदेता है ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ ७० ॥ ७१ ॥

अजीर्ण स्नेहपानमें उपाय ।

अजीर्णंयदितुस्नेहेतृपास्याच्छर्दयेद्भिषक् ॥ शतिदेकंपुनःपी-
त्वाभुक्त्वारूक्षान्नमुल्लिखेत ॥ ७२ ॥ नसर्पिःकेवलेपित्तेपेयं
सामेविशेषतः ॥सर्वंह्यनुचरेद्देहंहत्वासंज्ञाञ्चमारयेत् ॥ ७३ ॥

जव तक स्नेह जीर्ण न हुआ हो और तृषा आदि उपद्रव न वढगये हों तव तक शीघ्र छर्दन करादेवे और शीतल जल पिलावे। तथा रूक्ष भोजन कराके फिर छर्दन करावे ॥७२॥ केवल पित्तमें और आमसहित पित्तमें विशेष करके घृतपान न करे, क्योंकि वह स्नेह सर्वशरीरमें व्याप्त होकर संज्ञाको नष्ट करदेताहै और मृत्यु तक करदेताहै ॥ ७३ ॥

स्नेहभ्रमके उपद्रव ।

तन्द्रासोत्क्लेशआनाहोज्वरःस्तम्भोविसंज्ञता ॥ कोष्ठानि
कण्डूःपाण्डुत्वंशोफार्शांस्यरुचिस्तृपा । जठरंग्रहणीदोपः
स्तैमित्यंवाक्यनिग्रहः ॥७४॥ शूलमामप्रदोपाश्चजायन्तेस्नेह-
विभ्रमात् । तत्राप्युल्लेखनंशस्तंस्वेदःकालप्रतीक्षणम् ॥ ७५
प्रतिपत्तिर्यथाव्याधिवलंबुद्धान्स्रंसनमेवच । तक्रारिष्टप्रयोगश्चरूक्ष-
पानान्नसेवनम् ॥ मूत्राणांत्रिफलायाश्चस्नेहव्यापत्तिभेपजम्॥
॥ ७६ ॥ अकालेचाहितश्चैवमात्रयानचयोजितः ॥ ७७ ॥

स्नेहपानमें कुपथ्य होनेसे–तन्द्रा, उत्क्लेश, अफारा, ज्वर, स्तंभ, बेहोशी, कुष्ठ, खुजली, शोथ, अर्श, अरुचि, प्यास, उदररोग, ग्रहणीदोष, देहमें गीलापनसा, वाणीका स्तंभन होना, शूल, आमदोष यह उपद्रव होते हैं। यहां पर भी वमन कराना अथवा स्वेद स्नेह होय तो जीर्ण होनेकी प्रतीक्षा करना और व्याधिका बलाबल विचारकर दोषोंको निकाले तथा तक्र, आरिष्ट, रूक्ष अन्न पान तथा गोमूत्र, वा त्रिफलाका सेवन करना हितकारी है विना समय अथवा अहितकारी या अतिमात्रासे स्नेहपान करनेसे अथवा स्नेहपानके मिथ्यायोग होनेसे स्नेहव्यापत्ति (स्नेहसे प्रगट रोग) होतेहैं ॥ ७४–७७ ॥

स्नेहपानमें विरेचनाविधि ।

स्नेहोमिथ्योपचाराच्चव्यापद्येतातिसेवितः । स्नेहात्प्रस्कन्दनोजन्तुस्त्रिरात्रोपरतःपिबेत् ॥ ७८ ॥ स्नेहञ्चद्रवमुष्णञ्चत्र्यहं भुक्त्वारसौदनम् । एकाहोपरतस्तद्वद्भुक्त्वाप्रच्छर्दनंपिबेत् ॥ ७९ ॥

विना विधि स्नेहपानसे यदि रोगादि होय तो तीन दिन स्नेहको त्यागदेवे और मांसरस तथा अन्न भोजन करे फिर चौथे दिन बहुतसे स्नेहको द्रव और गर्म पदार्थों में मिलाकर पीवे । अथवा वमन करादेवे और एक दिन ठहर कर फिर स्नेह पीवे । संशोधन स्नेह पीकर जैसे विरेचनके दिन गर्म जल आदि पीते हैं वैसा उपचार करे ॥ ७८ ॥ ७९ ॥

स्यात्तुसंशोधनार्थायवृत्तिःस्नेहेविरिक्तिवत् । स्नेहद्विषःस्नेहनित्यामृदुकोष्ठाश्चयेनराः ॥ क्लेशासहामद्यनित्यास्तेषामिष्टा विचारणा ॥ ८० ॥ लावतैत्तिरिमायूरहंसवाराहकौक्कुटाः ॥ ॥८१ ॥ गव्यजोरभ्रमात्स्याश्चरसाःस्वेस्नेहनेहिताः ॥ ८२ ॥

जिसको स्नेहपानसे द्वेष हो, जो सदैव स्नेह पीता हो, जो मृदुकोष्ठवाला हो, जो क्लेशको सहन करनेवाला हो, जो नित्य मद्य पीता हो, इनको विचारणास्नेह (किसी रसआदि योगसे) पान करना चाहिये । ऐसे मौके पर गौके दूध अथवा लवा तीतर, मोर, सूकर, मुरगा, बकरी, मेढा, मछली इनके मांसरसके संयोगसे स्नेहपान करावे ॥ ८० ॥ ८१ ॥ ८२ ॥

स्नेहमें मिलानेयोग्य यूष । और यूषके द्रव्य ।

यवकोलकुलत्थाश्चस्नेहाःसगुडशर्कराः ॥
दाडिमंदधिसव्योषंरससंयोगसंग्रहः ।
स्नेहयन्तितिलाःपूर्वंजग्धाःसस्नेहफाणिताः ॥ ८३ ॥

अथवा गुड, दही, दूध, और तिलोंका प्रयोग न करे क्योंकि यह इनके रोगोंको बढातेहैं एवं विकाररहित मनुष्योंको विकाररहित अनुकूल उचित द्रव्योंसे सिद्ध कर स्नेहपान करावे ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ ९० ॥

पिप्पलीभिर्हरीतक्यासिद्धेस्त्रिफलयापिवा । द्राक्षामलकयूषाभ्यांदध्नाचाम्लेनसाधयेत् ॥ ९१ ॥

उनको–पीपल हरड, और त्रिफलाके साथ सिद्ध कर अथवा आँवले और द्राक्षाके रस या कांजीके साथ सिद्ध कर त्रिकुटा बुरकाकर स्नेहपान करावे तो मनुष्य स्निग्ध हो ॥ ९१ ॥

व्योषगर्भंभिषक्स्नेहंपीत्वास्निह्यतितन्नरः।यवकोलकुलत्थानां रसाःक्षीरंसुरादधि ॥९२॥ क्षीरःसर्पिश्चतत्सिद्धंस्नेहनीयंघृतोत्तमम् । तैलमज्जावसासर्पिर्बदरत्रिफलारसैः ॥ ९३ ॥ योनिशुक्रप्रदोषेषुसाधयित्वाप्रयोजयेत् । गृह्णात्यम्बुयथावस्त्रंप्रस्रवत्यधिकंयथा ॥९४॥ यथाग्निर्जीर्य्यतिस्नेहस्तथास्रवतिचाधिकः । यथावाक्लेद्यमृत्पिण्डमासिक्तंत्वरयाजलम्। स्रवतिस्रंसते स्नेहस्तथात्वरितसेवितः ॥ ९५ ॥

जो, बेर और कुलथीका यूष, दूध, मद्य, दही, एवं दूधका निकाला घृत इनसे सिद्ध किया घृत सब उत्तम स्नेहन है। तैल, मज्जा, वसा, घी, बेर, और त्रिफलाको क्वाथसे सिद्ध स्नेह योनि और शुक्रके दोषोंमें प्रयुक्त करे । जैसे वस्त्र परिमाणके जलको ग्रहण करके अधिकको छोड देताहै, ऐसे ही मनुष्यकी जठराग्नि परिमाणका स्नेह ग्रहण कर बाकीको मलद्वारसे निकालदेतीहै, । जैसी मट्टीके डलेमें अधिक पानी पडनेसे उसको भिगोकर अधिक पानी बाहर चला जाताहै।ऐसे हीं मनुष्यके शरीरमें अधिक स्नेह जीर्ण न होकर झट बाहर निकल जाताहै ९२॥९३॥९४॥९५॥

लवणोपहिताःस्नेहाःस्नेहयन्त्यचिरान्नरम्।तद्ध्यभिष्यन्द्यरूक्षञ्चसूक्ष्ममुष्णंव्यवायिच॥९६॥ स्नेहमग्रेप्रयुञ्जीततःस्वेदमनन्तरम् ॥ स्नेहस्वेदोपपन्नस्यसंशोधनमथेतरमिति ॥ ९७ ॥

लवणके संयोगसे स्नेहपान किया हुआ मनुष्यको शीघ्र स्नेहन कर देताहै । वह अभिष्यन्दि, सूक्ष्म, उष्ण और शीघ्र व्यापक होजाताहै। पहले स्नेहन, फिर स्वेदन, फिर वमन, तदनंतर विरेचन, सबसे पीछे नस्य कर्म आदिसे शिरोविरेचन करे। (परंतु स्नेहन वातरोगमें ही हित है । सन्निपातादिकमें रूक्ष स्वेदन करे) ॥ ९६ ॥ ९७ ॥

अध्यायका संक्षिप्त वर्णन ।

तत्रश्लोकः ॥

स्नेहःस्नेहविधिःकृत्स्नव्यापत्सिद्धिःसभेषजा ।
यथाप्रश्नंभगवताव्याहृतंचान्द्रभागिना ॥ ९८ ॥

स्नेहाध्यायः समाप्तः ।

इस स्नेहाध्यायमें-स्नेहके प्रकार, स्नेहविधि, स्नेहके मिथ्यायोगसे रोगोंका होना उनकी औषधि जैसे अग्निवेशने पूछा तदनुसार उनके उत्तर भगवान् आत्रेयजीने कथन किये ॥ ९८ ॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदीयसंहितायां पटियालाराज्यांतर्गतटकसालग्रामनिवासिवैद्य-पंचानन वैद्यरत्न पं०रामप्रसादवैद्योपाध्यायविरचितप्रसादन्याख्यभाषाटीकायां स्नेहाध्यायो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चतुर्दशोऽध्यायः ।

अथातःस्वेदाध्यायं व्याख्यास्यामः ।
इति हस्माह भगवानात्रेयः ।

अब हम स्वेदाध्यायका कथन करतेहैं । ऐसा भगवान् आत्रेयजी कहने लगे ।

स्वेदनकर्मका यत्न ।

अतःस्वेदाःप्रवक्ष्यन्तेयैर्यथावत्प्रयोजितैः ।
स्वेदसाध्याःप्रशाम्यन्तिगदावातकफात्मकाः ॥ १ ॥

अब हम स्वेदोंका कथन करतेहैं जिन स्वेदोंके ठीक २ प्रयोग करनेसे स्वेदसाध्य वातकफात्मक रोग शीघ्र शांत होतेहैं ॥ १ ॥

स्वेदनसे रोगशान्तिमें दृष्टान्त ।

स्नेहपूर्वंप्रयुक्तेनस्वेदेनावजितेऽनिले ।
पुरीषमूत्ररेतांसिनसज्जन्तिकथञ्चन ॥ २ ॥

प्रथम स्नेहन करके यदि स्वेदन करादिया जाताहै तो उससे शरीरका वायु शांत होजाताहै इसलिये मल, मूत्र, शुक्र, यह विना श्रम निकल जातेहैं ॥ २ ॥

शुष्काण्यपिहिकाष्ठानिस्नेहस्वेदोपपादनैः ।
नमयन्तियथान्यायंकिंपुनर्जीवतोनरान् ॥ ३ ॥

सूखी लकडीभी चिकनाईका योग देकर स्वेदन करनेसे नमजातीहै, यदि जीवित मनुष्य स्नेहन स्वेदन द्वारा नम्र होजाय तो आश्चर्य ही क्या है ॥ ३ ॥

स्वेदनसे कार्यसिद्धि ।

रोगर्त्तुंव्याधितापेक्षोनात्युष्णोऽतिमृदुर्नच ।
द्रव्यवान्कल्पितोदेशेस्वेदःकार्य्यकरोमतः ॥ ४ ॥

जैसा रोग और ऋतु हो अथवा अन्य कोई भी व्याधि हो उसमें उस रोगके लिये जैसा स्वेद उचित हो वैसा विचारकर करे । विना विचारे अत्यन्त तेज या अत्यन्त मन्द स्वेद न देवे । देश काल औषधि विचारकर उचित स्थानमें स्वेद दिया हुआ गुणकारी होताहै ॥ ४ ॥

स्वेदनके भेद ।

व्याधौशीतेशरीरेचमहान्स्वेदोमहाबले ।
दुर्बलेदुर्बलःस्वेदोमध्यमेमध्यमोहितः ॥ ५ ॥

जब रोगसे शरीर शीतल पडजाय उसमें गर्मी रोममार्गसे न आती हो अथवा शीत आदिसे शरीर जकडजाय तो अवश्य स्वेदन करना चाहिये । यदि व्याधि बलवती हो तो स्वेद भी वैसा ही अधिक बलवाला देना चाहिये । दुर्बल रोगोंमें दुर्बल स्वेद करना और मध्यबल रोगमें स्वेद भी मध्यम ही करना चाहिये ॥ ५ ॥

रोगानुसार स्वेदनविधि ।

वातश्लेष्मणिवातेवाकफेवास्वेदइष्यते ।
स्निग्धरूक्षस्तथास्निग्धोऽरूक्षश्चाप्युपकल्पितः ॥ ६ ॥

वात कफ की व्याधिमें स्निग्ध, रूक्ष, स्वेद करना चाहिये वातव्याधिमें स्निग्ध स्वेद करना चाहिये । और कफकी व्याधिमें रूक्ष स्वेद करना चाहिये ॥ ६ ॥

आमाशयगतेवातेकफेपक्वाशयाश्रिते ।
रूक्षपूर्वोहितःस्वेदःस्नेहपूर्वस्तथैवच ॥ ७ ॥

वात आमाशयमें प्राप्त हो तो पहले रूक्ष फिर स्निग्ध स्वेद करे क्योंकि आमाशय कफका स्थान होताहै । इसी प्रकार यदि कफ पक्वाशयमें हो तो पहले स्निग्ध स्वेद करके फिर रूक्ष स्वेद करे ॥ ७ ॥

स्वेदनके अयोग्य अंग ।

वृषणौहृदयंदृष्टीस्वेदयेन्मृदुनैववा ।
मध्यमंवंक्षणौशेषमङ्गावयवमिष्टतः ॥ ८ ॥

अंडकोश, हृदय, और नेत्रोंमें स्वेदन करना उचित नहीं, यदि किसी कारणसें आवश्यकता भी हो तो मृदु स्वेद करे । और वंक्षणमें स्वेद करना हो तो मध्यम स्वेद करे । किन्तु अन्य अंगोंमें जैसा उचित हो वैसा स्वेदन करे ॥ ८ ॥

नेत्रमें स्वेदन विधि ।

सुशुद्धैर्नक्तकैःपिण्ड्यागोधूमानामथापिवा ।
पद्मोत्पलपलाशैर्वास्वेद्यःसंवृत्यचक्षुषी ॥ ९ ॥

शुद्ध स्वच्छ नरम वस्त्रसे या गेहूंके मैदेके पिंडसे अथवा कमलके पत्रसे या अन्य कमलविशेषके पत्रसे नेत्रोंको ढककर शिर आदिमें स्वेद करना चाहिये ।तात्पर्य यह है कि नेत्रोंमें स्वेदन करनेकी गर्मी न पहुँचनी चाहिये ॥ ९ ॥

मुक्तावलीभिःशीताभिःशीतलैर्भाजनैरपि ।
जलार्द्रैर्जलजैर्हस्तैःस्विद्यतोहृदयंस्पृशेत् ॥ १० ॥

मोतियोंकी माला, शीतल पात्र, पानीमें भिगोया हुआ कमलविशेष, अथवा, शीतल हाथ स्वेदन योग्य मनुष्यके हृदय पर रखना चाहिये ॥ १० ॥

शीतशूलव्युपरमेस्तम्भगौरवनिग्रहे ।
सञ्जातेमार्दवेस्वेदेस्वेदनाद्विरतिर्मता ॥ ११ ॥

शीत, शूल, जडता, भारीपन, यह नष्ट होकर जब देहमें नरमी आजाय तो पसीना देना बंद करदेना चाहिये ॥ ११ ॥

पित्तप्रकोपोमूर्च्छाचशरीरसदनंतृषा ।
दाहस्वेदाङ्गदौर्बल्यमतिस्विन्नस्यलक्षणम् ॥ १२ ॥

अधिक पसीना देनेसे-पित्तका कोप, मूर्छा, शरीरमें शिथिलता, प्यास, दाह, पसीना, और अंगोंमें दुर्बलता यह लक्षण होतेहैं ॥ १२ ॥

उक्तस्तस्याशितीयेयोग्रैष्मिकःसर्वशोविधिः ।
सोऽतिस्विन्नस्यकर्तव्योमधुरःस्निग्धशीतलः ॥ १३ ॥

ऐसा होनेपर तस्याशितीय (छटे) अध्यायमें जो ग्रीष्मकालकी विधि कहीहै वही विधि अतिस्विन्नकी करे और मधुर, स्निग्ध, शीतल क्रिया करे ॥ १३ ॥

स्वेदनकर्मके अयोग्य रोगी ।

कषायमद्यानित्यानांगार्भिण्यारक्तपित्तिनाम् । पित्तिनांसातिसाराणांरूक्षाणांमधुमेहिनाम् ॥ १४ ॥ विदग्धभ्रष्टनाडीनां विषमद्यविकारिणाम् । श्रान्तानांनष्टसंज्ञानांस्थूलानांपित्तमेहिनाम् ॥ १५ ॥ तृष्यतांक्षुधितानाञ्चक्रुद्धानांशोचतामपि । कामल्युदारिणाञ्चैव क्षतानामाढ्यरोगिणाम् ॥ १६ ॥ दुर्बलातिविशुष्काणामुपक्षीणौजसांतथा । भिषक्तैमिरिकाणाञ्च नस्वेदमवतारयेत् ॥ १७ ॥

नित्य कषाय या मद्य पान करनेवालेको, गर्भवती, रक्तपित्तवाला, पित्तप्रधान, पित्तके अतिसारवाला, रूक्ष, मधुमेही, अग्निदग्ध, भ्रष्टांग, बदका रोगवाला, विष तथा मद्यके विकारवालेको, कायलीयुक्तको, मूर्छित, स्थूल, पित्तमेहयुक्त, प्यासयुक्त, भूखा, क्रोधी, शोकयुक्त, कामलारोगी, उदररोगी, क्षतरोगी, यकृत प्लीहाके रोगवालेको, दुर्बल, अतिसूखाहुवा और जिसका ओज क्षीण होगयाहो, तथा तिमिररोगवाला इनको कभी स्वेदन न करे ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥

स्वेदनके योग्य रोग ।

प्रतिश्यायेचकासेचहिक्काश्वासेष्वलाघवे । कर्णमन्यांशिरःशूले स्वरभेदेगलग्रहे ॥ १८ ॥ अर्दितैकाङ्गसर्वाङ्गपक्षाघातेविनामके । कोष्ठानाहविबन्धेषुशुक्राघातेविजृम्भके ॥ १९ ॥ पार्श्वपृष्ठकटीकुक्षिसंग्रहेगृध्रसीषुच । मूत्रकृच्छ्रेमहत्त्वेचमुष्कयोरङ्गमर्दके ॥ २० ॥ पादोरुजानुजङ्घार्तिसंग्रहेश्वयथावपि । खल्लीष्वामेषुशीतेचवेपथौवातकण्टके ॥ २१ ॥ संकोचायामशूलेषु स्तम्भगौरवसुप्तिषु । सर्वाङ्गेषुविकारेषुस्वेदनंहितमुच्यते॥२२॥

प्रतिश्याय, खांसी, हिचकी, श्वास, गुरुता, कर्णशूल, मन्यास्तंभ, शिरःशूल, स्वरभंग, गलग्रह, अर्दितवात, एकांगगतवात, सर्वांगगतवात, पक्षाघात, विनाम (शरीरका या किसी अंगका नमजाना कुवडा आदि), कोष्ठरोग, अनाह, विबंध, शुक्राघात, विशेष जंभाई आना, पसलीशूल, पृष्ठशूल, कटिशूल, कुक्षिशूल, गृध्रसी, मूत्रकृच्छ्र, अंडवृद्धि, अंगमर्द, उरुस्तंभ, जानु और जंघाकी पीडा, सूजन, खल्ली, आमरोग, शीत, कंप, वातकंटक, संकोच, आयाम, शूल, अंगोंकी गौरवता, और

अंगोंका सूजना, इन सब विकारोंमें स्वेदन करना परम हितकारक है ॥ १८॥१९॥ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥

पिण्डस्वेदका वर्णन ।

तिलमाषकुलत्थाम्लघृततैलामिषौदनैः ।
पायसैःकृसरैर्मांसैःपिण्डस्वेदंप्रयोजयेत् ॥ २३ ॥

तिल, उडद, कुलथी, कांजी, घृत, तेल, मांस, भात, खीर, तिलोंकी खिचडी, अथवा मांस, इन सबका अथवा इनमेंसे किसी एक दो का पिंडसा बनाकर उससे जो स्वेद कियाजाय उसको पिण्डस्वेद कहतेहैं ॥ २३ ॥

कफरोगियोंको स्वेदनविधि ।

गोखरोष्ट्रवराहाश्वशकृद्भिःसतुषैर्यवैः । सिकतापांशुपाषाणकरीषायसपूटकैः ॥२४॥ श्लेष्मिकान्स्वेदयेत्पूर्वैर्वातिकान्समुपाचरेत् । द्रव्याण्येतानिशस्यन्तेयथास्वंप्रस्तरेष्वपि ॥ २५ ॥

गौ, गधा, ऊंट, सूकर, घोडा, इनकी विष्ठाको गर्म करके अथवा तुष, जौ, इनके चूर्णसे, या वालूरेत, पत्थरका चूरा, सूखे गोवरका चूर्ण, लोहचूर्ण इनको गरम करके कफप्रधान रोगमें स्वेदन करे। और पहले कहाहुआ पिंडस्वेद वातप्रधानव्याधिमें करे । प्रस्तरस्वेदके लिये भी इन ही द्रव्योंको दोषानुसार प्रयुक्त करे ॥२४॥२५॥

स्वेदनका सहज उपाय ।

भूगृहेपुचजेन्ताकेषुष्णगर्भगृहेषुच ।
विधूमाङ्गारतप्तेष्वभ्यक्तःस्विद्यतिनासुखम् ॥ २६ ॥

भूमिके भीतरके घरमें, जेंताकमें, गरम घरमें, प्रथम, तेलकी मालिस कर धूमरहित अंगारोंकी गर्मीसे ही विना परिश्रम पसीने आजातेहैं ॥ २६ ॥

नाडीस्वेदनकी विधि ।

ग्राम्यानूपौदकंमांसंपयोवस्तशिरस्तथा । वराहमध्यपित्तासृक्स्नेहवत्तिलतण्डुलान् ॥२७॥ इत्येतानिसमुत्क्वाथ्यनाडीस्वेदंप्रयोजयेत् । देशकालविभागज्ञोयुक्त्यपेक्षोभिषक्तमः ॥२८॥ वारुणागृतकैरण्डशिग्रुमूलकसर्षपैः । वासावंशकरञ्जार्कपत्रैरश्मन्तकस्यच ॥२९॥ शोभाञ्जनकशैरीयमालतीसुरसार्जकैः । पत्रैरुत्क्वाथ्यसलिलंनाडीस्वेदंप्रयोजयेत् ॥ ३० ॥

ग्राम्य, आनूप, और जलसंचारी जीवोंका मांस, दूध, बकरीका शिर, सूअरकी अंतडी, पित्ता, रुधिर, घी, तेल, तिल, चावल, इन सबको एक बडे वर्तनमें पकाकर एक नली द्वारा इसकी भांफ शरीरमें दीजाय इसको नाडीस्वेद कहतेहैं। देश, काल, व्याधि स्वभाव, युक्तिआदि जाननेवाला वैद्य परीक्षा करके वरना, गिलोय, एरंड, लाल सुहांजना, मूली, सरसों, अडूसा, वास, करंज, आँकके पत्र, अश्मन्तकके पत्र, सिरस, मालती, तुलसी, वनतुलसी, इन सबके पत्रोंका क्वाथ करके नाडी-स्वेद करे ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥

भूतीकपञ्चमूलाभ्यांसुरयादधिमस्तुना।
मूत्रैरम्लैश्चसस्नेहैर्नाडीस्वेदंप्रयोजयेत् ॥ ३१ ॥

अथवा अजवायन, बृहत्पञ्चमूल, मद्य, दहीका पानी, गोमूत्र, कांजी, इनमें घृत तेल आदि मिला तथा क्वाथ करके नाडीस्वेद करे ॥ ३१ ॥

एतएवचनिर्य्यूहाःप्रयोज्याजालकोष्ठके।
स्वेदनार्थंघृतक्षीरतैलकोष्ठांश्चकारयेत् ॥ ३२ ॥

इन उपरोक्त क्वाथोंको एक वडे पात्रमें भरकर उस सहते २ क्वाथमें रोगीको विठानेसे स्वेदक्रिया होतीहै। ऐसेही घृत तैलादिकोंमें भी स्वेदनके रोगीको विठाया जाताहै ॥ ३२ ॥

गोधूमशकलैश्चूर्णैर्यवानामम्लसंयुतैः।
सस्नेहकिण्वलवणैरुपनाहःप्रशस्यते ॥ ३३ ॥

गेहूं और जौवोंके चूर्णमें—कांजी, स्नेह, मदिराकी किट्ट, सेंधानमक, इनको मिलाकर गर्म २ लेप करनेसे भी उत्तम स्वेदन होताहै ॥ ३३ ॥

गन्धैःसुरायाःकिण्वेनजीवन्त्याशतपुष्पया।
उमयाकुष्ठतैलाभ्यांयुक्तयाचोपनाहयेत् ॥ ३४ ॥

गन्धद्रव्य, मदिराकी किट्टी, जीवंती, सौंफ, बावची, कूठ, तेल, इनको मिलाकर कुछ गर्म लेप करनेसे स्वेदन होताहै ॥ ॥ ३४ ॥

लेपपर पट्टी बांधनेका सामान।

चर्मभिश्चोपनद्धव्यःसलोमभिरपूतिभिः।
उष्णवीर्य्यैरलाभेतुकौशेयाविकशाटकैः ॥ ३५ ॥

लेप करके ऊपरसे कोमल और दुर्गंधरहित उष्णवीर्य चमडा बांधे, यदि ऐसा चमडा न मिले तो रेशमी वस्त्र या भेडकी ऊनसे बनाहुआ वस्त्र लपेटे ॥ ३५ ॥

लेपबन्धनका समय ।

रात्रौवद्धंदिवामुञ्चेन्मुञ्चेद्रात्रौदिवाकृतम् ।
विदाहपरिहारार्थंस्यात्प्रकर्षस्तुशीतले ॥ ३६ ॥

रातका कियाहुआ लेप दिनमें उतारदेवे और दिनका किया रातको उतारदे । और दाह आदिकी निवृत्तिके लिये कियाहुआ लेप ठंढा होने पर भी देर तक रहे तो कोई हानि नहीं ॥ ३६ ॥

स्वेदके तेरह भेद ।

शंकरःप्रस्तरोनाडीपरिषेकोऽवगाहनम्। जेन्ताकोश्मघनःकर्षु-कुटीभूःकुम्भिकैवच ॥ ३७ ॥ कूपोहोलाकइत्येतेस्वेदयन्तित्र-योदश। तान्यथावत्प्रवक्ष्यामिसर्वानेवानुपर्वशः इति ॥३८॥

शंकर, प्रस्तर, नाडी, परिषेक, अवगाहन, जेंताक, अश्मघन, कर्षू, कुटी, भू, कुम्भी, कूप, होलाक, इन भेदोंसे स्वेद तेरह प्रकारके हैं उनको क्रमपूर्वक ठीक २ कथन करतेहं ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

शंकरस्वेदका लक्षण ।

तत्रवस्त्रान्तरितैरवस्त्रान्तरितैर्वापिण्डैर्यथोक्तैरुपस्वेदनंशङ्कर-स्वेदइतिविद्यात् ॥ ३९ ॥

उनमें गर्म कीहुई औषधिको कपडेमें लपेटकर उससे स्वेदन करे, अथवा गीली औषधियोंका पिंडसा वनाकर उसको गर्म करके उससे स्वेदन कियाजाय उसको शंकर स्वेद कहतेहं ॥ ३९ ॥

प्रस्तरस्वेदका लक्षण ।

शूकशमीधान्यपुलाकानांवेशवारायसकृशरोत्कारिकादीनांवा प्रस्तरेकौशेयाविकोत्तरप्रच्छदेपञ्चाङ्गुलोरुवुकार्कपत्रप्रच्छदेवा स्वभ्यक्तसर्वगात्रस्यशयानस्योपारिस्वेदनंप्रस्तरस्वेदइतिविद्यात् ४०

पहले स्नेहसे रोगीका सब शरीर चिकना करे । फिर शूकधान्य, शमीधान्य और फलकधान्यको खिचडीकी समान पकाकर अथवा वेशवार, खीर, खिचडी, उड-दोंकी रोटी आदि जो उचित हो बनाकर रोगीका शरीर जिस पर आसके उतनी भूमिमें विछावे उसके ऊपर रेशमी या ऊनका वस्त्र अथवा एरंडके पत्र विछाकर उसके ऊपर रोगीको सुलाया जावे उसको प्रस्तरस्वेद कहते हैं (परंतु नीचे विछा-याहुआ द्रव्य गर्म होना चाहिये) ॥ ४० ॥

नाडीस्वेदका लक्षण।

स्वेदनद्रव्याणांपुनर्मूलफलपत्रशुङ्गादीनां मृगशकुनपिशितशिरःपादादीनामुष्णस्वभावानांवायथार्हमम्ललवणस्नेहोपसंहितानांमूत्रक्षीरादीनांवाकुम्भ्यांबाष्पमनुद्वमत्यामुत्क्वथितानांनाड्याशरेषीकावंशदलकरञ्जार्कपत्रान्यतमकृतयागजाग्रहस्तसंस्थानयाव्यामदीर्घयाव्यामार्द्धदीर्घयावाव्यामचतुर्भागाष्टभागमूलाग्रपरिणाहस्रोतसासर्वतोवातहरपत्रसंवृताच्छिद्रयाद्विस्त्रिर्वाविनामितयावातहरसिद्धस्नेहाभ्यक्तगात्रोबाष्पमुपहरेत्। बाष्पोह्यनूर्द्ध्वगामीविहलचण्डवेगस्त्वचमाविदहन्सुखंस्वेदयतीतिनाडीस्वेदः ॥ ४१ ॥

स्वेदनके द्रव्योंके-जड; पत्र, फल, शुंग, आदि लेकर और उष्णस्वभाववाले मृग; पक्षी आदिकोंके मांस. शिर, पाद आदि लेकर और यथोचित अम्ल,लवण, स्नेह, मिलाकर तथा मूत्र, दूध, जल आदि किसी पात्रमें डालकर उसीमें उपरोक्त औषधियें डालकर पकावे और उस पात्रका मुख बंद करके उसमें एक नाल लगावें उसमेंसे जो भाफ आवे उससे रोगी स्वेदन करे। इस नालको सरपते, नरसल,बांस, करंज; आँक इनमेंसे किसीके पत्रोंसे या अन्य उचित द्रव्यसे बनावे। यह हाथीकी सूँडके अग्रभागके समान मोटी और दोनों बाहोंको फैलानेसे जितना लंबा होताहै उतनी लंबी होनी चाहिये। या एक गज लंबी हो और पात्रके मुखपरसे अधिक खुला और आगेसे छोटा ऐसा उस नालमें छिद्र होना चाहिये। वातनाशक पत्रोंसे नालके सब स्रोत बंद होने चाहिये जिससे भाफ बाहर न निकले। इस नालको दो तीन जगहसे नवाकर भाफ देनी चाहिये। भाफ देनेसे पहले ही वातनाशक तेलोंकी मालिशसे रोगीका शरीर नम्र रखना चाहिये। भाफको रोगीके शरीरमें छोडते समय नालका मुख तिरछा रक्खे जिससे भाफ रोगीकी छालको दहन न करे क्योंकि सीधी भाफ अत्यंत गर्म लगतीहै। इसको नाडी स्वेद कहतेहैं ॥ ४१ ॥

परिषेकका लक्षण।

वातिकोत्तरवातिकानांपुनर्मूलादीनामुत्क्वाथैःसुखोष्णैःकुम्भीर्वर्षुलिकाःप्रनाडीर्वापूरयित्वायथार्हसिद्धस्नेहाभ्यक्तगात्रंवस्त्रावच्छन्नंपरिषेचयेदितिपरिषेकः ॥ ४२ ॥

रोगीको-वातनाशक तैलादिकोंसे स्निग्धकर ऊपर वस्त्र देकर फिर वातनाशक द्रव्योंके मूल, फल. शुंगादिकोंके सुखोष्ण क्वाथको किसी तूतनीदार लोटेमें भरकर वस्त्रवेष्टित स्निग्धगात्र रोगी पर सींच देना । इसको परिषेक स्वेद कहते हैं ॥४२॥

अवगाहका लक्षण ।

वातहरोत्क्वाथक्षीरतैलघृतपिशितरसोष्णसलिलकोष्ठकावगाहस्तुयथोक्तएवावगाहः ॥ ४३ ॥

एक खुले पात्रमें वातनाशक औषधियोंका क्वाथ या दूध, तेल, घी, मांसरस, अथवा गर्म जल भरकर उसमें बैठना । उसको अवगाहन स्वेद कहते हैं ॥ ४३ ॥

जेन्ताकस्वेदके लिये भूमिपरीक्षा ।

अथजेन्ताकंचिकीर्षुर्भूमिंपरीक्षेत । तत्रपूर्वस्यांदिश्युत्तरस्यांवा गुणवतिप्रशस्तेभूमिभागेकृष्णमृत्तिकेसुवर्णमृत्तिकेवापरीवापपुष्करिण्यादीनांजलाशयानामन्यतमस्यकूलेदक्षिणेपश्चिमेवा सूपतीर्थेसमसुविभक्तभूमिभागेसप्ताष्टौवाअरत्नीरुपक्रम्योदकात्प्राङ्मुखमुदङ्मुखंवाभिमुखतीर्थंकूटागारंकारयेत् ॥ ४४ ॥

जेंताकस्वेद करनेकी इच्छावाला मनुष्य पहले भूमिकी परीक्षा करे । रोगीके स्थानसे पूर्व अथवा उत्तर दिशामें गुणयुक्त पवित्र भूमि देखकर जहां काली या पीली, मधुर, उत्तम मिट्टी हो और जिस भूमिके समीप ही नदी, वापी, पुष्करणी आदि कोई जलाशय हो उस जलाशयके दक्षिण या पश्चिमके किनारे दूसरा तीर्थ हो वहां पवित्र सीधी उत्तम भूमिमें जलाशयसे सात आठ हाथ पर एक मकान ऐसा बनावे जिसका मुख जलाशयकी ओर हो ॥ ४४ ॥

उत्सेधविस्तारतःपरमरत्नीहिषोडशसमन्तात्सुवृत्तंमृत्कर्म्मसम्पन्नमनेकवातायनम्।अस्यकूटागारस्यान्तःसमन्ततोभित्तिमरत्नीविस्तारोत्सेधांपिंडिकांकारयेत्कपाटवर्जम् ।मध्येचास्यकूटागारस्यचतुष्किष्कुमात्रपुरुषप्रमाणं मृण्मयंकन्दुसंस्थानंबहुसूक्ष्मच्छिद्रमङ्गारकोष्ठकान्तंसपिधानंकारयेत् ॥ ४५ ॥

और यह मकान लंबा चौडा ऊंचा परिमाणसे चारों ओर सोलह हाथ होना चाहिये यह घर मृत्तिकासे बनाहुआ और जिसमें हवा आनेको कई जगह खिडकी रखीहुई हों इस मकानके भीतर चारों ओर दीवारमें एक २ हाथकी भीत बनावे और उनमें किवाड न लगावे । फिर मकानके ठीक बीचमें एक चार हाथका चौडा और सात हाथ लंबा भाड सा बनाले उसके ऊपर बारीक २ छिद्रोंयुक्त ढकना रक्खे ॥४५॥

तश्चखादिराणामाश्वकर्णादीनांवाकाष्ठानांपूरयित्वाप्रदीपयेत्।
सयदाजानीयात्साधुदग्धानिकाष्ठानिगतधूमानिअवतप्तश्चकेव-
लमग्निनातदग्निगृहंस्वेदयोग्येनचोष्मणायुक्तमिति ॥ ४६ ॥
तत्रैनंपुरुषंवातहराभ्यक्तगात्रंवस्त्रावच्छन्नंप्रवेशयेत्प्रवेशयंश्चैन-
मनुशिष्यात् । सौम्यप्रविशकल्याणायारोग्यायचेति । प्रवि-
श्यचैनांपिण्डिकामधिरुह्यपार्श्वापरपार्श्वाभ्यांयथासुखंशयीथाः
नचत्वयास्वेदमूर्च्छापरीतेनापिसतापिण्डिकैषाविमोक्तव्यात्मा
आप्राणोच्छ्वासात्। भ्रश्यमानोह्यतः पिण्डिकावकाशाद्द्वारम-
नधिगच्छन्स्वेदमूर्च्छापरीततयासद्यः प्राणाञ्जह्याः ॥ ४७ ॥

इसके भीतर खैर या शालविशेषकी लकडीके अंगार रक्खे जब धूम निकललेवें और भीतरका स्थान तपगयाहो और स्वेदनयोग्य गर्मीसे भरजाय। फिर रोगीको वातनाशक तेलोंसे स्निग्धगात्र कर; कपडा लपेटकर इस गर्म घरमें प्रविष्ट करावे, और कहे हे सौम्य ! अपनी आरोग्यता और कल्याणके लिये इस घरमें प्रवेश कर। इस बीचमें बनीहुई पिंडका पर चढकर जिस करवटसे तुझे सुभीता हो उस करवट सोजा। तुमको इस पर लेटनेसे पसीने आवेंगे उस समय यदि तुमको मूर्छा भी आवे तो वहांसे नहीं उठना, जब तक तुम्हारे प्राण चलतेरहें तब तक उसको मत त्यागो। यदि तुम डरकर उसके ऊपरसे एकदम भागआओगे तो द्वारमें आते हीं पसीने और मूर्छासे प्राण निकल जायंगे ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

तस्मात्पिण्डिकामेनांनकथञ्चनमुञ्चेथाःत्वंयदाजानीयाः वि-
गताभिष्यन्दमात्मानंसम्यक्प्रस्रुतस्वेदपिच्छंसर्वस्रोतोविमुक्तं
लघुभूतमपगतविबन्धस्तम्भसुप्तिवेदनागौरवमिति । तत-
स्तां पिण्डिकामनुसरन्द्वारंप्रपद्येथाः। निष्क्रम्यचनसहसाच-
क्षुषोः परिपालनार्थंशीतोदकमुपस्पृशेथाः अपगतसन्तापक्ल-
मस्तुमुहूर्त्तात्सुखोष्णेनवारिणायथान्यायंपरिषिक्तोऽश्नीयाइति
जेन्ताकस्वेदः ॥ ४८ ॥

इसलिये उस पिंडिकाको मत छोडना, जब तुम्हारा शरीर बिलकुल कफ रहित होजाय और पसीनेका स्राव सब होचुके, शरीरके सब छिद्र खुल जायँ, और शरीर

हलका होजाय । तथा शरीरका विबंधस्तंभ, सुप्ति, पीडा, गुरुता यह सब दूर होकर शरीर हलका होजाय तब उस पिंडिकाके सहारेसे उसको धीरे २ छोडकर सहजसे द्वारकी ओर आना । फिर बाहर आते ही नेत्रोंके आरामके लिये शीत जल स्पर्श न करना।जब सन्ताप और क्लम दूर होजाय तब एक मुहूर्त से सुखोष्ण जलसे स्नान करके पथ्य भोजन करना इसको जेंताकस्वेद कहते हैं ॥ ४८ ॥

अश्मघनस्वेदका लक्षण ।

शयानस्यप्रमाणेनघनामश्ममयींशिलाम् । तापयित्वामारुतघ्नैर्दारुभिः संप्रदीपितैः ॥ ४९॥ व्यपोह्यसर्वानङ्गारान्प्रोक्ष्यचैवोष्णवारिणा । तांशिलामथकुर्वीतकौशेयाविकसंस्तराम् ॥ ॥ ५० ॥ तस्यांस्वभ्यक्तसर्वाङ्गः शयानः स्विद्यतेसुखम् । रौरवाजिनकौशेयप्रावाराद्यैस्सुसंवृतः ॥ ५१ ॥ इत्युक्तोऽश्मघनस्वेदः कर्षूस्वेदः प्रवक्ष्यते ॥ ५२ ॥

रोगीके सोनेके प्रमाण योग्य एक शिलाको वातनाशक लकडियोंकी आगसें गरम करे । फिर सब अंगार हटाकर गरम पानीसे धो देवे । फिर उस धुलीहुई गरम शिलापर रेशमी वस्त्र या कंबलें बिछावे । उसपर वातनाशक तेलोंसे अभ्यक्त रोगीको सुलावे तो सुखपूर्वक पसीने आवें । रुरु मृगके चर्मसे या रेशमी कपडेसें अथवा अन्य वस्त्रसे आच्छादित हो रोगी इस शिलापर लेटे । इसको अश्मघन स्वेद कहतेहैं ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

खानयेच्छयनस्याधः कर्षूस्थानविभागवित् । दीप्तैरधूमैरङ्गारैस्तांकर्षूंपूरयेत्ततः । तस्यामुपरिशय्यायांस्वपन्स्विद्यातिना सुखम् ॥ ५३ ॥

बुद्धिमान् वैद्य रोगीकी शय्याके नीचे एक भीतरसे खुले मुखवाला छोटा गढा बनाकर निर्धूम प्रदीप्त अंगारोंसे उसको भरदे । उसके ऊपर बिछी हुई शय्या पर पडा रोगी सुखपूर्वक पसीना लेताहै इसको कर्पुस्वेद कहतेहैं ॥ ५३ ॥

कुटीस्वेदका वर्णन ।

अनत्युत्सेधविस्तारांवृत्ताकारामलोचनाम् । घनभित्तिंकुटींकृत्वाकुष्ठाद्यैः सम्प्रलेपयेत् ॥ ५४ ॥ कुटीमध्येभिषक्शय्यांस्वास्तीर्णांचोपकल्पयेत्। प्रावाराजिनकौशेयकुथकम्बलगोलकैः

॥ ५५ ॥ सहंडिकाभिरङ्गारपूर्णाभिस्ताश्चसर्वशः । परिवार्य्या-न्तरारोहेदभ्यक्तः स्विद्यतेसुखम् ॥ ५६ ॥

न वहुत ऊंची न लंबी और न चौडी एक उचित गोल, छिद्ररहित कडी भीत-वाली कुटिया बनावे उसको कूठ आदि औषधियोंसे लेपन करे । फिर वैद्य उस कुटीमें आकर, मृगछाला, कौशेयवस्त्र, गुदडी कंवल, गोनक आदि बिछाकर शय्या वनावे और इस कुटीके चारों ओर भीतकी जडमें अंगारोंसे भरकर हांडियें रखदे फिर स्निग्धगात्र रोगीको इसमें सुलावे तो सुखपूर्वक स्वेदन होगा । इसको कुटीस्वेद कहतेहैं ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

भूस्वेदका वर्णन ।

यएवाश्मघनस्वेदविधिर्भूमौसएवतु ।
प्रशस्तायांनिवातायांसमायामुपदिश्यते ॥ ५७ ॥

अश्मघन स्वेदकी समान ही भूस्वेद होताहै अश्मघन स्वेदमें पत्थरकी शिला तपाई जातीहै और भूस्वेदमें निर्वातस्थानमें पवित्र आर सीधी भूमि तपाकर भूस्वेद होताहै ॥ ५७ ॥

कुम्भीस्वेदका वर्णन ।

कुम्भींवातहरक्वाथपर्णांभूमौनिखातयेत् । अर्द्धभागंत्रिभागं वाशयनंतत्रचोपरि ॥ ५८ ॥ स्थापयेदासनंवापिनातिसान्द्र-परिच्छदम् । अथकुम्भ्यांसुसन्तप्तान्प्रक्षिपेदयसोगुडान् ॥ ॥ ५९ ॥ पाषाणान्वोष्मणातेनतत्स्थः स्विद्यातिनासुखम् । सुसंवृताङ्गस्स्वभ्यक्तः स्नेहैरनिलनाशनैः ॥ ६० ॥

पहले वातनाशक क्वाथोंसे घडेको आधा या तीन भाग भरकर जमीनमें गाडदे उसके ऊपर रोगीकी शय्या या वैठनेयोग्य कोई वस्तु रखकर ऊपर वारीक वस्त्र विछादे उस पर तैलादिसे स्निग्धहुए रोगीको कंवल आदि वस्त्र लपेटकर विठा या लेटा देवे और पत्थर या लोहेके टुकडे आगमें लालकरके नीचेके घडेमें डाले उससे भाफ निकलकर जो रोगीको पसीना आवे उसको कुम्भीस्वेद कहतेहैं ५८॥५९॥६०॥

कूपस्वेदका वर्णन ।

कूपंशयनविस्तारंद्विगुणञ्चापिवेधतः । देशेनिवातेशस्तेच कुर्य्यादन्तः सुमार्जितम् ॥ ६१ ॥ हस्त्यश्वगोखरोष्ट्राणांक-

रीषैर्दग्धपूरिते । स्ववच्छन्नः ससंस्तीर्णेऽभ्यक्तस्त्विद्यतिना सुखम् ॥ ६२ ॥

पहले निर्वात और सीधी भूमिमें सोनेयोग्य लंबा चौडा और उससे दुगुना गहरा कूप बनावे और अंदर साफ करदे। फिर उसमें हाथी, घोडा, गौ, गर्दभ, ऊंट इनकी सूखीहुई लीद भरकर आग लगादेवे । जब धूम निकललेवे तो उसपर शय्या बिछाकर रोगीके शरीरपर तेल मलकर उस शय्यापर सुलावे इससे सुखपूर्वक स्वेदन होगा इसको कूपस्वेद कहते हैं ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

होलाकस्वेदका वर्णन ।

धीतिकान्तुकरीषाणांयथोक्तानांप्रदीपयेत् । शयनान्तःप्रमाणेनशय्यामुपरितत्रच ॥ ६३ ॥ सुदग्धायांविधूमायांयथोक्तामुपकल्पयेत् । स्ववच्छन्नः स्वपंस्तत्राभ्यक्तः स्विद्यतिनासुखम् ॥ ६४ ॥ होलाकस्वेदइत्येषसुखः प्रोक्तोमहर्षिणा । इतित्रयोदशविधः स्वेदोऽग्निगुणसंश्रयः ॥ ६५ ॥

हाथी आदिकी सूखी लीदकी शयन प्रमाण ढेरी लगाकर जलावे जब जलकर धूम निकलजाय फिर उसपर ऊंची सी चारपाई बिछावे । फिर वातनाशक तेलोंसे स्निग्ध कर रजाई आदि वस्त्र लेकर उस शय्यापर रोगी सोवे तो सुखपूर्वक पसीना आवे इसको होलाक स्वेद कहतेहैं । इस प्रकार अग्निके योगसे १३ प्रकारके स्वेद होतेहैं ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥

विना अग्नि स्वेदनविधान ।

व्यायामउष्णसदनंगुरुप्रावरणंक्षुधा । बहुपानंभयक्रोधावुपनाहाहवातपाः ॥ ६६ ॥ स्वेदयन्तिदशैतानिनरमाग्निगुणादृते । इत्युक्तोद्विविधः स्वेदः संयुक्तोऽग्निगुणैर्नच ॥ ६७ ॥

व्यायाम करनेसे, गरम घरमें रहनेसे, भारी वस्त्र धारण करनेसे, भूखे रहनेसे, बहुत मद्य पीनेसे, भयसे, क्रोधसे, उपनाहसे, युद्धसे, धूप लगनेसे, इन दश कारणोंसे अग्निके विना ही पसीने होजातेहैं। इस प्रकार अग्निके योगसे और विना अग्निसे दो प्रकारसे पसीने आतेहैं ॥ ६६ ॥ ६७ ॥

एकाङ्गसर्वाङ्गगतः स्निग्धोरूक्षस्तथैवच । इत्येतत्त्रिविधंद्वन्द्वंस्वेदमुद्दिश्यकीर्तितम् ॥६८॥ स्निग्धःस्वेदैरुपक्रम्यः स्विन्नः

पथ्याशनोभवेत् । तदहः स्विन्नगात्रस्तुव्यायामंवर्जयेन्न-रइति ॥ ६९ ॥

इसी प्रकार एकांगगत और सर्वांगगत इन भेदोंसे स्वेद दो प्रकारके हैं। आर रूक्षस्वेद तथा स्निग्धस्वेद इन भेदोंसे दो प्रकारके हैं यह तीन द्वन्द्व स्वेदके कहेहैं। स्नेहन स्वेदन के अनन्तर रोगी पथ्यपूर्वक रहे। जिस दिन पसीना लियाहो सब कामोंको छोडकर वैद्यकी आज्ञाका पालन करे ॥ ६८ ॥ ६९ ॥

अध्यायका संक्षिप्त वर्णन।

तत्र श्लोकाः।

स्वेदोयथाकार्यकरोहितोयेभ्यश्चयद्विधः । यत्रेदेशेयथायोग्यो देशोरक्ष्यश्चयोयथा ॥ ७० ॥ स्विन्नातिस्विन्नरूपाणितथाति-स्विन्नभेषजम् । अस्वेद्याः स्वेदयोग्याश्चस्वेदद्रव्याणि कल्पना ॥ ७१ ॥ त्रयोदशाविधः स्वेदोविनादशविधोऽग्निना। संग्रहेणचषट्स्वेदाः स्वेदाध्यायेनिदर्शिताः ॥ ७२ ॥

अब अध्यायका उपसंहार करतेहैं, कि इस स्वेदाध्यायमें जो २ स्वेदसे लाभ होते हैं। जिसतरहका स्वेद जिसके लिये हित और अहित है। जिस देशमें जैसे जो स्वेद योग्य है। उत्तम स्वेद और अतिस्वेदके लक्षण । अतिस्वेदितकी औषधि जिनको स्वेदन नहीं करना जो स्वेदनयोग्य हैं। स्वेदनके द्रव्य और उनकी कल्पना तेरह प्रकारके स्वेद। अग्निसे विना दश प्रकारके स्वेद छः स्वेदोंका संग्रह। ये वर्णन कियेहैं ॥ ७० ॥ ७१ ॥ ७२ ॥

स्वेदाधिकारेयद्वाच्यमुक्तमेतन्महर्षिणा । शिष्यैस्तुप्रतिपत्त-व्यमुपदेष्टापुनर्वसुरिति ॥ ७३ ॥

इस प्रकार इस अध्यायमें पुनर्वसुजीने कथन किया जो कुछ भी स्वेदाधिकारमें कहना था वह सब महर्षिजीने कथन करादिया। शिष्यगणोंको इस कथनका पालन करना चाहिये ॥ ७३ ॥

इति श्रीमहर्षिचरक० पं० रामप्रसाद० भाषाटीकायां स्नेहाऽध्यायश्चतुर्दशः ॥ १४ ॥

पञ्चदशोऽध्यायः ।

—०:•:०—

अथातउपकल्पनीयमध्यायंव्याख्यास्याम इतिहस्माहभगवानात्रेयः ।

अब हम उपकल्पनीय अध्यायकी व्याख्या करतेहैं । ऐसा भगवान् आत्रेयजी कहनेलगे ।

इहखलुराजानंराजमात्रमन्यंवाविपुलद्रव्यंसंभृतसम्भारंवमनंविरेचनंवापाययितुकामेनभिषजाप्रागेवौषधपानात्सम्भारा उपकल्पनीयाभवन्ति सम्यक्चैवहिगच्छत्यौषधेप्रतिभोगार्थाः व्यापन्नेचौषधेव्यापदः परिसंख्यायप्रतीकारार्थाः । नहिसन्निकृष्टेकालेप्रादुर्भूतायामापदिसत्यपिक्रयाक्रयेसुकरमाशुसम्भरणमौषधानांयथावदित्येवंवादिनंभगवन्तमात्रेयमग्निवेश उवाच ॥ १ ॥

जब राजा अथवा राजाके समान अन्य धनाढ्य पुरुष हो जिसके यहां बहुतसा द्रव्य, धन, संपत्ति, साधन, सामग्री हो उसको वमन या विरेचनकी औषधिका पान कराना हो तो वैद्यको उचित है कि औषध पिलानेसे प्रथम सब प्रकारकी आवश्यक वस्तुएं अपने समीप रखले । क्योंकि वमन विरेचनके समय और वमन विरेचन हो लेनेके अनंतर जिन २ वस्तुओंकी आवश्यकता पडतीहै वह उसी समय तैयार मिलनेसे रोगीको आराम मिलताहै और उसके वमनादि कार्यमें कोई हानि नहीं होती ऐसा होनेसे रोगीका उपकार होताहे । यदि वमन विरेचनमें कोई उपद्रव भी होजाय तो औषध तैयार पास होनेसे झट उपद्रव शांत होसकते हैं। ऐसा न करने पर यदि, वमन विरेचनके समय कोई उपद्रव होनेलगे तो औषध वेचनेकी दूकान समीप होनेपर भी यथोचित औषध तैयार करके देनेमें समय लगजाताहे उस समय बडी कठिनता पडतीहै । इसप्रकार कथन करतेहुए भगवान् आत्रेयजीसे अग्निवेश कहनेलगे ॥ १ ॥

ननुभगवन्नादावेवज्ञानवतातथाप्रतिविधातव्यंयथाप्रतिविहितेसिद्ध्येदेवौषधमेकान्तेन । सम्यक्प्रयोगनिमित्ताहिसर्वकर्मणांसिद्धिरिष्टाव्यापच्चासम्यक्प्रयोगनिमित्ता । अथसम्यगस-

न्यक्चसमारब्धंकर्मसिद्ध्यतिव्यापद्यतेवानियमेन । तुल्यंभ-
वतिज्ञानमज्ञानेनेति ॥ २ ॥

हे भगवन् ! इनमें कोई संशय नहीं कि सब सामग्री समीप रहनेसे आपत्तिके समय आपत्ति दूर करनेमें काम आती है।परंतु ज्ञानवान् वैद्यको पहलेसे ही इस प्रकार विचारकर कार्य करना चाहिये जिस प्रकार कार्य करनेसे विना विघ्नके औषधि प्रयोगका फल सिद्ध होसके,अर्थात् पहले ही विचारकर ऐसी रीतिसे वमन विरेचन-की औषधि प्रयुक्त करनी चाहिये जिससे बीचमें कोई उपद्रव ही न हो और ठीक वमन विरेचन होजाय क्योंकि समझकर भलेप्रकार प्रयोग करनेसे सब कार्य ठीक सिद्ध होजाते हैं । विना विचारे अनुचित रीतिसे प्रयोग कियाजाय तो उसमें उपद्रवरूप विपत्ति अवश्य होतीहै । बस, इससे यह नियम सिद्ध है कि सम्यक् प्रयोगसे कर्मकी सिद्धि होतीहै।और असम्यक् प्रयोगसे कर्ममें विपत्ति अर्थात् विघ्न होताहै । यदि ऐसा न हो तो फिर जानकारी और अनजानपनेमें फरक ही क्या रहा अर्थात् चिकित्साका जानना और न जानना दोनों बराबर है ॥ २ ॥

तमुवाचभगवानात्रेयः । शक्यंतथाप्रतिविधातुमस्माभिरस्म-
द्विधैर्वाप्यग्निवेशयथाप्रतिविहितेसिद्ध्येदेवौषधमेकान्तेनतच्च
प्रयोगसौष्ठवमुपदेष्टुंयथावन्नाहिकश्चिदस्ति । यएतदेवमुपादिष्ट-
मुपधारयितुमुत्सहेत ॥ ३ ॥

यह सुनकर आत्रेय भगवान् कहनेलगे कि हे अग्निवेश ! जैसा तुम कहतेहो ऐसा विचारकर कार्य हम लोग और हमारे समान अन्य वैद्य भी करसकतेहैं । जिस प्रकार प्रयोग करनेसे वमनादि किसी कार्यमें कोई विघ्न न हो । और उसी प्रकारके प्रयोगोंकी सुंदरताका उपदेश भी किया जा सकता है । परंतु इस प्रकारके उपदे-शको सब कोई धारण नहीं करसकते ॥ ३ ॥

उपधार्य्यवा तथाप्रतिपत्तुंप्रयोक्तुं वा । सूक्ष्माणिहिदोषभेषज-
देशकालबलशरीराहारसात्म्यसत्त्वप्रकृतिवयसामवस्थान्तरा-
णि ॥ ४ ॥ यान्यनुचिन्त्यमानानिविमलविपुलबुद्धेरपिबुद्धि-
माकुलीकुर्य्युःकिंपुनरल्पबुद्धेः ॥ ५ ॥

यदि कोई समझही लेवे अर्थात् उस प्रयोगविधिको धारण भी करले तो उन प्रयोगोंको यथोचित करलेना कठिन है । क्योंकि दोष, औषध, देश, काल, बल, शरीर, आहार, सात्म्य, सत्त्व, प्रकृति,अवस्था, इनका यथोचित विचार बहुत सूक्ष्म

अर्थात् वारीक है । इनके सूक्ष्म विचार करनेमें वडे २ निर्मल और विपुल बुद्धि-वालेकी बुद्धि भी व्याकुल होजाती है। फिर विचारे अल्पबुद्धिवालोंका तो कहना ही क्या है ॥ ४ ॥ ५ ॥

तस्मादुभयमेतद्यथावदुपदेक्ष्यामः । सम्यक्प्रयोगश्चौषधानां व्यापन्नानाञ्चव्यापत्साधनानिसिद्धिषूत्तरकालम्। इदानींताव-त्संभारान्विविधानंपिसमासेनोपदेक्ष्यामः ॥ ६ ॥

इसलिये हम दोनों प्रकारोंको अर्थात् जिस प्रयोगसे उपद्रव न हों उनका कथन करेंगे और यदि किसी कारणसे कहीं कोई उपद्रव होजाय उनका शमनोपाय भी कथन करेंगे । औषधोंका उत्तम प्रयोग, और वमनादिमें कोई विकार हो तो उसका शमनोपाय, इन दोनोंको हम उत्तरकालमें सिद्धिस्थानमें कहेंगे । और वमन विरे-चन विषयक सामग्रियोंको और उनके प्रकारोंको यहां संक्षेपसे कथन करतेहैं॥६॥

निवासस्थानका वर्णन ।

तद्यथा । दृढंनिवातंप्रवातैकदेशंसुखप्रविचारमनुपत्यकंधूमात-परजसामनभिगमनीयमनिष्टानाञ्चशब्दस्पर्शरसरूपगन्धानां सोपानोदूखलमुसलवर्चःस्थानस्नानभूमिमहानसोपेतंवास्तु-विद्याकुशलःप्रशस्तंगृहमेवतावत्पूर्वमुपकल्पयेत् ॥ ७ ॥

पहले घरके रचनेमें कुशल वैद्य एक ऐसा घर बनवावे जिसमें दीवारें आदि सब मजबूत हों, एक भागमें हवा आतीहै । और एक भागमें विलकुल हवा न लगे, जिसमें इधर उधर फिरनेको सीधी और खुली जगह हो, तथा इधर उधरके मका-नोंसे रुकाहुआ न हो, जिसमें धूम,धूप,धूल न आतेहों, और बुरे लगनेवाले शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, न होंय, कुंडी सोटा आदि दवाई कूटनेका सामान रखाहुआ हो, और पैडसाल (सीडी), पाखाना, स्नान करनेका स्थान, औषध, भोजन आदि बनानेका स्थान विधिवत् यथास्थान बनेहुए हों ॥ ७ ॥

ततःशीलशौचाचारानुरागदाक्ष्यप्रादक्षिण्योपपन्नानुपचारकु-शलान्सर्वकर्मसुपर्य्यवदातान्सूपौदनपाचकस्नापकसंवाह-कोत्थापकसंवेशकौषधपेषकांश्चपरिचारकान्सर्वकर्मस्वप्रतिक-लांस्तथागीतवादित्रोल्लापकश्लोकगाथाख्यायिकेतिहासपुरा-णकुशलानभिप्रायज्ञाननुमतांश्चदेशकालविदःपारिषद्यांश्च । तथालावकापिञ्जलशशहरिणैणकालपुच्छकमृगमातृकोरभ्रान्॥८॥

फिर उस घरमें सुशील, शुद्ध आचारवाले, स्वामीके भक्त, चतुर, सेवाकरनेमें कुशल, सब कामोंमें निपुण, भोजन बनानेमें चतुर, स्नान करानेवाले, सुलानेवाले, हाथ पकडकर चलनेवाले, उठाने बिठानेवाले, औषध पीसनेवाले, अन्य सब काम करनेमें योग्य, परिचारकोंको रक्खे। तथा गाने बजाने, आलाप करनेवाले, श्लोक, कहानियें, कथा, इतिहास, पुराण, इनमें कुशल और अभिप्राय तथा मनकी इच्छाके समझनेवाले, देशकालके अनुसार बात चीत करके चित्तको प्रसन्न रखनेवाले सभासदोंको नियुक्त करै। और लवा, तीतर, शशा, हिरन, काला हिरन, कालपुच्छक, मृगविशेष, मेढा, इन सबको उस घरमें स्थापन करे ॥ ८ ॥

गांदोग्ध्रीं शीलवतीमनातुरां जीववत्सां सुप्रतिविहिततृणशरणपानीयाम्। पात्र्याचमनीयोदकोष्ठमणिकघटपिठरपर्य्योगकुम्भीकुम्भकुण्डशरावदर्वीकटोदञ्चनपरिपचनमन्थानचर्म्मचेलसूत्रकार्पासोर्णादीनिचशयनासनादीनिचोपन्यस्तभृङ्गारप्रतिगृहाणिसुप्रयुक्तास्तरणोत्तरप्रच्छदोपधानानिस्वापाश्रयाणि संवेशनस्नेहस्वेदाभ्यङ्गप्रदेहपरिषेकानुलेपनवमनविरेचनास्थापनानुवासनाशिरोविरेचनमूत्रोच्चारकर्मणामुपचारसुखानि सुप्रक्षालितोपधानाश्च सुश्लक्ष्णखरमध्यमा दृषदः शस्त्राणि चोपकरणार्थानि। धूमनेत्रबस्तिनेत्रञ्चोत्तरबस्तिकञ्च। कुशहस्तकञ्चतूलाञ्चमानभाण्डञ्चघृततैलवसामज्जक्षौद्रफाणितलवणेन्धनोदकमधुसीधुसुरासौवीरकतुषोदकमैरेयमेदकदधिदधिमण्डोदश्विद्धान्याम्लमूत्राणिच ॥ ९ ॥

और दूध देनेवाली, सुशीला, नीरोग, जिसका बछडा जीताहो ऐसी गौको रक्खे और उस गौको यथेच्छ घास, जल तथा उत्तम स्थान मिलना चाहिये और जल तथा आचमन आदिके लिये पात्र जलकी कोठी, पतीला, कलशा, घडा, माट, झारी, शराव, कछली, षाक बनानेके पात्र, थाली, कटोरे, गिलास, आदि मथानी कपडे, सूत, कपास, ऊन आदिकसे बनीहुई सोनेकी शय्या, आसन आदि आरामके सामान स्थापन करे। और शय्या आसनके समीप ही जलकी झज्झर और थूकने आदिके लिये पीकदान आदि स्थापन करें। सुंदर बिछौना, ओढना, तकिया, पलंगके पडावे, बैठने लेटनेमें सुखदायक सामान रहना चाहिये तथा स्नेह, स्वेद,

मालिश, मलेप, परिषेक, अनुलेपन, वमन, विरेचन, शिरोविरेचन, आस्थापन, अनुवासन, इन सबकी यथायोग्य साधनसामग्री होनी चाहिये और मलमूत्र त्याग-नेका पात्र, और वमनके पात्र धोकर साफ रखने चाहिये, अन्य उपधान, शिला, श्लक्ष्ण और शुद्ध होनी चाहिये। तथा वस्त्रशस्त्रआदि अन्य उपकरण भी रक्खे। धूमपानकी नली, वस्तिकर्मके लिये पिचकारी, और उत्तरवास्तिका सामान, कुश-हस्त, तराजूकांटा आदि, मापनेका पात्र, घृत, तेल, चरबी, मज्जा,शहद, फाणित, लवण, काष्ठ, जल, सहदकी बनी सुरा,सीधु, सौवीर, तुषोदक, मैरेय, मेदक, दही, दधिमंड, उदस्वित्, धान्याम्ल, और गोमूत्र आदिक सामान रखने चाहिये ॥९॥

तथाशालीषष्टिकमुद्गमाषयवतिलकुलत्थवदरमृद्विकाश्मर्य्यप-रूषाभयामलकविभीतकानिनानाविधानिचस्नेहस्वेदोपकर-णानिद्रव्याणितथैवोर्द्ध्वहरानुलोमिकोभयभाञ्जिसंग्रहणीयदी-पनीयपाचनीयोपशमनीयवातहराणिसमाख्यातानिचौषधानि यच्चान्यदपिकिञ्चिद्व्यापदःपरिसंख्यायोपकरणंविद्यात् । यच्च प्रतिभोगार्थंतत्तदुपकल्पयेत् ॥ १० ॥

तथा शालीचावल, साठी, मूंग, उडद, जौ, तिल, कुलथी, उन्नाभ, मुनक्का, फालसा, हरड, बहेडा, आमला, और अनेक स्नेह तथा स्वेदनकी सामग्री और ऊपरका दोष निकालनेवाली, अनुलोमन, ऊपर नीचेका शोधन करनेवाली, स्तंभ-नकर्ता, दीपनीय, पाचनीय, उपशमनीय, और वायुनाशक औषधियें तथा अन्यान्य औषधियें जो वमन विरेचनमें किसी कारणसे हुए उपद्रवोंमें काम देनेवाली हों ऐसी औषधियें पास रक्खे। तथा जिन अन्य द्रव्योंसे रोगीको सुख प्राप्त होसके उनको भी संग्रह करे ॥ १० ॥

ततस्तंपुरुषंयथोक्ताभ्यांस्नेहस्वेदाभ्यांयथार्हमुपपादयेत् । तञ्चेदस्मिन्नन्तरेमानसःशारीरोवाव्याधिःकश्चित्तीव्रतरःसह-साभ्यागच्छेत्तमेवतावदस्योपावर्त्तयितुंयतेत । ततस्तमुपाव-र्त्यतावन्तमेवैनंकालंतथाविधेनैवकर्मणोपाचरेत्।ततस्तंपुरुषंस्ने-हस्वेदोपपन्नमनुपहतमानसमाभिसमीक्ष्यसुखोपितंप्रजीर्णभक्तं शिरःस्नातमनुलिप्तगात्रंस्रग्विणमनुपहतवस्त्रसंवीतंदेवताग्नि-द्विजगुरुवृद्धवैद्यानर्चितवन्तमिष्टेनक्षत्रेतिथिकरणमुहूर्तेकारयि-

त्वाब्राह्मणान्स्वस्तिवाचनंप्रयुक्ताभिराशीर्भिरभिमन्त्रितांमधु-मधुकसैन्धवफाणितोपहितांमदनफलकषायमात्रांपाययेत् ॥११॥

इसके उपरान्त जिसको वमन विरेचन कराना हो उसको यथोचित स्नेहन और स्वेदन द्वारा नम्र बनालेवे। यदि उसको इस अवसरमें कोई मानसिक या शारीरिक तीव्र व्यथा शीघ्र उपस्थित हुई हो तो पहले उसका यत्न करले। फिर विकार शांत होनेपर कुछ काल ठहरकर स्नेहन, स्वेदन करे। जब वह स्नेह स्वेद द्वारा मृदु होजाय और स्वस्थचित्त हो तथा भोजन कियाहुआ अच्छीतरह पाचन होचुकाहो तब उसका शिर धुलावे और सुगंधित द्रव्योंसे शरीरको सुगंधित करे तथा माला आदि धारण करा और शुद्ध वस्त्र पहनाकर देवता, अग्नि, ब्राह्मण, गुरु, वृद्ध, और वैद्य आदिकोंका पूजन करावे। फिर शुभ नक्षत्र, तिथि, करण, मुहूर्तमें ब्राह्मणोंके आशीर्वादके मंत्रोंद्वारा अभिमंत्रित कियाहुआ मधु, मुलहटी, सेंधानमक, फाणित; यह यथोचित मैनफलके क्वाथमें मिलाकर पीवे ॥ ११ ॥

मदनफलकी मात्राका प्रमाण।

मदनफलकषायमात्राप्रमाणन्तुखलुसर्वसंशोधनमात्राप्रमाणानिच प्रतिपुरुषमपेक्षितव्यानिभवन्ति। यावद्धियस्यसंशोधनंपीतंवैकारिकदोषहरणायोपपद्यते ॥१२॥ नचातियोगायोगायतावदस्यमात्राप्रमाणंवेदितव्यंभवति ॥ १३ ॥

मैनफलके क्वाथकी मात्राका प्रमाण तथा अन्य संशोधन द्रव्योंकी मात्राका प्रमाण मनुष्यके बलाबलके अनुसार है। जितनी मात्रासे पान कीहुई औषधि यथोचित शोधन कर दे और विकारोंकी शांति करे उसके लिये उतनी ही मात्र ठीक है। औषधका अतियोग और अयोग न होना ही औषधकी मात्राका प्रमाण जानना चाहिये ॥ १२ ॥ १३ ॥

पीतवन्तन्तुखल्वेनंमुहूर्तमनुकांक्षेत् ।तस्ययदाजानीयात्स्वेदप्रादुर्भावेणदोषप्रविलयनमापद्यमानंलोमहर्षेणचस्थानेभ्यःप्रचलितंकुक्षिसमाध्मानेनचकुक्षिमनुगतंहृल्लासास्यश्रवणाभ्यामपचितोर्द्धमुखीभूतमथास्मैजानुसममसम्बाधंसुप्रयुक्तास्तरणोत्तरप्रच्छदोपधानंस्वापाश्रयमासनमुपवेष्टुंप्रयच्छेत्॥ १४ ॥

औषध पीकर मनुष्य थोडी देर तक चित्तको टिकाकर वमनकी प्रतीक्षा करे। फिर जब पसीने आनेलगें तो समझले कि अब वातादिदोष लीन होगयेहैं। अथवा

जब रोमांच होनेलगे तो जाने कि दोष अपने स्थानसे चलायमान होगये और जब कुक्षिमें अफारासा होकर दोष कूख तक फैलकर दिल मचलाने लगे तथा मुखसे पानी गिरनेलगे तो समझे कि अब दोष ऊर्ध्वमुख होगयेहैं। फिर इसको सुखपूर्वक घुटनोंके बल गद्दाआदि बिछीहुई आश्रययुक्त चौकी आदि पर बिठावे ॥ १४ ॥

प्रतिग्रहांश्चोपचारयेत्। ललाटप्रतिग्रहेपार्श्वोपग्रहणेनाभिप्र-पीडनेपृष्ठोन्मर्दनेचअव्युपक्रमणीयाःसुहृदोऽनुमताःप्रवर्तेरन्। अथैनमनुशिष्यात्। विवृतोष्ठतालुकण्ठोनातिमहताव्यायामे-नवेगानुदीर्णानुदीरयन्किञ्चिदवनम्यग्रीवामूर्द्धशरीरमुपवेग-मप्रवृत्तान्प्रवर्त्तयन्सूपलिखितनखाभ्यामङ्गुलीभ्यामुत्पलकु-मुदसौगन्धिकनालैर्वाकण्ठमनभिस्पृशन्सुखंप्रवर्त्तयस्वेति॥१५॥

और इसके आगे छर्दि करनेका पात्र हाथ पोंछनेका साफा जल आदि रक्खे। फिर वैद्य या परिचारक अपने दोनों हाथोंसे वमनकर्ताके ललाटकी दोनों पसलि-यांको पकडे। और नाभि तथा पीठको उसके मित्र या परिचारक धीरे २ मसलें जिससे सुखपूर्वक वमन हो। और इस रोगीको भी ऐसी शिक्षा देवे कि तू होंठ, तालु कंठ खोलकर जिस तरह अधिक श्रम न हो वैसे वमनके वेगको निकाल दे। और गरदन मस्तक शरीरको कुछेक आगेको झुकाले। यदि वमनका वेग न आता हो तो उसके लानेको साफ किये हुए नखोंवाली उंगलियोंसे अथवा कमल, कुमो-दनी, कह्लार आदिकी नरम डंडीसे हृदयको स्पर्श करे जिससे सुखपूर्वक वमन हो॥ १५ ॥

वमन होनेपर वैद्यका कर्त्तव्य।

सतथाविधंकुर्य्यात्ततोऽस्यवेगान्प्रतिग्रहगतानवेक्षेतावहितः वेगविशेषदर्शनाद्धिकुशलोयोगायोगातियोगविशेषानुपलभेत वेगविशेषदर्शीपुनःकृत्यंयथार्हमवबुद्ध्येतलक्षणेन। तस्माद्वे-गानवेक्षेतावहितः॥ १६ ॥

रोगीको इसी प्रकार करना चाहिये। फिर कुशल वैद्य सावधानतासे देखे कि वमन ठीक होगये या नहीं वमनके वेगोंको देखकर कुशल वैद्य वमनके योग, अति-योग अयोगकी परीक्षा करे। यदि कुछ अतियोग आदि दिखाईदेवे तो उस समय करनेयोग्य कृत्योंको विचार ले। इसलिये सावधान होकर वेगोंको देखे ॥ १६ ॥

वमनके योगायोगादि लक्षण।

तत्रअमून्ययोगयोगातियोगविशेषज्ञानानिभवन्ति । तद्यथा अप्रवृत्तिःकुतश्चित् केवलस्यवाप्यौषधस्यविभ्रंशोविबन्धोवेगानामयोगलक्षणानिभवन्ति ॥ १७ ॥

उसमें वमनके अयोग, सम्यक् योग, अतियोगके यह लक्षण होतेहैं। वमनका न होना या जो औषध वमनके लिये पीगई हो केवल वह निकलजाय और वमन न होय। यह वमनके अयोगके लक्षण हैं ॥ १७ ॥

कालेप्रवृत्तिरनातिमहतीवयथास्वंदोषहरणंस्वयञ्चावस्थानमितियोगलक्षणानिभवंति।योगेनतुदोषप्रमाणविशेषेणतीक्ष्णमृदुमध्यविभागोज्ञेयः। योगाधिक्येनतुफेनिलरक्तचन्द्रिकोपगमनमित्यतियोगलक्षणानिभवन्ति । तत्रातियोगायोगनिमित्तानिमानुपद्रवान्विद्यात् । आध्मानंपरिकर्त्तिकापरिस्रावोहृदयोपशरणमङ्गग्रहोजीवादानंविभ्रंशःस्तंभक्लमउपद्रव इति॥१८॥

ठीक समयपर वमन होय अति अधिक वमन न होय, वमनकर्ताको अधिक कष्ट न होय पहले दोषोंको निकालकर फिर औषध निकले। यह वमनके ठीक योगके लक्षण हैं। ठीक योगमें भी तीक्ष्ण, मृदु, मध्य, यह तीन भेद हैं वमनको अतियोग होनेसे छर्दमें झाग, रुधिर, चमक, आदि होतेहैं और वमनके वेग बहुत ज्यादा आतेहैं यह वमनके अतियोगके लक्षण हैं। उनमें अयोग और अतियोग होनेसे यह उपद्रव होते हैं जैसे-अफारा, पेटमें काटयुक्त पीडा, रुधिरका निकलना, हृदयकी रुकावट, अंगोंकी शिथिलता, जीवसंज्ञक रक्तका निकलना अथवा जीवनका क्षय होना, जीभका निकलआना, शरीरका स्तंभ, और कायली होना, यह लक्षण होतेहैं ॥ १८ ॥

योगेनतुखल्वेनंछर्दितवन्तमभिसमीक्ष्यसुप्रक्षालितपाणिपादास्यंमुहूर्तमाश्वास्यस्नैहिकवैरेचनिकोपशमनीयानांधूमानामन्यतमंसामर्थ्यतःपाययित्वापुनरेवोदकमुपस्पर्शयेत्।उपस्पृष्टोदकञ्चैनंनिवातमगारमनुप्रवेश्यसंवेश्यचानुशिष्यात् ॥१९॥

उच्चैर्भाष्यमत्यासनमतिस्थानमतिचंक्रमणंक्रोधशोकाहिमात-

पावश्यायातिप्रवातान् यानयानंग्राम्यधर्म्ममस्वपनंनिशिदि-
वास्वप्नम्।विरुद्धाजीर्णासात्म्याकालप्रमितामितातिहीनगुरु-
विपमभोजनवेगसन्धारणोदीरणमितिभावानेतान्मनसाप्य-
सेवमानःसर्वमाहारमद्यादिति । सतथाकुर्य्यात् ॥ २० ॥

यदि उत्तम प्रकारसे वमन होलेवे तो उस वमनकर्त्ताके हाथ, पांव,मुख,धुलाकर आराम करने दे फिर दोघडी पश्चात् उसको स्नैहिक धूम या विरेचक धूम अथवा शमन धूम वा यथासाध्य अन्य धूम पान करावे।फिर हाथ पाँव नेत्र मुख धुलाकर वात रहित स्थानमें सुखोचित शय्या पर सुलावे और कहे कि ऊंचे स्वरसे बोलना, अधिक बैठना, अत्यंत आराममेंही पडरहना, अति फिरना, क्रोध, शोक, हिम, धूप, शीत, अत्यंत वायु, सवारी, स्त्रीसंग, जागरण, दिनमें सोना, विरुद्ध भोजन, अजीर्णकर्ता तथा असात्म्य भोजन, असमय भोजन, अल्प भोजन, अतिभोजन, हीन तथा भारी और विषम भोजन, मलमूत्रादिका वेग रोकना, विना वेग मलादि त्यागना, इन कामोंको मनसे भी न करना । और मद्य आदि भी सेवन न करना वमनकर्ताको भी वैद्यके कथनानुसार ही करना चाहिये ॥ १९ ॥ २० ॥

रात्रिके भोजनका क्रम ।

अथैनंसायाह्नेपरेवाह्निसुखोदकपरिषिक्तंपुराणानांलोहितशालि-
तण्डुलानांस्ववक्लिन्नानांमण्डपूर्वांसुखोष्णांयवागूंपाययेदग्नि-
बलमभिसमीक्ष्यचैवंद्वितीयेतृतीयेचान्नकाले चतुर्थेत्वन्नकाले
तथाविधानामेवशालितण्डुलानामुत्स्विन्नांविलेपीमुष्णोदकद्वि-
तीयामस्नेहलवणामल्पस्नेहलवणांवाभोजयेत् । एवंपञ्चमेषष्ठे
चान्नकालेसप्तमेत्वन्नकालेतथाविधानामेवशालीनांद्विप्रसृतंसु-
स्विन्नमोदनमुष्णोदकानुपानंतनुमातनुस्नेहलवणोपपन्नेनमुद्ग-
यूषेणभोजयेत् ।एवमष्टमेनवमेचान्नकालेदशमेत्वन्नकालेलाव-
कपिञ्जलादीनामन्यतमस्यमांसरसेनौदकलावणिकेनातिसार-
वताभोजयेत्।उष्णोदकानुपानमेवमेकादशेद्वादशेचान्नकाले ॥२१॥

इसके अनंतर उस मनुष्यको सायंकाल या दूसरे दिन प्रातःकाल सुखोष्णजलसे स्नान कराके पुराने साठीके चावल आदिकोंका यवागू बनाकर सुखोष्ण पिलावे । [illegible] दूसरे तीसरे [illegible] सुखोष्ण नरम २ साठी चावलों आदिकी पेया बना-

कर देवे। चौथे समय साठीके चावलोंको बहुत नरम और गाढेसे बनाकर देवे अथवा उन चावलोंकी विलेपीमें थोडी सी चिकनाई और सेंधानमक मिलाकर देवे। और गर्म जल पीनेको देवे। ऐसे ही पांचवे, छठे भोजनके समय भी करे। सातवे समय साठी या शालीचावलोंका नरम बनाहुआ आधसेर भात और थोडेसे नमक और चिकनाई युक्त मूंगका यूष देवे और गर्म जल पिलावे। आठवें, नवमें अन्न-कालमें भी ऐसा ही करे। दशवें समय लवा, तीतर आदिक किसी पवित्र पक्षीके मांसरससे यथेच्छ स्नेह लवण मिलाकर अन्न खावे और गरम जल पीवे। ऐसे ही ग्यारहवें, बारहवें समय भी करे॥ २१॥

अतऊर्ध्वमन्नगुणानुक्रमेणोपभुञ्जानःसप्तरात्रेणप्रकृतिभोजन-मागच्छेत्॥ २२॥

इसके उपरांत सात दिन तक सात्म्य और पथ्य भोजन करताहुआ अपने स्वाभाविक भोजन पर आजाय॥ २२॥

विरेचनविधि।

अथैनंपुनरेवस्नेहस्वेदाभ्यामुपपाद्यानुपहतमनसमभिसमीक्ष्य सुखोषितंसुप्रजीर्णभक्तंकृतहोमबलीमङ्गलजप्यप्रायश्चित्तमिष्ट-तिथिनक्षत्रकरणमुहूर्तेब्राह्मणान्स्वस्तिवाचयित्वात्रिवृतकल्क-मक्षमात्रंयथार्हालोडनप्रतिविनीतंपाययेत्॥ २३॥

अब फिर स्नेहन स्वेदन करके सर्वदुःखरहित सुखपूर्वक बैठे हुए इसको पहले दिनका अन्न जीर्ण होनेपर होम, बलिदान, मंगलाचरण, जप, प्रायश्चित्त आदि कराके शुभ तिथि, नक्षत्र, करण, मुहूर्तमें ब्राह्मणों द्वारा स्वस्तिवाचन और पुण्याहवाचन कराके एक बहेडेके समान (अथवा जितना उचित हो) निशोथका कल्क लेकर पानीमें घोलकर पिलादेवे॥ २३॥

प्रसमीक्ष्यदोषभेषजदेशकालबलशरीराहारसात्म्यसत्त्वप्रकृति-वयसामवस्थान्तराणिविकारांश्चसम्यग्विरिक्तश्चैनंवमनोक्तेन धूमवर्जेनविधिनोपपादयेदाबलवर्णप्रतिलाभात्॥ २४॥

फिर-दोष, औषध, देश, काल, बल, शरीर, आहार, सात्म्य, सत्त्व, प्रकृति, वय, तथा अन्य व्यवस्था, और रोगोंको विचारकर तथा रोगीको उत्तम विरेचन होचुका यह विचारकर जबतक बल वर्ण ठीक न होजाय तब तक वमनमें कही विधिके वर्ताव करतारहै। परंतु वमनमें कहेहुए धूमपानको न करे॥ २४॥

बलवर्णोपपन्नश्चैनमनुपहतमनससमभिसमीक्ष्यसुखोषितसुप्र-
जीर्णभक्तंशिरःस्नातमनुलिप्तगात्रंस्रग्विणमनुपहतवस्त्रसंवीत-
मनुरूपालंकारालंकृतंसुहृदांदर्शयित्वाज्ञातीनांदर्शयेदथैनंका-
मेष्वेवसृजेत् ॥ २५ ॥

जब वह मनुष्य बलवर्ण युक्त होजाय, और मन प्रसन्न हो तब पहले दिनका अन्न जीर्ण होनेपर सुखपूर्वक बिठाकर शिरसे स्नान करावे। और शरीरमें चंदनादि सुगंधित लेप कर-फूलमाला,शुद्ध हलके वस्त्र और यथायोग्य वस्त्र आदिसे शोभा-यमान कर इसके मित्र और बांधवोंके दर्शन करावे । फिर इसको इसकी इच्छानु-सार वर्तावकी आज्ञा देवे ॥ २९ ॥

भवंतिचात्र । अनेनविधिनाराजाराजमात्रोऽथवापुनः । यस्य
वाविपुलंद्रव्यंससंशोधनमर्हति ॥ २६ ॥ दरिद्रस्त्वापदंप्राप्य
प्राप्तकालंविरेचनम् । पिबेत्काममसंभव्यसम्भारानपिदुर्ल-
भान् ॥ २७ ॥

यहां कहतेहैं कि, इस विधिसे राजा अथवा राजाओंकी समान धनिक पुरुष जिसके यहां बहुत द्रव्य हो उसको शोधन करना चाहिये ॥ २६ ॥ और दरिद्रीके पास सब सामान हो नहीं सकता इसालिये जब उसको कोई वमन विरेचन साध्य रोग होय उसी समय यथासंभव योग्य औषध देकर आरोग्य करे ॥ २७ ॥

नहिसर्वमनुष्याणांसन्तिसर्वपरिच्छदाः । नचरोगानबाधन्ते
दरिद्रानपिदारुणाः ॥ २८ ॥ यद्यच्छक्यंमनुष्येणकर्त्तुमौषध-
मापदि । तत्तत्सेव्यंयथाशक्तिवमनान्यशनानिच ॥ २९ ॥

क्योंकि सब मनुष्योंके यहां सब साधन नहीं होसकते और रोग तो दरिद्रियोंको भी बलाही दारुण कष्ट देते हैं। इसलिये जिससे जिस प्रकार यत्न हो जैसी, औषध आदि होसकती हो उसको रोग होनेपर वैसे ही यथाशक्ति शोधन और भोजनादि करने चाहिये ॥ २८ ॥ २९ ॥

मलापहंरोगहरंबलवर्णप्रसादनम् । पीत्वासंशोधनंसम्यगायु-
पायुज्यतेचिरम् ॥ ३० ॥

उत्तम प्रकारसे संशोधन करनेसे दुष्ट मल और रोग नष्ट होते हैं । तथा बल और वर्ण उत्तम होते हैं और आयु दीर्घ होती है ॥ ३० ॥

अध्यायका संक्षिप्तवर्णन ।

तत्रश्लोकाः । ईश्वराणांवसुमतांवमनंसविरेचनम् । सम्भारा ये यदर्थश्च समानीयप्रयोजयेत् ॥ ३१ ॥ यथाप्रयोज्यंयामात्रा यदयोगस्यलक्षणम् । योगातियोगयोर्यच्चदोषायेचाप्युपद्रवाः ॥३२ ॥ यदसेव्यंविशुद्धेनयश्चसंसर्जनक्रमः । तत्सर्वंकल्पनाध्यायेव्याजहार पुनर्वसुः ॥ ३३ ॥

इतिकल्पनाचतुष्केउपकल्पनीयोऽध्यायः ।

अध्यायके उपसंहारमें यह श्लोक है कि इस कल्पनीयाध्यायमें राजाओं और धनिक पुरुषोंको वमन विरेचनका क्रम और उनके साधनकी सामग्री, तथा वमन विरेचनकी मात्रा अयोगके लक्षण तथा सम्यक् योग और अतियोगके लक्षण अतियोगके उपद्रव, संशोधित मनुष्यके सेवनका क्रम और उसको छुट्टी देनेकी विधि यह सब भगवान् पुनर्वसुजीने कथन कियाहै ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदीयसंहितायां पटियालाराज्यांतर्गतटकसालनिवासिवैद्यपंचानन वैद्यरत्न पं० रामप्रसादवैद्योपाध्यायविरचितप्रसादन्याख्यभाषाटीकायामुपकल्पनीयो नाम पंचदशोध्यायः ॥ १५ ॥

षोडशोऽध्यायः ।

अथातश्चिकित्साप्राभृतीयमध्यायंव्याख्यास्याम इति हस्माहभगवानात्रेयः ।

अब हम चिकित्साप्राभृतीय अध्यायका कथन करते हैं । ऐसा भगवान् आत्रेयजी कहनेलगे ।

सदसद्वैद्यके कर्मका फल ।

चिकित्साप्राभृतोविद्वान् शास्त्रवान् कर्मतत्परः । नरंविरेचयतियंसयोगात्सुखमश्नुते ॥ १ ॥

चिकित्सामें निपुण, शास्त्रको जाननेवाला, अपने चिकित्साकर्ममें तत्पर वैद्य जिस मनुष्यको विरेचन कराता है वह मनुष्य रोगमुक्त होकर परम सुखको भोगता है ॥ १ ॥

यंवैद्यमानीत्वबुधोविरेचयतिवानवम् ।
सोऽतियोगादयोगाच्चमानवोदुःखमश्नुते ॥ २ ॥

और अपने आप वैद्य कहलानेवाला मूर्ख जिसको विरेचन देता है वह अतियोग अथवा अयोगके होनेसे दुःखको भोगताहै ॥ २ ॥

अच्छे विरेचनके लक्षण ।

दौर्बल्यंलाघवंग्लानिर्व्याधीनामणुतारुचिः। हृद्वर्णशुद्धिःक्षुत्तृष्णाकालेवेगप्रवर्त्तनम् ॥ ३ ॥ बुद्धीन्द्रियमनःशुद्धिर्मारुतस्यानुलोमता । सम्यग्विरिक्तलिङ्गानिकायाग्नेश्चानुवर्त्तनम् ॥ ४ ॥

देहमें दुर्वलता, हलकापन, ग्लानि,रोगका ह्रास, रुचि,हृदय और वर्णकी शुद्धि, क्षुधा, तृषाका ठीक होना, समयपर मलमूत्रका होना, बुद्धि, इन्द्रिय, और मनका शुद्ध होना, वायुका अनुलोम होना, जठराग्निका वलवान् होना यह लक्षण उत्तम विरेचन होनेके हैं ॥ ३ ॥ ४ ॥

दुष्टविरेचनके लक्षण ।

ष्ठीवनंहृदयाशुद्धिरुत्क्लेशःश्लेष्मपित्तयोः । आध्मानमरुचिश्छर्दिरदौर्बल्यमलाघवम् ॥ ५ ॥ जंघोरुसादनंतन्द्रास्तैमित्यंपीनसागमः । लक्षणान्यविरिक्तानांमारुतस्यचनिग्रहः ॥६॥

मुखसे पानी गिरना, हृदयका भारी होना, कफपित्तके निकलनेकी सी शंका रहना, अफारा, अरुचि, छर्दि, देहमें पुष्टता सी और भारीपन, टांगोंमें और घुटनोंमें शिथिलता, तन्द्रा, देहमें गीलापन, प्रतिश्याय, अधोवायुका ठीक न निकलना यह लक्षण ठीक विरेचन न होनेसे होतेहैं ॥ ५ ॥ ६ ॥

अतिविरेचितके लक्षण ।

विट्पित्तश्लेष्मवातानामागतानांयथाक्रमम् । परंस्रवतियद्रक्तंमेदोमांसोदकोपमम् ॥७॥ निःश्लेष्मपित्तमुदकंशोणितंकृष्णमेववा । तृष्यतोमारुतार्त्तस्यसोतियोगप्रमुह्यतः ॥ ८ ॥

पहले विष्ठा, पित्त,वलगम, वात यह यथाक्रम निकलकर फिर मेद और मांसके धोवनकी समान रक्त निकलनेलगे और कफपित्त रहित पानीका निकलना अथवा

काले रंगका रुधिर गिरना। और बेहोशी, प्यासकी अधिकता तथा वायुका कोप होना यह विरेचनके अतियोगके लक्षण हैं ॥ ७ ॥ ८ ॥

वमनातिकृतेलिंगान्येतान्येवभवन्तिहि ।
ऊर्द्ध्वगात्रातरोगाश्चवाग्ग्रहश्चाधिकोपमः ॥ ९ ॥

वमनके अतियोग होनेसे भी यही लक्षण होतेहैं परंतु ऊर्ध्वजत्रुगत वायुके रोग और वाणीका रुकना यह विरेचनके अतियोगसे वमनके अतियोगमें अधिक होतेहैं ॥ ९ ॥

चिकित्साप्राभृतंतस्मादुपेयात्कारणंनरः ।
युञ्ज्याद्यएनमत्यन्तमायुषाचसुखेनच ॥ १० ॥

इसीलिये चिकित्साके जाननेवाले सुज्ञ वैद्यकी शरणमें ही मनुष्यको स्वेदन, वमन विरेचनादि लेने चाहिये क्योंकि योग्य वैद्य ही इसकी आयु और सुखकी रक्षा करताहै ॥ १० ॥

संशोधनीय रोग ।

अविपाकोऽरुचिःस्थौल्यंपाण्डुतागौरवंक्लमः।पित्तकाकोठकण्डूनांसम्भवोऽरतिरेवच ॥११॥ आलस्यंश्रमदौर्बल्यंदौर्गन्ध्यमवसादकः। श्लेष्मपित्तसमुत्क्लेशोनिद्रानाशोऽतिनिद्रता॥१२॥ तन्द्राक्लैब्यमबुद्धित्वमशस्तस्वप्नदर्शनम्। बलवर्णप्रणाशश्चतृप्यतोबृंहणैरपि ॥ १३ ॥ बहुदोषस्यलिङ्गानितस्मैसंशोधनंहितम्। ऊर्द्ध्वंचैवानुलोमञ्चयथादोषंयथाबलम् ॥ १४ ॥

अन्नका परिपाक न होना, अरुचि, स्थूलता, पांडु, गुरुता, क्लम, फोडे, कोठ, जिल्दपर चकत्तेसे होना, खाज, इन सबका अधिकतासे होना, आलस्य, दुर्बलता, श्रम, देहसे दुर्गंध आना, अंगोंका अवसाद, श्लेष्मा और पित्तकी अधिकता, दिलमचलाना, निद्राका नाश, अथवा अतिनिद्रा, नपुंसकता, तन्द्रा, बुद्धिनाश, खराब स्वप्न दीखना, बल और वर्णका नाश होना, यह लक्षण बृंहणद्वारा अत्यन्त संतर्पित होनेसे होतेहैं ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ और यही लक्षण जिसके शरीरमें बहुत दोष बढेहुए हों उसके भी होतेहैं। ऐसे समय संशोधन करना परम हितकारक होताहै । वह शोधन दोषादि विचारकर ऊर्ध्वशोधन या अधःशोधन अथवा वमन विरेचन द्वारा दोनों तर्फसे शोधन करना चाहिये ॥ १४ ॥

संशोधनका फल ।

एवंविशुद्धकोष्टस्यकायाग्निराभिवर्द्धते । व्याधयश्चोपशाम्य-
न्तिप्रकृतिश्चानुवर्तते ॥ १५ ॥ इन्द्रियाणिमनोबुद्धिर्वर्णश्चा-
स्यप्रसीदति । वलंपुष्टिरपत्यश्ववृषताचास्यजायते ॥ १६ ॥
जरांकृच्छ्रेणलभतेचिरंजीवत्यनामयः । तस्मात्संशोधनंकाले
युक्तियुक्तंपिबेन्नरः ॥ १७ ॥

इस प्रकार शुद्ध कोष्ठवाले मनुष्यके जठराग्निकी वृद्धि होतीहै । सब रोग शांत होजातेहैं । सब स्वाभाविक गुण ठीक होजातेहैं । इंद्रियें, मन, बुद्धि, वर्ण, यह प्रसन्न होंय । वल, पुष्टि, सन्तान, पुरुषपना, यह उत्पन्न होय । बुढापा जल्दी नहीं आता, नीरोग रहकर वडी आयुवाला होय । इसलिये युक्तियुक्त वमन विरेचनसे शरीरको उचित कालमें शुद्ध करना चाहिये ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥

संशोधनकी उत्कृष्टता ।

दोषाःकदाचित्कुप्यन्तिजितालंघनपाचनैः ॥जिताःसंशोधनैर्येतु
नतेषांपुनरुद्भवः ॥ १८ ॥ दोषाणाञ्चद्रुमाणाञ्चमूलेऽनुपहते
सति । रोगाणांप्रसवाणाञ्चगतानामागतिर्ध्रुवा ॥ १९ ॥

यदि लंघन और पाचनद्वारा दोष जीतेजांय तो वह कभी फिर भी कुपितः होसकतेहैं । परंतु संशोधनद्वारा जीतेहुए दोष फिर प्रगट नहीं होसकते । दोषोंको और वृक्षोंको यदि विल्कुल जडसे न निकालदिया जाय तो उन दवेहुए दोषोंसे काल पाकर रोग और रहीहुई वृक्षकी जडसे फिर अंकुरादि पैदा होना अवश्यंभावी है इसलिये इनको जडसे निकालदेना ही अच्छा है ॥ १८ ॥ १९ ॥

औषधक्षीणके लिये पथ्य ।

भेषजक्षपितेपथ्यमाहारैरेवबृंहणम् । घृतमांसरसक्षीरहृद्ययू-
षोपसाधितैः ॥ २० ॥ अभ्यङ्गोत्सादनैःस्नानैर्निरूहैःसानुवा-
सनैः । तथासलभतेशर्मयुज्यतेचायुषाचिरम् ॥ २१ ॥

यदि वमन विरेचनकी औषधिके अधिक सेवनसे मनुष्य क्षीण होजाय तो उसको पथ्य आहारोंसे पुष्ट करना चाहिये । यथा घृत, मांसरस, दूध हृद्य (हृदयको प्रिय) पदार्थ, यूषआदि देकर पुष्ट करे । और तैलकी मालिश, उवटना, स्नान, निरूहण और अनुवासन वस्ति करे ऐसा करनेसे उसका कल्याण होता है और आयु बढतीहै ॥ २० ॥ २१ ॥

वमनविरेचनातियोगमें चिकित्सा ।

अतियोगानुबद्धानांसर्पिःपानंप्रशस्यते। तैलंमधुकरैःसिद्धमथ वाप्यनुवासनम् ॥ २२ ॥ यस्यत्वयोगस्तंसिद्धंपुनःसंशोधये-न्नरम् । मात्राकालबलापेक्षीस्मरन्पूर्वमतिक्रमम् ॥ २३ ॥

यदि वमनविरेचनका अतियोग होगयाहो तो उसको योग्य औषधियोंसे सिद्ध किया हुआ घृत पिलावे । अथवा मधुक आदि गणसे सिद्ध किएहुए तैलकी मालिश करे अथवा ऐसे ही तैलसे अनुवासक्रिया करे ॥ २२ ॥ जिस मनुष्यको वमन, विरेचनका अयोग हुआहो उसको फिर स्नेहन,स्वेदन करके संशोधन करे । और मात्रा, समय, बल, इनका ध्यान रखना चाहिये, तथा प्रथम कहेहुए वमन विरे-चनके क्रम और पेयादि पान करानेको याद रक्खे ॥ २३ ॥

स्नेहनेस्वेदनेशुद्धौरोगाःसंसर्जनेचये। जायन्तेऽमार्गविहितेते-षांसिद्धिषुसाधनम् ॥ २४ ॥

स्नेहन, स्वेदन, संशोधनआदि किसी क्रमके बिगडनेस जो रोग होतेहैं उनका यत्न सिद्धिस्थानमें कहाजायगा ॥ २४ ॥

जायन्तेहेतुवैषम्याद्विषमादेहधातवः । हेतुसाम्यात्समास्तेषां स्वभावोपरमःसदा ॥ २५ ॥ प्रवृत्तिहेतुर्भावानांननिरोधेऽ-स्तिकारणम्। केचित्तत्रापिमन्यन्तेहेतुंहेतोरवर्त्तनम् ॥ २६ ॥

आहार विहार आदि किसी कारणकी विषमतासे शारीरिक धातुवोंमें विषमता होतीहै और इसी प्रकार हेतु (कारण) की समतासे देहधारी धातुओंमें भी समता रहतीहै अर्थात् हेतुवैषम्यसे विषमता और हेतुसाम्यसे समता होना यह देहधारक धातुओंमें जो विषमता आदि अर्थात् कम और ज्यादा होना है इसका उपराम (नाश) होसकताहै। परंतु धातुओंका नाश कभी नहीं होता । धातुओंको बढानेमें कारणोंकी प्रवृत्ति होसकतीहै अर्थात् अपने कारणोंके प्रवृत्त होनेसे देहधारी धातु बढ तो सकतेहैं परंतु नाशको प्राप्त नहीं होसकते कोई कहतेहैं कि बढानेवाले कारणोंकी अप्रवृत्ति (अभाव) से वह बढते नहीं अर्थात् कम होजातेहैं॥२५॥२६॥

अग्निवेशका प्रश्न ।

एवमुक्तार्थमाचार्य्यमग्निवेशोऽभ्यभाषत । स्वभावोपरमंकर्म चिकित्साप्राभृतस्यकिम् ॥ २७ ॥ भेषजैर्विषमान्धातून्कान्स-मीकुरुतेभिषक् । कावाचिकित्साभगवन् किमर्थंवाप्रयुज्यते॥२८॥

इस प्रकार कहेहुए आचार्यके वचनको सुन अग्निवेश कहनेलगे कि हे भगवन्! उन रसादिक देहधारी धातुओंके स्वभावका उपशम होने पर चिकित्सामें नियुक्त वैद्यका क्या कार्य है । और किन २ विषम धातुओंको वैद्य औषधिद्वारा साम्य करताहै । और वह चिकित्सा क्या है । तथा किस कार्यके लिये उस चिकित्साका प्रयोग कियाजाताहै ॥ २७ ॥ २८ ॥

पुनर्वसुका उत्तर ।

तच्छिष्यवचनंश्रुत्वाव्याजहारपुनर्वसुः । श्रूयतामत्रयासौम्य युक्तिर्दृष्टामहर्षिभिः ॥ २९ ॥ ननाशकारणाभावाद्भावानां नाशकारणम् ।ज्ञायतेनित्यगस्येवकालस्यात्ययकारणम्॥३०॥ शीघ्रगत्वाद्यथाभूतस्तथाभावोविपद्यते।निरोधकारणंतस्यना- स्तिनैवान्यथाक्रिया ॥ ३१ ॥

ऐसा शिष्यका कहाहुआ वचन सुनकर पुनर्वसुजी कहनेलगे कि हे सौम्य ! इस विषयमें महर्षियोंने जिस युक्तिका कथन कियाहै वह सुन जैसे नित्य कालके नाशका कारण नहीं प्रतीत होता अथवा यों कहिये कि जैसे भूतकालका शीघ्रगामी होनेसे भी नाशका कारण प्रतीत नहीं होता ऐसे ही नाशके कारणके अभावसे भावोंका नाश नहीं जाना जाता अर्थात् अभावको जो नाशका कारण मानते हैं वह नहीं हो सकता क्योंकि भूत अवस्थासे जब द्रव्य विकृत हुआ तब वर्तमान अवस्थामें भी वही भूत अवस्था आई और भूत अवस्थाको ही सब लोग नाश कहते हैं दर असलमें वह नाशको प्राप्त नहीं हुआ इसलिये चिकित्साका करना भी अन्यथा नहीं है ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥

याभिःक्रियाभिर्जायन्तेशरीरेधातवःसमाः।साचिकित्साविका- राणांकर्मतद्भिषजांस्मृतम् ॥ ३२ ॥ कथंशरीरेधातूनांवैषम्यंन भवेदिति ।समानांचानुबन्धःस्यादित्यर्थंकुरुतेक्रियाः॥ ३३ ॥

जिस क्रियाके करनेसे शरीरकी धातुएं साम्यावस्थामें प्राप्त होजायँ उस क्रियाको विकारोंकी चिकित्सा कहते हैं । और चिकित्सा करनेमें जो कर्म होता है वह वैद्यों- का कर्म है ॥ ३२ ॥ जिस प्रकार करनेसे शरीरकी धातुएं विषम न होने पावें और जो विषम हों वह साम्यावस्थामें आजाएँ तथा धातुओंकी समता बनी रहे, इस कार्यके लिये चिकित्साका प्रयोग किया जाता है ॥ ३३ ॥

त्यागाद्विषमहेतूनांसमानाञ्चोपसेवनात् । विषमानानुबध्नन्ति जायन्तेधातवःसमाः ॥ ३४ ॥

धातुओंको विषम करनेवाले जो हेतु हैं उनको त्यागनेसे और साम्यावस्थामें रखनेवाले हेतुओंके सेवनसे धातुओंमें विषमता नहीं आती और समता प्राप्त रहती है ॥ ३४ ॥

समैस्तुहेतुभिर्यस्माद्धातून्सञ्जनयेत्समान् । चिकित्साप्राभृतस्तस्माद्दातादेहसुखायुषाम्॥३५॥धर्मस्यार्थस्यकामस्यात्रिलोकस्याभयस्यचादातासम्पद्यतेवैद्योदानाद्देहसुखायुषाम्॥ ३६

सम हेतुओंसें जिसलिये धातुओंमें समता प्राप्त करताहै इसीलिये चिकित्सासंपन्न वैद्य ही आयु और सुखका दाता मानना चाहिये । धर्म, अर्थ, काम, और त्रिलोकीके सुखका कारण आरोग्यताको प्राप्त करनेवाला होनेसे वैद्यही देहसुख और आयुका दाता कहाजासकता है ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

अध्यायका संक्षिप्त वर्णन ।

तत्रश्लोकाः ॥

चिकित्साप्राभृतगुणोदोषोयश्चेतराश्रयः। योगायोगातियोगानांलक्षणंशुद्धिसंश्रयम्॥ ३७ ॥ बहुदोषस्यलिङ्गानिसंशोधनगुणाश्चये । चिकित्सासूत्रमात्रञ्चासिद्धिव्यापत्तिसंश्रयम्॥३८॥ याचयुक्तिश्चिकित्सायांयेचार्थंकुरुतेभिषक् ॥चिकित्साप्राभृतेऽध्यायेतत्सर्वमवदन्मनिः ॥ ३९ ॥

इति अग्निवेशकृतेतन्त्रेचरकप्रतिसंस्कृतेकल्पनाचतुष्कोचिकित्साप्राभृतीयोनामषोडशोऽध्यायःसमाप्तः ॥ १६ ॥

अध्यायपूर्तिमें यह श्लोक हैं कि इस चिकित्साप्राभृत अध्यायमें चिकित्साप्राभृत वैद्यके गुण और मूर्ख वैद्यके दोषसंशोधन, विषके योग, अयोग, अतियोग, इनके लक्षण, बहुत दोषके चिह्न, और संशोधनके गुण, सिद्धि और व्यापत्तिके आश्रयीभूत चिकित्साका सूत्रमात्र, चिकित्साके सम्बन्धमें युक्ति, जिसकार्यके लिये वैद्य चिकित्सा करताहै यह सर्व मुनिजीने वर्णन कियाहै ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

इति श्रीमहर्षिचरक० पं० रामप्रसाद० प्रसादन्याख्यभाषाटीकायां चिकित्साप्राभृतीयो नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सप्तदशोऽध्यायः ।
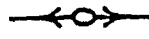
अथातःकियन्तःशिरसीयमध्यायंव्याख्यास्याम इतिहस्माह भगवानात्रेयः ।

अब हम कियंतःशिरसीय अध्यायका कथन करतेहैं । ऐसा आत्रेय भगवान् कहनेलगे ।

रोगोंपर अग्निवेशका प्रश्न ।

कियन्तःशिरसिप्रोक्तारोगाहृदिचदेहिनाम् ॥ १॥ कतिचाप्यनिलादीनांरोगामानविकल्पजाः । क्षयाःकतिसमाख्याताः पिडकाःकतिचानघ ॥ २ ॥ गतिःकतिविधाचोक्तादोषाणांदोषसूदन । हुताशवेशस्यवचस्तच्छ्रुत्वागुरुरब्रवीत् ॥ ३ ॥

अग्निवेश पूछनेलगे हे अनघ ! मनुष्योंके शिरमें कितने रोग होतेहैं, हृदयमें कितने रोग होतेहैं तथा वात, पित्त, कफ के भेदसे और इनके विकल्प तथा अंशादिभेदोंसे रोग कितने प्रकारके होतेहैं, क्षय कितने प्रकारके होतेहैं, पिडिका कितने प्रकारकी हैं । हे दोषोंके दूरकरनेवाले गुरो ! दोषोंकी गति कितने प्रकारकी है । अग्निवेशके इस वचनको सुनकर गुरु कहनेलगे ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥

गुरुका उत्तर ।

पृष्टवानसियत्सौम्य तन्मेशृणुसुविस्तरम् । दृष्टाःपञ्चशिरोरोगाःपञ्चैवहृदयामयाः ॥४॥ व्याधीनांद्व्यधिकाषष्टिर्दोषमानविकल्पजा । दशाष्टौचक्षयाःसप्तपिडकामधुमेहिकाः ॥५॥ दोषाणांत्रिविधाचोक्तागतिर्विस्तरतःशृणु ॥ ६ ॥

हे सौम्य ! जो तुमने मुझसे पूछाहै उसको विस्तारपूर्वक श्रवण करो । शिरमें होनेवाले रोग पांच प्रकारके देखनेमें आतेहैं । हृदयके रोग भी पांच प्रकारके ही होतेहैं । वातादि दोषोंकी अंशादिभेदकल्पनासे ६२बासठ प्रकारके रोग होतेहैं ।क्षय १८ प्रकारके होतेहैं । मधुमेहसे सात प्रकारकी पिडका होतीहैं । दोषोंकी गति तीन प्रकारकी है । इन सबको अब विस्तारसे सुनो ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥

शिरोरोगोंके कारण ।

सन्धारणाद्दिवास्वप्नाद्रात्रौजागरणान्मदात् । उच्चैर्भाष्यादव-श्यायात्प्राग्वातादतिमैथुनात् । गन्धादसात्म्यादाघ्राताद्रजो-धूमहिमातपात् ॥ ७ ॥ गुर्वम्लहरितादानादतिशीताम्बुसेव-नात् । शिरोऽभितापाद्दुष्टामाद्रोदनाद्बाष्पनिग्रहात् ॥ ८ ॥ मेघागमान्मनस्तापाद्देशकालविपर्ययात् । वातादयःप्रकुप्य-न्तिशिरस्यस्त्रंप्रदुष्यति ॥९॥ ततःशिरसिजायन्तेरोगाविविध-लक्षणाः ॥ १० ॥

मलमूत्रका वेग रोकनेसे, दिनमें सोनेसे, रात्रिमें जागनेसे, मदसे, बहुत ऊंचे भाषणसे, सरदीसे, पूर्वकी पवनसे, अतिमैथुनसे, असात्म्य गंध लेनेसे, रज, धूम, वायु, धूप इनके सेवनसे, गुरु, अम्ल. शाक, सब्जी आदिके खानेसे अत्यंत शीतल जल पीनेसे, शिरमें चोट आदि लगनेसे, आमके दोषसे, रोनेसे, आंसुओंके रुकनेसे अथवा भाफके निग्रहसे, बादलोंके होनेसे, मनके संतापसे, देश और कालकी विकृतिसे ऐसे २ कारणोंसे वातादि दोष कुपित होकर शिरके रक्तको दूषित करदेतेहैं तब शिरमें अनेक प्रकारके लक्षणोंवाले रोग उत्पन्न होतेहैं ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥

शिरका लक्षण ।

प्राणाःप्राणभृतांयत्राश्रिताःसर्वेन्द्रियाणिच ।
यदुत्तमाङ्गमङ्गानांशिरस्तदभिधीयते ॥ ११ ॥

जिस जगह प्राणधारियोंके प्राण हैं और सब इंद्रियें आश्रित हैं तथा जो सब अंगोंमें उत्तम अंग है उसको "शिर" कहतेहैं ॥ ११ ॥

वातादिजन्य शिरोरोग ।

अर्द्धावभेदकोवास्यात्सर्वंवारुज्यतेशिरः । प्रतिश्यामुखनासा-क्षिकर्णरोगाःशिरोभ्रमाः। अर्दितंशिरसःकम्पोगलमन्याहनु-ग्रहः ॥ १२ ॥ विविधाश्चापरेरोगावातादिक्रिमिसम्भवाः । पृथग्दृष्टास्तुयेपञ्चसंग्रहेपरमर्षिणा । शिरोगदांस्तान्शृणुमे यथास्वैर्हेतुलक्षणैः ॥ १३ ॥

आधे शिरमें पीडा होना वा संपूर्ण शिरमें पीडा होना, प्रतिश्याय, मुखरोग, नासारोग, अक्षिरोग, कर्णरोग, शिरका भ्रमणा, लकवा, शिरःकंप, गलेका अकडजाना, मन्यास्तंभ, हनुस्तंभ तथा अन्य भी अनेक प्रकारके रोग वातादिभेदसे और कृमिजन्य रोग शिरमें होतेहैं। इनसे अलग जो पांच प्रकारके रोग महर्षियोंने संग्रहमें कहेहैं उन शिरके रोगोंको, जिन २ अपने कारणोंसे वह होतेहैं और उनके लक्षणोंको सुनो ॥ १२ ॥ १३ ॥

वातज रोगोंके कारण ।

उच्चैर्भाष्यातिभाष्याभ्यांतीक्ष्णपानात्प्रजागरात् । शीतमारुतसंस्पर्शाद्व्यवायाद्वेगनिग्रहात् । उपवासाच्चाभिघाताद्विरेकाद्वमनादपि ॥ १४ ॥ वाष्पशोकपरित्रासाद्भारमार्गातिकर्षणात् । शिरोगतःशिरावृद्धोवायुराविश्यकुप्यति ॥१५॥ ततःशूलंमहत्तस्यवातात्समुपजायते । निस्तुद्येतेभृशंशंखौघाटासम्भिद्यतेतथा ॥ १६ ॥ भ्रुवोर्मध्यंललाटंचतपतीवातिवेदनम् । वाध्येतेस्वनतःश्रोत्रेनिष्कृष्येतइवाक्षिणी ॥ १७ ॥ घूर्णतीव शिरःसर्वंसन्धिभ्यइवमुच्यते । स्फुरत्यतिशिराजालंतुद्यतेच शिरोधरा ॥ १८ ॥

बहुत ऊंचे और अधिक बोलनेसे, तीक्ष्ण मद्यादि पीनेसे, रात्रिमें जागनेसे, शीत पवनके लगनेसे, अति कसरतसे, मलादिवेगोंको रोकनेसे, उपवास करनेसे, अभिघातसे. विरेचन और वमनजन्य विकारसे, रोनेसे, शोकसे, भयसे, त्राससे, बोझ उठानेसे. अति मार्ग चलनेसे, अत्यंत दुःखसे, मस्तकगत वायु शिरकी नसोंमें प्रवेश कर कुपित होजाताहै तब उस वायुसे भारी शूल उत्पन्न होताहै । और दोनों कनपटियोंमें पीडा होना, गरदनमें पीडा, भावोंके मध्यमें पीडा, मस्तकका तपना और पीडायुक्त होना, कानोंमें शब्दसा होना, नेत्रोंमें खिचावट, शिरका घूमना और शिरकी संधियोंका खुलसा जाना, शिरकी नसोंका फडकना, शिरके धारण करनेवाली नसोंमें पीडा होना. यह लक्षण वातजन्य शिरोरोगमें होतेहैं ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥

स्निग्धोष्णमुपसेव्वेतशिरोरोगेऽनिलात्मके ॥ १९ ॥

वातजन्य शिरोरोगमें स्निग्ध और उष्णक्रियाका सेवन करे ॥ १९ ॥

पित्तज शिरोरोगोंके कारण ।

कट्वम्ललवणक्षारमद्यक्रोधातपानलैः । पित्तंशिरसिसन्दुष्टं शिरोरोगायकल्पते ॥२०॥ दह्यतेरुज्यतेतेनशिरःशीतेनशूयते। दह्येतेचक्षुषीतृष्णाभ्रमःस्वेदश्चजायते ॥ २१ ॥

चर्परे, खट्टे, नमकीन और खारे पदार्थोंके सेवनसे, मद्य पीनेसे, क्रोधसे, धूप और अग्निके परितापसे, मस्तकका पित्त कुपित होकर मस्तकमें पित्तकी पीडा करताहै । तब मस्तकमें दाहयुक्त तोद (पीडा) होताहै वह तोद शीतल पदार्थोंके सेवनसे शान्त होताहै । जब पित्तजन्य मस्तकपीडा होतीहै तो नेत्रोंमें दाह प्यास भ्रम, पसीना आना, यह उपद्रव होतेहैं ॥ २० ॥ २१ ॥

कफज शिरोरोगके लक्षण ।

आस्यासुखैःस्वप्नसुखैर्गुरुस्निग्धातिभोजनैः । श्लेष्माशिरसि सन्दुष्टःशिरोरोगायकल्पते ॥ २२ ॥ शिरोमन्दरुजंतेन सुप्तिस्तिमितभारिकम् । भवत्युत्पद्यतेतन्द्रातथालस्यमरोचकः ॥ २३ ॥

बहुत बैठारहनेसे, बहुत सोनेसे, भारी और चिकने पदार्थोंके अधिक सेवनसे, शिरमें रहनेवाला कफ दूषितहोकर कफजन्य मस्तक पीडा करताहै । उससे शिरमें मंद २ पीडा होना, निद्रा आईहुईसी रहना, मस्तक गीलासा प्रतीत होना और बोझल होना, तंद्रा, आलस्य, और अरुचिका होना यह लक्षण कफजन्य मस्तकपीडाके होतेहैं ॥ २२ ॥ २३ ॥

त्रिदोषज शिरोरोगके लक्षण ।

वाताच्छूलंभ्रमःकम्पःपित्ताद्दाहोमदस्तृषा । कफाद्गुरुत्वंतन्द्राचशिरोरोगेत्रिदोषजे ॥ २४ ॥

त्रिदोषसे उत्पन्नहुए शिरोरोगमें–वायुसे शूल और भ्रम, पित्तसे दाह, मद, तृषा कफसे भारीपन और तंद्रा, यह लक्षण होतेहैं ॥ २४ ॥

कृमिज शिरोरोगका लक्षण ।

तिलक्षीरगुडाजीर्णपूतिसंकीर्णभोजनात् । क्लेदोऽसृक्कफमांसानांदोषश्चास्योपजायते ॥ २५ ॥ ततःशिरसिसंक्लेदात्क्रिमयः पापकर्मणः । जनयन्तिशिरोरोगंजातबीभत्सलक्षणम् ॥ २६ ॥

व्यवच्छेदरुजाकण्डूशोफदौर्गन्ध्यदुःखितम् । क्रिमिरोगातुरं विद्यात्क्रिमीणांलक्षणेनच ॥ २७ ॥

तिल, दूध, गुड, अजीर्णकर्ता पदार्थ, दुर्गंधित और वासी विरुद्ध भोजनके सेवनसे मस्तकके रक्त, कफ और मांसमें दोषयुक्त क्लेद (गीलापन)होजाताहै । इस कुपथ्य पर चलनेवाले मनुष्यके शिरमें उस दूषित क्लेदसे कृमि उत्पन्न होजातेहैं । जो भयानक लक्षणोंवाले शिरोरोग उत्पन्न करतेहैं तब शिरमें वेधने और छेदनेकी सी पीडा, खाज, सूजन, दुर्गंधसे दुःखित होना, कृमियोंके अन्य लक्षण होना यह कृमिजन्य मस्तकपीडामें होतेहैं ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥

वातजन्य हृदयरोग ।

शोकोपवासव्यायामशुष्करूक्षाल्पभोजनैः।वायुराविश्यहृदयं जनयत्युत्तमांरुजम् ॥२८॥ वेपथुर्वेष्टनंस्तम्भःप्रमोहःशून्यता द्रवः । हृदिवातातुरेरूपंजीर्णेचात्यर्थवेदना ॥ २९ ॥

शोक, उपवास और व्यायाम, शुष्क, रूक्ष और अल्प भोजनके करनेसे वायु हृदयमें प्रवेश कर अत्यंत पीडाको पैदा करताहै। तब हृत्कंप, लपेटनेकी सी पीडा, स्तंभ, मोह, शून्यता, हौलदिली यह वातके हृदयरोगमें होतेहैं और अन्न जीर्ण होनेपर विशेषतासे पीडा होतीहै ॥ २८ ॥ २९ ॥

पित्तज हृदयरोग ।

उष्णाम्ललवणक्षारकटुकाजीर्णभोजनैः । मद्यक्रोधातपैश्चाशु हृदिपित्तंप्रकुप्यति॥ ३० ॥हृद्दाहस्तिक्ततावक्त्रेक्लमःपित्ताम्ल-कोद्गरः । तृष्णामूर्च्छाभ्रमःस्वेदःपित्तहृद्रोगलक्षणम् ॥ ३१ ॥

गरम, खट्टे, नमकीन, खारे, चरपरे और अजीर्णकर्ता पदार्थोंके खानेसे, मद्य पीनेसे, क्रोधसे, धूपके लगनेसे, हृदयमें पित्त कुपित होताहै । तब हृदयमें दाह होताहै, मुखमें कडुवापन, खट्टी, कडुई डकारोंका आना, कायली, तृषा, मूर्छा, भ्रम,दाह, यह लक्षण पित्तसे उत्पन्न हुए हृद्रोगमें होते हैं॥ ३० ॥ ३१ ॥

कफज हृद्रोगके लक्षण ।

अत्यादानंगुरुस्निग्धमचिन्तनमचेष्टनम् । निद्रासुखंचाभ्याधि-कंकफहृद्रोगलक्षणम्॥३२॥हृदयंकफहृद्रोगेसुप्तंस्तिमितभा-रिकम् । तन्द्रारुचिपरीतस्यभवत्यश्मावृतंयथा ॥ ३३ ॥

अत्यंत भोजनसे,भारी और चिकने पदार्थोंके खानेसे,वेफिकरी और आलस्यसे, अधिक सोनेसे,कफजन्य हृद्रोग उत्पन्न होताहै ।कफके हृद्रोगमें हृदय सोयाहुआसा, गीला और भारी प्रतीत होताहै । तथा तन्द्रा, अरुचि और हृदयका पत्थरोंसे दबा हुआसा प्रतीत होना यह लक्षण कफजन्य हृद्रोगमें होतेहैं ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

सान्निपातिक हृद्रोग वर्णन ।

हेतुलक्षणसंसर्गादुच्यतेसान्निपातिकः । त्रिदोषजेतुहृद्रोगेयो दुरात्मानिषेवते।तिलक्षारगुडादीनिग्रन्थिस्तस्योपजायते ॥३४॥ मर्मैकदेशेसंक्लेदंरसश्चास्योपगच्छति । संक्लेदात्क्रिमयश्चा- स्यभवन्त्युपहतात्मनः ॥३५॥मर्मैकदेशेतेजाताःसर्पन्तोभक्ष- यन्तिच । तुद्यमानंस्वहृदयंसूचीभीरिवमन्यते ॥३६॥ छिद्य- मानंयथाशस्त्रैर्जातकण्डूमहारुजम् ।हृद्रोगंक्रिमिजंत्वेतैर्लिङ्गै- र्बुद्ध्वासुदारुणम् । त्वरेतजेतुंतंविद्वान्विकारंशीघ्रकारिणम् ३७

तीनों दोषोंके हेतुओंसे त्रिदोषके लक्षणोंवाला हृद्रोग होताहै । जो अजितात्मा मनुष्य त्रिदोषके हृद्रोगमें तिल, दूध, गुड, आदि पदार्थोंको खाताहै उसके हृदयमें ग्रंथि उत्पन्न होजातीहै । तब मर्मके किसी एक स्थानमें रस संक्लेदित होजाताहै, उत्क्लेदसे कृमि होजातेहैं वह किसी एक स्थानमें पैदाहुए कृमि इधर उधर घूमते और खाते फिरतेहैं । उस समय इस मनुष्यको अपने हृदयमें सूई चुभनेकीसी पीडा प्रतीत होतीहै । और जैसे शस्त्रसे कोई काटताहो ऐसा प्रतीत होताहै ।खुजली और भारी शूल भी कृमिजन्य हृद्रोगके लक्षण हैं । ऐसे घोर लक्षणोंवाले हृद्रोगको बुद्धिमान् वैद्य त्यागदेवे (या शीघ्र उपायकरे) क्योंकि यह रोग मनुष्यको शीघ्र मार डालताहै ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

सन्निपातके १३ भेद ।

द्व्युल्वणैकोल्वणैःषट्स्युर्हीनमध्याधिकैश्चषट् । समैश्चैकोविकारास्तेसन्निपातेत्रयोदश ॥ ३८ ॥

दो दो दोषोंकी प्रबलतासे ३ एक १ दोषकी प्रबलतासे ३ मिलकर छः हुए जैसे वातपित्तोल्वण, वातकफोल्वण, कफपित्तोल्वण, वातोल्वण, पित्तोल्वण कफोल्वण यह ६ हुए ऐसे ही वात पित्त कफ इनके हीन मध्य अधिकके भेदोंसे छः हुए और एक तीनोंकी समतासे, ऐसे सब मिलकर सन्निपात १३ प्रकारके हुए॥ ३८ ॥

दोषोंकी वृद्धिसे २५ भेद ।

संसर्गेणचषट्तेभ्यएकवृद्ध्यासमैस्त्रयः ।
पृथक्त्रयश्चतैर्वृद्धैर्व्याधयःपञ्चविंशतिः ॥ ३९ ॥

एक दोषकी वृद्धिसे छः भेद और दोनोंकी समतासे तीन भेद इस प्रकार द्विदोषज व्याधि ९ प्रकारकी होती है । और अलग २ एक २ दोषके बढनेसे एकदोषज रोग तीन प्रकारके हैं । इस प्रकार दोषोंकी वृद्धि आदिके भेदसे २५ प्रकारकी व्याधियां होतीहैं ॥ ३९ ॥

दोषोंकी क्षीणतासे २५ भेद ।

यथावृद्धैस्तथाक्षीणैर्दोषैःस्युःपञ्चविंशतिः ।
वृद्धिक्षयकृतश्चान्योविकल्पउपदेक्ष्यते ॥ ४० ॥

दोषोंकी वृद्धिके अनुसार दोषोंकी क्षीणतासे भी २५ प्रकारकी व्याधियां होती हैं । ऐसे ही दोषोंकी वृद्धि और क्षीणताके विकल्पसे व्याधियें होती हैं ॥ ४० ॥

वृद्धिरेकस्यसमताचैकैकस्यचसंक्षयः ।
द्वन्द्ववृद्धिःक्षयश्चैकस्यैकावृद्धिर्द्वयोःक्षयः ॥ ४१ ॥

एक दोषकी वृद्धि, दूसरेकी समता तीसरेका क्षय इस प्रकार ६ भेद हुए । दोनोंकी वृद्धि एकका क्षय और एककी वृद्धि दोनोंका क्षय इस प्रकारसे छः भेद होसकते हैं उनको ही आगे कहते हैं ॥ ४१ ॥

दोषोंकी क्षय वृद्धिका क्रम व लक्षण ।

प्रकृतिस्थंयदापित्तंमारुतःश्लेष्मणःक्षये । स्थानादादायगात्रेषुतत्रतत्रविसर्पति ॥ ४२ ॥ तदाभेदश्चदाहश्चतत्रतत्रानवस्थिताः । गात्रदेशेभवेत्तस्यश्रमोदौर्बल्यमेवच ॥ ४३ ॥

जब कफक्षय होजाताहै तो प्रकृतिस्थ पित्तको उसके स्थानसे लेकर वायु इधर उधर शरीरके अंगोंमें भ्रमण करताहै । वह वायु इधर उधर फिरताहुआ जिस २ अंगमें घूमताहै उसी २ स्थानमें भेदनकी सी पीडा, दाह, भ्रम और दुर्बलताको करताहै ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

साम्येस्थितंकफंवायुःक्षीणेपित्तेयदाबली ।
कर्षेत्कुर्य्यात्तदाशूलंसशैत्यस्तम्भगौरवम् ॥ ४४ ॥

जब पित्त क्षीण होजाताहै तो प्रकृतिस्थ कफको बलवान् वायु जिस २ स्थानमें लेजाताहै उस २ अङ्गमें शूल, शीतता, स्तंभ, और भारीपनको करताहै ॥ ४४ ॥

यदानिलंप्रकृतिगंपित्तंकफपरिक्षये ।
संरुणद्धितदादाहःशूलंचास्योपजायते ॥ ४५ ॥

कफके क्षय होनेसे प्रकृतिस्थ वायुके सूक्ष्म मार्गोंको जब पित्त रोकदेताहै तो इस मनुष्यके शरीरमें दाह और शूल होतेहैं ॥ ४५ ॥

श्लेष्माणंहिसमंपित्तंयदावातपरिक्षये ॥
निपीडयेत्तदाकुर्यात्सतन्द्रागौरवंज्वरम् ॥ ४६ ॥

वायुके क्षय होनेपर प्रकृतिस्थ कफकी गतिको जब रोकदेताहै तब तन्द्रा, भारीपन और ज्वर इनको उत्पन्न करताहै ॥ ४६ ॥

प्रवृद्धोहियदाश्लेष्मापित्तेक्षीणेसमीरणम् ।
रुन्ध्यात्तदाप्रकुर्वीतशीतकंगौरवंज्वरम् ॥ ४७ ॥

पित्तकी क्षीणतामें प्रकृतिस्थ वायुको जब कफ रोकदेताहै तब शीत लगना गौरव और ज्वर यह होतेहैं ॥ ४७ ॥

समीरणेपरिक्षीणेकफःपित्तंसमत्वगम् । कुर्वीतसन्निरुन्धानो मृद्वग्नित्वंशिरोग्रहम् ॥४८॥ निद्रांतन्द्रांप्रलापश्चहृद्रोगंगात्र-गौरवम् । नखादीनाञ्चपीतत्वंष्ठीवनंकफपित्तयोः ॥ ४९ ॥

वायुके क्षय होनेपर यदि प्रकृतिस्थ पित्तको कफ रोकदेवे तो मंदाग्नि, शिरमें पीडा, निद्रा, तन्द्रा, बकवाद, हृद्रोग, गौरव, नख नेत्र मूत्रमें पीलापन कफ और पित्तका मुखस थूकना यह लक्षण होतेहैं ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

हीनवातस्यतुकफःपित्तेनसहितश्चरन् । करोत्यरोचकापाकोस-दनंगौरवंतथा ॥ ५० ॥ हृल्लासमास्यस्रवणंदूयनंपाण्डुतांमद-म् । विरेकस्यहिवैषम्यंवैषम्यमनलस्यच ॥ ५१ ॥

जिस मनुष्यके शरीरमें वायुकी क्षीणता हो उसके शरीरमें कफ पित्तसे मिलकर विचरती हुई अरुचि, अपाक, देहका रहजाना, गुरुता, हृल्लास, मुखस्राव, पांडु, वेदना, मद, मलकी विषमता और जठराग्निकी विषमताको करतीहै ॥ ५० ॥५१॥

क्षीणपित्तस्यतुश्लेष्मामारुतेनोपसंहितः । स्तम्भंशैत्यंचतोद-ञ्चजनयत्यनवस्थितम् ॥ ५२ ॥ गौरवंमृदुतामग्नेर्भक्ताश्रद्धां प्रवेपनम् । नखादीनाञ्चशुक्लत्वंगात्रपारुष्यमेवच ॥ ५३ ॥

पित्तके क्षय होनेपर कफ-वायुसे मिलकर विचरताहुआ स्तंभ, शीतता, तोद, गुरुता, मंदाग्नि, अन्नसे द्वेष, कंप, नखादिकोंमें श्वेतता तथा देहमें कठोरता करताहै ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

हीनेकफेमारुतस्तुपित्तंतुकुपितंद्वयम्। करोतियानिलिङ्गानिशृ-णुतानिसमासतः ॥ ५४ ॥ भ्रमसुद्वेष्टनन्तोदंदाहंस्फोटनवेप-नम् । अङ्गमर्दंपरीशोषंहृदयेधूपनंतथा ॥ ५५ ॥

कफके क्षय होनेपर वायु और पित्तोंके मिलकर जो चिह्न होते हैं उनको भी संक्षेपसें सुनो । वह यह हैं-भ्रम, उद्वेष्टन, तोद, दाह,हड्डियोंका स्फोटन,कंपन,अंगमर्द, देहका शोष, हृदयमें धूवांसा उठना ॥ ५४ ॥ ५५ ॥

वातपित्तक्षयेश्लेष्मास्त्रोतांस्यभिदधत्कृशम् ।
चेष्टाप्रणाशंमूर्च्छांश्चवाक्सङ्गश्चकरोतिहि ॥ ५६ ॥

वात ।पित्तके क्षय होनेपर कफ स्रोतोंको अच्छीतरहसे रोककर चेष्टाका नाश, मूर्छा, और वाणीका अवरोध करताहै ॥ ५६ ॥

श्लेष्मवातक्षयेपित्तंदेहौजःस्त्रंसयेद्यदा ।
ग्लानिमिन्द्रियदौर्बल्यंतृष्णांमूर्च्छांक्रियाक्षयम् ॥ ५७ ॥

वात और कफके क्षय होने पर पित्त देहके ओजको बिगाडकर ग्लानि, इंद्रियोंकी दुर्बलता, तृषा, मूर्छा और देहकी क्रियाका नाश करताहै ॥ ५७ ॥

पित्तश्लेष्मक्षयेवायुर्मर्माण्यातिनिपीडयन् ।
प्रणाशयातिसंज्ञांचवेपयत्यथवानरम् ॥ ५८ ॥

जब पित्त और कफ क्षीण होजातेहैं तो वायु मर्मस्थानोंको पीडित करता हुआ संज्ञाका नाश करताहै अथवा कंप पैदा करताहै ॥ ५८ ॥

दोषाःप्रवृद्धाःस्वंलिङ्गंदर्शयन्तियथाबलम् ।
क्षीणाजहतिलिङ्गंस्वंसमाःसङ्कर्म्मकुर्वते ॥ ५९ ॥

जब दोष बढ जातेहैं तो अपने २ लक्षणोंको दिखातेहैं । ऐसे ही क्षीण हुए दोष अपने चिह्नोंको त्यागदेतेहैं । और साम्यावस्थामें स्थितहुए दोष अपने योग्य कार्य करतेहैं ॥ ५९ ॥

वातादीनांरसादीनांमलानामोजसस्तथा ॥
क्षयस्तत्रानिलादीनामुक्तंसंक्षीणलक्षणम् ॥ ६० ॥

वातादि तीन दोष, रसादि सात धातु, मलसमूह और ओज इन सबका क्षय होताहै । इनमें वातादि तीन दोषोंके क्षयके लक्षण कहे जाचुके हैं (अब रसादिकोंके कहतेहैं) ॥ ६० ॥

रसक्षयके लक्षण ।

घट्टतेसहतेशब्दंनोच्चैर्द्रवतिदूयते । हृदयंताम्यतिस्वल्पचेष्टस्यापिरसक्षये ॥६१॥परुषास्फुटिताम्लानात्वग्रूक्षारक्तसंक्षये । मांसक्षयेविशेषेणास्फिग्ग्रीवोदरशुष्कता ॥ ६२ ॥

रसके क्षय होनेसे हडवडी,ऊंचा शब्द न सहाजाना,खडे होनेकी ताकत न रहना, हौल होना, हृदयका धक २ करना, अल्प परिश्रम करनेसे भी मनकी व्याकुलता, नेत्रोंके आगे अंधकार सा आजाना यह लक्षण होतेहैं ॥ ६१ ॥ रक्तके क्षय होनेसे त्वचा कठोर फटीसी और रूखी होजातीहै । मांसके क्षय होनेसे कमर, गर्दन और उदर यह विशेषतासे सूख जावें ॥ ६२ ॥

मेदक्षीणके लक्षण ।

सन्धीनांस्फुटनंग्लानिरक्ष्णोरायासएवच ।
लक्षणंमेदसिक्षीणेतनुत्वंचोदरत्वचः ॥ ६३ ॥

मेदके क्षय होनेसे-संधियोंका स्फोटन, ग्लानि, नेत्रोंका निकलसा पडना,थकावट, और उदर तथा त्वचाका कृश होना यह लक्षण होतेहैं ॥ ६३ ॥

अस्थिक्षयके लक्षण ।

केशलोमनखश्मश्रुद्विजप्रपतनंश्रमः ।
ज्ञेयमास्थिक्षयेरूपंसन्धिशैथिल्यमेवच ॥ ६४ ॥

अस्थियोंमें क्षीणता होनेसे केश, लोम, नख, डाढीमूछ, और दांतोंका गिरना और भ्रम तथा संधियोंमें शिथिलता यह लक्षण होतेहैं ॥ ६४ ॥

मज्जाक्षीणके लक्षण ।

शीर्य्यन्तइवचास्थीनिदुर्बलानिलघूनिच ।
प्रततंवातरोगीचक्षीणेमज्जनिदेहिनाम् ॥ ६५ ॥

मज्जाके क्षय होनेसे हाड्डियोंका गिरपडना सा प्रतीतहोना और दुर्बल तथा हलकी होजाना,और सदैव शरीरमें वातव्याधिका रहना यह लक्षण होतेहैं ॥ ६५ ॥

क्षीणशुक्रके लक्षण ।

दौर्बल्यंमुखशोषश्चपाण्डुत्वंसदनंक्लमः ।
क्लैब्यंशुक्राविसर्गश्चक्षीणशुक्रस्यलक्षणम् ॥ ६६ ॥

वीर्यके क्षय होनेसे दुर्बलता, मुखका सूखना, शरीरका पीला पडजाना, अंगोंका रहजाना, क्लम, नंपुसकता, और वीर्यका न आना यह लक्षण होतेहैं ॥ ६६ ॥

विष्ठाक्षयके लक्षण ।

क्षीणेशकृतिचान्त्राणिपीडयन्निवमारुतः ।
रूक्षस्योन्नमयन्कुक्षिंतिर्य्यगूर्द्धंश्चगच्छति ॥ ६७ ॥

मलके क्षय होनेसे वायु आतोंको पीडन करताहै ऐसा प्रतीत होताहै । और इसी कारण उस रूक्ष मनुष्यके शरीरमें वायु कूखको ऊंची तिरछी करता हुआ ऊपरको गमन करताहै ॥ ६७ ॥

मूत्रक्षीणका लक्षण ।

मूत्रक्षयेमूत्रकृच्छ्रंमूत्रवैवर्ण्यमेवच ।
पिपासाबाधतेचास्यमुखञ्चपरिशुष्यति ॥ ६८ ॥

मूत्रके क्षय होनेसे-मूत्रकृच्छ्र, मूत्रकी विवर्णता, प्यास, मुखशोष, यह लक्षण होतेहैं ॥ ६८ ॥

मलक्षीणके लक्षण ।

मलायनानिचान्यानिशून्यानिचलघूनिच ।
विशुष्काणिचलक्ष्यन्तेयथास्वंमलसंक्षये ॥ ६९ ॥

अन्यरमलमार्गोंके मलहीन होनेसे वह मार्ग शून्यतायुक्त तथा हलके और सूखेसे प्रतीत होतेहैं ॥ ६९ ॥

क्षीण ओजका लक्षण ।

बिभेतिदुर्बलोऽभीक्ष्णंध्यायतिव्यथितेन्द्रियः ।
दुच्छायोदुर्मनारूक्षःक्षामश्चैवौजसःक्षये ॥ ७० ॥

ओजके क्षय होनेसे मनुष्य भयभीत, दुर्बल, निरंतर चितायुक्त, विकलेंद्रिय, कांतिरहित, रूक्ष और कृश होजाताहै ॥ ७० ॥

ओजलक्षण ।

हृदितिष्ठतियच्छुद्धंरक्तमीषत्सपीतकम् ।
ओजःशरीरेसंख्यातंतन्नाशान्नाविनश्यति ॥ ७१ ॥

जो शुद्ध रक्त किंचित् पीतता लिये हृदयमें रहताहै शरीरमें उसको ओज कहतेहैं, उस ओजके नाश होनेसे मनुष्य भी नाशको प्राप्त होताहै ॥ ७१ ॥

क्षयके कारण।

व्यायामोऽनशनंचिन्तारूक्षाल्पप्रमिताशनम्।
वातातपौभयंशोकोरूक्षपानंप्रजागरः॥ ७२॥
कफशोणितशुक्राणांमलानांचातिवर्त्तनम्।
कासोभतोपघातश्चज्ञातव्याःक्षयहेतवः॥ ७३॥

अतिव्यायाम, भूखे रहना, चिंता, रूक्ष और थोडा भोजन करना, वायु और धूपका सहना, भय, शोक, रूक्ष वस्तुओंका सेवन, वहुत जागना कफ और रक्त तथा वीर्यका अत्यंत निकलना, या निकालना, खाँसी और भूतवाधा यह सब क्षय होनेके कारण हैं॥ ७२॥ ७३॥

मधुमेहके कारण।

गुरुस्निग्धाम्ललवणभजतामातिमात्रशः। नवमन्नंचपानंचानिद्रामास्यासुखानिच॥७४॥ त्यक्तव्यायामचिन्तानांसंशोधनमकुर्वताम्। श्लेष्मापित्तश्चमेदश्चमांसंचातिप्रवर्द्धते॥ ७५॥ तैरावृतःप्रसादंहिगृहीत्वायातिमारुतः। यदाबस्तिंतदाकृच्छ्रो मधुमेहःप्रवर्त्तते॥ ७६॥

भारी, चिकने, खट्टे, और नमकीन पदार्थोंके अधिक सेवनसे, नवीन अन्नके खानेसे, वहुत जल अथवा मद्यके पीनेसे, वहुत सोनेसे, बहुत सुखपूर्वक बैठे रहनेसे, कसरतके न करनेसे, वेफिकर रहनेसे, संशोधन कम करनेसे कफ, पित्त, मेद और मांस वहुत वढजातेहैं। फिर वायु उनसे आवृत हो ओज (सबधातुओंके परम प्रसाद लेकर जब वस्तिस्थानमें प्राप्त होताहै तब दुःसाध्य मधुमेह उत्पन्न होजाताहै॥७४॥७५॥७६॥

समारुतस्यपित्तस्यकफस्यचमुहुर्मुहुः।
दर्शयत्याकृतिंकृत्वाक्षयमाप्याय्यतेपुनः॥ ७७॥

वह मधुमेह पहले वात पित्त और कफके लक्षणोंको वारंवार दिखाताहै फिर क्षयको उत्पन्न करदेताहै॥ ७७॥

प्रमेहपिडिकाओंका वर्णन।

उपेक्षयास्यजायन्तेपिडकाःसप्तदारुणाः। मांसलेष्ववकाशेषुमर्मस्वपिचसन्धिषु॥ ७८॥ शराविकाकच्छपिकाजालिनी सर्षपीतथा। अलजीविनताख्याचविद्रधीचेतिसप्तमी॥ ७९॥

मधुमेहकी उपेक्षासे सात प्रकारकी दारुण पिडका मांसवाले स्थानोंमें, मर्मस्थानमें, संधिस्थानमें, उत्पन्न होतीहैं। उनके-शराविका, कच्छपिका, जालनी, सर्षपी, अलजी, विनता, विद्रधि, यह सात नाम हैं ॥ ७८ ॥ ७९ ॥

शराविका लक्षण ।

अन्तोन्नतामध्यनिम्नाश्यावाक्लेदरुजान्विता ।
शराविकास्यात्पिडकाशरावाकृतिसंस्थिता ॥ ८० ॥

जो पिडका ऊंचे किनारोंवाली हो मध्यमेंसे नीची हो स्राव क्लेद और पीडायुक्त हो तथा शरावके आकारकी हो उसको शराविका कहतेहैं ॥ ८० ॥

कच्छपिका लक्षण ।

अवगाढार्त्तिनिस्तोदामहावास्तुपरिग्रहा ।
श्लक्ष्णाकच्छपपृष्ठाभापिडकाकच्छपीमता ॥ ८१ ॥

जिसमें कडापन हो, भेदनकी सी पीडा होतीहो, गंभीर हो,जो अनेक स्थानोंमें व्यापक हो, जिसका ऊपरका भाग चिकना और कछुवेकी पीठके समान हो उसको कच्छपिका कहतेहैं ॥ ८१ ॥

जालनी लक्षण ।

स्तब्धाशिराजालवतीस्निग्धस्रावामहाशया ।
रुजानिस्तोदबहुलासूक्ष्मच्छिद्राचजालिनी ॥ ८२ ॥

जो पिडका चौडीसी हो, उसपर नसोंका जालसा दिखाई देताहो, उसमेंसे चिकना २ स्राव होताहो, अधिक दूर तक व्याप्त हो जिसमें अत्यंत पीडा हो, भेदनकी सी पीडा हो, छोटे २ बहुतसे छिद्र हों उसको जालनी कहतेहैं ॥ ८२ ॥

सर्षपिका लक्षण ।

पिडकानातिमहतीक्षिप्रपाकामहारुजा ।
सर्षपीसर्षपाभाभिःपिडकाभिश्चिताभवेत् ॥ ८३ ॥

जो पिडका बडी न हो, और शीघ्र पकजावे, उसमें पीडा बहुत हो, ससोंके समान हो, खुजलीयुक्त हो उसको सर्षपिका कहतेहैं ॥ ८३ ॥

अलजी लक्षण ।

दहतित्वचमुत्थानेतृष्णामोहज्वरप्रदा ।
विसर्पत्यनिशंदुःखाद्दहत्यग्निरिवालजी ॥ ८४ ॥

जो उत्पन्न होते ही त्वचामें दाहकरे प्यास, मोह और ज्वर करे, निरंतर अग्निके समान दाह करती हुई फैले उसको अलजी कहतेहैं ॥ ८४ ॥

विनता लक्षण ।

अवगाढरुजाक्लेदापृष्ठेवाप्युदरेपिवा । महतीविनतानीला पिडकाविनतामता ॥ ८५ ॥ विद्रधिंद्विविधामाहुर्बाह्यामाभ्यन्तरींतथा ॥ बाह्यात्वक्स्नायुमांसोत्थाकण्डराभामहारुजा ॥८६॥

जिस पिडकामें करडापन हो, पीडा अधिक हो, क्लेद अधिक हो, पीठ अथवा पेट पर प्रगट हुईहो, जो बडी हो, दबानेमें नरम हो, नीले रंगकी हो उसको विनता कहतेहैं ॥ ८५ ॥ विद्रधी दो प्रकारकी होतीहै एक बाहरी दूसरी भीतरी । बाह्य विद्रधि-त्वचा, स्नायु और मांसमें प्रगट होतीहै यह देखनेमें मोटी नसके समान होतीहै और इसमें पीडा अधिक होतीहै ॥ ८६ ॥

विद्रधिके लक्षण ।

शीतकान्नःविदाह्युष्णरूक्षशुष्कातिभोजनात् । विरुद्धाजीर्णसंक्लिष्टविषमासात्म्यभोजनात्। व्यापन्नबहुमद्यत्वाद्वेगसन्धारणाच्छ्रमात् ॥८७॥ जिह्मव्यायामशयनादतिभाराध्वमैथुनात्। अन्तःशरीरेमांसासृगाविशन्तियदामलाः ॥८८॥ तदासञ्जायते ग्रन्थिर्गम्भीरस्थःसुदारुणः। हृदयेक्लोम्नियकृतिप्लीह्निकुक्षौ चवृक्कयोः॥८९॥ नाभ्यांवंक्षणयोर्वापिवस्तौवातीव्रवेदनः।दुष्टरक्तातिमात्रत्वात्सवैशीघ्रंविदह्यते ॥ ९० ॥ ततःशीघ्रविदाहित्वाद्विद्रधीत्यभिधीयते ॥ ९१ ॥

शीतल अन्न, विदाही, रूक्ष,सूखे पदार्थोंके खानेसे,अत्यंत भोजन करनेसे, विरुद्ध भोजन,अजीर्णकर्ता पदार्थ, सडे बासे पदार्थ, विषम भोजन, असात्म्य भोजन,तथा दूषित भोजनके सेवनसे, अधिक मद्य पीनेसे, वेगोंको रोकनेसे, श्रमसे, शरीरको विषमतासे रखनेसे, व्यायामकी अधिकतासे, अतिसोनेसे, भार उठानेसे, अति मार्ग चलने और अति मैथुनसे दूषित मल जब शरीरके भीतर मांस और रक्तमें प्रवेश करतेहैं तो शरीरके भीतर गंभीर और दारुण ग्रंथिको पैदा करदेतेहैं । वह ग्रंथि (गांठ)-हृदय, क्लोम, यकृत्, प्लीहा, कुक्षि, दोनों वृक्क, नाभी, वंक्षण अथवा बस्तिमें तीव्र वेदनायुक्त होतीहै । वह गांठ दुष्टरुधिरकी अधिकताके कारण दाह

पूर्वक शीघ्र पाकको प्राप्त होती हैं । इसलिये वही विदाही होनेसे विद्रधि कही जातीहै ॥ ८७-९१ ॥

व्यधच्छेदभ्रमानाहशब्दस्फुरणसर्पणैः । वातिकींपैत्तिकीं तृष्णादाहमोहमदज्वरैः । जृम्भोत्क्लेशारुचिस्तम्भशीतकैः श्लैष्मिकींविदुः ॥ ९२ ॥ सर्वास्वासुमहच्छूलंविद्रधीषूपजायते ॥ तप्तैःशस्त्रैर्यथामथ्येतोल्मुकैरिवदह्यते । विद्रधीव्यम्लतांयातावृश्चिकैरिवदश्यते ॥ ९३ ॥

वेधने और छेदनेकी सी पीडा, भ्रम, अफारा, शब्द, फडकना, सरसराहट, यह लक्षण वातकी विद्रधिमें होते हैं । प्यास, दाह, मोह, मद, तथा ज्वर यह पित्तकी विद्रधिमें होतेहैं । जंभाई, उत्क्लेश (वमनको जी चाहना), अरुचि, स्तंभ, इनका होना तथा विद्रधिका शीतल होना यह कफकी विद्रधिमें होतेहैं। इन सब प्रकारकी विद्रधियोंमें अत्यंत पीडा होतीहै । जैसे तपेहुए शस्त्रसे मथाजाय अथवा अंगारसे दहन कियाजाय ऐसा प्रतीत होताहै । जब विद्रधि परिपाकको प्राप्त होतीहै तो बिच्छूके काटनेकी सी पीडा होतीहै ॥ ९२ ॥ ९३ ॥

तनुरूक्षारुणस्रावंफेनिलंवातविद्रधौ । तिलमाषकुलत्थोदसन्निभंपित्तविद्रधौ ॥ ९४ ॥ श्लैष्मिकीस्रवतिश्वेतंबहुलंपिच्छिलंबहु । लक्षणंसर्वमेवैतद्भजतेसान्निपातिकी ॥ ९५ ॥

वातकी विद्रधिमें अल्प, रूखा, लाल, झागदार स्राव होताहै । पित्तकी विद्रधिमें तिल, उडद, अथवा कुलथीके क्वाथकी समान स्राव होताहै । कफकी विद्रधिमें-श्वेत, पिच्छिल, बहुत और गाढा स्राव होताहै । सन्निपातकी विद्रधिमें तीनों दोषोंके लक्षण होतेहैं ॥ ९४ ॥ ९५ ॥

स्थानभेदसे विद्रधिलक्षण ।

अथासांविद्रधीनांसाध्यासाध्यविशेषज्ञानार्थंस्थानकृतंलिङ्गविशेषमुपदेक्ष्यामः। तत्रप्रधानमर्मजायांविद्रध्यांहृद्घट्टनतमकप्रमोहकासाः।क्लोमजायांपिपासामुखशोषगलग्रहाः । यकृज्जायां श्वासः । प्लीहजायामुच्छ्वासोपरोधः।कुक्षिजायांकुक्षिपार्श्वान्तरांसशूलम् । वृक्कजायांपार्श्वपृष्ठकटिग्रहः नाभिजायांहिक्का वंक्षणजायां सक्थिसादः।वस्तिजायांकृच्छ्रमूत्रपूतिवर्चस्त्वंचेति९६

अब हम इ विद्रधियोंके साध्यासाध्य विशेष ज्ञानके लिये स्थानभेदसे लक्षणोंको कहतेहैं। इनमें प्रधान मर्म (हृदय) में विद्रधि हो तो हृदयका घबडाना, तमकश्वास, बेहोशी, खांसी, यह उपद्रव होतेहैं। क्लोमस्थानमें विद्रधि हो तो-प्यास लगना, मुखका सूखना, गलेका रुकना, यह लक्षण होतेहैं। यकृतमें विद्रधि हो तो श्वास होताहै। प्लीहामें विद्रधि होनेसे श्वास रुक जाताहै। कुक्षिमें विद्रधि हो तो कूख, पसवाडा, और पीठका वांस तथा इनके भीतरी अंशमें पीडा होती है। वृक्क स्थानमें विद्रधि होनेसे पसवाडा, पीठ और कमरमें पीडा होतीहै। नाभिमें होनेसे हिचकी होतीहैं। वंक्षणस्थानमें होनेसे हड्डियोंमें पीडा और टांगोंका रहजाना यह लक्षण होतेहैं। वस्तिस्थानमें विद्रधि होनेसे मूत्रकृच्छ्र, और मलमूत्रका राधकीसी दुर्गन्धयुक्त आना यह लक्षण होतेहैं॥ ९६॥

पक्कामभिन्नासुऊर्द्धजासुमुखात्स्रावःस्रवति।
अधोजासुगुदात्,उभयतस्तुनाभिजायाम्॥ ९७॥

नाभिसे ऊपरके स्थानोंमें हुई अन्तर्विद्रधि जब पककर फूटतीहै तो मुखद्वारा स्राव निकलताहै। नाभिसे नीचेके भागोंमें अन्तर्विद्रधि पककर फूटे तो गुदाद्वारा स्राव होताहै। नाभिमें हुई अंतर्विद्रधि फूटे तो मुख और गुदा दोनों द्वारा स्राव होताहै॥ ९७॥

तासांहृन्नाभिबस्तिजाः परिपक्काः सान्निपातिकीचमरणाय।
अवशिष्टाःपुनः कुशलमाशुप्रतिकारिणंचिकित्सकमासाद्योपशाम्यन्ति। तस्मादचिरोत्थितांविद्रधींशस्त्रसर्पविद्युदग्नितुल्यां
स्नेहस्वेदविरेचनैश्चोपक्रामेत्। सर्वशोगुल्मवच्चेति॥ ९८॥

इन सब स्थानोंकी विद्रधियोंमें हृदय, नाभि, और वस्तिस्थानकी विद्रधि तथा सन्निपातकी विद्रधि मनुष्यकी मृत्युको करनेवाली होती है और अन्य विद्रधियां शीघ्र यत्न करनेवाले कुशल वैद्यसे शीघ्र यत्न करानेसे शांत होसकतीहैं। इसलिये शस्त्र, साँप, विद्युत, अग्निके, समान, प्राण हरनेवाली विद्रधिका, विद्रधि होते ही स्नेहन, स्वेदन, विरेचन द्वारा शीघ्र यत्न करे। संपूर्ण अंतर्विद्रधियोंमें गुल्मरोगकी समान चिकित्सा करे॥ ९८॥

प्रमेहके विना भी इन पीडिकाओंकी उत्पत्ति।

भवंतिचात्र। विनाप्रमेहमप्येताजायन्तेदुष्टमेदसः।
तावच्चैतानलक्ष्यन्तेयावद्वस्तुपरिग्रहः॥ ९९॥

और यहां यह भी कहा जाताहै कि प्रमेहके विना भी मेदके दूषित होनेसे यह विद्रधियें उत्पन्न होजाती हैं। जब तक यह विद्रधियां जड नहीं बांधलेतीं अर्थात् अपना नमाव नहीं करलेतीं तब तक पहिचानी नहीं जासकतीं ॥ ९९ ॥

शराविकाकच्छपिकाजालिनीचेतिदुःसहाः ।
जायन्तेताह्यतिवलाःप्रभूतश्लेष्ममेदसाम् ॥ १०० ॥

शराविका, कच्छपिका और जालनी, यह तीन प्रकारकी पिडका अतिदुःसह होतीहैं और कफप्रकृति तथा मेदस्वी शरीरमें यह पिडका अतिवलपूर्वक होतीहैं १००

सर्षपीचालजीचैवविनताविद्रधीचयाः ।
सद्यःपित्तोल्वणास्ताहिसम्भवन्त्यल्पमेदसाम् ॥ १०१ ॥

सर्षपी, अलजी, और विनता, तथा बाह्य विद्रधि यह पिडका पित्तप्रधान होती हैं और साध्य हैं, तथा अल्पमेदवाले शरीरमें होतीहैं ॥ १०१ ॥

इनकी साध्यासाध्यता ।

मर्मस्वंसेगुदेपाल्योःस्तनेसन्धिषुपादयोः । जायन्तेयस्यपि-
डकाःसप्रमेहीनजीवति॥१०२॥तथान्याःपिडकाःसन्तिरक्तपी-
तासितारुणाः ।पाण्डुराःपाण्डुवर्णाश्चभस्माभामेचकप्रभाः १०३॥
मृद्व्यश्चकठिनाश्चान्याःस्थूलाःसूक्ष्मास्तथापराः ।
मन्दवेगामहावेगाःस्वल्पशूलामहारुजाः ॥ १०४ ॥

जिस प्रमेहपीडित मनुष्यके मर्मस्थान, कंधा, गुदा, पाली, स्तन, संधि और पैरोंमें पिडका होजावे उसकी अवश्य मृत्यु होती है ॥ १०२ ॥ इनके सिवाय अन्य पिडका (फोडे) भी अनेक प्रकारकी होतीहैं । वह पिडका-पीली, लाल, सफेद, किंचित् लाल, भूरी, पाण्डुरङ्गकी, भस्मके रङ्गकी, मेचकके रंगकी, कोई नरम, कोई कठोर, कोई छोटी, कोई वडी, कोई मंदवेगवाली, कोई शीघ्र वेगवाली, कोई अल्प पीडावाली, कोई महापीडावाली होती हैं ॥ १०३ ॥ १०४ ॥

तावुद्ध्वामारुतादीनांयथास्वैहेतुलक्षणैः ॥
ब्रूयादुपाचरेच्चाशुप्रागुपद्रवदर्शनात् ॥ १०५ ॥

उन पिडकाओंको वातादिकोंके हेतु लक्षणोंद्वारा जानकर वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज, जो हो सो कहे । और उत्पन्न होते ही उपद्रव वढनेसे पहले यत्न करे ॥ १०५ ॥

पिडिकाओंके उपद्रव ।

तृट्श्वासमांससंकोथमोहहिक्कामदज्वराः ।
वीसर्पमन्दसंरोधाःपिडकानामुपद्रवाः ॥ १०६ ॥

प्यास, श्वास, मांसका पचना, मोह, हिचकी, मद, ज्वर, विसर्प, हृदयका रुकासा होना, यह पिडकाओंके उपद्रव होते हैं ॥ १०६ ॥

दोषोंकी त्रिविध गति ।

क्षयःस्थानंचवृद्धिश्च दोषाणांत्रिविधागतिः । ऊर्ध्वंचाधश्चति-र्यक्चविज्ञेयात्रिविधापरा ॥ १०७ ॥ त्रिविधाचापराकोष्ठशा-खाममर्मास्थिसन्धिषु । इत्युक्ताविधिभेदेनदोषाणांत्रिविधा गतिः ॥ १०८ ॥

क्षीण होजाना, साम्यावस्थामें रहना, और बढजाना, दोषों (वातपित्तकफ) की यह तीन प्रकारकी गति होतीहैं । ऐसे ही ऊर्ध्वगमन, अधोगमन, तिर्यक् गमन, एक यह गति हैं । इनसे सिवाय कोष्ठगति, शाखा (रक्तादि) गति, और मर्म, अस्थि, संधिमें गति, यह अन्य तीन प्रकारकी गति हैं । इस प्रकार वातादि दोषोंकी विधिभेदसे तीन प्रकारकी तीन गतियां हैं ॥ १०७ ॥ १०८ ॥

दोषोंका चयकोपोपशम ।

चयप्रकोपप्रशमाःपित्तादीनांयथाक्रमम् ।
भवन्त्येकैकशःषट्सुकालेष्वभ्रागमादिषु ॥ १०९ ॥

वर्षा आदि छः ऋतुओंमें क्रमपूर्वक पित्त, कफ और वात इनमें एक २ के संचय प्रकोप और उपशम होते हैं । अर्थात् वर्षामें पित्तका संचय, शरदमें कोप, हेमंतमें शमन, शिशिरमें कफका संचय, वसन्तमें कोप, ग्रीष्ममें शांति, एवं ग्रीष्ममें वायुका संचय, वर्षामें कोप, और शरदमें उपशम होता है ॥ १०९ ॥

गतिःकालकृताचैषाचयाद्यापुनरुच्यते ।
गतिश्चद्विविधादृष्टाप्राकृतावैकृताचया ॥ ११० ॥

यह चय आदि गति अर्थात् दोषोंका संचय, प्रकोप, उपशम यह त्रिविध गति कालकृत कही जातीहै । यह कालकृत गति भी प्राकृत और वैकृत भेदसे दो प्रकारकी है ॥ ११० ॥

पित्ताद्धयूष्मोष्मणःपक्तिर्नराणामुपजायते ।
तच्चपित्तंप्रकुपितंविकारान्कुरुतेबहून् ॥ १११ ॥

प्राकृत अर्थात् प्रकृतिस्थ पित्तकी गर्मीसे मनुष्योंके अन्नका यथोचित परिपाक होता है, और विकारको प्राप्तहुआ पित्त अनेक रोगोंको उत्पन्न करताहै ॥ १११ ॥

प्राकृतस्तुबलंश्लेष्माविकृतोमलउच्यते ।
सचैवौजःस्मृतःकायेसचपाप्मोपदिश्यते ॥ ११२ ॥

प्रकृतिस्थ अर्थात् ठीक स्वभावमें स्थित हुआ कफ शरीरमें बल और ओज कहा जाताहै । और वही कफ विकृत होनेसे मल (दोष) और पाप कहाजाताहै ११२॥

सर्वाहिचेष्टावातेनसप्राणःप्राणिनांस्मृतः ।
तेनैवरोगाजायन्तेतेनचैवोपरुध्यते ॥ ११३ ॥

प्रकृतिस्थ वायुसे ही शरीरियोंके शरीरकी सब प्रकारकी चेष्टा होतीहैं और यह वायु ही प्राणियोंका प्राण कहाजाताहै । यदि यह वायु विकृत होजाय तो इसीसे अनेक रोग उत्पन्न होते हैं और यही प्राणोंका अवरोध करताहै ॥ ११३ ॥

नित्यंसन्निहितामित्रसमीक्ष्यात्मानमात्मवान् ।
नित्यंयुक्तःपरिचरेद्दिच्छिन्नायुरभित्वरम् ॥ ११४ ॥

क्योंकि रोगरूपी शत्रु सदैव मनुष्योंके निकट रहतेहैं इसलिये बुद्धिमान् मनुष्य उचितानुचितको देखताहुआ आयुकी रक्षामें नित्य यत्नवान् रहे ॥ ११४ ॥

अध्यायका संक्षिप्त वर्णन ।

तत्र श्लोकौ ।

शिरोरोगाःसहृद्रोगारोगामानविकल्पजाः । क्षयाःसपिडका-
श्चोक्तादोषाणांगतिरेवच ॥११५॥ कियन्तःशिरसीयेऽस्मिन्न-
ध्यायेतत्त्वदर्शिना। ज्ञानार्थंभिषजाञ्चैवप्रजानाञ्चहितैषिणा॥११६॥

इति रोगचतुष्के कियन्तःशिरसीयोनाम सप्त-
दशोऽध्यायः समाप्तः ।

यहां अध्यायकी समाप्तिमें श्लोकहैं कि इस 'कियन्तःशिरसीय' अध्यायमें–शिरोरोग, हृद्रोग, रोगोंका मानभेद, क्षयोंके प्रकार, पिडकाओंके भेद, दोषोंकी गति, यह सब वैद्यलोगोंके ज्ञानके लिये और प्रजाके हितके लिये भगवान् आत्रेयजीने वर्णन किया ॥ ११५ ॥ ११६ ॥

इति श्रीचरकसंहिता० पं०रामप्रसाद०भाषाटीकायां कियन्तःशिरसीयो नाम
सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अष्टादशोऽध्यायः ।

अथातस्त्रिशोफीयमध्यायंव्याख्यास्यामइतिहस्माहभगवानात्रेयः।

अब हम त्रिशोफीय अध्यायकी व्याख्या करतेहैं ऐसा भगवान् आत्रेयजी कहनेलगे।

सूजनोंके भेद तथा वातादिजन्य लक्षण ।

त्रयःशोथाभवन्ति । वातपित्तश्लेष्मनिमित्ताः ।

तेपुनर्द्विविधाः निजागन्तुभेदेन ।

शोथ (सूजन) तीन प्रकारका होताहै । एक वातका, दूसरा पित्तका, तीसरा कफका । वह भी फिर दो प्रकारका होताहै एक निज, दूसरा आगंतुक।

आगंतुज शोथके हेतु लक्षण ।

तत्रागन्तवः। छेदनभेदनक्षणनभञ्जनापिच्छनोत्पेषणप्रहारवध-बन्धनवेष्टनव्यधनपीडनादिभिर्वा। भल्लातकपुष्पफलरसात्म-गुप्ताशूकक्रिमिशूकाहितपत्रलतागुल्मसंस्पर्शनैर्वास्वेदनपरिस-र्पणावमूत्रणैर्वाविषिणाम् । सविषाविषप्राणिदंष्ट्रादन्तविषाण-नखनिपातैर्वा । सगरविषवातहिमदहनसंस्पर्शनैर्वाशोथाः समुपजायन्ते। तेयथास्वंहेतुजैर्व्यञ्जनैरादावुपलभ्यन्ते । नि-जव्यञ्जनैकदेशविपरीतैः व्रणबन्धमन्त्रागदप्रलेपप्रवातनिर्वा-पणादिभिश्चोपक्रमैरुपक्रम्यमाणाःप्रशान्तिमापद्यन्ते ॥ १ ॥

उनमें आगंतुक शोथ-छेदन, भेदन, क्षणन (घसीट लगना), भंजन, पिच्छन (दबना), उत्पेषण, प्रहार, वध, बंधन, वेष्टन, व्यधन और पीडन आदिसे उत्पन्न होताहै । अथवा भिलावेके फूल, फल, रस, कौंचकी फली, शूकविशेष, कृमियोंसे वा अन्य विषैले पत्र, लता, गुल्म आदिके स्पर्श, स्वेद, परिसर्पण, वामूत्र आदिसे अथवा विषवाले वा विना विषवाले प्राणियोंके दांत, सींग, नख, आदि लगनेसे अथवा गर, विष, पवन, हिम और अग्निके लगनेसे जो शोथ (सूजन) होताहै उसको आगंतुक शोथ कहतेहैं । वह आगंतुक शोथ अपने कारण और लक्षणोंसे प्रथम ही जाना जासकता है, क्योंकि यह शोथ निज कारणोंसे विपरीत अर्थात् बाहरी कारणोंसे प्रगट होताहै । व्रणबंधन, मंत्र, अगद, प्रलेप, सेक और निर्वापण आदि चिकित्सा द्वारा आगंतुज शोथ शांत होजाताहै ॥ १ ॥

निजशोथ लक्षण ।

निजास्तुपुनः स्नेहस्वेदनवमनविरेचनास्थापनानुवासनशिरोविरेचनानामयथावत्प्रयोगान्मिथ्यासंसर्जनाद्वा । छर्द्यलसकविसूचिकाश्वासकासातीसारशोषपाण्डुरोगज्वरोदरप्रदरभगन्दरार्शोविकारातिकर्षणैर्वा । कुष्ठकण्डूपिडकादिभिर्वाछर्दिक्षवथूद्गारशुक्रवातमूत्रपुरीषवेगधारणैर्वा चर्मरोगोपवासकर्षितस्यवा। सहसातिगुर्वम्ललवणापिष्टान्नफलशाकरागदधिहरीतकमद्यमन्दकविरूढयावशूकशमीधान्यानूपौदकपिशितोपयोगान्मृत्पंकलोष्ट्रभक्षणाल्लवणातिभक्षणाद्वागर्भसम्पीडनादामगर्भप्रपतनात्प्रजातानाञ्चमिथ्योपचारादुदीर्णदोषत्वाच्छोथाःप्रादुर्भवन्ति । इत्युक्तःसामान्यो हेतुः ॥ २ ॥

निज शोथ, वमन, विरेचन,आस्थापन,अनुवासन और शिरोविरेचनके अनुचित प्रयोगसे अथवा इनमें कुपथ्यादि होनेसे उत्पन्न होताहै । ऐसे ही: वमन, अलसक, विसूचिका, श्वास, खांसी, अतिसार, शोष, पांडु, उदररोग, प्रदर, भंगंदर, अर्श, इनके कारणसे क्षीणहुए पुरुषोंके भी शोथ उत्पन्न होजाताहै। एवं कुष्ठ,खाज, पिडका आदिसे अथवा वमन, छींक, डकार, शुक्र,अधोवात,मल और मूत्रके वेगके धारणसे और चर्मरोग तथा उपवाससे कृश हुए मनुष्यके भी शोथ उत्पन्न होजाताहै । और एकाएकी बहुत भारी, खट्टे, नमकीन, पिष्टपदार्थ, फल, शाक, राग, दही, हरित, मद्य, मंदक, अंकुर आयेहुए धान्य,शूकधान्य, शमीधान्य, अनूपसंचारी और जलचारी जीवोंके बहुत मांस खानेसे । मट्टी, कीच और रोडके खानेसे। अधिक नमक खानेसे। गर्भके पीडन या पात होनेसे अथवा प्रसूतकालमें मिथ्या उपचार होनेसे । और उखडे हुए दोषोंको रोक लेनेसे शोथ उत्पन्न होताहै । यह शोथके सामान्य कारण कहेगयेहैं ॥ २ ॥

वातजशोथ ।

अयंत्वत्रविशेषः । शीतरूक्षलघुविषदश्रमोपवासातिकर्षणक्षेपणादिभिर्वायुःप्रकुपितःत्वङ्मांसशोणितादीन्यभिभूयशोथञ्जनयति । सक्षिप्रोत्थापनप्रशमोभवति । श्यावारुणवर्णःप्रकृतिवर्णोवाचलःस्पन्दनःखरपरुषभिन्नत्वग्लोमाच्छिद्यतइव

भिद्यतइवपीड्यतइवसूचीभिरिवतुद्यतेपिपीलिकाभिरिवसंसृ-
प्यतेसर्षपकल्कालिप्तइवचिमिचिमायतेसंकुच्यतेआयम्यतेइ-
तिवातशोथः ॥ ३ ॥

शोथके विशेष कारण यह हैं कि शीतल, रूक्ष, हलके, और विशद पदार्थके अधिक सेवनसे,परिश्रम और उपवासके कारण कृश होनेसे और आक्षेपण आदिसे वायु कुपित होकर त्वचा, मांस, रक्तादिकमें प्राप्त हो शोथको उत्पन्न करदेताहै। वह वातजन्य शोथ शीघ्र प्रगट और शीघ्र ही शांत होजाताहै । वह काला, लाल तथा रूक्षवर्ण होताहै,इधर उधर चलनेवाला होताहै और फडकताहै । इसमें त्वचा,लोम, कडे खरदरे तथा फटेसे होतेहैं । और छेदने, भेदने,पीडन करने तथा सुई चुभोनेके समान पीडा होतीहै । इस शोथमें कीडियोंके चलनेके समान प्रतीत होताहै और सर्षप पीसकर लेपकरनेसे जैसी चरचराहट लगतीहै यह शोथ कभी कम होजातीहै कभी फैलजातीहै । यह सब लक्षण वातके सूजनके हैं ॥ ३ ॥

पित्तजशोथ ।

उष्णतीक्ष्णकटुकक्षारलवणाम्लाकीर्णभोजनैरग्न्यातपप्रतापैश्च
पित्तंप्रकुपितंत्वङ्मांसशोणितान्याभिभूयशोथञ्जनयाति ।साक्षि-
प्रोत्थानप्रशमोभवति । कृष्णपीतनीलताम्रकावभासउष्णो
मृदुःकपिलताम्रलोमाउष्यतेदूयतेधूप्यतेऊष्मायतेस्विद्यतेक्लि-
द्यतेनचस्पर्शमुष्णंवासुष्यतेइतिपित्तशोथः ॥ ४ ॥

उष्ण, तीक्ष्ण, कटु, क्षार, नमकीन और अजीर्णकारक पदार्थोंके खानेसे,अग्नि, धूप और संतापके सहनेसे पित्त कुपित होकर त्वचा,मांस,रक्त आदिको बिगाडकर सूजन प्रगट करताहै । यह शीघ्र ही उत्पन्न होजाता और शांत होजाताहै। और यह काले,पीले,नीले और तामेके वर्णका होताहै । तथा स्पर्शमें उष्ण और नम्र होताहै। लोम भूरे और ताम्रवर्णके प्रतीत होतेहैं । इसमें दाह और पीडा अधिक होतीहै, धूआंसा उठताहै अग्निके समान गर्म मालूम हो, पसीना आवे, क्लेद निकले।गरम वस्तु छू ही न जाय । यह पित्तशोथके लक्षण हैं ॥ ४ ॥

कफजशोथ ।

गुरुमधुरशीतस्निग्धैरतिस्वप्नव्यायामादिभिश्चश्लेष्माप्रकुपितः
त्वङ्मांसशोणितादीन्यभिभूयशोथञ्जनयाति । स कृच्छ्रोत्था-

नप्रशमोभवति।पाण्डुःश्वेतावभासःस्निग्धःश्लक्ष्णःगुरुःस्थिरः स्त्यानः शुक्लाग्ररोमास्पर्शोष्णसहश्चेतिश्लेष्मशोथः ॥ ५ ॥

भारी, मीठे, शीतल, चिकने पदार्थोंके सेवनसे, अधिक सोनेसे, परिश्रम न करनेसे कफ कुपित होकर त्वचा, मांस, रुधिर आदिकोंमें प्रवेश कर शोथको उत्पन्न करताहै । वह शोथ देरमें प्रगट होताहै और देरमें ही शांत होताहै । और पांडु या सफेद वर्णका होताहै, तथा चिकना, गाढा, भारी, कठोर, गीला सा होताहै, लोमोंका अग्रभाग सफेद सा होजाताहै और इस शोथ पर गरम स्पर्श प्रिय मालूम होताहै । यह कफके सूजनके लक्षण हैं ॥ ५ ॥

द्विदोषजादिभेद ।

यथास्वकारणाकृतिसंसर्गाद्द्विदोषजास्त्रयःशोथाःभवन्ति । तथास्वकारणाकृतिसन्निपातात्सान्निपातिकएकः । एवंसप्तविधोभेदः। प्रकृतिभिस्ताभिर्भिद्यमानोद्विविधस्त्रिविधश्चतुर्विधः सप्तविधश्चशोथउपलभ्यते । पुनश्चैकएवोत्सेधसामान्यादिति॥६॥

दो दो दोषोंके कारण और लक्षणोंके सम्बन्धसे वातपित्तज,वातकफज,पित्तकफज इन भेदोंसे तीन प्रकारका सूजन होताहै। ऐसे ही तीनों दोषोंके कारण और लक्षण मिलनेसे सन्निपातका १ सूजन होताहै । इस प्रकार निज सूजनके सात भेद हुए । प्रथम स्वभावभेदसे निज और आगंतुज सूजन दो प्रकारका है । फिर वात, पित्त, कफ इन भेदोंसे तीन प्रकारका होताहै । और वातपित्तज, वातकफज, पित्तकफज, सन्निपातज इन भेदोंसे चार प्रकारका हुआ, वातादिकोंके भेदोंसे सन्निपातपर्यंत सात प्रकारका हुआ । सामान्य शोथ धर्मसे देखाजाय तो शोथ एक ही प्रकारका है ॥ ६ ॥

वातजशोथके लक्षण ।

भवतिचात्र । शूयन्तेयस्यगात्राणिस्वपन्तीवरुजान्तिच । निपीडितान्युन्नमन्तिवातशोथन्तमादिशेत् ॥ ७ ॥ यश्चाप्यरुणवर्णाभःशोथोनक्तंप्रणश्यति । स्नेहोष्णमर्दनाभ्याञ्चप्रणश्येत्सचवातिकः ॥ ८ ॥

औरभी कहाहै कि जिस सूजनके अंग सोएहुएसे प्रतीत हों और पीडा होतीहो तथा अंगुलीसे दबाने पर दबजाय और अंगुली हटानेसे फिर ऊपर उठआवे उसको वातका सूजन जानना । और जो शोथ लाल वर्णका हो, रात्रिमें कुछ शांत होजाय

तथा स्नेहन करनेसे और गरम वस्तुओंके लेप या मर्दनसे शांत होजाय वह वायुका सूजन जानना ॥ ७ ॥ ८ ॥

पित्तजशोथ लक्षण ।

यःपिपासाज्वरार्तस्यदूयतेऽथविदह्यते । स्विद्यतेक्लिद्यतेगन्धी सपित्तश्वयथुः स्मृतः ॥ ९ ॥ यःपीतनेत्रवक्त्रत्वक्पूर्वंमध्यात्प्रसूयते । तनुत्वक्चातिसारीचपित्तशोथःसउच्यते ॥ १० ॥

जिस शोथमें—प्यास, ज्वर, पीडा, दाह, हों और पसीना आताहो तथा क्लेद, दुर्गन्ध, आतेहों वह पित्तका सूजन कहाहै । और जिसमें रोगीके मुख, नेत्र, त्वचा पीले होगयेहों, पहले शरीरके मध्य भागसे उत्पन्न हो, शोथके ऊपर त्वचा पतली सी प्रतीत हो, और रोगीको दस्त आतेहों तो वह पित्तकी सूजन कही जातीहै ॥ ९ ॥ १० ॥

कफजशोथलक्षण ।

यःशीतलःसक्तगतिःकण्डूमान्पाण्डुरेवच । निपीडितोनोन्नमतिश्वयथुःस कफात्मकः ॥ ११ ॥ यस्यशस्त्रकुशच्छेदाच्छोणितेनप्रवर्त्तते । कृच्छ्रेणपिच्छान्स्रवातिसचापिकफसम्भवः ॥ १२ ॥

जो शोथ स्पर्शमें शीतल हो, स्थिर रहे, खुजलीयुक्त हो, पांडुवर्णका हो, दबानेसे न दबे वह सूजन कफात्मक होताहै । जिस सूजनमें कुशा, शस्त्र, आदिसे छेदन करनेपर भी रक्त न निकले, और कठिनतासे थोडा २ गाढा स्राव हो उस सूजनको कफसे उत्पन्नहुआ जानना ॥ ११ ॥ १२ ॥

निदानाकृतिसंसर्गाच्छ्वयथुःस्याद्द्विदोषजः ।
सर्वाकृतिःसन्निपाताच्छोथोव्यामिश्रहेतुजः ॥ १३ ॥

दो दोषोंके निदान और लक्षण मिलनेसे द्विदोषज शोथ जानना । जिसमें तीनों दोषोंके हेतु, लक्षण मिलते हों वह सन्निपातका सूजन जानना ॥ १३ ॥

यस्तुपादाभिनिर्वृत्तःशोथःसर्वाङ्गगोभवेत् ।
जन्तोःसचसुकष्टःस्यात्प्रसृतः स्त्रीमुखाच्चयः ॥ १४ ॥

जो सोज पुरुषके पावोंसे उत्पन्न होकर सब अंगोंमें व्यापक होजाय और स्त्रीके मुखसे उठकर सब अंगोंमें प्राप्त होजाय वह सूजन कष्टसाध्य होताहै ॥ १४ ॥

यश्चापिगुह्यप्रभवःस्त्रियोवापुरुषस्यवा ।
सचकष्टतमोज्ञेयोयस्यचस्युरुपद्रवाः ॥ १५ ॥

जो शोथ स्त्रीके अथवा पुरुषके गुह्यस्थानमें प्रगट हुआ हो वह कष्टसाध्य होताहै यदि उसमें अन्य उपद्रव भी हों तो बहुत ही कष्टसाध्य होजाताहै ॥ १५ ॥

छर्दिःश्वासोऽरुचिस्तृष्णाज्वरोऽतीसारएवच ।
सप्तकोऽयंसदौर्बल्यःशोथोपद्रवसंग्रहः ॥ १६ ॥

छर्दि, श्वास, अरुचि, प्यास, ज्वर, अतिसार, दुर्बलता, यह सात शोथरोगके उपद्रव होतेहैं ॥ १६ ॥

उपजिह्विकाकारण ।

यस्यश्लेष्माप्रकुपितःजिह्वामूलेऽवतिष्ठते ।
आशुसंजनयेच्छोथंजायतेऽस्योपजिह्विका ॥ १७ ॥

जिस मनुष्यके कफ कुपित होकर जीभकी जडमें स्थित होजाताहै उसके उप-जिह्विका नामका सूजन प्रगट करताहै ॥ १७ ॥

गलशुंडिका कारण ।

यस्यश्लेष्माप्रकुपितःकाकलेव्यवतिष्ठते ।
आशुसञ्जनयञ्छोथंकरोतिगलशुण्डिकाम् ॥ १८ ॥

जिसके कफ कुपित होकर काकलकी जडमें सूजन प्रगट करे उस सूजनको गल-शुंडिका कहतेहैं ॥ १८ ॥

गलगंड लक्षण ।

यस्यश्लेष्माप्रकुपितास्तिष्ठत्यन्तर्गलेस्थितः ।
आशुसञ्जनयञ्छोथंगलगण्डोऽस्यजायते ॥ १९ ॥

जिसके कफ कुपित होकर गलेकी नसोंमें प्रवेश कर बाहरको सूजन प्रगट करे उस गलेके बाहरी शोथको गलगंड कहतेहैं ॥ १९ ॥

गलग्रह लक्षण ।

यस्यश्लेष्माप्रकुपितोगलबाह्येवतिष्ठते ।
शनैःसञ्जनयञ्छोथंजायतेऽस्यगलग्रहः ॥ २० ॥

जिसके कफ कुपित हो गलेके भीतर शोथको प्रगट करे उस शोथको गलग्रह कहतेहैं ॥ २० ॥

विसर्पका कारण ॥

यस्यापित्तंप्रकुपितंसरक्तंत्वचिसर्पति ।
शोथंसरागंजनयन्विसर्पस्तस्यजायते ॥ २१ ॥

जिसके पित्त कुपित होकर रुधिरके साथ मिलकर त्वचामें विचरता हुआ लाल रंगका शोथ प्रगट करे उस शोथको विसर्प कहतेहैं ॥ २१ ॥

यस्यपित्तंप्रकुपितंत्वचिरक्तेऽवतिष्ठते ।
रागंसशोथञ्जनयन्पिडकातस्यजायते ॥ २२ ॥

जिसके पित्त कुपित होकर त्वचाके रक्तमें स्थित होकर लाल रंगकी फुनसी सी प्रगट करे उस सूजनको पिडका कहतेहैं ॥ २२ ॥

तिल झाई नीलक लक्षण ।

यस्यपित्तंप्रकुपितंशोणितं प्राप्यशुष्यति ।
तिलकापिप्लुवोव्यंगो नीलिकाचास्यजायते ॥ २३ ॥

कुपितहुआ पित्त जिसके रक्तमें प्रवेश करके सूखजाय उसके शरीरमें तिल,छाई लहसन नीलका आदि क्षुद्ररोगोंको प्रगट करताहै ॥ २३ ॥

शंखकके लक्षण ।

यस्यपित्तंप्रकुपितंशंखयोरवतिष्ठते ।
श्वयथुःशंखकोनामदारुणस्तस्यजायते ॥ २४ ॥

जिसके कुपित हुआ पित्त शंखें, (शिरकी हाड्डियों) में प्राप्त हो शोथ करें उस शोथको 'शंखक' नामक दारुणशोथ कहतेहैं ॥ २४ ॥

कर्णमूलका कारण ।

यस्यपित्तंप्रकुपितंकर्णमूलेऽवतिष्ठते ।
ज्वरान्तेदुर्जयोऽन्तायशोथस्तस्योपजायते ॥ २५ ॥

जिसके पित्त कुपित होकर कानकी जडमें शोथ प्रगटकरे तो यह कर्णमूल शोथ दुर्जय होताहै यदि यह शोथ ज्वरके अंतमें प्रकट होय तो मनुष्यका भी अंत कर-देताहै ॥ २५ ॥

प्लीहाका कारण ।

वातःप्लीहानमुद्धूयकुपितोयस्यतिष्ठति ।
शूलैःपरितुदन्पार्श्वंप्लीहातस्याभिवर्द्धते ॥ २६ ॥

जिसके वायु कुपित होकर प्लीहा (तिल्ली) में प्रवेश कर उसको ऊंची करदेवें वह प्लीहा धीरे २ पीडाके साथ बढजाती है (यह प्लीहशोथ कहाजाताहै) ॥ २६ ॥

गुल्मका कारण ॥

यस्यवायुः प्रकुपितोगुल्मस्थानेचतिष्ठति ।
शोथंसशूलञ्जनयन्गुल्मस्तस्योपजायते ॥ २७ ॥

कुपित वायु जिसके गुल्मस्थानमें प्रवेश करताहै उसके पीडाके साथ गुल्मरूपी शोथको पैदा करदेताहै ॥ २७ ॥

व्रध्नका कारण ।

यस्यवायुःप्रकुपितःशोथशूलकरश्चरन् ।
वंक्षणाद्वृषणौयातिव्रध्नंतस्योपजायते ॥ २८ ॥

जिसके वायु कुपित होकर पीडायुक्त शोथवंक्षण(जंघाके मूल)में पेडूसे अंड-कोशकी ओरको उत्पन्न करे उस शोथको व्रध्न कहतेहैं ॥ २८ ॥

उदरका लक्षण ।

यस्यवातःप्रकुपितस्त्वङ्मांसान्तरमाश्रितः ।
शोथंसञ्जनयन्कुक्षावुदरंतस्यजायते ॥ २९ ॥

कुपित वायु जिसके कुक्षिस्थानकी त्वचा और मांसमें मिल पेटको सुजा देताहै उस शोथको शोथोदर कहतेहैं ॥ २९ ॥

अनाहका कारण ।

यस्यवातःप्रकुपितःकुक्षिमाश्रित्यतिष्ठति ।
नाधोव्रजतिनाप्यूर्द्ध्वमानाहस्तस्यजायते ॥ ३० ॥

क्रुद्ध वायु जिसकी कुक्षिमें स्थित होकर न नीचे गमन करे न ऊपर जावे इस वायुके अवरोधको अफारा कहतेहैं ॥ ३० ॥

रोगाश्चोत्सेधसामान्यादधिमांसार्बुदादयः ।
विशिष्टानामरूपाभ्यांनिर्देश्याःशोथसंग्रहे ॥ ३१ ॥

अधिमांस और अर्बुदादिक नाम रूप करके शोथसे अलग होनेपर भी उठन-वाले सामान्यधर्मसे शोथोंमें ही गणना करने चाहिये ॥ ३१ ॥

रोहिणीका कारण ।

वातपित्तकफायस्ययुगपत्कुपितास्त्रयः ।
जिह्वामूलेऽवतिष्ठन्तोविदहन्तःसमुच्छ्रिताः ॥ ३२ ॥

जनयन्तिभृशंशोथंवेदनाश्चपृथग्विधाः । तंशीघ्रकारिणंरोगंरोहिणीकेतिनिर्दिशेत् ॥ ३३ ॥ त्रिरात्रपरमंतस्यजन्तोर्भवतिजीवितम् । कुशलेनत्वनुप्रासःक्षिप्रंसम्पद्यतेसुखी ॥ ३४ ॥

जिस मनुष्यके वात पित्त कफ यह तीनों ही एककालमें कुपित होकर जीभकी जडमें स्थित होजाते हैं उसकी जीभकी जडमें दाहयुक्त ऊंचा सा शोथ प्रगट कर देतेहैं इस शोथमें नाना प्रकारकी पीडा उत्पन्न होतीहै इस शीघ्रमारक रोगको रोहिणिका, कहतेहैं इसके होनेसे मनुष्य तीन दिनसे अधिक नहीं जीसकता । इस लिये यदि कुशल चिकित्सकसे शीघ्र यत्न करायाजाव तो मनुष्य वचसकताहै ॥ ३२-३४ ॥

सन्तिह्येवंविधारोगाःसाध्यादारुणसम्मताः ।
येहन्युरनुपक्रान्तामिथ्यारम्भेणवापुनः ॥ ३५ ॥

अन्य भी जो इस प्रकारके दारुण रोगहैं वह युक्तिपूर्वक शीघ्र कुशल वैद्य द्वारा चिकित्सा किये जानेसे साध्य होतेहैं । और वही रोग उचित यत्नोंके शीघ्र न होनेसे अथवा अनुचित यत्नोंके होनेसे शीघ्र मारडालतेहैं ॥ ३५ ॥

व्याधिके साध्यासाध्य भेद ।

साध्याश्चाप्यपरेसन्तिव्याधयोमृदुसम्मताःयत्नायत्नकृतंयेषु कर्मसिध्यत्यसंशयम् ॥ ३६ ॥ असाध्याश्चापरेसन्तिव्याधयो याप्यसंज्ञिताः । सुसाध्येऽपिकृतंयेषुकर्मयाप्यकरंभवेत् ॥३७॥ सन्तिचाप्यपरेरोगाःकर्मयेषुनसिध्यति । अपियत्नकृतंवैद्यैर्न तान्विद्वानुपाचरेत् ॥ ३८ ॥

बहुतसे ऐसे मृदु रोग हैं जो शीघ्र यत्न करनेसे तो साध्य हैं ही परन्तु विना चिकित्साके भी साध्य होजातेहैं ॥ ३६ ॥ और बहुतसे रोग असाध्य हैं । बहुतसे याप्य होतेहैं । जिन असाध्य और याप्य रोगोंमें योग्य चिकित्सा होनेपर भी वह रोग नाशकारक ही रहते हैं । और ऐसे २ अन्य भी बहुतसे रोग हैं जो सुयोग्य वैद्योंद्वारा चिकित्सा किये जाने पर भी साध्य नहीं होसकते विद्वान् वैद्यको उचित है जो रोग यत्नद्वारा साध्य न होसके उसकी चिकित्सा न करे ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

साध्याश्चैवाप्यसाध्यांश्चव्याधयोद्विविधाःस्मृताःमृदुदारुणभेदेनतेभवन्तिचतुर्विधाः ॥ ३९ ॥तएवापरिसंख्येयाभिद्यमाना

भवन्तिहि । निदानवेदनावर्णस्थानसंस्थाननामभिः ॥
॥ ४० ॥ व्यवस्थाकारणंतेषांयथास्थूलेषुसंग्रहः । तथाप्रकृति-
सामान्यंविकारेषूपदिश्यते ॥ ४१ ॥

व्याधियां साध्य और असाध्य भेदसे दो प्रकारकी होतीहैं । वह दोनों भी मृदु और दारुण भेदसे चार प्रकारकी होजाती हैं ॥ ३९ ॥ फिर वह व्याधियां-पीडा वर्ण, कारण, स्थान, आकृति, इन भेदोंसे अलग २ होतीहुई असंख्य होजातीहैं । उनकी व्यवस्था करनेके लिये उनमेंसे मुख्य २ व्याधियोंका संग्रह किया गया है । विकारोंका स्वभाव और तुल्यता देखकर उनको जिस दोषजन्य देखे वैसा उपदेश करना चाहिये ॥ ४० ॥ ४१ ॥

व्याधियोंके नाम रखनेका क्रम ।

विकारनामाकुशलोनजिह्रीयात्कदाचन । नहिसर्वविकाराणां
नामतोऽस्तिध्रुवागतिः ॥ ४२ ॥ सएवकुपितोदोषःसमुत्थान-
विशेषतः । स्थानान्तरगतश्चैवजनयत्यामयान्बहून् ॥ ४३ ॥
तस्माद्विकारप्रकृतीरधिष्ठानान्तराणिच । समुत्थानविशेषां-
श्चबुद्ध्वाकर्मसमाचरेत् ॥ ४४ ॥

इसीलिये यदि किसी रोगका नाम न मिलसके तो वैद्यको लज्जित नहीं होना चाहिये, क्योंकि संपूर्ण रोगोंका नाम नहीं कहा जासकता (हां उन रोगोंको प्रकृति और तुल्यतासे वातादिदोषजन्य जानकर यत्न करे) ॥ ४२ ॥ क्योंकि एक दोष ही कुपित होकर भिन्न २ कारणोंसे अलग २ स्थानोंमें जाकर अनेक रोगोंको उत्पन्न करताहै इसलिये ऐसे रोगोंकी प्रकृति और स्थानभेद तथा कारणविशेषको जानकर चिकित्साकर्म करे ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

योल्बंतांत्रिविधंज्ञात्वाकर्माण्यारभतेभिषक् ।
ज्ञानपूर्वंयथान्यायंसकर्मसुनमुह्यति ॥ ४५ ॥

जो वैद्य-साध्य, असाध्य, याप्य, इन तीन भेदोंको समझकर चिकित्सा आरंभ करताहै वह मोहको प्राप्त नहीं होता है ॥ ४५ ॥

दोषोंका नित्यत्व ।

नित्याःप्राणभृतांदेहेवातपित्तकफास्त्रयः ।
विकृताःप्रकृतिस्थावातान्बुभुत्सेतपण्डितः ॥ ४६ ॥

वात, पित्त, कफ यह तीन प्राणधारियोंके शरीरमें नित्य रहतेहैं। परन्तु यह साम्यावस्थामें हैं अथवा विकृत (विगडी) अवस्थामें हैं यह बुद्धिमान्को परीक्षा करलेना चाहिये ॥ ४६ ॥

विकाररहित शुद्धवायु दोषोंके कर्म ।

उत्साहोच्छ्वासनिःश्वासचेष्टाधातुगतिःसमा ।
समोमोक्षोगतिमतांवायोःकर्माविकारजम् ॥ ४७ ॥

शरीरमें प्रकृतिस्थ वायु रहनेसे-उत्साह, सांसका आना जाना, चेष्टा, धातुओंकी अवस्था यह समान रहती हैं और मलमूत्रादिकी गति ठीक रहती है । यह विकारको नहीं प्राप्त हुए वायुके कर्म हैं ॥ ४७ ॥

दर्शनंपक्तिरुष्माचक्षुत्तृष्णादेहमार्दवम् ।
प्रभाप्रसादोमेधाचपित्तकर्म्माविकारजम् ॥ ४८ ॥

दीखना, अन्नका परिपाक, शरीरमें गरमाई, भूख, प्यास, देहमें नरमी, कांति प्रसन्नता, मेधा, इनका उत्तम होना यह प्रकृतिस्थ अर्थात् विकाररहित पित्तका कर्म है ॥ ४८ ॥

स्नेहोवद्धः स्थिरत्वञ्चगौरवंवृषतावलम् ।
क्षमाधृतिरलोभश्चकफकर्माविकारजम् ॥ ४९ ॥

कफके प्रकृतिस्थ रहनेसे शरीरमें स्निग्धता, गठनता, दृढता, गुरुता, वृष्यता, बल, क्षमा, धृति, निर्लोभता, यह होते हैं ॥ ४९ ॥

वातपित्तकफैश्चैवन्यनेलक्षणमुच्यते ।
कर्मणांप्रकृतेर्हानिर्वृद्धिर्वापिविरोधिनाम् ॥ ५० ॥

वात, पित्त, और कफके क्षीण होनेसे ऊपर कहेहुए स्वाभाविक गुणोंकी हानि होती है और विपरीत कर्मोंकी वृद्धि होती है ॥ ५० ॥

दोषप्रकृतिवैशेष्यंनियतंवृद्धिलक्षणम् ।
दोषाणांप्रकृतिर्हानिर्वृद्धिर्वापिपरीक्ष्यतेइति ॥ ५१ ॥

दोषोंको स्वभावोंका विशेष प्रतीत होना दोष वृद्धिके लक्षण हैं, इसलिये दोषोंकी साम्यावस्था, क्षीणता, और वृद्धिकी परीक्षा करना चाहिये ॥ ५१ ॥

अध्यायका संक्षिप्तवर्णन ।

तत्रश्लोकौ ।

संख्यानिमित्तंरूपाणिशोथानांसाध्यतानच ।
तेषांतेषांविकाराणांत्रिविधंवोध्यसंग्रहम् ॥
विधिभेदविकाराणांत्रिविधं दोषसंग्रहम् ॥ ५२ ॥
प्राकृतंकर्मदोषाणांलक्षणंहानिवृद्धिषु ।
वीतमोहरजोदोषमोहमानमदस्पृहः ।
व्याख्यातवांस्त्रिशोफीयेरोगाध्यायेपुनर्वसुः ॥ ५३ ॥

इति रोगचतुष्केत्रिशोफीयोऽष्टादशोऽध्यायःसमाप्तः ॥ १८ ॥

इस त्रिशोथीय अध्यायमें शोथोंके कारण, शोथ, शोथजविकार और उनकी संख्या उनके रूप तथा साध्यासाध्यता, दोषज और आगंतुज शोथ,शोथके विकारोंके भेद, तीन प्रकारका दोषसंग्रह, प्रकृतिस्थ दोषोंके कर्म, दोषोंकी क्षीणता और वृद्धिके लक्षण, यह सब मोह, रजोदोष, लोभ, मान, मद और स्पृहारहित पुनर्वसुजीने कथन किया है ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदीयसंहितायां पटियालाराज्यान्तर्गतटकसालनिवासिवैद्य-पञ्चानन वैद्यरत्न पं० रामप्रसादवैद्योपाध्यायविरचितप्रसादन्याख्यभाषाटीकायां त्रिशोफीयो नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

एकोनविंशोऽध्यायः ।

अथातोऽष्टोदरीयमध्यायंव्याख्यास्यामइतिहस्माहभगवानात्रेयः ।

अब हम अष्टोदरीय अध्यायकी व्याख्या करेंगे ऐसा भगवान् आत्रेयजी कहनेलगे।

रोगोंकी संख्या ।

इहखल्वष्टावुदराणिअष्टौमूत्राघाताःअष्टौक्षीरदोषाअष्टौरेतोदोषाःसप्तकुष्ठानिसप्तपिडकाःसप्तवीसर्पाःषडतीसाराःषडुदावर्ताःपञ्चगुल्माःपञ्चप्लीहदोषाःपञ्चकासाः पञ्चश्वासाःपञ्चहिक्काः

पञ्चतृष्णाःपञ्चछर्दयःपञ्चभक्तस्यानशनस्थानानिपञ्चशिरोरोगाःपञ्चहृद्रोगाःपञ्चपाण्डुरोगाःपञ्चोन्मादाःचत्वारोऽपस्माराः चत्वारोऽक्षिरोगाःचत्वारःकर्णरोगाःचत्वारःप्रतिश्यायाःचत्वारोमुखरोगाःचत्वारोग्रहणीदोषाः चत्वारोमदाःचत्वारोमूर्च्छाः चत्वारः शोषाःचत्वारिक्लैब्यानित्रयःशोथाःत्रीणिकिलासानित्रिविधंलोहितपित्तंद्वौज्वरौद्वौव्रणौद्वावायामौद्वेगृध्रस्यौद्वेकामलेद्विविधमामंद्विविधंवातरक्तांद्विविधान्यर्शांसिएकः ऊरुस्तम्भःएकःसन्न्यासः एकोमहागदःविंशतिःक्रिमिजातयःविंशतिःप्रमेहाःविंशतिर्योनिव्यापदः । इत्यष्टाचत्वारिंशद्रोगाधिकरणान्यस्मिन्संग्रहेभवन्ति । उद्दिष्टानिएतानियथोद्देशमभिनिर्देक्ष्यामः ॥ १ ॥

इस संग्रहमें ८ प्रकारके उदररोग हैं ।८ मूत्राघात हैं । ८ प्रकारके स्तन्य दोष हैं ।८ प्र० शुक्रदोष हैं । ७ प्र० कुष्ठ हैं । ७ प्रकारकी पिडका । ७ प्र० विसर्प । ६ प्र० अतिसार । ६ प्रकारके उदावर्त । ५ प्रकारके गुल्म । ५ प्रकारके प्लीहदोष । ५ प्र० खांसी । ५ प्र० श्वास । ५ प्रकारकी हिचकी । ५ प्रकारकी प्यास । ५ प्रकारकी छार्दि । ५ प्र० अरुचि । ५ प्र० शिरोरोग । ५ प्र० हृद्रोग । ५ प्र० पांडुरोग । ५ प्र० उन्माद । ४ प्र० मृगी । ४ प्र० नेत्ररोग । ४ प्र० कर्णरोग ।४ प्र० प्रतिश्याय । ४ प्र० मुखरोग । ४ प्र० ग्रहणीदोष । ४ प्र० मदात्यय । ४ प्र० मूर्छा । ४ प्र० शोष । ४ प्र० नपुंसकता । ३ प्र० शोथ । ३ प्र० किलास । ३प्र० रक्तपित्त । २ प्र० ज्वर । २ प्र० व्रण। २ प्र० आयाम । २ प्र० गृध्रसी । २ प्र० कामला । २ प्र० आमदोष । २ प्र० वातरक्त । २ प्र० अर्श । १ प्र० ऊरुस्तंभ । १ प्र० संन्यास । १ प्र० महाव्याधि । २० प्र० क्रामिरोग । २० प्र० प्रमेह । २० प्र० योनिव्यापकरोग, इस प्रकार इस संग्रहमें ४८ रोग हैं । अब इन सबको यथा-उद्देश आगे वर्णन करतेहैं ॥ १ ॥

रोगोंके वातादि भेद ।

अष्टावुदराणीतिवातपित्तकफसान्निपातप्लीहबद्धाच्छिद्रोदकोदराणीति॥अष्टौमूत्राघाताइतिवातपित्तकफसान्निपाताश्मरीशर्कराशुक्रशोणितजाः॥ अष्टौक्षीरदोषाइतिवैवर्ण्यंवैगन्ध्यंवैरस्यं

पैच्छिल्यंफेनसंघातंरौक्ष्यंगौरवमतिस्नेहश्चेति॥ अष्टौरेतोदोषा इतितनुशुष्कंफेनिलमश्वेतंपूतिपिच्छिलमन्यधातूपहितमवसादिचेति॥सप्तकुष्टानीतिकपालोदुम्बरमण्डलर्ष्यजिह्वपुण्डरीकसिध्मकाकणकानि ॥ सप्तपिडकाइतिशराविकाकच्छपिकाजालिनीसर्षप्यलजीविनताविद्रधीच ॥ सप्तवीसर्पाइतिवातपित्तकफाग्निकर्दमग्रन्थिसान्निपाताख्याः॥ षडतीसाराख्याइतिवातपित्तकफसान्निपातभयशोकजाः ॥ षडुदावर्त्ताइतिवातमूत्रपूरीषशुक्रच्छर्दिक्षवथुजाः॥ पञ्चगुल्माइतिवातपित्तकफसन्निपातरक्तजाः ॥ पञ्चप्लीहदोषाइतिगुल्मैर्व्याख्याताः ॥ पञ्चकासा इतिवातपित्तकफक्षतक्षयजाः॥ पञ्चश्वासाइतिमहोर्द्ध्वच्छिन्नतमकक्षुद्राः ॥ पञ्चहिक्काइतिमहतीगम्भीराव्यपेताक्षुद्राचान्नजाच ॥ पञ्चतृष्णाइतिवातपित्तामक्षयोपसर्गात्मिकाः ॥ पञ्चच्छर्द्दयइतिद्विष्टान्नसंयोगजावातपित्तकफसान्निपातोद्रेकात्मिकाश्च॥ पञ्चभक्तस्यानशनस्थानानीतिवातपित्तकफद्वेषायासाः॥ पञ्चशिरोरोगाइतिपूर्वोद्देशमभिसमस्यवातपित्तकफसान्निपातक्रिमिजाः ॥ पञ्चहृद्रोगाइतिशिरोरोगैर्व्याख्याताः ॥ पञ्चपाण्डुरोगाइतिवातपित्तकफसान्निपातमृद्भक्षणजाः ॥पञ्चोन्मादा इतिवातपित्तकफसान्निपातागन्तुनिमित्ताः ॥ चत्वारोऽपस्मारा इतिवातपित्तकफसन्निपातनिमित्तजाः ॥ चत्वारोक्षिरोगाः चत्वारः कर्णरोगाः चत्वारः प्रतिश्यायाः चत्वारोमुखरोगाः चत्वारोग्रहणीदोषाः चत्वारोमदाः चत्वारोमूर्च्छाइति अपस्मारैर्व्याख्याताः ॥ चत्वारःशोषाइतिसाहससन्धारणक्षयविषमाशनजाः॥चत्वारिक्लैब्यानीतिबीजोपघाताद्ध्वजभङ्गाज्जरायाःशुक्रक्षयाच्च ॥ त्रयःशोथाश्चेतिवातपित्तश्लेष्मनिमित्ताः॥ त्रीणिकिलासानीतिरक्तताम्रशुक्लानि ॥त्रिविधंलोहितपित्तमि-

त्यूर्द्धभागमधोभागमुभयभागश्च॥द्वौज्वरौ शीतसमुत्थश्चशीताभिप्रायश्चोष्णसमुत्थ इति उष्णाभिप्रायः ॥द्वौव्रणौइतिनिजश्चागन्तुजश्च ॥ द्वावायामावितिबाह्यश्चाभ्यन्तरश्च॥द्वेगृध्रस्यावितिवाताद्वातकफाच्च॥ द्वेकामलेइतिकोष्ठाश्रयाशाखाश्रयाच ॥ द्विविधमाममित्यलसकोविसूचिकाचेति ॥द्विविधंवातरक्तमितिगम्भीरमुत्तानञ्च । द्विविधान्यर्शांसीतिआर्द्राणिशुष्काणिच ॥ एकऊरुस्कंभइतिआमत्रिदोषसमुत्थानः ॥ एकः संन्यासइति ॥ त्रिदोषात्मकोमनःशरीराधिष्ठानसमुत्थः ॥ एकोमहागदइतिअतत्त्वाभिनिवेशः ॥ २ ॥

वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज, प्लीहोदर, बद्धोदर, छिद्रोदर, जलोदर, इन भेदोंसे ८ प्रकारके उदररोग हैं वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज, अश्मरीजन्य, शर्कराजन्य,शुक्रदोषज,और रक्तजन्य, यह, आठ प्रकारके मूत्राघात हैं । विवर्णता, विकृतिगंधि, वैरस्य, पिच्छिलता, फेनयुक्तता, रूक्षता, भारीपन,यह आठ स्तनोंके, दूधके विकार हैं। पतलापन,सूखापन,फेनयुक्त, सफेदी न होना, दुर्गंधित,पिच्छिल, अन्यधातुमिश्रित, अवसादयुक्त यह आठ वीर्यके दोष होते हैं । कुष्ठके सात भेद हैं । जैसे-कपाल, उदुंबर, मंडल, ऋष्यजिह्व, पुंडरीक, सिध्म, और काकण । शराविका, कच्छपिका, जालनी, सर्षपी, अलजी, विनता, विद्रधि, इन भेदोंसे पिडका ७ प्रकारकी है । वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज, अग्निविसर्प, कर्दमविसर्प, ग्रंथिविसर्प इन भेदोंसे विसर्प ७ प्रकारका है । वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज, भयज, शोकज इन भेदोंसे अतिसार, ६ प्रकारके हैं, अधोवात, मूत्र,पुरीष, शुक्र, छर्दि,छीक,इन छहोंका वेग रोकनेसे छ प्रकारके उदावर्त होतेहैं।वातज,पित्तज, कफज, सन्निपातज, रक्तज, इन भेदोंसे गुल्म पांच प्रकारके हैं । गुल्मके समान ही पांच प्रकारके प्लीहाके विकार होते हैं । वात, पित्त, कफ, क्षत, क्षय इन से पांच प्रकारकी खांसी होतीहै । ऐसे ही वातज, पित्तज, कफज, क्षतज, क्षयज, इन भेदोंसे श्वास पांच प्रकारका है । महती, गंभीरा, व्यपेता, क्षुद्रा, अन्नजा इन भेदोंसे पांच प्रकारकी हिचकी है । वातज, पित्तज, आमज, क्षयज, उपसर्गज इन भेदोंसे तृषा पांच प्रकारकी होती है। द्वेषजनक अन्नसे, वात, पित्त, कफ, और सन्निपातसे छर्दि पांच प्रकारकी है । वातज, पित्तज, कफज, द्वेषज, श्रमज इन भेदोंसे अरुचि पांच प्रकारकी है । सामान्य संग्रहके उद्देशसे वातज,

पित्तज, कफज, सन्निपातज, कृमिजन्य, इन भेदोंसे शिरोरोग पांच प्रकारका है । शिरोरोगवाले भेदोंसे ही पांच प्रकारका हृद्रोग है । वात, पित्त, कफ, सन्निपात, और मृद्भक्षणसे पांच प्रकारका पांडुरोग होताहै । वातज, पित्तज, कफज, सान्निपातज, और आगंतुज इन भेदोंसे उन्मादरोग पांच प्रकारका है । वात, पित्त, कफ और सन्निपातसे चार प्रकारका अपस्मार (मृगी) रोग होताहै । अपस्मारके समान ही वातादि चार २ भेद-नेत्ररोग, कर्णरोग, प्रतिश्याय, मुखरोग, ग्रहणीदोष, मदरोग, मूर्च्छारोग इन सबके भी कहेहैं । साहसजन्य, वेगावरोधजन्य, क्षयजन्य और विषमा शनजन्य:इन भेदोंसे शोषरोग चार प्रकारका है । वात, पित्त, कफजनित तीन प्रकारकी सूजन होतीहै । रक्तवर्ण, ताम्रवर्ण, और श्वेत, इन तीन प्रकारका किलासरोग होताहै । ऊर्ध्वग, अधोगामी, उभयगामी, इन तीन प्रकारका रक्तपित्त होताहै। ज्वर दो प्रकारके हैं । एक ठंढेसे, जिसमें शीतकी अधिकता होतीहै । दूसरा गरमीसे प्रगट होकर गरमीकी अधिकतावाला होताहै । निज और आगंतुज भेदसे व्रण दो प्रकारके होतेहैं। आयाम दो प्रकारका है एक अंतरायाम दूसरा बाह्यायाम । गृध्रसी दो प्रकारका है-एक वातज, दूसरा वातकफज । कोष्ठाश्रय और शाखाश्रयके भेदसे कामला दो प्रकारका है। अलसक और विसूचिका भेदसे आमरोग दो प्रकारका है । वातरक्त दो प्रकारका है गंभीर और उत्तान । ववासीर दो प्रकारकी है एक आर्द्र दूसरी शुष्क । आमयुक्त त्रिदोषसे उत्पन्नहुआ ऊरुस्तंभ एक प्रकारका है । त्रिदोषसे उत्पन्नहुआ संन्यास एकप्रकारका हैं इसका अधिष्ठान मन और शरीर है । तत्त्वज्ञानमें मनका योग न होना ही एक महाव्याधि है ॥ २ ॥

विंशतिःक्रिमिजातयइतियूकाःपिपीलिकाश्चेतिद्विविधाबहिर्मलजाःकेशादालोमादालोमद्वीपाः सौरसाऔदुम्बराजन्तुमातरश्चेतिषट्शोणितजाः अन्त्रादाउदराहृदयचराः चुरवोदर्भपुष्पाःसौगन्धिकामहागुदाश्चेतिसप्तकफजाः ककेरुकामकेरुकालेलिहाःसशूलकाःसौसुरादाश्चेतिपञ्चपुरीषजाइति विंशतिः क्रिमिजातयः ॥ ३ ॥

बीस प्रकारकी कृमियोंकी जातियें हैंउनमें यूका और पिप्पलीक यह दो प्रकारके कृमि बाहरके मलसे होतेहैं । और केशाद, लोमाद, लोमद्वीप, सौरस, उदुंबर, जंतुमातर, यह छः प्रकारके कृमि रक्तसे प्रकट होतेहैं । अंत्राद, उदराद, हृदयचर, चुरव, दर्भपुष्प, सौगंधिक, महागुद यह सात प्रकारके कृमि कफसे प्रकट होतेहैं ।

कर्केरुक, मकेरुक, लेलिह, सशूलक और सौसुराद यह पांच प्रकारके पुरीषज कृमि होतेहैं। इस प्रकार सब मिलकर २० प्रकारकी कृमिजाति है। इन बीसोंसे ही शरीरको कष्ट होताहै इसलिये बीस प्रकारका कृमिरोग मानाहै ॥ ३ ॥

विंशतिःप्रमेहाइतिउदकमेहश्चेक्षुमेहश्चरसमेहश्चसान्द्रमेहश्च सान्द्रप्रसादमेहश्चशुक्लमेहश्चशुक्रमेहश्चशीतमेहश्चशनैर्मेहश्च सिकतामेहश्चलालामेहश्चेतिदशश्लेष्मनिमित्ताःक्षारमेहश्चकालमेहश्चनीलमेहश्चलोहितमेहश्चमाञ्जिष्ठामेहश्चहारिद्रामेहश्चेति षट् पित्तनिमित्ताः। वसामेहश्चमज्जमेहश्चहस्तिमेहश्चमधुमेहश्चेतिचत्वारोवातनिमित्ताइतिविंशतिःप्रमेहाः ॥ ४ ॥

बीस प्रकारके प्रमेह हैं। उनमें-उदकमेह, इक्षुमेह रसमेह, सांद्रमेह, सान्द्रप्रसादमेह, शुक्लमेह शुक्रमेह, शीतमेह, शनैर्मेह सिकतामेह, लालामेह यह १० प्रकारके प्रमेह कफसे होतेहैं। क्षारमेह, कालमेह, नीलमेह, लोहितमेह, मंजिष्ठामेह, हरिद्रामेह यह छः प्रमेह पित्तसे होतेहैं। वसामेह, मज्जामेह, हस्तिमेह, मधुमेह, यह ४ प्रमेह वातसे होतेहैं। इस प्रकार सब मिलकर बीस प्रकारके प्रमेह हुए ॥ ४ ॥

विंशतिर्योनिव्यापदइतिवातिकीपैत्तिकीश्लैष्मिकीसान्निपातिकीचेतिचतस्रः दोषजाः। दूष्यसंसर्गप्रकृतिनिर्देशैरवशिष्टाः षोडशनिर्दिश्यन्ते। तद्यथा-रक्तयोनिश्चारजस्काचाचरणा चातिचरणाचप्राक्चरणाचोपप्लुताचोदावर्त्तिनीचकर्णिनीचपुत्रघ्नीचान्तर्मुखीचसूचीमुखीचशुष्काचवामिनीचषण्डयोनिश्च महायोनिश्चेतिविंशतिर्योनिव्यापदःकेवलश्चायमुद्देशः। यथोद्देशमभिनिर्दिष्टइति ॥ ५ ॥

बीस प्रकारके योनिव्यापत् रोग हैं। उनमें-वात, पित्त, कफ, सन्निपात इनसे चार प्रकारके हुए। दोष, दूष्य, संसर्ग और स्वभावके निर्देशसे १६ प्रकारके और होतेहैं। वह इस प्रकार हैं जैसे-रक्तयोनि, अरजस्का, अचरणा, अतिचरणा, प्राक्चरणा, उपप्लुता, उदावर्तनी, कार्णिनी, पुत्रघ्नी, अंतर्मुखी, सूचीमुखी, शुष्का, वामिनी षंडयोनि और महायोनि इस प्रकार सब मिलकर २० योनिरोग हुए। यहपर पूर्वसंग्रहके उद्देशसे संख्यामात्र कथन कीगई है ॥ ५ ॥

अध्यायका उपसंहार ।

सर्वएवनिजविकारानान्यत्रवातपित्तकफेभ्योनिवर्तन्ते । यथा शकुनिःसर्वांदिशमपिपरिपतन्स्वांछायांनातिवर्ततेतथास्वधातुवैषम्यनिमित्ताः सर्वेविकारावातपित्तकफान्नातिवर्तन्ते । वातपित्तश्लेष्मणांपुनःसमुत्थानस्थानसंस्थानप्रकृतिविशेषानभिसमीक्ष्यतदात्मकानपिचसर्वविकारांस्तानेवोपदिशन्तिबुद्धिमन्त इति ॥ ६ ॥

सब प्रकारके निज रोग-वात, पित्त, कफसे विना नहीं होसकते । जैसे पक्षी उडता २ किसी भी दिशामें घूमताहुआ अपनी छायासे अलग नहीं होसकता इसी प्रकार अपनी २ धातुकी विषमतासे उत्पन्न हुए भी रोग वात, पित्त, कफसे अलग नहीं होसकते । इसी लिये बुद्धिमान्‌को उचित है कि वात, पित्त, कफ इन तीन दोषोंके कारण, स्थान, लक्षण और प्रकृतिको विचारकर संपूर्ण रोगोंको वात,पित्त, कफ इन दोषोंके अंतर्गत ही माने, क्योंकि संपूर्ण धात्वादि इन तीनोंके ही अधीन हैं ॥ ६ ॥

भवतिचात्र । स्वधातुवैषम्यनिमित्तजायेविकारसंघावहवःशरीरे । नतेपृथक्पित्तकफानिलेभ्यआगन्तवस्त्वेवततोविशिष्टाः ॥ ७ ॥ आगन्तुरन्वेतिनिजंविकारंनिजस्तथागंतुरतिप्रवृद्धः । तत्रानुवन्धं प्रकृतिंचसम्यक्ज्ञात्वाततः कर्मसमारभेत ॥ ८ ॥

शरीरमें होनेवाले संपूर्ण विकार अपने २ धातुकी विषमतासे अनेक प्रकारके होतेहुए भी वह वात, पित्त, कफसे अलग नहीं होसकते । और आगंतुज विकार भी शरीरमें होकर पीछेसे निज (शारीरिक) रोगोंके समान ही वातादिदोषात्मक होजातेहैं । ऐसे ही निज रोग भी आगंतुओंके समान लक्षणोंको धारण करतेहैं इस लिये कारणानुबंध और प्रकृतिको भली प्रकार समझकर चिकित्सा आरंभ करनी चाहिये ॥ ७ ॥ ८ ॥

अध्यायका संक्षिप्त वर्णन ।

तत्रश्लोकौ ।

विंशकाश्चैककाश्चैवत्रिकाश्चोक्तास्त्रयस्त्रयः। द्विकाश्चाष्टौचतुष्काश्चदशद्वादशपञ्चकाः। चत्वारश्चाष्टकावर्गाःषट्कौद्वौसप्तकास्त्र-

यः । अष्टोदरीयेरोगाणामध्यायेसम्प्रकाशिताः ॥ ९ ॥ १० ॥

इति अग्निवेशकृतेतन्त्रेचरकप्रतिसंस्कृतेरोगचतुष्के अष्टोदरीयोनामोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

यहां अध्यायकी पूर्तिमें दो श्लोक हैं कि इस अष्टोदरीय अध्यायमें–बीस २ प्रकारके तीन रोग । एक २ प्रकारके तीनरोग । तीन २ प्रकारके तीन रोग । दो दो प्रकारके आठ रोग । चार २ प्रकारके १० रोग । पांच २ प्रकारके १२ रोग । आठ २ प्रकारके चार रोग । छ २ प्रकारके दो रोग । सात २ प्रकारके तीन रोग इस प्रकार रोगसंग्रहका कथन किया है ॥ ९ ॥ १० ॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्र० पं० रामप्रसाद० भाषाटीकायामष्टोदरीयो नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

विंशोऽध्यायः ।

अथातो महारोगाध्यायंव्याख्यास्याम इति हस्माहभगवानात्रेयः ।

अब हम महारोगाध्यायकी व्याख्या करतेहैं ऐसा आत्रेय भगवान् कहनेलगे ।

रोगोंके भेद ।

चत्वारोरोगाभवन्तिआगन्तुवातपित्तश्लेष्मनिमित्ताः।तेषांचतुर्णामपिरोगाणांरोगत्वमेकविधरुक्सामान्यात् । द्विविधापुनः प्रकृतिरेषामागन्तुनिजविभागाद्द्विविधंचैषामधिष्ठानंमनःशरीरविशेषात् । विकाराःपुनरेषामपरिसंख्येयाःप्रकृत्यधिष्ठानलिङ्गायतनविकल्पविशेषाणामपरिसंख्येयत्वात् ॥ १ ॥

रोग चार प्रकारके होते हैं । वातज, पित्तज, श्लेष्मज और आगंतुज । परन्तु उन चारोंके ही दुःखदाई होनेसे सामान्यतासे एक प्रकारका ही रोग माना है । वह फिर निज और आगंतुज भेदसे दो प्रकारके स्वभाववाले होते हैं । इन द्विविध रोगोंका अधिष्ठान भी मन और शरीर दो प्रकारका है ॥ फिर रोगोंके, स्वभाव, अधिष्ठान, लक्षण, निदान, विकल्प,:इनमें अंशादि असंख्यता होनेसे रोग भी असंख्य होते हैं ॥ १ ॥

रोगोंका निज आगन्तुकादि भेदोंसे सकारण वर्णन और रोगकल्पना क्रम ।

मुखानितुखल्वागन्तोःनखदशनपतनाभिचाराभिशापाभिषङ्ग-

व्यधबन्धपीडनरज्जुदहनमन्त्राशनिभूतोपसर्गादीनि ॥ २ ॥

निजस्यतुमुखंवातपित्तश्लेष्मणांवैषम्यम् ॥ ३ ॥

आगंतुज रोगोंके कारण यह होते हैं । जैसे–नख दंतादिका लगना, गिरना, अभिचार, अभिशाप, अभिषंग, वेधन, बंधन, पीडन, रस्सी आदिका बंधन, दहन, मंत्र, वज्रपात और किसी जानवर आदिके उपसर्गसे आगंतुज रोग होते हैं॥ २॥ और वात, पित्त, कफकी विषमतासे निज (शारीरिक) रोग होते हैं ॥ ३ ॥

द्वयोस्तुखलुआगन्तुनिजयोःप्रेरणसात्म्येन्द्रियार्थसंयोगःप्रज्ञा-पराधःपरिणामश्चेति । सर्वेपितुखल्वेतेऽभिप्रवृद्धाश्चत्वारोरोगाः परस्परमनुबध्नन्तिनचान्योन्यसन्देहमापद्यन्ते ॥ ४ ॥

आगंतुज और निज इन दोनों रोगोंको प्रेरण करके लानेका कारण असात्म्य पदार्थोंका संभोग होना ही है और बुद्धिके अपराधका परिणाम भी कारण है क्योंकि सब वस्तुओंका अयोग, अतियोग, मिथ्यायोग होनेसे ही दोनों प्रकारके रोगोंकी उत्पत्ति होती है । यह वातज, पित्तज, कफज, आगंतुज, चारों रोग बहुत वृद्धिको प्राप्त होनेसे परस्पर लक्षणोंको प्रकाशित करते हैं । परंतु इनके एकके लक्षणोंमें दूसरेका संदेह नहीं होता ॥ ४ ॥

आगन्तुर्हिव्यथापूर्वसमुत्पन्नोजघन्यंवातपित्तश्लेष्मणांवैषम्य-मापादयति । निजतुवातपित्तश्लेष्माणःपूर्ववैषम्यमापद्यन्ते जघन्यंव्यथामभिनिर्वर्त्तयन्ति । तेषांत्रयाणामपिदोषाणां शरीरेस्थानविभागउपदेक्ष्यते ॥ ५ ॥

निज और आगंतुज रोगोंमें भेद केवल इतना ही है कि आगंतुज रोग पहले प्रगट होकर पीछे वात, पित्त, कफकी विषमताको धारण करताहै । और निज रोगोंमें पहले वात, पित्त, कफकी विषमता होकर पीछे रोगको उत्पन्न करते हैं । अब उन वात, पित्त, कफके स्थान विभागको कहते हैं ॥ ५ ॥

तद्यथाबस्तिःपुरीषाधानंकटिःसक्थिनीपादावस्थीनिवातस्था-नानि । तत्रापिपक्वाशयोविशेषेणवातस्थानम् ॥६॥स्वेदोरसो-लसीकारुधिरमामाशयश्चपित्तस्थानानितत्रापिआमाशयोविशे-षेणपित्तस्थानम्॥७॥उरःशिरोग्रीवापर्वाण्यामाशयोमेदश्चश्ले-ष्मणःस्थानानि तत्रापिउरोविशेषेणश्लेष्मणःस्थानम्॥ ८ ॥

वस्ति, मलस्थान, कमर, नितंब, दोनों पांव, हड्डी यह वायुके स्थान हैं। इनमें भी पक्वाशय विशेषतासे वातका स्थान है ॥ ६ ॥ स्वेद,रस, लसीका, रक्त और आमाशय यह पित्तके स्थान हैं। इनमें भी आमाशय, विशेषतासे पित्तका स्थान है। इस जगह आमाशय शब्दसे आमाशयांशभूत ग्रहणी समझना ॥ ७ ॥ उरःस्थल मस्तक, गर्दन, पर्व, आमाशय, और मेद यह कफके स्थान हैं। इनमें भी उरःस्थल (छाती) विशेषतासे कफका स्थान है ॥ ८ ॥

सर्वशरीरचारास्तुवातपित्तश्लेष्माणोहिसर्वस्मिञ्छरीरेकुपिताकुपिताःशुभाशुभानिकुर्वन्ति। प्रकृतिभूताःशुभानि, उपचयबलवर्णप्रसादादीनि। अशुभानिपुनःविकृतिमापन्नानिविकारसंज्ञकानि। तत्रविकाराःसामान्यजानानात्मजाश्चतत्रसामान्यजाःपूर्वमष्टोदरीयेऽव्याख्याताः। नानात्मजास्त्विहाध्यायेऽनुव्याख्यास्यामः ॥ ९ ॥

संपूर्ण शरीरमें वात,पित्त, कफ, यह तीनों विचरतेहैं और कुपित या अकुपित हुए सर्वशरीरमें शुभ तथा अशुभको करतेहैं। यदि यह वातादि प्रकृतिस्थ हों तो शरीरमें पुष्टि, बल, वर्ण, प्रसन्नता आदि शुभलक्षणोंको करतेहैं और विकृत होनेसे अनेक प्रकारके विकारोंको करतेहैं। इन दोषोंका विकृत होना ही विकार कहाजाताहै। वह विकार सामान्यज और नानात्मज इन भेदोंसे दो प्रकारके हैं। सामान्यज विकार अष्टोदरीय अध्यायमें कह चुके हैं और नानात्मज विकारोंको इस अध्यायमें कथन करतेहैं ॥ ९ ॥

तद्यथा—अशीतिर्वातविकाराःचत्वारिंशत्पित्तविकाराःविंशतिः श्लेष्मविकाराः ॥ १० ॥

वह इस प्रकार हैं जैसे ८० प्रकारके वातविकार हैं। ४० प्रकारके पित्तविकारहैं और वीस २० प्रकारके कफके विकार होतेहैं ॥ १० ॥

तत्रादौवातविकाराननुव्याख्यास्यामः। तद्यथा—नखभेदश्च, विपादिकाच, पादशूलश्च, पादभ्रंशश्च, सुप्तपादताच, वातखुड्डताच, गुल्फग्रहश्च,पिण्डिकोद्वेष्टनश्च, गृध्रसीच,जानुभेदश्च, जानुविश्लेषश्च, ऊरुस्तम्भश्च, ऊरुसादश्च, पाङ्गुल्यश्च,गुदभ्रंशश्च, गुदार्तिश्च, वृषणोत्क्षेपश्च, शेफस्तम्भश्च, वंक्षणाना-

हश्च, श्रोणिभेदश्च, विड्भेदश्च, उदावर्तश्च, खञ्जत्वञ्च, कुब्जत्वञ्च, वामनत्वञ्च, त्रिकग्रहश्च, पृष्ठग्रहश्च, पार्श्वावमर्दश्च, उदरवेष्टश्च, हृन्मोहश्च, हृद्द्रवश्च, वक्ष-उपरोधश्च, वक्ष-उद्धर्षश्च, बाहुशोषश्च, ग्रीवास्तम्भश्च, मन्यास्तम्भश्च, कण्ठोद्ध्वंसश्च हनुस्तम्भश्च, ओष्ठभेदश्च, दन्तभेदश्च दन्तशैथिल्यञ्च, मूकत्वञ्च, वाक्सङ्गश्च, कषायास्यताच, मुखशोषश्च, अरसज्ञताच, घ्राणनाशश्च, कर्णशूलञ्च, अशब्दश्रवणञ्च, उच्चैःश्रुतिश्च, बाधिर्य्यञ्च वर्त्मस्तम्भश्च, वर्त्मसंकोचश्च, तिमिरञ्च, आक्षिशूलञ्च, आक्षिव्युदासश्च, भ्रूव्युदासश्च, शंखभेदश्च, ललाटभेदश्च, शिरोरुक्च, केशभूमिस्फुटनञ्च, अर्दितञ्च, एकाङ्गरोगश्च, सर्वाङ्गरोगश्च, पक्षवधश्च, आक्षेपकश्च, दण्डकश्च, श्रमश्च, भ्रमश्च वेपथुश्चं, जृम्भाच, विषादश्चातिप्रलापश्च, ग्लानिश्च, रौक्ष्यञ्च, पारुष्यञ्च, श्यावारुणावभासताच, अस्वप्नश्च, अनवस्थितत्वंचेत्यशीतिर्वातविकाराः ॥ ११ ॥

उनमें पहले वातविकारोंको कहतेहैं । नखभेद, विपादिका, पादशूल, पादभ्रंश, पादसुप्ति, वातखुड्डता, गुल्फग्रह, पिंडिकोद्वेष्टन, गृध्रसी, जानुभेद, जानुविश्लेष, ऊरुस्तंभ, ऊरुसाद, पांगुल्य, गुदभ्रंश, गुदार्ति, वृषणोत्क्षेप, शेफस्तंभ, वंक्षणानाह, श्रोणीभेद, विड्भेद, उदावर्त, खंजता, कुबडापन, वामनत्व, त्रिकशूल, पृष्ठशूल, पार्श्वशूल, उदरवेष्ट, हृन्मोह, हृद्द्रव, वक्षोपरोध, वक्षोद्धर्ष, बाहुशोष, ग्रीवास्तंभ, मन्यास्तंभ, कंठोद्ध्वंस, हनुस्तंभ, ओष्ठभेद, दंतभेद, दंतशिथिलता, मूकता, वाण्यवरोध, कषायास्यता, मुखशोष, रसाज्ञान, घ्राणनाश, कर्णशूल, कर्णनाद, उच्चैःश्रवण, बाधिर्य वर्त्मस्तंभ, वर्त्मसंकोच, तिमिर, आक्षिशूल, अक्षिव्युदास, भ्रूव्युदास, शंखभेद, ललाटभेद, शिरःशूल, केशभूमिस्फुटन, अर्दित, एकांगरोग, सर्वांगरोग, पक्षाघात, आक्षेपक, दंडक, श्रमबोध, भ्रम, कंप, जृंभा, विषाद, अतिप्रलाप, ग्लानि, रूक्षता पारुष्य, श्याम या अरुणावभास, अनिद्रा, चलचित्तता, यह अस्सी रोग वातसे होतेहैं ॥ ११ ॥

वातविकाराणामपरिसंख्येयानामाविष्कृततमाव्याख्याताःसर्वेष्वपिखल्वेतेषुवातविकारेषुअन्येषुचानुक्तेषुवायोरिदमात्मरू-

पमपरिणामिकर्मणश्चस्वलक्षणंयदुपलभ्यतदवयवंवाविमुक्त-
सन्देहावातविकारमेवाध्यवस्यान्तिकुशलाः ॥ १२ ॥

वातरोग असंख्य होतेहैं परंतु यहां पर उन असंख्य विकारोंमें जो मुख्य २ हैं उनका कथन करदियाहै इन वातविकारोंमें तथा इनसे अन्य जो यहां पर नहीं कहेगये उनमें भी वायुके विकृत और अविकृत अवस्थाके कर्म, लक्षण तथा अंशादि विचार कर संदेहरहित कुशल वैद्य वातविकारोंको जाने क्योंकि विकृत वायु अपनी अवस्था छोडदेनेसे जिस स्थानमें प्रवेश करताहै उसी स्थानमें अनेक विकारोंको उत्पन्न कर देताहै, इसलिये वातके स्वभाव, लक्षणोंको समझलेना बुद्धिमान् वैद्यका कर्म है ॥ १२ ॥

तद्यथा ।

रौक्ष्यंलाघवंवैषद्यं शैत्यंगतिरमूर्तत्वञ्चेतिवायोरात्मरूपाणि ।
एवंविधत्वाच्चकर्मणश्चस्वलक्षणमिदमस्यभवति तंतंशरीरा-
वयवमाविशतःस्रंसभ्रंशव्यासाङ्गभेदसादहर्ष–तर्षावर्त–मर्द-
कम्पचालतोदव्यथवेष्टभङ्गास्तथाखरपरुषविषदसुषिरतारुण-
कषायविरसता–शोषशलसुप्तिसंकुचनस्तम्भनानिवायोःकर्मा-
णितैरन्वितंवातविकारमेवाध्यवस्येत ॥ १३ ॥

अब उन वायुके धर्मोंको कहतेहैं।जसे–रूक्षता,लघुता,विशदता,शीतता,गमनशीलता, सूक्ष्मता, यह वायुके आत्मरूप हैं। इन ही धर्मोंवाले वायुके कर्म और लक्षण होतेहैं। जब यह शरीरस्थ विकृत वायु शरीरके जिस २ अंगमें प्रवेश करताहै उसी २ अंगमें वायुके कार्य और लक्षण दिखाईदेतेहैं जैसे स्रंस, भ्रंश, प्रसार, अंगभेद, विषाद, हर्ष, तर्ष, आवर्तन, मर्द, कंप, चालन, तोद,व्यथ,वेष्ट, भंगता, कर्कशता, परुषता,विशदता, सुषिरता, अरुणवर्णता, कषायता, रसाज्ञान, शोष, शूल,सुप्ति, संकोचन,स्तंभन यह वायुके कर्म हैं।इन लक्षणोंवाले विकारोंको वातविकार जाने१३॥

वातरोगोंमें सामान्यचिकित्साक्रम ।

तंमधुराम्ललवणस्निग्धोष्णैरुपक्रमैरुपक्रमेत । स्वेदस्नेहास्था-
पनानुवासननस्तःकर्मभोजनाभ्यङ्गोत्सादनपरिषेकादिभिर्वा-
तहरैर्मात्रांकालञ्च प्रमाणीकृत्यास्थापनानुवासनन्तुसर्वथोप-
क्रमेभ्योवातेप्रधानतमंमन्यन्तेभिषजः ॥ १४ ॥

वैद्यको उचित है कि मधुर, अम्ल, लवण, स्निग्ध और उष्ण द्रव्य द्वारा वातकी चिकित्सा करे । वातनाशक स्वेदन, स्नेहन, आस्थापन, अनुवासन, नस्यकर्म, उष्णास्निग्धभोजन, अभ्यंग, उत्सादन और परिषेक आदिसे मात्रा और काल विचारकर वायुको जीते । वातनाशक सव क्रियाओंमें वैद्य लोग आस्थापन और अनुवासन वस्तिकर्मको ही मुख्य मानतेहैं ॥ १४ ॥

तद्धथादितएवपक्वाशयमनुप्रविश्यकेवलंवैकारिकंवातमूलंछिनत्ति । तत्रावजितेवातेऽपिशरीरान्तर्गतावातविकाराःप्रशान्तिमापद्यन्ते । यथावनस्पतेर्मूलेछिन्नेस्कन्धशाखावरोहकुसुमफलपलाशादीनांनियतोविनाशस्तद्वत् ॥ १५ ॥

(क्योंकि) आस्थापन और अनुवासन कर्म पक्वाशयमें प्रवेश करके विकार करनेवाले वायुको जडसे ही नष्ट कर देताहै । जव पक्वाशयस्थ वैकारिक वायु नष्ट होजाता है फिर वातजन्य विकार स्वयं शांतिको प्राप्त होजातेहैं । जैसे वृक्षकी जड काटदेनेसे उसके टहने, टहनियां, अवरोह, फूल, फल, पत्ते आदि सव स्वयं विनाशको प्राप्त होजाते हैं । ऐसे ही पक्वाशयस्थ वायुके उच्छेदसे सव वातविकार शांत होजातेहैं ॥ १५ ॥

पित्तके ४० रोग ।

पित्तविकाराश्चत्वारिंशदतऊर्द्ध्वंव्याख्यास्यन्ते।तद्यथा–ओषश्च, प्लोषश्च, दाहश्च, दवथुश्च, धूमकश्च, अम्लकश्च, विदाहश्च, अन्तर्दाहश्च, अंसदाहश्च, ऊष्माधिक्यश्च, अतिस्वेदश्चाङ्गगन्धश्च, अङ्गावयवदरणश्च, शोणितक्लेदश्च, मांसक्लेदश्च, त्वग्दाहश्च, मांसदाहश्च, त्वङ्मांसदरणश्च, चर्मदरणश्च, रक्तकोठाश्च, रक्तविस्फोटाश्च, रक्तपित्तश्च, रक्तमंडलानिच, हरितत्वश्च, हारिद्रत्वश्च, नीलिकाच, कक्षाच, कामलाच, तिक्तास्यताच, पूतिमुखताच, तृष्णाया आधिक्यश्च, अतृप्तिश्च, आस्यपाकश्च, गलपाकश्च, आक्षिपाकश्च, गुदपाकश्च, मेढ्रपाकश्च, जीवादानश्च, तमःप्रवेशश्च, हरितहारिद्रमूत्रनेत्रवर्चस्त्वश्चेतिचत्वारिंशत्पित्तविकाराः। पित्तविकाराणामपरिसंख्येयानामाविष्कततमाव्याख्याताभवन्ति ॥ १६ ॥

अब इसके उपरांत चालीस प्रकारके पित्तविकारोंका कथन करतेहैं । अग्निके तापके समान ताप, जलन, दाह, हृदयमें धक२ आगसी जलना, धूवांसा निकलना, खट्टी डकार, विदाह, अंतर्दाह, अंशदाह, गर्मीकी अधिकता, अतिस्वेद, अंगगंध, अंग और अवयवोंका फटना, शोणितक्लेद, मांसक्लेद, त्वग्दाह, मांसदाह, त्वचा और मांसका फटना, चर्मदरण रक्तके चकत्ते पडना, लाल रंगके फोडे, रक्तपित्त, रक्तमंडल, हरा वर्ण होजाना, हलदीका सा रंग होना, नीलिका, कच्छराली, कामला, मुखमें कडुवापन, मुखदुर्गंध, तृष्णाकी अधिकता, अतृप्ति, मुखपाक, गलपाक, नेत्रपाक, गुदपाक, शिश्नपाक, जीवसंज्ञक रक्तका क्षय, अंधकार प्रतीत होना, हरे तथा हलदीके वर्णके समान नेत्र, मूत्र, पुरीष, त्वचाका वर्णहोजाना, यह चालीस पित्तके विकार हैं। पित्तके विकार असंख्य होतेहैं । परंतु उन असंख्योंमें जो मुख्य हैं उन ४० विकारोंका यहां कथन किया गयाहै ॥ १६ ॥

सर्वेष्वपिखल्वेतेषुपित्तविकारेष्वन्येषुचानुक्तेषुपित्तस्येदमात्म-
रूपमपारिणामिकर्मणश्चस्वलक्षणंयत्तदुपलभ्यतदवयवंवावि-
मुक्तसन्देहाःपित्तविकारमेवाध्यवस्यन्तिकुशलाः ॥ १७ ॥

इन सब पित्तविकारोंमें तथा जो यहां नहीं भी कहे उन अन्य पित्तविकारोंमें पित्तके आत्मिक स्वभाव और परिणामोंको तथा पित्तके कर्म और लक्षणों द्वारा पित्तके अंशविकारादि देखकर चतुरलोग निस्सन्देह उस रोगको पित्तजन्य मानतेहैं ॥ १७ ॥

तद्यथा ।

औष्ण्यंतैक्ष्ण्यंलाघवमनतिस्नेहोवर्णश्चशुक्लारुणवर्जोगन्धश्च
विस्त्रोरसौचकटुकाम्लौपित्तस्यात्मरूपाणि।एवंविधत्वाच्चकर्म-
णःस्वलक्षणमिदमस्यभवति।तंतंशरीरावयवमाविशतोदाहो-
ष्मपाकस्वेदक्लेदकोथस्रावरागाःयथास्वञ्चगन्धवर्णरसादिभि-
र्निर्वर्त्तनंपित्तस्यकर्माणितैरन्वितंपित्तविकारमेवाध्यवस्येत्॥१८॥

अब पित्तके कर्म और लक्षणोंको कहते हैं जैसे उष्णता, तीक्ष्णता, लघुता, किंचित्स्निग्धता, शुक्ल और अरुणवर्णसे भिन्न वर्णवाला, दुर्गंधित, पूति, कटु, खट्टा, यह सब पित्तके आत्मधर्म हैं इस ही प्रकारके इसके कर्म और लक्षण होतेहैं। जब यह कुपित होकर जिस २ अंगमें जाताहै उसी २ अंगमें दाह, गर्मी, पाक, स्वेद, क्लेद, कोथ, स्राव, लाली यह लक्षण होतेहैं और पित्तके धर्मवाले ही गंध,

वर्ण, मुखका स्वाद आदि होतेहैं ऐसे २ पित्तात्मक लक्षणोंके होनेसे पित्तविकारको निश्चय करे ॥ १८ ॥

पित्तविकारोंमें चिकित्साक्रम ।

तंमधुरतिक्तकषायशीतैरुपक्रमैरुपक्रमेतस्नेहविरेकप्रदेहपरिषेकाभ्यङ्गावगाहादिभिःपित्तहरैर्मात्रांकालञ्चप्रमाणीकृत्य। विरेचनन्तुसर्वोपक्रमेभ्यःपित्तेप्रधानतमंमन्यन्तेभिषजः ॥ १९ ॥

पित्तकी चिकित्सा मीठे, कडुवे, कषैले और शीतल द्रव्योंद्वारा करे। तथा पित्तको शान्त करनेवाले स्नेहन, विरेचन, प्रलेप, परिषेक, अभ्यंग, अवगाह द्वारा मात्रा काल विचारकर चिकित्सा करे। पित्तनाशक संपूर्ण चिकित्साओंमें विरेचन कराना वैद्यजन सबसे उत्तम चिकित्सा मानतेहैं ॥ १९ ॥

तद्ध्यादितएवामाशयमनुप्रविश्यकेवलंवैकारिकंपित्तमूलञ्चापकर्षतितत्रावजितेपित्तेऽपिशरीरान्तर्गताःपित्तविकाराःप्रशान्तिमापद्यन्ते ।यथाग्नौव्यपोढेकेवलमग्निगृहञ्चशीतंभवातितद्वत्॥२०॥

क्योंकि विरेचनकारक औषधि आमाशयमें प्रवेश करके विकारकारक पित्तको जडसे उखाडकर विरेचन द्वारा निकालदेतीहै आमाशयमें बढेहुए पित्तको जीतलेनेसे शरीरान्तर्गत पित्तविकार स्वयं शांत होजातेहैं जैसे अग्निके नष्ट होनेसे अग्निका स्थान भी स्वयं शीतल होजाताहै उसीके समान पित्तविकार स्वयं शांत होजाते हैं २०

कफके २० रोग ।

श्लेष्मविकाराश्चविंशतिरतऊर्द्ध्वंव्याख्यास्यन्ते । तद्यथा-तृप्तिश्च, तन्द्राच, निद्राधिक्यञ्च, स्तैमित्यञ्च, गुरुगात्रताच, आलस्यञ्च, मुखमाधुर्यञ्च, मुखस्रावश्च, उद्गारश्च; श्लेष्मोद्गरणञ्च, मलस्याधिक्यञ्च, कण्ठोपलेपश्च, बलाशश्च हृदयोपलेपश्च, धमनीप्रतिचयश्च, गलगण्डश्च, अतिस्थौल्यञ्च, शीताग्निताच, उदर्दश्च, श्वेतावभासताच, श्वेतमूत्रनेत्रवर्चस्त्वश्चेतिविंशतिःश्लेष्मविकाराः ॥ २१ ॥

अब बीस प्रकारके कफके विकारोंको कहतेहैं। वह इसप्रकार हैं। तृप्ति (अरुचि), तन्द्रा, निद्राकी अधिकता, स्तैमित्य, अंगोंका भारीपन, आलस्य, मुखमें मीठापन, लारबहना, डकार, बारबार कफका थूकना, मलकी अधिकता, कंठमें कफका लिपा

रहना, वलास, हृदयका लिहसा सा रहना, धमनियोंमें स्थूलता, गलगंड, आतिस्थूलता, मंदाग्नि, उदर्द, सफेद वर्ण होना, मूत्र, नेत्र और पुरीषका सफेद होना, यह बीसप्रकारके कफके विकार हैं ॥ २१ ॥

श्लेष्मविकाराणामपरिसंख्येयानामाविष्कृततमाख्याताःसर्वेंवपितुखल्वेतेषुश्लेष्मविकारेष्वन्येषुचानुक्तेषुश्लेष्मणइदमात्मरूपमपरिणामिकर्मणश्चस्वलक्षणंयदुपलभ्यतदवयवंवाविमुक्तसन्देहाःश्लेष्मविकारमध्यवस्यन्तिकुशलाः ॥ २२ ॥

यद्यपि कफसे विकार असंख्य होसकतेहैं परंतु उनमें जो मुख्य वीस विकार हैं यहां उनका कथन कियाहै। इन सब विकारोंमें जो यहां कथन कियेहैं और जो कथन नहीं किये गये इन सबमें कफके धर्म और लक्षणोंको और कफकी विकृतावस्थाके कर्मोंको विचारकर कुशल वैद्य कफके विकारोंका निश्चय करे ॥ २२ ॥

तद्यथा-श्वैत्यशैत्यगौरवमाधुर्य्यमात्सर्य्याणिश्लेष्मणआत्मरूपाण्येवंविधत्वाच्चकर्मणःस्वलक्षणामिदमस्यभवति। तंतंशरीरावयवमाविशतः श्वैत्यशैत्यकंडूस्थैर्य्यगौरवस्नेहस्तम्भसुप्तिक्लेदोपदेहवन्धमाधुर्य्यचिरकारित्वानिश्लेष्मणःकर्माणितैरान्वितंश्लेष्मविकारमेवाध्यवस्येत् ॥ २३ ॥

वह कफात्मक धर्म इसप्रकार है। जैसे श्वैत्य शैत्य, गौरव, माधुर्य,मात्सर्य, यह कफके आत्मरूप हैं। और इस ही प्रकारके इसके कर्म और लक्षण होतेहैं। यह जब जिस२शरीरके अवयवमें प्रवेश करताहै उसमें श्वेतता, शीतता, खाज, स्थिरता, भारीपन, स्निग्धता, स्तंभ, सुप्ति, क्लम, क्लेद, उपलेप, बंध,माधुर्य, चिरकारीपन इन अपने कर्म लक्षणोंको दिखाताहै । इन लक्षणोंयुक्त विकारोंको कफके विकार जाने ॥ २३ ॥

श्लेष्मविकारकी चिकित्सा।

तंकटुकतिक्तकषायतीक्ष्णोष्णरूक्षैरुपक्रमैरुपक्रमेतस्वेदनवमनशिरोविरेचनव्यायामादिभिःश्लेष्महरैर्मात्रांकालञ्चप्रमाणीकृत्य। वमनन्तुसर्वोपक्रमेभ्यःश्लेष्माणिप्रधानतमंमन्यन्तेभिषजः ॥ २४॥ तद्ध्यादितएवामाशयमनुप्रविश्यकेवलंवैकारिकंश्लेष्ममूलमपकर्षति। तत्रावजितेश्लेष्मण्यपिशरीरान्तर्ग-

ताः श्लेष्मविकाराःप्रशान्तिमापद्यन्ते । यथाभिन्नेकेदारसेतौ शालियवषाष्टिकादीन्यभिष्यन्द्यमानानि, अम्भसाप्रशोषमापद्यन्तेतद्वदिति ॥ २५ ॥

उस कफको कटु, तिक्त, कषाय, तीक्ष्ण और उष्ण तथा रूक्ष उपायों द्वारा जीते । एवं स्वेदन, वमन, शिरोविरेचन, व्यायाम आदिक कफनाशक उपायों द्वारा मात्रा और काल विचारकर चिकित्सा करे । कफनाशक सब उपायोंमें वैद्यजन वमन कराना सबसे उत्तम मानतेहैं, क्योंकि वामक औषधि प्रथम ही आमाशयमें प्रवेश कर वैकारिक कफको जडसे आकर्षण करके निकालदेतीहै । फिर उस वैकारिक कफके जीते जानेसे शरीरान्तर्गत सब कफके विकार स्वयं शान्त होजातेहैं । जैसे पानीके भरे खेतकी डौल तोडदेनेसे खेतका सब पानी वाहर निकल जाताहै और उस खेतके अंदरके सब धान सूखजातेहैं ऐसे ही कफविकार भी सब शांत होजातेहैं ॥ २४ ॥ २५ ॥

भवन्तिचात्र ।

अध्यायका उपसंहार ।

रोगमादौपरीक्षेततोऽनन्तरमौषधम् ।
ततःकर्मभिषक्पश्चाज्ज्ञानपूर्वंसमाचरेत् ॥ २६ ॥

यहां कहाहै कि पहले रोगकी परीक्षा करे फिर औषधिकी परीक्षा करे, इन दोनोंका यथोचित निश्चय करके फिर ज्ञानपूर्वक चिकित्साकर्मका आरंभ करे २६॥

यस्तुरोगमविज्ञायकर्माण्यारभतेभिषक् ।
अप्यौषधविधानज्ञस्तस्यसिद्धिर्यदृच्छया ॥ २७ ॥

जो वैद्य रोगको यथोचित समझे विना ही चिकित्साका आरंभ करदेताहै वह यदि औषधज्ञानमें कुशल भी हो फिर भी उसकी सिद्धि दैवाधिन है अर्थात् अन्दाज लगगया तो लगगया नहीं तो नुकसान भी होजाताहै ॥ २७ ॥

यस्तुरोगविशेषज्ञःसर्वभैषज्यकोविदः ।
देशकालप्रमाणज्ञस्तस्यसिद्धिरसंशयम् ॥ २८ ॥

जो वैद्य रोगको भले प्रकार समझलेताहै तथा सब प्रकारसे औषधक्रियामें भी कुशल है और देश काल विचारकर चिकित्सा करताहै उसकी सिद्धि अवश्य ही होतीहै ॥ २८ ॥

अध्यायका संक्षिप्तवर्णन ।

तत्रश्लोकाः। संग्रहःप्रकृतिर्देशोविकारमुखमीरणम्। असन्देहोऽनुबन्धश्चरोगाणांसम्प्रकाशितः ॥ २९ ॥ दोषस्थानानिरोगाणांगणानानात्मजाश्चये । रूपंपृथक्त्वाद्दोषाणांकर्मचापरिणामियत् ॥ ३० ॥ पृथक्त्वेनचदोषाणांनिर्दिष्टाःससुपक्रमाः। सम्यङ्महतिरोगाणामध्यायेतत्त्वदर्शिना ॥ ३१ ॥

इत्यग्निवेशकृतेतन्त्रेचरकप्रतिसंस्कृतेरोगचतुष्केमहारोगाध्यायोनामविंशोऽध्यायःसमाप्तः ॥ २० ॥

अब यह अध्यायके उपसंहारमें श्लोक हैं कि इस महारोगाध्यायमें रोगोंका संग्रह प्रकृति, देश, काल, विकार, कारण, वातादिभेदसे अलग अलग कारण स्वभाव रोगोंका निश्चय, रोगोंका अनुवन्ध, दोषोंके स्थान, रोगोंके गण, विकारोंकी अनेकता, दोषोंके अलग अलग धर्म, और उनके परिणामि कर्म, तथा वातादिदोषोंकी अलग अलग चिकित्सा यह सव तत्त्ववेत्ता महात्मा पुनर्वसुजीने कथन किया है ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥

इति श्रीमहर्षिचरक० पं० रामप्रसादवैद्य० भाषाटीकायां महारोगाध्यायो नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

एकविंशोऽध्यायः ।

अथातोऽष्टौनिन्दितीयमध्यायंव्याख्यास्यामइतिहस्माहभगवानात्रेयः ।

अब हम अष्टौनिंदितीय नामके अध्यायकी व्याख्या करते हैं ऐसा आत्रेय भगवान् कहनेलगे ।

आठप्रकारके निन्दनीय पुरुष ।

इहखलुशरीरमधिकृत्याष्टौपुरुषानिन्दिताभवन्ति। तद्यथा-- अतिदीर्घश्चातिह्रस्वश्चातिलोमाचालोमाचातिकृष्णश्चातिगौरश्चातिस्थूलश्चातिकृशश्चेति ॥ १ ॥

इस शास्त्रमें आठ प्रकारके शरीरोंवाले पुरुष निन्दनीय कहेजातेहैं । वह आठ इस प्रकार हैं जैसे-वहुत लंवा,वहुत छोटा, वहुत वालोंवाला, जिसके शरी-

रपर रोम बिलकुल न हों, अत्यंत काला, बहुत गोरा, और अतिस्थूल, एवं अति कृश, यह आठ प्रकारके शरीर निंदाके योग्य हैं ॥ १ ॥

अतिस्थूलमें आठ अवगुण ।

तत्रातिस्थूलकृशयोर्भूयएवापरेनिन्दिताविशेषाभवन्ति । अतिस्थूलस्यतावदायुषोह्रासःजरोपरोधःकृच्छ्रव्यवायतादौर्बल्यंदौर्गन्ध्यंस्वेदाबाधःक्षुदतिमात्रंपिपासातियोगश्चेतिभवन्त्यष्टौदोषाः२

इन आठोंमें, अधिकमोटा, एवं अधिककृश, विशेष निंदाके योग्य होतेहैं, क्योंकि अधिक मोटा होनसे आयुका ह्रास होताहै और बुढापा शीघ्र ही आजाताहै तथा शरीरके सूक्ष्म छिद्र रुक जाते हैं। एवं स्त्रीसंगमें कष्ट, दुर्बलता, शरीरमें दुर्गन्धि, पसीना, अधिक क्षुधा, अधिक प्यास यह आठ दोष होतेहैं। इसलिये बहुत मोटा शरीर निंदनीय होताहै ॥ २ ॥

अति स्थूलताका कारण ।

तदतिस्थौल्यमतिसंपूरणाद्गुरुमधुरशीतस्निग्धोपयोगादव्यायामादव्यवायाद्दिवास्वप्नाद्धर्षनित्यत्वादचिन्तनाद्बीजस्वभावाच्चोपजायते ॥ ३ ॥

वह अतिस्थूलपना अधिक तृप्तिकारक, भारी, मीठे, शीतल, चिकने पदार्थोंके खानेसे, कसरत न करनेसे, स्त्री संग न करनेसे, दिनमें सोनेसे, सदा प्रसन्न रहनेसे, चिन्ता न करनेसे और माता पिताके मुटाईके कारणसे होताहै ॥ ३ ॥

तस्यातिमात्रंमेदस्विनोमेदएवोपचीयतेनेतरेधातवस्तस्मादस्यायुषोह्रासः, शैथिल्यात्सौकुमार्य्याद्गुरुत्वाच्चमेदसोजरोपरोधः, शुक्राबहुत्वान्मेदसावृतमार्गत्वात्कृच्छ्रव्यवायतादौर्बल्यमसमत्वाद्धातूनां दौर्गन्ध्यंमेदोदोषान्मेदसःस्वभावत्वात्स्वेदलत्वाच्चमेदसः, श्लेष्मसंसर्गाद्विष्यन्दित्वाच्चबहुत्वाद्व्यायामासहत्वात्स्वेदाबाधः, तीक्ष्णाग्नित्वात्प्रभूतकोष्ठवायुत्वाच्चक्षुदतिमात्रंपिपासायोगश्चेति ॥ ४ ॥

उस अति स्थूल पुरुषके शरीरमें केवल चर्बीमात्र बढती जाती है और सब धातु बढनेसे बन्द होजातेहैं तथा क्षीण होने लगजातेहैं इस लिये मेदस्वी पुरुषकी आयुका

ह्रास होना आरंभ होजाताहै तथा शरीरमें शिथिलता, सुकुमारता और भारीपनसे बुढापा और छिद्रोंका रुकजाना, वीर्यकी अल्पता, तथा मेदसे शरीरके मार्गोंका रुकजाना, स्त्रीसंगम अधिक कष्ट होना, धातुओंकी सामान्यावस्था न रहनेसे दुर्बलता होना, चर्बीके बढनेसे, चर्बीके दोषसे और चर्बीके स्वभावसे एवं पसीनेके आनेसे शरीरमें दुर्बलता बढजातीहै तथा कफका संसर्ग, स्थूलता, व्यायामकी असह्यताके कारण पसीने अधिक आने लगतेहैं । एवं अग्निकी क्षीणता, और कोष्ठ वायुकी अधिकताके कारण क्षुधा और प्यास बहुत बढजातीहै ॥ ४ ॥

भवन्तिचात्र ।

मेदसावृतमार्गत्वाद्वायुःकोष्ठेविशेषतः । चरन्सन्धुक्षयत्यग्निमाहारंशोषयत्यपि ॥ ५ ॥ तस्मात्सशीघ्रंजनयत्याहारञ्चावकांक्षति । विकारांश्चाश्नुतेघोरान्किञ्चित्कालव्यतिक्रमात् ॥६॥ एतावुपद्रवकरौविशेषादग्निमारुतौ । एतौहिदहतःस्थूलं वनदावोवनंयथा ॥ ७ ॥

यहां पर कहतेहैं कि, मेदद्वारा सूक्ष्म मार्गोंके बंद होजानेसे वायु कोठेमें विशेषतासे विचरण करताहै तथा जठराग्निको प्रज्वलित करके आहारको सुखादेताहै । यही कारण है कि मेदस्वी पुरुषका आहार शीघ्र पचजाताहै एवं भोजन करनेकी वारवार इच्छा होने लगतीहै, यदि मेदस्वी मनुष्यको भोजन मिलनेमें किंचित् देर होतीहै तो वह घोरतर दुःखोंको प्राप्त होताहै । मेदस्वी पुरुषके शरीरमें अग्नि और वायु इस प्रकार विशेष उपद्रव करतेहैं जैसे दावानल वनको भस्मकर डालताहै ऐसे ही मेदके शिवाय अन्य धातुओंको भी यह नाश करडालतेहैं ॥ ५ ॥ ६॥७॥

मेदके बहुत बढजानेके दोष ।

मेदस्यतीवसंवृद्धेसहसैवानिलादयः । विकारान्दारुणान्कृत्वा नाशयन्त्याशुजीवितम् ॥ ८ ॥ मेदोमांसातिवृद्धत्वाच्चलस्फिगुदरस्तनः । अयथोपचयोत्साहोनरोऽतिस्थूलउच्यते ॥ ९ ॥ इतिमेदस्विनांदोषाहेतवोरूपमेवच । निर्दिष्टंवक्ष्यतेवाच्यमतिकार्श्येऽप्यतःपरम् ॥ १० ॥

शरीरमें मेद वृद्धिको प्राप्त होकर वात, पित्त, कफके अनेक प्रकारके रोगोंको प्रगट करके जीवनको नष्ट करदेताहै ॥ ८ ॥ मेद और मांसके अत्यन्त बढनेसे नितंब उदर एवं स्तन थलथल करने लगजातेहैं । इस प्रकार वृथा मोटापन होनेसे

उस मनुष्यको अतिस्थूल कहतेहैं ॥९॥ इस प्रकार मेदस्वी मनुष्यके दोष और हेतु तथा रूपोंका कथन किया गयाहै । अब अत्यन्त कृश शरीरवालोंके हेतु और लक्षणोंको कहतेहैं ॥ १० ॥

अतिकृशताके कारण और लक्षण ।

सेवारूक्षान्नपानानांलंघनंप्रमिताशनम् । क्रियातियोगःशोकश्चवेगनिद्राविनिग्रहः ॥ ११ ॥ रूक्षस्योद्वर्तनंस्नानस्याभ्यासः प्रकृतिर्जरा । विकारानुशयःक्रोधःकुर्वन्त्यतिकृशंनरम् ॥१२॥

रूक्ष अन्न पानके अधिक सेवन करनेसे, लंघन करनेसे, अल्पभोजन करनेसे, अति शोधन अथवा परिश्रम करनेसे, शोकसे, मलमूत्रादि वेगोंको रोकनेसे, रात्रिमें जागनेसे, रूखे द्रव्योंके उद्वर्तन करनेसे, स्नानका अभ्यास न रखनेसे, कृशताकारक आहार विहारके सेवनसे, एवं बुढापेसे, तथा सदैव रोगी और क्रोधी रहनेसे मनुष्य दुर्बल अर्थात् कृश होतेहैं ॥ ११ ॥ १२ ॥

व्यायाममतिसौहित्यंक्षुत्पिपासामथौषधम्। कृशोनसहतेतद्वदतिशीतोष्णमैथुनम् ॥ १३॥ प्लीहाकासःक्षयःश्वासोगुल्मार्शांस्युदराणिच । कृशंप्रायोऽभिधावन्तिरोगाश्चग्रहणीगताः ॥ १४ ॥

कृशशरीरवाला मनुष्य परिश्रम नहीं कर सकता, एवं पेट भरकर भोजन भूख, प्यास, अधिक औषधि सेवन, बहुत सर्दी, बहुत गर्मी अधिक मैथुन, इन सबको सम्हार नहीं सकता । एवं इस दुर्बल शरीरवाले मनुष्यको–तिल्ली, खांसी, क्षय, श्वास, गोला, अर्श और उदररोग आकर घेर लेते हैं तथा कृश मनुष्यको ग्रहणी रोग भी होजाताहै ॥ १३ ॥ १४ ॥

शुष्कस्फिगुदरग्रीवोधमनीजालसन्ततः । त्वगस्थिशेषोऽतिकृशःस्थूलपर्वानरोमतः ॥१५ ॥ सततव्याधितावेतावतिस्थूलकृशौनरौ । सततंचोपचर्य्यौहिकर्षणैर्बृंहणैरपि ॥ १६ ॥

कृश मनुष्यके–नितंब, उदर, और ग्रीवा सूखजाती हैं तथा शरीर नसोंके जालसे व्याप्तहुआ दिखाई देने लगताहै, त्वचा और हाड्डिएं सूखजाती हैं और गांठोंके स्थान मोटे मोटे दिखाई देने लगतेहैं ॥ १५ ॥ क्योंकि स्थूल और कृश यह दोनों ही सर्वदा रोगग्रस्त होतेहैं इसलिये इनको यथाक्रम लंघन और बृंहणसे सदैव उपचार करना योग्य है ॥ १६ ॥

स्थौल्यकार्श्येवरंकार्श्यंसमोपकरणौहितौ ।
यद्युभौव्याधिरागच्छेत्स्थूलमेवातिपीडयेत् ॥ १७ ॥

अधिक स्थूल और अधिक कृश इन दोनोंमें स्थूलकी अपेक्षा कृश फिर भी अच्छा माना जाता है क्योंकि दोनोंके उपकरण समान होनेपर भी स्थूल मनुष्यको रोगग्रस्त होनेपर अधिक कष्ट सहना पडताहै ॥ १७ ॥

समके लक्षण ।

सममांसप्रमाणस्तुसमसंहननोनरः ।दृढेन्द्रियत्वाद्व्याधीनांन बलेनाभिभूयते ॥ १८ ॥ क्षुत्पिपासातपसहःशीतव्यायामसं- सहः । समपक्तासमजरःसममांसचयोमतः ॥ १९ ॥

जिस मनुष्यके शरीरमें मांसका परिमाण ठीक होताहै और देह सुडौल और सौम्य होताहै उसके सब इंद्रिय दृढ और बलवान् रहतेहैं । इसीलिये व्याधि उस मनुष्य पर अपना बल नहीं पासकती ॥ १८ ॥ वह सुडौल शरीरवाला मनुष्य क्षुधा. प्यास, धूप तथा सर्दी और परिश्रम सह सकताहै । एवं उसकी पाचनशक्ति विषम नहीं होती उसे छोटी उमरमें बुढापा भी नहीं आता,ऐसा मनुष्य सम और उत्तम कहा जाताहै, इस मनुष्यको अतिकृशता और अति स्थूलता नहीं होती ॥ १९ ॥

अतिस्थूल और अतिकृशका चिकित्साक्रम ।

गुरुचातर्पणंचेष्टंस्थूलानांकर्षणंप्रति ।
कृशानांबृंहणार्थंचलघुसन्तर्पणञ्चयत् ॥ २० ॥

स्थूल मनुष्यको यदि कृश करनाहो तो कठोर और लंघन द्रव्य सेवन कराना चाहिये । एवं कृशको पुष्ट करनेके लिये लघुसंतर्पण द्रव्य सेवन करना चाहिये ॥ २० ॥

स्थूलव्यक्तिकी चिकित्सा ।

वातघ्नान्यन्नपानानिश्लेष्ममेदोहराणिच। रूक्षोष्णावस्तयस्ती- क्ष्णारूक्षाण्युद्वर्त्तनानिच॥२१॥गुडूचीभद्रमुस्तानांप्रयोगस्त्रै- फलस्तथा । तक्रारिष्टप्रयोगस्तुप्रयोगोमाक्षिकस्यच ॥२२ ॥ विडङ्गनागरंक्षारःकाललोहरजोमधु। यवामलकचूर्णञ्चप्रयोगः श्रेष्ठउच्यते ॥ २३ ॥

अब स्थूल मनुष्यकी चिकित्साका वर्णन करतेहैं । वात और कफनाशक तथा मेदके हरनेवाले अन्न पानोंका सेवन करावे और रूक्ष, गरम, तीक्ष्ण, वस्ति करे । रूक्ष उद्वर्तनोंका प्रयोग करावे ॥ २१ ॥ तथा गिलोय और भद्रमुस्तकका काथ, त्रिफलेका काथ, छाँछ, अरिष्ट, शहद, वायविडंग, सोंठ, जवाखार, शहदके संग उत्तम लोहभस्म, जव, आमलेका चूर्ण इन सबका प्रयोग करना मेदरोगके नष्ट करनेके लिये उत्तम मानाहै ॥ २२ ॥ २३ ॥

बिल्वादिपञ्चमूलस्यप्रयोगःक्षौद्रसंयुतः । शिलाजतुप्रयोगस्तु साग्निमन्थरसाशिला ॥२४॥ प्रसातिकाप्रियंगुश्चश्यामाकाय-वकायवाः । जूर्णाह्वाःकोद्रवामुद्गाकुलत्थाश्चक्रमर्दकाः ॥२५॥ आढकीनाश्चबीजानिपटोलामलकैःसह । भोजनार्थंप्रयोज्या-निपानञ्चानुमधूदकम् ॥ २६ ॥ अरिष्टांश्चानुपानार्थेमेदोमांस-कफापहान् । अतिस्थौल्यविनाशायसंविभज्यप्रयोजयेत् ॥२७॥

एवं-बिल्वादि पंचमूलके काथमें शहद मिलाकर पिलाना उत्तम मानाहै। अथवा शिलाजीतका प्रयोग करे। अथवा अग्निमंथका रस एवं मनशिलका प्रयोग भी परम उत्तमहै ॥ २४ ॥ अणुव्रीहि नामक धान्य, प्रियंगु (कांगनी धान्य), श्यामाक-धान्य, क्षुद्रधान्य जवार, जव, कोद्रव, मूंग, कुलथी, पनवाड (चक्रमर्द), अरहर, पटोल और आंवलेका यूष यह सब खानेके लिये देना चाहिये । और मधु तथा जल या समयानुसार दोनों मिलाकर अनुपानके लिये देना चाहिये ॥ २५ ॥२६॥ और पीनेके लिये या औषधिके पीछे अनुपानके लिये मेदनाशक तथा स्थूलताके नष्ट करनेवाले एवं कफनाशक अरिष्ट देना चाहिये ॥ २७ ॥

प्रजागरंव्यवायञ्चव्यायामंचिन्तनानिच ।
स्थौल्यमिच्छन्परित्यक्तुंक्रमेणाभिप्रवर्द्धयेत् ॥ २८ ॥

जिस मनुष्यको अपने शरीरकी स्थूलता दूर करनेकी इच्छा हो वह रात्रिको जागरण, स्त्रीसेवन, व्यायाम, एवं चिन्ता इनका यथाक्रम सेवन करता जावे और धीरे धीरे इनके सेवनको बढाता जावे ॥ २८ ॥

कृशतानाशक प्रयोग ।

स्वप्नोहर्षःसुखाशय्यामनसोनिर्वृतिःशमः।चिन्ताव्यवायव्या-यामविरामःप्रियदर्शनम् ॥ २९ ॥ नवान्नानिनवंमद्यंग्राम्या-

नूपौदकारसाः। संस्कृतानिचमांसानिदधिसर्पिःपयांसिच ॥
॥ ३० ॥ इक्षवःशालयोमांसागोधूमागुडवैकृतम् । वस्तयः
स्निग्धमधुरास्तैलाभ्यङ्गश्चसर्वदा ॥ ३१ ॥ स्निग्धमुद्वर्तनं
स्नानंगन्धमाल्यनिषेवणम्। शुक्लोवासोयथाकालंदोषाणामव-
सेचनम्॥ ३२॥ रसायनानांवृष्याणांयोगानामुपसेवनम्।
हत्वातिकार्श्यमादत्तेनृणामुपचयंपरम् ॥ ३३॥

अब कृशताके नाश करनेवाले यत्नोंको कहतेहैं। जैसे इच्छापूर्वक सोना, हर्ष, सुन्दर नरम शय्या, संतोष, शांति, चिन्ता न करना, स्त्री संग न करना, व्यायाम न करना, इष्टवस्तुको प्राप्त होना, नवीन अन्न, नवीन मद्य, ग्रामसंचारी जीव, अनूप संचारी जीव, जलचर जीव, इनका मांसरस, उत्तम बनाया हुआ मांस, दधि, घृत, दूध, ईख, शालीचावल, उडद, गेंहू, मिठाई, चिकने और मीठे पदार्थोंकी वस्ति, नित्यतैलमर्दन, चिकने उद्वर्तन, स्नान, चन्दनका लेपन, सुगंधित फूलमाला, स्वच्छ वस्त्र धारण करना, समय पर शरीरका शोधन करना, रसायन तथा वृष्य योगोंका सेवन करना इन सब द्रव्योंका उपयोग मनुष्यकी कृशता (दुर्बलापन) को दूर करके परमपुष्टिको देनेवाला है ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

अचिन्तनाच्चकार्य्याणांध्रुवंसन्तर्पणेनच । स्वप्नप्रसङ्गाच्चनरो
वराहइवपुष्यति ॥ ३४ ॥

एवं किसी कार्यकी भी चिन्ता न करनेसे तथा सदैव संतर्पण द्रव्योंके सेवन करनेसे और मस्त पडे रहनेसे मनुष्यका शरीर सूकरके समान पुष्ट होजाताहै ॥ ३४ ॥

निद्राका कारण और उसके उचितानुचित प्रकार।

यदातुमनसिक्लान्तेकर्मात्मानःक्लमान्विताः।विषयेभ्योनिवर्त-
न्तेतदास्वपितिमानवः ॥३५॥ निद्रायत्तंसुखंदुःखंपुष्टिःका-
र्श्यंबलाबलम्। वृषताक्लीबताज्ञानमज्ञानंजीवितंनच ॥३६॥
अकालेऽतिप्रसङ्गाच्चनचानिद्रानिषेविता। सुखायुषीपराकुर्य्या-
त्कालरात्रिरिवापरा॥ ३७ ॥ सैवयुक्तापुनर्युङ्क्तेनिद्रादेहंसु-
खायुषा। पुरुषंयोगिनंसिद्ध्यासत्याबुद्धिरिवागता ॥ ३८॥

जब मनुष्यके मनमें क्लांति आजातीहै और कर्मेंद्रियें थककर अपने विषयोंसे निवृत्त होजातीहैं तब इस मनुष्यको निद्रा आतीहै अर्थात् सो जाताहै ॥३५॥ सुख

दिवानिद्राका निषेध ।

ग्रीष्मवर्ज्येषुकालेषुदिवास्वप्नात्प्रकुप्यतः । श्लेष्मपित्तेदिवा-स्वप्नस्तस्मात्तेषुनशस्यते ॥ ४४ ॥ मेदस्विनःस्नेहनित्याःश्ले-ष्मलाःश्लेष्मरोगिणः । दूषीविषार्त्ताश्चदिवानशयीरन्कदा-चन ॥ ४५ ॥

गर्मियोंके सिवाय अन्यऋतुओंमें दिनके सोनेसे कफ और पित्त कुपित होते हैं इस लिये अन्यऋतुओंमें दिनका सोना अनुचित कहाहै ॥ ४४ ॥ जो मनुष्य अधिक मेदवाले हैं अथवा स्नेहको सेवन करनेवाले एवं कफप्रधान और कफके रोगवाले तथा दूषीविषसे पीडित हों उन मनुष्योंको किसी कालमें भी दिनमें सोना नहीं चाहिये ॥ ४५ ॥

दिवानिद्राके उपद्रव ।

हलीमकःशिरःशूलंस्तैमित्यंगुरुगात्रता । अङ्गमर्दोऽग्निनाशश्च प्रलेपोहृदयस्यच ॥ ४६ ॥ शोथारोचकहृल्लासपीनसार्द्धाव-भेदकाः । कोठाश्चपिडकाःकंडूस्तन्द्राकासोगलामयाः ॥४७॥ स्मृतिबुद्धिप्रमोहाश्चसंरोधःस्रोतसांज्वरः।इन्द्रियाणामसाम-र्थ्यंविषवेगप्रवर्तनम् ॥ ४८ ॥ भवेन्नृणांदिवास्वप्नस्याहितस्य निषेवणात्।तस्माद्धिताहितंस्वप्नंबुद्ध्वास्वप्यात्सुखंबुधः ॥ ४९ ॥

वे समय अथवा बहुत सोनेसे मनुष्योंके शरीरमें हलीमक,मस्तकपीडा,स्तैमित्य, भारीपन, अंगमर्द, मंदाग्नि, हृदयका लिपासा होना, शोथ, अरुचि, हृल्लास, पीनस, अर्धावभेदक, कोठरोग, पिडका, खुजली, तंद्रा, कास,गलरोग,स्मृति और बुद्धिका नाश, स्रोतोंका अवरोध, ज्वर, इंद्रियोंमें निर्बलता, यदि दूषित विष हो तो उसके वेगकी प्रवृत्ति इतने उपद्रव होते हैं इसलिये बुद्धिमान् मनुष्यको उचित है कि वह सोने (निद्रा) के विषयमें उचितानुचित एवं हिताहित विचारकर शयन करे ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

रात्रौजागरणंरूक्षंस्निग्धमस्वपनंदिवा ।
अरूक्षमनभिष्यन्दि त्वासीनप्रचलायितम् ॥ ५० ॥

रात्रिको जागनेसे रूक्षता उत्पन्न होतीहै, दिनमें सोनेसे स्निग्धता उत्पन्न होतीहै एवं आसनपर बैठे बैठे ऊंघनेसे न तो रूक्षता ही होती है और न स्निग्धता प्रकट होती है (परन्तु उदर बढ जाताहै) ॥ ५० ॥

निद्राजनक योग।

देहवृत्तौयथाहारःतथास्वप्नःसुखोमतः । स्वाप्नाहारसमुत्थेच स्थौल्यकार्श्येविशेषतः ॥ ५१ ॥ अभ्यङ्गोत्सादनंस्नानंग्राम्यानूपौदकारसाः । शाल्यन्नंसदधिक्षीरंस्नेहोमद्यंमनःसुखम् ॥ ५२ ॥ मनसोऽनुगुणागन्धाःशब्दाःसंवाहनानिच । चक्षुषस्तर्पणंलेपः शिरसोवदनस्यच ॥ ५३ ॥ स्वास्तीर्णंशयनंवेश्मसुखंकालस्तथोचितः । आनयन्त्यचिरान्निद्रांप्रनष्टायानिमित्ततः ॥ ५४ ॥

शरीरवृत्तिके निर्वाहके लिये जैसे आहार उपयोगीहै वैसे ही निद्रा भी परम उपयोगी है इस लिये प्रायः स्थूलता और कृशता यह दोनों निद्रा और आहारके अधीनही हैं ॥ ५१ ॥ यदि किसी कारणसे मनुष्यकी निद्राका नाश होगया हो तो अभ्यंग, उद्वर्तन, स्नान और ग्राम्य तथा जलचारी जीवोंके मांसका रस, शालि चावल, दही, दूध, स्नेह, मद्य और मनको सुख देनेवाले कर्म और मनको हरनेवाली सुगंधि तथा प्यारे प्यारे शब्द और देहका मसलना तथा दवाना, नेत्रोंका सन्तर्पण और मस्तक पर सुगंधित लेप तथा शिरके ऊपर पानीकी धारा देना सुखकारक शय्या, समयोचित घरका सुख यह सब शीघ्र निद्राके लानेवाले हैं ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

निद्रा न आनेके हेतु ।

कायस्यशिरसश्चैवविरेकश्छर्दनंभयम् । चिंताक्रोधस्तथाधूमो व्यायामो रक्तमोक्षणम् ॥ ५५ ॥ उपवासोसुखाशय्यासत्त्वौदार्य्यंतमोजयः।निद्राप्रसङ्गमहितंवारयन्तिसमुत्थितम्॥५६॥ एतएवचाविज्ञेयानिद्रानाशस्यहेतवः । कार्य्यंकालोविकारश्च प्रकृतिर्वायुरेवच ॥ ५७ ॥

शिरका और शरीरका विरेचन, सर्दी, भय, चिन्ता, क्रोध, धूम, परिश्रम, रक्तमोक्षण, उपवास, खराब शय्या, सत्त्वगुणकी अधिकता तमोगुणकी क्षीणता इन सबसे प्राप्त हुई निद्रा भी नष्ट होजातीहै ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ कार्य, काल, रोग, स्वभाव और वायु यह पांच ही सूक्ष्म रूपसे तथा स्थूल रूपसे भी निद्रानाशके कारण होतेहैं ॥ ५७ ॥

अध्यायका उपसंहार।

तमोभवाश्लेष्मसमुद्भवाचमनःशरीरश्रमसम्भवाच । आगन्तुकीव्याध्यनुवर्तिनीचरात्रिस्वभावप्रभवाचानिद्रा ॥ ५८ ॥ रात्रिस्वभावप्रभवामतायातांभूतधात्रींप्रवदान्तिनिद्राम्। तमोभवामाहुरघस्यमूलंशेषंपुनर्व्याधिषुनिर्दिशान्ति ॥ ५९ ॥

निद्रा तमोगुणसे उत्पन्न होतीहै तथा कफसे उत्पन्न होतीहै एवं मन और शरीरके परिश्रमसे निद्रा आतीहै तथा विष आदि सेवनसे अथवा भूतादि आवेशसे आगन्तुक निद्रा उत्पन्न होतीहै और किसी किसी रोगमें भी निद्रा उत्पन्न होतीहै तथा रात्रिमें स्वाभाविक निद्रा उत्पन्न होतीहै, निद्राको भूतधात्री भी कहतेहैं, तमोभव निद्रा पापका मूल है और बाकी निद्राको व्याधिके प्रति निदर्शन कहतेहैं अर्थात् स्वाभाविक निद्रा तो मनुष्योंके लिये प्राणरक्षक है और तमोभव पापका कारण है, अन्य निद्रा रोगरूप है ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

तत्र श्लोकाः ।

निन्दिताःपुरुषास्तेषांयौविशेषेणनिन्दितौ । वक्ष्यामिकारणंदोषास्तयोर्निन्दितभेषजम् ॥ ६० ॥ येभ्योयदाहितानिद्रायेभ्यश्चाप्यहितायदा । अतिनिद्रानिद्रयोश्च भेषजंयद्भवाचसा ॥६१॥ यायायथाप्रभावाचनिद्रातत्सर्वमात्रिजः । अष्टौनिन्दितसंख्यातेव्याजहारपुनर्वसुः ॥ ६२ ॥

इति योजनाचतुष्केऽष्टौनिन्दितीयोनामैकविंशोऽध्यायः ।

अब अध्यायके उपसंहारमें यह श्लोक हैं इस अष्टौनिन्दितीय अध्यायमें आठ प्रकारके पुरुष निंदनीय और दो प्रकारके विशेष निंदनीय और निंदित होनेका कारण–स्थूल और कृशके दोष तथा औषधि, निद्रा हिताहित और जिसको जिस समय हितकर है, अतिनिद्रा, अनिद्रा, निद्राके उत्पन्न होनेके कारण, जो जो निद्रा जिस जिस स्वभावकी है यह सब भगवान् पुनर्वसुजीने कथन किया है ॥ ६० ॥ ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

इति श्रीमहर्षिचरक० पं० रामप्रसादवैद्य० भाषाटीकायामष्टौनिन्दितीयो नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

द्वाविंशोऽध्यायः ।

अथातोलंघनबृंहणीयमध्यायंव्याख्यास्याम इतिहस्माहभग-वानात्रेयः ।

अब हम लंघनबृंहणीय नामक अध्यायकी व्याख्या करतेहैं । ऐसा भगवान् आत्रेयजी कहनेलगे ।

तपःस्वाध्यायनिरतानात्रेयःशिष्यसत्तमान् । षडग्निवेशप्रमु-खानुक्तवान्परिचोदयन् ॥ १ ॥ लंघनंबृंहणंकालेरूक्षणंस्नेह-नंतथा । स्वेदनंस्तम्भनञ्चैवजानीतेयःसवैभिषक् ॥ २ ॥

तप और स्वाध्यायपरायण अग्निवेश आदि अपने ६ शिष्योंको सम्बोधन करके महात्मा आत्रियजी कहने लगे कि जो वैद्य समयानुसार लंघन, बृंहण, रूक्षण, स्नेहन, स्वेदन एवं स्तम्भन इन छहोंका प्रयोग करना जानताहै उसको ही यथार्थ वैद्य कह-तेहैं, अन्य वैद्य नहीं कहाजाता ॥ १ ॥ २ ॥

अग्निवेशका प्रश्न ।

इतितमेवमुक्तवन्तंभगवन्तमात्रेयमग्निवेशउवाच । भगवँल्लं-घनंकिंस्विल्लंघनीयाश्चकीदृशाः । बृंहणं बृंहणीयाश्चरूक्षणीया-श्चरूक्षणम् ॥ ३ ॥ स्नेहनंस्नेहनीयाश्चस्वेदाःस्वेद्याश्चकेमताः । स्तम्भनंस्तम्भनीयाश्चवक्तुमर्हसितद्गुरो ॥ ४ ॥ लंघनप्रभृ-तीनाञ्चषण्णामेषांसमासतः । कृताकृतातिवृत्तानांलक्षणं वक्तुमर्हसि ॥ ५ ॥

इस प्रकार कहतेहुए भगवान् आत्रियजीसे महात्मा अग्निवेश कहने लगे कि हे भगवन् ! लंघन किसको कहतेहैं और वह लंघन कैसे मनुष्योंको कराया जाता है । बृंहण किसको कहतेहैं और वह कैसे मनुष्योंको कराया जाता है । रूक्षण क्या वस्तु है और कौन २ मनुष्य रूक्षणके योग्य हैं एवम् स्नेहन किसको कहतेहैं और किन मनुष्योंको कराना चाहिये । हे गुरो ! स्तम्भन क्या हैं और किनको कराना चाहिये। इन सबके विषयमें कृपया कथन कीजिये तथा संक्षेपसे लंघन आदि छहोंका योग, अयोग, अतियोगके लक्षणोंका भी वर्णन कीजिये ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५

गुरुरुवाच ।

यत्किञ्चिल्लाघवकरंदेहेतल्लङ्घनंस्मृतम् । बृंहत्वंयच्छरीरस्यजनयेत्तच्चबृंहणम् ॥ ६ ॥ रौक्ष्यंखरत्वंवैषद्यंयत्कुर्य्यात्तद्धिरूक्षणम् । स्नेहनंस्नेहनिःष्यन्दमार्दवक्लेदकारकम् ॥७॥ स्तम्भगौरवशीतघ्नंस्वेदनंस्वेदकारकम् । स्तम्भनंस्तम्भयतियद्गतिमन्तंचलंध्रुवम् ॥ ८ ॥

इस प्रकार अग्निवेशके कहेहुए वाक्यको सुनकर आत्रेय भगवान् इस प्रकार कथन करने लगे । जो शरीरमें लघुताका करनेवाला है उसको लंघन कहतेहैं । जो शरीरको पुष्ट करनेवाला है उसको बृंहण कहतेहैं एवम् जो शरीरमें रूक्षता, खरत्व विशदता उत्पन्न करे उसको रूक्षण कहतेहैं । चिकनाई, अभिष्यंद, मृदुता, क्लेद उत्पन्न करनेवाली क्रियाको स्नेहन कहतेहैं । स्तम्भ, गुरुता, शीतता नष्ट करके पसीना लानेवालेको स्वेदन कहतेहैं, जो पदार्थ चलनेवाले पतले द्रव्यको रोकदेवे उसको स्तम्भन कहतेहैं ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥

लंघन द्रव्य ।

लघूष्णतीक्ष्णाविषदंरूक्षंसूक्ष्मंखरंसरम् ।
कठिनश्चैवयद्द्रव्यंप्रायस्तल्लङ्घनंस्मृतम् ॥ ९ ॥

जो द्रव्य लघु, उष्ण, तीक्ष्ण, विषद, रूक्ष, सूक्ष्म, खर, सर और कठिन हो वह प्रायः लंघन कहाजाताहै, एवं निरशनको भी लंघन कहतेहैं ॥ ९ ॥

बृंहण द्रव्य ।

गुरुशीतमृदुस्निग्धंबहुलंसूक्ष्मपिच्छिलम् ।
प्रायोमन्दंस्थिरंसूक्ष्मंद्रव्यंबृंहणमुच्यते ॥ १० ॥

जो भारी, शीतल, मृदु, स्निग्ध, घन, सूक्ष्मपिच्छिल, मन्द, स्थिर और सूक्ष्म हो वह द्रव्य प्रायः बृंहण कहाजाता है ॥ १० ॥

रूक्षण द्रव्य ।

रूक्षंलघुखरंतीक्ष्णमुष्णंस्थिरमपिच्छिलम् ।
प्रायशःकठिनश्चैवयद्द्रव्यंतद्धिरूक्षणम् ॥ ११ ॥

जो द्रव्य रूक्ष, लघु, खर, तीक्ष्ण, उष्ण, स्थिर अपिच्छिल तथा कठिन हो वह प्रायः रूक्षण होताहै ॥ ११ ॥

स्नेहन द्रव्यके गुण ।

द्रवंसूक्ष्मंसरंस्निग्धंपिच्छिलंगुरुशीतलम् ।
प्रायोमन्दंमृदुचयद्द्रव्यंतत्स्नेहनंमतम् ॥ १२ ॥

जो द्रव्य द्रव, सूक्ष्म, सर, स्निग्ध, पिच्छिल, गुरु, शीतल और मन्द तथा मृदु हो वह स्नेहन कहा जाता है ॥ १२ ॥

स्वेदन द्रव्य ।

उष्णंतीक्ष्णंसरंस्निग्धंरूक्षंसूक्ष्मंद्रवंस्थिरम् ।
द्रव्यंगुरुचयत्प्रायःतद्धिस्वेदनमुच्यते ॥ १३ ॥

जो द्रव्य उष्ण, तीक्ष्ण, सर, स्निग्ध, रूक्ष, सूक्ष्म, द्रव, स्थिर और गुरु हो उसको प्रायः स्वेदन कहतेहैं ॥ १३ ॥

स्तम्भन द्रव्यके गुण ।

शीतंमन्दंमृदुश्लक्ष्णंरूक्षंसूक्ष्मंद्रवंसरम् ।
यद्द्रव्यंलघुचोद्दिष्टंप्रायस्तत्स्तम्भनंस्मृतम् ॥ १४ ॥

जो द्रव्य शीतल, मन्द, मृदु, श्लक्ष्ण, रूक्ष, सूक्ष्म, द्रव, सर और लघु हो उसको प्रायः स्तम्भन कहतेहैं ॥ १४ ॥

लंघन ।

चतुष्प्रकारासंशुद्धिःपिपासामारुतातपौ ।
पाचनान्युपवासश्चव्यायामश्चेतिलंघनम् ॥ १५ ॥

चार प्रकारकी संशुद्धि होतीहै अर्थात् संशोधन होताहै और प्यास, पवनका सेवन, धूप, पाचन, उपवास एवम् परिश्रम यह लंघन कहे जातेहैं ॥ १५ ॥

लंघनयोग्य प्राणी ।

प्रभूतश्लेष्मपित्तास्रमलाःसंदुष्टमारुताः ।
बृहच्छरीराबलिनोलंघनीयाविशुद्धिभिः ॥ १६ ॥

जिनके शरीरमें श्लेष्म, पित्त, रुधिर और मल बढेहुए हों तथा पवन दूषित होगया हो एवम् जो स्थूल और बलवान् होनेसे संशोधनके योग्य हैं वह मनुष्य लंघनीय हैं ॥ १६ ॥

येषांमध्यबलारोगाःकफपित्तसमुत्थिताः ।वम्यतीसारहृद्रोग- विसूच्यलसकज्वराः ॥ १७ ॥ विबन्धगौरवोद्गारहृल्लासारोच- कादयः । पाचनैस्तान्भिषक्प्राज्ञःप्रायेणादावपाचरेत् ॥ १८ ॥

जिनके शरीरमें कफ, पित्तसे उत्पन्न हुए रोग मन्दबल हैं उनको तथा जिनको वमन, अतिसार, हृदयरोग, विषूचिका, अलसक, ज्वर, विबंध, गुरुता, उद्गार, अरोचक आदि रोग हों उन पाचनयोग्य मनुष्योंको लंघन कराना चाहिये ॥ १७ ॥ १८ ॥

अतएवयथोद्दिष्टायेषामल्पबलागदाः । पिपासानिग्रहैस्तेषामुपवासैश्चताञ्जयेत्॥ १९॥रोगाञ्जयेन्मध्यबलान्व्यायामातपमारुतैः । बलिनांकिंपुनर्येषांरोगाणामवरंबलम् ॥ २० ॥

उपरोक्त रोग तथा अन्य भी अल्पबल जो रोग हैं वह सब प्यासके रोकनेसें संयमसे तथा उपवाससे जीतने योग्य हैं ॥ १९ ॥ मध्यबली रोग व्यायाम, धूप और वायुसे लंघन करने योग्य हैं । लंघन द्वारा बडे २ बलवान् रोग भी जीते जा सकतेहैं और अल्पबल रोगोंका तो कहना ही क्या है ॥ २० ॥

त्वग्दोषिणांप्रमीढानांस्निग्धाभिष्यन्दिबृंहिणाम् ।
शिशिरेलंघनंशस्तमपिवातविकारिणाम् ॥ २१ ॥

त्वक्रोगी, प्रमेहवाला, स्निग्ध,अभिष्यंदयुक्त,स्थूल,और वातरोगीको भी शिशिर ऋतुमें लंघन करना पथ्य है ॥ २१ ॥

वृंहणका वर्णन ।

अदिग्धविद्धमक्लिष्टंवयःस्थंसात्म्यचारिणाम् ।
मृगमत्स्याविहङ्गानांमांसंबृंहणमुच्यते ॥ २२ ॥

जो दुर्बल, किसीका माराहुआ और कठोर,जीर्ण न हों,स्वस्थहों ऐसे सब प्रकारके मृगोंका मांस और मछलियों तथा पाक्षियोंका मांस बृंहण कहा जाता है २२॥

क्षीणाःक्षताःकृशावृद्धादुर्बलानित्यमध्वगाः ।
स्त्रीमद्यनित्याग्रीष्मेचबृंहणीयानराःस्मृताः ॥ २३ ॥

जो मनुष्य क्षीण, क्षत, कृश, वृद्ध, दुर्बल तथा रास्ता चलनेसे थकाहुआ हो तथा स्त्रीसंग और मद्यका सेवन करनेवाला हो, ग्रीष्मऋतुमें वह बृंहण करनेके योग्य है ॥ २३ ॥

पित्तक्षाराग्निदग्धायेवम्यतीसारपीडिताः ।
विषस्वेदातियोगार्त्ताःस्तम्भनीयास्तथापराः ॥ ३० ॥

जो मनुष्य पित्त, क्षार तथा अग्निसे दग्ध हुए हों और वमन तथा अतिसारसे पीडित हों अथवा विष और स्वेदके अतियोगसे क्लेशित:हों, वह सब स्तम्भन करने योग्य हैं ॥ ३० ॥

सम्यक् लंघनके लक्षण।

वातमूत्रपुरीषाणांविसर्गेगात्रलाघवे । हृदयोद्गारकण्ठास्यशुद्धौतन्द्राक्लमेगते ॥ ३१ ॥ स्वेदेजातेरुचौचैवक्षुत्पिपासासहोदये । कृतंलंघनमादेश्यंनिर्व्यथेचान्तरात्मनि ॥ ३२ ॥

जब रोगीके वात,मूत्र और मलका त्याग होने लगे, शरीर हलका पडजाय,हृदय शुद्ध होय,डकार शुद्ध आने लगे,कण्ठ और मुख स्वच्छ प्रतीत होने लगे,तंद्रा और क्लम दूर होजाय, शुद्ध पसीना आने लगे, रुचि प्रकट हो, भूख और प्यास लगने लगे, अपना शरीर शुद्ध, हलका और व्यथाहीन प्रतीत होवे तो समझना चाहिये कि उत्तम लंघन होगया ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

अति लंघनके दोष ।

पर्वभेदोऽङ्गमर्दश्चकासःशोषोमुखस्यच । क्षुत्प्रणाशोऽरुचिस्तृष्णादौर्वल्यंश्रोत्रनेत्रयोः ॥ ३३ ॥ मनसःसम्भ्रमोऽभीक्ष्णमूर्द्ध्वंवायुस्तमोहृदि । देहाग्निवलनाशश्चलंघनेऽतिकृतेभवेत् ॥ ३४॥

पर्वभेद, अंगमर्द, खांसी, मुख सूखना, क्षुधा वंद होना, अरुचि, प्यास, श्रोत्र और नेत्रोंमें दुर्वलता, मनमें व्याकुलता, सांस फूलना, भ्रम, मोह,हृदयमें व्याकुलता, मंदाग्नि ये सब लक्षण अतिलंघनके होते हैं ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

सम्यक् वृंहणके लक्षण ।

वलंपुष्ट्युपलम्भश्चकार्श्यंदोषाविवर्जितम् । लक्षणंवृंहितेस्थौल्यमतिचात्यर्थवृंहिते ॥ ३५ ॥ कृताकृतस्याचिह्नंयल्लंघितेतद्धि रूक्षिते । स्तम्भितःस्याद्वलेलब्धेयथोक्तैश्चामयैर्जितैः ॥३६॥ श्यावतास्तब्धगात्रत्वमुद्वेगोहनुसंग्रहः । हृद्वर्चोनिग्रहश्चस्यादतिस्ताम्भितलक्षणम् ॥ ३७ ॥

बल, पुष्टि, दृढता, अकृशता ये सब लक्षण बृंहणके होतेहैं । अत्यन्त बृंहण होनेसे शरीरमें स्थूलता बढजातीहै ॥ ३५॥ जैसे लंघनके योग और अयोगसे लक्षण होतेहैं वैसेही रूक्षणके योग और मिथ्यायोगसे भी जानने । यथोक्त रोगोंके उपद्रवोंको स्तम्भन द्वारा जीतकर शरीरमें बल प्राप्त होय तो उत्तम स्तम्भन हुआ जानो॥ ३६॥ अति स्तम्भन होनेसे शरीरका रंग काला पडजाताहै और गात्रस्तम्भ, उद्वेग और हनुस्तम्भ, हृदयका उपरोध एवम् मलबद्धता उत्पन्न होजातीहै ॥ ३७ ॥

लक्षणंचकृतानांस्यात्षण्णामेषांसमासतः । तदौषधीनांव्याधीनामशमोवृद्धिरेववा ॥ ३८ ॥ इतिषट्सर्वरोगाणांप्रोक्ताः सम्यगुपक्रमाः । साध्यानांसाधनेसिद्धामात्राकालानुरोधिन इति ॥ ३९ ॥

इस प्रकार लंघनादि६प्रकारके उपयोग होनेसे जो लक्षण होतेहैं उनकी औषधि और धातुओंकी अशान्ति और वृद्धि यह सब कह चुके हैं। इस ६ प्रकारकी चिकित्सा द्वारा मनुष्य सब रोगोंको जीत सकता है, परन्तु यह सब मात्रा, काल आदि विचारकर प्रयोग करनेसे सब साध्यरोगोंको नष्ट कर देतेहैं ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

भवति चात्र ।

दोषाणांबहुसंसर्गात्संकीर्य्यन्तेह्युपक्रमाः । षट्त्वंतुनातिवर्त्तन्तेत्रित्वंवातादयोयथा ॥ ४० ॥ इत्यस्मिंल्लंघनाध्यायेव्याख्याताःषडुपक्रमाः । यथाप्रश्नंभगवताचिकित्सायैःप्रवर्त्तिता ॥ ४१ ॥

इति योजनाचतुष्केलंघनबृंहणीयो नाम द्वाविंशोऽध्यायः समाप्तः ।

वात, पित्त, कफके बहुतसे प्रकार मिश्रित चिकित्सासे नष्टकरनेयोग्य हैं । जैसे वात, पित्त, कफ इन तीन दोषोंके सिवाय और कोई दूषित करनेवाला नहीं है ऐसे ही लंघन प्रभृति ६चिकित्सा भी इन वातादिकसे मिश्रित और पृथक् दोषोंको दूर करनेमें परमोपयोगी हैं।इस प्रकार भगवान् पुनर्वसुजीने अग्निवेशके प्रश्नोंका उत्तर देते हुए इस लंघनबृंहणीयाध्यायमें ६ प्रकारकी चिकित्साका वर्णन कियाहै॥४०॥४१॥

इति श्रीमहर्षिचरक० पं० रामप्रसादवैद्य० भाषाटीकायां योजन चतुष्के लंघनबृंहणीयो नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशोऽध्यायः ।

अथातः सन्तर्पणीयमध्यायंव्याख्यास्याम इतिहस्माह भगवानात्रेयः ।

अब हम संतर्पणीय नामके अध्यायकी व्याख्या करतेहैं ऐसा भगवान् आत्रेय कहनेलगे ।

सन्तर्पणसे होनेवाले रोगोंके सकारण नाम ।

सन्तर्पयतियःस्निग्धैर्मधुरैर्गुरुपिच्छिलैः । नवान्नैर्नवमद्यैश्चमांसैश्चानूपवारिजैः ॥ १ ॥ गोरसैर्गौडिकैश्चान्नैःपिष्टकैश्चातिमात्रशः । चेष्टाद्वेषीदिवास्वप्नशय्यासनसुखेरतः ॥ २ ॥ रोगास्तस्योपजायन्तेसन्तर्पणनिमित्तजाः । प्रमेहकण्डूपिडकाः कोठपाण्ड्वामयज्वराः ३ ॥ कुष्ठान्यामप्रदोषाश्चमूत्रकृच्छ्रमरोचकम् । तन्द्राक्लैब्यमतिस्थौल्यमालस्यंगुरुगात्रता ॥ ४ ॥ इन्द्रियेस्रोतसांरोधोबुद्धेर्मोहःप्रमीलकः। शोफाश्चैवंविधाश्चान्येशीघ्रमप्रतिकुर्वतः ॥ ५ ॥

जिस प्रकार चिकने, मीठे, भारी और पिच्छिल द्रव्य तथा नवीन अन्न मद्य, अनूपसंचारी जीवोंका मांस, जलचर जीवोंका मांस दूध और मिठाई, पुष्ट पदार्थ तृप्तिपूर्वक भोजन करनेसे संतर्पण होताहै । उसी प्रकार व्यायाम न करना, दिनमें सोना, सोने बैठनेके सुखमें आरामसे रहना इनसे प्रमेह, खुजली, पिडका, कोष्ठरोग, पाण्डुरोग, ज्वर, कुष्ठ, आमदोष, मूत्रकृच्छ्र, अरुचि, तन्द्रा, नपुंसकता, मेदरोग, आलस्य, भारीपन, इन्द्रियोंके स्रोतोंका अवरोध, बुद्धिनाश, प्रमीलक, सूजन आदि अनेक प्रकारके रोग उत्पन्न होवेहैं ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥

संतर्पणसे उत्पन्नहुए रोगोंमें चिकित्सा क्रम ।

शतमुल्लेखनंतेषांविरेकोरक्तमोक्षणम् । व्यायामश्चोपवासश्चधूमाश्चस्वेदनानिच ॥ ६ ॥ सक्षौद्रश्चाभयाप्रासःप्रायोरूक्षान्नसेवनम् । चूर्णप्रदेहायेचोक्ताःकण्डूकोठविनाशनाः ॥ ७ ॥

अधिक संतर्पणसे उत्पन्न हुए रोगोंमें वमन कराना, विरेचन, रक्तमोक्षण, व्यायाम, उपवास, धूम्रपान, स्वेदन मधुके साथ हर्डका खाना और रूक्ष अन्नपानका

संतर्पणज प्रमेहादिपर क्राथ ।

तक्राभयाप्रयोगैश्चत्रिफलायास्तथैवच ।
अरिष्टानांप्रयोगैश्चयान्तिमेहादयःशमम् ॥ १५ ॥

तक्र, हरड, त्रिफला और ऐसे ही अरिष्टोंके प्रयोग करनेसे प्रमेह आदि रोग नाशको प्राप्त होतेहैं ॥ १५ ॥

त्र्यूषणंत्रिफलाक्षौद्रंक्रिमिघ्नंसाजमोदकम् ।
मन्थोऽयंसक्तवःसर्पिर्हितोलोहोदकाप्लुतः ॥ १६ ॥

सोंठ, मिर्च, पीपल, त्रिफला, शहद, विंडग, अजमोद इन सबके चूर्णमें अगर का जल और सत्तू तथा घी इनका मंथ बनाकर पीवे तो संतर्पणसे उत्पन्न हुए सब रोग नष्ट होतेहैं ॥ १६ ॥

संतर्पणजनितरोगोंकी चिकित्सा ।

व्योषंविडङ्गंशिग्रूणित्रिफलाकटुरोहिणी । बृहत्यौद्वेहरिद्रेद्वेपाठासातिविषास्थिरा । हिङ्गुकेबुकमूलानियवानीधान्यचित्रकम् ॥ १७ ॥ सौवर्चलमजाजीश्चहवुषांचेतिचूर्णयेत् । चूर्णतैलघृतक्षौद्रभागाःस्युर्मानतःसमाः ॥१८॥ सक्तूनांषोडशगुणो भागःसन्तर्पणंपिबेत् । प्रयोगादस्यशाम्यन्तिरोगाःसन्तर्पणोत्थिताः ॥ १९ ॥ प्रमेहामूढवाताश्चकुष्ठान्यर्शांसिकामलाः । प्लीहापाण्डूवामयःशोफोमूत्रकृच्छ्रमरोचकः ॥ २० ॥ हृद्रोगोराजयक्ष्माचकासःश्वासोगलग्रहः । क्रिमयोग्रहणीदोषाःश्वैत्र्यंस्थौल्यमतीवच । नराणांदीप्यतेचाग्निःस्मृतिर्बुद्धिश्च वर्द्धते ॥ २१ ॥

सोंठ, मिर्च, पीपल, सोहाञ्जनेके बीज, हरड, बहेडा, आमला, कुटकी, दोनों कटेली, हलदी, दारुहलदी, पाठा, अतीश, शालपर्णी, हींग, केवूककी जड, अजवायन, धनियां, चित्रक, संचरनमक, कालाजीरा, हाऊबेर इन सबका चूर्ण करके चूर्णके समान तैल, घी और शहद मिलावे तथा १६ गुना सत्तू मिलावे। इस औषधिके सेवनसे संतर्पणसे उत्पन्न हुआ प्रमेह और ऊर्ध्ववात कुष्ठ, अर्श, कामला, प्लीहा, पांडु, सूजन, मूत्रकृच्छ्र, अरुचि, हृद्रोग, यक्ष्मा, कास, श्वास, गलग्रह, कृमि, ग्रहणी,

स्थूलता चित्र ये सव नष्ट होतेहैं और अग्नि चैतन्य होतीहैं तथा स्मृति और बुद्धिकी वृद्धि होती है ॥१७॥ १८ ॥१९ ॥ २० ॥ २१ ॥

व्यायामनित्योजीर्णाशीयवगोधूमभोजनः ।
सन्तर्पणकृतैर्दोषैर्मुक्तास्थौल्याद्विमुच्यते ॥ २२ ॥

नित्य व्यायाम करनेवाला तथा उचित रीति पर भोजन करनेवाला मनुष्य जौ, गेहूँ भोजन करते हुए भी संतर्पणसे उत्पन्न हुए रोगोंसे तथा स्थूलतासे छूट जाताहै ॥ २२ ॥

उक्तसन्तर्पणोत्थानामपतर्पणमौषधम् ।
वक्ष्यन्तेसौषधाश्चोर्ध्वमपतर्पणजागदाः ॥ २३ ॥

इस प्रकार संतर्पणसे उत्पन्न हुए रोगोंकी औषधियां वर्णन करचुके हैं अब लंघनसे उत्पन्न हुए रोगोंकी औषधियां कहतेहैं ॥ २३ ॥

अतर्पणजन्य रोगोंके नाम और चिकित्सा ।

देहाग्निवलवर्णौजःशुक्रमांसवलक्षयः।ज्वरःकासानुवन्धश्चपार्श्वशूलमरोचकः॥ २४ ॥ श्रोत्रदौर्वल्यमुन्मादःप्रलापोहृदयव्यथा । विण्मूत्रसंग्रहःशूलंजघोरुत्रिकसंश्रयम् ॥ २५ ॥ पर्वास्थिसन्धिभेदश्चयेचान्येवातजागदाः । ऊर्ध्ववातादयः सर्वे जायन्तेतेऽपतर्पणात् ॥ २६ ॥

अत्यन्त लंघन करनेसे अथवा अनुचित रीति पर लंघन करनेसे शरीर, जठराग्नि, वल, वर्ण, ओज, शुक्र, मांस और वलका क्षय होताहै और ज्वर, खांसी इनका अनुवंध पार्श्वशूल, अरुचि और श्रवणशक्तिकी दुर्वलता, उन्माद, वकवाद, हृदयमें पीडा, मल मूत्रका विवंध, जंघा और ऊरु तथा त्रिकस्थानमें पीडा और पर्व, अस्थि, सन्धि इनमें भेदनकीसी पीडा, ऊर्ध्ववात आदिक वहुतसे रोग उत्पन्न होते हैं ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥

तेषांसन्तर्पणंतज्ज्ञैः पुनराख्यातमौषधम् ।यत्तदात्वेसमर्थस्याद्भ्यासेवातादिष्यते ॥ २७ ॥ सद्यःक्षीणोहिसद्योवैतर्पणेनोपचीयते। नंत्तसन्तर्पणाभ्यासाच्चिरक्षीणस्तुपुष्यति ॥ २८ ॥ देहाग्निदोषभेषज्यमात्राकालानुवर्त्तिना । कार्य्यमत्वरमाणेन भेषजंचिरदुर्वले॥ २९ ॥ हितामांसरसास्तस्मैपयांसिचघृता-

निच । स्नानानिबस्तयोऽभ्यङ्गास्तर्पणास्तर्पणाश्चये ॥ ३० ॥
ज्वरकासप्रसक्तानांकृशानांमूत्रकृच्छ्रिणाम् । तृष्यतामूर्द्ध्ववा-
तानांहितंवक्ष्यामितर्पणम् ॥ ३१ ॥

इन लंघनसे उत्पन्न हुए रोगोंमें संतर्पणके जाननेवाले वैद्योंको उचित रीतिपर हलके संतर्पणसे अभ्यास कराकर सामर्थ्यानुसार संतर्पणकी मात्राको वढाना चाहिये । जो मनुष्य अवतर्पण (लंघन) से शीघ्र क्षीण हुआहो वह संतर्पणके सेवनसे शीघ्रही पुष्ट होजाताहै और जो मनुष्य वहुत दिनका क्षीण है वह कुछ काल पर्यन्त संतर्पणका अभ्यास करने विना पुष्ट नहीं होसकता ॥२७॥२८॥ जो मनुष्य वहुत दिनसे क्षीण होरहा हो उसके देह, अग्नि, वल और दोषको विचार-कर तथा औषध, मात्रा, और कालका विचार करते हुए अल्प २ (थोडी २) मात्रासे संतर्पणका अभ्यास करना चाहिये ॥ २९ ॥ वहुत रोजसे क्षीण हुए मनुष्यके लिये मांसरस, दूध, घृत, स्नान, वस्तिकर्म और अभ्यंग एवम् अनेक प्रकारके तर्पण योग्य रीति पर उपयोग करना चाहिये ॥ ३० ॥ जो मनुष्य ज्वर और खांसीसे पीडित हो, कृश हो, मूत्रकृच्छ्र रोगवाला, तृषायुक्त एवम् ऊर्द्ध्व-वातवाला हो ऐसे रोगियोंके लिये हितकारी संतर्पणोंका कथन करतेहैं ॥ ३१ ॥

पुष्टिकर्त्ता मन्थ ।

शर्करापिप्पलीतैलघृतक्षौद्रसमांशकैः ।
सक्तुर्द्विगुणितोवृष्यस्तेषांमन्थःप्रशस्यते ॥ ३२ ॥

खांड, पीपल, तैल, घृत, मधु इनको समान भाग लेकर इनमें उनके दूने सत्तू मिलावे यह मंथ सव प्रकारके क्षीण मनुष्योंके लिये परम हितकारी है ॥ ३२ ॥

विण्मूत्रानुलोमी तर्पण ।

सक्तवोमदिराक्षौद्रंशर्कराचेतितर्पणम् ।
पिवेन्मारुतविण्मूत्रकफपित्तानुलोमनम् ॥ ३३ ॥

सत्तू, मद्य, शहद, खांड इनका तर्पण सेवन करनेसे वायु, मल, मूत्र और कफ तथा पित्तका अनुलोमन होताहै ॥ ३३ ॥

मूत्रकृच्छ्रादिनाशक तर्पण ।

फाणितंसक्तवःसर्पिर्दधिमण्डोऽम्लकाञ्जिकम् ।
तर्पणंमूत्रकृच्छ्रघ्नमुदावर्त्तहरंपिवेत् ॥ ३४ ॥

फाणित, सत्तू, घृत, दही,मंड, खट्टी कांजी इनका तर्पण पीनेसे मूत्रकृच्छ्र और उदावर्तका नाश होताहै ॥ ३४ ॥

मन्थःखर्जूरमृद्वीकावृक्षाम्लाम्लीकदाडिमैः ।
पुरूषकैःसामलकैर्युक्तोमद्यविकारनुत् ॥ ३५ ॥

छुहाडा, मुनक्का, ततडीक, इमली, अनारदाना, फालसा, आँवले इन सबका बनाया मंथ मद्य पीनेसे हुए विकारोंको नष्ट करताहै ॥ ३५ ॥

वलवर्णदायक सन्तर्पण ।

स्वादुरम्लोजलकृतःसस्नेहोरूक्षएववा ।
सद्यःसन्तर्पणोमन्थःस्थैर्य्यवर्णवलप्रदः ॥ ३६ ॥

मीठे और खट्टे पदार्थोंको लेकर जलके संयोगसे मंथ वनावे अथवा मीठे खट्टे पदार्थोंका स्वरस स्नेहनके साथ या रूखा ही पीनेसे शरीरमें स्थिरता होती है और वल तथा वर्णकी वृद्धि होतीहै ॥ ३६ ॥

तत्रश्लोकः ।

सन्तर्पणोत्थायेरोगारोगायेचापतर्पणात् ।
सन्तर्पणीयेतेऽध्यायेसौषधाःपरिकीर्त्तिताः ॥ ३७ ॥
इतिसन्तर्पणीयोऽध्यायःसमाप्तः ।

इस संतर्पणीय नामक अध्यायमें संतर्पणसे उत्पन्न हुए रोगोंका और लंघनसे उत्पन्न हुए रोगोंका वर्णन तथा उनकी चिकित्साका वर्णन किया गयाहै ॥ ३७ ॥

इति श्रीमहर्षिचरक० पं०रामप्रसाद०भाषाटीकायां सन्तर्पणीयो नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशोऽध्यायः ।

अथातोविधिशोणितीयमध्यायंव्याख्यास्यामः इतिहस्माह भगवानात्रेयः ।

अब हम विधिशोणितीय नामके अध्यायकी व्याख्या करतेहैं, ऐसा आत्रेय भगवान् कहनेलगे ।

शुद्ध रक्तके गुण ।

विधिनाशोणितंजातंशुद्धंभवतिदेहिनाम् । देशकालौकसा-
त्म्यानांविधिर्यःसंप्रदर्शितः ॥ १ ॥ तद्विशुद्धंहिरुधिरंवलवर्ण-

सुखायुषा । युनक्तिप्राणिनंप्राणःशोणितंह्यनुवर्त्तते ॥ २ ॥

देश, काल विचारकर आत्माके अनुकूल व्यवहार करनेवाले मनुष्योंके शरीरमें जिस प्रकार शुद्ध रक्त रहे वह विधि हम प्रकाशित करते हैं, क्योंकि शरीरमें शुद्ध रक्तके रहनेसे बल, वर्ण, सुख और आयुकी वृद्धि होती है कारण कि मनुष्योंके शरीरोंमें प्राण रुधिरके अनुवर्ती होते हैं ॥ १ ॥ २ ॥

प्रदुष्टबहुतीक्ष्णोष्णैर्मद्यैरन्यैश्चतद्विधैः।तथातिलवणक्षारैरम्लैः कटुभिरेवच॥३ ॥ कुलत्थमाषनिष्पावतिलतैलानिषेवणैः ।पिण्डालुमूलकादीनांहरितानाञ्चसर्वशः॥४॥जलजानूपवैलानांप्रसहानांचसेवनात् । दध्यम्लमस्तुसक्तूनांसुरासौवीरकस्यच॥ ॥५॥ विरुद्धानामुपक्लिन्नपूतीनांभक्षणेनच । भुक्त्वादिवाप्रस्वपतांद्रवस्निग्धगुरूणिच ॥ ६ ॥अत्यादानंतथाक्रोधंभजतां चातपानलौ । छर्दिवेगप्रतीघातात्कालेचानवसेचनात् ॥ ७ ॥ श्रमाभिघातसन्तापैरजीर्णाध्यशनैस्तथा । शरत्कालस्वभावाच्चशोणितंसंप्रदुष्यति ॥ ८ ॥

अब रुधिरके दूषित करनेवाले कारणोंको कहते हैं । खराब हुए बहुतसे तीक्ष्ण, गर्म पदार्थोंके सेवनसे मादक द्रव्य, लवण, क्षार, खटाई, चर्परे पदार्थ, कुलथी, उडद, सेम, तिल, तैल, पिंडालु, मूली, सज्जी तथा जलसंचारी और अनूपसंचारी एवम् विलेशय और प्रसह आदि जीवोंके मांस खानेसे, दही, कांजी, दहीका तोड, सत्तू, सुरा, सौवीर इनके सेवनसे एवम् अपनी आत्माके विरुद्ध आहार करनेसे तथा क्लिन्न, सडाबुसा आहार बहुत सेवन करनेसे शरीरमेंका रक्त दूषित होताहै । इसी प्रकार पतले, चिकने और भारी भोजन करनेसे, दिनमें सोनेसे, मात्रासे अधिक भोजन करनेसे और क्रोध, धूप, अग्नि इनके सेवन करनेसे, वमनका वेग रोकनेसे, समयोचित रक्तमोक्षण न करानेसेभी रक्त दूषित होताहै। तथा परिश्रम, चोट लगना, अजीर्ण होना, विना पचे भोजन करना इत्यादि कारणोंसे भी रक्त दूषित होताहै एवम् शरद ऋतुमें स्वभावसे ही रक्तके दूषित होनेका समयहै॥ ३॥४॥५॥६॥७॥८॥

दूषितरक्तके उपद्रव ।

ततःशोणितजारोगाःप्रजायन्तेपृथग्विधाः । मुखपाकोऽक्षिरोगश्चपतिघ्राणास्यगन्धता ॥ ९ ॥ गुल्मोपदंशवीसर्परक्तपित्त-

प्रमीलकाः । विद्रधीरक्तमेहश्चप्रदरोवातशोणितम् ॥ १० ॥
वैवर्ण्यमग्निनाशश्चपिपासागुरुगात्रता।सन्तापश्चातिदौर्बल्यम-
रुचिःशिरसश्चरुक् ॥ ११ ॥ विदाहश्चान्नपानस्यतिक्ताम्लो-
द्गरणंक्लमः। क्रोधप्रचुरतावुद्धेःसंमोहोलवणास्यता ॥ १२ ॥
स्वेदःशरीरदौर्गन्ध्यंमदःकम्पःस्वरक्षयः।तन्द्रानिद्रातियोग-
श्चतमसश्चातिदर्शनम् ॥ १३ ॥ कण्डूरुक्कोठपिडकाः कुष्ठ-
चर्मदलादयः । विकाराःसर्वएवैतेविज्ञेयाःशोणिताश्रयाः॥ १४ ॥

फिर वह दुष्ट हुआ रक्त अनेक प्रकारके रोगोंको उत्पन्न करताहै।उन रोगोंका यहां वर्णन करतेहैं मुखरोग तथा मुख, नाक और नेत्रोंका परिपाक होना, नाकसे और मुखसे दुर्गन्ध आना, गुल्म, उपदंश, विसर्प, रक्तपित्त, प्रमीलक, विद्रधि, रक्तमूत्र (पेशाबमें रक्तका आना),प्रदर, वातरक्त,शरीरकी विवर्णता,मंदाग्नि,प्यास,भारीपन, संताप, अति दुर्वलता,अरोचक, मस्तकपीडा, अन्नपानका विदाही परिपाक होना, खट्टे तथा कडुए डकार आना,क्लम,क्रोधकी अधिकता, बुद्धिका नाश,मुखका,नमकीन स्वाद, दुर्गंधित स्वेद, शरीरमें दुर्गंध, मस्ती, कम्प, स्वरभंग, तन्द्रा, अत्यन्त निद्रा, अंधकार, खाज, पीडा, कोष्ठरोग, पिडका, कुष्ठ चर्मदल ऐसे२ रोग रक्तके दूषित होनेसे उत्पन्न होते हैं ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥

शीतोष्णस्निग्धरूक्षाद्यैरुपक्रान्ताश्चयेगदाः ।
सम्यक्साध्यानसिध्यन्तिरक्तजांस्तान्विभावयेत् ॥१५॥

इसी प्रकार जो रोग साध्य प्रतीत होने पर भी शीतल, उष्ण तथा रूक्ष आदि क्रिया करनेपर भी शांत नहीं होते उनको भी रक्तके विकारसे उत्पन्न हुआ जानना ॥ १५ ॥

दूषितरक्तमें कर्तव्य कर्म ।

कुर्याच्छोणितरोगेषुरक्तपित्तहरींक्रियाम् ।
विरेकमुपवासंवास्रावणंशोणितस्यवा ॥ १६ ॥

रक्तके विकारोंमें रक्तपित्तनाशक क्रिया, विरेचन, उपवास एवम् रक्तका निकालना ऐसे २ उपायोंको करे । रक्तमोक्षण (फस्त खुलाना) के समय देश, काल, बल और दोष एवम् शुद्धरक्तका प्रमाण जानकर तथा शारीरिक स्थान परीक्षा करके ही रुधिर निकालना चाहिये ॥ १६ ॥

वातादिदोषोंसे दूषित रक्तके लक्षण ।

बलदोषप्रमाणाद्वाविशुद्ध्यारुधिरस्यवा । रुधिरंस्त्रावयेजन्तो-
राशयंप्रसमीक्ष्यवा ॥ १७ ॥ अरुणाभंभवेद्वातात्पिच्छिलंफ-
निलंतनु । पित्तात्पीतासितंरक्तंसौष्ण्यात्यायातिवैचिरात् ॥
॥ १८ ॥ ईषत्पाण्डुकफाद्दुष्टंपिच्छिलंतन्तुमद्घनम् । द्विदोष-
लिङ्गंसंसर्गात्त्रिलिङ्गंसान्निपातिकम् ॥ १९ ॥

वायुसे दूषितहुआ रक्त–लाल,झागदार, पिच्छिल और पतला होताहै ।पित्तसें दूषित हुआ रक्त-पीला, काला, लाल, गर्म और देरमें जमनेवाला होताहै ॥ १७॥ इसी प्रकार कफसे दूषितहुआ रक्त–कुछ २ पांडुवर्णका, पिच्छिल, तारयुक्त,गाढा होताहै । दो दोषोंके लक्षणोंवाला दो दोषोंसे दूषित जानना एवम् त्रिदोषके लक्षण मिलनेसे तीनों दोषोंसे दूषित समझना चाहिये ॥ १८ ॥ १९ ॥

शुद्धरक्तके लक्षण ।

तपनीयेन्द्रगोपाभंपद्मालक्तकसन्निभम् । गुञ्जाफलसवर्णञ्च
विशुद्धंविद्धिशोणितम् ॥ २० ॥

जो रक्त सुवर्णके समान तथा वीरबहूटीके समान लाल वर्णका हो एवम् पद्मराग माणिके समान प्रकाशवाला हो अथवा रक्तक (चिरमटी, घुंघची) के वर्णसमान लाल रंगका होताहै वह शुद्ध रक्त जानना ॥ २० ॥

रक्तमोक्षणानन्तर कर्तव्य ।

नात्युष्णशीतंलघुदीपनीयंरक्तेऽपनीतेहितमन्नपानम् ।
तदाशरीरंह्यनवास्थितासृगग्निर्विशेषेणचरक्षितव्यम् ॥ २१ ॥

रक्त निकलवानेके अनन्तर जो अधिक गर्म तथा अधिक शीतल न हो ऐसा हलका और अग्निको उद्दीपन करनेवाला अन्नपान सेवन करना चाहिये क्योंकि रक्तकी ताकतसे ही अन्नका परिपाक होताहै सो रुधिर निकल जाने पर शरीरमें रक्तकी स्थिरता नहीं रहती इसलिये ऐसे समय पाचन करनेवाली अग्निकी विधिपूर्वक रक्षा करनी चाहिये ॥ २१ ॥

प्रसन्नवर्णेन्द्रियमिन्द्रियार्थानिच्छन्तमव्याहतपक्तृवेगम् ।
सुखान्वितंतुष्टिबलोपपन्नंविशुद्धरक्तंपुरुषंवदन्ति ॥ २२ ॥

मनुष्यके शरीरमें रक्तके शुद्ध होजानेसे वर्ण और इन्द्रियोंकी प्रसन्नता होतीहै तथा भोगकी इच्छा, पाचनशक्ति, सुख, पुष्टि और बलकी वृद्धि होतीहै ॥ २२ ॥

मदमूर्छादिके हेतु ।

यदातुरक्तवाहीनिरससंज्ञावहीनिच । पृथक्पृथक्समस्तावा स्रोतांसिकुपितामलाः ॥२३॥ मलिनाहारशीलस्यरजोमोहावृतात्मनः । प्रतिहत्यावतिष्ठन्तेंयाजन्तेव्याधयस्तदा ॥२४॥ मदमूर्च्छायसंन्यासास्तेषांविद्याद्विचक्षणः । यथोत्तरंबलाधिक्यंहेतुलिङ्गोपशान्तिषु ॥ २५ ॥

जो मनुष्य सडेवुसे दूषित भोजनको करताहै उसके शरीरमें वात आदि दोष कुपित होकर अलग २ अथवा मिलकर रक्तवाहिनी नसोंको दूषित करके उनमें रहतेहैं ॥ २३॥ तव उस दूषित आहारके करनेवाले मनुष्यके शरीरमें अनेक प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं ॥ २४ ॥ जैसे–उन्माद, मूर्छा, संन्यास (वेहोशी) इत्यादि इस लिये बुद्धिमान् वैद्यको हेतु, लक्षण, उपशय इनको विचारकर चिकित्सा करना चाहिये । रक्तमें दोषके वलवान् होनेसे मद, मूर्च्छा, संन्यास यह तीनों प्रथमकी अपेक्षा दूसरा, दूसरेकी अपेक्षा तीसरा घोरतर होताहै । दूसरी वात यह है कि वढेहुए दोषोंसे दूषित हुए रक्तविकारोंको कारण और लक्षणोंसे उपशम अर्थात् उपाय द्वारा शान्त करना भारी वात है ॥ २५ ॥

दुर्वलश्चेतसःस्थानंयदावायुःप्रपद्यते । मनोविक्षोभयञ्जन्तोः संज्ञांसंमोहयेत्तदा ॥ २६ ॥ पित्तमेवंकफश्चैवंमनोविक्षोभयन्नृणाम् । संज्ञांनयत्याकुलतांविशेषश्चात्रवक्ष्यते ॥ २७ ॥

जव मनुष्यके दुर्वल चित्तमें कुपित होकर वायु प्रवेश करता है उस समय उस मनुष्यके मनको चञ्चल करके ज्ञानको विगाड देताहै ॥ २६ ॥ इसी प्रकार कुपित हुआ पित्त और कफ मनुष्योंके मनको चञ्चल करता हुआ ज्ञानको नष्ट करदेताहै । उसीको विशेष रूपसे वर्णन करतेहैं ॥ २७ ॥

वातादिकृत उन्मादका लक्षण ।

सक्तानल्पद्रुताभाषंचलस्खलितचेष्टितम् ।
विद्याद्वातमदाविष्टंरूक्षश्यावारुणाकृतिम् ॥ २८ ॥

वातजनित मदरोगमें मनुष्य जल्दी २ और अधिक वकवाद करताहै । उसका स्वभाव चंचल होजाताहै एवम् चेष्टा स्खलित होजाती है तथा आकृति रूखी, काली और लालसी होतीहै । ऐसे मनुष्यको वायुके मदसे दूषित जानना ॥ २८ ॥

सक्रोधपरुषाभाषंसंप्रहारकलिप्रियम् ।
विद्यात्पित्तमदाविष्टंरक्तपीतसिताकृतिम् ॥ २९ ॥

पित्तजनित मदमें मनुष्य क्रोधयुक्त और कटु भाषण करनेवाला तथा मारनेको दौडनेवाला और कलह करनेवाला होता है । उसका वर्ण लाल, पीला और काले रंगका होता है ॥ २९ ॥

स्वल्पसम्बन्धवचनंतन्द्रालस्यसमन्वितम् ।
विद्यात्कफमदाविष्टंपाण्डुंप्रध्यानतत्परम् ॥ ३० ॥

कफजनित मदरोगमें अंटसंट बकना, तंद्रा, आलस्य इन लक्षणोंवाला होताहै और उसका वर्ण पांडुरंगका होता है तथा वह फूत्कार करनेमें तत्पर रहताहै॥ ३०॥

सर्वाण्येतानिरूपाणिसन्निपातकृतेमदे। जायन्तेशाम्यतित्वाशुमदोमद्यमदाकृतिः ॥ ३१ ॥ यश्चमद्यमदःप्रोक्तोविषजोरौधिरश्चयः । सर्वएतेमदानर्तेवातापित्तकफात्रयात् ॥ ३२ ॥

तीन दोषोंके लक्षण मिलनेसे त्रिदोषज मदरोग जानना । मद्यपानसे उत्पन्न हुआ मदरोग शीघ्र ही प्रगट होजाताहै और शीघ्र ही नाशको प्राप्त होताहै । अन्य भी जितने प्रकारके मदरोग हैं जैसे-मदजनित, विषजनित, रक्तजनित यह सब वात पित्त, कफके आश्रय होकर ही होतेहैं ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

वातादिजनितमूर्च्छाका लक्षण ।

नीलंवायादिवाकृष्णमाकाशमथवारुणम् ।पश्यंस्तमःप्रविशतिशीघ्रश्चप्रतिबुध्यते ॥ ३३ ॥ वेपथुश्चाङ्गमर्दश्चप्रपीडाहृदयस्यच । कार्श्यंश्यावारुणाच्छायामूर्च्छायेवातसम्भवे ॥ ३४ ॥

जो मनुष्य आकाशको नीला, काला, लाल देखताहुआ झटझट अपने आपको अन्धकारमें प्रवेश होता मालूम करे, शीघ्र ही होशमें आजाय तथा जिसके शरीरमें कम्प, अंगमर्द, हृत्पीडा, कृशता,श्यामता तथा अरुणता प्रतीत हो उसको वातजनित मूर्च्छा जानना चाहिये ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

रक्तंहरितवर्णंवावियत्पीतमथापिवा । पश्यंस्तमःप्रविशतिसस्वेदश्चप्रबुध्यते ॥ ३५ ॥ सपिपासःससन्तापोरक्तपित्ताकुलेक्षणः । संभिन्नवर्चाःपीताभोमूर्च्छायेपित्तसम्भवे ॥ ३६ ॥

पित्तकी मूर्च्छामें आकाश लाल,हरित,पीला दिखाई देकर झट अंधकारमें प्रवेश

होना प्रतीत होताहै और अत्यन्त पसीना आकर फिर होशमें आजाताहै फिर उसको प्यास, संताप लाल पीले नेत्र, दस्त, देहका वर्ण पीला ये लक्षण होतेहैं॥ ३५॥ ३६॥

मेघसङ्काशमाकाशमावृतंवातमोघनैः । पश्यंस्तमःप्रविशति चिराच्चप्रतिबुध्यते ॥ ३७ ॥ गुरुभिःप्रावृतैरङ्गैर्यथैवार्द्रेणच- र्म्मणा । सप्रसेकःसहृल्लासोमूर्च्छायेकफसम्भवे ॥ ३८ ॥

कफकी मूर्च्छामें मनुष्य आकाशको वादलोंसे ढकाहुआ और अंधेरी छाई हुई देखते २ अंधकारमें प्रवेश करताहै बहुत देरमें होश आने पर अपने शरीरको गीले वस्त्रसे ढकासा प्रतीत करताहै । मुखसे पानीका वहना, और हृल्लास (जीमच- लाना) यह लक्षण होतेहैं ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

सर्वाकृतिःसान्निपातादपस्मारइवागतः ।
सजन्तुंपातयत्याशुविनावीभत्सचेष्टितैः ॥ ३९ ॥

सान्निपातकी मूर्च्छामें अपस्मार (मृगी) रोगके समान लक्षण होतेहैं अन्तर केवल इतनाही होताहै कि अपस्मारमें वीभत्स (भयानक) चेष्टा नहीं होती और सान्निपा तकी मूर्च्छामें होतीहै ॥ ३९ ॥

दोषेषुमदमूर्च्छायाःकृतवेगेषुदेहिनाम् ।
स्वयमेवोपशाम्यन्तिसन्यासोनौषधैर्विना ॥ ४० ॥

मदसे उत्पन्नहुई मूर्छामें दोषोंका वेग शान्त होनेपर मूर्छा भी स्वयम् शान्त होजा- ताहै । परन्तु संन्यासरोग विना औषधिके कदापि शान्त नहीं होता ॥ ४० ॥

संन्यास रोगका लक्षण ।

वाग्देहमनसांचेष्टामाक्षिप्यातिबलामलाः । संन्यस्यन्त्यबलं जन्तुप्राणायतनसंश्रिताः ॥४१॥ सनासंन्याससंन्यस्तःकाष्ठ- भूतोमृतोपमः । प्राणैर्वियुज्यतेशीघ्रंमुक्त्वासद्यःफलांक्रि- याम् ॥ ४२ ॥

वात, पित्त, कफ अत्यन्त कुपित होनेसे प्राणोंका आश्रय लेते हुए जब देह, मन और वाणीकी क्रियाको नष्ट कर देतेहैं तब मनुष्य पृथ्वी पर गिरकर वेहोश पडा रहताहै । इस रोगको संन्यास रोग कहतेहैं । संन्यासरोगमें मनुष्य गिरकर लकडीके समान मराहुआ सा पडा रहताहै । उस समय यदि शीघ्र फल देनेवाली चिकि- त्सा न की जाय तो वह मनुष्य मृत्युको प्राप्त होजाताहै ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

संन्यासरोगकी चिकित्सामें शीघ्रता ।

दुर्गेऽम्भसियथामज्जद्भाजनन्त्वरयाबुधः ।
गृह्णीयात्तलमप्राप्तंतथासंन्यासपीडितम् ॥ ४३ ॥

जैसें अथाह जलमें डूबते हुए पात्रको डूबजानेसे पहिले ही निकाल लिया जाय तब वह हाथ लग सकताहै नहीं तो फिर उसका हाथ आना कठिन होताहै । इसी प्रकार संन्यासरोगीका रोग भी जबतक जड न पकडलेवे तबतक उसकी चिकित्सा करनेसे वह अच्छा हो सकता है । नहीं तो उसका बचना भी कठिन है ॥ ४३ ॥

संन्यासरोगमें चिकित्सा ।

अञ्जनान्यवपीडाश्चधूमःप्रधमनानिच । सूचीभिस्तोदनंशस्त्रैर्दाहःपीडानखान्तरे ॥ ४४॥ लुञ्चनंकेशलोम्नांचदन्तैर्दशनमेवच । आत्मगुप्तावघर्षाश्चहितास्तस्यावबोधने ॥ ४५ ॥

अब संन्यासरोगकी चिकित्सा कहतेहैं । संन्यास रोगमें होश लानेके लियें अंजन और पीडन, नस्य, धूम्रप्रयोग, प्रधमन, नस्य, सूई चुभाना, शस्त्रसे दाग देना, नखोंका पीडन करना, बालोंको खींचना, दांतोंसे काटना, कौंचकी फली लगाना आदि उपाय करने चाहिये। ऐसा करनेसे संन्यास छूटकर चैतन्यता लाभ होसकती है ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

संमूर्छितानितीक्ष्णानिमद्यानिविविधानिच । प्रभूतकटुतिक्तानितस्यास्येगालयेन्मुहुः ॥ ४६ ॥ मातुलुङ्गरसंतद्वन्महौषधसमायुतम् । तद्वत्सौवीरकंदद्याद्युक्तंमद्याम्लकाञ्जिकैः॥४७॥ हिङ्गूषणसमायुक्तंयावत्संज्ञाप्रबोधनात्। प्रबुद्धसंज्ञमन्नैश्चलघुभिस्तमुपाचरेत् ॥ ४८ ॥ विस्मापनैःस्मारणैश्चप्रियश्रुतिभिरेवच । पटुभिर्गीतवादित्रशब्दैश्चित्रैश्चदर्शनैः ॥ ४९ ॥ स्रंसनोल्लेखनैर्धूमैरञ्जनैःकवलग्रहैः। शोणितस्यावसेकैश्चव्यायामोद्धर्षणैस्तथा ॥ ५० ॥

बेहोश मनुष्यको जब तक होश न आवे तब तक उसके मुख पर अनेक तरहके संमूर्च्छित और तीक्ष्ण मद्य तथा अत्यन्त चरपरे रसयुक्त पतले पदार्थोंके छींटे देने चाहिये ॥ ४६ ॥ विजौरेके रसमें सोंठका चूर्ण और काला नमक मिलाकर अथवा संचर नमक मिलाकर मद्य एवम् खट्टी कांजी, हींग और मिर्चका चूर्ण मिलाकर

अथवा हींग और मिर्चका चूर्ण ही होश आनेके लिये देना चाहिये । जवतक रोगीको होश आये उसको हलका अन्न भोजन कराना चाहिये ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ कौतूहलजनक उपाय और होशके लानेवाली बातोंको एवम् जो प्रिय लगे ऐसे मीठे वचन और गीत, वाजा यह उसको सुनावे । एवम् विचित्र शब्द और नये २ वस्तुयें दिखावे ॥ ४९ ॥ बुद्धिमान् वैद्यको उचित है कि होश लानेके लिये युक्तिपूर्वक मलको निकाले तथा वमन, धूम्रपान, अंजन, कुछे, परिश्रम, रक्त मोक्षण, उद्धर्पण आदि कर्मों द्वारा चिकित्सा करे ॥ ५० ॥

प्रवुद्धसंज्ञंमातिमाननुवद्धमुपाचरेत् ।
तस्यसंरक्षितव्यंहिमनःप्रलयहेतुतः ॥ ५१ ॥

होश आनेके अनन्तर भी विधिपूर्वक यत्न करते रहना चाहिये और जिस प्रकार उसका मन खराव न हो तथा अन्य रोग अपना अधिकार न करनेपावें वैसा यत्न करता रहे ॥ ५१ ॥

स्नेहस्वेदोपपन्नानांयथादोषंयथावलम् ।
पञ्चकर्माणिकुर्वीतमूर्च्छायेपुमदेषुच ॥ ५२ ॥

मूर्च्छा और मदरोगमें मनुष्यका दोष और वल विचारकर फिर स्नेहन और स्वेदन करके विधिपूर्वक वमन विरेचनादि पंचकर्म द्वारा दोष हरना चाहिये ॥५२॥

अष्टाविंशत्यौषधस्याथवातिक्तस्यसर्पिषः । प्रयोगःशस्यतेत-द्वन्महतःपट्पलस्यवा ॥ ५३ ॥ त्रिफलायाःप्रयोगोवासघृत-क्षौद्रशर्करः । शिलाजतुप्रयोगोवाप्रयोगःपयसोऽपिवा ॥५४ ॥ पिप्पलीनांप्रयोगोवाप्रयोगश्चित्रकस्यवा । रसायनानांकौम्भ-स्यसर्पिषोवाप्रशस्यते ॥ ५५ ॥

मूर्च्छा और मदात्ययकी निवृत्तिके लिये अट्ठाईस औषधियोंसे सिद्ध किया हुआ कल्याणघृत, तिक्तकघृत, महापट्पलघृत, अथवा त्रिफलाघृत वा वांसेका घृत या घी और शहद तथा खांडके साथ त्रिफलेका प्रयोग अथवा शीलाजीत, दूध, पीपलका प्रयोग अथवा चित्रकका प्रयोग तथा रसायन प्रयोग और पुराना घृत इन सवका प्रयोग करना चाहिये ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥

रक्तावसेकाच्छास्त्राणांसतांसत्त्ववतामपि ।
सेवनान्मदमूर्च्छायाःप्रशाम्यन्तिशरीरिणाम्,इति ॥५६॥

रक्तका निकालना, अच्छे शास्त्रोंका सुनना श्रेष्ठमहात्माओंका सेवन करना इनसे भी मनुष्योंके मद और मूर्च्छारोगकी शान्ति होतीहै ॥ ५६ ॥

तत्रश्लोकौ ।

विशुद्धञ्चाविशुद्धंचशोणितंतस्यहेतवः। रक्तप्रदोषजारोगास्तेषुरोगेषुचौषधम् ॥ ५७ ॥ मदमूर्च्छायसंन्यासहेतुलक्षणभेषजम् । विधिशोणितकेऽध्यायेसर्वमेतत्प्रकाशितम् ॥ ५८ ॥

इति योजनाचतुष्केविधिशोणिताध्यायः समाप्तः ।

इस प्रकार इस शोणितीयाध्यायमें शुद्ध और अशुद्ध रक्तके लक्षण और उनके कारण तथा रक्तजन्य रोग और उनके उपाय एवम् मद, मूर्च्छा, संन्यासके हेतु और लक्षण तथा चिकित्सा भगवान् पुनर्वसुजीने वर्णन की है ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

इति श्रीमहर्षिचरक० पं० रामप्रसादवैद्य० भाषाटीकायां योजनाचतुष्के विधिशोणिताध्यायश्चतुर्विंशः ॥ २४ ॥

पंचविंशोऽध्यायः ।

अथातोयज्जःपुरुषियमध्यायंव्याख्यास्यामः इतिहस्माहभगवानात्रेयः ।

अब हम यज्जःपुरुषीयनामक अध्यायकी व्याख्या करतेहैं । ऐसा भगवान् आत्रेयजी कहनेलगे ।

ऋषियोंका आन्दोलन ।

पुराप्रत्यक्षधर्म्माणंभगवन्तंपुनर्वसुम् । समेतानांमहर्षीणांप्रादुरासीदियंकथा ॥ १ ॥ आत्मेन्द्रियमनोऽर्थानांयोऽयंपुरुषसंज्ञकः । राशिरस्यामयानाञ्चप्रागुत्पत्तिविनिश्चये ॥ २ ॥

पहिले एक समय भूत, भविष्य, वर्त्तमानके जाननेवाले भगवान् पुनर्वसुजीके पास बैठेहुए महर्षि लोग इस प्रकारका आन्दोलन करनेलगे कि आत्मा, मन, इन्द्रिय और इन्द्रियोंके विषय इन सबका समुदायरूप यह पुरुष है सो इस शरीरमें पहिले किस प्रकार रोगोंकी उत्पत्ति होतीहै इस विषयमें कुछ निश्चय करना चाहिये ॥ १ ॥ २ ॥

काशीनरेशवामकका वाक्य ।

अथकाशिपतिर्वाक्यंवामकोऽर्थवदन्तरा । व्याजहारर्षिसमिति-
मभिसृत्याभिवाद्यच ॥ ३॥ किन्नुस्यात्पुरुषोयज्जस्तज्जास्तस्या-
मयाःस्मृताः । नवेत्युक्तेनरेन्द्रेणप्रोवाचर्षीनूपुनर्वसुः ॥ ४ ॥
सर्वएवामितज्ञानविज्ञानच्छिन्नसंशयाः । भवन्तश्छेत्तुमर्हन्ति
काशिराजस्यसंशयम् ॥ ५ ॥

उनमेंसे वामक नामके ऋषि उस सभामें बैठेहुए ऋषियोंमें अग्रणी होकर कहनें लगे कि हे भगवन् ! जिससे यह पंचभूतात्मा पुरुष उत्पन्न हुआहै क्या रोग भी उसीसे प्रगट हुएहें ? वामकके इस प्रश्नको सुनकर भगवान् पुनर्वसुजी सब ऋषि-योंको सम्बोधन कर कहनेलगे कि आप सब अपार ज्ञानवाले और विज्ञानबलसे संशयरहित हो इसलिये आपही सब लोग कासीराज महर्षि वामकके संदेहको दूर कीजिये ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥

मौद्गल्यका मत ।

पारीक्षिस्तत्परीक्ष्याग्रेमौद्गल्योवाक्यमब्रवीत् । आत्मजःपुरुषो-
रोगाश्चात्मजाःकारणंहिसः ॥ ६ ॥ सचिनोत्युपभुङ्क्तेचकर्म्म
कर्म्मफलानिच । नह्यृतेचेतनाधातोःप्रवृत्तिःसुखदुःखयोः ॥७॥

यह सुनकर परीक्षीके पुत्र महर्षि मौद्गल बोले कि आत्मासे पुरुष और सब रोग प्रगट हुएहें इसलिये आत्माही इस जगह कारण है क्योंकि आत्मा कर्मसंचय और कर्मका फल भोगनेवाला है उस चैतन्य आत्मा विना किसी प्रकार भी सुख और दुःखकी प्रवृत्ति नहीं होसकती ॥ ६ ॥ ७ ॥

शरलोमाका मत ।

शरलोमातुनेत्याहनह्यात्मात्मानमात्मना।योजयेद्व्याधिभिर्दुः-
खैर्दुःखद्वेपीकदाचन ॥ ८॥ रजस्तमोभ्यांतुमनःपरीतंस-
त्वसंज्ञकम् । शरीरस्यसमुत्पत्तौविकाराणाञ्चकारणम् ॥ ९ ॥

यह सुनकर शरलोमा ऋषि कहनेलगे कि यह आपका कहना ठीक नहीं है क्यों कि आत्मा तो स्वभावसे ही दुःखका द्वेषी है, वह तो कभी भी अपनेको व्याधियोंके दुःखमें दुःखित होना नहीं चाहता । हमारी समझमें रज और तमके अधीन होकर यह सत्वसंज्ञक मन जो है यही शरीर और रोगोंको उत्पन्न करनेका कारण है ॥ ८ ॥ ९ ॥

वार्योविदका मत ।

वार्य्योविदस्तुनेत्याहनह्येकंकारणंमनः । नर्तेशरीरंशारीरारोगा नमनसःस्थितिः ॥ १० ॥ रसजानितुभूतानिव्याधयश्चपृथग्विधाः । आपोहिव्याधिवत्यस्तास्मृतानिर्वृतिहेतवः ॥ ११ ॥

यह सुनकर महर्षि वार्योविद कहने लगे कि ऐसा नहीं हो सकता । अकेला मन पुरुषकी उत्पत्ति और रोगोंका कारण नहीं होताहै । क्योंकि शरीरके विना शरीरमें होनेवाले रोग और मनकी स्थिति यह दोनों नहीं हो सकते इसलिये ऐसा कहना चाहिये कि समस्त प्राणी और अनेक प्रकारके रोग यह सब रससे उत्पन्न होतेहैं और वह रसही इनकी उत्पत्तिका कारण है ॥ १० ॥ ११ ॥

हिरण्याक्षका मत ।

हिरण्याक्षस्तुनेत्याहनह्यात्मारसजःस्मृतः । नातीन्द्रियंमनः सन्तिरोगाःशब्दादिजास्तथा ॥ १२ ॥ षड्धातुजस्तुपुरुषो रोगाःषड्धातुजास्तथा । राशिःषड्धातुजोह्येषसांख्यैराद्यःपरीक्षितः ॥ १३ ॥

यह सुनकर हिरण्याक्ष ऋषि कहनेलगे कि आत्मा भी कभी रससे उत्पन्न हो सकताहै और मन अतीन्द्रिय है वह रससे कैसे उत्पन्न हुआ तथा रोग जो हैं वह शब्द सुनने मात्रसे भी उत्पन्न होसकते हैं इसलिये पृथ्वी, आप, तेज, वायु, आकाश और आत्मा इन ६ पदार्थोंसे पुरुष और रोगोंकी उत्पत्ति माननी चाहिये । इस बातको पहिले सांख्यके कर्त्ता भगवान् कपिलजीने भी कथन कियाहै और परीक्षा की है ॥ १२ ॥ १३ ॥

शौनकका मत ।

तथाब्रुवाणंकुशिकमाहतन्नेतिशौनकः । कस्मान्मातापितृभ्यां हिविनाषड्धातुजोभवेत् ॥ १४ ॥ पुरुषःपुरुषाद्गौर्गोरश्वादश्वः प्रजायते । पैत्र्यामेहादयश्चोक्तारोगास्तातएवकारणम् ॥ १५ ॥

इस तरह कुशिक हिरण्याक्ष ऋषिके प्रस्तावको सुनकर शौनक ऋषि कहने लगे कि भला यह जो आपने ६ धातुओंसे पुरुषकी उत्पत्ति मानी हैं यह ६ धातु माता पिता विना पुरुषको कैसे उत्पन्न कर सकते हैं । हम देखतेहैं जैसे पुरुषसे पुरुष गौसें गौ, घोडेसे घोडा, उत्पन्न होतेहैं वैसे ही मेह आदि विकार भी पितासे ही उत्पन्न

होतेहैं इसलिये पुरुषकी उत्पत्तिमें और रोगकी उत्पत्तिमें भी माता पिताहीको कारण मानना चाहिये ॥ १४ ॥ १५ ॥

भद्रकाप्यका मत ।

भद्रकाप्यस्तुनेत्याहनह्यन्धोऽन्धात्प्रजायते । मातापित्रोश्चतेपूर्वमुत्पत्तिर्नोपपद्यते ॥ १६ ॥ कर्म्मजस्तुमतोजन्तुःकर्म्मजास्तस्यचामयाः । नह्यृतेकर्मणोजन्मरोगाणांपुरुषस्यच ॥ १७ ॥

यह सुनकर भद्रकाप्य कहने लगे कि ऐसा नहीं होता । हम देखतेहैं कि अंधेकी सन्तान कभी अंधी नहीं होती इसलिये माता पिता पुरुष और रोगकी उत्पत्तिके कारण हैं यह नहीं होसकता । सो हमारे मतमें तो पुरुष और व्याधियां कर्मसे उत्पन्न होतीहैं । कर्मके विना पुरुषका जन्म एवम् रोगोंकी उत्पत्ति होही नहीं सकती ॥ १६ ॥ १७ ॥

भरद्वाजका मत ।

भरद्वाजस्तुनेत्याहकर्तापूर्वंहिकर्मणः । दृष्टंनचाकृतंकर्मयस्य स्यात्पुरुषःफलम् ॥ १८ ॥ भावेहेतुःस्वभावस्तुव्याधीनांपुरुषस्यच । खरद्रवचलोष्णत्वंतेजोऽन्तानांयथैवाहि ॥ १९ ॥

इसके उपरान्त भरद्वाज कहनेलगे इस तरह नहीं होता क्योंकि कर्म विचारा स्वयम् उत्पन्न होनेकी ताकत ही नहीं रखता, वह कर्त्ताके अधीन है । जब कर्म किया ही नहीं गया तो वह पुरुषकी उत्पत्ति और रोगका उत्पत्तिरूपी फल कैसे दे सकताहै इसलिये कर्म पुरुष और रोगोंका कारण कभी नहीं होसकता । पुरुष और रोगोंकी उत्पत्तिका कारण तो स्वभावको ही मानना चाहिये । जैसे-पंच महाभूतोंका खरत्व, द्रवत्व, चरत्व, उष्णत्व, प्रकाशत्व, यह धर्म स्वभावसे ही उत्पन्न होताहै इसी प्रकार पुरुषका जन्म और रोगकी उत्पत्ति भी स्वाभाविक धर्म है ॥ १८ ॥ १९ ॥

कांकायनका मत ।

काङ्कायनस्तुनेत्याहनह्यारम्भेफलंभवेत् । भवेत्स्वभावाद्भावानामसिद्धिःसिद्धिरेववा ॥ २० ॥ स्रष्टात्वमतिसंकल्पोब्रह्मापत्यंप्रजापतिः । चेतनाचेतनास्यास्यजगतः सुखदुःखयोः ॥ २१ ॥

यह सुनकर कांकायन ऋषि कहने लगे यह भी नहीं होसकता क्योंकि फल आरंभके विना नहीं होसकता । हम देखतेहैं कर्मका फल कर्म नहीं होता । यदि आप

कहें कि स्वभावसे ही जन्मादिकोंकी सिद्धि होती है या असिद्धि होतीहै यह हम नहीं देखते। क्योंकि रचनेवाला संकल्पविशिष्ट प्रजापतिही पुरुष और उसके सुख दुःखका कारण है। यदि ऐसा न होता तो विना किसीको कर्त्ता माने स्वभावाधीन जगत् नियमबद्ध नहीं होता। जगत्में नियम है, नियम नियंताके अधीन होताहै सो वह नियंता प्रजापति जगत्का कर्त्ता ही पुरुषके जन्म और सुख दुःखोंका कारण है ॥ २० ॥ २१ ॥

भिक्षुआत्रेयका मत।

तथेतिभिक्षुरात्रेयोनह्यपत्यंप्रजापतिः। प्रजाहितैषीसततंदुः-खैर्युञ्ज्यान्नसाधुवत् ॥२२॥ कालजस्त्वेवपुरुषःकालजास्तस्य चामयाः। जगत्कालवशंसर्वंकालःसर्वत्रकारणम् ॥ २३ ॥

यह सुनकर भिक्षु आत्रेय कहने लगे कि ऐसा नहीं होता क्योंकि प्रजाका हित चाहनेवाला और उत्पन्न करनेवाला प्रजापति ऐसा द्वेषी नहीं होसकता जो अपनी रचीहुई प्रजाको दुःखित करे इसलिये यह कहना चाहिये कि पुरुष कालसें उत्पन्न होताहै एवम् व्याधियां भी कालहीसे उत्पन्न होती हैं। और सम्पूर्ण जगत् कालके ही अधीन है सो हमारे मतसे काल ही सबका कारण है ॥ २२ ॥ २३ ॥

पुनर्वसुका वचन।

तथर्षीणांविवदतामुवाचेदंपुनर्वसुः। मैवंवोचततत्त्वंहिदुष्प्रा-पंपक्षसंश्रयात् ॥ २४ ॥ वादासप्रतिवादान्हिवदन्तोनिश्चिता-निच। पक्षान्तंनैवगच्छन्तितिलपीडकवद्गतौ ॥ २५॥ मुक्त्वै-नंवादसंघट्टमध्यात्ममनुचिन्त्यताम्। नाविधूतेतमःस्कन्धे ज्ञेयेज्ञानंप्रवर्त्तते ॥ २६ ॥ येषामेवहिभावानांसम्पत्सञ्जनये-न्नरम्। तेषामेवविपद्व्याधीन्विविधान्समुदीरयेत् ॥ २७ ॥

इस प्रकार ऋषियोंके विवादको सुनकर पुनर्वसु आत्रेयजी कहनेलगे,इस प्रकार झगडा क्यों करतेहो ? क्योंकि पक्षपात करनेसे तत्त्वका निश्चय नहीं होसकता।जब एक प्रश्न करताहै दूसरा उत्तर देताहै तीसरा अपना और ही पक्ष लेलेताहै ऐसा होनेसे वाद प्रतिवाद वढता चला जाताहै और जैसे तैलके कोल्हूकी लकडी चारों तरफ घूमघामकर अपनी सीमासे वाहर नहीं जासकती ऐसे ही पक्षपातपूर्वक झगडोंसे भी यथार्थका निश्चय नहीं होता जब तक अंधकार दूर नहीं होता तब तक जानने-योग्य पदार्थ पर दृष्टि नहीं पहुंचसकती। यथार्थ वात तो यह है कि जिन भावोंसे

मनुष्योंका यथोचित संयोग होनेसे सुख संपत्ति उत्पन्न होतीहै उन्हींके अनुचित व्यवहारसे अनेक प्रकारके रोगोंकी उत्पत्ति होतीहै ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥

वामकका प्रश्न और आत्रेयका उत्तर ।

अथात्रेयस्यभगवतोवचनमनुनिशम्यपुनरेववामकःकाशिपतिरु-वाचभगवन्तमात्रेयम् । भगवन्सम्पन्निमित्तजस्यपुरुषस्यवि-पन्निमित्तजानांचरोगाणांकिमभिवृद्धिकारणमिति । तमुवाच भगवानात्रेयोहिताहारोपयोगःएकएवपुरुषस्यअभिवृद्धिकरो भवतिअहिताहारोपयोगःपुनर्व्याधीनांनिमित्तमिति ॥ २८ ॥

इस प्रकार भगवान् आत्रेयके कथनको सुनकर काशीपति वामकनामा ऋषि कहने लगे कि हे भगवन् ! शुभ भावोंके संयोगसे पुरुषकी उत्पत्ति और अशुभ भावोंके संयोगसे व्याधिकी उत्पत्ति होनेका कारण क्या है ? यह सुनकर आत्रेय भगवान् कहनेलगे कि हितकर आहार विहारके सेवनसे पुरुषोंके सुखकी वृद्धि होती हैं इसी प्रकार अहितकारक आहारादिकके सेवनसे रोग उत्पन्न होतेहैं ॥ २८ ॥

अग्निवेशका प्रश्न ।

एवंवादिनंभगवन्तमात्रेयमग्निवेश उवाच । कथमिहभगवन्! हिताहितानामाहारजातानांलक्षणमनपवादमभिजानीयाहि-तसमाख्यातानांचैवाहारजातानामहितसमाख्यातानाञ्चमा-त्राकालक्रियाभूमिदेहदोषपुरुषावस्थान्तरेषुविपरीतकारित्व-मुपलभामहे इति ॥ २९ ॥

इस प्रकार कथन करतेहुए आत्रेय भगवान्के प्रति अग्निवेश बोले कि हे भगवन्! हितकर और अहितकर आहारादिकोंका स्पष्ट लक्षण किस प्रकार जानना चाहिये। हित करनेवाले आहारों और अहित करनेवाले आहारोंकी मात्रा, काल, क्रिया, देश, देह, दोष और पुरुषकी अवस्था और पुरुषके लिये विपरीतकारी पदार्थोंको हम किस प्रकार जान सकतेहैं सो आप कृपा कर कहिये ॥ २९ ॥

आत्रेयका उत्तर ।

तमुवाचभगवानात्रेयः । यदाहारजातमग्निवेश । समांश्चैवश-रीरधातून्प्रकृतौस्थापयतिविषमांश्चसमीकरोतिइत्येतद्धितंवि-द्धिविपरीतमहितमितिएतद्धिताहितलक्षणमनपवादंभवति॥३०

यह सुनकर आत्रेयजी कहनेलगे कि, हे अग्निवेश ! जो आहार शरीरके सात्म्य (अनुकूल) होनेसे शारीरिक धातुओंको यथार्थ रखतेहैं । और विषम हुए धातुओंको भी समान अवस्थामें कर देता है । उसको हितकारी जानना चाहिये तात्पर्य यह हुआ कि जिस आहारके सेवनसे शरीरके सब धातु ठीक रहें उसको हितकारक आहार जानना, इससे विपरीत अहितकारी समझना चाहिये । बस हितकर और अहितकर आहारके यह निर्विवाद लक्षण समझो ॥ ३० ॥

अग्निवेशका प्रश्न ।

एवंवादिनञ्चभगवन्तमात्रेयमग्निवेशउवाच । भगवन् ! नन्वेतदेवमुपदिष्टंभूयिष्ठकल्पाःसर्वभिषजोविज्ञास्यन्ति ॥ ३१ ॥

अग्निवेश फिर आत्रेय भगवान्से कहने लगे कि संक्षेपसे कहे हुए आपके इस उपदेशको सब वैद्य नहीं समझ सकते इसलिये कृपया विस्तारपूर्वक कथन कीजिये ॥ ३१ ॥

आत्रेयका उत्तर ।

तमुवाचभगवानात्रेयः । येषांविदितमाहारतत्त्वमग्निवेश ! गुणतोद्रव्यतः कर्मतः सर्वावयवतोमात्रादयोभावास्तएतदेवमुपदिष्टंविज्ञातुमुत्सहन्ते।यथातुखल्वेतदुपदिष्टंभूयिष्ठकल्पाः सर्वभिषजोविज्ञास्यन्तितथैतदुपदेक्ष्यामः । मात्रादीन्भावानुदाहरन्तःतेषांहिबहुविधाविकल्पाभवन्ति । आहारविधिविशेषांस्तुखलुलक्षणतश्चावयवतश्चानुव्याख्यास्यामः ॥ ३२ ॥

तब आत्रेय भगवान् अग्निवेशसे कहने लगे कि गुणसे,द्रव्यसे,कर्मसे और संपूर्ण अवयवोंसे मात्रादि भावके भेदसे आहार तत्त्वको जो वैद्य जानताहै उसके लिये यह संक्षेपसे दियाहुआ उपदेश बोधगम्य होसकताहै अर्थात् समझमें आसकताहै किन्तु साधारण बुद्धिके मनुष्य इस विचारको नहीं समझ सकते इसलिये साधारण वैद्योंको बोध होनेके लिये मात्रादिकोंका उपदेश करतेहैं । मात्रादि भावोंकी अनेक प्रकारसे कल्पना है उनमें जो विशेष २ आहार विधिके लक्षण और विभाग हैं उनका कथन करतेहैं सो श्रवण करो ॥ ३२ ॥

आहारोंके भेदवर्णन ।

आहारत्वम् । आहारस्यैकविधमर्थाभेदात्सपुनर्द्वियोनिःस्थावरजङ्गमात्मकत्वात् । द्विविधःप्रभावोहिताहितोदर्कविशेषाच्च-

तुर्विधोपयोगःपानाशनभक्ष्यलेह्योपयोगात् । षडास्वादोरसभेदतःषड्विधत्वाद्विंशतिगुणोगुरुलघुशीतोष्णस्निग्धरूक्षमन्दतीक्ष्णस्थिरसरमृदुकठिनविशदपिच्छिलश्लक्ष्णखरसूक्ष्मस्थूलसान्द्रद्रवानुगमनात् ॥ ३३ ॥

वह ऐसा है कि अर्थमात्रमें भेद न होनेसे सब प्रकारके आहारोंमें ही आहारत्व है । स्थावर और जंगम भेदसे आहारकी उत्पत्ति दो प्रकारकी है । हितकर और अहितकर इन दो भेदोंसे आहार दो प्रकारका है । पान, भोजन, चर्वण और लेहन इन भेदोंसे आहारका सेवन चार प्रकारका है । रसभेदसे आहारका स्वाद ६ प्रकारका है । गुरु, लघु, शीतल, उष्ण, चिकना, रूक्ष, मंद, तीक्ष्ण, स्थिर, सर, मृदु, कठिन, विषद, पिच्छिल, श्लक्ष्ण, खर, सूक्ष्म, स्थूल, घन और द्रव इन भेदोंसे आहारके गुण वीस प्रकारके हैं ॥ ३३ ॥

अपरिसंख्येयविकल्पोद्रव्यसंयोगकरणवाहुल्यात्तस्ययेयेविकारावयवाभूयिष्ठमुपयुज्यन्तेभूयिष्ठकल्पनाश्चमनुष्याणांप्रकृत्यैवाहिततमाश्चाहिततमाश्चतांस्तान्यथावदनुव्याख्यास्यामः ॥३४॥

द्रव्योंके संयोगवशसे आहारकी कल्पना असंख्य प्रकारकी है । मनुष्योंके वह आहार असंख्य प्रकारके होते हुए हितकर और अहितकर दो प्रकारोंमें विभक्त हैं । उनका अब वर्णन करतेहैं ॥ ३४ ॥

श्रेष्ठहितकारी द्रव्योंका वर्णन ।

तद्यथा लोहितशालयःशूकधान्यानांपथ्यतमत्वेश्रेष्ठतमाः । मुद्गाःशमीधान्यानाम्, आन्तरीक्ष्यमुदकानां, सैन्धवंलवणानां, जीवन्तीशाकंशाकानाम् । ऐणेयंमृगमांसानां, लावःपक्षिणां, गोधाविलेशयानां, रोहितोमत्स्यानां, गव्यंसर्पिःसर्पिषां, गोक्षीरंक्षीराणां, तिलतैलंस्थावरजातानांस्नेहानां, वराहवसाअनूपमृगवसानां,चुलुकीवसामत्स्यवसानां,हंसवसाजलचरविहङ्गवसानां, कुक्कुटवसाविष्किरशकुनिवसानामाजमेदःशाखादमेदसां, शृङ्गवेरंकन्दानां, मृद्वीकाफलानां, शर्कराइक्षुविकाराणाम् । इतिप्रकृत्यैवहिततमानामाहारविकाराणांप्राधान्यतोद्रव्याणिव्याख्यातानि ॥ ३५ ॥

वह इस प्रकार हैं लाल शालिचावल सब शूक धान्योंमें सर्वश्रेष्ठ पथ्य गिने जाते हैं इसी प्रकार सब प्रकारके शमीधान्योंमें मूंग सर्वश्रेष्ठ है। जलोंमें शुद्ध आकाशका जल सर्वश्रेष्ठ है । नमकोंमें सेंधा नमक श्रेष्ठ है सागोंमें जीवन्तीका साग श्रेष्ठ है। मृगमांसोंमें काले हिरणका मांस श्रेष्ठ है। पक्षियोंमें लवा, विलेशयोंमें गोह, मछलियोंमें रोहित, घृतोंमें गोघृत, दूधोंमें गोदूध, स्थावर स्नेहोंमें तिलतैल, अनूपसंचारी जीवोंकी चर्बीमें सूअरकी चर्बी, मछलियोंकी चर्बीमें चुलुकीनामक मछलीकी चर्बी, जलसंचारी पक्षियोंकी चर्बीमें हंस या वत्तककी चर्बी सर्वोत्तम मानी जाती है। विष्किर पाक्षियोंकी चर्बीमें मुर्गेकी चर्बी,शाखापत्र खानेवालोंमें बकरेकी चर्बी उत्तम है । मूलोंमें अदरक, फलोंमें मुनक्का,ईखके विकारोंमें मिश्री सर्वोत्तम कही जातीहै । इस प्रकार स्वभावसे ही हितकारी प्रधान २ आहारोंका वर्णन कियागया ॥ ३५॥

सामान्यतःसे अहित द्रव्य ।

अहिततमानामप्युपदेक्ष्यामः।यवकःशूकधान्यानामपथ्यत्वेप्रकृष्टतमाभवन्ति । माषाःशमीधान्यानां,वर्षानादेयमुदकानामौषरंलवणानां, सर्षपशाकंशाकानां, गोमांसंमृगमांसानां, कालकपोतःपक्षिणां,भेकोविलेशयानां,चिलिचिमोमत्स्यानामाविकंसर्पिः सर्पिषामाविक्षीरंक्षीराणां, कुसुम्भस्नेहःस्नेहानां स्थावराणां,माहिषवसाआनूपमृगवसानां, कुम्भीरवसामत्स्यवसानां, काकमद्गुवसाजलचरविहंगवसानां, मूलकंकन्दानां, चाटकवसाविष्किरशकुनिवसानां, हस्तिमेदः शाखादमेदसां, लिकुचंफलानां, फाणितमिक्षुविकाराणामितिप्रकृत्यैवअहिततमानामाहारविकाराणांनिकृष्टतमानिद्रव्याणिव्याख्यातानि ॥ ३६ ॥

अब अहितकारक द्रव्योंका वर्णन करतेहैं । शूकधान्योंमें जव, शमीधान्योंमें उडद, जलोंमें वर्षातकी नदीका जल, नमकोंमें खारी नमक, सागोंमें सरसोंका साग अहितकर और कुपथ्य होताहै । पशुओंके मांसोंमें गोमांस, पक्षियोंमें कालकपोत, विलेशियोंमें मेंढक, मछलियोंमें चिलचिम मछली, घृतोंमें भेडका घृत, दूधोंमें भेडका दूध,स्थावर स्नेहोंमें करडका तैल अहितकारी होताहै ।अनूपसंचारी जीवोंकी चर्बीमें भैंसेकी चर्बी,मछलियोंकी चर्बीमें कुम्भीरकी चर्बी,जलचर जीवोंमें

जलकौआकी चर्वी अहितकारी होतीहै । विष्किर पक्षियोंमें चिडियाकी चर्वी, शाखा पत्र खानेवाले जानवरोंमें हाथीकी चर्वी निंदनीय होतीहै । कंदोंमें पकीहुई मूली, फलोंमें कटहर, ईखके पदार्थोंमें खांडित अहितकारी होताहै । इस प्रकार स्वभावसे ही अहितकारी द्रव्योंका वर्णन किया गया है ॥ ३६ ॥

हिताहित द्रव्योंमें प्रधानोंका वर्णन ।

हिताहितावयवानामाहारविकाराणाम्, अतोभूयःकर्मौषधानां प्राधान्यतः ॥ सानुबन्धानिद्रव्याणिअनुव्याख्यास्यामः । तद्यथा – अन्नंवृत्तिकराणांश्रेष्ठम् । उदकमाश्वासकराणां,सुरा श्रमहराणां, क्षीरंजीवनीयानां,मांसंबृंहणीयानां,रसस्तर्पणीयानां, लवणमन्नद्रव्यरुचिकराणामम्लंहृद्यानां, कुक्कुटोवल्यानां, नक्ररेतोवृष्याणां मधुश्लेष्मपित्तप्रशमनानां, सर्पिर्वातपित्तशमनानां, तैलंवातश्लेष्मप्रशमनानां वमनंश्लेष्महराणां,विरेचनंपित्तहराणां,वस्तिर्वातहराणां,स्वेदोमार्दवकराणां, व्यायामःस्थैर्य्यकराणां, क्षारःपुंस्त्वोपघातिनां, तिन्दुकमन्नद्रव्यरुचिकराणामामंकपित्थमकंठ्यानामाविकंसर्पिरहृद्यानांसजाक्षीरंशोषघ्नस्तन्यसात्म्यरक्तसांग्राहिकरक्तपित्तप्रशमनानामविक्षीरंश्लेष्मपित्तोपचयकराणां,महिषीक्षीरंस्वप्नजननानां, मन्दकंदध्याभिष्यन्दकराणांगवेधुकान्नंकर्षणीयानामुद्दालकान्नंविरूक्षणीयानामिक्षुर्मूत्रजननानां,यवाःपुरीषजननानां,जाम्ववंवातजननानां, शष्कुल्यःश्लेष्मपित्तजननानां, कुलुत्थाअम्लपित्तजननानां,माषाःश्लेष्मपित्तजननानां, मदनफलंवमनास्थापनानुवासनोपयोगिनां, त्रिवृत्सुखविरेचनानांचतुरङ्गुलंमृदुविरेचनानां,स्नुक्पयस्तीक्ष्णविरेचनानां, प्रत्यक्पुष्पाशिरोविरेचनानां,विडङ्गंक्रिमिघ्नानां,शिरीषोविषघ्नानां, खदिरःकुष्ठघ्नानां, रास्नावातहराणामामलकंवयःस्थापनानां, हरीतकीपथ्यानामेरण्डमूलंवृष्यवातहराणां,पिप्पलीमूलंदीपनी-

यपाचनीयानाहप्रशमनानां,चित्रकमूलंदीपनीयगुदशूलशोथ-
हराणां,पुष्करमूलंहिक्काश्वासकासपार्श्वशूलहराणां,मुस्तंसंग्राह-
कदीपनीयपाचनीयानामुदीच्यंनिर्वापणीयदीपनीयच्छर्द्यतीसा-
रहराणां,कट्वङ्गंसंग्राहकदीपनीयपाचनीयानाम्।अनन्तासंग्रा-
हिकदीपनीयरक्तपित्तप्रशमनानाममृतासंग्राहिकवातहरदीप-
नीयश्लेष्मशोणितविबन्धप्रशमनानां, बिल्वंसंग्राहिकदीपनी-
यवातकफशमनानामतिविषादीपनीयपाचनीयसंग्राहिकसर्व-
दोषहराणामुत्पलकुमुदपद्मकिञ्जल्काःसंग्राहकरक्तपित्तप्रशमना-
नां, दुरालभापित्तश्लेष्मोपशोषणानां,गन्धप्रियङ्गुः शोणित-
पित्तातियोगप्रशमनानाम् ॥ ३७ ॥

अब हितकर और अहितकर आहारका वर्णन करतेहुए वस्ति आदि कर्म और औषधोंमें उत्तम तथा निकृष्ट आदि द्रव्योंका वर्णन करतेहैं, जीवन रखनेवाले पदार्थोंमें अन्न, तृषानाशक पदार्थोंमें जल,परिश्रम हरनेवाले पदार्थोंमें मद्य, जीवनदायक पदार्थोंमें दूध, पुष्ट करनेवाले पदार्थोंमें मांस, रुचिकारक, पदार्थोंमें नमक, हृदयको प्रिय पदार्थोंमें खट्टा सर्वश्रेष्ठ है। वलकारी पदार्थोंमें मुर्गेका मांस, वीर्यवर्द्धक पदार्थोंमें कुम्भीर (मगरमच्छ) का वीर्य, कफ पित्त नाशकोंमें शहद, वातपित्तहरोंमें घृत, वात कफ नाशकोंमें तैल, कफनाशक कर्मोंमें वमन, पित्तनाशक कर्मोंमें विरेचन, वातनाशक कर्मोंमें वस्तिकर्म, शरीरको नम्र करनेवालोंमें स्वेद, दृढ करनेवालोंमें कसरत, पुरुषत्व नष्ट करनेवालोंमें क्षार, अन्न पर अरुचि करनेवालोंमें तिन्दुकफल सर्वप्रधान माने जाते हैं। स्वर विगाडनेवालोंमें कैथके कच्चे फल, हृदयको अप्रिय द्रव्योंमें भेडका घृत प्रधान माना जाता है। शोकके हरनेवाले, स्तनोंमें दूध वढानेवाले, रक्तविकार और रक्त पित्तके नाशकोंमें बकरीका दूध सर्वश्रेष्ठ है। पित्त-कफ-वर्द्धकोंमें भेडका दूध, निद्राजनक द्रव्योंमें भैंसका दूध, अभिस्यंदकारी द्रव्योंमें मंदक दही, कृशताकारक द्रव्योंमें गवेधुक धान्य, रूक्षकारक द्रव्योंमें उद्दालक धान्य, मूत्रवर्द्धक पदार्थोंमें गन्ना, मलवर्द्धक पदार्थोंमें जव, वायु वर्द्धक पदार्थोंमें जामुन, कफ पित्त वर्द्धक पदार्थोंमें तिलोंकी खल, अम्लपित्तकारक पदार्थोंमें कुलथी, पित्त-कफ-कारकोंमें उडद एवम् वमन, आस्थापन और अनुवासन कर्ममें मैनफल प्रधान माना जाता है। उत्तम विरेचन करनेवालोंमें निशोथकी जड, मृदु विरेचकोंमें एरंडतैल, तीक्ष्ण विरेचकोंमें थोहरका दूध, शिरोविरेचन करनेवालोंमें अपामार्गके वीज,कृमिनष्ट करनेवालोंमें वायविडंग,

विषनाशकोंमें सिरसके बीज, कुष्ठके नाश करनेवालोंमें कत्था, वातनाशकोंमें रासना, आयुके स्थापन करनेवालोंमें आंवला, सब प्रकारके पथ्योंमें हरड, वृष्यकर्त्ता और वायुके हरनेवालोंमें एरंडकी जड, दीपन, पाचन कर्त्ताओंमें तथा आनाह-रोग-नाशकोंमें पिपलामूल, दीपनीय और गुदाके शूल तथा शोथनाशकोंमें चित्तेकी छाल, संग्राहक और दीपन तथा पाचन द्रव्योंमें नागरमोथा, हिचकी, श्वास, खांसी तथा पार्श्वशूलनाशक द्रव्योंमें पोहकर मूल, भस्मकानिवारक, दीपनीय, पाचन और वमनके हरनेवाले एवम् अतिसारके नष्ट करनेवालोंमें अनन्तमूल, संग्राहक वात-नाशक दीपन कफनाशक कफरक्तनाशक विबंधनाशक द्रव्योंमें गिलोय (गुरुच), संग्राहक दीपन वातकफनाशक द्रव्योंमें कच्चा वेलफल, दीपनीय पाचनीय संग्राहक सर्वदोषहारक द्रव्योंमें अतीस, संग्राहक रक्तपित्तनाशक द्रव्योंमें कमलगट्टा नीलो-फर और कमलकेशर सर्वोत्तम मानी जातीहै । पित्तकफनाशकोंमें जवासा सर्व-श्रेष्ठ है । रक्तपित्तके शमनकरनेवालोंमें दुरालभा (वंसा) पित्त और कफके उपशो-षण करनेवालोंमें गंधप्रियंगु सर्वश्रेष्ठ माना जाताहै ॥ ३७ ॥

कुटजत्वक्श्लेष्मपित्तरक्तसंग्राहकोपशोषणानां, काश्मर्य्यफ-लंरक्तसंग्राहकरक्तपित्तप्रशमनानां, पृश्निपर्णीसंग्राहकवातह-रदीपनीयवृष्याणां, विदारिगन्धावृष्यसर्वदोषहराणां, बला संग्राहकबल्यवातहराणां, गोक्षुरकोमूत्रकृच्छ्रानिलहराणां, हिङ्गुनिर्य्यासःछेदनीयदीपनीयभेदनीयानुलोमिकवातकफ-प्रशमनानामम्लवेतसोभेदनीयदीपनीयानुलोमिकवातश्लेष्म-प्रशमनानां, यावशूकःस्रंसनीयपाचनीयार्शोघ्नानां, तक्रा-भ्यासोग्रहणीदोषार्शोघृतव्यापत्प्रशमनानां, क्रव्यादमांसा-भ्यासोग्रहणीदोषशोषार्शोघ्नानां, घृतक्षीराभ्यासोरसायनानां, समघृतसक्तुकाभ्यासोवृष्योदावर्त्तहराणां, तैलगण्डूषाभ्यासो दन्तबलरुचिकराणां, चन्दनोदुम्बरंदाहनिर्वापणानां, रास्नागु-रुणीशीतापनयनप्रलेपनानांनलामज्जकोशीरेदाहत्वग्दोषस्वे-दापनयनप्रलेपनानां, कुष्ठंवातहराभ्यंगोपनाहयोगिनां, मधुकं चक्षुष्यवृष्यकेश्यकण्ठ्यवर्ण्यबल्यविरजनीयरोपणीयानां, वायुः प्राणसंज्ञाप्रधानहेतूनामग्निरामस्तम्भशीतशूलोद्वेपनप्रशम-नानाम् ॥ ३८ ॥

कफ पित्त और रक्तको संग्रहण तथा उपशोषण करनेवाले द्रव्योंमें कुशकी छाल, संग्राहक और रक्तपित्तनाशक द्रव्योंमें काश्मरीके फल, संग्राहक वातनाशक और वृष्योंमें पृष्ठपर्णी, वृष्य और दोषनाशक द्रव्योंमें विदारीकंद, संग्राही बलकारक और वातनाशक द्रव्योंमें खरैटी, मूत्रकृच्छ्र और वातनाशक द्रव्योंमें गोखरू, छेदनीय दीपनीय अनुलोमकर्त्ता एवम् वातकफनाशक द्रव्योंमें हींग, भेदन–अनुलोमन–और दीपन–कर्ता एवम् वात कफ हरणकर्त्ता द्रव्योंमें अमलवेत, स्रंसनकर्त्ता पाचनकर्त्ता अर्शहर्ता द्रव्योंमें जवाखार, ग्रहणीविकारनाशक अर्शोऽघ्न अतिघृतपानजन्य विकार नाशक द्रव्योंमें तक्र, ग्रहणीदोष शोष और अर्शनाशक मांसोंमें मांसभक्षी जीवोंका मांस, रसायन पदार्थोंमें दूध और घीका अभ्यास, वृष्य तथा उदावर्तनाशक द्रव्योंमें परिमाणसे घृत और सत्तुओंका सेवन, दांतोंको बलदेनेवालोंमें और रुचिकारक पदार्थोंमें तैलको मुखमें धारणकर कुल्ले करना, दाहनाशक लेपोंमें चंदनका लेप तथा गूलर, शीतनाशक लेपनोंमें रासना और अगर, दाह त्वग्दोष और स्वेदके हरनेवाले लेपोंमें खस, वातनाशक अभ्यंगों और प्रलेपोंमें कूठ, नेत्रोंको हितकारी वीर्यवर्द्धक केश कण्ठ वर्ण इनको हितकर्त्ता एवम् विरजनीय और रोपणकर्त्ता द्रव्योंमें मुलैठी, बल और प्राणोंमें चैतन्यता प्राप्त करनेवाले पदार्थोंमें उत्तम वायु, आम, स्तम्भ शीतता शूल, कम्पनाशक द्रव्योंमें अग्नि सर्वश्रेष्ठ तथा सबोंमें प्रधान माना जाताहै ॥ ३८ ॥

जलंस्तम्भनीयानां, मृद्भृष्टलोष्टनिर्वापितमुदकंतृष्णातियोगप्रशमनानामतिमात्राशनमामप्रदोषहेतूनां, यथाग्न्यभ्यवहरणोऽग्निसन्धुक्षणानां, यथासात्म्यंचेष्टाभ्यवहारःसेव्यानां, कालभोजनमारोग्यकराणां, वेगसन्धारणमनारोग्यकराणां, तृप्तिराहारगुणानां, मद्यंसौमनस्यजननानां, मद्याक्षेपोधीधृतिस्मृतिहराणां, गुरुभोजनंदुर्विपाकानामेकाशनभोजनंसुखपरिणामकराणां, स्त्रीषुअतिप्रसङ्गःशोषकराणां, शुक्रवेगनिग्रहःषाण्ढ्यकराणां, परायतनमन्नमश्रद्धाजननानामनशनमायुषोह्रासकराणां प्रमिताशनंकर्षणीयानामजीर्णाध्यशनंग्रहणीदूषणानां विषमाशनमग्निवैषम्यकराणां, विरुद्धवीर्य्याशनंनिन्दितव्याधिकराणां प्रशमःपथ्यानामायासःसर्वापथ्यानां, मिथ्या-

योगोव्याधिसुखानां, रजस्वलाभिगमनमलक्ष्मीकाणां, ब्रह्मचर्य्यमायुष्यकराणां, सङ्कल्पोवृष्याणां, दौर्मनस्यमवृष्याणामयथावलप्रारम्भः प्राणोपरोधिनां, विषादोरोगवर्द्धनानाम् ॥३९॥

स्तम्भनीय द्रव्योंमें जल, अति प्यासनाशक द्रव्योंमें तप्त मट्टीके ढेलेसे बुझाया जल, आमदोषकारक पदार्थोंमें बहुत भोजन, अग्निवद्ध आहारोंमें यथाग्निभोजन, सेवनयोग्य कालोंमें अभ्यासके अनुरूप कार्य, आरोग्यकर्त्ता उपायोंमें यथोचित भोजन, व्याधिकारकोंमें मलमूत्रादिकोंका वेग रोकना, आहारके गुणोंमें तृप्ति, मस्त करनेमें मद्य, बुद्धि धारणशक्ति स्मृति इनके नष्टकरनेवालोंमें मद्यका विकार, कठिनतासे पचनेवालोंमें गुरु भोजन, भलीप्रकार पचनेवालोंमें एकसमय भोजन, राजयक्ष्माकारकोंमें मैथुन, नपुंसककर्त्ताओंमें शुक्रके वेगको रोकना, अन्नसे घृणा करानेवालोंमें सडा बुसा भोजन, आयु घटानेवालोंमें उपवास, कृशता करनेवालोंमें यथासमय भोजन न मिलना, ग्रहणीरोगकर्त्ता पदार्थोंमें अजीर्णमें भोजन, अग्निविषमकर्त्ताओंमें विषमभोजन, कुष्ठ आदिक निंदित व्याधि करनेवालोंमें मछली दूध आदि विरुद्ध द्रव्योंका एकसमय सेवन करना, हितकर्त्ता पदार्थोंमें शान्ति, सब प्रकारके कुपथ्योंमें शक्तिसे अधिक परिश्रम, रोगकारकोंमें आहारविहारका अनुचित योग, अलक्ष्मीकारकोंमें रजस्वलागमन, आयुवर्द्धकोंमें ब्रह्मचर्यपालन, पुरुषार्थकारकोंमें दृढसंकल्प, अवृष्यमें मनकी स्फूर्ति न होना, प्राण हरनेवालोंमें सामर्थ्यसे अधिक कार्यका करना, रोग बढानेवालोंमें विषाद प्रधान माना जाता है ॥ ३९ ॥

स्नानंश्रमहराणां, हर्षःप्रीणनानां, शाकःशोषणानां, निर्वृतिः पुष्टिकराणामातिस्वप्नस्तन्द्राकराणां, सर्वरसाभ्यासोवलकराणामेकरसाभ्यासोदौर्वल्यकराणां, गर्भशल्यमनाहार्य्याणामजीर्णमुद्धार्य्याणां, वालोमृदुभेषजीयानां, वृद्धोयाप्यानां, गर्भिणीतीक्ष्णौषधव्यायामवर्जनीयानां, सौमनस्यंगर्भधारकाणां, सन्निपातोदुश्चिकित्स्यानामामोविषमचिकित्स्यानां, ज्वरोरोगाणां, कुष्ठंदीर्घरोगाणां, राजयक्ष्मारोगसमूहानां, प्रमेहोऽनुषङ्गिणाम् ॥ ४० ॥

परिश्रम हरनेवालोंमें स्नान, प्रीति बढानेवालोंमें हर्ष, शोषणकर्त्ताओंमें पत्र शाक, पुष्टिकर्त्ताओंमें संतोष, निद्राकारकोंमें पुष्टता, तंद्राकारकोंमें निद्रा, बलकारकोंमें

रसोंका अभ्यास, दुर्वलकर्त्ता पदार्थोंमें एकही रसका सेवन, अनाकर्षणीयोंमें गर्भशल्य, वमनके योग्योंमें अजीर्ण, मृदु औषधोंसे चिकित्सा करनेयोग्योंमें बालक, याप्यसाध्योंमें वृद्धपुरुषोंके रोग, तीक्ष्ण औषधिमें व्यायाम, पुरुष संसर्गमें इन सबसें वर्जनीयोंमें गर्भवती स्त्री, गर्भधारणमें मनकी प्रसन्नता, दुश्चिकित्स्योंमें सन्निपात, विरुद्ध चिकित्सामें आमचिकित्सा, रोगोंमें ज्वर, दीर्घरोगोंमें कुष्ठ, रोगसमूहोंमें राजयक्ष्मा, अनुषंगी रोगोंमें राजयक्ष्मा प्रधान मानेजातेहैं ॥ ४० ॥

जलौकसोऽनुशस्त्राणां, वस्तिस्तन्त्राणां, हिमवानौषधिभूमीनां, मरुभूरारोग्यदेशानामनूपमहितदेशानां, निर्देशकारित्वमातुरगुणानां, भिषक्चिकित्साङ्गानां, नास्तिकोवर्ज्यानांलौल्यंक्लेशकराणामनिर्देशकारित्वमरिष्टानामनिर्वेदआर्त्तलक्षणानां, योगोवैद्यगुणानां, विज्ञानमौषधीनां, शास्त्रसहितस्तर्कःसाधनानां सम्प्रतिपत्तिः कालज्ञानप्रयोजनानामनुद्योगोऽव्यवसायकालातिपत्तिहेतूनां, दृष्टकर्मतानिःसंशयकराणामसमर्थताभयकराणां, तद्विद्यसम्भाषाबुद्धिवर्द्धनानामाचार्य्यःशास्त्राधिगमहेतूनामायुर्वेदोऽमृतानां, सद्वचनमनुष्ठेयानामसम्बद्धवचन संग्रहणंसर्वाहितानां, सर्वसंन्यासःसुखानामिति ॥ ४१ ॥

उपशस्त्रोंमें जलौका, पंचकर्मोंमें वस्ति, औषधियोंके योग्य भूमिमें हिमालय पर्वत, आरोग्यदेशोंमें मरुभूमि, औषधियोंमें सोमलता, अहितकारी देशोंमें अनूपदेश, रोगीके गुणोंमें वैद्यकी आज्ञाका पालन, चिकित्साके चार पादोंमें वैद्य, वर्जनीयोंमें नास्तिक, क्लेशकर्त्ताओंमें-लोभ, मृत्युके लक्षणोंमें-रोगीकी अवाध्यता, आर्त्तके लक्षणोंमें-अस्थिरता, वैद्यके गुणोंमें उचित रीतिपर प्रयोग करना, निःसंशयकर्त्ताओंमें-वैद्यसमूह, औषधियोंमें विज्ञान, साधनोंमें शास्त्रविहित युक्ति, कालज्ञानके प्रयोजनोंमें-उत्तमज्ञान, समयनाशक हेतुओंमें आलस्य, निःसंदेहकारकोंमें दृष्टकर्मता (जानकारी) भयकारकोंमें असमर्थता, बुद्धिविवर्द्धकोंमें स्वाध्यायियोंसे शास्त्रार्थ करना, शास्त्रजाननेके हेतुओंमें आचार्य, अमृतोंमें आयुर्वेद, करनेयोग्य कार्योंमें सत्यवचन बोलना, सब तरहसे अहित करनेवालोंमें विना विचारे बकवाद करना, परमानन्ददायकोंमें सर्वत्याग प्रधान माना है ॥ ४१ ॥

भवन्तिचात्र ।

अग्र्याणांशतमुद्दिष्टंयद्द्विपञ्चाशदुत्तरम् । अलमेतद्विकाराणां विघातायोपदिश्यते ॥ ४२ ॥ समानकारणायेऽर्थास्तेषांश्रेष्ठ-स्यलक्षणम् ।ज्यायस्त्वंकार्य्यकारित्वेऽवरत्वंचाप्युदाहृतम् ॥ ४३ ॥

इस प्रकार १५२ प्रधान २ वार्त्ताओंका कथन किया गया है सो रोगशान्तिके लिये इन एकसौ बावन प्रधान वार्तोंका जानना हीं बहुत है। इनमें समान कार्य-कर्त्ता द्रव्योंमें श्रेष्ठके लक्षण और प्रधानता तथा कार्यकारिता और निकृष्टता कथन कर दीगई है ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

उपरोक्त उपदेशोंका तत्व ।

वातपित्तकफेभ्यश्चयद्यत्प्रशमनेहितम् । प्राधान्यतश्चनिर्दिष्टंय-द्व्याधिहरमुत्तमम् ॥ ४४ ॥ एतन्निशम्यनिपुणंचिकित्सांस-म्प्रयोजयेत् । एवंकुर्वन्सदावैद्योधर्मकामौसमश्नुते ॥ ४५ ॥ पथ्यंयथानपेतंयद्यच्चोक्तंमनसःप्रियम् । यच्चाप्रियमपथ्यञ्चनि-यतंतन्नलक्षयेत् ॥ ४६ ॥

वात, पित्त, कफकी शान्ति करनेवालोंमे हितकारी और प्रधान तथा रोगानि-वारक द्रव्योंका वर्णन किया गया है बुद्धिमान् वैद्यको यह सब विषय स्मरण रखकर चिकित्सा करना चाहिये। इस प्रकार करनेसे वैद्य धर्म, अर्थ और कामको भलीप्रकार प्राप्त होता है। जो पदार्थ पुरुषके लिये सात्म्य (उपयोगी) और मनको हितकारी कहे गये हैं उनको पथ्य समझना चाहिये। जो असात्म्य और कुपथ्य है उनकी ओर ध्यान भी देना नहीं चाहिये ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

मात्राकालक्रियाभूमिदेहदोषगुणान्तरम् । प्राप्यतत्तद्धिदृश्य-न्तेततोभावास्तथातथा ॥ ४७ ॥ तस्मात्स्वभावोनिर्दिष्टस्त-थामात्रादिराश्रयः ।तदपेक्ष्योभयंकर्मप्रयोज्यंसिद्धिमिच्छता ॥४८॥

मात्रा, काल, क्रिया, देश, देह, दोष और गुण आदिकोंके अन्तर होनेसे अहितकर पथ्य और हितकर कुपथ्य होजातेहैं। इस लिये सब द्रव्योंका स्वभाव मात्रा आदि विचारकर उपयोग करना चाहिये । सिद्धिलाभ करनेवाले वैद्योंको इन सब बातोंको विचारकर ही चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

अग्निवेशका आसवविषयक प्रश्न।

तदात्रेयस्यभगवतोवचनमनुनिशम्यपुनरपिभगवन्तमात्रेयमग्निवेशउवाच । यथोद्देशमभिनिर्दिष्टः केवलोऽयमर्थोभगवता श्रुतस्त्वस्माभिः । आसवद्रव्याणामिदानींलक्षणमनतिसंक्षेपेणोपदिश्यमानंशुश्रूषामहेइति ॥ ४९ ॥

आत्रेय भगवान्का यह सम्पूर्ण उपदेश सुनकर आग्निवेश कहने लगे कि हे भगवन् ! जिस २ वातकी जाननेकी हमने इच्छा की वह सब आपने कृपापूर्वक निर्देश करादिया है। अव हम आसवद्रव्योंकी प्रकृति और लक्षण विस्तारपूर्वक सुनना चाहतेहैं, कृपाकर उनका भी विस्तारपूर्वक कथन कीजिये ॥ ४९ ॥

आत्रेयजीका उत्तर (आसवोंका वर्णन।)

तमुवाचभगवानात्रेयः । धान्यफलसारपुष्पकाण्डपत्रत्वचोभवन्त्यासवयोनयः अग्निवेश ! संग्रहेणाष्टौशर्करानवमास्तासुद्रव्यसंयोगकरणतोऽपरिसंख्येयासुयथापथ्यतमानासवानांचतुरशीतिंनिबोधसुरासौवीरतूषोदकमैरेयमेदकधान्याम्लषड्धान्यावासवाः । मृद्वीकाखर्जूरकाश्मर्यधन्वनराजादनतृणशून्यपरूषाभयामलकमृगलण्डिकाजाम्बवकपित्थ–बकुल–बदरकर्कन्धुपीलुपियालपनसन्यग्रोधाश्वत्थप्लक्षकपीतनोदुम्बराजमोदशृङ्गाटकशंखिनीतिफलासवाःषड्विंशतिः । विदारिगन्धाश्वगन्धाकृष्णगन्धाशतावरीश्यामात्रिवृद्दन्तीद्रवन्तीबिल्वोरुमुकाचित्रमूलैरेकादशमूलासवाः । शालप्रियकाश्वकर्णचन्दनस्यन्दनखदिरकदरसप्तपर्णार्जुनासनारिमेदातिन्दुकाकिणिहीशमीशुक्तिशिंशपाशिरीषवञ्जुलधन्वनमधूकसारासवा विंशतिः ॥ ५० ॥

यह सुन आत्रेय भगवान् कहनेलगे कि हे अग्निवेश ! धान्य, फल, मूल, सार, फूल, डंडी, पत्र, छाल इन आठ वस्तुओंसे आसव वनताहै और नवम पदार्थ आसव बनानेका खांड है। इन द्रव्योंके परस्पर संयोग विशेषसे असंख्य आसव वन सकतेहैं उनमें चौरासी ८४ प्रकारके आसव उत्तम और पथ्य माने जाते हैं। इन आस-

नोंमें सुरा, सौवीर, तुषोदक, मैरेय, मेदक, धान्याम्र यह छः प्रकारके आसव धान्योंसे उत्पन्न होतेहैं। मुनक्का, खजूर, काश्मरीके फल, धामन, खिरनी, केतकी फल, फालसा, हरडे, आमले, बहेडे, जामुन कैथ, मौलसरी, वेर, जंगलीवेर, अखराट, प्रियाल, कटहर, वडके फल, पीपलके फल, पिलखनेके फल, अमाडा, गूलर, अजमोद, सिंघाडा, शंखिनी यह २६ छब्बीस प्रकारके आसव फलोंसे प्रगट होतेहैं। शालपर्णी, असगंध, सुहांजना, शतावर, काला निशोथ, लाल निशोथ, दंती, द्रवंती, विल्व, एरंड, चित्रक, इनके मूलोंसे ११ ग्यारह प्रकारके आसव वनतेहैं। शालवृक्ष, प्रियंगु, अश्वकर्णशाल, रक्तचंदन, तिनस, खैर, श्वेतखैर, सप्तपर्ण, अर्जुन, विजयसार, अरिमेद, तिन्दुक, किरवण, शमीवृक्ष, वेरी, शीशम, सिरस, अशोक, धन्वन, महुआ, इन वीस प्रकारके वृक्षोंके सारसे २० वीस प्रकारके आसव वनतेहैं ॥ ५० ॥

पद्मोत्पलनलिनकुमुदसौगन्धिकपुण्डरीकशतपत्रमधूकप्रियङ्गुधातकीपुष्पैर्दशमाःपुष्पासवाः। इक्षुकाण्डेक्षुइक्षुवालिकापुंड्रकचतुर्थाःकाण्डासवाः। पटोलताडीपत्रासवौद्वौभवतः। तिल्वकलोध्रैलवालुकक्रमुकचतुर्थास्त्वगासवाभवन्ति। शर्करासवएकएव। इत्येषामासवानामासुतत्त्वादासवसंज्ञाएवमेषामासवानांचतुरशीतिः परस्परेणासंस्पृष्टानामासवद्रव्याणामुपनिर्दिष्टाः। द्रव्यसंयोगविभागस्त्वेषांवहुविकल्पसंस्कारश्च यथास्वयोनिसंस्कारसंस्कृताश्चासवाः स्वंकर्मकुर्वन्तिसंयोगसंस्कारदेशकालमात्रादयश्चभावास्तेषांतेषामासवानांतेतेसमुपदिश्यन्तेतत्तत्कार्यमभिसमीक्ष्येति ॥ ५१ ॥

कमल, उत्पल; नलिन, कुमुद, कल्हार, पुण्डरीक, शतपत्र, महुएका फूल, प्रियंगुके फूल, धावेके फूल इनसे १० दस प्रकारके फूलोंके आसव वनते हैं। पटोलपत्र और देवदारुके पत्रोंसे २ प्रकारके आसव वनतेहैं। ईख, कांडेक्षु, इक्षुवालिका, पुण्ड्रक, ये चार प्रकारके आसव डांडरोंसे वनतेहैं। तिल्वक लोध, एलवालुक, सुपारी इन : चार ४ वृक्षोंकी छालसे चार प्रकारके आसव वनतेहैं। शर्करासे शर्करासव एक १ प्रकारका वनताहै। इन आसवोंकी इन २ पदार्थोंमें व्याप्त रहने और दवाकर निकाले जानेसे आसव संज्ञा है, इस प्रकार ८४ चौरासी प्रकारके आसवोंका उपदेश किया गया है।

द्रव्य विशेषके संयोग, विभाग, कल्पना, और संस्कारविशेषसे आसव अपने २ कारणोंके अनुसार अनेक प्रकारके गुण करतेहैं । संयोग, संस्कार, देश, काल, मात्रा आदिका विचार करके ही आसवोंका उपयोग करना चाहिये । इस प्रकार जो २ आसव जिस २ प्रकार जिस २ पदार्थसे बनताहै उसका यथोचित वर्णन किया गया है ॥ ५१ ॥

भवंतिचात्र ।

उपसंहार।

मनःशरीराग्निबलप्रदानामस्वप्नशोकारुचिनाशनानाम्।संहर्षणानांप्रवरासवानामशीतिरुक्ताचतुरुत्तरैषा ॥ ५२॥ शरीरयोगप्रकृतौमतानितत्त्वेनचाहारविनिश्चयोयः । उवाचयज्ञःपुरुषादिकेऽस्मिन्मुनिस्तथाऽग्र्याणिवरासवांश्चइति ॥ ५३ ॥

इत्यन्नपानचतुष्केयज्जःपुरुषीयोध्यायःसमाप्तः ।

इस यज्जःपुरुषीय अध्यायमें मन, शरीर, अग्नि और बल बढानेवाले और अनिद्रा, शोक तथा अरुचिको नष्ट करनेवाले हर्षके उत्पन्न करनेवाले ८४ चौरासी आसवोंका वर्णन किया गया है तथा शरीरकी रक्षाके लिये सब प्रकारके आहार और उपाय यथोचित रीति पर महर्षि आत्रेयजीने वर्णन कियेहैं ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

इति श्रीमहर्षिचरक० पं० रामप्रसादवैद्य० भाषाटीकायां यज्जःपुरुषीयो नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

षड्विंशोऽध्यायः ।

अथातआत्रेयभद्रकाप्यीयमध्यायं व्याख्यास्याम इतिहस्माह भगवानात्रेयः ।

अब हम आत्रेयभद्रकाप्यीय नामके अध्यायकी व्याख्या करतेहैं ऐसा आत्रेय भगवान् कहने लगे ।

ऋषियोंका रसविषयक आन्दोलन ।

आत्रेयोभद्रकाप्यश्चशाकुन्तेयस्तथैवच । पूर्णाख्यश्चैवमौद्गल्यो हिरण्याक्षश्चकौशिकः ॥१॥ यःकुमारशिरानामभरद्वाजःसचानघः । श्रीमान्वार्य्योविदश्चैवराजामतिमतांवरः ॥ २ ॥

पञ्चरसाइतिकुमारशिराभरद्वाजोभौमौदकाग्नेयवायवीयान्त-रिक्षाः ॥ १० ॥

कुमारशिरा भरद्वाज कहनेलगे कि भौम, औदक, आग्नेय, वायव्य, आन्तरिक्ष इन भेदोंसे ५ पांच प्रकारका रस होताहै ॥ १० ॥

षड्रसाइतिवार्योविदोराजर्षिःगुरुलघुशीतोष्णस्निग्धरूक्षाः॥११॥

राजर्षि वार्योविद कहनेलगे कि, गुरु, लघु, शीत, उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष इन भेदोंसे रस ६ छः प्रकारका होताहै ॥ ११ ॥

सप्तरसाइतिनिमिर्वैदेहोमधुराम्ललवणकटुकातिक्तकषाय-क्षाराः ॥ १२ ॥

निमि वैदेह कहनेलगे कि रस ७ सात प्रकारके होतेहैं। जैसे-मधुर, अम्ल, लवण, कटु, तिक्त, कषाय, क्षार ॥ १२ ॥

अष्टौरसाइतिबाडिशोधामार्गवोमधुराम्ललवणकटुतिक्तकषाय-क्षाराव्यक्ताः ॥ १३ ॥

बाडिश धामार्गव कहतेहैं कि, मधुर, अम्ल, लवण, तिक्त, कटु, कषाय, क्षार और व्यक्त इन भेदोंसे रस आठ प्रकारके हैं ॥ १३ ॥

अपरिसंख्येयारसाइतिकाङ्कायनोबाह्लीकभिषगाश्रयगुणकर्म-संस्कारविशेषाणामपरिमेयत्वात् ॥ १४ ॥

कांकायन कहनेलगे कि रस अपरिसंख्येय हैं क्योंकि आयुर्वेदाश्रित गुण, कर्म, संस्कार विशेषोंसे असंख्य कल्पना होसकतीहै ॥ १४ ॥

रसविषयक सिद्धान्त ।

षडेवरसाइत्युवाचभगवानात्रेयःपुनर्वसुःमधुराम्ललवणकटु-तिक्तकषायाः । तेषांषण्णांरसानांयोनिरुदकम् । छेदनोपशम-नेद्वेकर्मणी ।तयोर्मिश्रीभावात्साधारणत्वंस्वाद्वस्वादुताभक्तिः। द्वौहिताहितौप्रभावौ । पञ्चमहाभूतविकारास्त्वाश्रयाः॥१५॥

इस पर भगवान् पुनर्वसु आत्रेयने कहा कि नहीं रस छही प्रकारके होतेहैं। जैसे-मधुर, अम्ल, लवण, कटु, तिक्त, कषाय और इन छहों रसोंका कारण जल है। छेदन और उपशमन यह रसोंके दो कर्म हैं। इन सब रसोंके मिलजुलकर साधारण-तासे दो स्वाद माने गये हैं। १ स्वादु और २ अस्वादु । हितकर और अहितकर

यह दो प्रकारके रसोंके प्रभाव होतेहैं । और पांच महाभूतोंके विकार रसके आश्रय माने जाते हैं ॥ १५ ॥

प्रकृतिविकृतिविचारदेशकालवशास्तेषुआश्रयेषुद्रव्यसंज्ञकेषु गुणागुरुलघुशीतोष्णास्निग्धरूक्षाद्याः ॥ १६ ॥

वह आश्रय–प्रकृति, विकृति, विकार, देश, कालके वश माने जाते हैं । फिर वह द्रव्यनामक आश्रय गुरु, लघु, शीत, उष्ण, रूक्ष आदि गुणोंके आश्रयीभूत हैं ॥ १६ ॥

क्षरणात्क्षारोनासौरसोद्रव्यंतदनेकरससमुत्पन्नमनेकरसंकटुकलवणभूयिष्ठमनेकेन्द्रियार्थसमन्वितंकरणाभिनिर्वृत्तम्॥१७॥

क्षरण होनेसे क्षार कहा जाता है इसलिये यह रस नहीं द्रव्य है क्योंकि वह अनेक प्रकारके रसोंसे प्रकट होताहै। इसीलिये अनेक रसयुक्त है किन्तु क्षारमें कटु और लवण रस अधिकतासे प्रतीत होता है।क्षार रस अनेक विषयोंसे युक्त और करणसे उत्पन्न होताहै ॥ १७ ॥

अव्यक्तीभावस्तुखलुरसानांप्रकृतावनुरसेअनुरससमन्वितेवा द्रव्ये ॥ १८ ॥ अपरिसंख्येयत्वंपुनरेतेषामाश्रयादीनांभावानां विशेषान्नाश्रीयतेनचतस्मादन्यत्वमुपपद्यते ॥ १९ ॥

रस अपनी प्रकृतिमें तथा अनुरसद्रव्योंमें मिलाहुआ रहताहै इससे मालुम नहीं होताहै ॥१८॥ इन रसोंके आश्रित असंख्य द्रव्य हैं इसीलिये आश्रयके भेदसे रस भी असंख्य प्रकारके होसकतेहैं । परन्तु रस रसही रहताहै अन्यत्वको प्राप्त नहीं होता ॥ १९ ॥

परस्परंसंसृष्टभूयिष्ठत्वान्नचैषामभिनिर्वृत्तिर्गुणप्रकृतीनामपरिसंख्येयत्वंभवति । तस्मान्नसंसृष्टानांरसानांकर्मोपदिशन्तिबुद्धिमन्तः ॥ २० ॥

इस प्रकार परस्पर विशेष संयोग होनेसे औरअसंख्य द्रव्याश्रित होनेसे रस असंख्य होतेहुए भी गुण, प्रकृति, स्वभावसे ६ छः प्रकारके ही होतेहैं। इसलिये बुद्धिमानोंने गुण, प्रकृतिके संयोगसे असंख्य होने पर भी रसोंके कर्म अधिक नहीं कहे॥२०॥

तच्चैनकारणमपेक्षमाणाःषण्णांरसानांपरस्परेणासंसृष्टानांलक्षणपृथक्त्वमुपदेक्ष्यामः । अग्रेतुयावद्द्रव्यभेदमभिप्रेत्याकि-

श्चिदभिधास्यामः । सर्वंद्रव्यंपाञ्चभौतिकमस्मिन्नेवार्थेतच्चेत-
नावदचेतनञ्च । तस्यगुणाःशब्दादयोगुर्वादयश्चद्रवान्ताः ।
कर्मपञ्चविधमुक्तंवमनादि ॥ २१ ॥

इसी लिये कारणोंकी अपेक्षा करतेहुए ६ छहों रसोंके द्रव्यादिकोंकी सहकारिताासे अलग २लक्षणोंको कहतेहैं । एवम् द्रव्यभेदका आश्रय लेकर रसोंके गुणोंको कहतेहैं । सम्पूर्ण द्रव्य पांचभौतिक हैं फिर इनके चेतन और अचेतन भेदसे दो प्रकार हैं । फिर उनके गुण शब्दादिक और गुरुआदिक द्रवपर्यन्त होतेहैं । एवम् पांच प्रकारका वमनादिक कर्म है ॥ २१ ॥

पार्थिवद्रव्योंके गुणकर्म ।

तत्रद्रव्याणिगुरुखरकठिनमन्दस्थिरविषदसान्द्रस्थूलगन्धगु-
णबहुलानिपार्थिवानितान्युपचयसङ्घातगौरवस्थैर्य्यकराणि२२॥

उन द्रव्योंमें गुरु, खर, काठिन, मंद, स्थिर, विषद, सान्द, स्थूल और गंध ये गुण पार्थिव (पृथ्वीसम्बन्धी) होतेहैं । पार्थिव द्रव्य शरीरको पुष्ट, काठिन, गुरुता और स्थिरताके करनेवाले होतेहैं ॥ २२ ॥

जलीय द्रव्य ।

द्रवास्निग्धशीतमन्दमृदुपिच्छिलरसगुणबहुलान्याप्यानितान्यु-
त्क्लेदस्नेहबन्धविष्यन्दप्रह्लादकराणि ॥ २३ ॥

जो द्रव्य द्रव, स्निग्ध, शीत, मन्द, मृदु, पिच्छिल, सर तथा रसगुणप्रधान होतेहैं उनको जलीयद्रव्य जानना । जलीयद्रव्य-क्लेद, स्निग्धता, बंध, विष्यंद और आह्लादता करनेवाले हैं ॥ २३ ॥

आग्नेय द्रव्य ।

उष्णतीक्ष्णसूक्ष्मलघुरूक्षविषदरूपगुणबहुलानिआग्नेयानिता-
निदाहपाकप्रभाप्रकाशवर्णकराणि ॥ २४ ॥

जो द्रव्य उष्ण, तीक्ष्ण, सूक्ष्म, लघु, रूक्ष, विषद, एवम् रूप-गुण-प्रधान होते हैं उनको आग्नेय जानना । आग्नेय द्रव्य-शरीरमें दाह, पाक, प्रभा, प्रकाश और वर्णको करतेहैं ॥ २४ ॥

वायवीय द्रव्य ।

लघुशीतरूक्षखरविषदसूक्ष्मस्पर्शगुणबहुलानिवायव्यानिता-
निरौक्ष्यग्लानिविचारवैषद्यलाघवकराणि ॥ २५ ॥

जो द्रव्य लघु, शीत, रूक्ष, खर, विषद, सूक्ष्म और स्पर्शगुणप्रधान होतेहैं उनको वायवीय जानना । वायवीयद्रव्य–रूक्षता, ग्लानि, विचार, विषदता तथा लघुताको करतेहैं ॥ २५ ॥

आकाशीय द्रव्य ।

मृदुलघुसूक्ष्मश्लक्ष्णशब्दगुणबहुलान्याकाशात्मकानितानि मार्दवसौषिर्य्यलाघवकराणि ॥ २६ ॥

जो द्रव्य मृदु, लघु, सूक्ष्म, श्लक्ष्ण और शब्दगुणप्रधान होतेहैं वह आकाशीय हैं। आकाशीय द्रव्य मृदुता, पित्त तथा लघुताको करतेहैं ॥ २६ ॥

द्रव्यविषयक सिद्धान्त ।

अनेनोपदेशेननानौषधिभतंजगतिकिञ्चिद्द्रव्यमुपलभ्यते । तांयुक्तिमर्थञ्चतंतमभिप्रेत्यनचगुणप्रभावादेवकार्मुकाणिभवन्ति ॥ २७ ॥

इस नियमसे यह सिद्ध है कि संसारमें यत्किंचित् वस्तु हैं उन सबमें ही औषधत्व होताहै । सम्पूर्ण द्रव्य उक्त गुण प्रभावसे ही कार्यकर्ता नहीं होते किन्तु युक्ति, अर्थ, योगविशेषकी अपेक्षासे ही कार्यकर्ता होतेहैं ॥ २७ ॥

द्रव्याणिहिद्रव्यप्रभावाद्गुणप्रभावाच्चतस्मिंस्तस्मिन्कालेतत्तदधिष्ठानमासाद्यतांताश्चयुक्तिंयत्कुर्वन्तितत्कर्मयेनकुर्वन्तितद्वीर्य्यं, यत्रकुर्वन्तितदधिकरणंयदाकुर्वन्तिसकालो यथाकुर्वन्ति सउपायोयत्साधयन्तितत्फलम् ॥ २८ ॥

सम्पूर्ण द्रव्य द्रव्यके प्रभावसे, गुणके प्रभावसे और द्रव्यगुणके प्रभावसे यथासमय यथोचित रीति पर प्रयोग करनेसे जो कार्य करतेहैं, उसको कर्म कहतेहैं, तथा जिसके द्वारा करतेहैं उसको वीर्य कहतेहैं और जिस समय करतेहैं उसको काल कहतेहैं एवम् जिस प्रकार करतेहैं उसको उपाय कहतेहैं और कर्मद्वारा जो सिद्ध होताहै उसको फल कहतेहैं ॥ २८ ॥

रसोंके विकल्पकी संख्या ।

भेदश्चैषांत्रिषष्टिविधविकल्पोद्रव्यदेशकालप्रभावात्तदुपदेक्ष्यामः ॥ २९ ॥

इन द्रव्योंके–देश, काल, और प्रभावविशेषसे ६३ तिरसठ प्रकार होतेहैं उनका आगे वर्णन करतेहैं ॥ २९ ॥

स्वादुरम्लादिभिर्योगंशेषैरम्लादयःपृथक् ।यानिपञ्चदशैतानि द्रव्याणिहिरसानितु ॥ ३० ॥ पृथगम्लादियुक्तस्ययोगःशेषैः पृथग्भवेत् । मधुरस्यतथाम्लस्यलवणस्यकटोस्तथा ॥ ३१ ॥ त्रिरसानियथासंख्यंद्रव्याण्युक्तानिविंशतिः । वक्ष्यन्तेतुचतु-ष्केणद्रव्याणिदशपञ्चच ॥ ३२ ॥ स्वाद्वम्लौसहितौयोगंलव-णाद्यैःपृथग्गतौ । योगंशेषैःपृथग्यातःचतुष्कंरससंख्यया॥३३॥ सहितौस्वादुलवणौतद्वत्कटादिभिःपृथक् ।युक्तौशेषैःपृथग्योगं यातःस्वादूषणौयथा ॥ ३४ ॥ कट्वाद्यैरम्ललवणौसंयुक्तौसहि-तौपृथक् । यातःशेषैःपृथग्योगंशेषैरम्लकटूतथा ॥ ३५ ॥ युज्यतेतुकषायेणसतिक्तौलवणोषणौ । षट्तुपञ्चरसान्याहुरे-केकस्यापवर्जनात् ॥ ३६ ॥षट्चैवैकरसानिस्युरेकंषड्रसमेवतु। इतित्रिषष्टिर्द्रव्याणांनिर्दिष्टारससंख्यया ॥ ३७ ॥ त्रिषष्टिः स्यात्त्वसंख्येयारसानुरसकल्पनात् ।रसास्तरतमाभ्यांतांसंख्या-मभिपतन्तिहि ॥३८ ॥

मधुर आदिक जो छः रस हैं उनमेंसे स्वादुरसका अम्ल आदिके संग दो दोका संयोग करनेसे पांच प्रकार होतेहैं ।जैसे मधुराम्ल, मधुरलवण,मधुरतिक्त,मधुरकटु, मधुरकषाय । एवम् अम्लरसका दो दोसे संयोग कियाजाय तो चार प्रकार होतेहैं जैसे अम्ललवण, अम्लतिक्त,अम्लकटु, अम्लकषाय यह चार प्रकार हुए,क्योंकि अम्लमधुर पहिले पांच प्रकारोंमें आचुका है इसलिये छः रसोंमेंसे एक रसके दूसरें दूसरेके साथ मिलानेसे जिस रसका मिलान किया जायगा वह कम होनेसे पांच प्रकारके होतेहैं । दूसरे रसका मिलान करनेसे चार प्रकार रह जातेहैं । इसी प्रकार लवणरसका मिलान करनेसे तीन प्रकार होतेहैं । तिक्तरसका मिलान करनेसे दो प्रकार होतेहैं तथा कटुरस केवल एक प्रकारका रहजाता है । इस प्रकार सब मिला १५ प्रकारके हुए। तीन तीनके मिलानेसे मधुर रस १० प्रकारका अम्लरस ६ प्रकारका, लवणरस ३ प्रकारका होताहै एवम् तिक्तरस १ प्रकारका हुआ । कुल मिल-कर २० प्रकार हुए । चार चारके संयोगसे मधुररस १० प्रकारका, अम्ल रस ४ प्रकारका, लवण रस १ प्रकारका इस सबको जोडदेनेसे १५ होतेहैं । पांच पांचके मिलानेसे मधुर ५ प्रकारका, अम्ल १ प्रकारका, दोनोंको मिलानेसे ६ प्रकार हुए।

और ६ रसोंको ही एकत्रित करनेसे १ प्रकार हुआ, एवम् मधुर आदि मुख्य-रसोंको अलग २ रखनेसे ६ प्रकार हुए । सबका मिलान करनेसे ६३ प्रकारके रस भेद हुए । इन ६३ तिरेसठ ही प्रकारोंमें रस और अनुरस ये अंशांश कल्पना करनेसे अत्यंत संख्या बढजाती है॥ ३०॥३१॥३२॥३३॥३४॥३५॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

संयोगाःसप्तपञ्चाशत्कल्पनात्तुत्रिषष्टिधा।रसानांतत्रयोग्यत्वा-त्कल्पितारसचिन्तकैः ॥३९ ॥ क्वचिदेकोरसःकल्प्यःसंयुक्ता-श्चरसाःक्वचित् । दोषौषधादीन्संचिन्त्यभिषजासिद्धिमि-च्छता ॥ ४० ॥ द्रव्याणिद्विरसादीनिसंयुक्तांश्चरसान्बुधः । रसानेकैकशश्चैवकल्पयन्तिगदान्प्रति ॥ ४१ ॥

इस प्रकार संयोगसे ५७ सत्तावन और कल्पनाविशेषसे ६३ तिरसठ रसोंके प्रकार होतेहैं । रसचिंतकोंने रसतन्त्रमें इस प्रकार कल्पना की है । सिद्धिकी इच्छा करनेवाले वैद्यको कहीं एक कहीं बहुत रसोंसे युक्त औषधियोंको और दोषोंको विचारलेना चाहिये । बुद्धिमान् वैद्यको चाहिये कि द्रव्य और द्रव्योंके रस तथा रससंयोग आदि विचारकर रोगोंमें प्रयोग करें ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥

रसविकल्पज्ञ वैद्यकी प्रशंसा ।

यःस्याद्रसविकल्पज्ञःस्याच्चदोषविकल्पवित् ।
नसमुह्येद्विकाराणां हेतुलिङ्गोपशान्तिषु ॥ ४२ ॥

जो वैद्य रसोंके विकल्पको जानताहै तथा दोषोंके विकल्पको भली प्रकार जानताहै वह वैद्य रोगके निदान, लक्षण और उपाय करनेमें मोहको प्राप्त नहीं होता ॥ ४२ ॥

व्यक्तःशुक्तस्यचादौचरसोद्रव्यस्यलक्ष्यते ।
विपर्ययेणानुरसोरसोनास्तिहिसप्तमः ॥ ४३ ॥

सम्पूर्ण द्रव्योंमें रस दो प्रकारका देखनेमें आताहै । १ व्यक्त रस, २ अनुरस । सूखे वा गीले द्रव्यको मुखमें रखनेसे जो रस प्रतीत होताहै वह व्यक्तरस होताहै एवम् जो रस पीछेसे प्रतीत हो उसको अनुरस कहतेहैं सो वह व्यक्तरस और अनुरस छः रसोंमें ही हैं । अनुरस छहोंसे अलग कोई सातवां रस नहीं है ॥ ४३ ॥

परादि १० गुणोंके नाम और लक्षण ।

परापरत्वेयुक्तिश्चसंख्यासंयोगएव च । विभागश्चपृथक्त्वञ्चप-

रिमाणमथापिच ॥ ४४ ॥ संस्कारोऽभ्यासइत्येतेगुणाज्ञेयाः
परादयः । सिद्धयुपायश्चिकित्सायालक्षणैस्तान्प्रवक्ष्यते॥४५॥

परत्व, अपरत्व, युक्ति, संख्या, संयोग, विभाग, पृथक्त्व, परिमाण, संस्कार और अभ्यास इन सबका यथोचित ज्ञान होने विना चिकित्साकी सिद्धि नहीं होती इसलिये अब इनके लक्षणोंको कहतेहैं ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

देशकालवयोमानपाकवीर्य्यरसादिषु ।
परापरत्वेयुक्तिस्तुयोजनायाचयुज्यते ॥ ४६ ॥

देश, काल, अवस्था, मान, पात्र, वीर्य, रस आदिकोंमें प्रधानको परत्व और अप्रधानको अपरत्व समझना चाहिये।इन देश, कालादिकोंका परत्वापरत्व विचार जो प्रयोग किया जाता है उसको युक्ति कहतेहैं ॥ ४१ ॥

संख्यास्याद्गणितंयोगः सहसंयोग उच्यते ।
द्रव्याणांद्वन्द्वसर्वैककर्मजोऽनित्यएवच ॥ ४७ ॥

द्रव्यकी गणनाको संख्या कहतेहैं उसके विधिपूर्वक मिलानको संयोग कहतेहैं। वह संयोग तीन प्रकारका होताहै । १ द्वन्द्वकर्मज, २ सर्वकर्मज ३ एककर्मज । वह संयोग अनित्य होताहै ॥ ४७ ॥

विभागस्तुविभक्तिस्तुवियोगोभागशोग्रहः ।
पृथक्त्वंस्यादसंयोगोवैलक्षण्यमनेकता ॥ ४८ ॥

विभागशब्दका अर्थ हिस्से करना अर्थात् भागपूर्वक वियोग करना है पृथक्त्व एकसे दूसरेमें पृथक्ता प्रतिपादन करना है। जैसे-गौसे भैंस पृथक् होतीहै । घटसे पट पृथक् होताहै । इस प्रकार एक जगह संयोग होनेपर भी जो गुणविशेषसे अलग ही प्रतीत हो उसको पृथक्त्व कहतेहैं ॥ ४८ ॥

परिमाणंपुनर्मानंसंस्कारःकरणंमतम् ।
भावाभ्यसनमभ्यासःशीलनंसततक्रिया॥ ४९ ॥

परिमाण-मान (तोल) के विधानका नाम है । द्रव्यादिकोंका संयोग करनेसे जो विशेष रूप प्रगट होताहै उसको संस्कार कहतेहैं । सत्क्रियाका निरन्तर सेवन करना अभ्यास कहा जाता है ॥ ४९ ॥

---

१ परत्वं प्रधानत्वम्, अपरत्वम्-अप्रधानत्वमिति चक्रपाणिः ।

इतिस्वलक्षणैरुक्तागुणाःसर्वेपरादयः ।
चिकित्सायैरविदितैर्नयथावत्प्रवर्त्तते ॥ ५० ॥

इस प्रकार परत्व आदिकोंके लक्षणोंका वर्णन कियागयाहै इनके यथोचित ज्ञान विना यथार्थ चिकित्सा नहीं होती ॥ ५० ॥

रसगुणविषयक सिद्धान्त ।

गुणागुणाश्रयानोक्तास्तस्माद्रसगुणान्भिषक् ।
विद्याद्द्रव्यगुणान्कर्तुरभिप्रायाःपृथग्विधाः ॥ ५१ ॥
अतश्चप्रकृतिंबुद्ध्वादेशकालान्तराणिच ।
तन्त्रकर्त्तुरभिप्रायानुपायांश्चार्थमादिशेत् ॥ ५२ ॥

गुण गुणोंके आश्रित नहीं होते किन्तु द्रव्य गुणके आश्रय कहे गये हैं । इसलिये वैद्य रसके गुणोंको द्रव्यके गुणोंमें समझे क्योंकि रसका गुण अन्य होनेपर भी द्रव्यमें अन्य गुण पाया जाता है । जैसे-कुल्थीका कषाय रसमें कसैला होनेपर भी वावको उत्पन्न नहीं करता बल्कि नाश करता है ॥ ५१ ॥ इसलिये तंत्रकर्त्ताका अभिप्राय और देश काल आदिकोंको यथोचित विचारकर उपाय आदि करना चाहिये ॥ ५२ ॥

रसोंकी उत्पत्ति ।

परश्चातःप्रवक्ष्यन्तेरसानांषड्विभक्तयः ।
षट्पञ्चभूतप्रभवाःसंख्याताश्चयथारसाः ॥ ५३ ॥

अब फिर रसोंके ६ विभाग तथा इन छःहोंकी पांच महाभूतोंसे उत्पत्तिको कथन करतेहैं । जैसे-६ प्रकारके रस पांच महाभूतोंसे उत्पन्न हुएहैं ॥ ५३ ॥

सौम्याःखल्वापोऽन्तरिक्षप्रभवाःप्रकृतिशीतालघ्व्यश्चअव्यक्त-
रसाश्चतास्त्वन्तरिक्षाद्भ्रश्यमानाभ्रष्टाश्चपञ्चमहाभूतविकार-
गुणसमन्विताजङ्गमस्थावराणांभूतानांमूर्त्तीरभिप्रीणयन्तिता-
सुमूर्तिषुषड्भिर्मूर्च्छन्तिरसाः ॥ ५४ ॥

अन्तरिक्षका जल प्रायः सौम्य (सोमगुणप्रधान) होताहै इसीलिये स्वभावसे ही शीतल और हलका होताहै । यह अव्यक्त रस होताहै । आकाशसे गिरकर पंच-महाभूतोंके गुणोंसे युक्त होताहै और जंगम तथा स्थावरोंको प्रीणनकर्ता होताहै वही स्थावरोंमें ६ प्रकारके रसोंको प्रगट करताहै ॥ ५४ ॥

तेषांषण्णांरसानांसोमगुणातिरेकान्मधुरोरसः,पृथिव्यग्निभूयिष्ठत्वादम्लःसलिलाग्निभूयिष्ठत्वाल्लवणोवाय्वग्निभूयिष्ठत्वात्कटुकोवाय्वाकाशातिरेकात्तिक्तःपवनपृथिव्यातिरेकात्कषायः । एवमेषांरसानांषट्त्वमुत्पन्नम् ॥ ५५ ॥

उन छः रसोंमें मधुर रस सोमगुणविशिष्ट होताहै। पृथ्वी और तेज गुण विशिष्ट अम्लरस होताहै । जल और अग्निगुणविशिष्ट लवण रस होताहै ।वायु और अग्निगुणविशिष्ट कटु रस होताहै । वायु और आकाशगुण विशिष्ट कषाय रस होताहै । इस प्रकार पंचमहाभूतात्मक ६ रस होतेहैं ॥ ५५ ॥

पंचमहाभूतोंके न्यूनाधिक्यका फल ।

न्यूनातिरेकविशेषान्महाभूतानामिवजङ्गमस्थावराणांनानावर्णाकृतिविशेषाःषड्ऋतुकत्वाच्चकालस्यउत्पन्नोमहाभूतानांन्यूनातिरेकविशेषः ॥ ५६ ॥

इन पंच महाभूतोंके ही न्यूनाधिक भावसे सम्पूर्ण स्थावर जंगम जगत्के वर्ण और आकृतिमें भेद होताहै । एवम् छः ऋतुओंके भेदसे कालजनित करणोंसे महाभूतोंके गुणोंमें न्यूनाधिकता होतीहै ॥ ५६ ॥

अग्निमारुतात्मक रसोंके कर्म ।

तत्राग्निमारुतात्मकारसाःप्रायेणोर्द्ध्वभाजोलाघवात्प्लवकत्वाच्च वायोरूर्द्ध्वज्वलनत्वाच्चवह्नेःसलिलपृथिव्यात्मकास्तुप्रायेणाधोभाजःपृथिव्यागुरुत्वान्निम्नगत्वाच्चोदकस्यव्यामिश्रात्मकास्तुपुनरुभयतोभागभाजः ॥ ५७ ॥

इन द्रव्योंमें अग्नि और वायुआत्मक रस प्रधान कटुद्रव्य चरगति और लघुता आदि वायुके गुण होनेसे और ऊर्द्ध्वगति आदि अग्निके गुण होनेसे शरीरके ऊपरके भागमें अपने गुणोंको दिखाते हैं । जल और पृथ्वीप्रधान रस जलकी गति नीचे गमन करनेवाली और पृथ्वीके गुण गुरुत्व होनेसे शरीरके नीचेके भागमें अपनी क्रियाको करते हैं ऊपरके भागमें क्रिया करनेवाले और नीचेके भागमें क्रिया करनेवाले सब प्रकारके रसोंको मिलानेसे उभयतः क्रिया करते हैं ॥ ५७ ॥

मधुरादि ६ रसोंके गुणागुण ।

तेषांषण्णांरसानामेकैकस्ययथाद्रव्यगुणकर्माण्यनुव्याख्यास्या-

अम्लोरसोभक्तंरोचयति, अग्निंदीपयति, देहंबृंहयति, जर्जरयति, मनोबोधयति, इन्द्रियाणिदृढीकरोति, बलंवर्द्धयति, वातमनुलोमयति, हृदयंतर्पयति, आस्यंसंस्रावयति, भुक्तमपकर्षयति, क्लेदंजनयति, प्रीणयतिलघुरुष्णःस्निग्धश्च॥६०॥

खट्टा रस अन्नमें रुचि, अग्निको दीपन, देहमें पुष्टि करताहै। जीर्णकारी है, मनको बोधन करताहै, इन्द्रियोंको दृढ करताहै, बलकी वृद्धि करताहै, वायुको अनुलोमन करताहै, हृदयको तृप्त करताहै, मुखको स्रावण करताहै, आहारको नीचेकी ओर खींचताहै, क्लेदको उत्पन्न करताहै, प्रीणन करताहै एवम् लघु उष्ण तथा तीक्ष्ण-गुणयुक्त है ॥ ६० ॥

सएवंगुणोऽप्येकएवात्यर्थमुपयुज्यमानोदन्तान्हर्षयतितर्पयति, संमीलयतिआक्षिणी, संवीजयतिलोमानि, कफंविलापयति, पित्तमभिवर्द्धयति, रक्तंदूषयति, मांसंविदहति, कायंशिथिलीकरोति, क्षीणक्षतकृशदुर्बलानांश्वयथुमापादयति । अपि चक्षताभिहतदष्टभग्नशूलिच्युतावमृदितपारिसर्पितमर्दिताच्छिन्नविद्धोत्पिष्टादीनिपाचयत्याग्नेयस्वभावात्परिदहतिकण्ठमुरो हृदयञ्च ॥ ६१ ॥

इस प्रकारके गुणवाला अम्लरस अत्यन्त और निरंतर सेवन करनेसे दंतहर्ष रोग करताहै। भोजनमें अनिच्छा, नेत्रसंमीलन और रोमहर्षको उत्पन्न करताहै। अपने स्वभावमें स्थित कफको पतला करताहै, पित्तको बढाताहै, रक्तको दूषित करताहै, मांसको विदग्ध करताहै, शरीरको शिथिल करताहै। क्षीण, क्षत, कृश, तथा दुर्बल मनुष्योंके शरीरमें सूजन उत्पन्न करताहै। यह रस आग्नेय गुण प्रधान होनेसे क्षत, आहत, दष्ट, दग्ध, भग्न, शूलाहत, प्रच्युत, मृदित, परिसर्पित, मर्दित, छिन्न, विद्ध, उत्पिष्ट स्थानोंमें पाकको उत्पन्न करताहै तथा अपने स्वभावसे कण्ठ, छाती एवम् हृदयमें दाहको उत्पन्न करताहै ॥ ६१ ॥

लवणोरसःपाचनःक्लेदनोदीपनश्च्यावनश्छेदनोभेदनस्तीक्ष्णः सरोविकास्यधःस्रंस्यवकाशकरोवातहरःस्तम्भबन्धसंघातविधमनःसर्वरसप्रत्यनीकभूतआस्यंविस्रावयति, कफंविष्यन्दय-

ति, मार्गाञ्छोधयति, सर्वशरीरावयवान्मृदूकरोति, रोचयत्याहारमाहारयोगीचात्यर्थंगुरुः स्निग्धउष्णश्च ॥ ६२ ॥

लवण रस-पाचन है, क्लेदन है; दीपन है, च्यावन है, छेदन है, तीक्ष्ण है, सर है, विकाशी है, स्रंसन है भ्रंसन है, वातनाशक है, स्तम्भनाशक है, विबंधके संघातको नष्ट करताहै, सब रसोंसे विपरीत है, मुखको स्रावण करताहै, कफको पतला करताहै, छिद्रोंको शोधन करताहै शरीरके संपूर्ण अवयवोंको नम्र करताहै, आहारमें रुचि प्रगट करताहै तथा भोजनका अत्यंत उपयोगी है एवम् गुरु, स्निग्ध और उष्ण गुणप्रधान है ॥ ६२ ॥

सएवंगुणोऽप्येकएवात्यर्थमुपयुज्यमानः पित्तंकोपयति, रक्तंवर्द्धयति, तर्पयति, मूर्च्छयति, तापयति, दाहयति, कुष्णाति मांसानि, प्रगालयतिकुष्ठानि, विषंवर्द्धयति, शोफान्स्फोटयति, दन्ताञ्छ्यावयति, पुंस्त्वमुपहन्ति, इन्द्रियाण्युपरुणाद्धि, वलीपलितखालित्यमापादयतिच, लोहितपित्ताम्लपित्तवीसर्पवातरक्तविचर्चिकेन्द्रलुप्तप्रभृतीन्विकारानुपजनयति ॥ ६३ ॥

इन गुणोंवाला होनेपर भी लवण रस अधिक सेवन करनेसे पित्तको कुपित करताहै. रक्तविकारको वढाताहै, और तृषा, मूर्च्छा, ताप, दाह, मांसमें खुजली इनको उत्पन्न करताहै। कुष्ठोंको प्रगलित करताहै, विषके वेगको वढाताहै, सूजनोंको फटीहुईसी वनाताहै, दांतोंको काला करताहै, पुरुषार्थको नष्ट करता है, इन्द्रियोंका उपरोध करताहै, शरीरमें सलवट, केशोंका सफेद होना, शिरमें गंजापन इन रोगोंको उत्पन्न करताहै तथा रक्तपित्त, अम्लपित्त, विसर्प, वातरक्त, विचर्चिका, और इन्द्रलुप्त रोगोंको प्रगट करताहै ॥ ६३ ॥

कटुकारोरसोवक्त्रंशोधयति, अग्निंदीपयति, भुक्तंशोषयति, घ्राणमास्रावयति, चक्षुर्विरेचयति, स्फुटीकरोतीन्द्रियाणि, अलसकश्वयथूपचयोदर्दाभिष्यन्दस्नेहस्वेदक्लेदमलानुपहन्ति, रोचयत्यशनं, कण्डूर्विनाशयति, व्रणानवसादयति, क्रिमीन्हिनस्ति, मांसंविलिखति, शोणितसंघातंभिनत्ति, वन्धांश्छिनत्ति, मार्गान्विवृणोति, श्लेष्माणंशमयति, लघुरुष्णो रूक्षश्च ॥ ६४ ॥

चरपरा रस-मुखको शुद्ध करताहै । अग्निको दीप्त करताहै । भोजनको शोषण करताहै । नासिकाका स्राव करताहै । आंखोंसे पानी निकालताहै । इन्द्रियोंको स्फुट करताहै । अलसक, शोथ, उदर्द, अभिष्यंद, स्नेह, स्वेद, क्लेद और मल इन सबको नष्ट करताहै । अन्नमें रुचि प्रगट करताहै । खाज, व्रण और कृमियोंका नाश करता है । मांसको लेखन करताहै । रुधिरके जमावको नष्ट करताहै । विबन्धका छेदन करताहै । स्रोतोंको खोलता है । कफको नष्ट करताहै एवम् लघु, उष्ण और रूक्ष गुणसे युक्त है ॥ ६४ ॥

सएवंगुणोऽप्येकएवात्यर्थमुपयुज्यमानोविपाकप्रभावात् पौंस्त्व-मुपहन्ति,रसवीर्यप्रभावान्मोहयतिग्लापयतिसादयतिकर्षय-ति, मूर्च्छयतिनमयतितमयतिभ्रमयतिकण्ठंपरिदहतिशरीरता-पमुपजनयतिबलंक्षिणोतितृष्णांजनयतिवाय्वग्निबाहुल्याद्भ्रं-ममदद्दवथुकम्पतोदभेदैश्चरणभुजपार्श्वपृष्ठप्रभृतिषुमारुतजा-न्विकारानुपजनयति ॥ ६५ ॥

इन गुणोंवाला होनेपर भी चरपरे रसको अधिक सेवन करनेसे तीक्ष्ण रसका तीक्ष्ण विपाक होनेसे पुरुषत्व नष्ट होताहै । रस और वीर्यके प्रभावसे मोह करताहै, ग्लानि करताहै, अवसाद करताहै, कृशतां करताहै,मूर्च्छा करताहै, शरीरको नमन करताहै, अन्धकारको प्रकट करताहै, भ्रम, कण्ठमें जलन, शरीरमें गर्मी उत्पन्न करताहै । बलको क्षय करताहै । तृषाको प्रकट करताहै एवम् वायु और अग्नि-गुण विशिष्ट होनेसे भ्रम, मद, अतिदाह, कम्प· तोदको और भेदको उत्पन्न करताहै । भुजा, पार्श्व और पीठ आदि स्थानोंमें वायुके विकारोंको उत्पन्न करताहै ॥ ६५ ॥

तिक्तोरसःस्वयमरोचिष्णुररोचकघ्नोविषघ्नःक्रिमिघ्नोमूर्च्छादाह-कण्डूकुष्ठतृष्णाप्रशमनस्त्वङ्मांसयोःस्थिरीकरणोज्वरघ्नोदी-पनःपाचनःस्तन्यशोधनोलेखनःक्लेदमेदोवसामज्जालसिकापू-यस्वेदमूत्रपुरीषपित्तश्लेष्मोपशोषणोरूक्षशीतोलघुश्च ॥ ६६ ॥

तिक्तरस-स्वयम् रुचिके योग्य नहीं है परन्तु इसके सेवन करनेके उपरान्त अन्नपर रुचि वढती है। यह रस कृमियोंको नष्ट करताहै, विषको नष्ट करताहै। मूर्च्छा, दाह, कण्डु, कुष्ठ और तृषाको शांन्त करताहै। त्वचा और मांसको स्थिर करताहै, ज्वरको नष्ट करताहै, दीपन है, पाचन है, स्तनोंके दूधको शुद्ध करताहै,

लेखन है, एवम् क्लेद, मेद, वसा, मज्जा, लासिका, राध, पसीना, मूत्र, मल, पित्त और कफको सुखाताहै तथा रूक्ष शीत और लघु गुण वाला है ॥ ६६ ॥

सएवंगुणोऽप्येकएवात्यर्थमुपयुज्यमानोरौक्ष्यात्खरविषदस्वभावाच्चरसरुधिरमांसमेदोऽस्थिमज्जशुक्राण्युच्छोषयतिस्रोतसांखरत्वमुपपादयतिवलमादत्तेकर्षयतिमोहयतिवदनमुपशोषयति, अपरांश्चवातविकारानुपजनयति ॥ ६७ ॥

इन गुणोंवाला होनेपर भी तिक्त रस अत्यन्त सेवन कियाहुआ रूक्ष, खर और विषद होनेसे, रस, रुधिर, मांस मेद, अस्थि, मज्जा, और शुक्रको सुखाताहै। रोममार्गोंको खर्दरा करताहै, वलको हरताहै, शरीरको कृश करताहै, मोहको उत्पन्न करता है, मुखको सुखादेताहै, एवम् विकारोंको उत्पन्न करताहै ॥ ६७ ॥

कषायोरसःसंशमनःसंग्राहीसन्धारणःपीडनोरोपणःशोषणःस्तम्भनःश्लेष्मरक्तपित्तप्रशमनःशरीरक्लेदस्योपयोक्ता रूक्षःशीतोगुरुश्च ॥ ६८ ॥

कषाय रस-संशमन है, संग्राही है, संधारण है तथा पडिन, रोपण, शोषण और स्तम्भन करताहै । कफ तथा रक्तपित्तको शान्त करताहै, शरीरके क्लेदको हरताहै एवम् रूक्ष शीतल और गुरु है ॥ ६८ ॥

सएवंगुणोऽप्येकएवात्यर्थमुपयुज्यमानआस्यंशोषयति, हृदयं पीडयति; उदरमाध्मापयति,वाचंनिगृह्णाति, स्रोतांस्यवबध्नाति, श्यावत्वमापादयति,पौंस्त्वमुपहन्ति, विष्टभ्यजरांगच्छति वातमूत्रपुरीषाण्यवगृह्णाति, कर्षयति, ग्लापयति, तर्पयति, स्तम्भयति, खरविषदरूक्षत्वात्पक्षवधग्रहापतानकार्दितप्रभृतींश्चवातविकारानुपजनयतीति ॥ ६९॥

इन गुणवाला होनेपर भी कषायरस अत्यन्त व्यवहार किये जानेसे मुखको सुखाताहै, हृदयको पीडन करताहै, पदमें अफारा करताहै, वाणीको जकडताहै, स्रोतोंको बन्द करताहै, शरीरको काला वनाताहै, पुरुषत्वको नष्ट करताहै, वुढापेको शीघ्र लाताहै, वात, मूत्र और मलको वांधता है,शरीरको कृश करताहै ग्लानि तथा तृषाको उत्पन्न करता है एवंम् खर विषद तथा रूक्ष स्वभाववाला होनेसे पक्षाघात, हनुस्तम्भ, अपतानक और अर्दित आदि वायुके रोगोंको उत्पन्न करता है ॥ ६९ ॥

एवमेतेषड्रसाःपृथक्त्वेनवामात्रशःसम्यगुपयुज्यमानाउपकार-
कराअध्यात्मलोकस्यापकारकराःपुनरतोऽन्यथोपयुज्यमानां-
स्तान्विद्वानुपकारार्थमेवमात्रशःसम्यगुपयोजयेदिति ॥७० ॥

इस प्रकार यह छःरस पृथक् २ यथोचित मात्रासे उचित रीतिपर सेवन किये-हुए शरीरका उपकार करतेहैं। नहीं तो विकारोंको उत्पन्न करनेवाले होतेहैं अतएव विद्वान् मनुष्य इस लोक और परलोकके हितकी इच्छा करता हुआ रसोंको विधिवत् उचित मात्रासे सेवन करे ॥ ७० ॥

द्रव्योंके वीर्यका वर्णन ।

भवन्तिचात्र । शीतंवीर्य्येणयद्द्रव्यंमधुरंरसपाकयोः। तयोर-
म्लंयदुष्णंचयच्चोष्णंकटुकंतयोः ॥ ७१ ॥

अब यहां पर कहा जाताहै कि उष्ण और शीत भेदसे द्रव्योंके २ प्रकारके वीर्य होतेहैं। जो द्रव्य रस और विपाकमें मधुर हो वह शीतवीर्य होताहै एवम् जिस द्रव्यका रस और विपाक दोनों अम्ल हों वह उष्णवीर्य होताहै एवम् जिस द्रव्यका रस और विपाक कटु हो वह भी उष्णवीर्य होताहै ॥ ७१ ॥

तेषांरसोपदेशेननिर्देश्योगुणसंग्रहः ।
वीर्य्यतोविपरीतानांपाकतश्चोपदेक्ष्यते ॥ ७२ ॥

इस प्रकार द्रव्योंके रसके उपदेशसे रसोंके गुणका संग्रह किया गयाहै । अब वीर्य तथा पाकसे विपरीत नियमोंका कथन करते हैं ॥ ७२ ॥

यथापयोयथासर्पिर्यथावाचव्यचित्रकौ। एवमादीनिचान्यानि
निर्दिशेद्रसतोभिषक् ॥ ७३ ॥ मधुरंकिञ्चिदुष्णंस्यात्कषायं
तिक्तमेव च । यथामहत्पञ्चमूलंयथाचानूपमामिषम् ॥ ७४॥

वैद्यको दूध, घृत, चव्य, चित्रक आदि द्रव्योंका रसानुसार वीर्य और विपाक जानना चाहिये। कोई २ मधुर द्रव्य तथा कोई कषाय द्रव्य भी उष्णवीर्य होतेहैं। जैसे-बृहत्पंचमूलका क्वाथ तिक्त होनेपर भी उष्णवीर्य है । और अनूपसंचारी जीवोंका मांस मधुर होनेपर भी उष्णवीर्य होता है ॥ ७३ ॥ ७४ ॥

लवणंसैन्धवंनोष्णमम्लमामलकंतथा ।
अर्कागुरुगुडूचीनांतिक्तानामुष्णमुच्यते ॥ ७५ ॥

ऐसे ही सेंधानमक लवणरस होनेपर भी और आमला अम्लरस होनेपर भी

अम्लात्कटुस्ततास्तिक्तोलघुत्वादुत्तमोमतः ।केचिल्लघूनामवर-मिच्छंतिलवणंरसम् ॥ ८१ ॥ गौरवेलाघवेचैवसोऽवरस्तूभ-योरपि । परश्चातोविपाकानांलक्षणंसम्प्रवक्ष्यते ॥ ८२ ॥

अम्लरससे कटु और कटुसे तिक्त लघुतामें प्रधान होते हैं।कोई कहते हैं कि लवण-रस लघुताके विषयमें सबसे निकृष्ट होताहै तथा अम्ल और लवण रसोंमें लवण रसकी गुरुतामें प्रधान है और लघुतामें कनिष्ठ है।अब इसके उपरान्त विपाकोंके लक्षणोंका वर्णन करते हैं ॥ ८१ ॥ ८२ ॥

विपाकका वर्णन ।

कटुतिक्तकषायाणांविपाकःप्रायशःकटुः ।
अम्लोऽम्लंपच्यतेस्वादुमधुरंलवणस्तथा ॥ ८३ ॥

कटु, तिक्त और कषाय रसका प्रायः कटु विपाक होताहै । अम्लरसका प्रायः अम्ल विपाक होताहै । मीठे और लवणरसका प्रायः मधुर विपाक होताहै ॥ इस प्रकार कटु, अम्ल और मधुर यह ३ प्रकारका द्रव्योंका विपाक होताहै ॥ ८३ ॥

मधुरोलवणाम्लौचस्निग्धभावात्त्रयोरसाः ।
वातमूत्रपुरीषाणांप्रायोमोक्षेसुखामताः ॥ ८४ ॥

मधुर, लवण और अम्ल यह तीनों रस स्निग्ध होनेसे वायु, मूत्र और मल इनको सुखपूर्वक निकालते हैं ॥ ८४ ॥

कटुतिक्तकषायास्तुरूक्षभावात्त्रयोरसाः ।
दुःखाविमोक्षेदृश्यन्तेवातविण्मूत्ररेतसाम् ॥ ८५ ॥

कटु, तिक्त और कषाय यह तीन रस रूक्ष होनेसे वात, मूत्र, मल और शुक्रको सुखपूर्वक नहीं निकलने देते अर्थात् इनके निकलनेमें रुकावट डालतेहैं ॥ ८५ ॥

शुक्रहाबद्धविण्मूत्रोविपाकोवातलःकटुः ।
मधुरःसृष्टविण्मूत्रोविपाकेकफशुक्रलः ॥ ८६ ॥

कटुरस–विपाक होने पर शुक्रको हरताहै । मल मूत्रको बद्ध करताहै । वायुको उत्पन्न करताहै । मधुररस–विपाक होने पर मल, मूत्रको निकालताहै, कफ तथा वीर्यको उत्पन्न करताहै ॥ ८६ ॥

पित्तकृत्सृष्टविण्मूत्रःपाकेऽम्लःशुक्रनाशनः ।
तेषांगुरुःस्यान्मधुरःकटुकाम्लावतोऽन्यथा ॥ ८७ ॥

किसी पदार्थको मुखमें लेनेसे जो आस्वादन होताहै उसको रस कहतेहैं वह रसनाग्राह्य होनेसे भी रस कहा जाता है । जठराग्निसे परिपक्क होने पर जो प्रथम रसका परिणामभूत अन्य रस वनता है उसको परिपाक कहते हैं रसका परिपाक होनेपर जो कुछ वनताहै उसको वीर्य कहतेहैं ॥ ९१ ॥

प्रभावका लक्षण ।

रसवीर्य्यविपाकानांसामान्यंयस्यलक्ष्यते ।

विशेषःकर्मणाश्चैवप्रभावस्तस्यचस्मृतः ॥ ९२ ॥

जिस द्रव्यके रस,वीर्य, विपाकमें कोई विशेषता प्रतीत न हो किन्तु कर्ममें विशेषरूपसे विशेषता पाई जाय उसको प्रभाव कहतेहैं ॥ ९२ ॥

कटुकःकटुकःपाकेवीर्य्योष्णश्चित्रकोमतः ।

तद्वद्दन्तीप्रभावात्तुविरेचयतिमानवम् ॥ ९३ ॥

जैसे चित्रक, रसमें कटु और पाकमें भी कटु तथा वीर्यमें भी उष्णवीर्य है ऐसे ही दंती (जमालगोटेकी जड)भी स्वाद, विपाक वीर्यमें उसके समान होतेहुए भी विरेचनका प्रभाव चित्रकसे अधिक रखतीहै ॥ ९३ ॥

विषंविषघ्नमुक्तंयत्प्रभावस्तत्रकारणम् ।

ऊर्ध्वानुलोमनंयच्चतत्प्रभावप्रभावितम् ॥ ९४ ॥

विषको विष ही नष्ट करताहै यह जो कहावत है इसमें भी प्रभाव ही कारण होताहै । कुछ द्रव्य जिस प्रकार खायेजानेसे वमनादि ऊर्ध्वविरेचन करतेहैं उसी प्रकार दूसरे द्रव्योंमें अधोविरेचनका प्रभाव देखनेमें आताहै ॥ ९४ ॥

मणीनांधारणीयानांकर्मयद्विविधात्मकम् ।

तत्प्रभावकृतंतेषांप्रभावोऽचिन्त्यइष्यते ॥ ९५ ॥

मणि आदि धारण करनेके जो द्रव्य हैं उनमें भी अच्छे और बुरे दो प्रकारके प्रभाव पाये जातेहैं । सो उनमें वह प्रभाव अचिंत्य है ॥ ९५ ॥

रसवीर्यादिका सिद्धान्त ।

किञ्चिद्रसेनकुरुतेकर्म्मवीर्य्येणचापरम् । द्रव्यंगुणेनपाकेनप्रभावेणचकिञ्चन ॥ ९६ ॥ रसंविपाकस्तौवीर्य्यंप्रभावस्तानपोहति । गुणसाम्येरसादीनामितिनैसर्गिकंबलम् ॥ ९७ ॥ सम्यग्निपाकवीर्य्याणिप्रभावश्चाप्युदाहृतः ॥ ९८ ॥

जो रस जीभ पर गिरते ही जीभको विगाडे और स्वाद बुरा प्रतीत हो और जीभको तथा मुखको विषद और शोषण करे एवम् मुखको कडुआ बनादे उसको तिक्त रस कहतेहैं ॥ १०३ ॥

वैषद्यस्तम्भजाड्यैर्योरसनंयोजयेद्रसः । बध्नातीवचयःकंठंकषायः सविकास्यति ॥ १०४ ॥

जो रस जीभको विषद, स्तम्भ, जडतायुक्त करे वाणी और कण्ठको जकडसा देवे एवम् विकाशी हो उसको कषाय (कसैला) रस कहतेहैं ॥ १०४ ॥

विरुद्धाहारविषयक अग्निवेशका प्रश्न ।

एवंवादिनंभगवन्तमात्रेयमग्निवेश उवाच । भगवन् श्रुतमेतदवितथमर्थसम्पद्युक्तंभगवतोयथावद्द्रव्यकर्माधिकारेवचः परन्त्वाहारविकाराणांवैरोधिकानांलक्षणमनतिसंक्षेपेणोपदिश्यमानंशुश्रूषामहेति ॥ १०५ ॥

इस प्रकार कहतेहुए भगवान् आत्रेयजीसे अग्निवेश कहने लगे कि हे भगवन्! द्रव्यकर्माधिकारमें आपने जो कुछ उपदेश कियाहै यह यथार्थ और श्रेष्ठ एवम् सर्वगुणसम्पन्न उपदेश श्रवण करालिया है । अव कृपा कर आहारके विषयमें विकारकारक तथा विरुद्ध रसोंका विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये। इस विषयमें आपके उपदेश किये लक्षण श्रवण करनेकी इच्छा है ॥ १०५ ॥

आत्रेयका उत्तर ।

तमुवाचभगवानात्रेयः । देहधातुप्रत्यनीकभूतानिद्रव्याणिदेहधातुविरोधमापाद्यन्तेपरस्परविरुद्धानिकानिचित्संयोगात्संस्कारादपराणिदेशकालमात्रादिभिश्चापराणितथास्वभावादपराणि ॥ १०६ ॥

यह सुनकर आत्रेय भगवान् अग्निवेशसे कहनेलगे कि देह और धातुओंसे प्रतिकूल जितने ही द्रव्य हैं वह सब देह और धातुओंसे विरोधको उत्पन्न करतेहैं । बहुतसे द्रव्य ऐसे भी हैं जो आपसमें संयोग विरोधी होनेसे देहधातुओंमें विकारको उत्पन्न करतेहैं एवम् कोई गुणविरुद्ध होनेसे, कोई संयोगविरुद्ध होनेसे, कोई संस्काराविरुद्ध होनेसे रोगोत्पादक होतेहैं, तथा देश, काल, मात्रा आदिके विरुद्ध होनेसे भी द्रव्य शरीर और धातुओंसे विरोधी होताहै । कोई ऐसे द्रव्य भी हैं जो स्वभावसे ही विरुद्ध होतेहैं ॥ १०६ ॥

भगवान् आत्रेय कहने लगे कि किसी भी मछलीको दूधके साथ नहीं खाना चाहिये और चिलचिम मछलीको कभी भूलकर भी दूधके संयोगसे नहीं खाना चाहिये क्योंकि अभिष्यंदी होनेसे महाव्याधियोंको उत्पन्न करतीहै तथा शरीरमें आमविषका संचार करतीहै ॥ ११० ॥

ग्राम्यानूपौदकपिशितानिमधुतिलगुडपयोमाषमूलकबिसैर्विरूढधान्यैश्चनैकधाअद्यात् । तन्मूलञ्चबाधिर्य्यान्ध्यवेपथुजाड्यविकलमूकतामैन्मिण्यमथवामरणमाप्नोति ॥ १११ ॥

ग्राम्य जीवोंका मांस, अनूपसंचारी जीवोंका मांस, जलचर जीवोंका मांस, शहद, तिल, गुड, दूध, उडद, मूली, बिस, विरूढधान्य इन सबको मिलाकर एक समय भक्षण नहीं करना चाहिये । ऐसा करनेसे मनुष्य बहरापन, अंधता, कम्प, जडता, विकलता, मूकता, मिनमिनता अथवा मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ १११ ॥

नपौष्करंरोहिणीकंवाशाकंनकपोतान्सार्षपतैलभृष्टान्मधुपयोभ्यांसहाभ्यवहरेत् । तन्मूलंहिशोणिताभिष्यन्दधमनीप्रतिचयापस्मारशंखकगलगण्डरोहिणीकानामन्यतमंप्राप्नोत्यथवामरणमिति ॥ ११२ ॥

शहद और दूधके साथ पुष्करपत्र और रोहिणीका साग नहीं खाना चाहिये । सरसोंके तेलमें भूना कपोतका मांस दूध और शहदके साथ नहीं खाना चाहिये । ऐसा करनेसे मनुष्यके शरीरमें रक्तका क्लेद, धमनियोंका फडकना, अपस्मार, कनपटीके रोग, गलगण्ड और रोहिणी आदि रोग उत्पन्न होतेहैं अथवा मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ ११२ ॥

नमूलकलशुनकृष्णगन्धार्जकसुमुखसुरसादीनिभक्षयित्वापयःसेव्यंकुष्ठाबाधभयात् ॥ ११३ ॥

मूली, लहसुन, काली तुलसी, श्वेत तुलसी, वनतुलसी आदि खाकर ऊपरसे दूध पीना कुष्ठरोगको उत्पन्न करताहै । इसलिये ऐसा न करे ॥ ११३ ॥

नजातुशाकंनलिकुचंपक्कंमधुपयोभ्यांसहोपयोज्यम् । एतद्धिमरणायाथवाबलवर्णतेजोवीर्य्योपरोधायालघुव्याधयेषाण्ड्यायच ॥ ११४ ॥

सम्पूर्ण शाक कटहर तथा शहद इन सबको दूधके साथ मिलाकर नहीं खाना

यादि वह बगुलेका मांस सूअरकी चर्बीमें भूंजकर खायाजाय तो शीघ्र प्राणोंको नष्ट करताहै ॥ ११९ ॥

मायूरमांसमेरण्डसीसकासक्तमेरण्डाग्निप्लुष्टंसद्योव्यापादयति ॥ १२० ॥ तदेवभस्मपांसुपरिध्वस्तंसक्षौद्रंमरणाय ॥१२१ ॥ हारीतकमांसंहारिद्राग्निप्लुष्टंसद्योव्यापादयति। मत्स्यतैलनिस्ताडनसिद्धाःपिप्पल्यस्तथाकाकमाचीमधुचमरणाय॥१२२॥ मधुचोष्णमुष्णार्त्तस्यचमधुमरणाय ॥ १२३ ॥

मोरका मांस एरंडतैलमें एरंडकी लकडीके आगसे भूंजाहुआ शीघ्र प्राणोंको नष्ट करताहै । हरियलपक्षीका मांस कदम्बकी लकडीकी आगसे भूंजा हुआ प्राणनाशक होताहै । एवम् हरियल पक्षीका मांस भस्म और धूल तथा शहदयुक्त होनेसे प्राणनाशक होताहै । मछलीके तेलवाले पात्रमें सिद्ध कीहुई पिपली तथा मकोह शहदके साथ खानेसे मृत्युकारक होतेहैं ॥ १२० ॥ १२१ ॥ १२२ ॥ शहदको गर्मकर खाना अथवा गर्मीसे पीडितको गर्मकर शहद देना मृत्युकारक होताहै ॥ १२३ ॥

मधुसर्पिषीतुल्येमधुवारिचान्तरिक्षंसमधृतंमधुपुष्करबीजंमधु पीत्वोष्णोदकंभल्लातकोष्णोदकम् ॥ १२४ ॥

शहद और घी दोनों बराबर मिलाकर खाना, अथवा शहद और आकाशका ज़ल या शहद और कमलगट्टे अथवा शहद पीकर गर्म जल पीना एवम् भेलावा खाकर गर्म जल पीना विषके समान होताहै ॥ १२४ ॥

तक्रसिद्धःकाम्पिल्लकःपर्युषिताकाकमाची,अङ्गारशूल्योभासइतिविरुद्धानीत्येतद्यथाप्रश्नमभिनिर्दिष्टम् ॥ १२५ ॥

कमीलेको छाछमें सिद्ध करके खाना, बासी मकोयका साग और सींखचे(शूलमें तपाया मांस) ये विरुद्ध भोजन हैं । इस प्रकार जैसे तुमने पूंछा वैसा हमने यथोचित रीति पर विरुद्ध आहारका वर्णन करदियाहै ॥ १२५ ॥

भवन्ति चात्र श्लोकाः ।

यत्किञ्चिद्दोषमासाद्यननिर्हरतिकायतः ।
आहारजाततत्सर्वमहितायोपपद्यते ॥ १२६ ॥

यहां श्लोक हैं:-कि जो आहार दोषोंको कुपित कर देहसे बाहर नहीं निकालता वह सब अहितकर्त्ता जानना चाहिये ॥ १२६ ॥

जो द्रव्य गुणसे और अभ्याससे विरुद्ध हो वह औषध क्रियामें नहीं लेना चाहिये क्योंकि गुण, अभ्यास, संस्कार और प्रकृतिसें विरुद्ध पदार्थ विषके समान मनुष्यको मारडालनेवाले होते हैं ॥ १३३ ॥

ऐरण्डसीसकासक्तंशिखिमांसंतथैवहि । विरुद्धंवीर्य्यतोज्ञेयं वीर्य्यतःशीतलात्मकम्॥१३४॥ तत्संयोज्योष्णवीर्य्येणद्रव्येणसहसेव्यते । क्रूरकोष्ठस्यचात्यल्पंमंदवीर्य्यमभेदनम्॥१३५॥ मृदुकोष्ठस्यगुरुचभेदनीयंतथाबहु । एतत्कोष्ठविरुद्धन्तुविरुद्धं स्यादवस्थया ॥ १३६ ॥ श्रमव्यवायव्यायामसक्तस्यानिलकोपनम् । निद्रालसस्यालसस्यभोजनंश्लेष्मकोपनम्॥ १३७ ॥

एरंडके तेलमें मिला हुआ–मोरका मांस संस्कारविरुद्ध होताहै। उष्णवीर्य द्रव्यके साथ शीतवीर्य द्रव्यको मिलाकर देना वीर्यविरुद्ध कहा जाताहै। क्रूरकोष्ठवालेको मन्दवीर्य अभेदनकर्त्ता पदार्थ एवम् मृदुकोष्ठवालेको भारी और भेदनकर्त्ता पदार्थ तथा बहुतसा पदार्थ कोष्ठविरुद्ध कहा जाताहै। श्रम, मैथुन और व्यायामसे थकेहुए मनुष्यको वातकारक पदार्थ निद्रा और आलसवालेको कफकारक भोजन अवस्थाविरुद्ध कहा जाताहै ॥ १३४ ॥ १३५ ॥ १३६ ॥ १३७ ॥

यच्चानुत्सृज्यविण्मूत्रंभुंक्तेयश्चानुभुक्षितः ।
तच्चकर्मविरुद्धंस्याद्यच्चातिक्षुद्वशानुगः ॥ १३८ ॥

जो मनुष्य मल, मूत्रके त्याग किये विना अथवा विना भूखके भोजन करताहै तथा अत्यन्त भूख लगने पर भोजन नहीं करताहै। उसको कर्मविरुद्ध कहतेहैं॥ १३८॥

परहारविरुद्धन्तुवराहादीन्निषेव्ययत् ।
सेवेतोष्णंघृतादींश्चपीत्वाशीतांनिषेवते ॥ १३९ ॥

वाराह आदिका मांस खाकर गर्म पदार्थोंका सेवन करना और घृत आदि पदार्थोंको पीकर शीत पदार्थोंका सेवन करना भी आहारविरुद्ध कहा जाता है ॥ १३९ ॥

विरुद्धंपाकतश्चापिदुष्टदुर्दारुसाधितम् ।
अपक्वतण्डुलात्यर्थपक्वदग्धंचयद्भवेत् ॥ १४० ॥

विषैली लकडियोंकी अग्निसे सिद्ध किया पदार्थ एवम् कच्चे, जले भुने चावल आदिक पाकविरुद्ध कहे जातेहैं ॥ १४० ॥

विरुद्ध अन्नजन्य रोगोंके उपाय।

एषाञ्चखलुपरेषाञ्चवैरोधिकनिमित्तानांव्याधीनामिमेभावाःप्रतिकाराः। यथावमनंविरेचनञ्चतद्विरोधिनाञ्चद्रव्याणांसंशमनार्थमुपयोगस्तथाविधैश्चद्रव्यैःपूर्वमभिसंस्कारःशरीरस्येति१४७॥

भवतिचात्र-विरुद्धाशनजान्रोगान्प्रतिहन्तिविरेचनम्।
वमनंशमनञ्चैवपूर्ववाहितसेवनम्॥ १४८॥

ऊपर कहेहुए सब रोगोंके तथा विरुद्ध भोजन करनेसे उत्पन्न हुए अन्यरोगोंके भी शान्तिकारक उपाय करनेसे वह सब रोग नष्ट होजातेहैं।वह उपाय यह हैं-वमन, विरेचन एवम् विरोधी भोजनको परिपाक करनेवाले तथा उनके दोषोंको शान्त करनेवाले संशमन हितकर होते हैं। जिस विरुद्ध भोजनका प्रथमसे ही अभ्यास होगयाहो वह विरुद्ध भोजन अधिक अनिष्टकारक नहीं होता। इसी लिये संक्षेपसे कहागयाहै कि विरुद्ध भोजनसे उत्पन्न हुए जो रोग हैं वह तो-वमन, विरेचन और शमन द्रव्योंद्वारा शान्त होसकते हैं अथवा पहलेसेही हित पदार्थोंका सेवन करना हितकारक होताहै और जिस विरुद्ध भोजनका शरीरको सदासे अभ्यास होगयाहो वह विशेष हानिकारक नहीं होता॥ १४७॥ १४८॥

तत्रश्लोकाः।

मतिरासीन्महर्षीणांयायारसविनिश्चये। द्रव्याणिगुणकर्मभ्यांद्रव्यसंख्यारसाश्रयाः॥ १४९॥ कारणंरससंख्याचरसानुरसलक्षणम्।परादीनांगुणानाञ्चलक्षणानिपृथक्पृथक्॥१५०॥
पञ्चात्मकानांषट्त्वञ्चरसानांयेनहेतुना। ऊर्ध्वानुलोमभाजश्च यद्गुणातिशयाद्रसाः॥ १५१॥ षण्णांरसानांषट्चैवसुविभक्ताविभक्तयः। उद्देशश्चापविद्धश्चद्रव्याणांगुणकर्माणि॥१५२॥
प्रवरावरमध्यत्वंरसानांगौरवादिषु। पाकप्रभावयोर्लिङ्गंवीर्य्यसंख्याविनिश्चयः॥ १५३॥ षण्णामास्वाद्यमानानांरसानां यत्स्वलक्षणम्। यद्यद्विरुध्यतेतस्माद्येनयत्कारिचैवयत्॥१५४॥
वैरोधिकनिमित्तानांव्याधीनामौषधञ्चयत्। आत्रेयभद्रकाप्यीयेतत्सर्वमवदन्मुनिः॥ १५५॥

इत्यन्नपानचतुष्कआत्रेयभद्रकाप्यीयोनामषड्विंशोऽध्यायःसमाप्तः२६

ईंधन स्वरूप है एवम् मनुष्योंके प्राणोंका धारण करनेका हेतु है। उचित रीति पर सेवन किया हुआ अन्नपान धातुओंको बलवान् करताहै तथा वर्णकारक है। इन्द्रियोंको प्रसन्न करताहै और अनुचित रीतिपर सेवन किया हुआ हानिकारक होताहै ॥ १ ॥

तस्माद्धिताहितावबोधनार्थमन्नपानविधिमखिलेनोपदेक्ष्यामोऽग्निवेश ॥ २ ॥

हे अग्निवेश ! अब हम अन्न पानका हित और अहित ज्ञान होनेके लिये संपूर्ण अन्नपान विधिका वर्णन करतेहैं ॥ २ ॥

अन्नपानादिके स्वाभाविक कर्म।

तत्स्वभावादुदकंक्लेदयति, लवणंविष्यन्दयति, क्षारःपाचयति, मधुसन्दधाति, सर्पिःस्नेहयति, क्षीरंजीवयति, मांसबृंहयति, रसःप्रीणयति, सुराजर्जरीकरोति, शीधुअवधमयति, द्राक्षारसोदीपयति, फाणितमाचिनोति, दधिशोफंजनयति, पिण्याकशाकंग्लपयति, प्रभूतान्तर्मलोमाषसूपः, दृष्टिशुक्रघ्नःक्षारः, प्रायःपित्तलमम्लमन्यत्रमधुनःपुराणाच्चशालियवगोधूमान्,प्रायःसर्वंतिक्तंवातलमवृष्यश्चान्यत्रवेत्राग्रपटोलात्, प्रायःकटुकं वातलमवृष्यश्चान्यत्रपिप्पलीविश्वभेषजात् ॥ ३ ॥

सो उस अन्नपानमें जल स्वभावसे ही क्लेदकारक होताहै। लवण विष्यंदकारक होताहै। क्षार पाचनकर्त्ता होताहै। शहद व्रणसंधानकारक होताहै। घृत स्नेहन है, दूध जीवन है। मांस बृंहण है। रस प्रीणन है, मद्य जीर्णकारी है। सीधु अवधमनकारी है। दाख दीपनकर्त्ता है। फाणित दोषोंका संचय करताहै, । दही सूजन करता है। पिण्याक तथा शाक ग्लानिकारक होताहै। उडदोंका जूस मलको वढानेवाला है। क्षार दृष्टि तथा वीर्यका नाश करताहै। खटाई पित्तको उत्पन्न करतीहै। शहद, पुराने शालिचावल, यव और गेहूंके सिवाय सब प्रकारके मीठे द्रव्य कफोत्पादक होतेहैं। इसी प्रकार वेतकी कोंपल और पटोलके सिवाय सब कडुए द्रव्य वायुको वढानेवाले होतेहैं। पीपल और सोंठके सिवाय सब प्रकारके चरपरे द्रव्य वीर्यनाशक, कृशकर्त्ता एवम् वातल होतेहैं ॥ ३ ॥

यवकादिका वर्णन ।

यवकाहायनाःपांशुवाप्योनैषधकादयः ।
शालीनांशालयःकुर्वन्त्यनुकारंगुणागुणैः ॥ ११ ॥

यवकधान्य, हायनधान्य, पांशुधान्य, तालावके धान्य, नैषधकधान्य, यह भी सब चावलोंकी जाति तथा गुणागुणकी अपेक्षासे उत्तरोत्तर हीनगुण जानने चाहिये ॥ ११ ॥

साठीचावलोंके गुण ।

शीतःस्निग्धोगुरुःस्वादुस्त्रिदोषघ्नःस्थिरात्मकः ।
षष्टिकः प्रवरोगौरःकृष्णगौरस्ततोऽनुच ॥ १२ ॥

षष्टिकधान्य-शीतल, चिकने, भारी, मधुर एवम् त्रिदोषनाशक, शरीरको स्थिर करनेवाले होतेहैं । इनमें भी श्वेतवर्णके षष्टिक चावल उत्तम और कृष्णवर्णके हीनगुण होतेहैं ॥ १२ ॥

वरक आदिधान्य ।

वरकोद्दालकौचीनशारदोज्ज्वलदर्दुराः ।
गंधलाःकुरुविन्दाश्चषष्टिकाल्पान्तरागुणैः ॥ १३ ॥

वरकधान्य, उद्दालक, चीना, शारद, उज्ज्वल, दर्दुर, गंधल, कुविन्द आदिक धान्य षाष्टिक चावलोंकी अपेक्षा किंचित् हीनगुण होतेहैं ॥ १३ ॥

व्रीहि और पाटलके गुण ।

मधुरश्चाम्लपाकश्चव्रीहिः पित्तकरोगुरुः ।
बहुमूत्रपुरीषोष्मात्रिदोषस्त्वेवपाटलः ॥ १४ ॥

व्रीहिधान्य–मधुर हैं, पाकमें अम्ल हैं, पित्तकारक तथा भारी होतेहैं। पाटलधान्य–अधिक मूत्र लानेवाले तथा मलको बढानेवाले एवम् गर्मी प्रकट करनेवाले तथा त्रिदोषको कुपित करनेवाले हैं ॥ १४ ॥

कोरदूष और श्यामाकके गुण ।

सकोरदूषःश्यामाकःकषायमधुरोलघुः ।
वातलःकफपित्तघ्नःशीतसंग्राहिशोषणः ॥ १५ ॥

कोद्रव और श्यामाक धान्य–कसैले, मधुर, हलके, वातकारक, कफपित्तनाशक, शीतल; संग्राही तथा शोषण करनेवाले हैं ॥ १५ ॥

अथशमीधान्यवर्गः ।

मूंगके गुण ।

कषायमधुरोरूक्षःशीतःपाकेकटुर्लघुः ।
विषदःश्लेष्मपित्तघ्नोमुद्गःसूप्योत्तमोमतः ॥ २२ ॥

सब प्रकारके शमीधान्योंमें मूंग उत्तम होताहै । मूंग-कषाय, मधुर, रूक्ष शीतल, पाकमें कटु, हलका, विषद और कफपित्तनाशक होताहै ॥ २२ ॥

राजमाषके गुण ।

रूक्षश्चैवकषायश्चवातलःश्लेष्मपित्तहा ।
विष्टम्भीचाप्यवृष्यश्चराजमाषःप्रकीर्त्तितः ॥२३॥

राजमाष (लोबिया)-खर, रुचिकारक, कफ, शुक्र तथा अम्लपित्त करनेवाला है । एवम् स्वादु, वातकारक, रूक्ष, कषाय, विषद और गुरु होताहै ॥२३॥

उरदके गुण ।

वृष्यःपरंवातहरःस्निग्धोष्णमधुरोगुरुः ।
बल्योबहुमलःपुंस्त्वंमाषःशीघ्रंददातिच ॥ २४ ॥

उडद-वृष्य, वायुनाशक, स्निग्ध, उष्ण, मधुर, गुरु, वल्य, बहुत मलको करनेवाला, शीघ्र पुरुषत्वको देनेवाला होताहै ॥ २४ ॥

कुलथीके गुण ।

उष्णाःकषायाःपाकेऽम्लाःकफशुक्रानिलापहाः ।
कुलत्थाग्राहिणःकासहिक्काश्वासार्शसांहिताः ॥ २५ ॥

कुलथी-गर्म, कसैली, पाकमें अम्ल, कफ, शुक्र एवम् वायु इन तीनोंको नष्ट करनेवाली है । संग्राही है तथा कास, हिक्का, श्वास, एवम् अर्शरोगमें हितकारक होती है ॥ २५ ॥

मोंठके गुण ।

मधुरामधुराःपाकेग्राहिणोरूक्षशीतलाः ।
मकुष्ठकाःप्रशस्यन्तेरक्तपित्तज्वरादिषु ॥ २६ ॥

मोठ-रस और पाकमें मधुर, ग्राही, रूखा, शीतल, रक्तपित्तनाशक एवम् ज्वरादिरोगोंमें हितकारक होता है ॥ २६ ॥

चनाके गुण ।

चणकाश्चमसूराश्चखण्डिकाःसहरेणवः । लघवःशीतमधुराः

अथमांसवर्गः ।

प्रसह पशु और पक्षियोंके नाम ।

गोखराश्वतरोष्ट्राश्वद्वीपिसिंहर्क्षवानराः । वृकोव्याघ्रस्तरक्षुश्च बभ्रुमार्जारमूषिकाः ॥ ३४॥ लोपाकोजम्बुकःश्येनोवान्ताद-श्चाषवायसौ । शशघ्नीमधुहाभासोगृध्रोलूककुलिङ्गकाः ॥३५॥ धूमीकाकुररश्चेतिप्रसहामृगपक्षिणः ॥ ३६ ॥

गाय, गदहा, घोडा, ऊंट और शार्दूल, सिंह, रीछ, वन्दर, भेडिया, वघेरा, तरख,नेवला,विल्ला,मूसा,लोपाक,गीदड,शिकरा,कुत्ता,नीलकंठ,कौआ,वाज, उल्लू, चिडा, झींगर, टटेहरी इन जानवरोंको प्रसह कहाजाताहै ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

भूमिशयके नाम ।

श्वेतःश्यामश्चित्रपृष्ठःकालकःकाकुलीमृगः । कुचीकाचिल्लको भेकोगोधाशल्लकगण्डकौ ।कदलीनकुलःश्वाविदितिभूमिशयाः स्मृताः ॥ ३७ ॥

सफेदपक्षी, श्याम, चित्रपृष्ठ, कालक (सांपविशेष), काकुली मृग, कुचीक, चील, मेढक, गोह, सेह, गण्डक, कंदली, नकुल श्वावित् इनको भूमिशय (बिले-शय) कहते हैं ॥ ३७ ॥

आनूपजीवोंके नाम ।

सृमरश्चमरःखड्गोमहिषोगवयोगजः ।
न्यङ्कुर्वराहश्चानूपामृगाःसर्वेरुरुस्तथा ॥ ३८ ॥

जंगली सूअर, चमरगऊ, गेंडा, भैंसा, रोझ, हाथी, हरिण, ग्रामशूकर, बारह-सिंघा इन सबको अनूपसंचारी जीव कहते हैं ॥ ३८ ॥

जलमें सोनेवाले व जलचर पक्षियोंके नाम ।

कूर्मःकर्कटकोमत्स्यःशिशुमारस्तिमिङ्गिलः । शुक्तिशंखोद्रकु-म्भीरचुलुकीमकरादयः ॥३९॥ इतिवारिशयाःप्रोक्तावक्ष्यन्ते वारिचारिणः । हंसःक्रौञ्चोबलाकाचबकःकारण्डवःप्लवः॥४०॥ शरारीपुष्कराह्वश्चकेशरीभानतुण्डिकः । मृणालकण्ठोमद्गुश्च कादम्बःकाकतुण्डकः॥४१ ॥ उत्क्रोशःपुण्डरीकाक्षोमेघरावो-

होगोपापुत्रःप्रियात्मजः ॥ ४९ ॥ लट्वालट्टषकोबभ्रुर्वटहाडिण्डिमानकः । जटीदुन्दुभिवाक्कावलोहपृष्ठकुलिङ्गकाः ॥५० ॥ कपोतशुकसारङ्गाश्चिरिटीकंकुयष्टिकाः।सारिकाकलविङ्कश्चचटकोऽङ्गारचूडकः । पारावतःपाण्डविकइत्युक्ताःप्रतुदाद्विजाः॥५१॥

शतपत्र, भृंगराज, कोयष्टी, जीवजीवक, कैरात, कोकिल, अत्यूह, गोपापुत्र, प्रियात्मज, लट्वा, लट्टिषक, नकुल, वटहा, डिंडिमानक, जटी, दुंदुभीवाक्, अवलोह, पृष्ठकुलिंगक, कपोत, शुक, सारंग, चिरटी, कंकुयष्टी, सारिका, कलविंक, अंगारचूडक, पारावत, पाण्डवीक इन सब पक्षियोंको प्रतुद कहते हैं तथा द्विज भी कहते हैं ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥

इनके लक्षण ।

प्रसह्यभक्षयन्तीतिप्रसहास्तेनसंज्ञिताः ॥ ५२ ॥भूशयाबिलवासित्वादानूपानूपसंश्रयात्।जलेनिवासाज्जलजाजलचर्य्याज्जलेचराः।स्थलजाजाङ्गलाःप्रोक्तामृगाजाङ्गलचारिणः॥ ५३ ॥ विकीर्य्यविष्किराश्चेतिप्रतुद्यप्रतुदाःस्मृताः । योनिरष्टविधा त्वेषांमांसानांपरिकीर्त्तिता ॥ ५४ ॥

जो जीव वलपूर्वक अपने भोजनकी सामग्रीको ग्रहण करके खाते हैं उन सवको प्रसह कहते हैं । जो पृथ्वीमें बिल बनाकर रहतेहैं उनको बिलेशय कहते हैं । जलके समीप वास करनेवाले अनूपसंचारी कहेजातेहैं । जलमें रहनेवालोंको जलेशय कहते हैं, जलमें विचरनेवालोंको जलचर कहतेहैं । स्थलचर जीवोंको. जो जंगलमें रहतेहैं उनको जांगल कहतेहैं । चोंचसे बखेरकर अथवा पंजोंसे बखेरकर खानेवालोंको विष्किर कहतेहैं । कीट आदिकोंको पंजेसे दबाकर चोंचके साथ खानेवालोंको प्रतुद कहतेहैं इसप्रकार मांसोंकी आठ प्रकारकी योनि वर्णन है ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

प्रसहादिके मांसका गुण ।

प्रसहा[१]भूशयानूपवारिजावारिचारिणः । गुरूष्णास्निग्धमधुरा बलोपचयवर्द्धनाः ॥ ५५ ॥ वृष्याःपरंवातहराःकफपित्ताभिवर्द्धिनः । हिताव्यायामनित्यानांनरादीप्ताग्नयश्चये ॥ ५६ ॥

इनमें प्रसह, विलेशय, अनूपसंचारी, जलेशय और जलसंचारी जीवोंका मांस

१ जीवोंकी श्रेणिमात्र सामान्यतासे कथन करदीहै । सामान्यतासे प्रायः मांस मनुष्योंको हानिकारक होते हैं और बहुतसें तो विशेष हानिकारक होनेसे सर्वथा अभक्ष्य हैं ।

मोरके मांसका गुण ।

दर्शनश्रोत्रमेधाग्निवयोवर्णस्वरायुषाम् ।
बर्हीहिततमोबल्योवातघ्नोमांसशुक्रलः ॥ ६३ ॥

मोरका मांस-दृष्टि, कान, बुद्धि, अग्नि, अवस्था, वर्ण, स्वर, और आयु इनको हितकारी है तथा बलकारक, वातनाशक, मांसवर्द्धक एवम् वीर्यजनक है ॥ ६३ ॥

हंसके मांसका गुण ।

गुरूष्णास्निग्धमधुराःस्वरवर्णबलप्रदाः ।
बृंहणाःशुक्रलाश्चोक्ताहंसामारुतनाशनाः ॥ ६४ ॥

हंसका मांस- भारी, गर्म, स्निग्ध, मधुर, स्वर और वर्णप्रद, बलकारक, बृंहण, शुक्रजनक, वातनाशक, होता है ॥ ६४ ॥

मुर्गेके मांसका गण ।

स्निग्धाश्चोष्णाश्चवृष्याश्चबृंहणाःस्वरबोधनाः ।
बल्याःपरंवातहराःस्वेदनाश्चरणायुधाः ॥ ६५ ॥

मुर्गेका मांस-स्निग्ध, उष्ण, वृष्य, बृंहण, स्वरकारक, बलवर्द्धक, वातनाशक एवम् स्वेदकारक होताहै ॥ ६५ ॥

धन्वानूप मांसके गण ।

गुरूष्णमधुरोनातिधन्वानूपनिषेवणात् ।
तित्तिरिःसञ्जयेच्छीघ्रंत्रीन्दोषाननिलोल्वणान् ॥ ६६ ॥

अनूपसंचारी जीवोंका मांस तथा जंगलीजीवोंका मांस न अधिक भारी, न अधिक गर्म और न अधिक मधुर होताहै । तीतरका मांस वातप्रधान सन्निपातको जीतनेवाला है ॥ ६६ ॥

कपिञ्जलके मांसका गुण ।

पित्तश्लेष्मविकारेषुसरक्तेषुकपिञ्जलाः ।
मन्दवातेषुशस्यन्तेशैत्यमाधुर्य्यलाघवात् ॥ ६७ ॥

कपिंजलका मांस-थोडे वायुवाले पित्त कफ विकार तथा रक्तविकारोंको जीतनेवाला है । क्योंकि यह शीतल, मधुर और हलका होताहै ॥ ६७ ॥

लवाके मांसका गुण ।

लावाःकषायमधुरालघवोऽग्निविवर्द्धनाः ।
सान्निपातप्रशमनाःकटुकाश्चविपाकतः ॥ ६८ ॥

गोधाविपाकेमधुरा कषायकटुकारसे ।
वातपित्तप्रशमनाबृंहणीबलवर्द्धिनी ॥ ७५ ॥

गोहका मांस विपाकमें मीठा है, रसमें कषाय तथा कटु है, एवम् वातपित्त नाशक बृंहण तथा बलवर्द्धक होताहै ॥ ७५ ॥

शल्लकोमधुराम्लस्तुविपाकेकटुकःस्मृतः ।
वातपित्तकफघ्नश्चकासश्वासहरस्तथा ॥ ७६ ॥

सेहका मांस--मधुर है, अम्ल है, विपाकमें कटु है तथा वात, पित्त, कफ इनको नष्ट करताहै एवम् कास, श्वासको हरताहै ॥ ७६ ॥

रोहूमछलीके मांसके गुण ।

शैवलाहारभोजित्वात्स्वप्नस्यचाविवर्जनात् ।
रोहितोदीपनीयश्चलघुपाकोमहाबलः ॥ ७७ ॥

रोहूमछली--सिवार खाती है आर निद्रा रहित है इसलिये इसका मांस दीपन, लघुपाकी और अत्यन्त बलकारक है ॥ ७७ ॥

गुरूष्णमधुराबल्याबृंहणाःपवनापहाः ।
मत्स्याःस्निग्धाश्चवृष्याश्चबहुदोषाःप्रकीर्त्तिताः ॥ ७८ ॥

अन्य मछलियां-भारी, उष्ण, मधुर, बलकारक, बृंहण, वातनाशक, स्निग्ध, वीर्यवर्द्धक तथा बहुतेरे दोषोंको करनेवाली होती हैं ॥ ७८ ॥

कछुएक मांसका गुण ।

बल्योवातहरोवृष्यश्चक्षुष्योबलवर्द्धनः ।
मेधास्मृतिकरःपथ्यः शोषघ्नः कर्मउच्यते ॥ ७९ ॥

कूर्मका मांस-बलकारक, वातनाशक, वीर्यवर्द्धक, नेत्रोंको हितकारी, मेधा और स्मृतिका बढानेवाला; पथ्य एवम् शोषनाशक होताहै ॥ ७९ ॥

स्नेहनंबृंहणंवृष्यंश्रमघ्नमनिलापहम् ।
वराहपिशितंबल्यंरोचनंस्वेदनंगुरु ॥ ८० ॥

सूअरका मांस-स्नेहन, बृंहण, वीर्यवर्द्धक, श्रमनाशक, वातहर, बलवर्द्धक, रुचिकारक, स्वेदजनक एवम् भारी होताहै ॥ ८० ॥

पाठा, ऊषा, साठी, सुनिषण्ण (चौपतिया शाक) यह सब शाक ग्राही तथा त्रिदोषनाशक हैं और बथुवेका शाक मलभेदक और त्रिदोषनाशक होताहै ॥८६॥

मकोयके शाकका गुण ।

त्रिदोषशमनीवृष्याकाकमाचीरसायनी ।
नात्युष्णशीतवीर्य्याचभेदनीकुष्ठनाशिनी ॥

काकमाची (मकोय) का शाक त्रिदोषको शान्त करनवाला, वीर्यवर्द्धक,रसायन, वीर्यमें न बहुत गर्भ और न बहुत शीतल,मलभेदक एवम् कुष्ठनाशक होताहै८७

राजक्षवकके गुण ।

राजक्षवकशाकन्तुत्रिदोषशमनंलघु ।
ग्राहिशस्तंविशेषेणग्रहण्यर्शोविकारिणाम् ॥ ८८ ॥

राजक्षवक, जीवक, सर्सों, दुग्धिकाका शाक त्रिदोषको शान्त करनेवाला हल्का विशेषकर संग्रहणी और अर्शरोगमें हितकारी है ॥ ८८ ॥

कालशाक--करालशाक ।

कालशाकन्तुकटुकंदीपनंगरशोफजित् ।
लघूष्णंवातलंरूक्षंकरालंशाकमुच्यते ॥ ८९ ॥

कालशाक (नाडीका शाक)--कटु, दीपन,विषविकार तथा सूजनको नष्ट करनेवाला होताहै । करालशाक (काली तुलसीका शाक)--हलका, उष्ण, वातकारक तथा रूक्ष होताहै ॥ ८९ ॥

चांगेरीके गुण ।

दीपनीचोष्णवीर्य्याचग्राहिणीकफमारुते ।
प्रशस्यतेऽम्लचाङ्गेरीग्रहण्यर्शोहिताचसा ॥ ९० ॥

अम्लचांगेरी (चूका) का शाक अग्निदीपन,उष्णवीर्य, ग्राही तथा कफ और वायुके रोगोंमें, ग्रहणीमें एवम् अर्शरोगमें हितकारी होताहै ॥ ९० ॥

पोईका शाक ।

मधुरामधुरापाकेभेदनीश्लेष्मवर्द्धिनी ।
वृष्यास्निग्धाचशीताचमदघ्नीचाप्युपोदका ॥ ९१ ॥

उपोदकी (पोई) का शाक मधुर, पाकमें भी मधुर, मलभेदक, कफवर्द्धक, वृष्य, स्निग्ध, शीतल एवम् मदविनाशक होताहै ॥ ९१ ॥

जीवकशाक, नाडीशाक, पालक, रामदानेका शाक (लालपत्तेवाला बडावाथु), कलाचशाक, नालिकाशाक, स्मर्यु (कौंचकीफलीका शाक) कसूम, वृकधूमक, लक्ष्मणा, पंमार (पनवाड) कमलकी डण्डी, शहतूत, सलोनक, यवशाक, पेठा, बावची, श्वेत शालपर्णी, जीवन्ती, हंसपदी, पीलुपर्णी इन सबके शाक गुरु, रूक्ष, देरमें पचनेवाले, मीठे शीतवीर्य तथा मलवेधक होतेहैं ॥ ९५-९९ ॥

शाकोंकी साधारण विधि ।

स्विन्नंनिष्पीडितरसंस्नेहाढ्यंतत्प्रशस्यते । शणस्यकोविदारस्य कर्बुदारस्यशाल्मलेः ॥ १००॥ पुष्पंग्राहिप्रशस्तञ्चरक्तपित्तेविशेषतः ॥ १०१ ॥

सब सागोंको पहिले उबालकर निचोड देना चाहिये. फिर उसको घी आदिमें सिद्ध कर खाना उत्तम कहाहै । सणके फूल, दोनों प्रकारोंके कचनारोंके फूल, सेमलके फूल ये सब-संग्राही तथा रक्तपित्तमें विशेष हितकारी होतेहैं १००॥१०१॥

अन्य नानाविध शाकोंके गुण ।

न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थप्लक्षपद्मादिपल्लवाः ।कषायाःस्तम्भनाः शीताहिताःपित्तातिसारिणाम्॥ १०२ ॥ वायुंवत्सादनीहन्यात्कफंगण्डीरचित्रकौ।श्रेयसीबिल्वपर्णीचबिल्वपत्रन्तुवातनुत् । भाण्डीशतावरीशाकंबलाजीवन्तिजञ्चयत् ॥ १०३ ॥पर्वण्याः पर्वपुष्प्याश्चवातपित्तहरंस्मृतम्। लघुभिन्नशकृत्तिक्तंलाङ्गुलक्युरुवूकयोः ॥ १०४ ॥

बड़, गूलर, पीपल, पिलखन और कमल आदिकोंके पत्र-कसैले, स्तम्भनकर्त्ता, शीतवीर्य तथा पित्तके अतिसारवालोंको हितकारक होतेहैं। गिलोयके पत्रोंका शाक वातनाशक होताहै। गण्डीर और चित्रकके पत्रोंका शाक कफनाशक होताहै। गजपीपल और बिल्वपर्णी तथा बेलके पत्र वातनाशक होतेहैं । भाण्डीशाक तथा शतावरीका शाक, बलाकाशाक, जीवन्तीका शाक, पर्वणीशाक, पर्वपुष्प यह सब वात, पित्तनाशक होते हैं । लांगुलीके पत्र और एरंडके पत्र हलके और मलवेधक होते हैं । (लांगुलीका कंद तीक्ष्ण विष होता है) ॥ १०२ ॥ १०३ ॥ १०४ ॥

तिलवेतसशाकञ्चशाकंपञ्चांगुलस्यवा । वातलंकटुतिक्ताम्लमधोमार्गप्रवर्त्तकम् ॥ १०५ ॥ रूक्षाम्लमुष्णंकौसुम्भंकफघ्नंपित्तवर्द्धनम् । त्रपुसैर्वारुकंस्वादुगुरुविष्टम्भिशीतलम् ॥ १०६ ॥

कुमुद और उत्पलकी नाल और इनके फूल, फल शीतल, मधुर, कषाय तथा कफ वातको कुपित करनेवाले होते हैं ॥ ११२ ॥

कषायमीषाद्विष्टम्भिरक्तपित्तहरंस्मृतम् ।
पौष्करन्तुभवेद्बीजंमधुरंरसपाकयोः ॥ ११३ ॥

पुष्करनामक कमलके बीज और फूल तथा नाल--विष्टम्भकर्त्ता, रक्तपित्तनाशक, रस तथा विपाकमें मधुर होते हैं ॥ ११३ ॥

बल्यःशीतोगुरुःस्निग्धस्तर्पणोबृंहणात्मकः ।
वातपित्तहरःस्वादुर्वृष्योमुञ्जातकःस्मृतः ॥ ११४ ॥

मुंजातक--बलकारक, शीतल, गुरु, स्निग्ध, बृंहण, तर्पण, वातपित्तनाशक, स्वादु और वीर्यवर्द्धक होताहै ॥ ११४ ॥

विदारीकन्दके गुण ।

जीवनोबृंहणोवृष्यःकण्ठ्यःशस्तोरसायने ।विदारीकन्दोबल्य-श्चमूत्रलःस्वादुशीतलः । अम्लीकायाःस्मृतःकन्दोग्रहण्यर्शो-हितालघुः॥ ११५॥नात्युष्णःकफवातघ्नोग्राहीशस्तोमदात्यये।
त्रिदोषंबद्धविण्मूत्रंसार्षपंशाकमुच्यते ॥ ११६ ॥

विदारिकंद--जीवन, बृंहण, वीर्यवर्द्धक, स्वरकारक और रसायनमें श्रेष्ठ, बलकारक, मूत्र लानेवाला, मधुर, शीतल, अम्लीका कन्द--ग्रहणी और अर्शमें हितकारी है, हल्का है, अधिक गर्म नहीं है, कफवातको हरताहै, संग्राही है, मदात्ययरोगमें हितकारक है । सरसोंका शाक--तीनों दोषोंको कुपित करनेवाला, मलमूत्रको बांधनेवाला होता है ॥ ११५ ॥ ११६ ॥

तद्वत्पिण्डालुकंविद्यात्कन्दत्वाच्चमुखप्रियम्।सर्पच्छत्रकवर्ज्या-स्तुबह्व्योन्याश्छत्रजातयः ॥ ११७ ॥ शीताःपीनसकर्त्र्यश्च-मधुरागुर्व्यएवच । चतुर्थःशाकवर्गोऽयंपत्रकन्दफलाश्रयः॥ ११८ ॥

इतिशाकवर्गः ।

पिंडआलूका शाक भी सरसोंके समान गुणवाला है परंतु खानेमें इसका कंद मुखको प्रिय मालुम होताहै । सर्पछत्रकके सिवाय अन्य सब प्रकारके छत्रजाति (वरसातमें लकडी तथा जमीनपर उत्पन्न होते हैं) शीतल, प्रतिश्याय कर्त्ता, मधुर तथा भारी होते हैं । इस प्रकार शाकवर्गनामक पत्र, कन्द, फल शाकाश्रित यह चौथा वर्ग समाप्त हुआ ॥ ११७ ॥ ११८ ॥

भव्यके गुण ।

मधुराम्लकषायञ्चविष्टम्भिगुरुशीतलम् ।
पित्तश्लेष्महरंभव्यंग्राहिवक्त्रविशोधनम् ॥ १२५ ॥

भव्यफल--मीठा, खट्टा, कसैला, विष्टम्भकर्त्ता, शीतल, भारी, पित्तकफनाशक, संग्राही और मुखका शोधनकर्त्ता है ॥ १२५ ॥

कच्चे फलोंके गुण ।

अम्लंपरूषकंद्राक्षाबदर्य्याण्यारुकाणिच ।
पित्तश्लेष्मप्रकोपीणिकर्कन्धुलकुचान्यपि ॥ १२६ ॥

खट्टे फालसा, दाख, बेर, आड़ू, वनबेर, बड़हर--यह सब पित्त, कफको कुपित करनेवाले होते हैं ॥ १२६ ॥

पके आरुकके गुण ।

नात्युष्णंगुरुसम्पक्वंस्वादुप्रायंमुखप्रियम् ।
बृंहणंजीर्य्यतिक्षिप्रंनातिदोषलमारुकम् ॥ १२७ ॥

पकाहुआ मीठा आड़ू--अधिक गर्म नहीं है, मीठा है, मुखको प्रिय है, पुष्टिकारक है, शीघ्र पचनेवाला है तथा दोषोंको अधिक कुपित करनेवाला नहीं है ॥ १२७ ॥

पालेवतके गुण ।

द्विविधंशीतमुष्णञ्चमधुरञ्चाम्लमेवच ।
गुरुपालेवतंज्ञेयमरुच्यत्यग्निनाशनम् ॥ १२८ ॥

पारावतफल—शीतल और उष्ण दो प्रकारका होताहै । जो मीठा होताहै वह शीतल है और खट्टा उष्ण होता है । यह दोनों प्रकारके अरुचि तथा भस्मकाग्निको नष्ट करनेवाले हैं ॥ १२८ ॥

खम्भारी-तूद ।

भव्यादल्पान्तरगुणंकाश्मर्य्यंफलमुच्यते ।
तथैवाल्पान्तरगुणन्तूदमम्लंपरूषकम् ॥ १२९ ॥

काश्मरी (कंभारी) फल—भव्यफलसे गुणोंमें किंचित् न्यून होताहै एवम् खट्टा शहतूत फालसेसे गुणोंमें न्यून होताहै ॥ १२९ ॥

टङ्कके गुण ।

कषायमधुरंटङ्कंवातलंगुरुशीतलम् । कपित्थंविषकण्ठघ्नमा-

मंसंग्राहिवातलम्॥ १३० ॥ मधुराम्लकषायत्वात्सौगन्ध्या-
च्चरुचिप्रदम् । परिपक्वंसदोषघ्नंविषघ्नंग्राहिगुर्वपि ॥ १३१ ॥

टंक (नील कपित्थ) पहाडी कच्चा कैथका फल-कषाय, वातकारक, भारी और शीतल होताहै । कैथका फल-विषनाशक, स्वरको बिगाडनेवाला, संग्राही और वातकारक, होताहै । पकाहुआ कैथका फल-मधुर, अम्ल, कषाय, सुगंधयुक्त होनेसे रुचिकारक त्रिदोषनाशक, विषनाशक, संग्राही और भारी होताहै १३०॥१३१॥

बिल्वके गुण ।

दुर्जरंबिल्वसिद्धन्तुदोषलंपूतिमारुतम् ।
स्निग्धोष्णतीक्ष्णंतद्बालंदीपनंकफवातजित् ॥ १३२ ॥

पकाहुआ बिल्वफल-दुर्जर, दोषयुक्त, वायुमें गन्धका फैलानेवाला, चिकना और गर्म और तीक्ष्ण होता है। कच्चा बिल्वफल-दीपन और कफ वातको जीतनेवाला होता है ॥ १३२ ॥

आमके गुण ।

वातपित्तकरंबालमापूर्णंपित्तवर्द्धनम् ।
पक्वमाम्रंजयेद्वायुंमांसशुक्रबलप्रदम् ॥ १३३ ॥

बहुत छोटा आम्रका फल रक्तपित्तको करनेवाला होता है । कच्चा आमका फल पित्तको कुपित करताहै । पकाहुआ आमका फल वातनाशक, मांसवर्द्धक, शुक्रजनक तथा बलकारक होता है ॥ १३३ ॥

जामुनके गुण ।

कषायमधुरप्रायंगुरुविष्टम्भिशीतलम् ।
जाम्बवंकफपित्तघ्नंग्राहिवातकरंपरम् ॥ १३४ ॥

पकेहुए जामुन-कषाय, मधुर, भारी, विष्टम्भकारक, शीतल, कफपित्तनाशक, संग्राहि और वायुको कुपित करते हैं ॥ १३४ ॥

बेरके गुण ।

मधुरंबदरंस्निग्धंभेदनंवातपित्तजित् । तच्छुष्कंकफवातघ्नंपि-
त्तेनचविरुध्यते । कषायमधुरंशीतग्राहिसिञ्चितिकाफलम्॥ १३५॥

पके हुए बेर-स्निग्ध, मधुर, भेदनकर्ता, वातपित्तनाशक होते हैं सूखेहुए बेर वात और कफको हरते हैं तथा पित्तके विरोधी नहीं हैं सिंचितिका फल-कषाय, मधुर, शीतल और संग्राही होताहै ॥ १३५ ॥

गङ्गेरी-करील-बिम्बी-तोदन-धन्वन ।

गाङ्गेरुकीकरीरञ्चाबिम्बीतोदनधन्वनम् ।
मधुरंसकषायञ्चशीतंपित्तकफापहम् ॥ १३६ ॥

गांगेरुकी (नागबला) का फल और करीरके फल तथा कन्दूरी, तोदन, धन्वन-यह सब फल मधुर किंचित् कषाय, शीतल और पित्तकफको हरनेवाले हैं ॥ १३६ ॥

खिरनी-पनस-केला-चिरौंजी ।

क्षीरिकंपनसंमोचंराजादनफलानिच ।
स्वादूनिसकषायाणिस्निग्धशीतगुरूणिच ॥ १३७ ॥

खिरनी, पकाहुआ कटहर, केलेकी फली, चिरौंजी ये सब मीठे, कषाय, स्निग्ध, शीतल और भारी होते हैं ॥ १३७ ॥

लवलीके गुण ।

कषायविषदत्वाच्चसौगन्ध्याच्चरुचिप्रदम् ।
अवदंशक्षमंरूक्षंवातलंलवलीफलम् ॥ १३८ ॥

लवलीके फल कषाय और विषद होनेसे तथा सुगंधयुक्त होनेसे रुचिकारक होतेहैं तथा चटनी आदिमें मिलाने योग्य, रूक्ष तथा वातकारक होतेहैं ॥ १३८॥

कदम्बादिके गुण ।

नीपंसभार्गकंपीलुतृणशून्यंविकङ्कतम् ।
प्राचीनामलकञ्चैवदोषघ्नंगरहारिच ॥ १३९ ॥

कदम्ब, भांर्गीके फल, पीलूफल, केतकीफल, विकंकतके फल, प्राचीनाम्लके फल यह सब दोषनाशक तथा गरनाशक होतेहैं ॥ १३९ ॥

गोंदीफलआदिका गुण ।

इंगुदंतिक्तमधुरंस्निग्धोष्णंकफवातजित् ।
तिन्दुकंकफपित्तघ्नंकषायमधुरंलघु ॥ १४० ॥

गोंदनीके फल-कडुए, मधुर, चिकने, गर्म एवम् कफ और वातको जीतनेवाले होतेहैं । तिंदुकफल (तेंदु) कफपित्तनाशक, कषाय, मधुर और हलके होतेहैं॥१४०॥

आंवलेका गुण ।

विद्यादामलकेसर्वान्रसान्लवणवर्जितान् ।
स्वेदमेदःकफोत्क्लेदपित्तरोगविनाशनम् ॥ ॥ १४१ ॥

आँवलेमें लवणरसके विना, मीठा, खट्टा, कडुआ, कसैला, चरपरा ये पांच रस हैं। आँवला कफके उत्क्लेशको और पित्तविकारोंको नष्ट करताहै । तथा मेदरोग और अधिक पसीना आना इनको भी दूर करताहै ॥ १४१ ॥

बहेडेके गुण ।

रूक्षंस्वादुकषायाम्लंकफपित्तहरंपरम् ।
रसासृङ्मांसमेदोजान्दोषान्हन्तिविभीतकम् ॥ १४२ ॥

बहेडा–रूक्ष, स्वादु, कषाय, अम्ल एवम् कफ, पित्तको अत्यन्त नष्ट करनेवाला तथा रस, रक्त, मांस और मेदके सम्पूर्ण दोषोंको नष्ट करताहै ॥ १४२ ॥

अनारका गुण ।

अम्लंकषायमधुरंवातघ्नंग्राहिदीपनम् ।
स्निग्धोष्णंदाडिमंहृद्यंकफपित्ताविरोधिच ॥ १४३ ॥

अनार खट्टा, कषाय, मधुर, वातघ्न, ग्राही, दीपन, स्निग्ध, उष्ण, हृदयको प्रिय तथा कफ और पित्तसे विरोध नहीं करनेवाला होताहै ॥ १४३ ॥

रूक्षाम्लंदाडिमंयत्तुतत्पित्तानिलकोपनम् ।
मधुरंपित्तनुत्तेषांतद्धिदाडिममुत्तमम् ॥ १४४ ॥

खट्टा अनार–रूक्ष, पित्तजनक और वातको कुपित करनेवाला होताहै । मीठा अनार–पित्तको नष्ट करताहै । इन दोनों प्रकारके अनारोंमें मीठा अनार उत्तम होताहै ॥ १४४ ॥

वृक्षाम्लके गुण ।

वृक्षाम्लंग्राहिरूक्षोष्णंवातश्लेष्मणिशस्यते ।
अम्लिकायाःफलंशुष्कंतस्मादल्पान्तरंगुणैः ॥ १४५ ॥

तिंतिडीक–संग्राही, रूक्ष, गर्म एवम् वात, कफको नाश करनेवाला है । पका हुआ इमलीका फल तिंतिडीकसे किंचित् हीनगुण होताहै ॥ १४५ ॥

अमलवेत तथा बिजौरेके गुण ।

गुणैस्तैरेवसंयुक्तंभेदनन्त्वम्लवेतसम् । शूलेरुचौविबन्धेचमन्देऽग्नौमद्यविक्षये ॥ १४६ ॥ हिक्काकासेचश्वासेचवम्र्यांवर्चोगदेषुच । वातश्लेष्मसमुत्थेषुसर्वेष्वेतेषुदिश्यते ॥ १४७ ॥ केशरंमातुलुङ्गस्यलघुशीतमतोऽन्यथा । रोचनोदीपनोहृद्यः

सुगन्धिस्त्वग्निवर्जितः । कर्चूरःकफवातघ्नःश्वासहिक्कार्शसां हितः ॥ १४८ ॥

अम्लवेत–तिंतिडीकके समान गुणवाला तथा मलको भेदन करनेवाला होताहै विजौरेकी केशर–शूल, अरुचि, विबंध, मंदाग्नि, मदात्यय, हिचकी, श्वास, खांसी, वमन, मलरोग तथा वात और कफसे उत्पन्न भये संपूर्णरोग इन सबमें हितकारक है तथा शीतल और हलकी होतीहै। विजौरेकी केशरके सिवाय छिलका आदि अन्य २ अंगोंमें अन्य गुण होतेहैं। छिला हुआ कचूरका फल-शुचिकारक, अग्नि-दीपक हृदयको प्रिय, सुगंधित, कफ, वातको नष्ट करनेवाला, हिचकी और बवासीरमें हितकारक होताहै ॥ १४६ ॥ १४७ ॥ १४८ ॥

नारंगीके गुण ।

मधुरंकिञ्चिदम्लञ्चहृद्यंभक्तप्ररोचनम् ।
दुर्जरंवातशमनंनागरङ्गफलंगुरु ॥ १४९ ॥

नारंगीका फल–दुर्जर, वातनाशक, भारी, मीठा, किंचित् अम्ल, हृदयको प्रिय तथा भोजनमें रुचिका करनेवाला है ॥ १४९ ॥

वादामादिके गुण ।

वातामाभिषुकाक्षोटमकूलकनिकोचकाः ॥ १५० ॥ गुरूष्णस्निग्धमधुराःसोरुमाणाबलप्रदाः । वातघ्नाबृंहणावृष्याकफपित्ताभिवर्द्धनाः ॥ १५१ ॥

वादाम, पिस्ता, अखरोट, मकूलक (किसीके मतमें यह भी अखरोटकी जाति है) निकोचक (चिलगोजा), उरुमाणफल इन सब फलोंकी मज्जा गुरु, उष्ण, स्निग्ध, मधुर. बलवर्द्धक, वातनाशक, पुष्टिकारक, वीर्यवर्द्धक एवम् कफ और पित्तको वढानेवाली होतीहै ॥ १५० ॥ १५१ ॥

पियालके गुण ।

पियालमेषांसदृशंविद्यादौष्णंविनागुणैः ।
श्लेष्मलंमधुरंशीतंश्लेष्मातकफलंगुरु ॥ १५२ ॥

चिरौंजी गुणोंमें उपरोक्त फलोंकी मज्जाके समान गुणवाली है परन्तु पित्तको उत्पन्न नहीं करती। लसोढा–कफकारक, मधुर, शीतल और भारी होताहै (खुष्क खांसीको निकालनेवाला है) ॥ १५२ ॥

अंकोटके गुण ।

श्लेष्मलंगुरुविष्टम्भिचांकोटफलमग्निजित् ।
गुरूष्णमधुरंरूक्षंकेशघ्नंचशमीफलम् ॥ १५३ ॥

अंकोटफल--कफकारक, भारी, विष्टम्भी एवम् क्षुधानाशक होताहै । (अंकोट नाम ढेराका है)। शमीफल--भारी, गर्म, मधुर, शीतल एवम् केशोंको नष्ट करने-वाला होताहै । (कोई शमीफलका अर्थ सेमलक फल करतेहैं परन्तु शमी नाम जंडके वृक्षका है) ॥ १५३ ॥

कंजेके गुण ।

विष्टम्भयतिकारञ्जंपित्तश्लेष्माविरोधिच । आम्रातकंदन्तशठ-मम्लंसकरमर्दकम् ॥ १५४ ॥ रक्तपित्तकरंविद्यादैरावतकमेव च । वातघ्नंदीपनञ्चैववार्ताकंकटुतिक्तकम् ॥ १५५ ॥

करंजफल--विष्टम्भकर्त्ता और पित्त,कफसे अविरोधी होताहै। पहाडी अम्वाडा, जंभीरी, करौंदा, ये सब अम्ल, रक्तपित्तकारक होतेहैं एवम् पहाडी खट्टे नींबुओंमें भी यही गुण होतेहैं । वार्ताकफल--वातनाशक, दीपन, कटु और तिक्त होताहै । (वार्ताकनाम बैंगनका है परन्तु यह वार्ताक अन्नफल विशेष है) ॥१५४॥१५५॥

पित्तपापडाका गुण ।

वातलंकफपित्तघ्नंविद्यात्पर्पटकीफलम् ।
पित्तश्लेष्मघ्नमम्लञ्चवातिकञ्चाक्षिकीफलम् ॥ १५६ ॥

पाखरका फल -कफ, पित्तनाशक होताहै । अच्छूका फल (हीहर) पित्त,कफ-नाशक, खट्टा एवम् वातकारक होताहै ॥ १५६ ॥

मधुराण्यविपाकीनिवातपित्तहराणिच ।
अश्वत्थोदुम्बरप्लक्षन्यग्रोधानांफलानिच ॥ १५७ ॥

पीपर, गूलर, पिलखन, बड इनके फल मधुर, देरमें परिपक्व होनेवाले तथा वात-पित्त हरनेवाले होते हैं ॥ १५७ ॥

भिलावेकी गुठलीके गुण ।

भल्लातकास्थ्यग्निसमंत्वङ्मांसंस्वादुशीतलम् ॥ १५८ ॥
पञ्चमःफलवर्गोऽयमुक्तःप्रायोपयोगिकः ॥ १५९ ॥

इति फलवर्गः ।

भिलावेके फलोंकी मज्जा–अग्निके समान गर्म है तथा उसकी छाल और गुद्दा विपाकमें मधुर तथा शीतल होताहै । भिलावा विना युक्तिसे खाया त्वचा और मांसमें सूजन प्रगट करता है, दांतोंको गिरादेताहै तथा विषके समान है । यदि युक्तिपूर्वक सेवन कियाजाय तो अमृतके समान रसायन होताहै) इस प्रकार उपयोगी फलोंसे युक्त फलवर्ग नामक यह पञ्चमवर्ग कहागया ॥ १५८ ॥ १५९ ॥

अथ हरितवर्गः ।

अदरख सोंठके गुण ।

रोचनंदीपनंवृष्यमार्द्रकंविश्वभेषजम् ।
वातश्लेष्मविबन्धेषुरसस्तस्योपादिश्यते ॥ १६० ॥

अदरक और सोंठ रुचिकारक, दीपन और वृष्य है । अदरखका रस–वात और कफके विबंधको फाड देताहै ॥ १६० ॥

जंभीरीके गुण ।

रोचनोदीपनस्तीक्ष्णःसुगन्धिर्मुखबोधनः ।
जम्बीरःकफवातघ्नःक्रिमिघ्नोभुक्तपाचनः ॥ १६१ ॥

जंभीरी नींबू–रुचिकारक, दीपन, तीक्ष्ण, सुगंधित, मुखको बोधन करनेवाला, कफ और वात तथा कृमियोंको नष्ट करनेवाला और भोजन किये आहारको पचानेवाला होताहै ॥ १६१ ॥

मूलीके गुण ।

बालंदोषहरंवृद्धंत्रिदोषंमारुतापहम् ।
स्निग्धासिद्धंविशुष्कन्तुमूलकंकफवाताजित् ॥ १६२ ॥

कच्चीमूली–त्रिदोषको नष्ट करती है । पकीहुई मूली–त्रिदोषकारक होती है । चिकनाई युक्त सिद्ध किया मूलीका शाक–वातनाशक होताहै । सूखी मूली–वात, कफको हरती है ॥ १६२ ॥

तुलसीके गुण ।

हिक्काकासविषश्वासपार्श्वशूलविनाशनः ।
पित्तकृत्कफवातघ्नःसुरसः पूतिगन्धनुत् ॥ १६३ ॥

तुलसीके पत्र–हिचकी, खांसी, विषविकार, श्वास तथा पार्श्वशूलको नष्ट करते हैं । पित्तकारक, कफ, वातनाशक एवम् दुर्गंधनाशक होते हैं । ११३ ॥

अजवायनआदिके गुण ।

यवानीचार्जकश्चैवशिग्रुशालेयमृष्टकम् ॥

हृद्यान्यास्वादनीयानिपित्तमुत्क्लेशयन्तिच ॥ १६४ ॥

अजवायन, अर्जक (नाजवूं, तुलसीका भेद) सुहांजनेकी फली, सौंफ, काली मिर्च ये सब-हृदयको प्रिय तथा अन्नमें स्वादके वढानेवाले होते हैं । परन्तु पित्तको उत्क्लेशित करते हैं ॥ १६४ ॥

गण्डीरादिके गुण ।

गण्डीरोजलपिप्पल्यस्तुम्बुरुःशृङ्गवेरिका ।

तीक्ष्णोष्णकटुरूक्षाणिकफवातहराणिच ॥ १६५ ॥

गण्डीर (सुंठियासाग), जलपीपल, काला जीरा, शुंठी ये सब-तीक्ष्ण,उष्ण, कटु, रूक्ष तथा कफ, वातनाशक होते हैं ॥ १६५ ॥

भूतृणके गुण ।

पुंस्त्वघ्नःकटुरूक्षोष्णोभूतृणोवक्त्रशोधनः ॥

खराश्वाकफवातघ्नीबास्तिरोगरुजापहा ॥ १६६ ॥

भूतृण (शाक विशेष)-पुंस्त्वनाशक, कटु, रूक्ष, उष्ण, और मुखशोधक होताहै । अजमोद कफ, वातनाशक, वास्तिके रोगोंको दूर करनेवाला है ॥१६६ ॥

धनियेआदिके गुण ।

धान्यकंचाजगन्धाचसुमुखाश्चेतिरोचनाः ।

सुगंधानातिकटुकादोषानुत्क्लेशयन्तितु ॥ १६७ ॥

धनिया, अजवायन, तुलसी यह सब-अत्यन्त रुचिकारक, सुगंधित, किंचित् कटु, एवम् त्रिदोषको उखाडनेवाले हैं ॥ १६७ ॥

गाजरके गुण ।

ग्राहीगृञ्जनकस्तीक्ष्णोवातश्लेष्मार्शसांहितः ॥

स्वेदनेऽभ्यवहार्य्येचयोजयेत्तमपित्तिनाम् ॥ १६८ ॥

गृंजन-संग्राही, तीक्ष्ण, वात, कफ एवम् अर्शरोगमें हितकारक है । पसीना देनेके लिये और भोजनमें इसका उपयोग करे । पित्तकी प्रकृतिवाले मनुष्योंको नहीं खाना चाहिये ॥ १६८ ॥

प्याजके गुण ।

श्लेष्मलोमारुतघ्नश्चपलाण्डुर्नचपित्तनुत् ।
आहारयोगीबल्यश्चगुरुर्वृष्योऽथरोचनः ॥ १६९ ॥

प्याज-कफकर्त्ता, वातनाशक, किंचित् पित्तकर्त्ता, आहारमें उपयोगी, बलकारक, भारी, पुष्टिकारक, और गुरु, वृष्य तथा रुचिकारक होता है ॥ १६९ ॥

लहसनके गुण ।

क्रिमिकुष्ठकिलासघ्नोवातघ्नोगुल्मनाशनः ।
स्निग्धश्चोष्णश्चवृष्यश्चलशुनःकटुकोगुरुः १७० ॥

लहसुन-क्रामि, कुष्ठ, किलास तथा वात और गुल्मको नष्ट करता है एवम् स्निग्ध, उष्ण, वृष्य, कटु और भारी है ॥ १७० ॥

शुष्काणिकफवातघ्नान्येतान्येषांफलानितु ।
हारितानामयंचैषांषष्ठोवर्गःसमाप्यते ॥ १७१ ॥
इति हारितवर्गः ।

यह सूखेहुए तथा इनके बीज यह सब-कफ और वायुके नष्ट करनेवाले होतेहैं ॥ इस प्रकार हरितवर्गनामक यह छठा वर्ग समाप्त हुआ ॥ १७१ ॥

॥ इति हरितवर्गः ॥

अथमद्यवर्गः ।

प्रकृत्यामद्यमम्लोष्णमम्लंचोक्तंविपाकतः ।
सर्वंसामान्यतस्तस्यविशेषउपदेक्ष्यते ॥ १७२ ॥

मद्य-प्रायः स्वभावसे ही खट्टा और उष्ण होताहै और विपाकमें भी अम्ल ही होताहै । पहले सामान्यतासे मद्यके गुणोंका वर्णन करचुकेहैं अब विशेषतासे कथन करते हैं ॥ १७२ ॥

सुराके गुण ।

कृशानांसक्तमूत्राणांग्रहण्यर्शोविकारिणाम् ।
सुराप्रशस्तावातघ्नीस्तन्यरक्तक्षयेषुच ॥ १७३ ॥

जो मनुष्य-कृश, मूत्ररोगी, अर्शपीडित हों उनको तथा क्षयरोगवालोंको, एवम् जिस स्त्रीके स्तनोंमें दूध सूख गयाहो उसको, और रक्तक्षयवालेको सुरा (शराब) पीना हितकारी है। सुरा-वातनाशक होती है ॥ १७३ ॥

मदिराके गुण ।

हिक्काश्वासप्रतिश्यायकासवर्चोग्रहारुचौ ।
वम्यानाहविबन्धेषुवातघ्नीमदिराहिता ॥ १७४ ॥

मद्य–वातनाशक होनेसे हिक्का, श्वास, प्रतिश्याय, खांसी, मलग्रह (कब्जी), अरुचि, वमन, आनाह (अफारा), विबंध इन रोगोंमें हितकारक होतीहै।१७४॥

जगलमद्यका गुण ।

शूलप्रवाहिकाटोपकफवातार्शसांहितः ।
जगलोग्राहिरूक्षोष्णःशोफघ्नोभुक्तपाचनः ॥१७५॥

जगलनामक मद्य–शूल-प्रवाहिका, पेटका फूलना, कफ, वात और अर्शरोगमें हितकारक होतीहै तथा ग्राही, रूक्ष, उष्ण,शोथनाशक और भोजनको पचानेवाली है ॥ १७५ ॥

अरिष्टके गुण ।

शोफार्शोग्रहणीदोषपाण्डुरोगारुचिज्वरान् ।
हन्त्यरिष्टःकफकृतान्रोगान्रोचनदीपनः ॥ १७६ ॥

अरिष्ट– सूजन, अर्श, पांडुरोग, ग्रहणीरोग, अरुचि, ज्वर एवम् कष्टके रोगोंको नष्ट करताहै तथा रोचन, और दीपन है ॥ १७६ ॥

शर्करामद्यके गुण ।

मुखप्रियःसुखमदः सुगन्धिर्बस्तिरोगनुत् ।
जरणीयःपरिणतोहृद्योवर्ण्यश्चशार्करः ॥ १७७ ॥

खांडसे बना अरिष्ट–मुखप्रिय, सुखका देनेवाला, मदकारक, सुगंधित, वस्ति-रोगनाशक,पाचनकर्त्ता यदि पुराना हो तो हृदयको प्रिय और वर्णकारक होताहै ॥ १७७ ॥

पक्करसके गुण ।

रोचनोदीपनोहृद्यःशोषशोफार्शसांहितः ।
स्नेहश्लेष्मविकारघ्नोवर्ण्यःपक्करसोमतः ॥ १७८ ॥

पक्करसनामक मद्य–रोचक, दीपन, हृद्य, शोषनाशक, सूजन तथा अर्शरोगमें हितकारी है एवम् स्नेहसे और कफसे उत्पन्न हुए रोगोंको नष्ट करताहै तथा वर्ण-कारक है ॥ १७८ ॥

शीतरसिकका गुण ।

जरणीयोविबन्धघ्नःस्वरवर्णविशोधनः ॥

लेखनःशीतरसिकोहितःशोफोदरार्शसाम् ॥ १७९ ॥

शीतरासिकनामक मद्य-भोजनको जीर्ण करनेवाला, विबंधनाशक, स्वर और वर्णको उत्तम बनानेवाला, लेखन, एवम् उदररोग तथा अर्शरोगवालेको हितकारी है १७९॥

गौडके गुण ।

मृष्टोभिन्नशकृद्वातोगौडस्तर्पणदीपनः ।

पाण्डुरोगव्रणहितादीपनीचाक्षिकीमता ॥ १८० ॥

गुडसे बना मद्य–स्वच्छ, मल और अधोवायुको निकालनेवाला, तृप्तिकारक और दीपन होताहै । बहेडेके संयोगसे बना मद्य पांडुरोग तथा व्रणविकारमें हितकारी होताहै एवम् अग्निको दीपन करताहै ॥ १८० ॥

सुरासवके गुण ।

सुरासवस्तीव्रमदोवातघ्नोवदनप्रियः ।

छेदीमध्वासवस्तीक्ष्णोमैरेयोमधुरोगुरुः ॥ १८१ ॥

सुरासे दोबारेसे खींचाहुआ मद्य–तीव्रमदको करनेवाला, वातनाशक, और मुखप्रिय होताहै । मध्वासव अर्थात् शहदसे बनाहुआ मद्य–छेदन और तीक्ष्ण होताहै । मैरेयनामक मद्य मधुर और भारी होताहै ॥ १८१ ॥

धातक्यासवके गुण ।

धातक्यभिषुतोहृद्योरूक्षोरोचनदीपनः ।

माध्वीकवन्नचात्युष्णोमृद्वीकेक्षुरसासवः ॥ १८२ ॥

धावेके फूलोंके संयोगसे बना मद्य हृदयको प्रिय, रूक्ष, रुचिकारक और दीपन होताहै । मुनक्का और ईखके रससे बना आसव मध्वासवके समान गुणवाला होताहै किन्तु अधिक गर्म नहीं होता ॥ १८२ ॥

मधुके गुण ।

रोचनंदीपनंहृद्यंबल्यंपित्ताविरोधिच ।

विबन्धघ्नंकफघ्नञ्चमधुलघ्वल्पमारुतम् ॥ १८३ ॥

मधुनामकमद्य रुचिकारक, अग्निदीपक, हृदयको प्रिय, बलकारक, पित्तको उत्पन्न करता, विबंधनाशक, कफनाशक, हल्का एवम् किंचित् वायुकारक होताहै ॥ १८३ ॥

जौ गेहूं आदिका मद्य ।

सुरासमण्डारूक्षोष्णायवानांवातपित्तला ।
गुर्वीजीर्य्यतिविष्टम्भश्लेष्मलस्तुमधूलकः ॥ १८४ ॥

जवोंसे बनाहुआ मद्य-तथा उसका मंड-रूक्ष, उष्ण,वातपित्तकारक, भारी तथा देरमें जीर्ण होनेवाला होताहै । मधूलकनामक मद्य कफकारक होताहै ॥ १८४ ॥

सौवीर-तुषोदकके गुण ।

दीपनंजरणीयश्चहृत्पाण्डुक्रिमिरोगनुत् ।
ग्रहण्यर्शोहितंभेदिसौवीरकतुषोदकम् ॥ १८५ ॥

सौवीरक (कांजीका भेद) और तुषोदक यह दोनों दीपन, पाचन, हृद्रोग, पांडुरोग एवम् क्रिमिरोगनाशक, मलवेधक तथा ग्रहणी और अर्शरोगमें हितकारक होतेहैं ॥ १८५ ॥

अम्लकांजिकके गुण ।

दाहज्वरापहंस्पर्शात्पानाद्वातकफापहम् ।
विबन्धघ्नमविस्रंसिदीपनञ्चाम्लकाञ्जिकम् ॥ १८६ ॥

खट्टी कांजी-स्पर्शसे दाहज्वरनाशक अर्थात् इसमें कपडा भिगोकर रोगीके शरीरपर लपेटनेसे ज्वरकी दाह शान्त होतीहै,पीनेसे वात,कफ,विबंध,मलबद्ध इनको नष्ट करतीहै तथा अग्निको दीपन करतीहै ॥ १८६ ॥

नवीन और पुराने मद्यके गुण ।

प्रायशोऽभिनवंमद्यंगुरुदोषसमीरणम्॥स्रोतसांशोधनंजीर्णंदीपनंलघुरोचनम् ॥ १८७ ॥हर्षणंप्रीणनंबल्यंभयशोकश्रमापहम् ॥ प्रागल्भ्यवीर्यप्रतिभातुष्टिपुष्टिबलप्रदम् ॥ सात्त्विकैर्विधिवद्युक्त्यापीतंस्यादमृतंयथा । १८८ ॥ वर्गोऽयंसप्तमोमद्यमधिकृत्यप्रकीर्तितः ॥ १८९ ॥

इतिमद्यवर्गः ॥

प्रायः नवीन मद्य-भारी और दोषकारक होती है । पुरानी मद्य-स्रोतोंको शुद्ध करनेवाली, पाचन, दीपन, हलकी, रुचिकारक, हर्षकर्ता, पुष्टिजनक, बलवर्द्धक, भयकारक,शोकोत्पादक,भ्रमनाशक, बकवादकारक, वीर्यवर्द्धक तथा हृष्टपुष्ट करनेवाली होतीहै। विधिपूर्वक पीनेसे-अमृतके समान होतीहै । इस प्रकार मद्यवर्गनामक यह सातवाँ वर्ग समाप्त हुआ । इति मद्यवर्गः ॥ १८७ ॥ १८८ ॥ १८९ ॥

अथजलवर्गः ॥

जलमेकविधंसर्वंपतत्यैन्द्रंनभस्तलात् ॥
तत्पतत्पतितश्चैवदेशकालावपेक्षते ॥ १९० ॥

वर्षाका जल-आकाशसे गिरताहुआ प्रायः सब जगह एकसे गुणवाला होताहै परन्तु आकाशसे पृथिवीमें गिरनेपर देश, कालकी अपेक्षासे भिन्न २ गुणोंवाला होजाताहै ॥ १९० ॥

खात्पतत्सोमवाय्वर्कैःस्पृष्टंकालानुवर्त्तिभिः ॥
शीतोष्णस्निग्धरूक्षाद्यैर्यथासन्नंमहीगुणैः ॥ ११९ ॥

आकाशसे गिरता हुआ जल-शीत, उष्ण, कालानुगामी, चन्द्रमा, वायु, सूर्यके सम्पर्कसे तथा शीत, उष्ण, स्निग्ध, रूक्षादि पृथिवीके गुणोंसे युक्त होजाताहै १९१॥

दिव्यजलको षड्गुणत्व ।

शीतंशुचिशिवंमृष्टंविमलंलघुषड्गुणम् ॥
प्रकृत्यादिव्यमुदकंभ्रष्टंपात्रमपेक्षते ॥ १९२ ॥

आकाशका जल-स्वभावसे ही शीतल, स्वच्छ, शुभ, शुद्ध, निर्मल, हलका, मधुरादि षड्गुणसंपन्न होताहै । पृथ्वीपर गिरजानेसे जैसे स्थानमें गिरे वैसे गुणवाला होजाताहै ॥ १९२ ॥

पात्रभेदसे जलभेद ।

श्वेतेकषायंभवतिपाण्डुरेचैवतिक्तकम् । कपिलेकटुकंतोयमूषरेलवणान्वितम् । कटुपर्वतविस्रावेमधुरंकृष्णमृत्तिके ॥१९३॥
एतत्षाड्गुण्यमाख्यातंमहीस्थस्यजलस्यहि । तथाऽव्यक्तरसंविद्यादैन्द्रंकारंहिमश्चतत् ॥ १९४ ॥

वह अन्तरिक्षसे गिरा जल, श्वेत भूमिमें गिरनेसे कषाय होताहै । पांडुरभूमिमें तिक्त होताहै । कपिलभूमिमें तिक्त होता है । ऊषरभूमिमें लवणान्वित होताहै । पर्वतोंमें गिराहुआ कटु होताहै, काली भूमिमें मधुर होताहै ॥ १९३ ॥ इस प्रकार पृथ्वीमें गिरे हुए जलके यह ६ गुण कहे हैं । आकाशसे गिराहुआ जल--अव्यक्त रस, शीतल तथा उत्तम गुणकारी होताहै । आकाशके जलको ऐन्द्रजल कहते हैं ॥ १९४ ॥

ऐन्द्रजलका गुण ।

यदन्तरिक्षात्पततीन्द्रसृष्टश्चोक्तश्चपात्रेपरिगृह्यतेऽम्भः ।
तदैन्द्रमित्येववदन्तिधीरानरेन्द्रपेयंसलिलंप्रधानम् ॥ १९५ ॥

जो जल आकाशसे गिरताहुआ पृथ्वीपर गिरने न पाये और पात्रमें ही ग्रहण कियाजाये वह जल राजाओंके पीने योग्य सब जलोंमें प्रधान मानाजाताहै॥१९५॥

ऋतुभेदसे जलके गुण ।

ऋतावृताविहाख्याताःसर्वएवाम्भसोगुणाः । ईषत्कषायमधुरं सुसूक्ष्मंविषदंलघु ॥१९६॥ अरूक्षमनभिष्यन्दिसर्वंपानीयमुत्तमम् ॥ गुर्वभिष्यन्दिपानीयंवार्षिकंमधुरंसरम् ॥ १९७ ॥

ऋतु ऋतुके भेदसे जलोंके अलग गुण कहेजातेहैं । प्रायः सामान्यतासे जल--किंचित् कसैला, मीठा, सूक्ष्म, विशद, हलका, चिकना, अनभिष्यन्दी इन गुणोंसे युक्त सब प्रकारके जलोंमें उत्तम होताहै । वर्षाऋतुका जल--भारी, क्लेदकारक,मीठा और दस्तावर होताहै ॥ १९६ ॥ १९७ ॥

तनुलघ्वनभिष्यन्दिप्रायःशरदिवर्षति ॥ तत्तुयेसुकुमाराः स्युः स्निग्धभूयिष्ठभोजिनः ॥ १९८ ॥ तेषांभक्ष्येचभोज्येचलेह्येपेयेचशस्यते ॥ हेमन्तेसलिलंस्निग्धंवृष्यंबल्यंहितंगुरु॥ १७७ ॥

शरदऋतुका जल-सूक्ष्म, हलका, और क्लेदरहित होताहै इसलिये यह जल सुकुमार पुरुषोंको चिकना और अधिक भोजन करनेवालोंको भक्ष्य, भोज्य, लेह्य पदार्थोंमें तथा पीनेमें उत्तम कहा है । हेमन्त ऋतुका जल--चिकना, वीर्यवर्द्धक, बलकारक और भारी होताहै ॥ १९८ ॥ १९९ ॥

किञ्चित्ततोलघुतरंशिशिरेकफवातजित् ॥ कषायमधुरंरूक्षंविद्याद्वासन्तिकंजलम् ॥ ग्रैष्मिकंत्वनभिष्यन्दिजलमित्येवनिश्चयः ॥२००॥

शिशिरऋतुका जल--किंचित् हलका, कफ और वायुको जीतनेवाला होताहै । वसन्त ऋतुका जल--कषाय, मधुर और रूक्ष होताहै । ग्रीष्म ऋतुका जल- क्लेदरहित और स्वच्छ होताहै ॥ २०० ॥

विभ्रान्तेष्वृतुकालेषुयत्प्रयच्छन्तितोयदाः ॥
सलिलंतत्तुदोषाययुज्यतेनात्रसंशयः ॥ २०१ ॥

इस प्रकार ऋतुभेदसे जलका निश्चय कियागयाहै । विना ऋतुसे आगे पीछे बर्साहुआ जल दोषकारक होताहै इसमें संदेह नहीं ॥ २०१ ॥

राजभीराजमात्रैश्चसुकुमारैश्चमानवैः ॥
संगृहीताःशरद्यापःप्रयोक्तव्याविशेषतः ॥ २०२ ॥

राजालोग, धनाढ्य पुरुष तथा सुकुमार मनुष्य इनको प्रायः शरदऋतुमें संग्रह किया जल पीना चाहिये ॥ २०२ ॥

हिमालयकी नदियोंके गुण ।

नद्यःपाषाणविच्छिन्नविक्षुब्धाविमलोदकाः ॥
हिमवत्प्रभवाःपथ्याःपुण्यादेवर्षिसेविताः ॥ २०३ ॥

हिमालय पर्वतसे निकली भई नदियोंका जल पत्थरोंसे आहत और विक्षोभित होताहै तथा निर्मल पुण्य देवर्षियोंसे सेवित एवम् पथ्य होता है ॥ २०३ ॥

मलयाचलकी नदियोंका गुण ।

नद्यःपाषाणसिकतावाहिन्योविमलोदकाः ।
मलयप्रभवायाश्चजलंतास्वमृतोपमम् ॥ २०४ ॥

मलयाचलसे निकली हुई नदियोंका जल पत्थर और रेतमें वहता हुआ निर्मल होताहै तथा अमृतके समान होताहै ॥ २०४ ॥

पश्चिमकी ओर बहनेवाली नदियोंका गुण ।

पश्चिमाभिमुखायाश्चपथ्यास्तानिर्मलोदकाः ।
प्रायोमृदुवहागुर्व्योयाश्चपूर्वसमुद्रगाः ॥ २०५ ॥

पश्चिमके समुद्रमें गिरनेवाली नदियोंका जल पथ्य तथा निर्मल होताहै । तथा पूर्वके समुद्रमें गिरनेवाली नदियोंका जल मृदुगामी और भारी होताहै ॥ २०५ ॥

अन्य नदियोंका जल ।

पारियात्रभवायाश्चविन्ध्यसह्यभवाश्चयाः ।
शिरोहृद्रोगकुष्ठानांताहेतुःश्लीपदस्यच ॥ २०६ ॥

पारियात्रपर्वत, विंध्याचल तथा सह्याद्रिसे निकली नदियोंका जल शिरोरोग, हृद्रोग, श्लीपद, तथा कुष्ठोंको करनेवाला होताहै ॥ २०६ ॥

वर्षाती नदियोंका जल ।

वसुधाकीटसर्पाखुमलसंदूषितोदकाः ।
वर्षाजलवहानद्यःसर्वदोषसमीरणाः ॥ २०७ ॥

मट्टी तथा कीट, सर्प, और मूषक आदियोंके मल इनसे दूषित होनेके कारण बरसाती नदियोंका जल सब दोषोंको कुपित करनेवाला होताहै ॥ २०७ ॥

कूपादि जलके गुण ।

वापीकूपतडागोत्थसरःप्रस्रवणादिषु ।
आनूपशैलधन्वानांगुणदोषैर्विभावयेत् ॥ २०८ ॥

बावडी,कूप,तालाव,सूहा,निर्झर और सरोवर आदिकोंका जल–अनूप शैल और जांगल देशके गुणोंके समान जानना । अर्थात् जिस देशमें जो बावडी आदिक होंगे वह उसीके अनुसार होंगे ॥ २०८ ॥

वर्जित जल ।

पिच्छिलंक्रिमिलंक्लिन्नंपर्णशैवालकर्दमैः ।
विवर्णंविरसंसान्द्रंदुर्गन्धिनहितंजलम् ॥ २०९ ॥

जो जल–गाढा,कृमियुक्त, क्लिन्न, पत्र और सिवार तथा कीचडयुक्त, रस और वर्णसे रहित, सान्द्र, और दुर्गंधित हो उसका कभी सेवन नहीं करना चाहिये२०९

विस्रंत्रिदोषंलवणमम्बुयद्वरुणालयम् ।
इत्यम्बुवर्गःप्रोक्तोऽयमष्टमःसुविनिश्चितः ॥ २१० ॥

इति अम्बुवर्गः ।

समुद्रका जल–विस्रगंधयुक्त, त्रिदोषकारक, लवणयुक्त होताहै । इस प्रकार जल वर्गनामक यह अष्टम वर्ग वर्णन किया गया ॥ २१० ॥

इति जलवर्गः ॥

अथ दुग्धवर्गः ।

गोदुग्धके गुण ।

स्वादुशीतंमृदुस्निग्धंबहलंश्लक्ष्णपिच्छिलम् । गुरुमन्दंप्रसन्नञ्चगव्यंदशगुणंपयः ॥ २११ ॥ तदेवंगुणमेवौजःसामान्यादभिवर्द्धयेत् । प्रवरंजीवनीयानांक्षीरमुक्तंरसायनम् ॥२१२ ॥

गौका दूध–स्वादु, शीतल, मृदु, स्निग्ध, घन, श्लक्ष्ण, पिच्छिल, गुरु, मंद, पवित्र इन १० गुणोंवाला होताहै तथा इन गुणोंसे संपन्न होनेसे और ओजधातुके सात्म्य होनेसे ओजको बढानेवाला, श्रेष्ठ, जीवनदायक और रसायन होताहै २११॥२१२॥

भैंसके दूधके गुण ।

महिषीणांगुरुतरंगव्याच्छीततरंपयः ।
स्नेहन्यूनमनिद्रायहितमत्यग्नयेचतत् ॥ २१३ ॥

भैंसका दूध-गोदूधसे भारी, शीतल, अधिकस्नेहयुक्त; जिनको निद्रा नहींआती और बलवान् अग्निवालोंको परम हितकारक है ॥ २१३ ॥

ऊंटनीके दूधका गुण ।

रूक्षोष्णंक्षीरमुष्ट्रीणामीषत्सलवणंलघु ।
शस्तंवातकफानाहक्रिमिशोफोदरार्शसाम् ॥ २१४ ॥

ऊंटनीका दूध-रूक्ष, गर्म, किंचित् नमकीन और हलका होताहै एवम् वात, कफ, अफारा, कृमि, सूजन, उदररोग और बवासीरमें हितकारी होता है ॥ २१४ ॥

घोडीआदिके दूधका गुण ।

बल्यंस्थैर्य्यकरंसर्वमुष्णञ्चैकशफंपयः ।
साम्लंसलवणंरूक्षंशाखावातहरंलघु ॥ २१५ ॥

एक खुरवाले जानवरोंका दूध-जैसे, घोडी, गधा आदिकोंका दूध बलकारक; शरीरको दृढ करनेवाला, उष्ण, किंचित् अम्ल और नमकीन, रूक्ष तथा शाखा-गत वायु नष्ट करताहै ॥ २१५ ॥

बकरीके दूधका गुण ।

छागंकषायमधुरंशीतंग्राहिपयोलघु ।
रक्तपित्तातिसारघ्नंक्षयकासज्वरापहम् ॥ २१६ ॥

बकरीका दूध-कसैला, मधुर, शीतल, ग्राही और हलका है तथा रक्तपित्त और अतिसार, क्षय, कास, ज्वर इनको नष्ट करता है ॥ २१६ ॥

भेड तथा हस्तिनीके दूधका गुण ।

हिक्काश्वासकरन्तूष्णंपित्तश्लेष्मलमाविकम् ।
हस्तिनीनांपयोबल्यंगुरुस्थैर्य्यंकरंपरम् ॥ २१७ ॥

भेडका दूध-गर्म है तथा पित्तकफकारक, हिचकी तथा श्वासको उत्पन्न करनेवाला है । हथिनीका दूध-बलकारक, भारी, शरीरको परमदृढ करनेवाला होता है ॥ २१७ ॥

स्त्रीके दूधका गुण ।

जीवनंबृहणंसात्म्येस्नेहनंमानुषंपयः ।
नावनंरक्तपित्तेचतर्पणञ्चाक्षिशूलिनाम् ॥ २१८ ॥

स्त्रीका दूध-जीवनदायक, पुष्टिकारक, सात्म्य, स्नेहन, रक्तपित्तमें नसवार और नेत्ररोगमें नेत्रतर्पणके लिये परमहितकारक है ॥ २१८ ॥

दहीके गुण ।

रोचनंदीपनंवृष्यंस्नेहनंबलवर्द्धनम् । पाकेऽम्लमुष्णंवातघ्नंम- ङ्गलंबृंहणंदधि ॥ २१९ ॥ पीनसेचातिसारेचशीतकेविषमज्व- रे । अरुचौमूत्रकृच्छ्रेचकार्श्येचदधिशस्यते ॥ २२० ॥

दही-रुचिकारक, दीपन, वीर्यवर्द्धक, स्नेहन, बलवर्द्धक, पाकमें अम्ल, उष्ण, वातनाशक, मंगलकारक, एवम् पुष्टिजनक होताहै । दही-प्रतिश्याय, अतिसार, शीतकरोग, विषमज्वर, अरुचि, मूत्रकृच्छ्र, और कृशतारोगमें परम हित- कारक है ॥ २१९ ॥ २२० ॥

दहीका निषेध ।

शरद्ग्रीष्मवसन्तेषुप्रायशोदधिगर्हितम् ।
रक्तपित्तकफोत्थेषुविकारेष्वहितञ्चतत् ॥ २२१ ॥

शरद, ग्रीष्म और वसन्तऋतुमें दही नहीं खाना चाहिये । रक्तपित्त और कफसे उत्पन्नभये रोगोंमें भी दहीका खाना उचित नहीं २२१ ॥

मन्दकदहीके गुण ।

त्रिदोषंमन्दकंजातंवातघ्नंदधिशुक्रलम् ।
सरःश्लेष्मानिलघ्नस्तुमण्डःस्रोतोविशोधनः ॥ २२२ ॥

मंदक दही अर्थात् विना जमा दूध-त्रिदोषकारक होताहै । दहीकी मलाई वातनाशक और वीर्यवर्द्धक होतीहै । दहीका तोड-दस्तावर, कफवातनाशक एवम् रोममार्गको शुद्ध करनेवाला होताहै ॥ २२२ ॥

तक्रके गुण ।

शोफार्शोग्रहणीदोषमूत्रकृच्छ्रोदरारुचि ।
स्नेहव्यापदिपाण्डुत्वेतक्रंदद्याद्गरेषुच ॥ २२३ ॥

तक्र-सूजन, अर्श, संग्रहणी, मूत्रकृच्छ्र, उदररोग, अरुचि, स्नेहपानसे उत्पन्न हुआ दोष, पांडुरोग, गरदोष, इन सबमें सेवन करना योग्य है ॥ २२३ ॥

नवनीतके गुण।

संग्राहिदीपनंहृद्यंनवनीतंनवोद्धृतम्।
ग्रहण्यर्शोविकारघ्नमर्दितारुचिनाशनम्॥ २२४ ॥

ताजामक्खन-संग्राही, दीपन, हृदयको हितकारी, ग्रहणीरोगनाशक, बवासीर-नाशक, अर्दितरोगनाशक एवम् रुचिकारक है ॥ २२४ ॥

घृतका गुण।

स्मृतिबुद्ध्यग्निशुक्रौजःकफमेदोविवर्द्धनम्।
वातपित्तविषोन्मादशोषालक्ष्मीज्वरापहम्॥ २२५ ॥
सर्वस्नेहोत्तमंशीतंमधुरंरसपाकयोः।
सहस्रवीर्य्यंविधिभिर्घृतंकर्म्मसहस्रकृत्॥ २२६ ॥

घृत--स्मृति, बुद्धि, अग्नि,वीर्य, ओज, कफ और मेद इनको बढानेवाला है तथा वात, पित्त, विषविकार, उन्माद, शोष, अलक्ष्मी, स्वरभंग इन सबको नष्ट करताहै। संपूर्ण स्नेहोंमें उत्तम है। रस तथा विपाकमें मधुर है घृत सहस्रों द्रव्योंके संयोगसे अलग २ संस्कार किया सहस्र प्रकारके गुणोंको करताहै ॥२२५॥२२६॥

पुराने घृतका गुण।

मदापस्मारमूर्च्छायशोषोन्मादगरज्वरान्॥
योनिकर्णशिरःशूलंघृतंजीर्णमपोहति॥ २२७ ॥

पुराना घी-मदरोग, मृगी, मूर्च्छा, शोष, उन्माद, गर, ज्वर, योनि,कान तथा शिरके शूल इन सबको दूर करताहै ॥ २२७ ॥

सर्पींष्यजाविमहिषीक्षीरवत्स्वानिनिर्दिशेत्॥पीयूषोमोरटश्चै-वकिलाटाविविधाश्चये॥ २२८ ॥ दीप्ताग्नीनामनिद्राणांसर्वे एतेसुखप्रदाः॥ गुरवस्तर्पणावृष्याबृंहणाःपवनापहाः॥ २२९ ॥

महिषी, भेड, बकरी इनके घृत-इनके दूधके समान गुणवाले जानने। पीयूष (तत्काल बिआई-गौका दूध), मोरट (रबडी), किलाट (खोआ) ये सब बलवान् अग्निवालेको तथा जिनको निद्रा कम आती हो उनको परम सुखके देनेवाले हैं तथा भारी, तृप्तिकारक, वीर्यवर्द्धक; पुष्टकारक एवम् वातनाशक होते हैं ॥ २२८ ॥ २२९ ॥

तक्रपिण्डकाके गुण ।

विषदागुरवोरूक्षाग्राहिणस्तक्रपिण्डकाः ।
गोरसानामयंवर्गोनवमःपरिकीर्त्तितः ॥ २३० ॥

इति गोरसवर्गः ।

तक्रपिंड (पनीर)-स्वच्छ, भारी, रूक्ष और ग्राही होताहै । इस प्रकार दूधवर्ग नामक यह नवम वर्ग समाप्त हुआ ॥ २३० ॥

अथेक्षुवर्गः ।

ईखके रसका गुण ।

वृष्यःशीतःस्थिरःस्निग्धोबृंहणोमधुरोरसः ।
श्लेष्मलोभक्षितस्येक्षोर्यान्त्रिकस्तुविदह्यते ॥ २३१॥

दांतोंसे चूसा हुआ ईखका रस-वीर्यवर्द्धक, शीतल, दस्तावर, स्निग्ध, पुष्टिकारक, मधुर और कफकारक होताहै । कोल्हूसे निकाला हुआ ईखका रस-विदग्धपाकी होता है । तथा उपरोक्त संपूर्ण गुणयुक्त भी होताहै ॥ २३१ ॥

पौंडा-गन्ना तथा गुडके गुण ।

शैत्यात्प्रसादान्माधुर्यात्पौड्रकाद्वंशकोवरः ।
प्रभूतक्रिमिमज्जासृङ्मेदोमांसकरोगुडः ॥ २३२ ॥

पौंडा-शीतल, स्वच्छ और मीठा होता है । वंशक ईख-गुणमें इससे अधिक है । गुड-कृमिकारक, मज्जा, रुधिर, मेद, मांस इनको करनेवाला होताहै ॥२३२॥

क्षुद्रोगुडश्चतुर्भागस्त्रिभागार्द्धार्द्धशोषितः ।
रसोगुरुर्यथापूर्वंधौतंस्वल्पमलोगुडः ॥ २३३ ॥

गुड पकाते समय जिसमें चारभाग रस हो उस गुडसे जिसमें तीन भाग रस बाकी रहगया वह गुड उससे दो भाग बाकी रहनेवाला तथा जिसमें आधाभाग रस गया हो यह क्रमपूर्वक पहिलेसे दूसरे भारी होतेहैं । शुद्ध किया गुड अल्प मलकारक होताहै ॥ २३३ ॥

मत्स्यण्डिकादिके गुण ।

ततोमत्स्यण्डिकाखण्डशर्करााविमलाःपरम् ।
यथायथैषांवैमल्यंभवेच्छैत्यंतथातथा ॥ २३४ ॥

गुडकी अपेक्षा राब, राबकी अपेक्षा खांड और खांडकी अपेक्षा बूरा तथा इनमें पूर्वकी अपेक्षा जो जितना निर्मल होगा वह गुणमें उतना ही शीतल होता जाताहै ॥ २३४ ॥

गुडशर्करादिके गुण ।

वृष्याःक्षीणक्षतहिताःसस्नेहागुडशर्कराः ।
कषायमधुराःशीताःसतिक्तायासशर्कराः ॥ २३५ ॥

गुड शर्करा (यवनाल शर्करा,क्षीराखिस्त)-बलकारक,क्षीण और क्षतमें हितकारी तथा स्निग्ध एवम् शुद्धदस्त लानेवाला है । यासशर्करा (करंजवीत)-कसैली, मधुर, शीतल, किंचित् तिक्त तथा मलको शोधन करनेवाली होतीहै ॥ २३५ ॥

मधुशर्कराके गुण ।

रूक्षावम्यतिसारघ्नीछेदनीमधुशर्करा ।
तृष्णासृक्पित्तदाहेषुप्रशस्ताःसर्वशर्कराः ॥ २३६ ॥

मधुशर्करा-रूक्ष, वमन और अतिसारनाशक तथा मलको छेदन करनेवाली है। सब प्रकारकी खांड प्यास, रक्तपित्त और दाह इनको शान्त करनेवाली है॥२३६॥

शहतके भेद ।

माक्षिकंभ्रामरंक्षौद्रंपौत्तिकंमधुजातयः ।
माक्षिकंप्रवरंतेषांविशेषाद्भ्रामरंगुरु ॥ २३७॥

मधु-माक्षिक,भ्रामर, क्षौद्र, पौत्तिक इन भेदोंसे चार प्रकारका होताहै । इन सबमें माक्षिक मधु उत्तम है और भ्रामरमधु सबकी अपेक्षा भारी है ॥ २३७ ॥

शहतके रङ्ग ।

माक्षिकंतैलवर्णंस्याच्छ्वेतंभ्रामरमुच्यते।
क्षौद्रन्तुकपिलंविद्याद्घृतवर्णन्तुपौत्तिकम् ॥ २३८ ॥

माक्षिकमधु तैलके वर्णका होता है । भ्रामर मधु श्वेत होता है । क्षौद्रमधु कापिलवर्णका होताहै । पौत्तिकमधु घृतके वर्णका होता है ॥ २३८ ॥

शहतके गुण ।

वातलंगुरुशीतञ्चरक्तपित्तकफापहम् ।
सन्धातृच्छेदनंरूक्षंकषायमधुरंमधु ॥ २३९ ॥

मधु-वातकारक, भारी, शीतल, रक्तपित्तनाशक, कफनाशक, सन्धानकारक, छेदक, रूक्ष, कषाय और मधुर होता है ॥ २३९ ॥

हन्यान्मधूष्णमुष्णार्त्तमथवासविषान्वयात् ।
गुरुरूक्षकषायत्वाच्छैत्याच्चाल्पंहितंमधु ॥ २४० ॥

क्योंकि मक्खियां सब प्रकारके पुष्पोंमेंसे रस लेतीहैं उनमें कुछ ऐसे पुष्प भी होते हैं जो विषके समान हैं इस लिये मधुको विषके सम्पर्क होनेसे गर्म करके गर्म औषधिके साथ गर्मीसे व्याकुल मनुष्योंको नहीं खाना चाहिये क्योंकि ऐसा होनेसे मधु विषके समान प्राणनाशक होता है ॥ मधु-भारी, रूक्ष, कषाय तथा शीतल होनेसे थोडा खाना हितकारक होता है ॥ २४० ॥

मधुके गुण ।

नातःकष्टतमंकिञ्चिन्मध्वामात्तद्धिमाधवम् । उपक्रमविरोधित्वात्सद्योहन्याद्यथाविषम् ॥ २४१ ॥ आमेसोष्णाःक्रियाकार्य्या सामध्वामेविरुध्यते । मध्वामंदारुणंतस्मात्सद्योहन्याद्यथा विषम् ॥ २४२ ॥

मधुके अधिक सेवन करनेसे यदि पेटमें आम प्रगट होजाय तो उसको मध्वाम कहते हैं । इससे बढकर कष्टदायक दूसरा रोग नहींहै । क्योंकि इसकी चिकित्सामें उपक्रम विरोध होनेसे चिकित्सा करना कठिन पडता है । प्रायः आमरोगमें उष्णक्रिया करनी आवश्यक होता है वह उष्णक्रिया मध्वाममें विरोधी पडती है अतएव यह रोग दारुण और विषके समान प्राणनाशक होता है ॥ २४१ ॥ २४२ ॥

मधुको योगवाहित्व ।

नानाद्रव्यात्मकत्वाच्चयोगवाहिहिमंमधु ।
इतीक्षुविकृतिप्रायोवर्गोऽयंदशमोमतः ॥ २४३ ॥

इति इक्षुवर्गः ।

मधु अनेक गुणवाले द्रव्योंके पुष्पोंसे संग्रह कियाजाताहै इसलिये अनेक द्रव्योंके साथ इसका उपयोग करनेमें आता है । यह योगवाही और शीतल है । इसप्रकार यह इक्षुवर्ग नामक दशमवर्ग समाप्त हुआ ॥ २४३ ॥

अथ कृतान्नवर्गः ।

क्षुत्तृष्णाग्लानिदौर्बल्यकुक्षिरोगविनाशिनी ।
स्वेदाग्निजननीपेयावातवर्चोऽनुलोमनी ॥ २४४ ॥

पेया--क्षुधा, तृषा, ग्लानि, दुर्वलता, कुक्षिरोग इन सबको शान्त करती है । स्वेद उत्पादक अग्नि एवम् अधोवात और मलको निकालनेवाली है ॥ २४४ ॥

तर्पणीग्राहिणीलघ्वीहृद्याचापिविलेपिका ॥ २४५ ॥मण्डस्तु दीपयत्यग्निंवातश्चाप्यनुलोमयेत् ॥ मृदूकरोतिस्रोतांसिस्वेदं संजनयत्यपि ॥२४६॥ लंघितानांविरिक्तानांजीर्णेस्नेहेचतृष्यताम् ॥ दीपनत्वाल्लघुत्वाच्चमण्डःस्यात्प्राणधारणः ॥२४७ ॥

विलेपी--तृप्तिकर्त्ता, ग्राही, हलकी एवम् हृदयको प्रिय , होती है । मांड--अग्निदीपक, वायुको अनुलोमनकर्त्ता, स्रोतोंको मृदु करनेवाला और स्वेदजनक होताहै। लंघन करनेवाले मनुष्योंको, विरिक्त मनुष्योंको और स्नेहजीर्ण होनेपर दीपन और हलका होनेसे मंड पिलाना प्राणधारक होता है ॥ २४५ ॥ २४६ ॥ २४७ ॥

लाजमण्डके गुण ।

शृतःपिप्पलिशुण्ठीभ्यांयुक्तोलाजाम्लदाडिमैः। तृष्णातीसारशमनोधातुसाम्यकरःशिवः ॥लाजमण्डोऽग्निजननो दाहमूर्च्छानिवारणः॥ २४८ ॥ मन्दाग्निविषमाग्नीनांबालस्थविरयोषिताम्।देयश्चसुकुमाराणांलाजमण्डःसुसंस्कृतः। क्षुत्पिपासासहःपथ्यःशुद्धानान्तुमलापहः ॥ २४९ ॥

धानोंकी खीलोंका बनायाहुआ मांड–पीपल,सोंठ और खट्टे अनारोंका रस युक्त कर पीनेसे तृष्णा और आतिसार शान्त करताहै: और धातुओंको साम्यावस्थामें लाताहै, शुभ है,अग्निजनक,दाह और मूर्च्छाको निवारण करनेवाला है। यह अच्छे प्रकार बनायाहुआ लाजामंड मंदाग्निवालोंको, विषमाग्निवालोंको,बालकोंको,वृद्धोंको स्त्रियोंको, सुकुमार पुरुषोंको, क्षुधा, पिपासाके शान्तिके लिये देनाचाहिये । यह संशोधित मनुष्योंको पथ्य है एवम् मलका निकालनेवाला है ॥ २४८ ॥ २४९ ॥

भातके गुण ।

सुधौतःप्रस्रुतःस्विन्नःसन्तप्तश्चौदनोलघुः । भृष्टतण्डुलमिच्छन्तिगरश्लेष्मामयेष्वपि ॥ २५० ॥ अधौतःप्रस्रुतःस्विन्नः शीतश्चाप्योदनोगुरुः ॥ २५१ ॥

चावलोंको भले प्रकार धोकर सिद्ध करे और उनकी पीछ वगैरह दूरकर उत्तम तैयार होजानेपर इनका गर्मगर्म भोजन करना हलका और उत्तम कहाहै ।विषदोष और कफके विकारमें चावलोंको भूनकर भात सिद्ध होनेपर देनाचाहिये । विना धोयेहुए, विना पीछ निकाले सिद्धकिया भात एवं शीतलभात भक्षण कियाहुआ भारी तथा गुरुपाकी होताहै ॥ २५० ॥ २५१ ॥

मांसादिसिद्ध अन्न ।

मांसशाकवसातैलघृतमज्जाफलौदनाः ।
बल्याःसन्तर्पणाहृद्यागुरवोबृंहयन्तिच ॥ २५२ ॥

मांस, शाक, वसा (चर्वी), तैल, घृत, मज्जा एवम् फलोंके साथ सिद्ध किया हुआ अन्न बलकारक, तृप्तिकारक, हृद्य, भारी, पुष्टिकारक होताहै ॥ २५२ ॥

कुल्माषके गुण ।

तद्वन्माषतिलक्षीरमुद्गसंयोगसाधिताः ।
कुल्माषागुरवोरूक्षावातलाभिन्नवर्चसः ॥ २५३ ॥

उसीके समान उडद, तिल,दूध, मूंग इनके संयोगसे सिद्धकिया हुआ अन्न भी उपरोक्त गुणवाला होता है । कुल्माष (गेंहू और चनेका होला)–भारी,रूक्ष वातकारक एवम् मलभेदक होताह ॥ २५३ ॥

स्विन्नभक्ष्यास्तुयेकेचित्सौप्यगोधूमयावकाः ।
भिषक्तेषांयथाद्रव्यमादिशेद्गुरुलाघवम् ॥ २५४ ॥

दाल, गेहूं, यव–इनसे सिद्ध किये भोजनमें उस पदार्थके अनुसार गुरु और लाघव जानकर वैद्य कथन करे ॥ २५४ ॥

कृताकृतयूषके गुण ।

अकृतंकृतयूषश्चतनुसंस्कारितंरसम् ।
सूपमम्लमनम्लञ्चगुरुंविद्याद्यथोत्तरम् ॥ २५५ ॥

विना घृत, मसालेवाला यूष एवम् घृत मसालायुक्त यूष, पतला संस्कार किया हुआ रस, खटाई युक्त दाल,खटाई रहित दाल, यह सब क्रमपूर्वक एकसे दूसरा उत्तरोत्तर भारी जानना ॥ २५५ ॥

सत्तूके गुण ।

सक्तवोवातलारूक्षाबहुवर्चोऽनुलोमिनः ।
तर्पयन्तिनरंसद्यःपीताःसद्योबलाश्चते ॥ २५६ ॥

सत्तू जलमें घोलकर पिये हुए–वातकारक, रूक्ष, मलवर्द्धक,अनुलोमन,भूखे मनुष्यको शीघ्र तृप्त करनेवाले तथा शीघ्र बल देनेवाले होते हैं ॥ २५६ ॥

शालिधान्यका सत्तू ।

मधुरालघवःशीताःसक्तवःशालिसम्भवाः ।
ग्राहिणोरक्तपित्तघ्नास्तृषाछर्दिज्वरापहाः ॥ २५७ ॥

शालीचावलोंके सत्तू-मधुर, हलके, शीतल, ग्राही, रक्तपित्तनाशक, तृषानाशक एवम् वमन तथा ज्वरको शान्त करतेहैं ॥ २५७ ॥

जौकी रोटियोंका गुण ।

हन्याद्व्याधीन्यवापूपोयावकोवाटचएवच ।
उदावर्त्तप्रतिश्यायकासमेहगलग्रहान् ॥ २५८ ॥

यवके पूडे और वाटियें--उदावर्त्त, प्रतिश्याय, खांसी, प्रमेह और गलग्रहको नष्ट करतेहैं ॥ २५८ ॥

जौकी धानके गुण ।

धानासंज्ञास्तुयेभक्ष्याःप्रायस्तेलेखनात्मकाः ।
शुष्कत्वात्तर्षणाश्चैवविष्टम्भित्वाच्चदुर्जराः ॥ २५९ ॥

धाना (भुनेहुए यव या गेहूं)--प्रायः लेखन होते हैं और शुष्क होनेसे तृषाजनक होते हैं तथा विम्भष्टी होनेसे दुर्जर होते हैं ॥ २५९ ॥

विरूढधानाके गुण ।

विरूढधानाःशष्कुल्योमधुक्रोडाःसपिण्डकाः ।
सूपाःपूपुलिकाद्याश्चगुरवःपैष्टिकाःपरम् ॥ २६० ॥

पिष्ट धान्योंकी शष्कुली, मीठी गुझियें, लड्डू, पूडे, पूडियें और कचौरियें ये सब अत्यन्त भारी होते हैं ॥ २६० ॥

फलादिसंस्कृतके गुण ।

फलमांसवसाशाकपललक्षौद्रसंस्कृताः ।
भक्ष्यावृष्याश्चबल्याश्चगुरवोबृंहणात्मकाः ॥ २६१ ॥

फल, मांस, चर्बी, शाक, पल्वल, शहद इन सबके संयोगसे सिद्धकिये भोजनके पदार्थ-वीर्यवर्द्धक, वलकारक, भारी और पुष्टिजनक होते हैं ॥ २६१ ॥

वेशवारके गुण ।

वेशवारोगुरुःस्निग्धोबलोपचयवर्द्धनः ।
गुरवस्तर्पणावृष्याःक्षीरेक्षुरससूपकाः ॥ २६२ ॥

वेसवार (पिष्ठमांस)-भारी, स्निग्ध और बलवर्द्धक होताहै । दूध और खांडसे वनाईहुई खीर-भारी, तृप्तिकारक एवम् वीर्यवर्द्धक होती है ॥ २६२ ॥

सगुडाःसतिलाश्चैवसक्षीरक्षौद्रशर्कराः ।
वृष्याबल्याश्चभक्ष्यास्तुतेपरंगुरुवःस्मृताः ॥ २६३ ॥

गुड, तिल, दूध, शहद, खांड इनसे बने पदार्थ--वीर्यवर्द्धक, वलकारक, एवम् अत्यन्त भारी होते हैं ॥ २६३ ॥

घृतसिद्ध गेहूंके पदार्थके गुण ।

सस्नेहाःस्नेहसिद्धाश्चभक्ष्याविविधलक्षणाः ।
गुरवस्तर्पणावृष्याहृद्यागोधूमिकामताः ॥ २६४ ॥

चिकनाईयुक्त एवम् घृतमें सिद्धकिये हुए गेहूंके आटेके पदार्थ--भारी, तृप्तिकारक, वीर्यवर्द्धक एवम् हृदयको प्रिय होते हैं ॥ २६४ ॥

संस्काराल्लघवःसन्तिभक्ष्यागोधूमपैष्टिकाः ।
धानापर्पटपूपाद्यास्तान्बुद्ध्वानिर्दिशेत्तथा ॥ २६५ ॥

संस्कारविशेषसे गेहूंके बने पदार्थ हलके भी होते हैं । जो धानियें, पापड, पूडे आदिक पदार्थ हैं इन सबको संस्कारविशेषसे हलके और भारी कहना चाहिये ॥ २६५ ॥

पृथुक गुण ।

पृथुकागुरवोभृष्टान्भक्षयेदल्पशस्तुतान् ।
यावाविष्टभ्यजीर्य्यन्तिसतुषाभिन्नवर्चसः ॥ २६६ ॥

चूडा--भारी होताहै इनको भूनकर थोडा खाना चाहिये । यवके चूडे--विष्टम्भ करके पाचन होते हैं । यदि तुषों सहित हों मलके भेदन करनेवाले होवे हैं॥२६६॥

यूष गुण ।

सूप्यान्यविकृताभक्ष्यावातलारूक्षशीतलाः ॥
सकटुस्नेहलवणानल्पशोभक्षयेत्तुतान् ॥ २६७ ॥

दालसे बने हुए यूष--रूक्ष, शीतल और वायुकारक होतेहैं इस लिये उनको पीपल मिर्च, सोंठ मिलाकर तथा घृतयुक्त कर थोडा खाना चाहिये ॥ २६७ ॥

पाकके गुण ।

मृदुपाकाश्चयेभक्ष्याःस्थूलाश्चकाठिनाश्चये ॥
गुरवस्तेऽप्यतिक्रान्तपाकाःपुष्टिबलप्रदाः ॥ २६८ ॥

स्थूल और कठिनद्रव्य जो मृदुपाकी होते हैं वह सब भारी, देरमें पचनेवाले, पुष्टिकारक और बलके देनेवाले होतेहैं ॥ २६८ ॥

द्रव्यसंयोगसंस्कारंद्रव्यमानंपृथक्तथा ।
भक्ष्याणामादिशेद्बुद्ध्वायथास्वंगुरुलाघवम् ॥ २६९ ॥

बुद्धिमान् वैद्यको उचित है कि संपूर्ण भक्षण करनेके पदार्थोंको द्रव्य, संयोग, संस्कार, मान विशेषसे यथोचित रीतिपर जानकर उनके अनुसार गुरु, लघु आदि कथन करे ॥ २६९ ॥

रसालाके गुण ।

रसालाबृंहणीवृष्यास्निग्धाबल्यारुचिप्रदा ।
स्नेहनंतर्पणंहृद्यंवातघ्नंसगुडंदधि ॥ २७० ॥

शिखरन–वीर्यवर्द्धक, पुष्टिकारक, स्निग्ध, बलवर्द्धक एवम् रुचिकारक होताहै गुडयुक्त दही–तृप्तिकारक, स्नेहन और वातनाशक होताहै ॥ २७० ॥

पानकके गुण ।

द्राक्षाखर्जूरकोलानांगुरुविष्टम्भिपानकम् ।
परूषकाणांक्षौद्रस्ययच्चेक्षुविकृतिप्रति ॥ २७१ ॥
तेषांकट्वम्लसंयोगाः पानकानांपृथक्पृथक् ।
द्रव्यमानञ्चविज्ञायगुणकर्माणिचादिशेत् ॥ २७२ ॥

मुनक्का, खजूर, उन्नाव इनसे बनाया हुआ पानक भारी और विष्टम्भी होती है फालसेका रस और शहदसे बनाया हुआ पानक तथा खांड विशेषसे बनाया हुआ पानक उनके चरपरे, खट्टे आदि गुणोंसे तथा संयोग और द्रव्य मानको जानकर गुण कर्मोंको कथन करे । इसी प्रकार प्रायः सब फलोंके पानक (शरबत) जानने चाहिये ॥ २७१ ॥ २७२ ॥

रागषांडवके गुण ।

कट्वम्लस्वादुलवणालघवोरागषांडवाः ।
मुखप्रियाश्चहृद्याश्चदीपनाभक्तरोचनाः ॥ २७३ ॥

रागखांडव–चरपरे, अम्ल, मधुर, नमकीन, हलके, मुखप्रिय, हृद्य, दीपन और भोजनमें रुचि करनेवाले होतेहैं ॥ २७३ ॥

आम और आंवलेका अवलेह ।

आम्रामलकलेहाश्चबृंहणाबलवर्द्धनाः ।
रोचनास्तर्पणाश्चोक्ताःस्नेहमाधुर्य्यगौरवात् ॥ २७४ ॥

पके हुए आम और आमलेके संयोगसे बनाई हुई चटनी-चिकनी, मीठी, भारी, बलवर्द्धक, बृंहण, रुचिकारक तथा तृप्तिकारक होतीहै ॥ २७४ ॥

लेह (चटनी) गुण ।

बुद्ध्वासंयोगसंस्कारंद्रव्यमानञ्चतत्स्मृतम् ।
गुणकर्माणिलेहानांतेषांतेषांतथावदेत् ॥ २७५ ॥

जितने प्रकारके लेह पदार्थ हैं वह सब संयोग, संस्कार, द्रव्य ,परिमाण इनके भेदसे उनके गुण कर्मोंको कथन करे ॥ २७५ ॥

शुक्तके गुण ।

रक्तपित्तकफोत्क्लेदिशुक्तंवातानुलोमनम् ।
कन्दमूलफलाद्यञ्चतद्वद्विद्यात्तदासुतम् ॥ २७६ ॥

कंद, मूल, फल आदिकोंका अचार-रक्तपित्त, कफ इनको उत्क्लेश करनेवाला तथा वातको अनुलोम करनेवाला होताहै । शिरकेमें डाला हुआ अचार भी उन्हींके समान गुणवाला होताहै ॥ २७६ ॥

शिण्डाकीका गुण ।

शिण्डाकीचासुतञ्चान्यत्कालाम्लंरोचनंलघु ।
विद्याद्वर्गंकृतान्नानामेकादशतमंभिषक् ॥ २७७ ॥

इति कृतान्नवर्गः ।

चटनियें, अचार, कांजी, आदि सब प्रकारकी खटाई रुचिकारक और हलकी होतीहै । इसप्रकार कृतान्नवर्ग नामक एकादश वर्ग समाप्त हुआ ॥ २७७ ॥

अथाहारयोगवर्गः ।

तैलके गुण ।

कषायानुरसंस्वादुसूक्ष्ममुष्णंव्यवायिच । पित्तलंबद्धविण्मूत्रंन चश्लेष्माभिवर्द्धनम् ॥ २७८ ॥ वातघ्नेषूत्तमंबल्यंत्वच्यंमेधा-ग्निवर्द्धनम् । तैलंसंयोगसंस्कारात्सर्वरोगापहंमतम् ॥ २७९ ॥

तिलोंका तेल--कषाय, अनुरस, स्वादु, सूक्ष्म, उष्ण, व्यवायी, पित्तवर्द्धक, मल मूत्रको बांधनेवाला तथा कफवर्द्धक नहीं है । वातनाशकोंमें उत्तम, बलकारक, त्वचाको उत्तम बनानेवाला, मेधा और अग्निको बढानेवाला होता है एवम् औषधियोंके संयोगसे सिद्ध किया तैल संपूर्ण रोगोंको नष्ट करताहै ॥ २७८ ॥ २७९ ॥

तैलकी उत्कृष्टतामें दृष्टान्त।

तैलप्रयोगादजरानिर्विकाराजितश्रमाः।
आसन्नातिबलाःसंख्येदैत्याधिपतयःपुरा ॥ २८०॥

किसी समयमें दैत्योंके राजा तैलके प्रयोगसे अजर निर्विकार, श्रमरहित, एवम् लडनेमें अत्यन्त बलवान् हुए थे। यदि मनुष्यभी विधिवत् तैलका उपयोग करे तो बलवान् तथा उपरोक्त गुणोंवाला होसकताहै परन्तु तैल मर्दन करनेसेही अधिक गुण करताहै ॥ २८० ॥

अरण्डतैलके गुण।

ऐरण्डतैलंमधुरंगुरुश्लेष्माभिवर्द्धनम्।
वातासृग्गुल्महृद्रोगजीर्णज्वरहरंपरम् ॥ २८१ ॥

एरंड तैल-मधुर, भारी, कफवर्द्धक तथा वात, रक्त, गुल्म, हृद्रोग, जीर्णज्वर इनको हरनेवाला है ॥ २८१ ॥

सरसोंके तैलके गुण।

कटूष्णंसार्षपंतैलंरक्तपित्तप्रदूषणम्।
कफशुक्रानिलहरंकण्डूकोठाविनाशनम् ॥ २८२ ॥

सरसोंका तैल-कटु,उष्ण,रक्तपित्तको दूषित करनेवाला,कफ,शुक्र एवम् वायुको हरनेवाला तथा खुजली कोष्ठ आदि त्वचाके रोगोंको नष्ट करता है ॥ २८२ ॥

पियालके तैलके गुण।

पियालतैलंमधुरंगुरुश्लेष्माभिवर्द्धनम्।
हितमिच्छन्तिनात्यौष्ण्यात्संयोगेवातपित्तयोः ॥ २८३ ॥

चिरौंजीका तेल-मीठा, भारी, कफवर्द्धक तथा अत्यन्त गर्म न होनेसे द्रव्यके संयोग द्वारा वातपित्तको नष्ट करताहै ॥ २८३ ॥

अलसीके तैलके गुण।

आतस्यंमधुराम्लन्तुविपाकेकटुकंतथा।
उष्णवीर्य्यंहितंवातेरक्तपित्तप्रकोपनम् ॥ २८४ ॥

अलसीका तेल-मीठा, अम्ल, विपाकमें कटु, उष्णवीर्य, वातरोगोंमें हित एवम् रक्तपित्तको कुपित करनेवाला है ॥ २८४ ॥

कसूमके तैलके गुण।

कुसुम्भतैलमुष्णञ्चविपाकेकटुकंगुरु।
विदाहिचविशेषेणसर्वरोगप्रकोपनम् ॥ २८५ ॥

कुसुम्भके बीजोंका तेल--गर्म, विपाकमें कटु, भारी, विशेषकर विदाही एवम्--सर्व दोषोंको कुपित करनेवाला है ॥ २८५ ॥

फलोंके तैलके गुण।

फलानांयानिचान्यानितैलान्याहारसन्निधौ।
युज्यन्तेगुणकर्मभ्यांतानिब्रूयाद्यथायथम् ॥ २८६ ॥

इसीप्रकार अनेक प्रकारके फलोंके तैलोंको आहारके संयोगमें गुणकर्मों करके उनके गुणोंको कथन करे ॥ २८६ ॥

मज्जावसाके गुण।

मधुरोबृंहणोवृष्योवल्योमज्जातथावसा।
यथासत्त्वन्तुशैत्योष्णेवसामज्ज्ञोर्विनिर्दिशेत् ॥ २८७ ॥

मज्जा और चर्वी ये दोनों--मधुर, पुष्टिकारक, वीर्यवर्द्धक, बलकारक होती हैं। शीतगुणविशिष्ट तेलोंको गर्मीमें तथा उष्णगुणविशिष्ट तेलोंको सर्दीमें उपयोग करे ॥ २८७ ॥

सोंठके गुण।

सस्नेहंदीपनंवृष्यमुष्णंवातकफापहम्।
विपाकमधुरंहृद्यंरोचनंविश्वभेषजम् ॥ २८८ ॥

सोंठ--चिकनी, दीपन, वृष्य, उष्ण, वातकफनाशक, विपाकमें मधुर, हृद्य और रुचिकारक है ॥ २८८ ॥

पीपलके गुण।

श्लेष्मलामधुराचार्द्रागुर्वीस्निग्धाचपिप्पली।
साशुष्काकफवातघ्नीकटुकावृष्यसम्मता ॥ २८९ ॥

कच्ची पीपल--कफकारक, मधुर, भारी एवम् स्निग्ध होतीहै। सूखी पीपल--कफ-वात नाशक चरपरी एवं वीर्यवर्द्धक होतीहै ॥ २८९ ॥

मिरचके गुण।

नात्यर्थमुष्णंमरिचमवृष्यंलघुरोचनम्।
छेदित्वाच्छोषणत्वाच्चदीपनंकफवातजित् ॥ २९० ॥

कालीमिर्च--अधिक गर्म नहीं है । अवृष्य, हलकी एवम् रुचिकारक है तथा छेदी होनेसे और शोषण होनेसे दीप्तिकारक एवम् वातकफनाशक है ॥ २९० ॥

हींगके गुण ।

वातश्लेष्मविबन्धघ्नंकटुकंदीपनंलघु ।
हिंगुशूलप्रशमनंविद्यात् पाचनरोचनम् ॥ २९१ ॥

हींग--वात, कफ, विबंध इनको नष्ट करनेवाली, कटु, उष्ण, दीपन, लघु, शूल नाशक, पाचन और रुचिकारक है ॥ २९१ ॥

सैन्धानमकके गुण ।

रोचनंदीपनंहृद्यंचक्षुष्यमविदाहिच ।
त्रिदोषघ्नंसमधुरंसैन्धवंलवणोत्तमम् ॥ २९२ ॥

सेंधानमक-रुचिकारक, दीपन, हृदयको प्रिय, नेत्रोंको हितकारी, अविदाही, त्रिदोषनाशक, एवम् मधुर होताहै ॥ २९२ ॥

संचलनमकके गुण ।

सौक्ष्म्यादौष्ण्याल्लघुत्वाच्चसौगन्ध्याच्चरुचिप्रदम् ।
सौवर्च्चलंविबन्धघ्नंहृद्यमुद्गारशोधिच ॥ २९३ ॥

संचरनमक--सूक्ष्म होनेसे तथा उष्ण होनेसे एवम् हलका और सुगंधित होनेसे रुचिकारक, विबंधनाशक हृद्य तथा उद्गारको शुद्ध करता है ॥ २९३ ॥

विडनमकके गुण ।

तैक्ष्ण्यादौष्ण्याद्व्यवायित्वाद्दीपनंशूलनाशनम् ।
ऊर्ध्वंचाधश्चवातानामानुलोम्यकरंविडम् ॥ २९४ ॥

विडनमक-- तीक्ष्ण होनेसे, उष्ण होनेसे एवम् व्यवायी होनेसे दीपन, शूलनाशक, ऊपर और नीचेके भागोंमें होनेवाली वायुको अनुलोमन करताहै ॥ २९४ ॥

उद्भिदनमकके गुण ।

सतिक्तकटुसक्षारंतीक्ष्णमुत्क्लेदिचौद्भिदम् ॥
नकाललवणेगन्धःसौवर्च्चलगुणाश्चते ॥ २९५ ॥

उद्भिद नमक (खारी नमक)- किंचित् कडुआ, चरपरा, खारा, तीक्ष्ण तथा उत्क्लेदकारक है । कालानमक--गन्धहीन होता है और सब गुण संचरनमकके समान होता है ॥ २९५ ॥

समुद्रादिलवणके गुण ।

सामुद्रकंसमधुरंसातिक्तंकटुपांशुजम् ।
रोचनंलवणंसर्वंपाकिस्रंस्यनिलापहम् ॥ २९६ ॥

सामुद्रनमक किञ्चित् मधुर होता है। पांशुलवण किंचित् तिक्त और कटु होता है। प्रायः सब प्रकारके लवण रुचिकारक, पाचन, दस्तावर, एवम् वातनाशक होते हैं ॥ २९६ ॥

जवाखारके गुण ।

हृत्पाण्डुग्रहणीदोषप्लीहानाहगलग्रहान् ।
कासंकफजमर्शांसियावशूकोव्यपोहति ॥ २९७ ॥

जवाखार-हृद्रोग, पांडुरोग, ग्रहणी, प्लीहा, अफरा, गलग्रह, कफकी खांसी और बवासीरको नष्ट करता है ॥ २९७ ॥

क्षारोंके गुण ।

तीक्ष्णोष्णोलघुरूक्षश्चक्लेदीपाकीविदारणः ।
दहनोदीपनश्छेत्तासर्वःक्षारोऽग्निसन्निभः ॥ २९८ ॥

प्रायः सब प्रकारके क्षार-तीक्ष्ण, गर्म, लघु, रूक्ष, क्लेदी, पाचनकर्त्ता, विदारण, दाहन, दीपन, छेदन और अग्निके समान होते हैं ॥ २९८ ॥

जीरा और धनियाका गुण ।

कारव्यःकुञ्चिकाजाजीकवरीधान्यतुम्बुरुः ।
रोचनंदीपनंवातकफदौर्गन्ध्यनाशनम् ॥ २९९ ॥

कलौंजी, कालाजीरा, अजवायन, सफेदजीरा, मेथी नैपाली धनिया, तुंबरु, ये सब रुचिकारक, दीपन, वातकफनाशक एवम् दुर्गन्धनाशक होते हैं ॥ २९९ ॥

आहारयोगिनांभक्तिनिश्चयोनतुविद्यते ।
समासोद्वादशश्चायंवर्गआहारयोगिनाम् ॥ ३०० ॥

इत्याहारयोगवर्गः ।

आहारके उपयोगी पदार्थोंमें कहांपर कौन वस्तुएं कितनी डालिनी चाहिये इसका कोई यथार्थ नियम नहीं है। इस प्रकार आहारोपयोगी नामक द्वादशवर्ग समाप्त हुआ ॥ ३०० ॥

पुराण धान्यमें विशेषता ।

शूकधान्यंशमीधान्यंसमातीतंप्रशस्यते ।
पुराणंप्रायशोरूक्षंप्रायेणाभिनवंगुरु ॥ ३०१ ॥

शूकधान्य और शमीधान्य एकवर्षके पुराने होनेसे हितकारी होते हैं । पुराने धान्य प्रायः रूक्ष होते हैं और नवीन धान्य भारी होते हैं ॥ ३०१ ॥

यद्यदागच्छतिक्षिप्रंतत्तल्लघुतरंस्मृतम् ॥ ३०२ ॥

जो धान्य शीघ्र परिपाकको प्राप्त होते हैं वह उतने ही हलके होतेहैं ॥ ३०२ ॥

निस्तुषंयुक्तिभृष्टन्तुसूप्यंलघुविपच्यते ॥ ३०३ ॥

तुषरहित युक्तिपूर्वक भुनीहुई दाल लघुपाकी होती है ॥ ३०३ ॥

वर्जित मांस ।

मृतंकेशातिमेध्यञ्चवृद्धंबालंविषैर्हतम् ।
अगोचरभृतंव्याडसूदितंमांसमुत्सृजेत् ॥ ३०४ ॥

अपने आप मराहुआ, कृश, सडाबुसा, वृद्ध, बाल, विष आदिसे मराहुआ, अपरोक्ष मराहुआ, व्याघ्र आदिका माराहुआ ऐसे जीवोंका मांस त्यागदेने योग्य है ॥ ३०४ ॥

मांसरसका गुण ।

अतोऽन्यथाहितंमांसंबृंहणंबलवर्द्धनम् ।प्रीणनःसर्वभूतानांहृ-
द्योमांसरसःपरम् ॥३०५॥ शुष्यतांव्याधियुक्तानांकृशानांक्षी-
णरेतसाम् ॥ बलवर्णार्थिनाञ्चैवरसंविद्याद्यथामृतम् ॥ ३०६ ॥

इनसे सिवाय प्रायः सम्पूर्ण जीवोंका मांस पुष्टिकारक और बलवर्द्धक होता है। मांसरस–सब मनुष्योंके लिये प्रीणन और हृद्य होता है तथा सूखेहुए शरीरवालोंको, अथवा शोषरोगवालोंको, कृश मनुष्योंको, क्षीणवीर्यवालोंको, बल वर्णकी इच्छा-वालोंको मांसरस अमृतके समान है ॥ ३०५ ॥ ३०६ ॥

सर्वरोगप्रशमनंयथास्वंविहितंरसम् । विद्यात्स्वर्य्यंबलकरंव-
योबुद्धीन्द्रियायुषाम् ॥३०७ ॥ व्यायामनित्याःस्त्रीनित्यामद्य-
नित्याश्चयेनराः । नित्यंमांसरसाहारानातुराःस्युर्नदुर्बलाः ३०८॥

मांसरस द्रव्यविशेषके संयोगसे सिद्ध किया जानेपर संपूर्ण रोगोंको नष्ट करता है तथा स्वरकारक, बलवर्द्धक, अवस्थास्थापक, बुद्धिवर्द्धक, इन्द्रियोंका बल तथा

आयुको बढानेवाला है । व्यायाम करनेवाले मनुष्योंको, स्त्री सेवन करनेवालोंको, सुरापियोंको नित्य मांसरसका आहार करना चाहिये । मांसरस सेवन करनेसे रोगग्रस्त मनुष्य भी दुर्बल नहीं होते ॥ ३०७ ॥ ३०८ ॥

वर्जित शाक ।

क्रिमिवातातपहतंशुष्कंजीर्णमनार्त्तवम् ।
शाकंनिःस्नेहसिद्धञ्चवर्ज्यंयच्चापरिस्रुतम् ॥ ३०९ ॥

कीडेका खाया हुआ, वायुका माराहुआ, सूखा, धूपसे जलाहुआ, पुराना, वेमौसम, बिना चिकनाईसे बनाया हुआ, जिस शाकको उवालकर पानी न निकालाहो अथवा जो साफ न कियागयाहो ऐसा शाक खाने योग्य नहीं होता ॥ ३०९ ॥

वर्जित फल ।

पुराणमामंसंक्लिष्टंक्रिमिव्यालहिमातपैः ।
अदेशाकालजंक्लिन्नंयत्स्यात्फलमसाधुतत् ॥ ३१० ॥

पुराना, कच्चा, सडाहुआ, कीडे सर्प आदिका खाया हुआ, धूपसे मुर्झाया हुआ, सर्दीसे माराहुआ, खराब भूमिमें उत्पन्न भया, बे समय उत्पन्न भया, दुर्गंधयुक्त ऐसे फलको निंदनीय समझ त्याग देवे । अर्थात् कभी न खावे ॥ ३१० ॥

हरितानांयथाशाकंनिर्देशःसाधनादृते ॥ ३११ ॥

सब प्रकारके सब्जियोंको पत्र शाकोंके समान संस्कार कर खाना चाहिये परन्तु इनको उबालकर शाकोंके समान निचोडना नहीं चाहिये ॥ ३११ ॥

मद्याम्बुगोरसादीनांस्वेस्वेवर्गेविनिश्चयः ॥ ३१२ ॥

मद्य, जल, दूध आदिकोंके गुणदोष उनके वर्गोंमें कथन कियेगये हैं ॥ ३१२ ॥

अनुपानका वर्णन ।

यदाहारगुणैःपानंविपरीतंतदिष्यते । अम्लानुपानंधातूनांदृष्टं यन्नाविरोधिच ॥ ३१३ ॥ आसवानांसमुद्दिष्टाअशीतिश्चतुरुत्तराः ॥ ३१४॥

जिस गुणवाला आहार हो उससे विपरीत गुणवाला अनुपान करनाचाहिये अर्थात् आहार उष्णता प्रधान हो तो अनुपान शीतल होनाचाहिये, शीतल आहार हो तो अनुपान गर्म होनाचाहिये परन्तु खट्टे पदार्थपरसे मीठा अनुपान नहीं करना चाहिये

१ अन्नानुपानम् इतिपुस्तकान्तरे ।

क्योंकि तीक्ष्ण खट्टेके ऊपरसे मीठा खाना धातुओंमें विकार उत्पन्न करताहै अथवा अन्नका इस प्रकारका अनुपान करना चाहिये जो धातुओंका विरोधी न हो॥ ३१३ आसव ८४ प्रकारके होतेहैं उनको हम प्रथमही कथनकर आयेहैं ॥ ३१४ ॥

जलंपेयमपेयञ्चपरीक्ष्यानुपिबेद्धितम् ॥ ३१५ ॥

जल परीक्षा करके पीने योग्य है या नहीं ऐसा विचारकर पीना चाहिये॥ ३१५॥

स्निग्धोष्णंमारुतेशस्तंपित्तेमधुरशीतलम् ।
कफेऽनुपानंरूक्षोष्णंक्षयेमांसरसःपरम् ॥ ३१६ ॥

वायुके रोगमें चिकना और गर्म अनुपान करना चाहिये । पित्तजनित रोगमें मधुर और शीतल अनुपान करना चाहिये ।कफजनित रोगमें रूक्ष और गर्म अनुपान करना चाहिये । एवम् सब धातुओंकी क्षीणतामें मांसरसका अनुपान करना चाहिये ॥ ३१६ ॥

दूधका अनुपान ।

उपवासाध्वभारस्त्रीमारुतातपकर्म्मभिः ।
क्लान्तानामनुपानार्थंपयःपथ्यंयथामृतम् ॥ ३१७ ॥

उपवास, मार्गसे थका, बहुत भाषण किया हुआ, स्त्रीसंभोगके अनन्तर, वायु, धूप तथा अन्य कर्मोंसे थके हुए मनुष्योंको दूधका अनुपान पथ्य और अमृत-समान है ॥ ३१७ ॥

अन्य अनुपान ।

सुराकृशानांपुष्ट्यर्थमनुपानंप्रशस्यते । कार्श्यार्थंस्थूलदेहाना-मनुशस्तंमधूदकम् ॥ ३१८ ॥ अल्पाग्नीनामनिद्राणांतन्द्राशो-कभयक्लमैः । मद्यमांसोचितानाञ्चमद्यमेवानुशस्यते ॥ ३१९ ॥

कृश मनुष्योंको पुष्टिके लिये सुराका अनुपान उत्तम है । एवम् स्थूल मनुष्योंका श करनेके लिये शहदयुक्त पानीका अनुपान करना चाहिये ॥ ३१८॥ मंदाग्निवालोंको-अनिद्रा, तन्द्रा, शोक, भय तथा क्लान्ति युक्त मनुष्योंको और जो मद्य-मांसके सेवन करनेवाले हैं उनको मद्यका अनुपान करना उत्तम है ॥ ३१९ ॥

अनुपानके कर्म ।

अथानुपानकर्मप्रवक्ष्यामि । अनुपानंतर्पयतिप्रीणयतिऊर्जय-तिपर्याप्तिमभिनिर्वर्त्तयतिभुक्तमवसादयतिअन्नसङ्घातंभिन-

त्तिमार्दवमापादयतिक्लेदयतिजरयतिमुखपरिणामितामाशुव्य-
वायिताञ्चाहारस्योपजनयतीति ॥ ३२० ॥

अब अनुपानके गुणोंको कहते हैं:-अनुपान-तर्पणकारक, प्राणदायक, बलव-र्द्धक, भोजनको अवसादनकर्त्ता तथा भोजनके संघातको भेदनकर्त्ता, मृदुताकारक, क्लेदकारक, पाचनकर्त्ता, आहारके परिणामको सुखावह करनेवाला तथा किये हुए भोजनको शीघ्र फैला देनेवाला होता है ॥ ३२० ॥

तत्रश्लोकाः ।

अनुपानंहितंयुक्तंतर्पयत्याशुमानवम् ।
सुखंपचतिचाहारमायुषेचबलायच ॥ ३२१ ॥

यहां कहाजाताहै कि युक्तिपूर्वक अनुपान किया हुआ मनुष्यको शीघ्र तृप्त करता है तथा हितकारक है एवम् सुखपूर्व आहारको पचानेवाला, आयुवर्द्धक और बलदायक होता है ॥ ३२१ ॥

जलपानका निषेध ।

नोर्द्ध्वाङ्गमारुताविष्टानहिक्काश्वासकासिनः ।
नगीतभाषाध्ययनप्रसक्तानोरसिक्षताः ॥ ३२२ ॥
पिबेयुरुदकंभुक्त्वातद्धिकण्ठोरसिस्थितम् ।
स्नेहमाहारजंहत्वाभूयोदोषायकल्पते ॥ ३२३ ॥

ऊर्द्ध्वांगगत वातवालोंको हिचकी तथा श्वास और खांसीवालोंको एवम् जिनको गायन और भाषण एवम् अध्ययन इनका अधिक काम पडता हो तथा उरक्षत रोगवालोंको भोजनके अनन्तर पानी नहा पीना चाहिये क्योंकि इन पुरुषोंको भोजनके अनन्तर पानी पीनेसे वह पानी कण्ठ और वक्षस्थलमेंसे होकर आहारके स्नेहको नष्ट कर दोषोंको कुपित करता है ॥ ३२२ ॥ ३२३ ॥

उपसंहार ।

अनुपानैकदेशोऽयमुक्तःप्रायोपयोगिकः ॥ द्रव्यन्तुनहिनिर्देष्टुंशक्यं
कृत्स्नेननामभिः ॥ ३२४ ॥ यथानामौषधंकिञ्चिद्देशजानांव-
चोयथा ॥ द्रव्यंतत्तत्तथावाच्यमनुक्तमिहतद्भवेत् ॥ ३२५ ॥

इस प्रकार आहार द्रव्य और अनुपान साधारणरूपसे प्रायः उपयोगी पदार्थोंका वर्णन करदिया है।और संपूर्ण द्रव्योंका संपूर्ण नामों सहित वर्णन होना मुश्किल है

क्योंकि जैसे यावन्मात्र संपूण द्रव्य जाने जा नहीं सकते एवम् उन संपूर्ण द्रव्योंको संपूर्ण भाषाओंमें नाम नहीं जानेजाते इसी प्रकार संपूर्ण द्रव्योंका इस आहार विषयमें कथन करना कठिन प्रतीत होताहै क्योंकि देशभेदसे, क्रमभेदसे, संस्कार-भेदसे आहारविशेष द्रव्योंकी कल्पना असंख्य प्रकारसे है ॥ ३२४ ॥ ३२५ ॥

चरादिपरीक्षा ।

चराःशरीरावयवाःस्वभावोधातवःक्रिया ॥ लिङ्गंप्रमाणंसंस्कारोमात्राचास्मिन्परीक्ष्यते ॥ ३२६ ॥ चरोऽनूपजलाकाशधन्वाद्योभक्ष्यसंविधौ ॥ जलजानूपजाश्चैवजलानूपचराश्च ये ॥ ३२७ ॥ गुरुभक्ष्याश्चयेसत्त्वाःसर्वेतेगुरवःस्मृताः । लघुभक्ष्यास्तुलघवोधन्वजाधन्वचारिणः ॥ ३२८ ॥

आहारविषयक प्रायः चर और अचर द्रव्योंका कथन करचुकेहैं अब यहांपर चर जातीय अर्थात् आहारमें आनेवाले जीवोंका शरीरके अंग, स्वभाव, धातुयें, लक्षण, प्रमाण, संस्कार और मात्रा भी परीक्षा करने योग्य है सो उनका वर्णन करते हैं । जलचर, अनूपचर, आकाशचर एवम् जंगलमें फिरनेवाले तथा जलमें उत्पन्न भये और अनूपदेशके रहनेवाले और जो संपूर्ण जीव गुरुपदार्थोंको भक्षण करनेवाले हैं वे सब संपूर्ण अंगोंमें भारी अर्थात् गुरुपाकी होते हैं । इसी प्रकार हलके पदार्थोंके खानेवाले और जंगलमें उत्पन्न भये तथा जंगलमें फिरनेवाले जानवर हलके अर्थात् लघुपाकी होते हैं॥ ३२६ ॥ ३२७ ॥ ३२८ ॥

शरीरावयवका वर्णन ।

शरीरावयवाःसक्थिशिरःस्कन्धादयस्तथा । सक्थिमांसाद्गुरुस्कन्धस्ततःक्रोडस्ततश्शिरः ॥ ३२९ ॥ वृषणौचर्ममेढ्रश्चश्रोणीवृक्कौयकृद्गुदम् । मांसाद्गुरुतरंविद्याद्यथास्वंमध्यमस्थिच ॥ ३३० ॥

जांघ, मस्तक, कंधा आदिक जो शरीरके अवयव हैं इनमें जंघाके मांससे कंधेका मांस और कंधेके मांससे छातीका मांस तथा छातीके मांससे मस्तकका मांस और मस्तकके मांससे पैरोंका मांस भारी होता है । दोनों अण्डकोश, चर्म, मेढ्र (गुह्य-स्थान), वृकस्थान, यकृत् एवम् गुदाका मांस प्रथमकी अपेक्षा दूसरे क्रमपूर्वक भारी होतेहैं और अस्थियोंमें लगा हुआ मांस इन सबकी अपेक्षा भारी होताहै ॥ ३२९ ॥ ३३० ॥

स्वभावका वर्णन ।

स्वभावाल्लघवोमुद्गास्तथालावकपिञ्जलाः ।
स्वभावाद्गुरवोमाषावराहमहिषास्तथा ॥ ३३१ ॥

मूंग, लवा और कपिञ्जल यह स्वभावसे ही हलके होते हैं एवम् उडद, वराह, भैंसा यह स्वभावसे ही भारी होते हैं ॥ ३३१ ॥

धातुओंका लघुगुरुत्व ।

धातूनांशोणिताद्यानांगुरुंविद्याद्यथोत्तरम् । अलसेभ्योविशिष्य-न्तेप्राणिनोयेबहुक्रियाः ॥ ३३२ ॥ गौरवेलिङ्गसामान्येपुंसां स्त्रीणाञ्चलाघवम् ।महाप्रमाणागुरवःस्वजातौलघवोऽन्यथा ३३३॥

रक्तसे लेकर वीर्यपर्यन्त सब धातुयें प्रथमकी अपेक्षा दूसरी क्रमपूर्वक भारी जाननी । सामान्य जातिके पशुओंमें भी आलसियोंकी अपेक्षा बहुत फिरनेवाले पशु उत्तम होते हैं ।इसी प्रकार स्त्री और पुरुषजातिके जीवोंमें पुरुषजातिके जीव भारी और स्त्रीजातिके हलके होते हैं । एकजातमें भी बडे शरीरवाला जीव भारी और छोटे शरीरवाला उसकी अपेक्षा हलका होता है ॥ ३३२ ॥ ३३३ ॥

संस्कार और मात्राकृत गुरुलघुत्व ।

गुरूणांलाघवंविद्यात्संस्कारात्सविपर्ययम् ।
व्रीहेर्लाजायथाचस्युःसक्तूनांसिद्धपिण्डकाः ॥ ३३४ ॥

संस्कारके भेदसे भारी पदार्थ हलके हो सकते हैं । और हलके भारी हो सकते हैं । जैसे चावलोंकी अपेक्षा खील हलकी होती एवम् सत्तुओंकी अपेक्षा घृतपक्व मोदक भारी होजाते हैं ॥ ३३४ ॥

अल्पादानेगुरूणाञ्चलघूनांचातिसेवने ।
मात्राकारणमुद्दिष्टंद्रव्याणांगुरुलाघवे ॥ ३३५ ॥

भारी पदार्थ थोडा भक्षण करनेसे लघुपाकी अर्थात हलका होजाताहै और हलका पदार्थ भी बहुत खायाजानेसे भारी होजाताहै इसलिये द्रव्योंके हलके और भारीपनमें मात्राहीको कारण कहना चाहिये ॥ ३३५ ॥

गुरूणामल्पमादेयंलघूनांतृप्तिरिष्यते ।
मात्रामपेक्षतेद्रव्यंमात्राचाग्निमपेक्षते ॥ ३३६॥

जो पदार्थ भारी हैं उनको थोडा खाना चाहिये और हलके पदार्थोंको पेटभरकर खालेना चाहिये। आहारकी लघुता और गुरुता मात्राके अधीन है और मात्रा जठराग्निके बलाबलपर निर्भर है ॥ ३३६ ॥

बलमारोग्यमायुश्च प्राणाश्चाग्नौप्रतिष्ठिताः।
अनुपानेन्धनैश्चाग्निर्दीप्यतेशाम्यतेऽन्यथा ॥ ३३७ ॥

बल, आरोग्यता, आयुकी स्थिरता, प्राण ये सब जठराग्निके ही आश्रयभूत हैं सो वह जठराग्नि अनुपानरूपी इंधनसे चैतन्य रहती है।यदि वह अनुपान अनुचित-रीतिपर सेवन कियाजाय तो वही उस अग्निको नष्ट करनेवाला होताहै ॥ ३३७ ॥

गुरुलाघवचिन्तेयंप्रायेणाल्पबलान्प्रति।
मन्दकर्मानिनारोग्यान्सुकुमारान्सुखोचितान् ॥ ३३८ ॥

यह गुरु लाघवका विचार प्रायः अल्पबलवालोंको, आलसीपुरुषोंको, रोगि-योंको, सुकुमारोंको, सुखपूर्वक रहनेवालोंको विशेषतासे रखना चाहिये ॥ ३३८॥

दीप्ताग्नयःखराहाराःकर्मनित्यामहोदराः।
येनराःप्रतितांश्चिन्त्यंनावश्यंगुरुलाघवम् ॥ ३३९ ॥

जिनकी अग्नि बहुत बलवान् है जो अंटसंट, कठोर वस्तुओंके खानेके अभ्यास-वाले हैं; जो दिनभर बहुत काम करनेवाले हैं तथा जो बहुत आहार करते हैं उनको गुरु, लाघवका विचार कर आहार करनेकी विशेष आवश्यकता नहीं है ॥३३९॥

हित कर्म।

हिताभिर्जुहुयान्नित्यमन्तराग्निसमाहितः।
अनुपानसमिद्भिर्नामात्राकालौविचारयन् ॥ ३४० ॥

संपूर्ण मनुष्यमात्रको मात्रा और काल विचारकर हितकारक आहाररूपी इंधन द्वारा जठराग्निको चैतन्य रखना चाहिये ॥ ३४० ॥

आहिताग्निःसदापथ्यान्यन्तराग्नौजुहोतियः। दिवसेदिवसेब्र-ह्मजपत्यथददातिच। नरंनिःश्रेयसेयुक्तंसात्म्यज्ञंपानभोजने॥ ॥ ३४१ ॥ भजन्तेनामयाःकेचिद्भाविनोऽप्यन्तरादृते। षट्त्रिं-शत्सहस्राणिरात्रीणांहितभोजनः॥जीवत्यनातुरोजन्तुर्जिता-त्मासम्मतःसताम्मिति ॥ ३४२ ॥

जो मनुष्य सदैव अंतराग्निमें पथ्यरूपी आहुति देता है और नित्यप्रति भगवान्‌का भजन कर यथाशक्ति दानदेता है,ऐसे कल्याणमें तत्पर और सात्म्य अन्नपान करने वाले मनुष्यको अवश्यम्भावीके विना कोई रोग या दुःख नहीं सताते अथवा यों कहिये कि रोगोंके कारण न होनेके सबब रोग होते ही नहीं ऐसे वह जितेन्द्रिय, धर्मात्मा, श्रेष्ठ पुरुष रोगरहित होकर सौवर्षपर्यन्त जीवित रहताहै ॥ ३४१॥३४२॥

तत्र श्लोकाः ।

अनुपानगुणाःसाग्र्यावर्गाद्वादशनिश्चिताः ।
सगुणान्यन्नपानानिगुरुलाघवसंग्रहः ॥ ३४३ ॥
अनुपानविधावुक्तंतत्परीक्ष्यंविशेषतः। प्राणाःप्राणभृतामन्नम-न्नंलोकोऽभिधावति ॥ ३४४ ॥ वर्णप्रसादःसौस्वर्यंजीवितंप्रति-भासुखम् ॥ तुष्टिःपुष्टिर्बलंमेधासर्वमन्नेप्रतिष्ठितम् ॥ ३४५ ॥ लौकिकंकर्मयद्वृत्तौस्वर्गतौयच्चवैदिकम् । कर्मापवर्गेयच्चोक्तं तच्चाप्यन्नेप्रतिष्ठितम् ॥ ३४६ ॥

इत्यन्नपानचतुष्केऽन्नपानविधिरध्यायः ।

यहांपर अध्यायके उपसंहारमें श्लोक हैं:-कि इस अन्नपानविधि नामके अध्यायमें अन्नपानके गुण तथा उसकी सामग्रीके विषयमें बारहवर्ग, अन्नपान गुण और उनका गौरव तथा लाघव अन्नपान विधि नियमकी विशेषरूपसे परीक्षा, अन्नमें प्राणियोंके प्राण और अन्नमें ही लोककी प्रतिष्ठा, वर्ण, प्रसन्नता, सुंदरता, जीवन, कांति, सुख, पुष्टि, तुष्टि,बल, मेधा यह सब अन्नमें ही प्रतिष्ठित हैं । इसीमें लौकिक और पारलौकिक तथा दैवलौकिक और मोक्षसाधन यह संपूर्ण अन्नमें ही प्रतिष्ठित है । इस प्रकार इस अन्नपानविधि नामक अध्यायमें निरूपण किया गया है॥ ३४३ ॥ ३४४ ॥ ३४५ ॥ ३४६ ॥

इति श्रीमहर्षिचरक० पं०रामप्रसादवैद्य०भाषाटीकायामन्नपानविधिर्नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

अष्टाविंशोऽध्यायः ।

अथातोविविधाशितपीतीयमध्यायंव्याख्यास्यामइति हस्माहभगवानात्रेयः ।

अब हम विविध अशितपीतीय नामक अध्यायकी व्याख्या करते हैं । ऐसा भगवान् आत्रेयजी कथन करनेलगे ।

हितकर आहारसे रस रक्तादिकी उत्पत्तिक्रम ।

विविधमशितपीतलीढखादितंजन्तोर्हितमन्नमग्निसन्धुक्षितबलेनयथास्वेनोष्मणासम्यग्विपच्यमानंकालवदनवास्थितसर्वधातुपाकमनुपहतसर्वधातूष्ममारुतस्रोतःकेवलंशरीरमुपचयबलवर्णसुखायुषायोजयतीतिशरीरधातूनूर्जयन्धातवोहिधात्वाहाराःप्रकृतिमनुवर्त्तन्ते ॥ १ ॥

अनेक प्रकारके हितकारक भोजन करनेके पदार्थ, पीनेके पदार्थ, चाटनेके पदार्थ, खानेके पदार्थ अन्तराग्निकी गर्मीसे यथोचित रीतिपर परिपाक होकर यथा समय रस,रक्त,मांसादि बनकर संपूर्ण धातुओंमें प्राप्त होजाते हैं।इसी लिये शरीरके संपूर्ण धातु वायुके निकलनेवाले छिद्रोंमें व्याघात करते न हु॰ शरीरके बल, वर्ण, सुख,पुष्टता तथा आयुकी वृद्धि करते हैं । आहारसे बल प्राप्तहुए धातु धातुरूप होते अपनी २ प्रकृतिमें आहारको प्राप्त कर स्वभावानुकूल रहतेहैं ॥ १ ॥

आहारद्वारा शरीरोपचयक्रम ।

तत्राहारप्रसादाख्योरसःकिट्टञ्चमलाख्यमभिनिर्वर्त्ततेकिट्टात्मूत्रस्वेदपुरीषवातपित्तश्लेष्माणःकर्णाक्षिनासिकास्यलोमकूपप्रजननमलकेशश्मश्रुलोमनखादयश्चावयवाः ॥ २ ॥

किये हुए आहारका परिपाक होनेपर उसके दो विभाग होजाते हैं । उनमें जो उत्तम सार होताहै–उसको रस कहतेहैं और जो फोकट बचता है उसको किट्ट अथवा मल कहते हैं उस किट्टसे मूत्र, स्वेद, विष्ठा, वायु, पित्त तथा कफ ये उत्पन्न होतेहैं एवम् कान, नेत्र, नाक, मुख, रोमकूप इन सबका मल तथा बाल, श्मश्रु, रोम और नख यह संपूर्ण उस किट्टके अंशोंसे बनतेहैं ॥ २ ॥

पुष्यन्तित्वाहाररसात्रसरुधिरमांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्रौजांसि

पञ्चेन्द्रियद्रव्याणिधातुप्रसादसंज्ञकानिशरीरसन्धिबन्धपिच्छा-
दयश्चावयवाःतेसर्वेएवधातवोमलाख्याःप्रसादाख्याश्चरसमला-
भ्यांपुष्यन्तःस्वमानमनुवर्त्तन्ते ॥ ३ ॥

उस आहारका जो उत्तम भाग रस है वह शरीरको पुष्ट करताहै तथा उस रससे रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र एवम् ओज बनते हैं एवम् इसी रससे पंचेन्द्रियोंमें पुष्टि, प्रसन्नता, धातुओंमें बल, शरीरके संधिबन्धनोंका प्रसाद और दृढता आदिक उत्पन्न होतेहैं । यह संपूर्ण धातुएं दो भागोंमें विभक्तैंहै—एक प्रसादसंज्ञक, दूसरी मलसंज्ञक यह दोनों साररूप रसोंसे और शरीर रक्षक मलोंसे पुष्ट होतीहुई अपने परिमाणोंकी रक्षा करती हैं ॥ ३ ॥

यथावयः शरीरमेवंरसमलौस्वप्रमाणावस्थितौआश्रयस्यसम-
धातोर्धातुसाम्यमनुवर्त्तयतोनिमित्ततस्तुक्षीणातिवृद्धानांप्रसा-
दाख्यानांधातूनांवृद्धिक्षयाभ्यामाहारमूलाभ्यांरसःसाम्यमुत्पा-
दयतेआरोग्याय ॥ ४ ॥

इस प्रकार अवस्था तथा शरीरके अनुसार अपने२ प्रमाणमें स्थित हुए रस और मल अपने आश्रित शरीरके धातुओंको साम्यावस्थामें रखते हुए रक्षा करतेहैं एवम् कारण विशेषसे प्रसाद संज्ञक जो धातुएं हैं उनकी आहार मूलक वृद्धि क्षीणताको रस साम्यावस्थामें लाता है और यह रस ही मनुष्योंकी आरोग्यताको रखताहै४॥

किट्टञ्चमलानामेवमेव ॥ स्वमानातिरिक्ताःपुनरुत्सर्गिणः
शीतोष्णपर्य्यायगुणैश्चोपचर्य्यमाणामलाःशरीरधातुसाम्यक-
राःसमुपलभ्यन्ते ॥ ५ ॥

जिस प्रकार रस सम्पूर्ण धातुओंको साम्यावस्थामें रखताहै उसी प्रकार किट्ट भी सम्पूर्णमलोंको साम्यावस्थामें रखताहै । अपने ठीक परिमाणपूर्वक निकलतेहुए मल (तथा वात, पित्त, कफ भी) शीत, उष्ण आदि गुणोंसे परिवर्तित होते हुए धातुओंको साम्यावस्थामें करनेवाले होते हैं अथवा यों कहिये कि अपने मानसे क्षीणता और वृद्धिको प्राप्त हुए मल शीत, उष्ण द्रव्योंद्वारा चिकित्सित होकर साम्यावस्थाको प्राप्त हो धातुओंको साम्यावस्थामें करनेवाले होते हैं ॥ ५ ॥

तेषान्तुमलप्रसादाख्यानांधातूनांस्रोतांस्ययनमुखानितानिय-
थाविभागेनयथास्वंधातूनापूरयन्त्येवमिदंशरीरमशितपीतली-

ढखादितप्रभवम् । अशितलीढखादितप्रभवाश्चास्मिञ्शरी-रेव्याधयोभवन्ति ॥ ६ ॥ हिताहितोपयोगविशेषास्त्वत्रशुभा-शुभविशेषकराभवन्ति, इति ॥ ७ ॥

इन मल और प्रसाद संज्ञक धातुओंके स्रोतस्थान तथा मार्ग अपने उपयोगी धातुओं द्वारा पूर्णताको और पुष्टताको प्राप्त होते हैं। इस प्रकार यह शरीर अशित (भोज्य), पीत, आलीढ और खाद्य पदार्थों द्वारा वृद्धि सम्पन्न होताहै इसी प्रकार शारीरिक व्याधियां भी खाने,पीने, चूसने और चाटनेके आहारों द्वाराही उत्पन्न होती हैं। इस प्रकार हित आहारसे शरीरकी उत्पत्ति तथा वृद्धि उत्पन्न होती है अर्थात् हित आहारका सेवन करना सुखकारक होता एवम् अहित आहारका करना दुःखकारक होता है ॥ ६ ॥ ७ ॥

अग्निवेशका प्रश्न।

एवंवादिनंभगवन्तमात्रेयमग्निवेशउवाचादृश्यन्ते हिभगवन्! हितसमाख्यातमप्याहारमुपयुञ्जानाव्याधिमन्तश्चागदाश्चत-थैवाहितसमाख्यातमेवंदृष्टेकथंहिताहितोपयोगविशेषात्मकशु-भाशुभविशेषमुपलभेमहीति ॥ ८ ॥

इस प्रकार कहते हुए भगवान् आत्रेयजीसे अग्निवेश कहनेलगे कि हे भगवन्! आपने कथन कियाहै कि हित आहारका सेवन करनेसे रोगी पुरुष भी निरोग हो जाते हैं और निरोग मनुष्योंके शरीर स्वस्थ और बलिष्ठ होते हैं उसी प्रकार अहित आहारके सेवनसे व्याधियां उत्पन्न होती हैं। सो हे गुरो ! संसारमें ऐसा भी दखनेमें आताहै कि अहित आहारके सेवन करनेवाले पुरुष नीरोग रहते हैं और हित आहार सेवन करनेवालोंको अनेक प्रकारके रोग उत्पन्न होजाते हैं इस लिये हित और अहित आहार विशेषात्मक शुभ और अशुभका किस प्रकार हमको ज्ञान होसकताहै सो कृपाकर कथन कीजिये ॥ ८ ॥

हिताहित आहार विषयमें आत्रेयका उत्तर।

तमुवाचभगवानात्रेयः। नहिताहारोपयोगिनामग्निवेश तन्नि-मित्ताव्याधयोजायन्ते । नचकेवलंहिताहारोपयोगादेवसर्व व्याधिभयमतिक्रान्तंभवति। सन्तिह्यृतेऽपिहिताहारोपयो-गादन्यरोगप्रकृतयः । तद्यथा—कालविपर्ययःप्रज्ञापराधः परिणामश्चशब्दस्पर्शरूपरसगन्धाश्चासात्म्याइतिताश्चरोगप्रकृ-

त्योरसान्सम्यगुपयुञ्जानंपुरुषमशुभेनोपपादयन्ति। तस्माद्धिताहारोपयोगिनोऽपिदृश्यन्तेव्याधिमन्तः। अहिताहारोपयोगिनांपुनःकारणतोनसद्योदोषवान्भवत्यपचारोनहिसर्वाण्यपथ्यानितुल्यदोषकराणि। नचसर्वेदोषास्तुल्यबलाः। नच सर्वाणिशरीराणिव्याधिक्षमत्वेसमर्थानि। तदेवह्यपथ्यंदेशकालसंयोगवीर्य्यप्रमाणातियोगाद्भूयस्तरमपथ्यंसम्पद्यते। सएवदोषःसंसृष्टयोनिर्विरुद्धोपक्रमोगम्भीरानुगतःप्राणायतनसमुत्थोमर्मोपघातीवाभूयान्कष्टतमःक्षिप्रकारितमश्चसम्पद्यते ॥९॥

यह सुनकर आत्रेय भगवान् कहनेलगे कि हे अग्निवेश ! आहारसे उत्पन्न होनेवाले जो रोग हैं,हित आहारके सेवन करनेवाले मनुष्यके शरीरमें कभी उत्पन्न नहीं होते परन्तु संपूर्ण व्याधियां हित आहार करनेसेही नहीं होतीं यह बात नहीं है। क्योंकि हित आहारकी उपयोगी आरोग्यताके सिवाय और भी ऐसे कारण हैं जो रोगोंको उत्पन्न करते हैं। जैसे- कालविपर्यय (कालकी विपरीतता) और प्रज्ञापराध और परिणाम एवम् असात्म्य-शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, ये सब हित आहार सेवन करनेवाले मनुष्योंको भी अशुभके करनेवाले होते हैं अर्थात् रोग उत्पन्न करनेके हेतु होतेहैं ।इसलिये ही हित और पथ्य भोजन करनेवाले मनुष्यभी व्याधियुक्त दिखाई देतेहैं। और अहित आहारके सेवन करनेवाले मनुष्योंको भी तत्काल रोग ग्रसित नहीं देखा जाता क्योंकि संपूर्ण कुपथ्यही सब दोषोंके तुल्य नहीं होते एवम् सब दोष भी समान बलवाले नहीं होते और व्याधि सहन शक्तिके स्वभावसे सब शरीर भी एकसे नहीं होते। इस प्रकार अपथ्य भोजन-देश, काल, संयोग, वीर्य, प्रमाण इनके अतियोगसे और भी अधिक कुपथ्य होजाताहै और दोषोंको कुपित करदेता है। एक दोष भी अनेक रोगोंको उत्पन्न करनेवाला चिकित्सा विरोधी, गंभीरानुगत, प्राणस्थान तथा मर्मस्थानका उपघाती होता हुआ अत्यंत कष्टको उत्पन्न करनेवाला और शीघ्रकारी होजाताहै ॥ ९ ॥

असहन शक्तिवाले शरीरोंका वर्णन।

शरीराणिचातिस्थूलानिअतिकृशानिअनिविष्टमांसशोणितास्थीनिदुर्बलानिअसात्म्याहारोपचितान्यल्पाहाराणिअल्पसत्त्वानिवाभवन्तिअव्याधिसहानि॥१०॥विपरीतानिपुनर्व्याधि-

सहानिएभ्यश्चैवापथ्याहारदोषशरीरविशेषेभ्योऽव्याधयोमृदवो दारुणाःक्षिप्रसमुत्थाश्चिरकारिणश्चभवन्ति ॥ ११ ॥

स्वभावसेही अतिस्थूल और अतिकृश शरीरवाले जिनके शरीरमें रक्त तथा मांस आदि क्षीण होगया हो, दुर्बल मनुष्य असात्म्य आहारके कारण अल्पभोजन करनेवाले तथा कमजोर मनुष्य व्याधियोंके सहन करनेमें असमर्थ होतेहैं। इनसे विपरीत व्याधिसहनकर्त्ता होतेहैं इन अपथ्य, आहार, दोष,शरीर विशेषके प्रभावसे व्याधियें भी मृदु, दारुण, शीघ्रकारी और चिरकारी भी होती हैं ॥ १० ॥ ११ ॥

अतएवचवातपित्तश्लेष्माणःस्थानविशेषेणप्रकुपिताव्याधिविशेषानभिनिर्वर्त्तयन्तिअग्निवेश।तत्ररसादिषुस्थानेषुप्रकुपितानां दोषाणांयस्मिन्स्थानेयेयेव्याधयःसम्भवन्तितांस्तान्यथावदनुव्याख्यास्यामः ॥ १२ ॥

इसलिये हे अग्निवेश! वात, पित्त, कफ—स्थानविशेषमें कुपित होकर रोगविशेषको करतेहैं सो उन रसादि स्थानोंमें कुपित हुए दोष जिस जिस स्थानमें जिस जिस प्रकार जिन जिन रोगोंको उत्पन्न करते हैं उन उन सबको यथाक्रम वर्णन करतेहैं ॥ १२ ॥

रसदोषसे उत्पन्न रोग।

अश्रद्धाचारुचिश्चास्यवैरस्यमरसज्ञता। हृल्लासोगौरवंतन्द्रा साङ्गमर्दोज्वरस्तमः ॥ १३ ॥ पाण्डुत्वंस्रोतसांरोधःक्लैब्यंसादः कृशाङ्गता। नाशोऽग्नेरयथाकालंवलयःपलितानिच। रसप्रदोषजारोगावक्ष्यन्तेरक्तदोषजाः ॥ १४ ॥

दोषों करके रसके दूषित होनेसे भोजनमें अश्रद्धा, अरुचि, मुखकी विरसता, रसका अज्ञान, हृल्लास, गुरुता, तन्द्रा, अंगमर्द, ज्वर, आंखोंके आगे अन्धकार, पांडुपन, स्रोतोंका अवरोध, क्लीवता, अंगोंका अवसाद, कृशता, मंदाग्नि, बिनाही समयके बालोंका सफेद होजाना, शरीरमें,सरवट पडना,यह रोग होते हैं। अब आगे रक्त दूषित होनेसे जो रोग उत्पन्न होतेहैं उनको कहतेहैं ॥ १३ ॥ १४ ॥

रक्तदोषजरोग।

कुष्ठवीसर्पपिडकारक्तपित्तमसृग्दरः। गुदमेढ्रास्यपाकश्चप्लीहा-गुल्मोऽथविद्रधी ॥ १५ ॥ नीलिकाकामलाव्यङ्गंपिप्लवास्तिल-

कालकाः । दद्रुश्चर्म्मदलंश्वित्रःपामाकोठास्रमण्डलम् । रक्त-
प्रदोषाज्जायन्तेश्रृणुमांसप्रदोषजान् ॥ १६ ॥

कुष्ठ, विसर्प, पिडका, रक्तपित्त, प्रदर, गुदा, लिंग तथा मुखका पकना, प्लीहा, गुल्म, विद्रधी, नीलिका, कामला, व्यंग, पिप्लव, तिल, कालक, दाद, चर्मदल, श्वेतकुष्ठ, पामा, कोष्ठरोग, रक्तमंडल तथा अन्यरक्तके विकार उत्पन्न होतेहैं । यह रक्त दूषित होनेके दोष कहे गये । अब आगे मांस दूषित होनेसे जो रोग होतेहैं उनको वर्णन करतेहैं ॥ १५ ॥ १६ ॥

मांसदोषजरोग ।

अधिमांसार्बुदंकीलगलशालूकशुण्डिकाः । पूतिमांसालजी-
गण्डगण्डमालोपजिह्विकाः ॥ १७॥ विद्यान्मांसाश्रयान्मेदः-
संश्रयांस्तुप्रवक्ष्यथ॥निदानानिप्रमेहाणांपूर्वरूपाणियानिच १८॥

मांसदूषित होनेसे अधिमांस अर्बुद, कीलक, गलशालूक, गलशुंडी, पूतिमांस, अलजी, गलगंड, गण्डमाला और उपजिह्विका यह मांसाश्रित रोग होतेहैं । अब मेद दूषित होनेसे जो रोग होतेहैं उनका कथन करतेहैं कि अष्टौनिंदनीय अध्यायमें तथा प्रमेहरोगके पूर्वरूपमें दूषित मेदरोगोंका वर्णन कियागयाहै ॥ १७ ॥ १८ ॥

अस्थिदोषज रोग ।

अध्यस्थिदन्तदन्तास्थिभेदःशूलंविवर्णता ।
केशलोमनखश्मश्रुदोषाश्चास्थिप्रकोपजाः ॥ १९ ॥

अस्थि दूषित होनेसे अध्यस्थि, अधिदन्त, दन्तभेद, अस्थिभेद, दन्तशूल, अस्थि-शूल और विवर्णता होतेहैं तथा केश, लोम, नख और श्मश्रु इनमें भी अस्थि दूषित होनेसे विकार उत्पन्न होते हैं ॥ १९ ॥

मज्जादोषज रोग ।

रुक्पर्वणांभ्रमोमूर्च्छादर्शनंतमसोमताः ।
अरुषांस्थूलमूलानांपर्वजानाञ्चदर्शनम् ॥ २० ॥

मज्जा दूषित होनेसे पर्वभेद, भ्रम, मूर्च्छा, अंधकार बडी २ मोटी तथा जडयुक्त अरुंषिका नामक फुंसियें पर्वस्थानमें (संधिस्थानमें) उत्पन्न होतीहैं ॥ २० ॥

शुक्रदोषज रोग ।

मज्जाप्रदोषाच्छुक्रस्यदोषात्क्लैब्यमहर्षणम् । रोगिणंक्ली-
बमल्पायुंविरूपंवाप्रजायते ॥ २१ ॥ नवासञ्जायतेगर्भःपतति

प्रस्रवत्यपि । शुक्रं हि दुष्टं सापत्यं सदारं बाधते नरम् ॥ २२ ॥

शुक्र (वीर्य) दूषित होनेसे नपुंसकता, हर्षका न होना एवम् बहुत दिनतक रोगी रहनेके कारण आयुका कम होना, संतानका न होना या कुत्सित संतान होना अथवा गर्भका पतन या स्राव होजाना ऐसे२उपद्रव होतेहैं। दूषित हुआ शुक्र अपने शरीरके सिवाय स्त्री और संतानको भी दुःखदायी होताहै अर्थात् स्त्री पुत्रों सहित पुरुषको दुःखित रखताहै ॥ २१ ॥ २२ ॥

कुपितदोषोंके कर्म ।

इन्द्रियाणि समाश्रित्य प्रकुप्यन्ति यदा मलाः ।
उपतापोपघाताभ्यां योजयन्तीन्द्रियाणि ते ॥ २३ ॥

यदि कुपितहुए दोष इन्द्रियोंमें आश्रित होजांय तो इन्द्रियोंका उपताप तथा उपघात होताहै ॥ २३ ॥

स्नायौ शिराकण्डरयोर्दुष्टाः क्लिश्यन्ति मानवम् ।
स्तम्भसंकोचखल्लीभिर्ग्रन्थिस्फुरणसुप्तिभिः ॥ २४ ॥

यदि वातादिदोष—स्नायु, शिरा एवम् कण्डरा आदि नाडियोंमें प्रकुपित होकर व्यापक होजांय तो मनुष्यके शरीरमें स्तम्भ, संकोच, खल्ली, गाठोंका फडकना तथा अंगोंका सोजाना यह उपद्रव होतेहैं ॥ २४ ॥

मलानाश्रित्य कुपिता भेददोषप्रदूषणम् ।
दोषा मलानां कुर्वन्ति सङ्गोत्सर्गावतीव च ॥ २५ ॥

कुपित हुए वातादि दोष मलस्थानमें व्यापक होनेसे मलोंका बिलकुल रुकजाना या अत्यन्त निकलना आदि उपद्रव होते हैं ॥ २५ ॥

विविधादशितात्पीतादहिताल्लीढखादितात् ।
भवन्त्येते मनुष्याणां विकारा य उदाहृताः ॥ २६ ॥

इस प्रकार अहित,भुक्त, पीत, आलीढ, चर्वित अनेक प्रकारके आहारोंके करनेसे मनुष्योंके शरीरोंमें यह विकार उत्पन्न होतेहैं ॥ २६ ॥

तेषामिच्छन्ननुत्पत्तिं सेवेत मतिमान्सदा ।
हितान्येवाशितादीनि न स्युस्तज्जास्तथामयाः ॥ २७ ॥

जो मनुष्य अपने शरीरमें दोषोंके प्रकोपको होने देना नहीं चाहते उन बुद्धिमानोंको हित आहारोंको ही सेवन करना चाहिये क्योंकि हित आहार सेवन करनेसे आहारजनित रोग उत्पन्न ही नहीं होनेपाते ॥ २७ ॥

रसरक्त मांस मेदादिगत दोषोंकी चिकित्सा ।

रसजानांविकाराणांसर्वंलंघनमौषधम् ।
विधिशोणितकेऽध्याये रक्तजानांभिषग्जितम् ॥ २८ ॥

रसजन्य विकारोंमें लंघन करना ही सर्वोत्तम औषधि है । रक्तजनित विकारोंमें विविध शोणतीयाध्यायमें कही हुई चिकित्सा द्वारा रक्त विकारोंको जीतना चाहिये ॥ २८ ॥

मांसजानान्तुसंशुद्धिःशस्त्रक्षाराग्निकर्म्मच ।
अष्टौनिन्दितसंख्यातेमेदोजानांचिकित्सितम् ॥ २९ ॥

मांस जनित विकारोंमें शुद्ध शोधन (वमन), विरेचन) क्रिया तथा शस्त्रक्रिया अथवा क्षार या अग्निक्रिया हितकारक होतीहै । मेदजनित विकारोंकी चिकित्सा अष्टौनिन्दनीय अध्यायमें कथन कर आयेहैं ॥ २९ ॥

अस्थ्याश्रयाणांव्याधीनांपञ्चकर्माणिभेषजम् ।
बस्तयःक्षीरसर्पींषितिक्तकोपहितानिच ॥ ३० ॥

अस्थिजनित विकारोंमें–वमन,विरेचनादि पंचकर्म, तिक्तकगण तथा दूध,घृतकी बस्तिद्वारा चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ३० ॥

मज्जाशुक्रसमुत्थानामौषधंस्वादुतिक्तकम् ।
अन्नंव्यवायव्यायामौ शुद्धिःकालेचमात्रया ॥ ३१ ॥

मज्जा और शुक्रजनित विकारोंमें मधुर और तिक्त औषधियों द्वारा चिकित्सा करनी चाहिये तथा हित अन्न, उचित मैथुन, व्यायाम एवम् यथा समय उचित मात्रासे संशोधन करना चाहिये ॥ ३१ ॥

सम्पूर्ण रोगोंमें सामान्य चिकित्सा क्रम ।

शान्तिरिन्द्रियजानान्तुत्रिमर्मीयेप्रवक्ष्यते ॥ ३२ ॥

इन्द्रियजनित विकारोंमें आगे त्रिमर्मीय चिकित्सित नामक अध्यायमें चिकित्सा स्थानमें कहेंगे ॥ ३२ ॥

स्नाय्वादिजानांप्रशमोवक्ष्यतेवातरोगिके। नवेगान्धारणेऽध्यायेचिकित्सासंग्रहःकृतः ॥ ३३ ॥ मलजानांविकाराणांसिद्धिश्चोक्ताक्वचित्क्वचित् ॥ ३४ ॥

स्नायु, शिरा, कण्डरा इनके दोषजनित विकारोंमें(वातव्याधि चिकित्सा अध्यायमें कथन करेंगे) वह यत्न करना चाहिये । मलजनित विकारोंकी चिकित्सा न

वेगान् धारणीयाध्यायमें कथन कर चुकेहैं तथा अन्य २ स्थानोंमें भी कहीं कहीं कथन कियाजायगा ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

व्यायामादूष्मणस्तैक्ष्ण्याद्धितस्यानवधारणात् ।कोष्ठाच्छाखा-
मलायान्तिद्रुतत्वान्मारुतस्यच ॥३५॥ तत्रस्थाश्चविलम्बन्ते
कदाचिन्नासमीरिताः । नादेशकालेकुप्यन्ति भूयोहेतुप्रती-
क्षिणः ॥ ३६ ॥

हितकारक आचरण न करनेसें, व्यायाम न करनेसे अथवा अहित व्यायाम करनेसे गर्मीकी तीक्ष्णतासे, वायुकी द्रुतगति होनेसे दोष कोष्ठसे शाखा और मर्म स्थानमें गमन करते हैं फिर उन स्थानोंमें पहुंचकर प्रबलता पाने पर्यन्त विलम्बित रहते हैं फिर विना समय तथा विना देश इनमें अपने हेतुकी परीक्षा करते हुए कुपित नहीं होतें और कारण जनित सहायता प्राप्त कर कुपित हो अनेक प्रकारके रोग उत्पन्न करते हैं ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

वृद्ध्याभिष्यन्दनात्पाकात्स्रोतोमुखविशोधनात् ।
शाखामुक्त्वामलाःकोष्ठंयान्तिवायोश्चनिग्रहात् ॥ ३७ ॥

वृद्धिको प्राप्त हुए वह दोष–अभिष्यंदी होजानेसे, अथवा स्रोतोंका मुख शुद्ध होनेसे या पाचन औषधियों द्वारा दोषोंके परिपाक होनेसे दोष वायुके निग्रह होनेसे शाखाओंको छोडकर कोष्ठमें आकर प्राप्त होजातेहैं ॥ ३७ ॥

अजातानामनुत्पत्तौजातानांविनिवृत्तये ।
रोगाणांयोविधिर्दृष्टःसुखार्थीतंसमाचरेत् ॥ ३८ ॥

जो रोग उत्पन्न नहीं हुएहैं उनको उत्पन्न न होने देना और उत्पन्न हुए दोषोंको नष्ट करदेना इन दोनोंके लिये शास्त्रमें जो प्रकार लिखाहै उसका सेवन करना सुखकी इच्छावाले मनुष्यको अत्यावश्यक है ॥ ३८ ॥

हितकारी उपदेश ।

सुखार्थाःसर्वभूतानांमताःसर्वाःप्रवृत्तयः ॥
ज्ञानाज्ञानविशेषात्तुमार्गामार्गप्रवृत्तयः ॥ ३९ ॥

संपूर्ण प्राणीमात्र अपने सुखकी इच्छा करते हुए ही सब कार्योंमें प्रवृत्त होवेहैं परन्तु वह प्रवृत्ति सुमार्ग और कुमार्गके भेदसे दो प्रकारकी होजातीहै। इस द्विविध प्रवृत्तिका कारण ज्ञान और अज्ञान ही है क्योंकि अज्ञानवश मनुष्य अपने सुखकी इच्छा करता हुआ कुमार्गमें प्रवृत्त होजाताहै और ज्ञानवश सुमार्गमें प्रवृत्त होताहै ॥ ३९ ॥

हितमेवानुरुध्यन्तेप्रसमीक्ष्यपरीक्षकाः ।
रजोमोहावृतात्मानःप्रियमेवतुलौकिकाः ॥ ४० ॥

बुद्धिमान् मनुष्य विचारपूर्वक हितकारी वस्तुओंकाही अवलम्बन करताहै एवम् रज और मोहसे ढकी हुई आत्मावाले प्यारी वस्तुओंका अवलम्बन करतेहैं।प्रायः संसारमें हित और प्रिय भेदसे दो प्रकारके पदार्थ होतेहैं । जो पदार्थ न अच्छा लगनेपर भी हितकारी होताहै उसको हित कहतेहैं जैसे ज्वरमें निम्बादिचूर्ण । इसी प्रकार जो पदार्थ अहितकारी होनेपर भी प्रिय मालुम होताहै उसको प्रिय कहते हैं जैसे कफ प्रधान ज्वरमें दही वडे ॥ ४० ॥

श्रुतंबुद्धिःस्मृतिर्दार्ढ्यंधृतिर्हितनिषेवणम् । वाक्प्रशुद्धिःशमो धैर्य्यमाश्रयन्तिपरीक्षकम् ॥ ४१ ॥ लौकिकंनाश्रयन्त्येतेगुणामोहतमाश्रितम् । तन्मूलाबहुलाश्चैवरोगाःशारीरमानसाः ॥ ४२ ॥

बुद्धिमान् परीक्षक शास्त्र, बुद्धि, स्मृति, दृढता, धृति, हितसेवन, वाणीकी शुद्धि, शान्ति और धैर्य इनका आश्रय लेकर कार्यमें प्रवृत्त होताहै ॥ ४१ ॥ और लौकिक मनुष्य इन गुणोंका आश्रय न लेकर मोह और तम आदिके वश हो कार्योंमें प्रवृत्त होताहै । सो मोह और तममूलकही संपूर्ण शारीरिक और मानासिक रोग होतेहैं ॥ ४२ ॥

प्रज्ञापराधाद्ध्यहितानर्थान्पञ्चनिषेवते । सन्धारयतिवेगांश्च सेवतेसाहसानिच ॥ ४३ ॥ तदात्वसुखसंज्ञेषुभावेष्वज्ञोऽनुरज्यते । रज्यतेनतुविज्ञाताविज्ञानेह्यमलीकृते ॥ ४४ ॥ नरोगान्नाप्यविज्ञानादाहारमुपयोजयेत् । परीक्ष्यहितमश्नीयाद्देहोह्याहारसम्भवः ॥ ४५ ॥

मनुष्य बुद्धिके अपराधसे ही पांच प्रकारके अहित विषयोंका सेवन करताहै । अज्ञानता वशही मल आदिके वेगोंको धारण करताहै तथा अनुचित साहसको करताहै इसी लिये वह अज्ञानी मनुष्य परिणामको न समझता हुआ असुखकारक अर्थात् दुःखदायी भावोंमें आसक्त होजाताहै । परन्तु ज्ञानी मनुष्य निर्मल ज्ञानके प्रभावसे असुखकारी विषयोंमें प्रवृत्त नहीं होता और रागसे तथा अज्ञानसे अहित आहारका सेवन नहीं करता इसलिये हित और अहितका विचार कर हित आहार-

कोही सेवन करना चाहिये क्योंकि यह शरीर आहारसे ही उत्पन्न होताहै ॥ ४३॥ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

आहारस्यविधावष्टौविशेषाहेतुसंज्ञकाः। शुभाशुभसमुत्पत्तौता-न्परीक्ष्योपयोजयेत् ॥४६ ॥ परिहार्य्याण्यपथ्यानिसदापरिहर-न्नरः । भवत्यनृणतांप्राप्तःसाधूनामिहपण्डितः ॥ ४७ ॥

आहारके सम्बन्धमें हेतुसंज्ञक आठप्रकारका विधान किया गयाहै (विमानस्थान देखो)। मनुष्यको उचित है कि शुभ और अशुभकी उत्पत्तिके विषयमें पूर्णरूपसे परीक्षा करता हुआ आहारका उपयोग करे जो पदार्थ त्याग देने योग्य हों उनको त्यागताहुआ पथ्य वस्तुओंका सेवन करे। ऐसा करनेसे बुद्धिमान् मनुष्य त्रिविध ऋणसे विमुक्त होकर सुखको प्राप्त होताहै ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

यत्तुरोगसमुत्थानमशक्यमिहकेनचित् ।
परिहर्त्तुंनतत्प्राप्यशोचितव्यंमनीषिणा ॥ ४८ ॥

और जो मनुष्य रोगके कारणरूपी अहित सेवनको त्यागनेमें असमर्थ है वह मूर्ख बुद्धिमानों करके सोचने योग्य है अथवा यदि कोई रोगका ऐसा कारण हो जो किसीप्रकार भी दूर न किया जासक्ता हो तो बुद्धिमान्को चाहिये कि उसके लिये चिंतित होकर अपने शरीरको और भी कष्ट न बढावे ॥ ४८ ॥

तत्र श्लोकाः ।

आहारप्रभवोयस्तुरोगाश्चाहारसम्भवाः । हिताहितविशेषाश्च विशेषःसुखदुःखयोः ॥ ४९ ॥ सहत्वेचासहत्वेचदुःखानांदेह-सत्त्वयोः । विशेषारोगसंघाश्चधातुजायेपृथक्पृथक् ॥ ५० ॥ तेषाञ्चैवप्रशमनंकोष्ठाच्छाखाउपेत्यच । दोषायथाप्रकुप्यन्ति शाखाभ्यःकोष्ठमेत्यच ॥ ५१ ॥ प्राज्ञाज्ञयोर्विशेषश्चस्वस्थातुर-हितञ्चयत् । विविधाशितपीतीयेतत्सर्वंसम्प्रकाशितम् ॥ ५२॥

इति अग्निवेशकृतेतन्त्रेचरकप्रतिसंस्कृतेसूत्रस्थानेअन्नपानच-तुष्केविविधाशितपीतीयोनामअष्टाविंशोऽध्यायःसमाप्तः ।

यहांपर अध्यायकी पूर्त्तिमें श्लोक हैं । आहारसे उत्पन्न होनेवाला रोग और आहारसे उत्पन्न होनेवाला शरीर, शरीरका हित और अहित तथा हित और अहित विशेषसे सुख दुःख विशेष और दुःखके सहन योग्य तथा असहन योग्य शरीर,

धातुओंमें होनेवाले विविध प्रकारके रोग समूह, उनके शान्तिके उपाय, दोषोंका कोष्ठाश्रित और शाखाश्रित होना, बुद्धिमान् तथा अज्ञानीका कृत्य, स्वस्थ और आतुरके लिये हितकारक उपदेश, यह सब इस विविध अशितपीतीय अध्यायमें वर्णन किया गयाहै ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

इति श्रीमहर्षिचरक० पं० रामप्रसादवैद्य० भाषाटीकायां विविधाशितपीतीयो नामाष्टविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

एकोनत्रिंशोऽध्यायः ।

अथातोदशप्राणायतनीयमध्यायंव्याख्यास्यामइतिहस्माहभगवानात्रेयः ।

अब हम दशप्राणायतनीय अध्यायकी व्याख्या करतेहैं ऐसे भगवान् आत्रेयजी कथन करनेलगे ।

प्राणस्थान तथा प्राणाभिसर वैद्य ।

दशैवायतनान्याहुःप्राणायेषुप्रतिष्ठिताः । शंखोमर्म्मत्रयंकण्ठोरक्तशुक्रौजसीगुदम् ॥ १ ॥ तानींद्रियाणिविज्ञानंचेतनाहेतुमामयम् । जानीतेयःसविद्वान् वैप्राणाभिसरउच्यतेइति॥२॥

जिनमें प्राण आश्रयभूत रहतेहैं वह दश स्थान हैं अथवा यों कहिये कि शरीरमें प्राणोंके रहनेके दश स्थान हैं । जैसे दोनों कनपटी, मस्तक, हृदय, वस्ती,कोष्ठरक्त, शुक्र, ओज और गुदा, जिस वैद्यको यह दश प्राणायतन और इंद्रियें इनका विज्ञान, चेतना, हेतु तथा समस्त रोग इन सबका यथोचित ज्ञान है वह ही प्राणाभिसर अर्थात् प्राणोंका रक्षक वैद्य कहाजाताहै ॥ १ ॥ २ ॥

वैद्योंके भेद ।

द्विविधास्तुखलुभिषजोभवन्तिअग्निवेश । प्राणानामेकेऽभिसाराहन्तारोरोगाणां, रोगाणामेकेऽभिसराहन्तारःप्राणानामिति ॥ ३ ॥

संसारमें दो प्रकारके वैद्य होते हैं । हे अग्निवेश ! एक वैद्य तो रोगोंको नष्ट करनेवाले और प्राणोंकी रक्षा करनेवाले होतेहैं,दूसरे रोगोंको बढानेवाले और प्राणोंको हनन करनेवाले होते हैं ॥ ३ ॥

अग्निवेशका प्रश्न ।

एवंवादिनंभगवन्तमात्रेयमग्निवेशउवाचभगवन् ! तेकथमस्माभिर्वेदितव्याभवेयुरिति ॥ ४ ॥

इस प्रकार कहतेहुए भगवान् आत्रेयजीसे अग्निवेश कहनेलगे कि हे भगवन् ! हम इन दोनोंको किस प्रकार जानसकते हैं अर्थात् इन दोनोंके जाननेका क्या उपाय है ॥ ४ ॥

सद्वैद्यके लक्षण ।

भगवानुवाचयइमेकुलीनाः पर्य्यवदातश्रुताः परिदृष्टकर्माणो दक्षाः शुचयोजितहस्ताजितात्मानःसर्वोपकरणवन्तःसर्वेन्द्रियोपपन्नाःप्रकृतिज्ञाःप्रतिपत्तिज्ञास्ते प्राणिनामभिसराहन्तारो रोगाणांतथाविधाहिकेवलेशरीरज्ञानेशरीराभिनिर्वृत्तिज्ञानेप्रकृतिविकारज्ञानेच निःसंशयाः सुखसाध्यकृच्छ्रसाध्ययाप्यप्रत्याख्येयानाञ्चरोगाणांसमुत्थानपूर्वरूपलिङ्गवेदनोपशयविशेषविज्ञानेव्यपगतसन्देहाःत्रिविधस्यायुर्वेदसूत्रस्यससंग्रहव्याकरणस्यसत्रिविधौषधग्रामस्यप्रवक्तारः ॥ ५ ॥

यह सुनकर भगवान् आत्रेयजी कहनेलगे कि जो वैद्य कुलीन, अनुभवसम्पन्न, शास्त्रज्ञ, दृष्टकर्मा, चतुर, पवित्र, सिद्धहस्त, जितात्मा औषधादि सब उपकरण संयुक्त, सर्वेन्द्रियसम्पन्न तथा प्रकृतिका जाननेवाला होताहै उसको प्राणाभिसर अर्थात प्राणरक्षक वैद्य कहते हैं तथा शारीरिक सम्बन्धमें पूर्णज्ञानी शरीरनाशक रोग तथा द्रव्योंका जाननेवाला, शरीरके उत्पत्तिकारक पदार्थोंको जाननेवाला, प्रकृतिके ज्ञानके विषयमें निःसंशय हो तथा सुखसाध्य, कष्टसाध्य, याप्यसाध्य, और असाध्य रोगोंके कारण, पूर्वरूप, रूप, वेदना और उपशय इनके ज्ञानविशेषमें संदेहरहित एवम् हेतु लक्षण औषधि इस त्रिविध आयुर्वेदसूत्रके संग्रह और व्युत्पत्ति एवम् त्रिविध औषधके जाननेमें यथार्थज्ञानी हो उसको प्राणाभिसर रोगहन्ता वैद्य कहते हैं ॥ ५ ॥

पञ्चत्रिंशतश्चमूलफलानांचतुर्णांमहास्नेहानांपञ्चानांलवणानामष्टानाञ्चमूत्राणामष्टानाञ्चमूत्राणामष्टानाञ्चक्षीराणांक्षीरत्वक्वृक्षाणाञ्चषण्णांशिरोविरोचनादेश्चपञ्चकर्माश्रयस्यौष-

धगणस्याष्टाविंशतेश्चयवागूनांद्वात्रिंशतश्चचूर्णप्रदेहानांषण्णां विरेचनशतानां पञ्चानाञ्चकषायशतानामितिस्वस्थवृत्तौच भोजनपाननियमस्थानचङ्क्रमणशय्यासन–मात्रा–द्रव्याञ्ज-नधूमनावनाभ्यञ्जन–परिमार्जनवेगविधारणाविधारण--व्या-यामसात्म्येन्द्रियपरीक्षोपक्रमसद्वृत्तकुशलाः ॥ ६ ॥

तथा पैंतीसप्रकारके मूल और फल,चार महास्नेह, पञ्चलवण, अष्टमूत्र, आठप्रकारके दूध, क्षीरप्रधान तथा त्वचाप्रधान वृक्षोंके षट्क (छःप्रकार) शिरोविरेचनादि पंचकर्माश्रित औषधिगण, अट्ठाइसप्रकारकी यवागू, बत्तीसप्रकारके चूर्ण और प्रलेप, छःसौ विरेचन, पांचसौ कषाय, स्वास्थ्यरक्षाके लिये भोजन पानके नियम, स्थान, भ्रमण, शय्या, आसन, मात्रा, द्रव्य, अंजन, धूम्रपान, नस्य, अभ्यंजन, परिमार्जन, वेगोंका धारण,और वेगोंका अविधारण, व्यायाम, इन्द्रिय, सात्म्य और पदार्थोंकी परीक्षा,एवम् रोगोंका निवृत्तिकारक यत्न आदि श्रेष्ठवृत्तमें कुशल हो उसको ही प्राणाभिसरवैद्य कहतेहैं ॥ ६ ॥ (प्रथमाध्यायसे नवमतकका कथन इसमें कियागया)

चतुष्पादोपगृहीतेचभेषजेषोडशकलेसविनिश्चयेसत्रिपर्य्येषणे सवातकलाकलज्ञानेव्यपगतसन्देहाः।चतुर्विधस्यचस्नेहस्यच-तुर्विंशत्यपनयनस्यउपकल्पनीयोक्तचतुःषष्टिपर्य्यन्तस्यव्यव-स्थापयितारोबहुविधविधान–युक्तानाञ्चस्नेहस्वेद्यवम्यविरेच्यौ-षधोपचाराणांकुशलाः।शिरोरोगादेश्चदोषांशविकल्पजस्यव्या-धिसंग्रहस्यसंक्षयपिडकविद्रधेःत्रयाणाञ्चशोफानांबहुविधशो-फानुबन्धानामष्टाचत्वारिंशतश्चरोगाधिकारिणांचत्वारिंशद-धिकस्यचनानात्मजस्यव्याधिशतस्य । तथाविगर्हितातिस्थूलातिकृशानांसहेतुलक्षणोपक्रमाणांस्वप्नस्यचहिताहित-स्यास्वप्नातिस्वप्नस्यच सहेतूपक्रमस्यषण्णाञ्चलंघनादीना-मुपक्रमाणांसन्तर्पणापतर्पणजानांरोगाणांस्वरूपप्रशमनानां शोणितजानाञ्चव्याधीनांमदमूर्च्छायसंन्यासानाञ्चसकारणरू-पौषधानांकुशलाः। कुशलाश्चाहारविधिनिश्चयस्यप्रकृत्याहित-

तमानामाहारविकाराणामग्र्यसंग्रहस्यासवानाञ्चचतुरशीतेः द्रव्यगुणविनिश्चयस्यरसानुरससंश्रयस्यसविकल्पकवैरोधिकस्य द्वादशवर्गाश्रयस्यचान्नपानस्यसगुणप्रभावस्यसानुपानगुणस्य विविधस्यान्नसंग्रहस्यआहारगतेश्चहिताहितोपयोगाविशेषात्मकस्यचशुभाशुभविशेषस्यधात्वाश्रयाणाञ्चरोगाणामौषधसंग्रहाणाञ्चदशानाञ्चप्राणायतनानांयञ्चवक्ष्याम्यर्थेदशमहामूलीयेत्रिंशत्तमाध्यायेतत्रचकृत्स्नस्यतन्त्रोद्देशलक्षणस्यतन्त्रस्यच ग्रहणधारणविज्ञानप्रयोगकर्मकार्य्यकालकर्तृकरणकुशलाः ॥७॥

षोड़शकलायुक्त चतुष्पाद औषधका ज्ञान, त्रिविध एषणा, वातकलाकल ज्ञानमें निःसंदेह, चतुर्विध स्नेह, चौवीस प्रकार स्नेहकी विचारणा, उपकल्पनीय अध्यायमें कहीहुई चौंसठ प्रकारकी व्यवस्थापयिता हो एवम् अनेक प्रकारके विधानसे स्नेहन, स्वेदन, वमन, विरेचनके योग्य प्रयोग, औषध, उपचार इनमें कुशल हो उसको ही प्राणाभिसर वैद्य कहना चाहिये । शिरोरोगादिक रोगोंके दोषोंका अंशांश कल्पनाजन्य विकल्प व्याधिसंग्रह, दोष और धातुओंका क्षय, पिडका, विद्रधी, त्रिविध शोथ, शोथके अनेक प्रकारके अनुबंध, अडतालीस रोगाधिकरण, चालीस पित्तरोग, वीस कफरोग, अस्सी वातरोग, अतिस्थूल और अतिकृश शरीरोंकी निंदा और उनके कारण तथा लक्षण एवम् चिकित्सा। निद्रा, अनिद्रा, अतिनिद्राका हित और अहित, कारण, यत्नालंघन आदि छःप्रकारकी चिकित्सा, संतर्पण और अपतर्पणजन्य रोगोंके स्वरूप और उपाय, रक्त रोग, मद, मूर्च्छा, संन्यास इनके हेतु रूप और चिकित्सा इन सबमें कुशल हो । एवम् आहारविधिके विनिश्चयमें कुशल स्वभावसे ही हितकारक आहार तथा आहारजन्य विकार और आहारजनित विकारोंके सिवाय अन्य विकारोंके कारण चौरासी प्रकारके आसव द्रव्योंके गुणोंका विनिश्चय रस तथा अनुरसोंका विनिश्चय तथा उनके भेद विरोधकारक आहारोंका वर्णन, अन्नपान विषयक द्वादश वर्गोंका निश्चय, अन्नपान और गुणके प्रभाव तथा उनके अनुपानोंके गुण तथा उनकी विधि अनेक प्रकारके द्रव्योंकी गुरुता और लघुताका संग्रह, आहार सम्बन्धी हित और अहित पदार्थोंका उपयोग तथा उनसे होनेवाले शुभ अशुभ रसादिक धातुओंके आश्रित-रोग और उनके उपाय प्राणोंके दश स्थान और जो कुछ दशमूलीय नामक तीसवें अध्यायमें कथन करेंगे वह संपूर्ण तथा इस प्रकार शास्त्रका उद्देश्य, लक्षण, ग्रहण

धारणका अनेक प्रकारका ज्ञान एवम् प्रयोगज्ञान, कर्म, कार्य, काल, कर्त्ता, और करण इन संपूर्ण विषयोंमें कुशल हो (नौसे लेकर तीसवें अध्यायतककी सूची इसमें देदीहै ॥ ७ ॥

कुशलाश्चस्मृतिमतिशास्त्रयुक्तिज्ञानस्यात्मनः शीलगुणैरविसंवादनेनसम्पादनेनसर्वप्राणिषुचचेतसोमैत्रस्यमातृपितृभ्रातृबन्धुवदेवंयुक्ताभवन्तिअग्निवेश। प्राणानामभिसराहन्तारोरोगाणामिति ॥ ८ ॥

इस प्रकार सूत्रस्थानोक्त तीस अध्यायोंके विषयोंका यथोचित ज्ञान रखता हुआ स्मृति, मति, शास्त्र, युक्ति तथा ज्ञान सम्पन्न हो एवम् आत्माके शील आदि गुणोंसे सब मनुष्योंमें मैत्री भाव रखता हुआ तथा निर्विवाद होकर संपूर्ण मनुष्योंका माता, पिता, भाई और बंधुवर्गके समान हित करनेवाला हो। इन उपरोक्त संपूर्ण गुणोंवाला जो वैद्य होताहै हे अग्निवेश! उसको ही प्राणाभिसर और रोगोंका नाश करनेवाला वैद्य कहना चाहिये ॥ ८ ॥

रोगाभिसरके लक्षण ।

अतोविपरीतारोगाणामभिसराहन्तारःप्राणिनामिति । भिषक्छद्मप्रतिच्छन्नाःकण्टकभूतालोकस्यप्रतिरूपिकसहधर्माणोराज्ञांप्रमादाच्चरन्तिराष्ट्राणि । तेषामिदंविशेषविज्ञानमत्यर्थंवैद्यवेशेनश्लाघमानाविशिखान्तरमनुचरन्तिकर्म्मलोभात् । श्रुत्वाचकस्यचिदातुर्य्यमभितःपरिपतन्तिसंश्रवणेचास्यात्मनोवैद्यगुणानुच्चैर्वदन्तियच्चास्यवैद्यःप्रतिकर्म्मकरोतितस्य चदोषान्मुहुर्मुहुरुदाहरन्तिआतुरमित्राणिचप्रहर्षणोपजापोपसेवाभिरिच्छन्तिआत्मीकर्त्तुमल्पेच्छताञ्चात्मनःख्यापयन्तिकर्म्मचासाद्यमुहुर्मुहुरवलोकयन्तिदक्ष्येणाज्ञानमात्मनःछादयितुकामाव्याधिञ्चापवर्त्तयितुमशक्नुवन्तोव्याधितमेवानुपकरणमपचारिकमनात्मवन्तमुद्दिश्यन्तिअन्तगतञ्चाभिसमीक्ष्यान्यमाश्रयन्तिदेशमादेशमात्मनःकृत्वा। प्राकृतजनसन्निपातेचात्मनः कौशलमकुशलवद्वर्णयन्तिअधीरवच्चधैर्य्यमपवदन्तिधीराणाम् ।

विद्वज्जनसन्निपातश्चाभिसमीक्ष्यप्रतिभयमिवकान्तारमध्वगाः परिहरन्तिदूरात् ॥ ९ ॥

इन उपरोक्त संपूर्ण लक्षणोंसे विपरीत गुणवालेको रोगाभिसर और प्राणनाशक कहनाचाहिये । जो लोग वैद्यका वेश धारण किये, संसारमें कंटकरूप वैद्योंकेसे रूप धारण कियेहुए राजाओंकी असावधानीसे राज्यके अन्दर फिरते हैं उन धूर्तोंकी यही पहिचान है कि वह वैद्यका वेश धारण कियेहुए अपने मुखसे अपनी बडी बडाई करतेहुए रास्तेमें तथा जिस मार्गपर बहुत आदमी फिराकरते हैं उन स्थानोंमें कर्म लोभसे फिरा करते हैं और किसी मनुष्यको बीमार सुनकर झट उसके पास जा पहुँचते हैं और उसके कानके समीप विना ही पूछे अपने वडेभारी वैद्य होनेके गुण वर्णन करने लगजाते हैं और जो वैद्य पहिले उपाय कर रहाहो उसके दोषोंको वारवार अपने मुखसे कथन करतेहुए अपनी प्रशंसा करते हैं तथा रोगीके मित्रोंको किसी प्रकारकी सेवा आदिसे या अन्य किसी लोभसे प्रसन्न कर अपना बनानेकी इच्छा करतेहैं और अपने आपको निर्लोभ जंचाते हुए रोगीके सम्बन्धियोंसे अपने लेनेके विषयमें वडी युक्तिके साथ थोडीसी इच्छा जंचाते हैं । तथा चिकित्सा करतेहुए पाखण्डसे रोगी और औषधीको वारवार देखतेहुए अपनी औषधीकी तारीफ करतेहैं और चतुराईपूर्वक अपनी मूर्खताको छिपाते जाते हैं । जब रोग वढने लगताहै तो रोगीको कुपथ्य करनेवाला और अजितात्मा बताकर अपनेको निर्दोष ठहरा अपने अवगुणको छिपाना चाहतेहैं । रोगीकी अवस्था विगडते देख उसके मकानको छोड दूसरे स्थानमें चलेजाते हैं । और हमको कहीं अत्यावश्यक कार्य है ऐसा कहकर अन्यस्थानमें चलेजातेहैं । यह दुष्ट साधारण मनुष्योंके समूहमें उन लोगोंको मूर्खसा बनाते हुए अपनी इतनी चतुराई दिखाते हैं और अधीरके समान ऐसी बातें बनाते हैं कि जिनको सुनकर धीरपुरुषोंका भी धैर्य जातारहे । जब किसी विद्वान्को आते देखते हैं तो मारे भयके दूरसे ही उनको देखकर स्त्रियोंके आने जानेके रास्तेसे झट इधर उधर छिपजाते हैं ॥ ९ ॥

यश्चैषांकश्चित्सूत्रावयवउपयुक्तस्तंप्रकृतेप्रकृतान्तरेवासततमुदाहरन्तिनचानुयोगमिच्छन्तिअनुयोक्तुंवामृत्योरिवचानुयोगादुद्विजन्ते । नचैषामाचार्य्यःशिष्योवासब्रह्मचारीवैवादिकोवाकश्चित्प्रज्ञायते इति ॥ १० ॥

यह दुष्ट किसी एकाध वैद्यकके सूत्रके अवयवको अण्टसण्ट याद कररखते हैं उसीको सब लोगोंमें बारम्बार उच्चारण करतेहुए अहंकारपूर्वक कहाकरते हैं कि

हमारा किसीसे शास्त्रार्थ कराओ जिस प्रकार मेहनतसे हमने वैद्यकशास्त्रको पढाहै, और कौन परिश्रम करसकताहै यदि दैवयोगसे इनको कोई बुद्धिमान् शास्त्री बातचीत करनेवाला मिलजाय तो उससे बात करतेहुए भी घवडाते हैं। यदि कोई इनसे शास्त्रार्थ करनेकी इच्छा करे तो मृत्युके समान डरते हैं। न तो कहीं इनके गुरुका पता होताहै न इनके शिष्य आदिक कहीं होते हैं न कोई इनका स्वाध्यायी दिखाई पडताहै न किसी ऐसे वैद्यका पता लगताहै कि जिससे इन्होंने कभी शास्त्रकी बातचीत की हो ॥ १० ॥

भिषक्छद्मप्रविश्यैवव्याधितांस्तर्कयन्तिये । वसंतमिवसंश्रित्यवनेशाकुन्तिकोद्विजान् । श्रुतदृष्टक्रियाकालमात्रास्थानबहिष्कृताः । वर्ज्जनीयाहितेमृत्योश्चरन्त्यनुचराभुवि ॥ ११ ॥

जैसे शिकारी पक्षियोंको जालमें फंसानेके लिये वनमें छिपे हुए रहते हैं उसीप्रकार यह दुष्ट भी वैद्योंका स्वरूप बनाये हुए रोगियोंको अपने जालमें फंसानेकी कोशिशमें रहते हैं। शास्त्र,अनुभव, क्रिया,काल,मात्रा, स्थान, इन सबके ज्ञानसे रहित, मृत्युके अनुचररूप जो वैद्यका वेश धारण किये फिरते हैं उनको वैद्यकीय क्रियामें दृष्टिमात्रसे ही त्याग देना चाहिये ॥ ११ ॥

वृत्तिहेतोर्भिषङ्मानपूर्णान्मूर्खविशारदान् ।
वर्ज्जयेदातुरोविद्वान् सर्पास्तेपीतमारुताः ॥ १२ ॥

जो मनुष्य सामान्य आजीवनके निमित्त वैद्यवेश धारण किये हुए हैं ऐसे धूर्तोंके गुरुओंको बुद्धिमान् रोगी दूरसे ही त्याग देवे क्योंकि यह दुष्ट पवन पिये हुए सर्पोंके समान जानने चाहिये ॥ १२ ॥

येतुशास्त्रविदोदक्षाःशुचयःकर्मकोविदाः ।
जितहस्ताजितात्मानस्तेभ्योनित्यकृतंनमः ॥ १३ ॥

जो वैद्य शास्त्रके जाननेवाले हैं तथा आयुर्वेदके सब विषयोंमें चतुर हैं, शुद्धचित्त हैं, वैद्यकर्ममें विशारद हैं, जिन्होंने हस्तक्रियाको भले प्रकार सीखाहै उन जितात्मा वैद्योंको नित्यप्रति नमस्कार है ॥ १३ ॥

तत्र श्लोकः ।

दशप्राणायतनिकेश्लोकेस्थानार्थसंग्रहः ।
द्विविधाभिषजश्चोक्ताःप्राणस्यायतनानिच ॥ १४ ॥

इति दशप्राणायतनीयोनामोनात्रिंशोऽध्यायःसमाप्तः ।

अध्यायकी पूर्त्तिमें यह एक श्लोक है-इस दश प्राणायतनीयनामक अध्यायमें संपूर्ण सूत्रस्थानके विषयोंका संग्रह, दो प्रकारके वैद्य और प्राणोंके दश स्थान वर्णन कियेगयेहैं ॥ १४ ॥

इति श्रीमहर्षिचरक० पं० रामप्रसादवैद्य० भाषाटीकायां दशप्राणायतनीयो नामैकोन त्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

त्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

अथातोऽर्थेदशमूलीयमध्यायं व्याख्यास्याम इति हस्माह भगवानात्रेयः ।

अब हम अर्थेदशमूलीय नामक अध्यायका वर्णन करतेहैं ऐसा आत्रेय भगवान् कहने लगे ।

अर्थेदशमहामूलाःसमासक्तामहाफलाः ।
महच्चार्थश्चहृदयंपर्य्यायैरुच्यतेबुधैः ॥ १ ॥

महत्, हृदय और अर्थ यह तीनों शब्द हृदयके वाचक हैं । हृदयसे दश धमनी संज्ञक नाडी लगी हुई हैं यह नाडियां महामूला और महाफला कही जातीहैं ॥१॥

हृदयाधीन अङ्गावयव ।

षडङ्गमङ्गविज्ञानमिन्द्रियाण्यर्थपञ्चकम् । आत्माचसगुण-श्चेतःचिन्त्यश्चहृदिसंश्रितम् ॥ २ ॥ प्रतिष्ठार्थंहिभावानामेषां हृदयमिष्यते । गोपानसीनामागारकर्णिकेवार्थचिन्तकैः॥३॥

दो हाथ, दो पांव, मस्तक और देहका मध्यभाग यह शरीरके ६ अंग कहेजातेहैं । कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और नासिका यह ५ इन्द्रियें कही जातीहैं । शब्द, स्पर्श,रूप, रस, गंध यह ५ इन्द्रियोंके विषय होतेहैं । सगुण आत्मा और चेतना शक्ति यह चिन्तनके योग्य हृदयके आश्रित हैं।संपूर्ण शारीरिक भावोंके आश्रयके लिये शरीरमें हृदयरूप खंभा है जैसे-घासके छप्परके नीचे सम्पूर्ण छप्परके अवयवोंको टिकानेके लिये एक स्तम्भ रहताहै उसी प्रकार शरीरके संपूर्ण भावोंको टिकानेके लिये हृदयके जाननेवालोंने हृदय कहाहै ॥ २ ॥ ३ ॥

महामूलादिनामका कारण ।

तस्योपघातान्मूर्च्छायंभेदान्मरणमृच्छति ।
यद्धितत्स्पर्शविज्ञानंधारितत्तत्रसंश्रितम् ॥ ४ ॥

हृदयमें चोट आदि किसी प्रकारका उपघात होनेसे संपूर्ण शरीरमें मूर्च्छाआजाती है एवम् हृदयके फटजानेसे मृत्यु होजाती है । जो स्पर्शेन्द्रिय आदि इन्द्रियोंसे उत्पन्न हुई ज्ञानको धारण करनेवाली जीवनी शक्ति है वह हृदयके ही आश्रयीभूत है ॥ ४ ॥

तत्परस्यौजसःस्थानंतत्रचैतन्यसंग्रहः ।
हृदयंमहदर्थश्चतस्मादुक्तंचिकित्सकैः ॥ ५ ॥

चैतन्यशक्तिका धारण करनेवाला जो ओजधातु है वह ओज और चैतन्य भी हृदयके ही आश्रय हैं इस लिये चिकित्सकोंने हृदयको महत् और अर्थ कहा है ५॥

ओजोधातुका गुणकर्म ।

तेनमूलेनमहतामहामूलामतादश । ओजोवहाःशरीरेवाविधम्यन्तेसमन्ततः ॥ ६ ॥येनौजसावर्त्तयन्तिप्रीणिताःसर्वदेहिनः ॥ यदृतेसर्वभूतानांजीवितंनावतिष्ठते ॥ ७ ॥

यह हृदय ही उन बडी बडी दश धमनियोंका मूल होनेसे वह नाडियाँ महामूला कहीजाती हैं यह दश धमनियें शरीरमें ओजको वहन करती हुई सम्पूर्ण शरीरमें ध्मायमान होती हैं इसलिये इनको धमनी कहते हैं । उस ओजके द्वारा ही सम्पूर्ण शरीरको पालन करती हुई देहको जीवित रखती है जिस ओजके विना सम्पूर्ण मनुष्योंका जीवन नहीं रहसकता ॥ ६ ॥ ७ ॥

यत्सारमादौगर्भस्ययोऽसौगर्भरसाद्रसः । संवर्द्धमानंहृदयंसमाविशतियत्पुरा ॥८॥ यस्यनाशात्तुनाशोऽस्तिधारियद्धृदयाश्रितम् ॥ यःशरीररसःस्नेहप्राणायत्रप्रतिष्ठिताः ॥ ९॥

ओज ही आदिमें गर्भका सारभूत है तथा गर्भके उत्पन्न करनेवाले रसका भी सार है । यह ओज ही शरीरको उत्पन्न करनेके लिये हृदयमें प्रथम प्रवेश होता है जिस ओजके नष्ट होनेसे शरीर भी नष्ट होजाता है वह ओजही हृदयमें रहकर शरीरको धारण करता है । यही शरीरका बल है, देह और प्राण इसीके आश्रित हैं तथा शरीरके धारण करनेवाले रस और स्नेह यह सब उस ओजके ही आश्रय हैं और उस ओजका स्थान हृदय है ॥ ८ ॥ ९ ॥

महाफलकी निरुक्ति ।

तत्फलाविविधावाताःफलन्तीतिमहाफलाः॥ध्यानाद्धमन्यः स्रवणात्स्रोतांसिसरणाच्छिराः॥ १० ॥ तन्महत्तामहामूला-स्तच्चौजःपरिरक्षता॥परिहार्य्याविशेषेणमनसोदुःखहेतवः ॥११॥

शरीरको जीवित रखनेवाली अनेक किस्मकी वायुमें हृदयका फल है। उन पवनरूपी फलोंको हृदयसे लगी हुई धमनिय फलती हैं। इसीलिये इनको महाफला कहाजाताहै शरीरमें धमन (रससे पूर्ण) करती हैं इसलिये धमनी कहीजाती हैं। स्रवण(पोषणकर्त्ता रसका स्राव करनेसे)स्रोत कहेजाते हैं। रसका सरण (रसका अन्य स्थानमें पहुंचाना) करनेसे इनका नाम सिरा है ॥ १० ॥ उस हृदय तथा उन धमनियों एवम् उस ओजकी रक्षा करते हुए मनुष्यको दुःखोंके हेतुओंसे बचना चाहिये अर्थात् जो जो वस्तुयें अथवा कृत्य इन हृदय और ओजमें हानिकारक हों उनको त्याग देना चाहिये ॥ ११ ॥

हृद्यंयत्स्याद्यदोजस्यंस्रोतसांयत्प्रसादनम् ।
तत्तत्सेव्यंप्रयत्नेनप्रशमोज्ञानमेवच ॥ १२ ॥

जो पदार्थ हृदयको प्रिय हो तथा ओजको वढानेवाला हो एवम् धमनियोंके स्रोतोंको प्रसन्न करनेवाला हो उसका ही यत्नपूर्वक सेवन करनाचाहिये एवम् यत्न-पूर्वक शान्ति और ज्ञानको धारण करनाचाहिये ॥ १२ ॥

ओज बलादि वर्द्धक एक २ उपाय ।

अथखलुएकंप्राणवर्द्धनानामुत्कृष्टतममेकंबलवर्द्धनानामेकंबृं-हणानामेकंनन्दनानामेकंहर्षणानामेकमयनानामिति ।तत्रा-हिंसाप्राणिनांप्राणवर्द्धनानामुत्कृष्टतमम्। वीर्य्यंबलवर्द्धनाना-म्। विद्याबृंहणानाम्। इन्द्रियजयोनन्दनानाम्। तत्त्वाववो-धोहर्षणानाम्। ब्रह्मचर्य्यमयनानामित्यायुर्वेदाविदोमन्यंते ॥१३॥

शरीरकी रक्षाके सम्बन्धमें अनेक उपाय होतेहुए भी प्राणोंको वढानेवाला सबमें उत्तम एक उपाय है बलवर्द्धक पदार्थोंमें एक उपाय प्रधान है। बृंहणकर्त्ताओंमें, आनन्द वढानेवालोंमें, हर्षोत्पादकोंमें, सब प्रकारकी गति वढानेवालोंमें एक एक उपाय सर्वोत्तम और प्रधान कहा है। वह इस प्रकार है—किसी प्रकारकी भी हिंसा न करना सबसे उत्तम प्राण वढानेका उपाय है। वीर्यकी रक्षा सबसे वढकर बलव-र्द्धक उपाय है। विद्या होना सबसे वढकर बृंहण (पुष्टता) का उपाय है। इन्द्रि-

योंको अपने वशमें रखना सबसे बढकर आनन्द बढानेका उपाय है,। तत्त्वका ज्ञान होना सबसे बढकर हर्ष (प्रसन्नता) के बढानेका उपाय है। ब्रह्मचर्य पालन करना सब प्रकारकी गतिके बढानेका उपाय है ।आयुर्वेदके जाननेवाले इस प्रकार मानते हैं॥ १३ ॥

आयुर्वेदवित्‌के लक्षण।

तत्रायुर्वेदविदस्तन्त्रस्थानाध्यायप्रश्नानांपृथक्त्वेनवाक्यशोवा-क्यार्थशोऽर्थावयवशश्चप्रवक्तारोमन्तव्याः ॥ १४ ॥

जिसको इस आयुर्वेद तन्त्रके स्थान, अध्याय, क्रमपूर्वक प्रश्नोंका विभाग, वाक्य, वाक्यार्थ, अर्थावयव अच्छी तरहसे आतेहों अर्थात् इन सबका जाननेवाला हो उसको आयुर्वेदवित् (आयुर्वेदका जाननेवाला) कहते हैं॥ १४ ॥

तंत्रादिशब्दोंकी व्याख्या।

अत्राहकथंतन्त्रादीनिवाक्यशोवाक्यार्थशोऽवयवशश्चेतिउक्ता-निभवन्ति, अत्रोच्यतेतन्त्रमार्षंकार्त्स्न्येनयथास्थानमुच्यमानं वाक्यशोभवत्युक्तम् । बुद्ध्यासम्यगनुप्रविश्यार्थतत्त्वंवाग्भि-र्व्याससमास-प्रतिज्ञाहेतूदाहरणोपनयनिगमनयुक्ताभिःत्रिविध-शिष्यबुद्धिगम्याभिरुच्यमानंवाक्यार्थशोभवत्युक्तम् । तन्त्र-नियतानामर्थदुर्गाणांपुनर्भावनैरुक्तमर्थावयवशोभवत्युक्तम् । तत्रचेत्प्रष्टारःस्युःचतुर्णामृक्सामयजुरथर्ववेदानांकंवेदमुपदि-शन्तिआयुर्वेदविदः । किमायुःकस्मादायुर्वेदविदः । किमायुः कस्मादायुर्वेदःकिञ्चायमायुर्वेदःशाश्वतोऽशाश्वतइति । कानि चास्याङ्गानिकैश्चायमध्येतव्यःकिमर्थश्चेति ॥ १५ ॥

अब कहतेहैं कि तन्त्रादिक वाक्यद्वारा तथा वाक्यार्थ द्वारा एवम् अर्थावयवद्वारा किस तरह जानेजातेहैं और किनको तन्त्रादि कहतेहैं । सो कहाजाताहै कि भूत, भविष्यत, वर्त्तमानके जाननेवाले ऋषियोंके बनायेहुए ग्रन्थको तन्त्र कहाजाताहै। बहुतसे विषयोंके कथनके समुदायको स्थान कहतेहैं और वह वेदानुसार कहाहुआ होनेसे वाक्य कहाजाताहै । इस प्रकार संपूर्ण तन्त्रको भलेप्रकार जानकर उसके अर्थतत्त्वको प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय,निगमनके साथ उत्तम बुद्धिवाले तथा मध्यम बुद्धिवाले एवम् कनिष्ठ बुद्धिवाले शिष्योंकी बुद्धिको जानकर संक्षेपसे अथवा विस्तारसे समझायाजानेवाला उपदेश वाक्यार्थसे कथन करना कहाजाताहै। ग्रंथमें

कहेहुए कठिन कठिन शब्दोंको फिर अंशांशद्वारा स्पष्ट कर कहना अर्थात्व कहा जाताहै। यदि वहांपर कोई ऐसा प्रश्न करनेवाला हो कि ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद इन चारों वेदोंमेंसे किस वेदके कथन करनेवालेको आयुर्वेदके जाननेवाला कहना चाहिये, आयु क्या है, आयुर्वेद कहांसे हुआ और आयुर्वेद किसको कहतेहैं? यह आयुर्वेद प्रामाणिकहै अथवा अप्रामाणिक एवम् नित्य है या अनित्य? आयुर्वेदके कौन २ अंग हैं ? किन लोगोंको आयुर्वेद पढना चाहिये ? आयुर्वेदके पढनेसे सिद्ध क्या होताहै अथवा आयुर्वेद किसलिये बनायागया ? ॥ १५ ॥

तत्र भिषजा पृष्टेनैवं चतुर्णामृक्सामयजुरथर्ववेदानामात्मनोऽथर्ववेदे भक्तिरादेश्या वेदो ह्याथर्वणः स्वस्त्ययनबलिमङ्गलहोमनियमप्रायश्चित्तोपवासमन्त्रादिपरिग्रहाच्चिकित्सां प्राह । चिकित्सा चायुषो हिताय उपदिश्यते वेदश्चोपदिश्य आयुर्वाच्यम् । तत्र आयुश्चेतनानुवृत्तिर्जीवितमनुबन्धो धारि चेत्येकोऽर्थः तत्र आयुर्वेदयतीत्यायुर्वेदः कथमित्युच्यते स्वलक्षणतः सुखासुखतो हिताहिततः प्रमाणाप्रमाणतश्च । यतश्चायुष्यानायुष्याणि च द्रव्यगुणकर्माणि वेदयत्यतोऽप्यायुर्वेदः। तत्र आयुष्याण्यनायुष्याणि च द्रव्यगुणकर्माणि केवलेनोपदेक्ष्यन्ते ॥ १६ ॥

वैद्यके इस प्रकार प्रश्न करनेपर कहना चाहिये कि ऐसे मत कहो। ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद इन चारों वेदोंमें अथर्ववेद ही आयुर्वेदकी आत्मा कहना चाहिये क्योंकि अथर्ववेदमें कहेहुए, स्वस्त्ययन, बलिदान, मंगलकर्म, होम, नियम, प्रायश्चित्त, उपवास और मंत्र आदिकोंसे ही चिकित्साका निर्देश कियागयाहै । और आयुके हितके लिये ही चिकित्साका उपदेश कियागयाहै। इसप्रकार आयुके वेदका कथन कर अब, आयुका कथन करतेहैं कि आयु, चेतना, प्रवृत्ति, जीवित, अनुबंध यह सब आयुके पर्यायवाचक शब्द हैं इन सब शब्दोंमें आयुशब्द प्रसिद्ध होनेसे मुख्य रक्खा गयाहै सो आयुको विदित करानेवाला अर्थात् आयुसम्बन्धी ज्ञानके करानेवाले शास्त्रको आयुर्वेद कहतेहैं। आयुर्वेद आयुका परिज्ञान किस प्रकार कराता है सो कहते हैं । जैसे—आयुके लक्षण सुखायु, दुःखायु, हितआयु तथा अहितआयु, आयुका प्रमाण और अप्रमाण, जिसप्रकार आयुके बढानेवाले पदार्थ आयुको बढातेहैं एवम् क्षय करतेहैं और द्रव्य, गुण, कर्म इन सबका यथार्थ ज्ञान करानेवाला आयुर्वेद कहा जाताहै। इस आयुर्वेदमें आयुके बढानेवाले और आयुके नष्ट करनेवाले द्रव्य, गुण कर्मोंका ही कथन किया जाताहै ॥ १६ ॥

सुखायु और दुःखायुके लक्षण ।

तन्त्रेणतंत्रायुरुक्तंस्वलक्षणतोयथावदिहैवतत्रशारीरमानसा-
भ्यांरोगाभ्यामनभिद्रुतस्याविशेषेण यौवनवतः समर्थानुगत-
बलवीर्ययशःपौरुषपराक्रमस्यज्ञानविज्ञानेन्द्रियेन्द्रियार्थबलसमु-
दायेवर्त्तमानस्यपरमर्द्धिरुचिरविविधोपभोगस्यसमृद्धसर्वारम्भ-
स्ययथेष्टविचारणात्सुखमायुरुच्यतेअसुखमतोविपर्ययेण ॥ १७॥

आयुर्वेद शास्त्र करके आयुर्वेद और आयुका कथन किया जाचुकाहै अब सुखायु और असुखायुका लक्षण कहतेहैं । जो मनुष्य शारीरिक और मानसिक व्याधियोंसे दुःखित नहीं है और पूर्णरूपसे युवावस्थावाला है, जिसके शरीरमें भले प्रकार बल,वीर्य,पुरुषार्थ,पराक्रम प्राप्त है और ज्ञान,विज्ञान,इन्द्रिय और इन्द्रियार्थ इन सबके बल समुदायसे सम्पन्न हैं एवम् परम ऋद्धि सम्पन्न सुन्दर शोभायुक्त अनेक प्रकारके उपयोगयुक्त जिसके सब आरम्भ यथोचित समृद्ध हैं तथा वह मनुष्य स्वाधीन तथा सुन्दर विचारयुक्त हो उसके जीवितको सुखायु कहतेहैं । इससे विपरीत असुखायु (दुःखायु) जानना चाहिये ॥ १७ ॥

हिताहितआयुका वर्णन ।

हितैषिणःपुनर्भूतानांपरस्वात्उपरतस्यसत्यवादिनःशमपरस्य
परीक्ष्यकारिणोऽप्रमत्तस्यत्रिवर्गंपरस्परेणानुपहतमुपसेवमान-
स्यपूजार्हसम्पूजकस्यज्ञानविज्ञानोपशमशीलवृद्धस्योपसेविनः
सुनियतरागेर्ष्यामदमानवेगस्यसततंविविधप्रदानपरस्यतपो-
ज्ञानप्रशमनित्यस्यअध्यात्मविदस्तत्परस्यलोकमिमञ्चामुञ्चा-
वेक्ष्यमाणस्यस्मृतिमतिमतोहितमायुरुच्यते । अहितमतो
विपर्ययेण ॥ १८ ॥

जो मनुष्य संपूर्ण प्राणियोंका हित चाहनेवाला, परधनकी इच्छा न रखनेवाला, सत्यवादी, शान्तचित्त, विचारकर करनेवाला,अप्रमत्त, धर्म,अर्थ, काम इन सबको परस्पर अनुपहत विधिसे सेवन करनेवाला, पूज्यजन गुरुजन आदिकोंकी सेवा करनेवाला, ज्ञान, विज्ञान और उपशमशील, वृद्धजनोंकी सेवा करनेवाला, राग, द्वेष, मद और मनके वेगको वशमें रखनेवाला,नित्य प्राति यथाशक्ति दान देनेवाला, तप, ज्ञान,और इन्द्रियोंका शमन इनका अभ्यास करनेवाला, अध्यात्म विद्यायुक्त,

ईश्वरपरायण इस लोक और परलोकमें हितका चाहनेवाला तथा स्मृतिसम्पन्न-इन सब गुणोंयुक्त मनुष्यकी आयु हितआयु कही जातीहै । और इससे विपरीत गुणोंवालेकी आयु अहित आयु कही जातीहै ॥ १८ ॥

आयुका प्रमाण ।

प्रमाणमायुषस्त्वर्थेन्द्रियमनोबुद्धिचेष्टादीनांस्वेनाभिभूतस्य विकृतिलक्षणैरुपलभ्यतेअनिमित्तैरिदमस्मात्क्षणान्मुहूर्त्ताद्दिवसात्त्रिपञ्चसप्तदशद्वादशाहात्पक्षात् मासात्षण्मासात्संवत्सराद्वास्वभावमापत्स्यतेइति । तत्रस्वभावःप्रवृत्तेरुपरमो मरणमनित्यतानिरोधइत्येकोऽर्थः ।इत्यायुषःप्रमाणमतोविपरीतमप्रमाणम् ॥ १९ ॥

अब आयुके प्रमाणको कथन करतेहैं। इन्द्रियोंके अर्थ यथा शब्द, स्पर्श आदि इन्द्रिय, मन, बुद्धि,चेष्टा आदिकोंकी विकृति आदिके लक्षणोंसे आयुका प्रमाण जाना जाताहै यदि इनमें अकस्मात् विकृति होजाय तो क्षणभरमें या मुहूर्तमें एक दिनमें अथवा तीन दिन, पाँच दिन, सात दिन, दशदिन, एवम् बारहदिनमें तथा पक्षमें या महीनेमें अथवा छमहीनेमें या एक वर्षमें मनुष्य स्वभावमें स्थित हो जाताहै । यहांपर स्वभाव, प्रवृत्तिका उपराम, मरण, अनित्यता, निरोध यह सब एक ही अर्थवाले शब्द हैं । अर्थात् मरणके वाचक हैं वस यही आयुके प्रमाण हैं । इससे विपरीत आयुका अप्रमाण जानना ॥ १९ ॥

आयुर्वेदका नित्यत्व प्रतिपादन ।

अरिष्टाधिकारेदेहप्रकृतिलक्षणमाधिकृत्यचोपदिष्टमायुषःप्रमाणमायुर्वेदे । प्रयोजनञ्चास्यस्वस्थस्यस्वास्थ्यरक्षणमातुरस्य विकारप्रशमनम् ।सोऽयमायुर्वेदःशाश्वतोनिर्दिश्यतेऽनादित्वात्स्वभावसंसिद्धस्वलक्षणत्वाद्भावस्वभावनित्यत्वाच्च । नहि नाभूत्कदाचिदायुषःसन्तानोबुद्धिसन्तानोवाशाश्वतश्चायुषोवेदिताअनादिमच्चसुखदुःखंसद्रव्यहेतुलक्षणमपरापरयोगादेष चार्थसंग्रहोविभाव्यते। आयुर्वेदलक्षणमितियत्पुनःगुरुलघुशीतोष्णस्निग्धरूक्षादीनाञ्चद्वंद्वानांसामान्याविशेषाभ्यांवृद्धिह्रासौयथोक्तंगुरुभिरभ्यस्यमानैर्गुरूणामुपचयोभवत्यपचयोल-

घूनामेवमेवेतरेषामित्येषभावस्वभावोनित्यः । स्वस्वलक्षणञ्च द्रव्याणांपृथिव्यादीनांसन्तितुद्रव्याणिगुणाश्चनित्यानित्याः॥२०॥

इन्द्रिय स्थानके अरिष्टाधिकारमें-देह, प्रकृति, लक्षण इनका वर्णन करते हुए आयुका प्रमाण कथन कियागयाहै । (इसको देखो) इस आयुर्वेदका प्रयोजन स्वस्थ (तन्दुरुस्त) मनुष्यकी आरोग्यावस्था स्थिर रखना और रोगी मनुष्यको रोगसे छोडाना अर्थात् रोगीके रोगका शान्त करनाही है ।सो यह आयुर्वेद अनादि होनेसे और स्वभाव संसिद्ध लक्षण होनेसे अर्थात् आयुर्वेद अपने संपूर्णलक्षणों द्वारा स्वभावके अनुकूल और स्वतःसिद्ध होनेसे एवम् भावोंका स्वभावकं नित्य होनेसे आयुर्वेद नित्य हैं । आयुकी जो संतान है और वृद्धि संतान यह नित्य नहीं है ऐसा नहीं होसकता अर्थात् आयुक्रम और भावोंकी वृद्धि संतति भी अनादि है इसलिये नित्य है और आयुर्वेदका ज्ञाता भी नित्य है अर्थात् आयु आयुर्वेद और इनका ज्ञान और ज्ञानवाला यह सदासेही नित्य हैं क्योंकि सुख और दुःखके सर्व भावका लक्षण परस्परासे सम्बन्ध रखता चला आता है इससे इस संग्रहकी स्पष्ट नित्यता प्रतीति होतीहै । आयुर्वेदके नित्य होनेमें और भी लक्षण कथन करते हैं कि द्रव्योंका जो स्वभाव है यह भी नित्य है क्योंकि गुरु, लघु, शीत, उष्ण, स्निग्ध, और रूक्ष आदिकोंके सामान्य विशेष योगसे वृद्धि और ह्रास होताहै (प्रथमाध्यायमें कथन कर चुकेहैं सब भावोंकी सामान्यतासे प्रवृत्ति वृद्धिका कारण और असामान्यतासे प्रवृत्ति ह्रासका कारण होताहै, जैसे कि-गुरु वस्तुओंका अभ्यास करनेसे गुरुताका उपचय और लघुताका अपचय होताहै इसी प्रकार रूक्ष स्निग्ध आदि भावोंको भी जानना चाहिये) । इससे स्पष्ट जाना जाताहै कि द्रव्योंके भावोंका स्वभाव नित्य है । पृथ्वी आदिक पंचमहाभूतोंके गुणविशिष्ट जो द्रव्य हैं उनमें भी अपने २ लक्षणोंसे पृथिव्यादि महाभूतोंके गुण नित्य प्रतीत होतेहैं यद्यपि द्रव्योंमें रसादिगुण अनित्य होतेहैं परन्तु जिस द्रव्यमें जो आग्नेय या जलीयगुण प्रधान होताहै वह कभी नष्ट नहीं होता । इससे स्पष्ट सिद्ध है कि भावोंके स्वभावोंको नित्यता होनेसे भी आयुर्वेद नित्य ही है ॥ २० ॥

नहिआयुर्वेदस्याभूत्वोत्पत्तिरुपलभ्यते।अन्यत्रावबोधोपदेशाभ्यामेतद्वैद्वयमधिकृत्यउत्पत्तिमुपदिशन्त्येकेस्वाभाविकञ्चास्य लक्षणमधिकृत्ययदुक्तमिहचाद्येअध्यायेयथाग्नेरौष्ण्यमपांद्रवत्वंभावस्वभावनित्यत्वमपिचास्ययथोक्तं गुरुभिरभ्यस्यमानैर्गुरूणामुपचयोभवत्यपचयोलघूनामित्येवमादि ॥ २१ ॥

आयुर्वेद उत्पन्न हुआहै ऐसा भी नहीं कहसकते क्योंकि ब्रह्माको आयुर्वेदक ज्ञान हुआ और इन्द्रने आयुर्वेदका उपदेश किया यह दो प्रकारसे आयुर्वेद उत्पन्न हुआ इस कथनसे भी आयुर्वेद अनित्य नहीं होसकता क्योंकि ब्रह्माको ज्ञान होनेसे प्रथम भी आयुर्वेद था यह स्पष्ट प्रतीत होताहै। कोई कहते हैं कि आयुर्वेदका नित्य होना स्वभावसे ही सिद्ध है। जैसे प्रथमाध्यायमें कहआयेहैं कि अग्निमें उष्णता और जलमें द्रवता उनका स्वाभाविक और नित्यधर्म है उसी प्रकार गुरु द्रव्योंके सेवनसे गुरुताका उपचय होना और लघुताका अपचय होना आदि भी स्वभावसिद्ध हैं । सो इन सब प्रमाणोंसे आयुर्वेद स्वभावसिद्ध और नित्य सिद्ध होचुका ॥ २१ ॥

आयुर्वेदके आठ अङ्ग तथा उनसे धर्मप्राप्ति।

तस्यायुर्वेदस्य अङ्गानि अष्टौ।तद्यथा।कायचिकित्साशालाक्यं-शल्यापहर्तृकंविषगरवैरोधिकप्रशमनंभूतविद्याकौमारभृत्यकंरसायनानिवाजीकरणमिति । सचाध्येतव्योब्राह्मणराजन्य-वैश्यैः । तत्रानुग्रहार्थंप्राणिनांब्राह्मणैरात्मरक्षार्थंराजन्यैर्वृत्त्यर्थं वैश्यैःसामान्यतोवाधर्मार्थकामपरिग्रहार्थंसर्वैः । तत्रचयदध्यात्मविदांधर्मपथस्थानांधर्मप्रकाशानांवामातृपितृभ्रातृबन्धुगुरु-जनस्यवाविकारप्रशमनेप्रयत्नवान्भवति । यश्चायुर्वेदोक्तमध्यात्ममनुध्यायति वेदयत्यनुविधीयतेवासोऽप्यस्यपरोधर्मः॥ २२ ॥

इस आयुर्वेदके आठ अंग हैं जैसे कायचिकित्सा, शालाक्यतन्त्र, शल्यापहर्तृकतन्त्र, विषगरवैरोधिकतन्त्र,भूतविद्या,कौमारभृत्यक, रसायनतन्त्र और वाजीकरण तन्त्र इन आठ तन्त्रोंसे युक्त आयुर्वेद ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्योंको पढना चाहिये। सामान्यतासे उनमें ब्राह्मणोंको सम्पूर्ण जीवोंपर दया करनेके लिये,क्षत्रियोंको अपनी आत्मरक्षाके लिये और वैश्योंको अपनी वृत्तिके लिये अध्ययन करना चाहिये। अथवा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सबको इनके साधनके लिये आयुर्वेदका अध्ययन करना चाहिये। उन आत्मज्ञानी, धर्मपरायण, धर्मके प्रकाश करनेवालोंको माता, पिता, भाई, बन्धु और गुरुजनोंके विकार शान्तिके लिये यत्नवान् रहना चाहिये। जो मनुष्य आयुर्वेदोक्त अध्यात्म विषयोंको अनुध्यायन करते हैं अर्थात् जानतेहैं अथवा आयुर्वेदीय विषयोंको जानना, मनन करना और संपूर्ण आयुर्वेदके जाननेमें यत्नवान् रहना यह इसका परमधर्म है ॥ २२ ॥

आयुर्वेदसे धर्मादिप्राप्ति ।

यापुनरीश्वराणांवसुमतांवासकाशात्सुखोपहारनिमित्ताभवत्यर्थलब्धावाप्तिरवेक्षणश्चयाचस्वपरिगृहीतानांप्राणिनामातुर्य्यादक्षाक्षमत्वश्चास्यार्थः । यत्पुनरस्यविद्वद्ग्रहणंयशःशरण्यत्वंयाचसमानशुश्रूषायच्चेष्टानांजनानामारोग्यमाधत्तेसोऽस्यकामइति ॥ २३ ॥

आयुर्वेद पढनेसे धनिक पुरुषोंसे अथवा राजाओंसे सुखपूर्वक आहार आदिके लिये द्रव्यकी प्राप्ति होना और अपने परिवारकी रोगसे रक्षा करना तथा जो मनुष्य इसके आश्रयभूत हों उनको रोगसे बचाना यह उसका परमअर्थलाभ है। जो आयुर्वेदीय चिकित्साद्वारा विद्वानोंमें यशका फैलना तथा वडे २ योग्य पुरुषोंको अपने वशीभूत करलेना, अपने समान मनुष्योंमें बडाईका पाना एवम् अपने प्रियपात्रोंको आरोग्यकर चित्तमें आनन्दलाभ करना यह परम कामनाकी प्राप्ति है। इस प्रकार आयुर्वेदके अध्ययनसे धर्म, अर्थ, और काम इन सबकी सिद्धि होती है ॥ २३ ॥

शास्त्रविषयक आठ प्रश्न ।

यथाप्रश्नमुक्तमशेषेण । अथभिषगादितएवभिषजाप्रष्टव्यइति अष्टविधम् । तद्यथा-तन्त्रंतन्त्रार्थंस्थानानिस्थानार्थानध्यायानध्यायार्थान्प्रश्नान्प्रश्नार्थांश्चेति ॥२४॥ पृष्टेचैतद्वक्तव्यमशेषेणवाक्यशोवाक्यार्थशोऽर्थावयवशश्चेति ॥ २५ ॥

इस प्रकार अशेषरूपसे संपूर्ण प्रश्नोंका उत्तर कहा गया । अव कहतेहैं कि वैद्यको वैद्यके ऊपर प्रथम ही यह आठप्रकारके प्रश्न करना चाहिये। जैसे तंत्र क्या है, तंत्रार्थ किसे कहतेहैं, स्थान क्या है, स्थानार्थ किसको कहतेहैं एवम् अध्याय, अध्यायार्थ, प्रश्न, और प्रश्नार्थ किसको कहतेहैं इन आठ प्रकारके प्रश्नोंको करना चाहिये ॥ २४ ॥ यदि कोई अपने ऊपर इन आठ प्रश्नोंको करे तो वाक्यसे, वाक्यार्थसे एवम् अर्थावयवसे भलेप्रकार वर्णन करदेना चाहिये जैसे इसी अध्यायके पन्द्रहवें सूत्रमें कहआये हैं ॥ २५ ॥

क्रमानुसार प्रश्नाष्टकका उत्तर ।

तत्रायुर्वेदःशाखाविद्यासूत्रंज्ञानंशास्त्रंलक्षणंतन्त्रमित्यनर्थान्तरम् । तन्त्रार्थःपुनःस्वलक्षणेनोपदिष्टःसचार्थःप्रकरणैर्विभा-

च्यमानोभूयएवशरीरवृत्तिहेतुव्याधिकर्मकार्य्यकालकर्तृकरण-विधिविनिश्चयोद्देशप्रकरणाःतानिचप्रकरणानिकेवलेनोपदे-क्ष्यन्ते तन्त्रेण ॥ २६ ॥

शाखा, विद्या, सूत्र, ज्ञान, शास्त्र, तंत्र,आयुर्वेद यह सब शब्द पर्यायवाचक हैं अर्थात् इन सबमें किसी एकके कहनेसे आयुर्वेदका ही नाम जानना।यह सब शब्द तंत्रके वाचक हुए। तंत्रार्थ उसके लक्षणोंकी व्याख्यामें कथन कियागया है और फिर भी तंत्रका अर्थ अर्थात् विषय इसके प्रकरणोंसे जानाजाता है । जैसे शरीरवृत्ति, हेतु, व्याधि, कर्म, कार्य, काल, कर्त्ता, करण, विधि, विनिश्चय और कल्पना यह सब तंत्र अर्थात् आयुर्वेदके प्रकरण हैं इनके देखनेसे तंत्रार्थ अर्थात् तंत्रका विषय जानाजाताहै ॥ २६ ॥

आठ स्थानोंके नाम ।

तन्त्रमष्टौस्थानानि । तद्यथा—श्लोक—निदान—विमानशारीरेन्द्रिय—चिकित्सित—कल्प—सिद्धिस्थानानि । तत्रत्रिंशदध्यायकंश्लोकस्थानम् । अष्टाध्यायकानिनिदानविमानशारीरस्थानानि । द्वादशकमिन्द्रियाणाम् । त्रिंशकंचिकित्सितानाम् । द्वादशकेकल्पसिद्धिस्थानेइति ॥ २७ ॥

तंत्रके आठ स्थान हैं। जैसे श्लोक (सूत्र) स्थान, निदानस्थान,विमानस्थान, शारीरस्थान, इन्द्रियस्थान, चिकित्सास्थान, कल्पस्थान, और सिद्धिस्थान इन आठोंमें तीस अध्यायोंका सूत्रस्थान है, निदानस्थान, विमानस्थान और शारीरस्थान इन सबमें आठआठ अध्याय हैं । इन्द्रियस्थानमें बारह अध्याय हैं। चिकित्सास्थानमें तीस अध्याय हैं। कल्पस्थानमें बारह अध्याय हैं एवम् सिद्धिस्थानमें बारह अध्याय हैं ॥ २७ ॥

भवतिचात्र ।

द्वात्रिंशकेद्वादशकत्रयश्चत्रीण्यष्टकान्येषुसमासिरुक्ता ।
श्लोकौषधारिष्टविकल्पसिद्धिनिदानमानाश्रयसंज्ञकेषु ॥ २८ ॥

यहांपर कहाहै कि दो स्थान तीस तीस अध्यायोंके हुए और तीन बारह अध्यायके हुए एवम् तीन आठ आठअध्यायोंमें समाप्त कियेगये हैं।इनमें सूत्रस्थान और चिकित्सास्थान तीस तीस अध्यायोंमें,इन्द्रियस्थान और कल्पस्थान एवम् सिद्धि-

स्थान बारह बारह अध्यायोंमें तथा निदानस्थान और विमानस्थान एवम् शारीरस्थान आठ आठ अध्यायोंमें वर्णन कियेगयेहैं ॥ २८ ॥

स्वेस्वेस्थानेयथास्वञ्चस्थानार्थउपदेक्ष्यते
सविंशमध्यायशतंशृणनामक्रमागतम् ॥ २९॥

सूत्रादिस्थानोंमें उन स्थानोंके स्थानार्थ अर्थात् स्थानोंके विषय कथन कियेहैं । इन सब स्थानोंके १२० अध्याय हुए । उन सब अध्यायोंके क्रमपूर्वक नाम श्रवण करो ॥ २९ ॥

भेषजाश्रयअध्यायोंके नाम ।

दीर्घञ्जीवोऽप्यपामार्गतंडुलारग्वधादिकौ ।
षड्विरेकाश्रयश्चेतिचतुष्कोभेषजाश्रयः ॥ ३० ॥

जैसे-दीर्घजीवितीय, अपामार्गतंडुलीय, आरग्वधादि, और षड्विरेचन शताश्रितीय-इन चार अध्यायोंमें औषधियोंका विषय वर्णन किया गयाहै ॥ ३० ॥

स्वास्थ्यवृत्तिक अध्यायोंके नाम ।

मात्रातस्याशितीयौचनवेगान्धारणंतथा ।
इन्द्रियोपक्रमश्चेतिचत्वारःस्वास्थ्यवृत्तिकाः ॥ ३१ ॥

मात्राशितीय, तस्याशितीय, नवेगान्धारणीय और इन्द्रियोपक्रमणीय-ये चार अध्याय स्वाथ्यरक्षाके विषयमें कथन कियेगये हैं ॥ ३१ ॥

नैर्देशिक अध्यायोंके नाम ।

खुड्डाकश्चचतुष्पादोमहांस्त्रिस्रैषणस्तथा ।
सहवातकलाख्येनविद्यान्नैर्देशिकान्बुधः ॥ ३२ ॥

खुड्डाकचतुष्पाद, महाचतुष्पाद, त्रिस्रैषणीय और वातकलाकलीय-ये चार अध्याय कर्त्तव्य और अकर्त्तव्यके विषयमें कथन कियेगये हैं ॥ ३२ ॥

उपकल्पना विषयक अध्यायोंके नाम ।

स्नेहस्वेदनाध्यायावुभौयश्चोपकल्पनः ।
चिकित्साप्रभृतश्चैवसर्वाएवोपकल्पनाः ॥ ३३ ॥

स्नेहाध्याय, स्वेदाध्याय, उपकल्पनीयाध्याय और चिकित्साप्रभृतीय-ये चार अध्याय उपकल्पनाके विषयमें कथन किये गये हैं ॥ ३३ ॥

रोगाध्यायोंके नाम ।

किथन्तःशिरसीयश्चत्रिशोफाष्टोदरादिकौ ।
रोगाध्यायोमहांश्चैवरोगाध्यायचतुष्टयम् ॥ ३४ ॥

कियन्तःशिरसीय, त्रिशोफीय, अष्टोदरीय और महारोगाध्याय-इन चार अध्यायोंमें रोगोंका विषय है ॥ ३४ ॥

योजनाचतुष्क अध्यायोंके नाम ।

अष्टौनिन्दितसंख्यातस्तथालंघनतर्पणौ
विधिशोणितकश्चेतिव्याख्यातास्तत्रयोजनाः ॥ ३५ ॥

अष्टौनिन्दनीय, लंघनबृंहणीय, संतर्पणीय और विधिशोणितीय-ये चार अध्याय औषधीके प्रयोग विषयमें कथन कियेगये हैं ॥ ३५ ॥

अन्नपानचतुष्कअध्यायोंके नाम ।

यज्जःपुरुषकःख्यातोभद्रकाप्योऽन्नपानिकौ ।
विविधाशितपीतश्चचत्वारोऽन्नविनिश्चये ॥ ३६ ॥

यज्जःपुरुषीय, आत्रेयभद्रकाप्यीय, अन्नपानविधि और विविधाशितपीतीय-इन चार अध्यायोंमें आहार द्रव्योंका वर्णन कियागयाहै ॥ ३६ ॥

वैद्यगुणागुणविषयक अध्यायोंके नाम ।

दशप्राणायतनिकस्तथार्थेदशमालिकः
द्वावेतौप्राणदेहार्थाप्रोक्तौवैद्यगणाश्रयौ ॥ ३७ ॥

दशप्राणायतनीय, अर्थेदशमूलीय-ये दो अध्याय वैद्यके गुणोंके विषयमें कथन किये गये हैं ॥ ३७ ॥

सूत्रस्थानके अध्यायोंका संक्षिप्त वर्णन ।

औषधस्वस्थनिर्देशकल्पनारोगयोजनाः ॥
चतुष्काःषट्क्रमेणोक्ताःसप्तमश्चान्नपानिकः ॥ ३८ ॥

औषध, स्वस्थ, निर्देश, कल्पना, रोग और योजना-यह छः चतुष्क कथन किये गये और सातवां क्रमपूर्वक अन्नपानिकचतुष्क हुआ ॥ ३८ ॥

द्वौचान्यौसंग्रहाध्यायावितित्रिंशकमर्थवत् ।
श्लोकस्थानंसमुद्दिष्टंतन्त्रस्यास्यशिरःशुभम् ॥ ३९ ॥

बाकी दो अध्याय··संग्रह अर्थात् संपूर्ण तंत्रके संग्रहके विषयमें कथन कियेगयेहैं । सम्पूर्ण तंत्रका शिरोभूत यह सूत्रस्थान इस प्रकार तीस अध्यायोंमें सम्पूर्ण हुआ ॥ ३९ ॥

चतुष्काणांमहार्थानांस्थानेऽस्मिन्सञ्चयःकृतः ।
श्लोकार्थःसंग्रहार्थश्चश्लोकस्थानमतःस्मृतः ॥ ४० ॥

इस प्रकार इस सूत्रस्थानमें परम योग्य विषययुक्त चतुष्कोंका संग्रह कियागयाहै । इसमें समस्त विषयोंका अर्थ सूत्ररूपसे संग्रह कियागया है इसलिये इसको सूत्रस्थान कहते हैं ॥ ४० ॥

इति सूत्रस्थानोक्तत्रिशतकम् ।

निदान स्थानके अध्यायोंके नाम ।

ज्वराणांरक्तपित्तस्यगुल्मानांमेहकुष्ठयोः । शोषोन्मादनिदाने चस्यादपस्मारणश्चयत् । इत्यध्यायाष्टकामिदंनिदानस्थानमुच्यते ॥ ४१ ॥

निदानस्थानमें ज्वरनिदान, रक्तपित्तनिदान, गुल्म निदान, प्रमेहनिदान, कुष्ठनिदान, शोषनिदान, उन्मादनिदान एवम् अपस्मारनिदान विषयक आठ अध्याय वर्णन कियेगयेहैं ॥ ४१ ॥

इति निदानस्थानोक्ताष्टकम् ।

विमानस्थानके अध्यायोंके नाम ।

रसेषुत्रिविधेकुक्षौध्वंसेजनपदस्यच ॥ ४२ ॥ त्रिविधेरोगविज्ञानेस्रोतःस्वपिचवर्त्तते । रोगानीकेव्याधिरूपेरोगाणाञ्चभिषग्जिते । अष्टौविमानान्युक्तानिमानार्थानि महर्षिणा ॥ ४३ ॥

विमानस्थानमें-रसविमानाध्याय, त्रिविधकुक्षीय, जनपदोध्वंसनीय, त्रिविधरोग विशेष विज्ञानीय, स्रोतोविमान, रोगानीकविमान, व्याधिरूपीय विमान एवम् रोगभिषग्जितीय विमान ये आठ अध्याय महर्षि आत्रेयजीने वर्णन कियेहैं ४२॥४३॥

इति विमानाष्टकम् ।

शारीरस्थानके अध्यायोंके नाम ।

कतिधापुरुषीयञ्चगोत्रेणातुल्यमेवच ॥ ४४ ॥ खुड्डीकामहती चैवगर्भावक्रान्तिरुच्यते । पुरुषस्यशरीरस्यविचयौद्वौविनिश्चि-

**तौ ॥ ४५ ॥ शरीरसंख्यासूत्रश्चजातेरष्टमउच्यते । इत्युद्दिष्टा-
निमुनिनाशारीराण्यत्रिसूनुना ॥ ४६ ॥**

शारीरस्थानमें-कतिधापुरुषीय, तुल्यगोत्रीय, खुड्डीका गर्भावक्रान्ती, महती गर्भावक्रान्ती, पुरुषविचय, शरीरविचय, शरीरसंख्या और जातिसूत्रीय यह आठ अध्याय भगवान् आत्रेयजीने वर्णन कियेहैं ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

इति शारीरस्थानोक्ताष्टकम् ।

इन्द्रियस्थानके अध्यायोंके नाम ।

**वर्णस्वरीयंपुष्पाख्यस्तथैवपरिमर्षणः । तथैवचेन्द्रियानीकः
पौर्वरूपक्रमेवच ॥ ४७ ॥ कतमानिशरीरीयःपन्नरूपोऽप्यवाक्-
शिराः । यस्यश्यावनिमित्तश्चसद्योमरणएवच ॥ ४८ ॥ अणु-
ज्योतिरितिख्यातस्तथागोमयचूर्णवान् । द्वादशाध्यायकंस्था-
नमिन्द्रियाणांप्रकीर्त्तितम् ॥ ४९ ॥**

इन्द्रियस्थानमें-वर्णस्वरीय और पुष्पाख्य, परिमर्षण, इन्द्रियानीक, पौर्वरूपिक, कतमानिशरीरीय, पन्नरूपीय, अवाक्शिरसीय, यस्यश्यावनिमित्तीय, सद्योमरणीय, अणुज्योतीय और गोमयचूर्णीय-ये बारह अध्याय इन्द्रियस्थानमें वर्णन किये गये ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

इतीन्द्रियस्थानोक्तद्वादशकम् ।

चिकित्सास्थानके अध्यायोंके नाम ।

**अभयामलकीयश्चप्राणकामीयमेवच ।
करप्रचितिकंवेदसमुत्थानंरसायनम् ॥ ५० ॥**

चिकित्सास्थानमें-अभयामलकीय, प्राणकामीय, करप्रचितिक, आयुर्वेदसमुत्थानीय-यह चार रसायनपाद हैं ॥ ५० ॥

**संयोगशरमूलीयमासक्तक्षीरकंतथा ।
माषपर्णतृतीयश्चपुमानूजातवलादिकम् ॥ ५१ ॥**

संयोगशरमूलीय, आसक्तक्षीरीय, माषपर्णतृतीय, पुमान् जातवलादिक-यह चार पाद वाजीकरण पादके हुए ॥ ५१ ॥

**चतुष्कद्वयमप्येतदध्यायद्वयमुच्यते ।
रसायनमितिज्ञेयंवाजीकरणमेवच ॥ ५२ ॥**

यह दो चतुष्क-रसायनपाद और वाजीकरण पाद इन नामोंसे दो अध्याय माने जातेहैं (इन दोनोंके आठ विभाग करनेसे चिकित्सास्थानके छत्तीस अध्याय होजातेहैं इसलिये इन दो चतुष्कोंको दो अध्यायोंमें माना है) ॥ ५२ ॥

ज्वराणांरक्तपित्तस्यगुल्मानांमेहकुष्ठयोः । शोषेऽर्शसमतीसारे वीसर्पेचमदात्यये ॥ ५३ ॥ द्विव्रणीयेतथोन्मादेस्यादपस्मारएव च । क्षतशोथोदरेचैवग्रहणीपाण्डुरोगयोः ॥५४॥ हिक्काश्वासे चकासेचछर्दितृष्णाविषेषु च। मर्मत्रयेचोरुसादेसवातेवातशोणिते ॥ ५५ ॥ त्रिंशच्चिकित्सितान्येवंयोनिनांव्यापदासह ॥ ५६ ॥

ज्वरचिकित्सित, रक्तपित्त चिकित्सित, गुल्मचिकित्सित, प्रमेह चिकित्सित, कुष्ठचिकित्सित, शोषचिकित्सित, अर्शचिकित्सित, अतिसार चिकित्सित, विसर्प चिकित्सित, मदात्ययचिकित्सित, द्विव्रणीय चिकित्सित, उन्मादचिकित्सित, अपस्मार चिकित्सित, क्षतक्षीण चिकित्सित, शोथचिकित्सित, उदररोग चिकित्सित, ग्रहणीरोग चिकित्सित, पांडुचिकित्सित, हिक्काश्वास चिकित्सित, काशचिकित्सित, छर्दीचिकित्सित, तृष्णाचिकित्सित, विषचिकित्सित, त्रिमर्मीय चिकित्सित, ऊरुस्तम्भ चिकित्सित, वातव्याधिचिकित्सित, और वातरक्तचिकित्सित एवम् योनिव्यापदचिकित्सित-यह सब मिलाकर चिकित्सास्थानोक्त तीस अध्याय हुए अर्थात् इन तीस अध्यायोंसे चिकित्सास्थान पूरितह ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६॥

इति चिकित्सास्थानोक्तत्रिंशकम् ।

कल्पस्थानके अध्यायोंके नाम ।

फलजीमूतकेक्ष्वाकुकल्पोधामार्गवस्यच। पञ्चमोवत्सकस्योक्तः षष्ठश्चकृतवेधने ॥ ५७ ॥ श्यामात्रिवृतयोःकल्पस्तथैवचतुरंगुलेः । तिल्वकस्यसुधायाश्चसप्तलाशंखिनीष्वपि । दन्तीद्रवन्त्योःकल्पश्चद्वादशोऽयंसमाप्यते ॥ ५८ ॥

कल्पस्थानमें-मदनकल्प, जीमूतकल्प, इक्ष्वाकु कल्प, धामार्गव कल्प, वत्सक कल्प, कृतवेधन कल्प श्यामात्रिवृत् कल्प, चतुरंगुल कल्प, तिल्वक कल्प, महावृक्ष कल्प, सप्तला शंखिनी कल्प और दंती द्रवन्तीकल्प-यह बारह कल्पस्थानोक्त अध्याय समाप्त हुए॥ ५७॥ ५८ ॥

इति कल्पस्थानोक्तद्वादशकम् ।

सिद्धिस्थानके अध्यायोंके नाम ।

कल्पनापञ्चकर्माख्याबस्तिसूत्रातथैवच । स्नेहव्यापादिकासि-

द्धिर्नेत्रव्यापादिका तथा ॥५९॥ सिद्धिःशोधनयोश्चैवबस्तिसि-
द्धिस्तथैवच॥प्रासृतीमर्मसंख्यातासिद्धिर्बस्त्याश्रयाचया॥६०॥
फलमात्रातथासिद्धिःसिद्धिश्चोत्तरसंज्ञिता ॥ सिद्धयोद्वादशैवै-
तास्तन्त्रञ्चासुसमाप्यते ॥ ६१ ॥

सिद्धिस्थानमें–कल्पनासिद्धि, पंचकर्मीयसिद्धि, वस्तिमूत्रीयसिद्धि,स्वेदव्यापादिका सिद्धि, नेत्रव्यापादिकासिद्धि, वमन विरेचन व्यापत सिद्धि,वस्तिव्यापादिका सिद्धि, प्रासृत योगिका सिद्धि, त्रिमर्मीयसिद्धि, वस्ति सिद्धि,फलमात्रासिद्धि और उत्तर सिद्धि इन बारह अध्यायोंसे सिद्धिस्थान समाप्त कियाहै ॥ ५९॥६०॥६१॥

इति सिद्धिस्थानोक्तद्वादशकम् ।

स्थानार्थ अध्यायार्थ और प्रश्नका लक्षण ।

स्वेस्वेस्थानेतथाध्यायेचाध्यायार्थःप्रवक्ष्यते ॥
तंत्रयात्सर्वतःसर्वंयथास्वंह्यर्थसंग्रहात् ॥ ६२ ॥
पृच्छातन्त्राद्यथाम्नायंविधिनाप्रश्नउच्यते ।

हरएक स्थानमें तथा अध्यायमें स्थानार्थ (स्थानका विषय) और अध्यायका विषय वर्णन कियागयाहै सो उसको उसी उसी अध्याय और उसीउसी स्थानके विषयके अनुसार स्थानार्थ और अध्यायार्थ कथन करना चाहिये । यदि कहीं किसी अध्यायके विषयमें कुछ आगे पीछे हो अथवा नामानुरूप विषयमें कुछ न्यूनता आई हो तो बुद्धिमान् वैद्यको बुद्धि अनुसार विचारकर स्थानार्थ अथवा अध्यायार्थ कहना चाहिये वेदानुसार प्रसंगक्रमसे तंत्रमें पूछनेको प्रश्न कहतेहैं॥६२॥

प्रश्नार्थका लक्षण ।

प्रश्नार्थोयुक्तिमांस्तस्यतन्त्रेणैवार्थनिश्चयः ॥ ६३ ॥

युक्तियुक्त तंत्रद्वाराही उस प्रश्नकी मीमांसा किये जानेको प्रश्नार्थ कहतेहैं॥६३॥

तन्त्रादिकी निरुक्ति ।

निरुक्तंतन्त्रणात्तन्त्रंस्थानमर्थप्रतिष्ठया ।
अधिकृत्यार्थमध्यायनामसंज्ञाःप्रतिष्ठिताः ॥ ६४ ॥

सब विषयोंको इसमें तंत्रण कियागया इसलिये इसको तंत्र कहतेहैं। अर्थ(विषय) प्रतिष्ठित अर्थात् स्थित होनेसे स्थान कहा जाताहै (जैसे सूत्रस्थानादि) ॥६४ ॥

इतिसर्वंयथाप्रश्नमष्टकंसम्प्रकाशितम् ।
कार्त्स्न्येनचोक्तस्तन्त्रस्यसंग्रहःसुविनिश्चितः ॥ ६५ ॥

इस प्रकार यह प्रश्नाष्टक कहागया अर्थात् जो पहिले आठ प्रश्नोंको कथन कियाथा उनके उत्तर रूपमें यह प्रश्नाष्टककी मीमांसा कीगई सो संपूर्णरूपसे यथावत् तंत्रके संग्रहको कथन कियागयाहै ॥ ६५ ॥

अज्ञवैद्यके लक्षण ।

सन्तिपाल्लविकोत्पाताःसंक्षोभंजनयन्तिये।वर्त्तकानामिवोत्पाताः सहसैवाविभाविताः।तस्मात्तान्पूर्वसंजल्पेसर्वत्राष्टकमादिशेत् ॥ ६६ ॥ परस्परपरीक्षार्थंनात्रशास्त्रविदांबलम्। शब्दमात्रेणतन्त्रस्यकेवलस्यैकदेशिकाः ।भ्रमन्त्यल्पबलास्तन्त्रेज्याशब्देनैववर्त्तकाः ॥ ६७ ॥

बहुतसेलोग इधरउधरसे एकाध वात सीखकर इस प्रकार अभिमान और क्रोध दिखातेहैं जैसे-वटेरपक्षी अपने चोंचसे एक पत्रको उठाकर इधरउधर उलटा और सीधा नाच करताहै ठीक उसी प्रकार यह लोग भी किसी ग्रंथकी एकाधमूलवातको याद कर घमण्डी वैद्यराज बन बैठतेहैं। इसलिये उनसे वात करतेही प्रथम प्रश्नाष्टक (पूर्वोक्त आठ प्रश्न) कर देनाचाहिये। इसपर यथार्थ और अयथार्थ कथन करनेमें अथवा पर अपरकी परीक्षाके लिये प्रश्नाष्टक कियेजानेपर आयुर्वेदके न जाननेवाले मनुष्यका बल स्पष्टरूपसे दिखाई देजाताहै । तात्पर्य यह हुआ कि आयुर्वेदका ज्ञाता ही प्रश्नाष्टकका यथोचित उत्तर देसकताहै । जो मनुष्य केवल एकदेशका जाननेवाला है वह इस प्रश्नाष्टकको सुनकर इस प्रकार घबराजाताहै जैसे-धनुषकी टंकारको सुनकर बटेर उडजायाकरतेहैं ॥ ६६ ॥ ६७ ॥

पशुः पशूनांदौर्बल्यात्कश्चिन्मध्येवृकायते। समत्वंवृकमासाद्य प्रकृतिंभजतेपशुः ॥ ६८ ॥ तद्वदज्ञोऽज्ञमध्यस्थःकश्चिन्मौखर्य्यसाधनः । स्थापयत्याप्तमात्मानमाप्तन्त्वासाद्यभिद्यते ॥ ६९ ॥

जैसे-दुर्बल पशुओंमें बलवान् पशु भेडियेका आकार बनाकर अपने आपको महा पराक्रमी जंचाता है परन्तु असली भेडियेके आजानेपर जैसा वह पशु होताहै वैसाही होकर भागना पडताहै। ठीक उसी प्रकार मूर्खोंके बीचमें बकवाद करनेवाला चपल मनुष्यभी अपने आपको बडाभारी योग्य और प्रामाणिक जंचाताहै और किसी योग्य पंडितके आजानेपर पूर्वोक्त पशुके समान पूंछको छिपाता फिरताहै६८॥६९॥

बभ्रुर्मूढइवोर्णाभिरबुद्धिरबहुश्रुतः ।
किंवैवक्ष्यतिसंजल्पेकुण्डभेदीजडोअथा ॥ ७० ॥

जैसे-भूंड मकडीके तारोंसे जकडा जानेपर कुछ नहीं बोल सकता और जैसे नीच जातिका मनुष्य अपने आपको ब्राह्मण बताकर फिर बहुतसे लोगोंमें नीच जाति प्रगट होजानेपर कुछ नहीं कहसकता एवम् जैसे-बुड्ढा नेवला रस्सियोंसे जकडा जानेपर चुपका बैठारहताहै उसी प्रकार ढोंग मारनेवाला मूर्ख वैद्य भी विद्वान् वैद्यको देखकर अपने छलके प्रगट होनेके भयसे भीत हुआ मूढ बनाबैठा रहताहै ॥ ७० ॥

सद्वृत्तैर्नविगृह्णीयाद्भिषगल्पश्रुतैरपि । हन्यात्प्रश्नाष्टकेनादावितरांस्त्वात्समानिनः ॥ ७१ ॥ दम्भिनोमुखराह्यज्ञाःप्रभूता बद्धभाषिणः ॥ ७२ ॥

यदि थोडा पढा हुआ वैद्य भी शुद्ध और पवित्र आचरणवाला हो तो बुद्धिमान्को चाहिये, प्रश्नाष्टक द्वारा हरानेका यत्न न करे । परन्तु मूर्ख, पाखंडी, वकवादी, चपल और अभिमानी इनको तो प्रथम ही प्रश्नाष्टकद्वारा हतबुद्धि बनादेना चाहिये ॥७१ ॥ ७२ ॥

प्राय:प्रायेणसुमुखाःसन्तोयुक्ताल्पभाषिणः । तत्त्वज्ञानप्रकाशार्थमहंकारमनाश्रिताः ॥ ७३ ॥ स्वल्पाधाराज्ञमुखरान्दर्शेयुर्नविवादिनः॥ परोभूतेष्वनुक्रोशस्तत्त्वज्ञानेपरादया । येषां तेषामसद्वादनिग्रहेनिरतामतिः ॥ ७४ ॥

प्रायः श्रेष्ठ मनुष्य विनयको ग्रहण करके युक्तियुक्त बहुत थोडा और मीठा बोलनेवाले होतेहैं ।वह एकाधबातके जाननेवाले मूर्खोंसे विवाद करके अपने आपको बडा दिखाना नहीं चाहते क्योंकि वह महात्मा अहंकाररहित होकर तत्त्वज्ञानके प्राप्त करनेके लिये अथवा तत्त्वज्ञानका प्रकाश करनेके लिये सद्वृत्तिका अवलम्बन करतेहैं । सम्पूर्ण जीवोंपर परमदया करनेमें तथा तत्त्वज्ञानमें जिनकी बुद्धि लगी हुई है वह लोग झूठे बकवादको खण्डन करने या उससे अलग रहनेमें दत्तचित्त रहतेहैं ॥ ७३ ॥ ७४ ॥

असत्पक्षाक्षणिकत्वार्त्तिदम्भपारुष्यसाधनाः ॥ ७५ ॥ भवन्त्यनासाःस्वेतन्त्रेप्राय:परविकत्थनाः ॥ तत्कालपाशसदृशान्वर्जयेच्छास्त्रदूषकान् ॥ ७६ ॥

झूठे पक्षका अवलम्बन करनेवाले पाखण्डी,कठोर प्रकृतिवाले, रणाई निन्दा करनेवाले इस शास्त्रसे कुछ भी लाभ नहीं उठासकते । अर्थात् ऐसे दुष्टोंको यह शास्त्र

नहीं आता और जिनको शास्त्र आता है उनमें यह दुष्ट भाव नहीं होते । इस लिये उन शास्त्रनिंदकोंको कालकी फांसीके समान दूरसे ही त्याग देनाचाहिये ७५॥७६

सेवनीय वैद्य ।

प्रशमज्ञानविज्ञानपूर्णाःसेव्याभिषक्तमाः ॥ ७७ ॥ समग्रंदुःखमायातमविज्ञानेद्वयाश्रयम् । सुखंसमग्रंविज्ञाने विमलेचप्रतिष्ठितम् ॥ ७८ ॥

जो वैद्य प्रशम अर्थात् रोगनाशक शास्त्रके ज्ञानी हैं एवम् चिकित्सा सम्बन्धी संपूर्ण विषयोंके विज्ञानसे पूर्ण हैं ऐसे योग्य पुरुषोंका नित्य सेवन करनाचाहिये । क्योंकि संसारमें संपूर्ण दुःख अज्ञानसे और संपूर्ण सुख निर्मल ज्ञानसे प्राप्त होतेहैं तात्पर्य यह हुआ कि अज्ञानमें संपूर्ण दुःख प्रतिष्ठित रहतेहैं और निर्मल ज्ञानमें संपूर्ण सुख प्रतिष्ठित रहतेहैं ॥ ७७ ॥ ७८ ॥

इदमेवमुदारार्थमज्ञानार्थप्रकाशकम् ।
शास्त्रंदृष्टिप्रनष्टानांयथैवादित्यमण्डलमिति ॥ ७९ ॥

जैसे नष्टदृष्टि अर्थात् चक्षुहीन मनुष्योंको सूर्यसे प्रकाशके कुछ लाभ नहीं पहुंच सकता उसी प्रकार मूर्खोंको इस बहुमूल्य आयुर्वेदशास्त्रसे कुछ लाभ नहीं पहुंच-सकता अथवा जैसे योगदृष्टिहीन मनुष्योंके लिये और धर्मदृष्टिहीन मनुष्योंके लिये सूर्यका प्रकाश उनके कार्यकी सहायताका कारण होता है उसी प्रकार यथार्थ ज्ञानहीन मनुष्योंको आयुर्वेदकी एकाधबात सीखलेना लोगोंको ठगनेमें सहायता-कारक होताहै ॥ ७९ ॥

तत्रश्लोकाः ।

अर्थेदशमहामूलाः संज्ञास्तेषांयथाकृताः । अयनान्ताः षडग्र्याश्चरूपंवेदविदांचयत् ॥ ८० ॥ सप्तकश्चाष्टकश्चैवपरिप्रश्नः सनिर्णयः । यथावाच्यंयदर्थेश्चषड्विधाश्चैकदेशिकाः ॥ ८१ ॥ अर्थेदशमहामूलेसर्वमेतत्प्रकाशितम् । संग्रहश्चैवमध्यायस्तन्त्रस्यास्यैवकेवलः ॥ ८२ ॥

यहांपर अध्यायकी पूर्तिमें श्लोक हैं:—इस अर्थदशमूलीय अध्यायमें महादशमूलोंकी संज्ञा, स्थान, छः अंग, आयुर्वेदके जाननेवालेका स्वरूप, सप्तक तथा अष्टक प्रश्नावलीकी मीमांसा कथन करनेका निर्देश और अर्थ षड्विध तथा एकदेशिक

विद्वान् और अध्यायोंका संग्रह तथा स्थानसंग्रह एवम् इस तंत्रका विषय वर्णन कियागयाहै ॥ ८० ॥ ८१ ॥ ८२ ॥

सूत्रस्थानकी निरुक्ति ।

यथासुमनसांसूत्रंसंग्रहार्थंविधीयते ।
संग्रहार्थंयथार्थानामृषिणासंग्रहःकृतः ॥ ८३ ॥

इति अग्निवेशकृते तन्त्रे चरकप्रतिसंस्कृते सूत्रस्थाने
अर्थे महादशमूलीयो नाम त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३० ॥

जिस प्रकार फूलोंको गठन करनेकेलिये धागा होताहै अर्थात् जिस प्रकार धागेमें फूल गूंथे जातेहैं उसी प्रकार संपूर्ण संग्रहको इस सूत्रस्थानमें भगवान् आत्रेयजीने गठन कियाहै ॥ ८३ ॥

इति श्रीमहर्षिचरक० पं० रामप्रसादवैद्य० भाषाटीकायामन्नपानविधिर्नाम
त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३० ॥

अग्निवेशकृतेतन्त्रेचरकप्रतिसंस्कृते ।
इयतावधिनासर्वंसूत्रस्थानं समाप्यते ॥

महर्षि अग्निवेशके रचेहुए तथा महात्मा चरकद्वारा प्रतिसंस्कार कियेहुए इस आयुर्वेद तंत्रमें यह सूत्रस्थान इन तीस अध्यायोंमें समाप्त हुआ ॥

दोहा ।

इह विधि सूत्रस्थान यह सूत्रित तंत्र महान ।
सो प्रसादनयुत भयो, लघुमति जैहैं जान ॥ १ ॥

अथ निदानस्थानम् ।

प्रथमोऽध्यायः ।

अथातोज्वरनिदानंव्याख्यास्याम इतिहस्माहभगवानात्रेयः।

अब हम ज्वरनिदानकी व्याख्या करते हैं, इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कथन करने लगे ।

निदानके पर्यायवाची शब्द ।

इहखलुहेतुर्निमित्तमायतनंकर्त्ताकारणंप्रत्ययः समुत्थाननिदानमित्यनर्थान्तरम् ॥ १ ॥

इस शास्त्रमें—हेतु, निमित्त, कर्त्ता, कारण, प्रत्यय, समुत्थान, निदान इन सब शब्दोंका एक ही अर्थ है अर्थात् यह सब शब्द निदानके वाचक हैं ॥ १ ॥

त्रिविध निदान ।

तत्त्रिविधम् असात्म्येन्द्रियार्थसंयोगः प्रज्ञापराधःपरिणामश्चेति ॥ २ ॥

वह निदान तीन प्रकारका है—१असात्म्येन्द्रियार्थ,२ प्रज्ञापराध, ३परिणाम ॥२॥

व्याधियोंके भेद ।

अतस्त्रिविधाविकल्पाव्याधयःप्रादुर्भवन्त्याग्नेयसौम्यवायव्याः द्विविधाश्चापरेराजसास्तामसाश्च ॥ ३ ॥

निदान--तीन प्रकारका होनेसे व्याधियां भी तीन प्रकारकी ही होतीहैं । उन तीनोंमें शारीरिकव्याधि—वात, पित्त, कफजनित होनेसे तीन प्रकार की होते हैं । मानासिक व्याधि—राजस और तामस भेदसे दो प्रकारकी हैं ॥ ३ ॥

व्याधिके पर्याय शब्द ।

तत्रव्याधिरामयोगदआतङ्कोयक्ष्माज्वरोविकारइत्यनर्थान्तरम्॥४॥

व्याधि, आमय, गद, आतंक, यक्ष्मा, ज्वर, विकार, और रोग यह सब शब्द एक ही अर्थवाले हैं । अर्थात् रोगके वाचक हैं ॥ ४ ॥

रोगकी उपलब्धिके विषय ।

तस्योपलब्धिर्निदानपूर्वरूपलिङ्गोपशयसम्प्राप्तितश्च ॥ ५ ॥

वह रोग निदान, पूर्वरूप, रूप, उपशय, संप्राप्ति इन पांच प्रकारोंसे जाना जा-सकताहै। अर्थात् रोगके बतलानेवाले यह पांच प्रकार हैं ॥ ५ ॥

निदानका लक्षण।

तत्रानिदानंकारणमित्युक्तमग्रे ॥ ६ ॥

उनमें निदान कारणको कहतेहैं-यह पहिले कथन कर आये हैं। (निदान रोगके उत्पन्न करनेवाले कारण को कहते हैं) ॥ ६ ॥

पूर्वरूपके लक्षण।

रूपंप्रागुत्पत्तिर्लक्षणंव्याधेः ॥ ७ ॥

रोग उत्पन्न होनेसे प्रथम होनेवाले लक्षणोंको पूर्वरूप कहते हैं ॥ ७ ॥

लिङ्गके लक्षण।

प्रादुर्भूतलक्षणंपुनर्लिङ्गंतत्रालिङ्गमाकृतिर्लक्षणंचिह्नंसंस्थानं व्यञ्जनंरूपमित्यनर्थान्तरम् ॥ ८ ॥

व्याधिके प्रगट हो जानेको रूप अथवा लक्षण कहते हैं। या यों कहिये कि, व्याधिके प्रगट होजाने पर व्याधिके जो लक्षण होते हैं उनको रूप कहते हैं लिङ्ग, आकृति, लक्षण, चिह्न, संस्थान, व्यंजन और रूप यह सब शब्द एकही अर्थके वाचक हैं ॥ ८ ॥

उपशयके लक्षण।

उपयशः पुनर्हेतुव्याधिविपरीतानां विपरीतार्थकारिणाञ्चौष-धाहारविहाराणां उपयोगःसुखानुबन्धः ॥ ९ ॥

हेतुसे विपरीत, व्याधिसे विपरीत और हेतु व्याधि इन दोनोंके विपरीत तथा अर्थके करनेवाले औषधि आहार विहारका उपयोग करना सुखकारक अर्थात् आरो-ग्यकारी होता है उसीको उपशय कहते हैं। और उसीको सात्म्य कहते हैं। तात्पर्य यह हुआ कि रोगोत्पादक हेतुसे विपरीत और व्याधिसे विपरीत तथा हेतु और व्याधि इन दोनोंसे विपरीत और विपरीत अर्थ करनेवाला अर्थात् व्याधि और व्याधिके कारणको हटानेवाला तथा दोनोंको हटानेवाला औषध अन्न और विहार सुखको देनेवाला होता है उसीको सात्म्य (शरीरके अनुकूल) और उपशय कहते हैं ॥ ९ ॥

संप्राप्तिके पर्याय।

संप्राप्तिर्जातिरागतिरित्यनर्थान्तरंव्याधेः ॥ १० ॥

रोगकी उत्पत्तिको अर्थात् जिस प्रकार जितने अंशोंसे जिन जिन दोषोंको लेकर शरीरके जिस २ भागमें व्याधि उत्पन्न होती है उसको संप्राप्ति कहते हैं। संप्राप्ति, जाति, आगति ये सब एक ही अर्थके वाचक शब्द हैं ॥ १० ॥

सम्प्राप्तिके भेद।

सासंख्याप्राधान्यविधिविकल्पबलकालविशेषैर्भिद्यते ॥ ११ ॥

संख्या, प्राधान्य, विधि, विकल्प एवम् बल, कालके भेदसे संप्राप्तिके विभाग कियेगयेहैं अर्थात् संख्यादि संप्राप्तिके भेद हैं ॥ ११ ॥

संख्यासम्प्राप्तिके लक्षण।

संख्या यथाष्टौज्वराः पञ्चगुल्माः सप्तकुष्ठान्येवमादि ॥ १२ ॥

अब संख्याके लक्षणको कहतेहैं-जैसे, आठ प्रकारके ज्वर, पांच प्रकारके गुल्म, सात प्रकारके कुष्ठ इत्यादिक जो गणना है उसको संख्या कहते हैं ॥ १२ ॥

प्राधान्यसम्प्राप्तिके लक्षण।

प्राधान्यंपुनर्दोषाणांतरतमयोगेनोपलभ्यते तत्र द्वयोस्तरस्त्रिषु तमइति ॥ १३ ॥

वात, पित्त, कफ इन तीन दोषोंमें-वात और पित्त अल्प होनेसे अप्रधान और कफ अधिक होनेसे प्रधान माना जाता है। इस प्रकार दोषके न्यूनाधिक योग द्वारा प्राधान्य जानना चाहिये। जैसे-त्रिदोषज्वरमें वात अल्प हो पित्त मध्य हो और कफ अधिक हो तो उस सन्निपातको अल्पवात, मध्य पित्त, और कफ प्रधान कहाजाताहै। अथवा ज्वरातिसारमें ज्वर प्रधान है कि अतिसार प्रधान है इस तरह पर एक कालमें एक पुरुषको दो तीन व्याधियोंमेंसे जो व्याधि स्वतंत्र हो उसको प्रधान कहते हैं। और जो परतंत्र हो उसको अप्रधान कहते हैं। इस प्रकार अन्यत्र भी जानना चाहिये ॥ १३ ॥

विधिसम्प्राप्तिके लक्षण।

विधिर्नामद्विविधाव्याधयोनिजागन्तुभेदेनत्रिविधास्त्रिदोषभेदे-नचतुर्विधाःसाध्यासाध्यमृदुदारुणभेदेनपृथक् ॥ १४ ॥

अब विधिके लक्षणोंको कहते हैं। यथा-व्याधि दो प्रकारकी होती है. एक निज, दूसरी आगन्तुक, फिर वह वात, पित्त, कफ भेद से तीन प्रकारकी है। साध्य, असाध्य, मृदु और दारुण, इन भेदोंसे चार प्रकारकी होती है इस प्रकार रोगोंके भेदके क्रमको विधि कहते हैं ॥ १४ ॥

विकल्पसम्प्राप्तिके लक्षण ।

विकल्पोनामसमवेतानांपुनर्दोषाणामंशांशबलविकल्पोऽस्मि-न्नर्थे ॥ १५ ॥

मिले हुए दोषों के अंशांश कल्पना को विकल्प कहते हैं। जैसे-सन्निपात ज्वरके अनेक विकल्प हैं ॥ १५ ॥

बलकालका लक्षण ।

बलकालविशेषःपुनर्व्याधीनामृत्वहोरात्राहारकालविधिनियतो भवति ॥ १६ ॥

व्याधियोंका ऋतु, दिन, रात्रि, आहार, काल और विधि भेदसे बल और कालका जानना बलकाल विशेष संप्राप्त कहा जाता है। जैसे-वसन्त ऋतुमें कफ का काल कृत बल होता है एवम् रात्रिके प्रथम भागमें कफका बल होता है, दिनके प्रथम भागमें कफका बल होता है और भोजनके प्रथम भागमें कफका बल होता है एवम् शरद ऋतुमें, मध्य रात्रिमें, मध्य दिनमें, भोजनके मध्यमें, अथवा भोजनकी परिपाकावस्थामें पित्तका बल होता है। इसी प्रकार वर्षा ऋतुमें, रात्रिके अंतमें, दिनके अंतमें, भोजनके अंतमें वातका बल होता है। इसी प्रकार कफकी व्याधिका वसंत ऋतु कोपकाल है,पित्तका शरद,आधी रात्र, मध्याह्न,और भोजनका परिपाक समय कोपकाल जानना।इस प्रकार बल,काल,विशेष,संप्राप्ति जानना॥१६॥

तस्माद्व्याधीन्भिषगनुपहतसत्त्वबुद्धिर्हेत्वादिभिर्भावैर्यथावद-नुबुध्येत् ॥ १७ ॥

इस लिये बुद्धियुक्त वैद्य हेतु आदिक भावोंसे अर्थात् निदानादिकों द्वारा रोगकी यथार्थ परीक्षा करे ॥ १७ ॥

विशेषतासे निदान कथन ।

इत्यर्थसंग्रहोनिदानस्थानस्योद्दिष्टःभवतितंविस्तरेणभूयः पर-मतोऽनुव्याख्यास्यामः ॥ १८ ॥

इस प्रकार सक्षेपसे संपूर्ण निदानको कथन कियाहै । अब फिर विशेषरूपसे कथन करते हैं ॥ १८ ॥

तत्रप्रथमएवतावदाद्याल्लोभाभिद्रोहकोपप्रभवानष्टौव्याधीन्निदा-नपूर्वेणक्रमेणअनुव्याख्यास्यामः ॥ १९ ॥

अब क्रमपूर्वक लोभ और अभिद्रोह अथवा मिथ्याआहार और अनाचारसे उत्पन्न हुई आठ प्रकारकी व्याधियोंको निदानादि क्रमसे कथन करते हैं ॥ १९ ॥

तथासूत्रसंग्रहमात्रंचिकित्सायाःचिकित्सितेषुचोत्तरकालंयथो-
द्दिष्टंविकारानुव्याख्यास्यामः ॥ २० ॥

और चिकित्साको भी सूत्रसंग्रह मात्रसे अर्थात् संक्षेपरूपसे कथन करते हैं विशेषरूपसे तो संपूर्ण रोगोंका निदान और उपाय यथाक्रम चिकित्सा स्थानमें कथन करेंगे ॥ २० ॥

ज्वरके भेद ।

इहखलुज्वरएवादौविकाराणामुपदिश्यते ।
तत्प्रथमत्वाच्छारीराणाम् ॥ २१ ॥

क्योंकि संपूर्ण शारीरिक विकारोंमें ज्वरही प्रधान माना गया है अथवा संपूर्ण विकारोंमें प्रथम ज्वरकी उत्पत्ति हुई है इसलिये इस निदानस्थानमें प्रथम ज्वरका ही कथन करते हैं ॥ २१ ॥

अथखल्वष्टाभ्यःकारणेभ्योज्वरःसञ्जायतेमनुष्याणांतद्यथावा-
तात् पित्तात्कफाद्वातपित्ताभ्यांपित्तश्लेष्मभ्यांवातश्लेष्मभ्यां
वातपित्तश्लेष्मभ्यःआगन्तोरष्टमात्कारणात् । तस्यनिदान-
पूर्वरूपलिङ्गोपचयविशेषानुपदेक्ष्यामः ॥ २२ ॥

अब कहते हैं कि ज्वर आठ कारणोंसे मनुष्योंके शरीरमें उत्पन्न होता है । वह आठ कारण इस प्रकार हैं । जैसे—वातसे, पित्तसे, कफसे, वातपित्तसे, पित्तकफसे, वातकफसे एवम् वातपित्तकफसे आठवां आगन्तुक कारणसे सो उस आठ प्रकारके ज्वरको निदान, पूर्वरूप,रूप,उपशय और संप्राप्ति विशेषसे कथन करतेहैं॥२२॥

वायुकोपका कारण ।

तद्यथारूक्षलघुशीतव्यायामवमनविरेचनास्थापनशिरोविरेच-
नातियोगवेगसन्धारणानशनाभिघातव्यवायोद्वेगशोकशोणि-
तातिसेकजागरणविषमशरीरन्यासेभ्योऽतिसेवितेभ्योवायुःप्र-
कोपमापद्यते ॥ २३ ॥

वह इस प्रकार है । रूक्ष, लघु,शीतल पदार्थोंके सेवनसे, परिश्रम करनेसे,वमन, विरेचन और आस्थापनके अतियोगसे, मलमूत्रादि वेगोंको रोकनेसे, उपवास करनेसे,चोट लगनेसे,मैथुन करनेसे,उद्वेग और शोच होनेसे,रक्तके अत्यन्त निकलनेसे, रात्रिमें जागनेसे, शरीरको ऊंचा नीचा तिरछा आदि करनेसे इन सब कारणोंके अधिक सेवनसे शरीरमें वायुका कोप होताहै ॥ २३ ॥

अतिकुपितवायुका कर्म ।

सयदाप्रकुपितःप्रविश्यामाशयमुष्मणःस्थानमुष्मणासहामिश्रीभूतआद्यमाहारपरिणामधातुंरसनामानमन्ववेद्यरसस्वेदवहानिचस्त्रोतांसिचपिधायाग्निमुपहत्यपक्तिस्थानादुष्माणंबहिःनिरस्यकेवलंशरीरमनुपद्यतेतदाज्वरमभिनिर्वर्त्तयतितस्येमानि लिङ्गानिभवन्ति ॥ २४ ॥

वह कुपित हुई वायु आमाशयमें प्रवेश करके आमाशयकी गर्माईमें मिल जाती है । फिर वह आहारके सारभूत रस नामक धातुका आश्रय लेकर रस और स्वेदके वहनेवाले छिद्रोंको रोक देती है । फिर पाचकाग्निको हनन करके पक्ति स्थानकी गर्माईको बाहर निकाल देती है । फिर वह वायु शरीरको यथोचित अग्निबलहीन देखकर बल पा जाती है । वह बल पाया हुआ वात वातज्वरको उत्पन्न करता है ॥ २४ ॥

वातज्वरके लिंग व अंगविशेषोंमें वेदना विशेष ।

तद्यथाविषमारम्भविसर्गित्वमूष्मणोवैषम्यंतीव्रतनुभावानवस्थानानिज्वरस्यजरणान्तेदिवसान्तेघर्मान्तेवाज्वराभ्यागमनमभिवृद्धिर्वाज्वरस्याविशेषेणपरुषारुणवर्णत्वंनखनयनवदनमूत्रपुरीषत्वचामत्यर्थंक्लिप्तीभावश्चानेकविधोपमाश्चचलाचलाश्च वेदनास्तेषांतेषामङ्गावयवानाम् । तद्यथापादयोःसुप्ततापिण्डिकयोरुद्वेष्टनंजानुनोःकेवलानाश्चसन्धीनांविश्लेषणमूर्वोःसादः कटीपार्श्वपृष्ठस्कन्धबाह्वंसोरसाश्चभग्नरुग्णमृदितमथितचटितावपीडितावतुन्नत्वमिवहन्वोरप्रसिद्धिः स्वनश्चकर्णयोःशंखयोर्निस्तोदः कषायास्यत्वमास्यवैरस्यंवामुखतालुकण्ठशोषः पिपासाहृदयग्रहःशुष्कछर्दिःशुष्ककासःक्षवथूद्गारविनिग्रहोऽन्नरसस्वेदःप्रसेकारोचकाविपाकाःविषादविजृम्भाविनामवेपथुश्रमभ्रम-प्रलापजागरणलोमहर्षदन्तहर्षास्तथोष्माभिप्रायता निदानोक्तानामनुपचयोविपरीतोपचयश्चेतिवातज्वरलिङ्गानिस्युः ॥ २५ ॥

उस ज्वरके यह लक्षण होते हैं जैसे–ज्वरके चढनेके समय और उतरनेके समय शरीरके तापमें विषमता, कभी शरीरका अधिक तपना और कभी थोडा तपना, ज्वरका एकसा न रहना, कभी ज्वर तीक्ष्ण और कभी मंद होना, तथा भोजनके पचजानेके अनन्तर सायंकालमें एवम् वर्षा ऋतुमें उत्पत्ति अथवा वृद्धि होना एवम् नख, नेत्र, मुख, मूत्र, मल और त्वचा इन सबका कठोर और शुष्क होजाना तथा लाल वर्णके दिखाई देना, शरीरका वर्ण चिकटा सा हो जाना, शरीरके अंगोंमें क्षणक्षणमें इधर उधर चलनेवाली तथा स्थिर रहनेवाली वायुकी पीडा होना जैसे पैरोंका सोजाना, पिण्डलियोंमें उद्वेष्टन (लपेटनेकीसी पीडा) होना, जानुओंका तथा अन्य संधियोंका ढीले ढलिसे पड जाना, दोनों जांघोंका रहसा जाना, कटि, पार्श्व, पीठ, कंधे, भुजा और कंधेके ऊपरके भागमें एवम् वक्षस्थलमें तोडनेकीसी पीडा तथा मर्दन करनेकीसी पीडा एवम् मथनेकीसी पीडा होना तथा चटकानेकीसी पीडा, मीडनेकीसी पीडा और सूई चुभानेसी पीडा होना, ठोडीका जकडना कानोंमें शब्द होना, कनपटियोंमें सूई चुभनेकीसी पीडा होना, मुखका कसैला होना एवम् विरस होना । मुख, तालु, और कण्ठका सूखना, तृषा, छातीमें दर्द, सूखी छर्दी, सूखी खांसी और छींक इनका होना, डकार न आना, अन्नके रसयुक्त थूकना, अरुचि, अन्नका न पचना, चित्तमें विषाद रहना, जंभाई अधिक आना, शरीरका नमजाना, कंप होना, थकावट मालूम देना, भ्रम होना, बकना, निद्रा न आना, रोमाञ्च होना, दंतहर्ष होना, गर्मीकी इच्छा होना, वातनाशक, उष्ण, स्निग्ध आदि पदार्थोंसे रोगकी शान्ति होना, एवम् रूक्ष, शीत आदिकोंसे रोगका बढना यह सब लक्षण वातज्वरके होतेहैं ॥ २५ ॥

पित्तकोपका कारण ।

उष्णाम्ललवणक्षारकटुकाजीर्णभोजनेभ्योऽतिसेवितेभ्यस्तथातितीक्ष्णातपाग्निसन्तापश्रमक्रोधविषमाहारेभ्यः पित्तंप्रकोपमापद्यते ॥ २६ ॥

अब पित्तकोपके कारणोंको कहतेहैं । जैसे उष्ण, अम्ल, लवण, क्षार, चरपरे पदार्थोंके सेवनसे एवम् अजीर्णकर्त्ता भोजनके अधिक सेवनसे तथा अतितीक्ष्ण, धूप, अग्नि और संतापके सेवनसे, परिश्रम करनेसे तथा विषम भोजन करनेसे इन सब कारणोंसे पित्तका प्रकोप होताहै ॥ २६ ॥

प्रकुपित पित्तका कर्म ।

तद्यथाप्रकुपितमामाशयादेवोष्माणमुपसंसृज्याद्यमाहारपरि-

णामधातुंरसनामानमन्वावेद्यरसस्वेदवहानिचस्रोतांसिपिधा-
यद्रवत्वादग्निमुपहत्यपक्तिस्थानादूष्माणंबहिर्द्वारंनिरस्यप्रपीड-
यन्केवलंशरीरमुपपद्यतेतदाज्वरमभिनिर्वर्त्तयति ॥ २७ ॥

फिर वह पित्त कुपित होकर आमाशयसे गर्मीको उत्तेजन करताहुआ आहारका परिणामरूप जो रसनामक धातु है उसमें मिलकर स्वेद और रसके बहानेवाले छिद्रोंको रोक देताहै । फिर अपने द्रवसे जठराग्निको हनन कर पाचकस्थानकी गर्मीको बाहर निकाल देताहै । तब अपना अधिकार पाकर शरीरको पीडन करताहुआ पित्तज्वरको उत्पन्न करताहै ॥ २७ ॥

पित्तज्वरके लक्षण ।

तस्येमानिलिङ्गानिभवन्ति। तद्यथायुगपदेवकेवलेशरीरेज्वरा-
भ्यागमनमभिवृद्धिर्वा । भुक्तस्यविदाहकालेमध्यान्दिनेऽर्द्धरा-
त्रेशरदिवाविशेषेणकटुकास्यताघ्राणमुखकण्ठोष्ठतालुपाकस्तृ-
ष्णाभ्रमोमदोमूर्च्छापित्तच्छर्दनमतीसारोऽन्नद्वेषःसदनंस्वेदःप्र-
लापोरक्तकोठाभिनिर्वृत्तिःशरीरेहरितहारिद्रत्वंनखनयनवद-
नमूत्रपुरीषत्वचामत्वचामत्यर्थमुष्मणस्तीव्रभावोऽतिमात्रंदा-
हःशीताभिप्रायतानिदानोक्तानामनुपचयोविपरीतोपचयश्चे-
तिपित्तज्वरलिङ्गानिभवन्ति ॥ २८ ॥

उसके ये लक्षण होतेहैं ।शरीरमें एकदम ज्वरका वेग होना,भोजनके पाकके समय दिनके मध्यमें, अर्धरात्रिमें, शरदऋतुमें विशेष करके ज्वरकी वृद्धि होना या उत्पन्न होना, मुखमें कटुता, नाक, मुख, कण्ठ, ओष्ठ और तालुका पकना, तृषा, भ्रम, मोह, मूर्च्छा, मुखसे पित्तका निकलना, पतला दस्त होना, आहारमें अरुचि,स्वेद, प्रलाप, शरीरमें लाल वर्णके चकत्ते प्रगट होना, नेत्र, नख, मुख, मूत्र,पुरीष, त्वचा इनका हलदीके समान पीलावर्ण होना, गर्मी अधिक प्रतीत होना, अधिक दाह होना, शीतल वस्तुकी इच्छा होना एवम् उष्ण वस्तुओंसे रोगका बढना, शीतल वस्तुओंसे शान्त होना यह पित्तज्वरके लक्षण होतेहैं ॥ २८ ॥

कफप्रकोपका कारण ।

स्निग्धमधुरगुरुशीतपिच्छिलाम्ल-लवण-दिवास्वप्नहर्षव्या-
यामेभ्योऽतिसेवितेभ्यःश्लेष्माप्रकोपमापद्यते ॥ २९ ॥

चिकने, मधुर, भारी, शीतल, पिच्छिल, अम्ल, एवम् लवण पदार्थोंके खानेसे; दिनमें सोनेसे, हर्षसे, परिश्रम न करनेसे इत्यादि कफवर्द्धक पदार्थोंके अधिक सेवनसे कफका कोप होताहै ॥ २९ ॥

प्रकुपितकफका कर्म ।

सयदाप्रकुपितःप्रविश्यामाशयमूष्मणासहामिश्रीभूतमाद्यमाहारपरिणामधातुंरसनामानमन्ववेत्यरसस्वेदवहानिचस्रोतांसि पिधायाग्निमुपहत्यपक्तिस्थानादूष्माणंबावहिःनिरस्यप्रपीडयन्केवलंशरीरमुपपद्यतेतदाज्वरमभिनिर्वर्त्तयति ॥ ३० ॥

वंह कुपित हुआ कफ आमाशयमें प्रवेश करके जठराग्निकी गर्मीके साथ मिलकर आहारके परिणामरूप रस नामक धातुके साथ जाकर रस और स्वेदके वहानेवाले छिद्रोंको रोक देताहै। तब जठराग्निको हनन करके पाचकाग्निकी गर्मीको बाहर निकाल देताहै। फिर अपना अधिकार पाकर शरीरको पीडित करताहुआ कफज्वर उत्पन्न करताहै ॥ ३० ॥

कफज्वरके लक्षण ।

तस्येमानिलिङ्गानिभवन्ति।तद्यथायुगपदेवकेवलेशरीरेज्वराभ्यागमनमभिवृद्धिर्वाभुक्तमात्रेपूर्वाह्णेपूर्वरात्रेवसन्तकालेवाविशेषेणगुरुगात्रत्वमनन्नाभिलाषः श्लेष्मप्रसेकोमुखस्यचमाधुर्यंहृल्लासोहृदयोपलेपस्तिमिरत्वंछर्दिर्मृद्वग्नितानिद्राधिक्यंस्तम्भःतन्द्राश्वासःकासःप्रतिश्यायः शैत्यंश्वैत्यञ्चनयननखवदनमूत्रपुरीषत्वचामत्यर्थंशीतपिडकाभृशमङ्गेभ्यउत्तिष्ठति उष्णाभिप्रायतानिदानोक्तानामनुपचयोविपरीतोपचयश्चेतिश्लेष्मज्वरलिङ्गानिभवन्ति ॥ ३१ ॥

उसके ये लक्षण होतेहैं शरीरमें एकदम ज्वरका प्रगट होना, भोजन करतेही पूर्वाह्णमें, रात्रिके प्रथमभागमें एवम् वसन्तऋतुमें ज्वरका अधिक होना अथवा उत्पन्न होना एवम् शरीरमें भारीपन, अन्नमें अरुचि, मुखसे कफका गिरना, मुखका स्वाद मीठा होना, कफकी छर्दी होना, हृदय कफसे लिपासा प्रतीत होना, देहमें गीलापन प्रतीत होना, अग्निकी मंदता, अधिक निद्रा, स्तंभ, तंद्रा, श्वास, कास, प्रतिश्याय, शीतता, नेत्र, नख, मुख, मूत्र, पुरीष, त्वचा इनका श्वेत होना, देहमें

श्वेतरंगकी पिडकाका होना, गर्मीकी इच्छा होना, चिकने एवम् कफकारक पदार्थोसे रोगका बढना, रूक्ष, उष्ण आदि पदार्थोंसे शान्त होना यह सब कफज्वरके लक्षण होते हैं ॥ ३१ ॥

द्वन्द्वजादिज्वरोंका निदान ।

विषमाशनादनशनादन्नस्यअपरिवर्तादृतुव्यापत्तेःअसात्म्यागन्धोपघ्राणाद्विषोपहतस्योदकस्यउपयोगाद्गरेभ्योगिरीणामुपश्लेषात्स्नेहस्वेदवमनविरेचनास्थापनानुवासनशिरोविरेचनानामयथावत्प्रयोगात्स्त्रीणाञ्चविषमप्रजननात्प्रजातानाञ्चमिथ्योपचाराद्यथोक्तानाञ्चहेतूनांमिश्रीभावाद्यथानिदानंद्वन्द्वानामन्यतमःसर्वेवात्रयोदोषायुगपत्प्रकोपमापद्यन्ते ॥ ३२ ॥

विषम भोजन करनेसे, ऋतुओंके परिवर्त्तनसे, ऋतुओंके विगडनेसे, असात्म्य गंधके सूंघनेसे, विषैले जलके पीनेसे, गर (गरसंज्ञक विष) विकारसे, पहाडोंके समीपतासे, स्नेहन, स्वेदन, वमन, विरेचन, आस्थापन, अनुवासन और शिरो-विरेचन इन सबके मिथ्यायोग होनेसे, स्त्रियोंके वेसमय प्रसव होनेसे अथवा प्रसवके समय कुपथ्य होजानेसे एवम् ऊपर कहेहुए वात, पित्त, कफ, इनमेंसे दो दोषोंके कारणोंके मिलनेसे दो दोष कुपित होतेहैं और तीनों दोषोंके कोप कारक कारणोंके मिलजानेसे तीनों दोष एकही कालमें कुपित होतेहैं ॥ ३२ ॥

द्वन्द्वजादिज्वरोंके लक्षण ।

तेप्रकुपितास्तयैवानुपूर्व्याज्वरमभिनिर्वर्त्तयन्तितत्रयथोक्तानांज्वरलिङ्गानांमिश्रीभावविशेषदर्शनाद्द्वान्द्विकमन्यतमंज्वरंसान्निपातिकंवाविद्यात् ॥ ३३ ॥

वे कुपित हुए दोष क्रमपूर्वक द्वन्द्वजज्वरको अथवा सन्निपातज्वरको उत्पन्न करतेहैं दो दोष कुपितहुए द्वन्द्वजज्वरको उत्पन्न करतेहैं । तीनों दोष कुपित होनेसे सन्निपात ज्वर उत्पन्न होताहै । दो दोषोंके लक्षण मिलनेसे द्वन्द्वज (द्विदोषज) ज्वर जानना और तीनों दोषोंके लक्षण मिलनेसे त्रिदोषज्वर जानना चाहिये ॥ ३३ ॥

आगन्तुज्वरका कारण व उसमें दोषोत्पत्ति ।

अभिघाताभिषङ्गाभिचाराभिशापेभ्यआगन्तुर्व्यथापूर्वोज्वरोऽष्टमोभवति।सकञ्चित्कालमागन्तुःकेवलोभूत्वापश्चाद्दोषैरनुबध्यते।

अभिघातजोवायुनादुष्टशोणिताधिष्ठानेनअभिषङ्गजःपुनर्वात-
पित्ताभ्याम्अभिचाराभिशापजौतुसन्निपातेनउपनिबध्येते ।
सप्तविधाज्ज्वराद्विशिष्टलिंगोपक्रमसमुत्थितत्वाद्विशिष्टोवेदि-
तव्यः । कर्मणासाधारणेनचोपक्रम्यतेतिअष्टविधाज्वरप्रकृति-
रुक्ता ॥ ३४ ॥

चोट आदिके लगनेसे, काम क्रोधादि अभिषङ्गसे, अभिचार तथा अभिशापसे आगन्तुकज्वर उत्पन्न होताहै । आगन्तुक ज्वरके मिलानेसे ज्वर आठ प्रकारके होते हैं । आगन्तुकज्वर पहिले स्वयं प्रगट होकर पीछे वात, पित्त, कफकी सहायताको प्राप्त होताहै अर्थात् आगन्तुज व्याधिमें पहिले व्याधि उत्पन्न होकर पीछे वातादि दोष कुपित होते हैं । (और निज व्याधिमें पहिले वातादि दोष कुपित होकर पीछे रोग उत्पन्न होता है) । अभिघात निमित्तक आगन्तुजज्वरमें वायुदूषित रुधिरका आश्रय लेकर अभिघातज्वरका सहायक बनताहै । अभिषङ्ग ज्वरमें वात और पित्तका अनुबन्ध होता है । अभिचार और अभिशापजनित ज्वरमें तीनों दोषोंका अनुबन्ध होताहै । आगन्तुजज्वर पूर्वोक्त सात प्रकारके ज्वरोंसे लक्षण, उपाय कारणों द्वारा अलग जानना चाहिये अर्थात् वातादि सात प्रकारके ज्वरोंसे आगन्तुजज्वरके कारण, लक्षण उपाय और प्रकारके होते हैं । क्योंकि आगन्तुज-ज्वर उसके साधारण कारण की चिकित्सामात्रसे शान्त होजाताहै । इस प्रकार ज्वरोंकी आठ प्रकारकी प्रकृति कही है ॥ ३४ ॥

ज्वरके भेद ।

ज्वरस्त्वेकएवसन्तापलक्षणस्तमेवाभिप्रायविशेषाद्द्विविधमा-
चक्षतेनिजागन्तुविशेषाच्चतत्रनिजंद्विविधंत्रिविधंचतुर्विधंसप्त-
विधञ्चाहुर्वातादिविकल्पात् ॥ ३५ ॥

यद्यपि सन्तापमात्र लक्षणसे अर्थात् शरीरके तपायमान होनेसे ज्वर (ताप) एकही प्रकारका होताहै परन्तु उसीको निज और आगन्तुकभेदसे दो प्रकारका कथन करते हैं । उनमें निजज्वर एक प्रकारका तथा दो प्रकारका एवम् तीन प्रकारका और चार प्रकारका अथवा सात प्रकारका वात आदिके विकल्पसे माना है ॥ ३५ ॥

ज्वरके पूर्वरूप ।

तस्येमानिपूर्वरूपाणि। तद्यथामुखवैरस्यंगुरुगात्रत्वमनन्नाभि-

लाषश्चक्षुषोराकुलत्वमस्रागमनंनिद्रायाआधिक्यमरतिर्जृम्भाविनामोवेपथुश्रमभ्रमप्रलापजागरणलोमहर्षंशब्दगीतवातातपासहत्वमरोचकाविपाकौदौर्बल्यमङ्गमर्दःसदनमल्पप्राणतादीर्घसूत्रताआलस्यमुपंचितस्य कर्मणोहानिःप्रतीपता स्वकार्येषुगुरूणांवाक्येषुअभ्यसूयाबालेषुप्रद्वेषः स्वधर्मेषुअचिन्तामाल्यानुलेपभोजनक्लेशनंमधुरेषुभक्ष्येषुप्रद्वेषोऽम्ललवणकटुकप्रियताचेतिज्वरपूर्वरूपाणि ॥ ३६ ॥

सामान्य ज्वरके यह पूर्वरूप होतेहैं–जैसे मुखकी विरसता, अंगोंका भारीपन, अन्नमें अरुचि, आंखोंमें दाह अथवा स्राव होना एवम् आंखोंका लाल होना, अधिक निद्रा आना, चित्त न लगना तथा जंभाई आना, शरीरका ऐंठना एवम् कम्प, श्रम, भ्रम, प्रलाप, जागरण, रोमहर्ष, दन्तहर्ष इन सबका होना तथा शब्द, गीत, पवन, धूप इनकी इच्छा होना और क्षणमात्रमें इनसे द्वेष होना तथा अरुचि, अविपका, दुर्बलता, अङ्गमर्द, अवसाद, प्राणोंका क्षीण होना, कामको बहुत देरमें करना, आलस्य उपस्थित कामको छोडदेना, अपने कार्यमें बेपरवाही करना, गुरुजनोंके वाक्योंको न मानना, बालकोंकी बोलचाल बुरी मालूम होना, अपने धर्मका चिन्तन न करना, पुष्पमाला चन्दनादिका लेप और भोजन इनसे भी क्लेश प्रतीत होना, मधुर पदार्थोंसे भी द्वेष होना, खट्टे, नमकीन, चरपरे पदार्थोंकी इच्छा होना यह सब लक्षण ज्वरके पूर्वरूपमें होते हैं ॥ ३६ ॥

ज्वरका रूप ।

प्राक्सन्तापादपिचैनंसन्तापार्त्तमनुबध्नन्तीत्येतानिएकैकज्वरलिंगानिविस्तरसमासाभ्याम् ॥ ३७ ॥

सन्ताप होनेसे अर्थात् ज्वरसे पहिले प्रगट होनेसे इसको ज्वरका पूर्वरूप कहते हैं। और यह लक्षण ज्वर प्रगट होनेके अनन्तर होनेसे ज्वरके रूपमें गिने जाते हैं अर्थात् पूर्वरूपावस्थामें जो संताप प्रगट नहीं था वह प्रगट होजानेपर रूप कहा जाता है। सो यह लक्षण हरएक ज्वरमें संक्षेप और विस्तारसे जान लेना चाहिये॥ ३७ ॥

सोत्पत्तिक ज्वरका वर्णन ।

ज्वरस्तुखलुमहेश्वरकोपप्रभवःसर्वप्राणिनांप्राणहरोदेहेन्द्रियमनस्तापकरःप्रज्ञाबलवर्णहर्षोत्साहसादनार्त्तिश्रमक्लमसमोहाहारोपरोधसञ्जननोज्वरयतिशरीराणिइतिज्वरः । नान्येव्या-

धयः । तथादारुणाबहूपद्रवादुश्चिकित्स्याथथायमिति । सर्वरोगाधिपतिर्ज्वरःनानातिर्य्यग्योनिषुबहुविधैःशब्दैरभिधीयते सर्वप्राणभृतश्चसज्वराएवजायन्तेसज्वराएवम्रियन्तेसमहामोमोहाःतेनाभिभूताःप्राग्दैहिकंदेहिनःकर्मकिञ्चिन्नस्मरन्तिसर्वप्राणिभ्यश्चज्वरएवप्राणानादत्ते ॥ ३८ ॥

अब ज्वरकी उत्पत्ति और उसके नामादिकोंका वर्णन करते हैं । ज्वर महादेवके कोपसे उत्पन्न हुआहै । और सब प्राणियोंके प्राणोंको हरनेवाला देह, इन्द्रिय, मन इनको तपायमान करनेवाला बुद्धि, वल, वर्ण,हर्ष, उत्साह इनको नष्ट करनेवाला है । पीडा, थकावट, घबराहट, मोह इनको करनेवाला है तथा आहारका उपरोध करनेवाला है । शरीरको जर्जर करदेताहै इसलिये इसको ज्वर कहतेहैं । अन्य व्याधियां इस प्रकार दारुण और बहुतसे उपद्रवोंवाली एवम् दुश्चिकित्स्य नहीं होतीं जिस प्रकार यह ज्वर है ज्वर सब रोगोंका राजा हैऔर अनेक प्रकारकी पशु आदि योनियोंमें अनेक नामोंसे कहा जाताहै । संपूर्ण जीवमात्र ज्वरसहित जन्म लेतेहैं और मरनेके समय भी ज्वरसहित प्राणोंको त्यागतेहैं ज्वररूप महामोहसे व्याप्त हुआ मनुष्य जन्मके समय पूर्वजन्मकी किसी बातको भी स्मरण नहीं कर सकता यह ज्वरही संपूर्ण प्राणियोंके प्राणोंको आकर्षण करताहै अर्थात् ग्रहण करताहै ॥ ३८ ॥

ज्वरके पूर्वमें कर्तव्य कर्म ।

तत्रास्यपूर्वरूपदर्शनेज्वरादौवाहितंलघ्वशनमतर्पणंवाज्वरस्यामाक्षयसमुत्थत्वात् ॥ ३९ ॥

क्योंकि ज्वर आमाशयसे उत्पन्न होताहै इसलिये ज्वरके पूर्वरूप दिखाई देते ही अथवा ज्वरके आदिमें हित और हलके भोजन अथवा अतर्पण (लंघन)करना चाहिये ॥ ३९ ॥

ज्वरमें कर्तव्य ।

ततःकषायपानाभ्यङ्गस्वेदप्रदेहपरिषेकानुलेपनवमनविरेचनास्थापनानुवासनोपशमननस्तःकर्मधूपधूमपानाञ्जनक्षीरभोजनाविधानम् ॥ ४० ॥

ज्वर उत्पन्न होनेपर क्वाथ पीना, ज्वरनाशक तेलका मलना, पसीना देना एवम् लेप, परिषेक, अनुलेपन, वमन विरेचन, आस्थापन, अनुवासन, उपशमन, नस्य,

धूम्रपान, अंजन, दूधपान इन सबको जिस जगह जिस विधिसे जिसका प्रयोग करना उचित हो उस प्रकार प्रयोग करे ॥ ४० ॥

ज्वरमें घृतपान।

यथास्वंयुक्त्याजीर्णज्वरेषुसर्वेष्वेवसर्पिषःपानंप्रशस्यते । यथास्वमौषधसिद्धस्यसर्पिर्हिस्नेहाद्वातंशमयतिसंस्कारात्कफंशैत्यात्पित्तमुष्माणंचतस्माज्जीर्णज्वरेषुतुसर्वेष्वेवसर्पिर्हितमुदकमिवाग्निप्लुष्टेषुद्रव्येष्विति ॥ ४१ ॥

सब प्रकारके जीर्णज्वरोंमें उनके लक्षणोंके अनुसार युक्तिपूर्वक ज्वरनाशक द्रव्यों-द्वारा सिद्ध किये हुए घृतोंका पान करना परमोत्तम कहाहै। यथा लक्षणयुक्त औष-धियोंसे सिद्ध किया घृत अपने स्नेहके योगसे वायुको शान्त करताहै । कफनाशक द्रव्योंके संयोगसे कफको शान्त करताहै एवम् शीतल होनेसे पित्तको शान्त करता है। इसलिये संपूर्ण जीर्णज्वरोंमें घृतका पान करना इस प्रकार शान्तिकारक है जैसे अग्नि लगे पदार्थोंपर जलका डालदेना शान्तिकारक होताहै ॥ ४१ ॥

तत्रश्लोकाः ।

यथाप्रज्वलितंवेश्मपरिषिञ्चन्तिवारिणा ।
नराःशान्तिमभिप्रेत्यतथाजीर्णज्वरेघृतम् ॥ ४२ ॥

यहांपर श्लोक हैं-कि जैसे, अग्निसे जलते हुए घरको मनुष्य जलसे सींचता है और वह जल शान्तिकारक होताहै उसी प्रकार जीर्णज्वरमें घृत भी शान्तिकारक होताहै ॥ ४२ ॥

स्नेहाद्वातंशमयतिशैत्यात्पित्तंनियच्छति ।
घृतंतुल्यगुणंदोषंसंस्कारात्तुजयेत्कफम् ॥ ४३ ॥

घृत-स्नेहसे वायुको शान्त करताहै और शीततासे पित्तको शान्त करताहै । घृत-कफके तुल्यगुण होनेसे औषधियोंके संस्कार द्वारा कफको जीत लेताहै॥४३॥

घृतको उत्कृष्टत्व ।

नान्यःस्नेहस्तथाकश्चित्संस्कारमनुवर्त्तते ।
यथासर्पिरतःसर्पिःसर्वस्नेहोत्तरंपरम् ॥ ४४ ॥

और स्नेह अर्थात् तैल आदिक द्रव्यान्तरसे संस्कार किये हुए द्रव्योंके गुणोंको ग्रहण नहीं करते । जिस प्रकार संस्कार द्वारा घृत औषधियोंके गुणको ग्रहण कर-लेता है । इसलिये सब प्रकारके स्नेहोंमें घृत परमोत्तम माना जाताहै ॥ ४४ ॥

गद्योक्तोयःपुनःश्लोकैरर्थःसमनुगीयते ।
तद्व्यक्तिव्यवसायार्थंद्विरुक्तःसनगर्ह्यते ॥ ४५ ॥

गद्योंमें कहाहुआ विषय यदि श्लोकों द्वारा फिर कथन करदियाजाय तो उसमें पुनरुक्ति दोष नहीं माननाचाहिये क्योंकि वह श्लोकोंमें मनुष्योंको याद रहसकता है आर प्रिय मालूम होताहै इसलिये कथन कियाजाताहै ॥ ४५ ॥

त्रिविधंनामपर्य्यायैर्हेतुंपञ्चविधानगदान् । गदलक्षणपर्य्यायान् व्याधेःपञ्चविधंग्रहम् ॥ ४६॥ज्वरमष्टविधंतस्यप्रकृष्टासन्नकारणम् । पूर्वरूपञ्चरूपञ्चसंग्रहेभेषजस्यच ॥ ४७ ॥ व्याख्यातवाञ्ज्वरस्याग्रेनिदानेविगतज्वरः । भगवानग्निवेशायप्रणतायपुनर्वसुः ॥ ४८ ॥

इतिचरकप्रतिसंस्कृतेतन्त्रेज्वरनिदानो नामप्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अब अध्यायका उपसंहार करते हैं । कि इस ज्वरनिदाननामक अध्यायमें तीन प्रकारका कारण, पांच प्रकारका रोग विज्ञान, पांच प्रकारके रोगोंके लक्षणोंका पर्याय तथा उनका संग्रह, आठ प्रकारके ज्वर, उस ज्वरके विप्रकृष्ट और संनिकृष्ट कारण, पूर्वरूप, रूप, संक्षेपसे औषधिसंग्रह, संतापरहित भगवान् पुनर्वसुजीने इस ज्वरनिदानमें कथन कियेहैं ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदीयसंहितायां निदानस्थाने टकसालनिवासि पं०रामप्रसादवैद्योपाध्यायविरचितप्रसादव्याख्यभाषाटीकायां ज्वरनिद नं नाम प्रथमोध्यायः ॥१॥

द्वितीयोऽध्यायः ।

रक्तपित्तनिदानम् ।

अथातोरक्तपित्तनिदानंव्याख्यास्यामइतिहस्माहभगवानात्रेयः ।

अब हम रक्तपित्तके निदानका कथन करतेहैं । इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे ॥

रक्तपित्तका कारण ।

पित्तंयथाभूतंलोहितपित्तमितिसंज्ञांलभतेतत्तथानुव्याख्यास्यामः । यदायस्तुजन्तुर्यवकोद्दालकोरदूषकप्रायाणिअन्ना-

निनित्यंभुङ्क्तेभृशोष्णतीक्ष्णमपिचान्यदन्नजातंनिष्पावमाष-
कुलत्थक्षारसूपोहितंदधिमण्डोदश्वित्कटम्लकाञ्जिकोपहितंवा-
राहमाहिषाविकमत्स्यगव्यपिशितंपिण्याकंपिण्डालुकशाकोप-
हितंमूलकसर्षपलशुनकरञ्जशिग्रुकषडयूषभूस्तृणसुमुखसुरस-
कुठेरगण्डीरकालमालकपर्णासक्षवकफणिज्जकोपदंशंसुरासौ-
वीरतुषोदकमैरेयमेदकमधूलककुदलबदराम्लप्रायान्नपानंपि-
ष्टान्नोत्तरभूयिष्ठमुष्णाभितप्तोऽतिमात्रमतिवेलंवापयसासमश्ना-
तिरोहिणीकालकपोतमांसंवासर्षपतैलक्षारसिद्धंकुलत्थमाष-
पिण्याकजाम्बलकुचपक्वैः शौक्तिकैर्वासहक्षीरमाममतिमात्रम-
थवापिबत्युष्णाभितप्तस्तस्यैवमाचरतःपित्तंप्रकोपमापद्यते ।
लोहितञ्चस्वप्रमाणमतिवर्त्तते ॥ १ ॥

पित्त जिस प्रकार रक्तपित्त संज्ञाको प्राप्त होताहै उस प्रकारकी उसकी व्याख्या करतेहैं । जब मनुष्य-जौ, उद्दालक, कोद्रव आदिक द्रव्योंका निरन्तर सेवन करताहै एवम् अत्यन्त उष्ण और तीक्ष्ण अन्नोंको सेवन करताहै अथवा निष्पाव उडद, कुल्थी दाल आदिमें दहीका मण्ड उदश्वित् मिलाकर खाताहै अथवा चरपरे, खट्टे, कांजी आदिक पदार्थोंको अधिक सेवन करताहै तथा सूअर, भैंसा मेंढा, मछली, गो आदिकोंके मांसको खाताहै । तिलोंकी खली, पिंडालुका शाक एवम् पकी मूली, सरसों, लहसुन, कंजा, सुहाँजना, षडयूष, भूतृण, शाक, पर्णाश सुमुख, सुरस (तुलसीके भेद),कुठेर,गण्डीरशाक,कालमालकशाक, फणीज्झक (मरुआ), उपदंशक (चर्वीमांसविशेषका बना पदार्थ), सुरा, सौवीर, तुषोदक, मैरेय, मेदक, मधूलक, वेर तथा अन्य खट्टे पदार्थोंका अत्यन्त सेवन करताहै। मिष्टान्नका अधिक सेवन करताहै । गर्माईसे तप्त मनुष्य वहुत भोजन करे एवम् भोजनका समय लंघनकर भोजन करे अथवा रोहिणी नामक मछली वा कालकपोतके मांसको दूधके साथ कालकपोतके मांसको सरसोंके तेल और क्षारके साथ सिद्ध कर खाताहै एवम् कुल्थी, उडद, तिलकल्क, जामुन, वडहरके साथ पकायेहुए दूधको अथवा इनसव वस्तुओंको कच्चे दूधके साथ वा कांजीके साथ पित्त प्रकृतिवाला मनुष्य निरन्तर सेवन करताहै उसके शरीरमें पित्त कोपको प्राप्त होजाताहै । एवम् रक्त अपने प्रमाणको छोडकर वढजाताहै ॥ १ ॥

रक्तके दूषित होनेका कारण ।

तस्मिन्प्रमाणातिप्रवृत्तेपित्तंप्रकुपितंशरीरमनुसर्पद्यदैवयकृत्प्ली-
हप्रभावाणांलोहितवहानांस्रोतसांलोहिताभिष्यन्दगुरूणिमु-
खान्यासाद्यप्रातिपद्यतेतदेवलोहितंदूषयति ॥ २ ॥

रक्त अपने प्रमाणसे अधिक होकर और पित्त कुपित होकर जब शरीरमें अनु-सर्पण (विचरण) करतेहैं फिर यकृत और प्लीहासे प्रगट हुई रक्तके वहानेवाली नाडियोंका रक्त संचित होकर उन नाडियोंका मुख भारी होकर रुधिरके जमनेसे गिलागिलासा हो जाताहै तब वह कुपित हुआ पित्त रक्तको भी दूषित करदेताहै २॥

रक्तपित्तनामका कारण ।

संसर्गान्तलैंहितप्रदूषणाल्लोहितगन्धवर्णानुविधानाच्चपित्तंलो-
हितमित्याचक्षते ॥ ३ ॥

रक्तके साथ पित्तका संसर्ग होनेसे और दूषिक रक्तसे रक्तकी गन्ध और वर्ण होनेके कारण वंह रक्तयुक्त पित्त–रक्तपित्त ऐसा कहाजाताहै ॥ ३ ॥

रक्तपित्तके पूर्वरूप ।

तस्येमानिपूर्वरूपाणि । तद्यथा । अनन्नाभिलाषोभुक्तस्यविदा-
हःशुक्ताम्लरसगन्धस्योद्गारश्छर्देःअभीक्ष्णागमनंछर्दितस्यबी-
भत्सतास्वरभेदोगात्राणांसदनंपरिदाहश्चमुखाद्धूमागमइवलोह-
लोहितमत्स्यामगन्धित्वमपिचास्यस्यरक्तहरितहारिद्रवत्वमङ्गाव-
यवशकृन्मूत्र–स्वेदलालाशिंघानकास्यकर्णमल–पिडकानाम-
ङ्गसंवेदनालोहितनीलपीतश्यावानामर्चिष्मताञ्चरूपाणांस्वप्न-
दर्शनमभीक्ष्णमितिलोहितपित्तपूर्वरूपाणि ॥ ४ ॥

उस रक्तपित्तके यह पूर्वरूप होतेहैं । जैसे–अन्नमें अरुचि,भोजनका विदाही परि-पाक, कांजी और खट्टेरसकी गन्धयुक्त छर्दी तथा डकार आना, सदा छर्दका होना, बीभत्सता, स्वरभेद, अंगोंका सदन (सोनेवत् होना) छातीमें दाहजैसी होना, मुखसे धूआंसा निकलना और मुखसे लोहा,रुधिर,आम,मछलीकीसी दुर्गंध आना,हल्दीके रंगके समान अंगोंके अवयव,मल,मूत्र, पसीना,नाकका मैल,मुखकी लार,कानका मैल और पिडाकाओंका वर्ण पीला होना अथवा लाल होना और अंगोंमें पीडा होना तथा स्वप्नमें नित्य लाल, नीले, पीले, काले प्रकाशवाले रूपोंको देखना यह सब रक्तपित्त रोग प्रगट होनेसे प्रथम प्रगट (पूर्वरूप) होतेहैं ॥ ४ ॥

रक्तपित्तके उपद्रव ।

उपद्रवास्तुखलुदौर्बल्यारोचकाविपाकश्वासकासज्वरातीसार-शोफशोषपाण्डुरोगस्वरभेदाः ॥ ५ ॥

दुर्बलता, अरुचि, अन्नका न पचना, श्वास, कास, ज्वर, अतिसार, शोथ, शोष, पाण्डु, स्वरभंग यह रक्तपित्तके उपद्रव होते हैं ॥ ५ ॥

रक्तपित्तके मार्ग ।

मार्गौपुनरस्यद्वौऊर्द्ध्वश्चाधश्चतद्बहुश्लेष्मणिशरीरेश्लेष्मसंसर्गा-दूर्द्ध्वंप्रपद्यमानंकर्णनासिकानेत्रास्येभ्यः प्रच्यवते । बहुवा-तेतुशरीरेवातसंसर्गादधः प्रपद्यमानंमूत्रपुरीषमार्गाभ्यांप्रच्य-वते । बहुवातश्लेष्मणितुशरीरेश्लेष्मवातसंसर्गाद्द्वावपिमार्गौ प्रपद्यते । तौमार्गौप्रपद्यमानंसर्वेभ्यएवयथोक्तेभ्यःखेभ्यःप्रच्य-वतेशरीरस्य ॥ ६ ॥

रक्तपित्तके दो मार्ग हैं एक ऊर्ध्वमार्ग दूसरा अधोमार्ग । वह रक्तपित्त–कफ-प्रधान शरीरमें कफके संसर्गसे ऊपरको गमन करताहुआ कान, नेत्र, नासिका और मुख द्वारा निकलताहै । वातप्रधान शरीरमें वायुके संसर्गसे नीचेको गमन करता हुआ मूत्र और मलके द्वारोंसे निकलताहै । जिसके शरीरमें वायु और कफ इन दोनों-की अधिकता होतीहै उसके शरीरमें वात और कफके संसर्गसे दोनों (उपरके और नीचेके) मार्गों द्वारा निकलताहै । जब दोनों मार्गोंसे प्रवृत्त होताहै तो शरीरके संपूण द्वारोंसे अर्थात् मुख, नासिका, नेत्र, गुदा, लिंग इन सब मार्गोंसे निक-लताहै ॥ ६ ॥

रक्तपित्तका साध्यासाध्यत्व ।

तत्रयदूर्ध्वभागंतत्साध्यंविरेचनोपक्रमणीयत्वाद्बह्वौषधत्वाच्च ॥७॥

उनसे ऊपरके मार्गसे प्रवृत्त होनेवाला रक्तपित्त विरेचन द्वारा शान्त होनेसे, एवम् बहुतसी औषधियें ऊर्ध्वगत रक्तपित्त नाशक होनेसे ऊर्ध्वगत रक्तपित्त साध्य हैं ॥७॥

यदधोभागंतद्याप्यंवमनोपक्रमणीयत्वादल्पौषधत्वाच्च ॥ ८ ॥

अधोमार्गगामी–रक्तपित्त–याप्य साध्य होताहै क्योंकि उसकी शांति करनेवाली औषधियें बहुत थोडी हैं और उसमें वमन द्वारा शांति होतीहै ॥ ८ ॥

यदुभयभागंतदसाध्यंवमनाविरेचनायोगित्वादनौषधत्वाच्च ॥९॥

जो दोनों मार्गोंसे गमन करताहै वह असाध्य है क्योंकि न तो उसमें वमन विरेचन करासक्तेहैं न उभयतः शांत करनेमें औषधी यथोचित क्रिया कर सकती॥९॥

रक्तपित्तकी उत्पत्ति आदि ।

रक्तपित्तप्रकोपस्तुखलुपुरादक्षयज्ञध्वंसेरुद्रकोपामर्षाग्निनाप्राणिनांपरिगतशरीरप्राणानामलुज्वरमभवत् ॥ १० ॥

पहले दक्षप्रजापातिका यज्ञ विध्वंस होनेके समय महादेवके कोपरूप अग्निद्वारा ज्वर उत्पन्न होनेके उपरांत रक्तपित्त उत्पन्न हुआ वह रक्तपित्त शरीरधारियोंके प्राणोंको दावाग्निके समान सर्वतः प्रवेश करताहुआ शीघ्र नष्ट करदेताहै । इसलिये इस शीघ्रकारी रोगकी शांतिका उपाय भी शीघ्रही करना चाहिये ॥ १० ॥

रक्तपित्तमें चिकित्साक्रम ।

तस्याशुकारिणोदावाग्नेरिवापतितस्यात्ययिकस्याशुप्रशान्तौयतितव्यंमात्रांदेशंकालञ्चाभिसमीक्ष्यसन्तर्पणेनापतर्पणेनवा मृदुमधुरशिशिरतिक्तकषायैरभ्यवहार्य्यैः प्रदेहपरिषेकावगाहसंस्पर्शनैर्वमनाद्यैर्वातत्रावहितेनेति ॥ ११ ॥

मात्रा, देश, काल इन सबको विचारकर संतर्पण अथवा अपतर्पण क्रियाद्वारा एवम् मृदु, मधुर, शीतल, कडुए, कसैले आदि योगोंसे रक्तपित्तको शान्त करै । अथवा लेप, परिषेक, अवगाहन, रत्नआदिका धारण, एवम् वमनआदिकोंसे अथवा अन्य जो क्रिया उचित हो उसके द्वारा रक्तपित्तको शान्त करे ॥ ११ ॥

साध्याऽसाध्य विवेचन ।

तत्र श्लोकाः—साध्यंलोहितपित्तंतद्यदूर्द्ध्वंप्रतिपद्यते ।
विरेचनस्ययोगित्वाद्बहुत्वाद्भेषजस्यच ॥ १२ ॥

इसी विषयमें यहांपर श्लोक हैं:—ऊर्ध्वगामी रक्तपित्त विरेचनके योगसे एवम् उसके नाश करनेवाली वहुतसी औषधियां होनेके कारण साध्य होताहै ॥ १२ ॥

वमनंनहिपित्तस्यहरणेश्रेष्ठमुच्यते । यश्चतत्रानुगोवायुस्तच्छान्तौचावरंमतम् ॥ १३ ॥ स्याच्चयोगावहंतत्रकषायंतिक्तकानि च । तस्माद्याप्यंसमाख्यातं यद्रक्तमनुलोमगम् ॥ १४ ॥ रक्तन्तुयदधोभागंतद्याप्यमितिनिश्चयः । वमनस्याल्पयोगित्वादल्पत्वाद्भेषजस्यच ॥ १५ ॥

क्योंकि पित्तको हरण करनेके लिये वमन कराना श्रेष्ठ नहीं होता और अधोमार्गगामी रक्तपित्तमें वायुका संसर्ग होनेसे उसकी शान्तिके लिये वमन कराना उचित होताहै। एवम् तिक्त,कषाय पदार्थोंद्वारा पित्त शान्त होताहै परन्तु वायु शान्त नहीं होता इसलिये अधोगामी रक्तपित्त चिकित्सामें कठिनाई पडनेसे याप्यसाध्य होताहै। क्योंकि अधोगामी रक्तपित्तमें यथोचित रीतिपर वमन भी नहीं करासकते। और तिक्त, कषाय द्रव्योंद्वारा भी यथोचित रीतिपर शान्त नहीं करसकते। इसलिये इसको याप्यसाध्य मानतेहैं ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥

रक्तपित्तन्तुयन्मार्गौद्वावपिप्रतिपद्यते। असाध्यमपितज्ज्ञेयंपूर्वोक्तादपिकारणात् ॥१६ ॥ नहिसंशोधनंकिञ्चिदस्त्यस्यप्रतिमार्गगम्। प्रतिमार्गश्चहरणंरक्तपित्तेविधीयते। एवमेवोपशमनंसर्वशोनास्यविद्यते ॥ १७ ॥ संसृष्टेषुचदोषेषुसर्वजिच्छमनं मतम् ॥ १८ ॥

जो रक्तपित्त दोनों मार्गोंसे प्रवृत्त होताहै वह ऊपर कहेहुए कारणोंसे असाध्य होताहै। क्योंकि ऊर्ध्वगामी होनेसे इसमें वमन नहीं करासकते और अधोगामी होनेके कारण विरेचन नहीं करासकते इसलिये दोनों मार्गोंद्वारा उभयगामी रक्तपित्तमें शोधनक्रिया नहीं होसकती अतएव सर्वथा इसका कोई उपाय शान्तिकारक नहीं होता। सब दोषोंसे मिलेहुए रक्तपित्तमें सर्वतः शान्तिकारक औषधियोंका सेवन हितकर होताहै एवम् सब प्रकारसे उभयगामी रक्तपित्तको जीतनेके लिये औषधियें भी अपना काम नहीं करसकतीं इसलिये इसको असाध्य मानाहै १६-१८॥

इत्युक्तंत्रिविधोदर्करक्तंमार्गविशेषतः ॥ १९ ॥

इस प्रकार मार्ग विशेषसे रक्तपित्तके तीन भेद कथन कियेहैं ॥ १९ ॥

साध्यरोगको असाध्य होनेका कारण।

एभ्यस्तुखलुहेतुभ्यःकिञ्चित्साध्यंनासिध्यति। प्रेष्योपकरणाभावदौरात्म्याद्वैद्यदोषतः। अकर्म्मतश्चसाध्यत्वंकश्चिद्रोगोऽतिवर्त्तते ॥ २० ॥

चार हेतुओंके अच्छा न होनेसे कोई भी रोग साध्य नहीं रहता वह चार हेतु यह हैं। परिचारक अच्छा न होनेसे,औषधी आदि उपकरण अच्छा न होनेसे,रोगीका स्वभाव अथवा आचार अच्छा न होनेसे, एवम् वैद्यके दोषसे साध्य रोग भी असाध्य होजातेहैं। तथा यत्न न करनेसे भी साध्यरोग कोई ही शान्त होताहै अर्थात् साध्यरोग भी विना उपाय किये शान्त होना कठिन होताहै ॥ २० ॥

तत्रासाध्यत्वमेकंस्यात्साध्ययाप्यपरिक्रमात् ।
रक्तपित्तस्यविज्ञानमिदंतस्योपदेक्ष्यते ॥ २१ ॥

साध्य, याप्यसाध्य और असाध्य इन तीनोंमें असाध्यता सिर्फ एक प्रकारकी होतीहै अर्थात् असाध्यरोगका यत्न नहीं होसकता । साध्य और याप्यसाध्यकी क्रमपूर्वक चिकित्सा हो सकतीहै । इसलिये रक्तपित्तकी असाध्यताके लक्षण कथन करतेहैं ॥ २१ ॥

असाध्यके विशेष लक्षण ।

यत्कृष्णमथवानीलंयद्वाशक्रधनुष्प्रभम् ।
रक्तपित्तमसाध्यंतद्वाससोरञ्जनञ्चयत् ॥ २२ ॥

जो रक्तपित्त काला, नीला, इन्द्रधनुषके समान वर्णवाला, होताहै वह असाध्य जानना । एवम् जिसमें रंगाहुआ कपडा फिर स्वच्छ न होसके उसको भी असाध्य जानना ॥ २२ ॥

भृशंपूत्यतिमात्रञ्चसर्वोपद्रववच्चयत् ।
बलमांसक्षयेयच्चतच्चरक्तमसिद्धिमत् ॥ २३ ॥

जिस रक्तपित्तमें अत्यन्त दुर्गंध आवे, तथा संपूर्ण उपद्रवों सहित हो एवम् रोगीका बल और मांस क्षीण हो वह रक्तपित्त भी असाध्य होताहै ॥ २३ ॥

येनचोपहतोरक्तंरक्तपित्तेनमानवः ।
पश्येद्दृश्यंवियच्चैवतच्चासाध्यमसंशयम् ॥ २४ ॥

जिस रक्तपित्तके होनेसे मनुष्य आकाश और संपूर्ण पदार्थोंको लालवर्णका देखे वह भी असाध्य जानना ॥ २४ ॥

रक्तपित्तमें कर्तव्यता ।

तत्रसाध्यंपरित्याज्यंयाप्यंयत्नेनयापयेत् ।
साध्यञ्चावहितःसिद्धैर्भेषजैःसाधयेद्भिषक् ॥ २५ ॥

इनमें असाध्यको त्यागकर याप्यसाध्यकी यत्नपूर्वक चिकित्सा करनीचाहिये । और साध्यरक्तपित्तको सिद्ध औषधियों द्वारा जीत लेनाचाहिये ॥ २५ ॥

तत्रश्लोकौ ।

कारणंनामनिर्वृत्तिंपर्वरूपाण्युपद्रवान् । मार्गौदोषानुबन्धञ्चसा-

ध्यत्वंनचहेतुमत् ॥ २६ ॥ निदानेरक्तपित्तस्यव्याजहारपुनर्व-
सुः । वीतमोहरजोदोषलोभमानमदस्पृहः ॥ २७ ॥

इति अग्निवेशकृतेतन्त्रेचरकप्रतिसंस्कृतेरक्तपित्तनिदा-
नंनामद्वितीयोऽध्यायः ।

अब अध्यायका उपसंहार करतेहैं । इस रक्तपित्त निदाननामक अध्यायमें रक्त-पित्तके कारण, उत्पत्ति, पूर्वरूप, उपद्रव, ऊर्ध्व और अधोगमन, वातादि दोषोंका अनुबंध, साध्य और असाध्य तथा उनके कारण यह सब मोह, रजोदोष, लोभ, मान, मद और स्पृहारहित भगवान् पुनर्वसुजीने कथन कियेहैं ॥ २६ ॥ २७ ॥

इति श्रीमहर्षिचरक० नि० स्था० पं०रामप्रसादवैद्य० भाषाटीकायां रक्तपित्तनिदानं नामद्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ।
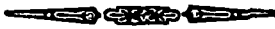
अथातोगुल्मनिदानं व्याख्यास्याम इति हस्माह भगवानात्रेयः ।

अब हम गुल्मनिदानकी व्याख्या करतेहैं-इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कथन करने लगे ।

गुल्मोंके भेद ।

इहखलुपञ्चगुल्माभवन्ति । तद्यथा-वातगुल्मः पित्तगुल्मः
श्लेष्मगुल्मोनिचयगुल्मःशोणितगुल्मइति ॥ १ ॥

गुल्मरोग पांच प्रकारका होता है-जैसे, वातगुल्म, पित्तगुल्म, कफगुल्म और सन्निपातगुल्म तथा रक्तजगुल्म ॥ १ ॥

अग्निवेशका प्रश्न ।

एवंवादिनंभगवन्तमात्रेयमग्निवेशउवाचकथमिहभगवन् !
पञ्चानांगुल्मानांविशेषमभिजानीमहे । नह्यविशेषविद्रोगाणा-
मौषधविदपिभिषक्प्रशमनसमर्थइति ॥ २ ॥

इस प्रकार कथन करते हुए भगवान् आत्रेयजीसे अग्निवेश कहने लगे कि हे भग-वन् ! इन पांच प्रकारके गुल्मोंको हम यथोचित रीतिपर कैसे जान सकतेहैं अर्थात् इनके जाननेका प्रकार कथन कीजिये क्योंकि रोगके निदानको यथोचित रीतिपर विना जाने अर्थात् रोगके विना समझे औषध क्रियामें कुशल वैद्य भी रोग शान्ति नहीं कर सकता ॥ २ ॥

आत्रेयका उत्तर ।

तमुवाचभगवानात्रेयः । समुत्थानपूर्वरूपलिङ्गवेदनोपशयवि-शेषेभ्योविशेषविज्ञानंगुल्मानांभवत्यन्येषाञ्चरोगाणामग्निवेश ! तत्तुखलुगुल्मेषूच्यमानंनिबोध ॥ ३ ॥

यह सुनकर आत्रेय भगवान् कहनेलगे कि हे अग्निवेश ! कारण, पूर्वरूप, रूप, वेदना और उपशयके भेदसे गुल्मोंका विशेषरूपसे अलग २ ज्ञान होसकता है । इसी प्रकार कारणादि द्वारा अन्य रोगोंका भी ज्ञान हो सकताहै । सो यहांपर गुल्मरोगके कारण आदिकोंका श्रवण करो ॥ ३ ॥

वातकुपितहोनेका कारण ।

यदापुरुषोवातलोविशेषेणज्वरवमनविरेचनातीसाराणामन्यत-मेनकर्शनेनकर्शितोवातलमाहारमाहरतिशीतंवाविशेषणाति-मात्रस्नेहपूर्वं वा वमनविरेचनेपिबत्यनुदीर्णान्वातमूत्रपुरीषवे-गान्विरुणद्धिअत्यशितोवापिबतिनवोदकमतिमात्रसंक्षोभिणावा यानेनयातिअतिव्यवायव्यायाममद्यरुचिर्वाभिघातमृच्छाति वाविषमाशनशयनस्थानचंक्रमणसेवीवाभवतिअन्यद्वाकिञ्चि-देवंविधंवाअतिमात्रंव्यायामजातंवाआरभतेतस्यापचाराद्वातः प्रकोपमापद्यते ॥ ४ ॥

जब वातप्रधान मनुष्य ज्वर, वमन, विरेचन, अतिसार अथवा अन्य कर्षण-द्वारा विशेषरूपसे कृश होजाताहै फिर वह वातकारक और शीतल द्रव्योंको विशेषरूपसे सेवन करे अथवा विना स्नेहन किये ही वमन, विरेचनादिकोंका उपयोग करे अथवा विनाही वेगके वमन आदिकोंको करे एवम् मल, मूत्रके वेगोंको रोके अथवा नवीन अन्नोंको और नवीन जलको अधिक मात्रासे सेवन करे या बहुत संक्षोभ (हिलाना) करनेवाली सवारीमें बैठे एवम् मैथुन, व्यायाम, मद्य, इनका अधिक सेवन करे एवम् चोट लगनेसे विषम भोजन और विषम शयन करनेसे ऊंचे नीच स्थानमें अधिक फिरनेसे अथवा इस प्रकारके अन्य थकावट आदि पैदा करनेवाले कारणोंसे तथा वातकारककारणोंके उपस्थित होनेसे एवम् उपरोक्त वमन, विरेचनादिकोंमें किसीप्रकारका अपचार होनेसे वायुका कोप होताहै ॥ ४ ॥

प्रकुपित वातसे गुल्मकी उत्पत्ति ।

सप्रकुपितोमहास्रोतोऽनुप्रविश्यरौक्ष्यात्काठिनीकृत्याप्लुत्यपि-ण्डितोऽवस्थानंकरोति।हृदिवस्तौपार्श्वयोर्नाभ्यांवासशूलमुप-जनयति । सवातजन्याननेकविधान्वेदनाविशेषाञ्जनयति ग्रन्थींश्चानेकविधान् । पिण्डितश्चावतिष्ठतेसःपिण्डितत्वाद्गु-ल्मइत्युपचर्य्यते ॥ ५ ॥

फिर वह कुपित हुई वायु महास्रोतोंमें अर्थात् आमाशय और पक्वाशय आदिमें प्रवेश करके अपने रूक्षतादि गुणोंसे कठोरताको प्राप्त हो चक्कर खाकर एक गोल-मोल गोलेको उत्पन्न करदेतीहै वह गोला–बस्ती अथवा दोनों पंसवाडे तथा नाभिमें पीडाको उत्पन्न करताहै ।तथा वातजनित और भी अनेक प्रकारके रोगोंको उत्पन्न करताहै तथा अनेक प्रकारकी ग्रंथियें गोलेकी समान बनकर रहतीहैं वह ग्रंथियें भी गुल्मनामसे ही उच्चारण कीजातीहैं ॥ ५ ॥

वातगुल्मके लक्षण ।

समुहुरादधातिमुहुरल्पत्वमापद्यतेअनियतवेदनाश्चलत्वाद्वायोः पिपीलिकासंप्रकीर्णइवतोदस्फुरणायामसङ्कोचहर्षप्रलयोदय-बहुलस्तदातुरश्चसूच्येवशंकुनेवचातिविद्धमात्मानंमन्यतेऽपि चदिवसान्तेज्वर्य्यतेशुष्यतिचास्यास्यमुच्छ्वासश्चोपरुध्यतेहृष्य-न्तिरोमाणिवेदनायाःप्रादुर्भावेप्लीहाटोपान्त्रकूजनविपाकोदाव-र्त्ताङ्गमर्दमन्याशिरःशंखशूलब्रध्नरोगाश्चैनमुपद्रवन्तिकृष्णारु-णपरुषत्वङ्नखनयनवदनमूत्रपुरीषश्चभवतिनिदानोक्तानिचा-स्यनोपशेरतेविपरीतानिचोपशेरतइतिवातगुल्मः ॥ ६ ॥

वह गोला वायुकी चलगति होनेसे कभी बडा, कभी छोटा प्रतीत होताहै ।इसमें पीडा भी कभी अधिक और कभी कम होतीहै । और चींटिओंके काटनेके समान तोद होताहै और स्फुरण एवम् फैलाव तथा संकोच और प्रकटता तथा कभी नष्ट-प्रायसा हो जाना एवं फिर प्रकट रूपसे दीखना यह लक्षण होतेहैं । पीडा होनेके समय रोगीको सूई चुभने एवम् शूल चुभनेके समान प्रतीत होना, सायंकालमें ज्वर चढना, मुखका सुखजाना, श्वास रुकरुककर आना, रोमोंका खडा होना, पीडाका प्रगट होना,प्लीहा, अफरा, आंतोंका बोलना, अन्नका न पचना,उदावर्त्त,

अंगमर्द तथा गर्दन, शिर,कनपट्टी इनमें पीडा होना,बद निकलना आदि उपद्रवोंसे रोगीका पीडित होना एवम् त्वचा, नख, नेत्र, मुख, मूत्र, मल ये सब कालेरंग तथा लालरंग एवम् कठोर होजाना तथा निदानमें कहे हुए कारणोंसे रोगका बढना उससे विपरीत द्रव्योंके सेवनसे रोगका शान्त होना यह सब लक्षण वातजगुल्मके होतेहैं ॥ ६ ॥

वायुपित्तप्रकोपका कारण ।

तैरेवतुकर्षणैःकर्षितस्याम्ललवणकटुकक्षारोष्णतीक्ष्णशुष्कव्यापन्नमद्यहारितकफलाम्लानांविदाहिनाञ्चशाकमांसानामुपयोगादजीर्णाध्यशनाद्रौक्ष्यानुगतेचामाशयेवमनविरेचनमातिवेलसन्धारणंवातातपौचातिसेवमानस्यपित्तंसहमारुतेनप्रकोपमापद्यते ॥ ७ ॥

पूर्वोक्त वमन,विरेचन आदि कर्षणों द्वारा कर्षित हुआ मनुष्य यदि खट्टे,नमकीन, चरपरे,खारे. उष्ण,तीक्ष्ण और शुष्क पदार्थोंको खाताहै अथवा सडेहुए मद्य तथा दूषित शाक आदि एवम् खट्टेफल,विदाहकारी पदार्थ, शाक, मांस इनका उपयोग करताहै तथा अजीर्णकारी पदार्थ अध्यशन (अधिक भोजन या विषम भोजन)तथा रूक्षता आदि कारणोंसे एवम् वमन, विरेचनके अतियोगसे,मल मूत्र आदि वेगोंको रोकनेसे, पवन और धूपके अत्यन्त सेवनसे पित्त—वायुके साथ कुपित हो जाताहै ७

पित्तप्रकोपसे गुल्म ।

तत्प्रकुपितंमारुतआमाशयैकदेशेसंवर्त्यतानेववेदनाप्रकारानुपजनयतियेउक्तावातगुल्मेपितंतेनविदहतिकुक्षौहृद्युरसिकण्ठेवास।विदह्यमानःसधूममिवोद्गारमुद्गिरत्यम्लान्वितंगुल्मावकाशश्चास्यदह्यतेदूयतेधूप्यतेउष्मायतेस्विद्यातिक्लिद्यातिमृदुशिथिलइवचास्पर्शासहोऽल्परोमाञ्चोभवतिज्वरभ्रमदवथुपिपासागलवदनतालुशोषप्रमोहविड्भेदाश्चभवन्ति। हरितहारिद्रत्वङ्नखनयनवदनमूत्रपुरीषञ्चभवतितेनिदानोक्तानिचास्यनोपशेरतेविपरीतानिचास्यचोपशेरतइतिपित्तगुल्मः ॥८॥

उस कुपितहुए पित्तको वायु आमाशयके एकदेशमें अर्थात् ग्रहणीविभागमें प्राप्त कर वातगुल्ममें कही हुई संपूर्ण पीडाओंको प्रगट करता है। और पूर्वोक्त प्रकारसे

गुल्मको उत्पन्न करदेताहै। फिर वह पित्तगुल्म-कुक्षि, हृदय, छाती, कण्ठ, इन सबमें दाहको उत्पन्न करताहै वह गुल्म दाहयुक्त होकर धूएंकीसी तथा खटाईयुक्त डकारको उत्पन्न करताहै और गुल्म स्थानमें दाह तथा पीडा होतीहै एवम् धूआंसा निकलता हुआ प्रतीत होताहै, पसीने आते हैं शरीरमें गीलापनसा उत्पन्न होजाता है। वह गीला नरम और शिथिलसा प्रतीत होता है स्पर्शको सह नहीं सकता, थोडाथोडा रोमाञ्च होताहै एवम्, ज्वर, भ्रम, दाह, प्यास, मुख, गल, तालू इनका सूखना, मोह तथा दस्तका लगना और त्वचा, नख, नेत्र, मुख, मूत्र, पुरीष इन सबका हल्दीके समान रंग होना, पित्तकारक पदार्थोंसे बढना और उसके विपरीतोंसे शान्त होना यह पित्तगुल्मके लक्षण होते हैं ॥ ८ ॥

कफके प्रकुपित होनेका कारण।

तैरेवतुकर्षणैःकर्षितस्यात्यशनात्स्निग्धगुरुमधुरशीताशनात्पि-ष्टेक्षुक्षीरमाषतिलगुडविकृतिसेवनमद्यपानाद्धरितकातिप्रणि-नयादानूपौदकग्राम्यमांसातिभक्षणात्सन्धारणादतिसुहितस्य चातिप्रगाढमुदकपानात्संक्षोभणाद्वाशरीरस्यश्लेष्मासहमारुते-नप्रकोपमापद्यते ॥ ९ ॥

उसी प्रकार वमन, विरेचनादि कारणोंसे कर्षित हुए मनुष्यके अधिक भोजन करनेसे तथा स्निग्ध, गुरु, मधुर, शीतल पदार्थोंके खानेसे, मैदा आदि पिष्ट पदार्थ, गुड, दूध, उडद, तिल, मिठाई आदि पदार्थोंके अधिक सेवनसे, गंदक तथा सडी हुई मद्यके पीनेसे, अधिक सब्जियोंके खानेसे, अनूपसंचारी तथा ग्राम्यजीवोंका मांस अधिक खानेसे, मल, मूत्रादि वेगोंको रोकनेसे, प्यारे पदार्थोंको बहुत ज्यादे खानेसे, अधिक जलपीनेसे, शरीरके अधिक हलचल होनेसे, कफ वायुके साथ कोपको प्राप्त होता है ॥ ९ ॥

प्रकुपितकफसे गुल्मकी उत्पत्ति।

तंप्रकुपितंमारुतआमाशयैकदेशेसंवर्त्त्यतानेववेदनाप्रकारानुप-जनयतियउक्तावातगुल्मे । श्लेष्मात्वस्यशीतज्वरारोचकावि-पाकाङ्गमर्दहर्षहृद्रोगच्छर्दिनिद्रालस्यस्तैमित्यगौरवशिरोभि-तापानुपजनयति अपिचगुल्मस्यस्थैर्य्यगौरवकाठिन्यावगाढसु-प्तताःतथाकासश्वासप्रतिश्यायान्राजयक्ष्माणश्चातिप्रवृद्धःश्वै-त्यंत्वङ्नखनयनवदनमूत्रपुरीषेषुउपजनयति।निदानोक्तानि

चास्यनोपशेरतेतद्विपरीतानिचोपशेरतइतिश्लेष्मगुल्मः॥१०॥

उस कुपित हुए कफको वायु, आमाशयमें ले जाकर चक्कर देकर गोलाकार बना देतीहै और वातगुल्ममें कहेहुए पीडाके प्रकारोंको उत्पन्न करतीहै। फिर यह कफसे बना हुआ गुल्म-शीतज्वर, अरुचि, अन्नका अविपाक, अंगमर्द, रोमहर्ष, हृद्रोग, वमन, निद्रा, आलस्य, शरीरका गीलासा होना, गुरुता और शिरमें शूल इन सबको प्रगट करताहै तथा वह गुल्म-स्थिर, भारी, कठिन, गाढतायुक्त तथा सुन्नसा होता है। उस गुल्मके बढनेसे-कास, श्वास, प्रतिश्याय, राजयक्ष्मा यह उत्पन्न होते हैं एवम् त्वचा, नख, नेत्र, मुख, मूत्र, मल, ये सब सफेद वर्णके होतेहैं। और निदानमें कहे हुए कारणोंसे रोगका बढना तथा तद्विपरीत कारणोंसे शान्त होना यह सब कफजन्य गुल्मके लक्षण होते हैं ॥ १० ॥

निचयगुल्मका वर्णन।

त्रिदोषहेतुलिङ्गसन्निपातात्तुसान्निपातिकंगुल्ममुपदिशान्तिकुशलाः। सप्रतिषिद्धोपक्रमत्वादसाध्योनिचयगुल्मः॥ ११ ॥

जिस गुल्ममें गुल्मदोषोंके कारण और लक्षण मिलतेहों उस गुल्मको बुद्धिमान् वैद्य सन्निपातसे उत्पन्न हुआ मानते हैं। सन्निपातके गुल्ममें चिकित्साकी विरोधता पडनेसे इसको असाध्य गुल्म जानना ॥ ११ ॥

रक्तगुल्म।

शोणितगुल्मस्तुखलुस्त्रियाएवभवतिनपुरुषस्य।
गर्भकोष्ठार्त्तवागमनवैशेष्यात् ॥ १२ ॥

रक्तजनित गुल्म केवल स्त्रियोंकोही होताहै। पुरुषोंको नहीं होता क्योंकि गर्भ कोष्ठ और मासिक ऋतुका बहाव स्त्रियोंके ही होनेसे रक्तगुल्म भी स्त्रियोंके ही होता है ॥ १२ ॥

रक्तगुल्मकी उत्पत्तिके कारण।

पारतन्त्र्यादवैशारद्यात्सततमुपचारानुरोधाद्वेगानुदीर्णानुपरुन्धन्त्याआमगर्भेवाऽपिअचिरात्पतितेतथाप्यचिरप्रजातायाऋतौवावातप्रकोपनान्यासेवमानायावातप्रकोपमापद्यते ॥१३॥

स्त्रियें परतंत्र होनेसे और शारीरिक विषयमें मूर्ख होनेसे निरन्तर अपने घर अथवा संतान आदिके काममें लगी हुई रहतीहैं और मल मूत्रादिके आयेहुए वेगोंको रोकलेतीहैं अतएव वेग आदिकोंके रोकनेसे, कच्चे गर्भके पात होजानेसे अथवा प्रसूत

कालमेंही या ऋतुकालमें वात-प्रकोप कारक पदार्थके सेवनसे उस स्त्रीके शरीरमें वायु कोपको प्राप्त होजाताहै ॥ १३ ॥

सप्रकुपितोयोन्यामुखमनुप्रविश्यार्त्तवमुपरुणद्धिमासिमासित-दार्त्तवमुपरुध्यमानंकुक्षिमभिवर्द्धयति ॥ १४ ॥

फिर वह कुपित हुआ वायु योनिके मुखमें प्रवेश करके स्त्रीके मासिक ऋतुका बद्ध कर देता है फिर महीने २ ऋतुके रजको रोकता हुआ कूखमें वृद्धिको प्राप्त होताहै अर्थात् रक्तका गोलासा बना २ कर कूखमें बढताजाताहै ॥ १४ ॥

तस्याःशूलकासातीसारछर्द्यरोचकाविपाकाङ्गमर्दनिद्रालस्यक-फप्रसेकाःसमुपजायन्तेस्तनयोश्चस्तन्यमोष्ठयोस्तनमण्डलयोश्च कार्ष्ण्यंग्लानिःचक्षुषोर्मूर्च्छाहृल्लासोदोहदःश्वयथुःपादयोरीष-च्चोद्गमोरोमराज्यायोन्याश्चाजननत्वमपिचयोन्यादौर्गन्ध्यमा-स्रावश्चोपजायते ॥ १५ ॥ केवलश्चास्यागुल्मःस्पन्दतेतामग-र्भांगर्भिणीमित्याहुर्मूढाः ॥ १६ ॥

इसके होनेसे उस स्त्रीके-शूल, खांसी,अतिसार,वमन, अरुचि,अन्नका न पचना अंगमर्द, निद्रा, आलस्य, कफका थूकना ये उत्पन्न होतेहैं तथा दोनों स्तनोंमें दूध उत्पन्न होजाताहै । ओष्ठ और स्तनोंके अग्रभाग काले होजातेहैं एवम् ग्लानी, नेत्रोंका निकलसाजाना, मूर्च्छा, अहल्लास तथा सब गर्भकेसे लक्षण होना, पावोंपर किंचित् सूजन, रोमाञ्च होना, योनिका गर्भ प्रगट करनेकेसे लक्षण दीखना,योनिका दुर्गंधित तथा स्रावित होना और वह गोला किंचित् फडकताहै । उस गुलमयुक्त स्त्रीको मूर्खलोग गर्भवती समझने लगजातेहैं।ये रक्तजगुल्मके लक्षण हैं ॥१५॥१६॥

गुल्मके पूर्वरूप ।

एषांतुखलुपञ्चानांगुल्मानांप्रागभिनिर्वृत्तेरिमानिपूर्वरूपाणि । तद्यथा--अनन्नाभिलषणमरोचकाविपाकावग्निवैषम्यंविदाहोभु-क्तस्यपाककालेचायुक्त्याछर्दिरुद्गारोवातमूत्रपुरीषवेगाणामप्रा-दुर्भावःप्रादुर्भूतानाञ्चाप्रवृत्तिःसङ्गःईषदागमनंवात्रातशूलाटो-पान्त्रकूजनपरिहर्षणाभिवृत्तपुरीषताअबुभुक्षादौर्बल्यंसौहित्य-स्यचासहत्वमितिगुल्मपूर्वरूपाणि ॥ १७ ॥

इन पांच प्रकारके ही गुल्मोंके प्रगट होनेसे पहिले यह पूर्वरूप होतेहैं। जैसे-अन्नकी

अभिलाषा न होना, अरोचक, अन्नका न पचना. अग्निकी विषमता, भोजन किये हुएका विदाहि विपाक, भोजन पचनेके समय विनाही कारणसे छर्द होजाना, डकारोंका आना, अधोवायु, मूत्र, मल इनके वेगोंका न होना, आयेहुए वेगोंका यथोचित निःसर्ग न होना अथवा वेगोंका निवृत्त होजाना या किंचित् किंचित् आना, शूल, पेटमें वायुका फैलना, अफारा आंतोंका बोलना, रोमहर्ष, मलका गांठदार होना, भूख थोडी लगना, शरीर दुर्वल होजाना, पेटभरके भोजन न करसकना यह गुलम रोगके पूर्वरूप होतेहैं ॥ १७ ॥

गुल्ममें चिकित्सा निर्देश ।

सर्वेष्वपिचगुल्मेषुनकश्चिद्वातादृतेसम्भवति। गुल्मस्तेषांसन्निपातजमसाध्यंज्ञात्वानोपक्रमेत । एकदोषजेतुयथास्वमारम्भं प्रणयेतसंसृष्टास्तुसाधारणेनकर्मणापचरेत् ॥ १८ ॥

संपूर्ण गुल्म वायुके विना नहीं होसकते अर्थात् वायु ही स्वयम् या अन्यदोषोंसे मिश्रित होकर उत्पन्न करताहै । इन पांच प्रकारके गुल्मोंमें सन्निपात जनित गुल्मवाले रोगीको असाध्य समझकर त्याग देनाचाहिये।एक दोषसे उत्पन्न हुए गुल्मको अर्थात् वातजगुल्मको उसके कारण और लक्षणोंद्वारा जानकर चिकित्सा करे और अन्य तीन प्रकारके गुल्मोंमें यथोचित रीतिसे चिकित्सा करे ॥ १८ ॥

यद्वाअन्यदप्यविरुद्धंमन्येत तदवचारयेद्विभज्यगुरुलाघवमुपद्रवाणांसमीक्ष्यगुरूपद्रवांस्त्वरमाणःचिकित्स्येज्जघन्यमितरांस्त्वरमाणस्तुविशेषमुपलभ्यगुल्मेष्वात्ययिकेकर्मणिवातचिकित्सितंप्रणयेत् ॥ १९ ॥

यदि सन्निपातज गुल्मको भी चिकित्सा योग्य समझे तो उसमें दोष और उपद्रवोंकी गुरुता और लघुता विचारकर पहिले भारी उपद्रवोंको शीघ्र जीत लेवे फिर मध्यम उपद्रवोंको शान्त करे तदनन्तर बाकीके अंशोंको छांटते हुए अधिक समय व्यतीत होगा ऐसा विचारकर वायुकी चिकित्सा करे क्योंकि भारी उपद्रवोंके नष्ट होनेपर केवल वातमात्रकी चिकित्सा करनेसे रोगीको परमलाभ पहुंच सकता है १९

स्नेहस्वेदौवातहरौस्नेहोपसंहितञ्चमृदुविरेचनंबस्तीनम्ललवणमधुरांश्चरसान्युक्तितोऽवचारयेत्मारुतेह्युपशान्तेस्वल्पेनापिप्रयत्नेनशक्यमन्योऽपिदोषोनियन्तुंगुल्मोष्विति ॥ २० ॥

स्नेहन करना, स्वेदन करना, एवम् स्नेहयुक्त मृदु विरेचन करना तथा अम्लल

वण और मधुर रसयुक्त युक्तिपूर्वक वस्तिकर्म करना इनसे गुल्मरोगमें वायुकी शान्ति होतीहै। इस प्रकार वायुके शान्त होनेपर अथवा अल्प रहजानेपर यत्नपूर्वक अन्य दोषोंको भी शान्त करनेका प्रयत्न करनाचाहिये। यह सामान्यरूपसे गुल्मोंकी चिकित्साका क्रम है ॥ २० ॥

तत्र श्लोकौ ।

गुल्मिनामानिलशान्तिरुपायैःसर्वशोविधिवदाचरितव्या । मारुतेह्यवजितेऽन्यमुदीर्णंदोषमल्पमपिकर्मनिहन्यात् ॥ २१ ॥

इसीको यहां कहतेहैं कि गुल्मरोगमें सब तरहसे विधिपूर्वक उपायों द्वारा वायुको शान्त करे। उस वायुके शान्त होनेपर बाकी रहे दोष साधारण क्रियाद्वारा भी शान्त हो जातेहैं ॥ २१ ॥

संख्यानिमित्तरूपाणिपूर्वरूपमथापिच ।
दृष्टंनिदानेगुल्मानामुपदेशश्चकर्मणाम् ॥ २२ ॥

इति अग्निवेशकृते तन्त्रे चरकप्रतिसंस्कृते गुल्मनिदानं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

इस गुल्मनिदान नामक अध्यायमें गुल्मोंकी संख्या, निमित्त, पूर्वरूप, रूप, और गुल्म रोगमें चिकित्सा कर्मोंका उपदेश किया गयाहै ॥ २२ ॥

इति श्रीमहर्षिचरक० नि० स्था० पं० रामप्रसादवैद्य० भाषाटीकायां गुल्मनिदानं नाम तृतीयोध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ।

प्रमेहनिदानम् ।

अथातःप्रमेहनिदानंव्याख्यास्यामइतिहस्माहभगवानात्रेयः।

अब हम प्रमेहके निदानकी व्याख्या करतेहैं। ऐसा भगवान् आत्रेयजी कथन करनेलगे।

प्रमेहोंकी संख्या ।

त्रिदोषकोपनिमित्ताविंशतिःप्रमेहविकाराःचापरेऽपरिसंख्येयाः। तत्रयथात्रिदोषप्रकोपः प्रमेहानभिनिवर्त्तयतितथानुव्याख्यास्यामः ॥ १ ॥

वात,पित्त,कफ इन तीनों दोषोंके निमित्तसे वीस प्रकारके प्रमेह उत्पन्न होतेहैं । यद्यपि इन बीस प्रकारोंके सिवाय प्रमेहोंके अन्य प्रकार भी हैं परन्तु वह गणनामें नहीं आसकते । अतएव प्रमेहोंकी बीसप्रकारकी ही संख्या है सो जिस प्रकार तीनों दोष कुपित होकर प्रमेहोंको उत्पन्न करतेहैं उनका वर्णन करतेहैं ॥ १ ॥

इहखलुनिदानदोषदूष्यविशेषेभ्योविकाराणांविघातभावाभाव-प्रतिविशेषाभवन्ति ॥ २ ॥

इस स्थानमें हेतु, दोष और दूष्यके भेदसे रोगोंका विघात, भाव और अभावकी भेदता होतीहै ॥ २ ॥

यदाह्येतेत्रयोनिदानादिविशेषाःपरस्परंनानुबध्नन्तिअथथाप्र-कर्षादबलीयांसोवानुबध्नन्तिनतदाविकाराभिनिर्वृत्तिः । चि-राद्वाप्यभिनिवर्त्तन्तेतनवोवाभवन्त्यथवाप्ययथोक्तसर्वलिङ्गा-विपर्ययेणविपरीताइतिसर्वविकाराविघातभावाभावप्रतिविशे-षाभिनिर्वृत्तिर्हेतुरुक्तः ॥ ३ ॥

जब वातादि तीनों दोषोंके हेतु परस्पर अर्थात् आपसमें एकसे दूसरा प्रतिषेध कारक होनेके कारण रोगोंको उत्पन्न नहीं होनेदेता उसको रोगोंका विघात कहते हैं । जैसे दुर्बलभावसे दोषोंका परस्पर अनुबंध होनेसे रोगोंकी उत्पत्ति नहीं होती इसको रोगोंका विघात कहतेहैं । अथवा रोग विलम्बसे उत्पन्न हो या वहुत थोडा उत्पन्न हो अथवा जैसा होनाचाहिये था वैसे लक्षणयुक्त न हो । इस प्रकार रोगोंका विघात,भाव, अभाव, प्रतिनिर्वृत्तिके हेतुओंको कहाहै तात्पर्य यह हुआ कि निदान, दोष, दूष्य विशेषों करके जो विकारोंका इकट्ठा होनाहै उसको विघात कहतेहैं । अथवा वातकारक हेतुसे विपरीत गुणकारक हेतुके मिलजानेसे जो रोगका उत्पन्न न होनाहै उसको विघात जानना चाहिये । और दो दोषोंका मिल करके अथवा दो हेतुओंका मिल करके रोगका होना भाव कहा जाताहै । एकदम रोगोंका हेतु आदि न होनेसे रोगका उत्पन्न न होना अभाव कहा जाताहै । हेतु आदिकोंसे रोगका प्रगट होजाना निर्वृत्ति कहा जाताहै इन सबके कारणोंको संक्षेपसे कहाहै । अथवा निदान,दोष दूष्य विशेषों करके विकारोंका विघात,भाव,अभाव, प्रतिविशेष आदिसे रोगोंके विभाग कियेगयेहैं ॥ ३ ॥

प्रमेहानिदान भेद ।

तत्रइमेनिदानादिविशेषाःश्लेष्मनिमित्तानांप्रमेहाणामाशुअ-भिनिर्वृत्तिकराः । तद्यथा--

हायनकयवचीनकोद्दालकनैषधोत्कटमुकुन्दकमहाव्रीहिप्रमोद-कसुगन्धकानांनवान्नानामतिवेलमतिप्रमाणेनोपयोगः । तथा सर्पिष्मतांनवहरेणुमाषसूपानांग्राम्यानूपौदकानांमांसानांशा-कतिलपललपिष्टान्नपायसकृसरविलेपीक्षुविकाराणांक्षीरमन्द-कदधिद्रवमधुरतरुणप्रायाणामुपयोगोमृजाव्यायामवर्जनस्व-प्नशयनासनप्रसंगोयश्चकश्चिद्विधिरन्योऽपिश्लेष्ममेदोमूत्रसंज-ननःसर्वःसनिदानविशेषः ॥ ४ ॥

सो यह निदानादि विशेष कफनिमितक प्रमेहोंको शीघ्र उत्पन्न करनेवाले होतेहैं जैसे जौ, शालिधान्य, चीना, कोदों, नैषध, मुकुन्दक, महाव्रीहि, प्रमोदक, सुगंधक आदि धान्योंकी जातियोंका निरन्तर अधिक सेवन करना और घृतके साथ नवीन मटर और उडदकी दाल अधिक सेवन करना, ग्रामसंचारी, अनूपसंचारी एवम् जलज जीवोंका मांस तथा शाक, तिल, पिष्टक, मैदा आदि गरिष्ठ पदार्थ, खीर, खिचडी, विलेपी, शक्कर, गुड आदि ईखके विकार, दूध, मंदक, दही एवम् पतले और मीठे पदार्थ, नवीन पदार्थ इन सबका अधिक सेवन करना तथा देहको सुकुमार बना रखना, कसरत न करना, बहुत सोना, सुन्दर नर्म शय्या और आसन आदिका उपयोग करना इनके सिवाय अन्य भी जो आहार और विहार कफ मेद तथा मूत्रके वढानेवाले हैं वह सब कफजनित प्रमेहोंके निदान (कारण) होतेहैं ॥ ४ ॥ (यह कारण कहेगये)

दोषदूष्यका वर्णन ।

बहुद्रवश्लेष्मादोषविशेषःबहुबद्धंमेदोमांसञ्चशरीरक्लेदःशुक्रं शोणितञ्चवसामज्जालसीकारसश्चौजःसंख्याताइतिदूष्यविशे-षाः ॥ ५ ॥

अब दोष और दूष्योंको कहतेहैं । कफजनित प्रमेहोंमें बहुतसे पतले द्रावयुक्त कफ जो है उसको दोष कहतेहैं । बहुत और बंधेहुई मेद, मांस, शरीरका क्लेद, शुक्र, रक्त, चर्बी, मज्जा, लसीका रस और ओज यह सब प्रमेहरोगमें दूष्य होतेहैं। कफदोषको उपरोक्त कारणोंका सेवन करना कुपित करताहै इसलिये उन कारणों-

को कफके कोपका निदान अर्थात् हेतु मानागयाहै ।अपने कारणोंसे बढाहुआ कफ मेद आदि धातुओंको दूषित करताहै इसलिये उसको दोष कहतेहैं । उस दोषद्वारा मेद आदि धातुएं दूषित होती हैं इसलिये उनको दूष्य कहाजाताहै ॥ ५ ॥

प्रकुपित कफके कर्म ।

त्रयाणामेषांनिदानादिविशेषाणांसान्निपातेक्षिप्रंश्लेष्माप्रकोपमापद्यतेप्रागतिभूयस्त्वात् । सप्रकुपितः क्षिप्रमेवशरीरे विसृप्तिंलभते । शरीरशैथिल्यात्सविसर्पन्शरीरे मेदसैवादितोमिश्रीभावंगच्छति । मेदसश्चैववहुबद्धत्वान्मेदसश्चगुणानांगुणैःसमानगुणभूयिष्ठत्वात्समेदसामिश्रीभावंगच्छन्दूषयत्येतद्विकृतत्वात्सविकृतोदुष्टेनमेदसोपहितःशरीरक्लेदमांसाभ्यांसंसर्गंगच्छति । क्लेदमांसयोरतिप्रमाणाभिवृद्धित्वात्समांसेमांसप्रदोषात्पूतिमांसपिडकाःशराविकाकच्छपिकाद्याः संजनयतिअप्रकृतिभूतत्वाच्छरीरक्लेदंपुनर्दूषयन्मूत्रत्वेनपरिणमयतिमूत्रवहाणांस्रोतसांवंक्षणवस्तिप्रभवाणांमेदःक्लेदोपहितानिगुरूणिमुखान्यासाद्यप्रतिरुध्यते । ततःस्थैर्यं साध्यतांवाजनयतिप्रकृतिविकृतिभूतत्वात् ॥ ६ ॥ शरीरक्लेदस्तुश्लेष्ममेदोमिश्रःप्रविशन्मूत्राशयेमूत्रत्वमापद्यमानःश्लैष्मिकैरेभिर्दशभिर्गुणैरुपसृज्यतेवैषम्ययहानिवृद्धियुक्तैः । तद्यथा—श्वेतशीतमूर्त्तपिच्छिलाच्छस्निग्धगुरुमधुरसान्द्रप्रसादगन्धैस्तत्रयेनगुणेनैकेनानेकेनवाभूयस्तरमुपसृज्यतेतत्समाख्यंगौणंनामविशेषंप्राप्नोति ॥ ७ ॥

इन निदान और दोष तथा दूष्योंके संयोगसे कफ कुपित होताहै क्योंकि वह प्रथम ही अधिकतायुक्त होता है । वह कुपित हुआ कफ सम्पूर्ण शरीरमें झट फैल जाता है । शरीरकी शिथिलतासे इधर उधर फिरता हुआ वही कफ पहिले मेदमें मिलजाताहै फिर मेदके बहुत और बध्य होनेके कारण तथा मेदके समान गुणवाला होनेसे वह कफ मेदमें मिलकर मेदको बिगाड देता है । फिर विकृत हुए मेदके संयोगसे शरीरके क्लेद और मांसमें मिलजाताहै । उस क्लेद और मांसके अत्यन्त

बढजानेसे मांसमें--मांसके दोषसे दुर्गंधित मांसकी शराविका कच्छपिका आदि पिडका उत्पन्न होजाती हैं। फिर वह दूषित कफ मेदादिकोंसे मिलाहुआ क्लेदको दूषित करके प्रकृतिस्थमूत्रको विगाड़ देता है । तब मूत्रवाही स्रोतोंके मुख मेद और क्लेदके द्वारा भारी कर देता है और रोक देता है । तथा वंक्षण और वस्तीके मुखोंको भी भारी कर देताहै । फिर उन छिद्रोंके मुख दृढ होजाते हैं अथवा किसी प्रकार प्रकृतिस्थ होनेसे साध्य भी होजातेहैं । कफ और मेदसे मिश्रित हुआ शरीरका क्लेद-मूत्राशयमें प्राप्त होकर मूत्ररूप होजाताहै फिर वह कफजनित दश प्रकारके विषमता न्यूनता एवम् अधिकता युक्त गुणोंको उत्पन्न करताहै । जैसे- श्वेतता, शीतलता, मूर्तता, पिच्छलता अच्छता, स्निग्धता, गुरुता, मधुरता, सांद्रता एवम् गंधता इन दश गुणोंको उत्पन्न करताहै । इनमें यदि वह क्लेद एक गुणयुक्त हो तो सम कहा जाताहै और वहुतसे गुणयुक्त होनेसे गौण कहाजाता है ॥ ६ ॥ ७ ॥

प्रमेहोंके नाम ।

तेतुखलुइमेदशप्रमेहानामविशेषणभवन्ति।तथाउदकमेहश्चे-
क्षुमेहश्चसान्द्रमेहश्चसान्द्रप्रसादमेहश्चशुक्लमेहश्चशुक्रमेहश्च
शीतमेहश्चसिकतामेहश्चशनैर्मेहश्चलालामेहश्चेति ॥ ८ ॥

फिर उन दश गुणयुक्त होनेसे दश प्रकारके प्रमेहोंको उत्पन्न करताहै । वह दश प्रमेह यह हैं-उदकमेह, इक्षुमेह, सान्द्रमेह, सान्द्रप्रसादमेह, शुक्लमेह, शुक्रमेह, शीतमेह, सिकतामेह, शनैर्मेह और लालामेह ॥ ८ ॥

कफप्रमेहका साध्यत्व।

तेदशप्रमेहाःसाध्याःसमानगुणमेदःस्थानत्वात्कफस्यप्राधा-
न्यात्समानक्रियत्वाच्च ॥ ९ ॥

वह दश प्रकारके प्रमेह साध्य होतेहैं क्योंकि मेदके समान गुण होनेसे, मेदसे कफके प्रधान होनेसे तथा कफ और मेदकी समान चिकित्सा होनेसे साध्य होतेहैं अर्थात् जो चिकित्सा कफनाशक की जायगी वह मेदके विकारोंको भी शान्त करती है । इसलिये चिकित्सामें विरोध न पडनेसे कफजनित प्रमेह साध्य होतेहै९॥

उदकमेहका लक्षण ।

तत्र श्लोकाः ।

श्लेष्मप्रमेहविज्ञानार्थाः । अच्छंबहुसितंशीतंनिर्गन्धमुदको-
पमम् । श्लेष्मकोपान्नरोमूत्रमुदमेहीप्रमेहति ॥ १० ॥

उन कफके प्रमेहोंके विज्ञानके लिये यहांपर श्लोक कहेजातेहैं ।

उदकमेही मनुष्य-कफके कोपसे स्वच्छ,बहुत, सफेद, शीतल, निर्गंध, जलके समान मूत्रको मूतता है ॥ १० ॥

इक्षुमेहके लक्षण ।

अत्यर्थमधुरंशीतमीषत्पिच्छिलमाविलम् ।
काण्डेक्षुरससङ्काशंश्लेष्मकोपात्प्रमेहति ॥ ११ ॥

इक्षुमेही मनुष्य-अधिक, मधुर, शीतल, किंचित् पिच्छल,गन्धला, काण्डेक्षुके रसके समान मूतता है ॥ ११ ॥

सान्द्रमेहके लक्षण ।

यस्यपर्य्युषितंमूत्रंसान्द्रीभवति भाजने ।
पुरुषंकफकोपेनतमाहुःसांद्रमेहिणम् ॥ १२ ॥

सान्द्रमेही मनुष्यका मूत्र-देरतक रक्खा रहनेसे गाढा और आन्तयुक्तसा होजाताहै इसीलिये इस कफजनित प्रमेहको सान्द्रमेह कहते हैं ॥ १२ ॥

सान्द्रप्रसादमेहके लक्षण ।

यस्यसंहन्यतेमूत्रंकिञ्चित्किञ्चित्प्रसीदति ।
सान्द्रप्रसादमेहीतितमाहुः श्लेष्मकोपतः ॥ १३ ॥

जिस मनुष्यका मूत्र-देरतक रक्खा रहनेसे नीचेसे जमजाय और ऊपरसे हिलानेसे कुछ कुछ फैलावयुक्तसा होजाय उसको सान्द्रप्रसादमेही कहतेहैं ॥ १३ ॥

शुक्लमेहके लक्षण ।

शुक्लंपिष्टनिभंमूत्रमभीक्ष्णंयःप्रमेहति ।
पुरुषंकफकोपेनतमाहुःशुक्लमेहिनम् ॥ १४ ॥

जो मनुष्य-श्वेत और पिष्टीके धोवनके समान मूत्र करता है उसको शुक्लमेही कहतेहैं ॥ १४ ॥

शुक्रमेहके लक्षण ।

शुक्राभंशुक्रमिश्रंवामुहुर्मेहतियोनरः ।
शुक्रमेहिणमेवाहुःपुरुषंश्लेष्मकोपतः ॥ १५ ॥

जिस मनुष्यका मूत्र-शुक्रयुक्त अथवा शुक्रके समान हो तथा वह वारंवार थोडा थोडा मूतता हो उसको कफजनित शुक्रमेह कहतेहैं ॥ १५ ॥

शीतमेहके लक्षण।

अत्यर्थंशीतमधुरंमूत्रंक्षरतियोभृशम्।
शीतमेहिनमाहुस्तंपुरुषंश्लेष्मकोपतः॥ १६ ॥

जिस मनुष्यका मूत्र–अधिक, शीतल एवम् मधुर उतरता है उसको कफजनित शीतमेही कहतेहैं ॥ १६ ॥

सिकतामेहके लक्षण।

मूर्त्तान्मूत्रगतान्दोषानणून्मेहातियोनरः।
सिकतामेहिनंविद्यान्नरंतंश्लेष्मकोपतः॥ १७ ॥

जिस मनुष्यका मूत्र–कठिन स्पर्शवाले रेतकेसे कणकोंयुक्त हो उसको सिकतामेही कहतेहैं ॥ १७ ॥

शनैर्मेहके लक्षण।

मन्दंमन्दमवेगन्तुकृच्छ्रंयोमूत्रयेच्छनैः।
शनैर्मेहिनमाहुस्तंपुरुषंश्लेष्मकोपतः॥ १८ ॥

जिस मनुष्यके कफ कोपके कारण–वेगरहित थोडा २ एवम् शनैः शनैः मूत्र आता हो उसको शनैर्मेही कहते हैं ॥ १८ ॥

आलालमेहके लक्षण।

तन्तुबद्धमिवालालंपिच्छिलंयःप्रमेहति। आलालमेहिनंविद्यात्तं नरंश्लेष्मकोपतः॥ इत्येते दश प्रमेहाः श्लेष्मप्रकोपनिमित्ता व्याख्याताः॥ १९ ॥

जिस मनुष्यको- तंतुओंके समान, पिच्छिल, लारयुक्त मूत्र आता हो उसको लालमेही कहतेहैं। इस प्रकार कफकोपसे उत्पन्न हुए दश प्रकारके प्रमेहोंका कथन कियागयाहै। इति कफजनित दशमेह ॥ १९ ॥

पित्तप्रमेहका लक्षण।

उष्णाम्ललवणक्षारकटुकाजीर्णभोजनोपसेविनस्तथाति- तीक्ष्णातपाग्निसन्तापश्रमक्रोधविषमाहारोपसेविनश्चतथात्म- कशरीरस्यैवक्षिप्रंपित्तंप्रकोपमापद्यते॥ २० ॥

अब पित्तके प्रमेहोंके कारणोंको कहतेहैं। गर्म, खट्टे, नमकीन चरपरे एवम् अजीर्णकर्त्ता पदार्थोंके सेवनसे तथा अजीर्णमें भोजनके करनेसे एवम् अत्यन्त

तीक्ष्ण, धूप, अग्नि, संताप, श्रम, क्रोध और विषम आहारके सेवनसे पित्तप्रकृति मनुष्यके शरीरमें पित्तका शीघ्र प्रकोप होजाताहै ॥ २० ॥

तत्प्रकुपितंतथैवानुपूर्व्याप्रमेहानिमान्षट्क्षिप्रमभिनिर्वर्त्तयति॥२१॥

वह कुपित हुआ पित्त पूर्वोक्त क्रमसे मेदादिकोंको दूषित करता हुआ छःप्रकारके प्रमेहोंको उत्पन्न करताहै ॥ २१ ॥

छः प्रमेहोंके नाम ।

तेषामपिचपित्तगुणविशेषेणनामविशेषाः । तद्यथा—क्षारप्रमेहश्चकालमेहश्चनीलमेहश्चलोहितमेहश्चमाञ्जिष्ठामेहश्चहारिद्रामेहश्चेतितेषड्भिरेवक्षाराम्ललवणकटुकाविस्त्रोष्णैःपित्तगुणैः पूर्ववत्समन्विताः । सर्वएवतेयाप्याःविषमगुणमेदःस्थानत्वाद्विरुद्धोपक्रमत्वाच्चेति ॥ २२ ॥

उन छःओंके पित्तगुणके भेदसे छःप्रकारके नाम होतेहैं । जैसे—क्षारमेह, कालमेह, नीलमेह, लोहितमेह, मंजिष्ठामेह, हरिद्रामेह, यह छःप्रकारके ही प्रमेह—क्षार, अम्ल, लवण, कटु, विस्र, उष्ण इन पित्तके गुणोंसे युक्त होतेहैं । यह पित्तके छःप्रकारके प्रमेह—मेदके गुणोंसे विरुद्ध क्रिया द्वारा शान्त होनेवाले होनेसे याप्य साध्य होतेहैं अर्थात् इन पित्तजनित विकारोंको शान्त करनेवाली क्रिया मेदके विकारोंको शमन करनेवाली नहीं होसकती इसलिये चिकित्सामें विषमता पडनेसे इन प्रमेहोंको याप्य साध्य कहाहै ॥ २२ ॥

क्षारमेहीके लक्षण ।

तत्र श्लोकाः ।

पित्तप्रमेहविज्ञानार्थाः । गन्धवर्णरसस्पर्शैर्यथाक्षारस्तथात्मकम् । पित्तकोपान्नरोमूत्रंक्षारमेहीप्रमेहति ॥ २३ ॥

उन पित्तके प्रमेहोंके विज्ञानके लिये यहांपर श्लोक कहतेहैं । क्षारप्रमेहमें—पित्तके कोपसे गंध, वर्ण, रस और स्पर्श यह सब क्षारके समान गुणोंसे युक्त मूत्र होताहै ॥ २३ ॥

कालमेहीके लक्षण ।

मसीवर्णमजस्रंयोमूत्रमुष्णंप्रमेहति ।
पित्तस्यपरिकोपेनतंविद्यात्कालमेहिनम् ॥ २४ ॥

पित्तके कोपसे स्याहीके समान काला और गर्म मूत्र जिसको नित्य आताहै उसको कालमेही कहते हैं ॥ २४ ॥

नीलमेहीके लक्षण।

चाषपक्षनिभंमूत्रमम्लंमेहतियोनरः ।
पित्तस्यपरिकोपेनतंविद्यान्नीलमेहिनम् ॥ २५ ॥

जिसको नीलकंठके पंखके समान-नीलवर्णका मूत्र थोडा थोडा आताहै उसको नीलमेही कहतेहैं ॥ २५ ॥

रक्तमेहीके लक्षण।

विस्रंलवणमुष्णञ्चरक्तंमेहतियोनरः ।
पित्तस्यपरिकोपेनतंविद्याद्रक्तमेहिनम् ॥ २६ ॥

रक्तमेही मनुष्यको-आमकीसी गंधयुक्त, नमकीन, गर्म तथा रक्तके समान मूत्र आताहै-उसको रक्तमेही कहतेहैं ॥ २६ ॥

मञ्जिष्ठमेहीके लक्षण।

मंजिष्ठारूपियोऽजस्रंभृशंविस्रंप्रमेहति ।
पित्तस्यपरिकोपात्तंविद्यान्माञ्जिष्ठमेहिनम् ॥ २७ ॥

जिस मनुष्यको मंजीठके समान बहुत गंधवाला नित्य मूत्र आताहै उसको मंजिष्ठामेही कहतेहैं ॥ २७ ॥

हारिद्रामेहीके लक्षण।

हारिद्रोदकसङ्काशंकटुकंयःप्रमेहति । पित्तस्यपरिकोपात्तुविद्याद्धारिद्रमेहिनम् ॥ इतिषट्प्रमेहाः पित्तप्रकोपनिमित्ताव्याख्याताः ॥ २८ ॥

जिस मनुष्यको हल्दीके समान वर्णवाला और कटुमूत्र आताहै उसको हरिद्रामेही कहतेहैं। इस प्रकार पित्तके कोपसे उत्पन्नहुए छःप्रमेहिओंका कथन किया गयाहै। इति पित्तजनितषट्प्रमेहाः ॥ २८ ॥

वातप्रमेहहोनेका कारण।

कटुककषायतिक्तरूक्षलघुशीतव्यवायव्यायामवमनविरेचनास्थापनशिरोविरेचनातियोगसन्धारणानशनाभिघातातपोद्वेगशोकशोणिताभिषेकजागरणविषमशरीरन्यासानभ्युपसेवमा-

नस्यतथात्मकशरीरस्यैवाक्षिप्रंवायुःप्रकोपमापद्यते । सप्रकुपित-स्तथात्मकेशरीरेविसर्पन्यदावसामादायमूत्रवहानिस्रोतांसिप्र-तिपद्यतेतदावसामेहमभिनिर्वर्त्तयति ॥ २९ ॥

अब वातके प्रमेहोंका कथन करतेहैं । कडुए, कसैले, चरपरे, रूखे, हल्के, शीतल पदार्थोंके सेवनसे, मैथुन और अधिक परिश्रमके करनेसे, वमन, विरेचन, आस्थापन, शिरोविरेचन इनके अति योगसे, मलमूत्रादि वेगोंको रोकनेसे, लंघन करनेसे, चोट लगनेसे, तप, उद्वेग और शोकके होनेसे, रक्तके निकलनेसे, अधिक जागनेसे, शरीरको विषमावस्थामें रखनेसे तथा अन्य वातकोपकारक कारणोंसे वातप्रधान मनुष्यके शरीरमें शीघ्र वायु कोपको प्राप्त होताहै । वह कुपित हुआ वातात्मक शरीरमें इधर उधर भ्रमण करताहुआ वसाधातु (चर्वी) से मिलकर मूत्रवाहिनी स्रोतोंमें प्रवेशकर वसामेहको उत्पन्न करताहै ॥ २९ ॥

मज्जामेहका कारण ।

यदापुनर्मज्जानंमूत्रवस्तावाकर्षतितदामज्जामेहमभिनिर्वर्त्त-यति । ॥ ३० ॥

फिर वह जब मज्जाको आकर्षण करताहुआ मूत्रवस्तिमें प्राप्त होताहै तो मज्जामेहको उत्पन्न करताहै ॥ ३० ॥

हस्तिमेहका कारण ।

यदालसीकांमूत्राशयेऽभिवहन्मूत्रमनुबन्धंश्च्योतयतिलसीका-तिबहुत्वाद्विक्षेपणाच्चवायोःखल्वस्यातिमूत्रप्रवृत्तिसङ्गंकरोति, तदा समत्तइवगजःक्षरत्यजस्रंमूत्रमवेगंतंहस्तिमेहिनमाचक्षते ३१

जब वह (कुपितवायु) लसीकामें मिलकर मूत्राशयमें प्रवेश करताहै तब लसीकाकी अधिकता होनेसे और वायुका विक्षेपण होनेसे लसीकायुक्त मूत्रकी अधिक प्रवृत्ति होतीहै । फिर वह मनुष्य मत्तहस्तीके समान निरन्तर विना वेग मूत्रको मूतता रहताहै उसको हस्तिमेह कहतेहैं ॥ ३१ ॥

मधुमेहका कारण ।

ओजः पुनर्मधुरस्वभावंतद्रौक्ष्याद्वायुःकषायत्वेनाभिसंसृज्य मूत्राशयेऽभिवहातितदामधुमेहिनं करोति ॥ ३२ ॥

ओजधातु स्वभावसे मधुर है । उसको जब वायु रूक्षतासे तथा कषाय स्वभावसे आकर्षण करलेती है और मूत्राशयमें लेजाकर मधुरस्वभाववाले ओजसे प्रमेहको उत्पन्न करताहै उसको मधुमेह कहतेहैं ॥ ३२ ॥

वातप्रमेहोंको असाध्यत्व ।

तानिमांश्चतुरःप्रमेहान्वातजानसाध्यानाचक्षते । महात्ययिकाद्विप्रतिषिद्धोपक्रमत्वात्तेषामपि चपर्ववदगुणाविशेषेणनामविशेषाः ॥ ३३ ॥

इन वातसे उत्पन्न हुए चारों प्रमेहोंको असाध्य कहतेहैं क्योंकि यह प्रमेह चिकित्सामें विरोध पडनेसे और अत्यन्त सांघातिक होनेसे असाध्य होतेहैं । और इनमें वसा और मज्जा आदि गुणयुक्त मूत्रके आनेसे उन्हींके समान नाम रक्खेगयेहैं ३३॥

तद्यथा ।

वसामेहश्चमज्जमेहश्चहास्तिमेहश्चमधुमेहश्चेति ॥ ३४ ॥

जैसे वसामेह,मज्जामेह,हस्तिमेह और मधुमेह यह चार प्रकारके नाम हैं ॥३४॥

तत्रश्लोकाः ।

वसामेहीके लक्षण ।

वातप्रमेहविशेषविज्ञानार्थाः । वसामिश्रंवसाभञ्चमूत्रंमेहति योनरः । वसामेहिनमाहुस्तमसाध्यंवातकोपतः ॥ ३५ ॥

उन वातजनित प्रमेहोंके विशेष ज्ञानके लिये यहांपर श्लोक कहेजातेहैं। जिस मनुष्यको वसा (चर्बी) युक्त तथा वसाके वर्णवाला मूत्र आताहै उसको वातके कोपसे उत्पन्न हुआ वसामेह कहतेहैं । यह वसामेह असाध्य होताहै ॥ ३५ ॥

मज्जामेहीके लक्षण ।

मज्जानंसहमूत्रेणमुहुर्मेहतियोनरः । मज्जामेहिनमाहुस्तमसाध्यंवातकोपतः ॥ ३६ ॥

जो मनुष्य मज्जायुक्त मूत्रको वारंवार मूतता है उसको मज्जामेही कहतेहैं । यह वातकोपजनित मज्जामेह भी असाध्य होताहै ॥ ३६ ॥

हस्तिमेहीका लक्षण ।

हस्तीमत्तइवाजस्रंमूत्रंक्षरतियोभृशम् । हस्तिमेहिनमाहुस्तमसाध्यंवातकोपतः ॥ ३७॥

जो मनुष्य मत्तहस्तीके समान निरन्तर बहुत मूता करताहै उसको हस्तिमेही कहतेहैं । यह वातजनित हस्तिमेह भी असाध्य होताहै ॥ ३७ ॥

मधुमहीके लक्षण ।

कषायमधुरंपाण्डुंरूक्षंमेहातियोनरः । वातकोपादसाध्यंतंप्रतीयान्मधुमेहिनम् ॥ ३८ ॥

जो मनुष्य कषाय,मधुर, रूक्ष एवम् पाण्डुवर्णका मूत्र मूतता है उसको वातके कोपसे उत्पन्न हुआ असाध्य मधुमेह जानना ॥ ३८ ॥

इतिचत्वारःप्रमेहावातप्रकोपनिमित्ताः । तएवंत्रिदोषप्रकोपनिमित्ताविंशतिप्रमेहाव्याख्याताः ॥ ३९ ॥

इस प्रकार वायुके कोपसे उत्पन्न हुए चार प्रकारके प्रमेहोंका वर्णन कियाहै । वह सब मिलकर तीनों दोषोंके कोपसे उत्पन्न हुए बीस प्रकारके प्रमेहोंका कथन किया है ॥ ३९ ॥

त्रिदोषजन्य प्रमेहके पूर्वरूप ।

त्रयस्तुदोषाःप्रकुपिताःप्रमेहानभिनिवर्त्तयिष्यन्तइमानिपर्वरूपाणिदर्शयन्ति ॥

तद्यथा ।

जटिलीभावंकेशेषुमाधुर्यमास्येकरपादयोःसुप्ततांदाहंमुखतालुकण्ठशोषंपिपासामालस्यंमलञ्चकायेकायच्छिद्रेषूपदेहंपरिदाहं सुप्ततांचाङ्गेषुषट्पदपिपीलिकाभिःशरीरमूत्राभिसरणंमूत्रे चमूत्रदोषान्वितंशरीरगन्धंनिद्रांतन्द्राञ्चसर्वकालमिति ॥४०॥

यह तीन वातादि दोष ही कुपित होकर प्रमेहोंको उत्पन्न करतेहुए इन पूर्वरूपोंको करतेहैं । उन रूपोंको दिखातेहैं । जैसे बालोंकी जटे बन्धना, मुखमें मीठापन, हाथपैरोंका सोना, दाह, मुख, तालु और कण्ठका सूखना, प्यास, आलस्य, शरीरमें मैलका बहुत बढना, रोममार्गोंका बन्द होना, शरीरमें दाह होना, अंगोंका सोजाना, मक्खियें और चीटियोंका शरीरपर बहुत आना तथा मूत्रमें लगना, शरीरसे मूत्रकीसी गंध आना, सब कालमें निद्रा तथा तन्द्राकी अधिकता रहना यह सब प्रमेहके पूर्वरूप होते हैं ॥ ४० ॥

प्रमेहके उपद्रव ।

उपद्रवास्तुखलुप्रमेहिणांतृष्णातीसारज्वरदाहदौर्बल्यारोच-

कात्विपाकाः पूतिमांसपिडकाअलजीविद्रध्यादयश्चतत्प्रसङ्गाद् भवन्ति ॥ ४१ ॥

अब प्रमेहके उपद्रवोंको कथन करतेहैं। प्यास, अतिसार, ज्वर, दाह, दुर्बलता, अरुचि, अन्नका न पचना, मांसमेंसे दुर्गंध आना, शरीरमें पिडका होना तथा अलजी, विद्रधी आदिक प्रमेह पिडकाओंका होना यह प्रमेहके उपद्रव होतेहैं ४१॥

साध्यप्रमेहोंकी चिकित्साविधि।

तत्रसाध्यान्प्रमेहान्संशोधनोपशमनैर्यथार्हमुपपादयेच्चिकित्सेच्चेति ॥ ४२ ॥

इनमें साध्य प्रमेहोंमें संशोधन और उपशमन द्रव्योंद्वारा यथोचित रीतिपर चिकित्सा करे ॥ ४२ ॥

तत्र श्लोकाः।

गृध्रमभ्यवहार्य्येषुस्नानचंक्रमणाद्विषम्।
प्रमेहःक्षिप्रमभ्येतिनीचद्रुमामिवाण्डजः ॥ ४३ ॥

यहां कहते हैं कि जिस प्रकार साधारण वृक्षोंपर उडता हुआ पक्षी विना ही प्रयाससे झट आन बैठता है उसी प्रकार जो मनुष्य नित्य प्रति आहारके लोभमें फंसे रहते हैं और नित्य स्नान तथा भ्रमण आदि नहीं करते उनके शरीरमें प्रमेह भी झट अधिकार जमा बैठता है ॥ ४३ ॥

मन्दोत्साहमातिस्थूलमतिस्निग्धंमहाशनम्।
मृत्युःप्रमेहरूपेणाक्षिप्रमादायगच्छति ॥ ४४ ॥

आलस्ययुक्त तथा अत्यन्त स्थूल और अधिकस्निग्ध शरीरवाले एवम् बहुत खानेवाले मनुष्यके शरीरमें प्रमेहके रूपको धारण करके मृत्यु झट प्रवेशकर लेताहै ४४

यस्त्वाहारंशरीरस्यधातुसाम्यकरंनरः।
सेवतेविविधाश्चान्याश्चेष्टाःससुखमश्नुते ॥ ४५ ॥

जो मनुष्य शरीरकी धातुओंको साम्यावस्थामें रखनेवाले आहार विहारोंका सेवन करताहै वही मनुष्य परमसुखको भोग करताह ॥ ४५ ॥

तत्र श्लोकाः।

हेतुर्व्याधिविशेषाणांप्रमेहाणाञ्चकारणम्। दोषधातुसमायोगो रूपंविविधमेवच॥४६॥ दशश्लेष्मकृतायस्मात्प्रमेहाःषट्चापि-

त्तजाः । यथाकरोतिवायुश्चप्रमेहांश्चतुरोबली॥ ४७ ॥साध्या-
साध्यविशेषाश्चपूर्वरूपाण्युपद्रवाः।प्रमेहाणांनिदानेऽस्मिन्क्रि-
यासूत्रञ्चभाषितम् ॥ ४८ ॥

इतिअग्निवेशकृतेतन्त्रेचरकप्रतिसंस्कृतेप्रमेहनिदानं
नामचतुर्थोऽध्यायः ॥४ ॥

अब अध्यायका उपसंहार करतेहैं।इस प्रमेह निदान नामक अध्यायमें हेतु और व्याधिविशेषोंको तथा प्रमेहके कारणोंको,दोष, धातुके संयोगको तथा उनके अनेक प्रकारके रूपोंको कथन किया है । और दश प्रकारके कफजनित प्रमेह, छः प्रकारके पित्तजनित प्रमेह और जिस प्रकार बलवान् वायु चार प्रकारके प्रमेहोंको उत्पन्न करताहै।एवम् प्रमेहोंको साध्य, असाध्यता तथा उनके पूर्वरूप, उपद्रव एवम् चिकित्साका क्रम यह सब कथन कियाहै ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

इति श्रीमहर्षिचरक० निदान० पं०रामप्रसादवैद्य०भाषाटीकायां प्रमेहनिदानं
नामचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पंचमोऽध्यायः ।

अथातःकुष्ठनिदानंव्याख्यास्यामइतिहस्माहभगवानात्रेयः ।

अब हम कुष्ठके निदानकी व्याख्या करतेहैं । इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कथन करनेलगे ।

कुष्ठोत्पत्तिका कारण ।

सप्तद्रव्याणिकुष्ठानांप्रकृतिर्विकृतिमापन्नानिभवन्ति । तद्यथा-
त्रयोदोषावातपित्तश्लेष्माणःप्रकोपणविकृतादूष्याश्चशरीरधात-
वस्त्वङ्मांसशोणितलसीकाश्चतुर्द्धादोषोपघातविकृताइतिएत-
त्सप्तानांसप्तधातुकमेवंगतमाजननंकुष्ठानामतः प्रभवाण्यभि-
निर्वर्त्यमानानिकेवलंशरीरमुपतपन्ति ।नचकिञ्चिदस्तिकुष्ठमे-
कदोषप्रकोपनिमित्तम् ॥ १ ॥

विकारको प्राप्तहुए सातद्रव्य कुष्ठोंके प्रकृति अर्थात् कारण होतेहैं । वह सात इस प्रकार हैं । वात,पित्त,कफ यह तीन दोष अपने कुपितकारी कारणोंसे बिगडते

हैं और त्वचा, मांस, रक्त एवं लसीका यह चार वातादि दोषों द्वारा बिगडजातेहैं । बस इन सात प्रकारके द्रव्योंके विकृत होनेसे ही कुष्ठोंकी उत्पत्ति होतीहै । ऐसा कोई भी कुष्ठ नहीं होता जो केवल एक ही दोषके कोप होनेसे उत्पन्न हो जाताहो १॥

अस्तितुखलुसमानप्रकृतीनामपिसप्तानांकुष्ठानांदोषांशबलविकल्पानुबन्धस्थानविभागेनवेदनावर्णसंस्थानप्रभावनामचिकित्सितविशेषः ॥ २ ॥

सात प्रकारकेही कुष्ठ समान प्रकृति और समान कारणोंसे उत्पन्न होनेपर भी दोष, अंश, बल इनके विकल्पसे और स्थानके विभागसे वेदना, वर्ण, संस्थान और नामके प्रभावसे सबकी अलग २ प्रकारकी चिकित्सा की जाती है ॥ २ ॥

कुष्ठभेद ।

सप्तविधोऽष्टादशविधोपरिसंख्येयविधोवा ॥ ३ ॥

यह कुष्ठ मुख्य सात प्रकारके होतेहैं और दोषांश बलके विकल्पसे वह अठारह प्रकारके होतेहैं एवम् सूक्ष्म विचार करने लगें तो असंख्य होजातेहैं ॥ ३ ॥

सातप्रकारके कुष्ठ ।

दोषाहिविकल्पनैर्विकल्प्यमानाविकल्पयन्तिविकारानसंख्यानसाध्यभावात्तेषांविकल्पविकारसंख्यानेऽतिप्रसङ्गमभिसमीक्ष्य सप्तविधमेवकुष्ठविशेषमुपदेक्ष्यामः ॥ ४ ॥

वातादि दोष ही अंशांश कल्पनासे अनेक भेदोंवाले होते हुए अनेक प्रकारके विकारोंको उत्पन्न करतेहैं। उनके सूक्ष्म अंशांश कल्पना द्वारा रोगोंकी गणना करनेसे सव विकारोंका वर्णन करना कठिन होजाताहै इसलिये विशेषरूपसे कुष्ठ सात प्रकारकेही होतेहैं सो उनका वर्णन करतेहैं ॥ ४ ॥

कुष्ठोंके भेद और उत्पत्तिके कारण ।

इहवातादिषुत्रिषुप्रकुपितेषुत्वगादींश्चतुरःप्रदूषयत्सुवातेऽधिकतरेकपालकुष्ठमाभिर्निर्वर्त्तते । पित्तेत्वौदुम्बरंश्लेष्मणिमण्डलकुष्ठम् ॥ ५ ॥

यह वातादि तीनों दोष कुपित होकर त्वचाआदि चार प्रकारके दूष्य धातुओंको दूषित करदेतेहैं तो इनमें वायुकी अधिकता होनेसे कपालनामक कुष्ठ उत्पन्न होताहै। पित्तकी अधिकता होनेसे–उदुम्बरनामक कुष्ठ उत्पन्न होताहै एवम् कफकी अधिकता होनेसे मण्डलनाम कुष्ठ उत्पन्न होताहै ॥ ५ ॥

वातपित्तयोर्ऋष्यजिह्वंपित्तश्लेष्मणोःपुण्डरीकंश्लेष्ममारुतयोः सिध्मकुष्ठंसर्वदोषातिवृद्धौकाकणकमाभिनिर्वर्त्तते।इत्येवमेषसप्तविधःकुष्ठविशेषोभवति ॥ ६ ॥

वात और पित्त इन दोनोंकी अधिकता होनेसे ऋष्यजिह्वनामक कुष्ठ उत्पन्न होताहै । पित और कफके कोपकी अधिकता होनेसे पुण्डरीकनामक कुष्ठ उत्पन्न होताहै । एवम् कफ और वायुका कोप अधिक होनेसे सिध्मनामक कुष्ठ उत्पन्न होता है । तथा तीनों दोषोंके मिलकर वृद्धि होनेसे काकणकनामक कुष्ठ उत्पन्न होता है । इन सात प्रकारके कुष्ठोंका कथन किया गया है ॥ ६ ॥

सचैषभूयोऽतःप्रकृतिविकल्पनयाभूयसींविकारसंख्यामापद्यते ७॥

सो ये सात प्रकारके ही कुष्ठ कारणादिकोंके विकल्पसे अनेक प्रकारके होजातेहैं ॥ ७ ॥

कुष्ठका साधारण निदान ।

तत्रेदंसर्वकुष्ठनिदानंपुनःसमासेनउपदेक्ष्यामः। शीतोष्णव्यत्यासमलानुपूर्व्योपसेवमानस्यतथासन्तर्पणापतर्पणाभ्यवहार्यव्यत्यासंचमधुफाणितमत्स्यमलककाकमाचीःसततमातिमात्रमप्यजीर्णेसमश्नताश्चिलिचिमश्चपयसाहायनकयवकचीनकोद्दालककोरदूषप्रायाणिचान्नानिक्षीरदधितक्रकोलकुलत्थमाषातसीयषकुसुम्भस्नेहवन्त्येतैश्चापिसुहितस्यव्यवायव्यायामसन्तापानप्युपसेवमानस्यभयश्रमसंतापोपहतस्यसहसाशीतोदकमवतरतोविदग्धमाहारमनुल्लिख्यविदाहीन्यभ्यवहरतःछर्दिंश्चप्रतिघ्नतःस्नेहांश्चाभिचरतःयुगपत्त्रयोदोषाःप्रकोपमापद्यन्ते।त्वगादयश्चत्वारः शैथिल्यमापद्यन्ते।तेषुशिथिलेषुदोषाःप्रकुपिताःस्थानमभिगम्य सन्तिष्ठमानास्तानेवत्वगादीन्दूषयन्तःकुष्ठान्यभिनिर्वर्त्तयन्ति॥८॥

सो अब फिर उन संपूर्ण प्रकारके कुष्ठोंका निदान संक्षेपसे कथन करतेहैं । सर्दी और गर्मीकी विपरीततासे अथवा विपरीतभावसे सेवन करनेसे या अपने स्वाभाविक आहार विहारादिकोंको विपरीत रीतिपर सेवन करनेसे मलोंके कुपित करनेवाले पदार्थोंको निरन्तर सेवन करनेसे संतर्पण और अपतर्पणकी विपरीततासे भोजन, मधु,

क्षाणित, मछली, मूलियें, मकोहका शाक, इनका सदैव अधिक सेवन करनेसे अजीर्णमें भी भोजन करनेसे और अधिक भोजन करनेसे, दूधके साथ चिलिचिमनामक मछली खानेसे तथा हायनक, यवक, चीनक, कोद्रव, उद्दालक आदि धान्याका दूध मछली आदि संयोग सहित निरन्तर अधिक खानेसे, दूध, दही, छाछ, कुल्थी, वेर, उडद, अलसीका यूष, करडका तैल इन सबके अत्यन्त सेवन करनेसे एवम् अधिक संतर्पण, मैथुन, व्यायाम तथा अन्य संतापकारी वस्तुओंके सेवन करनेसे और भय, श्रम, संताप इनसे व्याकुल हुआ मनुष्य सहसा शीतल जल पीवे अथवा शीतल जलमें तैरने लगजाय उससे विदग्धकारी आहारके सेवनसे अथवा विदग्ध हुए आहारको उखाडकरके विदाही पदार्थोंका सेवन करनेसे एवम् आये हुए वमनके वेगको रोकनेसे, शरीरको अत्यन्त स्नेहन करनेसे वातादि तीनों दोष एकसाथ कुपित होजातेहैं । फिर वह कुपित होकर त्वचा आदि चारों धातुओंको शिथिल करदेतेहैं । उन शिथिल धातुओंमें कुपित हुए दोष प्रवेश करके उनके स्थान विशेषोंमें प्राप्त होकर रहतेहुए उन त्वचा, मांस आदिकोंको बिगाडते हुए कुष्ठोंको उत्पन्न करतेहैं ॥ ८ ॥

कुष्ठके पूर्वरूप ।

तत्रेमानिपूर्वरूपाणि ॥ तद्यथाअस्वेदनमतिस्वेदनंपारुष्यमतिश्लक्ष्णतावैवर्ण्यंकण्डूर्निस्तोदःसुप्ततापरिदाहःपरिहर्षोलोमहर्षोखरत्वमुष्मायणंगौरवंश्वयथुर्वीसर्पागमनमभीक्ष्णंकायच्छिद्रेषूपदाहःपक्वदग्धदष्टक्षतोपस्खलितेष्वतिमात्रंवेदनास्वल्पानामपिच व्रणानांदुष्टिरसंरोहणश्चेतितेभ्योऽनन्तरंकुष्ठानिजायन्ते ॥ ९ ॥

उन कुष्ठोंके पूर्वरूप यह हैं । जैसे पसीनाका न आना अथवा अधिक आना, त्वचाका अत्यन्त कठोर होना या अधिक नरम होजाना, एवम् त्वचाका रंग बिगडजाना, खाज, पीडा, शून्यता, दाह और हर्षण इन सबका शरीरमें होना, रोमहर्ष, शरीरका खर्दरापन त्वचामें गर्मीकी अधिकता, शरीरमें भारीपन, सूजन, विसर्परोगका होना, शरीरके रोम मार्गोंमें तथा अन्य छिद्रोंमें निरन्तर दाहका होना और शरीरमें यदि कोई जखम या आगसे दग्ध अथवा किसी जानवरके काटनेसे जखम होजाय तो उसमें अत्यन्त पीडा होना और छोटी २ फुंसिये होकर उनमें भी काटने तथा दागनेकीसी दाह और पीडा होना और उन छोटे २ व्रणोंका भी

दूषितसा होजाना और फिर नहीं भरना ऐसे २ उपद्रव होनेके अनन्तर कुष्ठ उत्पन्न होतेहैं अर्थात् यह कुष्ठोंके पूर्व रूप है ॥ ९ ॥

कपालके लक्षण ।

तेषामिदं वेदनावर्णसंस्थानप्रभावनामविशेषविज्ञानम् । तद्यथा रूक्षारुणपरुषाणि विषमविसृतानि खरपर्यन्तानि तनून्युद्वृत्तबहिस्तनूनि सुप्तसुप्तानि हृषितलोमाचितानि निस्तोदबहुलानि अल्पकण्डूदाहपूयलसीकान्याशुगतिसमुत्थानानि आशुभेदीनि जन्तुमन्ति कृष्णारुणकपालवर्णानि कपालकुष्ठानीति विद्यात् ॥ १० ॥

उन सात प्रकारके कुष्ठोंकी वेदना, वर्ण, स्थान और प्रभावोंके ज्ञानको यथोचित रीतिपर वर्णन करतेहैं । जैसे रूक्ष, अरुण, कठोर, विषम गतिवाले जिसका अंतका भाग खरदरा हो तथा थोडे २ ऊंचे हों, बाहरके भागमें किंचित् ऊंचे हों, छोटे २ हों, शून्यसे हों, जिनके ऊपर रोम खडे हों, प्रायः अधिक पीडा होतीहो, किंचित् खाजयुक्त एवम् दाह, पूय (राध) और लसीका (मांसकासा धोवन) ये उन जख्मोंसे निकलतेहों तथा झटपट फैलजानेवाले झट अपनी पीडाको उत्पन्न करनेवाले, कृमियुक्त काले और लालवर्णके तथा कपालके समान वर्ण युक्त इन सब लक्षणोंवाले कुष्ठको कपालकुष्ठ कहतेहैं ॥ १० ॥

उदुम्बरकुष्ठके लक्षण ।

ताम्राणि ताम्ररोमराजीभिरवनद्धानि बहुलानि बहुबहलरक्तपूयलसीकानि कण्डूक्लेदकोथदाहपाकवन्त्याशुगतिसमुत्थानभेदीनि ससन्तापक्रिमीण्युदुम्बरफलपक्वपर्णान्युदुम्बरकुष्ठानीति विद्यात् ॥ ११ ॥

तांबेके समान वर्णवाला तथा ताम्रवर्णके रोमयुक्त, सघन और बहुत तथा गाढी राध तथा लसीका युक्त एवम् खाज, क्लेद, सडन, जलन, पाक, इनसे युक्त शीघ्र फैलनेवाला, झट प्रगट हो जानेवाला, एवम् शीघ्र फटजानेवाला संताप और कृमियुक्त और पके हुए गूलरके समान वर्णवाला हो इन सब लक्षणोंवाले कुष्ठको उदुम्बर कुष्ठ कहते हैं ॥ ११ ॥

मण्डलकुष्ठके लक्षण ।

स्निग्धानि गुरूण्युत्सेधवन्ति श्लक्ष्णास्थिरपीनपर्यन्तानि शुक्लरक्तावभासानि बहुलबहलशुक्लपिच्छिलस्रावीणि शुक्लरोमरा-

जीसन्तानानिबहुकण्डूक्रिमीणिसक्तगतिसमुत्थानभेदीनिपरि-
मण्डलानिमण्डलकुष्ठानीतिविद्यात् ॥ १२ ॥

चिकना, भारी, ऊंचा, मृदु, दृढ तथा किनारोंपर्यंत मोटा, श्वेत और लालवर्णका वहुत वहाव करनेवाला और वह वहाव श्वेत तथा पिच्छलवर्णका स्रवता हो सुफेद रोमोंसे युक्त हो तथा उसमें अत्यन्त खाज होतीहो और कृमि पडे हों एवम् उसके सव मण्डल देरसे फैलनेवाले, देरमें उत्पन्न होनेवाले, तथा देरमें फटनेवाले हों इस प्रकारके गोलगोल मण्डलोंवाले कुष्ठको मण्डल कुष्ठ कहतेहैं ॥ १२ ॥

ऋष्यजिह्वकुष्ठके लक्षण।

परुषाण्यरुणवर्णानिबहिरन्तःश्यावानिनीलपीतताम्रावभासा-
न्याशुगतिसमुत्थानान्यल्पकण्डूक्लेदक्रिमीणिदाहभेदनिस्तो-
दपाकबहुलानिशूकोपहतोपमानवेदनान्युत्सन्नमध्यानितनुप-
र्य्यन्तानिकर्कशपिडकाचितानिदीर्घपरिमण्डलानिऋष्यजि-
ह्वाकृतीनिऋष्यजिह्वानीतिविद्यात् ॥ १३ ॥

कठोर तथा लालवर्णका वाहरका भाग एवम् भीतरका भाग काला, नीला, पीला एवम् ताम्रवर्णका हो, शीघ्र फैलनेवाला हो, शीघ्र उत्पन्न होनेवाला हो, खाज, कृमि, दाह, भेद, निस्तोद यह हों एवम् अधिक पकनेवाला, सूईसी चूभनेकी पीडायुक्त, वीचका भाग अधिक ऊंचा न हो किनारे पतले हों और छोटी २ कठोर फुंसियोंसे युक्त हो जिसमें लम्बे २ मण्डल हों वह मण्डल रीछकी जीभके समान हों इन सब लक्षणों युक्त कुष्ठको ऋष्यजिह्व कुष्ठ कहते हैं ॥ १३ ॥

पुण्डरीककुष्ठके लक्षण।

शुक्लरक्तावभासानिरक्तपर्य्यन्तानिरक्तशिराराजीसन्ततान्यु-
त्सेधवन्तिबहुबहलरक्तपूयलसीकानिकण्डूक्रिमिदाहपाकवन्त्या-
शुगतिसमुत्थानभेदीनिपुण्डरीकपलाशसंकाशानिपुण्डरीका-
णीतिविद्यात् ॥ १४ ॥

जो कुष्ठ-सफेद तथा लालवर्णवाले अथवा गुलावीवर्णवाले हों एवम् किनारे लालवर्णके हों लालरोमयुक्त हो एवम् ऊंचे हों उनमेंसे अधिक रक्त, राध, और लसीका निकलती हों एवम् खाज, कृमि, दाह, पाक इन सवसे युक्त हों, शीघ्र फैलने और उत्पन्न होने एवम् फटजानेवाले हों और कमलके फूलकी कंकडीके समान हों इन सब लक्षणयुक्त कुष्ठको पुण्डरीक कुष्ठ कहतेहैं ॥ १४ ॥

सिध्मकुष्ठके लक्षण ।

परुषारुणविशीर्णबहिस्तनून्यन्तःस्निग्धानिशुक्लरक्तावभासा-निबहून्यल्पवेदनान्यल्पकण्डूदाहपूयलसीकानिलघुसमुत्थाना-न्यल्पभेद-क्रिमीण्यलावु-पुष्पसङ्काशानिसिध्म-कुष्ठानीति विद्यात् ॥ १५ ॥

जो कुष्ठ बाहरके भागमें कठोर, लाल और फैला हुआसा हो और भीतर हलका हो, तथा चिकना, सुफेद और लालवर्णयुक्त हो और बहुतही थोडी पीडावाला हो, जिसमें अल्पखुजली उठती हो एवम् दाह, राध और लसीका इन करके युक्त हो और बहुत छोटेपनसे प्रगट होना और फटना यह लक्षण हों, कृमियुक्त हों घीयाके फूलके समान वर्णवाला हो उसको सिध्मकुष्ठ कहतेहैं ॥ १५ ॥

काकणक कुष्ठके लक्षण ।

काकणान्तिकावर्णान्यादौपश्चात्सर्वकुष्ठलिङ्गसमन्वितानिपापी-यसांसर्वकुष्ठलिङ्गसम्भवेनानेकवर्णानिकाकणकानीतिविद्यात्१६।

काकणनामक कुष्ठ-पहिले रत्तकके समान वर्णवाले होतेहैं फिर संपूर्ण कुष्ठोंके लक्षणोंसे युक्त होजातेहैं । पापीजनोंके शरीरमें यह कुष्ठ होकर सब कुष्ठोंके लक्षणों-को धारण करतेहैं तथा अनेक वर्णके होतेहैं । इन अनेक लक्षणवाले कुष्ठोंके वर्ण वेदनादियुक्त कुष्ठको काकणकुष्ठ कहतेहैं ॥ १६ ॥

कुष्ठोंका साध्यासाध्य वर्णन ।

तान्यसाध्यानिसाध्यानिपुनरितराणि । तत्रयदसाध्यंतदसाध्य-तांनातिवर्त्तते । साध्यंपुनःकिञ्चित्साध्यतामातिवर्त्ततेकदाचि-दपचारात् ॥ १७ ॥

वह सब कुष्ठ साध्य और असाध्यके भेदसे दो प्रकारके होतेहैं । उनमें काकण असाध्य है और बाकी साध्य हैं । इनमें जो असाध्य है वह अपनी असाध्यताको नहीं छोडता जो साध्य है वह किसी प्रकारके कुपथ्यके होजानेसे असाध्यताको प्राप्त होजातेहैं ॥ १७ ॥

साध्यानीहषट्काकणकवर्ज्यानिअचिकित्स्यमानानिअपचार-तोवादोषैरभिष्यन्दमानानिअसाध्यतामुपयान्ति ॥ १८ ॥

इनमें काकणकि कुष्ठके सिवाय बाकी छः कुष्ठ साध्य मानेगयेहैं । परन्तु चिकि-

रसाके दोषसे अथवा चिकित्सा न करनेस या किसी अपचारके होजानेसे वृद्धिके प्राप्त होकर फैलते हुए असाध्यताको प्राप्त हो जातेहैं ॥ १८ ॥

उपेक्षितकुष्ठका फल ।

साध्यानामपिह्युपेक्षमाणानामेषांत्वङ्मांसशोणितलसीकाकोथक्लेदसंस्वेदजाःक्रिमयोऽभिमूर्च्छन्ति । तेभक्षयन्तोत्वगादीनूदोषान्पुनर्दूषयन्तःइमानुपद्रवान्पृथक्पृथगुत्थापयन्ति ॥१९॥

साध्य कुष्ठोंमेंभी शीघ्र यत्न न करनेसे त्वचा, मांस, रुधिर और लसीका इन सबके सडने और क्लेद तथा पसीने आदिसे कृमि उत्पन्न होजातेहैं । वह कृमि कुष्ठीको हुए फिर त्वचा आदिकोंको दूषित करतेहैं और नीचे लिखे हुए इन उपद्रवोंको अलग २ उत्पन्न करते हैं ॥ १९ ॥

प्रकुपितदोषोंके उपद्रव ।

ततोवातःश्यावारुणपरुषवर्णतामपिचरौक्ष्यशूलशोथतोदवेपथुहर्षसङ्कोचायासस्तम्भसुप्तिभेदभङ्गान् । पित्तंपुनर्दाहस्वेदक्लेदकोथकण्डूस्रावपाकरागान् । श्लेष्मात्वस्यश्वैत्यशैत्यस्थैर्य्यकण्डून्गौरवोत्सेधोपस्नेहोपलेपान् । क्रिमयस्त्वगादींश्चतुरःशिराःस्नायून्यस्थीन्यपिचतरुणानिखादन्ति ॥ २० ॥

इन कृमियोंसे दूषित हुए त्वचा आदिकोंमें वायु कुपित होकर, कृष्णता, अरुणता, कठोरता, रूक्षता एवम् शूल, शोथ, तोद, कम्प, रोमहर्ष, संकोच, आयास, स्तब्धता, शून्यता और भेदनकीसी पीडा तथा भग्नता इनको उत्पन्न करताहै । कुपित हुआ पित्त-दाह, स्वेद, क्लेद, सडन, खुजली, स्राव, पाक और लालवर्णता इनको उत्पन्न करताहै एवम् कफ कुपित होकर शीतता, स्थिरता, खाज, भारीपन, कुष्ठमें ऊंचापन, चिकनाहट, उपलेप इनको प्रगट करताहै । और वह वढे हुए कृमि-त्वचा, मांस, रुधिर, लसीका, शिरा, स्नायु और पुष्टहड्डियोंको भी खाना आरम्भ करदेतेहैं ॥ २० ॥

कुपितदोषोंमें उपद्रव ।

अस्यामवस्थायामुपद्रवाःकुष्ठिनंस्पृशन्ति । तद्यथा-प्रस्रवणमङ्गभेदःपतनान्यङ्गावयवानांतृष्णाज्वरातीसारदाहदौर्बल्यारोचकाविपाकाश्चतद्विधमसाध्यंविद्यादिति ॥ २१ ॥

ऐसी अवस्थामें कुष्ठीको ये उपद्रव दुःख देतेहैं। जैसे राधका स्राव, अंगोंका भेदन, अंगुली आदि अंगोंका गिरना, प्यास, ज्वर, अतिसार, दाह, दुर्बलता, अरुचि और अन्नका न पचना इत्यादि असाध्य उपद्रव होजातेहैं ॥ २१ ॥

तत्रश्लोकाः ।

साध्योऽयमितियःपूर्वंनरोरोगमुपेक्षते ।
सकिञ्चित्कालमासाद्यमृतएवावबुध्यते ॥ २२ ॥

यहांपर श्लोक हैं कि जो मनुष्य रोगको साध्य समझकर उसका यत्न नहीं करते और यह कहते हैं कि अभी क्या है जब अवकाश मिलेगा तब यत्न कर लेंगे । ऐसे मनुष्य कुछ कालके अनन्तर मरे हुए ही दिखाई पडते हैं ॥ २२ ॥

यस्तुप्रागेवरोगेभ्योरोगेषुतरुणेषुच ।
भेषजंकुरुतेसम्यक्सचिरंसुखमश्नुते ॥ २३ ॥

जो मनुष्य रोगोंसे प्रथम ही अथवा रोग होनेपर भी शीघ्र यत्न कर लेते हैं वह शरीरके सुखको सुखपूर्वक भोगते हैं ॥ २३ ॥

यथास्वल्पेनयत्नेनच्छिद्यतेतरुणस्तरुः ।
सएवातिप्रवृद्धस्तुनसुच्छेद्यतमोभवेत् ॥ २४ ॥
एवमेवविकारोऽपितरुणःसाध्यतेसुखम् ।
विवृद्धःसाध्यतेकृच्छ्रादसाध्योवापिजायते ॥ २५ ॥

जैसे छोटासा वृक्ष साधारण यत्न करनेसे झट उखड सकताहै और अधिक बडा होजानेसे उखाडना कठिन होजाताहै । उसी प्रकार रोग भी बल पानेके पहिले सुखपूर्वक निवृत्त होजाताहै । वही रोग वृद्धिको प्राप्त होनेसे कष्टसाध्य अथवा असाध्य होजाताहै ॥ २४ ॥ २५ ॥

संख्याद्रव्याणिदोषाश्चहेतवःपूर्वलक्षणम् ।
रूपाण्युपद्रवाश्चोक्ताःकुष्ठानांकौष्ठिकेपृथक् ॥ २६ ॥

इति अग्निवेशकृतेतन्त्रे चरकप्रतिसंस्कृते कुष्ठनिदानं
नामपञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

अब अध्यायका उपसंहार करतेहैं कि, इस कुष्ठनिदान नामक अध्यायमें कुष्ठोंकी संख्या, द्रव्य, दूष्यधातु, दोष, हेतु, पूर्वरूप, रूप, उपद्रव यह सब पृथक् २ कथन किये हैं ॥ २६ ॥

इति श्रीमहर्षिचरक० निदान-पं० रामप्रसादवैद्य० भाषाटीकायां
कुष्ठनिदान नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

इन कारणोंसे अथवा गिरपडनेसे, चोट आदि लगनेसे, विषम या अत्यन्त व्यायाम करनेसे एवम् अपनी शक्तिसे बढकर काम करनेसे, मनुष्यकी, छाती(फुप्फुस हृदय आदिमें) घाव अथवा क्षीणता उत्पन्न होजातीहै तब वायु कुपित होकर उस मनुष्यके शरीरमें उरक्षतरोगको उत्पन्न करताहै । फिर वही वायु उर अर्थात् छातीमें स्थित होकर छातीके कफको ग्रहण करके शोष रोगको प्रगट करताहै। और ऊपर, नीचे तथा तिरछा गमन करताहुआ शरीरकी धातुओंको सुखा डालताहै ॥ २ ॥

वायुके कर्म ।

योंऽशस्तस्यशरीरसन्धीनाविशतितेनजृम्भाङ्गमर्दोज्वरश्चोपजायते । यस्त्वामाशयमुपैतितेनरोगाभवन्तिउरस्याअरोचकश्च । यःकण्ठंप्रपद्यतेकण्ठस्वनमुद्ध्वंसतेस्वरश्चावसीदतियःप्राणवहानिस्त्रोतांस्येतितेन श्वासःप्रतिश्यायश्चोपजायते।यःशिरस्यवतिष्ठतेशिरस्तेनोपहन्यते ॥ ३ ॥

उसी वायुके जो अंश शरीरकी संधियोंमें प्रवेश करतेहैं वह जंभाई, अंगमर्द और ज्वर इनको उत्पन्न करतेहैं। जो अंश आमाशयमें प्राप्त होताहै वह छातीके रोगोंको तथा अरुचिको प्रगट कहताहै ।जो अंश कण्ठमें प्रवेश करताहै वह कण्ठके शब्दको तथा स्वरको विगाड देताहै । जो अंश प्राणवाहक स्रोतोंमें प्रवेश करताहै उससे श्वास और प्रतिश्यायको उत्पन्न करताहै । जो अंश शिरमें प्रवेश करताहै उससे शिरमें दर्द उत्पन्न होतीहै ॥ ३ ॥

ततःक्षणनाच्चैवोरसोविषमगतित्वाच्चवायोःकण्ठस्योद्ध्वंसनात् कासःसंजायते। कासप्रसङ्गादुरसिक्षतेसशोणितंष्ठीवतिशोणितागमाच्चास्यदौर्गन्ध्यमुपजायतेएवमेतेसाहसप्रभवाःसाहसिकमुपद्रवाःस्पृशन्ति ॥ ४ ॥

इसके अनन्तर छातीके क्षरण होनेसे तथा वायुकी विषमगति होनेसे एवम् वायुद्वारा कण्ठके रुकजानेसे खांसी उत्पन्न होजातीहै उस खांसीके सबबसे छातीके घावोंका रक्त थूकमें आनेलगजाताहै । उस रक्तके निकलनेसे मुखसे दुर्गंध आने लगजातीहै । इस प्रकार यह साहससे उत्पन्न हुए उपद्रव अधिक साहस करनेवाले मनुष्यको घेर लेतेहैं ॥ ४ ॥

शोषमें उपदेश ।

ततःसोऽप्युपशोषणैरेतैरुपद्रवैरुपद्रुतःशनैःशनैरुपशुष्यति । तस्मात्पुरुषोमतिमान्बलमात्मनःसमीक्ष्यतदनुरूपाणिकर्माण्यारभेतकर्त्तुम् । बलसमाधानंहिशरीरंशरीरमूलश्चपुरुषइति ॥ ५ ॥

फिर वह मनुष्य इन शोषणकर्त्ता उपद्रवों द्वारा पीडित हुआ धीरे धीरे सूख जाताहै । इसलिये बुद्धिमान् मनुष्यको अपने बलकी परीक्षा करके उसके अनुरूप कर्मोंको ही आरम्भ करना चाहिये। क्योंकि बल ही शरीरका आश्रय है और मनुष्यका जीवन शरीरके अधीन होताहै ॥ ५ ॥

तत्रश्लोकः ।

साहसंवर्जयेत्कर्मरक्षञ्जीवितमात्मनः ।
जीवन्हिपुरुषस्त्विष्टंकर्मणःफलमश्नुते ॥ ६ ॥

यहां एक श्लोक है कि बुद्धिमान् मनुष्य अपने जीवनकी रक्षा करताहुआ बहुत साहसके कर्मको त्याग देवे क्योंकि पुरुषोंके वांछित कर्मोंका फल जीवन ही होता है अर्थात् संपूर्ण सुखोंका मूल जीवन है उस जीवनके रहनेपर ही मनुष्य अपने शुभ कर्मोंका फल भोग सकताहै ॥ ६ ॥

दूसरा कारण संधारण–शोषका कारण कथन कियाहै सो उसकी व्याख्या करतेहैं।

सन्धारणजन्य शोषका वर्णन ।

सन्धारणंशोषस्यायतनमितियदुक्तंतदनुव्याख्यास्यामः। यदा पुरुषोराजसमीपेभर्तृसमीपेवागुरोर्वापादमूलेद्यूतसभांसभाजयन्स्त्रीमध्यंवानुप्रविश्ययानैर्वाप्युच्चावचैर्गच्छन्भयात्प्रसंगाद्धीमत्वाद्घृणित्वाद्वानिरुणद्ध्यागतानिवातमूत्रपुरीषाणितस्यसन्धारणाद्वायुःप्रकोपमापद्यते ॥ ७ ॥

जब पुरुष राजाके समीप अथवा मालिकके समीप या गुरु आदिकोंके चरणोंके समीप अथवा जूआ आदि किसी खेलमें बैठे हुए या किसी सभामें एवम् स्त्रियोंमें बैठकर या किसी ऊंची नीची सवारी आदिमें चलते हुए अथवा भयसे या किसी और प्रसंगसे या उपरोक्त सभा आदिकोंमें लज्जाके मारे अथवा घृणासे वात, मूत्र, पुरीष आदिक वेगोंको रोक लेता है तो उसके शरीरमें वायु कोपको प्राप्त होजाताहै ॥ ७ ॥

सप्रकुपितःपित्तश्लेष्माणौसमुदीर्य्योर्ध्वमधस्तिर्य्यक्चविहरति ततश्चांशविशेषेणपूर्ववच्छरीरावयवविशेषंप्रविश्यशूलंजनयति । भिनत्तिपुरीषमुच्छोषयतिवा, पार्श्वेचाभिरुजातिगृह्णात्यंसौकण्ठमुरश्चावधमतिशिरश्चोपहन्ति, कासंश्वासंज्वरंस्वरभेदंप्रतिश्यायश्चोपजनयति ॥ ८ ॥

फिर वह कुपित हुआ वायु पित्त और कफको उठाकर पूर्वोक्त क्रमसे ऊपर, नीचे, तिरछा तथा भिन्न २ अंशोंसे शरीरके भिन्न २ भागोंमें प्रवेश करके पीडाको उत्पन्न करताहै । और मलको पतला करके निकालता है अथवा सुखादेताहै । दोनों पार्श्वभागोंमें शूलको करताहै एवम् अंसनामक कंधोंसे ऊपरके स्थानमें (हंसलीमें) पीडाको करताहै एवम् छातीमें पीडा उत्पन्न करताहै । शिरमें दर्दको करताहै और कण्ठको पीडायुक्त बनाताहै तथा खांसी, श्वास, ज्वर, स्वरभेद, प्रतिश्याय इनको उत्पन्न कर देताहै ॥ ८ ॥

ततःसोऽप्युपशोषणैरेतैरुपद्रवैरुपद्रुतःशनैःशनैरुपशुष्यति । तस्मात्पुरुषोमतिमानात्मनःशरीरेष्वेवयोगक्षेमकरेषुप्रयतेताविशेषेणशरीरंह्यस्यमूलंशरीरमूलश्चपुरुषइति ॥ ९ ॥

फिर वह इन शोषणकर्त्ता उपद्रवोंद्वारा धीरे धीरे शरीरकी सब धातुओंको सुखा डालताहै । इस लिये बुद्धिमान् मनुष्यको अपने शरीरके योग और क्षेमकी इच्छा करते हुए मल मूत्रादि वेगोंको नहीं रोकना चाहिये।क्योंकि शरीरके आधार ही पुरुषका जीवन है इसलिये शरीरकी रक्षा करना सबसे मुख्य धर्म है ॥ ९ ॥

तत्रश्लोकः ।

सर्वमन्यत्परित्यज्यशरीरमनुपालयेत् ।
तदभावेहिभावानांसर्वाभावःशरीरिणामिति ॥ १० ॥

यहांपर एक श्लोक कहा है–कि अन्य सब आडम्बरोंको छोडकर शरीरको ही पालन करना चाहिये क्योंकि शरीरके नष्ट होनेसे संपूर्ण सम्पत्तियोंका भी अभाव होजाताहै ॥ १० ॥

क्षयशोषका वर्णन ।

क्षयःशोषस्यायतनमितियदुक्तंतदनुव्याख्यास्यामः । यदापुरुषोतिमात्रंशोकचिन्तापरीतहृदयोभवति, ईर्षोत्कण्ठाभय-

क्रोधादिभिर्वासमाविश्यते,कृशोवासन्रूक्षान्नपानसेवीभवति, दुर्बलप्रकृतिरनाहारोऽल्पाहारोवाआस्तेतदातस्यहृदयस्थायी रसःक्षयमुपैति । सतस्योपक्षयात्संशोषंप्राप्नोतिअप्रतीकाराच्चा-नुबध्यतेयक्ष्मणायथोपदेक्ष्यमाणरूपेण ॥ ११ ॥

तीसरा जो शोषरोगका कारण क्षय कथन कियाहै अब उसकी व्याख्या करतेहैं। जब मनुष्यके हृदयको अत्यन्त शोक एवम् चिन्ता घेर लेतेहैं अथवा ईर्षा, उत्कंठा, भय, क्रोध इनको अत्यन्ततासे घिर जाता है अथवा अत्यन्त कृश होनेपर भी रूक्ष अन्नपानोंका सेवन करताहै एवम् दुर्बल शरीरवाला लंघन अथवा बहुत थोडा आहार करताहै तब इसके हृदयमें रहनेवाला रस क्षय होजाताहै। उसके क्षय होनेसे मनुष्यके सब धातु सूख जाते हैं। इसका शीघ्र यत्न न करनेसे आगे कहा हुआ यक्ष्मारोग उत्पन्न होजाताहै ॥ ११ ॥

यक्ष्मा होनेकी रीति।

यदापुरुषोऽतिहर्षात्प्रसक्तभावःस्त्रीषुअतिप्रसङ्गमारभतेतस्याति-प्रसङ्गाद्रेतःक्षयमुपैतिक्षयमपिचोपगच्छतिरेतसियदिमनःस्त्री-भ्योनैवास्यनिवर्त्ततेअतिप्रवर्त्ततएवतस्यातिप्रणीतसङ्कल्पस्य मैथुनमापद्यमानस्यशुक्रंनप्रवर्त्ततेअतिमात्रोपक्षीणत्वात् । अथास्यवायुर्व्यायच्छमानस्यैवधमनीरनुप्रविश्यशोणितवाहि-नीस्ताभ्यःशोणितंप्रच्यावयतितच्छुक्रक्षयाच्छुक्रमार्गेणशोणि-तंप्रवर्त्ततेवातानुसृतलिंगम् ॥ १२ ॥

जब मनुष्य अत्यंत हर्षसे आसक्त होकर अधिक मैथुन करताहै उस अधिक मैथुन करनेसे उसका वीर्य क्षय होजाताहै। वीर्यके क्षय होनेपर भी जिसका चित्त स्त्री संगसे निवृत्त नहीं होता बल्कि और भी अधिक प्रवृत्ति होती जाती है। इस प्रकार स्त्री संसर्गमें अधिक प्रवृत्ति होनेसे वीर्यका क्षय होकर पुनः मैथुन करनेपर भी वीर्यके न रहनेसे वीर्यकी प्रवृत्ति नहीं होती क्योंकि वह अत्यन्त क्षीणताको प्राप्त हो लेताहै ऐसा करनेसे फिर उसके शरीरमें वायु प्रवेश हो धमनीय नसोंके बीचमें प्रवेश करके रक्तवाहिनी नसोंमेंसे रक्तको लेकर वीर्यके मार्गसे वीर्यके क्षय होनेके अनन्तर उस रक्तको निकालताहै। और वायु उस रक्तके साथ मिलजा-ताहै ॥ १२ ॥

अथास्यशुक्रक्षयाच्छोणितप्रवर्तनाच्चसन्धयःशिथिलीभवन्ति । रौक्ष्यमुपजायते । भूयः शरीरेदौर्बल्यमाविशतिवायुःप्रकोपमापद्यते । सप्रकुपितोऽवशकंशरीरमनुसर्पन्परिशोषयतिमांसशोणितेप्रच्यावयतिश्लेष्मपित्तेसंरुजतिपार्श्वेचावगृह्णात्यंसौकण्ठमुद्ध्वंसयतिशिरश्लेष्माणमुपक्लिश्यप्रतिपूरयतिश्लेष्मणासन्धींश्चप्रपीडयन्करोत्यङ्गमर्दमरोचकाविपाकौचपित्तश्लेष्मोत्क्लेशात्प्रतिलोमगत्वाच्चवायुर्ज्वरंकासंस्वरभेदंप्रतिश्यायञ्चोपजनयति ॥ १३ ॥

फिर उस मनुष्यके वीर्यके क्षीण होनेसे और रक्तकी प्रवृत्ति होनेसे संधियें शिथिल होजातीहैं तथा शरीरमें रूक्षता उत्पन्न होजातीहै । और शरीर दुर्बलताको प्राप्त होजाताहै । शरीरमें वायुका कोप होजाताहै । वह कुपित हुआ वायु उस दुर्बल शरीरमें इधर उधर फिरता हुआ मांस और रुधिरको सुखा देताहै एवम् कफ और पित्तको निकालता है । दोनों पसवाडोंमें तथा दोनों अंसोंमें और कण्ठमें पीडाको उत्पन्न करताहै । एवम् शिरको पीडन करताहै और कफको विगाडकर मस्तकमें पूरित करताहै । संधियोंमें पीडा उत्पन्न करताहै एवम् अरोचकता, अंगमर्द, अविपाक इनको उत्पन्न करताहै । पित्त और कफके उत्क्लेशसे वायुकी गति प्रतिलोम होनेसे ज्वर, खांसी, स्वरभंग, प्रतिश्याय इनको प्रगट करताहै ॥ १३ ॥

वीर्यकी रक्षामें उपदेश ।

ततःसोऽप्युपशोषणैरेतैरुपद्रवैरुपद्रुतःशनैःशनैरुपशुष्यति । तस्मात्पुरुषोमतिमानात्मनःशरीरमनुरक्षञ्शुक्रमनुरक्षेत् । पराह्येषाफलनिर्वृत्तिराहारस्येति ॥ १४ ॥

फिर वह मनुष्य इन शोषणकारक उपद्रवों द्वारा पीडित हुआ धीरेधीरे सूख जाताहै । इसलिये बुद्धिमान् मनुष्यको शरीरकी रक्षाके लिये वीर्यकी भी रक्षा करनी चाहिये । क्योंकि वीर्य शरीरमें आहार द्रव्योंका सर्वोत्तम और अन्तिम फल होताहै ॥ १४ ॥

तत्रश्लोकः ।

आहारस्यपरंधामशुक्रंतद्रक्ष्यमात्मनः ।
क्षयेह्यस्यबहून्रोगान्मरणंवानियच्छति ॥ १५ ॥

यहांपर एक श्लोक कहाहै कि भोजनका परमधाम शुक्र है इसलिये उस शुक्र (वीर्य) की रक्षा करनी चाहिये। क्योंकि उसके क्षय होनसे अनेक प्रकारके रोग उत्पन्न होतेहैं अथवा मनुष्य मृत्युको प्राप्त होजाताहै ॥ १५ ॥

विषमाशनका वर्णन।

विषमाशनशोषस्यायतनमितियदुक्तंतदनुव्याख्यास्यामः । यदापुरुषःपानाशनभक्ष्यलेह्योपयोगान्प्रकृतिकरणसंयोगराशिदेशकालोपयोगसंस्थोपशयविषमानासेवतेतदातस्यवातपित्तश्लेष्माणोवैषम्यमापद्यन्ते। तेविषमाःशरीरमनुपसृत्ययदास्रोतसांमुखानिप्रतिवार्य्यवातिष्ठन्तेतदाजन्तुर्यदाहारजातमाहरति तदस्यमूत्रपुरीषमेवोपचीयतेभूयिष्ठम्, नान्यस्तथा शरीरधातुःसपुरीषोपष्टम्भाद्वर्त्तयति ॥ १६ ॥

विषमाशन जो चौथा कारण कहाहै। अब उसकी व्याख्या करतेहैं।जब मनुष्य पान, अशन, भक्ष्य, लेह्य इन चार प्रकारके पदार्थोंको कारण,करण,संयोग,राशि, देश, काल, भोजन प्रकार, एवम् सात्म्य इन आठ प्रकारके भोजनके स्थानों अर्थात् विधानोंको त्यागकर विषमरीतिसे सेवन करताहै तब उसके शरीरमें वात, पित्त, कफ यह तीनों दोष विषमताको प्राप्त होजातेहैं। वह तीनों दोष विषमताको प्राप्तहुए शरीरके आश्रयीभूत स्रोतोंके मुखोंको ढककर स्थित होतेहैं। फिर यह मनुष्य जो २ पदार्थ खाताहै उससे मल और मूत्रकी ही वृद्धि होतीहै और अन्य शरीरके धातुओंकी वृद्धि नहीं होती और धातुएं क्षीण होकर केवल मलही अधिक निकलता जाताहै ॥ १६ ॥

तस्माच्छुष्यतोविशेषेणपुरीषमनुरक्ष्यम्,तथासर्वेषामत्यर्थकृशदुर्वलानाम्। तस्यानाप्याय्यमानस्याविषमाशनोपचितादोषाः पृथक्पृथगुपद्रवैर्युञ्जतोभूयःशरीरमुपशोषयन्ति ॥ १७ ॥

क्योंकि मलकी अधिक प्रवृत्ति होनेसे शरीर स्थिर नहीं रह सकता। इसलिये संपूर्ण कृश और दुर्वल मनुष्यके मलकी रक्षा करनी चाहिये। उस विषमाशन करनेवाले मनुष्यके शरीरमें मलकी रक्षा न करनेसे और अन्य धातुओंको पुष्ट करनेका उपाय न करनेसे वह वातादि दोष फिर अलग २ उपद्रवोंको करतेहुए शरीरमें शोषरोग उत्पन्न करतेहैं ॥ १७ ॥

तत्रवातःशूलमङ्गमर्दंकण्ठोद्धंसनंपार्श्वसंरोजनमंसावमर्दनंस्व-रभेदंप्रतिश्यायञ्चोपजनयति । पित्तंपुनर्ज्वरमतीसारंसान्तर्दा-हञ्चश्लेष्माप्रतिश्यायंशिरसोगुरुत्वंकासमरोचकञ्च ॥ १८ ॥

उनमें वायु कोपको प्राप्त होकर शूल, अंगमर्द, कण्ठका बैठना, दोनों पार्श्वोंमें पीडा, मांसका क्षय होना, स्वरभङ्ग और प्रतिश्यायको उत्पन्न करताहै । एवम् पित्त कुपित होकर ज्वर, अतिसार और देहमें अंतर्दाह इनको उत्पन्न करताहै तथा कफ कुपित होकर प्रतिश्याय, शिरका भारीपन,खांसी और अरुचिको उत्पन्न करताहै१८

स कासप्रसङ्गादुरसि क्षते शोणितं ष्ठीवति । शोणितगमना-च्चास्य दौर्बल्यमुपजायते । एवमेते विषमाशनोपचिता दोषा राजयक्ष्माणमभिनिर्वर्त्तयन्ति ॥ १९ ॥

फिर खांसी होनेके कारण छातीमें घाव उत्पन्न होकर रक्त थूकमें आनेलगताहै। उस रक्तके निकलनेसे मनुष्यके शरीरमें दुर्बलता उत्पन्न होजातीहै । इस प्रकार विषमाशनसे संचित हुए दोष राजयक्ष्माको प्रकट करते हैं ॥ १९ ॥

विषमाशनशोषमें कर्तव्यता ।

सतैरुपशोषणैरुपद्रवैरुपद्रुतः शनैःशनैरुपशुष्यति । तस्मात् पुरुषोमतिमान् प्रकृतिकरणसंयोगराशिदेशकालोपयोगसंस्थो-पशयादविषमाहारमाहरेदिति ॥ २० ॥

फिर वह मनुष्य उन शोषणकर्त्ता उपद्रवों द्वारा धीरे २ सूख जाताहै । इसलियें बुद्धिमान् मनुष्यको प्रकृति, करण, संयोग, राशि, देश, काल, उपयोग, संस्था, एवम् उपशय इनसे अविपरीत अर्थात् इनके अनुकूल भोजन करना चाहिये ॥ २०॥

तत्र श्लोकः ।

हिताशी स्यान्मिताशी स्यात् कालभोजी जितेन्द्रियः। पश्य-न्रोगान् बहून् कष्टान् बुद्धिमान् विषमाशनादिति ॥ २१ ॥

यहांपर एक श्लोक है कि बुद्धिमान् मनुष्यको हितभोजी, मितभोजी, कालभोजी एवम् जितेन्द्रिय होनाचाहिये । क्योंकि विषमाशनसे अनेक प्रकारके कष्ट उत्पन्न होतेहैं ॥ २१ ॥

राजयक्ष्मानामका कारण ।

एतैश्चतुर्भिः शोषस्यायतनैरभ्युपसेवितैर्वातपित्तश्लेष्माण एव

प्रकोपमापद्यन्ते । ते प्रकुपितानानाविधैरुपद्रवैः शरीरमुपशोषयन्ति । तं सर्वरोगाणां कष्टतमंमत्वा राजयक्ष्माणमाचक्षते भिषजः । यस्माद्वा पूर्वमासीद्भगवतःसोमस्योडुराजस्य तस्माद्राजयक्ष्मेति ॥ २२ ॥

इस प्रकार इन चार शोषरोगके कारणोंको सेवन करनेसे वात, पित्त, कफ यह तीनों कोपको प्राप्त होतेहैं । वह कोपको प्राप्त हुए अनेक प्रकारके उपद्रवों द्वारा शरीरको सुखा देतेहैं । इसलिये सब रोगोंमें कष्टतम इस रोगको जानकर वैद्यलोग राजयक्ष्मा कहतेहैं । अथवा तारागणोंके पति भगवान् चन्द्रमाके शरीरमें यह रोग पहिले हुआ था इसलिये भी इस शोषरोगको राजयक्ष्मा कहते हैं ॥ २२ ॥

राजयक्ष्माके पूर्वरूप ।

तस्येमानिपूर्वरूपाणि । तद्यथा--प्रतिश्यायःक्षवथुरभीक्ष्णंश्लेष्मप्रसेकोमुखमाधुर्य्यमनन्नाभिलाषोऽन्नकालेचायासोदोषदर्शनमदोषदर्शनमदोषेष्वल्पदोषेषुवाभावेषुपात्रोदकान्नसूपापूपोपदंशपरिवेशकेषुभुक्तवतोहृल्लासस्तथोल्लेखनमाहारस्यान्तरान्तरामुखपादस्यशोषःपाण्योरवेक्षणमत्यर्थमक्ष्णोःश्वेतताबाह्वोःप्रमाणजिज्ञासास्त्रीकामतातिघृणित्वंबीभत्सदर्शनताचकाये स्वप्नेहिअभीक्ष्णंदर्शनमनुदकानामुदकस्थानांशून्यानाञ्चग्रामनगरनिगमजनपदानांशुष्कदग्धभग्नानाञ्चवनानांकृकलासमयूरवानरशुकसर्पकाकोलूकादिभिःसंस्पर्शनमधिरोहणंवाअश्वोष्ट्रखरवराहैर्यानञ्चकेशास्थिभस्मतुषाङ्गारराशीनाञ्चाधिरोहणमितिशोषपर्वरूपाणिभवन्ति ॥ २३ ॥

उस राजयक्ष्माके यह पूर्वरूप होतेहैं जैसे प्रतिश्याय छींक आना, निरन्तर कफ गिरना, मुखमें मीठापन, अन्नकी इच्छा न होना, अन्नके समय थकावटसी मालुम देना, दोषरहित वस्तुओंमें भी दोषोंका दिखाई देना अथवा थोडे दोषवाली वस्तुओंमें भी अधिक दोष दिखाना और उनके सेवनसे अनिच्छा एवम् पात्र, जल, अन्न, दाल, पिष्ट पदार्थ, चटनी एवम् मसाले आदि युक्त पदार्थ इन सबमें अनिच्छा, भोजनके पश्चात् सूखी छर्द होना और जो भोजन

किया हो उसका वमनमें निकलना, वीचवीचमें मुख और पैरोंका सूखना, हाथोंको नित्यप्रति देखनेकी इच्छा होना, नेत्र सफेद होना, दोनों बाहोंके प्रमाण जाननेकी इच्छा होना एवम् स्त्रीकी कामना होना तथा अत्यन्त घृणा, देहमें भयंकरताका होना स्वप्नमें तालाव, सरोवर, नदी आदि जलाशयोंका जलरहित और सूखा हुआ देखना एवम् ग्राम,नगर,रास्ता.देश इन सबका सूखे हुए अथवा दग्ध होते हुए एवम् टूटे फूटे दीखना तथा वनोंको कटा हुआ देखना एवम् त्रिफला, मोर,बन्दर, तोता,सांप, कौआ,उल्लू, इनका स्वप्नमें स्पर्श करना और घोडा, ऊंट, गधा, तथा सूअर युक्त सवारीमें वैठना और केश, अस्थि, भस्म, तुष, अंगार इनकी ढेरोंपर चढना ऐसा स्वप्नमें दीखना यह सब शोषरोगके पूर्वरूप हैं ॥ २३ ॥

राजयक्ष्माके रूप ।

अतऊर्द्ध्वमेकादशरूपाणि । तद्यथा–शिरसःप्रतिपूरणं कासः श्वासःस्वरभेदःश्लेष्मणश्छर्दनं शोणितष्ठीवनं पार्श्वसंरोजनं अंसावमर्दोज्वरःअतीसारस्तथा अरोचक इति ॥ २४ ॥

अब शोषरोगके ग्यारह प्रकारके रूपोंका कथन करते हैं। जैसे, मस्तकका बहुत भारी होना अथवा पीडायुक्त होना । खांसी, स्वरभेद, कफका गिरना, श्वास, थूकमें रुधिरका आना, पसलियोंमें पीडा तथा कन्धोंमें पीडा, ज्वर, अतिसार और अरुचि ॥ २४ ॥

तत्रापरिक्षीणमांसशोणितोबलवानजातारिष्टःसर्वैरपि शोषलिङ्गैरुपद्रुतःसाध्यो ज्ञेयः ॥ २५ ॥

अब साध्य असाध्यको कहते हैं । जिस मनुष्यके शरीरमें मांस और रक्त क्षीण न हुए हों और स्वयं बलवान् हो तथा मरणरूयापक लक्षण न हों वह शोषरोगी शोषरोगके लक्षणयुक्त होनेपर भी साध्य होता है ॥ २५ ॥

बलवर्णोपचयोपचितो हि सहिष्णुत्वाद्व्याध्यौषधबलस्य कामं बहुलिङ्गोऽप्यल्पलिङ्ग एवमन्तव्यः ॥ २६ ॥

जो मनुष्य बल और वर्णसे युक्त हो एवम् व्याधि तथा औषधीके बलको सहन करसकता हो ऐसे मनुष्यके शरीरमें राजयक्ष्माके सम्पूर्ण लक्षण मिलनेपर भी वह साध्य होता है ॥ २६ ॥

दुर्बलन्त्वतिक्षीणमांसशोणितमल्पलिंगमप्यजातारिष्टमपिबहु-
लिङ्गमेवविद्यादसहत्वाद्व्याध्यौषधबलस्य तं परिवर्जयेत् ॥२७॥

यदि रोगी दुर्बल हो तथा उसके रक्त और मांस क्षीण होगये हों वह मनुष्य अरिष्टकारक सब लक्षण न होनेपर भी असाध्य जानना चाहिये । उसको व्याधि और औषधीका बल न सहन करनेवाला देखकर त्याग देना चाहिये ॥ २७ ॥

क्षणेनहिप्रादुर्भवन्त्यरिष्टानि । अन्यनिमित्तश्चारिष्टप्रादुर्भा-
व इति ॥ २८॥

इस प्रकार राजरोगमें क्षणमात्रमें अरिष्टकारक सब लक्षण प्रगट होजातेहैं तथा अन्य कारणोंसे भी अरिष्टकारक लक्षण उत्पन्न होते हैं ॥ २८ ॥

तत्रश्लोकः ।

समुत्थानञ्च लिङ्गञ्च यः शोषस्यावबुध्यते ।
पूर्वरूपञ्च तत्त्वेन सराज्ञः कर्तुमर्हति ॥ २९ ॥

इति चरकसंहितायां निदानस्थाने शोषनिदानं समाप्तम् ॥६॥

अब यहां अध्यायकी पूर्तिमें एक श्लोक है । शोषरोगके कारण, लक्षण और पूर्वरूप इन सबको जो वैद्य विधिपूर्वक जानता है वही राजाओंकी (राजयक्ष्माकी) चिकित्सा करनेयोग्य है ॥ २९ ॥

इति श्रीमहर्षिचरक० निदान० पं०रामप्रसादवैद्य० भाषाटीकायां शोषरोगनिदानं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः ।

अथोन्मादनिदानंव्याख्यास्याम इति हस्माहभगवानात्रेयः।

अब हम उन्मादके निदानकी व्याख्या करतेहैं । इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कथन करनेलगे ।

उन्मादके भेद ।

इह खलु पञ्च उन्मादाभवन्ति ।तद्यथा—वातपित्तकफसन्नि-
पातागन्तुनिमित्तास्तत्र दोषनिमित्ताश्चत्वारः ॥ १ ॥

मनुष्यके शरीरमें उन्माद रोग पांच प्रकारसे होताहै । वातसे, पित्तसे, कफसे, सन्निपातसे और आगन्तुक कारणोंसे ॥ १ ॥

उन्मादरोगी पुरुष ।

पुरुषाणामेवंविधानां क्षिप्रमभिनिर्वर्त्तन्ते । तद्यथा--भीरूणामुपक्लिष्टसत्त्वानामुत्सन्नदोषाणाञ्चमलविकृतोपहितान्यनुचितानि आहारजातानि वैषम्ययुक्तेनोपयोगविधिनोपयुञ्जानानांतत्रप्रयोगंवा विषमसाचरतामन्यां वा चेष्टांविषमांसमाचरतामत्युपक्षीणदेहानाञ्चव्याधिवेगसमुद्भ्रमितानामुपहतमनसांवाकामक्रोधलोभहर्षभयशोकचिन्तोद्वेगादिभिःपुनरभिघाताभ्याहतानांवामनसिउपहतेबुद्धौचप्रचलितायामभ्युदीर्णादोषाः प्रकुपिताहृदयमुपसृत्यमनोवहानिस्रोतांसिआवृत्यजनयंतिउन्मादम्।उन्मादंपुनर्मनोबुद्धिसंज्ञाज्ञानस्मृतिभक्तिशीलचेष्टाचारविभ्रमंविद्यात् ॥ २ ॥

वह उन्माद रोग इस प्रकारके पुरुषोंके शरीरमें शीघ्र उत्पन्न होतेहैं।जो मनुष्य अधिक डरपोक हैं, जिनका सत्वगुण बिगड गया हो, जिनके शरीरमें वात, पित्त, कफ यह अत्यन्त बढे हों।जिनके मल बिगडे हुए हों जिनके अनुचित आहारके करनेसे एवम् विषमभोजनके करनेसे तथा पूर्वोक्त विधिसे विपरीत रीतिपर भोजन करनेसे अथवा विषम चेष्टाओंके करनेसे शरीरमें दोष कुपित हुए हों । जिस मनुष्यका शरीर क्षीण होगया हो अथवा व्याधिके वेगसे व्याकुल हो, जिसका चित्त काम, क्रोध, लोभ, हर्ष, भय, शोक, चिन्ता और उद्वेग अन्य मद आदिसे व्याकुल हो अथवा दिमाग आदि स्थानमें चोट लगी हो । ऐसे ऐसे कारणोंसे मनुष्यका मन उपहत होकर बुद्धि चलायमान होजातीहै । उस समय बढे हुए दोष कुपित होकर हृदयमें प्रवेश कर मनके वहनेवाले छिद्रोंको रोककर उन्मादरोगको उत्पन्न करतेहैं । उस उन्मादके होनेसे-मन, बुद्धि, संज्ञा, ज्ञान, स्मृति, भक्ति, शील, चेष्टा तथा आहार इन सबमें विभ्रम होजाताहै ॥ २ ॥

उन्मादके पूर्वरूप ।

तस्येमानिपूर्वरूपाणि । तद्यथाशिरसःशून्यभावःचक्षुषोराकुलतास्वनःकर्णयोरुच्छ्वासस्याधिक्यमास्यसंस्रवणमनन्नाभिलाषोऽरोचकाविपाकौहृदयग्रहोध्यानायाससम्मोहोद्वेगाश्चास्थाने सततंलोमहर्षोज्वरश्चाभीक्ष्णमुन्मत्तचित्तत्वमुदर्दितत्वमर्दिता-

कृतिकरणञ्चव्याधेः । स्वप्नेचदर्शनमभीक्ष्णंभ्रान्तचलिताव-स्थितानवस्थितानाञ्चरूपाणामप्रशस्तानाञ्चातिलपीडकचक्रा-धिरोहणंवातकुण्डलिकाभिश्चोन्मथनंनिमज्जनंकलुषाणामम्भ-सामावर्त्तेषु चक्षुषोश्चापसर्पणामिति दोषनिमित्तानामुन्मादा-नांपूर्वरूपाणि ॥ ३ ॥

उस उन्माद रोगके यह पूर्वरूप होतेहैं । जैसे-शिरका शून्य होजाना, नेत्रोंका व्याकुल होना,कानोंमें शब्दका होना, ऊपरको श्वास लेनेकी अधिकता होना,मुखसे लारका वहना,अन्नसे द्वेष,अरुचि, अविपाक,हृदयका रुकना,विना किसी कारणके ध्यानसा लगा रहना,शरीरमें थकावट प्रतीत होना एवम् संमोह, उद्वेग, निरन्तर रोमोंका खडा होना,ज्वर हरसमय उन्मत्त चित्त होना,उदर्दरोग होना,अर्दितवायुसे पीडित हुए मनुष्यकीसी आकृति वनाये रखना, स्वप्नमें निरन्तर भूलेहुएसा तथा चलित और अतिचंचल तथा अधिक भयानक रूपोंको देखना । अपने आपको तेलीके कोल्हूपर चढेहुए देखना, वात कुण्डलिका (मूत्रकी विमारी)रोगसे पीडित होना, विगडे हुए जलोंके चक्रमें अपनेको डूबतेहुए देखना, नेत्रोंका चलायमान होजाना यह सव उन्माद रोगके पूर्वरूप होतेहैं ॥ ३ ॥

उन्मादकी पहिचान ।

ततोऽनन्तरमुन्मादाभिनिर्वृत्तिस्तत्रेदमुन्मादविज्ञानं भवति तद्यथा-परिसर्पणमक्षिभ्रुवामोष्ठांसहनुहस्तपादाविक्षेपणमक-स्मात् अनियतानाञ्च सततं गिरामुत्सर्गःफेनागमनमास्यात् स्मितहसितनृत्यगीतवादित्रादिप्रयोगाश्चास्थाने, वीणावंशश-ङ्खशम्यातालशब्दानुकरणम् असाम्ना । यानमयानैरलंक-रणमलंकारिकैर्द्रव्यैर्लोभोऽभ्यवहार्य्येष्वलब्धेषु । लब्धेषुचा-वमानस्तीव्रं मात्सर्य्यं कार्श्यं पारुष्यमुत्पिण्डतारुणाक्षता वातोपशयविपर्य्यासादनुपशायिता चेति वातोन्मादलिङ्गानि भवन्ति ॥ ४ ॥

उसके उपरान्त उन्मादरोग प्रगट होजाताहै सो उसके लक्षणविशेषोंका कथन करतेहैं । जैसे नेत्र और भौंका चलायमान होना, वह रोगी अकस्मात् होठ, कंधा, ठोडी, हाथ और पांव इनको हिलावे, सदैव अंटसंट वकवाद करे,मुखसे झाग गिरे

हर एक जगह विना ही किसी प्रसंगसे मुस्कुराना, हँसना, नाचना, गाना, मुख तथा हाथोंसे बाजे बजाना एवम् वीणा, वांसुरी, शंख, शम्या, ताल, शब्द आदि मुखसे बाजे बजाना अर्थात् असंवद्ध स्वर करना, कुत्ते, गधे आदिकोंपर तथा लकडी पत्थर आदिपर सवारी करना एवम् लकडी, पत्थर, जूते आदिके आभूषण पहिनना, जो चीजें मिल न सकें उनके लिये इच्छा करना, मिलेहुए भोजनादिक पदार्थोंको अपमानित करना; बहुत मत्सरता, कृशता, कठोरपन यह सब होना, नेत्रोंको ऊपरको चढायेरखना तथा नेत्रोंका लाल रंग होना, वातनाशक द्रव्योंसे उपद्रवोंका शान्त होना और वातकारक द्रव्योंसे रोगका बढना यह लक्षण वातजनित उन्माद रोगके होतेहैं ॥ ४ ॥

पित्तोन्मादके लक्षण ।

अमर्षःक्रोधःसंरम्भश्चास्थानेशस्त्रलोष्टकाष्ठमुष्टिभिरभिद्रवणं स्वेषांपरेषांवाप्रच्छायशीतोदकान्नाभिलाषःसन्तापोऽतिवेलः । ताम्रहरितहारिद्रसंरब्धाक्षतापित्तोपशयविपर्य्यासादनुपशायिताचेतिपित्तोन्मादलिंगानिभवन्ति ॥ ५ ॥

किसीकी बातको न सहना, क्रोध, गर्व करना, विना कारणके शस्त्र, मट्टीका डला, लकडी लेकर अथवा मुक्की बांधकर किसीके पीछे दौडना, अपने और पराये मनुष्योंको मारना, शीतलछाया, शीतलजल शीतलअन्न इनकी अभिलाषा होना, शरीरमें अधिक संताप रहना, नेत्र ताम्रवर्णके अथवा हरे वा हल्दीके समान पीले वर्णके हों तथा टेढे और विक्षिप्तसे दिखाईदें एवम् क्रोधयुक्त प्रतीत हों। पित्तनाशक द्रव्योंद्वारा शान्ति प्राप्त हो और पित्तकारक द्रव्योंद्वारा रोगकी वृद्धि हो यह पित्त-जनित उन्मादके लक्षण हैं ॥ ५ ॥

कफोन्मादके लक्षण ।

स्थानमेकदेशतूष्णीम्भावोऽल्पशश्चंक्रमणंलालाशिंघाणकप्रस्रवणमनन्नाभिलाषोरहस्कामताबीभत्सत्वंशौचद्वेषःस्वल्पनिद्रताश्वयथुराननेशुक्लस्तिमितमलोपादिग्धाक्षताश्लेष्मोपशयविपर्य्यासादनुपशयिताचेतिश्लेष्मोन्मादलिङ्गानिभवन्ति ॥ ६ ॥

किसी एक स्थानमें चुपचाप बैठे रहना, इधर उधर बहुत थोडा फिरना, मुखसे लार और नाकसे मलका अधिक गिरना, अन्नमें रुचि न होना, एकान्तमें बैठेरहनेकी इच्छा होना, शरीरकी आकृतिका भयानक होना, शुद्धता बुरी मालूम होना,

थोडी २ नींदका आना, मुखपर सूजन होना और नेत्रोंका श्वेत, गिलेगिले, मलयुक्त होना। देहका गीलासा तथा मलयुक्त रहना कफकारक द्रव्योंसे रोगका बढना और कफनाशक द्रव्योंसे रोगका शान्त होना। यह लक्षण कफजनित उन्मादके हैं॥ ६॥

त्रिदोषलिङ्गसन्निपातेतत्सान्निपातिकंविद्यात्।
तमसाध्यमित्याचक्षतेकुशलाः॥ ७॥

वात, पित्त, कफ इन तीनों दोषोंके लक्षण एकसाथ मिलनेसे सन्निपातजनित उन्माद जानना। इस उन्मादको वैद्यलोग असाध्य कथन करतेहैं॥ ७॥

साध्योंकी उपक्रमणविधि।

साध्यानान्तुत्रयाणांसाधनानिभवन्ति।तद्यथा–स्नेहस्वेदवमनविरेचनास्थापनानुवासनोपशमननस्तःकर्मधूपधूमपानाञ्जनावपीडप्रधमनाभ्यङ्गप्रदेहपरिषेकानुलेपनवधबन्धनावरोधनवित्रासनविस्मापनविस्मारणापतर्पणशिराव्यधनानि॥ ८॥

सन्निपातके सिवाय और वातादि दोषोंसे उत्पन्न हुए तीन प्रकारके उन्माद साध्य होतेहैं। सो उनके यत्नोंको कथन करतेहैं। उनका क्रम यह है कि उन्माद रोगमें वातादि दोष भेद विचारकर स्नेहन, स्वेदन, वमन, विरेचन, आस्थापन, अनुवासन, उपशमन, नस्यकर्म, धूपन, धूम्रपान, अंजन और पीडन, प्रधमन, अभ्यंग, प्रदेह, परिषेक, अनुलेपन, प्रहार, बंधन, अवरोधन, वित्रासन, विस्मयोत्पादन, विस्मारण, अपतर्पण, शिरावेधन यह सब उचित रीतिपर यत्न करना चाहिये॥ ८॥

भोजनविधानञ्चयथास्वंयुक्त्यायच्चान्यदपिकिञ्चिन्निदानविपरीतमौषधंकार्य्यंतत्स्यादिति॥ ९॥

तथा दोषके अनुसार युक्तिपूर्वक आहार विधिका सेवन कराना एवम् अन्य भी दोषको शान्त करनेवाले जो उपाय प्रतीत हों उनको करना चाहिये॥ ९॥

तत्र श्लोकः।

उन्मादान्दोषजान्साध्यान्साधयेद्भिषगुत्तमः।
अनेनविधियुक्तेनकर्मणायत्प्रकीर्त्तितमिति॥ १०॥

यहां एक श्लोक है–कि वात, पित्त, कफसे उत्पन्न हुए उन्माद रोगोंको बुद्धिमान् वैद्य उपरोक्तविधि और क्रियाके अनुसार साधन करे अर्थात् साध्य उन्मादरोगोंको शान्त करे॥ १०॥

आगन्तुकउन्मादके लक्षण।

यस्तुदोषनिमित्तेभ्यउन्मादेभ्यःसमुत्थानपूर्वरूपलिङ्गवेदनोपशयविशेषसमन्वितोभवतिउन्मादस्तमागन्तुमाचक्षते ॥ ११ ॥

जिस उन्माद रोगमें वातादि दोषोंके लक्षणोंसे अन्य प्रकारके कारण, पूर्वरूप और रूप मिलते हों उसको आगन्तुज उन्मादरोग जानना ॥ ११ ॥

आगन्तुउन्मादकी उत्पत्तिमें भिन्नमत।

केचित्पुनःपूर्वकृतंकर्माप्रशस्तमिच्छन्ति । तस्यनिमित्तंप्रज्ञापराधएवेतिभगवान्पुनर्वसुरात्रेयउवाच ॥१२॥ प्रज्ञापराधाद्धिअयंदेवर्षिपितृगन्धर्वयक्षराक्षसपिशाचगुरुवृद्धसिद्धाचार्य्यपूज्यानवमत्याहितानिआचरतिअन्यद्वाकिञ्चित् कर्माप्रशस्तमारभते ॥ १३ ॥

कोई कहतेहैं कि: पूर्वजन्मके कियेहुए पापही मनुष्यके उन्मादरोगके कारण होतेहैं। भगवान् आत्रेयजी कहनेलगे कि हे अग्निवेश ! उन्मादरोगके उत्पन्न होनेमें बुद्धिका ही दोष है क्योंकि बुद्धिका दोष ही संसारमें देवता, ऋषि, पितर, गंधर्व, यक्ष, राक्षस, पिशाच गुरु, वृद्ध, सिद्ध, आचार्य और पूज्योंका अपमान कराकर उनसे अहित आचरण कराताहै तथा अन्य भी जो कुछ निंदनीय कर्म हैं उनके करानेवाला होताहै ॥ १२ ॥ १३ ॥

आगन्तुउन्मादके पूर्वरूप।

तमात्मनोपहतमुपघ्नन्तोदेवाःकुर्वन्त्युन्मत्तम् । तत्रदेवादिप्रकोपनिमित्तेनागन्तुकोन्मादेनपुरस्कृतस्यइमानिपूर्वरूपाणि । तद्यथादेवगोब्राह्मणतपस्विनांहिंसारुचित्वंकोपनत्वंनृशंसाभिप्रायताअरतिरोजोवर्णच्छायाबलवपुषाञ्चोपतप्तिः । स्वप्नेचदेवादिभिरभिभर्त्सनंप्रवर्त्तनञ्चेतिआगन्तुनिमित्तस्यउन्मादस्यपूर्वरूपाणिभवन्तिततोऽनन्तरमुन्मादाभिनिर्वृत्तिः ॥ १४ ॥

इसलिये क्रोधितहुए देवता उस हतबुद्धि मनुष्यके शरीरमें उन्मादरोगको उत्पन्न करते हैं।सो उस देवादि प्रकोपसे उत्पन्नहुए उन्माद रोगके यह पूर्वरूप होतेहैं ।जैसे देवता, गौ, ब्राह्मण, तपस्वी इनको मारनेकी इच्छा होना,तथा इनमें अरुचि होना, एवम् इनपर क्रोध होना और निंदनीय लज्जारहित कर्मोंके करनेकी इच्छा होना,

चित्तका कहीं न लगना, ओज, वर्ण, कांति, बल इन सबका नष्ट होना, शरीरका तपायमान रहना, स्वप्नमें देवता आदि उसको बहुत डरावें और बुरेबुरे शब्द कहें। यह आगन्तुज उन्मादरोगके पूर्वरूपहैं। इसके उपरान्त उन्मादरोगके लक्षण प्रगट होजाते हैं ॥ १४ ॥

उन्मादोत्पत्तिसे पूर्वचेष्टा।

तत्रायमुन्मादकराणांभूतानामुन्मादयिष्यतामारम्भविशेषःतद्यथा–अवलोकयन्तोदेवाजनयन्तिउन्मादम् । गुरुवृद्धसिद्धर्षयोऽभिशपन्तःपितरोधर्षयन्तः। स्पृशन्तोगन्धर्वाः। समाविशन्तोयक्षराक्षसास्त्वामगंधमाघ्रापयंतःपिशाचाःपुनराधिरुह्य वाहयंतः ॥ १५ ॥

आगन्तुक उन्माद प्रगट होनेके समय उन्मादकारक देवादिकोंके अलग२प्रकार भेदसे उन्मादरोगका आरम्भ होताहै। जैसे–देवता देखनेमात्रसेही उन्माद रोगको उत्पन्न करतेहैं। गुरु,वृद्ध,सिद्ध और ऋषि इनके शाप देनेसे उन्माद रोग होताहै। पितरोंके डरानेसे उन्माद रोग होताहै। गंधर्व शरीरको स्पर्शकर उन्मादको उत्पन्न करतेहैं। यक्ष, राक्षस शरीरमें प्रवेश होकर उन्मादको उत्पन्न करतेहैं। पिशाच देहमें आमगंधको सूंघकर और शरीरके ऊपर चढकर उन्माद रोगको उत्पन्न करतेहैं १५॥

उन्मादके रूप।

तस्येमानिरूपाणि । तद्यथा-अमर्त्यबलवीर्य्यपौरुषपराक्रमग्रहणधारणस्मरणज्ञानवचनविज्ञानानिअनियतश्चोन्मादकालः ॥ १६ ॥

उस उन्माद रोगके यह लक्षण होतेहैं। जो मनुष्योंमें न हों उस प्रकारके अर्थात् अमानुषीय–बल, वीर्य, पराक्रम,पौरुष,ज्ञान और विज्ञान यह सब उस मनुष्यके शरीरमें उन्मादके समय उत्पन्न हो जांय तथा उस उन्मादके होनेका कोई नियत समय न हो ॥ १६ ॥

आघातकाल।

उन्मादयिष्यतामपिखलुदेवर्षिपितृगंधर्वयक्षराक्षसपिशाचानां गुरुवृद्धसिद्धानांवाएषुअन्तरेषुअभिगमनीयाःपुरुषाभवंति तद्यथा-पापस्यकर्मणःसमारम्भेपूर्वकृतस्यवाकर्मणःपरिणा-

मकालेएकस्यवाशून्यगृहवासेचतुष्पथाधिष्ठानेवासन्ध्यावेलायामप्रयतभावेवापर्वसंधिषुवामिथुनभावेरजस्वलाभिगमनेवाविगुणेवाध्ययनबलिमङ्गलहोमप्रयोगेनियमव्रतब्रह्मचर्य्यभङ्गेवामहाहवेवादेशकुलपुरविनाशेवामहाग्रहोपगमनेवास्त्रियाः प्रजननकालेविविधभूताशुभाशुचिस्पर्शनेवावमनविरेचनरुधिरस्त्रावेवाशुचेरप्रयतस्यवाचैत्यदेवायतनाभिगमनेवामांसमधुतिलगुडमद्योच्छिष्टेवादिग्वासासिवानिशिनगरनिगमचतुष्पथोपवनश्मशानायतनाभिगमनेवाद्विजगुरुसुरपूज्याभिधर्षणेवाधर्माख्यानव्यतिक्रमेवाअन्यस्यकर्मणोऽप्रशस्तस्यारम्भेवाइत्याघातकालाः ॥ १७ ॥

उन्मादके करनेवाले देवता, ऋषि, पितृगण, गंधर्व, यक्ष, राक्षस, पिशाच इनका तथा गुरु, वृद्ध, सिद्ध इनका भी उन्मादके उत्पन्न करनेका समय होताहै. अर्थात् यह सब भी मनुष्यमें किसी प्रकारका छिद्र पाकर ही उन्माद रोगको उत्पन्न करतेहैं । इनके कुपित होनेके यह समय होतेहैं । पापकर्मके करनेसे अथवा पूर्वजन्मके किये पापोंके फलसे-शून्य घरमें अकेला देखकर; चौराहेमें, दोनों संध्याओंके समय, विना काम कहीं खाली बैठे हुए, पर्वके समय, अपवित्र समय, मैथुनके समय अथवा रजस्वलासे गमन करनेके समय, या पर्वसंधियोंमें स्त्रीगमनके समय, अथवा पढने, बलिदान करने एवम् मंगल तथा होम कर्म करनेके समय किसी प्रकारका उपद्रव कर लेनेसे, नियम, व्रत और ब्रह्मचर्य इनमें किसी प्रकारकी विगुणता होजानेके समय, घोर युद्धमें अथवा देश, कुल और नगरके विनाशके समय या किसी ग्रहण आदि महाग्रहके आगमनके समय, स्त्रियोंके प्रसूत कालके समय एवम् अनेक प्रकारके भूत तथा अपवित्र स्पर्शके समय अथवा वमन तथा रुधिरके स्रावके समय एवम् अपवित्रावस्थामें तथा वेसमय पीपल आदि देवताके वृक्ष तथा देवमंदिरमें प्रवेश करनेसे अथवा उच्छिष्ट, मांस, मधु, तिल, गुड, मद्य इनके सेवनसे बिलकुल नंगा रहनेके समय, रात्रिमें, रास्तेमें, चौराहेमें, आंधीमें एवम् स्मशानमें अकेला होनेके समय, धर्मकी मर्यादाके बिगाडनेसे अथवा अन्य कोई निंदित कर्म करनेके समय उपरोक्त देवतादि आघात पाकर उन्माद रोगको उत्पन्न करतेहैं ॥ १७ ॥

भूतादिकृत उन्मत्तताके तीन प्रयोजन ।

त्रिविधन्तुखलुउन्मादकराणांभूतानामुन्मादनेप्रयोजनंभवति । तद्यथा--हिंसारतिरभ्यर्चनञ्चेति तेषांतत्प्रयोजनमुन्मत्ताचरणविशेषलक्षणैर्विद्यात् । तत्राहिंसार्थमुन्माद्यमानोऽग्निंप्रविशतिअप्सुवानिमज्जतिस्थलात्श्वभ्रेवानिपतति । शस्त्रकशाकाष्ठलोष्टमुष्टिभिर्हन्त्यात्मानमन्यञ्चप्राणवधार्थमारभते । हिंसार्थिनमुन्मत्तमसाध्यंविद्यात् । साध्यौपुनर्द्वावितरौ ॥ १८ ॥

उन्मादकारक देवताओंका उन्मादरोग उत्पन्न करनेमें तीन प्रकारका प्रयोजनहै। १ हिंसा २ अरति ३ अभ्यर्चन । इन तीनों प्रयोजनोंको उन्मत्त मनुष्यके आचरणोंसे जाना जासकताहै उनमें हिंसा अर्थात् मनुष्यके पापकर्मसे कुपित हुए देवादि जब उसके (हिंसा–मारने) के लिये उन्मादरोगको उत्पन्न करतेहैं तब वह मनुष्य अग्निमें प्रवेश करे अथवा जलमें डूब मरे या ऊंचे स्थानसे नीचे गिर पडे अथवा किसी गढे आदिमें गिरे एवम् शस्त्र, कशा, काष्ठ, पत्थर, मुक्का आदिसे अपने प्राणोंको नष्ट करनेमें लगे। इस प्रकार देवादिकोंसे हिंसाके लिये उन्मादित कियाहुआ मनुष्य असाध्य होताहै । अरति और अभ्यर्चनाके लिये जो दो प्रकारके उन्मादरोग हैं उनको साध्य जानना ॥ १८ ॥

साध्योंका वर्णन ।

तयोःसाधनानि । मन्त्रौषधिमणिमङ्गलबल्युपहारहोमनियमव्रतप्रायश्चित्तोपवासस्वस्त्ययनप्रणिपातगमनादीनिइतिएवमेतेपञ्चोन्मादाव्याख्याताभवन्ति ॥ १९ ॥

इन साध्य उन्मादोंको साधन करनेके यह उपाय हैं । जैसे–मंत्र, औषध, मणि, मंगलकर्म, बलिदान, उपहार (भोजनादि देना), हवन, नियम, व्रत, प्रायश्चित्त, उपवास, स्वस्त्ययन (स्वस्तिवाचन आदि अथवा शान्तिकारक कर्म), प्रणिपातन (वंदना) एवम् देवयात्रादि कर्म आगन्तुज उन्माद रोगकी शान्तिके लिये करना चाहिये । इस प्रकार पांच प्रकारके उन्मादका वर्णन कियागयाहै ॥ १९ ॥

उन्मादका द्विविधत्व ।

ते तु खलु निजागन्तुविशेषेणसाध्यासाध्यविशेषेण च प्रविभज्यमानाः पञ्च सन्तो द्वौ एव भवतः ॥ २० ॥

वह उन्मादरोग निज और आगन्तुज भेदसे पांच प्रकारके और साध्य असाध्यके भेदसे दो प्रकारके होतेहैं ॥ २० ॥

तौ परस्परमनुबध्नीतः । कदाचिद्यथोक्तहेतुसंसर्गाच्च तयोः संसृष्टमेव पूर्वरूपं भवति संसृष्टमेवालिङ्गञ्च । तत्र असाध्यसंयोगंसाध्यासाध्यसंयोगंवाअसाध्यंविद्यात् । साध्यन्तुसाध्यसंयोगं तस्य साधनं साधनसंयोगमेवाविद्यादिति ॥ २१ ॥

उन आगन्तुज और निज अर्थात् दोषज उन्मादोंका भी आपसमें संवन्ध होता है । निज और आगन्तुज कारणोंका संसर्ग होनेसे पूर्वरूपमें तथा लक्षणोंमें भी संसर्ग होजाताहै वह इस प्रकार निज और आगन्तुज उन्मादोंका संसर्ग हुआ असाध्यताको प्राप्त होजाताहै एवम् साध्य और असाध्योंका संसर्ग होना भी असाध्य ही जाननां चाहिये । इस प्रकार मिलेजुले निज और आगन्तुज उन्मादोंमें तथा साध्य और असाध्योंमें चिकित्सा भी मिलीजुली करनी चाहिये ॥ २१ ॥

तत्र श्लोकाः ।

नैव देवा न गन्धर्वा न पिशाचा न राक्षसाः ।
न चान्ये स्वयमक्लिष्टमुपक्लिश्यन्ति मानवम् ॥ २२ ॥

जो मनुष्य अपने पाप तथा दोषोंसे रहित होताहै उसके शरीरमें कोई देवता, गन्धर्व, पिशाच, राक्षस, आदि तथा अन्य भी कोई किसी प्रकारका उपद्रव नहीं करते ॥ २२ ॥

ये त्वेनमनुवर्त्तन्ते क्लिश्यमानं स्वकर्मणा ।
न तन्निमित्तः क्लेशोऽसौ न ह्यस्तिकृतकृत्यता ॥ २३ ॥

जो मनुष्य अपने पापकर्मोंसे कष्टको भोगतेहुए देवता आदिको दोष देतेहैं और अपने किये पापोंको अपने दुःखका कारण नहीं समझते वह संपूर्णरूपसे झूठे हैं और अपने कार्यकी कृतकृत्यताको प्राप्त नहीं होते ॥ २३ ॥

प्रज्ञापराधात् सम्प्राप्ते व्याधौ कर्मजआत्मनः । नाभिशंसेद्बुधोदेवान् न पितन् नापि राक्षसान् ॥ २४ ॥

अपनी बुद्धिसे अपराधसे किये हुए कुकर्मोंके फलसे संकट प्राप्त होनेपर बुद्धिमान् मनुष्य देवता तथा पितृगण एवम् राक्षसादिकोंको दोष न देवें ॥ २४ ॥

आत्मानमेव मन्येत कर्त्तारं सुखदुःखयोः ।
तस्माच्छ्रेयस्करं मार्गं प्रतिपद्येत नोत्रसेत् ॥ २५ ॥

बुद्धिमान्‌को उचित है कि अपनेको ही सुखदुःखका कारण माने । इसलिये कल्याणके करनेवाले मार्गपर चलता रहे । ऐसा करनेसे मनुष्य त्रासको प्राप्त नहीं होता ॥ २९ ॥

देवादीनामुपचितिर्हितानामुपसेवनम् ।
न च तेभ्यो विरोधश्चसर्वमायत्तमात्मनि ॥ २६ ॥

हित वस्तुओंका सेवन करना एवम् हित आचरण रखना यही देवतादिकोंका पूजन है क्योंकि देवताओंको प्रसन्न रखना तथा इनसे विरोध उत्पन्न करना यह सब अपने ही आधीन होता है ॥ २१ ॥

संख्यानिमित्तं द्विविधं लक्षणं साध्यता न च । उन्मादानां
निदानेऽस्मिन् क्रियासूत्रश्च भाषितम् ॥ २७ ॥

इस उन्मादरोग निदान नामक अध्यायमें उन्मादरोगकी संख्या, कारण,उनके दोनों प्रकारोंके लक्षण, साध्यता और असाध्यता तथा संक्षेपसे उनकी चिकित्साके क्रमका वर्णन किया है ॥ २७ ॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदीयसंहितायां पटियालाराज्यान्तर्गतटकसालनिवासि-
वैद्यपंचानन पं०रामप्रसादवैद्योपाध्यायविरचितप्रसादन्याख्यभाषाटीकाया-
मुन्मादरोगनिदानं नाम सप्तमोध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः ।

अथापस्मारनिदानं व्याख्यास्याम इति हस्माह भगवाना-
त्रेयः ।

अव हम अपस्मार रोगके निदानको कथन करते हैं । इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कथन करनेलगे ।

अपस्मारके भेद ।

इह खलु चत्वारोऽपस्मारा वातपित्तकफसन्निपातनिमित्ताः॥१॥

इस शरीरमें अपस्माररोग चारप्रकारसे उत्पन्न होता है । जैसे वातसे, पित्तसे, कफसे एवम् सान्निपातसे ॥ १ ॥

अपस्मारके योग्यपुरुष ।

ते एवंविधानां प्राणभृतां क्षिप्रमभिनिर्वर्त्तन्ते।तद्यथा रजस्त-

मोभ्यामुपहतचेतसामुद्भ्रान्ताविषमबहुदोषाणां समलविकृ-तोपहितानि अशुचीनि अभ्यवहारजातानि वैषम्ययुक्तेन उपयोगविधिनोपयुञ्जानानांतन्त्रप्रयोगमपिचाविषममाचरता-मन्याश्चशरीरचेष्टाविषमाःसमाचरतामत्युपक्षीणदेहानांवादो-षाःप्रकुपितारजस्तमोभ्यामुपहतचेतसामन्तरात्मनःश्रेष्ठतम-मायतनंहृदयमुपसंगृह्यपर्य्यवतिष्ठन्तेतथाइन्द्रियायतनानितत्र चावस्थिताःसन्तोयदाहृदयमिन्द्रियायतनानिचोरिताःकामक्रो-धभयलोभमोहहर्षशोकचिन्तोद्वेगादिभिःभूयःसहसाअभिपूर-यन्तितदाजन्तुरपस्मरति ॥ २ ॥

वह अपस्मार (मृगी) रोग ऐसे मनुष्योंके शरीरमें शीघ्र होताहै जिनका नीचे कथन करतेहैं । ऐसे रजोगुण और तमोगुणसे ढकेहुए चित्तवाले जिनके शरीरमें वातादिदोष उद्भ्रान्त अथवा विषम, या वढेहुए हों । जो मनुष्य आहार विधिको त्याग कर मलीन, बिगडाहुवा, गतरस, अपवित्र ऐसे २ आहारको करताहै । अथवा विषमभोजनको करताहै । जो शास्त्रीयविधिके प्रतिकूल अन्यान्य आहार-विहारोंको करताहै । तथा अनेकप्रकारकी विषमचेष्टा करनेवाले एवम् क्षीणदेहवाले ऐसे२ मनुष्योंके शरीरमें वातादि दोष कुपित हो अंतरात्माके श्रेष्ठस्थानरूप चित्तमें प्रवेश करतेह और उस चित्तको रजोगुण और तमोगुणसे उपहत (बिगाड) कर स्थित रहतेहैं ।फिर उस मनुष्यके काम, क्रोध, भय, लोभ, मोह, हर्ष, शोक, चिंता, और उद्वेग आदिसे सहायता पाकर हृदय और इंद्रियोंके स्थानोंको सहसा पूरण कर अपस्माररोगको उत्पन्न करतेहैं ॥ २ ॥

अपस्मारके लक्षण ।

अपस्मारंपुनःस्मृतिबुद्धिसत्त्वसंप्लवाद्बीभत्सचेष्टमावस्थिकंतमः प्रवेशमाचक्षते ॥ ३ ॥

स्मरणशक्ति,बुद्धि, सत्त्व, यह सब नष्ट होकर भयानक चेष्टाकी अवस्थारूप अंधकारमें प्रवेश होनेको अपस्मार (मृगी) रोग कहतेहैं ॥ ३ ॥

अपस्मारके पूर्वरूप ।

तस्येमानिपूर्वरूपाणिभवन्ति । तद्यथा--भ्रूव्युदासःसततम-क्ष्णोर्वैकृतमशब्दश्रवणंलालाशिंघाणकप्रस्रवणमनन्नाभ्यशन-

मरोचकाविपाकौहृदयग्रहःकुक्षेराटोपोदौर्बल्यमङ्गमर्दौमोहस्त-
मसोदर्शनंमूर्च्छाभ्रमश्चाभीक्ष्णश्वस्वप्नेमदनर्त्तनपीडनवेपनव्य-
धनपतनादीनिअपस्मारपूर्वरूपाणिभवन्तिततोऽनन्तरमपस्मा-
राभिनिर्वृत्तिः ॥ ४ ॥

उस अपस्माररोगके यह पूर्वरूप होतेहैं । जैसे–दोनों भ्रुकुटियोंका संकोच, नेत्रोंकी निरंतर विकृति (टेढेसे रहना) कानोंमें शब्दसा सुनना, अथवा श्रवणशक्ति नष्ट होजाना, मुखसे लार बहना, नाकसे मैल गिरना, अन्नका न खाना, अरुचि, अविपाक, हृदयका रुकजाना, कूखका फूलना, दुर्बलता, अंगमर्द, मोह, अंधकार दर्शन, मूर्च्छा, भ्रम, सोते हुए मस्त होजाना, नाचना, दोनों हाथोंको मींजना, कांपना, व्यथाका प्राप्तहोना, और गिर पडना, यह अपस्माररोगके पूर्वरूप हैं । इसके अनंतर अपस्माररोग प्रगट होजाताहै ॥ ४ ॥

वातज अपस्मारके लक्षण ।

तत्रेदमपस्मारविशेषविज्ञानंभवति । तद्यथा--अभीक्ष्णमपस्म-
रन्तं क्षणे क्षणे संज्ञां प्रतिलभमानमुत्पिण्डिताक्षमसाम्ना वा
विलपन्तमुद्वमन्तं फेनमतीवाध्मातग्रीवमाविद्धशिरस्कं विषम-
विनतांगुलिमनवस्थितसक्थिपाणिपादमरुणपरुषश्यावनखन-
यनवदनत्वचमनवस्थितचपलपरुषरूक्षरूपदर्शिनंवातलानुप-
शयं विपरीतोपशयं वातेनापस्मारवन्तंविद्यात् ॥ ५ ॥

अव अपस्मारके भेदोंके ज्ञानको कथन करतेहैं वह इस प्रकार हैं । जिस मनुष्यको अपस्माररोग होताहो अथवा स्मरणशक्ति नष्ट होजाय और अपस्मार होनेके समय थोडी थोडी देरमें होश आजाताहो जिसके नेत्रकी पुतली सिकुडगईहो जो मनुष्य वकवाद करताहो एवम् मुखसे झाग निकालताहो तथा गर्दन फूली हुईसी हो मस्तक रुका हुआसा हो हाथोंकी अंगुलियें टेढी होगईहों तथा हाथपर अनवस्थित हों एवम् नख, नेत्र, मुख और त्वचा यह सब लाल कठोर और काले होगयेहों, मन चलायमान हो, सब वस्तुयें चपल, कठोर और रूक्ष दिखाई देवें तथा वातकारक पदार्थोंसे रोगकी वृद्धि हो और वातनाशक पदार्थोंके सेवनसे शान्ति हो यह सब लक्षण वातजनित अपस्मारमें होतेहैं ॥ ५ ॥

पित्तजअपस्मारके लक्षण ।

अभीक्ष्णमपस्मरन्तं क्षणे क्षणे संज्ञां प्रतिलभमानमनुकूजन्त-

मास्फालयन्तं च भूमिंहरितहारिद्रताम्रनखनयनवदनत्वचं रुधिरोक्षितोग्रभैरवप्रदीप्तरुषितरूपदर्शिनं पित्तलानुपशयंविपरीतोपशयं पित्तेनापस्मारितंविद्यात् ॥ ६ ॥

पित्तके अपस्मारमें निरन्तर अपस्मार रोगका होना क्षण २ पर होश आजाना, कण्ठसे कीलहनेकासा शब्द करना, हाथपैरोंको इधर उधर भूमिमें पटकना, नेत्र, नख, मुख, त्वचा इन सबका वर्ण हरा पीला तथा ताम्रवर्णका होना और उस मनुष्यको स्वप्नमें अथवा अपस्मार रोग होनेके समय रक्तसे भरेहुए उग्र भयानक प्रकाशयुक्त, क्रोधित रूपोंका देखना तथा पित्तकारक द्रव्योंसे रोगका बढना एवम् पित्तनाशक द्रव्योंसे शान्त होना। यह सब लक्षण पित्तजनित अपस्मारमें होतेहैं॥६॥

कफज अपस्मारके लक्षण ।

चिरादपस्मरन्तंचिराच्चसंज्ञांप्रतिलभमानंपतन्तमनतिविकृतचेष्टंलालामुद्वमन्तंशुक्लनखनयनवदनत्वचंशुक्लगुरुस्निग्धरूपदर्शिनंश्लेष्मलानुपशयंविपरीतोपशयंश्लेष्मणापस्मारितंविद्यात् ॥ ७ ॥

जिस अपस्माररोगमें देरदेरमें बेहोशी हो और देरमें ही संज्ञा प्राप्त हो पृथ्वीपर गिरते ही अत्यन्त विकृत चेष्टा न हो, मुखसे लार गिरतीहो, नख, नेत्र, मुख,त्वचा यह सब सफेद हों, रोगके समय श्वेत और भारीरूप दिखाई देतेहों अथवा सब वस्तुयें सफेद और भारी दीखती हों कफकारक वस्तुओंसे रोगकी वृद्धि हो और कफनाशक पदार्थोंसे शान्ति होतीहो। इन लक्षणोंसे युक्त अपस्मारको कफजनित अपस्मार जानना ॥ ७ ॥

सान्निपातिक अपस्मारके लक्षण।

समवेतसर्वलिंगमपस्मारंसान्निपातिकंविद्यात् । तमसाध्यमाचक्षते । इतिचत्वारोऽपस्माराः । तेषामागन्तुरनुबन्धोभवत्येव । कदाचित्सउत्तरकालमुपदेक्ष्यते । तस्यविशेषविज्ञानंयथोक्तैः लिङ्गैर्लिङ्गाधिक्यमदोषलिंगानुरूपंकिञ्चिद्धितंतत्तुअपस्मारिभ्यस्तीक्ष्णानिचैवसंशोधनानिउपशमनानियथास्वंमन्त्रादीनिचागन्तुसंयोगे ॥ ८ ॥

तीनों दोषोंके लक्षणोंयुक्त अपस्मारको सान्निपातिक जानना। सन्निपातके अपस्मारको असाध्य कथन करतेहैं। इस प्रकार अपस्मारके चार भेद होतेहैं। इन चारों प्रकारके अपस्मार होनेमें कोई भी आगन्तुक कारण अवश्य होताहै। जिसका विषय चिकित्सा स्थानमें कथन किया जायगा। इस आगन्तुज अपस्मारको अन्य अपस्मारोंके कथन किये हुए लक्षणोंसे विशेष लक्षणोंवाला तथा विशेषरूपसे प्रगट होनेवाला और दोषोंके लक्षणोंसे विचित्र लक्षणोंवाला होनेसे जान लेना चाहिये। कि यह आगन्तुज अपस्मार है। इस प्रकार अपस्मारोंके लक्षणोंको जानकर उनमें हित तथा तीक्ष्ण उपशमनों द्वारा चिकित्सा करनी चाहिये। आगन्तुज लक्षणके अनुबंध होनेपर मंत्रादिकोंसे शान्ति करनी चाहिये ॥ ८ ॥

रोगोंकी उत्पत्ति।

तस्मिन्हिदक्षाध्वरोद्ध्वंसेदेहिनांनानादिक्षुविद्रवतामतिसरणप्लवनलङ्घनाद्यैर्देहविक्षोभणैःपुरागुल्मोत्पत्तिरभूद्धविःप्राशान्मेहकुष्ठानांभयत्रासशोकैरुन्मादानांविविधभूताशुचिसंस्पर्शादपस्माराणाम् ॥ ९ ॥ ज्वरस्तुमहेश्वरललाटप्रभवः। तत्सन्तापाद्रक्तपित्तमतिव्यवायात् पुनर्नक्षत्रराजस्यराजयक्ष्मेति ॥ १० ॥

उस दक्षयज्ञकेही नष्ट होनेके समय जब महादेवके भयसे दशोंदिशाओंमें यज्ञस्थ मनुष्य भागने लगे और इधर उधर उछलना, कूदना, आदि देहका विक्षेप करते हुए भागने लगे तब उनके शरीरमें पहिले गुल्म रोग उत्पन्न हुआ और उसी यज्ञमें अत्यन्त घृतके खानेसे प्रमेह और कुष्ठ रोगकी उत्पत्ति हुई तथा तप और उपवास एवम् शोकसे उन्मादोंकी उत्पत्ति हुई। उसी यज्ञके नष्ट होते समय भूत गणादिकोंके स्पर्शसे अपस्माररोग पैदा हुआ। और महादेवके मस्तकसे ज्वर उत्पन्न हुआ। उसके संतापसे रक्तपित्त उत्पन्न हुआ। एवम् मैथुनके प्रभावसे चन्द्रमाके शरीरमें राजयक्ष्मा पैदा हुआ ॥ ९ ॥ १० ॥

तत्रश्लोकाः।

अपस्मरतिवातेनपित्तेनचकफेनच।
चतुर्थःसंनिपातेनप्रत्याख्येयस्तथाविधः ॥ ११ ॥

यहांपर श्लोक कहेहैं-कि अपस्माररोग वातसे, पित्तसे, कफसे और सन्निपातसे इन चार भेदोंसे कहा गयाहै। इन अपस्मारोंमें सन्निपात जनित अपस्मार असाध्य है तथा अन्य तीन प्रकारके अपस्मार साध्य हैं ॥ ११ ॥

साध्यांस्तुभिषजःप्राज्ञाःसाधयन्तिसमाहिताः । तीक्ष्णैःसंशोधनैश्चैवयथास्वंशमनैरपि ॥१२॥ यदादोषनिमित्तस्यभवत्यागन्तुरन्वयः । तदासाधारणंकर्मप्रवदन्तिभिषग्वराः ॥ १३ ॥

बुद्धिमान् वैद्यको चाहिये कि साध्य अपस्मारोंको सावधान होकर तीक्ष्ण संशोधनों द्वारा तथा उनमें जैसे उचित हों वैसे संशमनों द्वारा चिकित्सा करे । यदि उन दोषजनित अपस्मारोंमें आगन्तुज कारणोंका संबंध हो तो उस समय मंत्रादि साधारण कर्मोंद्वारा शान्ति करे ॥ १२ ॥ १३ ॥

सर्वरोगविशेषज्ञःसर्वौषधविशेषवित् । भिषक्सर्वामयान्हन्ति नचमोहंनियच्छति । इत्येतदखिलेनोक्तंनिदानस्थानमुत्तमम्॥१४॥

जो वैद्य संपूर्ण रोगोंको जानताहै तथा संपूर्ण औषधियोंके परिज्ञानयुक्त है वह वैद्य संपूर्ण रोगोंको नष्ट करताहै और मोहको प्राप्त नहीं होता । इस प्रकार संपूर्णतासे इस उत्तम निदानस्थानको कथन कियाहै ॥ १४ ॥

एकरोगसे अनेकरोगोंकी उत्पत्ति ।

निदानार्थकरोरोगोरोगस्याप्युपलभ्यते । तद्यथाज्वरसन्तापाद्रक्तपित्तमुदीर्य्यते ॥ १५ ॥ रक्तपित्ताज्ज्वरस्ताभ्यांशोषश्चाप्युपजायते । प्लीहाभिवृद्ध्याजठरंजठराच्छोफएवच ॥ १६ ॥

कोई रोग भी रोगके उत्पन्न करनेका हेतु होताहै अर्थात् जैसे कारण रोगको उत्पन्न करताहै उसी प्रकार कोई रोग भी रोगको उत्पन्न करनेवाला होताहै । उसमें दृष्टान्त देतेहैं । जैसे-ज्वरके अत्यन्त संतापसे रक्तपित्त उत्पन्न होजाताहै । रक्तपित्त और ज्वर-इन दोनोंके होनेसे श्वास उत्पन्न होजाताहै । एवम् प्लीहाके वढनेसे-उदररोग उत्पन्न होताहै । उदरोगसे सूजन उत्पन्न होजातीहै ॥ १५ ॥ १६ ॥

अर्शोभ्योजठरंदुःखंगुल्मश्चाप्युपजायते । प्रतिश्यायादथोकासः कासात्संजायतेक्षयः । क्षयोरोगस्यहेतुत्वेशोषश्चाप्युपजायते ॥ १७ ॥

बवासीरसे-जठररोगकी तथा गुल्मरोगकी उत्पत्ति होतीहै । प्रतिश्यायसे-खांसी उत्पन्न होजातीहै । खांसीके होनेसे क्षयरोग उत्पन्न होजाताहै । क्षयरोगके कारण शोष रोग उत्पन्न होजाताहै ॥ १७ ॥

तेपूर्वंकेवलारोगाःपश्चाद्धेत्वर्थकारिणः । उभयार्थकरादृष्टास्तथै-वैकार्थकारिणः॥१८॥कश्चिद्धिरोगोरोगस्यहेतुर्भूत्वाप्रशाम्यति । नप्रशाम्यतिचाप्यन्योहेतुत्वंकुरुतेऽपिच ॥ १९ ॥

वह रोग पहिले तो स्वयं रोग होतेहैं फिर दूसरे रोगोंको उत्पन्न करनेके कारण बनजातेहैं । कोई रोग आप भी रहताहै तथा दूसरे रोगको भी उत्पन्न कर देताहै । कोई रोग एक ही अर्थके करनेवाला रहताहै । जैसे—कोई रोग दूसरे रोगको उत्पन्न करके स्वयम् शान्त होजाताहै और कोई रोग स्वयं भी रहताहै तथा दूसरेको भी उत्पन्न कर लेता है ॥ १८ ॥ १९ ॥

एवंकृच्छ्रतमानॄणांदृश्यन्तेव्याधिसंकराः । प्रयोगापरिशुद्धत्वा-त् तथाचान्योन्यसम्भवात् ॥ २० ॥ प्रयोगःशमयेद्व्याधिंयोऽ-न्यमन्यमुदीरयेत् । नासौविशुद्धःशुद्धस्तुशमयेद्योनको-पयेत् ॥ २१ ॥

इस प्रकार मनुष्योंको कष्ट देनेवाले रोगोंका व्याधिसंकर अर्थात् व्याधियोंका मिलना जुलना होनेसे व्याधियें कष्टसाध्य होजातीहैं । एक रोगकी चिकित्सा करते समय दूसरे रोगका उत्पन्न होजाना इसमें चिकित्साके प्रयोगकी अविशुद्धता रोगका कारण होतीहै । जो औषधी प्रयोग एक रोगको शान्त करे और दूसरेको उत्पन्न करे उसको विशुद्धचिकित्सा नहीं कहते । जो चिकित्सा रोगको शान्त करे तथा अन्य व्याधियोंको भी होने न देवे उसको शुद्ध चिकित्सा कहतेहैं ॥ २० ॥ २१ ॥

रोगोंके हेतुओंका वर्णन ।

एकोहेतुरनेकस्यतथैकस्यैकएवहि ।
व्याधेरेकस्यचानेकोबहूनांबहवोऽपिच ॥ २२ ॥

कहीं कहीं एकही कारण बहुतसे रोगोंको उत्पन्न करताहै । कहीं एक कारण एकहीको उत्पन्न करताहै । कहीं एक व्याधिके अनेक कारण होतेहैं और कहीं बहुतसी व्याधियोंके बहुतसे कारण भी होतेहैं ॥ २२ ॥

ज्वरभ्रमप्रलापाद्यादृश्यन्तेरूक्षहेतुजाः ।
रूक्षेणैकेनचाप्येकोज्वरएवोपजायते ॥ २३ ॥

जसे ज्वर, भ्रम, प्रलाप आदिक यह सब रूक्षतासे उत्पन्न होतेहैं । कहीं अकेली रूक्षतासे केवल ज्वर ही उत्पन्न होताहै ॥ २३ ॥

हेतुभिर्बहुभिश्चैकोज्वरोरूक्षादिभिर्भवेत् ।
रूक्षादिभिर्ज्वराद्याश्चव्याधयःसम्भवन्तिहि ॥ २४ ॥

कहीं रूक्ष आदिक बहुतसे हेतुओंसे केवल एक ज्वर ही उत्पन्न होताहै कहीं उन्हीं रूक्ष आदि बहुतसे हेतुओंसे ज्वर आदिक बहुतसे रोग भी उत्पन्न होजातेहैं ॥२४॥

रोगोंमें भ्रमकारक ल०

लिङ्गश्चैकमनेकस्यतथैकस्यैकमुच्यते ।
बहून्येकस्यचव्याधेर्बहूनांस्युर्बहूनिच ॥ २५ ॥

कहीं बहुतसे रोगोंका एक ही लक्षण होताहै । कहीं एक रोगका एकही लक्षण होताहै । कहीं एक व्याधिके बहुतसे लक्षण होतेहैं कहीं बहुतसी व्याधियोंके बहुतसे लक्षण होते हैं ॥ २५ ॥

विषमारम्भमूलानांलिंगमेकंज्वरोमतः। ज्वरस्यैकस्यचाप्येकः सन्तापोलिंगमुच्यते ॥ २६॥ विषमारम्भमूलैश्चज्वरएकोनिरुच्यते। लिंगैरेतैर्ज्वरश्वासहिक्काद्याःसन्तिचामयाः ॥ २७ ॥

जैसे बहुतसे विषमारंभ रोगोंका केवल एक ज्वर ही चिह्न दिखाई देताहै । कहीं केवल ज्वरका एक संतापमात्र लक्षण दिखाई देताहै।कहीं बहुतसे विषमारंभ मूलक लक्षणोंसे केवल ज्वरमात्र दिखाई देताहै । कहीं उन्हीं लक्षणोंसे ज्वर,श्वास,हिचकी आदि रोग दिखाई देते हैं ॥ २६ ॥ २७ ॥

रोगोंकी शान्तिका वर्णन।

एकाशान्तिरनेकस्यतथैकैकस्यलक्ष्यते ।
व्याधेरेकस्यचानेकोबहूनांबह्व्यएवच ॥ २८ ॥

कहीं अनेक प्रकारके रोगोंकी एक ही प्रकारकी चिकित्साद्वारा शान्ति होजाती हैं। कहीं एक प्रकारके रोगमें एक ही प्रकारकी चिकित्सा करनी पडती है ॥ २८ ॥

शान्तिरामाशयोत्थानांव्याधीनांलंघनक्रिया ।
ज्वरस्यैकस्यचाप्येकाशान्तिर्लंघनमुच्यते ॥ २९ ॥

जैसे आमाशयकी खराबीसे उत्पन्नहुए बहुतसे रोगोंकी शान्तिके लिये केवल लंघन करनाही उन सब विकारोंकी शान्तिका एक ही उपाय है । उसी प्रकार ज्वररूप एक व्याधिकी शान्तिके लिये केवल लंघन शान्तिकारक होताहै ॥ २९ ॥

तथालघ्वशनाद्यैश्चज्वरस्यैकस्यशान्तयः ।
एताश्चैवज्वरश्वासहिक्कादीनांप्रशान्तयः ॥ ३० ॥

जैसे हलका भोजन आदि एकज्वरकी शान्तिके लिये अनेक उपाय शान्तिकारक होतेहैं । वैसे ही ज्वर, श्वास, हिचकी आदि अनेक रोगोंमें भी हलका भोजन आदि अनेक क्रियाद्वारा शान्ति होती है ॥ ३० ॥

सुखसाध्यःसुखोपायःकालेनाल्पेनसाध्यते । साध्यतेकृच्छ्रसाध्यस्तुयत्नेनमहताचिरात् ॥ ३१ ॥ यातिनाशेषतांव्याधिरसाध्योयाप्यसंज्ञितः । परोऽसाध्यःक्रियाःसर्वाःप्रत्याख्येयोऽतिवर्त्तते ॥ ३२ ॥

सुखसाध्यरोग साधारण उपाय करनेसे थोडे ही कालमें शान्त होजातेहैं । कष्टसाध्य रोग अत्यन्त यत्न करनेपर बहुत कालमें शान्त होतेहैं । याप्यसाध्यरोग यद्यपि उत्तम वैद्यके द्वारा चिकित्सा कीजानेपर कुछ कालके लिये थोडी शान्ति रहतीहै । परन्तु वह रोग समूल नष्ट नहीं होता । असाध्यरोग सब प्रकारके चिकित्साओं द्वारा शान्त नहीं होसकता । इस लिये वह प्रत्याख्येय अर्थात् त्यागदेने योग्य होताहै । चिकित्सा करने योग्य नहीं होता ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

नासाध्यःसाध्यतांयातिसाध्योयातित्वसाध्यताम् ।
पादापचाराद्दैवाद्वायान्तिभावान्तरंगदाः ॥ ३३ ॥

असाध्यरोग साध्य नहीं होसकते परन्तु साध्यरोगभी चिकित्सामें किसी प्रकारका अन्तर पड़नेसे असाध्य होजातेहैं । चिकित्साके पादचतुष्टयका अपचार होनेसे अथवा दैवयोगसे व्याधियां भावान्तरको प्राप्त होजातीहैं अर्थात् साध्य भी असाध्य होजाती हैं । (दैवयोगसे तो असाध्योंका भी साध्य होना संभव है) ॥ ३३ ॥

वैद्यको उपदेश ।

वृद्धिस्थानक्षयावस्थादोषाणामुपलक्षयेत् । सुसूक्ष्मामपिचप्राज्ञोदेहाग्निबलचेतसाम् ॥ ३४ ॥ व्याध्यवस्थाविशेषान्हिज्ञात्वाज्ञात्वाविचक्षणः । तस्यांतस्यामवस्थायांतत्तच्छ्रेयःप्रपद्यते ॥ ३५ ॥

वैद्यको उचित है कि दोषोंकी वृद्धि और क्षीणावस्थापर भले प्रकार ध्यान रक्खे और वह बुद्धिमान् वैद्य देह, अग्नि, बल, तथा चित्तकी वृत्तिको बहुत सूक्ष्मवि-

चार द्वारा परीक्षा करे । एवम् व्याधिकी अवस्था विशेषको जानकर जैसी जैसी अवस्थाएँ हों वैसी वैसी चिकित्सा करनेसे चतुर वैद्य कल्याणको प्राप्त होता है ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

चिकित्साकी विधि ।

प्रायस्तिर्य्यग्गतादोषाःक्लेशयन्त्यातुरांश्चिरम् । तेषुनत्वरया कुर्य्याद्देहाग्निबलवित्क्रियाम् ॥ ३६ ॥ प्रयोगैःक्षपयेद्वातान्सुखवाकोष्ठमानयेत् ज्ञात्वाकोष्ठप्रपन्नांस्तान्यथास्वंतंहरेद्बुधः॥३७॥

दोष प्रायः तिर्यक्गामी होनेसे मनुष्यको बहुत कालतक कष्ट देतेहैं उनमें देह, अग्नि और बलकी परीक्षा करनेवाला वैद्य शीघ्रता न करे । ऐसे समयमें जब कि दोष तिर्यक्गामी हो गये हों औषधी प्रयोगद्वारा उनको धीरे २ पकाकर कोष्ठमें ले आवे । फिर जब वह कोष्ठमें आजांय तब उनको जो २ जिस प्रकार निकालने योग्य हों उस प्रकार निकाल डाले ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

ज्ञानार्थयानिचोक्तानिव्याधिलिङ्गानिसंग्रहे । व्याधयस्तेतदात्वेतुलिङ्गानीष्टानिनामयाः ॥ ३८ ॥ विकाराःप्रकृतिश्चैवद्वयंसर्वंसमासतः । तद्धेतुवशगंहेतोरभावान्नानुवर्त्तते ॥ ३९ ॥

रोगके परिज्ञानके लिये संग्रहमें जो लक्षण कथन कियेहैं उनको भी अलग २ होनेपर रोग ही जानना चाहिये जैसे-किसी रोगके लक्षणमें श्वासका होना कथन कियाहै अथवा अतिसारका होना कथन कियाहै यदि यह रोगके विना शरीरमें प्रगट हों तो यही रोग होते हैं । परन्तु ज्वरादिकोंके समय ज्वरके वेगसे इनका होना रोग न कहा जाकर ज्वररोगका उपद्रव माना जायगा । रोग और प्रकृति यह दोनों ही संक्षेपसे सब रोगोंमें कथन करनेमें आतेहैं । सो वह प्रकृति अर्थात् रोगजनक कारण और रोग यह दोनोंही अपने हेतुके वश हैं अर्थात् अनुचित आहार विहारके होजानेसेही बलको प्राप्त होतेहैं । यदि अहित आहार आदि रोग और रोगकी प्रकृतिका कारण न होने पावें तो कारणके अभावसे यह दोनों उत्पन्न नहीं हो सकते ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

तत्रश्लोकाः ।

हेतवःपूर्वरूपाणिरूपाण्युपशयस्तथा । संप्राप्तिःपूर्वमुत्पत्तिः सूत्रमात्रंचिकित्सितम् ॥४०॥ ज्वरादीनांविकाराणामष्टानांसाध्यतानच । पृथगेकैकशश्चोक्ताहेतुलिङ्गोपशान्तयः ॥ ४१ ॥

हेतुपर्य्यायनामानि व्याधीनांलक्षणस्यच । निदानस्थानमेता-वत्संग्रहेणोपदिश्यते ॥ ४२ ॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतसंहितायांनिदानस्थानं सम्पूर्णम् ।

अब निदानस्थानका उपसंहार करतेहैं । इस निदानस्थानमें-हेतु, पूर्वरूप, रूप, उपशय, संप्राप्ति, पूर्व उत्पत्ति तथा चिकित्साका सूत्रपात एवम् ज्वरादिक आठ विकारोंकी साध्यता और असाध्यता इन सबका कथन कियागयाहै तथा इन सबको अलग २ एकएक करके इनके हेतु, चिह्न तथा उपशान्तिकारक उपाय एवम् हेतुके पर्यायवाचक नाम एवम् व्याधिके पर्यायवाचक नाम तथा लक्षणके पर्याय-वाचक नाम यह सब इस निदानस्थानके संग्रहमें कथन कियेगयेहैं अर्थात् इन सब विषयों करके युक्त यह निदानस्थान समाप्त हुआ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

दोहा ।

हेतु रूप आदिक सब, विधिवत् व्याधिज्ञान ॥
सो प्रसादनीयुक्त यह, भयो निदान स्थान ॥ १ ॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदीयसंहितायां निदानस्थाने पं०रामप्रसादवैद्यविरचि-तप्रसादन्याख्यभाषाटीकायामपस्मारनिदानं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

समाप्तमिदं निदानस्थानम् ।

अथ विमानस्थानम्।

प्रथमोऽध्यायः ।
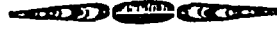
अथातोरसविमानंव्याख्यास्यामइति हस्माह भगवानात्रेयः । इहखलुव्याधीनांनिमित्तपूर्वरूपरूपोपशयसंख्याप्राधान्यविधि-विकल्पबलकालविशेषाननुप्रविश्यानन्तरंरसद्रव्यदोषविकार-भेषजदेशकालबलशरीराहारसारसात्म्यसत्त्वप्रकृतिवयसांमा-नमवहितमनसायथावज्ज्ञेयंभवतिभिषजारसादिमानज्ञानाय-त्तत्वात्क्रियायाः । नहिअमानज्ञोरसादीनांभिषक्व्याधिनि-ग्रहसमर्थोभवति । तस्माद्रसादिमानज्ञानार्थंविमानस्थान-मुपदेक्ष्यामोऽग्निवेश ! तत्रादौरसद्रव्यदोषविकारप्रभावान्व-क्ष्यामः ॥ १ ॥

अव हम इस विमानस्थानकी व्याख्या करते हैं, इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कथन करने लगे। प्रथम वैद्यको चाहिये कि व्याधियोंके—निमित्त, पूर्वरूप, रूप, उपशय,संख्या,प्राधान्य, अनेक प्रकारका विकल्प, विधि, वल, और कालविशेषको यथोचित रीतिसे जानलेवे, तदनन्तर, दोष, औषध, देश, काल,वल,शरीर,आहार, सार, सात्म्य, सत्त्व, और प्रकृति तथा अवस्थाके मानको सावधानतासे यथोचित रीतिपर जानना चाहिये। क्योंकि जवतक इन दोष आदिकोंका यथोचित ज्ञान न होगा तवतक वैद्यकी क्रियाका आरम्भ नहीं हो सकता। इन सवके प्रमाणको न जाननेवाला वैद्य व्याधिको दूर करनेमें समर्थ नहीं हो सकता। हे अग्निवेश ! इस लिये दोष आदिकोंके यथोचित प्रमाण जाननेके अर्थ विमानस्थानका कथन करते हैं। इनमें प्रथम रस और द्रव्य तथा दोष और विकार इनके विमान (प्रमाण) को कथन करते हैं ॥ १ ॥

रसोंका वर्णन।

रसास्तावत्षट्मधुराम्ललवणकटुतिक्तकषायास्तेसम्यगुपयुज्य-मानाःशरीरंयापयन्ति।मिथ्योपयुज्यमानास्तुखलुदोषप्रकोपना-योपकल्पयन्ति ॥ २ ॥

रस छः प्रकारके होते हैं। जैसे—मीठा, खट्टा, नमकीन, चरपरा, कडुआ, और कसैला। यह छः रस उत्तम रीतिसे सेवन किये जानेपर शरीरको पालन करते हैं। और यही छः रस अनुचित रीतिसे उपयोग किये हुए दोषोंके प्रकोपके कारण हैं॥ २॥

दोषोंका वर्णन।

दोषाःपुनस्त्रयोवातपित्तश्लेष्माणः तेप्रकृतिभूताःशरीरोपकारकाभवन्ति। विकृतिमापन्नाःखलुनानाविधैर्विकारैःशरीरमुपतापयन्ति॥ ३॥

दोष—तीन प्रकारके होते हैं। वात, पित्त और कफ। वह तीनों दोष परिमाणसे ठीक रहनेपर शरीरको पुष्ट करते हैं और विकृत होनेसे शरीरको अनेक प्रकारके रोगों द्वारा तपायमान करते हैं॥ ३॥

रसों द्वारा दोषोंका चयापचय।

तत्रदोषमेकैकंत्रयस्त्रयोरसाजनयन्ति,त्रयस्त्रयश्चोपशमयन्ति। तद्यथा--कटुतिक्तकषाया वातं जनयन्ति, मधुराम्ललवणास्त्वेनं शमयन्ति। कटुकाम्ललवणाः पित्तं जनयन्ति, मधुरतिक्तकषायाःपुनरेनं शमयन्ति। मधुराम्ललवणाःश्लेष्माणं जनयंति, कटुतिक्तकषायास्त्वेनं शमयन्ति॥ ४॥

उनमें एक एक दोषको तीनतीन रस उत्पन्न करते हैं उसी प्रकार तीनतीन रस शान्तिको करते हैं अर्थात् दोषोंको शमन करते हैं। तात्पर्य यह हुआ कि तीनरस एक दोषको वढाते हैं और अन्य तीन रस उसी दोषको शान्त करते हैं। जैसे—चरपरा, कडुआ, कसैला यह तीनरस वायुको उत्पन्न करते हैं। उसी प्रकार मीठा, खट्टा और नमकीन यह तीन रस वायुको शान्त करते हैं। चरपरा, खट्टा और नमकीन यह तीन रस पित्तको उत्पन्न करते हैं और मीठा कडुआ, कसैला यह तीन रस पित्तको शान्त करते हैं। मीठा- खट्टा, नमकीन यह तीन रस कफको उत्पन्न करते हैं और चरपरा, कडुआ, कसैला यह तीन रस कफको शान्त करते हैं॥ ४॥

रसदोषसन्निपाते तु ये रसा यैर्दोषैःसमानगुणाःसमानगुणभूयिष्ठा वा भवन्ति ते तानभिवर्द्धयन्ति। विपरीतगुणास्तु विपरीतगुणभूयिष्ठा वा शमयन्त्यभ्यस्यमानाःइत्येतद्व्यवस्था-

हेतोः षट्त्वमुपदिश्यते रसानां परस्परेणासंसृष्टानाम् । त्रित्वञ्च दोषाणाम् । संसर्गविकल्पविस्तारोह्येषामपरिसंख्येयो भवति विकल्पभेदापरिसंख्येयत्वात् ॥ ५ ॥

शरीरमें कई एक रसों तथा दोषोंका मिलाप होनेपर जो रस जिस दोषके समान गुणवाले हों उस दोषको बढाते हैं तथा समान गुणवालोंमें भी जिस दोषके बढानेवालेंकी अधिकता हो वह उसकीही वृद्धि करते हैं । इसी प्रकार विपरीत गुणवाले रस दोषोंको शान्त करते हैं । उनमें भी विशेषतासे विपरीत गुणवाले जिस दोषसे विपरीत गुणवाले हों उसकोही शमन करते हैं । इस प्रकार व्यवस्था स्थापन करनेके लिये अलग अलग छः रसोंका कथन किया है, और तीन दोषोंका कथन किया है। रसोंके संसर्ग जनित विकल्पोंसे इनकी संख्या परिमाणसे बढजातीहै अर्थात् असंख्य होजातेहैं । क्योंकि विकल्प द्वारा अंशांश कल्पनाकर भद विशेषसे असंख्य होजाते हैं ॥ ५ ॥

तत्र खलु अनेकरसेषु द्रव्येष्वनेकदोषात्मकेषु च विकारेषु रसदोषप्रभावमेकैकत्वेनाभिसमीक्ष्य ततो द्रव्यविकारप्रभावतत्त्वं व्यवस्येत् । नत्वेवं खलु सर्वत्र । न हि विकृतिविषमसमवेतानां नानात्मकानां द्रव्याणां परस्परेण चोपहतानामन्यैश्च विकल्पनैर्विकल्पितानामवयवप्रभावानुमानेन समुदायप्रभावतत्त्वमध्यवसितुमशक्यम् ॥ ६ ॥

उन अनेक रसोंवाले अनेक द्रव्योंमें अनेक रस मिले हुए होनेपर उनके एकएक रसको अलग अलग जानकर द्रव्य प्रभाव जान लेना चाहिये । उसी प्रकार अनेक दोषोंके मिले हुए विकारोंमें कौन २ दोष कितने २ अंशसे मिला हुआ है इसको अलग अलग जानकर दोषप्रभाव जानलेना चाहिये। परन्तु सब जगह यही क्रम नहीं होता क्योंकि विकृत भाव तथा विषममानसे मिले हुए अनेक आत्मक द्रव्योंका एकके रससे दूसरेके रसका तथा आपसमें स्वभाव तत्वका परस्पर हनन होनेसे रसके समुदाय प्रभावका तत्त्व पृथक् पृथक् नहीं जाना जा सकता । उसी प्रकार विकृत और विषमभावसे मिले हुए दोषोंका आपसमें परस्पर हनन भाव होनेसे विकल्प जनित सूक्ष्म अंशोंका पृथक् पृथक् जान लेना भी कठिन होता है ॥ ६ ॥

तथायुक्ते हि समुदाये समुदायप्रभावतत्त्वमेवोपलभ्य ततो रसद्रव्यविकारप्रभावतत्त्वं व्यवस्येत् तस्मादसत्प्रभावतश्च

द्रव्यप्रभावतश्चदोषप्रभावतश्चविकारप्रभावतश्चतत्त्वमुपदे-
क्ष्यामः । तत्रैषरसद्रव्यदोषविकारप्रभावउपदिष्टो भवति ॥७॥

इसलिये बहुतसे द्रव्य समुदायके मिलनेसे उस समुदायके प्रभावको जानकर फिर रस तथा द्रव्य एवम् विकार इनके प्रभावोंके जाननेका यत्न किया जासकताहै। इसलिये रसप्रभावसे, द्रव्यप्रभावसे, दोषप्रभावसे और विकारप्रभावसे तत्त्वको कथन करतेहैं।सो यहांपर रस,द्रव्य, दोष,विकार इनके प्रभावोंका कथन कियाजाताहै॥७॥

द्रव्यप्रभावका वर्णन ।

द्रव्यप्रभावंपुनरुपदेक्ष्यामः। तैलसर्पिर्मधूनिवातपित्तश्लेष्मप्र-
शमनानिद्रव्याणिभवन्ति । तत्रतैलंस्नेहौष्ण्याद्गौरवोपपन्न-
त्वाद्वातंजयतिसततमभ्यस्यमानम् । वातोहिरौक्ष्यशैत्यलाघ-
वोपपन्नोविरुद्धगुणोभवति। विरुद्धगुणसन्निपातेहिभूयसाल्प-
मवजीयतेतस्मात्तैलंवातंजयतिसततमभ्यस्यमानम् ॥ ८ ॥

रसके प्रभावको प्रथम कथन करचुके अब यहांपर द्रव्यके प्रभावको कहते हैं। जैसे तैल, घृत, शहद यह वात, पित्त, कफको शमन करनेवाले द्रव्य होतेहैं। इनमें तैल चिकना और गरम होनेसे, एवम् गौरवगुण विशिष्ट होनेसे, निरन्तर मालिश किया हुआ अथवा विधिपूर्वक खाया हुआ वायुको शान्त करताहै। क्योंकि वायु तैलके गुणसे विरुद्ध गुणवाला रूक्ष,शीतल और हलकापन युक्त होताहै। दोप्रकारके विरुद्धगुण आपसमें मिलनेसे भारी गुण अल्प गुणको जीत लेतेहैं। इसलिये अभ्यास कियाहुआ तैल अपने स्निग्धादि गुणोंद्वारा वायुको जीतलेताहै ॥ ८ ॥

सर्पिःखलुएवमेवपित्तंजयतिमाधुर्य्याच्छैत्यान्मन्दवीर्य्यत्वाच्च
पित्तंह्यमधुरमुष्णंतीक्ष्णम् ॥ ९ ॥

इसी प्रकार सेवन किया हुआ घृत भी पित्तको जीतलेताहै। घृत मीठा,शीतल, और मंद होनेसे मधुरतारहित उष्ण और तीक्ष्ण इन विपरीत गुणोंवाले पित्तको जीतलेताहै ॥ ९ ॥

मधु च श्लेष्माणं जयति रौक्ष्यात् तैक्ष्ण्यात् कषायत्वाच्च
श्लेष्मा हि स्निग्धो मन्दो मधुरश्च ॥ १० ॥

शहद रूक्ष, कषाय और तीक्ष्ण होनेसे स्निग्ध, मंद,मधुर इन विपरीत गुणोंवाले कफको जीतलेताहै ॥ १० ॥

यच्चान्यदपि किञ्चिद्द्रव्यमेवंवातपित्तकफेभ्यो गुणतो विपरीतं तच्चैताञ्जयत्यभ्यस्यमानम् ॥ ११ ॥

इसी प्रकार अन्य भी जो द्रव्य वात, पित्त, कफसे गुणोंमें विपरीत हो वह भी विधिवत् सेवन किये हुए इनको जीतलेतेहैं ॥ ११ ॥

अथ खलु त्रीणि द्रव्याणि नात्युपयुञ्जीताधिकमन्येभ्यो द्रव्येभ्यः तद्यथा—पिप्पली क्षारं लवणमिति पिप्पल्यो हि कटुकाः सद्योमधुरविपाका गुर्व्यो नात्यर्थम् । स्निग्धोष्णाः प्रक्लेदिन्यो भेषजाभिमताश्च । ताः सद्यः शुभाशुभकारिण्यो भवन्त्यापातभद्राः प्रयोगसमसाद्गुण्याद्दोषसञ्चयानुबन्धाः सततमुपयुज्यमाना हि गुरुप्रक्लेदित्वात् श्लेष्माणमुत्क्लेशयन्ति । औष्ण्यात् पित्तम् । नच वातप्रशमनायोपकल्पन्ते अल्पस्नेहोष्णभावात् । योगवाहिन्यस्तु खलु भवन्ति तस्मात् पिप्पलीर्नात्युपयुञ्जीत ॥ १२ ॥

किसी योगमें भी और द्रव्योंसे इन तीन द्रव्योंको अधिक प्रयोग नहीं करना चाहिये । जैसे पिप्पली, क्षार और लवण । क्योंकि पीपल चरपरी है और शीघ्र मधुर विपाक होजातीहै, अत्यन्त भारी नहीं है एवम् स्निग्ध, उष्ण, क्लेदकर्त्ता, तथा औषधियोंमें मुख्य है । सो वह पीपली प्रयोग करनेसे शीघ्र ही अपने शुभ और अशुभगुणोंको करतीहै । किसी रोगमें देते ही हितकारक होजातीहै । इसका निरन्तर प्रयोग करनेसे दोषोंका संचय होताहै।क्योंकि यह भारी और क्लेदी होनेसे कफको उठाती है । गर्म होनेसे पित्तको प्रबल करतीहै । इसमें स्नेह और उष्णता अधिक न रहनेसे वायुको भी शान्त नहीं करती परन्तु किसी योगमें मिलाकर दीहुई योगवाही होनेसे उस योगके समान गुण करनेवाली अवश्य होतीहै । इसलिये पिप्पलीका अधिक और निरन्तर सेवन नहीं करना चाहिये ॥ १२ ॥

क्षारसेवनका निषेध ।

क्षारः पुनरौष्ण्यतैक्ष्ण्यलाघवोपपन्नः क्लेदयत्यादौ पश्चात् विशोधयति । स पचनदहनभेदनार्थमुपयुज्यते सोऽतिप्रयुज्यमानः केशाक्षिहृदयपुंस्त्वोपघातकरः सम्पद्यते । ये ह्येनं

ग्रामनगरनिगमजनपदाः सततमुपयुञ्जते तेह्यान्ध्यषाण्ड्या-
खालित्यपालित्यभाजो हृदयोपकर्तिनश्च भवन्ति तद्यथा—प्रा-
च्याश्चीनाश्च तस्मात् क्षारं नात्युपयुञ्जीत ॥ १३ ॥

क्षार उष्ण, तीक्ष्ण और हलका होताहै। प्रथम गीलापन उत्पन्नकर फिर शोधन करदेताहै। पाचन, दहन एवम् भेदन करनेके लिये क्षारका प्रयोग कियाजाताहै। वह क्षार अत्यन्त सेवन किया जानेसे केश, नेत्र, हृदय और पुंस्त्वशक्तिको नष्ट करनेवाला होता है। ग्राम, नगर, प्रान्त, देशमें रहनेवाले जो लोग क्षारका अधिक सेवन करतेहैं। वह लोग अंधे, नपुंसक, गंजे, सफेदबालोंवाले एवम् हृदयके रोगयुक्त होतेहैं। प्रायः ऐसे लोग पहिले पूर्व और चीनमें होतेथे। इसलिये क्षारका अधिक प्रयोग नहीं करनाचाहिये ॥ १३ ॥

लवण सेवनका निषेध।

लवणंपुनरौष्ण्यतैक्ष्ण्योपपन्नमनति गुरुअनतिस्निग्धमुपक्लेदि
विस्रंसनसमर्थमन्नद्रव्यरुचिकरमापातभद्रम् ।प्रयोगातिरेका-
द्दोषसञ्चयानुबन्धम् । तद्रोचनपाचनोपक्लेदनविस्रंसनार्थमु-
पयुज्यते।तदत्यर्थमुपयुज्यमानंग्लानिशैथिल्यदौर्बल्याभिनिर्वृ-
त्तिकरंशरीरस्यभवति । येह्येतद्ग्रामनगरनिगमजनपदाःसत-
तमुपयुञ्जते,तेभूयिष्ठंग्लास्नवःशिथिलमांसशोणिताभवन्तिअ-
परिक्लेशसहाश्च । तद्यथा—बाह्लीकसौराष्ट्रिकसैन्धवसावीर-
काः। तेहिपयसापिसदालवणमश्नंति ।येऽपिहभूमेरत्यूषरादे-
शास्तेषुऔषधिवीरुद्वनस्पतिवानस्पत्यानजायन्ते । अल्पतेज-
सोवाभवन्तिलवणोपहतत्वात् । तस्माल्लवणंनात्युपयुञ्जीत ।
ये ह्यतिलवणसात्म्याःपुरुषास्तेषामपिखालित्येन्द्रलुप्तपालित्या-
नितथावलयश्चाकालेभवन्ति । तस्मात्तेषांतत्सात्म्यतःक्रमेणा-
पगमनंश्रेयः ॥ १४ ॥

लवण गर्म, तीक्ष्ण, किंचित् भारी, किंचित् स्निग्ध, क्लेदकारक, स्रंसन अन्नादि द्रव्योंमें रुचिकारक, किसी द्रव्यमें डालते ही अपने गुणको करनेवाला होताहै। अत्यन्त सेवन करनेसे दोषोंको संचित करताहै। इसलिये यह केवल रुचि उत्पन्न

करनेके लिये,पाचनके लिये तथा क्लेदन और स्रंसन होनेसे इसका उचित रीतिपर प्रयोग कियाजाताहै। इसके अधिक सेवन करनेसे शरीरमें ग्लानि, शिथिलता, दुर्बलता यह उत्पन्न होतेहैं। ग्राम,नगर,प्रान्त तथा देशोंमें जो लोग लवणका अधिक सेवन करतेहैं उनके शरीरमें ग्लानि,मांस और रुधिरमें शिथिलता होतीहै तथा वह सामान्य क्लेशको भी सहन नहीं करसकते। जैसे वाह्लीक, सौराष्ट्र, सिन्ध, सौवीर देशोंके रहनेवाले मनुष्य दूधके साथमें भी लवणको भक्षण करतेहैं । जिन देशोंमें अत्यन्त ऊषर भूमि है उनमें क्षारकी अधिकता होनेसे ओषधी, वीरुध,वनस्पती और वानस्पत्य इन चार प्रकारकी औषधियोंमेंसे कोई भी उत्पन्न नहीं होती। यदि कोई हो भी जाय तो उस पृथ्वीके लवणके बलसे उन औषधियोंका तेज माराजाताहै। इसालिये लवणका अधिक उपयोग नहीं करना चाहिये। जिन मनुष्योंको लवण सात्म्य है उनको भी अधिक सेवन करनेसे गंजापन,बालोंका सफेद होना,बालोंका उखडना, शरीरमें छोटी उमरमें सरवट पडना यह विकार होते हैं। इसालिये लवण जितना रुचि आदिके लिये सेवन करना उचित हो उससे अधिक नहीं खाना चाहिये ॥ १४ ॥

सात्म्यके लक्षण।

सात्म्यमपिहिक्रमेणोपनिवर्त्यमानमदोषमल्पदोषंवाभवति। सात्म्यंनामतद्यदात्मनिउपशेते। सात्म्यार्थोह्युपशयार्थः। तत् त्रिविधंप्रवरावरमध्याविभागेन,सप्तविधश्चरसैकैकत्वेनसर्वरसोपयोगाच्च। तत्रसर्वरसंप्रवरमवरमेकरसंमध्यमन्तुप्रवरावरमध्यस्थम्। तत्रावरमध्याभ्यांसात्म्याभ्यांक्रमेणप्रवरमुपपादयेत्सात्म्यम्। सर्वरसमपिचद्रव्यंसात्म्यमुपपन्नंसर्वाणि आहारविधिविशेषायतनानिअभिसमीक्ष्यहितमेवानुरुध्यते ॥ १५ ॥

यदि किसी हानिकारक वस्तुके सेवनका अभ्यास होगया हो(जैसे अफीम संखिया आदि) तो उसको धीरेधीरे क्रमपूर्वक छोडदेना चाहिये। ऐसा करनेसे अल्पदोष अथवा निर्दोष होजाताहै। जो पदार्थ अपने शरीरको हितकारी हो उसको सात्म्य कहते हैं। सात्म्यका जो अर्थ है उपशयका भी वही अर्थ है । वह सात्म्य-उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ इन भेदोंसे तीन प्रकारका है । फिर वह मधुर आदि एकएक रसके योगसे तथा एकसाथ संपूर्ण रसोंके योग भेदसे सात प्रकारका होताहै।उनमें सब रसोंका अभ्यास उत्तम होताहै । एक रसका उपयोग कनिष्ठ माना जाता है कनिष्ठ और उत्तमके मिलनेसे मध्यम सात्म्य होताहै। उनमें कनिष्ठ और मध्यम

सात्म्योंसे क्रमपूर्वक उत्तम सात्म्यका अभ्यास करना चाहिये । संपूर्ण रसोंको तथा संपूर्ण द्रव्योंको सात्म्य होनेपर एवम् आहार विधिके विशेष आयतनोंको विचार-कर अहित पदार्थोंको त्याग देवे एवम् हितोंका सेवन करे ॥ १५ ॥

आहारके आयतन ।

तत्रखल्विमानिअष्टावाहारविधिविशेषायतनानिभवन्ति । तद्यथा—प्रकृतिकरणसंयोगराशिदेशकालोपयोगसंस्थोपयोक्ताष्टमानिभवन्ति ॥ १६ ॥

उनमें आहार विधिके यह अष्टविध आयतन कथन किये हैं। जैसे—प्रकृति,करण, संयोग, राशि, देश, काल, उपयोग, संख्या तथा उपयोगको करनेवाला यह आठ आयतन हैं ॥ १६ ॥

प्रकृतिका वर्णन ।

तत्रप्रकृतिरुच्यतेस्वभावोयःसपुनराहारौषधद्रव्याणांस्वाभाविकोगुर्वादिगुणयोगः । तद्यथा-माषमुद्गयोःशूकरैणयोश्च ॥१७ ॥

इनमें प्रकृति—स्वभावको कहतेहैं । आहार और औषध द्रव्योंका जो स्वाभाविक गुरु, आदि गुणका योग है उसका प्रकृति कहते हैं । जैसे—उडद स्वभावसे ही भारी है और मूंग स्वभावसे ही हल्के गुणवाला है । सूअरका मांस—स्वभावसे हा भारी गुणवाला है और हिरनका मांस स्वभावसे ही हलका होताहै ॥ १७ ॥

करणका वर्णन ।

करणंपुनःस्वाभाविकानांद्रव्याणामभिसंस्कारः । संस्कारोहि गुणान्तराधानमुच्यते । तेगुणाश्चतोयाग्निसान्निकर्षशौचमन्थनदेशकालवशेनभावनादिभिः कालप्रकर्षभाजनादिभिश्चाभिधीयन्ते ॥ १८ ॥

स्वाभाविक द्रव्योंके संस्कारको करण कहते हैं । संस्कारका अर्थ गुणान्तरको प्राप्त करना है वह गुण—जल और अग्निके सन्निकर्षसे एवम् शौच,मन्थन,देश,काल, बल,भावना आदिसे तथा समयके उत्कर्षसे एवमू पात्रादिकोंके संसर्गसे गुणान्तरको प्राप्त होते हैं ॥ १८ ॥

संयोगका वर्णन ।

संयोगस्तुद्वयोर्बहूनांवाद्रव्याणांसंहतीभावःसविशेषमारभतेय-

त्रैकशोद्रव्याणिआरभन्ते । यथामधुसर्पिषोर्मधुमत्स्यपयसा-
श्चसंयोगः ॥ १९ ॥

दो अथवा बहुतसे द्रव्योंका संसर्ग होना संयोग कहाताहै । द्रव्योंका संयोग विशेष होनेसे गुण उत्पन्न होताहै । जैसे—शहद और घृतको समान भागमें लानेसे एवम् शहद मछली और दूधके मिलानेसे विषके समान गुण उत्पन्न होजाताहै १९

राशिका वर्णन ।

राशिस्तुसर्वग्रहपरिग्रहौमात्राऽमात्राफलविनिश्चयार्थःप्रकृतः ।
तत्रसर्वस्याहारस्यप्रमाणग्रहणमेकपिण्डेनसर्वग्रहः । परि-
ग्रहश्चपुनःप्रमाणग्रहणमेकैकत्वेनाहारद्रव्याणाम् । सर्वस्य
हिग्रहःसर्वग्रहःसर्वतश्चग्रहःपरिग्रहःउच्यते ॥ २० ॥

राशि—सब द्रव्योंके सर्वग्रह और परिग्रहको कहते हैं । इसका वर्णन मात्रा और अमात्राके फलनिश्चयार्थ किया है उनमें सब प्रकारके भोजन सामग्रीका गोलासा बनाकर खाना सर्वग्रह कहा जाताहै । व्यंजन आदि आहार द्रव्योंको अलग अलग भक्षण करनेको परिग्रह कहते हैं । सब द्रव्योंको मिला एकसाथ ग्रहण करनेको सर्व-ग्रह कहते हैं और सबमेंसे किसी एक २ पदार्थके खानेको परिग्रह कहतेहैं ॥२०॥

देशका वर्णन ।

देशःपुनःस्थानंद्रव्याणामुत्पत्तिप्रचारौदेशसात्म्यञ्चाचष्टे ॥२१॥

द्रव्यके उत्पन्न होनेके स्थानको तथा प्रचार (फिरना तुरना आदि) आदिके स्थानको देश कहते हैं ॥ २१ ॥

कालका वर्णन ।

कालोहिनित्यगश्चावस्थिकश्च । तत्रावस्थिकोविकारमपेक्ष्यते ।
नित्यगस्तुखलुऋतुसात्म्यापेक्षः ॥ २२ ॥

काल दो प्रकारका होता है । नित्यग, आवस्थिक । उनमें आवस्थिक काल विकारकी अपेक्षा करताहै अर्थात् बाल्यावस्थासे विकृति प्राप्त होकर तरुणावस्थामें प्राप्त होना आवस्थिक काल कहा जाता है । नित्यगकाल ऋतु और सात्म्यकी अपेक्षा करताहै । अर्थात् नित्यगकाल क्षण, दिवस, मास, ऋतु आदिके चक्रको कहते हैं ॥ २२ ॥

उपयोगका वर्णन ।

उपयोगसस्थातूपयोगानियमः सजीर्णलक्षणापेक्षः ॥ २३ ॥

भोजन आदिके उपयोगके नियमको उपयोग कहते हैं। वह उपयोग विधिवत् होनेसे यथोचित रीतिपर भोजनादि जीर्ण होजाते हैं ॥ २३ ॥

उपयोक्ता और ओकसात्म्यका वर्णन।

उपयोक्तापुनर्यस्तमाहारमुपयुंक्ते। यदायत्तमोकसात्म्यम्॥ २४ ॥

उपयोक्ता भोजनके उपयोग करनेवालेको कहते हैं। भोक्ता मनुष्य अपने आधीन भोजनको करके यथोचित रीतिपर पचावे उसको ओकसात्म्य कहते हैं॥ २४ ॥

इत्यष्टावाहारविधिविशेषायतनानिभवन्ति। एषांविशेषाःशुभाशुभफलप्रदाःपरस्परोपकारकाभवन्ति। तान्बुभुत्सेत। बुद्ध्वाचहितेप्सुरेवस्यान्नचमोहात्प्रमादाद्वाप्रियमहितमसुखोदर्कमुपसेव्यमाहारजातमन्यद्वा ॥ २५ ॥

इस प्रकार आहारविधिके आठ आयतन विशेषोंका कथन कियाहै। यह आहारका अष्टविध भेद शुभ और अशुभ फलको देनेवाला है एवम् परस्पर उपकारकारक है। इसलिये आहारविधिको यथोचित रीतिपर जानकर हितकी इच्छावाला मनुष्य मोहसे और प्रमादसे भी अपने अहित और सुखके नष्ट करनेवाले पदार्थोंको सेवन न करे॥ २५ ॥

आहार विधि।

तत्रेदमाहारविधिविधानमरोगाणामपिचातुराणांहितम्। केषाञ्चित्कालेप्रकृत्यैवहिततमंभुञ्जानानांभवति। उष्णांस्निग्धंमात्रावज्जीर्णेवीर्य्याविरुद्धंइष्टेदेशेइष्टसर्वोपकरणंनातिद्रुतंनातिविलम्बितंनजल्पन्नहसंस्तन्मनाभुञ्जीतआत्मानमभिसमीक्ष्य सम्यक् ॥ २६ ॥

यह आहार विधिसे सेवन करना आरोग्य मनुष्योंके लिये तथा रोगियोंके लिये हितकर होताहै। और समयपर भोजन करना स्वभावसे ही भोजनकर्त्ताको हितकारक होता है। तथा किसी २ के लिये कोई नियत समय हितकर होताहै। अब आहारकी विधिको कथन करते हैं। गर्म, चिकना, और परिमाणका भोजन-प्रथम भोजनके पाचन होनेपर खाना चाहिये। वह भोजन अविरुद्धवीर्य होना चाहिये तथा पवित्रस्थानमें बैठकर वांछित सब पदार्थोंसे युक्त हो, भोजनको न बहुत जल्दी न बहुत देरमें करना चाहिये। और भोजन करते हुए बहुत बोलना और हंसना त्याग कर भोजनमें मन लगाकर अपने शरीरके बलाबलको देखकर भोजन करे॥ २६॥

उष्णभोजनके गुण ।

तस्यसाद्गुण्यमुपदेक्ष्यामः । उष्णमश्नीयादुष्णंहिभुज्यमानंस्वदतेभुक्तश्चाग्निमुदीर्य्यमुदीरयति । क्षिप्रञ्चजरांगच्छति, वातश्चानुलोमयति, श्लेष्माणञ्चपरिशोषयतितस्मादुष्णमश्नीयात् ॥ २७ ॥

उस भोजनके विधिवत् किये जानेसे जो उत्तम गुण होते हैं उनका वर्णन करते हैं । भोजन सदैव ताजा और गर्म करना चाहिये । क्योंकि उस आहारमें स्वादुशक्ति उत्तम रहती है एवम् उससे अग्नि चैतन्य होकर आहारको पाचन करती है । और वह आहार शीघ्र जीर्ण होजाताहै । गर्म आहारके भोजन करनेसे वायुका अनुलोम होताहै और कफका परिशोषण होताहै । इसलिये गर्म आहारका ही सेवन करना चाहिये ॥ २७ ॥

स्निग्धभोजनके गुण ।

स्निग्धमश्नीयात् । स्निग्धंहिभुज्यमानंस्वदते । भुक्ताश्चाग्निमुदीरयतिक्षिप्रंजरांगच्छतिवातमनुलोमयतिदृढीकरोति । शरीरोपचयं बलाभिवृद्धिञ्चोपजनयाति, वर्णप्रसादमपिचाभिनिर्वर्त्तयाति । तस्मात् स्निग्धमश्नीयात् ॥ २८ ॥

भोजन सदैव चिकना करना चाहिये । चिकने पदार्थोंका स्वादु उत्तम होताहै । और भोजन कियेजानेपर अग्निको बलवान् करताहै । तथा वायुको अनुलोमन करताहै । एवम् शरीरको दृढ तथा पुष्ट करताहै और बलकी वृद्धिको उत्पन्न करता है । वर्णको प्रसन्न करताहै इसलिये आहारको घृतयुक्त कर खाना चाहिये ॥ २८ ॥

मात्रावत्भोजनका गुण ।

मात्रावदश्नीयात् । मात्रावद्धिभुक्तं वातपित्तकफानप्रपीडयदायुरेवविवर्द्धयतिकेवलंसुखंसम्यक्पक्वांविड्भूतंगदमनुपर्य्येति नचोष्माणमुपहन्तिअव्यथश्चपरिपाकमेति । तस्मान्मात्रावदश्नीयात् ॥ २९ ॥

भोजन सदैव परिमाणसे करना चाहिये । परिमाणसे कियाहुआ भोजन वात पित्त, कफको साम्यावस्थामें रखताहुआ आयुको बढाता है । और सुखपूर्वक पाचन होजाताहै । इसका मलभाग मलस्थान द्वारा यथोचित रीतिसे निकल जाताहै जठ

राग्निकी गर्मीमें किसी प्रकारका विघ्न न करके परिपाकको प्राप्त होजाताहै । इसलिये भोजन उचित मात्रासे करना चाहिये ॥ २९ ॥

जीर्णभोजनमें भोजनके गुण ।

जीर्णेऽश्नीयात् । अजीर्णेहिभुञ्जानस्यपूर्वस्याहारस्यरसमपरिणतमुत्तरेणाहाररसेनोपसृजन्सर्वान्दोषान्प्रकोपयत्याशु । जीर्णेतुभुञ्जानस्यस्वस्थानस्थेषुदोषेषुअग्नौचोदीर्णेजातायाञ्चबुभुक्षायांविवृतेषुचस्रोतसांमुखेषुचोद्गारेविशुद्धेहृदयेविशुद्धेवातानुलोम्येविसृष्टेषुचवातमूत्रपुरीषवेगेषुजीर्णमभ्यवहृतमाहारजातंसर्वशरीरधातूनप्रदूषयदायुरेवाभिवर्द्धयतिकेवलम् । तस्माज्जीर्णेऽश्नीयात् ॥ ३० ॥

प्रथम दिनका आहार जीर्ण होजानेपर तब भोजन करना चाहिये। अजीर्णमें भोजन करनेसे अर्थात् पाहिले कियेहुए आहारका रस शरीरमें यथोचित रीतिपर पचजानेके विना भोजन करनेसे उस दूसरे आहारके साथ मिलकर दोषोंको कुपित करताहै । और पहिला भोजन पचजानेपर फिर भोजन कियाजाय तो दोष अपने २ स्थानोंमें स्थित रहतेहैं। अग्नि चैतन्य होकर भूख लगातीहै और नाडियोंके मुख शुद्ध होकर डकार शुद्ध आतीहै । हृदय शुद्ध रहताहै । वायुका अनुलोम होताहै । वात, मूत्र, मल ये अपने समयपर ठीक निकलतेहैं । वह आहार यथोचित रीतिपर जीर्ण होकर धातुओंको दूषित न करता हुआ केवल आयुको बढाताहै ॥ ३० ॥

वीर्य्याविरुद्धभोजनके गुण ।

वीर्य्याविरुद्धमश्नीयात्।अविरुद्धवीर्य्यमश्नन्नहिनाविरुद्धवीर्य्याहारजैर्विकारैरयमुपसृज्यते तस्माद्वीर्य्याविरुद्धमश्नीयात् ॥३१॥

अविरुद्ध वीर्यवाले पदार्थोंका सेवन करना चाहिये । अविरुद्ध वीर्यवाले पदार्थोंके खानेसे जो विकार विरुद्धवीर्य आहारसे उत्पन्न होतेहैं वह नहीं होते।इसलिये विरुद्ध-वीर्य पदार्थोंको न खाना चाहिये ॥ ३१ ॥

इष्टदेशमें भोजनका गुण ।

इष्टेदेशेऽश्नीयात् । इष्टेहि देशेभुञ्जानोनानिष्टदेशजैर्मनोविघातकैर्भावैर्मनोविघातंप्राप्नोतितथेष्टैःसर्वोपकरणैस्तस्मादिष्टे देशेतथेष्टसर्वोपकरणञ्चाश्नीयात् ॥ ३२ ॥

अर्थात् पवित्रस्थानमें भोजन करना चाहिये।पवित्रस्थानमें भोजन करनेवाले मनुष्यको दुष्टस्थानजनित मनमें ग्लानि आदि उत्पन्न नहीं होती। इसलिये वांछित स्थानमें मनको प्यारे लगनेवाले, उत्तम उपकरणोंके सहित भोजन करे ॥ ३२॥

नातिद्रुतभोजनके गुण ।

नातिद्रुतमश्नीयात्।अतिद्रुतं हि भुञ्जानस्यउत्स्नेहनमवसदनंभोजनस्याप्रतिष्ठानम् । भोज्यदोषसाद्गुण्योपलब्धिश्चन नियता । तस्मान्नातिद्रुतमश्नीयात् ॥ ३३ ॥

अत्यन्त जल्दी भोजन नहीं करनः चाहिये । अत्यन्त जल्दी भोजन करनेसे शरीरके स्नेहकी ऊर्ध्वगति, देहका रहजाना एवम् किया हुआ आहार यथोचित रीतिपर अपने स्थानमें नहीं पहुंच सकता और जो भोजन किया जाय उसका यथोचित दोष, गुण प्रतीत नहीं होसकता इसलिये भोजनको अत्यन्त शीघ्र नहीं करना चाहिये ॥ ३३ ॥

नातिविलम्बित भोजनके गुण ।

नातिविलम्बितमश्नीयात्। अतिविलम्बितंहिभुञ्जानोनतृप्तिमधिगच्छतिबहुभुंक्तेशीतीभवतिचाहारजातंविषमपाकश्चभवति तस्मान्नातिविलम्बितमश्नीयात् ॥ ३४ ॥

वहुत देरमें भी भोजन नहीं करना चाहिये । वहुत देरमें भोजन करनेसे मनुष्य तृप्तिको प्राप्त नहीं होता । और वहुत भोजन करता है एवम् भोजनके पदार्थ शीतल होजाते हैं तथा आहारका विषम परिपाक होताहै इसलिये अधिक देरमें भोजन नहीं करना चाहिये ॥ ३४ ॥

मौनसे भोजनके गुण ।

अजल्पन्नहसंस्तन्मनाभुञ्जीत। जल्पतोहसतोऽन्यमनसोवाभुञ्जानस्यतएवहिदोषाभवन्तियएवातिद्रुतमश्नतः। तस्मादजल्पन्नहसंस्तन्मनाभुञ्जीत ॥ ३५ ॥

भोजन करते हुए-हंसना और वहुत वोलना नहीं चाहिये । तथा भोजनमें चित्त लगाकर भोजन करना चाहिये ।हंसते हुए और वोलते हुए तथा दूसरी जगह चित्त लगाकर भोजन करनेसे जो अवगुण वहुत शीघ्र भोजन करनेसे होतेहैं सोई इनमें भी होतेहैं। इसलिये चुपचाप हास्य रहित भोजनमें चित्त लगा भोजन करना चाहिये ॥ ३५ ॥

आत्माको देखकर भोजनके गुण ।

आत्मानमभिसमीक्ष्यभुञ्जीतसम्यक् । इदंममोपशेतेइदंनोप-शेतेइति । विदितंहिअस्यआत्मनआत्मसात्म्यंभवति । त-स्मादात्मनात्मानमभिसमीक्ष्यभुञ्जीतसम्यगिति ॥ ३६ ॥

अपने शरीरके बलाबलको विचार कर ही विधिवत् भोजन करना चाहिये कि यह पदार्थ मुझे सात्म्य है और यह असात्म्य है । इस प्रकार विचारकर भोजन किया हुआ अन्न शरीरके सात्म्य अर्थात् अनुकूल होताहै।इस लिये अपनी अग्निका बलाबल विचारकर जो पदार्थ अपने शरीरको हितकर हो वह खाना चाहिये॥३६॥

तत्र श्लोकाः ।

रसान्द्रव्याणिदोषांश्चविकारांश्चप्रभावतः । वेदयोदेशकालौच शरीरञ्चसनाभिषक् ॥ ३७ ॥ विमानार्थोरसद्रव्यदोषरोगाः प्रभावतः । द्रव्याणिनातिसेव्यानित्रिविधंसात्म्यमेवच ॥३८॥ आहारायतनान्यष्टौभोज्यसाद्गुण्यमेवच । विमानेरससंख्याते सर्वमेतत्प्रकाशितम् ॥ ३९ ॥

इति अग्निवेशकृते तंत्रेचरकप्रतिसंस्कृते विमानस्थाने रसविमानंनामप्रथमोध्यायः ॥ १ ॥

अब अध्यायका उपसंहार करतेहैं । यहांपर श्लोक हैं-कि जो मनुष्य रस,द्रव्य, दोष, और रोगोंके प्रभावको जानता है और देश, काल, तथा शारीरिक अव-स्थाको जानताहैं उसीको वैद्य कहना चाहिये ॥३७॥ इस विमाननामक अध्यायमें विमानका अर्थ, रसके प्रभाव, द्रव्यके प्रभाव, दोषोंके प्रभाव एवम् रोगोंके प्रभाव तथा आहारविधि और अत्यन्त न सेवन करनेयोग्य द्रव्य, तीन प्रकारका सात्म्य आठ प्रकारके आहारके आयतन,आहारके गुण ये सब वर्णन किये गयेहैं॥ ३८॥ ३९॥

इति श्रीमहर्षिचरक० विमानस्थान पं० रामप्रसादवैद्य० भाषाटीकायां रसविमानं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः ।

अथातस्त्रिविधंकुक्षीयंविमानंव्याख्यास्यामइतिहस्माह भगवानात्रेयः ।

अब हम त्रिविधकुक्षीय विमानका कथन करते हैं । इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहनेलगे ।

त्रिविधकुक्षीयका वर्णन ।

त्रिविधंकुक्षौस्थापयेदवकाशांशमाहारस्याहारमुपयुञ्जानः ।तद्यथैकमवकाशांशंमूर्त्तानामाहारविकाराणामेकंद्रवाणामेकंपुनर्वातपित्तश्लेष्मणाम् ॥ १ ॥

भोजन करते समय-उदरमें तीन विभाग करने चाहिये । उनमें उदरके एक भागको पेडा, पूडी, परांवठा आदि गरिष्ठ पदार्थोंसे पूरित करना चाहिये । और एक भागको खीर, दूध आदि पतले पदार्थोंसे पूरित करना चाहिये । तीसरा भाग वात, पित्त, कफके संचारके लिये खाली रखना चाहिये ॥ १ ॥

एतावतींह्याहारमात्रामुपयुञ्जानोनामात्राहारजंकिञ्चिदशुभंप्राप्नोति । नचकेवलंमात्रावत्त्वादेवाहारस्यकृत्स्नमाहारफलसौष्ठवमवाप्तुंशक्यम् । प्रकृत्यादीनामष्टानामाहारविधिविशेषायतनानांप्रविभक्तफलकत्वात् । तत्रतावदाहारराशिमधिकृत्यमात्रामात्राफलविनिश्चयार्थःप्रकृतः ।एतावानेवह्याहारराशिविधिविकल्पोयावन्मात्रावत्त्वममात्रावत्त्वञ्चतत्रमात्रावत्त्वंपूर्वमुपदिष्टंकुक्ष्यंशविभागेन। तद्भूयोविस्तरेणानुव्याख्यास्यामः॥२॥

यही आहारकी मात्रा है । इस प्रकार मात्रासे भोजन करनेवाला मनुष्य आहारजनित विकारोंसे बचा रहता है अर्थात् उसको आहारजनित कोई रोग नहीं होता और यथोचित रीतिपर भोजन करनेके कारण आहार करनेके जो उत्तम फल होते हैं और शरीरको पुष्टता आदि उत्तम गुण प्राप्त होते हैं । संपूर्ण आहार पूर्वोक्त आहारके आठ आयतनोंको विचारकर फिर मात्रानुसार भोजन करना चाहिये । आहारके समूहमें इतना ही विधि और विकल्प है कि उसको मात्रा और अमा-

ओंको विचारकर भोजन करे। मात्राक्रमसे भोजन करना उदरके अंश विभागसे प्रथम कथन कर चुके हैं। अब उसका विस्तारपूर्वक फिर वर्णन करते हैं ॥ २ ॥

तद्यथा-कुक्षेरप्रपीडनमाहारेणहृदयस्यानवरोधःपार्श्वयोरविपाटनमनतिगौरवमुदरस्यप्रीणनमिन्द्रियाणांक्षुत्पिपासोपरमः स्थानासनशयनगमनप्रश्वासोच्छ्वासहास्यसंकथासुचसुखानुवृत्तिःसायंप्रातश्चसुखेनपरिणमनम् । बलवर्णोपचयकरत्वञ्चेति मात्रावतोलक्षणमाहारस्यभवति ॥ ३ ॥

आहारको इस प्रकार करना चाहिये जिससे कोखमें पीडा न हो और हृदयका अवरोध न हो। दोनों तरफके पार्श्वभाग फटे नहीं, पेटमें अधिक भारीपन न हो। इस प्रकार मात्रानुसार भोजन करनेसे—इंद्रियें पुष्ट होती हैं। क्षुधा और प्यास शान्त होती है। बैठने, सोने, चलने, श्वास, प्रतिश्वास लेनेमें तथा हंसने और बोलने आदिमें सुख प्राप्त होताहै। सायंकाल और प्रातःकाल दोनों समय आहार पाचन हुआ प्रतीत होताहै तथा मलादि वेग ठीक परिमाणसे ही निकलते हैं। बल और वर्णकी वृद्धि होती है। ठीक मात्रापूर्वक आहार करनेके यह लक्षण होते हैं ॥ ३ ॥

अमात्राके भेद।

अमात्रावत्त्वंपुनर्द्विविधमाचक्षते। हीनमधिकञ्च। तत्रहीनमात्राहारराशिंबलवर्णोपचयक्षयकरमतृप्तिकरमुदावर्तकरमवृष्यमनायुष्यमनौजस्यंमनोबुद्धीन्द्रियोपघातकरंसारविधमनमलक्ष्म्यावहमशीतेश्चवातविकाराणामायतनमाचक्षते ॥ ४ ॥

अमात्राके दो भेद हैं। १ हीनमात्रा । २ अधिकमात्रा। हीनमात्रासे भोजन किया जाय तो—बल, वर्ण और पुष्टिकी क्षीणता, पेटका नहीं भरना, उदावर्त रोग तथा अवृष्यता होती है। वह आयुको नहीं बढाता, ओज, मन, बुद्धि, इन्द्रिय इन सबकी शक्ति हीन होती है। सारका प्रधमन, (इसी विमानस्थानके आठवें अध्यायमें आठ प्रकारके सारोंका कथन किया जायगा) अलक्ष्मी एवम् अस्सी प्रकारकी वातव्याधियें उत्पन्न होती हैं ॥ ४ ॥

अतिमात्रंपुनःसर्वदोषप्रकोपनमिच्छन्तिसर्वकुशलाः ॥ ५ ॥

अब अधिकमात्रासे भोजनके अवगुणोंको कथन करते हैं। सब दोषोंको जाननेवाले बुद्धिमान् कथन करते हैं कि अधिक मात्रासे भोजन कियाहुआ आहार संपूर्ण दोषोंको कुपित करताहै ॥ ५ ॥

दोषोंके कुपितहोनेका कारण ।

योहिमूर्त्तानामाहारविकाराणांसौहित्यंगत्वापश्चाद्द्रवैस्तृप्तिमापद्यतेभूयस्तस्यामाशयगतावातपित्तश्लेष्माणोऽभ्यवहारेणअतिमात्रेणातिप्रपीडयमानाः सर्वेयुगपत्प्रकोपमापद्यन्ते ॥ ६ ॥

जो मनुष्य पूडी आदि कडे पदार्थोंसे पेट भरकर फिर दूध, जल आदिसे पेटको पूर्णकर लेताहै उस मनुष्यके आमाशयमें प्राप्तहुए वात, पित्त, कफ अधिक भोजन करनेसे पीडित हुए एककालमें ही सब कोपको प्राप्त होतेहैं ॥ ६ ॥

पृथक् २ दोषोंके उपद्रव ।

तेप्रकुपितास्तमेवाहारराशिमपरिणतमाविश्यकुक्ष्येकदेशमाश्रिताविष्टम्भयन्तःसहसावापिउत्तराधराभ्यांमार्गाभ्यांप्रच्यावयन्तःपृथक्पृथग्विकारानभिनिर्वर्त्तयन्तिअतिमात्रभोक्तुः ॥ ७ ॥

फिर वह कुपित हुए दोष उसी आहारसमूहमें मिलकर कोखके एक देशमें स्थित होजातेहैं । तब वह विष्टम्भको करते हुए सहसा ऊपरको या नीचेको निकलने आरम्भ होतेहैं । तब वह दोष अत्यन्त भोजन करनेवाले मनुष्यके शरीरमें अपने अलग २ विकारोंको करते हैं ॥ ७ ॥

कुपितवातादि दोषोंके उपद्रव ।

तत्रवातःशूलानाहाङ्गमर्दमुखशोषमूर्च्छाभ्रमाग्निवैषम्यशिरासङ्कोचनसंस्तम्भनानिकरोति ॥ ८ ॥

इनमें कुपित हुआ वायु--शूल, अफारा, अंगमर्द, मुखशोष, मूर्च्छा, भ्रम, अग्निकी विषमता, सिराओंका संकोच और अंगोंका स्तम्भ आदि उपद्रवोंको करता है ॥ ८ ॥

पित्तंपुनर्ज्वरमतीसारमन्तर्दाहंतृष्णामदभ्रमप्रलपनानि ॥ ९ ॥

वहुत आहारसे कुपित हुआ पित्त—ज्वर, अतिसार, अन्तर्दाह, तृषा, मद, भ्रम और बकवादको उत्पन्न करताहै ॥ ९ ॥

श्लेष्मातुछर्द्यरोचकाविपाकशीतज्वरालस्यगात्रगौरवाभिनिर्वृत्तिकरःसम्पद्यते ॥ १० ॥

इसी प्रकार कुपित हुआ कफ—छर्दी, अरुचि, अविपाक, शीतज्वर, आलस्य, देहमें भारीपन इनको उत्पन्न करता है ॥ १० ॥

आम दूषित होनेका कारण।

नखलुकेवलमतिमात्रमेवाहारराशिमामप्रदोषकारणमिच्छन्ति। अपितुखलुगुरुरूक्षशीतशुष्कद्विष्टविष्टम्भिविदाह्यशुचिविरुद्धानामकालेअन्नपानानामुपसेवनम्। कामक्रोधलोभमोहेर्ष्याह्रीशोकलोभोद्वेगभयोपतप्तेनमनसावायदन्नपानमुपयुज्यतेतदपिआममेवप्रदूषयति॥ ११॥

केवल अधिक मात्रासे आहार करनाहो भुक्ताहारको आमदोषादि युक्त करताहै यही नहीं किन्तु भारी, रूक्ष, शीतल, सूखे, द्वेषी, विष्टम्भकारक, विदाही, अपवित्र और विरुद्ध अन्नपानोंका विना समय सेवन करना भी आमदोषको कुपित करताहै इसी प्रकार—काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्षा, लज्जा, शोक, लोभका उद्वेग, भय इनसे उत्तप्त मन होनेपर जो अन्नपान कियाजाताहै वह सब आमकोही दूषित करताहै॥ ११॥

भवति चात्र।

मात्रयाप्यभ्यवहृतंपथ्यञ्चान्नंनजीर्य्यति।
चिन्ताशोकभयक्रोधदुःखशय्याप्रजागरैः॥ १२॥

सो यहांपर कहतेहैं कि, जो आहार मात्रापूर्वक पथ्य ही कियाजाय वह भी चिंता, शोक, भय, क्रोध, दुःख, सोना और जागना इन कारणोंसे यथोचित परिपाकको प्राप्त नहीं होता॥ १२॥

आमके विसूचिकादि भेद।

तंद्विविधमामप्रदोषमाचक्षतेभिषजः। विसूचिकामलसञ्च। तत्रविसूचिकामूर्द्ध्वञ्चाधश्चप्रवृत्तामदोषांयथोक्तरूपांविद्यात्॥ १३॥

उस आमदोषको वैद्यलोग दो प्रकारका कथन करतेहैं। १ विसूचिका। २ अलसक। उनमें विसूचिका रोग—छर्दद्वारा ऊपरके मार्गसे, दस्तद्वारा नीचेके मार्गसे दोनों ओरसे प्रवृत्त होता है। तथा शरीरमें सूई चूभनेका तोद और उत्क्लेश होताहै। इसको लोकमें हैजा और कौलरा कहते हैं॥ १३॥

अलसकके लक्षण।

अलसकमुपदक्ष्यामः। दुर्बलस्याल्पाग्नेर्बहुश्लेष्मणोवातमूत्रपुरीषवेगविधारिणःस्थिरगुरुबहुरूक्षशीतशुष्कान्नसेविनस्त-

दन्नपानमनिलप्रपीडितंश्लेष्मणाचविबद्धमार्गमतिमात्रप्रलीन-मलसत्त्वान्नबहिर्मुखीभवति । ततश्छर्द्यतीसारवर्ज्यानिआम-प्रदोषलिङ्गानिअभिदर्शयतिअतिमात्राणि । अतिमात्रप्रदुष्टा-श्चदोषाःप्रदुष्टामबद्धमार्गास्तिर्य्यग्गच्छन्तःकदाचित्केवलमे-वास्यशरीरंदण्डवत्स्तम्भयन्ति।ततस्तमलसकमसाध्यंब्रुवते॥१४॥

अब अलसकका वर्णन करते हैं-अल्प अग्निवाला और बढेहुए कफवाला दुर्बल मनुष्य जब मल आदि वेगोंको रोकता है तथा कठोर,भारी, अधिक,रूक्ष, शीतल एवम् शुष्क अन्नपानका सेवन करताहै तो उस मनुष्यके शरीरमें वह अन्नपान-वायुसे पीडित होकर कफसे विबद्धमार्ग होकर घिरजाता है और मूर्च्छित तथा अलसीभूत होकर देहसे बाहर नहीं निकल सकता। वह छर्दी और दस्तके सिवाय और संपूर्ण आमके दोषोंके लक्षणोंसे युक्त होताहै । फिर अत्यन्त कोपको प्राप्तहुए दोष दुष्टहुए तथा बद्धमार्ग हुए तिरछा गमन करते हैं । कभी उसके शरीरको दण्डके समान स्तम्भन कर देते हैं । इस रोगको अलसकरोग कहतेहैं । यह रोग असाध्य है ॥ १४ ॥

आम विषका वर्णन ।

विरुद्धाध्यशनाजीर्णाशनशीलिनःपुनरेवदोषमामविषमित्या-चक्षतेभिषजोविषसदृशलिङ्गत्वात्, तत्परमसाध्यमाशुकारि-त्वात्,विरुद्धोपक्रमत्वाच्चेति ॥ १५ ॥

विरुद्ध भोजन करनेवाले और अधिक भोजन करनेवाले तथा अजीर्णमें भोजन करनेवाले मनुष्योंके शरीरमें जो आमदोष होताहै वैद्यलोग उसको आमविष कहते हैं । क्योंकि यह आमविषके समान शीघ्र मारकलक्षणवाला होताहै । यह रोग शीघ्र नाशकरनेवाला होनेसे तथा चिकित्सामें विरोध पडनेसे यह विषके समान असाध्य होताहै ॥ १५ ॥

साध्यआमकी चिकित्सा ।

तत्रसाध्यमामंप्रदुष्टमलसीभूतमुल्लेखयेदादौपाययित्वालवण-मुष्णञ्चवारि । ततःस्वेदनवर्त्तिप्रणिधानाभ्यामुपाचरेदुपवासयेच्चैनम् ॥ १६ ॥

यदि उस अलसक रोगमें वह दुष्ट आम अलसीभूत हुई कुछ साध्य प्रतीत हो तो उस आमको नमक और गरमजल पिलाकर वमन द्वारा दोषको निकाल दे ।

उसके अनन्तर स्वेदन तथा वस्ति प्रयोगद्वारा चिकित्सा करे और लंघन करावे १६

विषूचिकादि आमदोषकी चिकित्सा।

विषूचिकायान्तुलंघनमेवाग्रेविरिक्तवच्चानुपूर्वी ॥ १७ ॥

विसूचिकामें तो प्रथम लंघन कराना: चाहिये और तदनन्तर जैसा विरेचन होजानेपर विरिक्त मनुष्यकी क्रिया कीजातीहै उसी प्रकार क्रमपूर्वक चिकित्सा करनीचाहिये ॥ १७ ॥

आमप्रदोषेषुत्वन्नकालेजीर्णाहारंपुनर्दोषावलिप्तामाशयस्तिमितगुरुकोष्ठमनन्नाभिलाषिणमभिसमीक्ष्यपाययेद्दोषशेषपाचनार्थमौषधमग्निसन्धुक्षणार्थञ्चनत्वजीर्णाशनम् । आमप्रदोषदुर्वलोह्यग्निर्युगपद्दोषमौषधमाहारजातञ्चाशक्तःपक्तुम् ॥ १८ ॥

आमके दूषित होनेपर प्रथम लंघन कराना चाहिये। लंघनद्वारा अन्न जीर्ण होनेपर यादि फिर भी ऐसा देखे कि आमाशयमें दोष लिपायमान है, तथा कोष्ठ क्लेद्युक्त है एवम् भारी है तथा अन्नमें रुचि भी नहीं है तो शेष दोषोंके पाचन करनेके लिये तथा अग्निको चैतन्यं करनेके लिये पाचन औषधी देवे। परन्तु आमयुक्त अजीर्णमें पाचन औषध देनेकी आवश्यकता नहीं है। क्योंकि आमदोष वलवान् होताहै। उस वढेहुए आमदोषको दुर्वल अग्नि तथा औषधी पाचन नहीं कर; सकती ॥ १८ ॥

अपिचामप्रदोषाहारौषधाविभ्रमोऽतिवलत्वादुपरतकायाग्निं सहसैवातुरमवलमभिपातयेत् ॥ १९ ॥

आम, दोष, आहार, औषध, इनका विभ्रम वलवान् होनेसे क्षीणाग्निवल मनुष्यको शीघ्र नष्ट करडालतेहैं इसलिये अजीर्णमें अग्निकी चैतन्यता करनी चाहियें केवल पाचन औषध न देवे ॥ १९ ॥

आमप्रदोषजानांपुनर्विकाराणामपतर्पणेनैवोपरमोभवति । सतित्वनुबन्धेकृतापतर्पणानांव्याधीनांनिग्रहेनिमित्तविपरीतमपास्यौषधमातङ्कविपरीतमेवावचारयेत् । यथास्वंसर्वविकाराणामपिचनिग्रहेहेतुव्याधिविपरीतमौषधमिच्छन्तिकुशलाः२०॥

आमदोषसे उत्पन्नहुए रोग अपतर्पण क्रिया द्वारा शान्त होतेहैं। यदि अपतर्पण करनेपर भी आमदोषजनित विकार वाकी रहजांय तो रोगके नाश करनेवाले यत्न

करनेचाहिये । अर्थात् अपतर्पण करना आमदोषकी चिकित्सा है । यदि अपतर्पण करनेपर भी आमसे उत्पन्नहुए रोग शेष रहजांय तो उन रोगोंकी नाश करनेवाली औषधी करनी चाहिये।जैसे सम्पूर्ण विकारोंकी शान्तिके लिये वैद्यलोग हेतु व्याधिके विपरीत अर्थकारी चिकित्सा करतेहैं वैसे ही यहांपरभी करनी चाहिये॥२०॥

तदर्थकारिविपक्वभुक्तामप्रदोषस्यपुनःपरिपक्वदोषस्यदीप्तेचाग्नौअभ्यङ्गास्थापनानुवासनंविधिवत्स्नेहपानञ्चयुक्त्याप्रयोज्यम्, प्रसमीक्ष्यदोषभेषजदेशकालबलशरीराहारसात्म्यसत्त्वप्रकृतिवयसामवस्थान्तराणिविकारांश्चसम्यगिति ॥ २१ ॥

फिर हेतु और व्याधिके विपरीत अर्थवाली चिकित्सा करनेसे जब आमदोष पचजाय और दोषके पचनेसे जठराग्नि चैतन्य होजाय फिर विधिपूर्वक अभ्यंजन, अनुवासन और आस्थापन तथा स्नेहपान यह युक्तिपूर्वक करानेचाहिये।तथा दोष, औषधी, देश काल, बल, शरीर, आहार,सात्म्य, सत्त्व, प्रकृति और अवस्था इन सबको भलीप्रकार विचारकर तथा विकारोंको देखकर विधिवत् चिकित्सा करे२१॥

भवति चात्र ।

अशितंखादितंपीतंलीढञ्चक्वविपच्यते । एतत्त्वांधीर ! पृच्छामस्तन्नआचक्ष्वबुद्धिमन् ॥ २२ ॥ इत्यग्निवेशप्रमुखैः शिष्यैःपृष्टःपुनर्वसुः । आचचक्षेततस्तेभ्योयत्राहारोविपच्यते ॥ २३ ॥

यहांपर कहाहै कि खानेके, चाबनेके, पीनेके, चाटनेके योग्य जो पदार्थ हैं वह शरीरके किस स्थानमें प्राप्त होते हैं यह हे धीर ! हम आपसे पूँछते हैं कृपाकर आप कथन कीजिये । इस प्रकार अग्निवेश आदि शिष्योंके पूंछनेपर भगवान् पुनर्वसुजी कथन करनेलगे कि जिस जगह आहार परिपाकको प्राप्त होता है वह तुम सबसे कथन करता हूं ॥ २२ ॥ २३ ॥

आहारपचनेका स्थान ।

नाभिस्तनान्तरंजन्तोरामाशयइतिस्मृतः। अशितंखादितंपीतंलीढञ्चात्रविपच्यते ॥ २४ ॥ आमाशयगतःपाकमाहारःप्राप्यकेवलम् । पक्वःसर्वाशयःपश्चाद्धमनीभिःप्रपद्यते ॥ २५ ॥

मनुष्यके नाभि और स्तनके बीचमें अर्थात् नाभिसे ऊपर और छातीसे नीचे

आमाशय है उस आमाशयमें ही-भक्ष्य, भोज्य,चोष्य,लेह्य, यह सब पदार्थ परिपाकको प्राप्त होते हैं। आमाशयमें आहार पहिले परिपाकको प्राप्त होकर फिर धमनियोंद्वारा उसका रस सब आशयोंमें पहुंच जाता है ॥ २४ ॥ २५ ॥

तस्यमात्रावतोलिङ्गंफलञ्चोक्तंयथायथम् ।अमात्रस्यतथालिङ्गं फलञ्चोक्तंविभागशः॥ २६ ॥ आहारविध्यायतनानिचाष्टौसम्यक्परीक्ष्यात्महितंविदध्यात् । अन्यश्चयःकश्चिदिहास्तिमार्गोहितोपयोगेषुभजेततञ्च ॥ २७ ॥

इति अग्निवेशकृतेतन्त्रेचरकप्रतिसंस्कृतेविमानस्थानेत्रिविधकुक्षीयं विमानंनामद्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

इस प्रकार मात्रासे भोजन करनेवालोंके लक्षण और फल कथन करदिये गये हैं इसी प्रकार विना मात्रासे भोजन कियेके लक्षण और फल भी यथाक्रम कथन किये गये हैं ॥ २६ ॥ सो बुद्धिमान् मनुष्यको चाहिये कि, आहारविधिके आठ आयतनोंको भले प्रकार परीक्षा करके अपनी आत्माके हितके लिये साधन करना चाहिये । इसके सिवाय अपनी आत्माके हित करनेवाले अन्य भी जो हितकारक मार्ग हों उनका सेवन करना चाहिये ॥ २७ ॥

इति श्रीमहर्षिचरक० पं०रामप्रसादवैद्य० भाषाटीकायां त्रिविधकुक्षीयो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ।

अथ जनपदोद्ध्वंसनीयमध्यायंव्याख्यास्यामइति हस्माह भगवानात्रेयः ।

अब हम जनपदोध्वंसनीय विमानाध्यायका कथन करतेहैं ऐसे भगवान् आत्रेयजी कहने लगे ।

पुनर्वसुका प्रस्ताव ।

जनपदमण्डलेपाञ्चालक्षेत्रेद्विजातिवराध्युषितायांकाम्पिल्यराजधान्यांभगवान्पुनर्वसुरात्रेयोऽन्तेवासिगणपरिवृतःपश्चिमेघर्म्ममासेगङ्गातीरेवनविचारमनुविचरञ्छिष्यमग्निवेशमब्रवीत् १॥

पांचालदेशमें द्विजवरोंसे शोभायमान काम्पिल्य राजधानीमें भगवान् पुनर्वसु आत्रेयजी अपने शिष्यगणोंसे परिवृत हुए ग्रीष्मऋतुके अन्तमें गंगाके किनारे वनमें विचरते हुए अपने शिष्य अग्निवेशसे कहनेलगे ॥ १ ॥

दृश्यन्तेहिखलुसौम्य ! नक्षत्रग्रहचन्द्रसूर्य्यानिलानलानांदिशाञ्चप्रकृतिभूताऋतुवैकारिकाभावाअचिरादितोभूरपिचनयथावद्रसवीर्य्यविपाकप्रभावमोषधीनांप्रतिविधास्यति । तद्वियोगाच्चातंकप्रायतानियता। तस्मात्प्रागुद्ध्वंसात्प्राक्चभूमेर्विरसीभावादुद्धरसौम्य ! भैषज्यानि, यावन्नोपहतरसवीर्य्यविपाकप्रभावाणि । वयंचैषांरसवीर्य्यविपाकप्रभावानुपदेक्ष्यामह, येचास्माननुकांक्षन्ति, यांश्चवयमनुकांक्षामः ॥ २ ॥

हे सौम्य ! ऐसा दिखाई देताहै कि नक्षत्र, ग्रह, चन्द्रमा, सूर्य, पवन, अग्नि तथा दिशाओंके स्वभाव विकारको प्राप्त होगये हैं और ऋतुएं भी अपने स्वभावोंसे विपरीत प्रतीति होती हैं और पृथिवीके भी ऐसे लक्षण देख पडते हैं कि, यह भी औषधियोंके यथोचित रस, वीर्य, विपाक और प्रभावोंको नष्ट करडालेगी अर्थात् अब पृथिवीमें जो औषधियें उत्पन्न होंगी वह अपने गुणोंको नहीं करेंगी । जब औषधियें अपने गुणोंको न करेंगी तो मनुष्यभी नित्यम्प्रति रोगी होंगे और ऋतुआदिकोंके विकारसे रोग उत्पन्न हो देशको नष्ट करडालेंगे । इसलिये उद्ध्वंसकारक रोग उत्पन्न होनेसे पहिले तथा पृथिवीका स्वभाव बिगडजानेसे पहिले ही हे सौम्य ! औषधियोंका संग्रह कर लो जबतक इन औषधियोंके रस, वीर्य, विपाक और प्रभाव नष्ट न हों उससे प्रथम ही इनको संग्रह कर लेना चाहिये जो मनुष्य हमारेपर विश्वास रख हमारे पास आवेंगे तथा जिनके हितके लिये हम इच्छा करते हैं उन सबको रस, वीर्य, विपाक, प्रभावयुक्त औषधियोंके उपयोग द्वारा आरोग्य रखसकेंगे ॥ २ ॥

नहिसम्यगुद्धृतेषुभैषज्येषुसम्यग्विहितेषुसम्यग्विचारचारितेषु जनपदोद्ध्वंसकराणांविकाराणांकिञ्चित्प्रतीकारगौरवम्भवति ॥३॥

भले प्रकार उखाडी हुई औषधियोंको उत्तम विधिसे बनाकर यथोचित विचारपूर्वक प्रयोग करनेसे देशके नष्ट करनेवाले रोग अपना जोर न पासकेंगे । यदि बिना विचारे और बिना ही समय उखाडे तथा भले प्रकार संस्कार किये बिना औषधियोंका प्रयोग किया जायगा तो वह जनपदोद्ध्वंसनके समय विकारोंमें अपना कुछ भी गुण न दिखा सकेगी ॥ ३ ॥

अग्निवेशका प्रश्न ।

एवंवादिनंभगवन्तमात्रेयमाग्निवेश उवाच । उद्धृतानिखलुभगवन् ! भैषज्यानिसम्यग्विहितानिसम्यग्विचारचारितानि । अपितुखलुजनपदोद्ध्वंसनमेकेनव्याधिनायुगपदसमानप्रकृत्याहारदेहबलसात्म्यासत्त्ववयसांमनुष्याणांकस्माद्भवतीति ॥ ४ ॥

इस प्रकार कथन करते हुए भगवान् आत्रेयजीसे अग्निवेश कहनेलगे कि हे भगवन् ! औषधियोंको भले प्रकार उखाड लिया है और विधिपूर्वक संस्कार किया हुआ है तथा उनके प्रयोगके विधानको विचारा हुआ है अथवा यों औषधियोंको भले प्रकार उखाडना तथा संस्कार करना एवंविधिवत् प्रयोग करना यह आपका उपदेश रोगोंमें हितकारक होना बहुत ठीक है परन्तु मनुष्योंकी प्रकृति, आहार, देह बल, सात्म्य, सत्त्व और अवस्था यह सब अलग २ होतेहुए एक रोग एक समयमें जनपद (देश) को कैसे उध्वंसन (नष्ट) कर सकताहै। सो हमारी समझमें नहीं आया कृपया उसका कथन कीजिये ॥ ४ ॥

आत्रेयका उत्तर ।

तमुवाचभगवानात्रेयः । एवमसामान्यानामेभिरपिअग्निवेश! प्रकृत्यादिभिर्भावैर्मनुष्याणांयेऽन्येभावाःसामान्यास्तद्वैगुण्यातुसमानकालाःसमानलिंगाश्चव्याधयोभिनिवर्त्तमानाजनपदमुद्ध्वंसयन्ति । तेतुखलुइमेभावाःसामान्याजनपदेषुभवन्ति । तद्यथा-वायुरुदकंदेशःकालइति ॥ ५ ॥

यह सुनकर भगवान् आत्रेयजी कहनेलगे कि हे अग्निवेश!यद्यपि सब मनुष्योंके प्रकृति आदि भाव समान नहीं होते अर्थात् एकसे दूसरे मनुष्यके स्वभाव आदिक अलग २ होतेहैं । जैसे- कोई मनुष्य शीत प्रकृतिवाला, कोई उष्ण प्रकृतिवाला । पर मनुष्योंके प्रकृति आदि भाव समान न होनेपर भी इनसे पृथक् जो अन्य सामान्य भाव हैं उनकी विगुणतासे अर्थात् उनके विगडजानेसे समानकालमें समानलक्षणोंवाली व्याधियें प्रगट होकर देशको नष्ट कर डालती हैं । वह समानभाव देशमें ये होते हैं । जैसे वायु, जल, देश और काल ॥ ५ ॥

वातको अनारोग्यत्व ।

तत्रवातमेवंविधमनारोग्यकरंविद्यात् । तद्यथा-ऋतुविषममतिस्तिमितमतिचलमतिपरुषमतिशीतमत्युष्णमतिरूक्षमत्य-

भिष्यन्दिनमतिभैरवारावमतिप्रतिहतपरस्परगतिमतिकुण्डलिनमसात्म्यगन्धवाष्पासिकतापांशुधूमोपहतमिति ॥ ६ ॥

उनमें इस प्रकारका वायु होनेसे व्याधियोंके उत्पन्न करनेवाला जानना । जैसे विकृत ऋतुके गुणोंसे मिलाहुआ, अत्यन्त गीला, अत्यन्त वेगयुक्त, अति कठोर, अत्यन्त शीतल, अधिक गर्म, अत्यन्त रूक्ष, क्लेदकारक, अतिभयंकरशब्दयुक्त, दो तीन तरफसे वायु मिलकर टक्कर खानेवाला, अत्यन्त चक्कर खानेवाला, जिसकी गंधसे लोगोंके शरीरमें विकार उत्पन्न हों एवम् भाफ, सिकता, धूल, गर्दा, धूंआं आदिसे मिलाहुआ वायु विकारयुक्त होताहै ॥ ६ ॥

जलको अनारोग्यत्व ।

उदकन्तुखलुअत्यर्थविकृतगन्धवर्णरसस्पर्शवत्क्लेदवहुलमपक्रान्तजलचरविहङ्गमुपक्षीणजलाशयमप्रीतिकरमपगतगुणं विद्यात् ॥ ७ ॥

जल इस प्रकारका रोगकारक होताहै । जैसे दुर्गंधयुक्त विकृतवर्णवाला और जिसका रस तथा स्पर्श बुरा हो, गिलगिला जिसको जलचर पक्षियोंने त्याग दियाहो तथा जिसका जल सूख गयाहो, एवम् जिसका जल हानिकारक हो अथवा जिसके समीप जानेसे चित्त खराब होजाय और जलके गुणोंसे रहित हो ऐसे जलको रोगकारक जानना चाहिये ॥ ७ ॥

देशको अनारोग्यत्व ।

देशंपुनःविकृतप्रकृतिवर्णगन्धरससंस्पर्शक्लेदबहुलमुपसृष्टंसरीसृपव्यालमशकशलभमाक्षिकामूषकोलूकश्माशानिकशकुनिजम्बुकादिभिस्तृणोलूपोपवनवन्तंप्रतानादिबहुलमपूर्ववदवपतितंशुष्कनष्टशस्यंधूम्रपवनंप्रध्मातपतत्रिगणमुत्कुष्टश्वगणमुद्भ्रान्तव्यथितविविधमृगपक्षिसंघमुत्सृष्टनष्टधर्म्मसत्यलज्जाचारगुणजनपदंशश्वत्क्षुभितोदीर्णसलिलाशयंप्रततोल्कापातानिर्घातभूमिकम्पमतिभयारावरूपंरूक्षताम्रारुणासिताभ्रजालसंवृतार्कचन्द्रतारकमभीक्ष्णंसम्भ्रमोद्वेगमिव सत्रासरुदितमिवसतमस्कमिवगुह्यकाचरितमिवाक्रन्दितशब्दबहुलञ्चाहितंविद्यात् ॥८॥

देशको ऐसे लक्षण होने पर रोगकारक जानना चाहिये। जिस देशके स्वभाव,वर्ण, रस,गंध,स्पर्श यह सब बिगडगयेहों तथा संपूर्ण भूमिमें गिलगिलापन हो एवम् सांप, व्याल,मच्छर,टिड्डी,मक्खी, मूषक, उल्लू, गीध आदि श्मशानमें रहनेवाले जानवर तथा गीदड आदिक बहुतहों।बहुतसे घास और बेलें इनके फैलाव हों एवम् अनेक प्रकारकी बेलें उत्पन्न हों । पाहिलेसे सब लक्षण विपरीत प्रतीति हों एवम् अपूर्व लक्षण दिखाई देतेहों, बिना बोये हुए अंटसंट अनेक प्रकारके घास उत्पन्न हुए हों, खेती सूख या नष्ट होगई हो, पवन धूएंसे युक्त हो, पक्षीगण आकाशमें इधर उधर बहुत उडते हों गीदड और कुत्ते रोते हों, अनेक प्रकारके मृग और पक्षी व्याकुल हुए इधर उधर फिरते हों; । एवम् उस देशमें धर्म, सत्य, लज्जा, आचार,शुभगुण यह सब नष्ट होगये हों तथा जलाशय सहसा क्षुभित हुए हों । और उस देशमें उल्कापात हो अर्थात् तारे टूटे,बिजली गिरे । भूकम्प हो,भारी आंधी आवे तथा देशका भयंकर रूप होजाय । चंद्रमा, सूर्य और तारागण कभी रूखे, कभी लाल, कभी सफेद एवम् मेघजालसे ढकेहुए निरन्तर ऐसे २ रूपमें दिखाई दियाकरें और उस देशमें संभ्रम, उद्वेग, त्रास और रोनेकेसे लक्षण दिखाई दियाकरें निरन्तर अन्धकारसा छाया रहे तथा भूत, प्रेतोंका घूमना और शब्द करना प्रतीत हुआकरें ऐसे लक्षणवाला देश भयानक रोगोंको उत्पन्न करनेवाला होताहै ॥ ८ ॥

कालको अनारोगत्व ।

कालन्तुखलुयथर्त्तुलिङ्गाद्विपरीतलिंगमतिलिङ्गंहीनालिङ्गञ्चाहितंव्यवस्येत् ॥ ९ ॥

अब काल अर्थात् समयके रोगोत्पादक होनेके लक्षण कहतेहैं । जैसे ऋतुओंका अपने लक्षणोंसे विपरीत होना । जैसे जिस ऋतुमें जैसे लक्षण होनेचाहिये उससे अत्यन्त अधिक होना, बहुत कम होना,या न होना अथवा आगे पीछे होना।इसप्रकारके लक्षणवाला समय रोगोंको उत्पन्न करनेवाला होताहै ॥ ९ ॥

इमानेवंदोषयुक्तांश्चतुरोभावान्जनपदोद्ध्वंसकरान्वदान्तिकुशलाः । अतोन्यथाभूतांस्तुहितानाचक्षते ॥ १० ॥

इस प्रकार वायु, जल,देश और काल इन चारोंके विकृतगुण होनेसे जनपदका उध्वंस होता है । अर्थात् जिस प्रान्त अथवा जिस देश या जिस द्वीपमें उपरोक्त चारों भावोंकी विकृतावस्था होजाती है वह देश,वह प्रान्त, वह द्वीप भयानक रोगयुक्त होकर नष्ट हो जाता है । इससे विपरीत अर्थात् अपने ठीक लक्षणवाले–वायु, जल,पृथ्वी, समय होनेसे सब मनुष्योंके लिये हितकारक होते हैं ॥ १० ॥

विगुणेष्वपितुखलुएतेषुजनपदोद्ध्वंसनकरेषुभावेषुभेषजेनोपपा-
द्यमानानांनभयंभवतिरोगेभ्यइति ॥ ११ ॥

जब यह चारों भाव बिगडकर जनपदकाउध्वंसन करते हुए रोगोंको उत्पन्न करते हैं उस समय भी विधियुक्त संस्कार करीहुई औषधियोंका उपयोग जिन मनुष्योंको कियाजाताहै उन मनुष्योंको जनपदोध्वंसनकारक रोगोंका भय नहीं होता ॥११॥

भवन्तिचात्र । वैगुण्यमुपपन्नानांदेशकालानिलाम्भसाम् ।
गरीयस्त्वंविशेषेणहेतुमत्संप्रवक्ष्यते ॥ १२ ॥

यहांपर कहाहै कि देश, काल, वायु, जल इनका विकृत होजाना रोगोंके उत्पन्न करनेके लिये एक बडा भारी कारण होताहै ॥ १२ ॥

वाताज्जलंजलाद्देशंदेशात्कालंस्वभावतः ॥
विद्याद्दुष्परिहार्य्यत्वाद्गरीयस्तरमर्थवित् ॥ १३ ॥

वायुसे जल, जलसे देश और देशसे काल स्वभावसे ही दुर्निवार और अधिक रोगोत्पादक होते हैं ॥ १३ ॥

वाय्वादिषुयथोक्तानांदोषाणान्तुविशेषवित् ।
प्रतीकारस्यसौकर्य्येविद्याल्लाघवलक्षणम् ॥ १४ ॥

वायु आदिक चारों भावोंके दोषोंकी विशेषताको जाननेवाला और वात, पित्त, कफ इन तीनों दोषोंकी विशेषताको जाननेवाला वैद्य उन रोगोंका प्रतिकार करते हुए उनके लक्षणोंके हल्केपन आदिको जाने । अथवा यों कहिये कि इन चारों भावोंमें जलसे वायु, देशसे जल और कालसे देश रोगोत्पादक हेतुओंमें हल्के मानना चाहिये ॥ १४ ॥

जनपदोध्वंसकारी भावोंकी चिकित्सा ।

चतुर्ष्वपितुदुष्टेषुकालान्तेषुयदानराः ।
भेषजेनोपपाद्यन्तेनभवन्त्यातुरास्तदा ॥ १५ ॥

जब चारों भाव बिगडकर देशको नष्ट करनेके लिये प्रपन्न होतेहैं अर्थात् वायु, जल, देश और काल यह चारों बिगडकर जब देशको नष्ट करते हैं तब जिन मनुष्योंको विधिवत् औषधियोंका प्रयोग करा दियागया है अथवा कराया जाता है वह मनुष्य व्याधियोंसे पीडित नहीं होते ॥ १५ ॥

येषांनमृत्युसामान्यंसामान्यंनचकर्मणाम् ।
कर्मपञ्चविधंतेषांभेषजंपरमुच्यते ॥ १६ ॥

जिन मनुष्योंके मृत्युसाम्य (पूर्णआयु होकर आवश्यकीय मृत्यु काल) नहीं है एवम् किसी मारक विष आदिका प्रयोग आदि कोई मारक कर्म उपस्थित नहीं है उनको रोगशान्तिके लिये पंचकर्म द्वारा चिकित्सा करना परम उत्तम औषध कहा है ॥ १६ ॥

रसायनानांविधिवच्चोपयोगःप्रशस्यते ।
शस्यतेदेहवृत्तिश्चभेषजैःपूर्वमुद्धृतैः ॥ १७ ॥

ऐसे समयपर जव कि जनपदोध्वंसनकारी भाव दिखाई पडे तो कोई उत्तम रसायन औषधीका (लाक्षादि तैलकी नित्य मालिश, विडंगरसायन, च्यवनप्राश आदि २) सेवन करना चाहिये । तथा जनपदोध्वंसनकारी भावोंके होनेसे प्रथम संग्रहकियेहुए औषधोंद्वारा और हितकर अन्न आदि द्वारा देहकी रक्षा करता रहे १७

सत्यंभूतदयादानंबलयोदेवतार्चनम् । सद्वृत्तस्यानुवृत्तिश्चप्रशमोगुप्तिरात्मनः ॥ १८ ॥ हितंजनपदानाञ्चशिवानामुपसेवनम् । सेवनंब्रह्मचर्यस्यतथैवब्रह्मचारिणाम् ॥ १९ ॥ सङ्कथा धर्मशास्त्राणांमहर्षीणांजितात्मनाम् । धार्मिकैःसात्त्विकैर्नित्यं सहास्यावृद्धसम्मतैः ॥ २० ॥ इत्येतद्भेषजंप्रोक्तमायुषःपरिपालनम् । येषांननियतोमृत्युस्तस्मिन्कालेसुदारुणे ॥ २१ ॥

जव जनपदके उध्वंसनकारी भाव उत्पन्न होते दिखाई दें अथवा उत्पन्न होजायँ तव मनुष्योंको अपनी शरीर रक्षाके लिये एवम् कुटुम्वसम्वन्धी तथा देशकी रक्षाके लिये जो यत्न करना चाहिये उनका वर्णन करतेहैं । वह ये हैं—सत्य भाषण, जीवमात्रपर दया, दान, देवताओंके अर्पण वली देना, देवताओंका पूजन करना, श्रेष्ठ आचरणका धारण करना, मंत्र पाठादिकोंसे अपनी आत्माको रक्षित रखना, देशके हितकारक मंगलाचरण करना, अथवा शिवजीका पूजन करना, ब्रह्मचर्यका पालन एवम् अथवा उस देशको त्यागकर अन्य शुभदेशमें रहना, उत्तम शास्त्रोंकी धर्मसंबंधी कथाओंको सुनना । महर्षि महात्मा तथा ऋषियोंके उपदेश श्रवण करना, धर्मात्माओं, सत्पुरुषों तथा वृद्धजनोंकी आज्ञानुसार नित्य आचरण करना और उन्हीं महात्माओंके पास निवास करना यह सव जनपदोध्वंसनके समय मनुष्योंको आयुके देनेवाले परम औषधियोंका कथन किया है । उस दारुण कालमें जिनकी आवश्यकीय नियत मृत्यु नहीं है उनके लिये उपरोक्त कर्मोंका सेवन आयुवर्द्धक और परमहितकर होताहै । तथा अकालमृत्युसे वचानेवाला होता है (मरणासन्न मनुष्योंको परलोकमें हितकर होता है) ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥

अग्निवेशका प्रश्न ।

इतिश्रुत्वाजनपदोद्धंसनेकारणानिआत्रेयस्यभगवतःपुनरपिभ-
गवन्तमात्रेयमग्निवेशउवाच।अथखलुभगवन् ! कुतोमूलमेषां
वाय्वादीनांवैगुण्यमुत्पद्यतेयेनोपपन्नाजनपदमुद्धंसयन्तीति २२॥

इस प्रकार भगवान् आत्रेयजीके मुखसे जनपदोध्वंसनके कारणोंको सुनकर अग्नि-
वेश फिर भगवान् आत्रेयजीसे पूछनेलगे कि हे भगवन्! इस वायु आदिक चारों
भावोंके बिगड जानेका क्या कारण है? जिससे यह चारो बिगडकर जनपदका
उध्वंसन करते हैं सो कृपाकर कथन कीजिये ॥ २२ ॥

आत्रेयका उत्तर ।

तमुवाचभगवानात्रेयः । सर्वेषामाग्निवेश ! वाय्वादीनांयद्वै-
गण्यमुत्पद्यतेतस्यमूलमधर्मस्तन्मूलञ्चासत्कर्मपूर्वकृतम् । त-
योर्योनिःप्रज्ञापराध एव ॥ २३ ॥

यह सुनकर आत्रेय भगवान्जी कहनेलगे कि हे अग्निवेश ! इन वायु आदिक
चारों भावोंके विकारी होनेका कारण अधर्म है। और उस अधर्मका कारण प्रथम
बुरे कर्मोंका करना है। वह बुरे कर्म बुद्धिके अपराधसे होते हैं ॥ २३ ॥

तद्यथा—यदादेशनगरानिगमजनपदप्रधानधर्ममुत्क्रम्यअधर्मे-
णप्रजांप्रवर्त्तयन्तितदाश्रितोपाश्रिताःपौरजनपदाव्यवहारोप-
जीविनश्चतमधर्ममभिवर्द्धयन्ति ॥ २४ ॥

उसीको कथन करते हैं।जब देश, नगर, निगम और जनपदके मालिक अर्थात्
राजा आदि प्रधान पुरुष धर्मको उल्लंघनकर प्रजासे अधर्मका वर्ताव करते हैं तब
उनके आश्रित और उपाश्रित अर्थात् मंत्री मुख्याध्यक्ष तथा अन्य अहलकार और
ग्रामोंके नम्बरदार आदिक अथवा अन्य ऐसे पुरुष जो कि उन राजा आदिकोंके
यहां मुख्य मानेजाते हों उनके आश्रयसे अपना आजीवन करनेवाले(खुशामदखोर)
उस अधर्मको लेकर खूब फैला देते हैं अथवा यों कहिये कि, राजा आदिदेशके
प्रधान पुरुष जब अपनी बुद्धिके अपराधसे थोडा बहुत भी अधर्म करनेलगतेहैं तो
उनके आश्रय रहकर अपनी आजीविका चलानेवाले खुशामदखोर लोग उस अध-
र्मको खूब बढादेते हैं ॥ २४ ॥

ततःसोऽधर्मःप्रसभंधर्ममन्तर्धत्ते । ततस्तेऽन्तर्हितधर्माणोदेव-
ताभिरपित्यज्यन्ते। तेषां तथान्तर्हितधर्माणामधर्मप्रधानाना-

मपक्रान्तदेवतानामृतवोऽव्यापद्यन्ते। तेननापोयथाकालंदेवो वर्षति । विकृतंवावर्षतिवातानसम्यगभिवान्तिक्षितिर्व्याप-द्यतेसलिलानिउपशुष्यन्ति । ओषधयःस्वभावंपरिहायापद्य-न्तेविकृतिम् । ततउद्ध्वंसन्तेजनपदाःस्पर्शाभ्यवहार्य्यदो-षात् ॥ २५ ॥

वह वृद्धिको प्राप्तहुआ तथा सर्वतः फैलाहुआ अधर्म,धर्मको छिपादेताहै अर्थात् नष्टप्राय वनादेताहै। तव उन लोगोंको धर्मरहित जानकर और अधर्म प्रधान होनेसे उस देशके रक्षक देवतागण उस देशको त्याग जाते हैं फिर उन धर्मरहित और अधर्मप्रधान तथा देवताओंसे त्यागेहुए देशोंमें ऋतुएं विकृत होजाती हैं। तव ऋतुओंके विकृत होनेसे इन्द्रदेव समयपर वृष्टि नहीं करते अथवा वर्षाकालसे आगे पीछे या विकृतरूपसे वृष्टि होतीहै और वायु भी हितकारक शुभगतिवाला नहीं रहता। पृथ्वी दोषयुक्त होजातीहै, जलाशय सूख जाते हैं,जडी बूटी आदि अपने स्वभावको छोडकर विकारयुक्त होजाती हैं । तव इन सबके विकृत होनेसे मनुष्योंमें रोग उत्पन्न होते हैं और परस्पर संसर्ग और अन्नपान आदि संसर्गोंसे वह रोग देशमें फैलकर समस्त लोगोंको नष्ट करते हैं ॥ २५ ॥

युद्धका कारण।

तथाशस्त्रप्रभवस्यआपिजनपदोद्ध्वंसस्यअधर्मएवहेतुर्भवाति । येऽतिवृद्धलोभक्रोधरोषमानास्तेदुर्बलानवमत्यआत्मस्वजनप-रोपघातायशस्त्रेणपरस्परमभिक्रामन्तिपरान्वाभिक्रामन्तिपरै-र्वाभिक्राम्यन्तेरक्षोगणादिभिर्वाविविधैर्भूतसङ्घैस्तमधर्ममन्य-द्वाप्यपचारान्तरमुपलभ्याभिहन्यन्ते ॥ २६ ॥

तथा राजाओंमें परस्पर शस्त्रयुद्ध होना भी जनपदोध्वंसन कहाजाताहै उसका कारण भी अधर्म ही होताहै।जव मनुष्योंमें लोभ,क्रोध, रोष और अभिमान वहुत वढजाताहै तव वह दुर्वल मनुष्योंका,गरीवोंका, निरपराधोंका अपमान करनेलगते हैं फिर वह अधर्मी लोग अपने और परायेको कुछ न समझकर लोभ और अहंकारसे अंधे वनेहुए शस्त्रादिकोंसे उनको मारनेके लिये परस्पर आक्रमण करतेहैं और दूसरोंको मारनेके लिये आक्रमण करतेहैं। तथा उनके ऊपर अन्य मनुष्य भी उसी प्रकार आक्रमण करते हैं । ऐसे समय अनेक प्रकारके भूत, प्रेत, राक्षस आदि भी उन अधर्मके आचरण करनेवालोंको जहां पाते नष्टभ्रष्ट कर डालते हैं ॥ २६ ॥

अभिशापका हेतु ।

तथाभिशापस्याप्यधर्मएवहेतुर्भवतियेलुप्तधर्माणोधर्मादपेताः तेगुरुवृद्धसिद्धर्षिपूज्यानवमत्यअहितानिआचरन्ति ।ततस्ताः प्रजागुर्वादिभिरभिशप्ताभस्मतामुपयान्ति । प्रागप्यभूदनेकपुरुषकुलविनाशाय ॥ २७ ॥

तथा अभिशापका भी अधर्म ही कारण होताहै । जब धर्मरहित मनुष्य अधर्मसे गुरुजन, वृद्धजन, सिद्ध, ऋषि, तथा अन्य पूज्य महात्माओंका अपमान करतेहैं और अहितकर्मका आचरण करतेहैं तब उन गुरुजन आदिकोंके अभिशापसे अधर्मी प्रजा नष्टताको प्राप्त होजातीहै । ऐसे गुरुजनोंके अभिशापसे पहिलेके युगमें अनेक पुरुषोंके वंश नष्ट होगयेहैं ॥ २७ ॥

नियतप्रत्ययोपलम्भान्नियताश्चपरे ।
अनियतप्रत्ययोपलम्भादनियताश्चापरे ॥२८ ॥

बहुतसे मनुष्य आयुके नियत होनेसे पूर्णआयुको भोगतेहैं । बहुतसे आयुके अनिश्चित होनेसे अकालमें ही अर्थात् बाल अथवा युवावस्थामें ही मृत्युको प्राप्त होतेहैं । (तात्पर्य यह है कि अधर्मकी वृद्धिसे आयु नियत न रहकर अकालमें मृत्यु होतीहै और धर्मके रहनेसे मनुष्य पूर्णआयु भोगतेहैं ।जब अधर्म नहीं होताथा तब वर्तमान समयके अनुसार अनियत मृत्युयें भी नहीं होतीथीं ।) ॥ २८ ॥

संसारमें अधर्मके आनेका क्रम ।

प्रागपिचाधर्म्मादृतेनांशुभोत्पत्तिरन्यतोऽभूत् । आदिकालेहि अदितिसुतसमौजसोऽतिविमलविपुलप्रभावाःप्रत्यक्षदेवदेवर्षिधर्म्मयज्ञविधिविधानाःशैलेन्द्रसारसंहतस्थिरशरीराःप्रसन्नवर्णेन्द्रियाःपवनसमबलजवपराक्रमाश्चारुफिचोऽभिरूपप्रमाणाकृतिप्रसादोपचयवन्तःसत्यार्जवानृशंस्यदानदमनियमतपउपवासब्रह्मचर्य्यव्रतपराव्यपगतभयरागद्वेषमोहलोभ-क्रोधशोकमानरोगनिद्रातन्द्राश्रमक्लमालस्यपरिग्रहाश्चपुरुषा बभूवुरमितायुषः ॥ २९ ॥

पूर्वकाल (सतयुग) में भी अधर्मके बिना कभी किसी अशुभकी उत्पत्ति नहीं होतीथी देखिये पहिले समयमें मनुष्य दैत्योंके समान बलवान् होतेथे अत्यन्त विमल

और विपुल प्रभावशाली होतेथे देवता तथा देवर्षि उनको प्रत्यक्ष मिलतेथे, वह लोग धर्म और यज्ञोंको विधिपूर्वक किया करतेथे, उनके शरीर पहाडोंके समान सारयुक्त संगठित और स्थिर रहतेथे, वर्ण और इन्द्रियें, सब प्रसन्न होतीथीं पवनके समान बल और वेग तथा पराक्रमयुक्त होतेथे। उनके नितम्ब तथा अन्य शरीरके अंग उत्तम होतेथे, उनके शरीरसुंदर गठनयुक्त तथा उचित प्रमाणवाले और सुन्दर आकार तथा प्रसन्नता एवम् पुष्टियुक्त होतेथे। वह लोग सत्य, आचार, दयालुता, लज्जा, दान, दम, नियम, तप, उपवास, ब्रह्मचर्य और व्रत इनका भलेप्रकार पालन करतेथे अर्थात् इनका सेवन करना ही अपना परम कर्त्तव्य मानतेथे। उस समय उनके समीप भय, राग, द्वेष, मोह, लोभ, क्रोध, शोक, अहंकार, रोग, निद्रा, तन्द्रा, श्रम, क्लम और आलस्य नहीं आतेथे और वह अन्यकी वस्तुके हरनेकी कभी इच्छा नहीं रखतेथे। इसीलिये उनकी आयु भी बहुत बडी होतीथीं ॥ २९ ॥

तेषामुदारसत्त्वगुणकर्म्मणामचिन्त्यत्वात्रसवीर्य्यविपाकप्रभावगुणसमुदितानिप्रादुर्बभूवुःशस्यानिसर्वगुणसमुदितत्वात्पृथिव्यादीनांकृतयुगस्यादौ। भ्रश्यतितुकृतयुगेकेषाञ्चिदत्यादानात्साम्पन्निकानांशरीरगौरवमासीत्। सत्त्वानांगौरवाच्छ्रमःश्रमादालस्यमालस्यात्सञ्चयःसञ्चयात्परिग्रहःपरिग्रहाल्लोभः प्रादुर्भूतः ॥ ३० ॥

उनके उदारभाव तथा सत्त्वगुण एवम् शुभकर्मोंके फलसे रस, वीर्य, विपाक, प्रभाव इन उत्तम गुणोंयुक्त खेतियें तथा औषधियें उत्पन्न होतीथीं। उस समयकी अवस्था अब स्मरण भी नहीं की जासकती। क्योंकि तब सत्ययुगके प्रारम्भमें पृथ्वी आदिक सर्वगुणसम्पन्न होतेथे। सत्ययुगके व्यतीत होजानेपर कुछ मनुष्योंके अत्यन्त आदान (ग्रहण) करनेसे सम्पन्न होकर शरीरमें गौरव उत्पन्न हुआ। गौरव होनेसे श्रम उत्पन्न हुआ, श्रमसे आलस्य, आलस्यसे सञ्चय और सञ्चयसे परिग्रह[1] तथा परिग्रहसे लोभ उत्पन्न हुआ ॥ ३० ॥

ततःकृतयुगेगतेत्रेतायांलोभादभिद्रोहः। अभिद्रोहादनृतवचनमनृतवचनात्कामक्रोधमानद्वेषपारुष्याभिघातभयतापशोकचित्तोद्वेगादयः प्रवृत्ताः ॥ ३१ ॥

---

१ परिग्रह परवस्तुके ग्रहणको कहतेहैं।

सत्ययुगके चलेजानेपर त्रेतायुगमें लोभके होनेसे अभिद्रोह उत्पन्न हुआ । अभिद्रोहसे असत्यभाषण उत्पन्न हुआ । असत्यभाषणसे काम, कामसे क्रोध, क्रोधसे मान, मानसे द्वेष, द्वेषसे कठोरपन, कठोरपनसे अभिघात, अभिघातसे भय, ताप, शोक, चित्तमें उद्वेग आदिक उत्पन्न हुए ॥ ३१ ॥

ततस्त्रेतायांधर्म्मपादोऽन्तर्द्धानमगमत् । तस्यान्तर्द्धानात्पृथिव्यादीनांगुणपादप्रणाशोऽभूत् । तत्प्रणाशकृतश्चशस्यानां स्नेहवैमल्यरसवीर्य्यविपाकप्रभावगुणपादभ्रंशः ॥ ३२ ॥

ऐसा होनेसे त्रेतायुगमें धर्मका एक पाद अन्तर्धान होगया । उसके अन्तर्धानसें पृथ्वी आदिके गुणोंमें भी एक पादकी न्यूनता उत्पन्न होगई है । पृथिवी आदिमें गुणोंके एकपाद नष्ट होनेसे औषधी, अन्न आदिकोंके स्नेह, विमलता, रस, वीर्य, विपाक प्रभाव आदि गुणोंका एकपाद नष्ट होगया ॥ ३२ ॥

ततस्तानिप्रजाशरीराणिहीनगुणपादैर्हीयमानगुणैश्चाहारविहारैरयथापूर्वमुपष्टभ्यमानानिअग्निमारुतपरीतानिप्राग्व्याधिभिर्ज्वरादिभिराक्रान्तानिअतःप्राणिनोह्रासमवापुरायुषःक्रमश इति ॥ ३३ ॥

जब द्रव्योंके गुणोंका एक पाद नष्ट होगया तो इन द्रव्यादिकोंके और पृथिव्यादिकोंके एकपाद गुणहीन होनेसे संपूर्ण प्रजागणोंके शरीरमें भी एकपाद गुणकी हीनता होगई । तब एकपाद गुणसे हीन शरीर होनेसे आहार विहारादिकोंमें भी यथाक्रम न्यूनता प्राप्त होगई तथा अग्नि और वायुके व्यतिक्रमसे पहिले ज्वरादि रोगोंसे शरीर आक्रान्त हुआ फिर क्रमपूर्वक मनुष्योंकी आयुका भी ह्रास होने लगा ॥ ३३ ॥

भवति चात्र ।

युगेयुगेधर्म्मपादःक्रमेणानेनहीयते ।
गुणपादश्चभूतानामेवंलोकःप्रलीयते ॥ ३४ ॥

यहांपर कहा है कि युगयुगमें धर्मका एकएक पाद इसी क्रमसे क्षीण होता रहा और उसके क्षीण होनेसे पृथिव्यादिके गुणोंमें द्रव्योंके प्रभावोंमें एवम् मनुष्योंके शरीरमें क्रमसे क्षीणता होती रही ॥ ३४ ॥

संवत्सरशतेपूर्णेयातिसंवत्सरःक्षयम् ।
देहिनामायुषःकालेयत्रयन्मानमिष्यते ॥ ३५ ॥

सौवर्ष व्यतीत होजानेपर एक शताब्दी क्षय होजाती है इसी प्रकार मनुष्योंकी आयु भी सौवर्ष व्यतीत होनेपर क्षीण होजाती है कलियुगमें आयुका सौवर्षपर्यन्त ही प्रमाण है ॥ ३५ ॥

इतिविकाराणांप्रागुत्पत्तिहेतुरुक्तो भवति ॥ ३६ ॥

इस प्रकार रोगोंकी प्रथम उत्पत्तिके कारणको कथन कियागया है ॥ ३६ ॥

एवंवादिनंभगवन्तमात्रेयमग्निवेशउवाच। किन्नुखलुभगवन् ! नियतकालप्रमाणमायुःसर्वंनवेति भगवानुवाच । इहअग्निवेश ! भूतानामायुर्युक्तिमपेक्षते ॥ ३७ ॥

इस प्रकार कथन करते हुए भगवान् आत्रेयजीसे अग्निवेश कहने लगे कि हे भगवन् ! क्या आयुका प्रमाण सौवर्षका निश्चयात्मक है या नहीं ? अर्थात् सब मनुष्योंकी आयु सौवर्षकी नियत है या नहीं । यह सुनकर भगवान् आत्रेयजी कहने लगे कि, हे अग्निवेश ! संपूर्ण मनुष्योंकी आयु युक्तिकी अपेक्षा करती है (प्रारब्ध और पुरुषार्थके योगाधीन आयुका प्रमाण है) ॥ ३७ ॥

कर्मोंका वर्णन ।

दैवेपुरुषकारेचस्थितंह्यस्यबलाबलम् ।
दैवमात्मकृतंविद्यात्कर्मयत्पूर्वदैहिकम् ॥ ३८ ॥
स्मृतःपुरुषकारस्तुक्रियतेयादिहापरम् ।
बलाबलविशेषोऽस्तितयोरपिचकर्म्मणोः ॥ ३९ ॥

आयुका बलाबल दैव और पुरुषकारके आधीन है । मनुष्यके पूर्वजन्मके किये हुए कर्मको दैव कहते हैं और इस जन्मके कियेहुए कर्मको पुरुषकार कहते हैं। इन दोनों प्रकारके कर्मोंमें भी बलाबलकी विशेषता होतीहै ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

कर्मके भेद ।

दृष्टंहित्रिविधंकर्म्महीनंमध्यममुत्तमम् ।
तयोरुदारयोर्युक्तिर्दीर्घस्यस्वसुखस्यच ॥ ४० ॥

यह द्विविध कर्म तीन प्रकारका होताहै हीन, मध्यम और उत्तम । इनमें दैव और पुरुषार्थ दोनों उत्तम होनेसे मनुष्यके सुख और आयुकी नियत अवस्था होतीहै अर्थात् जिस मनुष्यका दैव और पुरुषकार यह दोनों उत्तम होतेहैं वह सुखपूर्वक सौवर्ष जीता रहता है ॥ ४० ॥

नियतस्यायुषोहेतुर्विपरीतस्यचेतरा ।
मध्यमामध्यमस्येष्टाकारणंशृणुचापरम् ॥ ४१ ॥

यह तो हुआ आयुके सौवर्षका प्रमाण । और इससे विपरीत अर्थात् दैव और पुरुषकारके हीनवल होनेसे मनुष्योंकी आयु भी अल्प होती है। दैव और पुरुषकार मध्यम होनेसे आयु भी मध्यम होतीहै । अव दैव और पुरुषकारमें भी विशेषताको श्रवण करो ॥ ४१ ॥

आयुके नियतानियतपर विचार ।

दैवंपुरुषकारेणदुर्वलंह्युपहन्यते॥दैवेनचेतरत्कर्म्मविशिष्टेनोपहन्यते ॥ ४२ ॥ दृष्ट्वायदेकेमन्यन्तेनियतंमानमायुषः । कर्म किंञ्चित्क्वचित्कालेविपाकेनियतंमहत् । किञ्चित्त्वकालानियतं प्रत्ययैःप्रतिवोध्यते इति ॥ ४३ ॥

यदि दैव दुर्वल हो और मनुष्यका कियाहुआ यह लौकिककर्म (पुरुषकार) बलवान् हो तो पुरुषकार दैवको नष्ट कर देता है। यदि दैव वलवान् हो और पुरुषकार दुर्वल हो तो दैव (प्रारब्धकर्म) पुरुषकारको नष्ट कर देता है ॥ ४२ ॥ यह देखकर कोई कहते हैं कि आयुका प्रमाण विधाताने जिसका जैसा नियत कर दियाहै वही आयुका प्रमाण है । कोई कहते हैं कि आयुका प्रमाण कर्माधीन है । जव किसी महाफल कर्मका विपाकका समय आता है वही आयुका नियत प्रमाण है कोई कहते हैं कि आयुका नियत समय नहीं होता क्योंकि कोई किसी अवस्थामें कोई किसी अवस्थामें मृत्युको प्राप्त होता है। कोई भी नहीं इस प्रकारका महाफल कर्महीं आयुका कारण प्रतीत होताहै ॥ ४३ ॥

तस्मादुभयदृष्टत्वादेकान्तग्रहणमसाधुनिदर्शनमपिचात्रउदाहरिष्यामः।यदिहिनियतकालप्रमाणमायुःसर्वस्यात्तदायुष्कामाणांनमन्त्रौषधिमणिमङ्गलवल्युपहारहोमानियमप्रायश्चित्तोपवासस्वस्त्ययनप्रणिपातगमनाद्याःक्रियाइष्टयश्चप्रयुज्येरन्॥४४॥

इसलिये इन सव पक्षोंको देखकर विना प्रमाण किसी एकको मानलेना अन्याय है सो सव प्रमाण निश्चयात्मक आयुके विषयका उदाहरण देकर कथन करते हैं। यदि विधाताका रचाहुआ ही प्रत्येक व्यक्तिकी आयुका प्रमाण नियत है तो संपूर्ण आयुकी कामनावाले मनुष्यको मंत्र, औषधी, मणि,मंगलकर्म, वलिदान,उपहार, होम, नियम, प्रायश्चित्त, उपवास,स्वस्त्ययन, नम्रता,शुभ आचरण आदि करनेकी

कोई आवश्यकता न होती । अर्थात् दीर्घायुकी कामनासे इन सब शुभकर्मोंको तथा यज्ञादिकोंको कोई भी नहीं किया करता। क्योंकि आयुका प्रमाण तो नियत था ही फिर शुभकर्मोंकी क्या आवश्यकता थी ॥ ४४ ॥

नउद्भ्रान्तचण्डचपलगोगजोष्ट्रखरतुरगमहिषादयःपवनादय-श्चदुष्टाःपरिहार्य्याःस्युःनप्रपातागिरिविषमदुर्गाम्बुवेगाः । तथा नप्रमत्तोन्मत्तोद्भ्रान्तचण्डचपलमोहलोभाकुलमतयोनारयोन प्रवृद्धोऽग्निर्नचविविधविषाश्रयाःसरीसृपोरगादयः ।नसाहसं नदेशकालचर्य्यानिनरेन्द्रप्रकोपइत्येवमादयोभावानाभावकराः स्युः आयुषःसर्वस्यनियतकालप्रमाणत्वात् ॥ ४५ ॥

तथा उद्भ्रांत, चंड, चपल हुए गौ,हाथी,ऊंट, गधा,घोडा,भैंसा तथा दुष्ट पवन आंधी आदिसे बचनेकी कोई आवश्यकता न होती।एवम् पहाड आदिसे गिरनेका विषमस्थानोंमें जानेका,वेगवान् नदी आदिमें बहनेका भी कोई भय न होता और न उपरोक्त कारणोंसे आयु नष्ट हुआ करती। इसीप्रकार प्रमत्त,उन्मत्त, उद्भ्रांत, चंड, चपल, मोह तथा लोभसे व्याकुल मतिवाले शत्रुओंसे भी कोई भय न होता। और प्रबल अग्नि,अनेक प्रकारके विषभरे सर्प आदिकोंसे बचनेकी भी कोई आवश्यकता न होती और साहस तथा देश, कालका विचार, राजाओंके क्रोधका भय आदिक मनुष्योंकी आयुमें हानिकारक न होतेःयदि सब मनुष्योंकी आयु नियत समयपर निश्चित होती। इसलिये आयुका नियत मानना ठीक नहीं है ॥ ४५॥

नचानभ्यस्ताकालमरणभयनिवारकाणामकालमरणभयमा-गच्छेत् प्राणिनाम् । व्यर्थाश्चारम्भकथाप्रयोगबुद्धयःस्युर्मह-र्षीणांरसायनाधिकारी ॥ ४६ ॥

और भी कहतेहैं। यदि अकालमृत्युका अभाव है तो मनुष्योंके हृदयमें अकाल मृत्युका भय भी नहीं होनाचाहिये था और आयुके बढानेवाले रसायनप्रयोग जो रसायनाधिकारमें महर्षियोंके कथन कियेहैं वह सब भी वृथा और झूठे मानेजा-यंगे ॥ ४१ ॥

नापीन्द्रोनियतायुषंशत्रुंवज्रेणाभिहन्यात् । नाश्विनावार्त्तंभेष-जेनोपपादयेताम् । नर्षयोयथेष्टम्आयुस्तपसाप्राप्नुयुर्नचाविदि-तवेदितव्यासहर्षयःससुरेशाः सम्यक्पश्येयुरुपादिशेयुराचरे-युर्वा ॥ ४७ ॥

तथा इन्द्र नियत आयुवाले अपने शत्रुओंको वज्रसे नहीं मारसकता और न अश्विनीकुमार औषधियोंद्वारा किसीको आरोग्य कर सकते अर्थात् उनकी चिकित्सा ही वृथा जाती और ऋषिलोग तपके प्रभावसे दीर्घायुको प्राप्त न होते । तथा प्रत्यक्षदर्शी महर्षिगण और इन्द्र भूत, भविष्य, वर्तमानको जानते हुए आयुवर्द्धक और हितकारक आयुर्वेदका उपदेश न करते । एवम् स्वयं भी यज्ञादिक न क्रिया करते ॥ ४७ ॥

अपिचसर्वचक्षुषामेतत्परंयदैन्द्रंचक्षुरिदञ्चास्माकंतेनप्रत्यक्षंयथापुरुषसहस्राणामुत्थायोत्थायाहवंकुर्वतामकुर्वताञ्चातुल्यायुष्ट्वं तथाजातमात्राणामप्रतीकारात्प्रतीकाराच्चअविषाविषप्राशिनांचापिअतुल्यायुष्ट्वंनचतुल्योयोगक्षेमउदपानघटानांचित्रघटानाञ्चोत्सीदताम् ॥ ४८ ॥

सर्वज्ञ महर्षियों तथा प्रत्यक्षदर्शी इन्द्रका तो कहना ही क्या है परन्तु हम लोग भी प्रत्यक्ष देखते हैं कि सहस्रों मनुष्योंमें जो मनुष्य-लडाई युद्ध आदिमें जातेहैं और जो कभी किसी लडाइ, दंगेमें शामिल न होते उनकी आयुमें भी तुल्यता नहीं है अर्थात् संग्राम आदिमें जानेवाले शीघ्र मृत्युको प्राप्त होतेहैं और जो संग्राममें नहीं जाते वह उस तात्कालिक मृत्युसे बचे रहते हैं । इसीप्रकार जो मनुष्य जन्म लेते ही औषधादि द्वारा रक्षित रहते हैं और जो नहीं रहते उनकी आयुमें भी तुल्यता नहीं होती । जिन मनुष्योंने प्राणनाशक विष खाया है और जिन्होंने नहीं खाया उनकी आयु भी तुल्य नहीं होती । जो जल पीनेके पात्र नित्यप्रति वर्तनेमें आतेहैं और जो चित्रयुक्त पात्र विना वर्त्ते रक्खे रहतेहैं उनकी आयुमें तुल्यता नहीं है अर्थात् नित्य वर्त्ते हुए पात्र शीघ्र घिसकर टूट जाते हैं और जो रक्खे रहते हैं वह चिरकालतक वैसे ही पडे रहतेहैं ॥ ४८ ॥

तस्माद्धितोपचारमूलंजीवितमतोविपर्य्ययान्मृत्युः ॥ अपिच देशकालात्मगुणविपरीतानांकर्मणामाहारविकाराणाञ्चक्रियोपयोगः ॥ ४९ ॥

इसलिये मनुष्यका जीवन हित उपचारके आश्रित है । इससे विपरीत अर्थात् अहित सेवनसे आयु नष्ट होतीहै । तथा देश, काल और सात्म्यके विपरीत कर्मोंके करनेसे एवम् आहारविहारके अनुचित उपयोगसे भी अकालमें आयु नष्ट होतीहै ॥ ४९ ॥

सम्यक्सर्वातियोगसन्धारणमसन्धारणमुदीर्णानाञ्चगतिमतां सहसानाञ्चवर्जनमारोग्यानुवृत्तौउपलभामहेहेतुमुपदिशामः सम्यंक्पश्यामश्चेति ॥ ५० ॥

सब प्रकारके अतियोगोंको न करना तथा मलमूत्रादि वेगोंको न रोकना और उचित रीतिपर नित्य भ्रमण करना, खोटे साहसोंको त्याग देना यह सब मनुष्योंको आरोग्यरखनेवाले कारण हैं। यह हमको निश्चय है और ऐसा ही हम देखते भी हैं तथा ऐसा ही कथन करते हैं ॥ ५० ॥

अग्निवेशका प्रश्न।

अतःपरमग्निवेशउवाच । एवंसतिअनियतकालप्रमाणायुषांभगवन् ! कथंकालमृत्युरकालमृत्युर्भवतीति ॥ ५१ ॥

इसके उपरान्त अग्निवेश कहनेलगे कि हे भगवन्! यदि आयुका प्रमाण निश्चित नहीं है तो कालमृत्यु और अकालमृत्यु कैसे होतीहै अर्थात् कालमृत्यु और अकालमृत्युमें क्या भेद है ॥ ५१ ॥

काल तथा अकालमृत्युका वर्णन।

तमुवाचभगवानात्रेयः। श्रूयतामग्निवेश ! यथायानसमायुक्तोऽक्षःप्रकृत्यैवाक्षगुणैरुपेतःस्यात्। सचसर्वगुणोपपन्नोवाह्यमानोयथाकालंस्वप्रमाणक्षयादेवावसानंगच्छेत्तथायुःशरीरोपगतबलवतःप्रकृत्यायथावदुपचर्य्यमाणंस्वप्रमाणक्षयादेवअवसानंगच्छति ॥ ५२ ॥ समृत्युः कालेयथाचसएवाक्षोऽतिभाराधिष्ठितत्वाद्विषमपथादपथादक्षचक्रभङ्गाद्वाह्यवाहकदोषादनिर्मोक्षात्पर्य्यसनादनुपाङ्गाच्चान्तराव्यसनमापद्यते ॥ ५३॥ तथायुरप्ययथाबलमारम्भादयथाग्न्यभ्यवहरणाद्विषमाभ्यवहरणाद्विषमशरीरन्यासादतिमैथुनादसत्संश्रयादुदीर्णवेगाविनिग्रहात्। विधार्य्यवेगाविधारणाद्भूतविषवाय्वग्न्युपतापादभिघातादाहारप्रतीकारविवर्जनाच्चान्तराव्यसनमापद्यते। स मृत्युरकाले ॥ ५४ ॥

यह सुनकर भगवान् आत्रेयजी कहनेलगे कि हे अग्निवेश! सुनो जैसे रथमें लगा हुआ रथचक्रका मध्यमभाग (अक्षी) अपने स्वाभाविक गुणोंसे युक्त हुआ सर्वगुण सम्पन्न होनेपर भी चलते चलते जीर्ण होजानेपर यथासमय अपनी शक्तिके क्षय होजानेसे नष्टभ्रष्ट होजाताहै वैसे ही इस शरीरकी आयु भी बलवान् मनुष्यकी प्रकृतिके गुणोंसे यथायोग्य निर्वाहित होतीहुई अपने प्रमाणके क्षय होनेसे नाशको प्राप्त होजातीहै। वही इसका मृत्युकाल है अर्थात् उसको कालमृत्यु कहतेहैं और जैसे उस रथचक्रका अक्ष अत्यन्त भार लादेनेसे अथवा ऊंचेनीचे विषम रास्तेपर चलानेस, कुमार्ग लेजानेसे अथवा चक्रके कोई अंगभंग होजानेसे या चलानेवाले वाहक आदिके दोषसे तथा उसकी कील आदि नखडजानेसे वह चक्रमण्डल नष्टभ्रष्ट होजाताहै वही उसकी अकालमृत्यु है । उसी प्रकार आयु और बलसे विपरीत शरीरकी चेष्टाओंको करनेसे अग्निके बलसे अधिक भोजन करनेसे, विषम आहारके शरीरकी विषमावस्था होनेसे अधिक मैथुन करनेसे दुष्टोंके संगसे आयेहुए मलादि वेगोंको रोकनेसे, काम, क्रोधादि वेगोंको न रोकनेसे, भूत, विष, अग्नि, उपताप, चोट इनके संयोगसे, आहारके न करनेसे मनुष्य पूर्णआयुको प्राप्त न होकर बीचमें ही मृत्युको प्राप्त होजाताहै । इसीको अकालमृत्यु कहते हैं ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४॥

तथाज्वरादीनप्यातङ्कान्मिथ्योपचारितानकालमृत्यूनपश्याम इति ॥ ५५ ॥

तथा ज्वरादिरोगोंका मिथ्या उपचार करनेसे भी अकालमृत्यु देखनेमें आती है ॥ ५५ ॥

अग्निवेशका प्रश्न ।

अथाग्निवेशःप्रपच्छकिन्नुखलुभगवन्।ज्वरितेभ्यःपानीयमुष्णं भयिष्ठंप्रयच्छन्तिभिषजोनतथाशीतम् । अस्तिचशीतसाध्यो धातुर्ज्वरकरइति ॥ ५६ ॥

इसके उपरान्त अग्निवेश कहने लगे कि हे भगवन् ! प्रायः ऐसा देखनेमें आता है कि जैसे ज्वरार्दित मनुष्योंको प्रायःगर्मजलही पीनेके लिये दियाजाताहै वैसे शीतलजल नहीं दियाजाता । और शीतक्रिया साध्य धातु भी ज्वरको उत्पन्न करनेवाली होती है इसलिये उन ज्वरोंमें शीतल जल क्यों नहीं दियाजाता ॥ ५६ ॥

ज्वरमें उष्णजलका विधान ।

तमुवाचभगवानात्रेयोज्वरितस्यकायसमुत्थानदेशकालानाभिसमीक्ष्यपाचनार्थंपानीयमुष्णंप्रयच्छन्तिभिषजः।ज्वरोह्यामा-

शयसमुत्थः,प्रायोभेषजानिचामाशयसमुत्थानांविकाराणांपाच-
नवमनापतर्पणानिशमनानिभवन्तिपाचनार्थञ्चपानीयमुष्णं,
तस्मादेतज्ज्वरितेभ्यःप्रयच्छन्तिभिषजोभूयिष्ठम् ॥ ५७ ॥

तब भगवान् आत्रेयजी अग्निवेशसे कहनेलगे कि ज्वरवाले मनुष्यके शरीर,कारण, देश,काल इन सबको विचारकर आमदोषको पचानेके लिये वैद्यलोग गर्मजल पीनेको देते हैं। इसका कारण यह है कि ज्वर-आमाशयसे उत्पन्न होताहै और प्रायः आमाशयसे प्रगट होनेवाले रोगमात्रको पाचन, वमन, लंघन आदिकोंसे शान्त करते हैं।औरआमके पचानेके लिये गर्म जलका देना उत्तम मानाहै।इसलिये वैद्यलोग ज्वरवाले मनुष्यको अधिकतर गर्मजल ही पिलाते हैं॥ ५७ ॥

उष्णजलके गुण ।

तद्ध्येषांपीतंवातमनुलोमयतिअग्निमुदर्य्यमुदीरयति । क्षिप्रं
जरां गच्छतिश्लेष्माणञ्चपरिशोषयतिस्वल्पमपिचपीतंतृष्णा-
प्रशमनायोपपद्यतेतथायुक्तमपिचैतन्नात्यर्थोत्सन्नपित्तेज्वरेसदा-
हभ्रमप्रलापातिसारेवाप्रदेयमुष्णेनहिदाहभ्रमप्रलापातिसारा
भूयोऽभिवर्द्धन्तेशीतेनोपशाम्यन्तीति ॥ ५८ ॥

ज्वरार्दित मनुष्योंको गर्मजल पिलानेसे उनके शरीरमें वह जल-वायुको अनु-लोमन करताहै, अग्निको दीपन, शीघ्र पाचन होजाताहै, कफको परिशोषण कर-ताहै तथा थोडाही पीनेसे तृषा शान्त होजातीहै । परन्तु यह गर्मजल- इसप्रकार युक्ति सम्पन्न और गुणकारी होनेपर भी अत्यन्त बढेहुए पित्तके कोपवालेको तथा दाह, भ्रम और प्रलाप एवम् अतिसारयुक्त ज्वरोंमें देना उचित नहीं। क्योंकि एस ज्वरोंमें गरमजल देनेसे--दाह, भ्रम, प्रलाप, और अतिसार अधिक बढजातेहैं ।और शीतल क्रिया करनेसे तथा शीतल जल देनेसे शान्तिको प्राप्त होते हैं ॥ ५८ ॥

भवतिचात्र ।

शीतेनोष्णकृतान्रोगान्शमयन्तिभिषग्विदः ।
येतुशीतकृतारोगास्तेषाञ्चोष्णंभिषग्जितम् ॥ ५९ ॥

यहांपर कहाहै कि चिकित्साके जाननेवाले वैद्य--गरमीके रोगोंको शीतलक्रिया द्वारा और शीतसे उत्पन्न हुए रोगोंको उष्ण क्रिया द्वारा शान्त करते हैं ॥ ५९ ॥

एवमितरेषामपिव्याधीनांनिदानविपरीतमौषधंकार्य्यम् ॥ ६० ॥

इसीप्रकार अन्य व्याधियोंमें भी कारणसे विपरीत औषधादि द्वारा चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ६० ॥

तथातर्पणनिमित्तानामपिव्याधीनांनान्तरेणपूरणमस्तिशान्ति-स्तथापूरणनिमित्तानांनान्तरेणापतर्पणम् ॥ ६१ ॥

जैसे अपतर्पणसे उत्पन्न हुए रोगोंकी तर्पणके विना शान्ति नहीं हो सकती । तर्पणसे उत्पन्न हुए रोगोंकी अपतर्पणके विना शान्ति नहीं होसकती ॥ ६१ ॥

अपतर्पणके भेद ।

अपतर्पणमपिचत्रिविधंलंघनंलंघनपाचनंदोषावसेचनञ्चेति ॥ तत्रलंघनमल्पदोषाणाम् । लंघनेनह्यग्निमारुतवृद्ध्यावातातप-परीतमिवाल्पमुदकमल्पदोषःप्रशोषमापद्यते ॥ ६२ ॥

तर्पणके तीन भेद हैं—लंघन और लंघन पाचन तथा दोषावसेचन इनमें अल्प-दोषवाले मनुष्यको लंघन कराना चाहिये । लंघनके करनेसे जठराग्नि और वायुकी वृद्धि होकर जैसे—पवन और धूपके योगसे अल्पजल सूख जाता है उसी प्रकार अल्पदोष शोषणको प्राप्त होजाते हैं अर्थात् नष्ट होजाते हैं ॥ ६२ ॥

लंघनपाचनके गुण ।

लंघनपाचनाभ्यांमध्यबलःसूर्य्यसन्तापमारुताभ्यांपांशुभस्मा-वकिरणैरिवचानातिबहूदकंमध्यदोषः प्रशोषमापद्यते ॥ ६३ ॥

यदि दोष मध्यबल हो तो उसको लंघन पाचन कराना चाहिये । जैसे सूर्यके संतापसे और वायुके वेगसे तथा गर्दा, मिट्टीआदि डालनेसे मध्यमजल सूखजाता है वैसेही लंघन और पाचन द्वारा मध्यम दोष भी शोषण होजाते हैं ॥ ६३ ॥

दोषावसेचनके गुण ।

बहुदोषाणांपुनर्दोषावसेचनमेवकार्य्यम् । नह्यभिन्नेकेदारसेतौ पल्वलप्रसेकोऽस्ति । तद्वद्दोषावसेचनम् ।दोषावसेचनन्तुखलु अन्यद्वाभेषजंप्राप्तकालमप्यातुरस्यनैवंविधस्यकुर्य्यात् ॥ ६४ ॥

बढे हुए दोषोंमें दोषावसेचन अर्थात् वमनादि द्वारा विधिपूर्वक दोषोंको निकाल देना चाहिये । जैसे किसी खेतमें बहुतसा जल इकट्ठा हो एक तरफसे खेतकी डौल(सीमा) तोड देनेसे वह जल सब बाहर निकलजाता है । उसी प्रकार दोषा-वसेचन द्वारा दोषोंको निकाल डालना चाहिये । परन्तु यह दोषावसेचन वा अन्य

उत्कट औषधियोंका प्रयोग एवम् शीघ्रकारी औषधी आगे कथन किये हुए रोगियों-
को नहीं देना चाहिये ॥ ६४ ॥

अयोग्यरोगीके लक्षण ।

**अनपवादप्रतीकारस्याधनस्यापरिचारकस्यवैद्यमानिनश्चण्डस्या-
सूयकस्यतीव्राधर्म्मरुचेरतिक्षीणबलमांसशोणितस्यअसाध्यरो-
गोपहतस्यमुमूर्षुलिंगान्वितस्यचेति । एवंविधंह्यातुरमुपचर-
न्भिषक्पापीयसाअयशसायोगंगच्छतीति ॥ ६५ ॥**

जैसे-जिस रोगीको अपने अपयशका भय न हो, जो निर्धन हों,जिसकी कोई
सेवा करनेवाला न हो,जो अपने आपको वैद्य मान रहाहो,जो कठोर स्वभाववाला
हो, जो निंदक हो, जो अत्यंत पापी हो, जो अतिक्षीण होगयाहो, जो स्वयम् मर-
नेकी इच्छा रखता हो। इतने प्रकारके रोगियोंकी चिकित्सा करनेसे वैद्य पाप
और अपयश अर्थात् बदनामीको प्राप्त होता है ॥ ६५ ॥

तत्र श्लोकाः ।

**अल्पोदकद्रुमोयस्तुप्रवातःप्रचुरातपः ।
ज्ञेयःसजाङ्गलोदेशःस्वल्परोगतमोऽपिच ॥ ६६ ॥**

यहांपर श्लोक हैं-जिन देशोंमें जल और वृक्ष थोडे होतेहैं,वायु बडे वेगसे चलती
है, धूप अधिक पडती है उस देशको जांगल देश कहते हैं । ऐसे देशोंमें रोग बहुत
कम होतेहैं ॥ ६६ ॥

**प्रचुरोदकवृक्षोयोनिवातोदुर्लभातपः ।
अनूपोबहुदोषश्चसमःसाधारणोमतः ॥ ६७ ॥**

जिस देशमें जल और वृक्ष बहुत होते हैं, वायु और धूप बहुत कम लगती हैं
उस देशको आनूप देश कहते हैं । इस देशमें रोग अधिक होतेहैं । जिस देशमें यह
दोनों बातें सामान्य हों उसको साधारण देश कहते हैं ॥ ६७ ॥

**तदात्वेचानुबन्धोवायस्यस्यादशुभंफलम् ।
कर्म्मणस्तन्नकर्तव्यमेतद्बुद्धिमतांमतम् ॥ ६८ ॥**

जिस कर्मके करनेसे उसी समय अथवा कुछ काल पाकर अशुभफल हो वह कर्म
कभी भी न करना चाहिये । यह बुद्धिमानोंका मंतव्य है ॥ ६८ ॥

पूर्वरूपाणिसामान्याहेतवःस्वस्वलक्षणाः । देशोद्ध्वंसस्यभेष-

ज्यंहेतूनांमूलमेवच ॥६९॥ प्राग्विकारसमुत्पत्तिरायुषश्चक्षय-क्रमः । मरणंप्रतिभूतानांकालाकालविनिश्चयः ॥ ७० ॥ यथा चाकालमरणंयथायुक्तञ्चभेषजम्।सिद्धिंयात्यौषधंयेषांनकुर्य्या-द्येनहेतुना ॥ ७१ ॥ तदग्निवेशायात्रेयोनिखिलंसर्वमुक्तवान् । देशोद्ध्वंसनिमित्तीयेविमानेमुनिसत्तमः ॥७२॥

इति च० सं० जनपदोद्ध्वंसनीयविमानं समाप्तम् ॥ ३ ॥

इस जनपदोद्ध्वंसनीय विमान नामक अध्यायमें जनपद उध्वंसनके पूर्वरूप, सामान्य हेतु, और उन सब भावोंके अलग२लक्षण देशोध्वंसकी चिकित्सा, उसके कारण तथा पूर्वक्रमसे विकारोंकी उत्पत्ति, आयुके क्षय होनेका क्रम तथा मनुष्योंकी काल और अकाल मृत्युका निश्चय, जैसे अकाल मरण होताहै जैसे उनकी औषधी करना चाहिये, जिनको औषधी फलदायक होतीहै, जिनको जिन हेतुओंसे औषधी लाभदायक नहीं होती यह सब भगवान् पुनर्वसु आत्रेयजीने अग्निवेशके प्रति कथन किया है ॥ ६९ ॥ ७० ॥ ७१ ॥ ७२ ॥

इति श्रीमहर्षिचरक० विमानस्थाने पं० रामप्रसादवैद्य० भाषाटीकायां जनपदोद्ध्वंसनीय-विमानं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ।

अथातस्त्रिविधरोगविशेषविज्ञानीयविमानंव्याख्यास्यामइति हस्माहभगवानात्रेयः ॥

अब हम त्रिविध रोग विशेष विज्ञानीय विमान नामक अध्यायका कथन करतेहैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कथन करने लगे ।

रोगविशेषज्ञानके भेद ।

त्रिविधंखलुरोगविशेषज्ञानंभवति ।

तद्यथा--आप्तोपदेशः, प्रत्यक्षमनुमानञ्चेति ॥ १ ॥

आप्तोपदेश प्रत्यक्ष अनुमान इन तीन प्रमाणों द्वारा ही सम्पूर्ण रोगोंका विशेष ज्ञान होताहै ॥ १ ॥

आप्तोपदेशका लक्षण ।

तत्राप्तोपदेशोनामआप्तवचनम् । आप्ताह्यवितर्कस्मृतिविभा-

गर्विदोनिष्प्रीत्युपतापदर्शिनश्च ।तेषामेवंगुणयोगाद्यद्वचनंतत्प्रमाणम् । अप्रमाणंपुनर्मत्तोन्मत्तमूर्खरक्तदुष्टान्तःकरणवचनमिति ॥ २ ॥

इनमें आप्तोपदेश-आप्त पुरुषोंके वचनको कहतेहैं । जिन महर्षियोंको सम्पूर्ण विषयोंमें तर्करहित यथार्थ निश्चयात्मक ज्ञान हो । जो भूत, भविष्यत्, वर्त्तमानके ज्ञानको जाननेवाले हैं। जिनकी स्मरणशक्ति कभी नष्ट नहीं होती।जिनको किसीसे राग, द्वेष नहीं है तथा पक्षपात रहित हैं । उन ऋषियोंको आप्त कहते हैं । इस प्रकारके गुणवाले ऋषियोंके वचनको आप्तोपदेश कहते हैं और वह आप्तोपदेश वितर्करहित प्रमाण होता है जो मनुष्य-मत्त, उन्मत्त, मूर्ख और पक्षपाती है तथा जिनका अन्तःकरण दुष्ट है उनका वचन अप्रमाणिक होताहै ॥ २ ॥

प्रत्यक्ष और अनुमान ।

प्रत्यक्षन्तुखलुतद्यत्स्वयमिन्द्रियैर्मनसाचोपलभ्यते ।
अनुमानंखलुतर्कोयुक्त्यपेक्षः ॥ ३ ॥

इन्द्रिय और मनके संयोगसे जो अस्मदादिकोंका यह घट है, यह पट है, यह स्थाणु है, यह पुरुष है इस प्रकारका जो निश्चयात्मक ज्ञान होता है उसको प्रत्यक्ष कहते हैं । तर्क और युक्तिसे जो ज्ञान होता है उसको अनुमान कहते हैं ॥ ३ ॥

त्रिविधेनखल्वनेनज्ञानसमुदयेनपूर्वंपरीक्ष्यरोगंसर्वथासर्वमेवोत्तरकालमध्यवसानमदोषंभवति ॥ ४ ॥

इन तीन प्रकारके प्रमाणों द्वारा अर्थात् ज्ञान समुदाय द्वारा रोगोंकी परीक्षा करके तदनन्तर उनकी चिकित्सा करनी चाहिये । इस प्रकार करनेसे प्रथम मध्यम और उत्तरकाल पर्यन्त सब प्रकार वैद्य निर्दोषी रहताहै ॥ ४ ॥

नहिज्ञानावयवेनकृत्स्नेज्ञेयेज्ञानमुत्पद्यते । त्रिविधेत्वस्मिञ्ज्ञानसमुदायेपर्वमाप्तोपदेशाज्ज्ञानंततःप्रत्यक्षानुमानाभ्यांपरीक्षापपद्येत । किंह्यनुपदिष्टपूर्वंप्रत्यक्षानुमानाभ्यांपरीक्ष्यमाणोविद्यात् । तस्माद्द्विविधापरीक्षाज्ञानवतांप्रत्यक्षमनुमानञ्चेति । त्रिविधावासहोपदेशेन । तत्रेदमुपदिशन्तिबुद्धिमन्तो रोगमेकैकमेवंप्रकोपमेवंयोनिमेवात्मानमेवमधिष्ठानमेवंवेदनमेवंसंस्थानमेवंशब्दस्पर्शरूपरसगन्धमेवमुपद्रवमेवंवृद्धिस्था-

नक्षयसमन्वितमेव मुदर्कमेवंनामानमेवंयोगंविद्यात्। तस्मिन्नि-
यंप्रतीकाराप्रवृत्तिरथवानिवृत्तिरित्युपदेशाज्ज्ञायते ॥ ५ ॥

उपरोक्त तीनों प्रमाणोंमेंसे एकही प्रमाण द्वारा सम्पूर्ण रोगोंका ज्ञान नहीं हो सकता इसलिये इन तीन प्रकारके ज्ञानसमुदायमें व्याधिको प्रथम आप्तोपदेश द्वारा जानना चाहिये। उसके अनन्तर प्रत्यक्ष और अनुमान द्वारा परीक्षा उपपन्न होतीहै। तात्पर्य यह हुआ कि, वैद्यक परीक्षा शास्त्रमें पहिले आप्तोपदेश द्वारा व्याधि तथा द्रव्योंके प्रभावको जानकर पीछे प्रत्यक्ष और अनुमान द्वारा निश्चय करना चाहिये। यदि मानुषी बुद्धिके कारण प्रथम ही प्रत्यक्ष और अनुमान द्वारा द्रव्योंकी तथा व्याधियोंकी परीक्षा कीजायगी तो अनेक मनुष्योंके प्राणोंका घात होना संभव है जैसे कोई तत्काल प्राणहारक विषोंको लेकर उससे प्रत्यक्षानुमानकी सिद्धि करना चाहे तो जिस प्राणीपर उसकी परीक्षा कीजायगी उसकी हिंसाका भार वैद्यपरही होगा। इसलिये वैद्यक शास्त्रमें प्रथम आप्तोपदेश द्वारा ज्ञेय विषयको जानकर तदनन्तर प्रत्यक्ष और अनुमानसे जानलेना चाहिये। अब शंका करते हैं कि जिस विषयको प्रथम आप्तोपदेश द्वारा नहीं जाना है उसको प्रत्यक्ष और अनुमानसे भी जानसकतेहैं कि नहीं सो कहतेहैं कि जिस पदार्थके ज्ञानके लिये प्रथम आप्तोपदेश नहीं हुआहै उसको प्रत्यक्ष और अनुमान द्वारा जानना चाहिये। इसलिये बुद्धिमान् मनुष्योंने प्रत्यक्ष और अनुमान दो प्रकारकी परीक्षा मानीहै। उन दोनोंमें आप्तोपदेश मिलादेनेसे परीक्षा तीन प्रकारकी होतीहै परन्तु वैद्यक शास्त्रमें प्रत्यक्ष और अनुमान, आप्तोपदेशका आश्रय लेकर ही प्रवृत्त होताहै। सो बुद्धिमान् यहां इसप्रकार उपदेश करतेहैं कि प्रत्येक रोग इस प्रकार होताहै उनके यह २ लक्षण होते हैं। दोषोंका प्रकोपन इस प्रकार होताहै। रोगोंके कारण इस प्रकार होतेहैं। वातादिकोंके तथा ज्वरादिकोंके स्वरूप इसप्रकारके होते हैं। अधिष्ठान इसको कहते हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध इस प्रकारके होते हैं। उपद्रव इनको कहतेहैं। दोषोंकी तथा रोगोंकी वृद्धि इसप्रकार होतीहै। दोष साम्यावस्थामें इस प्रकार रहतेहैं। धातु आदि क्षीण इसप्रकार होते हैं रोगोंका उत्तरकाल इस प्रकारजानना रोगोंका नाम इस प्रकार जानाजाताहै। रोगके जाननेका यह प्रकार है ऐसे स्थानमें चिकित्सा करनी चाहिये अथवा नहीं करनी इत्यादि सब ज्ञान आप्तोपदेशसेही होतेहैं। इसलिये वैद्यकमें प्रत्यक्ष और अनुमान आप्तोपदेशको पूर्व लिये विना चलही नहीं सकता ॥ ५ ॥

प्रत्यक्षज्ञानका लक्षण।

प्रत्यक्षतस्तु खलु रोगतत्त्वंबुभुत्सुः सर्वैरिन्द्रियैः सर्वानिन्द्रियार्था-

नातुरशरीरगतान्परीक्षेतान्यत्ररसज्ञानात्। तद्यथा,अन्त्रकूजनं सन्धिस्फोटनमंगुलीपर्वणांचस्वरविशेषांश्चयेचान्येऽपिकेचिच्छरीरोपगताःशब्दाःस्युस्ताञ्छ्रोत्रेणपरीक्षेत। वर्णसंस्थानप्रमाणच्छायाशरीरप्रकृतिविकारौचक्षुर्वैषयिकाणिचान्यानिकानिचतानिचक्षुषापरीक्षेत ॥ ६ ॥

प्रत्यक्ष द्वारा रोगके तत्त्वको जाननेकी इच्छावाला वैद्य रसज्ञानके बिना सब इन्द्रियों द्वारा रोगीके शरीरगत इन्द्रियार्थोंकी परीक्षा करे उसीको दिखाते हैं। जैसे–आंतोंका गूंजना, संधियोंका स्फोटन, अंगुलियोंका तथा पर्वोंका मटकना, स्वरभंग होना इनके सिवाय अन्यभी रोगीके शरीरमें होनेवाले जितने प्रकारके शब्द हों उनको वैद्य अपनी कर्णेन्द्रिय द्वारा परीक्षा करे तथा हृदय और धमनी आदिकोंकी गति तथा शब्दज्ञानकारक यन्त्रद्वारा परीक्षा करे। शरीर तथा नेत्र, जिह्वा, नख आदिकोंका वर्ण, मूत्र आकार, प्रमाण, कांति, शरीरकी प्रकृति और विकृति आदिकोंका वर्ण तथा अन्यभी देखने योग्य जो विषय हों उनकी चक्षुइंद्रियद्वारा परीक्षा करे ॥ ६ ॥

अनुमानज्ञानका लक्षण।

रसन्तुखलुआतुरशरीरगतमिन्द्रियवैषयिकमप्यनुमानादवगच्छेत्। नह्यस्यप्रत्यक्षेणग्रहणमुपपद्यते। तस्मादातुरपरिप्रश्नेनैवातुरमुखरसंविद्यात्। यूकापसर्पणेनत्वस्यशरीरवैरस्यंमाक्षिकोपदर्शनेनशरीरमाधुर्य्यम्। लोहितपित्तसन्देहेतुकिन्धारिलोहितंलोहितपित्तंवेतिश्वकाकभक्षणात्धारिलोहितमभक्षणाल्लोहितमित्यनुमातव्यम्एवमन्यानप्यातुरशरीरगतान्रसाननुमिमीत। गन्धांस्तुखलुसर्वशरीरगतानातुरस्यप्रकृतिवैकारिकान्घ्राणेनपरीक्षेतस्पर्शञ्चपाणिनाप्रकृतियुक्तमितिप्रत्यक्षतोऽनुमानैकदेशतश्चपरीक्षणमुक्तम् ॥ ७ ॥

परन्तु रोगीके शरीरगत रसनेंद्रियका विषय होनेपरभी अनुमान द्वारा जानना चाहिये। क्योंकि रसका नेत्रोंद्वारा प्रत्यक्ष हो नहीं सकता और जिह्वाद्वारा उसको कोई जान नहीं सकता इसलिये रोगीसे प्रश्नद्वारा उसके मुखके रसादिकोंको जानना चाहिये। शरीरपर यूका आदिके चलनेसे शरीरकी विरसताको जानना

चाहिये मक्खियोंके शरीरपर पडनेसे शरीरके मीठेरसका अनुमान होसकता है । रक्तपित्त रोगवालेका रक्त तथा विना रक्तपित्तवालेके रक्तमें संदेह हो तो कुत्ते और कागको भक्षण करानेसे जान सकतेहैं यदि उसको श्वान आदि भक्षण करे तो आरोग्य पुरुषका रक्त समझना चाहिये और यदि वह श्वान आदिक उस रक्तको न छुएं तो रक्तपित्त है ऐसा जाननां चाहिये इसी प्रकार रोगीके शरीरगत अन्य रसोंका भी अनुमान करे रोगीके शरीरगत गन्धोंको स्वाभाविक प्रकृतिसे विकारको प्राप्त हुए गंधको घ्राणेन्द्रियद्वारा परीक्षा करे। शरीरकी प्रकृति,विकृति, उष्णता,शीतता आदि एवम् धमनीकी गति आदि-हाथके स्पर्शद्वारा परीक्षा करे इस प्रकार प्रत्यक्षसे तथा अनुमानसे एकदेशसे परीक्षाका कथन किया गया है ॥ ७ ॥

अन्य अनुमान ज्ञेय भावोंका वर्णन ।

इमेतुखलुअन्येप्येवमेवभूयोऽनुमानज्ञेयाभवन्तिभावाः ।तद्यथा-अग्निंजरणशक्त्या, बलंव्यायामशक्त्या ,श्रोत्रादीञ्छब्दादिग्रहणेन, मनोऽर्थाव्यभिचारेण, विज्ञानंव्यवसायेन, रजः सङ्गेन,मोहमविज्ञानेन,क्रोधमभिद्रोहेण,शोकं दैन्येन,हर्षमामोदेन,प्रीतिं तोषेण, भयंविषादेन, धैर्य्यमविषादेन, वीर्य्यमुत्साहेन,स्थानमविभ्रमेण,श्रद्धामभिप्रायेण, मेधां ग्रहणेन, संज्ञांनामग्रहणेन, स्मृतिं स्मरणेन, ह्रियमपत्रपेण, शीलमनुशीलनेन, द्वेषंप्रातिषेधेन,उपाधिमनुबन्धेन,धृतिमलौल्येन, वश्यतांविधेयतया, वयोभक्तिसात्म्यव्याधिसमुत्थानानिकालदेशोपशयवेदनाविशेषेणगूढलिङ्गंव्याधिमुपशयानुपशयाभ्यां दोषप्रमाणविशेषमपचारविशेषेणआयुषःक्षयमरिष्टैरुपस्थितश्रेयस्त्वंकल्याणाभिनिवेशनअमलंसत्त्वमविकारेणेति । ग्रहण्यास्तुमृदुदारुणत्वंदुःस्वप्नदर्शनमभिप्रायंद्विष्टेष्टसुखदुःखानि चातुरपरिप्रश्नेनैवविद्यादिति ॥ ८ ॥

यह आगे कथन किये हुए विषयों तथा उनके सिवाय और भी जो भाव हैं उनकी अनुमान द्वारा परीक्षा करनी चाहिये । जैसे भोजनके परिपाक द्वारा जठराग्निकी परीक्षा, पारिश्रम आदिसे बलकी परीक्षा, शब्दादिकसे कर्णादिकोंकी परीक्षा, मनके विषयोंके अव्याभिचारसे मनकी परीक्षा, व्यवसाय-अर्थात् बुद्धिके कार्योंसे

विज्ञानकी परीक्षा, संगद्वारा रजोगुणकी परीक्षा, नष्टज्ञानद्वारा मोहकी परीक्षा, अभिद्रोह द्वारा क्रोधकी परीक्षा, दीनताद्वारा शोककी परीक्षा, प्रसन्नतासे हर्षकी परीक्षा, संतोषसे प्रीतिकी परीक्षा, विषादसे भयकी परीक्षा, अविषादसे धैर्यकी परीक्षा, उत्साहसे पराक्रमकी परीक्षा, अभ्रान्तिसे स्थिरताकी परीक्षाका अनुमान करना चाहिये एवम् मनके अभिप्रायसे श्रद्धा, धारणासे मेधा, नाम लेनेसे संज्ञा, स्मरणसे स्मृति, संकोचसे लज्जा, शीलतासे स्वभाव, त्यागसे द्वेष, अनुबंधसे उपाधि, चपलता न होनेसे धृति और विधेयतासे वशीभूतकी परीक्षाका अनुमान किया जाताहै इसी प्रकार–काल, देश, उपशय और वेदनाविशेषसे यथाक्रम, अवस्था, भक्ति, सात्म्य, व्याधि तथा निदानका अनुमान किया जाता है। उपशय और अनुपशय द्वारा गूढ लक्षणवाली व्याधियोंका अनुमान किया जाता है। अपचारविशेषसे दोषका प्रमाण विशेष जाना जाताहै अरिष्टद्वारा आयुके क्षयका अनुमान कियाजाताहै। कल्याणकारक योगोंमें चित्तके लगनेसे शुभका अनुमान कियाजाताहै और विकाररहित होनेसे विमल सतोगुणका अनुमान कियाजाताहै। ग्रहणीकी नम्रता और कठोरता दुःस्वप्न दर्शन, अभिप्राय, द्वेष, इष्ट, सुख, दुःख, यह सब विषय रोगीसे प्रश्नद्वारा जानने चाहियें॥ ८॥

भवन्तिचात्र।

आप्ततश्चोपदेशेनप्रत्यक्षकरणेनच।
अनुमानेनचव्याधीन्सम्यग्विद्याद्विचक्षणः॥ ९॥

यहांपर कहा है कि, चतुर वैद्य आप्तोंके उपदेशसे, प्रत्यक्ष करणसे, एवम् अनुमानसे व्याधियोंको भली प्रकार जाने॥ ९॥

सर्वथासर्वमालोच्ययथासम्भवमर्थवित्।
अथाध्यवस्येत्तत्त्वेचकार्य्येचतदनन्तरम्॥ १०॥

अर्थको जाननेवाला वैद्य सब प्रकारसे सब विषयोंको विचारकर यथा संभव कारण और कार्यको जान लेवे। जब संपूर्ण कारणादिका निश्चय करलेवे तदनन्तर कार्यके विषयमें निश्चय करे॥ १०॥

कार्य्यतत्त्वविशेषज्ञःप्रतिपत्तौनमुह्यति।
अमूढःफलमाप्नोतियदमोहानिमित्तजम्॥ ११॥

कार्यके तत्त्वके निश्चयज्ञानवाला वैद्य समय प्राप्त होनेपर मोहको प्राप्त नहीं होता। मोहको प्राप्त न होनेसे यथार्थ फलको प्राप्त होताहै॥ ११॥

ज्ञानबुद्धिप्रदीपेनयोनाविशातितत्त्ववित् ।
आतुरस्यान्तरात्मानंनसरोगांश्चिकित्सति ॥ १२ ॥

जिस वैद्यने कारणादि ज्ञान तथा बुद्धिरूप दीपकसे रोगीके शरीरमें प्रवेश नहीं किया है वह वैद्य रोगोंकी चिकित्सा नहीं कर सकता ॥ १२ ॥

सर्वरोगविशेषाणांत्रिविधंज्ञानसंग्रहम् ।
यथाचोपदिशन्त्याप्ताःप्रत्यक्षंगृह्यतेयथा ॥ १३ ॥
येयथाचानुमानेनज्ञेयास्तांश्चात्युदारधीः ।
भावांस्त्रिरोगविज्ञानेविमानेमुनिरुक्तवान् ॥ १४ ॥

इतिश्रीमच्चरकसंहितायां त्रिविधरोगविशेषविज्ञानीयं नामचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अब अध्यायका उपसंहार करते हैं कि त्रिविध रोगविशेषविज्ञानीयअध्यायमें सम्पूर्ण रोगविशेषको जाननेके लिये तीन प्रकारके ज्ञानका संग्रह जैसे आप्त पुरुष उपदेश करते हैं । जैसे प्रत्यक्षका ग्रहण होता है । जो विषय अनुमान द्वारा जैसे जानेजाते हैं । इन सब भावोंको उदार बुद्धि भगवान् आत्रेयजीने वर्णन किया है ॥ १३ ॥ १४ ॥

इति श्रीमहर्षिचर० वि० स्था० भा० टी० त्रिविधरोगविशेषविज्ञानीयविमानं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः ।

अथातःस्रोतोविमानंनामाध्यायं व्याख्यास्याम इति हस्माह भगवानात्रेयः ।

अब हम स्रोतोविमाननामकअध्यायकी व्याख्या करते हैं । इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कथन करने लगे ।

स्रोतोंका वर्णन ।

यावन्तःपुरुषेमूर्त्तिमन्तोभावविशेषास्तावन्तएवास्मिन्स्रोतसां प्रकारविशेषाः,सर्वेंभावाहिपुरुषेनान्तरेणस्रोतांस्यभिनिवर्तन्ते क्षयंवानगच्छंति। स्रोतांसिखलुपारिणाममापद्यमानानांधातू-

नामभिवाहीनिभवन्तिअयनार्थेनापिचैकेमहर्षयःस्रोतसामे-
वसमुदयंपुरुषमिच्छन्तिसर्वगतत्वात्सर्वसरत्वाच्चदोषप्रकोपण-
प्रशमनानांनत्वेतदेवंयस्यसाहिपुरुषःस्रोतांसियच्चवहन्तियच्चा-
वहन्तियत्रचावस्थितानिसर्वंतदन्यत्तेभ्यः ॥ १ ॥

पुरुषके शरीरमें शिरा, कोष्ठ आदि स्थूल पदार्थ हैं वह सब स्रोतोंके ही प्रकारान्तर हैं क्योंकि पुरुषके शरीरमें संपूर्णभाव स्रोतोंद्वाराही उत्पन्न होते हैं और क्षय नहीं होते। स्रोत ही परिणामको प्राप्तहुए सम्पूर्ण धातुओंको वहन करतेहैं अर्थात् यथास्थानमें पहुंचा देते हैं । स्रोत ही अयनार्थ होते हैं क्योंकि संपूर्ण शरीरमें सर्वगामी होनेसे तथा दोषोंके प्रकोपकारक अथवा शमनकारक किये हुए आहारादिकोंको सम्पूर्ण शरीरमें व्यापक करदेते हैं। इसलिये कोई २ स्रोतोंके समुदायको ही पुरुष मानते हैं। परन्तु स्रोतोंका समुदाय पुरुष नहीं होता । स्रोतोंके समुदायका जो अधिष्ठाता है स्रोत जिसके आश्रित हैं, जिसके लिये स्रोत रसादिकोंको वहन करते हैं वह पुरुष है तथा स्रोत जिसको वहन करते हैं। और जिसका आवहन करते हैं वह स्रोतोंसे पृथक् पुरुष हैं ॥ १ ॥

अतिबहुत्वात्तुखलुकेचिदपरिसंख्येयानिआचक्षतेस्रोतांसि,प-
रिसंख्येयानिपुनरन्ये,तेषांस्रोतसांयथास्थानंकतिचित्प्रकारा-
न्मूलतश्चप्रकोपविज्ञानतश्चानुव्याख्यास्यामः। येभविष्यन्त्य-
लमनुक्तार्थज्ञानवतेविज्ञानायचाज्ञानाय, तद्यथा, प्राणोदका-
न्नरसरुधिरमांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्रमूत्रपुरीषस्वेदवहानिवात-
पित्तश्लेष्मणांपुनःसर्वशरीरचराणांसर्वस्रोतांसिअयनभूतानि॥२॥

अत्यन्त अधिक होनेसे कोई २ स्रोतोंको असंख्य कहते हैं । कोई कहते हैं कि स्रोतोंकी संख्या होसकती है । उन स्रोतोंका प्रकार भेदसे तथा मूलभेदसे और उनके प्रकोप विज्ञानके यथा स्थानमें आगे कथन करेंगे । क्योंकि सम्पूर्ण स्रोतोंका विषय जानलेनेसे जिन स्रोतोंका कथन नहीं भी कियागया उनको भी ज्ञानवान् मनुष्य जान सकताहै । तथा यथोचित उपदेश द्वारा अज्ञानी भी जानसकेंगे । वह इस प्रकार हैं प्राणवाही, उदकवाही, अन्नवाही, रसवाही, रक्तवाही, मांसवाही, मेदवाही एवम् अस्थि, मज्जा, शुक्र, मूत्र, मल, स्वेद इनके वहन करनेवालोंको स्रोत कहते हैं तथा वात, पित्त और कफ सम्पूर्ण शरीरमें गमन करानेवाले मार्गभूत भी

स्रोतही होते हैं । यह स्रोतही सम्पूर्ण रस, धातु, वायु आदिके अयन अर्थात् गतिस्थान और अधिष्ठान होते हैं ॥ २ ॥

तद्वदतीन्द्रियाणां पुनः सत्त्वादीनां केवलं चेतनावच्छरीरमयनभूतमधिष्ठानभूतश्च, तदेतत्स्रोतसां प्रकृतिभूतत्वान्नविकारैरुपसृज्यते शरीरम् । तत्र प्राणवहानां स्रोतसां हृदयं मूलं महास्रोतश्च; प्रदुष्टानामिदं विशेषज्ञानं भवति अतिसृष्टकुपितं सप्रतिबन्धमल्पाल्पमभीक्ष्णं वा सशब्दशूलमुच्छ्वसन्तं दृष्ट्वा प्राणवहान्यस्य स्रोतांसि प्रदुष्टानीति विद्यात् ॥ ३ ॥

उसी प्रकार चेतनायुक्त केवल शरीर-इन्द्रियोंका तथा मन आदिकोंका गतिस्थान मार्गरूप एवम् अधिष्ठान होता है। यही कारण है कि सम्पूर्ण स्रोत प्रकृतिभूत होनेसे शरीरमें विकारको नहीं होनेदेते। इनमें प्राणोंके वहन करनेवाले स्रोतोंका मूल हृदय है और उसको महास्रोत भी कहते हैं । यह स्रोत जब दूषित होतेहैं तब इनमें यह विशेषता होती है कि उच्छ्वासको अधिक छोडे, बहुत तेज या रुककर थोडा २ अथवा शब्दयुक्त शूलके साथ श्वास आवे । इन लक्षणोंसे प्राणवाहक स्रोतोंको दूषित हुआ जानें ॥ ३ ॥

दूषित उदकवाही स्रोतके लक्षण ।

उदकवहानां स्रोतसां तालु मूलं क्लोम च प्रदुष्टानामिदं विज्ञानं, तद्यथा जिह्वाताल्वोष्ठकण्ठक्लोमशोषं पिपासां चातिप्रवृद्धां दृष्ट्वोदकवहान्यस्य स्रोतांसि प्रदुष्टानीति विद्यात् ॥ ४ ॥

जलके वहन करनेवाले स्रोतोंका मूल तालु और क्लोम होताहै । यदि यह स्रोत दूषित होजांय तो इनके ये लक्षण होते हैं । जैसे-जिह्वा, तालु, ओष्ठ और क्लोम (प्यास लगानेवाली कारणभूत स्थान) ये सूखने लगें प्यास अधिक लगे । इन लक्षणोंसे जलके वहन करनेवाले स्रोतोंको दूषित हुआ जाने ॥ ४ ॥

दूषित अन्नवाही स्रोतके लक्षण ।

अन्नवहानां स्रोतसामामाशयो मूलं वामश्च पार्श्वम्, प्रदुष्टानान्तु खल्वेषामिदं विशेषविज्ञानं भवति, तद्यथा अनन्नाभिलषणमरोचकाविपाकौ छर्दिश्च दृष्ट्वा अन्नवहानि स्रोतांसि प्रदुष्टानीति विद्यात् ॥ ५ ॥

अन्नके वहन करनेवाले स्रोतोंका मूल-आमाशय और वामपार्श्वभाग है। इन स्रोतोंके दूषित होनेसे यह लक्षण होते हैं। जैसे-अन्नकी अभिलाषा न होना, अरुचि होना, अन्नका परिपाक न होना, छर्दि होना इन लक्षणोंसे अन्नके वहन करनेवाले स्रोतोंको दूषित हुवा जानना चाहिये ॥ ५ ॥

रसवहादिस्रोतोंका वर्णन।

रसवहानांस्रोतसांहृदयंमूलंदशचधमन्यः,शोणितवहानांस्रोतसांयकृतमूलंप्लीहाच,मांसवहानाञ्चस्रोतसांस्नायुमूलंत्वक् च,मज्जावहानांस्रोतसामस्थीनिमूलंसक्थयश्च,शुक्रवहानां स्रोतसांवृषणौमूलंशेफश्च। प्रदुष्टानान्तुरसादिस्रोतसांखलुएषां विज्ञानान्युक्तानिविविधाशितीयेअध्यायेयान्येवहिधातूनांप्रदोषविज्ञानानितान्येवयथास्वंधातुस्रोतसाम् ॥ ६ ॥

रसके वहन करनेवाले स्रोतोंका मूल हृदय और दश धमनियें हैं। रक्तवाहक स्रोतोंका मूल-यकृत (जिगर) और प्लीहा (तिल्ली) होते हैं। मांसके वहन करनेवाले स्रोतोंका मूल स्नायु, नसें और त्वचा हैं। मज्जाके वहन करनेवाले स्रोतोंका मूल अस्थियें और सक्थि हैं। वीर्यके वहन करनेवाले स्रोतोंका मूल दोनों वृषण और लिंग हैं। इन रसादिक वहन करनेवाले स्रोतोंके विगडनेसे जो लक्षण होते हैं वह विविधाशितपीतीय अध्यायमें वर्णन किया गया है ॥ ६ ॥

मूत्रवाही स्रोतोंके लक्षण।

मूत्रवहाणांस्रोतसांबस्तिर्मूलंवंक्षणौच, खल्वेषामिदंप्रदुष्टानां विज्ञानमतिसृष्टंप्रतिबद्धंकुपितमल्पाल्पमभीक्ष्णंवासशूलंमूत्रं मूत्रयन्तंदृष्ट्वामूत्रवहाण्यस्यस्रोतांसिप्रदुष्टानीतिविद्यात् ॥ ७ ॥

मूत्रको वहन करनेवाले स्रोतोंका मूल-बस्ति और वंक्षण हैं। इनको दूषित हुए जाननेके ये लक्षण होतेहैं। जैसे-मूत्रका अधिक आना अथवा मूत्रका बन्द होजाना मूत्रका विगडाहुआ होना मूत्रका लगकर आना थोडा २ आना वा दर्दके साथ आना इस प्रकारके मूत्रके लक्षणोंको देखकर मूत्रवाहक स्रोतोंको दूषित जानना ॥ ७ ॥

पुरीषवाही स्रोतोंके लक्षण।

पुरीषवहाणांस्रोतसांपक्वाशयोमूलंस्थूलगुदश्च, प्रदुष्टानांखलु एषामिदंविज्ञानं, कृच्छ्रेणअल्पाल्पंसशूलमतिद्रवंकुपितम-

तिवृद्धंचोपविशन्तंदृष्ट्वापुरीषवहाण्यस्यस्रोतांसिप्रदुष्टानीतिवि-
द्यात् ॥ ८ ॥

पुरीष (मल) के वहन करनेवाले स्रोतोंका मूल पक्वाशय, स्थूल अंतडी और गुदा हैं । उनके दूषित होनेसे यह लक्षण होते हैं जैसे-कष्टके साथ थोडा २ मल उतरना, दर्दके साथ मल उतरना, वहुत पतला मल आना, तेजगर्मीके साथ मल आना, रुककर अत्यन्त सूखा मल आना । इन लक्षणोंको देखकर मलके वहन करनेवाले स्रोतोंको दूषित जानना ॥ ८ ॥

स्वेदवाही स्रोतोंके लक्षण ।

स्वेदंवहानांस्रोतसांमेदोमूलंरोमकूपाश्च प्रदुष्टानांखल्वेषामभि-
दंविज्ञानमस्वेदनमतिस्वेदनंपारुष्यमतिश्लक्ष्णतांपरिदाहंलोम-
हर्षश्चदृष्ट्वास्वेदवहान्यस्यस्रोतांसिप्रदुष्टानीतिविद्यात् ॥ ९ ॥

स्वेदके वहन करनेवाले स्रोतोंका मूल मेद तथा रोमकूप हैं । इनको दूषित हुए जाननेके ये लक्षण हैं । पसीना न आना अथवा अधिक आना, रोमकूपोंका कठोर होना या अत्यंत नरम होना, शरीरमें दाह होना, रोमोंका खडा होना इन लक्षणोंको देखकर स्वेदवाहक स्रोतोंका दूषित हुआ जानना ॥ ९ ॥

शरीरधात्ववकाशोंके नाम ।

स्रोतांसिशिराधमन्योरसवाहिन्योनाड्यःपन्थानोमार्गाःशरी-
रच्छिद्राणिसंवृतासंवृतानिस्थानानिआशयाःआलयाःनिकेता-
श्चेतिशरीरधात्ववकाशानांलक्ष्यालक्ष्याणांनामानि ॥ १० ॥

स्रोत, शिरा, धमनियें, रसवाहनी नाडियें, पथसमूह, मार्ग, शरीरछिद्र, संवृतस्थान, असंवृतस्थान, आशय, निकेतन, आलय,यह सब नाम-शरीरके धातुओंके लक्ष्य तथा अलक्ष्य स्थानोंके हैं ॥ १० ॥

तेषांप्रकोपात्स्थानस्थाश्चैवमार्गगाश्चैवशरीरधातवःप्रकोपमाप-
द्यन्ते ॥ ११ ॥

उनके कुपित होनेसे स्थानमें स्थित तथा मार्गमें गमन करनेवाली शारीरिक धातुयेंभी कोपको प्राप्त होजाती हैं ॥ ११ ॥

इतरेषांवाप्रकोपादितराणि ॥ १२ ॥

अन्य स्रोतोंके कोपसे अन्य स्रोत भी कुपित होजातेहैं ॥ १२ ॥

स्रोतांसिस्रोतांस्येवधातवश्चधातून्प्रदूषयन्ति ॥ १३ ॥

एक धातु दूषित होकर दूसरी धातु दूषित करदेतीहै स्रोत दूषित होकर अन्य स्रोतोंको भी दूषित कर देते हैं ॥ १३ ॥

प्रदुष्टास्त्वेषांसर्वेषामेववातपित्तश्लेष्माणोदुष्टादूषयितारोभवन्तिदोषस्वभावादिति ॥ १४ ॥

वात, पित्त कफ दूषित होकर इन सब स्रोतोंको अपने दोष स्वभावसे दूषित करदेते हैं ॥ १४ ॥

प्राणवाही स्रोतोंके दूषित होनेका कारण।

भवतिचात्र।

क्षयात्सन्धारणाद्रौक्ष्याद्व्यायामात्क्षुधितस्यच।
प्राणवाहीनिदुष्यन्तिस्रोतांस्यन्यैश्चदारुणैः ॥ १५ ॥

सोई कहतेहैं। प्राणोंको वहन करनेवाले स्रोत-धातुओंके क्षीण होनेसे, वेगोंको धारण करनेसे, रूक्षतासे, अधिक परिश्रम करनेसे, बहुत क्षुधा लगनेसे तथा अन्य दुष्ट कारणोंसे दूषित होतेहैं ॥ १५ ॥

उदकवाही स्रोतोंके दूषित होनेका कारण।

औष्ण्यादामाद्भयात्पानादतिशुष्कान्नसेवनात्।
अम्बुवाहीनिदुष्यन्तितृषायाश्चातिपीडनात् ॥ १६ ॥

उष्णतासे, आमदोषसे, भयसे, मद्य आदि पीनेसे, अधिक शुष्क अन्न सेवनसे, अत्यन्त प्यास लगनेसे जलके वहन करनेवाले स्रोत दूषित होते हैं ॥ १६ ॥

अन्नवाही स्रोतोंके दूषित होनेका कारण।

अतिमात्रस्यचाकालेचाहितस्यचभोजनात्।
अन्नवाहीनिदुष्यन्तिवैगुण्यात्पावकस्यच ॥ १७ ॥

अधिक भोजन करनेसे, वेसमय भोजन करनेसे, विषम भोजन करनेसे, अहित भोजन करनेसे, जठराग्निकी विगुणतासे अन्नके वहन करनेवाले स्रोत दूषित होते हैं ॥ १७ ॥

रसवाही स्रोतोंके दूषित होनेका कारण।

गुरुशीतमतिस्निग्धमतिमात्रनिषेवणात्।
रसवाहीनिदुष्यन्तिचिन्त्यानाञ्चातिचिन्तनात् ॥ १८ ॥

भारी; शीतल और अत्यन्त स्निग्ध पदार्थोंके अधिक सेवनसे बहुत चिन्ताके करनेसे रसके वहन करनेवाले स्रोत दूषित होते हैं ॥ १८ ॥

रक्तवाही स्रोतोंके दूषित होनेका कारण ।

विदाहीन्यन्नपानानिस्निग्धोष्णानिद्रवाणिच ।
रक्तवाहीनिदुष्यन्तिभजताञ्चातपानलौ ॥ १९ ॥

विदाही अन्नपानके सेवनसे तथा स्निग्ध,उष्ण और द्रव पदार्थोंके सेवनसे, धूप, अग्नि इनके सेवनसे रक्तवाही स्रोत दूषित होते हैं ॥ १९ ॥

मांसवाही स्रोतोंके दूषित होनेका कारण ।

अभिष्यन्दीनिभोज्यानिस्थूलानिचगुरूणिच ।
मांसवाहीनिदुष्यन्तिभुक्त्वाचस्वपतोदिवा ॥ २०॥

अभिष्यन्दी,स्थूल और भारी पदार्थोंके भोजन करनेसे,भोजन कर दिनमें सोजानेसे मांसवाही स्रोत दूषित होते हैं ॥ २० ॥

मेदोवाही स्रोतोंके दूषित हानका कारण ।

अव्यायामाद्दिवास्वप्नान्मेध्यानाञ्चातिभक्षणात् ।
मेदोवाहीनिदुष्यन्तिवारुण्याश्चातिसेवनात् ॥ २१ ॥

व्यायाम न करनेसे,दिनमें सोनेसे, चिकने पदार्थोंके अधिक खानेसे और मद्यके अधिक पीनेसे, मेदको वहन करनेवाले स्रोत दूषित होते हैं ॥ २१ ॥

अस्थिवाही स्रोतोंके दूषित होनेका कारण ।

व्यायामादतिसंक्षोभादस्थ्नामातिचभक्षणात् ।
अस्थिवाहीनिदुष्यन्तिवातलानाञ्चसेवनात् ॥ २२ ॥

अधिक व्यायामके करनेसे,अत्यन्त संक्षेपणसे, अस्थियोंके चबानेसे तथा वातवर्द्धक पदार्थोंके सेवनसे अस्थिवाही स्रोत दूषित होजाते हैं ॥ २२ ॥

मज्जावाही स्रोतोंके दूषित होनेका कारण ।

उत्पेषादत्यभिष्यन्दादभिघातात् प्रपीडनात् ।
मज्जावाहीनिदुष्यन्तिविरुद्धानाञ्चसेवनात् ॥ २३ ॥

किसी वस्तुके नीचे दबजानेसे, अभिष्यंदी पदार्थोंके सेवनसे, चोटके लगनेसें, शरीरके प्रपीडनसे, एवम् विरुद्ध पदार्थोंके सेवनसे मज्जाके वहन करनेवाले स्रोत दूषित होते हैं ॥ २३ ॥

शुक्रवाही स्रोतोंके दूषित होनेका कारण।

अकालायोनिगमनान्निग्रहादतिमैथुनात्।
शुक्रवाहीणिदुष्यन्तिशस्त्रक्षाराग्निभिस्तथा ॥ २४ ॥

विना समय मैथुन करनेसे, अयोग्य मैथुन करनेसे, बिलकुल मैथुन न करनेसें, अधिक मैथुन करनेसे, शस्त्र, क्षार, तथा अग्निके संयोगसे वीर्यवाही स्रोत दूषित होते हैं ॥ २४ ॥

मूत्रवाही स्रोतोंके दूषित होनेका कारण।

मूत्रितोदकभक्षस्त्रीसेवनान्मूत्रनिग्रहात्।
मूत्रवाहीणिदुष्यन्तिक्षीणस्याथकृशस्यच ॥ २५ ॥

मूत्रके वेग आये हुए पर मूत्रको रोककर पानी पीनेसे एवम् मूत्रके वेगको रोककर स्त्रीगमन करनेसे, मूत्रको रोकनेसे तथा क्षीणता और कृशता होनेसे मूत्रवाही स्रोत दूषित होजाते हैं ॥ २५ ॥

वर्चोंके स्रोतोंके दूषित होनेका कारण।

विधारणादत्यशनादजीर्णाध्यशनात्तथा।
वर्चोवाहीनिदुष्यन्तिदुर्बलाग्नेःकृशस्यच ॥ २६ ॥

मलके वेगको रोकनेसे, अधिक भोजन करनेसे, अजीर्णमें भोजन करनेसे, दुर्बल अग्निके होनेसे तथा कृशताके कारण मलवाही स्रोत दूषित होते हैं ॥ २६ ॥

स्वेदवाही स्रोतोंके दूषित होनेका कारण।

व्यायामादतिसन्तापाच्छीतोष्णाक्रमसेवनात्।
स्वेदवाहीनिदुष्यन्तिक्रोधशोकभयैस्तथा ॥ २७॥

अधिक व्यायाम करनेसे, अधिक धूप, तथा तापके सहनेसे, विकृतभावसे, सर्दी गर्मीके सेवनसे, शोक तथा भयसे, स्वेदके वहन करनेवाले स्रोत दूषित होजातेहैं२७॥

अन्य कारण।

आहारश्चविहारश्चयःस्याद्दोषगुणैःसमः।
धातुभिर्विगुणश्चापिस्रोतसांसप्रदूषकः ॥ २८ ॥

जो आहार विहार—वात, पित्त, कफके साम्यगुणकारी हैं वह स्रोतोंको दूषित करते हैं जो आहार विहार रसरक्तादि धातुओंके असमान गुण करनेवाले हैं वह भी स्रोतोंको दूषित करते हैं ॥ २८ ॥

अतिप्रवृत्तिःसङ्गोवाशिराणांग्रन्थयोऽपिवा ।
विमार्गगमनंवापिस्रोतसांदुष्टलक्षणम् ॥ २९ ॥

मलादिकोंकी अधिक वृद्धि अथवा विरोध होना तथा नसोंमें गांठका पडना और मलोंको अपने मार्ग त्यागकर दूसरे मार्गद्वारा निकलना यह दूषितहुए स्रोतोंके लक्षण होते हैं ॥ २९ ॥

स्रोतोंकी आकृति ।

स्वधातुसमवर्णानिवृत्तस्थूलान्यणूनिच ।
स्रोतांसिदीर्घाण्याकृत्याप्रतानसदृशानिच ॥ ३० ॥

संपूर्ण स्रोत अपने २ धातुके समान वर्णवाले गोलाकार मुखवाले,स्थूल अथवा सूक्ष्म आकारके होतेहैं ॥ ३० ॥

दूषित स्रोतोंकी चिकित्साका विधान ।

प्राणोदकान्नवाहानांदुष्टानांश्वासिकीक्रिया ।
कार्य्यातृष्णोपशमनीतथैवामप्रदोषिकी ॥ ३१ ॥

प्राणवाही स्रोत, जलवाही स्रोत, और, अन्नवाही स्रोतोंके दूषित होनेपर श्वास रोगके समान चिकित्सा करनी चाहिये तथा तृषानाशक और आमनाशक चिकित्सा करनी चाहिये । अर्थात् प्राणवाही स्रोतोंके दूषित होनेसे श्वासचिकित्सा, जलवाही स्रोतोंके दूषित होनेसे तृषानाशक चिकित्सा, अन्नवाही स्रोतोंके दूषित होनेसे आमदोष नाशक चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ३१ ॥

विविधाशितपीतीयेरसादीनांयदौषधम् ।
दूषितस्रोतसांकुर्य्यात्तद्यथास्वमुपक्रमम् ॥ ३२ ॥

रस आदि धातुओंके वहन करनेवाले स्रोतोंके दूषित होनेपर विविधाशितपीतीय अध्यायमें कथन की हुई रस रक्तादिकोंकी चिकित्सा क्रमपूर्वक करनी चाहिये ३२॥

मूत्रविट्स्वेदवाहानांचिकित्सामौत्रकृच्छ्रिकी । तथातिसारिकी
कार्य्यातथाज्वराचिकित्सिकी इति ॥ ३३ ॥

मूत्रवाही स्रोतोंके दूषित होनेपर मूत्रकृच्छ्रमें कही चिकित्सा करनी चाहिये । मलवाही स्रोतोंके दूषित होनेपर अतिसार रोगके समान चिकित्सा करनी चाहिये। स्वेदवाही स्रोतोंके दूषित होनेपर ज्वरके समान चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ३३॥

तत्र श्लोकाः।

त्रयोदशानांमूलानिस्रोतसांदुष्टलक्षणम्।
सामान्यंनामपर्य्यायाःकोपनानिपरस्परम् ॥ ३४ ॥
दोषहेतुःपृथक्त्वेनभेषजोद्देशएव च।
स्रोतोविमानेनिर्दिष्टस्तथाचादौविनिश्चयः ॥ ३५ ॥

अब अध्यायकी पूर्त्तिमें श्लोक कहते हैं कि इस स्रोतोविमान नामक अध्यायमें तेरह स्रोतोंके मूल, उनके दूषित होनेके लक्षण, सामान्यनाम, पर्यायवाचक शब्द, परस्पर कोपक्रम, पृथक् २ दोषोंके हेतु और औषध उद्देश तथा स्रोतोंका निश्चय इनका वर्णन कियागया है ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

केवलंविहितंयस्यशरीरंसर्वभावतः।
शारीराःसर्वरोगाश्चसकर्म्मसुनमुह्यति ॥ ३६ ॥

इति चरकसंहितायां विमानस्थाने स्रोतोविमानम्।

जिस वैद्यको संपूर्ण भावोंसे शरीरका ज्ञान है तथा शरीरके संपूर्ण रोगोंको जानता है वह वैद्य चिकित्सा क्रममें मोहको प्राप्त नहीं होता ॥ ३६ ॥

इति श्रीमहर्षिचरक० विमानस्थाने भाषाटीकायां स्रोतोविमानं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः।

अथातो रोगानीकं विमानंव्याख्यास्याम इति हस्माह भगवानात्रेयः।

अब हम रोगानीक विमानकी व्याख्या करते हैं । इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कथन करनेलगे।

रोगोंके विभाग।

द्वेरोगानीकेभवतःप्रभावभेदेनसाध्यञ्चासाध्यञ्च, द्वेरोगानीके बलभेदेनमृदुचदारुणञ्च,द्वेरोगानीके अधिष्ठानभेदेनमनोऽधिष्ठानंशरीराधिष्ठानञ्च, रोगानीकेद्वेनिमित्तभेदेनस्वधातुवैषम्य-

निमित्तश्चागन्तुनिमित्तश्च, द्वेरोगानीकेआशयभेदेनआमाशय-
समुत्थश्चपक्काशयसमुत्थश्च ॥ १ ॥

रोगोंके समूह प्रभावके भेदसे दो प्रकारके होते हैं।प्रथम साध्य। द्वितीय असाध्य। रोग समूहके बलके भेदसे दो भेद होते हैं । मृदु और दारुण । अधिष्ठान भेदसे दो प्रकारके हैं । मनोधिष्ठान और शरीराधिष्ठान ।निमित्त भेदसे दो प्रकारके हैं।निजधातु वैषम्यनिमित्तक और आगन्तुक निमित्तक। आशयभेदसे दो प्रकारके हैं आमाशयसे उत्पन्न होनेवाले और पक्काशयसे उत्पन्न होनेवाले ॥ १ ॥

रोगोंको संख्यासंख्येयत्व ।

एवमेतत्प्रभावबलाधिष्ठाननिमित्ताशयद्वैधंसमुद्भेदप्रकृत्यन्तरे-
णाभिद्यमानमथवासन्धीयमानंस्यादेकत्वंवाबहुत्वंवा, एकत्वं
तावदेकमेवरोगानीकंदुःखसामान्यात्, बहुत्वन्तुदशरोगानी-
कानिप्रभावभेदादीनि, बहुत्वमपिसंख्येयंवास्यादसंख्येयं
संख्येयंयथोक्तम्-अष्टोदरीये, असंख्येयंयथामहतिरोगाध्याये
रुग्वर्णसमुत्थानादीनामसंख्येयत्वात् ॥ २ ॥

इस प्रकार प्रभाव, बल, अधिष्ठान, निमित्त और आशयभेदसे दो दो प्रकारके होतेहुए भी निदान और प्रकृतिके भेदसे सब रोग पृथक् २ अथवा मिले हुए होतेहैं इस प्रकार संपूर्ण रोगोंको एकत्व अथवा बहुत्व कथन किया है । जैसे-संपूर्णरोग दुःख देनेवाले होनेसे अर्थात् दुःखदायित्व होनेसे संपूर्ण रोगसमूहको एकत्व कथन कियाहै अब बहुत्वको कथन करते हैं । प्रभाव भेदादिकोंसे रोगसमूह दश भेदमें विभक्त हैं । रोगोंके बहुत्वकी संख्या हो भी सकती है और सूक्ष्म अंशांश विकल्पना द्वारा इनकी संख्या नहीं होसकती । जैसे-अष्टादरीयाध्यायमें रोगोंकी संख्या और महारोगाध्यायमें असंख्यता वर्णन की है संपूर्ण रोगसमूह पीडा,वर्ण,कारण आदि भेदोंसे कल्पना किये जानेपर असंख्यताको प्राप्त होतेहैं ॥ २ ॥

नचसंख्येयाग्रेषुभेदप्रकृत्यन्तरीयेष्वविगीतिरित्यतोनदोषवती
स्यादत्रकाचित्प्रतिज्ञानचाविगीतिरित्यतःस्याददोषवद्भेत्ताहि
भेद्यमन्यथाभिनत्त्यन्यथापुरस्ताद्भिन्नं भेदप्रकृत्यन्तरेणभिन्द-
न्भेदसंख्याविशेषमापादयत्यनेकधानचपूर्वंभेदाग्रमुपहन्ति ॥३॥

संपूर्ण रोगोंके एक ही समय संख्येय और असंख्येय होनेसे कोई विरोध उत्पन्न

नहीं हो सकता क्योंकि जिस प्रकार रोग संख्येय और असंख्येय होते हैं उनका वर्णन प्रथम करचुके हैं इसलिये इसस्थानमें कोई विरोधी दोष उत्पन्न नहीं होसकता। भेद करनेवाला अपनी इच्छासे एक वस्तुको एक प्रकारका कथन कर दूसरे समय उसी वस्तुके अनेक भेद दिखा सकता है। और प्रकारान्तरसे भेद संख्याको अनेक प्रकारकी करते हुए प्रथम कथन किये हुए एक प्रकारके भेदमें किसी प्रकार-की आपत्ति नहीं होने देता ॥ ३ ॥

समानायामपिखलुभेदप्रकृतौप्रकृतानुपयोगान्तरमपेक्ष्यसन्ति ह्यर्थान्तराणिसमानशब्दाभिहितानि। समानोहिरोगशब्दो-दोषेषुव्याधिषुचवर्त्तते। दोषाअपिरोगशब्दमातङ्कशब्दंयक्ष्मश-ब्दंदोषप्रकृतिशब्दंविकारशब्दश्चलभन्ते। तत्रदोषेषुचैवव्या-धिषुचरोगशब्दःसमानःशेषेषुतुविशेषवान् ॥ ४ ॥

भेदके कारणके समान होनेपर भी कहीं कहीं प्रयोगान्तरकी अपेक्षा करते हुए समान शब्दसे कहे हुए शब्दोंके अथ अलग २ ग्रहण किये जाते हैं। जैसे–रोग शब्दसे दोष और व्याधि इन दोनोंकाही बोध होता है अर्थात् रोगशब्द दोषों और व्याधियोंमें सामान्यरूपसे व्यापक है। दोषभी रोगशब्द, आतंकशब्द, यक्ष्मशब्द, दोष प्रकृति शब्द एवम् विकार शब्दसे ग्रहण किये जातेहैं। इनमें रोगशब्द दोषोंमें तथा व्याधियोंमें समान है और अन्य स्थलोंमें विशेष अर्थात् असमान होताहै ४

तत्रव्याधयोऽपरिसंख्येयाभवन्त्यतिबहुत्वाद्दोषास्तुपरिसंख्येया अनतिबहुत्वात्तस्माद्यथोचितंविकाराउदाहरणार्थमनवशेषेणच दोषाव्याख्यास्यन्ते ॥ ५ ॥

इनमें व्याधियें अपरिसंख्येय अर्थात् अगण्य होतीहैं क्योंकि वह बहुत तथा अंशांश कल्पना द्वारा अत्यंत ही बहुत हैं परंतु दोष संख्यावान् हैं क्योंकि यह बहुत नहीं हैं। इसलिये उदाहरणके लिये विकारोंको तथा दोषोंको विस्तारपूर्वक वर्णन करते हैं ॥ ५ ॥

दोषोंका वर्णन।

रजस्तमश्चमानसौदोषौ,तयोर्विकाराःकामक्रोधलोभमोहेर्ष्या-मानमदशोकचित्तोद्वेगभयहर्षादयः ॥ ६ ॥

रजोगुण और तमोगुण मनके दोष हैं।काम, क्रोध, लोभ,मोह, ईर्षा, अभिमान,

मद, शोक, चित्तका उद्वेग, भय और हर्ष आदिक इन मनके दोषोंके विकार हैं। अर्थात् मनके रोग हैं ॥ ६ ॥

वातपित्तश्लेष्माणस्तुशारीरादोषास्तेषामपिचविकाराज्वराती-सारशोथशोषमेहकुष्ठादयइति ॥ ७ ॥

वात, पित्त और कफ यह शरीरमें रहनेवाले दोष हैं। ज्वर,अतिसार,शोथ,शोष, प्रमेह, कुष्ठ, आदिक उन दोषोंके विकार हैं ॥ ७ ॥

दोषाश्चकेवलाव्याख्याताः, विकारैकदेशश्च ॥ ८ ॥

यहांपर केवल दोषोंका कथन किया है और विकारोंके एकदेशका कथन कियाहै ॥ ८ ॥

दोषोंका त्रिविध कोप ।

तत्रतुखल्वेषांद्वयानामपिदोषाणांत्रिविधंप्रकोपणमसात्म्ये-न्द्रियार्थसंयोगःप्रज्ञापराधःपरिणामश्चेति । प्रकुपितास्तुप्रको-पणविशेषात् । द्रव्यविशेषाच्चविकारविशेषानभिनिर्वर्त्तयन्ति अपरिसंख्येयास्ते विकाराःपरस्परमनुवर्त्तमानाः कदाचिद-नुबध्नन्तिकामादयोज्वरादयश्च । नियतस्त्वनुबन्धोरजस्तम-सोः परस्परंनह्यरजस्कन्तमः ॥ ९ ॥

इन शारीरिक और मानसिक दोनो प्रकारके दोषोंके ही कुपित करनेवाले तीन प्रकारके कारण होतेहैं । जैसे असात्म्य विषयोंका सेवन, प्रज्ञापराध और परिणाम (समय) इनमें पृथक् २ प्रकोपके कारणोंसे तथा द्रव्यविशेषके वलसे कुपित हुए दोष अनेक प्रकारके विकारोंको उत्पन्न करतेहैं ।वह विकार असंख्य होतेहैं। कामादिक मानासिक विकार, ज्वरादिक शारीरिक विकार कभी २ आपसमें एक दूसरेके आश्रयीभूत होजातेहैं अर्थात् एक दूसरेके सहायक होजातेहैं या आपसमें मिलजातेहैं क्योंकि रजोगुण और तमोगुणका आपसमें परस्पर अनुबंध है।तमोगुण रजोगुणके विना रह नहीं सकता ॥ ९ ॥

प्रायःशरीरदोषाणामेकाधिष्ठीयमानानांसंन्निपातःसंसर्गोवा समानगुणत्वाद्दोषाहिदूषणैःसमानाः ॥ १० ॥

शारीरिक दोषोंका एक ही अधिष्ठान (रहनेका स्थान) होता है अर्थात् वात, पित्त और कफका अधिष्ठान शरीर है । इसलिये प्रायः उनका संसर्ग और सान्निपात होजाताहै । क्योंकि उष्ण, शीत आदि तथा रूक्ष, स्निग्ध आदि दोषोंके पृथक्

पृथक् गुण होनेपर भी दूषण करनेवाला गुण तीनों दोषोंमें समान होनेसे एक दोष दूसरेको भी दूषित करलेताहै। अर्थात् दूषण स्वभाववाले होनेसे दोष एक दूसरके सहायक होजातेहैं और दूषण स्वभावसे समानगुणवाले होजातेहैं ॥ १० ॥

अनुवन्ध्यानुवन्ध भेद ।

तत्रानुबन्ध्यानुबन्धकृतोविशेषः स्वतन्त्रोव्यक्तलिङ्गोयथोक्तसमुत्थानप्रशमोभवत्यनुबन्ध्यस्तद्विपरीतलक्षणोऽनुबंधः ॥११॥

उनमें अनुवन्ध्य और अनुवन्धकी विशेषता यह है कि अनुवन्ध्य स्वतन्त्र और प्रकटलक्षणवाला होताहै और उसका प्रकट होना तथा शमन होना भी यथोक्त प्रकारसे होताहै अर्थात् स्वतन्त्र होताहै। और अनुवन्ध परतन्त्र तथा छिपेहुए लक्षणवाला होताहै । इसके समुत्थान और प्रशमन भी पूर्वोक्त क्रमसे नहीं होते । तात्पर्य यह हुआ कि दूषित हुए वायुने अपने साथमें पित्तको भी दूषित करलिया । इस जगह वायु अनुवन्ध्य और पित्त अनुवन्ध होताहै । इसलिये वायु स्वतन्त्र और प्रकटलक्षणवाला तथा अपने कारणोंसे कुपित हुआ और वातनाशक द्रव्योंद्वारा शांतहोनेवाला होताहै । पित्त अनुवन्ध होनेसे परतंत्रादि गुणवाला जानना ॥११॥

सन्निपातादि दोष भेद ।

अनुबंध्यानुबंधलक्षणसमन्वितास्तत्रयदिदोषाभवंतितंत्रिकंसन्निपातमाचक्षतेद्वयंवासंसर्गम् । अनुबन्ध्यानुबन्धविशेषकृतस्तुबहुविधोदोषभेदः । एवमेषसंज्ञाप्रकृतोभिषजांदोषेषुच्व्याधिषुचनानाप्रकृतिविशेषाद्व्यूहः ॥१२ ॥

यदि किसी ज्वरमें–वात, पित्त, कफ अनुवन्ध्य तथा स्वतंत्र और प्रगट लक्षणवाले हों तो उन तीनों दोषोंके मिलापको सन्निपात कहा जाताहै यदि दो दोष स्वतन्त्र होकर और प्रगट लक्षणोंद्वारा मिले हुएहों तो उनको संसर्ग कहतेहैं । इसप्रकार अनुवन्ध्य और अनुवंध विषयके किये हुए रोगोंके वहुत प्रकारके भेद होजातेहैं इस तरह वैद्योंके कथन किये हुए संज्ञा और प्रकृतिके भेदसे दोषोंमें तथा व्याधियोंमें अनेक प्रकारके भेद होजाते हैं ॥ १२ ॥

अग्निभेद ।

अग्निषुतुशरीरेषुचतुर्विधोविशेषोबलभेदेन। तद्यथा–तीक्ष्णोऽ-

---

१ दोपभेदाविकारभेदमभिधाय शरीरस्थितेः प्रधानकारणस्याग्नेर्भेदमाह अग्निष्वित्यादि ।शरीरेष्विति सामान्यवचनेन सर्वशरीरगतानग्नीन् ग्राहयति । विवरणे तु जठराग्नेरेव "तीक्ष्णः सर्वापचारसहः" इत्यादिना यच्चातुर्विध्यमुक्तं, तज्जठराग्नितीक्ष्णतादिमूलत्वगग्न्यादितीक्ष्णत्वादेरेवेति ज्ञेयम् । वचनं हि– "तन्मूलास्ते हि तद्वृद्धिक्षयवृद्धिक्षयात्मकाः" इति । तीक्ष्णःसर्वापचारसहत्वेन प्रधानम् ।

मन्दः समो विषमइति । तत्रतीक्ष्णोऽग्निःसर्वापचारसहस्तद्विप-
रीतलक्षणोमन्दः । समस्तुखलुअपचारतः विकृतिमापद्यते
अनपचारतः प्रकृतावव‌तिष्ठते । समलक्षणविपरीतलक्ष-
णस्तुविषमइत्येतेचतुर्विधाअग्नयश्चतुर्विधानामेवपुरुषाणाम् ॥ १३ ॥

शारीरिक अग्निके बल भेदसे चार प्रकार होतेहैं । जैसे–तीक्ष्णाग्नि, मंदाग्नि, समाग्नि और विषमाग्नि । इनमें तीक्षणाग्नि सब प्रकारके कुपथ्योंको सहन करसकती है । और मंदाग्नि तीक्ष्णाग्निसे विपरीत लक्षणवाली होतीहै अर्थात् यह किंचित् कुपथ्यको भी सहन नहीं कर सकती । जो आग्नि कुपथ्यादि अपचार करनेसे विकृत होजाय और कुपथ्य न करनेसे अपनी ठीक अवस्थामें रहे उसको समाग्नि कहतेहैं । एवम् समाग्निसे विपरीत लक्षणवालीको विषमाग्नि कहतेहैं । इस प्रकार चार प्रकारके पुरुषोंकी चार प्रकारकी अग्नि होतीहैं ॥ १३ ॥

दोषोंकी साम्यावस्था या प्रकृति ।

तत्रसमवातपित्तश्लेष्मणांप्रकृतिस्थानां[1]समाभवन्तिअग्नयः ।
वातलानान्तुवाताभिभूतेऽग्न्यधिष्ठानेविषमाभवन्तिअग्नयः ।
पित्तलानान्तुपित्ताभिभूतेऽग्न्यधिष्ठानेतीक्ष्णाभवन्तिअग्नयःश्ले-
ष्मलानान्तुश्लेष्माभिभूतेह्यग्न्यधिष्ठानेमन्दाभवन्तिअग्नयः ।
तत्रकेचिदाहुर्नसमवातपित्तश्लेष्माणोजन्तवःसन्तिविषमाहा-
रोपयोगित्वान्मनुष्याणाम्, तस्माच्चकेचिद्वातप्रकृतयः केचित्
पित्तप्रकृतयः केचित्पुनःश्लेष्मप्रकृतयोभवन्तीति । तच्चानुपप-
न्नंकस्मात् कारणात्समवातपित्तश्लेष्माणंह्यरोगमिच्छन्तिभि-
षजः प्रकृतिश्चारोग्यम्, आरोग्यार्थाचभेषजप्रवृत्तिःसाचेष्टा-
रूपा, तस्माद्भवन्तिसमवातपित्तश्लेष्माणः । नतुखलुसन्ति
वातप्रकृतयःपित्तप्रकृतयः श्लेष्मप्रकृतयोवातस्यतस्याकिलदो-
षस्यहिअधिकभावात्सासादोषप्रकृतिरुच्यतेमनुष्याणाम् ॥ १४ ॥

इनमें वात, पित्त कफकी प्रकृतिस्थ साम्यावस्था रहनेसे अर्थात् अपनेरस्वभा-

१ समवातपित्तश्लेष्मणामित्युक्तेऽपि 'प्रकृतिस्थानाम्' इति पदं वृद्धानां समवातपित्तश्लेष्मणां प्रतिषेधार्थम् ।

वमें स्थित रहनेसे अग्नि सम रहतीहै । वातप्रधान मनुष्योंके वायुद्वारा अग्निस्थान व्याप्त होनेसे अग्नि विषम होती है ॥ यहांपर कोई कहते हैं कि वात, पित्त, कफ किसी मनुष्यके शरीरमें साम्यावस्थामें नहीं रहते क्योंकि सब मनुष्योंका आहार एक प्रकारका और वात, पित्त, कफको समान रखनेवाला नहीं होता । इसीलिये कोई मनुष्य वातप्रकृति कोई पित्तप्रकृति और कोई कफप्रकृतिवाले होतेहैं । सो यह कथन ठीक नहीं है क्योंकि जिसके शरीरमें वात,पित्त और कफ साम्यावस्थामें हैं अर्थात् अपने २ परिमाणमें स्थित हैं उन्हीं मनुष्योंको वैद्य आरोग्य अर्थात् निरोगी कहतेहैं । आरोग्यताही मनुष्योंकी प्रकृति है। आरोग्यताके लियेही औषध आदिकोंका प्रयोग किया जाता है इसीलिये वात, पित्त कफकी साम्यावस्थावाले मनुष्य ही आरोग्य कहे जाते हैं और उनको वातप्रकृति पित्तप्रकृति अथवा कफ-प्रकृति नहीं कहा जाता । जिस जिस दोषकी अधिकता जिस मनुष्यमें होती है उसको उसी दोषकी प्रकृतिवाला कहा जायगा ॥ १४ ॥

नचविकृतेषुदोषेषुप्रकृतिस्थत्वमुपपद्यतेतस्मान्नैताः प्रकृतयः सन्तिसन्तिनुखलुवातलाःपित्तलाःश्लेष्मलाश्चाप्रकृतिस्थास्तु तेज्ञेयाः ॥ १५ ॥

अब कहतेहैं कि यदि किसी मनुष्यके शरीरमें वायु अधिक हो तो उसको वात-प्रकृति नहीं कहना चाहिये क्योंकि प्रकृतिनाम अपने ठीक स्वभावमें स्थित रहनेका है । वायुकी अधिकता होनेसे वायुकी विकृति माननी चाहिये । इसलिये विकृत हुए दोषोंको प्रकृति नहीं कहना चाहिये । सो वातल, पित्तल, श्लेष्मल अर्थात् वातप्रधान कफप्रधान और पित्तप्रधान मनुष्य प्रकृतिस्थ नहीं होते ॥ १५ ॥

चार प्रकारके अन्नप्रणिधान ।

तेषान्तुखलुचतुर्विधानांपुरुषाणांचत्वार्य्यन्नप्रणिधानानिश्रेय-स्कराणि । तत्रसमसर्वधातूनांसर्वाकारसममधिकदोषाणान्तु त्रयाणांयथास्वदोषाधिक्यमभिसमीक्ष्यदोषप्रातिकूलयोगीनि त्रीणिअन्नप्रणिधानानिश्रेयस्कराणियावदग्नेःसमीभावात्,समे तुसममेवतुकार्य्यमेवंचष्टाभेषजप्रयोगाश्चापरे, तान्विस्तरेणानु-व्याख्यास्यन्ते । त्रयस्तुपुरुषाभवन्त्यातुरास्तेअनातुरास्तन्त्रा-न्तरीयाणांभिषजाम् । तद्यथा—वातलः श्लेष्मलः पित्तल इति ॥ १६ ॥

उन चार प्रकारके पुरुषोंके लिये अग्निके अनुसार चार प्रकारके ही आहार हितकारक होते हैं उनमें जिस मनुष्यके शरीरकी सब धातुयें साम्यावस्थामें हों तथा तीनों दोष पूर्णरूपसे बढे हुए हों उनमें तीनों दोषोंके लक्षणोंकी अधिकताको देखकर दोषोंके प्रतिकूल अर्थके करनेवाले अर्थात् दोषोंको साम्यावस्थामें लगानेवाले औषध अन्नपानादिकोंको दे अथवा यों कहिये कि जिस मनुष्यके शरीरमें वातादि कोई दोष बढा हुआ हो उसको साम्यावस्थामें करनेवाले अन्नपानादि देवे जब उस मनुष्यकी अग्नि दोषोंकी साम्यावस्था होनेसे समअवस्थामें आजाय तब उसको त्रिविध आहारोंको समरीतिपर उपयोग करावे। जिस प्रकार अन्नपान तथा अन्यान्य क्रिया और औषधादिक प्रयोग दोषोंको तथा अग्निको साम्यावस्थामें करनेके लिये किये जाने चाहिये उनका विस्तारपूर्वक आगे वर्णन करते हैं। तीन प्रकारके पुरुष रोगी होते हैं परन्तु अन्य शास्त्रोंके माननेवाले वैद्य उनको रोगी नहीं मानते । वह तीन प्रकारके पुरुष यह हैं । जैसे—वातप्रधान, पित्तप्रधान और कफप्रधान ॥ १६॥

तेषांविशेषाविज्ञानंवातलस्यवातनिमित्ताः पित्तलस्यपित्तनिमित्ताः श्लेष्मलस्यश्लेष्मनिमित्ताव्याधयः प्रायेणबलवन्तश्च ॥१७॥

उनका विशेष विज्ञान इस प्रकार है कि वातप्रधान मनुष्यको वातके रोग अधिक होतेहैं । पित्तप्रधान मनुष्यको पित्तके रोग अधिक होते हैं। तथा कफप्रधान मनुष्यको कफके रोग प्रायः अधिक होतेहैं ॥ १७ ॥

वातप्रकृतिके रोग ।

तत्रवातलस्यप्रकोपणोक्तान्यासेवमानस्याक्षिप्रंवातःप्रकोपमापद्यतेनतथेतरौ ॥ १८ ॥

इनमें वातप्रधान मनुष्यके शरीरमें वातकारक पदार्थोंको खानेसे वायु शीघ्र कोपको प्राप्त होता है । इस प्रकार पित्तकारक और कफकारक पदार्थोंको अधिक खानेसे वातप्रधान मनुष्यके शरीरमें पित्त और कफका कोप नहीं होता ॥ १८ ॥

सतस्यप्रकोपमापन्नोयथोक्तैर्विकारैः शरीरमुपतपातिबलवर्णसुखायुषामुपघाताय ॥ १९ ॥

वातप्रधान मनुष्यके शरीरमें वायुका कोप होनेसे—वायुके रोग उत्पन्न होकर शरीरको दुःखित कर देते हैं तथा बल, वर्ण, सुख और आयुको भी नष्ट कर डालते हैं ॥ १९ ॥

---

१ न तथेतरावीति। तस्यापि हेतुसेवयेत्यर्थः अन्यथा वातप्रकोपणसेवया पित्तश्लेष्मणोर्वृद्धिरेव नास्ति। यद्यपि विरूक्षनादयो वातप्रकोपकरास्तथापि वातजनितोन्मादविनाशकत्वेन चोक्ताः ।

वायुके जीतनेका उपाय।

तस्यावजयनम्-स्नेहस्वेदौविधियुक्तौमृदूनिचसंशोधनानिस्नेहो-ष्णमधुराम्ललवणयुक्तानितद्वदभ्यवहार्य्याण्युपनाहनोपवेष्ट-नोन्मर्दनपरिषेकावगाहनसंवाहनावपीडनवित्रासनविस्मापन-विस्मारणानिसुरासवविधानंस्नेहाश्चअनेकयोनयोदीपनीयपा-चनीयावातहरविरेचनीयोपहिताःशतपाकाःसहस्रपाकाःसर्वशः प्रयोगार्थाबस्तयोबस्तिनियमःसुखशीलताचेति॥ २०॥

उस मनुष्यके शरीरमें-वायुको जीतनेवाली स्नेहन और स्वेदन क्रिया विधिपूर्वक करे। एवम् चिकने, गरम, मधुर, खट्टे लवणयुक्त पदार्थोंद्वारा मृदु संशोधन करे। तथा चिकने, गर्म आदि आहार करावे और वातनाशक लेप,बंधन, मर्दन,परिषेक, अवगाहन, संवाहन और पीडन, वित्रासन,विस्मापन,विस्मारण, मद्य और आसव आदिकोंका तथा अनेक वातनाशक द्रव्योंका उपयोग करना चाहिये। एवम् वात-नाशक स्नेह और दीपन तथा पाचन एवम् वायुके हरनेवाले रेचक द्रव्योंसे शतपाकी तथा सहस्रपाकी घृतों और तैलोंका सेवन करावे। अथवा वातनाशक द्रव्यों द्वारा सौवार अथवा सहस्रवार पकाये हुए घृत तथा तैलों द्वारा बास्तिकर्म या अन्य प्रकारसे सुखदायक प्रयोग कर वायुको जीतना चाहिये॥ २०॥

पित्तका प्रकोप और जीतनेका क्रम।

पित्तलस्यापिपित्तप्रकोपणोक्तान्यासेवमानस्यक्षिप्रंपित्तंप्रकोप-मापद्यते, तथानेतरौ॥ २१॥

पित्तप्रधान मनुष्योंके शरीरमें पित्तकारक पदार्थोंके खानेसे पित्तका शीघ्र कोप होजाताहै तथा वात और कफका कोप इसप्रकार नहीं होता॥ २१॥

तदस्यप्रकोपमापन्नंयथोक्तैर्विकारैःशरीरमुपतपतिबलवर्णसुखा-युषामुपघाताय॥ २२॥

तब पित्तप्रधान मनुष्यके शरीरमें कोपको प्राप्त हुआ पित्त शरीरको पित्तके विकारोंसे तपायमान करता है तथा बल, वर्ण, सुख और आयुको भी नष्ट कर डालता है॥ २२॥

तस्यावजयनम्-सर्पिष्पानंसर्पिषाचस्नेहनमधश्चदोषहरणंमधुराति-क्तकषायशीतानाञ्चौषधानामभ्यवहार्य्याणामुपयोगोमृदुमधु-

रसुरभिशीतहृद्यानांगन्धानाञ्चोपसेवामुक्तामणिहारावलीना-ञ्चपवनशिशिरवारिसंस्थितानांधारणमुरसाक्षणेक्षणेस्रक्चन्द-नप्रियङ्गुकालीयमृणालंशीतवातवारिभिरुत्पलकुमुदकोकनदसौ-गन्धिकपद्मानुगतैश्चवारिभिराभिप्रोक्षणंश्रुतिसुखमृदुमधुरमनोऽ-नुगानाञ्चगीतवादित्राणांश्रवणञ्चाभ्युदयानांसुहृद्भिश्चसंयोगःसं-योगश्चइष्टाभिःस्त्रीभिःशीतोपाहितांशुकस्रग्धारिणीभिर्निशाक-रांशुशीतप्रवातहर्म्यवासःशैलान्तरपुलिनशिशिरसदनवसन-व्यजनपवनानांसेवारम्याणाञ्चोपवनानांसुखशिशिरसुरभिमा-रुतोपवातानामुपसेवनंसेवनञ्चनलिनोत्पलपद्मकुमुदसौगन्धि-कपुण्डरीकशतपत्रहस्तानांसौम्यानाञ्चसर्वभावानामिति ॥२३॥

उस पित्तको जीतनेके लिये पित्तनाशक घृतका पीना तथा पित्तनाशक घृतोंद्वारा स्नेहन करना, विरेचन कराना एवम् मधुर, तिक्त, कषाय, शीतल औषधियोंका सेवन करना तथा मृदु, मधुर, सुगंधित, शीतल हृदयको प्रिय ऐसे आहारोंका सेवन करना सुगंधिका लेना तथा चंदन आदि शीतल गंधोंका लगाना, मोती और मणियोंकी माला पहिनना, शीतल पवन तथा शीतल जलके छींटे छातीपर लेना, क्षणक्षणमें चंदन, अगर, प्रियंगु, कमलकी डण्डी, शीतल और सुगंधित कमल कुमोदिनी, कोकनद, कल्हार आदिक कमलोंको शीतल जल और पवनसे ठण्डे करके उनसे शीतल जल अपने शरीरपर छिडकना, कानोंको सुखदायक मृदु मधुर, मनोहर गीत और बाजोंका सुनना, उत्तम शब्दोंको सुनना अपने प्यारे मित्रोंसे मिलना शीतल सुगन्धित पुष्पमाला आदि धारण कियेहुए सुशोभित स्त्रियोंसे सहवास करना शीतल वायुयुक्त चंद्रमाकी चांदनीको महलकी छतपर लेटकर सेवन करना, पहाडमें बहनेवाली नदियोंके किनारे तथा ठण्डे मकानोंमें रहना शीतल वस्त्र धारण करना शीतल पंखेकी पवन लेना, रमणीय सुगंधित शीतल बागोंमें शीतल सुगंधित पवनका सेवन करना, नलिनी, उत्पल, पद्म, कुमुद, कल्हार पुण्डरीक, शतपत्र आदि पुष्पोंको धारण किये सब प्रकारके सौम्यभावोंका सेवन करना पित्तके कोपको शान्त करता है ॥ २३ ॥

कफका प्रकोप और जीतनेका क्रम ।

श्लेष्मलस्यापिश्लेष्मप्रकोपणोक्तान्यासेवमानस्याक्षिप्रंश्लेष्मा

प्रकोपमापद्यते, नतथेतरौदोषौ ॥ २४ ॥ तदस्यप्रकोपमापन्नों यथोक्तैर्विकारैःशरीरमुपतपतिबलवर्णसुखायुषामुपघाताय॥२५॥

कफप्रधान मनुष्योंके शरीरमें—कफकोपकारक पदार्थोंके सेवनसे कफ शीघ्र प्रकोपको प्राप्त होजाताहै । उस प्रकार वात, पित्त नहीं होते । फिर इसके शरीरमें यह कोपको प्राप्त हुआ कफ अपने विकारों द्वारा शरीरको कष्ट देता है तथा बल, वर्ण सुख और आयुको भी नष्ट कर डालता है ॥ २४ ॥ २५ ॥

तस्यावजयनम्-विधियुक्तानितीक्ष्णोष्णानिसंशोधनानिरूक्षप्रायाणिचाभ्यवहार्य्याणिकटुतिक्तकषायोपहितानितथैवधावनलंघनप्लवनपरिसरणजागरणानियुद्धव्यवायव्यायामोन्मर्दनस्नानोत्सादनानिविशेषतस्तीक्ष्णानांदीर्घकालस्थितानांमद्यानामुपयोगःसर्वशश्चोपवासस्तथोष्णवासःसधूमपानःसुखप्रतिषेधश्चसुखार्थमेवेति ॥ २६ ॥

उस कफके जीतनेके लिये अनेक प्रकारके विधिपूर्वक तीक्ष्ण और उष्ण संशोधनोंको करे और प्रायः रूक्ष पदार्थोंका तथा कटु, तिक्त, कषाय रसवाले द्रव्योंका सेवन करे । एवम् भागना, लंघन करना, उछलना, कूदना, परिसर्पण करना,जागना तथा कुश्ती, मैथुन, व्यायाम, मर्दन,स्नान और उत्सादन आदिका उपयोग करना विशेषतासे तीक्ष्ण और पुराने मद्यका सेवन करना, सब प्रकारसे उपवास करना गर्म स्थानोंमें रहना, गर्म वस्त्र पहनना, धूम्रपान करना, आलस्यके नष्ट करनेवाले पदार्थोंका उपयोग करना चाहिये इनके करनेसे कफके विकार नष्ट होतेहैं ॥ २६ ॥

अध्यायका उपसंहार ।

भवतिचात्र । सर्वरोगविशेषज्ञः सर्वकार्य्यविशेषवित् ।
सर्वभेषजतत्त्वज्ञोराज्ञःप्राणपतिर्भवेत् ॥ २७ ॥

यहांपर कहतेहैं कि,संपूर्ण रोगविशेषको जाननेवाला तथा संपूर्ण कार्य विशेषोंको समझनेवाला एवम् संपूर्ण औषधियोंके तत्त्वको जाननेवाला वैद्य राजाओंका प्राणपति होताहै ॥ २७ ॥

---

१ श्लेष्माऽवजयनार्थ—रूक्षस्यैव हितत्वेन रूक्षाणीति वक्तव्ये यद्रूक्षप्रायाणीति निगदितं तदत्यर्थरूक्षान्नस्य वातानुगुणत्वेन धात्वपोषकत्वेन चासेव्यत्वं दर्शयति ।

अध्यायका संक्षेप ।

तत्र श्लोकाः ।

प्रकृत्यन्तरभेदेनरोगानीकविकल्पनम् । परस्पराविरोधश्चसामान्यंरोगदोषयोः॥२८॥ दोषसंख्याविकाराणामेकदोषप्रकोपनम् । जरणंप्रतिचिन्ताचकायाग्नेर्धुक्षणानिच ॥ २९ ॥ नराणांवातलादीनांप्रकृतिस्थापनानिच । रोगानीकेविमानेऽस्मिन् व्याहृतानिमहर्षिणा ॥ ३० ॥

इति श्रीचरकसंहितायां विमानखण्डे रोगानीकं विमानम् ।

अध्यायके उपसंहारमें यहांपर श्लोक हैं । इस रोगानीक विमाननामक अध्यायमें प्रकृतिके भेद, रोगसमूहोंके विभाग, रोगोंका परस्पर अविरोध,रोगसामान्यता तथा दोषसामान्यता एवम् दोषों और विकारोंकी संख्या एक२ दोषका प्रकोपन, भोजनके पचनेकी अवस्था, जठराग्निकी चैतन्यता, वातप्रधान आदि मनुष्योंका प्रकृतिस्थ करना यह सब महर्षि आत्रेयजीने कथन कियाहै ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥

इति श्रीमहर्षिचरक० वि० स्था० भाषाटीकायां रोगानीकं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः ।

अथातो व्याधितरूपीयंविमानं व्याख्यास्याम इति हस्माहभगवानात्रेयः[1] ॥

अब हम व्याधितरूपीय विमानकी व्याख्या करते हैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहनेलगे ।

रोगीके भेद ।

द्वौपुरुषौव्याधितरूपौभवतः, तद्यथा--गुरुव्याधितएकःसत्त्वबलशरीरसम्पदुपेतत्वाल्लघुव्याधितइवदृश्यतेलघुव्याधितोऽपरःसत्त्वादीनामधमत्वाद्गुरुव्याधितइवदृश्यते ॥ १ ॥

---

१ व्याधिं प्रतिपाद्य व्याधितस्य भेदं चिकित्सोपयोगितया प्रतिपादयितुं तत्प्रसंगाच्च कृमीन् प्रतिपादयितुं व्याधितरूपीयोऽभिधीयते ।

दो प्रकारके पुरुष व्याधितरूप अर्थात् रोगी देखनेमें आते हैं । उनमें एक तो इस प्रकारके होते हैं कि अत्यन्त व्याधियुक्त होनेपर भी सत्व, बल और शारीरिक सम्पत्तिके सामर्थ्ययुक्त होनेसे थोडी व्याधिवाले दिखाई देते हैं।दूसरे इस प्रकारके होते हैं कि जो थोडी व्याधियुक्त होनेपर भी सत्व, बलादिकोंकी हीनतासे भारी व्याधिवाले दिखाई देते हैं ॥ १ ॥

अज्ञानियोंका भ्रम ।

तयोरकुशलाःकेवलंचक्षुषैवरूपं दृष्ट्वाऽव्यवस्यन्तोऽव्याधिगुरुला-घवेविप्रतिपद्यन्ते।नहिज्ञानावयवेनकृत्स्नेज्ञेयेज्ञानमुत्पद्यते ॥२॥

इन दोनों प्रकारके पुरुषोंकी चिकित्सा करते समय अनभिज्ञ वैद्य केवल नेत्रोंसे रोगीकी आकृतिको देखकर ही व्याधिके गौरव और लाघवका निश्चय मान लेते हैं । पर वह रोगके यथार्थ ज्ञानको सम्पूर्ण रूपसे नहीं जान सकते ॥ २ ॥

विप्रतिपन्नास्तुखलुरोगज्ञानेउपक्रमयुक्तिज्ञानेचअपिविप्रतिप-द्यन्ते।तेयदागुरुव्याधितंलघुव्याधितरूपमासादयन्तितदात-मल्पदोषंमत्वासंशोधनकालेऽस्मैमृदुसंशोधनंप्रयच्छन्तोभूयए-वास्यदोषमुदीरयन्ति । यदातुलघुव्याधितंगुरुव्याधितरूपमा-सादयन्तितंमहादोषंमत्वासंशोधनकालेऽस्मैतीक्ष्णंसंशोधनंप्र-यच्छन्तोदोषानतिनिर्हृत्यशरीरमस्यक्षिण्वन्ति ॥ ३ ॥

रोगका यथार्थ ज्ञान न होनेसे उस रोगकी चिकित्सा भी मूर्खतासे करने लगते हैं । जब वह किसी भारी व्याधिवाले मनुष्यके सत्व, बल शरीर आदिको देखकर व्याधिको लघु मान लेते हैं तब रोगीको अल्प दोषवाला समझकर वहुत नर्मशो-धन आदि करते हैं । ऐसा करनेसे दोषोंको उलटा उत्तेजित कर देते हैं । जब यह अनभिज्ञ किसी लघु व्याधिवाले मनुष्यको उसका रंगढंग देखकर भारी व्याधि-वाला मानलेते हैं तो उसको तीक्ष्ण संशोधनादि प्रयोग करते हैं जिससे दोषोंको अत्यन्त हरण करके शरीरको क्षीण कर देते हैं ॥ ३ ॥

एवमवयवेनज्ञानस्यकृत्स्नेज्ञेयेज्ञानमितिमन्यमानाःस्खलन्ति, विदितवेदितव्यास्तुभिषजःसर्वंसर्वथायथासम्भवंपरीक्ष्यंपरी-क्ष्याध्यवस्यन्तोनक्वचनाविप्रतिपद्यन्ते, यथेष्टमर्थमभिनिर्वर्त्त-यन्तिचेति ॥ ४ ॥

केवल दृष्टिमात्रसेही हमने सम्पूर्ण रोगकी यथार्थताको समझ लियाहै ऐसा माननेवाले मूर्ख वैद्य चिकित्साके मार्गसे पतित होजाते हैं । सुज्ञ वैद्य तो ज्ञातव्य विषयको यथोचित रीतिपर जानकर संपूर्ण भागोंमें सर्वथा उचित रीतिपर परीक्षा करके व्याधिका यथार्थ निश्चय कर लेते हैं । तब उचित रीतिसे चिकित्सा करनेमें प्रवृत्त होते हैं । इसी प्रकार चिकित्सा करते हुए किसी स्थानमें भी विफल नहीं होते अर्थात् अपने कार्य्यमें कहीं भी निष्फलताको प्राप्त नहीं होते किन्तु अपने अभीष्ट कार्यको साधन कर लेते हैं ॥ ४ ॥

तत्रश्लोकाः ।

सत्त्वादीनांविकल्पेनव्याधितंरूपमातुरे । दृष्ट्वाविप्रतिपद्यन्ते बालाव्याधिबलाबले ॥ ५ ॥ तेभेषजप्रयोगेनकुर्वन्त्यज्ञानमोहिताः । व्याधितानांविनाशायक्लेशायमहतेऽपिवा ॥ ६ ॥

यहांपर श्लोक हैं-जो मूर्ख वैद्य सत्वादिकोंके भेदसे ही रोगीके रूपको देखकर व्याधिका बलाबल समझ लिया मान लेते हैं और उसीप्रकार चिकित्सा करने लगजाते हैं वह अज्ञानसे मोहित हुए वैद्य औषधियोंके प्रयोगद्वारा रोगी मनुष्योंको महान् कष्ट देते हैं अथवा मृत्युको प्राप्त कर देते हैं ॥ ५ ॥ ६ ॥

प्राज्ञास्तुसर्वमाज्ञायपरीक्ष्यमिहसर्वथा ।
नस्खलन्तिप्रयोगेषुभेषजानांकदाचन ॥ ७ ॥

बुद्धिमान् वैद्य तो संपूर्ण विषयोंको जानकर तथा सर्वथा संपूर्णरूपसे परीक्षा करके तदनन्तर औषधियोंका यथोचितरूपसे प्रयोग करतेहैं इसीलिये कभी भी चिकित्साक्रममें धोखा नहीं खाते ॥ ७ ॥

इतिव्याधितरूपाधिकारेश्रुत्वाव्याधितरूपसंख्याग्रसम्भवंव्याधितरूपहेतुविप्रतिपत्तौचकारणंसापवादंसम्प्रतिपत्तिकारणंश्चानपवादंनिशम्यभगवन्तमात्रेयमग्निवेशोऽतःपरंसर्वाक्रिमीणांपुरुषसंश्रयाणांसमुत्थानस्थानसंस्थानवर्णनामप्रभावाचिकित्सितविशेषानपप्रच्छोपसंगृह्यपादावथास्मैप्रोवाचभगवानात्रेयः। इहखलुअग्निवेश!विंशतिविधाःक्रिमयःपूर्वमुक्तानानाविधेनप्रविभागेनान्यत्रसहजेभ्यः ॥ ८ ॥

इसप्रकार व्याधितरूपीय अधिकारमें व्याधिके दो प्रकारके रूपोंकी संख्या, उनमें होनेवाला विषय, व्याधितरूपके कारण उनमें वैद्यके विप्रतिपन्न अर्थात् न समझनेके कारण साथही अपवादके स्खलित होनेके कारण एवम् योग्य वैद्यद्वारा निरपवाद चिकित्सा होनेके कारणोंको सुनकर अग्निवेश आत्रेय भगवान्के दोनों चरणोंको पकडकर पूछनेलगे कि हे भगवन्! शरीरमें होनेवाले सब प्रकारके कृमियोंके निदान, स्थान, आकृति, वर्ण नाम और प्रभाव तथा चिकित्साका वर्णन कीजिये। यह सुनकर अग्निवेशके प्रति आत्रेय भगवान् कहनेलगे कि हे अग्निवेश! सहज कृमियोंके सिवाय अन्य वीस प्रकारके कृमियोंका विभागपूर्वक अलग २ पहिले कथन करचुकेहैं ॥ ८ ॥

४ प्रकारके सहजकृमि।

तेपुनःप्रकृतिभिर्भिद्यमानाश्चतुर्विधास्तद्यथा-पुरीषजाःश्लेष्मजाःशोणितजामलजाश्चेति। तत्रमलोबाह्यश्चाभ्यन्तरश्च,तत्र बाह्येमलेजातान्मलजान्संचक्ष्महे, तेषांसमुत्थानंमृजावर्जनं, स्थानंकेशश्मश्रुलोमपक्ष्मवासांसि,संस्थानमणवस्तिलाकृतयोबहुपादावर्णस्तुकृष्णःशुक्लश्च,नामानिचैषांयूकाःपिपीलिकाश्चेति;प्रभावःकण्डूजननंकोठपिडकाभिनिर्वर्त्तनञ्चचिकित्सितन्त्वेषामपकर्षणं मलोपघातोमलकराणाञ्चभावानामनुपसेवनमिति ॥ ९ ॥

उनमें सहज कृमि प्रकृतिभेदसे चार प्रकारके होतेहैं। जैसे पुरीषज, श्लेष्मज, शोणितज और मलज। उनमें मल दो प्रकारका होताहै। एक बाह्यमल और द्वितीय भीतरीमल उनमें बाहरके मलमें उत्पन्न होनेवाले कृमियोंका वर्णन करतेहैं। बाहिरके कृमि उत्पन्न होनेका कारण शरीरको शुद्ध न रखना है अर्थात् शरीरको शुद्ध न रखनेसे बाह्यकृमि उत्पन्न होतेहैं। केश, श्मश्रु, लोम, पक्ष्म और वस्त्र यह बाह्य कृमियोंके स्थान हैं। इनका आकार और स्वरूप बहुत छोटा और तिलके समान होताहै तथा बहुतसे पांवयुक्त और काले तथा सफेद वर्णके होतेहैं। नाम इनके यूका और पिपीलिका होतेहैं। यह कृमि खुजली, चकत्ते और फुंसियोंको उत्पन्न करतेहैं यही इनका प्रभाव है। यत्न इनका कंघी आदिसे खींचकर निकालदेना, शारीरिक मैलको दूर करना मलके उत्पन्न करनेवाले उपयोगोंको नहीं करना यही इनकी चिकित्सा है आमलोग इनको जूआं और लीख कहते हैं ॥ ९ ॥

रुधिरजकृमि ।

शोणितजानान्तुकुष्ठैःसमानंसमुत्थानं, स्थानंरक्तवाहिन्योधमन्यः,संस्थानमणवोवृत्ताश्चापादाश्चसूक्ष्मत्वाच्चैकेभवन्त्यदृश्याः वर्णस्ताम्रः नामानिकेशादालोमादालोमद्वीपाःसौरसाऔदुम्बराजन्तुमातरइति।प्रभावःकेशश्मश्रुनखलोमपक्ष्मापध्वंसोव्रणगतानाञ्चहर्षकण्डूतोदसंसर्पणानिअतिवृद्धानाञ्चत्वक्शिरास्नायुमांसतरुणास्थिभक्षणमिति, चिकित्सितमप्येषांकुष्ठैःसमानं तदुत्तरकालमुपदेक्ष्यामः ॥ १० ॥

शोणितज अर्थात् रक्तसे उत्पन्न होनेवाले कृमियोंका समुत्थान कुष्ठके समान जानना रक्तवाहिनी धमनियोंमें इनके रहनेका स्थानहै।पांवरहित और वहुत वारीक होतेहैं । अत्यन्त सूक्ष्म होनेके कारण दिखाई नहीं देते । तांबेके समान उनका वर्ण होताहै । केशाद,लोमाद,लोमद्वीप,सौरस औदुम्बर और जन्तुमाता ये इनके नाम हैं।केश,मोंछ,दाढी,नाखून राम इनको नष्ट करना इनका प्रभाव है । जव यह किसी जख्म (व्रण) में पड जातेहैं तो उस व्रणमें हर्ष, खुजली, तोद और इधरउधर चलनेसे सरसराहट उत्पन्न होतेहैं । जव यह अत्यन्त वढजातेहैं तो त्वचा, शिरा, स्नायु, मांस और नरम हड्डियें इनको खातेहैं । चिकित्सा इनकी कुष्ठरोगके समान करनी चाहिये उसको आगे कथन भी करेंगे ॥ १० ॥

कफजकृमि ।

श्लेष्मजाःक्षीरगुडतिलमत्स्यानूपमांसपिष्टान्नपरमान्नकुसुम्भस्नेहाजीर्णपूतिक्लिन्नसंकीर्णविरुद्धासात्म्यभोजनसमुत्थानाः । तेषामामाशयःस्थानं, प्रभावस्तुतेप्रवर्द्धमानास्तूर्द्धमधोवाविसर्पन्ति, उभयतोवा । संस्थानवर्णविशेषास्तुश्वेताःपृथुब्रध्नसंस्थानाः केचित्, केचिद्वृत्तपरिणाहाःगण्डूपदाकृतयश्च श्वेताः । श्वेतास्ताम्रावभासाः, केचिदणवोदीर्घास्तन्त्वाकृतयःश्वेताः। तेषांत्रिविधानांश्लेष्मानिमित्तानांक्रिमीणांनामानिअन्त्रादाः, उदरादाः,हृदयादाश्चरवो,दर्भपुष्पाः, सौगन्धिकाः, महागुदाश्चइति । प्रभावोहृल्लासास्यसंस्रवणमरोचकाविपाकोज्व-

रोमूर्च्छाजृम्भाक्षवथुरानाहोऽङ्गमर्दः छर्दिः कार्श्यंपारुष्यमिति ११॥

श्लेष्मज कफजनित कृमियोंके निदानको कहतेहैं। दूध, गुड, तिल, मछली, अनूपदेशके जीवोंका मांस, पीठी अथवा मैदा आदि पिसेहुए अन्न खीर आदि उत्तम पकवान कुसुम्भका तेल, अजीर्णके करनेवाले सडेबुसे क्लेदकारक, संकीर्ण तथा विरुद्ध पदार्थोंके सेवन करनेसे एवम् असात्म्य पदार्थोंके सेवन करनेसे श्लेष्मज कृमि उत्पन्न होतेहैं। आमाशय इनके रहनेका स्थानहै। जब यह बढजातेहैं तो ऊपर अथवा नीचे या दोनों तरफ फिरते हैं। वर्ण विशेष इनका सफेद होताहै। आकारमें गोल, लम्बे होतेहैं। कोई केंचुएके समान आकारवाले होतेहैं। कोई श्वेत, कोई ताम्रवर्णके, कोई बहुत छोटे, कोई बहुत लम्बे धागेके आकारके होतेहैं उन तीन प्रकारके कफजनित कृमियोंके नाम यह होतेहैं। जैसे अंत्राद, उदराद, हृदयाद, चुरू, दर्भपुष्प, सौगंधिक, महागुद। प्रभाव इनका जी मचलाना, मुखसे पानी बहना, अरुचि, अन्नका परिपाक न होना, ज्वर, मूर्च्छा, जंभाई, छींक, अफारा, अंगमर्द, छर्दि, शरीरका कृश होना एवम् शरीर अथवा कोष्ठका कठोर होनाहै। यह कफजनित कृमियोंका कार्य वर्णन कियागया ॥ ११ ॥

विष्ठाके कृमि।

पुरीषजास्तुल्यसमुत्थानाःश्लेष्मजैस्तेषांसंस्थानंपक्वाशयः । प्रभावास्तुतेप्रवर्द्धमानास्त्वधोविसर्पन्ति। यस्यपुनरामाशयाभिमुखास्युस्तदनन्तरंतस्योद्गारानिःश्वासाःपुरीषगंधिनःस्युः । संस्थानवर्णविशेषास्तुसूक्ष्मवृत्तपरीणाहाः श्वेतादीर्घोर्णांशुकसङ्काशाः केचित्केचित्पुनःस्थूलवृत्तपरीणाहाः श्यावनीलहरितपीताः। तेषांनामानिककेरुकामकेरुकालेलिहाःशालूनकाः सौसुरादाश्चेति । प्रभावःपुरीषभेदःकार्श्यंपारुष्यंलोमहर्षाभिनिर्वर्त्तनञ्च । तत्रवास्यगुदमुखंपरितुदन्तःकण्डूश्चोपजनयन्तोगुदमुखंपर्य्यासते । सजातहर्षोगुदान्निष्क्रमणमतिवेलं करोति ॥ १२ ॥

पुरीष अर्थात् मलजनित कृमियोंका निदान कफके कृमियोंके सदृश जानना। इनके रहनेका स्थान पक्वाशय (मलाशय) है जब यह मलके कृमि अत्यन्त बढजातेहैं तो नीचेकी ओर गमन करतेहैं तथा आमशयकी ओर ऊपरको गमन करतेहैं इनके ऊपरको गमन करनेसे डकार और श्वासमें विष्ठाकीसी गन्ध आने लगतीहै।

इनका आकार और वर्ण विशेष सूक्ष्म, गोल तथा श्वेत लम्बा, ऊनके धागेके समान होतेहै । इनमें कोई बडे स्थूल, कोई वत्तीके समान आकारवाले तथा काले, पाल, नीले एवम् हरेवर्णके होतेहैं, नाम इनके इस प्रकार हैं ककेरुक, मकेरुक, लेलिह्य, शालूवक और सौसुराद। प्रभाव अर्थात् कार्य इनका इस प्रकार है। मलका पतला होना, शरीरका कृश होना, कोष्ठका कठोर होना और रोमहर्ष होना तथा जब यह गुदाके मुखपर आते हैं तो गुदामें सूई चुभनेकीसी पीडा और खुजलीको उत्पन्न करतहुए गदाके मुखमें व्यापक रहतेहैं। गुदासे वाहर निकलते समय सरसराहटसी उत्पन्न करतेहैं। यह पुरीषज कृमियोंके लक्षण हैं ॥ १२ ॥

इत्येषश्लेष्मजानांपुरीषजानाञ्चक्रिमीणांसमुत्थानादिविशेषः। चिकित्सितन्तुखल्वेषांसमासेनोपदिश्यपश्चाद्विस्तरेणोपदेक्ष्यते तत्रसर्वक्रिमीणामपकर्षणमेवादितःकार्य्यम् । ततः प्रकृतिविघातोऽनन्तरं निदानोक्तानांभावानामनुपसेवनमिति ॥ १३ ॥

इस प्रकार कफजनित और पुरीषजनित कृमियोंके निदान आदिकोंको कथन कियागयाहै । इनकी संक्षेपसे चिकित्साका कथन करके फिर विस्तारपूर्वक वर्णन करेंगे । सब प्रकारके कृमियोंमें कृमियोंको निकाल डालना मुख्य कार्य है । फिर कृमियोंको नाश करनेवाले द्रव्यों द्वारा कृमियोंका प्रकृति विघात अर्थात् कृमिनाशक द्रव्योंद्वारा उनको नष्ट कर तदनन्तर कृमियोंको उत्पन्न करनेवाले कारणोंको त्याग देना चाहिये ॥ १३ ॥

क्रिमिचिकित्सा ।

तत्रापकर्षणंहस्तेनाभिमृश्यापनयनमुपकरणवतामुपकरणेन वा । स्थानगतानान्तुक्रिमीणांभेषजेनापकर्षणंन्यायतश्चतुर्विधम् । तद्यथा, शिरोविरेचनंवमनंविरेचनमास्थापनमित्यपकर्षणविधिः ॥ १४ ॥

अब कृमियोंके अपकर्षण अर्थात् निकालनेका क्रम कथन करतेहैं । कृमियोंको हाथसे मसलकर अथवा पकडकर या किसी यंत्रद्वारा दवाकर निकाल देना अथवा चूर देनाचाहिये । जो कृमि आमाशय आदि तथा अन्य किसी भीतरी स्थानमें हों उनको औषधी द्वारा निकाल देनाचाहिये । औषधी द्वारा कृमियोंको निकालनेक

चार विधि हैं जैसे शिरोविरेचन, वमन, विरेचन और आस्थापन इसप्रकार कृमियोंका अपकर्षण अर्थात् निकालनेकी विधिका कथन कियागया ॥ १४ ॥

प्रकृतिविघातस्त्वेषांकटुतिक्तकषायक्षारोष्णानांद्रव्याणामुपयोगोयच्चान्यदपिकिंचिच्छ्लेष्मपुरीषप्रत्यनीकभूतंतस्यादिति प्रकृतिविघातः ॥ १५ ॥

अब प्रकृतिविघातको कहतेहैं कटु, तिक्त, कषाय, क्षार तथा उष्ण द्रव्योंका उपयोग करना और इनके सिवाय अन्य भी जो द्रव्य कफ और मलके विरोधी हों अथवा शुद्ध करनेवाले हों उनका सेवन करना एवम् कृमियोंके उत्पन्न करनेवाले कारणोंको नष्ट करनेवाले द्रव्योंका सेवन करना कृमियोंका प्रकृतिविघात कहाजाताहै ॥ १५ ॥

अनन्तरंनिदानोक्तानांभावानामनुपसेवनंयदुक्तंनिदानविधौतस्यवर्जनंतथाविधप्रायाणाञ्चापरेषांद्रव्याणामितिलक्षणतश्चिकित्सितमनुव्याख्यातमेतदेवपुनर्विस्तरेणोपदेक्ष्यते ॥ १६ ॥

इसके अनन्तर निदानमें कहेहुए भावोंका अर्थात् कृमियोंके उत्पन्न करनेवाले पदार्थोंका सेवन नहीं करना और इनके उत्पन्न करनेवाले भावोंको त्याग देना निदानमें कथन कियेहुए भावोंके सिवाय और भी जो कृमियोंके उत्पन्न करनेके कारण हों उनको त्याग देनाचाहिये । यह कृमियोंकी संक्षेपसे चिकित्सा कथन कीगईहै अब विस्तारसे कथन करतेहैं ॥ १६ ॥

पेटके कीडोंकी चिकित्सा ।

अथैनंक्रिमिकोष्ठमातुरमग्रेषड्रात्रंसप्तरात्रंवास्नेहस्वेदाभ्यामुपपाद्यश्वोभूतेएनंसंशोधनंपाययितास्मीति,क्षीरदधिगुडतिलमत्स्यानपमांसपिष्टान्नपरमान्नकुसुम्भस्नेहसम्प्रयुक्तैर्भोज्यैःसायंप्रातरुपपादयेत्समुदीरणार्थञ्चैवक्रिमीणांकोष्ठाभिसरणार्थञ्च॥१७॥ भिषगथव्युष्टायांरजन्यांसुखोषितंसुप्रजीर्णभक्तञ्चविज्ञायास्थापनवमनविरेचनैस्तदहरेवोपपादयेत् ॥ १८ ॥

जिस मनुष्यके कोष्ठमें कृमि हों उसको पाहिले छः दिन या सात दिन स्नेहन और स्वेदन करना चाहिये।फिर स्नेहन स्वेदन करके जब देखे कि कल प्रातःकाल संशोधन करावेंगे तो प्रथम दिन रात्रिके समय दूध, दही, गुड, तिल,मछली,अनू-

पसंचारी जीवोंका मांस, पिष्टान्न, खीर आदि पकवान, कसूंमेकी चिकनाई आदि खूब पेटभर खिला देना चाहिये ऐसा करनेसे सब कृमि इधर उधरसे आकर अपने स्थानोंको छोडकर कोष्ठमें आजाते हैं और आहार द्रव्यके साथ मिलकर कुलबुलानें लगते हैं फिर रात्रि बीतजानेपर प्रातःकाल ही अन्नको पाचन हुआ जान योग्य वैद्य आस्थापन, वमन, तथा विरेचन द्वारा कृमियोंको निकाल डाले ॥ १७॥१८॥

उपपादनीयश्चेत्स्यात्सर्वान्परीक्ष्याविशेषान् समीक्ष्यसम्यक् । अथाहरेतिब्रूयान्मूलकसर्षपलशुनकरञ्जशिग्रुमधुशिग्रुखरपुष्प-भूस्तृणसुमुखसुरसकुठेरक 'गण्डी' कण्डीरकालमालकपर्णा-सक्षवकफाणिज्जकानि । सर्वाणिअथवायथालाभम् । तानि आहृतानिअभिसमीक्ष्यखण्डशश्छेदयित्वाप्रक्षाल्यपानीयेनसु-प्रक्षालितायांस्थाल्यांसमवाप्यगोमूत्रेणार्द्धोदकेनाभ्यासिच्य साधयेत् । सततमवघट्टयेत्दर्व्यातस्मिन्शीतीभूतेतुउपयुक्त-भूयिष्ठेऽम्भासिगतरसेषुऔषधीषुस्थालीमवतार्य्यसुपरिपतंकषा-यंसुखोष्णंमदनफलपिप्पलीविडङ्गकल्कैतलोपहितंसर्जिकाल-वणमभ्यासिच्यबस्तौविधिवदास्थापयेदेनम् ॥ १९ ॥

यदि वह रोगी फिर भी ऐसा करनेके योग्य हो तो सब प्रकारसे उसकी परीक्षा करके तथा सम्पूर्ण विशेषरूपसे जानकर उचित रीतिपर फिर संशोधन करे । अब संशोधन द्रव्योंको कथन करते हैं—मूली, सरसों,लहसुन,करंज,सहिंजना,अजवायन, भूतृण, सुमुख, (तुलसीका भेद) सुफेद तुलसी, वनतुलसी, गण्डीर,कालमालक, पर्णास, क्षवक, और फणिज्झक (मरुएके भेद) इन सबको अथवा जो मिलसके उनको विधिवत् परीक्षा कर छोटे२टुकडे कर डाले फिर पानीके साथ धोकर शुद्ध वर्तनमें डाल दे और उस वर्तनमें गोमूत्र और गोमूत्रसे आधा पानी मिलाकर पकावे और कडछीसे बराबर हिलाता जावे । जब सब पानी सूखकर गोमूत्र भी चतुर्थभाग रहजाय तब उसको उतारकर कपडेसे छान डाले फिर उस शुद्ध स्वच्छ काढेमें मैनफल, पीपल और वायविडंग इनका कल्क मिला दे तथा सज्जीखार और सेंधानमकको थोडा डाले फिर उसमें तेल और उचित समझे तो थोडा गर्म जल मिलाकर सहती २ आस्थापन, बस्तिकर्म करे ॥ १९ ॥

संशोधन औषधकी विधि ।

तथार्कालर्ककुटजाढकीकुष्ठकैटर्य्यकषायेणतथाशिग्रुपीलुकुस्तु-

म्बुरुकटुकसर्षपकषायेणतथामलकशृङ्गवेरदारुहरिद्रापिचुमर्द-
कषायेणमदनफलसंयोगसंयोजितेनत्रिरात्रंसप्तरात्रंवास्थाप-
येत् ॥ २० ॥

अथवा इसी प्रकार लाल तथा सफेद आक, कुडा, अरहर, कूठ और कायफल इनके क्वाथमें मैनफलका कल्क मिलाकर आस्थापन वस्तिकर्म करे। अथवा सहिंजना, पीलु, धानिया, कुटकी और सरसोंके काढेमें अथवा इसीप्रकार आमले, सोंठ, दारुहल्दी, नीमकी छालके काढेमें मैनफलका कल्क मिलाकर तीन रात्रि अथवा सात रात्रि आस्थापन वस्तिकर्म करे ॥ २० ॥

प्रत्यागतेचपश्चिमेबस्तौप्रत्याश्वस्तंतदहरेवोभयतोभागहरणं
संशोधनंपाययेत्युक्त्या, तस्यविधिरुपदेक्ष्यते ॥ २१ ॥

जब पिछली बस्ति गुदाद्वारा उलटकर बाहर निकलजाय तब उससे दूसरे दिन प्रातःकाल शोधनकर्त्ता द्रव्योंद्वारा विधिपूर्वक वमन विरेचन करावे। उसकी विधिको कथन करते हैं ॥ २१ ॥

मदनफलपिप्पलीकषायेषुअञ्जलिमात्रेणत्रिवृत्कल्काक्षमात्रमा-
लोड्यपातुमस्मैप्रयच्छेत्। तदस्यदोषमुभयतोनिर्हरतिसाधु॥२२॥

मैनफल और पीपलके सोलह तोला क्वाथमें एक तोला निशोथका कल्क मिलाकर रोगीको पिलावे। इसके पीनेसे वमन और विरेचन द्वारा ऊपर और नीचेके दोष भली प्रकार निकल जाते हैं ॥ २२ ॥

एवमेवकल्पोक्तानिवमनविरेचनानिसंसृज्यपाययेदनवुद्धयास-
र्वविशेषानवेक्ष्यमाणः ॥ २३ ॥

इसीप्रकार कल्पस्थानमें कहेहुए वमन विरेचन द्रव्योंको विधिवत् सम्पादन कर यथोचित रीतिसे दोषादिकोंको तथा बलादि व्यवस्था देखकर रोगीको पिलावे॥२३॥

विरेचन होजानेपर कर्म।

अथैनंसम्यग्विरिक्तंविज्ञायापराह्णेशैखारिककषायेणसुखोष्णेन
परिषेचयेत्। तेनैवचकषायेणबाह्याभ्यन्तरान्सर्वोदककार्थान्कार-
येत्शश्वत् । तदभावेवाकटुतिक्तकषायाणामौषधानांक्वाथै-
र्मूत्रक्षारैर्वा परिषेचयेत् । परिषिक्तश्चएनंनिवातमागारमनुप्र-

वेश्यपिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकशृङ्गवेरसिद्धेनयवाग्वादि-
नाक्रमेणउपक्रामयेत् ॥ २४ ॥

जब देखे कि यह रोगी यथोचित विरिक्त (वमन विरेचन द्वारा शुद्ध) होगया तब दिनकी पिछले प्रहरमें अपामार्गके सुखोष्ण क्काथ द्वारा परिसेचन करे। और इसी क्काथ द्वारा बाह्य और आभ्यान्तर सम्पूर्ण जलके कार्योंको साधन करे। अर्थात् अपामार्गके क्काथसे ही हाथ, पांव धोना, कुल्ला, स्नान आदि सब काम करे। यदि उस समय अपामार्गका क्वाथ न मिल सके तो कटु, तिक्त द्रव्योंके कषायसे अथवा गोमूत्र और क्षार मिलेहुए सुखोष्ण जलसे स्नान आदि करावे। स्नान करनेके अनन्तर निर्वात स्थानमें रक्खे और पिप्पली, पिपलामूल, चव्य, चित्रक और अदरख इनके संयोगसे सिद्ध की हुई यवागू पीनेको देवे। तथा विधि-वत् सब उपचार करे ॥ २४ ॥

विलेपीक्रमागतश्चैनमनुवासयेद्विडङ्गतैलेनैकान्तरंद्विस्त्रिर्वायदि
पुनरस्यातिप्रवृद्धाञ्छीर्षादीन्क्रिमीन्मन्येत, शिरस्येवअभिसर्प-
तःकदाचित्ततःस्नेहस्वेदाभ्यामस्यशिरउपपाद्यविरेचयेदपामार्ग-
तण्डुलादिनाशिरोविरेचनेन ॥ २५ ॥

उस यवागू पीनेके अनन्तर क्रमपूर्वक विलेपी सेवन करावे। फिर दो तीन दिनके अनन्तर वायविडंगके तेलसे अनुवासन कर्म करे यदि फिर भी देखे कि इसके शिर आदि अंगोंमें कृमि बढे हुएहैं तो शिरोविरेचन करानेके लिये पहिले शिरको स्नेहन और स्वेदन कारके फिर अपामार्ग तण्डुल आदि शिरोविरेचन द्रव्योंद्वारा शिरका विरेचन करे ॥ २५ ॥

कृमिनाशक औषधि।

यस्त्वभ्याहार्य्योविधिःप्रकृतिविघातायोक्तःक्रिमीणां, सोऽनुव्या-
ख्यास्यते । मूषिकपर्णींसमूलाग्रप्रतानामपहृत्यखण्डशश्छेद-
यित्वाउलूखलेक्षोदयित्वापाणिभ्यांपीडयित्वाचरसंगृह्णीयात् ।
तेनरसेनलोहितशालितण्डुलपिष्टंसमालोड्यपूपलिकांकृत्वावि-
धूमेषुअङ्गारेषुविपाच्यविडङ्गतैललवणोपहितांक्रिमिकोष्ठायभक्ष-
यितुंप्रयच्छेत्। तदनन्तरञ्चअम्लकाञ्जिकमुदश्विद्वापिप्पल्या-
दिपञ्चवर्गसंसृष्टंसलवणमनुपाययेत् ॥ २६ ॥

जो कृमिनाशक पथ्यादि कृमियोंके प्रकृति विघातक कथन कर आयेहैं अब उनकी व्याख्या करतेहैं। जैसे मूषिकपर्णीको जडसहित तथा अग्रभागसहित लेकर उसके छोटे २ टुकडे कर डाले फिर उसको उखलीमें कूटकर दोनों हाथोंसे दवा उसका रस निचोड ले। इस रसमें लालचावलोंके आटेको मिलाकर विधिवत् पूडियें बनाले इन पूडियोंको निर्धूम अग्निपर पका विडंगका तैल और सेंधानामक मिलाकर जिस मनुष्यके कोष्ठमें कृमि हों उसको यह खानेको देवे। इसके ऊपर खट्टी कांजीका जल अथवा दहीका पानी सेंधेनमकयुक्त पंचकोलका चूर्ण मिलाकर पीनेके लिये देवे ॥ २६ ॥

अनेनकल्पेनमार्कवार्कसहचरनीपनिर्गुण्डीसुमुखसुरसकुठेरक-कण्डीरकालमालकपर्णासक्षवकफणिज्झकबकुलकुटजसुवर्ण-क्षीरीसुरसानामन्यतमेऽस्मिन्कारयेत्पूपलिकानितथाकिलिह्नी-किराततिक्तकसुवहामलकहरीतकीविभीतकस्वरसेषुकारयेत् पूपलिकाः । स्वरसांश्चैतानेकैकशोद्वन्द्वशःसर्वशोवामधुवि-लुलितान्प्रातरनन्नायपातुंप्रयच्छेत् ॥ २७ ॥

इसी प्रकारसे भांगरा, आक, कठसरइया, कदंब, निर्गुण्डी और सुमुख, सुरस (तुलसीकी जाति),वनतुलसी, काण्डीर, कालमालक, पर्णाश, क्षवक और फणिज्झक यह मरुएंकी जातियें। मौलसरी, कुडा, सत्यानाशी, तुलसी इनमेंसे किसी-एकके स्वरसको पूर्वोक्त रीतिपर निकालकर उस रसमें लालचावलोंके आटेको मांडकर पूडियें बनावे उन पूडियोंको जंगली उपलोंकी निर्धूम अग्निपर पकाकर पूर्वोक्त रीतिसे कृमि कोष्ठवाले मनुष्यको खिलावे अथवा अपामार्ग, चिरायत्ता, सुवहा, हरड,वहेडे,आमले इन सवमेंसे किसी एकके स्वरसमें तथा दोनोंके स्वरसको मिलाकर अथवा सवके रसमें लालचावलके आटेकी पूडियें बनावे उनको शहद लपेटकर प्रातःकाल कृमियोंवाले रोगीको खिलावे अथवा उपरोक्त सव औषधि-योंके रसमें या किसी एकके स्वरसमें शहद मिलाकर भोजनसे प्रथम प्रातःकाल पीनेके लिये देवे ॥ २७ ॥

अथाश्वशकृदाहृत्यमहतिकिलिञ्जेप्रस्तीर्यातपेशोषयित्वोलूख-लेक्षोदयित्वादृषदिपुनः सूक्ष्माणिचूर्णानिकारयित्वाविडङ्गक-षायेणत्रिफलाकषायेणवाअष्टकृत्वोदशकृत्वोवाआतपेसुपरिभा-वितानिभावयित्वादृषदिपुनःसूक्ष्माणिचूर्णानिकारयित्वानवेकु-

लशेसमवाप्यानुगुप्तंनिधापयेत् । तेषांतुखलुचूर्णानांपाणितलं चूर्णंयावद्वासाधुमन्येतक्षौद्रेणसंसृज्यक्रिमिकोष्ठायलेढुंयच्छेत् २८

अथवा घोडेकी ताजी लीद लेकर किसी वडे टाट या चटाईपर डाल सुखा लेवे फिर उस सूखी लीदको ऊखलीमें डालकर वारीक चूर्ण करे फिर उसको सिलपर पीस कर अत्यन्त महीन वनाले इसके अनन्तर बायविडंगके काथकी आठ भावना अथवा त्रिफलेके क्वाथकी दश भावना या दोनोंकी भावना देवे और प्रत्येक भावनांके अनन्तर धूपमें सुखाता जावे फिर इसको सुखाकर कपडछान कर लेवे और एक नये मट्टीके पात्रमें भरकर अलग रख देवे और इसका किसीको भेद न वतावे । इसमेंसे एक तोलाभर चूर्ण अथवा दो या तीन तोलाभर जितना उचित समझे शहदमें मिलाकर जिस मनुष्यके कोष्ठमें क्रामि हों उसको चटादियाकरे ॥ २८ ॥

तथाभल्लातकास्थीन्याहार्य्यकलशप्रमाणेनसम्पोथ्यस्नेहभावितेदृढेकलशेसूक्ष्मानेकच्छिद्रब्रध्नेमृदावलिप्तेसमवाप्योडुपेनपिधायभूमौआकण्ठंनिखातस्यस्नेहभावितस्यैवअन्यस्यदृढस्यकुम्भस्यउपरिसमारोप्यसमन्तात्गोमयैरुपचित्यदाहयेत् । सयदाजानीयात्साधुदग्धानिगोमयानिगलितस्नेहानिभल्लातकास्थीनिततस्तंकुम्भमुद्धारयेत्।अथतस्माद्द्वितीयात् कुम्भात्तंस्नेहमादायविडङ्गतण्डुलचूर्णैःस्नेहार्द्धमात्रैः प्रतिसंसृज्यातपेसर्वमहःस्थापयित्वाततोस्मैमात्रांप्रयच्छेत्पानाय । तेनसाधुविरिच्यते विरिक्तस्यचानुपूर्वीयथोक्ता ॥ २९ ॥

अथवा भेलावेकी १६ सेर गुठलियोंको लेकर थोडा कूट लेवे फिर किसी पक्के चिकने घडेमें भरदेवे और उस घडेके नीचे वारीक वारीक छिद्र रहने देवे तथा उसके मुखको सरावसे ढककर कपडमट्टी करदेवे और उस घडेके नीचे जिस जगह छिद्र हों एक खुले मुखका चिकना पात्र रखदेवे अर्थात् नीचेके खाली चिकने पात्रके मुखपर औषधीवाले घडेके छिद्रोंको टिका कपडमिट्टीसे वंद करदेवे फिर जमीनमें एक गढा खोदकर उसमें नीचेके सम्पूर्ण पात्रको दबा देवे और थोडासा हिस्सा उपरले घडेका भी मट्टीमें आजाना चाहिये । फिर इस घडेके चारोंतरफसे मट्टीको दबा इसके ऊपर चारोंओर सूखे जंगली उपले लगाकर आग लगादेवे।जब जाने कि उपरले घडेके भेलावोंका आगकी गर्मीसे सब तेल नीचेके पात्रमें टपक चुकाहै तो शीतल होजानेपर घडेके ऊपरकी राख मट्टी सावधानीसे हटाकर नीचेके पात्रमें

आये हुए तेलको निकाल लेवे । और किसी दूसरे उत्तम पात्रमें भरकर रक्खे । फिर इसमेंसे थोडा तेल लेकर उसमें तेलसे आधा वायविडंगका चूर्ण मिला देवे और उसको धूपमें रखदेवे । तमाम दिन धूपमें रखकर इसमेंसे यथोचित मात्रा खिलाकर ऊपरसे गर्मपानी पिलावे । जब इससे ठीक विरेचन होचुके तब संशोधन किये मनुष्यका जिसप्रकार उपचार करनाचाहिये उस विधिसे इसकी रक्षा करे । (भेलावेके फलका तेल लगजानेसे मनुष्यके शरीरमें खुजली, सूजन, घाव आदि अनेक उपद्रव होजातेहैं । विना विधिसे भेलावेका सेवन करना विषके समान होता है । परन्तु यह विकार भेलावेके फलके रसमें होतेहैं । फलोंकेगुठलियोंमेंसे निकाले तेलमें नहीं होते । तौ भी भेलावेका तथा अन्य किसी विषैले पदार्थका उपयोग सुयोग्य वैद्यके ही हाथसे करनाचाहिये विना जाने स्वयं करनेसे मनुष्य अपने शरीरको भी नष्ट कर बैठताहै ।) ॥ २९ ॥

एवमेवभद्रदारुसरलकाष्ठस्नेहानुपकल्प्यपातुंप्रयच्छेत् ।
अनुवासयेच्चैनमनुवासनकाले ॥ ३० ॥

इसीप्रकार देवदारु तथा सरलकाष्ठका तेल निकालकर उसमें वायविडंगका चूर्ण मिलाकर १ दिन धूपमें रक्खे और दूसरे दिन गर्मजलके योगसे पिलावे । देवदारु और सरलके तेल द्वारा अनुवासनके समय अनुवासनवस्ति करना हितकर होता है। (परन्तु भेलावेके तेलसे अनुवासनवस्ति नहीं करना) ॥ ३० ॥

विडंगतैलम् ।

अथाहरेतिब्रूयाच्छारदान्नवांस्तिलान्सम्पदुपेतानाहृत्यसुनिष्पूतान्निष्पूयसुशुद्धाञ्छोधयित्वाविडङ्गकषायेसुखोष्णेप्रक्षिप्यसुनिर्वापितान्निर्वापयेदादोषगमनात् । गतदोषानभिसमीक्ष्यसुप्रलूनान् प्रलुच्यपुनरेवसुनिष्पूतान्निष्पूयसुशुद्धाञ्छोषयित्वाविडङ्गकषायेणत्रिःसप्तकृत्वःसुपरिभावितान् भावयित्वाऽऽतपेशोषयित्वोलूखलेसंक्षुद्यदृषदिपुनःश्लक्ष्णपिष्टान्कारयित्वाद्रोण्यामभ्यवधार्यविडङ्गकषायेणमुहुर्मुहुरवसिञ्चन्पाणिमर्दंमर्दयेत् । तस्मिन्खलुप्रपीड्यमानेयत् तैलमुदियात्तत्पाणिभ्यांपर्य्यादायशुचौदृढेकलशेसमासिच्यानुगुप्तंनिधापयेत्।अथाहरेतिब्रूयात्तिल्वकोद्दालकयोर्द्वौबिल्वमात्रौपिण्डौश्लक्ष्णपिष्टौविडङ्गकषायेण,

ततोऽर्द्धमात्रौश्यामात्रिवृतयोरर्द्धमात्रौदन्तीद्रवन्त्योरतोऽर्द्धमात्रौचव्यचित्रकयोरित्येतत्सम्भारंविडङ्गकषायस्यार्द्धाढकमात्रेणप्रतिसंसृज्यततस्तैलप्रस्थमावाप्यसर्वमालोड्यमहतिउपयोगेसमासिच्याग्नावधिश्रित्यमहत्यासनेसुखोपविष्टःसर्वतःस्नेहमवलोकयन्अजस्रंमृद्वग्निना साधयेद्दर्व्यासततमवघट्टयन्। सयदाजानीयाद्विरमतिशब्दः प्रशाम्यति चफेनः,प्रसादमापद्यते स्नेहोयथास्वंगन्धवर्णरसोत्पत्तिःसंवर्त्ततेच, भेषजमंगुलिभ्यां मृद्यमानमनतिमृदुमनातिदारुणमनंगुलिग्राहिचेति । सकालस्तस्यावतारणाय। ततस्तमवतीर्णंहूतंशीतीभूतमहतेनवाससापरिपूयशुचौदृढेकलशेसमासिच्यपिधानेनपिधायशुक्लेनवस्त्रपट्टेनआच्छाद्यसूत्रेणसुवद्धंसुनिगुप्तंनिधापयेत्। ततोऽस्मैमात्रां प्रयच्छेत्पानाय ॥ ३१ ॥

अब विडंगतैलकी विधि कथन करतेहैं। पहिले रोगीसे कहे कि तू शरदऋतुके अर्थात् नवीन और उत्तम तिलोंको इकट्टे कर। जब वह तिलोंको इकट्टे करलेवे तो उन तिलोंको फटक तथा संवार कर एवम् उनमें मट्टी पत्थर आदि चुनकर स्वच्छ बनावे फिर उनको सुन्दर रीतिसे धोकर धूपमें सुखा लेवे। जब सूख जायं फिर उन तिलोंको बायविडंगके क्वाथकी भावना देकर धूपमें सुखाता जावे।इसी प्रकार वायविडंगके क्वाथकी इक्कीस भावना देवे। जब सूख जायं तो ऊखलींमें कूटकर फिर सिलपर वारीक पीस डाले। फिर उस वारीक तिलोंके चूर्णको किसी चिकनेपात्रमें भरकर उसमें वायविडंगका गर्मगर्म क्राथ छिडकता जाय और हाथोंसे उन तिलोंको मींडताजाय जो उनमेंसे तेल हाथोंको लगे अथवा पात्रमें निकले उस तेलको हाथसे किसी स्वच्छ पात्रमें पोंछता जायं जब सब तेल निकल आवे तो उस तेलको किसी स्वच्छ पात्रमें भरकर रखदेवे। फिर पठानी लोद कोद्रव (कोदाअन्न) यह दोनों चार चार तोला लेवे। इनको वायविडंगके क्वाथके साथ पीसकर दो पिंड बनालेवे। इसके अनन्तर दो दो तोला दक्षिणी और पहाडी निशोथ दो दो तोला दोनों प्रकारकी दंती एक एक तोला चव्य और चित्रक इन सबको चार सेर वायविडंगके क्वाथमें मिलाकर पूर्वोक्त चार सेर तेलमें मिलादेवे। फिर सब औषधियोंको एक बडी कडाहीमें चढाकर भट्टीपर रक्खे। स्वयं एक ऊंचे आसनपर

बैठकर उस कडाहीमें तेलको सब तरहसे देखताहुआ मंदमंद अग्निसे पकावे । जब देखे कि पानी जल चुकाहै और औषधियोंके पकनेका शब्द शान्त होगया । फेन भी जाता रहा । तैल स्वच्छ होगया । जैसे-द्रव्यादिक उसमें डाले हैं उन सबका गन्ध,रस,वर्ण तेलमें आगया तब उस तेलमें पडी औषधियोंके कल्कको निकालकर अंगुलियोंसे मसलताहुआ बत्ती बनाकर देखे । यदि उस कल्कद्रव्यकी बत्ती बनजाय और तेलको छोडने लगजाय और अंगुलियोंसे न चिपटें तो जाने कि तेल अब सिद्ध होगया और यह समय उस तेलके उतारनेका है । फिर उसको उतारकर जब वह ठंडा हो जाय किसी अच्छे वस्तुसे विधिपूर्वक छानकर शुद्ध और दृढ कलशमें भरकर ऊपरसे किसी पात्रद्वारा ढकदेवे तथा श्वेत और नये वस्त्रसे उसके मुखको बांधकर किसी उत्तम स्थानमें रख देवे फिर जब आवश्यकता हो तो इस तैलमेंसे रोगीको यथोचित्त मात्रा पान करावे ॥ ३१ ॥

तेनसाधुंविरिच्यते । सम्यगपहृतदोषस्यचास्यानुपूर्वीयथोक्ता । ततश्चैनमनुवासयेदनुवासनकाले ॥ ३२ ॥

इस तैलके उपयोगसे उत्तम विरेचन होताहै । जब उत्तम विरेचन होकर दोष निकलनेसे मनुष्य शुद्धदेह होजाय तब इसको विधिवत् यवागू आदि पथ्य सेवन करावे । और अनुवासनके समय अनुवासन कर्म करे ॥ ३२ ॥

एतेनैवचपाकविधिनासर्षपकरञ्जकोषातकीस्नेहानुपकल्प्यपाययेत्सर्वविशेषानवेक्ष्यमाणस्तेनागदोभवति ॥ ३३ ॥

इसी तैलपाकविधिसे-सरसों,करंज और कडवी तोरीके बीजोंका भी तैल बनाना चाहिये । फिर विचार पूर्वक कृमिनाश करनेके लिये इन तेलोंका उपयोग करे । ऐसा करनेसे मनुष्य कृमिरोगसे छूटकर नीरोग होजाताहै ॥ ३३ ॥

इत्येतद्द्वयानांश्लेष्मपुरीषसम्भवानांक्रिमीणांसमुत्थानस्थानसंस्थानवर्णनामप्रभावचिकित्सितविशेषाव्याख्याताःसामान्यतः ॥ ३४ ॥

इसप्रकार-कफजन्य और पुरीषजन्य कृमियोंके निदान, लक्षण, वर्ण, प्रभाव, नाम और चिकित्साविशेषका सामान्यरूपसे कथन कियागया है ॥ ३४ ॥

विशेषतस्तुअल्पमात्रमास्थापनानुवासनानुलोमहरणभूयिष्ठेतच्चौषधिपुरीषजानांक्रिमीणांचिकित्सितंकार्य्यंमात्राधि-

कफपुनःशिरोविरेचनवमनोपशमनभायिष्ठंतेष्वौषधेषुश्लेष्म-जानांक्रिमीणांचिकित्सितंकार्य्यम्। इत्येवंक्रिमिघ्नोभेषजवि-धिरनुव्याख्यातोभवति॥ ३५॥

विशेषतःसे ध्यान देने योग्य यह बात है कि पुरीषजन्य कृमियोंकी चिकित्सा प्रायःयही है कि स्वल्पमात्रासे आस्थापन तथा अनुवासनवस्ति करना और अनुलोमताके हरण करनेवाली औषधियोंका प्रयोग करना। यह पुरीषज कृमियोंकी चिकित्सा है। कफजन्य कृमियोंमें अधिक मात्रासे वमन, शिरोविरेचन तथा उपशमन औषधियोंका प्रयोग करना चाहिये।यह कफजनित कृमियोंका चिकित्साका वर्णन कियागया। इस प्रकार कृमिनाशक औषधविधिका वर्णन कियागयाहै३५॥

तमनुतिष्ठतायथास्वंहेतुवर्जनेप्रयतितव्यम्। यथोद्देशमेवमि-दंक्रिमिकोष्ठचिकित्सितंयथावदनुव्याख्यातंभवतीति॥ ३६॥

कृमिनाशक औषधियोंके सेवन करनेवाला मनुष्य कृमियोंके उत्पन्न करनेवाले कारणोंको त्यागनेमें विशेष यत्नवान् रहे। इस प्रकार यथा उद्देश कृमिकोष्ठकी चिकित्साका क्रमपूर्वक वर्णन कियागया॥ ३६॥

तत्र श्लोकाः।

अपकर्षणमेवादौक्रिमीणांभेषजंस्मृतम्। ततोविघातःप्रकृतेर्नि-दानस्यचवर्जनम्॥ ३७॥ एतावद्भिषजाकार्य्यंरोगेरोगेयथा-विधि। अयमेवविकाराणांसर्वेषामपिनिग्रहे॥ ३८॥

यहांपर श्लोक हैं कि पहिले कृमियोंका आकर्षण करनाही उत्तम चिकित्सा है। उसके अनन्तर कृमियोंकी प्रकृतिका नाश करना तथा कृमिकारक पदार्थोंका त्याग देना। इसप्रकार वैद्यको प्रत्येक रोगमें विधिपूर्वक करना चाहिये। संपूर्ण विकारोंके शान्त करनेका यही क्रम है॥ ३७॥ ३८॥

विधिर्दृष्टस्त्रिधायोऽयंक्रिमीनुद्दिश्यकीर्त्तितः।
संशोधनंसंशमनंनिदानस्यचवर्जनम्॥ ३९॥

कृमियोंके उद्देशसे संशोधन, संशमन और निदानका परिवर्जन इस तीन प्रकारकी विधिका कथन किया है॥ ३९॥

अध्यायका संक्षेप।

व्याधितोपुरुषौज्ञाज्ञौभिषजौसप्रयोजनौ। विंशतिःक्रिमयस्तेे-

षांहेत्वादिःसप्तकोगणः ॥ ४० ॥ उक्तोव्याधितरूपीयेविमाने परमर्षिणा । शिष्यसंबोधनार्थञ्चव्याधिप्रशमनायच ॥ ४१ ॥

इति व्याधितरूपीयंविमानं समाप्तम् ॥ ७ ॥

इस व्याधितरूपीय विमानमें शिष्यके सम्बोधनके लिये और व्याधिकी शांतिके लिये दो प्रकारके व्याधितपुरुष,सुज्ञ और अज्ञ दो प्रकारके वैद्य और उनके प्रयोगके भेद, वीस प्रकारके कृमि और उनके कारण आदि सातगण, महार्षि आत्रेयजीने कथन किये हैं ॥ ४० ॥ ४१ ॥

इति श्रीमहर्षिचरक० विमानस्थाने ० भाषा० व्याधीतरूपीयविमानं नाम सप्तमोऽध्यायः ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः ।

अथालो गेगाभिषग्जितीयमध्यायंव्याख्यास्याम इतिहस्माह भगवानात्रेयः ।

अव हम रोगभिषग्जितीय अध्यायकी व्याख्या करतेहैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कथन करनेलगे ।

शास्त्रपरीक्षा ।

बुद्धिमानात्मनःकार्य्यगुरुलाघवेकर्मफलमनुबन्धंदेशकालौच विदित्वायुक्तिदर्शनाद्भिषगबुभूषुः शास्त्रमेवादितःपरीक्षेत । विविधानिहिशास्त्राणिभिषजांप्रचरन्तिलोके । तत्रयन्मन्येत महद्यशस्विधीरपुरुषानुमोदितमर्थबहुलमाप्तजनपूजितंत्रिविधशिष्यबुद्धिहितमपगतपुनरुक्तदोषमार्षंसुप्रणीतसूत्रभाष्यसंग्रहक्रमंस्वाधारमनवपातितशब्दमकष्टशब्दंपुष्कलाभिधानंक्रमागतार्थमर्थतत्त्वविनिश्चयप्रधानंसङ्गतार्थमसंकुलप्रकरणमाशुप्रबोधकंलक्षणवच्चोदाहरणवच्चतदभिप्रपद्येतशास्त्रम्।शास्त्रंह्येवंविधममलइवादित्यस्तमोविधूयप्रकाशयातिसर्वम् ॥ १ ॥

१ व्याधितरूपभ्रान्तज्ञानं बुद्धिदोषाद्भवति तस्मात् विशुद्धबुद्ध्युत्पादनार्थमध्ययनमध्यापन तद्विद्यसम्भाषणा रोगाभिषग्जितीयेऽभिधीयते ।

वैद्य होनेकी इच्छावाला बुद्धिमान् मनुष्य प्रथम अपनी कार्यकी गुरुता, लघुता, कर्म, उसका फल तथा सहायता आदि संयोग देश और कालको विचारकर एवम् युक्ति अर्थात् अनुमानसे अपने पूर्वापरको विचारता हुआ इन संपूर्ण भावोंपर दृष्टि देकर जिस शास्त्रको पढना हो पहिले उसकी परीक्षा करे अर्थात् यह देखे कि यह ग्रंथ पढनेयोग्य है या नहीं क्योंकि वैद्यकके अनेक ग्रंथ वैद्यलोगोंके रचेहुए लोकमें प्रचलित हैं। उन सबमें जिस ग्रंथका लोकमें यश छाया हुआहो और योग्य पुरुष उसकी प्रशंसा करतेहों, जिसके पढनेसे वैद्यकका यथोचित ज्ञान प्राप्त होता हो, जिसमें अर्थ बहुत हों जो प्रामाणिक पुरुषोंका मानाहोय, उत्तम, मध्यम, अधम इन तीनों प्रकारके शिष्योंकी बुद्धिमें आसकता हो, पुनरुक्त दोषसे रहित हो, ऋषिप्रणीत हो, सूत्र, भाष्य, संग्रहक्रम विधिवत् बना हुआहो, अपने आधार हो अर्थात् उसमें ऐसी बातें न हों जिनको जाननेके लिये अन्य ग्रंथोंके देखनेकी आवश्यकता होतीहो, जिसमें भ्रष्टशब्द न हों तथा कठिन शब्द न हों, जिसका कथन स्पष्ट, और बहुत अर्थको बतानेवाला हो, जिसमें क्रमपूर्वक विषय चलताहो और अर्थ, तत्त्वका निश्चय ही मुख्य मानाहो, सब विषय संगत हों, शीघ्र बोधको करानेवाला हो एवम् लक्षण और उदाहरण देकर विषयको स्पष्टरूपसे वर्णन करता हो ऐसे ग्रंथको पढनेके लिये ग्रहण करना चाहिये। ऐसा शास्त्र सूर्यके समान अंधकारको दूर कर सब अर्थोंका अर्थात् अर्थ, धर्म, यश आदिकोंका प्रकाश करता है ॥ १ ॥

आचार्यकी परीक्षा ।

ततोऽनन्तरमाचार्य्यंपरीक्षेत । तद्यथा-पर्य्यवदातश्रुतंपरिदृष्टकर्माणंदक्षंदक्षिणंशुचिंजितहस्तमुपकरणवन्तंसर्वेन्द्रियोपपन्नं प्रकृतिज्ञंप्रतिपत्तिज्ञमनुपस्कृतविद्यमनहंकृतमनसूयकमकोपनं क्लेशक्षमंशिष्यवत्सलमध्यापकंज्ञापनासमर्थञ्चइत्येवंगुणोह्याचार्य्यःसुक्षेत्रमार्त्तवोमेघइवशस्यगुणैःसुशिष्यमाशुवैद्यगुणैःसम्पादयति । तमुपसृत्यारिराधयिषुरुपचरेदग्निवच्चदेववच्चराजवच्चपितृवच्चभर्तृवच्चाप्रमत्तस्ततस्तत्प्रसादात्कृत्स्नंशास्त्रमधिगम्य शास्त्रस्यदृढतायामभिधानसौष्ठवस्यार्थस्यविज्ञानेवचनशक्तौ चभूयःप्रयतेतसम्यक् ॥ २ ॥

इसके अनन्तर पढानेवाले आचार्यकी परीक्षा करना चाहिये। वह इस प्रकार है, जो वेदोंके अथवा आयुर्वेदके संपूर्ण रूपसे सर्वांशको जाननेवाला हो, जिसने

आयुर्वेद संबंधी संपूर्ण कर्मोंको गुरुसे सीखा हो और स्वयं भी यथोचित रीतिपर संपूर्ण कर्मोंको अनेक वार किया हुआ हो। सब कर्मोंमें चतुर हो, संपूर्ण आयुर्वेद विद्याको जाननेवाला हो, पवित्र हो, जिसका हाथ हरएक कार्यके करनेमें हलका और स्पष्ट हो, जो आयुर्वेदीय यंत्र, शस्त्र, क्षार, औषध आदि संपूर्ण सामग्री रखता हो, सर्वेन्द्रियसम्पन्न हो, जिसके शरीरके संपूर्ण अंग उत्तम हों। सब मनुष्योंकी प्रवृत्ति तथा भेदका जाननवाला हो आयुर्वेदके संपूर्ण सिद्धान्तोंको ठीक जानने-वाला हो, जिसने संपूर्ण शास्त्र पढे हों, वह याद हों अहंकार रहित हो, निंदक और क्रोधी न हो, क्लेशोंको सहन करनेवाला हो, शिष्यपर प्रेम करनेवाला हो और प्रेमपूर्वक पढानेवाला हो, जिस विषयको पढ़ावे उसको उदाहरण आदि द्वारा स्पष्टरूपसे समझानेवाला हो। इसप्रकार आचार्य-जैसे ऋतुकालमें अच्छी भूमिमें मेघ वरस-कर उत्तम खेतीको उत्पन्न करता है उसीप्रकार अपने शिष्यको शीघ्र वैद्यकके गुणोंसे सम्पन्न कर देता है। वैद्य होनेकी इच्छावाले शिष्यको उचित है कि ऐसे गुरुके समीप जाकर उसको अग्निके समान, देवताके समान, राजाके समान, पिताके समान तथा स्वामीके समान जानकर अप्रमत्त होकर सेवा करे। ऐसे गुरुकी कृपासे संपूर्ण शास्त्रको पढकर शास्त्रमें दृढता उत्पन्न करनेके लिये तथा कथन करनेमें चतु-राई उत्पन्न करनेके लिये शास्त्रीय विषयका यथोचित ज्ञान प्राप्त करनेके लिये और जाने हुए विषयको वर्णन करनेके लिये उत्तम शक्ति उत्पन्न करनेका यत्नवान् रहे ॥ २ ॥

तत्रोपायाव्याख्यास्यन्ते। अध्ययनमध्यापनंतद्विद्यासम्भाषे-त्युपायाः ॥ ३ ॥

अब उन उपायोंका अर्थात् योग्य वैद्य बननेके उपायोंका कथन करते हैं। जैसे पढना (अध्ययन करना) पढाना और उसी शास्त्रमें शास्त्रार्थ आदि सम्भाषण करना यह तीन उपाय शास्त्रमें व्युत्पन्न होनेके हैं ॥ ३ ॥

अध्ययनकी विधि।

तत्रायमध्ययनविधिःकल्येकृतक्षणःप्रातरुत्थायोपव्युषंवाकृत्वा-वश्यकमुपस्पृश्योदकंदेवगोब्राह्मणगुरुवृद्धसिद्धाचार्य्येभ्योनम-स्कृत्यसमेशुचौदेशेसुखोपविष्टोमनःपुरःसराभिर्वाग्भिःसूत्रमनुक्रा-मन्पुनःपुनरावर्त्तयेद्बुद्ध्यासम्यगनुप्रविश्यार्थतत्त्वंस्वदोषपरि-

१ उपव्युषमिति किञ्चिच्छेषायां रात्रौ।

हारपरदोषप्रमाणार्थमेवंमध्यन्दिनेऽपराह्णेरात्रौचशश्वदपरिहापयन्नध्ययनमभ्यसेदित्यध्ययनविधिः ॥ ४ ॥

अब प्रथम अध्ययन विधि अर्थात् पढनेके क्रमको कथन करते हैं पढनेकी इच्छावाला आरोग्य ब्रह्मचारी नियत समयपर प्रातःकाल अथवा सूर्य उदय होनेके चार घडी प्रथम उठकर परमेश्वरका स्मरण करे और मलमूत्रादि त्यागन करनेके अनन्तर स्नान आदि कर पवित्र हो देवता, गौ, ब्राह्मण, गुरु, वृद्ध, सिद्ध और आचार्य आदिकोंको प्रणाम कर शुद्ध, समान, पवित्र स्थानमें सुखपूर्वक बैठाहुआ शास्त्रमें मन लगाये हुए जिन सूत्रोंको पढाहो उन सूत्रोंमें चित्त लगाकर स्पष्ट स्वरसे उनको उच्चारण करताहुआ वारवार पाठ करता जाय फिर उस सब पाठको अपनी बुद्धिमें जमाकर उस पाठमें अथवा उस विषयमें जो दोष अथवा अदोष एवम् तर्क वितर्क जो कुछ उत्पन्न हो उसको निश्चय करनेके लिये मध्यदिनमें अथवा अपराह्णमें या रात्रिके समय अथवा उसी समय गुरुके समीप जा अपनी शंकाओंको निवृत्त कर लेवे । और इसी विधिसे नित्य पढता रहे ।यह अध्ययनकी विधि है॥४॥

अध्यापनाविधि ।

अथाध्यापनविधिः,अध्यापनेकृतबुद्धिराचार्य्यःशिष्यमादितःपरीक्षेततद्यथा--प्रशान्तमार्य्यप्रकृतिकमक्षुद्रकर्माणमृजुचक्षुर्मुखनासावंशंतनुरक्तविशदजिह्वमविकृतदन्तौष्ठम्अमिन्मिणंधृतिमन्तम्अलंकृतंमेधाविनंवितर्कस्मृतिसम्पन्नमुदारसत्वंतद्विद्यकुलजमथवातत्वाभिनिवेशिनमव्यङ्गमव्यापन्नेन्द्रियंनिभृतमनुद्धतमव्यसनिनंशीलशौचाचारानुरागदाक्ष्यप्रादक्षिण्योपपन्नमध्ययनाभिकाममत्यर्थविज्ञानकर्मदर्शनेचानन्यकार्य्यमलुब्धमनलसंसर्वभूतहितैषिणमाचार्य्यसर्वानुशिष्टिप्रतिकरमनुरक्तमेवंगुणसमुदितमध्याप्यमेवमाहुः। एवंचिरमाचार्य्यश्चाध्ययनार्थमुपस्थितमारिराधयिषुमनुभाषेत ॥ ५ ॥

अब अध्यापन (पढाने) की विधिका कथन करते हैं । पढानेकी इच्छावाला वैद्य प्रथम शिष्यकी परीक्षा करे शिष्य ऐसा होना चाहिये । जो शान्तचित्त और श्रेष्ठ स्वभाववाला हो, नीच कर्मोंको करनेवाला तथा नीच आशयवाला न हो, जिसके नेत्र, मुख, नासिका यह सब सुन्दर और सुडौल हों,जिसकी पतली, लाल,

सुन्दर जीभ हो, दंतपंक्ति और ओष्ठ उत्तम हों तथा धारण शक्तिवाला हो, अहंकार रहित हो मेधायुक्त हो, तर्क शक्ति और स्मरण शक्तिवाला हो, उदार स्वभाववाला हो और उनके कुलमें परम्परासे विद्या पढने, पढानेकी प्रथा चली आती हो अथवा उस विद्याको पढना चाहता हो। उस विद्यासे अपने लाभकी इच्छा करता हो, जो विद्याके तत्वको जाननेमें चित्त लगाये हुए हो, जिसके शरीरके सम्पूर्ण अङ्ग उत्तम हों, सर्वेन्द्रिय सम्पन्न हो, विनीत हो, अकड रहित हो,दुर्व्यसन रहित हो, सुशील हो,पवित्र हो, अनुरागी हो, चतुर हो, हरएक कार्य बुद्धिमत्तासे करनेवाला हो, पढनेमें चित्त लगाये हुए हो, अर्थके जानने और वैद्यकर्म सखिनेमें तथा देखनेमें चित्त लगाये हुए हो, गुरुकी आज्ञा पालन करनेवाला हो और गुरुमें प्रेमभाव रखनेवाला हो। इस प्रकारके गुणोंसे सम्पन्न शिष्य पढाने योग्य होता है। इन सम्पूर्ण गुणोंयुक्त शिष्य बहुत कालतक पढनेकी इच्छासे आवे तो ऐसे शिष्यको गुरु विधिवत् शास्त्रका उपदेश कर देवे ॥ ५ ॥

उपदेश।

उदगयनेशुक्लपक्षेप्रशस्तेऽहनिपुष्यहस्तश्रवणाश्वयुजामन्यतमेननक्षत्रेणयोगमुपगतेभगवतिशशिनिकल्याणेमुहूर्त्तेस्नातःकृतोपवासोमुण्डःकषायवस्त्रसंवीतः समिधोऽग्निमाज्यमुपलेपनमुदककुम्भांश्चसुगन्धिहस्तमाल्यदामाहिरण्यान्हेमरजतमाणिमुक्ताविद्रुमक्षौमपरिधींश्चकुशलाजसर्षपाक्षतांश्चशुक्लांश्चसुमनसोग्रथिताग्रथितांश्चमेध्यांश्चभक्ष्यान्गन्धांश्चपिष्टापिष्टानादायोपतिष्ठस्वेति। सतथाकुर्य्यात् ॥ ६ ॥

जब शिष्यको अध्ययन कराना हो तो आचार्य कहे कि तुम उत्तरायणमें,शुक्लपक्षमें और शुभदिनमें पुष्य,हस्त, श्रवण, अश्विनी इन नक्षत्रोंमेंसे किसी नक्षत्रयुक्त चन्द्रमा होनेपर सुमुहूर्त और शुभलग्नमें-स्नान और उपवास करके मुण्डन करा, कषाय वस्त्रोंको धारणकर यज्ञकी समिधा, अग्नि, घृत, उपलेपन द्रव्य, जल, घट, सुगन्धित द्रव्य, स्रुक्, माला, नेती, मृगछाला, सुवर्ण, रजत, मणि, मुक्ता, मूंगा, रेशमी धोती, कुशा, लाजा, सरसों,अक्षत, श्वेतपुष्प, और पुष्पोंकी माला, पवित्र भक्ष्य पदार्थ, केशर चन्दनादि उत्तम गन्ध पिसे हुए और विना पिसे हुए लेकर हमारे पास आवो। शिष्य उसीप्रकार करे ॥ ६ ॥

तमुपस्थितमाज्ञायसमेशुचौदेशेप्राक्प्रवणेवाचतुष्किष्कुमात्रं चतुरस्रंस्थण्डिलंगोमयोदकेनोपलिप्तंकुशास्तीर्णंसुपरिहितंपरिधिभिश्चतुर्दिशंयथोक्तचन्दनोदककुम्भक्षौमहेम्नहिरण्यरजतमणिमुक्ताविद्रुमालंकृतंमेध्य-भक्ष्य--गन्धशुक्लपुष्पलाजासर्षपाक्षतोपशोभितंकृत्वातत्रपालाशीभिरैङ्गुदीभिरौदुम्बरीभिर्माधुकीभिर्वासमिद्भिरग्निमुपसमाधायप्राङ्मुखःशुचिरध्ययनविधिमनुविधायमधुसर्पिर्भ्यांत्रिस्त्रिर्जुहुयादग्निम् । आशीःसंप्रयुक्तैर्मन्त्रैर्ब्राह्मणमग्निंधन्वन्तरिंप्रजापतिमश्विनाविन्द्रमृषींश्चसूत्रकारानभिमन्त्रयमाणः । पूर्वंस्वाहेतिशिष्यंश्चैनमन्वारभेतहुत्वाचप्रदक्षिणमग्निमनुपरिक्रामेत् । ततोऽनुपरिक्राम्यब्राह्मणान्स्वस्तिवाचयेत् । भिषजश्चाभिपूजयेत् ॥ ७ ॥

जब इन सम्पूर्ण वस्तुओंको लेकर शिष्य गुरुके पास आवे तब गुरु उस आये हुएको देखकर सम और पवित्र भूमिमें पूर्व अथवा उत्तरकी ओर चार हाथकी चौकोनी वेदी बनावे उसको गोबर और जलसे लिपाकर उसके ऊपर विधिवत् कुशाको बिछावे और वेदीके चारों ओर चार परिधि बनावे फिर शास्त्रोक्त रीतिसे चंदन जलके कुंभ, रेशमी वस्त्र, सुनहरीवस्तु, हिरण्य, रजत, मणि, मोती, मूंगा, इनसे यथाविधि स्थानको विभूषित करे फिर पवित्र, भक्ष्य पदार्थ, कर्पूर, केशर चन्दनादि गंधद्रव्य श्वेतपुष्प, लाजा (धानकी खील), सरसों, अक्षत आदिको यथाक्रम स्थापन करे तथा पलाश, इंगुदी, गूलर, महुआ इनकी समिधाओंसे अग्निको विधिवत् प्रज्वलित करे फिर पूर्वाभिमुख होकर शिष्यको शुद्धभावसे अध्ययन विधिके अनुसार बिठाकर शहद और घीसे तीनतीन आहुतियें अग्निमें हवन करे । फिर वेदोक्त आशीर्वादके मंत्रोंद्वारा ब्रह्मा, अग्नि, धन्वन्तरि, प्रजापति, अश्विनीकुमार, इन्द्र, ऋषियों तथा सूत्रकारोंको आवाहन करताहुआ पहिले आप स्वाहा कहकर आहुति देवे फिर शिष्य भी उसीप्रकार हवन करे । हवन करनेके अनन्तर अग्निकी प्रदक्षिणा करे और ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन करावे तथा वैद्योंका पूजन करे ॥ ७ ॥

अथैनमग्निसकाशेब्राह्मणसकाशेभिषक्सकाशेचानुशिष्यात् । ब्रह्मचारिणाश्मश्रुधारिणासत्यवादिनाअमांसादेनमेध्यसेविना

१ प्राक्प्लवने इति पाठान्तरम् प्लवनं निम्नमिति संस्कारतन्त्रे ।

निर्मत्सरेणशास्त्रधारिणाभवितव्यम् । नचतेमद्वचनात्किञ्चिदकार्य्यंस्यादन्यत्रराजाद्विष्टात्प्राणहराद्विपुलादधर्म्यादनर्थसंप्रयुक्ताद्वाप्यर्थात् ।मदर्पणेनमत्प्रधानेनमदधीनेनमत्प्रियहितानुवर्त्तिनाचशश्वद्भवितव्यम् । पुत्रवद्दासवदर्थिवच्चोपचरतानुसर्त्तव्योऽहम् । अनुत्सुकेनावहितेनअनन्यमनसाविनीतेनावेक्ष्यावेक्ष्यकारिणाअनसूयकेनचाभ्यनुज्ञातेनप्रविचरितव्यम् अनुज्ञातेनचप्रविचरता ॥ ८ ॥

फिर शिष्यको अग्निके समीप, ब्राह्मणोंके समीप और वैद्योंके समीप बिठाकर इसप्रकार शिक्षा देवे कि हे शिष्य! तुमको ब्रह्मचारी बनकर श्मश्रु धारणकर, सत्यवादी रहना होगा तथा निरामिषभोजी और पवित्रभोजन करना मत्सर (ईर्षा, द्वेष) रहित और शास्त्रोंको धारण करना होगा, मेरी आज्ञासे बाहर किंचित् काम भी नहीं करना । राजाका द्वेष,हिंसा,अधर्म,अनर्थ,अनर्थसे धन प्राप्त करना इनको छोडकर और संपूर्ण काम मेरी आज्ञानुसार करना । मेरे आगे नम्रतापूर्वक हरएक काममें मुझे प्रधान मानताहुआ मेरे आधीन, और मेरी प्रियता, मेरा हित तथा मेरा अनुवर्त्ती बनकर निरन्तर रहनाचाहिये । जैसे पिताकी सेवा पुत्र करताहै, मालिककी सेवा नौकर करताहै, जैसे अर्थकी इच्छासे अर्थीपुरुष धनिककी आज्ञा पालन करताहै उसी प्रकार सब स्थानमें तुमको मेरा अनुसरण करनाहोगा । उत्सुकतारहित होकर सावधानीसे अनन्यमन होकर विनीतभावसे हरएक कामको विचार विचारकर करतेहुए ईर्षा,अभिमान,निंदा आदिको त्यागकर मेरी आज्ञाके अनुसार सब काम करने होंगे । मेरी आज्ञा लेकर इधरउधर जानाहोगा ॥ ८ ॥

वैद्यको उपदेश ।

पूर्वंगुर्वर्थोपाहरणेयथाशक्तिप्रयतितव्यम् । कर्मसिद्धिमर्थसिद्धिं यशोलाभञ्चप्रेत्यचसर्वमिच्छताभिषजा । गोब्राह्मणमादौ कृत्वासर्वप्राणभृतांशर्मण्याशासितव्यम् ।अहरहरुत्तिष्ठताचोपविशताचसर्वात्मनाचातुराणामारोग्येप्रयतितव्यम् । जीवितहेतोरपिचातुरेभ्योनातिदोग्धव्यम् ।मनसापिचपरस्त्रियोनाभिगमनीयाः । तथासर्वमेवपरस्वम् । निभृतवेशपरिच्छेदेनचभवितव्यम् । अशौण्डेनअपापेनअपापसहायेनचश्लक्ष्णशुक्लध-

न्वेशस्र्यधन्यसत्यहितमितवचसादेशकालविचारिणास्मृतिम-
ताज्ञानोत्थानोपकरणसंम्पत्सुनित्यंयत्नवता॥ नचकदाचिद्राज-
द्विष्टानांराजद्वेषिणांवामहाजनद्विष्टानांमहाजनद्वेषिणांवाऔ-
षधमनुविधातव्यम्।एवंसर्वेषामत्यर्थंविकृतदुष्टदुःखशीलाचा-
रोपचाराणामनपवादप्रतिकरादीनांमुमूर्षुताञ्चतथैवासान्निहि-
तेश्वराणांस्त्रीणामनध्यक्षाणांवा ॥ ९ ॥

पहिले गुरुके लिये धन इकट्टा करनेमें यत्न करनाहोगा कर्मसिद्धिके लिये, अर्थ-सिद्धिके लिये,यश प्राप्त करनेके लिये,मरकर मोक्ष प्राप्तिके लिये इच्छा करनेवाला वैद्य पहिलेगौ ब्राह्मणोंको आदि लेकर संपूर्ण प्राणियोंके कल्याण करनेमें यत्नवान् रहना। नित्यम्प्रति उठता बैठता संपूर्णरूपसे रोगियोंके आरोग्य करनेमें यत्नवान् रहना । अपने आजीवनके लिये भी रोगियोंको दिक्क कर द्रव्य प्राप्त न करना । मनसे भी परस्त्रीकी इच्छा न करना तथा किसी भी पराई वस्तुके लेनेकी इच्छा न करना । स्वच्छ, साधारण, उत्तम वेश धारण रखना, मद्य न पीना, पापी न बनना, पापरहित मनुष्योंके साथ रहना, पवित्र, उत्तम, धर्मात्माओंकी संगति करना, शरण आयेहुएकी रक्षा करना, धन्य, सत्य,हित और देश, काल विचार कर मितभाषण करना, देशकालसे विचारवान् रहना, स्मृतिमान् होकर ज्ञान साध-नकी सामग्रीको नित्य संग्रह करना।और राजद्रोही तथा जिनसे राजा द्वेष करताहो, जो बडे पुरुषोंके द्वेषी हों अथवा जिनसे बडे पुरुष द्वेष रखतेहों ऐसे पुरुषोंको औषधि नहीं देना।इसी प्रकार सबका बुरा करनेवाले दुष्ट तथा खोटे आचारवाले पुरुषोंको भी औषधि न देना एवम् जो स्वयं मरना चाहताहै, जिसको अपने अप-वादका भय नहीं, जो कुपथ्यकारी है उनकी तथा जिन स्त्रियोंके पति, पुत्र आदि कोई समीप न हों ऐसी अकेली स्त्रियोंकी चिकित्सा नहीं करना ॥ ९ ॥

नचकदाचित्स्त्रीदत्तमामिषमादातव्यमननुज्ञातंभर्त्राअथवाअ-
ध्यक्षेण ।आतुरकुलञ्चानुप्रविशतात्वयाविदितेनानुमतप्रवेशि-
नासार्द्धंपुरुषेणसुसंवीतेनावाक्शिरसास्मृतिमतास्तिमितेनअ-
वेक्ष्यावेक्ष्यबुद्ध्यामनसासर्वमाचरतासम्यगनुप्रवेष्टव्यम्।अनु-
प्रविश्यचवाङ्मनोबुद्धीन्द्रियाणिनकाचित्प्रणिधातव्यानिअ-
न्यत्रातुरोपकारार्थावाआतुरगतेष्वन्येषुवाभावेषु । नचातुरकु-

लप्रवृत्तयोबहिर्निश्चारयितव्याः । ह्रासितश्चायुषःप्रमाणमातुरस्यनवर्णयितव्यंजानतापिच । तत्रयत्रोच्यमानमातुरस्यअन्यस्यवाप्युपघातायसम्पद्यते । ज्ञानवतापिचनात्यर्थमात्मनोज्ञानेनविकात्थितव्यम् । आप्तादपिहि । आप्तादपिविकत्थमानादत्यर्थमुद्विजन्तिअनेके ॥ १० ॥

यदि कोई स्त्री अपने पति अथवा अध्यक्षकी आज्ञा विना आमिष अथवा कोई अन्य वस्तुएं देवे ता ˜ लेना चाहिये । जब किसी रोगीको देखनेके लिये जावे तो जो मनुष्य उनके घरमें आनेजानेवाला हो उसके संगमें अथवा पहिले खबर वैद्यके आनेकी देकर जानकार पुरुषके साथ स्वच्छ वस्त्रोंको पहिनेहुए, सिरको नीचा किये हुए, विना कुछ बोले स्मृतिमान् होकर सावधानीसे पूर्वापरको विचारते हुए बुद्धि और मनसे उत्तम विधिका विचार करतेहुए रोगीके घरमें प्रवेश करना। फिर घरमें जाकरभी अपने मन, वाणी, बुद्धि और इन्द्रियोंको रोगीके उपकार तथा उसके निदान, कारणादि द्वारा रोगके सम्पूर्ण भावोंको जाननेमें लगावे। किन्तु अन्य उनके घरकी किसी वस्तु तथा स्त्री आदिकोंपर न तो दृष्टि डाले और न उनका विचारतक करे । रोगीके कुलके योग्य पुरुषोंको उसके समीपसे बाहर न निकाले।यदि देखे कि रोगीकी आयु बहुत कम शेष है अर्थात् मरजानेवालाहै तब भी अपने मुखसे न कहे क्योंकि इधर उधरसे अपने मरनेकी बात सुनकर रोगी शीघ्र घबडाकर मृत्युके वश होजाताहै एवम् उनके कुटुम्बी आदि सुनकर भी बडा भारी दुःख मानतेहैं ।स्वयं बुद्धिमान् होते हुए भी और वैद्यकका योग्य ज्ञानी होते हुए भी अपने मुखसे अपनी प्रशंसा न करे । यदि योग्य बुद्धिमान् भी अपने मुखसे अपनी बडाई करने लगजाता है तो उसको सुनकर बहुतसे लोगोंको उसमें अश्रद्धा उत्पन्न होजातीहै ॥ १० ॥

नचैवहिअस्तिआयुर्वेदस्यपारं, तस्मादप्रमत्तःशश्वदभियोगमस्मिन् गच्छेत् । तदेवंकार्य्यमेवंभयश्चप्रवृत्तस्यसौष्ठवमनसूयतापरेभ्योऽप्यगमयितव्यम् ।कृत्स्नोहिलोकोबुद्धिमतामाचार्यः शत्रुश्चाबुद्धिमतामेतच्चाभिसमीक्ष्यबुद्धिमताअमित्रस्यापि धन्यंयशस्यमायुष्यंपौष्टिकंलौकिकमभ्युपदिशतोवचःश्रोतव्यमनुविधातव्यञ्चेति ॥ ११ ॥

आयुर्वेद शास्त्रका पार नहीं है । इसलिये सदैव अप्रमत्त होकर इसमें चित्त लगा योग्यता प्राप्त करे। और यह जानकर कि अमुकस्थलमें अमुकप्रकारसे रोग शान्ति करनाचाहिये इत्यादि वैद्यकशास्त्रके प्रकारोंको अपने गुरुके सिवाय और योग्य वैद्योंसे भी सीखतारहे तथा निंदा आदिको त्याग देवे । बुद्धिमान् मनुष्यके लिये सम्पूर्ण संसार ही शिक्षा देनेवाला गुरु है और मूर्खोंके लिये शत्रु है।ऐसा विचारकर बुद्धिमान् मनुष्यको चाहिये कि शत्रुका कहाहुआ भी वाक्य सुनना यदि प्रशंसाके योग्य हो,हितकारी हो और यशको बढानेवाला हो तथा आयुवर्द्धक हो,तो उसको विचार कर मान लेना और उसके अनुकूल आचरण करना चाहिये ॥ ११ ॥

अतःपरमिदंब्रूयाद्देवताग्निद्विजातिगुरुवृद्धसिद्धाचार्य्येषुतेसम्यग्वर्त्तितव्यम्।तेषुतेसम्यग्वर्त्तमानस्यायमाग्निःसर्वगन्धरसरत्नबीजानियथेरिताश्चदेवताःशिवायस्युःअतोऽन्यथाचावर्त्तमानस्याशिवायेति । एवंब्रुवतिचाचार्य्येशिष्यस्तथेतिब्रूयात्। यथोपदेशञ्चकुर्वन्नध्याप्योज्ञेयअतोऽन्यथातुअनध्याप्यः अध्याप्यमध्यापयन्हिआचार्य्योयथोक्तैश्चाध्यापनफलैर्योगमा[illegible]।तेअन्यैश्चानुक्तैःश्रेयस्करैर्गुणैःशिष्यमात्मानञ्चयुनक्ति । इति अध्यापनविधिरुक्तः ॥ १२ ॥

इसके अनन्तर आचार्य शिष्यसे यह और कहे कि देवता, अग्नि, ब्राह्मण, गुरु, वृद्ध-जन, सिद्ध और आचार्य इनसे सदैव भले प्रकार विनीतभावसे वर्ताव रखना । इन सबके साथ विनयपूर्वक उत्तम वर्ताव करनेसे यह सब तथा अग्नि और सब प्रकारके गंध, रस, रत्नादिक और देवता तथा वृद्ध, सिद्ध,आचार्य आदिक तेरे कल्याणको करेंगे । इसके विपरीत करनेसे तुम्हारा अमंगल होगा । शिष्य यह सुनकर हाथ जोडकर कहे बहुत अच्छा महाराज ऐसा ही करूंगा तथा जैसे गुरुने उपदेश कियाहै उसीके अनुसार सम्पूर्ण कार्योंको करे।ऐसा शिष्य पढानेके योग्य है इससे विपरीत पढानेके योग्य नहीं है । पढानेके योग्य शिष्यको पढाताहुआ आचार्य अध्यापनके संपूर्ण फलोंको प्राप्त होताहै । शिष्यको चाहिये कि इनके सिवाय अन्य भी जो हितकर कल्याणकारी गुण हों उनको ग्रहण करे । इसप्रकार अध्यापन विधिका कथन कियागया ॥ १२ ॥

सम्भाषणविधि ।

अध्ययनाध्यापनविधिवत्सम्भाषाविधिमतऊर्द्ध्वंव्याख्यास्यामः।

भिषग्भिषजासहसम्भाषेत । तद्विद्यसम्भाषाहिज्ञानाभियोग-संहर्षकरीभवति । वैशारद्यमपिचाभिनिर्वर्त्तयातिवचनशक्तिम-पिचाधत्तेयशश्चाभिदीपयाति। पूर्वश्रुतेचसन्देहवतःपुनःश्रवणा-च्छ्रुतसंशयमपकर्षति । श्रुतेचासन्देहवतोभूयोऽध्यवसायम-भिनिर्वर्तयति । अश्रुतमपिचकश्चिदर्थंश्रोत्रविषयमापादयति । यच्चाचार्य्यःशिष्यायशुश्रूषवेप्रसन्नक्रमेणोपदिशतिगुह्याभिमत-मर्थजातम्, तत्परस्परेणसहजल्पन्पिण्डेनविजिगीषुराहसंह-र्षात्तस्मात्तद्विद्यसम्भाषामभिप्रशंसन्तिकुशलाः ॥ १३ ॥

इसके उपरान्त अध्ययन और अध्यापन विधिके समान अब संभाषण विधिका कथन करते हैं । वैद्यको वैद्यसे संभाषण करना चाहिये क्योंकि वैद्यसे वैद्य संभाषण करता हुआ आयुर्वेदके संबंधमें तर्क वितर्ककी सामर्थ्यवाला होजाता है और उसकी ज्ञानशक्ति तथा कथनशक्ति बढजाती है एवम् बोलनेकी चतुराई उत्पन्न होजातीहै यश बढता है, पहिले सुने हुए विषय जिनमें संदेह होगया हो वह परस्पर शास्त्रार्थ द्वारा सुननेसे उनका संशय दूर होजाताहै और संदेह रहित वाक्य भी बोले और सुने जानेसे निश्चयात्मक और याद होजाते हैं । जो विषय कभी सुननेमें नहीं भी आये वह भी शास्त्रार्थमें श्रवणगोचर होजाते हैं । जिन गुह्य विषयोंको आचार्य शिष्यसे प्रसन्न होकर भी क्रमपूर्वक कथन करते हुए इस विचारमें रहता है कि किसी समय योग्य शिष्यको बतलावेंगे या बडे प्रेमी शिष्यको और अत्यन्त शुश्रूषा कर-नेवालेको क्रमसे बतलाताहै वह गुह्य विषय भी शास्त्रार्थके समय एक दूसरेको जीत-नेकी इच्छा करता हुआ और अपने पक्षको पुष्ट करनेके लिये तथा अपने पांडि-त्यको दिखाता हुआ झट आवेशमें आ प्रगट करदेता है। इसलिये तद्विद्य संभाषा अर्थात् वैद्यको वैद्यसे वैद्यक विषयमें संभाषण करनेकी बुद्धिमान् प्रशंसा करते हैं ॥१३॥

द्विविधातुखलुतद्विद्यसम्भाषाभवति सन्धायसम्भाषा विगृह्य-सम्भाषाच । तत्रज्ञानविज्ञानवचनप्रतिवचनशक्तिसम्पन्ने-नाकोपनेनअनुपस्कृतविद्येनानसूयकेनअनुनयकोविदेनक्लेश-क्षमेण प्रियसम्भाषणेनचसहसन्धायसम्भाषाविधीयते। तथावि-धेनसहकथयन्विश्रब्धःकथयेत् पृच्छेदपिचाविश्रब्धःपृच्छतेचा-

स्मैविश्रब्धायविशदमर्थंब्रूयात् । नचनिग्रहभयादुद्विजेत । निगृह्यचैनंनहृष्येत्, नचपरेषुविकत्थेत। नचमोहादेकान्तग्राहीस्यात्, नचाप्रस्तुतमर्थमनुवर्णयेत् । सम्यक् चानुनयेनानुनीयेत, अनुनयाच्चपरंतत्रचावहितःस्यादित्यनुलोमसम्भाषाविधिः ॥ १४ ॥

वह तद्विद्य संभाषा दो प्रकारकी होतीहै ।१ संधायसंभाषा ।२ विगृह्यसंभाषा । उनमें ज्ञान और विज्ञानयुक्त वचन और प्रतिवचनमें सम्पन्न क्रोधरहित, बहुत विद्याको जाननेवाला, निंदारहित,नम्रतायुक्त,कष्टको सहनेवाला, एवम् प्रिय भाषण करनेवाला जो विद्वान् हो उसके साथ ऐसे ही गुणोंवाला योग्य वैद्य मिलकर मित्रताके भावसे प्रीतिपूर्वक संभाषण करे। ऐसे वैद्यके साथ शास्त्रार्थ करते हुए शान्तिपूर्वक भाषण करे और शान्तस्वभावसे उसके प्रश्नोंका उत्तर देवे तथा स्पष्ट अर्थोंवाले शब्दोंको उच्चारण करे और हारनेके भयसे उद्विग्न न होवे एवम् उसको जीतकर मनमें प्रसन्न भी न होवे तथा दूसरोंके पास कथन न करे और तर्क वितर्कके समय मोहसे उन्मत्त न होजाय अर्थात् एकान्तग्राही न बने एवम् झूठे तथा जिनकी आवश्यकता न हो ऐसे शब्दोंको उच्चारण न करे और दोनों आपसमें नम्रतापूर्वक प्रेमसे भाषण करें। इस प्रकारकी प्रेममयी संभाषाको अनुलोम (संधाय)संभाषा कहतेहैं ॥ १४ ॥

विगृह्यसंभाषणाविधि ।

अतऊर्द्धमितरेणसहविगृह्यसम्भाषेतश्रेयसायोगमात्मनःपश्यन् । प्रागेवचजल्पाज्जल्पान्तरंपरावरान्तरंपरिषद्विशेषांश्च सम्यक्परीक्षेतसम्यक्परीक्षाहिबुद्धिमतांकार्य्यप्रवृत्तिनिवृत्तिकालौचशंसति । तस्मात्परीक्षामतिप्रशंसन्तिकुशलाः । परीक्षमाणस्तुखलुपरावरान्तरमिमाञ्जल्पकगुणाञ्छ्रेयस्करांश्च दोषवतश्चपरीक्षेतसम्यक् । तद्यथा-श्रुतंविज्ञानंधारणंप्रतिभानंवचनशक्तिरित्येतान्गुणाञ्छ्रेयस्करानाहुः । इमान्पुनर्दोषवतःकोपनत्वमवैशारद्यंभीरुत्वमनवहितत्वमिति । एतान्द्वयानपिगुणान्गुरुलाघववतःपरस्यचैवात्मनश्चतोलयेत् ॥ १५ ॥

इसके उपरान्त विगृह्य संभाषाका कथन करतेहैं। जब वैद्य दूसरे वैद्योंसे अपने कल्याण अर्थात् जीतनेकी इच्छासे एवम् दूसरे वैद्यको पराजय करनेकी इच्छासे शास्त्रार्थ करना चाहे तो प्रथम संभाषण करनेसे पहिले ही परावरान्तर (अपना और दूसरे वैद्यका शास्त्रमें बल) तथा परिषद् (सभा) विशेषको उचित रीतिपर परीक्षा कर लेवै। प्रथम भले प्रकार परीक्षा करलेनाही बुद्धिमानोंको कार्यमें प्रवृत्त होनेका तथा निवृत्त होनेका समय दिखादेताहै। इसलिये प्रथम परीक्षा करलेनेकी प्रशंसा करतेहैं। परीक्षा करतेहुए अपने और दूसरेके शास्त्रबलमें अन्तरको तथा जल्प (जीतनेकी इच्छासे शास्त्रार्थ) करनेवालेके गुणोंको उसके और अपने कल्याणकारी भावोंको एवम् दोषोंको भलेप्रकार परीक्षा करे। वह गुण और दोष इस प्रकार होतेहैं। जैसे श्रुत, विज्ञान, धारणा, स्फुरणा, तेजस्विता, वाक्यशक्ति यह शास्त्रार्थ करनेवालेके श्रेयस्कर अर्थात् कल्याणकारी गुण कहेजाते हैं। क्रोधित होना, बोलनेमें चतुराई न होना, डरना, असावधान रहना यह शास्त्रार्थ करनेवालेके दोष होतेहैं। प्रथम अपने और दूसरेके इन दोनों प्रकारके गुणदोषोंको बुद्धिमें तौल लेवे ॥ १५ ॥

प्रतिवादीके भेद।

तत्रात्रिविधःपरःसम्पद्यते,प्रवरःप्रत्यवरःसमोवागुणविनिक्षेपतो नत्वेवंकात्स्न्येन ॥ १६ ॥

प्रतिवादी तीन प्रकारका होता है। १ अपनेसे उत्तम गुणवाला। २ अपनेसे हीन गुणवाला। ३ अपनेसे समान गुणवाला। यह तीन प्रकारका भेद केवल गुण निक्षेपसे ही कहा है संपूर्ण विषयोंमें नहीं ॥ १६ ॥

सभाके भेद।

परिषच्चखलुद्विविधा,ज्ञानवतीमूढपरिषच्च, सैवद्विविधासतीत्रिविधापुनरनेनकारणविभागेनसुहृत्परिषत्, उदासीनपरिषत्प्रतिनिविष्टपरिषच्चेति ॥ १७ ॥

परिषद् अर्थात् सभा दो प्रकारकी होती है। १ ज्ञानवती सभा। २ मूढसभा। यह दो प्रकारकी होतीहुई भी इस प्रकार कारणभेदसे प्रत्येक सभा तीनतीन प्रकारकी होती है। जैसे-सुहृद परिषद् (अपने मित्रोंकी सभा) उदासीन परिषद् (सामान्य पुरुषोंकी सभा) और प्रतिनिविष्ट (पंडितों अथवा वडे पुरुषोंकी) परिषद् ॥ १७ ॥

तत्रप्रतिनिविष्टायांपरिषदिज्ञानविज्ञानवचनप्रतिवचनशक्ति- सम्पन्नायां मूढायां वा न कथञ्चित् केनचित सह जल्पोविधी- यते । मूढायान्तु सुहृत्परिषदि उदासीनायां वा ज्ञानविज्ञानम- न्तरेणाप्यदीप्तयशसामहाजनाद्विष्टेनसहजल्पोविधीयते । तद्वि- धेनचसहकथयताआविद्धदीर्घसूत्रसंकुलैर्वाक्यदण्डकैःकथयित- व्यम् । अतिहृष्टंमुहुर्मुहुरुपहसतापरंनिरूपयताचपरिषदमाका- रैर्ब्रुवतश्चास्यवाक्यावकाशोनदेयः । काष्ठशब्दञ्चब्रुवन्वक्तव्यो नोच्यतइति । अथवापुनर्हीनातेप्रतिज्ञेतिपुनश्चाह्वयमानःप्रति- वक्तव्यः । परिसंवत्सरंभवान्शिक्षतांतावत् ॥ अथवापर्य्याप्त- मेतावत्ते । सकृदेवहिपरिक्षेपिकंनिहितंनिहतमाहुरीति । ना- स्ययोगः कर्त्तव्यःकथञ्चिदप्येवंश्रेयसासहाविगृह्यवक्तव्यमित्या- हुरेके । नत्वेवंज्यायसासहविग्रहंप्रशंसन्तिकुशलाः ॥ १८ ॥

ज्ञान, विज्ञान, प्रतिवचन, शक्तिसंपन्न प्रतिनिविष्ट परिषद्में अर्थात् अपनेसे बहुत बडे २ विद्वानोंकी सभामें तथा मूर्खोंकी सभामें किसीसे किसी प्रकारका जल्प करना उचित नहीं है । सुहृद्सभा और उदासीन सभा यदि मूढ भी हो तो उसमें कोई दूसरा वैद्य अपने ऊपर जीतनेकी इच्छासे आवे तो ज्ञान, विज्ञानके विना भी अपने यशकी इच्छासे उसको जीतनेके लिये शास्त्रार्थ करे । ऐसे पुरुषके साथ संभाषण करते हुए कठिन तथा दीर्घ संकुलीदार गूढार्थ सूत्रोंद्वारा पेचीदा बातोंसे उसको जीतनेका यत्न करे और अति प्रसन्न मुख होकर हंसता हुआ प्रतिवादीसे मसखरी करता हुआ सभाके आकारको जानकर उसको बोलनेका अवकाश न दे और यदि वह कठिन शब्दोंको बोले तो उसको कहे भाई अन्टसन्ट क्या बकते हो फिर तो कहो क्या कहते हो यदि वह उत्तर देवे तो कहे कि भाई ऐसा मत कहो इसमें तो तुम्हारे ही पक्षका खण्डन होगया अभी तुम एकवर्ष और पढो फिर आकर शास्त्रार्थ करना अथवा ऐसा कहे कि बस हमने जानलिया आपको जो कुछ आता है। हमने आपकी भले प्रकार परीक्षा करली है इतना ही बहुत है । यदि वह अपने ऊपर कोई आक्षेप करे तो झट कठिन संस्कृत बोलकर यह लो तुम्हारा यह पक्ष भी खण्डन होगया । मित्र अभी और पढिये । परन्तु इस प्रकारका प्रयोग विद्वानोंकी सभामें अथवा किसी भले पुरुषके साथ नहीं करना चाहिये । इस प्रकारके संभाषण

करनेका किसी २ आचार्यका मत है। हमारे मतमें यह अन्याय है । बुद्धिमान्को इस प्रकारका शास्त्रार्थ पंडितोंके सन्मुख और किसी योग्य पुरुषसे नहीं करना चाहिये ऐसा बुद्धिमानोंका मत है ॥ १८ ॥

प्रत्यवरेणतुससमानाभिमतेनवाविगृह्यजल्पतासुहृत्परिषदिक-थयितव्यम् । अथवाप्युदासीनपरिषदिअनवधानश्रवणज्ञान-विज्ञानोपधारणवचनशक्तिसम्पन्नायांकथयताचावहितेनपर-स्यसाद्गुण्यदोषबलमवेक्षितव्यम् । समवेक्ष्यचयत्रैनंश्रेष्ठम-न्येतनास्यतत्रजल्पं:.जयत्अनाविष्कृतमयोगंकुर्वन् । यत्रत्वे-नमवरंमन्येततत्रैवैनमाशुनिगृह्णीयात् ॥ १९ ॥

सुहृद् सभामें हीन समान और उत्तम गुणवालोंसे अर्थात् तीनों प्रकारके पुरुषों-से शास्त्रार्थ कर लेना अनुचित नहीं । अथवा उदासीन सभामें अर्थात् जिस सभामें अप्रमत्त, श्रवण, ज्ञान, विज्ञान, उपधारण और वचन शक्ति सम्पन्न पुरुष बैठे हुए हों ऐसी सभामें प्रतिवादीके सद्गुणों और दोषोंको सावधानीसे परीक्षा कर लेवे । यदि प्रतिवादी गुणोंमें अपनेसे बलवान् हो तो उससे शास्त्रार्थ न करे और एकाध शास्त्रकी बात इस प्रकार कहकर चुप होजावे जिससे सभाके मनुष्य इसको प्रति-वादीसे हीन न समझें यदि प्रतिवादी गुणोंमें अपनेसे हीन प्रतीत हो तो उसको झट शास्त्रार्थमें दबालेवे ॥ १९ ॥

तत्रनुखल्विमेप्रत्यवराणामाशुनिग्रहेभवन्तिउपायाः । तद्यथा, श्रुतहीनंमहतासत्रपाठेनाभिभवेत्विज्ञानहीनंपुनःकष्टशब्देन वाक्येन, वाक्यधारणाहीनमाविद्धदीर्घसंकुलैर्वाक्यदण्डकैः, प्रतिभाहीनंपुनर्वचनेनानेकविधानानेकार्थवाचिना, वचनशक्ति-हीनमर्द्धोक्तस्यवाक्यस्याक्षेपेण, अविशारदमपत्रपणेन, कोप-नमायासनेन, भीरुंवित्रासेन, अनवाहितंनियमनेनइत्येवमेतै-रुपायैरवरमभिभवेत् ॥ २० ॥ विगृह्यकथयेद्युक्त्यायुक्तश्चन निवारयन् । विगृह्यभाषातीव्रांहिकेषाञ्चिद्द्रोहमावहेत् ॥ २१ ॥ नाकार्य्यमस्तिक्रुद्धस्यनावाच्यमपिविद्यते।कुशलानाभिनन्द-न्तिकलहंसमितौसताम् ॥ २२ ॥

शास्त्रार्थमें प्रतिपक्षीको जीतनेके लिये ये उपाय हैं । जैसे यदि वह शास्त्रमें हीन हो तो उसके आगे वडे २ सूत्र और बहुतसा संस्कृतका पाठ उच्चारण करे । यदि वह विज्ञान शक्तिमें हीन हो तो कठिन शब्दोंसे उसको जीते । यदि उसमें वाक्य धारण करनेकी शक्ति न हो तो बंधेहुए संकुलीदार बहुत लम्बे २ दण्डकवाक्यों द्वारा शास्त्रार्थ करे । यदि वह तेजहीन और स्फुरणाहीन हो तो अनेक प्रकारसे अनेकार्थ शब्दों द्वारा पराजय करे । और वक्तृताशक्तिहीनको उपरोक्त वाक्योंके आक्षेपद्वारा अर्थात् एक पंक्तिपर दूसरी पंक्ति बोलबोलकर मुग्ध बनादेवे । चातुर्य रहितको लज्जित करनेवाले वाक्योंद्वारा पराजित करे । यदि वह क्रोधी हो तो उसके आगे इसप्रकारके कटाक्ष करे जिससे वह बोलना ही छोड देवे । डरनेवालेको शास्त्रीय धर्षणाद्वारा परास्त करे । असावधानको नियममें फंसाकर परास्त करे।इन उपायों-द्वारा प्रतिवादीको पराजय करनाचाहिये ॥ २० ॥ शास्त्रार्थ करते समय युक्तियुक्त वाक्योंको बोलना चाहिये अर्थात् अन्टसन्ट झूठा पक्ष न लेवे और प्रतिपक्षीके कहे हुए युक्तिसंमत सच्चे वाक्यको भी न माननेका झगडा न करे क्योंकि परस्पर जीतनेकी इच्छासे शास्त्रार्थ करते समय बहुतसे पुरुषोंके चित्तमें तीव्र द्रोह उत्पन्न हो जाताहै।क्रोधित मनुष्यके लिये कुछ भी,अवाच्य और अकार्य नहीं होता अर्थात् क्रोधमें भराहुआ मनुष्य जो कुछ आगे आये सो उचितानुचित वक देता है और लडाई आदि वृथा उपद्रव उत्पन्न होजाताहै। इसलिये बुद्धिमान् मनुष्य कलहको अच्छा नहीं समझते क्योंकि कलह करना सज्जन पुरुषोंका काम नहीं है॥२१॥२२॥

एवंप्रवृत्तेतुवादेप्रागेववादात्तावदिदंकर्त्तुंयतेत । सन्धायपरिषदाऽयनभूतमात्मनःप्रकरणमादेशयितव्यम् । यद्वापरस्य भृशदुर्गंस्यात् । पक्षमथवापरस्यभृशंविमखमानयेत् । परिषदिचोपसंहितायामशक्यमस्माभिर्वक्तुमितितूष्णीमासीदेषैव चतेपरिषद्यथेष्टंयथायोग्यंयथाभिप्रायंवादंवादमर्य्यादाश्चस्थापयिष्यतीत्युक्त्वा ॥ २३ ॥

जब प्रतिवादीसे शास्त्रार्थ करनेके लिये प्रवृत्त हो तो शास्त्रार्थ करनेसे प्रथम ही सभामें जो सभासद बैठे हों उनकी अनुमतिसे जिस विषयमें अपना अभ्यास और बल हो उस विषयमें शास्त्रार्थ करना प्रारम्भ करना चाहिये अर्थात् सभासदोंकी अनुमतिसे अपना पूर्वपक्ष करना चाहिये अथवा ऐसे पक्षको छेडे जो प्रतिवादीको अत्यन्त कठिन प्रतीत हो अथवा पूर्वपक्ष द्वारा प्रतिवादीको अत्यन्त विमुख बनादेवे ।जब देखे कि यह सभासे विमुख है अथवा सभा उससे विमुख हो तब सभामें

इस प्रकार प्रतिवाद उठावे कि मैं आपसे बोलनेकी ताकत नहीं रखता यह सज्जन पुरुषोंकी सभा ही तुम्हारे अभिप्रायके अनुसार अथवा जैसा उचित समझेगी वैसा हमारे तुम्हारे वादकी मर्यादाको स्थापनकर देगी । यह कहकर चुप हो जाय ॥ २३ ॥

वादमर्यादाके लक्षण ।

तत्रेदंवादंमर्य्यादालक्षणंभवतिइदंवाच्यमिदमवाच्यमेवंसोतिपराजितोभवतीति इमानिखलुपदानिभिषग्वादमार्गज्ञानार्थमधिगम्यानिभवन्ति । तद्यथा वादो, द्रव्यं,गुणाः, कर्म्म, सामान्यं, विशेषः, समवायः, प्रतिज्ञा, स्थापना, प्रतिष्ठापना, हेतुः, उपनयः, निगमनम्, उत्तरं, दृष्टान्तः, सिद्धान्तः, शब्दः, प्रत्यक्षम्, अनुमानम्, औपम्यम्, ऐतिह्यं, संशयः, प्रयोजनं, सव्यभिचारं, जिज्ञासा, व्यवसायः, अर्थप्राप्तिः, सम्भवः, अनुयोज्यम्, अननुयोज्यम्, अनुयोगः, प्रत्यनुयोगः, वाक्यदोषः, वाक्यप्रशंसा, छलम्, अहेतुः,अतीतकालम्, उपालम्भः, परिहारः, प्रतिज्ञाहानिः, अभ्यनुज्ञा, हेत्वन्तरम्, अर्थान्तरं, निग्रहस्थानमिति ॥ २४ ॥

वाद प्रतिवादमें अर्थात् शास्त्रार्थ करते समय प्रथम शास्त्रार्थकी मर्यादाको स्थापितकर लेना चाहिये कि यह बात कहना और यह नहीं कहना । इसप्रकार मर्यादामें बांध लेनेसे प्रतिवादी परास्त होजाताहै । वैद्यको शास्त्रार्थका मार्ग जाननेके लिये इन आगे कहेहुए वाक्योंको भलीप्रकार याद करलेना चाहिये । जैसे–वाद, द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय, प्रतिज्ञा, स्थापना, प्रतिष्ठापना, हेतु, उपनय, निगमन, उत्तर, दृष्टांत, सिद्धांत, शब्द, प्रत्यक्ष, अनुमान, औपम्य, ऐतिह्य, संशय, प्रयोजन, सव्यभिचार, जिज्ञासा, व्यवसाय, अर्थप्राप्ति, संभव, अनुयोज्य, अननुयोज्य, अनुयोग, प्रत्यनुयोग, वाक्यदोष, वाक्यप्रशंसा, छल, अहेतु, अतिकाल, उपालंभ, परिहार, प्रतिज्ञाहानि, अभ्यनुज्ञा, हेत्वंतर, अर्थांतर, निग्रहस्थान । इन सब शब्दार्थोंको यथोचित रीतिपर जानलेना चाहिये । आगे इन प्रत्येकका कथन करते हैं ॥ २४ ॥

---

१ वादशब्देन चेह विगृह्य पक्षप्रतिपक्षवचनमात्रमुच्यते, सन्धायसम्भाषयैव. तत्त्वबुभुत्सोर्वाद उक्तः

वादका लक्षण ।

तत्र वादोनामयत्परस्परेणसहशास्त्रपूर्वकं विगृह्यकथयाति । स वादोद्विविधःसंग्रहेण,जल्पोवितण्डाच । तत्रपक्षाश्रितयोर्वचनंजल्पः । जल्पविपर्य्ययोवितण्डा । यथैकस्यपक्षःपुनर्भवोऽस्तीतिनास्तीत्यपरस्य । तौच स्वपक्षंस्वहेतुभिःस्वस्वपक्षं स्थापयतःपरपक्षमुद्भावयतःएष जल्पोजल्पविपर्य्ययोवितण्डा। वितण्डानामपरपक्षेदोषवचनमात्रमेवमेव ॥ २५ ॥

जीतनेकी इच्छासे शास्त्रार्थमें क्रमपूर्वक परस्पर तर्क वितर्क करनेको वाद कहते हैं । उसवादके संग्रहक्रमसे दो भेद हैं । १ जल्प । २ वितण्डा । उनमें अपने पक्षको लेकर शास्त्रसम्मत उक्तिद्वारा अपने २ पक्षके जयकी इच्छासे संभाषण करना जल्प कहाता है जल्पसे विपरीत अर्थात् अपने पक्षको स्थापन न करके दूसरके पक्षमें दोष देते जानेको वितण्डा कहते हैं । जैसे–एकका पक्ष है कि पुनर्जन्म होता है दूसरेका पक्ष है कि पुनर्जन्म नहीं होता । यह दोनों अपने २ पक्षको स्थापन करतेहुए और हेतुओं द्वारा पुष्ट करते हुए परस्पर दूसरेके पक्षमें दोष दिखातेहुए जो शास्त्रार्थ होता है उसको जल्प कहते हैं । इससे विपरीत वितण्डा होती है। वितण्डा केवल दूसरेके पक्षमें दोष निकालनेका ही नाम है अर्थात् दूसरेमें दोष निकालनेके सिवाय अपना कोई खास पक्ष न रखना वितण्डा कहाती है ॥ २५ ॥

द्रव्यादि लक्षण ।

द्रव्यगुणकर्म्मसामान्यविशेषसमवायाःस्वलक्षणैः श्लोकस्थाने पूर्वमुक्ताः ॥ २६ ॥

द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय इन सबको इनके लक्षणोंके द्वारा पहिले सूत्रस्थानमें कथन कर चुके हैं ॥ २६ ॥

अथ प्रतिज्ञा ।

प्रतिज्ञानामसाध्यवचनंयथानित्यःपुरुषइति ॥ २७ ॥

अब प्रतिज्ञादिकोंका कथन करते हैं । साध्यवचनका कथन करना प्रतिज्ञा कहा जाता है । जैसे–पुरुष नित्य है इस जगह किसी हेतु आदिसे प्रथम जिस बातको सिद्धकरना हो उसको दृढतासे कथन करना प्रतिज्ञा कहाता है। इस स्थानमें "पुरुष नित्य है" । इस वाक्यके कथन करनेको प्रतिज्ञा कहते हैं ॥ २७ ॥

अथ स्थापना।

स्थापनानामतस्याएवप्रतिज्ञायाःहेतुदृष्टान्तोपनयनिगमैःस्थापना, पूर्वंहिप्रतिज्ञा, पश्चात्स्थापनाकिंह्यप्रातिज्ञातंस्थापयिष्यतियथानित्यःपुरुषइतिप्रतिज्ञाहेतुरकृतकत्वादिति। दृष्टान्तोयथाकाशंतच्चानित्यम्। उपनयोयथाचाकृतकमाकाशंतथापुरुषः। निगमनंतस्मान्नित्य इति॥ २८॥

पाहिले कीहुई प्रतिज्ञाको-हेतु, दृष्टांत, उपमा और निगमन द्वारा सिद्ध करना स्थापना कहाता है। पाहिले प्रतिज्ञा कहकर पीछे उसको स्थापना किया जाता है क्योंकि प्रतिज्ञा किये विना स्थापना होही नहीं सकती। जैसे पुरुष नित्य है यह प्रतिज्ञाकी अकृत होनेसे अर्थात् किसीका वनायाहुआ न होनेसे, यह हेतु हुआ। जैसे-आकाश अकृत होनेसे अर्थात् किसीका वनाया हुआ न होनेसे नित्य है, यह दृष्टान्त हुआ। जैसे-आकाश किसीका वनाया न होनेसे नित्य है उसी प्रकार पुरुष भी किसीका वनाया न होनेसे नित्य है यह उपनय हुवा॥ इसालिये पुरुष नित्यहै यह निगमन हुआ॥ २८॥

अथ प्रतिष्ठापना।

प्रतिष्ठापना नाम या परप्रतिज्ञायाःप्रातिविपरीतार्थस्थापना। यथाअनित्यःपुरुषइतिप्रतिज्ञाहेतुरैन्द्रियकत्वात्। दृष्टान्तोयथा घटऐन्द्रियकःसंचानित्यः। उपनयोयथाघटस्तथापुरुषःतस्मादनित्यइति॥ २९॥

जो पर प्रातिज्ञासे विपरीत अर्थवाली प्रतिज्ञाका स्थापन करना है उसको प्रतिष्ठापना कहते हैं। जैसे-पुरुष नित्य नहीं अनित्य है यह प्रातिज्ञा हुई। इसके अनित्य होनेमें हेतु यह है कि यह इन्द्रियों द्वारा प्रत्यक्ष होता है। दृष्टान्त यह है कि जैसे-इन्द्रियों द्वारा घटका ज्ञान होताहै सो घट अनित्य है। जैसे घट अनित्य है वैसेही पुरुष भी अनित्य है यह उपमान हुआ। इसालिये पुरुष अनित्य है यह निगमन हुआ॥ २९॥

अथ हेतुः।

हेतुर्नामोपलब्धिकारणंतत्प्रत्यक्षमनुमानमैतिह्यमौपम्यमित्येभिर्हेतुभिर्यदुपलभ्यतेतत्तत्त्वम्॥ ३०॥

---

१ हेतुशब्देनात्र लिंगग्राहकाणि प्रत्यक्षादिप्रमाणान्येव।

जिसके द्वारा उपलब्धि हो उसको हेतु कहते हैं । हेतुओं द्वारा जो प्राप्त हो वह तत्त्व है । वह तत्त्व-प्रत्यक्ष, अनुमान, ऐतिह्य और उपमान द्वारा प्राप्त होताहै॥ ३०॥

उपनयोनिगमनञ्चोक्तंस्थापनाप्रतिष्ठापनाव्याख्यायाम् ॥३१॥

उपनय अर्थात् उपमान और निगमनको स्थापनाकी व्याख्यामें कथनकर चुके हैं ॥ ३१ ॥

अथ उत्तरम् ।

उत्तरंनामसाधर्म्म्योपदिष्टेवाहेतौवैधर्म्यवचनंवैधर्म्योपादिष्टेवा साधर्म्यवचनंयथाहेतुसधर्म्माणोविकाराःशीतकस्याहिव्याधेर्हे-तुसाधर्म्यवचनंहिमाशिशिरवातसंस्पर्शाइतिब्रुवतःपरोब्रूयाद्धे-तुविधर्म्माणोविकारायथाशरीरावयवानांदाहौष्ण्यकोथप्रपच-नेहेतुवैधर्म्यंहिमाशिशिरवातसंस्पर्शाइति । एतत्सविपर्य्ययमु-त्तरम् ॥ ३२॥

साधर्म्यमें कहे हुए हेतुसे विपरीत हेतुको दिखाना अर्थात् उससे विपरीत वचनको कहना वैधर्म्यसे कहे हुए हेतुओंके विपरीत साधर्म्य वचनको कथन करना उत्तर कहा जाता है जैसे-किसीने कहा कि जो धर्म हेतुके होते हैं व्याधिके भी वही धर्म होते हैं। जैसे-शीतसे उत्पन्न हुई वातव्याधिके जो धर्म होते हैं उसके हेतुभूत हिम, शिशिर और वायुके संस्पर्शके भी वही धर्म होते हैं।इसप्रकार कहतेहुएको प्रतिवादी कहे कि जिस हेतुसे व्याधि उत्पन्न होती है उस हेतुके जो धर्म होते हैं वह व्याधिके नहीं होते क्योंकि देखनेमें आता है कि दाह, उष्णता, कोथ (सडन) शीतके धर्म न होनेपर भी शरीरके अवयवोंमें दाह, उष्णता आदि उत्पन्न करते हैं । और उन दाह उष्णतादिकोंके हिम शिशिर आदि विधर्मी गुणवाले कारण होतेहैं । इसलिये हेतु और व्याधिके गुणोंमें साधर्म्यता नहीं होती । इस प्रकार विपरीतवाक्यके कथन करनेको "उत्तर" कहते हैं ॥ ३२ ॥

अथ दृष्टान्तः ।

दृष्टान्तोनामयत्रमर्खविदुषांबुद्धिसाम्यं योवर्ण्यंवर्णयतियथा-ग्निरुष्णोद्रवमुदकंस्थिरापृथिवीआदित्यःप्रकाशक इतियथावा-दित्यःप्रकाशकस्तथासांख्यवचनंप्रकाशकमिति ॥ ३३ ॥

१-अत्र उत्तरशब्देन-जात्युत्तरमुत्तराभासमीप्सितम् । "साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां प्रत्यवस्थानं जातिः"

जिस कथनमें मूर्ख और विद्वानोंकी बुद्धिकी साम्यता हो अर्थात् जिसका मूर्ख और पंडित दोनों एकरूपसे मानजांय इस प्रकारके कथनको दृष्टान्त कहते हैं।जैसे–अग्नि उष्ण है ,जल पतला है,पृथ्वी स्थिर होती है, आदित्य प्रकाशमान है अथवा यों कहिये जैसे आदित्य प्रकाशमान है वैसे ही सांख्यके वचन भी प्रकाशको करनेवाले हैं । इसको दृष्टान्त कहते हैं ॥ ३३ ॥

अथ सिद्धान्तः ।

सिद्धान्तोनामयःपरीक्षकैर्बहुविधंपरीक्ष्यहेतुभिःसाधयित्वास्थाप्यतेनिर्णयःससिद्धान्तः । सचोक्तश्चतुर्विधः । सर्वतन्त्रसिद्धान्तः । प्रतितन्त्रसिद्धान्तोऽधिकरणसिद्धान्तोऽभ्युपगमसिद्धान्त इति ॥ ३४ ॥

जो परीक्षकोंने अनेक प्रकारसे परीक्षा कर हेतुओंद्वारा साधन करके स्थापन किया हो अर्थात् निर्णय किया हो उसको सिद्धान्त कहते हैं । वह सिद्धान्त–सर्वतंत्र सिद्धान्त, प्रतितंत्र सिद्धान्त, अधिकरण सिद्धान्त और अभ्युपगमसिद्धान्त इन भेदोंसे चार प्रकारका कहा है ॥ ३४ ॥

सर्वतन्त्रसिद्धान्तः ।

तत्रसर्वतन्त्रसिद्धान्तोनामतस्मिंस्तस्मिन्सर्वस्मिंस्तन्त्रेतत्प्रसिद्धंसन्तिनिदानानिसंतिव्याधयःसन्तिसिद्धगुपायाःसाध्यानामिति ॥ ३५ ॥

उनमें जो सिद्धान्त संपूर्ण तंत्रों (ग्रंथों) में एक समान हो और उसको सब मानते हों उसको सर्वतंत्र सिद्धान्त कहते हैं । जैसे–व्याधिका कारण और व्याधि तथा साध्यव्याधिकी चिकित्सा इसको सब तन्त्रोंमें कहा है और सब मानते हैं । इसलिये यह सर्वतंत्र सिद्धान्त है ॥ ३५ ॥

प्रतितन्त्रसिद्धान्तः ।

प्रतितन्त्रसिद्धान्तोनामतस्मिंस्तस्मिंस्तन्त्रेतत्तत्प्रसिद्धंयथान्यत्राष्टौरसाः षडन्यत्र । पञ्चेन्द्रियाणियथान्यत्रषडिन्द्रियाणि । वातादिकृताःसर्वविकारायथान्यत्रवातादिकृताभूतकृताश्चप्रसिद्धाः ॥ ३६ ॥

प्रतितंत्र सिद्धान्त उसको कहते हैं जो एक २ तंत्रमें अपने अपने रूपसे प्रसिद्ध हो और उसको वही वही तंत्रकार मानते हों।जैसे–किसीके मतमें रस आठ प्रकारके

हैं और कोई रसको छः प्रकारका कहते हैं एवम् कोई कहते हैं कि इन्द्रियें पांच हैं और किसी तंत्रमें इन्द्रियोंको छः माना है । कोई मानता है कि संपूर्ण व्याधियें वातादिकोंसे उत्पन्न होती हैं और किसीके मतमें संपूर्ण रोग भूत प्रेत आदिकोंके किये होते हैं इस प्रकार अपने २ तंत्रमें माने हुए सिद्धान्तको प्रतितंत्र सिद्धान्त कहते हैं ॥ ३६ ॥

अधिकरणसिद्धान्तः ।

अधिकरणसिद्धान्तोनामसयस्मिन्नाधिकरणेसंस्तूयमानेसिद्धान्यन्यान्यपिअधिकरणानिभवन्ति । यथानमुक्तःकर्म्मानुबन्धिकंकुरुतेनिस्पृहत्वादितिप्रस्तुतेसिद्धाःकर्म्मफलमोक्षपुरुषप्रेत्यभावाभवन्ति ॥ ३७ ॥

किसीएक पक्षको लेकर निर्णय करते करते बीचमें किसी अन्य विषयका निश्चय होजाना अधिकरण सिद्धान्त कहाताहै । जैसे-जिन मनुष्योंकी मोक्ष हो चुकी है। वह निस्पृही मनुष्य आगेको होनेवाले जन्मके अनुबंध करनेवाले कर्मको नहीं करते क्योंकि वह आगेके लिये अपने किसी कर्मके फलकी इच्छा नहीं रखते इस प्रकारके प्रस्तावमें कर्मका फल, मोक्ष,पुरुष और उसके होनेवाले जन्मादिकोंका निश्चय होजाना यह अधिकरण सिद्धान्त कहा जाता है ॥ ३७ ॥

अभ्युपगमसिद्धान्तः ।

अभ्युपगमसिद्धान्तोनामयमर्थमसिद्धमपरीक्षितमनुपदिष्टमहेतुकंवावादकालेऽभ्युपगच्छन्तिभिषजः । तद्यथा-द्रव्यंनप्रधानमितिकृत्वावक्ष्यामः । गुणःप्रधानम् इति कृत्वावक्ष्यामइत्येवमादिश्चतुर्विधः सिद्धान्तः ॥ ३८ ॥

शास्त्रार्थके समय किसी असिद्ध विना परीक्षा किये तथा आप्तजनोंके विना उपदेश किये अर्थको विना ही हेतुसे थोडी देरके लिये मानलेना अभ्युपगम सिद्धान्त कहा जाता है। जैसे-द्रव्य प्रधान नहीं है इसका कथन करते हुए गुण प्रधान है यह मानकर फिर अपने असली कथनपर आजाना अभ्युपगम सिद्धान्त कहाता है। इस प्रकार चतुर्विध सिद्धान्त होते हैं ॥ ३८ ॥

शब्दः ।

शब्दोनामवर्णसमाम्नायःसचतुर्विधःदृष्टार्थश्चादृष्टार्थश्चसत्यश्चानृतश्चेति । तत्रदृष्टार्थस्त्रिभिर्हेतुभिर्दोषाःप्रकुप्यन्तिषड्भि-

रुपक्रमैश्चप्रशाम्यन्ति । श्रोत्रादिसद्भावेशब्दादिग्रहणामात अदृष्टार्थः पुनरस्तिप्रेत्यभावोऽस्तिमोक्षइति सत्योनामयथार्थ-भूतः । सन्त्यायुर्वेदोपदेशाः । सन्त्युपायाःसाध्यानाम् सन्त्यारम्भफलानीति । सत्याविपर्य्ययाच्चानृतम् ॥ ३९ ॥

शब्द-इस स्थानमें वर्णके उच्चारणको कहते हैं । वह शब्द दृष्टार्थक, अदृष्टार्थक, सत्य और अनृत इन भेदोंसे चार प्रकारका है । दृष्टार्थक-उस शब्दको कहते हैं जो स्पष्ट और प्रत्यक्ष अर्थको बोध करे जैसे-प्रज्ञापराधादि तीन हेतुओंसे तीन दोष कुपित होते हैं और लंघनादि छः प्रकारके उपक्रमोंसे शान्त होते हैं। कर्णादि द्वारा शब्दादिका ग्रहण होना अदृष्टार्थक शब्द कहाजाताहै । जैसे-फिर जन्म होता है, ज्ञानसे मोक्ष होजाताहै यह अदृष्टार्थक शब्द है। यथार्थ शब्दको सत्य शब्द कहते हैं जैसे-आयुर्वेदके उपदेश सत्य हैं साध्य रोग उपाय द्वारा शान्त हो सकते हैं, आरम्भका फल अवश्य होताहै । इन सबको सत्य शब्द कहते हैं । सत्यसे विपरीत अर्थात् मिथ्या शब्दको अनृत शब्द कहते हैं ॥ ३९ ॥

अथ प्रत्यक्षम् ।

प्रत्यक्षंनामतद्यदात्मना[1]पञ्चेन्द्रियैश्चस्वयमुपलभ्यते। तत्रात्मप्रत्यक्षाःसुखदुःखेच्छाद्वेषादयःशब्दादयस्त्विन्द्रियप्रत्यक्षाः॥४०॥

जो विषय आत्मद्वारा अथवा पंचेन्द्रिय द्वारा निश्चयात्मकरूपसे जाना जाय उसको प्रत्यक्ष कहते हैं । सुख , दुःख, इच्छा, द्वेष, आदिक आत्माके प्रत्यक्ष हैं और शब्दादिक इन्द्रियोंके प्रत्यक्ष हैं ॥ ४० ॥

अनुमानम् ।

अनुमानंनामतर्कोयुक्त्यपेक्षोयथोक्तमग्निंजरणशक्त्याबलंव्यायामशक्त्याश्रोत्रादीनिशब्दादिग्रहणेनेन्द्रियाणीत्येवमादिः ॥४१॥

युक्तियुक्त तर्कको अनुमान कहतेहैं। जैसे-पाचनशक्तिसे जठराग्निका अनुमान करना, व्यायामकी शक्तिसे बलका अनुभव करना, शब्दादिक ग्रहणसे श्रोत्रादिक इन्द्रियोंका अनुमान करना ॥ ४१ ॥

अथ औपम्यम् ।

औपम्यंनामयदन्येनान्यस्यसादृश्यमधिकृत्यप्रकाशनंयथाद-

---

१ आत्मनेति मनसा अनेन मानसप्रत्यक्षमुपादायमवरुध्यत इति चक्रपाणिः ।

पडेनदण्डकस्यधनुषाधनुष्टम्भस्यइष्वासिनाआरोग्यदस्येति ॥४२॥

जो विषय दूसरेसे दूसरेकी सादृश्यताको प्रकाश करता है उपमान कहा जाता है। जैसे-दण्डक रोग-दण्डेके समान होता है। धनुष्टंभ रोगमें मनुष्य धनुषके आकार टेढ़ा होजाता है। जो औषधी रोगको शीघ्र नष्ट कर डाले उसको तीरकी उपमा दी जाती है। इसको उपमान कहते हैं ॥ ४२ ॥

अथ ऐतिह्यम् ।

ऐतिह्यंनामआप्तोपदेशोवेदादिः ॥ ४३ ॥

ऐतिह्य-आप्तोपदेशको ऐतिह्य कहते हैं जैसे वेद और आर्ष ग्रंथ आप्त प्रमाण है ॥ ४३ ॥

अथ संशयः ।

संशयोनामसन्दिग्धेष्वर्थेष्वनिश्चयः ।
यथाकिमकालमृत्युरस्तिनास्तीति ॥ ४४ ॥

संदिग्ध अर्थोंके अनिश्चयको संशय कहते हैं। जैसे-अकालमृत्यु है या नहीं। इस संशयात्मक अनिश्चित ज्ञानको संशय कहते हैं ॥ ४४ ॥

अथ प्रयोजनम् ।

प्रयोजनंनामयदर्थमारभ्यन्तआरम्भाः । यथायद्यकालमृत्युर-
स्तिततोऽहमात्मानमायुष्यैरुपचरिष्यामिअनायुष्याणिचपरिह-
रिष्यामिकथंमामकालमृत्युःप्रसहेतेति ॥ ४५ ॥

जिस अर्थके लिये आरम्भ कियाजाताहै उस अर्थको प्रयोजन कहते हैं। जैसे-यदि अकालमृत्यु है तो मैं अपनेको आयुवर्द्धक उपचारों द्वारा रक्षित रक्खूंगा और आयुनाशक पदार्थोंका त्याग करूंगा। क्योंकि मैं अकालमृत्युको सहन करना नहीं चाहता। इस स्थानमें दीर्घायु होनेके लिये प्रयत्न करना "प्रयोजन" कहाताहै ॥ ४५ ॥

अथ सव्यभिचारम् ।

सव्यभिचारंनामयद्व्यभिचरणंयथाभवेदिदमौषधंतस्मिन्व्या-
धौयौगिकमथवानेति ॥ ४६ ॥

किसी विषयका एक जगहसे दूसरी जगह भी व्यापक होजाना सव्यभिचार कहाता है। जैसे-यह औषधी इस रोगमें हितकारक है और नहीं भी है ॥ ४६ ॥

अथ जिज्ञासा।

जिज्ञासानामपरीक्षायथाभेषजपरीक्षोत्तरकालमुपदेक्ष्यते ॥४७॥

किसी विषयकी परीक्षा करना अर्थात् उसके जाननेका यत्न करना जिज्ञासा कहाती है। जैसे–औषधकी परीक्षा आगे कथन करेंगे ॥ ४७ ॥

अथ व्यवसायः।

व्यवसायोनामनिश्चयःयथावातिकएवायंव्याधीरिदमेवास्यभे-षजमिति ॥ ४८ ॥

निश्चयात्मक अर्थका कथन करना अथवा निश्चय कर लेना व्यवसाय कहा जाता है। जैसे–यह व्याधि वायुसेही उत्पन्न हुई है और इसकी यही औषधि है ॥४८॥

अथार्थप्राप्तिः।

अर्थप्राप्तिर्नामयत्रैकेनार्थेनोक्तेनापरस्यार्थस्यानुक्तस्यासिद्धिः। यथानायंसंतर्पणसाध्योव्याधिरित्युक्तेभवत्यर्थप्राप्तिरतर्पणसा-ध्योऽयमिति। नानेनदिवाभोक्तव्यमित्युक्तेभवत्यर्थप्राप्तिर्नि-शिभोक्तव्यमिति ॥ ४९ ॥

कहे हुए अर्थसे विना कहेहुए दूसरे अर्थकी सिद्धि होजाना अर्थप्राप्ति कहाजाता है। जैसे यह व्याधि संतर्पणद्वारा साध्य नहीं हो सकती इससे यह अर्थ निकल आया कि अपतर्पणद्वारा साध्य हो सकतीहै। इस मनुष्यको दिनमें भोजन नहीं करना चाहिये इससे यह अर्थ निकल आया कि रात्रिको करना चाहिये इसको अर्थप्राप्ति कहते हैं ॥ ४९ ॥

अथ सम्भवः।

सम्भवोनामयोयतःसम्भवतिसतस्यसम्भवः। यथाषड्धात-वोगर्भस्यव्याधेरहितं हितमारोग्यस्येति ॥ ५० ॥

जो जिससे होसकताहो उसको संभव कहते हैं। जैसे षड्धातु गर्भका संभव अर्थात् गर्भ होनेका कारण है। तात्पर्य यह हुआ कि छः धातुओंसे गर्भ हो सकता है। अहितसेवनसे व्याधिका होना संभव है और हितपदार्थके सेवनसे आरोग्य रहना संभव है ॥ ५० ॥

अथानुयोज्यम्।

अनुयोज्यंनामयद्वाक्यंवाक्यदोषयुक्तंतदनुयोज्यमुच्यते। सा-

मान्योदाहृतेष्वर्थेषुवाविशेषग्रहणार्थंतद्वाक्यमनुयोज्यम्।यथा संशोधनसाध्योऽयंव्याधिरित्युक्तेकिंवमनासाध्यःकिंविरेचनसा-ध्यइत्यनुयुज्यते ॥ ५१ ॥

जो वाक्य दोषयुक्त हो उसको अनुयोज्य कहतेहैं । जहां सामान्यतासे थोडासा कहना उचित हो उस स्थानमें बडी लम्बी कथाको छेडदेना अनुयोज्य कहाताहै । जैसे किसीको कहागया कि यह रोगी संशोधन द्वारा साध्य होसकताहै उसमें यह पूछना क्या इसको वमन और विरेचन भी कराना होगा इत्यादि वाक्योंको पूछना अनुयोज्य कहाताहै ॥ ५१ ॥

अथाननुयोज्यम् ।

अननुयोज्यंनामातोविपर्ययेणयथायमसाध्यः ॥ ५२ ॥

अनुयोज्यसे विपरीतको अननुयोज्य कहतेहैं जैसे यह मनुष्य असाध्य है ॥५२॥

अथाऽनुयोगः ।

अनुयोगोनामयत्तद्विद्यानांतद्विद्यैरेवसार्द्धंतन्त्रेतन्त्रैकदेशेवा प्रश्नःप्रश्नैकदेशोवाज्ञानविज्ञानवचनपरीक्षार्थमादिश्यते । अथवानित्यःपुरुषइतिप्रतिज्ञातेयत्परःकोहेतुरित्याहसोऽनु-योगः ॥ ५३ ॥

वैद्य वैद्यके साथ परस्पर वैद्यकशास्त्रमें अथवा वैद्यकशास्त्रके एक अंशमें प्रश्न करे अथवा प्रश्नके एकदेशको करता हुआ ज्ञान, विज्ञान,वचन इनकी परीक्षाके लिये बराबरीवालेसे जो प्रवृत्ति करे उसको अनुयोग कहते हैं । अथवा एकने कहा कि पुरुष नित्य है उसमें यह कहना कि पुरुषके नित्य होनेमें हेतु क्या है अनुयोग कहाता है ॥ ५३ ॥

अथ प्रत्यनुयोगः ।

प्रत्यनुयोगोनामानुयोगस्यानुयोगः । यथाऽनुयोगस्यपुनः कोहे-तुरिति ॥ ५४ ॥

अनुयोगमें अनुयोग करनेको प्रत्यनुयोग कहते हैं जैसे आप ऐसा प्रश्न हमारे ऊपर कैसे करसकते हैं यह कहना प्रत्यनुयोग कहाजाता है ॥ ५४ ॥

अथ वाक्यदोषः ।

वाक्यदोषोनामयथाखल्वस्मिन्नर्थेन्यूनमधिकमनर्थकमपार्थकं विरुद्धञ्चेति ॥ ५५ ॥

जिस विषयमें कथन करनेलगे उसमें न्यून, अधिक, अनर्थक, अपार्थक और विरुद्धताका कथन करना वाक्यदोष कहाताहै छल हेत्वाभासादि सब वाक्यदोष· मेंही जानने ॥ ५५ ॥

वाक्यन्यूनता ।

अत्रहेतूदाहरणोपनयनिगमनानामन्यतमेनापिन्यूनंन्यूनंभवतियद्वाबहूपदिष्टहेतुकमेकेनसाध्यतेहेतुनातच्चन्यूनम् एतानि ह्यन्तरेणप्रकृतोप्यर्थःप्रणश्येत् ॥ ५६ ॥

उदाहरण, उपमा, निगमन इनमेंसे किसी एकका अभाव होना न्यून कहाताहै। अथवा जिस वि॰यको बहुतसे हेतुओंसे पुष्ट करना उचित हो उसको अल्पहेतु द्वारा कथन करना न्यून कहाताहै । न्यूनतासे अर्थका कथन करना प्रकृत अर्थको भी नष्ट करदेताहै ॥ ५६ ॥

अथाधिक्यम् ।

आधिक्यंनामयदायुर्वेदेभाष्यमाणेबार्हस्पत्यमौशनसमन्यद्वाप्रतिसम्बद्धार्थमुच्यतेयद्वापुनः प्रातिसम्बद्धार्थमपिद्विरभिधीयते, तत्पुनरुक्तत्वादधिकं, तच्चपुनरुक्तंद्विविधमर्थपुनरुक्तंशब्दपुनरुक्तञ्च । तत्रार्थपुनरुक्तंनामयथाभेषजमौषधंसाधनमिति, शब्दपुनरुक्तञ्चभेषजंभेषजमिति ॥ ५७ ॥

आयुर्वेदमें संभाषण करते हुए वार्हस्पत्य तथा औशनस अथवा अन्य प्रासंगिक इधर उधरकी कथा कहानियोंको छेड देना तथा एक वाक्यको अनेक प्रकारसे कईवार उच्चारण करना अथवा एक वाक्यको दोहराकर कहना वाक्यकी अधिकता कही जाती है । उनमें एक बातको दोहराकर कहना पुनरुक्त कहाता है। उसके दो भेद हैं । १ अर्थसे पुनरुक्त । २ शब्दपुनरुक्त । जैसे-औषधको-भेषज, औषध, साधन इन तीन नामोंसे उच्चारण करना यह अर्थपुनरुक्त कहा जाता है तथा भेषज भेषज वारवार कहना शब्दपुनरुक्त कहा जाता है ॥ ५७ ॥

अनर्थक ।

अनर्थकंनामयद्वचनमक्षरग्राममात्रमेवस्यात्पञ्चवर्गवन्नचार्थतोगृह्यते ॥ ५८ ॥

जिस वचनसे किसी भी अर्थकी प्राप्ति न हो केवल जिह्वासे उच्चारण तो किया जाय परन्तु उसमेंसे अर्थ कुछ न निकले उसको अनर्थक कहते हैं । जैसे, क,च,ट, आदि वर्गोंका उच्चारण करना कुछ भी अर्थवाला नहीं होता ॥ ५८ ॥

अपार्थक ।

अपार्थकंनामयदर्थवच्च परस्परेणचायुज्यमानार्थंयथातक्रनक्रवंशवज्रनिशाकराइति ॥ ५९ ॥

पृथक् २ अर्थोंवाले शब्दोंको वाक्यक्रमसे न मिलते हुए भी उच्चारण कर देना अपार्थक कहाता है । जैसे—तक्र, नक्र, वंश, वज्र, निशाकर आदि ॥ ५९ ॥

विरुद्ध ।

विरुद्धंनामयद्दृष्टान्तसिद्धान्तसमयैर्विरुद्धंतत्रपूर्वंदृष्टान्तसिद्धान्तावुक्तौ । समयःपुनस्त्रिधाभवतियथायुर्वैदिकसमयोयाज्ञिकसमयोमोक्षशास्त्रिकसमयइति। तत्रायुर्वैदिकसमयश्चतुष्पादसिद्धेः। आलभ्यायजमानैःपशवइतियाज्ञिकसमयः। सर्वभूतेष्वहिंसेतिमोक्षशास्त्रिकसमयस्तत्रस्वसमयविपरीतमुच्यमानंविरुद्धमितिवाक्यदोषाः ॥ ६० ॥

जो वाक्य दृष्टान्त और सिद्धांत तथा समयसे विरुद्ध हो उसको विरुद्ध अथवा विरुद्धता दोषयुक्त कहते हैं । इनमें दृष्टान्त और सिद्धान्तको पहिले कथन कर चुके हैं ॥ समय—तीन प्रकारका होता है । जैसे—आयुर्वैदिक समय, याज्ञिक समय और मोक्षशास्त्रिक समय । आयुर्वैदिक समयकी चार पदोंसे सिद्धि है । जैसे—वैद्य, रोगी, परिचारक और औषधी ॥ यजमानों द्वारा पशु आलंभनीय है यह याज्ञिक समय है ॥ संपूर्ण जीवमात्रकी हिंसा नहीं करना यह मोक्षशास्त्रिक समय है । अपने समयमें दूसरेके समयका उच्चारण कर देना अर्थात् आयुर्वैदिक चतुष्पाद सिद्धिमें याज्ञिक, यजमान, पशु आदिकोंका प्रयोग करना समयविरुद्ध वाक्यदोष कहाजाता है ॥ ६० ॥

वाक्यप्रशंसा ।

वाक्यप्रशंसानामयथाऽन्यूनमनाधिकमर्थवदनपार्थकमविरुद्धमधिगतपदार्थञ्चतद्वाक्यमननुयोज्यमितिप्रशस्यते ॥ ६१ ॥

जो न्यूनतारहित, अनधिक, अर्थवाला, अनपार्थक, अविरुद्ध, पदार्थके अर्थको यथार्थ कथन करनेवाला वाक्य हो उसको वाक्यप्रशंसा: अर्थात् प्रशंसनीय वाक्य कहते हैं ॥ ६१ ॥

वाक्छल ।

छलंनामपरिशठमर्थाभासमनर्थकंवाग्वस्तुमात्रमेव।तद्द्विविधंवाक्छलंसामान्यछलञ्च। वाक्छलंनामयथाकश्चिद्ब्रूयात्नवतन्त्रोऽयंभिषगिति,भिषग्ब्रूयान्नाहंनवतन्त्रएकतन्त्रोऽहमिति। परोब्रूयान्नाहंब्रवीमिनवतन्त्राणितवेति, अथतुनवाभ्यस्तंतेतन्त्रमिति; भिषक्ब्रूयान्नमयानवाभ्यस्तंतन्त्रमनेकशताभ्यस्तं मयातन्त्रमितिवाक्छलम् ॥ ६२ ॥

किसी अर्थको शठतासे दूसरे रूपमें प्रकाश करके वादीके लक्ष्य विषयका दूसरी ओर अर्थ लेजाना छल कहाता है छल वाणीके फेर मात्रको कहते हैं । वह छल दो प्रकारका है । १ वाक् छल । २ सामान्य छल । वाक्छल जैसे-कोई कहे कि यह वैद्य नवतंत्र है अर्थात् नवीन शास्त्रका जाननेवाला है इस जगह नवशब्दका अर्थ छलपूर्वक नौ संख्याका वाचक बनाकर कहे कि मैं नौ तंत्र नहीं केवल एकही तंत्र हूं अर्थात् नौ तंत्रोंको नहीं जानता, एक ही तंत्रको जानता हूं । फिर पूर्वपक्षवाला कहे कि मैंने यह नहीं कहा कि आप नौ तंत्रोंको जानते हैं मैंने तो यही कहा है कि आपने नया शास्त्र पढा है अर्थात् आपने नवीन अभ्यास किया है उसपर वैद्य फिर कहे कि मैंने शास्त्रको नौवार अभ्यास नहीं किया किन्तु अनेक सौवार अभ्यास किया है इस प्रकार दूसरेके लक्ष्यको छलसे दूसरी ओर डाल देना वाक्छल कहाजाताहै ॥ ६२ ॥

सामान्यछल ।

सामान्यच्छलंनामयथाव्याधिप्रशमनायौषधमित्युक्तेपरोब्रूयात्सत्सत्प्रशमनायेतिकिन्नुभवानाहसद्रोगः सदौषधंयदिचस-

रसत्प्रशमनायभवतितत्रसत्कासःसत्क्षयःसत्सामान्यात्कासः क्षयप्रशमनायभविष्यतीतिएतत्सामान्यच्छलम् ॥ ६३ ॥

जैसे किसी वैद्यने कहा कि व्याधीकी शान्तिके लिये औषध होती है अर्थात् औषधसे रोगनाश होता है । इसपर प्रतिवादी मनुष्य कहे कि क्या सत्-सत्को शान्त करता है आप ऐसा कहते हैं ? यदि सत्को सत् शान्त करताहै अर्थात् सत् वस्तुद्वारा सत्की शान्ति होती है तो रोग भी सत् है और औषधी भी सत् है सो सत्रोगको सत् औषधी शान्त करती है ऐसा आप कहते हैं तो खांसी भी सत् हैं और क्षयरोग भी सत् है।वस सत् सामान्य खांसी सत् क्षयरोगको शान्त करनेवाली आपके मतसे सिद्ध होगई । इस प्रकारके कथनको सामान्यछल कहते हैं ॥ ६३ ॥

अहेतु ।

अहेतुर्नामप्रकरणसमः संशयसमोवर्ण्यसमइति । तत्रप्रकरण-समोनामाहेतुर्यथान्यः शरीरादात्मानित्यइतिपक्षेपरोब्रूयाच्छरी-रादन्यआत्मातस्मान्नित्यःशरीरमनित्यमतोविधर्मिणानेनचभ-वितव्यम्एषचाहेतुर्नहियएवपक्षःसएवहेतुः ॥ ६४ ॥

प्रकरणसम, संशयसम, वर्ण्यसम, इन भेदोंसे तीन प्रकारका होता है । प्रक-रणसम अहेतु-जैसे-किसीने कहा कि आत्मा शरीरसे भिन्न है और नित्य है उस-पर प्रतिवादी यह कहे कि-आत्मा शरीरसे भिन्न है इसलिये नित्य है और शरीर अनित्य है तो आत्मा विधर्मी होनेसे अर्थात् शरीरसे विरुद्धधर्मवाला होनेसे शरीर तो अनित्य होना ही चाहिये । इस प्रकारका कथन अहेतु कहाता है । क्योंकि जो पक्ष है वही हेतु नहीं होसकता ॥ ६४ ॥

संशयसमोनामाहेतुर्यएवसंशयहेतुःसएवसंशयच्छेदहेतुर्यथा अयमायुर्वेदैकदेशमाहकिंन्वयंचिकित्सकःस्यान्नवेतिसंशयेपरो ब्रूयाद्यस्मादयमायुर्वेदैकदेशमाहतस्माच्चिकित्सकोऽयमिति । नचसंशयस्थेहेतुविशेषयत्येषचाहेतुःनहियएवसंशयहेतुःसएव संशयच्छेदहेतुः ॥ ६५ ॥

संशयके हेतुको संशयके छेदनका हेतु कर लेना संशयसम अहेतु कहाता है । जैसे-यह आयुर्वेदका एकदेश कथन कर रहा है इसलिये यह वैद्य है कि नहीं ऐसा संशय उत्पन्न होनेपर कोई कहे कि जिससे यह आयुर्वेदका एकदेश कथन कर-

ताहै इसीसे यह सिद्ध होगया कि यह वैद्य है। इस स्थानमें संशयमें जो हेतु था उसको ही संशय छेद करनेमें हेतु बनाया गया। जो संशयमें हेतु होताहै वह संशयके छेद करनेमें हेतु नहीं होसकता इसलिये यह संशयसम अहेतु हुआ ॥६५॥

वर्ण्यसमोनामाहेतुर्योहेतुर्वर्ण्याविशिष्टःयथापरोब्रूयादस्पर्शत्वाद्बुद्धिरनित्याशब्दवदितितत्रवर्ण्यःशब्दोबुद्धिरपिवर्ण्यातदुभयवर्ण्याविशिष्टत्वाद्वर्ण्यसमोऽप्यहेतुः ॥ ६६ ॥

दो वस्तुओंको समानरूपसे वर्णन किया गया फिर उनमें अभेद दिखाया जाय उसको वर्ण्यसम अहेतु कहते हैं। जैसे कोई कहे कि स्पर्श न होनेसे बुद्धि अनित्य है क्योंकि शब्दका भी स्पर्श नहीं किया जाता वह स्पर्शवाला न होनेसे अनित्य हैं उसी प्रकार बुद्धि भी स्पर्शवाली न होनेसे अनित्य है। इस प्रकार कथन करना वर्ण्यसम अहेतु होता है ॥ ६६ ॥

अतीतकालम्।

अतीतकालंनामयत्पूर्वंवाच्यंतत्पश्चादुच्यतेतत्कालातीतत्वादग्राह्यंभवतिपरंवानिग्रहप्राप्तमनिगृह्यपरिगृह्यपक्षान्तरितंपश्चान्निगृहीतेतत्तस्यातीतकालत्वान्निग्रहवचनसमर्थंभवतीति ॥६७॥

जिस विषयको पहिले कथन करना हो उसका पीछे कथन किया जाना अतीतकाल होता है। अतीतकाल होनेसे वह वचन अग्राह्य होजाता है। अथवा निग्रहस्थानको प्राप्त होकर दूसरे पक्षको मान लेना फिर अपने पहिले पक्षकी पुष्टिके लिये कथन करना कालातीत होताहै।इस लिये वह निग्रहमेंही गिना-जाताहै ॥ ६७ ॥

उपालम्भ।

उपालम्भोनामहेतोर्दोषवचनंयथापूर्वमहेतवोहेत्वाभासाव्याख्याताः ॥ ६८ ॥

हेतुमें दोष वर्णन करना उपालम्भ कहाताहै। यह अहेतुमें वर्णन कियाजाचुकाहै। इसको हेत्वाभास भी कहतेहैं ॥ ६८॥

परिहार।

परिहारोनामतस्यैवदोषवचनस्यपरिहरणंयथानित्यमात्मनिश-

रीरस्थेजीवलिङ्गान्युपलभ्यन्तेतस्यचापगमान्नोपलभ्यन्तेतस्मा-
दन्यःशरीरादात्मानित्यःशरीराच्चेति ॥ ६९ ॥

प्रतिवादीके दोषयुक्त वाक्यको परिहरण करतेहुए जो सत्यताका प्रतिपादन कियाजाय उसको परिहार कहतेहैं। जैसे कहाजाय कि शरीरमें स्थित हुआ आत्मा जीवके लक्षणोंसे उपलब्ध होताहै, जब आत्मा शरीरको त्यागकर अलग होजाताहै तब जीवन लक्षण नहीं दिखाई देते।इससे सिद्ध है कि आत्मा नित्य है और शरीरसे भिन्न है। इसप्रकार प्रतिवादीके वाक्यदोषका परिहार कियाजाताहै ॥ ६९ ॥

प्रतिज्ञाहानिः ।

प्रतिज्ञाहानिर्नामयःपूर्वंप्रतिगृहीतांप्रतिज्ञांपर्य्यनुयुक्तःपरित्य-
जतियथाप्राक्प्रतिज्ञांकृत्वानित्यःपुरुषइतिपर्य्यनुयुक्तस्त्वाह
अनित्यइति ॥ ७० ॥

दूसरेके दोषोंको दिखाते हुए अपनी प्रतिज्ञाको त्याग देना प्रतिज्ञाहानि कही जातीहै। जैसे पहिले यह प्रतिज्ञा करे कि पुरुष नित्य है फिर प्रतिपक्षीकी युक्तियों द्वारा दूषित होकर यह कहदेवे कि हां पुरुष अनित्य होताहै। इसको प्रतिज्ञाहानि कहतेहैं ॥ ७० ॥

अभ्यनुज्ञा ।

अभ्यनुज्ञानामयइष्टानिष्टाभ्युपगमः ॥ ७१ ॥

प्रतिवादीके इष्ट अनिष्ट वाक्योंको स्वीकार करलेना अर्थात् वादीके कहे इष्ट अनिष्ट वाक्यको मानना अभ्यनुज्ञा कहाताहै ॥ ७१ ॥

हेत्वन्तर ।

हेत्वन्तरंनामप्रकृतहेतौवाच्येयद्विकारहेतुमाह ॥ ७२ ॥

प्रकृति हेतुको कथन करते समय विकारहेतुको कथन कर देना हेत्वन्तर कहाहै ७२

अर्थान्तर ।

अर्थान्तरंनामज्वरलक्षणेवाच्येप्रमेहलक्षणमाह ॥ ७३ ॥

ज्वरके लक्षणोंको कथन करनेके समय प्रमेहके लक्षणोंको कथन करना अर्थान्तर कहाताहै ॥ ७३ ॥

निग्रहस्थान ।

निग्रहस्थानंनामपराजयप्राप्तिस्तच्चत्रिरुक्तस्यवाक्यस्यअवि-

ज्ञानंपरिषदिविज्ञानवत्याम्, यद्वाअननुयोज्यस्यानुयोगोअनु-
योज्यस्यचाननुयोगः ॥ ७४ ॥

सभामें बैठकर जो वाक्य तीनवार उच्चारण कियाजाय उसको भी वह न समझें और सभासद समझते हों इसप्रकार उस (प्रतिपक्षी)को सभामें बात नहीं करनेदेना अर्थात् पराजित करदेना निग्रहस्थान कहाताहै । अथवा अनुयोज्य वाक्योंका अनुयोग न करना और अननुयोज्योंका अनुयोग करना भी निग्रहस्थान (हार जाना) कहाताहै ॥ ७४ ॥

प्रतिज्ञाहानिरभ्यनुज्ञाकालातीतवचनमहेतुःन्यूनमतिरिक्तंव्य-
र्थमनर्थकंपुनरुक्तंविरुद्धंहेत्वन्तरमर्थान्तरं निग्रहस्थानमितिवा-
दमर्य्यादापदानियथोद्देशमभिनिर्दिष्टानि ॥ ७५ ॥

प्रतिज्ञाहानि, अभ्यनुज्ञा, कालातीत, वचन, अहेतु, न्यूनता, अधिकता, व्यर्थ, अपार्थक, पुनरुक्त, विरुद्ध, हेत्वन्तर, अर्थान्तर, और निग्रहस्थान यह सब वादमार्गके पदोंको यथोद्देश निर्दिष्ट करचुके हैं अर्थात् निर्देश करचुके हैं ॥ ७५ ॥

वादविषयक उपदेश ।

वादस्तुखलुभिषजांवर्त्तमानोवर्त्तेतायुर्वेदएवनान्यत्र ॥ ७६ ॥

वादानुवाद वैद्योंको आयुर्वेद शास्त्रमें ही करना चाहिये अन्यशास्त्रोंमें नहीं ७६॥

तत्रहिवाक्यप्रतिवाक्यविस्ताराःकेवलाश्चोपपत्तयश्चसर्वाधिक-
रणेषुताःसर्वाःसम्यगवेक्ष्यावेक्ष्यसर्वंवाक्यंब्रूयान्नाप्रकृतिकम-
शास्त्रमपरीक्षितमसाधकमाकुलमज्ञापकंवासर्वञ्चहेतुमद्ब्रूया-
द्धेतुमन्तोह्यकलुषाःसर्वएववादविग्रहाश्चिकित्सितेकारणभूताः।
प्रशस्तबुद्धिवर्द्धकत्वात्सर्वारम्भसिद्धिह्यावहतिअनुपहताबुद्धिः७७

इस स्थानमें वाक्य प्रतिवाक्यका ही विस्तार कियागया है । इनके सिवाय शास्त्रमें जो २ उपपत्तियें हैं उन सबको अच्छीतरह विचार कर वादानुवाद करना चाहिये । अर्थात् सब उपपत्तियोंको भले प्रकार विचारकर ही सभामें बोलना चाहिये । तथा अप्रकृत, अशास्त्र, अपरीक्षित, अप्रमाण, आकुल और अज्ञापक शब्दोंको कभी उच्चारण करना नहीं चाहिये । सब शब्द हेतुमान् बोलना चाहिये हेतुयुक्त शब्दोंका बोलना, निर्दोष शब्दोंका उच्चारण, करना शास्त्रार्थ करना यह सब वैद्यकी बुद्धिके बढानेवाले होते हैं । बुद्धि निर्मल तथा अनुपहत एवं स्वच्छ होनेसे सम्पूर्ण कार्योंकी सिद्धि होती है ॥ ७७ ॥

इमानिखलुतावदिहकानिचित्प्रकरणानिभूमः ।
ज्ञानपूर्वकंकर्मणांसमारम्भंप्रशंसन्तिकुशलाः ॥ ७८ ॥

यहांपर हम इन और प्रकरणोंका कथन करते हैं। क्योंकि बुद्धिमान् सब कर्मोंके आरम्भका ज्ञानपूर्वक करनेकी ही प्रशंसा करते हैं ॥ ७८ ॥

ज्ञात्वाहिकारणकरणकार्य्ययोनिकार्य्यकार्य्यफलानुबन्धदेशका-लप्रवृत्त्युपायान्सम्यगभिनिर्वर्त्यमानःकार्य्याभिनिर्वृत्ताविष्टफलानुबन्धकंकार्य्यमभिनिर्वर्त्तयत्यनातिमहताप्रयत्नेनकर्त्ता ॥७९॥

कारण, करण, कार्य्ययोनि, कार्य, कार्यफल, अनुबन्ध, देश, काल,प्रवृत्ति और उपाय इन सबको भले प्रकार जानकर,कार्यके करनेमें प्रवृत्त होनेसे इष्टफलकी प्राप्ति होती है और कर्त्ता थोडा ही यत्न करनेपर कार्यकी सिद्धिको प्राप्त होताहै ॥७९॥

कारण ।

तत्रकारणंनामतद्यत्करोतिसएवहेतुःसकर्त्ता[1] ॥ ८० ॥

कार्यके करनेवालेको कारण कहते हैं। और उसीको हेतु तथा कर्त्ता भी कहते हैं ॥ ८० ॥

करण ।

करणंपुनस्तद्यदुपकरणायोपकल्पतेकर्त्तुःकार्य्याभिनिर्वृत्तौप्रय-तमानस्य ॥ ८१ ॥

कार्यसिद्धिमें कर्त्ता जिस उपकरणद्वारा कार्यको करे उसको करण कहते हैं।अर्थात् कर्त्ता जिस सामग्रीको लेकर कार्यसिद्धिमें प्रवृत्त हो उस सामग्रीका नाम करण है ॥ ८१ ॥

कार्ययोनि ।

कार्य्ययोनिस्तुसायाविक्रियमाणाकार्य्यत्वमापद्यते ॥ ८२ ॥

जो पदार्थ विकृत होकर कार्यरूपमें परिणत होजाय उसको कार्ययोनि कहते हैं ॥ ८२ ॥

कार्य ।

कार्य्यन्तुतद्यस्याभिनिर्वृत्तिमभिसन्धायप्रवर्त्ततेकर्त्ता ॥ ८३ ॥

---

१ कारणशब्देनात्र स्वतन्त्रकारणं कर्तृलक्षणम् इति चक्रपाणिः ।

जिसकी उत्पत्तिको लक्ष्यकर कर्त्ता प्रवृत्त होताहै उसको कार्य कहतेहैं ॥ ८३ ॥

कार्यफलम् ।

कार्यफलंपुनस्तद्यत्प्रयोजनाकार्य्याभिनिर्वृत्तिरिष्यते ॥ ८४ ॥

जिस प्रयोजनसे कार्य कियाजाय उसी प्रयोजनकी सिद्धिको कार्यफल कहते हैं ॥ ८४ ॥

अनुबन्ध ।

अनुबन्धस्तुकर्त्तारमवश्यमनुबध्नातिकार्य्यादुत्तरकालंकार्य्यनिमित्तःशुभोवाप्यशुभोवाभावः ॥ ८५ ॥

कर्ताको अवश्य बंधनमें लानेवाला कार्यके अंतमें होनेवाला अवश्यंभावी शुभाशुभभाव अनुबंध कहाजाताहै ॥ ८५ ॥

देश ।

देशस्त्वधिष्ठानम् ॥ ८६ ॥

कार्यके (स्थान) अधिष्ठानको देश कहतेहैं ॥ ८६ ॥

काल ।

कालःपुनःपरिणामः ॥ ८७ ॥

और ऋत्वादिरूप परिणामको काल कहतेहैं ॥ ८७ ॥

प्रवृत्ति ।

प्रवृत्तिस्तुखलुचेष्टाकार्य्यार्थासैवक्रियाकर्मयत्नःकार्य्यसमारम्भश्च ॥ ८८ ॥

कार्यके सम्पादन करनेके लिये जो कर्त्ताकी चेष्टा है उसको प्रवृत्ति कहतेहैं । वही क्रिया, कर्म, यत्न और कार्यसमारंभ भी कहीजातीहै ॥ ८८ ॥

उपाय ।

उपायाःपुनःकारणादीनांसौष्ठवमभिसन्धानञ्चसम्यक्कार्य्यफलानुबन्धोपायवर्ज्यानांकार्य्याणामभिनिर्वर्त्तकइत्यतोऽभ्युपायःकृतेनोपायार्थोऽस्तिनचविद्यतेतदात्वेकृताच्चोत्तरकालंफलंफलाच्चानुबन्धइतिव्याख्यातंदशविधम् ॥ ८९ ॥

कार्यके उत्पादन करनेमें कारण, करण, समवायिकारण, देश, काल और प्रवृत्ति

आदिकोंकी कार्यफल उत्पन्न करनेमें जिसकी जिस प्रकार जिससे अनुकूलता हो उसको उपाय कहते हैं । और कारणादिकोंको भी उपाय कहते हैं क्योंकि कारणादिक न होनेसे भी कार्यसिद्धि नहीं होती । फल और अनुबंध उपाय कहे नहीं जा सकते क्योंकि यह कार्य होजानेपर उत्पन्न होते हैं । इस दश प्रकारके कारणादिकोंका वर्णन किया गया ॥ ८९ ॥

परीक्ष्य।

अग्रेपरीक्ष्यंततोऽनन्तरकार्य्यार्थाप्रवृत्तिरिष्टातस्माद्भिषक्कार्य्यंचिकीर्षुःप्राक्कार्य्यसमारम्भात्परीक्षयाकेवलंपरीक्ष्यंपरीक्ष्यार्थंकर्मसमारभेतकर्त्तुम् ॥ ९० ॥

पहिले परीक्षा करके तदनन्तर कार्यार्थके लिये प्रवृत्ति करना चाहिये । इसलिये चिकित्सा करनेकी इच्छावाला वैद्य चिकित्सा आरम्भ करनेसे प्रथम परीक्ष्य विषयको परीक्षा करके फिर चिकित्सा करनेमें प्रवृत्त हो ॥ ९० ॥

तत्रचेद्भिषगभिषग्वाभिषजंकश्चित्पृच्छेद्वमनविरेचनास्थापनानुवासनशिरोविरेचनानिप्रयोक्तुकामेनाभिषजाकतिविधयापरीक्षयाकतिविधमेवपरीक्ष्यंकश्चात्रपरीक्ष्यविशेषःकथञ्चपरीक्षितव्यंकिंप्रयोजनाचपरीक्षाक्वचवमनादीनांप्रवृत्तिःक्वचनिवृत्तिःप्रवृत्तिनिवृत्तिसंयोगेचाकिंनैष्ठिकंकानिचवमनादीनांभेषजद्रव्याणिउपयोगंगच्छन्तीति ॥ सएवंपृष्टोयदिमोहयितुमिच्छेद्ब्रूयादेनंबहुविधाहिपरीक्षातथापरीक्ष्यविधिभेदः । कतमेनाविधिभेदप्रकृत्यन्तरेणपरीक्ष्यस्याभिन्नस्यभेदाग्रंभवान्पृच्छातिआख्यायमानम्।नेदानींभवतोऽन्येनविधिभेदप्रकृत्यन्तरेणाभिन्नयापरीक्षयाअन्येनवाविधिभेदप्रकृत्यन्तरेणपरीक्ष्यस्याभिन्नस्याभिलाषितमर्थंश्रोतुमहमन्येनपरीक्षाविधिभेदेनअन्येनवाविधिभेदप्रकृत्यन्तरेणपरीक्ष्यंभित्त्वार्थमाचक्षाणइच्छांप्रपूरयेयमिति ॥ ९१ ॥

यदि वैद्य अथवा कोई अन्य मनुष्य प्रश्न करे कि-वमन, विरेचन, आस्थापन अनुवासन और शिरोविरेचन इनका प्रयोग करनेकी इच्छावाले वैद्यको कितने

प्रकारकी परीक्षासे कितने प्रकारके परीक्ष्य विषय परीक्षा करने चाहिये। और इस स्थानमें परीक्ष्य विशेष क्या है कैसे परीक्षा करनी चाहिये परीक्षाका प्रयोजन क्या है और वमनादिकोंकी कहां २ प्रवृत्ति और निवृत्ति है। प्रवृत्ति और निवृत्तिके लक्षण दिखाई देनेपर क्या करना चाहिये, वमन, विरेचनादिकोंमें कौन २ द्रव्य उपयोगी होते हैं। इस प्रकार प्रश्न करनेपर यदि देखे कि प्रश्नकर्त्ताको परास्त कर देना और मुग्ध कर देना उचित है तो उससे कहे कि परीक्षा बहुत प्रकारकी होती है और परीक्षणीय विषय भी अनेक प्रकारके होते हैं। आप किस प्रकारकी परीक्षाके भेदको पूछना चाहते हैं और परीक्षाके एवम् परीक्षणीय विषयके किन २ भेदोंको जानना चाहते हैं। क्योंकि यदि आप जिस परीक्ष्य विषयको जिस प्रकार जानना चाहते हैं हम उस विधि भेद प्रकारसे कथन न करके यदि अन्य प्रकारसे कथन करनेलगेंगे तो आपकी इच्छा परिपूर्ण न होगी ॥ ९१ ॥

सयद्युत्तरंब्रूयात्तत्परीक्ष्योत्तरंवाच्यंस्याद्यथोक्तंप्रतिवचनमवेक्ष्य सम्यग्यदितुब्रूयान्नचैनंमोहयितुमिच्छेत्प्रातन्तुवचनकालंमन्ये- त्कामममस्मैब्रूयादाप्तमेवानिखिलेन ॥ ९२ ॥

इस प्रकार कथन करनेसे वह जो कुछ उत्तर देवै उसकी परीक्षा कर लेना चाहिये। यदि वह पराजय करनेकी इच्छासे उत्तर देवै तो पूर्वोक्त विधानसे निरुत्तर कर डाले यदि वह यथार्थ भलाईके साथ उत्तर देवे तो उसको मुग्ध न करके उससे यथार्थ विधिवत् प्रमाणिक रीतिसे संपूर्ण कथनको करे ॥ ९२ ॥

परीक्षाके भेद।

द्विविधापरीक्षाज्ञानवतांप्रत्यक्षमनुमानञ्च,एतत्तुद्वयमुपदेशश्च परीक्षात्रयमेवमेषाद्विविधापरीक्षात्रिविधावासहोपदेशेन॥९३॥

परीक्षा दो प्रकारकी होतीहै। १ प्रत्यक्ष। २ अनुमान और आप्तोपदेशके मिल देनेसे तीन प्रकारकी होजाती है॥ ९३ ॥

दशविधन्तुपरीक्ष्यंकारणादियदुक्तमग्रेतादिहभिषगादिषुसंसा- र्य्यसन्दर्शयिष्यामः। इहकार्य्यप्राप्तौकारणंभिषक्,करणंपुन- र्भेषजम्। कार्य्ययोनिर्धातुवैषम्यम्।कार्य्यंधातुसाम्यम्।कार्य्यफलं सुखावाप्तिः।अनुबन्धआयुः।देशोभूमिरातुरश्च।कालःसंवत्सर- श्चातुरावस्थाच।प्रवृत्तिःप्रतिकर्मसमारम्भः। उपायोभिषगादी- नांसौष्ठवमभिसन्धानञ्चसम्यगिहापिअस्योपायस्याविषयःपर्वे-

णैवोपायविशेषेणव्याख्यात इतिकारणादीनिदश । दशसुभि-षगादिषुसंसार्य्यसन्दर्शितानि, तथैवानुपूर्व्यएतद्दशविधंपरी-क्ष्यमुक्तञ्च ॥ ९४ ॥

परीक्ष्य विषय दश प्रकारके होतेहैं । उन दश प्रकारके कारणादिकोंको पहिले कथन कर चुकेहैं । अब उन्हींको विस्तारपूर्वक वैद्य आदिकोंमें दिखातेहैं । वैद्यकशास्त्रमें चिकित्सारूपी कार्यका कारण अथवा कर्त्ता वैद्य है और औषधी करण है । धातुओंकी विषमता कार्ययोनि कहाती है । धातुओंकी साम्यावस्था कार्य है । आरोग्यताके सुखकी प्राप्ति होना कार्यफल है । आयु अनुबंध है । देश भूमि और रोगीका शरीर है । काल संवत्सर और अवस्थाको कहतेहैं । प्रत्येक कर्मके आरंभको प्रवृत्ति कहतेहैं । कार्य करनेकी इच्छासे वैद्यादिकोंका उचित भावसे योग होना उपाय कहाजाताहै । तथा औषधादिकोंका प्रयोग करना भी उपाय कहाजाताहै । विषय पहिले उपाय विशेषसे कथन करचुकेहैं इस प्रकार यह करणादिक दश परीक्षणीय विषय वैद्यादिकोंमें संभार करके दिखादिये गये हैं इसप्रकार आनुपूर्व्या दशविध परीक्षणीय विषयोंका कथन कियागयाहै ॥ ९४ ॥

वैद्यपरीक्षा ।

तस्ययोयोपरीक्ष्यविशेषोयथायथाचपरीक्षितव्यःससतथातथा व्याख्यास्यते । कारणंभिषगित्युक्तमग्रेतस्यपरीक्षाभिषङ्नामसयोभिषज्यतियःसूत्रार्थप्रयोगकुशलःयस्यचायुःसर्वथाविदितम् ॥ ९५ ॥

उन परीक्ष्य विषयोंमें जो २ परीक्षणीय विषय जैसे २ परीक्षा करनी चाहिये उसका वैसा २ वर्णन करतेहैं । उनमें कारण वैद्य कहा गयाहै । सो उस वैद्यकी परीक्षा यह है कि जो भेषज अर्थात् औषध क्रिया करताहै उसको भिषक् अर्थात् वैद्य कहतेहैं । वह वैद्य सूत्र, अर्थ और प्रयोगमें कुशल तथा आयुका सम्पूर्णरूपसे ज्ञाता होनाचाहिये ॥ ९५ ॥

यथावत्सर्वधातुसाम्यंचिकीर्षन्नात्मानमेवादितःपरीक्षेत । गुणिषुगुणतःकार्य्याभिनिर्वृत्तिंपश्यन्कच्चिदहमस्यकार्य्यस्यअभिनिर्वर्त्तनेसमर्थोनवेति ॥ ९६ ॥

वैद्यको चाहिये कि संपूर्ण धातुओंको साम्यावस्थामें करनेकी इच्छा करताहुआ

प्रथम अपनी परीक्षा करे। गुणोंमें गुणसे कार्यकी सफलता देखताहुआ यह विचार करे कि मैं इस कार्यको समर्थन करनेके योग्य हूं या नहीं ॥ ९६ ॥

तत्रेमेभिषग्गुणायैरुपपन्नोभिषग्धातुसाम्याभिनिर्वर्त्तनेसमर्थो भवतितद्यथापर्य्यवदातश्रुततापरिदृष्टकर्मतादाक्ष्यंशौचंजितहस्तताउपकरणवत्तासर्वेन्द्रियोपपन्नताप्रकृतिज्ञताप्रतिपत्तिज्ञता चेति ॥ ९७ ॥

जिस वैद्यमें यह आगे कहेहुए संपूर्ण गुण विद्यमान हों वह ही धातुओंको साम्यावस्थामें लानेके लिये समर्थ होता है वह गुण इस प्रकार हैं। जैसे-शास्त्रमें पारंगत होना, वहुश्रुत होना,आयुर्वेदीय कर्मोंमें चतुर होना, वहुदर्शी होना, पवित्र होना, जितहस्त होना, औषधादि संपूर्ण उपकरणयुक्त (सामग्रीयुक्त) होना। सर्वेन्द्रियसम्पन्न होना, प्रकृति विशेषका ज्ञाता होना,चिकित्सा कर्मके फल विशेष जाननेमें तथा चिकित्सा क्रमके जाननेमें चतुर होना इन गुणोंसे युक्त वैद्य उत्तम होता है ॥ ९७ ॥

भेषजपरीक्षा ।

करणपुनर्भेषजम् । भेषजंनामतद्यदुपकरणायोपकल्प्यते, भिषजोधातुसाम्याभिनिर्वृत्तौप्रयतमानस्य, विशेषतश्चोपायान्तरेभ्यः तद्द्विविधंव्यपाश्रयभेदाद्दैवव्यपाश्रयंयुक्तिव्यपाश्रयञ्च । तत्रदैवव्यपाश्रयंमन्त्रौषधिमणिमङ्गलबल्युपहारहोमनियमप्रायश्चित्तोपवासदानस्वस्त्ययनप्रणिपातगमनादि । युक्तिव्यपाश्रयंसंशोधनोपशमनेचेष्टाश्चदृष्टफलाःएतच्चैवभेषजमङ्गभेदादपिद्विविधंद्रव्यभूतमद्रव्यभूतञ्चतत्रयदद्रव्यभूतंतदुपायाभिप्लुतम् । उपायोनामभयदर्शनविस्मापनक्षोभणहर्षणभर्त्सनवधबन्धस्वप्नसंवाहनादिरमूर्त्तोभावोयथोक्ताःसिद्ध्युपायाश्च । यत्तुद्रव्यभूतंतद्वमनादिषुयोगमुपैति ॥ ९८ ॥

करण औषधिही है। औषध-चिकित्सा कार्यके उपकरणार्थ होती है । इसलिये औषधकी परीक्षा करनी चाहिये। जब वैद्य धातुसाम्य करनेके लिये प्रवृत्त हो तो उपायांतरसे औषधकी विशेष परीक्षा करे वह औषध दो प्रकारके होतेहैं। १ दैवव्यपाश्रय । २ युक्तिव्यपाश्रय। उनमें-मणि, मंत्र,औषध, मंगलक्रिया, वलिदान, उप-

हार, होम, नियम, प्रायश्चित्त,उपवास, स्वस्त्ययन, प्रणिपातन और देवयात्रा आदि दैवव्यपाश्रय औषध कहा जाता है । और संशोधन, संशमन तथा दृष्टफलकी चेष्टा आदिको युक्तिव्यपाश्रय औषध कहते हैं । वह औषध अंगभेदसे भी दो प्रकारकी होतीहै १ द्रव्यभूत । २ अद्रव्यभूत (उपायभूत) । उनमें-जो अद्रव्यभूत औषधी है वह उपाययुक्त होती है । जैसे-भय दिखाना विस्मापन, क्षोभण, हर्षण, भर्त्सन, प्रहार, बंधन, निद्रा और संवाहन आदि । यह सब प्रत्यक्षरूपसे चिकित्साकी सिद्धिके उपाय हैं । जो द्रव्यभूत हैं उनका वमनादि कार्योंमें उपयोग किया जाता है ॥ ९८ ॥

औषधपरीक्षा ।

तस्यापिइयंपरीक्षाइदमेवंप्रकृत्याएवंगुणमेवंप्रभावमस्मिन्देशे जातमस्मिन्नृतौएवंगृहीतमेवंनिहितमेवमुपस्कृतमनयामात्रयायुक्तमस्मिन् रोगेएवंविधस्यपुरुषस्यैतावन्तंदोषमपकर्षयति उपशमयतिवान्यदपिचैवंविधंभेषजंभवेत्तच्चानेनानेनवावि-शेषणयुक्तमिति ॥ ९९ ॥

उसकी इस प्रकार परीक्षा करनी चाहिये । जैसे-इस द्रव्यकी प्रकृति ऐसी है इसमें यह गुण होतेहैं और इसका यह प्रभाव है इसके उत्पन्न होनेका यह स्थान है इस ऋतुमें यह उत्पन्न होती तथा उसके उखाडनेका समय यह है । संयोग विशेषसे ऐसा गुण करती है, मात्रा उतनी है, ऐसे रोगोंमें ऐसे समयमें एवम् ऐसे पुरुषके लिये तथा ऐसे दोषोंको अपकर्षण करनेके लिये एवम् ऐसे दोषोंको शान्त करनेके लिये इसका उपयोग कियाजाता है । इत्यादिक और भी औषध सम्बन्धी जो विचार हैं अथवा इस प्रकारके अन्य द्रव्य इसके समान हैं अथवा इससे गुणोंमें न्यून और अधिक हैं इत्यादिक विषयोंकी समालोचना करतेहुए द्रव्यकी परीक्षा करनी चाहिये ॥ ९९ ॥

कार्ययोनिपरीक्षा ।

कार्य्ययोनिर्धातुवैषम्यंतस्यलक्षणंविकारागमःपरीक्षात्वस्यवि-कारप्रकृतेश्चैवोनातिरिक्तलिङ्गविशेषावेक्षणंविकारस्यचसाध्या साध्यमृदुदारुणलिङ्गविशेषावेक्षणमिति ॥ १०० ॥

कार्ययोनि-धातुओंकी विषमताको कहते हैं । रोगोंका प्रगट होना धातुओंकी विषमताका लक्षण है । विकार प्रकृति अर्थात् विकारोंके कारणभूत वात, पित्त,

कफ जो हैं उनकी हीनता और अधिकताकी परीक्षा द्वारा इनकी परीक्षा होती है। एवम् विकारोंकी साध्यता, असाध्यता, मृदुता और दारुणताको भी लक्षण विशेषसे परीक्षा करनी चाहिये ॥ १०० ॥

कार्यपरीक्षा ।

कार्य्यंधातुसाम्यं, तस्यलक्षणंविकारोपशमः, परीक्षात्वस्यरुगुपशमनंस्वरवर्णयोगःशरीरोपचयःबलवृद्धिरभ्यवहार्य्याभिलाषोरुचिराहारकालेभ्यवहृतस्यचाहृतस्यचाहारस्यसम्यग्जरणं निद्रालाभोयथाकालंवैकारिकाणांस्वप्नानामदर्शनंसुखेनचप्रतिबोधनंवातमूत्रपुरीषरेतसांमुक्तिः।सर्वाकारैर्मनोबुद्धीन्द्रियाणाञ्चाव्यापत्तिरिति ॥ १०१ ॥

धातुओंकी साम्यावस्था रखना या होना अथवा साम्यावस्था उत्पन्न करना चिकित्साका कार्य है। तथा विकारोंकी शान्ति होना उसका लक्षण है।पीडा आदिका शान्त होना, स्वर,वर्णका पूर्ववत् उत्तम होना,शरीरका पुष्ट होना एवम् बलकी वृद्धि, आहारकी अभिलाषा, आहारकी रुचि,भोजनका समयपर पचजाना,समयपर क्षुधा लगना. सुखपूर्वक निद्रा आना,बुरे स्वप्नोंका न दीखना,सुखपूर्वक इच्छानुसार जागृत होना समयपर सुखपूर्वक वात, मूत्र,पुरीष और वीर्यका मुक्त उचित रीतिपर होना। संपूर्ण आकारोंसे मन, बुद्धि और इन्द्रियोंका स्वास्थ्य अर्थात् विकार रहित होना यह सब विकार शान्तिके लक्षण होते हैं ॥ १०१ ॥

कार्यफलपरीक्षा ।

कार्य्यफलंसुखावाप्तिस्तस्यलक्षणंमनोबुद्धीन्द्रियशरीरतुष्टिः१०२॥

चिकित्सा कार्यका फल–सुख अर्थात् आरोग्यताकी प्राप्ति है।मन,बुद्धि,इंद्रिय और शरीरकी तुष्टि ही उसका लक्षण है ॥ १०२ ॥

अनुबन्धस्तुखल्वायुस्तस्यलक्षणंप्राणैःसंयोगः ॥ १०३ ॥

अनुबंध–अर्थात् आरोग्यताका फल दीर्घायु होना है। प्राणोंका शरीरके साथ संयोग रहना आयुका लक्षण है ॥ १०३ ॥

देशलक्षण ।

देशस्तुभूमिरातुरश्चतत्रभूमिपरीक्षाआतुरस्यपरिज्ञानहेतोर्वा स्यादौषधपरिज्ञानहेतोर्वा। तत्रतावदियमातुरपरिज्ञानहेतोः। तद्यथा–अयंकस्मिन्भूमिदेशेजातःसंवृद्धोव्याधितोवेतितस्मि-

अभूमिदेशेमनुष्याणामिदमाहारजातमिदंविहारजातमेतद्बल-मेवंविधंसत्त्वमेवंविधंसात्म्यमेवंविधोदोषोभक्तिरियमिमेव्याध-योहितमिदमहितमिदमितिप्रायोग्रहणेन ॥ १०४ ॥

देश-भूमिको और रोगीके शरीरको कहतेहैं। उनमें भूमिकी परीक्षा करना आतुरके परिज्ञानके लिये और औषधके परिज्ञानके लिये होताहै । उनमें भूमिकी परीक्षा और रोगीकी परीक्षा इस प्रकार करना।जैसे-यह किस भूमि अर्थात् किस देशमें उत्पन्न हुआ, किस देशमें वृद्धिको प्राप्त हुआ, किस देशमें रोगग्रस्त हुआ, जिस देशमें यह उत्पन्न हुआ और पला है उस देशके मनुष्योंका आहार, विहार और बल तथा सत्त्व एवम् सात्म्य किस प्रकारके होतेहैं ।उस देशमें दोष भेद इस प्रकार होतेहैं। इस प्रकारके पदार्थ इनको हितकर होतेहैं, व्याधियें इस प्रकारकी होती हैं ये पदार्थ हितकर और अहितकर होते हैं । इसप्रकार रोग परिज्ञानके लिये भूमिकी परीक्षा करना चाहिये ॥ १०४ ॥

औषधपरिज्ञानहेतोस्तुकल्पेषुभूमिपरीक्षावक्ष्यते ॥ १०५ ॥

औषध परिज्ञानके लिये भूमिकी परीक्षा करना चाहिये सो कल्पस्थानमें कथन करेंगे ॥ १०५ ॥

रोगिपरीक्षा ।

आतुरस्तुखलुकार्य्यदेशस्तस्यपरीक्षाआयुषःप्रमाणज्ञानहेतोर्वा स्याद्बलदोषप्रमाणज्ञानहेतोर्वा ॥ १०६ ॥

चिकित्साका देश-अर्थात् चिकित्सा कार्यकी भूमि रोगी कथन कियाहै सो उस रोगीकी आयु, बल,दोषोंका प्रमाण आदिकी परीक्षा करना आतुरपरीक्षा है१०६

तत्रतावदियंबलदोषविशेषप्रमाणापेक्षासहसाहिअतिबलमौष-धमपरीक्षकप्रयुक्तमल्पबलमातुरमभिघातयेत्, नह्यतिबला-न्याग्नेयसौम्यवायवीयान्यौषधान्यग्निक्षारशस्त्रकर्माणि वा श-क्यन्तेऽल्पबलैःसोढमविषह्यातितीक्ष्णवेगत्वाद्धिसद्यःप्राणहरा-णिस्युः ॥ १०७ ॥

चिकित्सा-रोगीके बल तथा दोषविशेषके प्रमाणकी अपेक्षा रखतीहै । जब वैद्य अल्प बलवाले रोगीको विनाही परीक्षा किये बलवान् औषधीका प्रयोग करताहै तो उसके प्राणोंको नष्ट करदेताहै । बलहीन रोगीको अतिबलवान्, अत्यंत उष्ण, अत्यंतशीतल तथा अत्यंतवातप्रधान औषध प्रयोग करना तथा जो रोगी सहन नहीं

करसकता उसको दागना, शस्त्रकर्म करना और क्षारकर्म (तेजाब आदिसे दग्ध करना) आदि तीक्ष्णकर्म और तीक्ष्ण औषध असह्य और तीक्ष्ण होनेसे उसके प्राणोंको शीघ्र नष्ट करदेतीहै ॥ १०७ ॥

दुर्बलरोगीको औषध ।

एतच्चैवकारणमवेक्ष्यमाणाहीनबलमातुरमविषादकरैर्मृदुसुकुमारप्रायैरुत्तरोत्तरगुरुभिरविभ्रमैरनात्ययिकैश्चोपचरन्त्यौषधैःविशेषतश्चनारीस्ताह्यनवस्थितमृदुविक्लवविक्लवहृदयाःप्रायःसुकुमारानार्य्योऽबलाःपरमसंस्तभ्याश्च ॥ १०८ ॥

इसलिये इन सब कारणोंकी अपेक्षा करताहुआ वैद्य हीनबल रोगीको कष्ट न देनेवाली मृदु तथा सुकुमार औषधों द्वारा साधन करे । यदि प्रबल औषधीकी भी आवश्यकता हो तो उसको क्रमपूर्वक जैसे वह सहन करसके वैसे उपयोग करे । जिससे वह कोई उपद्रव न करसके विशेषतासे स्त्रियोंकी नर्म औषधीद्वारा चिकित्सा करनी चाहिये । क्योंकि उनका हृदय अस्थिर, नर्म, विवृत्त, विकल(डरपोक) होताहै । प्रायः सुकुमार स्त्रियें निर्बल होती हैं और परकृत सांत्वनाकी अपेक्षा रखती हैं ॥ १०८ ॥.

अल्पबल औषधकी व्यर्थता ।

तथाबलवतिबलवद्व्याधिपरिगतेस्वल्पबलमौषधमपरीक्षकप्रयुक्तमसाधकं भवतितस्मादातुरंपरीक्षेतप्रकृतितश्चविकृतितश्चसारतश्चसंहननतश्चप्रमाणतश्चसात्म्यतश्चसत्त्वतश्चाहारशक्तितश्चव्यायामशक्तितश्चवयस्तश्चेति ॥ १०९ ॥

इसीप्रकार बलवान् व्याधिमें एवम् बलवान् रोगीको विना परीक्षा किये अल्पबल औषधीका प्रयोग हानिकारक होताहै इसलिये रोगीकी प्रकृतिसे, विकृतिसे, सारसे, शरीरसे सब प्रकार परीक्षा करे एवम् सात्म्य,सत्त्व, आहारशक्ति, परिश्रमशक्ति और अवस्था इन सबकी परीक्षा करनी चाहिये ॥ १०९ ॥

बलप्रमाण ग्रहणके कारण ।

बलप्रमाणविशेषग्रहणहेतोः तत्रामीप्रकृत्यादयोभावाः।तद्यथा–शुक्रशोणितप्रकृतिंकालगर्भाशयप्रकृतिमातुराहारविहारप्रकृतिंमहाभूतविकारप्रकृतिंश्चगर्भशरीरमपेक्षते । एताहियेनयेनदोषेणाधिकतमेनैकेनानेकतमेनवासमनुबध्यन्ते

तेन तेन दोषेणगर्भोऽनुबध्यते । ततःसासादोषप्रकृतिरुच्यते मनुष्याणांगर्भादिप्रवृत्ता । तस्माद्वातलाःप्रकृत्याकेचित्पित्तलाःकेचिच्छ्लेष्मलाःकेचित्संसृष्टाःसमधातवःप्रकृत्याकेचित्भवन्ति । तेषांहिलक्षणानिव्याख्यास्यामः ॥ ११० ॥

बलका प्रमाण जाननेके लिये प्रकृति आदि भावोंकी इस प्रकार परीक्षा करे । जैसे शुक्र और शोणितकी प्रकृति, कालप्रकृति गर्भाशयकी प्रकृति, रोगीके आहार विहारकी प्रकृति, पंचमहाभूतोंके विकारकी प्रकृतिकी परीक्षा करे । यह सब प्रकृति गर्भशरीरकी अपेक्षा करतीहैं । जैसे पिताके शुक्र और माताके रुधिरमें गर्भाधानके समय जिस जिस दोषकी अधिकता होतीहै गर्भमें भी उन्हीं उन्हीं दोषोंकी अधिकता अर्थात् अनुबंध होताहै । इसीलिये गर्भसे ही लेकर अर्थात् जन्मकालसे ही किसी२की वातप्रकृति, किसीकी पित्तप्रकृति और किसीकी कफप्रकृति, किसीकी मिली हुई प्रकृति एवम् किसी २ की समधातु प्रकृति होतीहै । उन सब वातादि प्रकृतिवाले मनुष्योंके लक्षणोंको कथन करतेहैं ॥ ११० ॥

कफप्रकृति ।

श्लेष्माहि स्निग्धश्लक्ष्णमृदुमधुरसारसान्द्रमंदस्तिमितगुरुशीतविज्जलाच्छः । अस्यस्नेहाच्छ्लेष्मलाःस्निग्धाङ्गाः, श्लक्ष्णत्वाच्छ्लक्ष्णाङ्गाः, मृदुत्वाद्दृष्टिसुखसुकुमारावदातशरीराः माधुर्य्यात्प्रभूतशुक्रव्यवायापत्याः, सारत्वात् सारसंहतस्थिरशरीराः, सान्द्रत्वादुपचितपरिपूर्णसर्वंगात्राः,मन्दत्वान्मन्दचेष्टाहारविहाराः, स्तैमित्यादशीघ्रारम्भक्षोभविकाराः, गुरुत्वात्साराधिष्ठितगतयः,शैत्यादल्पक्षुत्तृष्णासन्तापस्वेददोषाः, विज्जलत्वात्सुश्लिष्टसारबन्धसन्धानाः,तथाच्छत्वात्प्रसन्नदर्शनाननाः प्रसन्नस्निग्धवर्णस्वराश्चभवन्ति । तएवंगुणयोगाच्छ्लेष्मलाबलवन्तोवसुमन्तोविद्यावन्तओजस्विनःशान्ताआयुष्मन्तश्चभवन्ति ॥ १११ ॥

कफप्रकृति-कफ-चिकना, श्लक्ष्ण, मधुर, मृदु, सार,सांद्र, मंद,स्तिमित,भारी, शीतल,पिच्छल और स्वच्छ गुणवाला होताहै।कफ प्रकृति मनुष्यका शरीर कफके चिकने गुणसे चिकना होताहै,श्लक्ष्णसे गठनदार होताहै,मृदु होनेसे नम्र होताहै

और सुन्दर तथा सुकुमार और खूबसूरत होताहै । सार होनेसे संहत और स्थिर होताहै सांद्र होनेसे सर्वांग परिपूर्ण और पुष्ट होते हैं । कफके मंद स्वभावसे मंद चेष्टा और आहार विहार मंद होतेहैं । स्तैमित्य होनेसे-उद्योग, क्षोभ और विकार यह सब विलंबसे होतेहैं।भारी होनेसे सारवान् और स्थिरगति होताहै।शैत्य होनेसे-क्षुधा, तृषा, संताप, स्वेद और दोष यह अल्प होते हैं । पिच्छलगुण होनेसे-शरीरके सब बंधन दृढ होतेहैं एवम् कफका स्वच्छ गुण होनेसे कफ प्रकृति मनुष्यके-दृष्टि, मुख, वर्ण, और स्वर यह सब स्निग्ध तथा प्रसन्न होतेहैं । इस प्रकार इन गुणोंके कारण कफप्रकृति मनुष्य-बलवान्, विद्यावाला, ओजस्वी, शान्तस्वभाव तथा दीर्घायु होतेहैं ॥ १११ ॥

पितप्रकृतिके लक्षण ।

पित्तमुष्णंतीक्ष्णंद्रवंविस्रमम्लंकटुकञ्च । तस्यौष्ण्यात्पित्तला भवन्तिउष्णासहाः उष्णमुखाः सुकुमारावदातगात्राःप्रभूतपिप्लुव्यङ्गतिलकपिडकाःक्षुत्पिपासावन्तःक्षिप्रवलीपलितखालित्यदोषाः । प्रायोमृद्वल्पकपिलश्मश्रुलोमकेशाःतैक्ष्ण्यात्तीक्ष्णपराक्रमाःतीक्ष्णाग्नयःप्रभूताशनपानाःक्लेशासहिष्णवोदन्दशूकाःद्रवत्वाच्छिथिलमृदुसन्धिबन्धमांसाःप्रभूतसृष्टस्वेदमूत्रपुरीषाश्चविस्रत्वात् । प्रभूतपूतिवक्षःकक्षस्कन्धास्यशिरःशरीरगन्धाः कट्वम्लत्वादल्पशुक्रव्यवायापत्याः । तएवंगुणयोगात्पित्तलामध्यबलामध्यायुषोमध्यज्ञानविज्ञानवित्तोपकरणवन्तश्चभवन्ति ॥ ११२ ॥

पित्तप्रकृति-पित्तका स्वभाव गर्म,तीक्ष्ण,द्रव,विस्र, अम्ल और चरपरे गुणवाला होताहै । पित्तप्रकृति मनुष्य-पित्तके उष्णगुण होनेसे गर्मी सहन नहीं करसकता तथा मुख मस्तक गरम रहताहै । और उनका शरीर कोमल और स्वच्छ होताहै । शरीरमें पिपलू, झाईं, तिल तथा फुनसी आदि अधिक होतेहैं।क्षुधा,प्यास अधिक लगतीहै।शरीरमें सलवट पडना,वालोंका सफेद होजाना,सिरमें गंज होजाना यह सब छोटी ही अवस्थामें होजातेहैं.डाढी,मूछ,रोम और केश प्रायःनरम,छोटे२और भूरेरंगके होते, पित्तके तीक्ष्ण गुण होनेसे पित्तप्रकृति मनुष्य तीक्ष्ण पराक्रमवाले,तीक्ष्ण अग्निवाले अन्नजलको शीघ्र पचाजानेवाले या अधिक खानेवाले, क्लेश सहन करनेकी सामर्थ्यवाले तथा दंदशूक अर्थात् खानेके लोभी होतेहैं । पित्तके पतले स्वभाववाले

होनेसे उनके संधि और मांस नरम तथा शिथिल होतेहैं और मल, मूत्र तथा पसीना अधिक आतेहैं पित्तके विस्र अर्थात् दुर्गंधयुक्त होनेसे उनके वक्षस्थल, कांख, मुख, मस्तक और शरीरसे दुर्गंध आतीहै । पित्तके चरपरे गुणसे और अम्लताके कारण अल्पशुक्र और अल्प मैथुन एवम् अल्प संतान होतीहै। इसप्रकार इन गुणोंवाले होनेसे पित्तप्रकृति मनुष्य मध्य आयु तथा मध्यम बलवाले और ज्ञान, विज्ञान तथा धनसामग्रीवाले होते हैं॥ ११२॥

वातप्रकृतिके लक्षण।

वातस्तुरूक्षलघुचलबहुशीघ्रशीतपरुषविशदस्तस्यरौक्ष्याद्वातलारूक्षापचितालपशरीराःप्रततरूक्षक्षामभिन्नसक्तजर्जरस्वरा जागरूकाश्चभवन्तिलघुत्वाच्चलघुचपलगतिचेष्टाहारविहाराः, चलत्वादनवस्थितसन्ध्यक्षिभ्रूहन्वोष्ठजिह्वाशिरःस्कन्धपाणिपादाःबहुत्वाद्बहुप्रलापकण्डराशिराप्रतानाःशीघ्रत्वाच्छीघ्रसमारम्भक्षोभविकाराःशीघ्रोत्रासरागविरागाःश्रुतग्राहिणःअल्पस्मृतयश्च,शैत्याच्छीतासहिष्णवःप्रततशीतकोद्वेपकस्तम्भाः पारुष्यात्परुषकेशश्मश्रुरोमनखदशनवदनपाणिपादाङ्गावैशद्यात्स्फुटिताङ्गावयवाःसततसन्धिशब्दगामिनश्चभवन्ति। तएवं गुणयोगाद्वातलाःप्रायेणाल्पबलाश्चाल्पायुषश्चाल्पापत्याश्चाल्पसाधनाश्चाधन्याश्च ॥ ११३ ॥

वातप्रकृति–वायुका स्वभाव रूक्ष, हलका, चल, बहुल, शीघ्र, शीत, परुष और विशद गुणवाला होताहै। वातप्रकृति मनुष्यका शरीर वायुके रूक्षगुण होनेसे रूखा गिराहुआसा और कृश होताहै। स्वर अत्यंत रूक्ष, तीक्ष्ण, सक्त, भिन्न और जर्जरसा होताहै। निद्रा कम आतीहै। वायुका हलका गुण होनेसे उनकी गति, चेष्टा, आहार और व्यवहार लघु, तथा चपल होतेहैं। वायुके चलगुण होनेसे उनकी संधि, अस्थि, भौंहें, ठोडी, होठ, जिह्वा, शिर, कंधे, हाथ, पांव यह अस्थिर अर्थात् ताकतवर नहीं होते तथा कभी फडकते हैं। वायुके बहुत्व गुण होनेसे बहुत बोलनेवाला होताहै तथा कंडरा और नसोंके जालसे संपूर्ण शरीर व्याप्त होताहै। वायुकी शीघ्र गति होनेसे आरम्भ, क्षोभ, विकार यह चित्तमें शीघ्र उत्पन्न होतेहैं एवम् त्रास, राग, वैराग्य यह शीघ्र उत्पन्न होतेहैं। तथा शीघ्र श्रुतको शीघ्र ग्रहण करलेना और भूलजाना यह गुण होतेहैं। वायुके शीतगुण होनेसे शीतको सहन न करसके

तथा उनके शरीरमें शीत, कम्प और जडता अधिक होतेहैं। वायुके परुष अर्थात् कठोर गुण होनेसे केश, श्मश्रु, रोम, नख, दांत,मुख,हाथ,पांव,अंग यह सब कठोर होतेहैं। तथा वायुके विशद गुणसे अंगावयव फटेहुए होतेहैं। एवम् नित्य संधियें मटका करतीहैं। यह सब गुण होनेसे वातप्रधान मनुष्य अल्पायु अल्पसंतानवाले और अल्पसाधनवाले तथा निर्धन होतेहैं ॥ ११३ ॥

मिलीहुई तथा समप्रकृति।

संसर्गात्संसृष्टलक्षणाःसर्वगुणसमुदितास्तुसमधातवः इत्येवंप्रकृतितःपरीक्षेत ॥ ११४ ॥

दो दोषोंके संसर्गसे दो दोषोंके मिले जुले लक्षण होते हैं ॥ सम्पूर्ण दोषोंके समान होनेसे मनुष्य समधातु अर्थात् सम प्रकृतिवाला कहा जाताहै। इस प्रकार पुरुषकी प्रकृतिकी परीक्षा करनी चाहिये ॥ ११४ ॥

विकृतिपरीक्षा।

विकृतितश्चेति। विकृतिरुच्यते विकारः। तत्रविकारहेतुदोषदूष्यप्रकृतिदेशकालबलविशेषैर्लिङ्गतश्चपरीक्षेत। नह्यन्तरेण हेत्वादीनांबलविशेषंव्याधिबलविशेषोपलब्धिः। यस्यहि व्याधेर्दूष्यदोषप्रकृतिदेशकालसाम्यंभवतिमहच्चहेतुलिङ्गबलं सव्याधिर्बलवान्तद्विपर्ययाच्चाल्पबलः। मध्यबलस्तुदूष्यादीनामन्यतमसामान्याद्धेतुलिङ्गमध्यबलत्वाच्चउपलभ्यते॥११५॥

अब विकृतिकी परीक्षाको कथन करते हैं विकृति विकारको कहते हैं सो विकारको हेतु, दूष्य,दोष, प्रकृति,देश और काल तथा बल इनसे एवम् लक्षणसे परीक्षा करे। क्योंकि हेतु आदिकोंके बलविशेषको विनाजाने व्याधिके बलविशेषकी उपलब्धि नहीं होसकती। इनमें जिस व्याधिके दूष्य, दोष, प्रकृति, देश और काल समान हों अर्थात् एकही स्वभाववाले हों तथा हेतु आदिकोंके लक्षण बलवान् हों तो उस व्याधिको बलवान् व्याधि जानना। इससे विपरीत लक्षण होनेसे अल्पबल जानना। हेतु और दूष्य आदिकोंकी तुल्यता न होनेसे अन्य दोषोंकी किंचित् साम्यता होतेहुए भी हेतुओंके लक्षण, मध्यबल होनेसे व्याधिको मध्यबल जानना चाहिये ॥ ११५ ॥

---

१ सर्वगुणसमुदिताः सर्वप्रकृतियुक्ताः प्रशस्तगुणयुक्ता इत्यर्थः।

सारद्वारा परीक्षा ।

सारतश्चेतिसाराण्यष्टौपुरुषाणांबलमानविशेषज्ञानार्थमुपदिश्यन्ते । तद्यथा—त्वग्रक्तमांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्रसत्त्वानि । तत्रस्निग्धश्लक्ष्णमृदुप्रसन्नसूक्ष्माल्पगम्भीरसुकुमारलोमासप्रभाचत्वक्साराणाम्। सासारतासुखसौभाग्यैश्वर्य्योपभोगबुद्धिविद्यारोग्यप्रहर्षणान्यायुष्यत्वञ्चाचष्टे ॥ ११६ ॥

अब सारसे परीक्षा कहते हैं । मनुष्योंका सार आठ प्रकारका होता है ।पुरुषके बलविशेषको जाननेके लिये आठप्रकारके सारोंकी परीक्षा करे । वह इसप्रकार हैं। जैसे त्वचा, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र और सत्व यह आठ प्रकारके सार हैं ॥ इनमें त्वचासारवाले पुरुषकी त्वचा चिकनी, श्लक्ष्ण, मृदु,प्रसन्न, सूक्ष्म, किंचित् गंभीर, सुकुमार, रोम तथा कांतियुक्त होती है । इस सारताके होनेसे मनुष्य सुखी, सौभाग्ययुक्त, ऐश्वर्य तथा भोग और बुद्धियुक्त होता है । एवम् विद्वान्. निरोग, हर्षयुक्त और दीर्घायु होता है ॥ ११६ ॥

रक्तसार ।

कर्णाक्षि--मुखजिह्वानासौष्ठपाणिपादतल--नख--ललाटमेहनानिस्निग्धरक्तानिश्रीमन्तिभ्राजिष्णूनिरक्तसाराणाम्।सा सारतासुखमुदग्रतांमेधांमनस्वित्वंसौकुमार्य्यमनतिबलमक्लेशसहिष्णुत्वञ्चाचष्टे ॥ ११७ ॥

रक्तमें सारता होनेस मनुष्योंके कान, नेत्र, मुख, जीभ, नाक, ओठ, हाथ, पांव, नख, मस्तक,लिंग ये सब चिकने और लालवर्णके होतेहैं तथा शोभा और कांतियुक्त होतेहैं । रक्तमें सारता होनेसे मनुष्य सुख, उन्नति और मेधायुक्त तथा मनस्वी सुकुमार, साधारण बलवाला और क्लेशके न सहनेवाला होताहै ॥ ११७ ॥

मांससार ।

शंख--ललाट--कृकाटिकाक्षिगण्डहनुग्रीवास्कन्धोरःकक्षवक्षःपाणिपादसंधयःस्थिरगुरुशुभमांसोपचितामांससाराणाम् । सासारताक्षमांधृतिमलौल्यंवित्तंविद्यांसुखमार्जवमारोग्यंबलमायुश्चदीर्घमाचष्टे ॥ ११८ ॥

मांसमें सारता होनेसे मनुष्योंके कनपटी, मस्तक, गर्दनका पिछलाभाग, नेत्र, कपोल, ठोडी, गर्दन, कंधे,छाती,वक्षस्थल,कांख, हाथ, पांव और सांधियें दृढ, तथा

१ सारशब्देन विशुद्धतरो धातुरुच्यते इति चक्रपाणिः ।

मांसयुक्त पुष्ट होती हैं। और मांससार होनेसे मनुष्य क्षमा, धृति, निर्लोभ, धन, विद्या, सुख, नम्रता, आरोग्यता और वल तथा दीर्घायुवाला होता है ॥ ११८ ॥

मेदःसार।

वर्णस्वरनेत्रकेशलोमनखदंतौष्ठमत्रपुरीषेषुविशेषतःस्नेहोमेदः-सारार्णाम्। सासारतावित्तैश्वर्य्यसुखोपभोगप्रदानान्यार्जवं सुकुमारोपचारतामाचष्टे ॥ ११९ ॥

मेदसार मनुष्योंके वर्ण, स्वर, नेत्र, केश, लोम, नख, दंत,होठ, मूत्र और मल ये सव विशेष चिकने होतेहैं और यह पुरुष धन, ऐश्वर्य, सुख, भोग, दातृभाववाला होताहै तथा सरलतायुक्त, सुकुमार और उपकरणयुक्त होताहै ॥ ११९ ॥

अस्थिसार।

पार्ष्णिगुल्फजान्वरत्निजत्रुचिबुकाशिरःपर्वस्थूलाःस्थूलास्थिन-खदन्ताश्चास्थिसारास्तेमहोत्साहाःक्रियावन्तश्चक्लेशसहाःसार-स्थिरशरीराभवन्तिआयुष्मन्तश्च ॥ १२० ॥

अस्थिसार मनुष्योंके गुल्फ, जानु, अरत्नी[1], अंश, चिवुक, मस्तक और संपूर्ण संधियें तथा अस्थि, नख और दांत यह सब स्थूल होतेहैं। वह मनुष्य महोत्साही, क्रियावान्,क्लेश सहन करनेवाला,सारयुक्त तथा दृढ शरीरवाला और दीर्घायु होताहै ॥ १२० ॥

मज्जासार।

तन्वङ्गाबलवन्तःस्निग्धवर्णस्वरास्थूलदीर्घवृत्तसन्धयश्चमज्जा-सारास्तेदीर्घायुषोबलवन्तः ॥ १२१ ॥

मज्जासार मनुष्य पतली देहवाले, वलवान् चिकनेवर्ण और स्वरवाले होतेहैं। इनकी संपूर्ण संधियें दृढ, स्थूल, लम्बी और गोल होती हैं। यह मनुष्य दीर्घायु और वलवान् होतेहैं ॥ १२१ ॥

शुक्रसार।

श्रुतविज्ञानवित्तापत्यसम्मानभाजश्चसौम्याःसौम्यप्रेक्षिणश्च क्षीरपर्णलोचनाइवप्रहर्षबहुलाःस्निग्धवृत्तसारसमसंहतशिख-रिदशनाःप्रसन्नस्निग्धवर्णस्वराभ्राजिष्णवोमहास्फिजश्चशुक्र-साराःतेस्त्रीप्रियाःप्रियोपभोगाबलवन्तः ॥ १२२ ॥

---

१ अरत्नि = कफोणिका।

शुक्रसार मनुष्य शास्त्र, ज्ञान, धन, संतानयुक्त और सन्मानके योग्य होताहै । तथा सौम्य, सुन्दरस्वरूप, दुधकीसी कांतिवाला, पूर्ण और प्रसन्न नेत्रोंवाला होताहै चिकने शरीरवाला, धनयुक्त, सुन्दर, सुडौल शरीर, तथा खूबसूरत दंतपंक्तीवाला होताहै । एवम् स्वर, वर्ण, उत्तम, चिकने होतेहैं तथा यह कांतिवान् और बडे नितम्बोंवाला अधिक वीर्ययुक्त स्त्रियोंका प्यारा, कामी तथा बलवान् होताहै १२२॥

सत्त्वसार ।

सुखैश्वर्य्यारोग्यवित्तसम्मानापत्यभाजःस्मृतिमन्तोभक्तिमन्तःकृतज्ञाःप्राज्ञाःशुचयोमहोत्साहादक्षाधीराःसमरविक्रान्तयोधिनःत्यक्तविषादाःसुव्यवस्थितागम्भीरबुद्धिचेतसःकल्याणाभिनिवेशिनश्चसत्त्वसाराः ॥ १२३ ॥

सत्त्वसार मनुष्य सुख, ऐश्वर्य, आरोग्यता, वित्त, सन्मान और संतानवाला होताहै तथा स्मृतिवान्, भक्तिवान्, कृतज्ञ, बुद्धिमान्, शुद्ध, महोत्साही, चतुर और धीर होतेहैं । एवम् युद्धके समय पराक्रमके साथ युद्ध करनेवाले, विषादरहित, स्थिरस्वभाव, गंभीरबुद्धि और गंभीरचित्त तथा कल्याणकी इच्छावाले होतेहैं ॥१२३॥

तेषांस्वलक्षणैरेवगुणाव्याख्याताः ॥ १२४ ॥

इसप्रकार लक्षणों सहित त्वक्, सार आदि आठ प्रकारके सारवाले पुरुषोंके लक्षण और गुणोंका वर्णन कर दिया गयाहै ॥ १२४ ॥

सर्वसार ।

तत्रसर्वैःसारैरुपेताःपुरुषाभवन्त्यतिबलाःपरंगौरवयुक्ताः क्लेशसहाःसर्वारंभेष्वात्मनिजातप्रत्ययाः कल्याणाभिनिवेशिनः स्थिरसमाहितशरीराःसुसमाहितगतयःसानुनादस्निग्धगम्भीरमहास्वराःसुखैश्वर्य्यवित्तोपभोगसम्मानभाजोमन्दजरसोमन्दविकाराःप्रायस्तुल्यगुणविस्तीर्णापत्याःचिरजीविनश्च॥१२५॥

जो मनुष्य इन संपूर्ण सारोंस युक्त होते हैं वह अत्यन्त बलवान्, गौरवयुक्त, क्लेश सहन करनेकी सामर्थ्यवाले, संपूर्ण कामोंको अपने आप करनेकी इच्छावाले, कल्याण करनेकी इच्छावाले, स्थिर और दृढशरीरवाले सुसमाहित गतिवाले, अनुनादसहित स्निग्ध, गंभीर और महास्वरवाले, सुख, ऐश्वर्य, वित्त उपभोगवाले, सम्मान पात्र और उनको बुढापा शीघ्र नहीं आता, विकार शीघ्र उत्पन्न नहीं

होते उनकी संतान उन्हींके समान गुणवाली, वंशके विस्तार करनेवाली और चिरंजीवी होती है ॥ १२५ ॥

अतोविपरीतास्त्वसाराः ॥ १२६ ॥

इससे विपरीत गुणोंवाले मनुष्य असार अर्थात् सारहीन होतेहैं ॥ १२६ ॥

मध्यानांमध्यःसारविशेषैर्गुणविशेषाव्याख्याताः । इतिसाराण्यष्टौपुरुषाणांबलप्रमाणविशेषज्ञानार्थानि ॥ १२७ ॥

मध्यमसार मनुष्यके शरीरमें संपूर्ण लक्षण मध्यम होते हैं ।इस प्रकार मनुष्योंके बल, प्रमाण, विशेषके ज्ञानके लिये आठ प्रकारके सारोंका वर्णन कियागया १२७॥

कथंनुशरीरमात्रदर्शनादेवाभिषक्मुह्येदयमुपचितत्वाद्बलवानयमल्पबलःकृशत्वान्महाबलवानयंमहाशरीरत्वादयमल्पशरीरत्वादल्पबलइति । दृश्यन्तेह्यल्पशरीराःकृशाश्चैकेबलवन्तः— तत्रपिपीलिकाभारहरणवत्सिद्धिः ।अतश्चसारतःपरीक्षेतइत्युक्तम् ॥ १२८ ॥

वद्य रोगीके शरीरमात्रकोही देखकर मोहित न होजाय । जैसे—हृष्टपुष्ट शरीरको देखकर यह बलवान् है । कृश शरीरको देखकर यह दुर्बल है । वडे शरीरको देखकर वडा शरीर हानेसे बलवान् समझ लेना, छोटा शरीर देखकर निर्बल समझ लेना इत्यादि मोहको न प्राप्त होजाय । क्योंकि छोटे शरीरवाले और कृश शरीरवाले भी वहुतसे बलवान् देखनेमें आतेहैं । जैसे पिपीलिका (चींटी विशेष)वहुत छोटी और कृश शरीर होते हुए भी अपनेसे अधिक भारको उठालेती है । इसी प्रकार सारवान् मनुष्य भी जानना । इसलिये सारद्वारा मनुष्यकी परीक्षा करनी चाहिये यह वर्णन कियागया है ॥ १२८ ॥

समुदायद्वारा परीक्षा ।

संहननतश्चेतिसंहननसंघातःसंयोजनमित्येकोर्थः ॥ १२९ ॥

वैद्यको चाहिये कि शरीरकी संहननतासे भी परीक्षा करे । संहनन, संघातक और संयोजन इन तीनों शब्दोंका एक ही अर्थ है । यह शब्द शरीरके संगठनके वाचक हैं ॥ १२९ ॥

तत्रसमसुविभक्तास्थिसुबद्धसन्धिसुनिविष्टमांसशोणितंसुसंहतंशरीरमित्युच्यते । तत्रसुसंहतशरीराः पुरुषाबलवन्तोविप-

र्य्यंथेणाल्पबलाःप्रवरावरमध्यत्वात् संहननस्यमध्यबलाभवन्ति ॥ १३० ॥

जिसके शरीरमें हड्डियें सब बराबर और सुविभक्त और संधियोंमें भले प्रकार सुवन्ध हों और मांस तथा रुधिर शरीरमें सुडौल और उचित रीतिपर पूरित हो उस शरीरको सुसंगत कहते हैं । वह सुसंगत शरीरवाले पुरुष बलवान् होतेहैं । इससे विपरीत गुणवाले दुर्बल होते हैं । मध्यम लक्षणवाले मध्य बल होते हैं ॥ १३० ॥

प्रमाणसे परीक्षा ।

प्रमाणतश्चेतिशरीरप्रमाणंपुनर्यथास्वेनांगुलिप्रमाणेनोपदेक्ष्यते । उत्सेधविस्तारायामैर्यथाक्रमम् ॥ १३१ ॥

शरीरके प्रमाणके अनुसार भी परीक्षा करनी चाहिये । प्रत्येक मनुष्यका प्रमाण उसकी अंगुलियों द्वारा प्रमाण कियाजाताहै । अर्थात् प्रत्येक मनुष्यकी लंबाई, चौडाई और ऊंचाईको उसकी अंगुलियों द्वारा प्रमाणित जानना । उसको यथाक्रम वर्णन करते हैं ॥ १३१ ॥

तत्रपादौचत्वारिषट्चतुर्दशचाङ्गुलानि, जंघेत्वष्टादशांगुले षोडशांगुलिपरिक्षेपे, जानुनीचतुरंगुलेषोडशांगुलिपरिक्षेपे, त्रिंशदंगुलपरिक्षेपावष्टादशांगुलावूरू, वृषणौषडंगुलदीर्घावष्टांगुलपरिणाहौ, शेफःषडंगुलदीर्घंपञ्चांगुलपरिणाहं, द्वादशांगुलपरिणाहोभगः,षोडशांगुलविस्ताराकटी,दशांगुलंबास्तिशिरः,दशांगुलविस्तारंद्वादशांगुलमुदरं,दशांगुलविस्तीर्णेद्वादशांगुलायामेपार्श्वेद्वादशांगुलविस्तारंस्तनान्तरंद्व्यंगुलंस्तनपर्य्यन्तं, चतुर्विंशत्यंगुलविशालंद्वादशांगुलोत्सेधमुरःद्व्यंगुलं हृदयम्, अष्टांगुलौस्कन्धौ, षडंगुलावंसौ, षोडशांगुलौबाहू, पञ्चदशांगुलौपाणी, हस्तौद्वादशांगुलौ, कक्षावष्टांगुलौ, त्रिकं द्वादशांगुलोत्सेधम्,अष्टादशांगुलोत्सेधंपृष्ठं, चतुरंगुलोत्सेधा द्वाविंशत्यंगुलपरिणाहाशिरोधरा,द्वादशांगुलोत्सेधंचतुर्विंशत्यंगुलपरिणाहमाननं,पञ्चांगुलमास्यं,चिबुकौष्ठकर्णाक्षिमध्यना-

(१) प्रमाणतश्चेति प्रशस्तं प्रमाणमगानाम् ।

सिकाललाटानि, चतुरंगुलानि, षोडशांगुलोत्सेधंद्वात्रिंश-दंगुलपरिणाहंशिरइतिपृथक्त्वेनाङ्गावयवानांमानमुक्तंकेवलं पनःशरीरमंगुलिपर्वाणिचतुरशीतिस्तदायामविस्तारसमंसमु-च्यते ॥ १३२ ॥

पैरोंकी-ऊंचाई चार अंगुल, चौडाई छः अंगुल और लंबाई चौदह अंगुल होतीहै घुटनेसे न. चे-टांगों (पिंडलियों)की लंबाई-अठारह अंगुल और घेर सोलह अंगुल होता है। जानुकी लंबाई-चार अंगुल और वेष्टन सोलह अंगुल होता है। जानुसे ऊपर ऊरूस्थल अर्थात् मोटी जांघकी लंबाई तीस अंगुल, और घेर अठारह अंगुल होताहै। वृषण अर्थात् फोतेके नसोंकी लंबाई छः अंगुल और वेष्टन आठ अंगुलका होताहै। शिश्न इंद्रियकी लंबाई छः अंगुल और वेष्टन पांच अंगुलका होताहै। भगकी गहराई-बारह अंगुल होतीहै।कमर सोलह अंगुल चौडी होतीहै। मूत्रवस्ती दश अंगुलके विस्तारवाली होतीहै। उदरका बारह अंगुल विस्तार है। दोनों पार्श्वोंका दशदश अंगुल विस्तार, और बारह बारह अंगुल लम्बाई है।दोनों स्तनोंका बारह अंगुलका अन्तर और दोदो अंगुलकी सीमा होती है। छाती-चौवीस अंगुल चौडी और बारह अंगुल लम्बी होतीहै। हृदय-दो अंगुल कन्धे-आठ २ अंगुल।दोनों अंस-छःअंगुल होतेहैं। सोलह अंगुल बाहोंका ऊपरका भाग। पन्द्रह अंगुल कोहनीसे नीचेका भाग। दश अंगुल हाथ और आठ अंगुल कांख होतीहै।त्रिकस्थान-बारह अंगुल ऊंचा। पृष्ठस्थान-आठ अंगुल ऊंचा। गर्दन चार अंगुल ऊंची और बारह अंगुल घेरमें होतीहै। बारह अंगुल ऊंचा और चौवीस अंगुलमें चेहरा होताहै। पांच अंगुलका मुख। चिबुक, ओष्ठ, दोनों कान दोनों नेत्र, नाक और मस्तक चार२अंगुल विस्तारमें होतेहैं। शिरका लंबाव सोलह अंगुल और घेर बत्तीस अंगुल होताहै। इस प्रकार शरीरके पृथक् २ अवयवोंका परिमाण वर्णन किया गयाहै।सम्पूर्ण शरीरकी ऊंचाई चौरासी अंगुल होती है शरीरकी ऊंचाई और घेर प्रायः बराबर होताहै। यह लक्षण सामान्यतासे कथन किया गयाहै ॥ १३२ ॥

तत्रायुर्बलमोजःसुखमैश्वर्यंवित्तमिष्टाश्चापरेभावाभवन्त्याय-त्ताः प्रमाणवतिशरीरेविपर्य्ययस्तुहीनेऽधिकेवा ॥ १३३ ॥

---

(१) यश्च मानविरोधः सुश्रुतेन सोऽत्राङ्गुलिमानभेदात् शमयितव्यः। तत्र हि सविंशमंगुलिशतं पुरुषमानम्, तेन तत्राङ्गुलिमानमेवाल्पं ज्ञेयम्। आयामविस्तारसममिति यथोक्तप्रत्यवयवायामविस्तार-युक्तम्।

जो शरीर प्रमाणयुक्त यथार्थ होताहै उस शरीरवाले मनुष्यकी, आयु, बल, ओज, सुख, ऐश्वर्य, वित्त और अन्य भी सम्पूर्ण भाव स्वाधीन होते हैं । हीन वा अधिक होनेसे विपरीत होतेहैं ॥ १३३ ॥

सात्म्यद्वारा परीक्षा ।

सात्म्यतश्चेति । सात्म्यंनामतद्यत्सातत्येनोपयुज्यमानमुपशेतेतत्रयेघृतक्षीरतैलमांसरससात्म्याः सर्वरससात्म्याश्चतेबलवन्तःक्लेशसहाश्चिरजीविनश्चभवन्ति । रूक्षनित्याः पुनरेकरससात्म्याश्चयेते प्रायेणाल्पबलाश्चाक्लेशसहाअल्पायुषोऽल्पसाधनाश्चभवन्ति ॥ १३४ ॥

मनुष्योंके सात्म्यकी भी परीक्षा करनी चाहियेजो पदार्थ निरन्तर सेवन किया जानेपरभी शरीरके अनुकूल अर्थात् हितकारी प्रतीत हो उसको सात्म्य कहते हैं। जिन मनुष्योंको-घृत,दूध,तैल,मांसरस तथा मधुर आदि सम्पूर्ण रस सात्म्य होते हैं वह मनुष्य बलवान् और क्लेश सहन करनेमें समर्थ तथा दीघजीवी होतेहैं । जो मनुष्य निरन्तर रूक्ष पदार्थोंको सेवन करते हैं तथा जिनको एक रस ही सात्म्य है वह मनुष्य प्रायः अल्पबलवाले क्लेश सहन करनेमें असमर्थ, अल्पायु और अल्पसाधनवाले होते हैं ॥ १३४ ॥

व्यामिश्रसात्म्यास्तुयेतेमध्यबलाःसात्म्यनिमित्ततः ॥ १३५ ॥

जिन मनुष्योंको मिले जुले रस सात्म्य हों और पृथक् २ सात्म्य न हों अथवा उपरोक्त दोनों प्रकारके मनुष्यके कुछ २ लक्षण मिलते हों वह मनुष्य मध्यबल सात्म्यके निमित्तसे मध्यमबलवाले होतेहैं ॥ १३५ ॥

सत्त्वसे परीक्षा ।

सत्त्वतश्चेति। सत्त्वमुच्यतेमनस्तच्छरीरस्यतन्त्रकं[1]मात्मयोगात्त्रिविधंबलभेदेनप्रवरंमध्यमवरामिति । अतश्चप्रवरमध्यावरसत्त्वाश्चपुरुषाभवन्ति । तत्रप्रवरसत्त्वाः सत्त्वसाराःसारेषुउपदिष्टाः स्वल्पशरीराह्यपि ते निजागन्तुनिमित्तासुमहतीष्वपि पीडास्वव्यथाद्दृश्यन्तेसत्त्वगुणवैशेष्यात् ॥ १३६ ॥

मनुष्यके सत्वकी भी परीक्षा करनी चाहिये।सत्व नाम मनका है।वह मन आत्माके संयोगसे शरीरका तंत्रक है अर्थात शरीरको अपने भावोंसे तंत्रण और धारण

१ तन्त्रकमिति प्रेरकं धारकं च ।

करनेवाला होताहै वह वलके भेदसे उत्तम मध्यम और कनिष्ठ इन तीन प्रकारका होताहै इसीलिये मनुष्य उत्तमसत्त्व,मध्यमसत्त्व और अधमसत्त्व होतेहैं उनमें उत्तमसत्त्व पुरुष सत्त्वसारोंमें कथन कर चुकेहैं वह उत्तमसत्त्वसार मनुष्य अल्प शरीर होनेपर तथा निज और आगन्तुक महाकष्ट उपस्थित होनेपर भी व्यग्रचित्त नहीं होते क्योंकि इनमें सत्त्वगुणकी विशेषता होती है ॥ १३६ ॥

मध्यसत्त्वादिपुरुष ।

मध्यसत्त्वास्तुपरानात्मन्युपनिधायसंस्तम्भयन्त्यात्मनात्मानं परैर्वापिसंस्तभ्यन्तेहीनसत्त्वास्तुनात्मनानचपरैःसत्त्वबलंशक्यन्ते उपस्तम्भयितुंमहाशरीराह्यपिते स्वल्पानामपिवेदनानामसहादृश्यन्ते । सन्निहितभयशोकलोभमोहमाना रौद्रभैरवद्विष्टबीभत्सविकृतसंकथास्वपिचपशुपुरुषमांसशोणितानिचावेक्ष्य विषादवैवर्ण्यमूर्च्छोन्मादभ्रमप्रपतनानामन्यतमसाप्नुवन्त्यथवामरणमिति ॥ १३७ ॥

मध्यमसत्त्ववाले मनुष्य—अन्य मनुष्योंको कष्ट सहते देखकर स्वयं भी उनके सहारेसे अथवा दूसरोंकी सहायतासे या दूसरोंके धैर्य देने आदिपर किसी प्रकार कष्ट सहन कर सकतेहैं।हीनसत्त्व पुरुष—न तो स्वयं कष्ट सहनकरसकते हैं और न दूसरेकी सहायता देनेपर भी धैर्य धारण करते हैं । यह मनुष्य वडे भारी शरीरवाले अल्पकष्टको सहन नहीं कर सकते । और सदैव इनके चित्तमें भय, शोक, लोभ, मोह स्थित रहते हैं । एवम् लडाई अथवा डरावनी वात एवं भयानक वात और द्वेषकारक वातोंको सुनकर तथा पशु, पुरुषादिकोंके मांस रक्त आदि देखकर ही विषाद, विवर्णता, मूर्च्छता, उन्माद, गिरजाना अथवा अन्य किसी प्रकारका विकार होना या मृत्युतकको प्राप्त होना ऐसे उपद्रव होते हैं ॥ १३७ ॥

भोजनशक्तिद्वारा परीक्षा ।

आहारशक्तितश्चेति । आहारशक्तिरभ्यवहरणशक्त्याजरणशक्त्याचपरीक्ष्यबलायुषीह्याहारायत्ते ॥ १३८ ॥

मनुष्यकी आहारशक्तिसे भी परीक्षा करनी चाहिये । भोजन करनेकी शक्तिसे आहारके परिमाणसे, आहारकी परिपाक शक्तिसे आहार शक्तिकी परीक्षा की जाती है , मनुष्योंका वल और आयु आहारके ही आधीन है ॥ १३८ ॥

व्यायामशक्तिद्वारा परीक्षा ।

व्यायामशक्तितश्चेति । व्यायामशक्तिमपिकर्मशक्त्यापरीक्षेत। कर्मशक्त्याह्यनुमीयतेबलं त्रिविधम् ॥ १३९ ॥

व्यायाम शक्तिद्वारा भी परीक्षा करनी चाहिये । कर्मशक्तिसे व्यायाम शक्तिकी परिक्षा हो सकती है । कर्मशक्तिसे ही मनुष्यके उत्तम मध्यम और हीनबलकी परीक्षा कीजासकती है ॥ १३९ ॥

अवस्थासे परीक्षा ।

वयस्तश्चेति । कालप्रमाणविशेषापेक्षिणीहिशरीरावस्थावयोऽभिधीयते । तद्वयोयथावस्थानभेदेनत्रिविधंबालंमध्यंजीर्णमिति ॥ १४० ॥

वय अर्थात् अवस्था विशेषकी भी परीक्षा करनी चाहिये।कालप्रमाणकी अपेक्षा करनेवाली जो शरीरकी अवस्था है उसको वय कहते हैं । वह वय स्थूल भेदसे बाल मध्य और जीर्ण अर्थात् बाल्यावस्था,तरुणावस्था और वृद्धावस्था इन तीन भेदों वाली होती है ॥ १४० ॥

बाल आदि अवस्था ।

तत्रबालमपरिपक्वधातुगुणमजातव्यञ्जनंसुकुमारमक्लेशसहमसम्पूर्णबलं श्लेष्मधातुप्रायमाषोडशवर्षम् । विवर्द्धमानधातुगुणंपुनःप्रायेणानवस्थितसत्त्वमात्रिंशद्वर्षमुपादिष्टम् ।मध्यं पुनः समत्वागतबलवीर्य्यपौरुषपराक्रमग्रहणधारणस्मरणवचनविज्ञानसर्वधातुगुणं बलस्थितमवस्थितसत्त्वमविशीर्य्यमाणधातुगुणं पित्तधातुप्रायमाषष्टिवर्षमुद्दिष्टम्।अतः परं परिहीयमाणधात्विन्द्रियबलपौरुषपराक्रमग्रहणधारणस्मरणवचनविज्ञानंभ्रश्यमानधातुगुणंवातधातुप्रायंक्रमेणप्रजीर्णमुच्यते आवर्षशतम् ॥ १४१ ॥

उनमें बाल्यावस्थामें सब धातु विना पकी होतीहैं और मोछ, दाढी, आदि धातुओंके गुण प्रगट नहीं होते । शरीर सुकुमार,कष्ट सहनेके अयोग्य असंपूर्ण बल और कफ प्रधान होताहै । सोलह वर्ष पर्यन्त बाल्यावस्था होतीहै ॥ सोलह वर्षसे तीसवर्ष पर्यन्त सम्पूर्ण धातुओंके बल और गुण बढते हैं और मन प्रायः अनव-

स्थित होताहै (इस अवस्थाको युवावस्था तथा किसीके मतमें बाल, वृद्धि, सम्पूर्णता और हानि यह चार अवस्थाहैं)। तीसवर्षके उपरान्त साठवर्षकी अवस्थातक मध्यअवस्था होतीहै। इस अवस्थामें बल, वीर्य, पुरुषार्थ, पराक्रम, ग्रहणशक्ति, धारणा, स्मरणशक्ति, वचनशक्ति और विज्ञान परिपूर्ण होतेहैं तथा सम्पूर्ण धातुओंके गुण भी पूर्णतायुक्त होते हैं। यह अवस्था पित्तप्रधान होतीहै। इसके उपरान्त मनुष्यकी धातु, इन्द्रिय, बल, पुरुषार्थ, पराक्रम, ग्रहणशक्ति, स्मरणशक्ति, वचनशक्ति और विज्ञानशक्ति घटने लगजातीहै। सम्पूर्ण धातुयें अपने गुणोंसे भ्रश्यमान होजावीं हैं इस अवस्थाको वृद्धावस्था कहतेहैं। इसमें वायुकी प्रधानता होतीहै। साठसे सौवर्षतक वृद्धावस्था कहीजातीहै ॥ १४१ ॥

वयःक्रमसे औषधप्रयोग।

वर्षशतंखल्वायुषःप्रमाणमस्मिन्काले। सन्तिपुनरधिकोनवर्षशतजीविनोमनुष्याः। तेषांविकृतिवर्ज्यैःप्रकृत्यादिबलविशेषैरायुषोलक्षणतश्चप्रमाणमुपलभ्यवयसस्त्रित्वंविभजेत। एवंप्रकृत्यादीनांविकृतिवर्ज्यानांभावानां प्रवरमध्यावरविभागेनबलविशेषंविभजेत्। विकृतिबलत्रैविध्येनतु दोषबलंत्रिविधमनुमीयते। ततोभैषज्यस्यतीक्ष्णमृदुमध्यविभागेनत्रित्वंविभज्ययथादोषंभैषज्यमवचारयेदिति ॥ १४२ ॥

आयुका प्रमाण इस कालमें प्रायः सौवर्षका होताहै। किन्तु बहुतसे मनुष्य सत्त्वादि गुणविशेषसे और पुण्यशाली होनेसे सौवर्षसे अधिक भी जीतेहैं। परन्तु आयुका प्रमाण सौवर्षसे अधिक नहीं है। मनुष्यके जीवनकी विकृतिको त्यागकर प्रकृति आदिके बल विशेषसे और आयुके लक्षणोंसे आयुके प्रमाणको जानकर अवस्थाके तीन भेद करनेचाहियें। इसीप्रकार विकृतिको त्यागकर प्रकृत्यादिक भावोंका उत्तम, मध्यम और अधम विभाग करनेसे तीन प्रकारका बलविशेष जानना चाहिये। विकृतिके तीन प्रकारके बलसे दोषोंके बलका तीनप्रकारका अनुमान कियाजाताहै। इसीप्रकार इन सबका विचार करनेके अनन्तर औषधीको तीक्ष्ण मध्यम और मृदु विभागकर बलवान् दोषमें तीक्ष्ण औषधी, मध्यम दोषमें मध्य औषधी और थोडे दोषमें मृदु औषधीका उपयोग करना चाहिये ॥ १४२ ॥

आयुषःप्रमाणज्ञानहेतोःपुनरिन्द्रियेषुजातिसूत्रीयेचलक्षणान्युपदेक्ष्यन्ते ॥ १४३ ॥

आयुका प्रमाण जाननेके लिये, इन्द्रिय स्थानके जातिसूत्रीयाध्यायमें लक्षणोंको कथन करेंगे ॥ १४३ ॥

कालभेद ।

कालःपुनःसंवत्सरश्चातुरावस्थाच । तत्रसंवत्सरोद्विधात्रिधा षोढाद्वादशधाभवश्चातः प्रविभज्यते तत्तत्कार्य्यमभिसमीक्ष्य ॥ १४४ ॥

काल, संवत्सर और आतुरकी अवस्थाको कहतेहैं। इनमें संवत्सर काल अयन विभागसे दो प्रकारका, और सर्दी, गर्मी, वर्षा इन भेदोंसे तीन प्रकारका, ऋतुभेदसे छः प्रकारका, महीनोंके विभागसे बारह भागोंमें विभक्त होताहै । इसके उपरान्त कार्यविभागसे और भी विभागोंमें विभक्त होता जाताहै ॥ १४४ ॥

षड्ऋतुविभाग ।

तत्रखलुतावत्षोढाप्रविभज्यकार्य्यमुपदेक्ष्यते । हेमन्तोग्रीष्मो वर्षाश्चेतिशीतोष्णवर्षलक्षणास्त्रयःऋतवोभवन्ति । तेषामन्तरेष्वितरेसाधारणलक्षणास्त्रयःऋतवःप्रावृट्शरद्वसन्ताइति । प्रावृट्इतिप्रथमःप्रवृष्टेःकालस्तस्यानुबन्धोवर्षाएवमेतेसंशोधनमधिकृत्यषड्विभज्यन्तेऋतवः ॥ १४५ ॥

उस संवत्सर कालके छः विभागकर कार्योंको कथन करतेहैं ।उन छः ऋतुओंमें हेमन्त, ग्रीष्म और वर्षा यह तीन सर्दी, गर्मी और वर्षात इन तीन लक्षणोंवाली तीन ऋतुएँ होती हैं । इनके अन्तरमें प्रावृट्, शरद् और वसन्त यह तीन ऋतुएं साधारण लक्षणोंवाली होती हैं । प्रावृट् ऋतु-ग्रीष्म और वर्षा ऋतुके साधारण लक्षणवाली होती है । शरदऋतु-वर्षा और सर्दीके साधारण लक्षणवाली होतीहै । वसन्तऋतु-सर्दी और गर्मीके लक्षणवाली होतीहै । संशोधन क्रिया करनेके लिये इन छः ऋतुओंके विधानका कथन कियाहै ॥ १४५ ॥

तत्रसाधारणलक्षणेष्वृतुषुवमनादीनांप्रवृत्तिर्विधीयतेनिवृत्तिरितरेषु । साधारणलक्षणाहिमन्दशीतोष्णवर्षत्वात्सुखतमाश्चभवन्त्यविकल्पकाश्चशरीरौषधानामितरेपुनरत्यर्थशीतोष्णवर्षत्वाद्दुःखतमाश्चभवन्तिविकल्पाश्चशरीरौषधानाम् ॥ १४६ ॥

इन छः ऋतुओंमें साधारण लक्षणोंवाली तीन ऋतुओंमें वमनादि संशोधनक्रिया करनी चाहिये। साधारणसे विपरीत तीन ऋतुओंमें वमनादि नहीं करने चाहियें। साधारण लक्षणोंवाली ऋतुयें-अल्प शीतगुणवाली, अल्प गर्मीवाली और अल्प-वर्षागुणवाली होनेसे सुखदायी होती हैं। इन प्रावृट् और शरद् तथा वसन्त ऋतुमें औषधियें सब कार्य सिद्ध करनेवाली होती हैं तथा शरीर भी शोधनके योग्य होते हैं। इनसे विपरीत ऋतुओंमें अधिक:सर्दी, अधिक गर्मी और अधिक वर्षा होनेसे ये ऋतुयें दुःखदायक होती हैं। उस समय शरीरसंशोधन करनेके योग्य नहीं होते और औषधियें अपना यथोचित कार्य नहीं कर सकतीं ॥ १४६ ॥

शीतमें संशोधननिषेध ।

तत्रहेमन्तेह्यतिमात्रशीतोपहतत्वाच्छरीरमसुखोपपन्नंभवति । अतिशीतवाताध्मातमतिदारुणीभूतमवनद्धदोषम् । भेषजं पुनः संशोधनार्थमुष्णस्वभावमन्तेशीतोपहतत्वान्मन्दवीर्य्यत्वमाप्यते । तस्मात्तयोः संयोगेसंशोधनमयोगायोपपद्यते शरीरञ्चवातोपद्रवाय ॥ १४७ ॥

हेमन्त ऋतुमें-शीतके अत्यन्त पडनेसे शरीरको दुःख प्राप्त होता है। शीतल पवनके लगनेसे शरीर अत्यन्त रूक्ष होजाताहै रोम मार्गके संकुचित होजानेसे पसीना नहीं आता और दोष अत्यन्त बन्धा हुआ होता है।उस समय उष्ण स्वभाववाली संशोधन औषधी दी जानेपर शीतसे उपहत होकर मंदवीर्य होजातीहै। इसलिये उस समय शरीर और औषधीका संयोग होनेसे संशोधनका अयोग होजाताहै और शरीरमें वायुके उपद्रव होनेलगजाते हैं ॥ १४७ ॥

ग्रीष्ममें निषेध ।

ग्रीष्मेपुनर्भृशोष्णोपहतत्वाच्छरीरमसुखोपपन्नंभवति । उष्णवातातपाध्मातमतिशिथिलमत्यन्तप्रविलीनदोषंभेषजंपुनःसंशोधनार्थमुष्णस्वभावमेवात्युष्णानुगमनात्तीक्ष्णतरत्वमापद्यते।तस्मात्तयोःसंयोगेसंशोधनमतियोगायोपपद्यतेशरीरमपि पिपासोपद्रवाय ॥ १४८ ॥

ग्रीष्मऋतुमें अत्यन्त गर्मीके पडनेसे शरीर दुःखित होजाताहै । गर्म वायुके लगनेसे शरीर शिथिल होजाता है। दोष सब विलीन होजातेहैं । उस समय संशोधनकारी औषधी उष्णवीर्य होनेसे गर्मीको सहायता पाकर और भी अधिक

तीक्ष्ण होजाती है । उस समय दोषोंके अत्यन्त नर्म होनेसे और औषधका तीक्ष्ण स्वभाव होजानेसे तथा शरीरके मृदु होनेसे संशोधनका अतियोग होजाताहै।शरीरमें भी पिपासा आदि उपद्रव उत्पन्न होजाते हैं ॥ १४८ ॥

वर्षामें निषेध ।

वर्षासुतुमेघजालावततेगूढार्कचन्द्रतारेधाराकुलेवियातिभूमौ पङ्कजलपटलसंवृतायांमत्यर्थोपक्लिन्नशरीरेषुभूतेषुविहतस्वभावेषुचकेवलेष्वौषधग्रामेषुतोयदानुगतमारुतसंसर्गोपहतेषुगुरुप्रवृत्तीनिवमनादीनिभवन्ति । गुरुसमुत्थानानिशरीराणि । तस्माद्वमनादीनांनिवृत्तिर्विधीयतेवर्षान्तेषुऋतुषुनचेदात्ययिकेकर्म ॥ १४९ ॥

वर्षाऋतुमें आकाश मेघजालसे सदैव आच्छादित रहता है, सूर्य, चन्द्रमा, तारागण मेघोंसे ढके रहते हैं । पृथ्वी कीचड और जलसे संवृत होती है, उस समय मनुष्योंके शरीर अत्यन्त आर्द्रतायुक्त होते हैं तथा औषधियोंके स्वभाव विहत होजाते हैं तथा वर्षाके जल और वायुसे उपहत स्वभाव होजाती हैं उससमय वमनादिक कर्मके करनेसे उनकी अधिक प्रवृत्ति होतीहै । इसलिये वर्षाऋतुमें किसी अत्यावश्यकताके विना वमन आदि कर्म नहीं करने चाहिये ॥ १४९ ॥

आत्ययिकेपुनःकर्म्मणिकाममृतुंविकल्प्यकृत्रिमगुणोपधानेन यथर्तुगुणविपरीतेनभैषज्यंसंयोगसंस्कारप्रमाणविकल्पेनोपपाद्यप्रमाणवीर्य्यसमंकृत्वाततःप्रयोजयेदुत्तमेनयत्नेनावहितः१५०

यदि ऐसी ऋतुओंमें शोधन करानेकी किसीप्रकार आवश्यकता पडजाय तो युक्तिपूर्वक उस ऋतुके गुणोंके विपरीत भाव उत्पन्न कर संयोग, संस्कार और प्रमाण विकल्पसे औषध कल्पनाकर सब भावोंको समान बना सावधानीसे औषध प्रयोग करनाचाहिये ॥ १५० ॥

कार्यकालनिर्णय ।

आतुरावस्थास्वपितुकार्य्याकार्य्यंप्रतिकालाकालसंज्ञालभ्यथा अस्यामवस्थायामस्यभेषजस्यकालोऽकालःपुनरस्येति ॥१५१॥

रोगीकी अवस्थामेंभी कार्य, अकार्य, काल और अकालकी संज्ञा जाननी चाहिये जैसे इस अवस्थामें इस औषधका समय है अथवा नहीं है ॥ १५१ ॥

एतदपिभवत्यवस्थाविशेषेणतस्मादातुरावस्थास्वपिहिकाला-
कालसंज्ञा।तस्यपरीक्षामुहुर्मुहुरातुरस्यसर्वावस्थाविशेषावेक्षणं
यथावत्भेषजप्रयोगार्थम्। नह्यातिपतितकालमप्राप्तकालंवाभे-
षजमुपयुज्यमानंयौगिकंभवति।कालोहिभैषज्यप्रयोगपर्य्या-
प्तिमभिनिर्वर्त्तयति ॥ १५२ ॥

इसप्रकार विचारपूर्वक कार्य करना अथवा न करना चाहिये इस प्रकारकी परीक्षा रोगीके अवस्थाविशेषसे होती है। इस लिये रोगीकी अवस्थामें भी समय और असमयकी संज्ञा होती है उसकी परीक्षा वारम्वार रोगीकी सम्पूर्ण अवस्था-विशेषकी अपेक्षा करती है। जैसे औषधप्रयोगके लिये भी अवस्थाविशेष विचार-नेकी आवश्यकता पडती है। जिस समय औषधका काल न हो अर्थात् औषध देनेका समय व्यतीत होचुकाहो और उस औषधीके लिये दूसरा समय कुसमय हो या औषध देनेका समय न आया हो तो औषधका प्रयोग नहीं करना चाहिये। ठीकसमयपर औषधका प्रयोग करनाही उत्तम योग कहाजाता है।काल ही औष-धके योगकी परिपूर्णता करताहै ॥ १५२ ॥

प्रवृत्ति।

प्रवृत्तिस्तुप्रतिकर्म्मसमारंभः।तस्यलक्षणंभिषगातुरौषधपारि-
चारकाणांक्रियासमायोगः ॥ १५३ ॥

प्रवृत्ति प्रत्येक कर्मके समारंभको कहतेहैं। वैद्य, रोगी, औषध और परिचारक इनकी क्रियाका समायोग होना प्रवृत्तिका लक्षण है ॥ १५३ ॥

उपाय।

उपायः पुनर्भिषगादीनांसौष्ठवमभिसन्धानञ्चसम्यक् । त-
स्यलक्षणंभिषगादीनांयथोक्तगुणसंपद्देशकालप्रमाणसात्म्य-
क्रियादिभिश्चसिद्धिकारणैःसम्यगुपपादितस्यौषधस्यावचारण-
मिति । एवमेतेदशपरीक्ष्यविशेषाःपृथक्पृथक्परीक्षितव्याभ-
वन्ति। परीक्षायास्तुखलुप्रयोजनंप्रतिपत्तिज्ञानम् ॥ १५४ ॥

वैद्यादिकोंका चिकित्साके उद्देश्यसे अनुकूल रीतिपर उपस्थित होना उपाय कहाजाताहै। वैद्य आदिक चिकित्साके चारों पादोंका यथोचित गुणसम्पन्न होंकर देश, काल, प्रमाण, सात्म्य और क्रिया सिद्धि आदि कारणोंसे उत्तम रीतिपर

औषधका आचरण करना उपायका लक्षण होताहै । इन दश प्रकारके लक्षणोंकी परीक्षा करनेका प्रयोजन प्रतिपत्तिज्ञान है ॥ १५४ ॥

प्रतिपत्ति ।

प्रतिपत्तिर्नामसयस्तुविकारःयथाप्रतिपत्तव्यस्तस्यतथानुष्ठान-ज्ञानम् ॥ १५५ ॥

जो विकार जिस प्रकार जिस स्थानमें प्राप्त हो उसका उसी प्रकार ठीक समझकर यत्न करनेके लिये प्रवृत्त होना प्रतिपत्ति कहाजाताहै ॥ १५५ ॥

यत्रतुखलुवमनादीनांप्रवृत्तिर्यत्रचानिवृत्तिस्तद्व्यासतः सिद्धि-षूत्तरकालमुपदेक्ष्यते । प्रवृत्तिनिवृत्तिलक्षणसंयोगेतुखलुगुरु-लाघवंसंप्रधार्य्यसम्यगध्यवस्येदन्यतरनिष्ठायाम् । संतिहि व्याधयःशास्त्रेषूत्सर्गापवादैरुपक्रमंप्रतिनिर्दिष्टाः । तस्माद्गुरु-लाघवंसंप्रधार्यसम्यगध्यवस्येदित्युक्तम् ॥ १५६ ॥

जिस जिस स्थानमें वमन विरेचनका प्रयोग करना चाहिये और जिस स्थानमें नहीं करनाचाहिये उन सबका वर्णन सिद्धिस्थानमें करेंगे । वमन विरेचनादिकोंकी प्रवृत्ति (प्रयोग करना) और निवृत्ति (प्रयोग न करने) के लक्षणके विषयमें गुरु और लाघवको विचारकर जिस जगह जिसकी आवश्यकता हो अर्थात् जिस स्थानमें कराने हों और जिसमें न कराने हों या उनमेंसे केवल वमन ही या केवल विरेचन ही कराना हो और उनके करानेमें लाभ है या हानि है उनको भले प्रकार विचार लेना चाहिये । क्योंकि शास्त्रमें व्याधियोंकी सामान्य चिकित्सा और विशेष चिकित्सा इन दोनों प्रकारका वर्णन कियागया है । इसलिये उनके गुरु और लाघवको विचारकर और भले प्रकार निश्चय करके तब उनमें प्रवृत्त होना चाहिये ॥ १५६ ॥

वमनद्रव्य ।

यानितुखलुवमनादिषुभेषजद्रव्याण्युपयोगंगच्छन्तितान्यनु-व्याख्यास्यन्ते । तद्यथा—फलजीमूतकेक्ष्वाकुधामार्गवकुटज-कृतवेधनफलानि । जीमूतकेक्ष्वाकुकुटजकृतवेधन-पत्रपुष्पाणिआरग्वधवृक्षकमदनस्वादुकण्टकपाठापाटलाशार्ङ्ग-ष्टामूर्वासप्तपर्णनक्तमालपिचुमर्दपटोलसुषवीगुडूचीसोमव-

त्वक्चित्रकदलीपिशिग्रुमूलकषायैश्च । मधुमधूकको विदारककुंदारनीपनिचुलबिम्बीशणपुष्पीसदापुष्पीप्रत्यक्पुष्पीकषायैश्चै-लाहरेणुप्रियङ्गुपृथ्वीकाकुस्तुम्बुरुतगरनलदह्रीबेरतालीशोशीरकषायैश्चाइक्षुकाण्डेक्ष्विक्षुवालिकादर्भपोटगलकालङ्कृतकषायैश्च । सुमनाःसौमनसायिनीहरिद्रादारुहरिद्रावृश्चीरपुनर्नवामहासहाक्षुद्रसहाकषायैश्चाशाल्मलिशाल्मकभद्रपर्ण्येलापर्ण्युपोदिकोद्दालकधन्वनराजादनोपचित्रागोपीशृङ्गाटिकाकपिकच्छुकषायैश्च । पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकशृङ्गवेरसर्षपफाणितक्षीरक्षारलवणोदकैश्चयथोपलाभंयथेष्टंवाप्युपसंस्कृत्यवर्तिक्रियाचूर्णावलेहस्नेहकषायमांसरसयवागूयूषकाम्बलिकक्षीरोपधेयान्मोदकानन्यांश्चयोगान्विविधाननुविधाययथार्हंवमनार्हायदद्याद्विधिवद्वमनमितिकल्पसंग्रहोवमनद्रव्याणांकल्पस्त्वेषांविस्तरेणोत्तरकालमुपदेक्ष्यते ॥ १५७ ॥

जो औषध द्रव्य वमन आदिकोंमें उपयोग किये जाते हैं उनका वर्णन करते हैं। जैसे मैनफल, देवदाली, कडवीघीआ, कडवी तोरी, इन्द्रयव, काण्डिका, कृतवेघन-तोरी इनके फल वमनकारक होतेहैं। देवदालीके पत्र, फूल। कडवी घीआके पत्र फूल। कुडाके पत्र, फूल। कडवी तोरीके पत्र, फूल वमनकारक होते हैं। अमल-तास, कुडाकी छाल, मैनफल, स्वादुकण्टक, पाठा, पाढ, घुंघुची (रक्तक) मुरवा, सप्तपर्ण, करंज, नीम, पटोलपत्र, सुखवि, गिलोय इनके क्वाथ, सोमनलकल, चित्रक, एरंड, सतावर, सहांजनेकी जड, मुलैठी, महुआ, कचनार, सफेद कचनार, कदंब, निचूल, तंदूरी, शणपुष्पी, आक, अपामार्ग इन सबके क्वाथ वमनके उपयोगमें आते हैं। बडी इलायची, रेणुका, प्रियगु, छोटी इलायची, कुतुम्बरी, जटामांसी, नेत्रवाला, तालीसपत्र और खस इनके क्वाथ भी वमनके उपयोगमें आते हैं। ईख, तालमखाना, रामसर, कुशा, कास, कसौंदी इन सबका रस और क्वाथ वमनमें उपयोग किया जाता है। जायफल, जावित्री, हल्दी, दारु-हल्दी. दोनों पुनर्नवा, माषपर्णी, मुग्घपर्णी, इनका क्वाथ वमनमें उपयोग किये जाते हैं। सेमल, रोहितृण, प्रसारणी, रासना, उद्दालक, धान्य, ढामणवृक्ष, खिरनी, मूसाकर्णी, सारिवा, अतीस, कौंच इनका कल्क अथवा क्वाथ वमनमें उपयोग

कियाजाताहै। पिप्पली, पीपलामूल, चव्य, चित्रक, अदरख, सर्सों, फाणित, दूध, क्षार और लवणयुक्त जल इनमेंसे जिस समय जो मिलसके और जिसप्रकार प्रयोग करनेसे हितकर होसके उस प्रकार इनका उपयोग करे। इनमें कोई वर्त्ति बनाकर उपयोग करनेमें काम आतेहैं । कोई चूर्ण, कोई अवलेह, कोई स्नेह, कोई क्काथ, कोई मांस रसमें, कोई यवागूमें, कोई यूषमें, कांबलिक, तथा क्षीरके संयोगसे काममें आतेहैं। कोई सूंघनेके पदार्थमें, कोई मोदकमें, कोई अन्य उपयोगी द्रव्यके संयोगसे वमनसंबंधी कार्योंमें प्रयोग की जाती हैं । इनमेंसे जो औषधी जिस समय जिसप्रकार जिस वमन योग्य मनुष्यको देना हो उसको विधिपूर्वक प्रयोग करे । यह वमनोपयोगी द्रव्योंका कल्प संग्रह कियागया है इसको विस्तार पूर्वक कल्पस्थानमें कथन करेंगे ॥ १५७ ॥

विरेचनके द्रव्य ।

विरेचनद्रव्याणितुश्यामात्रिवृच्चतुरंगुलतिल्वकमहावृक्षसप्तलाशंखिनीदन्तीद्रवन्तीनांक्षीरमूलत्वक्पत्रपुष्पफलानियथायोगमेतैश्चैवक्षीरमूलत्वक्पत्रफलपुष्पफलैर्विकल्पाविकल्पैरगन्धाश्वगन्धाजशृङ्गीक्षीरिणीनीलिनीक्लीतककषायैश्चप्रकीर्य्योदकीर्य्यामसूराविदलाकम्पिल्लकविडङ्गगवाक्षीकषायैश्चपीलुप्रियालमृद्वीकाकाश्मर्य्यपरूषकबदरदाडिमामलकहरीतकीविभीतकवृश्चीरपुनर्नवाविदारिगन्धादिकषायैश्चशीधुसुरासौवीरकतुषोदकमैरेयमेदकमदिरामधुमधूलकधान्याम्लकुवलबदरखर्जूरकर्कन्धुभिश्चदधिदधिमण्डोदश्विद्भिश्चगोमाहिष्यजावीनाञ्चक्षीरमूत्रैर्यथोपलाभंयथेष्टंवाप्युपसंस्कृत्यवर्त्तिक्रियाचूर्णावलेहस्नेहकषायमांसरसयूषकाम्बलिकयवागूक्षीरोपधेयान्मोदकानन्यांश्चभक्ष्यविकारान्विविधांश्चयोगानभिविधाययथार्हंविरेचनार्हायदद्याद्विरेचनमितिकल्पसंग्रहोविरेचनद्रव्याणां कल्पस्त्वेषांविस्तरेणोपदेक्ष्यतेउत्तरकालम् ॥ १५८ ॥

अब विरेचनोपयोगी औषधद्रव्योंको कथन करते हैं । जैसे—श्यामा, निशोथ, अमलतास, लोध्र, थोहर, सातला, शंखिनी, दंती, द्रवंती, इनके दूध, जड, छाल, पत्र, पुष्प, फल, जैसे जिस स्थानमें उचित हों विरेचनके लिये उपयोग किये जातेहैं । तथा—अजवायन, असगंध, मेढासिंगी, दूधली, नीलनी, मुलहठी, इनके

काथ विरेचनोपयोगी होतेहैं। पूतीकरंज, करंज, मसूर, अनारका छिलका, कमीला, विडंग, इन्द्रायन इनके क्वाथ विरेचनोंके योग्य होते हैं। पीलू, चिरोंजी, किसमिस, कंभारी, फालसा, बेर, अनार, आम्ले, हरड, बहेडा, दोनों पुनर्नवा, विदारीगंधा, इनके कषाय विरेचनोंके योग्य होते हैं। सीधू, सुरा, सौवीरक, तुषोदक, मैरेय, मेदक, मदिरा, मधु, मधूलक, धान्याम्ल, पेवंदी बेर, छोटाबेर खजूर, जंगलीबेर, दही, दधि-मण्ड, घोल यह सब विरेचनके उपयोगी होते हैं। गौ, भैंस, बकरी और भेडका दूध तथा मूत्र विरेचनोपयोगी होता है। इनमेंसे जिस समय जो मिल सके और जिसप्रकार जिस स्थानमें जैसे उपयोग करना उचित हो उस प्रकार इनको बत्ती बनाकर अथवा चूर्ण या अवलेह, स्नेह, क्वाथ, मांसरस, यूष, तांबलिक, यवागू, दूध, नस्य, मोदक आदिमें तथा अन्य द्रव्यके उपयोगसे जैसे उपयोग करना उचित हो उसप्रकार योग बनाकर उचित रीतिसे विरेचन योग्य मनुष्यको देवे। यह विरेचनद्रव्योंके कल्पका संग्रह कथन कियागया और विस्तारपूर्वक इनका वर्णन कल्पस्थानमें करेंगे ॥ १९८ ॥

आस्थापनका वर्णन।

आस्थापनेषुतुभूयिष्ठकल्पानिस्युर्द्रव्याणिनामतोविस्तरेणोपदि-श्यमानान्यपरिसंख्येयानिस्युरतिबहुत्वात्। इष्टश्चानातिसंक्षेप-विस्तरोपदेशस्तन्त्रेइष्टश्चकेवलंज्ञानंतस्माद्रसतएवतान्यनुव्या-ख्यास्यन्ते ॥ १५९ ॥

आस्थापन द्रव्योंके अनेक नाम होतेहैं।उन संपूर्ण द्रव्य नामको विस्तारसे वर्णन करें तो वह बहुत होनेसे असंख्य होजातेहैं। और शास्त्रमें अत्यन्त विस्तारसे और अतिसंक्षेपसे कथन करना इष्ट नहीं है केवल उन संपूर्ण द्रव्योंका ज्ञान होना इष्ट है। इसलिये उनके ज्ञानको रसके अनुसार वर्णन करतेहैं ॥ १९९ ॥

रसानुसार आस्थापन।

रससंसर्गविकल्पविस्तारोह्येषामपरिसंख्येयःसमवेतानांरसाना-मंशांशबलविकल्पातिबहुत्वात्तस्माद्द्रव्याणाञ्चैकदेशमुदाहरणा-र्थंरसेष्वनुविभज्यरसैकैकदेशेनचनामलक्षणार्थञ्चषडास्थापन-स्कन्धारसतोऽनुविभज्यव्याख्यास्यन्ते। यत्तुषड्विधमास्था-पनमाचक्षतेभिषजस्तद्दुर्लभतरंसंसृष्टरसभूयिष्ठत्वाद्द्रव्याणाम्। तस्मान्मधुराणिमधुरप्रायाणिमधुरप्रभावाणिमधुरप्रभवप्रा-

याण्यपिचमधुरस्कन्धेमधुराण्येवकृत्वोपदेक्ष्यन्तेतथेतराणिद्र-
व्याण्यपि ॥

रसोंके संसर्ग और विकल्पसे अलग अलग वर्णन करें तो रस असंख्य होजा-
तेहैं क्योंकि मिलेहुए रसोंके अंशांश बल और विकल्प बहुत होतेहैं।इसलिये एक-
देशी उदाहरणके लिये संपूर्ण द्रव्योंको छः रसोंमें विभागकर रसके एक २ देशसे
नाम और लक्षणोंको वर्णन करनेके लिये रसके छः आस्थापनस्कन्धोंको विभागपू-
र्वक वर्णन करतेहैं । जो छः प्रकारका आस्थापन कथन कियाहै । वैद्यलोग उसको
यथोचित रीतिपर नहीं जान सकते क्योंकि बहुतसे द्रव्य ऐसे हैं जिनमें कई एक
रसोंका संसर्ग पायाजाताहै। इसलिये मधुर और मधुरप्रायः तथा मधुरप्रभाव एवम्
मधुरप्रभावप्रायः द्रव्य मधुर मान करके मधुर स्कंधमें कथन कियेजातेहैं । उसी
प्रकार और द्रव्योंको भी जानना ॥

मधुरस्कन्ध ।

तद्यथा-जीवकर्षभकौ जीवन्तीवीरातामलकीकाकोलीक्षीरकाको-
लीमुद्गपर्णीमाषपर्णीशालपर्णीपृश्निपर्ण्यसनपर्णीमेदामहामेदाक-
र्कटशृङ्गीशृङ्गाटिकाछिन्नरुहाच्छत्रातिच्छत्राश्रावणीमहाश्रावणी
अलम्बुषासहदेवाविश्वदेवाशुक्लाक्षीरशुक्लाबलातिबलाविदारी
क्षीरविदारी क्षुद्रसहामहासहाऋष्यगन्धाश्वगन्धापयस्या
वृश्चीरपुनर्नवाबृहतीकण्टकारिकैरण्डमोरटश्वदंष्ट्रासंहर्षाशता-
वरीशतपुष्पामधूकपुष्पीयष्टिमधुमधूलिकामृद्वीकाखर्जूरपरूष-
कात्मगुप्तापुष्करबीजकशेरुकाराजकशेरुकाकालङ्कतकाश्म-
र्य्यशीतपाकयोदनपाकीतालखर्जूरमस्तकेक्षिक्षुवालिकादर्भ-
कुशकाशशालिगुन्द्रोत्कटकशरमूलराजक्षवकर्ष्यप्रोक्ताद्वारदा
भारद्वाजीवनत्रपुष्यभीरुपत्रीहंसपदीकाकनासाकुलिंगाक्षी
क्षीरवल्लीकपोतवल्लीगोपवल्लीमधुवल्लीसोमवल्लीति । ए-
षामेवंविधानामन्येषाञ्चमधुरवर्गपरिसंख्यातानामौषधद्रव्या-
णांछेद्यानिखण्डशश्छेदयित्वाभेद्यानिचाणुशोभेदयित्वाप्रक्षा-
ल्यपानीयेनसुप्रक्षालितायांस्थाल्यांसमवाप्यपयसाअर्द्धोदके-

नाभ्यासिच्यसाधयेद्दर्व्यासततमुपघट्टयन्तदुपयुक्तंभूयिष्ठेऽम्भ-सिगतरसेष्वौषधेषु पर्यासिचानुपदग्धेस्थालीमुपहृत्यपरिस्रु-तंपूतंपयःसुखोष्णंघृततैलवसामज्जालवणफाणितोपहितंब-स्तिवातविकारिणेविधिज्ञो विधिवद्दद्यात्। शीतन्तुमधुसर्पि-र्भ्यामुपसंसृज्यपित्तविकारिणे दद्यादितिमधुरस्कन्धः ॥ १६० ॥

अब मधुर स्कन्धका वर्णन करतेहैं। जैसे जीवक, ऋषभक, जीवन्ती, शतावर, भूईआमला, काकोली, क्षीरकाकोली, माषपर्णी, मुद्गपर्णी, शालिपर्णी, पृष्णपर्णी, सणपर्णी, मेदा, महामेदा; काकडासिंगी, सिंघाडा, गिलोय, धनियां, बडीधानियां, मुण्डी, महामुण्डी, सहदेवी, विश्वदेवा, मिश्री, खरहटी, अतिबला, विदारीकंद, वाराहीकंद, क्षुद्रसहा, महासहा विधायरा, दोनों प्रकारकी पुनर्नवा, अश्वगंधा, दोनों कटेली, लाल और सफेद एरंड, गोखरू, वंदा, शतावरी, सौंफ, सोय, मुलहठी, गेहूं, किसमिस, छोहारा, फालसा, कौंचके बीज, कमलगट्टे, कसेरू, राजकसेरू, कालं-कत, काश्मरीफल, शीतपाकी, नीले रंगकी कटसरैया, तालखजूर, खजूर, ईख, इक्षुबालिका, दर्भ, कुशा, कांस, शालिचावल, गुंद्रपेटर, सर्पता; सरमूल, सरसों गंगे-रन, पालक, वनकपास; खीरा, महाशतावरी, हंसपदी, काकजंघा, कुलिंगा, क्षीरवि-दारी, कपोतबल्ली, सारिवा, मधुवल्ली, सोमलता और भी अन्यान्य मधुवर्गमें कहेहुए द्रव्योंको लेकर पहिले शुद्धजलसे धो डाले फिर टुकडे करके बारीक कूट दूधमें मिलाकर किसी पात्रमें डाल अग्निपर पकावे तथा मंदमंद आंचसे पकाताजावे। जब देखे कि औषधियोंका रस दूधमें आगया है तो उस दूधको उतारकर सुखोष्ण होनेपर उस दूधमें घी, तेल, चर्बी, मज्जा, लवण, फाणित इनमेंसे सब अथवा जो उचित हो वह मिलाकर वस्तिकर्मको जाननेवाला वैद्य वात विकारवाले मनुष्यको वस्तिकर्म करे। यदि पित्तविकारवालेको बस्तिकर्म करना हो तो शीतल होनेपर शहद और घृत मिलाकर वस्तिकर्म करे। वस्तिकर्मके लिये उपरोक्त संपूर्ण द्रव्योंको एकही समय एकत्रित करनेकी आवश्यकता नहीं उनमेंसे जिस समय जिसको वैद्य जिसप्र-कार उपयोग करना चाहे वैसे–उचित रीतिपर करे। इतिमधुरस्कन्धः ॥ १६० ॥

अम्लस्कन्ध।

आम्राम्रातकलकुचकरमर्दवृक्षाम्लाम्लवेतसकुवलबदरदाडि-मसातुलुङ्गकण्डीरामलकनन्दीतकलालतिकाशीतदन्तशवैरा-वतककोषाम्रधन्वनानां फलानि पत्राणिचाश्मन्तकचाङ्गे-

रीणांचतुर्विधानांचाम्लिकानांद्वयोःकोलयोर्द्वयोश्चामशुष्कयो-र्द्वयोश्चशुष्काम्लिकयोर्ग्राम्यारण्ययोश्चासवद्रव्याणिचसुरासौ-वीरतुषोदकमैरेयमेदकमदिरामधुशीधुशुक्तिदधिदधिमण्डो-दश्विद्धान्याम्लादीन्येषामेवंविधानाञ्चान्येषाञ्चाम्लवर्गपरिसं-ख्यातानामौषधद्रव्याणांछेद्यानिखण्डशश्छेदयित्वाभेद्यानिचा-णुशोभेदयित्वाद्रवैःस्थितान्यवसिच्यसाधयित्वोपसंस्कृत्यय-थावत्तैलवसामधुमज्जालवणफाणितोपहितंसुखोष्णंवस्तिंवात-विकारिणेविधिवद्दद्यादित्यम्लस्कन्धः ॥१६१ ॥

अब अम्लस्कंधका कथन करते हैं जैसे–आम, आंवाडा, वडहर, करौंदा, अम्ल-वेत, अम्लवेद, दोनों प्रकारके बेर, अनार, बिजौरा, कण्डीर, आमले, नन्दीतक, इमली, शीतक, जंभीरी नींबू, संतरा, कोशाम, धन्वन इनके फल और पत्र तथा असमंतक, चांगेरी, चार प्रकारके अमली, दो प्रकारके जामुन, तथा सूखीहुई अमली एवम् ग्रामके और जंगलके सब आसव द्रव्य, सुरा, सौवीर, तुषोदक, मैरेय, मेदक, मदिरा, मधु, सीधू, सुक्तिमधू, दही, दहीका मंड, दहीका तोड, कांजी अथवा अन्य अम्लव-र्गमें कहेहुए द्रव्योंके टुकडेकर कूटकर, साफजलसे धो, किसी उचित पतले पदार्थमें सिद्ध कर छान लेवे । फिर उसमें तेल, वसा, शहद, मज्जा और फाणित मिलाकर वातवाले मनुष्यके विधिपूर्वक आस्थापन वस्ति करे । इति अम्लस्कन्धः ॥१६१॥

लवण स्कन्ध ।

सैन्धवसौवर्च्चलकालाविडपाक्यानूपकूप्यबालकैलमूलकसामुद्र-रोमकोद्भिदौषरपाटेयकपांशजानीतिएवंप्रकाराणिचान्यानि लवणवर्गपरिसंख्यातानिएतानिअम्लोपहितानिउष्णोदकोप-हितानिवास्नेहवन्तिसुखोष्णंबस्तिवातविकारिणेविधिज्ञोविधि-वद्दद्यादितिलवणस्कन्धः ॥ १६२ ॥

अब लवणस्कन्धको कहते हैं । जैसे-सेंधानमक, संचरनमक, कालनमक, बिडनमक, तथा पाक्य, आनूप, कूप्य, बालक, एलमूलक, सामुद्र, रोमक, उद्भिद, औषर, पाटेयक, पांसुज यह सब प्रकारके लवण तथा अन्य लवणवर्गोक्त द्रव्य, कांजी अथवा गर्मजलमें मिलाकर घृत, तैलादि चिकनाईके संयोगसे सुखोष्ण

बस्तिकी विधिको जाननेवाला वैद्य विधिपूर्वक वातविकारी मनुष्यको देनी चाहिये॥ इति लवणस्कन्धः ॥ १६२ ॥

कटुकस्कन्ध ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलहस्तिपिप्पलीचव्याचेत्रकशृङ्गवेरमरिचाज-
मोदार्द्रकविडङ्गकुस्तुम्बुरुपीलुतेजोवत्येलाकुष्ठभल्लातकास्थि-
हिंगुकिलिममूलकसर्षप--लशुन-करञ्जशिग्रुकमधुराशिग्रुक-
खरपुष्पाभूस्तृणसुमखसुरस-कुठेरक--काण्डीरकालमालक-
पर्णासक्षवकफणिज्जकक्षारमूत्रपित्तानामेषामेवंविधानाञ्चा-
न्येषांकटुकवर्गपरिसंख्यातानामौषधद्रव्याणांछेद्यानिखण्डश-
श्छेदयित्वाभेद्यानिचाणुशोभेदयित्वागोमूत्रेणसहसाधयित्वो-
पसंस्कृत्ययथावन्मधुतैललवणोपहितंसुखोष्णंबस्तिंश्लेष्मवि-
कारिणेविधिज्ञोविधिवद्दद्यात्, इतिकटुकस्कन्धः ॥ १६३ ॥

अब कटुस्कन्धको कहते हैं पीपल, पिपलामूल, गजपीपल, चव्य, चित्ता, सोंठ, मिर्च, अजमोद, वायविडंग, नैपालीधनियां, अखरोट, तेजबल, इलायची, कूठ, भेलावेकी गुठली, हींग, देवदार, मूली, सरसों, लहसुन, करंज, सोहांजना, मीठा सोहांजना, वनतुलसी, गन्धतृण, सुमुखतुलसी, सुरस, कुठेरक, काण्डीर, कालमालक, पर्णास, क्षवक यह सब तुलसीकी जातियें, और मरुआ, क्षार, मूत्र, पित्त एवम् अन्य कटुवर्गमें कहे द्रव्य लेकर छोटे २ टुकडेकर शुद्धजलसे धो बारीक करलेवे । फिर गोमूत्रमें पकाकर शुद्धवस्त्रद्वारा छान लेवे । सुखोष्ण रहनेपर मधु,तेल और लवण मिलाकर कफविकारी मनुष्यके आस्थापन बस्ति करे । इति कटु (चरपरा) स्कन्धः ॥ १६३ ॥

तिक्तस्कन्ध ।

चन्दननलदकृतमालनक्तमालनिम्बतुम्बुरुकुटजहारिद्रादारु-
हरिद्रामुस्तमूर्वाकिराततिक्तककटुरोहिणीत्रायमाणाकरवीरके-
बुककरटिल्लकवृषमण्डूकपर्णीकर्कोटकवार्त्ताकुकर्कशकाकमाची-
कारवेल्लकाकोदुम्बरीकासुषव्यातिविषापटोलकुणकपाठागुडूची-
वेत्राग्रवेतसविकंकतबकुलसोमवल्कसप्तपर्णसुमनोऽर्कावल्गुज-
वचातगरागुरुबालकोशीराणाम् ॥ एषामेवंविधानाञ्चान्येषां

तिक्तवर्गपरिसंख्यातानामौषधद्रव्याणांछेद्यानिखण्डशश्छेद-
यित्वाभेद्यानिचाणुशोभेदयित्वाप्रक्षाल्यपानीयेनाभ्यासिच्य
साधयित्वोपसंस्कृत्ययथावन्मधुतैललवणोपहितंसुखोष्णंबस्तिं
श्लेष्मविकारिणेविधिज्ञोविधिवद्दद्यात्। शीतन्तुमधुसर्पिभ्यों-
मुपसंस्कृत्यपित्तविकारिणेदद्यादितितिक्तस्कन्धः ॥ १६४॥

अब तिक्तस्कंधंको कहतेहैं चंदन, खस, अमलतास, करंजुवा, नीम, नैपाली धनियां, कुडा, हल्दी, दारुहल्दी, नागरमोथे, मुर्वा, चिरायता, कुटकी, त्रायमाण, कनेर, केवुक, करैला, अडूसा, मण्डूकपर्णी, ककोडा, बैंगन, कमीला, मकोह, छोटा करैला, कडूमर, कालाजीरा, अतीस, पटोलपत्र, परवल, पाढ, गिलोय, वेवकी कोषल, वेतस मजनू, विकंकत, मौलसरी, सफेदकत्था, सतवन, धतूरा, आक, बावची, वच, तगर, अगर, नेत्रवाला और खस तथा तिक्तवर्गमें कहेहुए सब द्रव्योंको जलसे धोकर तथा कूटछानकर जलमें पकावे। फिर छानकर जब सुखोष्ण रहे तो सेंधानमक और शहद मिलाकर कफरोगीको आस्थापन वस्ति करना चाहिये यदि पित्तरोगीको आस्थापनवस्ति करना हो तो शीतल होनेपर शहद और घृत मिला आस्थापनवस्ति करे ॥ इतितिक्तस्कंधः ॥ १६४ ॥

कषायस्कन्ध ।

प्रियङ्ग्वनन्ताम्रास्थ्यम्बष्ठकीकट्वङ्गलोध्रमोचरससमङ्गाधात-
कीपुष्पपद्मापद्मकेशरजम्ब्वाम्रप्लक्षवटकपीतनोदुम्बराश्वत्थभ-
ल्लातकाश्मन्तकाशिरीषाशिंशपासोमवल्कातिन्दुकपियालबदर-
खदिरसप्तपर्णाश्वकर्णस्यन्दनार्जुनासनारिमेदैलवालुकपरिपे-
लवकदम्बशल्लकीजिङ्गिनीकाशकशेरुकाराजकशेरुकाकट्फलवं-
शपद्मकाशोकशालधवसर्जभूर्जशणपुष्पीशमीमाचीकवरकतु-
ङ्गाजकर्णाश्वकर्णस्फुर्जकबिभीतककुम्भीकपुष्करबीजाबिसमृ-
णाल-तालखर्जूरतरुणीनामेषामेवंविधानाञ्चान्येषांकषायवर्ग-
परिसंख्यातानामौषधद्रव्याणांछेद्यानिखण्डशश्छेदयित्वाभेद्या-
निचाणुशोभेदयित्वाप्रक्षाल्यपानीयेनसहसाधयित्वोपसंस्कृत्य
यथावन्मधुतैललवणोपहितंसुखोष्णंबस्तिंश्लेष्मविकारिणेद-

द्यादिति । शीतन्तुमधुसर्पिर्भ्यामुपसंस्कृत्यपित्तविकारेष्वेदद्या-
दितिकषायस्कन्धः ॥ १६५ ॥

अब कषायस्कंधको कथन करते हैं प्रियंगु, शारिवा, आमकी गुठली, बाट्ला, खाटमढंगा, लोध्र, मोचरस, मंजीठ, धावेके फूल, कमलकी केशर, भारङ्गी, जामुन, आमकी छाल, पाखर, कपीतन, गूलर, पीपल, भेलावेकी वृक्षकी छाल, अश्मंतक, सिरस, सीसम, सफेदकत्था, तेंदु, चिरौंजी और वेर इन सब वृक्षोंकी छाल इसीप्रकार खदिर, सतवन, तिनस, स्यंदन, अर्जुन, विजयसार, अरिमेद, एलवालु, केवटीमोथा, कदंब, शल्लकी, जींगन, कांस; कसेरू, राजकसेरू, कायफल, वांस, पझाख, अशोक, शाल, धावी, भोजपत्र, खपुष्प, जण्डीवृक्ष, माचिका, उन्नाव, अजकर्ण, अश्वकर्ण, स्फूरजक, वहेडा, कुम्भीक, कमलगट्टे, बिस (कमलकी जड), मृणाल, तालखजूर, ढिकवार, इन सबको अथवा अन्य कषायवर्गमें कहेहुए औषधद्रव्योंको कूट छान-कर पानीसे धोकर पानीमें थोडासा पकाकर और वस्त्रसे छानकर इसमें शहद और घृत मिला पित्तज रोगीको आस्थापनवास्ति देवे । इति कषायस्कन्धः ॥ १६५ ॥

तत्र श्लोकाः ।

षड्वर्गाःपरिसंख्यातायएतेरसभेदतः।आस्थापनमभिप्रेत्यता-
न्विद्यात्सार्वयौगिकान् ॥ १६६ ॥ ॥ सर्वतोहिप्रणिहिताः
सर्वरोगेषुजानता । सर्वान्रोगान्नियच्छन्तियेभ्यआस्थापनं
हितम् ॥ १६७ ॥

यहां पर श्लोक हैं रस भेदसे जो उपरोक्त छः वर्गोंका कथन कियाहै यह आस्थापनवस्तिकर्ममें सब प्रकार हितकारी होतेहैं । यदि आस्थापनवस्तिके क्रमको जाननेवाला वैद्य जिनके लिये आस्थापनवस्ति हितकारी हो इन सार्वयोगिक द्रव्यों-द्वारा वस्तिकर्म करनेसे रोगियोंके सम्पूर्ण रोगोंको नाश करदेताहै ॥१६६॥१६७॥

येषांयेषांप्रशान्त्यर्थंयेयेनपरिकीर्त्तिताः ।
द्रव्यवर्गाविकाराणांतेषांतेपरिकोपकाः ॥ १६८ ॥

परन्तु यह ध्यान रखना चाहिये कि जो द्रव्य जिस २ विकारको शान्त नहीं करता उसके द्वारा आस्थापन करना विकारोंको उलटा कुपित करताहै । जैसे वातप्रधान मनुष्यको रूक्ष पदार्थों द्वारा वस्तिकर्म करना हानिकारक होताहै । और कफप्रधान मनुष्यको रूक्ष पदार्थो द्वारा वस्तिकर्म हितकर होताहै ॥ १६८ ॥

इत्येतेषडास्थापनस्कन्धारसतोऽनुविभज्यव्याख्याताः । ते-भ्योभिषग्बुद्धिमान्परिसंख्यातमपियद्द्रव्यमयौगिकंमन्येततद-पकर्षयेत् । यद्यच्चानुक्तमपियौगिकंवामन्येततद्दद्यात् । वर्गम-पिवर्गेणउपसंसृजेदेकमेकेनअनेकेनवायुक्तिंप्रमाणीकृत्य । प्र-चरणमिवभिक्षुकस्यबीजमिवकर्षकस्यसूत्रंबुद्धिमतामल्पमपि अनल्पज्ञानायभवति ॥ १६९ ॥

इस प्रकार रसभेदसे छः प्रकारके आस्थापनके स्कंधोंको कथन कियाहै । इन ऊपर कहेहुए छः प्रकारके स्कंधोंमें जो द्रव्य कथन किये भी हों परन्तु आस्थापन-योगमें हानिकारक समझें उनको बुद्धिमान् वैद्य निकालडाले और जो कथन नहीं भी कियेगये उनको यदि उचित समझे तो प्रयोग करे।बुद्धिपूर्वक विचार एकवर्गके द्रव्योंको यदि उचित समझे तो उनमेंसे एक अथवा अनेक द्रव्य दूसरे द्रव्यमें भी मिला सकताहै । जैसे भिक्षा मांगनेवालेको एक मुष्टि चावलोंकी और वगीचेके मालीको एक वीज भी उसके काममें वडा भारी लाभदायक होताहै उसी प्रकार युक्ति और प्रमाणके आश्रित बुद्धिमान् वैद्यको वैद्यकका एक छोटासा सूत्र भी वडे ज्ञानको करनेवाला होता है ॥ १६९ ॥

तस्माद्बुद्धिमतामूहापोहवितर्कोमन्दबुद्धेस्तुयथोक्तानुगमनमेव श्रेयः॥ १७० ॥

इसलिये बुद्धिमान् वैद्यको विचारपूर्वक द्रव्य ग्रहण करना चाहिये । और मूर्ख वैद्य जितनी वातें सीखी हुई हैं उसके सिवाय अन्य किसी पदार्थसे कुछ लाभ नहीं उठा सकता॥ १७० ॥

यथोक्तंहिमार्गमनुगच्छन्भिषक्संसाधयतिवाकार्य्यमनातिमह-त्त्वादनतिह्रस्वत्वादुदाहरणस्येति ॥ १७१ ॥

जिस प्रकार यहांपर कथन कियाहै यह न बहुत विस्तारसे है और न अधिक संक्षेपसे कथन किया गयाहै।इसको उदाहरणमात्र जानकर बुद्धिमान् वैद्य कार्यको सिद्ध करसकताहै ॥ १७१ ॥

अनुवासन द्रव्य ।

अतः परमनुवासनद्रव्याणिअनुव्याख्यास्यन्ते । अनुवासनन्तु स्नेहएव । स्नेहस्तुद्विविधः । स्थावरोजङ्गमात्मकश्चतत्रस्थाव-

रात्मकःस्नेहःतैलमतलश्च । तत्रतैलमेवकृत्वोपदिश्यतेसर्वत-
स्तैलप्राधान्यात् । जङ्गमात्मकस्तुवसामज्जासर्पिरिति ॥ १७२ ॥

अब अनुवासन द्रव्योंका वर्णन करतेहैं । अनुवासन स्नेह द्रव्य ही होताहै । वह स्नेह दो प्रकारका है । १ स्थावर । २ जंगम । स्थावर स्नेहोंसे तिलोंका तेल अन्य सरसों आदि स्थावर द्रव्योंके तेल ग्रहण किये जातेहैं । सम्पूर्ण स्थावर स्नेहोंमें तिलोंका तेल प्रधान होनेसे सबको तैल ही कहाजाताहै । वसा, मज्जा और घृतको जंगमस्नेह कहतेहैं ॥ १७२ ॥

तेषांतैलवसामज्जासर्पिषांतुयथापूर्वंश्रेष्ठम् । वातश्लेष्मविका-
रेषुअनुवासनीयेषुयथोत्तरंपित्तविकारेषुसर्वएववासर्वेषुयोगमा-
यान्तिसंस्कारविधिविशेषादिति ॥ १७३ ॥

वात और कफके विकारोंमें अनुवासन करनेके लिये-तैल, वसा, मज्जा और घृत इन चतुर्विध स्नेहोंमें क्रमपूर्वक परकी अपेक्षा पूर्ववाला श्रेष्ठ माना जाता है । जैसे वात और कफके विकारोंमें घृतकी अपेक्षा मज्जा मज्जाकी अपेक्षा वसा और वसाकी अपेक्षा तैल श्रेष्ठ होता है एवम् पित्तके विकारोंमें-तैलसे वसा, वसासे मज्जा मज्जासे घृत अनुवासन कर्म करनेके लिये श्रेष्ठ माना जाताहै ।अथवा संस्कार विधि विशेषसे सब दोषोंके विकारोंमें सब प्रकार स्नेह हितकारक होतेहैं। जैसे-वातनाशक द्रव्योंद्वारा सिद्ध किये वातविकारमें तथा पित्तकारक द्रव्योंद्वारा सिद्ध किये पित्त-विकारोंमें एवम् कफनाशक द्रव्योंद्वारा सिद्ध किये कफविकारमें सब प्रकारसे हित-कर होते हैं ॥१७३ ॥

शिरोविरेचनद्रव्य ।

शिरोविरेचनद्रव्याणिपुनःअपामार्गपिप्पलीमरिचविडङ्गशिग्रु-
शिरीष-कुस्तुम्बुरु-बिल्वाजाज्यजमोदावार्ताकीपृथ्वीकैलाह-
रेणुफलानिच । सुमुखसुरसकुठेरकगण्डीरककालमालकपर्णा-
सक्षवकफणिज्जकहरिद्राशृङ्गवेरमूलकलशुनतर्कारीसर्षपपत्रा-
णिच । अर्कालर्ककुष्ठनागदन्तीवचाभार्गीश्वेताज्योतिष्मतीग-
वाक्षीगण्डीरावाक्पुष्पीवृश्चिकालीवयस्थातिविषामूलानिच ।
हरिद्राशृङ्गवेरमूलकलशुनकन्दाश्चलोध्रमदनसप्तपर्णनिम्बार्क-

पुष्पाणिच। देवदार्वगुरुसरलशल्लकीजिङ्गिन्यसनहिंगुनिर्य्या-साश्चतेजोवराङ्गेङ्गुदीशोभाञ्जनबृहतीकण्टकारिकात्वागीति। शिरोविरेचनंसप्तविधंफलपत्रमूलकन्दपुष्पनिर्य्यासत्वगाश्रय-भेदात्॥ १७४॥

अब शिरोविरेचन द्रव्योंको कथन करते हैं। जैसे—अपामार्ग, पीपल, मिर्च, वाय-विडंग, सोहांजना, सिरस, धनियां, बिल्वफल, कालाजीरा, अजमोद, बडी कटेरीके फल, काश्मीरी जीरा, इलायची, रेणुका बीज और सुमुख, कुठेरक, सुरस, गण्डीर, कालमालक, पर्णाश तथा क्षवक यह तुलसीकी जातियें, मरुआ, हल्दी, अदरख, मूली, लहसुन, अर्णी, सरसों इनके पत्र तथा आक, कूट, नागदंती, वच, भारंगी, अपराजिता, मालकांगुनी, इन्द्रायण, गण्डीर, अवाक्पुष्पी, वृश्चिका, वयस्था, अतीस, इन सबके मूल और हल्दी, अदरख, मूली इनके कंद। लोध, मैनफल, सतवन, नीम और आक इनके फूल एवम् देवदारु, अगर, सरल, शल्लकी, जींगन पीतमाला और हींग इनका गोंद लेना चाहिये। इसी प्रकार चव्य, दालचीनी, गोंदनी, सोहां-जना, दोनों कटेरी इनकी छाल लेना चाहिये। इस प्रकार फल, पत्र, मूल, कंद, फूल, गोंद और त्वचाके भेदसे शिरोविरेचन (नस्य) सात प्रकारके होतेहैं १७४॥

लवणकटुतिक्तकषायाणिचइन्द्रियोपशयानितथापराण्यनुक्ता-न्यपिद्रव्याणियथायोगविहितानिशिरोविरेचनार्थमुपादिश्यन्ते इति॥ १७५॥

लवण, कटु, तिक्त तथा कषाय रसवाले द्रव्य और जो इन्द्रियोंको उपशय अर्थात् हितकारक हों उन द्रव्योंके प्रयोगको शिरोविरेचनके अर्थ कथन किया है॥ १७५॥

अध्यायका संक्षिप्तवर्णन।

लक्षणाचार्य्यशिष्याणांपरीक्षाकारणञ्चयत्। अध्येयाध्यापन-विधिःसम्भाषाविधिरेवच ॥१७६॥षड्भिर्न्यूनानिपञ्चाश-द्वादशाथपदानिच। पदानिदशचान्यानिकारणादीनितत्त्वतः ॥ १७७॥सम्प्रश्नश्चपरीक्षादेर्नवकोवमनादिषु। भिषग्जितीयेरोगाणांविमानेसम्प्रदर्शितः॥ १७८॥

यहांपर अध्यायके उपसंहारमें श्लोक हैं गुरु और शिष्योंके लक्षण, परीक्षा, कारण, पढने और पढानेकी विधि, संभाषण विधि, छिआलीस और बारह अर्थपद, इनके सिवाय तत्त्वसे दश प्रकारके अन्य कारणादि कथन और दश प्रकारके परीक्ष्य विषयोंमें प्रश्न, वमनादि विषयमें नौ प्रकारकी परीक्षाको रोगभिषग्जितीय अध्यायमें कथन किया गया है ॥ १७६ ॥ १७७ ॥ १७८ ॥

बहुविधमिदमुक्तमर्थजातंबहुविधवाक्यविचित्रमर्थजातम् ।
बहुविधशुभशब्दसन्धियुक्तंबहुविधवादनिषूदनंपरेषाम् ॥ १७९ ॥

अनेक प्रकारके अर्थोंका समूह और अनेक अर्थोंवाले विचित्र वाक्य तथा अर्थजात, सुन्दर शब्द, संधियुक्त अर्थ, अनेक प्रकारके वाद और प्रतिपक्षीके पक्षका खण्डनका वर्णन कियागयाहै ॥ १७९ ॥

इमांमतिंबहुविधहेतुसंश्रयांविजज्ञिवान्परमतवादसूदनीम् ।
निलीयतेपरवचनावमर्दनेनशक्यतेपरवचनैश्वमर्दितुम् ॥१८० ॥

जो वैद्य इन बहु प्रकारके हेतुओंसे युक्त तथा प्रतिपक्षीके मत और वादके खण्डन करनेवाली इस मतिको जान लेता है । वह प्रतिपक्षीके संपूर्ण वचनोंको मर्दन करनेको समर्थ होताहै और प्रतिपक्षीके वचनोंसे अपने पक्षको कभी खण्डन होने नहीं देता ॥ १८० ॥

दोषादीनांतुभावानांसर्वेषामेवहेतुना ।
मानात्समस्तमानानिनिरुक्तानिविभागशः ॥ १८१ ॥

इत्यग्निवेशकृते तन्त्रे चरकप्रतिसंस्कृते विमानस्थानं समाप्तम् ।

इस प्रकार इस विमानस्थानमें वात, पित्त कफ आदिक दोषोंका और संपूर्ण भावोंका हेतु विशेषसे तथा परिमाण विशेषसे विभागपूर्वक संपूर्ण मान (परिमाणका) कथन कियागयाहै ॥ १८१ ॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदसंहितायां विमानस्थाने पं० रामप्रसादवैद्योपाध्यायविरचित-भाषाटीकायां रोगभिषग्जितीयविमानं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

संहित चरक विमान, जानहि विधिवत जे भिषक् ।
सदसि पावहीं मान, विजय होहि वैद्यनविषे ॥

इति विमानस्थानम् ।

शारीरस्थानम्।

प्रथमोऽध्यायः।

अथातःकतिधापुरुषीयंव्याख्यास्यामइतिहस्माहभगवानात्रेयः।

अब हम कतिधापुरुषीय शारीरकी व्याख्या करते हैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कथन करने लगे।

अग्निवेशके पुरुषविषयक प्रश्न।

कतिधापुरुषोधीमन् धातुभेदेनभिद्यते। पुरुषःकारणंकस्मात्प्रभवःपुरुषस्यकः॥ १॥ किमज्ञोऽज्ञःसनित्यःकिंकिमानित्यो निदर्शितः। प्रकृतिःकाविकाराःकेकिंलिङ्गंपुरुषस्यच॥ २॥

अग्निवेश बोले कि हे धीमन्! धातुभेदसे पुरुष कितने प्रकारके होतेहैं। पुरुषको कारण किसलिये कहाजाता है। पुरुषके कारण कौन हैं। पुरुष अज्ञ है अथवा ज्ञाता है। नित्य है अथवा अनित्य है। प्रकृति क्या है। विकार क्या हैं। पुरुषके क्या लक्षण हैं॥ १॥ २॥

निष्क्रियञ्चस्वतन्त्रञ्चवशिनंसर्वगंविभुम्। वदन्त्यात्मानमात्मज्ञाःक्षेत्रज्ञंसाक्षिणंतथा॥३॥ निष्क्रियस्यक्रियातस्यभगवन्! विद्यतेकथम्। स्वतन्त्रश्चेदनिष्टासुकथंयोनिषुजायते॥ ॥४॥ वशीयद्यसुखैःकस्माद्भावैराक्रम्यतेबलात्। सर्वाःसर्वगतत्वाच्चवेदनाःकिंनवेत्तिसः॥ ५॥

आत्माके जाननेवाले पुरुष आत्माको क्रिया रहित, स्वतन्त्र, वशी, सर्वग, विभु, क्षेत्रज्ञ और साक्षी कहते हैं सो हे भगवन्! क्रिया रहित पुरुषमें क्रिया किसप्रकार है। विना इच्छासे अनिष्ट योनियोंको किसप्रकार धारण करता है। वशी पुरुष इन्द्रियोंके सुखके वशमें बलात्कार क्यों फँसजाता है। सर्वज्ञ होनेसे सम्पूर्ण विकारोंको क्यों नहीं जानसकता॥ ३॥ ४॥ ५॥

नपश्यतिविभुःकस्माच्छैलकुड्यातिरस्कृतम्। क्षेत्रज्ञःक्षेत्रमथवाकिंपूर्वमितिसंशयः॥ ६॥ ज्ञेयंक्षेत्रंविनापूर्वंक्षेत्रज्ञोहिनयुज्यते। क्षेत्रञ्चयदिपूर्वंस्यात्क्षेत्रज्ञःस्यादशाश्वतः॥ ७॥

यदि वह विभु है तो पर्वत और दीवार आदि उसकी दृष्टिको रोककर पदार्थको क्यों नहीं देखने देते। यदि वह क्षेत्रज्ञ है तो प्रथम क्षेत्र था, या यह पुरुष था। क्योंकि इस स्थानमें ज्ञेय विषय क्षेत्र है। सो ज्ञेय क्षेत्र-क्षेत्रज्ञसे पीछे उत्पन्न नहीं हो सकता। यदि क्षेत्र प्रथम था तो क्षेत्रज्ञ नित्य नहीं हो सकता ॥ ६ ॥ ७ ॥

साक्षिभूतश्चकस्यायंकर्त्ताह्यन्योनविद्यते।
स्यात्कथश्चाविकारस्यविशेषोवेदनाकृतः ॥ ८ ॥

जब अन्य कोई कर्त्ता नहीं है तो यह साक्षी किसका है। और यदि निर्विकार है तो इस निर्विकार पुरुषको अनेक प्रकारकी पीडा कैसे होती है ॥ ८ ॥

अथचार्त्तस्यभगवंस्तिसृणांकांचिकित्साति। अतीतांवेदनांवैद्योवर्त्तमानांभाविष्यतीम् ॥ ९ ॥ भविष्यन्त्याअसंप्राप्तिरतीतायाअनागमः। साम्प्रतिक्याअपिस्थानंनास्त्यर्तेःसंशयोह्यतः ॥ १० ॥

हे भगवन्! व्याधियोंके लक्षण क्षणक्षणमें पलटते रहते हैं और रोग तीन विभागोंमें (भूत, भविष्य, वर्तमान कालमें) विभक्त हैं। ऐसे स्थानमें रोगीकी किस अवस्थाका निश्चय कर चिकित्सा करनी चाहिये। क्योंकि भविष्यत् व्याधि तो उस समय है ही नहीं और भूतव्याधि व्यतीत हो चुकी है वह फिर आ नहीं सकती और जो वर्तमान व्याधि है वह क्षणक्षणमें वदलती जाती है। इसलिये इन तीनों प्रकारकी व्याधियोंमें किसको स्थिरकर चिकित्सा करनी चाहिये। यह संशय उत्पन्न होता है ॥ ९ ॥ १० ॥

कारणंवेदनानांकिंकिमाधिष्ठानमुच्यते।
क्वचैतावेदनाः सर्वानिवृत्तिंयान्त्यशेषतः ॥ ११ ॥

हे प्रभो! व्याधियोंका कारण क्या है। और अधिष्ठान किसको कहते हैं। यह सम्पूर्ण व्याधियें किस स्थानमें किस प्रकार सम्पूर्णरूपसे निवृत्त होतीहैं॥ ११॥

सर्ववित्सर्वसन्न्यासीसर्वसंयोगनिःसृतः।
एकःप्रशान्तोभूतात्माकैर्लिङ्गैरुपलभ्यते ॥ १२ ॥

सर्वज्ञ, सम्पूर्णभावोंसे विरक्त और सर्वसंयोगवर्जित एक शान्तिपरायण जीवात्मा किन लक्षणोंसे जानाजाता है ॥ १२ ॥

इत्यग्निवेशस्यश्रुत्वामतिमतांवरः ॥
सर्वंयथावत्प्रोवाचप्रशान्तात्मापुनर्वसुः ॥ १३ ॥

इसप्रकार अग्निवेशके प्रश्नोंको सुनकर बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ, प्रशान्तचित्त, भगवान् पुनर्वसुजी सबको यथाविधि वर्णन करनेलगे ॥ १३ ॥

पुनर्वसुजीके पुरुषविषयक उत्तर ।

खादयश्चेतनाषष्ठाधातवःपुरुषःस्मृतः ।
चेतनाधातुरप्येकःस्मृतःपुरुषसंज्ञकः ॥ १४ ॥

हे अग्निवेश ! यद्यपि केवल चेतनाधातुरूपही सर्वशास्त्रसंमत पुरुष है परन्तु चिकित्सा साधनके लिए पृथ्वी, आप, तेज, वायु, आकाश और चेतना इनके मिलेहुए संबंधको पुरुष कहतेहैं ॥ १४ ॥

पुनश्चधातुभेदेनचतुर्विंशतिकः स्मृतः ।
मनोदशेन्द्रियाण्यर्थाःप्रकृतिश्चाष्टधातुकी ॥ १५ ॥

फिर वह पुरुष पांच ज्ञानेन्द्रिय, पांच कर्मेन्द्रिय, पांचमहाभूत, प्रकृति, महत्तत्व, अहंकार, पंचतन्मात्रा और एक मन । इनके संयोगसे चौवीसतत्त्वका कहा जाताहै ॥ १५ ॥

मनका वर्णन ।

लक्षणंमनसोज्ञानस्याभावोभावएववा । सतिह्यात्मेन्द्रियार्थानांसन्निकर्षेणवर्त्तते ॥ १६ ॥ वैवृत्यान्मनसोज्ञानंसान्निध्यात्तच्चवर्त्तते । अणुत्वमथचैकत्वंद्वौगुणौमनसःस्मृतौ ॥ १७ ॥

ज्ञान होना और ज्ञानका न होना मनका लक्षण है अर्थात् एक कालमें एक वस्तुका ज्ञान होना और दूसरेका न होना, या यों कहिये कि दो ज्ञानोंका एकही कालमें उत्पन्न न होना मनका लक्षण है । आत्मा, इन्द्रिय और इन्द्रियोंका विषय इनका संयोग होनेपर भी मनके सन्निकर्षके विना किसी इन्द्रियके विषयका ज्ञान नहीं होता, अर्थात् आत्मा, इन्द्रिय और इन्द्रियार्थ रहतेहुए भी मनके सन्निकर्षसेही ज्ञानकी उत्पत्ति होतीहै । इन्द्रिय और अर्थके सन्निकर्ष होनेपर भी यदि मनका संयोग हो तव ज्ञान उत्पन्न होसकताहै । मनके संयोग न होनेसे ज्ञान उत्पन्न नहीं हो सकता । इससे यह सिद्ध हुआ कि मन इन्द्रियोंसे भिन्न कोई अलग वस्तु है जिसका इन्द्रियोंसे संयोग होनेपर ज्ञान उत्पन्न होताहै। एकत्व और अणुत्व मनके ये दो गुण हैं अर्थात् मन असंक्लिष्ट और सूक्ष्म है ॥ १६ ॥ १७ ॥

---

१ अत्र चेतनाशब्देन समनस्क आत्मा गृह्यते । खादिग्रहणेन चन्द्रियाणि खादिमयान्यवरुद्धानि।
२ पुरुषसंज्ञकः चेतनाधातुरूपोऽत्र कायचिकित्सायामनभिप्रेतः । परंतु आध्यात्मिकचिकित्सायान्तु अभिप्रेत एवेति रामप्रसादः ।

चिन्त्यंविचार्य्यमूह्यञ्चध्येयंसङ्कल्प्यमेवच ।
यत्किञ्चिन्मनसोज्ञेयंतत्सर्वंह्यर्थसंज्ञकम् ॥ १८ ॥

चिन्ता, विचार, तर्क, ध्यान और संकल्प तथा जाननेयोग्य जो कुछ वस्तु है सब उनका अर्थ (विषय) है ॥ १८ ॥

बुद्धिकी प्रवृत्ति ।

इन्द्रियाभिग्रहःकर्म्ममनसस्स्वस्यनिग्रहः ।
ऊहोविचारश्चततःपरंबुद्धिःप्रवर्त्तते ॥ १९ ॥

इन्द्रियोंकी गति कराना और स्वयम् गमनशील रहना अथवा इन्द्रियोंके वेगको रोकना और अपनी अनिष्ट गतिको रोकना । यह मनके दो कर्म होतेहैं। ऊहा तर्क और विचार उत्पन्न होनेके अनन्तर बुद्धिकी प्रवृत्ति होती है ॥ १९ ॥

इन्द्रियेणेन्द्रियार्थोहिसमनस्केनगृह्यते ।
कल्प्यतेमनसाप्यूर्द्ध्वंगुणतोदोषतोयथा ॥ २० ॥

इन्द्रियें अपने अर्थको मनकी सहायतासे ही ग्रहण करती हैं । और इन्द्रियों द्वारा अर्थज्ञान होनेके अनन्तर भी उसके गुण दोषको मनही कल्पना करताहै२०॥

जायतेविषयेतत्रयाबुद्धिर्निश्चयात्मिका ।
व्यवस्यतेतयावक्तुंकर्तुंवाबुद्धिपूर्वकम् ॥ २१ ॥

फिर उस विषयमें जिस प्रकारकी निश्चयात्मिका बुद्धि होतीहै उसको उस निश्चयात्मिका बुद्धिद्वारा कहनेको अथवा बुद्धिपूर्वक करनेको निश्चय करताहै२१॥

ज्ञानेंद्रिय ।

एकैकाधिकयुक्तानिखादीनामिन्द्रियाणितु ।
पञ्चकर्मानुमेयानियेभ्योबुद्धिःप्रवर्त्तते ॥ २२ ॥

शब्दगुणवाला आकाश, शब्द और स्पर्शगुणवाला वायु, शब्द, स्पर्श और रूप गुणवाला अग्नि । शब्द, स्पर्श, रूप और रस गुणवाला जल । शब्द, स्पर्श, रूप, रस, और गंध गुणवाली पृथ्वी होती है । इसप्रकार एकएक महाभूत एकएक गुण

---

१ चिन्त्यं—कर्तव्याकर्तव्यतया यच्चिंत्यते। विचार्य्यमुपपत्त्यनुपपत्तिभ्यां यद्विमृश्यते ऊह्यं—यत्सम्भावनया ऊह्यते । ध्येयं—भावनाज्ञानविषयम् । संकल्प्यं—गुणवत्तया दोषवत्तया वाऽवधारणविषयम् ।
२ निर्विकल्पालोचनज्ञानमूहः । हेयोपादेयतया विकल्पनं विचारः । ३ बुद्धो हि सर्वकरणव्यापारार्पणं भवति ।

पूर्ववाले महाभूतका लेताजाताहै। यद्यपि आकाश,वायु,अग्नि,जल और पृथ्वी इनके शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध यह क्रमसे एकएकका एकएक गुण है परन्तु यह एकएक गुण क्रमपूर्वक दूसरेका लेते जातेहैं । इन पंचमहाभूतोंकी श्रवण, स्पर्शन, दर्शन, रसन और घ्राण ये पांच इंद्रियें हैं । सुनना, छूना, देखना, स्वादलेना और सूंघना ये इन पांचोंके कर्म हैं। इन पांच कर्मोंसे ही इनका अनुमान कियाजाताहै । इन इन्द्रियों द्वारा ही बुद्धिकी प्रवृत्ति होतीहै ॥ २२ ॥

कर्मेन्द्रिय ।

हस्तपादंगुदोपस्थंजिह्वेंद्रियमथापिवा । कर्मेन्द्रियाणिपञ्चैवपा- दोगमनकर्माणि ॥२३॥ पायपस्थौविसर्गार्थेहस्तौग्रहणधारणे । जिह्वावागेन्द्रियंवाक्चसत्याज्योतिस्तमोऽनृता ॥ २४ ॥

हाथ, पांव, गुदा, गुह्य और जिह्वा ये पांच कर्मेन्द्रिय हैं । पांवोंका चलना, गुदाका मलत्याग, गुह्यका मूत्रत्याग, और हाथोंका ग्रहण करना कर्म है एवं जिह्वाका उच्चारण करना कार्य है । वह उच्चारण करना दो प्रकारका है । १ सत्य, २ असत्य । सत्य ज्योतिः[1]स्वरूप है और असत्य तमःस्वरूप है ॥ २३ ॥ २४ ॥

पञ्चमहाभूत ।

महाभूतानिखंवायुरग्निरापःक्षितिस्तथा । शब्दःस्पर्शश्चरूप- श्चरसोगन्धश्चतद्गुणाः ॥ २५ ॥ तेषामेकोगुणःपूर्वोगुणवृद्धिः परेपरे । पूर्वःपूर्वोगुणश्चैवक्रमशोगुणिषुस्मृतः ॥ २६ ॥

आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी ये पांच महाभूत हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध ये इनके पांच गुण हैं । इनमें पहिलेमें, एक दूसरेमें दो,तीसरेमें तीन, चौथेमें चार और पांचवेंमें पांच ये गुण हैं । (इनको २२ के श्लोककी व्याख्यामें लिख चुके हैं) ॥ २५ ॥ २६ ॥

पृथ्वी आदिके गुण ।

खरद्रवचलोष्णत्वंभूजलानिलतेजसाम् । आकाशस्याप्रतीघा- तोदृष्टंलिंगंयथाक्रमम् ॥ २७ ॥ लक्षणंसर्वमेवैतत्स्पर्शने- न्द्रियगोचरः । स्पर्शनेन्द्रियविज्ञेयःस्पर्शोहिसविपर्ययः ॥२८॥

---

१ ज्योतिरिव ज्योतिर्धर्मकर्तृत्वेन तमस्तमोऽप्रकाशकारित्वात् ।

पृथ्वीका खर, जलका द्रव, वायुका चल और अग्निका उष्ण लक्षण होता है। इसी प्रकार आकाश प्रतिघात-लक्षण है। यह सम्पूर्ण लक्षण स्पर्शनेन्द्रियके गोचर हैं। स्पर्शनेन्द्रियसे ही स्पर्श और स्पर्शाभावका ज्ञान होता है ॥२७॥२८॥

गुणादिवर्णन।

गुणाःशरीरेगुणिनांनिर्दिष्टाश्चिह्नमेवच।
अर्थाशब्दादयोज्ञेयागोचराविषयागुणाः ॥ २९ ॥

जिसमें गुण होते हैं उसको गुणी कहते हैं शरीरमें गुण जो हैं वह गुणीके चिह्न हैं अर्थात् लक्षण हैं। और शब्दादिक इन्द्रियोंके विषय हैं ॥२९॥

यायदिन्द्रियमाश्रित्यजन्तोर्बुद्धिः प्रवर्त्तते।
यातिसातेननिर्देशंमनसाचमनोभवा ॥ ३० ॥

जिस इंद्रियके आश्रयसे जो ज्ञान उत्पन्न होता है उसको उस इन्द्रियकी बुद्धि कहते हैं। जो मनसे ज्ञान उत्पन्न होता है उसे मनोभवबुद्धि अथवा मानसिक ज्ञान कहते हैं ॥ ३० ॥

ज्ञानोंकी अनेकता।

भेदात्कार्य्येन्द्रियार्थानांबह्वयोवैबुद्धयःस्मृताः। आत्मेन्द्रियमनोऽर्थानामेकैकासन्निकर्षजा ॥ ३१ ॥ अंगुल्यंगुष्ठतलजस्तन्त्रीवीणानखोद्भवः। दृष्टाःशब्दोयथाबुद्धिर्दृष्टासंयोगजा स्तथा ॥ ३२ ॥

कार्यभेदसे और इन्द्रियोंके विषयभेदसे अनेक प्रकारकी बुद्धियें प्राप्त होती हैं। आत्मा, इंद्रिय, मन और अर्थोंके संनिकर्षसे पृथक् २ बुद्धि उत्पन्न होतीहै। जैसे— अंगुली अंगूठा, हथेली, तंत्री, वीणा नख इनके संयोगसे पृथक् २ शब्द उत्पन्न होते हैं। उसी प्रकार जैसे जैसे अर्थसे संयोग होता है वैसे वैसे संयोग भेदसे पृथक् २ बुद्धि उत्पन्न होतीहै ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

बुद्धीन्द्रियमनोऽर्थानांविद्याद्योगधरंपरम्।
चतुर्विंशकइत्येषराशिःपुरुषसंज्ञकः ॥ ३३ ॥

बुद्धि, इन्द्रिय, मन और इनके विषयोंके योगको धारण करनेवाला चौवीस तत्वकी राशिवाला पुरुष कहा जाताहै ॥ ३३ ॥

रजस्तमोभ्यांयुक्तस्यसंयोगोऽयमनन्तवान्।
ताभ्यांनिराकृताभ्यान्तुसत्त्वबुद्ध्यानिवर्त्तते ॥ ३४ ॥

यह अनन्तवान् पुरुष रजोगुण और तमोगुणके संयोगसे अनादि कालसे बंधाहै परन्तु अभ्यास, वैराग्य और ज्ञान द्वारा रज और तमका संयोग निवृत्त होजानेपर सत्त्वगुणका प्रकाश होनेसे शुद्ध ज्ञान होकर मोक्षको प्राप्त होताहै ॥ ३४ ॥

पुरुषकी प्रधानता ।

अत्रकर्म्मफलश्चात्रज्ञानञ्चात्रप्रतिष्ठितम् ।
अत्रमोहःसुखंदुःखंजीवितंमरणंस्वतः ॥ ३५ ॥

इस पुरुषमें कर्मफल तथा ज्ञान यह दोनों प्रतिष्ठित हैं । और मोह, सुख,दुःख, जीवन और मरण यह चतुर्विंशाति तत्त्वात्मक पुरुषके आश्रित हैं ॥ ३५ ॥

एवंयोवेदतत्त्वेनसवेदप्रलयोदयौ ॥ ३६ ॥

जिस पुरुषको इस प्रकार तत्त्वका ज्ञान है वह उत्पत्ति और प्रलयको जानता है ॥ ३६ ॥

पुरुषकी कारणता ।

पारम्पर्य्यंचिकित्साचज्ञातव्यंयच्चकिञ्चन ॥ ३७ ॥ भास्तमः सत्यमनृतंवेदःकर्म्मशुभाशुभम् । नस्यात्कर्त्तावेदिताचपुरुषो नभवेद्यदि ॥ ३८॥

यदि पुरुष ज्ञाता न होता तो लोक परम्परा, चिकित्सा, जानने योग्य विषय, तम, ज्योतिः, सत्य, अनृत, वेद, कर्म, शुभ, अशुभ, कर्त्ता और ज्ञाता, यह कुछ भी न होते ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

नाश्रयोनसुखंनार्त्तिर्नगतिर्नागतिर्नवाक् । नविज्ञानंनशास्त्राणि नजन्ममरणंनच ॥ ३९॥नबन्धोनचमोक्षःस्यात्पुरुषोनभवे- द्यदि । कारणंपुरुषस्तस्मात्कारणज्ञैरुदाहृतः ॥ ४० ॥

एवम् आश्रय, सुख, रोग, गति, अगति, वाणी, विज्ञान, शास्त्र, जन्म,मरण, बंध और मोक्ष यह भी न होते । इसलिये कारणके जाननेवाले बुद्धिमानोंने पुरुषको कारण कहा है ॥ ३९ ॥ ४० ॥

नचेत्कारणमात्मास्यात्खादयःस्युरहेतुकाः ।
नचैषुसम्भवेज्ज्ञानंनचतैःस्यात्प्रयोजनम् ॥ ४१ ॥

यदि आत्मा कारण न हो तो आकाश आदि अहेतुक हो जायंगे । आकाशादिकोंमें जडत्व होनेसे ज्ञान तो होताही नहीं। इसलिये उन जडोंसे चैतन्यकी उत्पत्ति नहीं हो सकती । अथवा यों कहिये कि वह जड होनेसे चैतन्य पुरुषको अथवा

जगतको बना नहीं सकते और भोक्ता न होनेसे उनका कोई प्रयोजन भी नहीं रहसकता ॥ ४१ ॥

पुरुषकी कारणताका दृष्टान्त ।

मृद्दण्डचक्रैश्चकृतंकुम्भकारादृतेघटम् । कृतंमृत्तृणकाष्ठैश्चगृहकाराद्विनागृहम् ॥ ४२॥योवदेत्सवदेद्देहंसम्भूयकरणैःकृतम् । विनाकर्त्तारमज्ञानाद्युक्त्यागमवहिष्कृतः । कारणंपुरुषःसर्वैः प्रमाणैरुपलभ्यते ॥ ४३ ॥येभ्यःप्रमेयंसर्वेभ्यआगमेभ्यःप्रतीयते ॥ ४४ ॥

जैसे मट्टी,दंड, चक्र यह सब उपस्थित होते हुए भी घट कुम्हारके विना उत्पन्न नहीं होसकता । इसी प्रकार मट्टी, पत्थर, लकडी आदि सब समान होनेपर भी विना बनानेवालेके घर स्वयं तैय्यार नहीं होसकता । जो मनुष्य यह कहे कि विना कुम्हारके घट उत्पन्न होसकता है और विना बनानेवालेके घर स्वयं बन सकता है । वह अज्ञानी मनुष्य युक्ति और शास्त्रसे विरुद्ध यह भी कह सकता है कि आकाशादि जड पदार्थोंने ही इस देहको रचा है । जिन सब प्रकारके शास्त्रीय प्रमाणोंसे प्रमेयकी उपलब्धि होतीहै,उन सबसे सिद्ध है कि कारण पुरुषही है॥४२॥४३॥४४

कर्तव्यपर विचार ।

नतेतत्सदृशास्त्वन्येपारम्पर्य्येसमुत्थिताः । सारूप्याद्येतएवेतिन्निर्दिश्यन्तेनराज्ञराः ॥ ४५ ॥भावास्त्वेषांसमुदयोनिराशिः सत्वसंज्ञकः । कर्त्ताभोक्तानसपुमानितिकेचिद्व्यवस्थिताः ॥ ॥४६॥तेषामन्यैःकृतस्यान्येभावाभावैर्नराःफलम् । भुञ्जतेसदृशाःप्राप्तंयैरात्मानोपादिश्यते ॥ ४७ ॥

कोई कहतेहैं कि इसका कर्त्ता कोई नहींहै यह परम्परासे ऐसाही चलाआताहै मनुष्यसे मनुष्य, पशुसे पशु सानुरूप होता चलाआताहै । यह ईश्वरने उत्पन्न नहीं कियाहै । संपूर्णभाव पृथ्वी, आकाश, अप, तेज, वायुके समानही शरीरकी सादृश्यताहै । उस ईश्वरके समान सृष्टि दिखाई नहीं देती । इसलिये ईश्वरने इसको नहीं बनाया यह निरीश्वरवादियोंका पक्ष है । अनात्मवादी कहतेहैं कि पुरुष न कर्त्ता है न भोक्ता है, यह स्वयं ऐसाही चलाआताहै । उनके मतमें करनेवाला और होताहै,फल और भोगताहै।देखिये खानेके लिये दूसरा पुरुष बनाता, खाता दूसराहै

इसलिये न कोई करताहै और न कोई फल भोगताहै और न कोई आत्मा है ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

कारणानन्यताद्दृष्टाकर्त्तुः कर्त्तासएवतु । कर्त्ताहिकरणैर्युक्तः कारणंसर्वकर्मणाम् ॥ ४८ ॥ निमेषकालाद्भावानांकालःशीघ्रतरोऽत्यये । भग्नानांचपुनर्भावःकृतंनान्यमुपैतिच ॥ ४९ ॥

आत्मवादी कहतेहैं कि कर्त्ताही करणोंकी सहायतासे कर्मको करताहै क्योंकि शरीरके कियेहुए कर्मोंका फल कर्त्ता अर्थात् आत्माही भोगताहै।देखनेमें भी आताहै कि परोपकारतादि जितने काम किये जावेहैं सबको आत्माही भोगताहै।जिस शरीरसे जो कार्य कियाजाताहै वह शरीर विनाशको प्राप्त होता तथा होसकताहै परन्तु करनेवाला आत्मा वही रहताहै । वह कर्त्ताही अपने करणोंसे युक्तहुआ संपूर्ण कार्योंको करताहै।निमिषमात्रमें शरीरादि संपूर्ण भाव शीघ्र नष्ट होजावेहैं और उन नष्टहुए शरीर आदि भावोंका पुनर्भाव नहीं होता।जो कर्म किया जाताहै उसका फल दूसरा नहीं भोगसकता वह कर्त्ताही कर्मोंके फलको भोगनेवाला है । क्योंकि यदि ऐसा न हो तो जिस शरीरसे यज्ञादि किये जातेहैं वह तो इसी लोकमें नष्ट होजाताहै फिर उसके किये कर्मोंको भोगनेवाला कौन मानाजायगा । इसलिये आत्माकोही कर्त्ता और कर्मका फल भोगनेवाला मानना चाहिये ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

मतंतत्त्वविदामेतद्यस्मात्कर्त्तासकारणम् । क्रियोपभोगेभूतानांनित्यःपुरुषसंज्ञकः ॥ ५० ॥ अहङ्कारःफलंकर्मदेहान्तरगतिःस्मृतिः । विद्यतेसातिभूतानांकारणेदेहमन्तरा ॥ ५१ ॥

तत्त्वके जाननेवाले इसप्रकार कहते हैं कि जिसलिये आत्मा कर्त्ता है इसीलिये इसको कारण कहतेहैं । वह कारण आत्माही मनुष्योंके कियेहुए कर्मोंको भोगनेवाला है, और नित्य है तथा उसीको पुरुष कहतेहैं । अहंकार, कर्मफल, पुनर्जन्म और स्मृति तथा अन्य धर्माधर्म यह सब मनुष्योंके उस कारणरूप अन्तरात्मामेंही अवस्थित हैं देहमें नहीं ॥ ५० ॥ ५१ ॥

प्रभवोनह्यनादित्वाद्विद्यतेपरमात्मनः ।
पुरुषोराशिसंज्ञस्तुमोहेच्छाद्वेषकर्मजः ॥ ५२ ॥

वह परमआत्मा अनादि है इसलिये उसको करनेवाला कारण कोई नहीं । परन्तु चौबीस तत्त्वकी राशिभूत जो पुरुष है वह मोह इच्छा और द्वेषजनित कर्मोंसे उत्पन्न होताहै ॥ ५२ ॥

आत्मज्ञःकरणैर्योगाज्ज्ञानंतस्यप्रवर्त्तते । करणानामवैमल्या-
दयोगाद्वानवर्त्तते ॥ ५३ ॥ पश्यतोऽपियथादर्शेसंक्लिष्टेना-
स्तिदर्शनम् । तद्वज्जलेवाकलुषेचेतस्युपहतेतथा ॥ ५४ ॥

आत्मा अज्ञ नहीं है अर्थात् ज्ञानवान् है । करणोंके संयोगसे इसको ज्ञान उत्पन्न होताहै । वह करण, मन, बुद्धि और ज्ञानेंद्रियोंको कहतेहैं । इन करणोंके निर्मल न होनेसे तथा इनका अयोग होनेसे ज्ञान उत्पन्न नहीं होता । जैसे दर्पणमें धूल जमरिहनेसे प्रतिविंव दिखाई नहीं देता,काई आदि जमीरहनेसे जलमें कुछ दिखाई नहीं देता । उसी प्रकार मन आदि करणोंके मलयुक्त होनेसे ज्ञान उत्पन्न नहीं होता ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

करणोंके नाम और कर्म ।

करणानिमनोबुद्धिर्बुद्धिकर्मेन्द्रियाणिच ।
कर्त्तुःसंयोगजंकर्मवेदनाबुद्धिरेवच ॥ ५५ ॥

मन, बुद्धि और बुद्धीन्द्रिय तथा कर्मेन्द्रिय इन सबको करण कहतेहैं । कर्त्ताके साथ करणका संयोग होनेसे कर्म, दुःख और ज्ञान आदि उत्पन्न होते हैं ॥५५॥

नैकःप्रवर्त्ततेकर्तुंभूतात्मानाश्नुतेफलम् । संयोगाद्वर्त्ततेसर्वंत-
मृतेनास्तिकिंचन ॥ ५६ ॥ नह्येकोवर्त्ततेभावोवर्त्ततेनाप्यहेतु-
कः । शीघ्रगत्वात्स्वभावात्तुभावोनव्यतिवर्त्तते ॥ ५७ ॥

आत्मा अकेलाही किसी कर्ममें प्रवृत्त नहीं होता और न अकेला होनेपर फल भोगता है । सबका संयोग होनेसेही सब कुछ करताहै और करणादिकोंका संयोग न होनेसे कुछ नहीं करता । इसी प्रकार पंचभूतादिभाव भी अकेले कुछ नहीं करते और न विना हेतु कुछ कर सकतेहैं अथवा यों कहिये कि आकाशादिभाव अकेले होनेसे कुछ कर नहीं सकते और कार्य विना हेतुके नहीं होता । भाव शीघ्रगामी स्वभाववाला होनेसे अपने क्रमका उल्लंघन नहीं कर सकता ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

अनादिःपुरुषोनित्योविपरीतस्तुहेतुजः । सदाकारणवन्नित्यंदृष्टं
हेतुमदन्यथा ॥ ५८ ॥ तदेवभावादग्राह्यंनित्यत्वान्नकुतश्चन ।
भावाज्ज्ञेयंतदव्यक्तमचिन्त्यंव्यक्तमन्यथा ॥ ५९ ॥

अनादि पुरुष नित्य है । जो किसी हेतुसे उत्पन्न होताहै वह अनित्य होताहै । और कारणरहित पदार्थ नित्य देखनेमें आताहै । हेतुओंसे उत्पन्न हुआ अनित्य

होताहै । इसीलिये जिसका कारण नहीं उसको अनित्य मानना सर्वथा भूल है । नित्य पदार्थ किसी अन्य पदार्थसे उत्पन्न नहीं होता । वह नित्य आत्मा अव्यक्त और अचिंत्य है । उससे अन्यथा अर्थात् राशिरूप पुरुष अनित्य और प्रगट है ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

आत्माका वर्णन ।

अव्यक्तमात्माक्षेत्रज्ञःशाश्वतोविभुरव्ययः । तस्माद्यदन्यत्त-द्व्यक्तंवक्ष्यतेचापरंद्वयम् ॥ ६० ॥ व्यक्तश्चेन्द्रियकश्चैवगृह्यते तद्यदिन्द्रियैः । अतोऽन्यत्पुनरव्यक्तंलिङ्गग्राह्यमतीन्द्रियम्॥६१॥

आत्मा अव्यक्त, क्षेत्रज्ञ, नित्य, विभु और अव्यय है । उससे विपरीत जो है वह व्यक्त प्रकट कहाजाताहै । व्यक्त पदार्थ इन्द्रिय द्वारा ग्रहण किया जाताहै तथा अव्यक्त अतीन्द्रिय है अर्थात् इन्द्रियों द्वारा ग्रहण नहीं होसकता । जो पदार्थ इन्द्रियों द्वारा ग्रहण न किया जाकर केवल लक्षणों द्वारा जाना जाय उसको अतीन्द्रिय तथा अव्यक्त कहतेहैं ॥ ६० ॥ ६१ ॥

प्रकृतियों और क्षेत्रज्ञका वर्णन ।

खादीनिबुद्धिरव्यक्तमहङ्कारस्तथाष्टमः । भूतप्रकृतिरुद्दिष्टावि-काराश्चैवषोडश ॥ ६२ ॥ बुद्धीन्द्रियाणिपञ्चैवपञ्चकर्मेन्द्रिया-णिच । समनस्काश्चपञ्चार्थाविकाराइतिसंज्ञिताः ॥ ६३ ॥ इतिक्षेत्रंसमुद्दिष्टंसर्वमव्यक्तवर्जितम्। अव्यक्तमस्यक्षेत्रस्यक्षे-त्रज्ञमृषयोविदुः ॥ ६४ ॥

आकाशादि पंचतन्मात्रा (परमाणुरूप महाभूत) महत् तत्त्व, बुद्धि, मूल प्रकृति और अहंकार यह आठ भूत प्रकृति कहेजातेहैं । मन, पांच ज्ञानेन्द्रिय, पांच कर्मेन्द्रिय और पांचमहाभूत इनको सोलह विकार कहते हैं क्योंकि यह आठ प्रकृतिके कार्य हैं उनसे विकार भावको प्राप्त होकर उत्पन्न हुए हैं इसलिये उनको विकार कहते हैं । अव्यक्तको छोडकर अन्य सबको क्षेत्र कहते हैं और ऋषिलोग अव्यक्तआत्माको इस क्षेत्रको जाननेवाला (क्षेत्रज्ञ) कहते हैं ॥६२॥६३ ॥६४॥

पुरुषका वर्णन ।

जायतेबुद्धिरव्यक्ताद्बुद्ध्याहमितिमन्यते । परंखादीन्यहंकार उपादत्तेयथाक्रमम् ॥ ६५ ॥ ततःसम्पूर्णसर्वांगोजातोऽभ्युदि-तउच्यते । पुरुषःप्रलयेचेष्टैःपुनर्भावैर्नियुज्यते ॥ ६६ ॥अव्य-

क्काद्व्यक्ततांयातिव्यक्तादव्यक्ततांपुनः । रजस्तमोभ्यामाविष्ट-
श्चक्रवत्परिवर्त्तते ॥ ६७ ॥

अव्यक्त प्रकृतिसे बुद्धि, बुद्धिसे अहंकार, अहंकारसे पंच तन्मात्रा, और मन तथा इन्द्रियोंकी क्रमपूर्वक उत्पत्ति होतीहै । इसके उपरान्त संपूर्ण सर्वांग पुरुष राशि उत्पन्न होती है । इस चतुर्विंशति तत्त्वोंके पुतलेसे कर्माधीन अनादि कालसे मिलाहुआ चैतन्य आत्मा पुरुष कहाजाता है । यह पुरुष प्रलय समयमें इच्छित वस्तुओंसे पृथक् होजाता है फिर इसी प्रकार अव्यक्तसे व्यक्तभावको और व्यक्तसे अव्यक्तताको पुनःपुनः प्राप्त होता रहता है, यह पुरुष रजोगुण और तमोगुणसे आवेष्टित हुआ चक्रके समान घूमता रहता है ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥

येषांद्वन्द्वेपरासक्तिरहङ्कारपराश्चय ।
उदयप्रलयौतेषांनतेषांयेत्वतोऽन्यथा ॥ ६८ ॥

जिन मनुष्योंकी द्वन्द्वमें परम शक्ति है अर्थात् रजोगुण और तमोगुणसे आवेष्टित होकर-द्वेष, काम, अहंकार आदिमें चित्तवृत्ति लगी रहती है वह मनुष्य वारंवार जन्म लेतेहैं और मरते हैं परन्तु इनसे विपरीत अर्थात् सतोगुणवाले मनुष्योंको ज्ञान प्राप्त होनेसे इस जन्म मरणके चक्रमें नहीं आना पडता ॥ ६८ ॥

जीवनमरणके लक्षण ।

प्राणापानौनिमेषाद्याजीवनंमनसोगतिः । इन्द्रियान्तरसञ्चाराप्रेरणंधारणञ्चयत् ॥ ६९ ॥ देशान्तरगतिःस्वप्नेपञ्चत्वग्रहणं तथा । दृष्टस्यदक्षिणेनाक्ष्णासव्येनावगमस्तथा ॥ ७० ॥ इच्छाद्वेषःसुखंदुःखंप्रयत्नश्चेतनाधृतिः । बुद्धिःस्मृतिरहङ्कारो लिंगानिपरमात्मनः ॥ ७१ ॥ यस्मात्समुपलभ्यंतेलिंगान्येतानिजीवतः । नमृतस्यात्मलिंगानितस्मादाहुर्महर्षयः॥७२॥ शरीरंहिगतेनास्मिञ्छून्यागारमचेतनम् । पञ्चभूतावशेषत्वात्पञ्चत्वंगतमुच्यते ॥ ७३ ॥

श्वास लेना और छोडना, आंखका झपकना, जीवन, मनकी गति, एक इन्द्रियसे दूसरी इन्द्रियमें सञ्चार करना इन्द्रियोंका इधरउधर प्रेरण करना, देशांतर आदिकमें गमन करना, स्वप्नमें अनेक प्रकारका ज्ञान होना, पंचभूतोंके तत्त्वोंको जानना । दाक्षिण नेत्रसे देखेहुए पदार्थको वामनेत्रसे पहिचानलेना, इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख,

प्रयत्न, चेतना, धृति, बुद्धि, स्मृति और अहंकार यह सब लक्षण जीवित मनुष्यके हैं। मृत मनुष्यमें यह लक्षण नहीं होते इसीलिये आत्माके जाननेवाले महर्षि इन सबको आत्माके लक्षण कथन करतेहैं। इन लक्षणोंवाली आत्माके निकलजानेसे शरीर भयानक, चेतनारहित, शून्य घरके समान दिखाई देने लगताहै। आत्माके निकल जानेपर केवल पंचभूतमात्रका पुतला पडा रहताहै। इसीलिये इसको पंचत्व (मरण) को प्राप्त होगया ऐसा कहतेहैं ॥ ६९ ॥ ७० ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ ७३ ॥

आत्माको कर्तृत्व।

अचेतनंक्रियावच्चमनश्चेतयितापरः। युक्तस्यमनसातस्यनिर्दिश्यंतेविभोःक्रियाः ॥ ७४ ॥ चेतनावान्यतश्चात्माततः कर्त्तानिरुच्यते। अचेतनत्वाच्चमनःक्रियावदपिनोच्यते ॥ ७५ ॥

मन अचेतन है और आत्मा चैतन्य है। वह आत्माही मनको चैतन्य करनेवाला है। आत्माके आश्रयही मनकी संपूर्ण क्रियायें होती हैं। क्योंकि आत्मा चेतनावान् है इसलिये मनकी क्रियाओंका वही कर्त्ता माना जाताहै। मन अचेतन होनेसे क्रिया करता हुआ भी कर्त्ता नहीं कहा जाता ॥ ७४ ॥ ७५ ॥

यथास्वेनात्मनःसर्वंमनःसर्वासुयोनिषु।
प्राणैस्तन्त्रयतेप्राणीनह्यन्योऽन्यस्यतन्त्रकः ॥ ७६ ॥

जो जिस प्रकारका कर्म करता है वह अपनी इच्छा न होनेपर भी अपने किये हुए कर्मके आधीन होकर सबप्रकारकी योनियोंमें प्राप्त होताहै। मनुष्य अपने कर्मोंद्वाराही अपनी आत्माको अनेक प्रकारकी योनियोंमें लेजाताहै इसको और कोई किसी योनिमें प्राप्त नहीं करता ॥ ७६ ॥

आत्माको वशित्व।

वशीतत्कुरुतेकर्मयत्कृत्वाफलमश्नुते।
वशीचेतःसमाधत्तेवशीसर्वंनिरस्यति ॥ ७७ ॥

अपनी इच्छाके अनुसार प्रवृत्त होनेवाला आत्मा शुभाशुभ कर्मको करताहै और उस कर्मके करनेसे शुभ और अशुभ फलोंको भोगताहै। और अपने आधीनही होकर योग, समाधि आदिमें प्रवृत्त हो संपूर्ण जालको छोडकर मोक्षको प्राप्त होजाताहै इसीलिये उसको वशी कहते हैं ॥ ७७ ॥

देहीसर्वगतोह्यात्मास्वेस्वेसंस्पर्शनेन्द्रिये।
सर्वाःसर्वाश्रयस्थास्तुनात्मातोवेत्तिवेदनाः ॥ ७८ ॥

देहको धारण करनेवाला आत्मा सम्पूर्ण शरीरमें गमन करनेवाला होनेसे-स्पर्श-युक्त शरीरकेही सुख दुःखको जानताहै । केश, नख, आदि जो स्पर्शयुक्त नहीं हैं अर्थात् मनुष्यके शरीरकी स्पर्शनेन्द्रिय जिस स्थानमें प्राप्त नहीं है उसके सुख दुःखको नहीं जानसकता ॥ ७८ ॥

आत्माको विभुत्व ।

विभुत्वमतएवास्ययस्मात्सर्वगतोमहान्ः मनसश्चसमाधाना-त्पश्यत्यात्मातिरस्कृतम् ॥ ७९ ॥ नित्यानुबन्धंमनसादेहक-र्मानुपातिना । सर्वयोनिगतंविद्यादेकयोनावपिस्थितम् ॥८०॥

क्योंकि आत्मा सर्वगत है और महान् है इसलिये इसको विभु कहतेहैं । यह आत्मा योग, समाधीके बलसे दिवार और पर्वतसे छिपी हुई वस्तुको भी देखस-कताहै । कर्म देहका अनुवर्त्ती होनेसे देहान्तरमें गमन कर सकताहै । मनके साथ आत्माका नित्य सम्बन्ध होनेसे वह नाना योनियोंमें गमन करता हुआ भी एक योनिमें रहनेके समान ही मानताहै ॥ ७९ ॥ ८० ॥

आत्माका अनादित्व ।

आदिर्नास्त्यात्मनःक्षेत्रपारम्पर्य्यमनादिकम् ।
अतस्तयोरनादित्वात्किंपर्वमितिनोच्यते ॥ ८१ ॥

आत्मा अनादि है और क्षेत्र परम्परा भी अनादि है । जब दोनों अनादि हैं फिर उनमें पहिले और पीछेका प्रश्नही नहीं होसकता ॥ ८१ ॥

आत्माका सर्वसाक्षित्व ।

ज्ञःसाक्षीत्युच्यतेनाज्ञःसाक्षीह्यात्माह्यतःस्मृतः ।
सर्वभावाहिसर्वेषांभूतानामात्मसाक्षिकाः ॥ ८२ ॥

आत्मा ज्ञाता होनेसे साक्षी कहा जाताहै क्योंकि अज्ञ साक्षी नहीं होसकता । मनुष्यके सम्पूर्ण भावोंका साक्षी आत्माही है ॥ ८२ ॥

नैकःकदाचिद्भूतात्मालक्षणैरुपलभ्यते।विशेषोऽनुपलभ्यस्यत-स्यनैकस्यविद्यते ॥ ८३ ॥ संयोगःपुरुषस्येष्टोविशेषोवेदना-कृतः । वेदनायत्रनियताविशेषस्तत्रतत्कृतः ॥ ८४ ॥

पुरुष (आत्मा) एकही है यह किसी लक्षणद्वारा सिद्ध नहीं होसकता अर्थात् पुरुष अनेक हैं । तात्पर्य यह हुआ कि चैतन्य आत्मा सम्पूर्ण संसारमें एकही है ऐसा नहीं, किन्तु अनन्त और अनेक आत्मा हैं। इसीलिये दूसरे आत्माके सुखदुः

खादिकोंको अथवा पीडाको दूसरा आत्मा नहीं जानसकता । पुरुष (आत्मा) का जिस स्थानतक संयोग होता है वहांतककी पीडाको जान सकताहै । इसलिये शरीरमें होनेवाली पीडाको तथा ज्ञानद्वारा जहांतक गति है वहांतक जानसक है ॥ ८३ ॥ ८४ ॥

अतीतरोगकी चिकित्सा ।

चिकित्सतिभिषक्सर्वास्त्रिकालावेदनाइति ।

ययायुक्त्यावदन्त्येकेसायुक्तिरुपधार्य्यताम् ॥ ८५ ॥

चिकित्सक भूत,भविष्य और वर्त्तमान इन तीनों प्रकारकी व्याधियोंकी चिकित्सा कर सकता है। इनकी चिकित्सा करनेकी जिस युक्तिको आचार्योंने कथन किया है उसको तुम श्रवण करो ॥ ८५ ॥

पुनस्तच्छिरसःशूलंज्वरःसपुनरागतः । पुनःसकालोबलवांश्छर्दिःसापुनरागता॥ ८६ ॥ एभिःप्रपन्नैर्वचनैरतीतागमनंमतम्। कालश्चायमतीतानामार्त्तीनांपुनरागतः ॥ ८७ ॥ तमार्त्तिकालमुद्दिश्यभेषजंयत्प्रयुज्यते । अतीतानांप्रशमनंवेदनानांतदुच्यते ॥ ८८ ॥

शिरकी पीडाका एकवार शान्त होकर उसी प्रकार फिर प्रगट होजाना तथा ज्वर, खांसी और वमनका एकवार शान्त होकर फिर उसी प्रकार प्रगट होजाना अतीतागमन कहाजाता है । अतीत-(भूतकालकी) व्याधियें फिर पाहिलेकी समान आकर उपस्थित होजातीहैं । इसलिये उनका दौरा होनेसे प्रथम उनके अतीतकालके लक्षणोंको विचारकर औषधीका प्रयोग करना अतीतव्याधियोंकी चिकित्सा कही जातीहै।जैसे नित्य दोपहरके समय किसीके शिरमें पीडा होतीहो और सायंकालमें शान्त होजाय उस शान्तावस्थामें चिकित्सा करते समय जो पीडा व्यतीत होचुकीहै उसकाही लक्ष्य रखकर औषध प्रयोग कियाजाताहै । इसीप्रकार चातुर्थिकज्वर आदिमें जानना चाहिये इसको अतीतव्याधिकी चिकित्सा कहतेहैं ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ ८८ ॥

भविष्यत्रोगकी चिकित्सा ।

आपस्ताःपुनरागुर्याभिःशस्यंपुराहतम् । तथाप्रक्रियतेसेतुः प्रतिकर्मतथाश्रयेत् ॥ ८९ ॥ पूर्वरूपंविकाराणांदृष्ट्वाप्रादुर्भविष्यताम् । याक्रियाक्रियतेसाचवेदनांहन्त्यनागताम् ॥ ९० ॥

जिस जलकी बाढने पाहिले खेतीको नष्टकर डालाथा वह फिर आकर खेतीको नष्ट न करदेवे उसके बचावके लिये खेतकी रक्षाकारक सेतु आदि बना रखना अथवा नदीके वेगको देखकर खेतीके नष्टताका अनुमान करके बाढआनेसे पाहिले रक्षाका प्रबंध करलेना, जिसप्रकार भविष्यत् हानिकी रक्षाका उपाय है उसीप्रकार विकारोंके पूर्वरूपको देखकर उनके प्रकट होनेके पाहिले क्रिया करना अनागतव्याधि. अर्थात् भविष्यव्याधिकी चिकित्सा कहीजातीहै ॥ ८९ ॥ ९० ॥

वर्तमान व्याधिकी चिकित्सा ।

पारम्पर्य्यानुबन्धस्तुदुःखानांविनिवर्त्तते । सुखहेतूपचारेणसुखञ्चापिप्रवर्त्तते ॥ ९१ ॥ नसमायान्तिवैषम्यंविषमाःसमतां नच । हेतुभिःसदृशानित्यंजायन्तेदेहधातवः ॥ ९२ ॥

वर्तमान व्याधिकी चिकित्सामें कोई आक्षेप नहीं होसकता क्योंकि रोगका परम्परासे जो अनुबंध चलाआताहै अर्थात् क्रमपूर्वक क्षणक्षणमें रोग जो कष्ट आदि देरहाहै वह चिकित्साद्वारा निवृत्त होनेसे रोगीको सुख प्राप्त होताहै और सुखके लियेही चिकित्साकी प्रवृत्ति है तथा समधातुयें विषमताको प्राप्त नहीं होतीं और संपूर्ण धातुयें सम भी नहीं होतीं क्योंकि जैसे हेतुओंका संयोग होताहै वैसी शरीरकी धातुयें होतीजातीहैं।इसलिये धातुओंकी अवस्थाका ध्यान रखतेहुए संपूर्ण औषधी तथा आहारादिकोंका प्रयोग वर्तमान व्याधिकी चिकित्सा कहीजातीहै ९१॥९२॥

युक्तिमेतांपुरस्कृत्यत्रिकालांवेदनांभिषक् ।
हन्तीत्युक्त्वाचिकित्सासानैष्ठिकीयाविनोपधाम् ॥ ९३॥

वैद्य इस युक्तिका आश्रय लेकर तीनोंकालकी व्याधियोंको नष्ट कर सकताहै । इस चिकित्साकोही नैष्ठिकी अर्थात् रोगनाशनी चिकित्सा कहतेहैं जो विना अनुचित लोभसे कीजाती है ॥ ९३ ॥

उपधाहिपरोहेतुर्दुःखदुःखाश्रयप्रदः । त्यागःसर्वोपधानाञ्चसर्वदुःखव्यपोहकः ॥ ९४ ॥ कोषकारोयथाह्यंशूनुपादत्तेवधप्रदान् । उपादत्तेतथार्थेभ्यस्तृष्णामज्ञःसदातुरः ॥९५॥ यस्त्वग्निकल्पानर्थाञ्ज्ञोज्ञात्वातेभ्योनिवर्त्तते । अनारम्भादसंयोगात्तंदुःखंनोपतिष्ठते ॥ ९६ ॥

जिस चिकित्सामें किसीप्रकारका लोभ, आदिक उपाधि न हो वह चिकित्सा सुखदायक होतीहै । क्योंकि उपाधिही दुःखका कारण है । सबप्रकारकी उपाधि-

योंको त्यागदेनाही परमसुखका अवलंबन है । जैसे कोषकार (पट्टकीट रेशमका कीडा) अपने सूत्रसे बंधकर आपही प्राणोंको त्यागदेतीहै वैसेही मूर्ख मनुष्य भी अतिलोभ आदि उपाधिसे ग्रसित हो अपनेको आपही नष्टकर डालताहै। जो मनुष्य काम, लोभादिक विषयोंको अग्निके समान समझकर उनसे निवृत्त रहतेहैं अर्थात् विषयोंकी उपाधियोंमें नहीं फंसते वह रागद्वेषसे किसी काममें प्रवृत्त न होकर दुःखके संयोगसे बचे रहतेहैं ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ ९६ ॥

दुःखके हेतु ।

धीधृतिस्मृतिविभ्रंशःसम्प्राप्तिःकालकर्मणाम् । असात्म्यार्थागमश्चेतिज्ञातव्यादुःखहेतवः ॥ ९७ ॥ विषमाभिनिवेशोयोनित्यानित्येहिताहिते ।ज्ञेयःसबुद्धिविभ्रंशः समंबुद्धिर्हिपश्यति ॥ ॥ ९८ ॥ विषयप्रवणंचित्तंधृतिभ्रंशान्नशक्यते । नियन्तुमहितादर्थाद्धृतिर्हिनियमात्मिका ॥ ९९ ॥ तत्त्वज्ञानेस्मृतिर्यस्यरजोमोहावृतात्मनः । भ्रश्यतेसस्मृतिभ्रंशःस्मर्त्तव्यंहिस्मृतौस्थितम् ॥ १०० ॥

बुद्धि, धृति और स्मृति इनका नष्ट होना अयोग्य काल और अयोग्य कर्मोंका संयोग होना तथा असात्म्य पदार्थोंका संयोग होना यह सब दुःखके हेतु हैं ।नित्य और अनित्य,हित और अहित इनको उलटी रीतिसे देखना अर्थात् हितको अहित जानना और अहितको हित जानना, नित्यको अनित्य, अनित्यको नित्य जानना इत्यादि सब बुद्धिका विभ्रंश कहाजाताहै । यथोचित रीतिपर जो पदार्थ जैसा है उसको वैसाही जानना उसको सद्बुद्धि कहते हैं । विषयोंमें चित्तको लगाना अप-

---

१ धीविभ्रंशम्–विषमाभिनिवेशोऽयथाभूतत्वेनाध्यवसानम्–नित्यत्वे–अनित्यमिति, एवं हितेऽहितमहिते च हितमिति या बुद्धिः स बुद्धिभ्रंशः, अथ कथमयं बुद्धिविभ्रंशशब्देनोच्यत इत्याह–"समं बुद्धिर्हि पश्यति" उचिता बुद्धिः समं यथाभूतं यस्मात् पश्यति, तस्मादसमदर्शनं बुद्धिविभ्रंश उचित एवेत्यर्थः ॥ ६० ॥

धृतिभ्रंशम्–विषयप्रवणं विषयेषु सक्तम्, नियन्तुमिति व्यावर्तयितुं, धृतिर्हि नियमात्मिकेति, यस्मात् धृतिरकार्य्यप्रसक्तं मनो निवर्त्तयति स्वरूपेण, तस्मात् मनोनियमं कर्त्तुमशक्ता धृतिः स्वकर्म्मभ्रष्टा भवतीत्यर्थः ॥ ६१ ॥

स्मृतिभ्रंशम्–तत्त्वज्ञाने स्मृतिर्यस्य भ्रश्यते इति योजना, 'स्मर्तव्यं हि स्मृतौ स्थितम्' इति स्मर्तव्येन सम्मतस्यार्थस्य स्मरणं प्रशस्तस्मृतिधर्म्मः, तत्र तत्त्वज्ञानस्य शिष्टानां स्मर्तव्येन स्मर्तव्यस्य यदस्मरणम्, तत् स्मृत्यपराधाद् भवतीत्यर्थः ॥ ६२ ॥

नेको विषयोंसे न हटासकना धृतिभ्रंश कहाजाताहै। क्योंकि धृतिही महत् अर्थोंको नियममें लानेवाली होनेसे नियमात्मिका कहीजातीहै। रजोगुणसे और मोहसे आवृत हुए मनुष्यकी स्मरणशक्तिका नष्ट होजाना स्मृतिभ्रंश कहाजाताहै। ज्ञानका स्मरण रहनाही स्मर्त्तव्य विषय है और उस स्मर्त्तव्य विषयके धारण करनेवाली स्मृति होतीहै ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ ९९ ॥ १०० ॥

प्रज्ञापराध।

धीधृतिस्मृतिविभ्रष्टःकर्मयत्कुरुतेऽशुभम्। प्रज्ञापराधंतंविद्यात्सर्वदोषप्रकोपणम्॥१०१॥उदीरणंगतिमतामुदीर्णानाञ्चनिग्रहः। सेवनंसाहसानाञ्चनारीणाञ्चातिसेवनम् ॥ १०२ ॥ कर्मकालातिपातश्चमिथ्यारम्भश्चकर्मणाम् । विनयाचारलोपश्चपूज्यानाञ्चाभिधर्षणम् ॥ १०३ ॥ ज्ञातानांस्वयमर्थानामहितानांनिषेवणम्। परमौन्मादिकानाञ्चप्रत्ययानांनिषेवणम् ॥ १०४ ॥ अकालादेशसञ्चारौमैत्रीसंक्लिष्टकर्मभिः। इन्द्रियोपक्रमोक्तस्यसद्वृत्तस्यचवर्जनम् ॥ १०५ ॥ ईर्ष्यामानमदक्रोधलोभमोहमदभ्रमाः। तज्जंवाकर्मयत्क्लिष्टंक्लिष्टंयद्देहकर्मच ॥१०६॥ यच्चान्यदीदृशंकर्मरजोमोहसमुत्थितम्। प्रज्ञापराधंतंशिष्टाब्रुवतेव्याधिकारणम् ॥ १०७ ॥ बुद्ध्याविषमविज्ञानंविषमञ्चप्रवर्त्तनम्। प्रज्ञापराधंजानीयान्मनसोगोचरंहितत् ॥ १०८ ॥

बुद्धि, धृति और स्मृतिके नष्ट होनेसे यह मनुष्य जिन अशुभ कर्मोंको करताहै उसको प्रज्ञापराध अर्थात् बुद्धिका दोष कहते हैं। और वह बुद्धिका दोष सब दोषोंको कुपित करनेवाला होताहै। जैसे—काम, क्रोधादि वेगोंको न रोकना और मल मूत्रादि वेगोंको रोकलेना अयोग्य साहस करना, अति स्त्रीसंग करना, संपूर्ण कर्मोंको यथासमय न करना, कर्मोंका मिथ्यारंभ करना, विनय और आचार त्यागदेना, माता पिता गुरुजन आदिकोंका अपमान करना, जानबूझकर बुरे कर्मोंका सेवन करना, परम उन्मादकेसे कर्मोंका करना, बेसमय निंदित स्थानमें डोलना, फिरना, खोटे कर्मोंमें प्रेम रखना, इन्द्रियोपक्रम अर्थात् इन्द्रियोपयोगी श्रेष्ठ आचरणका त्यागदेना, ईर्षा, मान, मद, क्रोध, लोभ, मोह और भ्रम उनका धारण करना और इनसे उत्पन्न होनेवाले निंदित कर्मोंका सेवन करना एवम् देहजनित और मनके सब खोटे कर्मोंका सेवन तथा इसी प्रकारके अन्य कर्म जो रजो-

गुण और तमोगुणसे उत्पन्न होते हैं उनका सेवन करना भद्रपुरुष इन सब कर्मोंको प्रज्ञापराध कहते हैं प्रज्ञापराधही व्याधियोंके उत्पन्न करनेका हेतु है । योग्य विषयको विपरीत भावसे समझना और अयोग्यको योग्य समझना इस प्रकार जो बुद्धिका दोष है उसीको प्रज्ञापराध कहतेहैं । वह प्रज्ञापराध मनके आधीन है ॥ ॥ १०१ ॥ १०२ ॥ १०३ ॥ १०४ ॥ १०५ ॥ १०६ ॥ १०७ ॥ १०८ ॥

कालजनित रोग ।

निर्दिष्टाकालसम्प्राप्तिर्व्याधिनांहेतुसंग्रहे । चयप्रकोपप्रशमाः पित्तादीनांयथापुरा ॥ १०९ ॥ मिथ्यातिहीनलिंगाश्चवर्षान्ता रोगहेतवः । जीर्णभुक्तप्रजीर्णान्नकालाकालस्थितिश्चया॥११०॥ पूर्वमध्यापराह्णाश्चरात्र्यायामास्त्रयश्चये । येषुकालेषुनियतायेरोगास्ते च कालजाः ॥ १११ ॥ अन्येद्युष्कोद्व्यहग्राहीतृतीयकचतुर्थकौ । स्वेस्वेकालेप्रवर्त्तन्तेकाले ह्येषांबलागमः ॥ ११२ ॥ एतेचान्येचयेकेचित्कालजाविविधागदाः । अनागते चिकित्स्यास्तेबलकालौविजानता ॥ ११३ ॥

जिसप्रकार काल सम्प्राप्ति तथा व्याधियोंके हेतु संग्रह (कियंतः शिरसीय अध्याय)में पित्त आदिकोंका चय, प्रकोप और प्रशमन पहिले कथनकर आये हैं तथा शीत आदिक वर्षापर्यन्त ऋतुओंका-मिथ्यायोग, अतियोग, हीनयोग होनेसे रोग उत्पन्न होतेहैं । भोजनके जीर्ण होनेपर भोजनके समय, भोजनके पाककालमें दोषोंकी जिसप्रकार स्थिति होतीहै, पूर्वाह्ण, मध्याह्न और अपराह्णमें इसीप्रकार रात्रिके तीनोंभागोंमें और जिनकालोंमें जो रोग जिसप्रकार नियत हैं तथा जो जिसकालमें उत्पन्न होतेहैं एवम् इकतरा, द्व्याहिक, तृतीयक और चातुर्थिक ज्वर जिसप्रकार अपनेरकालमें आकर स्थित होतेहैं इन सबको कालजन्य व्याधियें कहतेहैं । बुद्धिमान् वैद्य इन व्याधियोंके प्रगट होनेकेकालसे पहिलेही चिकित्साद्वारा बल काल विचारकर उसका उपाय करे १०९॥११०॥१११॥११२॥११३॥

स्वाभाविकरोगोंका वर्णन ।

कालस्यपरिणामेनजरामृत्युनिमित्तजाः ।
रोगाःस्वाभाविकादृष्टाःस्वभावोनिष्प्रतिक्रियः ॥ ११४ ॥

कालके परिणामसे बुढापे और मृत्युके निमित्तसे जो रोग उत्पन्न होतेहैं उनको स्वाभाविकरोग कहतेहैं । स्वाभाविकरोगोंकी कोई चिकित्सा नहीं है ॥ ११४ ॥

निर्दिष्टंदैवशब्देनकर्मयत्पौर्वदैहिकम् ।
हेतुस्तदपिकालेनरोगाणामुपलभ्यते ॥ ११५ ॥

पूर्वजन्मके कियेहुए कर्मोंको दैव अथवा प्रारब्ध कहतेहैं । वह दैव भी काल पाकर रोगोंका कारण प्रतीत होताहै ॥ ११५ ॥

कर्मजरोगोंकी शान्ति ।

नहिकर्ममहत्किञ्चित्फलंयस्यनभुज्यते ।
क्रियाघ्नाःकर्मजारोगाःप्रशमंयान्तितत्क्षयात् ॥ ११६ ॥

ऐसा कोईभी सूक्ष्मसे सूक्ष्म और महान्‌से महान् कर्म नहीं है जिसका फल न भोगना पडता हो । वह कर्मसे उत्पन्न हुए रोग क्रिया अथवा प्रायश्चित्त करनेसे शान्त होजातेहैं ॥ ११६ ॥

श्रवणेन्द्रियका मिथ्यायोग ।

अत्युग्रशब्दश्रवणाच्छ्रवणात्सर्वशोनच । शब्दानाञ्चातिहीना-
नांभवन्तिश्रवणाज्जडाः॥११७ ॥परुषोद्भीषणाशस्ताप्रियव्यस-
नसूचकैः । शब्दैःश्रवणसंयोगोमिथ्यायोगःसउच्यते ॥११८॥

अत्यन्त उग्र शब्द सुनना और बहुत कालपर्यन्त तीक्ष्ण आवाजका सुनतेरहना श्रवणेन्द्रियका अतियोग है ।सर्वथा न सुनना अथवा अत्यन्त हीन शब्दोंका सुनना यह श्रवणेन्द्रियका अयोग है । कठोर शब्द, निंदित शब्द, अप्रिय शब्द और विपत्तिके याद दिलानेवाले शब्दोंका सुनना श्रवणेन्द्रियका मिथ्यायोग है । इन तीनों योगोंके संयोगसे श्रवणेन्द्रियमें जडता उत्पन्न होती है ॥ ११७ ॥ ११८ ॥

त्वगिन्द्रियका मिथ्यायोग ।

असंस्पर्शोऽतिसंस्पर्शोहीनसंस्पर्शएवच । स्पृश्यानांसंग्रहेणो-
क्तः स्पर्शनेन्द्रियबाधकः ॥ ११९॥योभूतविषवातानामका-
लेनागतश्चयः । स्नेहशीतोष्णसंस्पर्शोमिथ्यायोगः सउ-
च्यते ॥ १२० ॥

किसी वस्तुका भी स्पर्श न करना, अत्यंत स्पर्श करना,बहुत हीन स्पर्श करना, भूतसंस्पर्श होना, विषसंस्पर्श, तीक्ष्णवायुका संस्पर्श, वेसमयके स्नेह, शीत और उष्णका संस्पर्श मिथ्यायोग कहाजाताहै । स्पर्शनेन्द्रियका मिथ्यायोग होनेसे स्पर्शशक्ति हीन होजातीहै ॥ ११९ ॥ १२० ॥

दर्शनेन्द्रियका मिथ्यायोग ।

रूपाणांभास्वतांदृष्टिर्विनश्यतिचदर्शनात् ॥१२१॥दर्शनाच्चातिसूक्ष्माणांसर्वशश्चाप्यदर्शनात्। द्विष्टभैरवबभित्सदूरातिक्लिष्टदर्शनात् । तामसानाञ्चरूपाणांमिथ्यासंयोगउच्यते॥१२२॥

अत्यन्त प्रकाशवान् वस्तुओंको देखना,अत्यन्त सूक्ष्म पदार्थोंका देखना, सर्वथा किसी वस्तुको भी न देखना, द्वेषयुक्त, भयानक बभित्स पदार्थोंका देखना वहुत दूरसे वडी देरतक देखना और जिसके देखनेसे कष्ट हो उसको देखना,तथा तामसरूपोंका देखना यह सब दृष्टिका मिथ्यायोग कहाजाताहै ॥ १२१ ॥ १२२ ॥

रसनेन्द्रियका मिथ्यायोग ।

अत्यदानमनादानमोकसात्म्यादिभिश्चयत् ।
रसानांविषमादानमल्पादानञ्चदूषणम् ॥ १२३ ॥

रसविशेषोंको अत्यन्त ग्रहण करना, अथवा कोई रस भी विलकुल ग्रहण न करना, विपरीततासे ग्रहण करना, या अत्यन्तही हीनतासे ग्रहण करना, अत्यंत तीक्ष्णरसोंका ग्रहण करना रसनेन्द्रियका मिथ्यायोग कहाताहै । रसनेन्द्रियका मिथ्यायोग होनेसे जिह्वाकी शक्ति हीन होजातीहै ॥ १२३ ॥

घ्राणेन्द्रियका मिथ्यायोग ।

अतिमृद्वतितीक्ष्णानांगन्धानामुपसेवनम् ॥ १२४ ॥ असेवनं सर्वशश्चघ्राणेन्द्रियविनाशनम् । पूतिमूतविषाद्विष्टागन्धाये चाप्यनार्त्तवाः ॥ १२५ ॥ तैर्गन्धैर्घ्राणसंयोगोमिथ्यायोगः स उच्यते ॥ १२६ ॥

अति मृदु और अत्यन्त तीक्ष्ण गंधके सूंघनेसे या सर्वथा किसी गंधके न सूंघनेसे और दुर्गंध तथा विषदूषित अथवा जो बुरी प्रतीत हो उस गंधके सूंघनेसे, और अकालमें प्रगटहुई गंधके सूंघनेसे घ्राणेन्द्रियका मिथ्यायोग होनेसे घ्राणशक्ति हीन होजातीहै ॥ १२४ ॥ १२५ ॥ १२६ ॥

असात्म्यके लक्षण ।

इत्यसात्म्यार्थसंयोगस्त्रिविधोदोषकोपनः ।
असात्म्यमितितद्विद्यायन्नयातिसहात्मताम् ॥ १२७ ॥

इसप्रकार इन्द्रियोंका अयोग, अतियोग और मिथ्यायोग यह तीन प्रकारका असात्म्य संयोग होनेसे दोष कुपित होकर इन्द्रियोंको नष्ट करदेतेहैं । जो पदार्थ

अथवा जो विषय आत्माके साथ न मिले अर्थात् अपने स्वभावके अनुकूल न हो उसको असात्म्य कहतेहैं ॥ १२७ ॥

मिथ्यातिहीनयोगेभ्योयोव्याधिरुपजायते
शब्दादीनांसविज्ञेयोव्याधिरैन्द्रियकोबुधैः ॥ १२८ ॥

शब्दादिक विषयोंका श्रवणादि इन्द्रियोंसे मिथ्यायोग, अतियोग और हीनयोग होनेसे जो व्याधियें उत्पन्न होतीहैं उनको बुद्धिमान् लोग ऐन्द्रियकव्याधि कहते हैं ॥ १२८ ॥

वेदनानामशातानामित्यतेहेतवःस्मृताः ।
सुखहेतुर्मतस्त्वेकःसमयोगःसुदुर्लभः ॥ १२९

इसप्रकार असात्म्य पदार्थोंका सेवन अथवा मिथ्यायोगसे सेवन व्याधि उत्पन्न करनेका कारण होता है । और विधिवत् समानयोगसे सेवन करना सुखका हेतु होता है परन्तु सम्पूर्ण पदार्थोंका समयोगसे सेवन करना भी दुर्लभ है॥ १२९ ॥

सुखदुःखोंके प्रधानहेतु ।

नेन्द्रियाणिनचैवार्थाःसुखदुःखस्यहेतवः। हेतुस्तुसुखदुःखस्य योगोदृष्टश्चतुर्विधः ॥ १३० ॥ सन्तीन्द्रियाणिसन्त्यर्थायोगोन चनचास्तिरुक् । नसुखंकारणं तस्माद्योगएवचतुर्विधः ॥१३१ ॥

सुख और दुःखके हेतु न तो सम्पूर्ण इन्द्रिय हैं और न अर्थही(इन्द्रियोंके विषय) हैं । किन्तु चतुर्विध योगका होनाही सुखदुःखका हेतु होताहै।अर्थात् तीन प्रकारके असात्म्य योगोंका होना दुःखका कारण होताहै और केवल समयोगका होनाही सुखका कारण होताहै।सम्पूर्ण इन्द्रिय भी हों और इन्द्रियोंके विषय भी हों परंतु पूर्वोक्त चारप्रकारका योग न होनेसे न सुख होताहै और न व्याधिही होसकती है इसलिए सम्पूर्ण सुखदुःखोंका कारण यह चतुर्विध योगही होताहै ॥१३०॥१३१॥

नात्मेन्द्रियमनोबुद्धिगोचरंकर्मवाविन
सुखंदुःखंयथायच्चबोद्धव्यंतत्तथोच्यते ॥ १३२ ॥

यद्यपि सुख और दुःख आत्मा, इंद्रिय,मन और बुद्धिके गोचर हैं परंतु कर्मके संयोग विना वह नहीं होसकते कर्मही सुख और दुःखका इनके साथ संयोग कराताहै ।जिसप्रकार कर्म सुखदुःखके संयोगको कराताहै उसका कथन करतेहैं॥ १३२॥

स्पर्शनेन्द्रियसंस्पर्शःस्पर्शोमानसएवच ।द्विविधःसुखदुःखानां वेदनानांप्रवर्त्तकः ॥ १३३ ॥इच्छाद्वेषात्मिकातृष्णासुखदुःखा-

त्प्रवर्त्तते । तृष्णाचसुखदुःखानांकारणंपुनरुच्यते ॥ १३४ ॥
उपादत्तेहिसाभावान्वेदनाश्रयसंज्ञकान्। स्पृश्यतेनानुपादा-
नोनास्पृष्टोवेत्तिवेदनाः ॥ १३५ ॥

जैसे– स्पर्शनेन्द्रिय संस्पर्श और मानससंस्पर्श यह दो प्रकारके संस्पर्शरूपी जो कर्म हैं यही सुखदुःखके ज्ञानके प्रवर्त्तक हैं ।फिर सुखदुःखसे इच्छा द्वेषमयी तृष्णा उत्पन्न होती है ।वह तृष्णाही सुखदुःखका कारण कहीजातीहै क्योंकि वह तृष्णाही वेदनाश्रय भावोंको ग्रहण करती है । जिसका ग्रहण नहीं किया जाता उसका स्पर्श भी नहीं होता किसीप्रकारका भी स्पर्श न होनेसे पीडाकी उत्पत्ति नहीं होती ॥ १३३ ॥ १३४ ॥ १३५ ॥

वेदनाके स्थान ।

वेदनानामधिष्ठानंमनोदेहश्चसेन्द्रियः ।
केशलोमनखाग्रान्नमलद्रवगुणैर्विना ॥ १३६ ॥

मन और इन्द्रियुक्त शरीर पीडाका अधिष्ठान है । स्पर्शइन्द्रियरहित, केश, रोम, नख, मल, मूत्र और शरीरमें होनेवाले शब्द आदिक यह कोई भी वेदनाके अधिष्ठान नहीं हैं ॥ १३६ ॥

योग और मोक्ष ।

योगेमोक्षेचसर्वासांवेदनानामवर्त्तनम् । मोक्षोनिवृत्तिर्निःशे-
षायोगोमोक्षप्रवर्त्तकः ॥१३७॥ आत्मेन्द्रियमनोऽर्थानांसन्नि-
कर्षात्प्रवर्त्तते । सुखंदुःखमनारम्भादात्मस्थेमनसिस्थिते ॥
॥ १३८ ॥ निवर्त्ततेतदुभयंवशित्वञ्चोपजायते । सशरीरस्ययो-
गज्ञास्तंयोगमृषयोविदुः ॥ १३९ ॥

योग और मोक्षमें किसीप्रकारके दुःखादिक उत्पन्न नहीं होते । और मोक्षमें तो निःशेषरूपसे दुःखकी निवृत्तिही होतीहै और योगद्वाराही मोक्षकी प्राप्ति होतीहै । आत्मा,इंद्रिय मन और इंद्रियोंके विषय इनका संयोग होनेसेही सुखदुःखकी प्रवृत्ति है।योगावस्थामें मन निष्क्रिय होकर आत्मामें स्थित होजाताहै।इसलिये उस अवस्थामें सुखदुःखकी निवृत्ति होजातीहै और वशित्व उत्पन्न होजाताहै।सब इंद्रियोंको तथा मनको वशमें करलेनाही ऋषिलोग योग कथन करते हैं॥१३७॥१३८॥१३९।

अष्टविध योगबल ।

आवेशश्चेतसोज्ञानमर्थानांछन्दतः क्रिया । दृष्टिःश्रोत्रंस्मृतिः कान्तिरिष्टतश्चाप्यदर्शनम् ॥ १४० ॥ इत्यष्टविधमाख्यातं योगिनांबलमैश्वरम् । शुद्धसत्त्वसमाधानात्तत्सर्वमुपजायते १४१॥

सत्त्वगुणके प्रगट होनेसे योगियोंमें आठ प्रकारका ईश्वरीयबल आजाता है अथवा योगके प्रभावसे प्राप्त हुए ऐश्वर्यकृत बल आजाताहै, जैसे-आवेश अर्थात् परशरीरमें प्रवेश करना अथवा चित्तको पराचित्तमें प्रवेश करदेना संपूर्ण भूत भविष्यत्का जानलेना, इच्छानुसार क्रिया करना, योगदृष्टिसे संपूर्ण पदार्थोंको देख-लेना, दूरकी वार्तोको श्रवण करलेना, पूर्वजन्मके विषयोंको अथवा अन्य सर्व भावोंको स्मरण करलेना, दिव्य कान्तिका होना, प्रकट होना और अन्तर्धान हो जाना । यह ईश्वरीयबल योगाभ्याससे शुद्धसत्त्वगुणके प्रकट होजाने पर उत्पन्न हो जाते हैं ॥ १४० ॥ १४१ ॥

मोक्षप्राप्तिके उपाय ।

मोक्षोरजस्तमोऽभावाद्बलवत्कर्मसंक्षयात् ।
वियोगःकर्मसंयोगैरपुनर्भावउच्यते ॥ १४२ ॥

रजोगुण और तमोगुणका अभाव होनेसे और योगद्वारा बलवान् कर्मके क्षय होनेसे तथा कर्मके संयोगोंसे वियोग होनेसे जो अपुनर्भाव होताहै अर्थात् फिर जन्म लेनेका अभाव होजाता है उसको मोक्ष कहते हैं ॥ १४२ ॥

दुःखोंसे निवृत्तिके उपाय ।

सतामुपासनंसम्यगसतांपरिवर्जनम् ।
व्रतचर्य्योपवासश्चनियमाश्चपृथग्विधाः ॥ १४३ ॥

श्रेष्ठ पुरुषोंका सेवन, दुर्जनोंके संगका त्याग, ब्रह्मचर्यपालन और उपवास इन सबको धारण करना नियम कहाजाताहै ॥ १४३ ॥

धृतिके लक्षण ।

धारणंधर्मशास्त्राणांविज्ञानंविजनेरतिः ।
विषयेष्वरतिर्मोक्षेव्यवसायःपराधृतिः ॥ १४४ ॥

धर्मका धारण करना, विज्ञान, निर्जनस्थानमें रति (प्रीति), विषयोंमें वैराग्य, मोक्षसाधनमें तत्परता यह सब धृतिके लक्षण हैं ॥ १४४ ॥

स्मृतिके लक्षण ।

कर्मणामसमारंभः कृतानाश्चपरिक्षयः। नैष्कर्म्यमनहंकारः संयोगेभयदर्शनम् ॥ १४५॥ मनोबुद्धिसमाधानमर्थतत्त्वपरीक्षणम् । तत्त्वस्मृतेरुपस्थानात्सर्वमेतत्प्रवर्त्तते ॥ १४६ ॥

कर्मका अनारंभ, किये हुए कर्मोंका क्षय, गृहादिकोंका त्याग, निरहंकार, विषयोंमें भयदर्शन, मन और बुद्धिका समाधान, अर्थतत्त्वकी परीक्षा यह सब आत्मतत्त्वकी उत्कर्षतासे उत्पन्न होतेहैं। अर्थात् यह यौगिक स्मृतिके लक्षण हैं १४५॥ १४६

स्मृतिः सत्सेवनाद्यैश्चधृत्यन्तैरुपलभ्यते ।
स्मृत्यास्वभावंभावानांस्मरन्दुःखात्प्रमुच्यते ॥ १४७ ॥

महात्मादिकोंके सेवन आदि नियमोंसे, और संपूर्ण धृतिके गुणोंके उत्कर्षसे स्मृतिकी उपलब्धि होतीहै । उसी यौगिकस्मृतिद्वारा संपूर्ण भावोंका स्मरण होनेसे मनुष्य दुःखसुखसे छूट मोक्षका अधिकारी होजाताहै ॥ १४७ ॥

वक्ष्यन्तेकारणान्यष्टौस्मृतिर्यैरुपजायते । निमित्तरूपग्रहणात्सादृश्यात्सविपर्ययात् ॥१४८ ॥ सत्त्वानुबन्धादभ्यासाज्ज्ञानयोगात्पुनःश्रुतात् । दृष्टश्रुतानुभूतानांस्मरणात्स्मृतिरुच्यते ॥१४९॥

जिन आठकारणोंसे स्मृतिकी उत्पत्ति होतीहै उन आठ कारणोंका कथन करतेहैं । जैसे—निमित्त, रूपग्रहण, सादृश्य, विपर्यय, सत्त्वानुबंध, अभ्यास, ज्ञानयोग और पुनःश्रवण करना यह स्मृतिके उत्पन्न होनेके कारण हैं । देखेहुए, सुनेहुए, अनुभव कियेहुए भूतोंको स्मरण करनेसे इसको स्मृति कहतेहैं ॥ १४८ ॥ १४९ ॥

एतत्तदेकमयनंमुक्तैर्मोक्षस्यदर्शितम् । तत्त्वस्मृतिबलंयेनगतानपुनरागताः ॥ १५० ॥ अयनंपुनराख्यातमेतद्योगस्ययोगिभिः । संख्यातधर्मैःसांख्यैश्चमुक्तैर्मोक्षस्यचायनम् ॥१५१ ॥

योगीजनोंने यही मोक्षसाधनका एकमात्र मार्ग दिखायाहै।जो महात्मा तत्त्वस्मृतिके बलसे मोक्षको प्राप्त हुए हैं वह फिर कभी जन्मको धारण नहीं करते । इसीको योगियोंने योगका स्थान कथन किया है और विख्यातधर्मा सांख्यवादियोंने इसीको मोक्षका मार्ग कथन कियाहै ॥ १५० ॥ १५१ ॥

सर्वंकारणवद्दुःखमस्वञ्चानित्यमेवच। नचात्मकृतकंतद्धितत्र

चोत्पद्यतेस्वता ॥ १५२ ॥ यावन्नोत्पद्यतेसत्याबुद्धिर्नैतदहंय-
या । नैतन्ममचावेज्ञायज्ञःसर्वमातिवर्त्तते ॥ १५३ ॥

यह जो संपूर्ण भावहैं यह सब दुःखके कारण हैं । अपना कुछ नहीं है यह सब अनित्य है।आत्मा उदासीनहै इसलिये यह आत्माका कियाहुआ नहीं है।शरीरादिकोंमें ममता होना वृथाहै इत्यादिक सत्या बुद्धिकी जबतक उत्पत्ति नहीं होती तबतक अहंबुद्धि आदि नष्ट नहीं होते । जब सात्त्विकी बुद्धि उत्पन्न होनेसे यह मेरा नहीं मैं इन सबसे अलग हूं इत्यादि यथावत् विज्ञान प्राप्त होजाताहै तब यह आत्मा ज्ञानी होनेसे संपूर्णका त्याग कर देताहै ॥ १५२ ॥ १५३ ॥

मोक्षका रूप ।

तस्मिंश्चरमसंन्यासेसमूलाःसर्ववेदनाः । ससंज्ञाज्ञानविज्ञाना-
न्निवृत्तिंयान्त्यशेषतः ॥ १५४ ॥ अतःपरंब्रह्मभूतोभूतात्मानो-
पलभ्यते । निःसृतःसर्वभावेभ्यश्चिह्नंयस्यनविद्यते ॥ १५५ ॥
गतिर्ब्रह्मविदांब्रह्मतश्चाक्षरमलक्षणम् । ज्ञानंब्रह्मविदाञ्चात्रना-
ज्ञस्तज्ज्ञातुमर्हति ॥ १५६ ॥

जब आत्मामें इसप्रकार यथावत् ज्ञान होनेसे संन्यास उत्पन्न होजाता है तब संपूर्ण कामादिकवेदना अज्ञता, ज्ञान, विज्ञान यह सब निःशेषतासे निवृत्त होजातेहैं । फिर यह परब्रह्मभावको प्राप्त होकर शरीरआदिकोंको प्राप्त नहीं होता । इसप्रकार संपूर्ण भावोंसे मुक्त होनेपर इस पुरुषका कोई चिह्न बाकी नहीं रहता । वह ब्रह्म ब्रह्मके जाननेवालोंकी गति है अर्थात् ब्रह्मके जाननेवालेही उस अवस्थाको जान सकतेहैं और प्राप्त होसकतेहैं । वह अक्षर है और लक्षणरहित है। ब्रह्मज्ञानरहित मनुष्य उसको किसी प्रकार भी नहीं जान सकते ॥ १५४ ॥ १५५ ॥ १५६ ॥

---

१ चरमसन्न्यास इति पश्चाद्भाविसकलसन्न्यासे, प्रथमं हि मोक्षोपयोगित्वेन गुरुवचनात् क्रियासन्न्यासः कृत एव, परं स्वानुभावविरक्तेन न कृतः, अभ्यासादुद्भूतेन साक्षाद्दृष्टभावस्वभावेन यः सर्वसन्न्यासः क्रियते, तत्र समूला, सर्ववेदना ज्ञानादयश्च शरीरोपरमादेवोपरमन्ते; समूला इति सकारणाः, कारणञ्च बुद्ध्यादयः, संज्ञा आलोचनं निर्विकल्पकम्, ज्ञानं सविकल्पकम्; विज्ञानं बुद्ध्यवसायः, किम्वा, संज्ञया नामोल्लेखेन ज्ञानम्, विज्ञानं शास्त्रज्ञानम्, तत्त्वज्ञानमपि हि मोक्षं जनयित्वा निवर्त्तत एव कारणाभावात् ॥ सर्वविद्, इत्यादि प्रश्नस्योत्तरम्–अतः परमित्यादि । ब्रह्मभूत इति प्रकृत्यादिरहितः 'चिह्नं यस्य न विद्यते' इत्यनेन मुक्तात्मनः प्राणापानाद्यात्मलिंगाभावाद्गमकं चिह्नं नास्त्येवेति दर्शयति । न क्षरत्यन्यथात्वं न गच्छतीत्यनक्षरम्, अविद्यमानं लक्षणं यस्येत्यलक्षणम्, एतस्यैव मोक्षस्येतरपुरुषाऽज्ञेयतां दर्शयति–ज्ञेयमित्यादि । ब्रह्मविदामेवास्त्र मनाथ प्रत्येति, नाज्ञानामहंकारादिगृहीतानामित्यर्थः । संग्रहो व्यक्तः ।

अध्यायका संक्षिप्त वर्णन ।

प्रश्नाः पुरुषमाश्रित्य त्रयोविंशतिरुत्तमाः ।
कतिधापुरुषीयेऽस्मिन्निर्णीतास्तत्त्वदर्शिना ॥ १५७ ॥

इत्यग्निवेशकृते तन्त्रे चरकप्रतिसंस्कृते कतिधापुरुषीयं शारीरं समाप्तम् १

यहां अध्यायकी पूर्त्तिमें कहतेहैं कि इस कतिधापुरुषीय अध्यायमें तत्त्वज्ञाता महर्षि आत्रेयजीने पुरुषका आश्रय लेकर तेईसप्रकारके उत्तम प्रश्नोंके उत्तररूप निर्णयको विधिपूर्वक कथन कियाहै ॥ १५७ ॥

इति श्रीमहर्षिचर० शा० स्था० भा० टी० कतिधापुरुषीयशारीरं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः ।

अथातोऽतुल्यगोत्रीयं शारीरं व्याख्यास्याम इति ह स्माह भगवानात्रेयः ।

अब हम अतुल्यगोत्रीय शारीरनामक अध्यायकी व्याख्या करते हैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कथन करनेलगे ।

गर्भके चतुष्पादमें प्रश्न ।

अतुल्यगोत्रस्य रजःक्षयान्ते रहोविसृष्टं मिथुनीकृतस्य । किं स्याच्चतुष्पात्प्रभवं च षड्भ्यो यत्स्त्रीषु गर्भत्वमुपैति पुंसः ॥ १ ॥

जब स्त्री रजोधर्मसे शुद्ध हो लेवे अर्थात् रजोदर्शनके चार दिन उपरांत अपनेसे अन्य गोत्रवाले पुरुषके संयोगसे एकान्तस्थानमें रात्रिके समय गर्भाधान करनेसे उस ऋतुसे शुद्धहुई स्त्रीके गर्भाशयमें जो शारीरिक द्रव्य गिरताहै तथा चतुष्पाद और छः रसोंसे प्रगट होनेवाला जो जो द्रव्य है अर्थात् जो चतुष्पाद गर्भ कहाजाताहै और गर्भत्वको प्राप्त होताहै वह क्या पदार्थ है ॥ १ ॥

---

१ शरीरस्यादिसर्गं आध्यात्मिकचिकित्सां वर्णयित्वा सम्प्रति गर्भादिसर्गमभिधातुमतुल्यगोत्रीयोऽभिधीयते । २ रहो विसृष्टमिति विजने विसृष्टम् ।

उत्तर।

शुक्रंतदस्यप्रवदन्तिधीरायद्धीयते गर्भसमुद्भवाय। वाय्वग्निभू-
स्यब्गुणपादवत्तंषड्भ्योरसेभ्यःप्रभवश्चतस्य ॥ २ ॥

इसप्रकार अग्निवेशके प्रश्नको सुनकर भगवान् आत्रेयजी कहतेहैं कि,छः रसोंका अन्तिम परिणामभूत जो वीर्य है उसको बुद्धिमान् शुक्र कहतेहैं। वह पुरुषका शुक्रही स्त्रीकी योनिमें प्राप्तहो शुद्ध आर्तवसे मिलकर गर्भको प्रगट करताहै क्योंकि छः रसोंसे इसकी उत्पत्ति होतीहै इसलिये इसकी छःरसोंसे उत्पत्ति मानते हैं। वह वायु, अग्नि, पृथ्वी और जल इनके गुणोंसे युक्त होताहै इसलिये इसको चतुष्पाद कहते हैं ॥ २ ॥

गर्भके विषयमें प्रश्न।

सम्पूर्णदेहःसमयेसुखश्चगर्भःकथंकेनचजायतेस्त्री। गर्भंचिरा-
द्विन्दतिसप्रजापिभूत्वाथवानश्यतिकेनगर्भः ॥ ३ ॥

(प्रश्न) वह वायु, अग्नि, पृथ्वी और जलसे युक्त हुआ गर्भ किससमय संपूर्ण देहको प्राप्त होताहै ? और स्त्री किसप्रकार कैसे सुखपूर्वक प्रगट करतीहै। और जो स्त्रियें वंध्या दोषयुक्त नहीं भी हैं वह भी कभी कभी बहुत समयमें अर्थात् विलम्बसे गर्भको क्यों धारण करती हैं बहुतसी स्त्रियोंको गर्भ होकर फिर वह नष्ट क्यों हो जाता है ॥ ३ ॥

यथाक्रम उत्तर।

शुक्रासृगात्माशयकालसम्पद्यस्योपचारश्चहितैस्तथार्थैः।
गर्भश्चकालेचसुखीसुखश्चसञ्जायतेसम्पारिम्पूर्णदेहः ॥ ४ ॥

(उत्तर) शुद्ध शुक्र और शुद्ध रक्त, आत्मा, जरायु और काल इन सबके उत्तम होनेसे तथा हितकारक पदार्थोंके सेवनसे एवम् हितकारक भावोंके होनेसे अपने समयपर संपूर्णदेह हुआ वह सुखी गर्भ सुखपूर्वक उत्पन्न होताहै ॥ ४ ॥

---

१ अत्र वाय्वादिपादवति वक्तव्ये यद्गुणपदमधिकं विहितं, तेन प्रशस्तगुणवतामेवं वाय्वादीनां विशुद्धशुक्रारम्भकत्वमिति दर्शयति। वाय्वादिषु शुक्रारम्भकेषु "पादव्यपदेशेन चतुर्ष्वेव शुक्रारम्भकत्वं" विद्यते। आकाशन्तु यद्यपि शुक्रे पाञ्चभौतिकेऽस्ति, तथापि न पुरुषशरीरान्निर्गत्य गर्भाशयं गच्छति किन्तु भूतचतुष्टयमेव क्रियावद् भवति आकाशन्तु व्यापकमेव तत्रागतेन शुक्रेण सम्बद्धं भवति। आकाशस्य गमनाभावादिह गर्भाशयगमनाभिधानप्रस्तावे शुक्रगतत्वेनानभिधानम् अन्यत्रापि च भूतानां गमनप्रस्तावे आकाशमनभिधानत्वात् यथा "भूतैश्चतुर्भिः सहितः सुसूक्ष्मैर्मनोजवो देहमुपैति देहादिति। २ 'सम्पत्' शब्दः शुक्रादिभिः प्रत्येकमभिसम्बध्यते।

योनिप्रदोषान्मनसोऽभितापाच्छुक्रासृगाहारविहारदोषात् ।
अकालयोगाद्बलसंक्षयाच्चगर्भंचिराद्विन्दातिसप्रजापि ॥ ५ ॥

योनिके दोषसे और मनके अभितापसे शुक्र और रजके दोषसे, अहित आहार विहारके सेवनसे,अकालका योग होनेसे और बलके क्षीण होनेसे इत्यादि कारणोंसे जो स्त्रियें वंध्या नहीं भी हैं वह भी गर्भको बहुत विलंबसे धारण करतीहैं ॥ ५ ॥

मिथ्याकल्पित गर्भ ।

असृङ्निरुद्धंपवनेननार्य्यागर्भंव्यवस्यन्त्यबुधाःकदाचित् ।
गर्भस्यरूपंहिकरोतितस्यास्तदासृगस्त्रावविवर्द्धनानम् ॥ ६ ॥
तदाग्निसूर्य्यश्रमशोकरोगैरुष्णान्नपानैरथवाप्रवृत्तम् ।
दृष्ट्वासृगेकेनचगर्भसज्ञाःकेचिन्नराभूतहृतंवदन्ति ॥ ७ ॥

जब गुल्म आदिका याग होनेसे वायु स्त्रीके रजोधर्मको रोकदेताहै तब बहुतसे मूर्खलोग यह समझ लेतेहैं कि यह गर्भ है और वह मासिकऋतुके स्राव न होनेसे वृद्धिको प्राप्त हो गर्भकेसे रूपोंको धारण कर लेताहै।जब कभी अचानक अग्नि अथवा सूर्यके संतापसे वा किसी शोक या रोगसे अथवा गर्मअन्नपानके सेवनसे स्राव होने लगताहै तो उस रुधिरको देखकर और शरीरमें पहिलेके समान गर्भकेसे चिह्न न पाकर कोई २ कहनेलगतीहै कि इस गर्भको भूतोंने नष्ट करडाला है ॥ ६ ॥ ७ ॥

ओजोऽशनानांरजनीचराणामाहारहेतोर्नशरीरमिष्टम् ।
गर्भंहरेयुर्यदितेनमातुर्लब्धावकाशंनहरेयुरोजः ॥ ८ ॥

परन्तु यह सब विश्वास उनका मूर्खताका होताहै क्योंकि भूत, प्रेत केवल ओजकोही अशन करनेवाले हैं शरीरको वह नहीं खाते यदि वह स्त्रीके शरीरमें प्रवेश होकर गर्भको नष्ट करते तो माताके ओजको पीकर उसको नष्ट क्यों न कर डालते इस लिये यह सब उनका विश्वास मूर्खताका जानना ॥ ८ ॥

एक गर्भमें अनेक सन्तान होनेके विषयमें प्रश्न ।

कन्यांसुतंवासहितौपृथग्वासुतौसुतेवातनयान्बहून्वा ।
कस्मात्प्रसूतेसुचिरेणगर्भमेकोभिवृद्धिश्चयमेऽभ्युपैति ॥९ ॥

(प्रश्न) गर्भसे कन्या किस प्रकार उत्पन्न होती है । पुत्र कैसे होताहै । दो पुत्र या दो कन्या किस तरह होतेहैं । अथवा कन्या और पुत्र मिलकर दो कैसे होतेहैं। एकही गर्भसे बहुतसे पुत्र कैसे प्रगट होते हैं । प्रसूत होनेमें अधिक विलंब किस प्रकार होताहै और एक गर्भसे यदि दो बालक उत्पन्न हों तो उनमें एक हृष्टपुष्ट और एकके कृश होनेका क्या कारण है ॥ ९ ॥

उत्तर ।

रक्तेनकन्यामधिकेनपुत्रंशुक्रेणतेनद्विविधीकृतेन ।
बीजेनकन्याश्वसुतश्वसूतेयथास्वबीजान्यतराधिकेन ॥ १० ॥
शुक्राधिकंद्वैधमुपैतिबीजंयस्यासुतौसासहितौप्रसूते ।
रक्ताधिकंवायदिभेदमेतिद्विधासुतेसासहितेप्रसूते ॥ ११ ॥

(उत्तर) गर्भाधानके समय स्त्रीके रक्तकी अधिकता होनेसे कन्या उत्पन्न होती है, और पुरुषके शुक्रकी अधिकता होनेसे पुत्र उत्पन्न होता है। यदि वह दोनों मिलते समय गर्भाशयकी वायुसे दो विभागको प्राप्त होजांय तो उनमें एक भागमें रक्तकी अधिकता एकमें वीर्यकी अधिकता होनेसे एक कन्या और एक पुत्र उत्पन्न होताहै । यदि उस समय शुक्रकी अधिकता हो फिर शुक्र और रज मिलकर दो विभाग होजांय तो दो पुत्र उत्पन्न होतेहैं । इसी प्रकार रजकी अधिकता होनेसे दो कन्यायें उत्पन्न होती हैं ॥ १० ॥ ११ ॥

भिनत्तियावद्बहुधाप्रपन्नःशुक्रार्त्तवंवायुरतिप्रवृद्धः ।
तावन्त्यपत्यानियथाविभागंकर्मात्मकान्यस्ववशात्प्रसूते॥१२॥

यदि गर्भाशयमें अत्यन्त बढा हुआ वायु उस रज वीर्यके पांच चार विभाग बना देवे तो कर्माधीन उतने बालक गर्भसे प्रगट होते हैं ॥ १२ ॥

आहारमाप्नोतियदानगर्भःशोषंसमाप्नोतिपरिस्रुतिंवा ।
तंस्त्रीप्रसूतेसुचिरेणगर्भंपुष्टोयदावर्षगणैरपिस्यात् ॥ १३ ॥

जब गर्भको आहार नहीं मिलता या गर्भवती स्त्री अत्यन्त हानिकारक रूक्ष आदिपदार्थोंका सेवन करतीहै तब गर्भ सूखजाताहै अथवा गिर भी जाताहै।यदि वह गर्भ सूखजाताहै तो बहुत कालमें पुष्ट होता और बहुत विलंबसे उत्पन्न होताहै । कभी २ उस गर्भके प्रगट होनेमें एकवर्षसेभी अधिक समय लगजाताहै ॥ १३ ॥

कर्मात्मकत्वाद्विषमांशभेदाच्छुक्रासृजंवृद्धिमुपैतिकुक्षौ ।
एकोधिकोन्यूनतरोद्वितीयएवंयमेऽप्यभ्यधिकोविशेषः॥ १४ ॥

कर्माधीन रज और वीर्यके बडे छोटे दो अंश होजानेसे वह दोनों भाग कुक्षीमें वृद्धिको प्राप्त होकर जब समयपर उत्पन्न होतेहैं तो उनमें एक बडा और एक छोटा होताहै ॥ ॥ १४ ॥

गर्भसे नपुंसकादि होनेके हेतु।

कस्माद्द्विरेताःपवनेन्द्रियोवासंस्कारवाहीनरनारिषण्डः।
वक्रीतथेर्ष्याभिरतिःकथंवासञ्जायतेवातिकषण्डकोवा ॥ १५ ॥

(प्रश्न) द्विरेता-द्विरेता किसप्रकार होता है। पवनेन्द्रिय कैसे होताहै। और संस्कारवाही किस कारणसे होताहै। नरखण्ड किस कारणसे होताहै। नारीखण्ड किस कारणसे होताहै। नारीखण्ड कैसे होताहै। वक्री कैसे होताहै।ईर्षक किसप्रकार होताहै। वातिकखण्ड होनेके क्या कारण हैं॥ १५॥

बीजात्समांशादुपतप्तबीजात्स्त्रीपुंसलिङ्गीभवतिद्विरेताः।शुक्राशयंगर्भगतस्यहत्वाकरोतिवायुःपवनेन्द्रियत्वम् ॥ १६ ॥
शुक्राशयद्वारविघट्टनेनसंस्कारवाहंहिकरोतिवायुः।मन्दाल्पबीजावबलावहर्षौक्लीबौचहेतुर्विकृतिद्वयस्य ॥ १७ ॥ मातुर्व्यवायप्रतिघेनवक्रीस्याद्बीजदौर्बल्यतयापितुश्च। ईर्ष्याभिभूतावपि मन्दहर्षावीर्ष्यारतेरेववदन्तिहेतुम् ॥१८॥ वाय्वग्निदोषाद्वृषणौतुयस्यनाशंगतौवातिकषण्डकःसः। इत्येवमष्टौविकृतिप्रकाराःकर्मात्मकानामुपलक्षणीयाः ॥ १९ ॥

(उत्तर) गर्भाधानके समय रज और वीर्य दोनों समांश अर्थात् वरावर होनेसे गर्भ हो जो संतान होतीहै उसको द्विरेता नपुंसक कहतेहैं। यह स्त्री और पुरुषकेसे लक्षणवाला होताहै। जब वायु गर्भके शुक्राशयको नष्ट करदेताहै उससे जो वालक प्रगट होताहै उसको पवनेंद्रिय (नपुंसक) कहते हैं इसको वीर्य नहीं होता। यदि वायु गर्भमें शुक्राशयके द्वारको रोकदेवे तो उस गर्भसे उत्पन्नहुए सन्तानको शुक्रवाह कहते हैं। इस पुरुषके शरीरमें वीर्यांश होतेहुए भी वीर्य निकल नहीं सकता।माता पिताके अत्यन्त अल्प और दुर्वल वीर्य होनेसे तथा अप्रसन्न होकर मैथुन करनेसे जो गर्भ होताहै उससे यदि पुरुषकेसे लक्षणवाला उत्पन्न हो तो नरषण्ड कहते हैं और स्त्रीके लक्षणवाला हो तो नारीषण्ड कहते हैं। स्त्री पुरुषके समान ऊपर हो और पुरुष स्त्रीके समान नीचे हो उस अवस्थामें गर्भ रहनेसे और पुरुषका वीर्य कम होनेसे जो संतान होती है उसको वक्री कहतेहैं। यदि वह पुरुष हो तो स्त्रीके लक्षणवाला होताहै और स्त्री हो तो पुरुषके लक्षणवाली होतीहै। गर्भाधानके समयमें मातापिताके ईर्षायुक्त तथा मन्दहर्ष होनेसे जो सन्तान होतीहै उसको ईर्षक कहतेहैं। वायु और अग्निके दोषसे जिसके दोनों फोते नष्ट होगयेहों उसको वातिकषण्ड

कहते हैं इस प्रकार अपने कर्मदोषसे यह आठ प्रकारके गर्भकी विकृतियोंसे उत्पन्न होनेवाले नपुंसक कहेजाते हैं ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥

गर्भस्यसद्योऽनुगतस्यकुक्षौस्त्रीपुंनपुंसामुदरस्थितानाम् ।
किंलक्षणंकारणमिष्यतेकिंसरूपतांयेनचयात्यपत्यम् ॥ २० ॥

(प्रश्न) तत्काल हुए गर्भके क्या लक्षण होतेहैं गर्भमें कन्या है अथवा पुरुष है या नपुंसक है इनके पृथक् २ जाननेके क्या लक्षण होते हैं। सब संतानोंका एकसा स्वरूप न होनेमें क्या कारण है ॥ २० ॥

सद्योगर्भके लक्षण ।

निष्ठीविकागौरवमङ्गसादस्तन्द्राप्रहर्षौहृदयव्यथाच ।
तृप्तिश्चबीजग्रहणञ्चयोन्यागर्भस्यसद्योऽनुगतस्यलिङ्गम् ॥ २१ ॥

(उत्तर) सद्योगृहीतगर्भाके लक्षण ये हैं जैसे—मुखसे थूकका आना, शरीर भारी होना, जांघोंका रहसा जाना, ग्लानि, तन्द्रा, अप्रहर्ष, हृदयमें व्यथा, विनाही भोजन तृप्ति, योनिका फड़कना यह सब योनिद्वारा बीज ग्रहण करनेके अर्थात् तत्काल गर्भ होनेके लक्षण हैं ॥ २१ ॥

गर्भस्थबालकादिका परिचय ।

सव्यांगचेष्टापुरुषार्थिनीस्त्रीस्त्रीस्वप्नपानाशनशीलचेष्टा।सव्यां-
गगर्भानचवृत्तगर्भासव्यप्रदुग्धास्त्रियमेवसूते ॥ २२॥ पुत्रन्त्व-
तोलिङ्गविपर्ययेण व्यामिश्रलिङ्गाप्रकृतिंतृतीयाम्।गर्भोपपत्तौ
तुमनःस्त्रियायंजन्तुंव्रजेत्तत्सदृशंप्रसूते ॥ २३ ॥

गर्भधारण होजानेके अनन्तर जो स्त्री वामअंगसे अधिक वर्ताव करे अथवा जिसका वामअंग भारी हो जिसको पुरुषसंगकी इच्छा हो, निद्रा अधिक आतीहो खानेपीनेकी अधिक इच्छा हो, अधिक चेष्टा करतीहो, जिसके वामभागमें गर्भके लक्षण हों और गर्भ लम्बासा प्रतीत होताहो, वामस्तनमें प्रथम दूधका संचार हो उस स्त्रीके गर्भसे कन्या उत्पन्न होतीहै ।इससे विपरीत अर्थात् दहिनाअंग भारी हो दाहिने स्तनमें दूधकी प्रवृत्ति हो,दाहिनी ओर गर्भस्थित प्रतीत हो इत्यादि लक्षणोंसे पुत्रवाला गर्भ जानना चाहिये ।जिस गर्भमें दोनोंके लक्षण बराबर हों उसमें नपुंसक जानना चाहिये । गर्भाधानके समय स्त्रीका मन जैसे पुरुषमें होता है वैसी स्वरूप-वाली संतान उत्पन्न होती है ॥ २२ ॥ २३ ॥

गर्भस्यचत्वारिचतुर्विधानिभूतानिमातापितृसम्भवानि । आ-
हारजन्यात्मकृतानिचैवसर्वस्यसर्वाणिभवन्तिदेहे ॥ २४ ॥
तेषांविशेषाद्बलवन्तियानिभवन्तिमातापितृकर्मजानि । तानि
व्यवस्येत्सदृशत्वलिङ्गःसत्त्वंयथानूकमपिव्यवस्येत् ॥ २५ ॥

आत्मा और इन चार महाभूतोंसे गर्भ प्रगट होताहै । वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी यह गर्भके चारों महाभूत मातापिताके चार महाभूतोंसेही उत्पन्न होते हैं फिर वह गर्भशरीर माताके आहारसे पुष्ट होताहै । उस गर्भशरीरके स्वरूप आदि कल्पनामें उसके किये शुभाशुभ कर्मोंकोही कारण मानना चाहिये। उपरोक्त चारमहाभूत संपूर्ण देहधारियोंके शरीरमें मातापिताकी सादृश्यता आदि होनेके कारण होतें हैं। उन चार महाभूतोंमें पिताके अंश बलवान् होनेसे पिताके समान,माताके अंश बलवान् होनेसे माताके समान अथवा इन चारोंमें भी जो बलवान् हो उस गुणवाली संतान होतीहै ॥ २४ ॥ २५ ॥

कस्मात्प्रजांस्त्रीविकृतांप्रसूतेहीनाधिकाङ्गींविकलेन्द्रियांच ।
देहात्कथंदेहमुपैतिचान्यमात्मासदाकैरनुबध्यतेच ॥ २६ ॥

(प्रश्न) विकृत संतान होनेमें क्या कारण है । हीनांग तथा अधिकांग संतान किस कारणसे प्रगट होतीहै, विकलेन्द्रिय संतान क्यों होतीहै । एक देहसे दूसरी देहमें आत्मा कैसे पहुंच सकतीहै। और आत्मा किन बंधनोंसे बंधीहुई दूसरे शरीरमें प्रवेश करती है ॥ २६ ॥

गर्भकी विकृतिका कारण ।

बीजात्मकर्म्माशयकालदोषैर्मातुस्तदाहारविहारदोषैः । कुर्व-
न्तिदोषाविविधानिदुष्टाःसंस्थानवर्णेन्द्रियवैकृतानि ॥ २७ ॥
वर्षासुकाष्ठाश्मघनाम्बुवेगास्तरोःसरित्स्रोतसिसंस्थितस्य ।
यथैवकुर्य्युर्विकृतिंतथैवगर्भस्यकुक्षौनियतस्यदोषाः ॥ २८ ॥

(उत्तर) बीजके विकारसे अथवा अपने किये हुये कर्मोंके दोषसे माताके किये अहित आहार विहारके दोषसे कुपितहुए वातादि दोष गर्भके आकार, वर्ण, तथा इन्द्रियोंको बिगाड देतेहैं । फिर वह दोष शरीरके अंग और वर्ण,तथा इन्द्रियोंको न्यून अधिक, कुरूप तथा विकल कर देतेहैं । जैसे–वर्सातमें,काष्ठ, पत्थर,मेघ और जल इकट्ठे होकर नदीके किनारेके वृक्षोंको टेढे कुरूपादि कर देतेहैं उसीप्रकार दोष कुपित होकर कुक्षिमें स्थित हो गर्भको बिगाड देतेहैं ॥ २७ ॥ २८ ॥

आत्माके देहभरमें प्राप्त होनेका कारण ।

भूतैश्चतुर्भिःसहितःसुसूक्ष्मैर्मनोजवोदेहमुपैतिदेहात् । कर्म्मात्मकत्वान्नतुतस्यदृश्यंदिव्यंविनादर्शनमस्तिरूपम् ॥ २९ ॥

ससर्वगःसर्वशरीरभृच्चसविश्वकर्म्मासचविश्वरूपः । सचेतनाधातुरतीन्द्रियश्चसनित्ययुक्सानुशयःसएव ॥ ३० ॥

प्रथम देह त्याग देनेके अनन्तर सूक्ष्मरूपसे चारों भूतोंके साथ संयुक्त हुआ आत्मा अपने कियेहुए कर्मोंके आधीन होकर मनके वेगके समान शीघ्र गर्भमें प्राप्त होजाताहै । जिस समय सूक्ष्म अंशोंसहित आत्मा गर्भमें आकर प्रवेश करताहै उसको प्राणी दिव्यदृष्टिके विना नहीं देख सकताहै । वह आत्माही सर्वगामी, सर्वशरीरभृत्, विश्वकर्मा एवं विश्वरूप है । वही आत्मा शरीरमें चेतनारूप धातु है, अतीन्द्रिय है, शरीरसे नित्य संबंध रखनेवाला है । (मोक्ष होनेपर शरीरसे सम्बन्ध छोडदेताहै) सुखदुःखको जाननेवाला है॥ २९ ॥ ३० ॥

रसात्ममातापितृसम्भवानिभूतानिविद्याद्दशषट्चदेहे । चत्वारितत्रात्मनिसंश्रितानिस्थितस्तथात्माचचतुर्षुतेषु ॥ ३१ ॥

रस, आत्मा, मातापितासे प्राप्त चारभूत, दश इन्द्रिय तथा छः धातुएँ यह सब तत्त्व देहमें स्थित रहतेहैं ।इनमें सूक्ष्म चतुर्भूत आत्माके आश्रित हैं और आत्मा उन चतुर्भूतोंके आश्रित है।इस प्रकार इनका परस्पर मोक्षपर्यन्त नित्य संबंध रहताहै ३१॥

भूतानिमातापितृसम्भवानिरजश्चशुक्रञ्चवदन्तिगर्भे ।आप्याय्यतेशुक्रमसृक्चभूतैर्यैस्तानिभूतानिरसोद्भवानि ॥ ३२ ॥

भूतानिचत्वारितुकर्म्मजानियान्यात्मलीनानिविशन्तिगर्भम् । सद्बीजधर्माह्यपरापराणिदेहान्तराण्यात्मनियान्तियानि ॥ ३३॥

गर्भमें माताका रज और पिताका वीर्य जो है इन्ही दोनोंको मातापितासे उत्पन्न हुए चतुर्भूत कहतेहैं । यह सब भूत उस रक्त शुक्रकाही पालन करतेहैं । यद्यपि यह चारों भूत छः रसोंसे मातापिताके शरीरमें उत्पन्न होतेहैं। परन्तु यह चतुर्भूत अपने पूर्वजन्मके किये कर्मके आधीनही होकर आत्मसंसृत हुए गर्भमें प्रवेश करते हैं । यह

---

१ आकाश व्यापक होनेसे गर्भमें स्वयं सम्मिलित होताहै आकाशमें गमनशीलता न होनेसे और चारभूतोंके समान शुक्रजनक न होनेसे तथा शुक्रमें चारभूतोंके समान न जानेसे यहां आकाशको गिना गया। इनमें आकाश मिलनेका क्रम चौथे अध्यायके पांचवें सूत्रमें वर्णन कियाहै ।

आत्मायुक्त भूतसमुदाय अपने किये कर्मके आधीन बीजस्वरूप होतेहुए वारम्वार अच्छे और बुरे शरीरोंको धारण करतेह ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

रूपाद्धिरूपप्रभवःप्रसिद्धःकर्म्मात्मकानांमनसोमनस्तः ।
भवन्तियेत्वाकृतिबुद्धिभेदारजस्तमस्तत्रचकर्म्महेतुः ॥३४॥
अतीन्द्रियैस्तैरतिसूक्ष्मरूपैरात्माकदाचिन्नवियुक्तरूपः । नकर्म्मणानैवमनोमतिभ्यांनचाप्यहंकारविकारदोषैः ॥ ३५ ॥
रजस्तमोभ्यान्तुमनोऽनुबद्धंज्ञानंविनातत्रहिसर्वदोषाः । गतिप्रवृत्त्योस्तुनिमित्तमुक्तंमनःसदोषंबलवच्चकर्म्म ॥ ३६ ॥

जैसे बीज अपने समानही अंकुरको उत्पन्न करनेवाला होताहै । उसीप्रकार गर्भका स्वरूप भी उसके बीजके समान होताहै । पूर्वजन्मके कियेहुए कर्मके आधीन मनसेही गर्भका मन उत्पन्न होताहै । आकृतिका भेद आर बुद्धिकी विशेषता तथा कर्मादिकोंकी विशेषतामें भी रजोगुण और तमोगुण कारण होतेहैं उन अतींन्द्रिय तथा अत्यंत सूक्ष्मभूत समूहसे आत्मा कभी पृथक् नहीं होसकता और वह भूतगण कर्म, मन, बुद्धि और अहंकारसे अलग नहीं होसकते । मनका रजोगुण और तमोगुणसे नित्यसंबंध है इसीलिये ज्ञानके विना अन्य इसमें संपूर्ण दोषही दोष होतेहैं । दोषयुक्त मन और बलवान् कर्म मनुष्यकी गति और प्रवृत्तिके निमित्त होतेहैं ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

रोगाःकुतःसंशमनंकिमेषांहर्षस्यशोकस्यचकिंनिमित्तम् । शरीरसत्त्वप्रभवाविकाराःकथंनशान्ताःपुनरापतेयुः ॥ ३७ ॥

(प्रश्न) रोग किसप्रकार कहांसे उत्पन्न होतेहैं । उनका शान्तकर्त्ता उपाय क्या है आनन्द और शोक होनेका कारण क्या है । शारीरिक तथा मानासिक संपूर्ण विकार कैसे शान्त होकर फिर उत्पन्न नहीं होते ॥ ३७ ॥

प्रज्ञापराधोविषमास्तदर्थाहेतुस्तृतीयःपरिणामकालः । सर्वामयानांत्रिविधाचशान्तिर्ज्ञानार्थकालाःसमयोगयुक्ताः ॥ ३८॥
धर्म्याःक्रियाहर्षनिमित्तमुक्तास्ततोऽन्यथाशोकवशंनयन्ति ।
शरीरसत्त्वप्रभवास्तुदोषास्तयोरवृत्त्यानभवन्तिभूयः ॥ ३९ ॥
रूपस्यसत्त्वस्यचसन्ततिर्यानोक्तस्तदादिर्नहिसोऽस्तिकश्चित् ।
तयोरवृत्तिःक्रियतेपराभ्यांधृतिस्मृतिभ्यांपरयाधियाच ॥ ४० ॥

(उत्तर) रोग तीनप्रकारके कारणोंसे उत्पन्न होताहै जैसे प्रज्ञापराध और असा-त्म्य इन्द्रियार्थसंयोग तथा परिणाम काल । यह तीन रोगके उत्पत्तिके कारण हैं । इसीप्रकार संपूर्ण रोगोंकी शान्तिके भी तीनही उपाय हैं । जैसे ज्ञान सात्म्य, इन्द्रियार्थसंयोग, और कालका उचितयोग । धर्मके काम करना आनन्दके हेतु हैं। और यावन्मात्र पापकर्म दुःखके कारण हैं । शारीरिक और मानासिक रोग रजो-गुण और तमोगुणकी निवृत्ति होजानेपर शरीर और मनकी निवृत्ति होकर फिर उत्पन्न नहीं होते क्योंकि शरीर और मनकी जो धारावाही संतति है वह कहांसे हुई और कब उत्पन्न हुई इसप्रकार उसका कोई आदि क्रम नहीं है । परंतु परमधृति और यौगिक स्मृति तथा बुद्धिकी विमलता होनेसे उन शारीरिक और मानसिक रोगोंकी सदाके लिये निवृत्ति होजातीहै अर्थात् मोक्ष होजानेसे वह फिर कभी दुःखसुख नहीं भोगता ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥

दैवका लक्षण ।

सत्याश्रयेवाद्विविधेयथोक्तेपूर्वंगदेभ्यःप्रातिकर्म नित्यम् ।
जितेन्द्रियंनानुपतन्तिरोगास्तत्कालयुक्तंयदिनास्तिदैवम्॥४१॥
दैवंपुरायत्कृतमुच्यतेतुतत्पौरुषंयात्त्विहकर्म्मदृष्टम् । प्रवृत्तिहेतु-
र्विषमःसदृष्टोनिवात्तिहेतुस्तुसमःसएव ॥ ४२ ॥

शरीर और मन यह दो प्रकारके रोगोंके स्थान कथन कियेहैं । अर्थात् संपूर्ण रोग शरीर और मनके आश्रय हैं । यदि मनुष्य जितेन्द्रिय और अपनेको वशमें रखता हुआ रोगोंसे प्रथमही यत्नवान् रहे अर्थात् अहितका सेवन न करे तो प्रार-ब्धके आधीन आवश्यक कालमें होनेवाली व्याधिके सिवाय और कोई रोग उत्प-न्नही नहीं होसकता । पूर्वजन्मके कियेहुए कर्मको प्रारब्ध कहतेहैं । इस जन्ममें जो पुरुषार्थ कियाजाताहै उसको कर्म कहतेहैं । धर्मका सेवन करना रोगोंके निवृत्त होनेका कारण है और अधर्मका सेवन रोगोंकी प्रवृत्तिका कारण है अथवा विषम संयोगसे रोगोंकी प्रवृत्ति और समसंयोगसे आरोग्यताकी प्राप्ति होती है४१॥४२॥

ऋतुओंके रोगोंका शमन ।

हैमन्तिकंदोषचयंवसन्तेप्रवाहयन्ग्रैष्मिकमभ्रकाले ।
घनात्यये वार्षिकमाशुसम्यक्प्राप्नोतिरोगानृतुजान्नजातु ॥४३ ॥

हेमन्तकालमें संचितहुए दोषोंको वसन्तकालमें शोधन कर देना चाहिये। और ग्रीष्मकालमें संचितहुए दोषोंको प्रावृट्कालमें तथा वर्षाकालके संचितहुए दोषोंको

शरदऋतुमें संशोधन अर्थात् वमन,विरेचन द्वारा शुद्ध कर देना चाहिये। ऐसा करनेसे ऋतुजन्य दोष उत्पन्न नहीं होवे ॥ ४३ ॥

नरोहिताहारविहारसेवीसमीक्ष्यकारीविषयेष्वसक्तः । दाता समःसत्यपरःक्षमावानाप्तोपसेवीचभवत्यरोगः ॥ ४४ ॥

जो मनुष्य हित आहार और हितविहारोंका सेवन करताहै तथा संपूर्ण कार्योंको विचार कर करताहै और विषयोंमें आसक्त नहीं होता तथा दान,समता,सत्य और क्षमापरायण होताहै तथा आप्तजनोंका सेवन करताहै वह सदा रोगरहित रहताहै ॥ ४४ ॥

मतिर्वचःकर्म्मसुखानुबन्धिसत्त्वंविधेयंविशदाचबुद्धिः । ज्ञानं तपस्तत्परताचयोगेयस्यास्तितंनानुपतन्तिरोगाः ॥ ४५॥

जिस मनुष्यकी मति, वचन, कर्म यह हितकारक हों और मन अपने आधीन हो, बुद्धि स्वच्छ हो, एवम् ज्ञान, तपस्या तथा योगमें चित्त लगा हुआ हो ऐसे मनुष्योंके ऊपर रोग आक्रमण नहीं कर सकते ॥ ४५ ॥

अध्यायका उपसंहार ।

इहाग्निवेशस्यमहार्थयुक्तंषड्त्रिंशकंप्रश्नगणंमहर्षिः । अतुल्यगोत्रेभगवान्यथावन्निर्णीतवाञ्ज्ञानविवर्द्धनार्थम् ॥ ४६ ॥

इति चरकसंहितायां शारीरस्थानेऽतुल्यगोत्रीयंशारीरं समाप्तम् ॥ २ ॥

यहां अध्यायकी पूर्त्तिमें श्लोक है-

इस अतुल्यगोत्रीय शारीराध्यायमें अग्निवेशके महान् अर्थवाले छब्बीस ३६ प्रश्नोंका निर्णय भगवान् आत्रेयजीने वैद्योंके ज्ञानकी वृद्धिके लिये कथन कियाहै ॥ ४६ ॥

इति श्रीमहर्षिचरक० शारी०स्था०भाषाटी०अतुल्यगोत्रीयशारीरं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

तृतीयोऽध्यायः ।

अथातः खुड्डीकागर्भावक्रान्तिंशारीरं व्याख्यास्याम इति
हस्माह भगवानात्रेयः ।

अब हम खुड्डीकागर्भावक्रान्ति शारीरकी व्याख्या करतेहैं इसप्रकार भगवान् आत्रेयजी कथन करनेलगे ।

गर्भकी उत्पत्ति ।

पुरुषस्यानुपहतरेतसः स्त्रियाश्चाप्रदुष्टयोनिशोणितगर्भाशयाया
यदाभवतिसंसर्गःऋतुकाले। यदाचानयोस्तथैवयुक्तयोःसंसर्गे
तुशुक्रशोणितसंसर्गमन्तर्गर्भाशयगतंजीवोऽवक्रामतिसत्त्वस-
म्प्रयोगात्तदागर्भोऽभिनिर्वर्त्तते ॥ १ ॥

अनुपहत अर्थात् पुष्ट और शुद्धवीर्यवाले पुरुषका ऋतुसे शुद्ध हुई शुद्ध योनि, शुद्ध रज और दोषरहित गर्भाशयवाली स्त्रीसे संयोग होनेसे पुरुषका वीर्य और स्त्रीका रज यह दोनों मिलकर जब गर्भाशयमें पहुंचतेहैं उसीसमय जीवात्मा भी मनोवेगसे झट उस शुक्रशोणितके साथही गर्भाशयमें प्रवेश करजाता है फिर वह गर्भ कहा जाताहै ॥ १ ॥

सात्म्यरसोपयोगादरोगोऽभिसंवर्द्धतेसम्यगुपचारैश्चोपचर्य्य-
माणः । ततःप्राप्तकालःसर्वेन्द्रियोपपन्नःपरिपूर्णसर्वशरीरोबल-
वर्णसत्त्वसंहननसम्पदुपेतःसुखेनजायतेसमुदायादेषां भावा-
नाम् ॥ २ ॥

वह गर्भ माताके सात्म्यरसके सेवन करनेसे और उत्तम हितकर उपचारके आचरणसे वृद्धिको प्राप्त होताजाताहै । फिर इसप्रकार संपूर्ण इन्द्रियोंसे सम्पन्न सर्वांग संपूर्ण बल, वर्ण, और सत्त्वयुक्त होकर गठनको प्राप्त हुआ अपने ठीकसमयपर इन सब भावोंके पूर्ण होनेसे सुखपूर्वक जन्म लेताहै ॥ २ ॥

गर्भोंके भेद ।

मातृजश्चायंगर्भःपितृजश्चात्मजश्चसात्म्यजश्चरसजश्चास्तिच-
सत्त्वसंज्ञमौपपादिकमितिहोवाचभगवानात्रेयः ॥ ३ ॥

---

१ पूर्वाध्याये शुक्रशोणिते गर्भकारणत्वेनोक्ते, नतु कृत्स्नं गर्भकारणमुक्तम् अत. सम्पूर्णगर्भकारणाभिधानार्थं खुड्डिका गर्भावक्रान्तिरुच्यते खुड्डिकामित्यल्पाम् ।

इसके उपरान्त भगवान् आत्रेयजी कहनेलगे कि यह गर्भ मातृज है और पितृज है तथा आत्मज और सात्म्यज एवम् रसज है और सत्त्वसंज्ञक मन इस गठनेके संबंधको उत्पन्न करताहै ॥ ३ ॥

नेतिभरद्वाजः । किंकारणंहिनमातानपितानात्मानंसात्म्यंनपानाशनभक्ष्यलेह्योपयोगागर्भंजनयन्तिनचपरलोकादेत्यगर्भंसत्त्वसंज्ञकमवक्रामति । यदिहिमातापितरौगर्भंजनयेतांभूयस्यश्चस्त्रियःपुमांसश्चभूयांसःपुत्रकामाः,तेसर्वेपुत्रजन्माभिसन्धायमैथुनधर्ममापद्यमानाःपुत्रानेवजनयेयुर्दुहितृर्वादुहितृकामाः। नचकाश्चित्स्त्रियःकेचिद्वापुरुषानिरपत्याःस्युःअपत्यकामाश्चपरिदेवेरन् । नचात्मात्मानंजनयति । यदिह्यात्मात्मानंजनयेज्जातोवाजनयेदात्मानमजातोवाजनयति ।तच्चउभयथाप्ययुक्तम् । नहिजातोजनयतिसत्त्वान्नचैववाजातोजनयेत्सत्त्वात्तस्मादुभयथाप्यनुपपत्तिस्तिष्ठतु । अथतावदेतद्यदिअयमात्मानंशक्तोजनयितुंस्यान्नतुपुनमिष्टास्वेवकथंयोनिषुजनयेद्वशिनमप्रतिहतगतिकामरूपिणंतेजोबलजववर्णसत्त्वसंहननसमुदितमजरमरुजममरमेवंविधंहिआत्मात्मानामिच्छन्नित्यतोवाभूयः ॥ ४ ॥

भरद्वाज कहनेलगे कि ऐसा नहीं होता । गर्भके कारण माता,पिता, आत्मा और सात्म्य इनमेंसे कोई नहीं तथा न पान, अशन, भक्ष, लेह्य पदार्थही गर्भको उत्पन्न कर सकतेहैं । एवम् परलोकसे आकर सत्त्वसंज्ञक मन भी गर्भको उत्पन्न नहीं कर सकता । यदि मातापिताही गर्भको उत्पन्न कर सकते तो बहुतसे संतानकी इच्छावाले स्त्री पुरुष पुत्रकी कामनासे मैथुनधर्मको प्रवृत्त होकर बहुतसे पुत्र उत्पन्न करलेते और कन्याकी इच्छावाले कन्या उत्पन्न करलेते । और जगत्में कोई स्त्री और कोई पुरुष भी संतानरहित न रहता संतानके लिये उनको किसी प्रकारके देव आदिके मनाने अथवा व्याकुल रहनेकी आवश्यकता न पडती । संपूर्ण जगत्ही अपनी इच्छानुसार संतानवाला होजाता । आत्मा भी आत्माको उत्पन्न नहीं कर सकता और न स्वयं उत्पन्न होताहै । यदि आत्मा आत्माको उत्पन्न करे तो जन्म किसका हुआ । वह आत्मा आत्माको प्रगट करताहै जिसका जन्म होचुका । अथवा

जिस आत्माका जन्म नहीं हुआ वह आत्माको प्रगट करताहै। यदि कहो कि आत्मा स्वयं अपने आपको प्रगट करताहै तो जो आत्मा एकबार जन्म लेचुकाहै वह फिर किसप्रकार अपनेको प्रगट:कर सकताहै अर्थात् नहीं प्रगट कर सकता और अजात आत्मा भी आत्माको प्रगट नहीं करसकता क्योंकि वह अजात है। अजात होनेसे वह अपनेको जन्म देही नहीं सकता। यदि उसमें स्वयं यह शक्ति होती तो अपनी इच्छानुसार श्रेष्ठ २ शरीरोंमें प्रवेश करता। इसलिये दोनों प्रकार होना अयुक्त है अर्थात् नहीं होसकता। यदि ऐसा होता तो सत्तावान् आत्मा वशी, अप्रतिहतगति, कामरूपी, तेजसम्पन्न और बल, वेग, वर्ण तथा सत्त्व एवं दृढतासम्पन्न होनेसे तथा अजर, अमर, रोगरहित एवं इससेभी अधिक २ उत्तम २ गुणोंकी इच्छा करताहुआ आत्माको कहीं बहुतही उत्तम शरीरोंमें प्रगट करता ॥ ४ ॥

गर्भकी असात्म्यजता।

असात्म्यजश्चायंगर्भोयदिहिसात्म्यजःस्यात्तर्हिसात्म्यसेविना-मेवैकान्तेनव्यक्तप्रजास्यात्। असात्म्यसेविनश्चनिखिलेनान-पत्याःस्युस्तच्चोभयमुभयत्रैवदृश्यते ॥ ५ ॥

सात्म्यसे भी गर्भकी उत्पत्ति नहीं होती यदि सात्म्य पदार्थोंके सेवनसेही गर्भ उत्पन्न होता तो जो मनुष्य सात्म्य पदार्थोंका सेवन करते हैं केवल उन्हींके संतान हुआ करती और असात्म्य पदार्थोंके सेवन करनेवाले संपूर्ण मनुष्योंके वंशही न चलते अर्थात् उनकी संतानही न हुआ करती। परंतु देखनेमें ऐसा आता है कि सात्म्य पदार्थोंके सेवन करनेवालोंमें भी संतान बहुतोंको नहीं होती और असात्म्य सेवन करनेवालोंको संतान होतीहै। इसलिये सात्म्यसेवनसे गर्भ उत्पन्न होताहै यह कहना वृथा है ॥ ५ ॥

गर्भका रससे उत्पन्न न होना।

अरसजश्चायंगर्भोयदिहिरसजः स्यान्नकेचित्स्त्रीपुरुषेषुअन-पत्याः स्युर्नहिकश्चिदस्त्येषांयोरसान्नोपयुङ्क्ते। श्रेष्ठरसोप-योगिनांचेद्गर्भाजायन्तेइत्यतोऽभिप्रेतमित्येवं सति, आजोर-भ्रमार्गमायूरगोक्षीर-दधि-घृत-मधु-तैल-सैन्धवेक्षुरसमुद्गशा-लिभृतानामेवएकान्तेनप्रजास्यात् । श्यामाकवरकोद्दाल-ककोरदूषककन्दमूलभक्ष्याश्चनिखिलेनानपत्याः स्युः तच्चोभ-यमुभयत्रैवदृश्यते ॥ ६ ॥

रससे भी गर्भकी उत्पत्ति नहीं होती है। यदि रसजगर्भ होता तो भी यावन्मात्र प्राणियोंमें कोई भी संतानरहित देखनेमें नहीं आता । क्योंकि ऐसा कोई भी पुरुष और स्त्री नहीं है जो रसोंका सेवन न करता हो । यदि कहें कि उत्तम रस सेवनसे संतान होती है तो जो मनुष्य निरंतर बकरा, मेंढा, मृग और मोर आदिका मांसरस खाते हैं तथा गौओंका दूध, दही, घृत एवं मधु, तैल, लवण, इक्षुरस (खांड, मिसरी), मूंग, चावल आदिका उत्तम भोजन करतेहैं और हृष्ट, पुष्ट शरीर हैं उन्हींको संतान होनी चाहिये थी और जो मनुष्य श्यामाक, क्षुद्र जव, कोदो, कोदुसक, कंद, मूल तथा अन्य रूक्ष भोजन करते हैं वह सब संतानरहित होवें । परन्तु दोनों प्रकार देखनेमें नहीं आता । जो मनुष्य उत्तम रसोंका भोजन करते हैं और जो रूक्ष भोजन करतेहैं इन दोनोंकाही संतानयुक्त होना और निःसंतान होना बराबर दिखाई देता है । इसलिये गर्भ रसज होता है यह भी सिद्ध नहीं होता ॥ ६ ॥

गर्भका सत्त्वगुणी न होना ।

नखलुअपिपरलोकादेत्यसत्त्वंगर्भमवक्रामति । यदिह्येनं सवक्रामेन्नास्यकिञ्चिदेवपौर्वदेहिकंस्यादविदितमश्रुतमदृष्टं वा । सचकिञ्चिदपिनस्मरतितस्मादेतद्ब्रूमहे अमातृजश्चायंगर्भःपितृजश्चानात्मजश्चासात्म्यजश्चारसजश्चनचास्ति सत्त्वमौपपादिकमितिहोवाच भरद्वाजः ॥ ७ ॥

परलोकसे आकर सत्त्वसंज्ञक मन भी गर्भके संबंधको उत्पन्न नहीं करता। यदि वह परलोकसे आकर गर्भमें मिलजाता तो उसको पहिले देहके सम्पूर्ण व्यापार जाने सुने और देखे याद रहने चाहिये थे । परन्तु वह किसीको भी स्मरण नहीं करता । इसलिये सत्त्वसंज्ञक मन भी गर्भसे सम्बन्ध नहीं रखता । इस कारणसेही हम कहते हैं कि गर्भ न मातृज है, न पितृज है न आत्मज है, न सात्म्यज है, और न रसज है तथा सत्त्व संज्ञक मन भी उसके सम्बन्धका उत्पादक नहीं है । जब इसप्रकार कुमाराशिरा भरद्वाजने कहा ॥ ७ ॥

आत्रेयका मत ।

नेतिभगवानात्रेयः । सर्वेभ्यएभ्यो भावेभ्यःसमुदितेभ्योगर्भोऽभिनिर्वर्त्तते । मातृजश्चायंगर्भोनहि मातुर्विनागर्भोपपत्तिः स्यान्नचजन्मजरायुजानाम् । यानिखल्वस्यगर्भस्य मातृजा-

नियानिचास्य मातृतःसम्भवतःसम्भवन्तितानि अनुव्याख्यास्यामः । तद्यथा-त्वक्चलोहितञ्चमांसञ्चमेदश्चनाभिश्च हृदयञ्च क्लोम च यकृच्च प्लीहा च बुक्कौ च बस्तिश्च पुरीषाधानञ्चामाशयश्च पक्वाशयश्चोत्तरगुदञ्चाधरगुदञ्च क्षुद्रान्त्रञ्च स्थूलान्त्रञ्च वपा च वपावहनञ्चेतिमातृजानि ॥ ८ ॥

तब भगवान् आत्रेयजीने कहा कि ऐसा नहीं होता । गर्भ इन संपूर्ण भावोंके होनेसे ही प्रगट होता है। यह गर्भ मातासे भी उत्पन्न होताहै क्योंकि माताके विना गर्भ उत्पन्न होही नहीं सकता और जितने जरायुज प्राणी हैं वह विना माताके जन्म लेही नहीं सकते और इस गर्भमें मातासे जो २ अवयव उत्पन्न होतेहैं उनको वर्णन करते हैं । जैसे-त्वचा, रक्त, मांस, मेद, नाभि, हृदय, क्लोम, प्लीहा, यकृत्,दोनों बुक्क, वस्ती, आमाशय, मलाशय, पक्वाशय, उत्तरगुद, अधःगुद, क्षुद्रअन्तडियें, वसा, वसाके वहनस्थान, यह सब मातासे उत्पन्न होतेहैं तथा इनको मातृज अवयव कहते हैं । इसलिये गर्भको मातृज कहना चाहिये ॥ ८ ॥

पितासे होनेवाले अवयव ।

पितृजश्चायंगर्भोनहिपितुर्ऋतेगर्भोत्पत्तिःस्यान्नचजन्मजरायुजानाम् । यानिखलुअस्यगर्भस्यपितृजानियानिचास्यपितृतः सम्भवतःसम्भवन्तितानिअनुव्याख्यास्यामः । तद्यथा--केशश्मश्रुनखलोमदन्तास्थिशिरास्नायुधमन्यःशुक्रमितिपितृजानि ९॥

गर्भ पितृजभी है । क्योंकि पिताके विना गर्भकी उत्पत्तिही नहीं होती । विना पिताके जरायुजोंका जन्मही नहीं होसकता । अब गर्भके जो २ अंग गर्भमें पितासे उत्पन्न होते हैं उनका कथन करते हैं । जैसे केश, श्मश्रु, नख,रोम दांत, अस्थियां, शिरा और स्नायु तथा धमनियें एवम् शुक्र पितासे उत्पन्न होते हैं । इसलिये गर्भको पितृज भी कहना चाहिये ॥ ९ ॥

आत्मासे उत्पन्न हुए गर्भावयव ।

आत्मजश्चायंगर्भोगर्भात्माह्यन्तरात्मायस्तमेनंजीवइत्याचक्षतेशाश्वतमरुजमजरममरमक्षयमभेद्यमच्छेद्यमलेह्यंविश्वरूपं विश्वकर्माणमव्यक्तमनादिमनिधनमक्षरमपि । सगर्भाशय-

मनुप्रविश्यशुक्रशोणिताभ्यांसंयोगमेत्यगर्भत्वेनजनयत्यात्म-नात्मानमात्मसंज्ञाहिगर्भेतस्यपुनरात्मनोजन्मादिसत्त्वानूनो-पपद्यत तस्मादजातएवायंजातंगर्भंजनयाति जातोऽप्यजात-श्वगर्भंजनयाति । सचैवगर्भःकालान्तरेणबाल्युवस्थविरभा-वानवाप्नोति ॥ १० ॥

यह गर्भ आत्मज भी है क्योंकि गर्भात्माही अन्तरात्मा और जीवके नामसे उच्चारण किया जाताहै।यह अन्तरात्मा नित्य, निरोग, अजर, अमर, अक्षय,अभेद्य, अच्छेद्य, अलेह्य, विश्वरूप, विश्वकर्मा, अव्यक्त, अनादि, मृत्युरहित अक्षर कहा जाताहै । यह गर्भाशयमें अनुप्रवेश कर शुक्रशोणितके साथ मिलजाताहै तवही गर्भ उत्पन्न होजाता है । आत्माही आत्माको उत्पन्न करताहै । गर्भमेंही इसकी आत्मा संज्ञा होती है । यदि अजात आत्माही स्वयं अपनेको गर्भमें प्रगट न करता तो अनादि और नित्य होनेसे इसका जन्म लेना किसीप्रकार सिद्ध नहीं होसकता। इस लिये यह अजात होताहुआ भी जातगर्भको उत्पन्न करताहै । और जात होकर भी अजात रहताहै। वह गर्भ समय पाकर प्रगट होनेसे बाल्यावस्था यौवनावस्था और वृद्धावस्थाको प्राप्त होताहै ॥ १० ॥

सयस्यांयस्यामवस्थायां वर्त्तते तस्यांतस्यांजातोभवतियात्व-स्यपुरस्कृतातस्यांजनिष्यमाणश्चतस्मात्सएवजातश्चाजातश्च युगपद्भवतितस्मिंश्चैतदुभयंसम्भवतिजातत्वञ्चैवजानिष्यमा-णत्वञ्च । सजातोजन्यतेसचैवानागतेष्ववस्थान्तरेषुअजातो जनयत्यात्मनात्मानम् ।सतोह्यवस्थानुगमन मात्रामेवाहिजन्म चोच्यतेतत्रतत्रवयसितस्यांतस्यामवस्थायाम् । यथासतामेव शुक्रशोणितजीवानांप्राक्संयोगाद्गर्भत्वंनभवतितच्चसंयोगाद्भ-वति। यथासतस्तस्यैवपुरुषस्यप्रागपत्यात्पितृत्वंनभवातितच्चा-पत्याद्भवति । तथासतस्तस्यैवगर्भस्यतस्यांतस्यामवस्थायां जातत्वमजातत्वञ्चोच्यते ॥ ११ ॥

वह गर्भ जिस२ अवस्थामें जैसे२रहताहै उसीउसी अवस्थामें जात मानाजाताहै। जो अवस्था इसकी आनेवाली है उस अवस्थाको जानिष्यमाण कहते हैं । इसलिये एककालमेंही इसमें जात और अजात दोनों धर्म रहतेहैं।अतएव इसमें जातत्व और

जनिष्यमाणत्व दोनोंही हैं। वह गर्भात्मा जात होकरभी अर्थात् गर्भावस्थामें उत्पन्न होकर भी गर्भको उत्पन्न करताहै और वही अपनी आनेवाली अवस्थान्तरको भी उत्पन्न करताहै । नित्य पदार्थका अवस्थान्तरही जन्म कहाजाताहै । वह जिसजिस अवस्थामें पहुंचताहै वही उसका जन्म है । जैसे-शुक्र, शोणित और जीवके पृथक् रहतेहुए भी संयोग होने विना जीवत्व उत्पन्न नहीं होता । और जैसे पुत्र उत्पन्न होनेसे पहिले पिता रहतेहुए भी उसमें पितृत्वधर्म नहीं आता उसीप्रकार आत्मा भी उसउस अवस्थामें रहताहुआ जातत्व और अजातत्वको प्राप्त नहीं होता॥११॥

नतुखलुगर्भस्यमातुर्नपितुर्नात्मनःसर्वभावेषुयथेष्टकारित्वमस्ति । तेकिञ्चित्स्ववशात्कुर्वन्तिकिञ्चित्कर्मवशात्क्वचिच्चैषांकरणशक्तेर्भवतिक्वचिन्नभवति।यत्रसत्त्वादिकरणसम्पत्तत्रयथाबलमेवयथेष्टकारित्वमतोऽन्यथाविपर्य्ययः । नचकरणदोषादकारणमात्मागर्भजननेसम्भवति ॥ १२ ॥

माता पिता और आत्मा इन सबमेंसे कोई एक संपूर्णभावसे गर्भको उत्पन्न करनेमें यथेष्टकारी नहीं होसकता।अर्थात् अपने आधीन होकर(अपने वशसे)माता या पिता या आत्मा अकेला कोई गर्भको प्रगट नहीं करसकता । इनमें कोई अपने वशसे गर्भमें इष्टकारी होतेहैं,कोई कर्मवशसे इष्टकारी होतेहैं।कहीं इनकी करणशक्ति कार्य करनेमें सामर्थ्यवान् होती है और कहीं नहीं भी होती । इसलिये जिस जगह सत्त्वादि करणशक्तिकी उत्कृष्टता होतीहै उसजगह यथाबल यथेष्टकारिता होजातीहै । जिसजगह सत्त्वादि करणशक्तिकी उत्कृष्टता नहीं होती वहांपर कार्यसिद्धि नहीं होसकती । करणके दोषसे आत्मा गर्भोत्पन्न करनेमें कारण नहीं होता, ऐसा नहीं अर्थात् आत्मा संपूर्णसंयोग मिलनेसे गर्भको उत्पन्न करनेमें कारण होताहै ॥ १२ ॥

दृष्टश्चचेष्टायोनिरैश्वर्यमोक्षश्चात्मविद्भिरात्मायत्तम्। नह्यन्यः सुखदुःखयोः कर्त्तानचान्यतोगर्भोजायतेजायमानोनचअंकुरोत्पत्तिरबीजात् ॥ १३ ॥

आत्मज्ञानी महात्मा चेष्टा, योनि, ऐश्वर्य और मोक्ष इनसबको अपने आधीन रखतेहैं ऐसा देखनेमें आताहै । आत्माके सिवाय सुखदुःखका और कोई कर्ता नहीं है । आत्माके सिवाय और कोई गर्भको उत्पन्न नहीं कर सकता । आत्मासेही गर्भकी उत्पत्ति है । कारणके समानही कार्यकी उत्पत्ति देखनेमें आतीहै । ऐसा नहीं होता कि विना बीजके अंकुर पैदा हो ॥ १३ ॥

आत्मासे हुए भाव।

यानितुखलुअस्यगर्भस्यात्मजानियानिचअस्यात्मतःसम्भवतः सम्भवन्तितानिअनव्याख्यास्यामः। तद्यथा—तासुतासुयोनिषुउत्पत्तिरायुरात्मज्ञानंमनइन्द्रियाणिप्राणापानौप्रेरणंधारणमाकृतिस्वरवर्णविशेषाःसुखदुःखेइच्छाद्वेषौचेतनाधृतिबुद्धिस्मृतिरहंकारःयत्नश्चेत्यात्मजानि॥ १४॥

गर्भमें जो जो भाव आत्मासे उत्पन्न होतेहैं उनउन आत्मजभावोंको वर्णन करतेहैं। यह आत्मा जिसजिस समय जिसजिस योनिमें जन्म धारण करताहै उससमय उसी योनिमें इसका जन्म, आयु, आत्मज्ञान, मन, संपूर्ण इन्द्रियें, प्राण, अपान, प्रेरणा शक्ति, धारणा, आकृति, स्वर, वर्ण, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, चेतना, धृति, बुद्धि, स्मृति, अहंकार, प्रयत्न, यह सब उत्पन्न होतेहैं। यह सब आत्माकेही लक्षण हैं इसलिये गर्भ आत्मज होताहै॥ १४॥

सात्म्यजश्चायंगर्भःनहिअसात्म्यसेवित्वमन्तरेणस्त्रीपुरुषयोर्वन्ध्यत्वमस्तिगर्भेषुवाअनिष्टोभावः। यावत्खलुअसात्म्यसेविनांस्त्रीपुरुषाणांत्रयोदोषाःप्रकुपिताःशरीरमुपसर्पन्तोनशुक्रशोणितगर्भाशयोपघातायोपपद्यन्तेतावत्समर्थागर्भजननायभवन्ति। सात्म्यसेविनांपुनःस्त्रीपुरुषाणामनुपहतशुक्रशोणितगर्भाशयानामृतुकालेसन्निपातितानांजीवस्यानवक्रमणाद्गर्भान प्रादुर्भवन्ति। नहिकेवलंसात्म्यजएवायंगर्भःसमुदायोऽत्रकारणमुच्यते॥ १५॥

यह गर्भ सात्म्यज भी हैयदि स्त्री पुरुष असात्म्य पदार्थोंको सेवन न करें तो उनमें वन्ध्यादोष तथा गर्भमें अनिष्टभाव कभी उत्पन्न न होवे। जबतक असात्म्यसेवनसे दोष कुपित होकर स्त्रीपुरुषोंके शरीरमें उपसर्पण करतेहुए और शुक्रशोणितसे मिलकर गर्भाशयमें उपघात नहीं करते तभीतक गर्भाधान होसकता है तथा असात्म्यसेवनसे दोष कुपित होजानेपर गर्भाधान नहीं होने देते। सात्म्यसेवन करनेवाले स्त्रीपुरुषोंका रज और वीर्य शुद्ध होताहुआ ऋतुकालमें मिलापद्वारा गर्भाशयमें प्रवेश करनेपर भी यदि जीवात्मा अणु प्रवेश न करे तो गर्भ नहीं रहता। केवल

सात्म्यसेवनसेही गर्भ उत्पन्न होताहै यह बात नहीं है। किंतु गर्भके उत्पन्न करने-
वाले सम्पूर्ण भावोंमें सात्म्यसेवन भी एक कारण मानाजाताहै ॥ १५ ॥

सात्म्यसे हुए गर्भके अवयव।

यानितुखल्वस्यगर्भस्यसात्म्यजानियानिचअस्यसात्म्यतःस-
म्भवतःसम्भवन्तितानिअनुव्याख्यास्यामः। तद्यथा—आरो-
ग्यमनालस्यमलोलुपत्वमिन्द्रियप्रसादःस्वरवर्णबीजसम्पत्प्र-
हर्षभूयस्त्वञ्चेतिसात्म्यजानि ॥ १६ ॥

सात्म्यसेवनसे गर्भमें जो भाव पैदा होतेहैं उनका वर्णन करतेहैं जैसे आरोग्यता,
अनालस्य, निर्लोभता, इन्द्रियोंका प्रसाद, स्वर, वर्ण और वीर्यका उत्तम होना,
चित्त प्रसन्न रहना यह सब सात्म्यसेवनके फल हैं। इसलिये गर्भकी उत्पत्तिमें
सात्म्यको भी कारण मानाजाताहै ॥ १६ ॥

गर्भकी रसज उत्पत्ति।

रसजश्चायंगर्भोनहिरसादृतेमातुः प्राणयात्रापिस्यात्किंपुनर्ग-
र्भजन्म,नचैवास्यसम्यगुपयुज्यमानारसागर्भमभिनिर्वर्त्तयन्ति।
नचकेवलंसम्यगुपयोगादेवरसानांगर्भाभिनिर्वृत्तिर्भवतिसमु-
दायोऽप्यत्रकारणमुच्यते ॥ १७ ॥

यह गर्भ रसज भी है। यदि रसोंका सेवन न कियाजाय तो माताके प्राण भी
नहीं रहसकते और गर्भके उत्पन्न होनेको तो कहनाही क्या है। रसही उत्तमरूपसे
सेवन किये जानेपर गर्भको उत्पन्न करतेहैं यद्यपि केवल रसोंकाही उत्तमरीतिसे
प्रयोग कियाजाना गर्भको उत्पन्न नहीं कर सकता परन्तु गर्भके उत्पन्न करनेवाले
कारणोंमें रस भी एक कारण होताहै ॥ १७ ॥

गर्भके रसज अवयव।

यानितुखल्वस्यगर्भस्यरसजानियानिचास्यरसतःसम्भवतः
सम्भवन्तितान्यनुव्याख्यास्यामः। तद्यथा-शरीरस्याभि-
निर्वृत्तिरभिवृद्धिःप्राणानुबन्धस्तृप्तिःपुष्टिरुत्साहश्चेतिरसजानि १८

इस गर्भके जो जो भाव रससे उत्पन्न होते हैं उनका वर्णन करते हैं। जैसे शरी-
रका उत्पन्न होना और बढना, प्राणोंका अनुबन्ध तृप्ति और पुष्टि तथा उत्साह
यह सब रससेही होतेहैं। इसलिये गर्भके प्रगट होनेमें रसको भी कारण मानाजा-
ताहै ॥ १८ ॥

सत्त्वका उत्पादकत्व ।

अस्तिखल्वपिसत्त्वमौपपादिकं यज्जीवस्पृक्शरीरेणाभिसम्ब-ध्नाति । यस्मिन्नपगमनपुरस्कृतेशीलमस्यव्यावर्त्ततेभक्तिर्विप-र्य्यस्यतिसर्वेन्द्रियाण्युपतप्यन्तेबलंहीयतेव्याधयआप्यायन्ते । यस्माद्धीनःप्राणाञ्जहातियदिन्द्रियाणामभिग्राहकञ्चमनइत्य-भिधीयतेतत्त्रिविधमाख्यायतेशुद्धंराजसंतामसञ्चइति ॥ १९ ॥

सत्त्व भी गर्भके सम्बन्धको उत्पन्न करनेवाला होताहै । यही सूक्ष्मभावोंसहित आत्माका स्थूलशरीरके साथ सम्बन्ध कराताहै । जब यह सत्त्व शरीरसे अलग होनेलगताहै तो इसके अलग होनेसे प्रथमही शरीरका स्वभाव भी बदलजाताहै । इच्छा विपरीत होजातीहै, इन्द्रियें क्लेशित होजाती हैं, शरीरमेंसे बल क्षय होजाताहै रोग बढने लगतेहैं । जब यह सत्त्वसंज्ञक मन शरीरको त्यागताहै उसी समय प्राणों-का परित्याग होजाताहै । यह सत्त्वही इन्द्रियोंका अभिग्राहक मन कहाजाताहै । यह सत्त्व, रज, और तमके भेदसे तीनप्रकारका होताहै ॥ १९ ॥

येनास्यखलुप्रयतोभूयिष्ठंतेनद्वितीयायामाजातौसम्प्रयोगोभव-ति।यदातुतेनैवशुद्धेनसंयुज्यतेतदाजातेरतिक्रान्तायाश्चस्मर-ति । स्मार्त्तंहिज्ञानमात्मनस्तस्यैवमनसोऽनुबन्धादनुवर्त्तते यस्यानुवृत्तिंपुरस्कृत्यपुरुषोजातिस्मरइत्युच्यतेइतिसत्त्वमुक्तम् ॥२० ॥

मनमें सतोगुण, रजोगुण, और तमोगुण इन तीनों गुणोंमेंसे जो गुण अधिक होता है उसका दूसरे जन्मतक संयोग रहताहै । यदि सतोगुणके साथ संयोग होताहै तो इसको पूर्वजन्मका भी स्मरण आताहै । स्मार्त्तज्ञानयुक्त मनके साथ जब आत्माका संयोग होताहै तब आत्माको अपने जन्मांतरका भी स्मरण आने लगताहै । उस पुरुषको जातिस्मर कहतेहैं यह गुण सतोगुण प्रधान मनोंके संयोगसे होताहै२०॥

यानिखल्वस्यगर्भस्यसत्त्वजानियानिचअस्यसत्त्वतःसम्भवतः सम्भवन्तितानिअनुव्याख्यास्यामः। तद्यथा—भक्तिःशीलंशौ-चंद्वेषःस्मृतिर्मोहस्त्यागोमात्सर्य्यंशौर्य्यंभयंक्रोधस्तन्द्राउत्सा-हस्तैक्ष्ण्यंमार्दवंगाम्भीर्य्यमनवस्थितत्वमित्येवमादयश्चान्येते सत्त्वजाविकारायानुत्तरकालंसत्त्वभेदमधिकृत्यउपदेक्ष्यामइति सत्त्वजानि । नानाविधानितुखलुसत्त्वानितानिसर्वाणिएक-

पुरुषेभवन्तिनचभवन्तिएककालम्, एकन्तुप्रायोऽनुवृत्त्याह ।
एवमयंनानाविधानामेषांगर्भकराणांभावानांसमुदायादभिनि-
र्वर्त्ततेगर्भः ॥ २१ ॥

गर्भके बीचमें सत्त्वसे उत्पन्न होनेवाले जो भाव होतेहैं उनको वर्णन करतेहैं।भक्ति, सुशीलता, शौच, द्वेष, स्मृति, मोह, त्याग, मात्सर्य, शूरता, भय, क्रोध, तंद्रा, उत्साह, क्षीणता, मृदुता, गंभीरता, चंचलता तथा अन्य भी इसीप्रकारके गुण सात्त्विक, राजस और तामस मनके भेदसे अनेक प्रकारके उत्पन्न होतेहैं । इनसबको आगे वर्णन करेंगे । सत्त्वसे उत्पन्न होनेवाले अनेक प्रकारके गुण होतेहैं । वह सब गुण एकही मनुष्यमें पायेजातेहैं परन्तु एककालमें सतोगुण तमोगुण और रजोगुण एकही पुरुषमें नहीं होसकते । यद्यपि सब मनुष्योंमें प्रायः तीनगुणका संयोग होताही है परन्तु जिसमें जिसगुणकी अधिकता होती है उसको उसी गुणसे प्रधान मानाजाताहै । (सतोगुणके केवल प्रकाश होनेसे रजोगुण और तमोगुण नष्ट होकर मोक्ष होजाताहै ।) इसप्रकार गर्भकर्त्ता भावोंके समुदायसेही गर्भकी उत्पत्ति होतीहै ॥ २१ ॥

यथाकूटागारंनानाद्रव्यसमुदायाद्यथावारथोनानारथाङ्गसमुदा-
यात्तस्मादेतदवोचाममातृजश्चायंगर्भःपितृजश्चात्मजश्चसा-
त्म्यजश्चरसजश्च । अस्तिसत्त्वमौपपादिकमितिहोवाचभगवा-
नात्रेयः ॥ २२ ॥

जैसे-कूटागार (घर विशेष) अनेक द्रव्योंके होनेसे बनाया जाताहै और रथ अनेक अंगोंके समुदायसे बनताहै उसीप्रकार गर्भभी गर्भोत्पादक संपूर्णभावोंके संबंधसेही उत्पन्न होताहै इसलिये कहते हैं कि गर्भ मातृज, पितृज, आत्मज, सात्म्यज तथा रसज होताहै । एवम् सत्त्वसंज्ञक मन उसके संबंधको उत्पन्न करने-वाला होताहै इसप्रकार भगवान् आत्रेयजीने कथन कियाहै ॥ २२ ॥

भरद्वाजका प्रस्ताव ।

भरद्वाजउवाच । यद्ययमेषांनानाविधानांगर्भकराणांभावानां
समुदायादभिनिर्वर्त्ततेगर्भःकथमयंसन्धीयते । यदिचापिस-
न्धीयतेकस्मात्समुदायप्रभवःसन्नगर्भोमनुष्यविग्रहेणजायतेम-
नुष्यश्चमनुष्यप्रभवउच्यते । तत्रचेदिष्टमेतद्यस्मान्मनुष्योम-

नुष्यप्रभवस्तस्मान्मनुष्यविग्रहेणजायते । यथागौर्गोप्रभवः यथाचाश्वोऽश्वप्रभवइत्येवंयदुक्तमग्रेसमुदायात्मकइतितदयुक्तंयदिचमनुष्योमनुष्यप्रभवःकस्माज्जडान्धकुब्जमूकवामनमिन्मिनव्यङ्गोन्मत्तकुष्ठकिलासिभ्योजाताःपितृसदृशरूपानभवन्ति । अथात्रापिबुद्धिरेवंस्यात्स्वेनैवायमात्माचक्षुषारूपाणि वेत्तिश्रोत्रेणशब्दान्घ्राणेनगन्धान्रसनेनरसान्स्पर्शनेनस्पर्शान्बुद्ध्याबोद्धव्यमित्यनेनहेतुनाजडादिभ्योजाताः पितृसदृशा भवन्ति ।अत्रापिप्रातिज्ञाहानिदोषःस्यादेवमुक्तेह्यात्मासत्स्विन्द्रियेषुज्ञःस्यादसत्स्वज्ञोयत्रचैतदुभयंसम्भवातिज्ञत्वमज्ञत्वञ्च सविकारप्रकृतिकश्चात्मानिर्विकारोज्ञश्च । यदिचदर्शनादभिरात्माविषयान्वेत्तिनिरिन्द्रियोदर्शनादिविरहादज्ञःस्यादज्ञत्वाच्चकारणमकारणत्वाच्चानात्मेतिवाग्वस्तुमात्रमेतद्वचनमनर्थकंस्यादितिहोवाचभरद्वाजः ॥ २३ ॥

यह सुनकर भरद्वाज कहनेलगें कि यदि अनेक प्रकारके गर्भकारक भावोंके समुदायसेही गर्भकी उत्पत्ति होतीहै तो यह गर्भ सबसे मिलाहुआ किसप्रकार होताहै । अर्थात् यह सब भाव गर्भमें किसप्रकार मिलजाते हैं । और मिलजानेपर भी इनके समुदायसे मनुष्यके आकारका किस प्रकार होजाताहै अर्थात् वह गर्भ मनुष्यरूपमें किसप्रकार प्रगट होताहै । और इन संपूर्णभावोंसे उत्पन्नहुआ गर्भ मनुष्यसे मनुष्य हुआ कैसे कहाजाताहै । यदि आप ऐसा मानतेहैं कि मनुष्यसे मनुष्य प्रगट होताहै यह मनुष्य विग्रहसे अर्थात् जैसे–गौसे गौ,घोडेसे घोडा,पशु जगतमें उत्पन्न होताहै । इसीप्रकार मनुष्यसे मनुष्यके आकारवाला गर्भ होताहै । तो जो पहिले आत्मादिक समुदायसे गर्भकी उत्पत्ति कहआयेहैं वह अयुक्त होजायगा और मनुष्यसे मनुष्य–मनुष्यके आकारही पैदा होताहै तो क्या कारण है कि माता पिता उस प्रकारके न होतेहुए भी संतान उनके आकारकी नहीं होती । जैसे जड, अंधा, कुबडा, गूंगा, बवना, मिनमिनाह, व्यंग,उन्मत्त, कुष्ठी और किलास आदि रोगवाले मनुष्योंकी संतान अपने मातापिताके समान अंधी, कुबडी आदि क्यों नहीं होती यदि इनमें भी आपका ऐसा भाव हो कि मातापिताके किसी इन्द्रियहीन होनेसे संतानके मनुष्यत्वमें फर्क नहीं पडता आत्मा अपने नेत्रोंद्वारा रूपको देखता

है, कानसे शब्द सुनताहै, नासिकासे गंधको सूंघताहै, जिह्वासे रसको लेताहै, स्पर्शनेन्द्रियसे स्पर्शका ज्ञान करताहै, बुद्धिसे बोध करताहै अर्थात् जानताहै इसलिये जडआदिकोंकी संतान मातापिताके समान जडत्वादि दोषोंवाली नहीं होती तो इस तरह कहनेसे भी आपके पक्षकी हानि होतीहै। और प्रतिज्ञाहानिका दोष आताहै। क्योंकि ऐसा कहनेसे यह सिद्ध होजायगा कि इन्द्रियें होनेसे आत्मज्ञानी है तथा किसी इन्द्रियके नष्ट होनेसे आत्मा मूर्ख होजायगा। जिसमें ज्ञान उत्पन्न होना और ज्ञान नष्ट होना यह दो भाव आजायेंगे तो आत्मा निर्विकार न कहा जाकर विकार प्रकृति अथवा प्रकृतिका विकार सिद्ध होजायगा। क्योंकि ज्ञानी आत्माही निर्विकार होताहै। यदि ऐसा कहो कि, दर्शन आदि इन्द्रियों द्वारा आत्मा विषयोंको ग्रहण करता है अर्थात् उनको इन्द्रियोंद्वारा जानताहै तो इन्द्रियोंके विना दर्शनादि ज्ञान न होनेसे आत्माको अज्ञ मानना होगा। आत्मा अज्ञ सिद्ध होजानेसे कारण न माना जायगा। कारण न माना जानेसे अनात्मा सिद्ध होजायगा। फिर आपका यह जितना कथन है सब बकवादमात्र और अनर्थक सिद्ध होजायगा। इसप्रकार कुमारशिरा भरद्वाजने कहा ॥ २३ ॥

आत्रेयजीका उत्तर।

आत्रेयउवाच। पुरस्तादेतत्प्रतिज्ञातंसत्त्वंजीवस्पृक्शरीरेणाभिसम्बध्नातीति। यस्मात्तुसमुदायप्रभवःसन्गर्भोमनुष्यविग्रहेणजायतेमनुष्यश्चमनुष्यप्रभवइत्युच्यतेतद्वक्ष्यामः ॥ २४ ॥

यह सुनकर आत्रेय भगवान् कहने लगे कि यह तो हम प्रथम ही कथन कर चुके हैं कि सत्त्वसंज्ञक मन-अनेक द्रव्योंके समूहरूप शरीरसे जीवका संबंध उत्पन्न कर देताहै अर्थात् सत्त्व-स भावोंको आत्मासे मिलादेताहै और जिस प्रकार द्रव्योंके समूहसे बने हुए गर्भका मनुष्य देहके साथ जन्म लेता है तथा जिसप्रकार मनुष्यसे मनुष्य उत्पन्न होताहै उसका वर्णन अब करतेहैं ॥ २४ ॥

भूतानांचतुर्विधायोनिर्भवतिजरायवण्डस्वेदोद्भिदः। तासांखलुचतसृणामपियोनीनामेकैकायोनिरपरिसंख्येयभेदाभवतिभूतानामाकृतिविशेषापरिसंख्येयत्वात्।तत्रजरायुजानामण्डजानां प्राणिनामेतेगर्भकराभावायांयांयोनिमापद्यन्तेतस्यांतस्यांयोनौ तथातथारूपाभवन्ति। तद्यथा कनकरजतताम्रत्रपुसीसान्यासिच्यमानास्तेषुतेषुमधूच्छिष्टबिम्बेषुतेयदामनुष्यबिम्बमाप-

द्यन्तेतदामनुष्यविग्रहेणजायन्ते । तस्मात्ससमुदायात्मकःसत्त्वगर्भोमनुष्यविग्रहेणजायतेमनुष्योमनुष्यप्रभवइत्युच्यतेतद्योनित्वात् ॥ २५ ॥

सम्पूर्ण प्राणीमात्रकी जरायुज, अण्डज, स्वेदज और औद्भिद यह चार प्रकारकी योनि है इन चार प्रकारकी योनियोंके अनेक और असंख्य भेद होतेहैं क्योंकि प्राणियोंके आकार विशेषभी असंख्य होते हैं । उन चारोंमें जरायुज और अंडज प्राणियोंके यह गर्भकारक भाव जिस जिस योनिमें प्राप्त होतेहैं उसीउसी योनिके अनुरूप अपने अपने गठनको प्राप्त होतेहुए उनके अनुसार बनावटके होजातेहैं । जैसे-एक मनुष्यके अनुरूप सांचेमें सोना, चांदी, तांबा, रांगा, सीशा अथवा मोम गलाकर ढालदेनेसे मनुष्यके आकारकी प्रतिमाको प्राप्त होजातेहैं । उसीप्रकार गर्भकारक संपूर्ण भावोंका समुदाय-मनुष्य आकारके रचनेवाली योनिमें पडजानेसे मनुष्यसे मनुष्य उत्पन्न होताहै क्योंकि वह मनुष्ययोनि होनेसे मनुष्यही होसकताहै ॥ २५ ॥

यच्चोक्तंयदिचमनुष्योमनुष्यप्रभवः कस्मान्नजडादिभ्योजाताः पितृसदृशरूपाभवन्तीतितत्रउच्यते यस्ययस्यहिअङ्गावयवस्यबीजेबीजभावउपतप्तोभवतितस्यतस्याङ्गावयवस्यविकृतिरुपजायतेनउपजायतेचअनुतापात्तस्मादुभयोपपत्तिरपिअत्रसर्वस्यचात्मजानिइन्द्रियाणितेषांभावाभावहेतुर्दैवंतस्मान्नैकान्ततोजडादिभ्योजाताःपितृसदृशरूपाभवन्ति ॥ २६ ॥

और यह जो आपने कहा है कि जब मनुष्यसे मनुष्य प्रगट होताहै तो जडादिकोंकी संतान उनके समान जड, अंधी, कुवडी, आदि क्यों नहीं होतीं तो उसका यह स्पष्ट उत्तर है कि बीजके संपूर्ण अंगोंमें बीजकी शक्ति है उस बीजके जो अंश, अवयव खराब होजातेहैं संतानके भी उन्हीं अंश या अवयवोंमें विकार उत्पन्न होजातेहैं यदि बीजमें किसीप्रकारका कोई विकार नहीं है तो उससे उत्पन्न होनेवाली संतानमें भी कोई विकार नहीं होते । क्योंकि जड आदिकोंके वीर्यमें विकार न होनेसे उस वीर्यसे उत्पन्न होनेवाली संतानमें भी कोई विकार उत्पन्न नहीं होते । उस वीर्यमेंही प्रमेहादि दोष होनेसे संतानकोभी प्रमेहादि दोष होतेहैं । इससे आपके कहेहुए दोनों प्रश्नोंका उत्तर दिया जाचुका।सबकी सब इंद्रियें आत्मज होतीहैं और उनके साथ पूर्वजन्मके कर्मका संबंध होताहै । वह पूर्वजन्मके

कर्महि इन्द्रियोंके भावाभावका कारण है। अर्थात् किसी पूर्वजन्मके पापकर्मके प्रभाववसे वैसाही संयोग मिलकर इन्द्रियोंका विघात होताहै पूर्वजन्मकृत कोई उस प्रकारका पापकर्म न होनेसे इन्द्रियोंमें कोई विकार नहीं होसकता। इसीलिये जड़ादिकोंसे उत्पन्न हुई संतानके रूप पितामाताके समान नहीं होते ॥ २६ ॥

नचात्मासत्स्विन्द्रियेषुअज्ञोऽसत्सुवाभवत्यज्ञोनह्यसत्त्वःकदाचिदात्मासत्त्वविशेषाच्चउपलभ्यतेज्ञानविशेषइति॥ २७ ॥

आत्मा इन्द्रियोंके होनेसे ज्ञाता और इन्द्रियोंके न होनेसे अज्ञाता नहीं होसकता क्योंकि आत्मा मनसे रहित कभी नहीं होता। इसलिये बाह्य इन्द्रियके नष्ट होनेपर भी मनयुक्त आत्माको ज्ञानकी उपलब्धी होती रहती है ॥ २७ ॥

भवतिचात्र।

नकर्त्तुरिन्द्रियाभावात्कार्य्यज्ञानंप्रवर्त्तते। यैः क्रियावर्त्ततेयातु साविनातैर्नवर्त्तते ॥ २८ ॥ जानन्नपिमृदोभावात्कुम्भकृन्नप्रवर्त्तते। श्रूयतांचेदमध्यात्ममात्मज्ञानबलंमहत् ॥ २९ ॥

यहां कहाहै कि इन्द्रियोंका अभाव होनेसे कर्त्ताकी कार्यज्ञानमें प्रवृत्ति नहीं होती। क्योंकि जो क्रिया जिसके द्वारा होसकती है वह उसके विना हो ही नहीं सकती जैसे-कुम्हार घटके बनानेकी क्रियाको जानता हुआ भी मट्टीके विना उसके बनाने के लिये प्रवृत्त नहीं होता। सो तुम इस महत् अध्यात्म ज्ञानके बलको श्रवण करो ॥ २८ ॥ २९ ॥

देहेन्द्रियाणिसंक्षिप्यमनःसंगृह्यचञ्चलम्। प्रविश्याध्यात्ममात्मज्ञःस्वेज्ञानेपर्य्यवस्थितः ॥ ३० ॥ सर्वत्र विहितज्ञानःसर्वभावान्परीक्षते। गृह्णीष्ववेदमपरंभरद्वाजविनिर्णयम्[१] ॥ ३१ ॥

आत्माको जाननेवाला बुद्धिमान् देह और इन्द्रियोंको वशमें करके मनकी चंचलताको रोककर अध्यात्म तत्त्वोंमें प्रवेश करके अपने ज्ञानको अर्थात् आत्मज्ञानको प्राप्त होजाताहै। फिर वह सर्वज्ञ सबका पूर्णज्ञान रखतेहुए अहतज्ञान द्वारा संपूर्ण भावोंकी परीक्षा करता है।हे भरद्वाज! एक और विनिर्णयको श्रवण करो३०॥३१॥

निवृत्तेन्द्रियवाक्चेष्टःसुप्तःस्वप्नगतोयदा। विषयान्सुखदुःखेच वेत्तिनाज्ञोऽप्यतःस्मृतः ॥ ३२ ॥ नात्मज्ञानादृतेचैकंज्ञानंकिञ्चित्प्रवर्त्तते। नह्येकोवर्त्ततेभावोवर्त्ततेनाप्यहेतुकः ॥ ३३ ॥

---

१ भरद्वाजशब्देनेह नात्रेयगुरुरुच्यते किन्तु अन्य एव भरद्वाजगोत्रः कश्चित्।

जब मनुष्यकी इन्द्रिय तथा वाक्चेष्टा निवृत्त होजातीहैं और मनुष्य सोजाताहै उस अवस्थामें भी सुखदुःखको ग्रहण करताहै अर्थात् सोजानेपर इन्द्रिय आदिकोंकी चेष्टा बंद होजातीहै उस समय भी यह सुखदुःखका स्वप्नावस्थामें अनुभव करताहै इसलिये इसको अज्ञ नहीं कहना चाहिये ।आत्मज्ञानके विना कोई भी ज्ञान स्वतंत्र नहीं है,और कोई भाव विना किसी हेतुके स्वयं अकेला प्रवृत्त नहीं होता। तात्पर्य यह हुआ,कि इन्द्रिय आदि व्यापार और चंचलताको वशमें करलेनेसे मनुष्यको साक्षात्कार ज्ञानका प्रकाश होजाताहै । और इन्द्रियोंके रुक जानेपर भी यह मनुष्य स्वप्नावस्थामें अनेक प्रकारके ज्ञानका अनुभव करता रहताहै । इसलिये आत्मा कभी भी अज्ञानी नहीं कहा जासकता ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

तस्माज्ज्ञःप्रकृतिश्चात्माद्रष्टाकारणमेवच ।
सर्वमेतद्भरद्वाज ! निर्णीतंजहिसंशयामिति ॥ ३४ ॥

सो इसप्रकार ज्ञेय, प्रकृति, आत्मा, द्रष्टा और कारण इन सबके समुदायका वर्णन कियागयाहै । अब तुम संशयको त्यागदो ॥ ३४ ॥

अध्यायका संक्षिप्तवर्णन ।

हेतुगर्भस्यनिवृत्तौवृद्धौजन्मनिचैव यः । पुनर्वसुमतिर्याचभरद्वाजमतिश्चया ॥ ३५ ॥ प्रतिज्ञाप्रतिषेधश्चविशदश्चात्मानिर्णयः। गर्भावक्रान्तिमुद्दिश्यखुड्डीकंसम्प्रकाशितम् ॥ ३६ ॥

इतिखुड्डीकागर्भावसंक्रांतिः शारीरः समाप्तः ॥ ३ ॥

यहां अध्यायकी पूर्त्तिमें दो श्लोक हैं-कि इस खुड्डीकागर्भावक्रान्ति शारीर नामक अध्यायमें गर्भकी उत्पत्ति, कारण, वृद्धि और जन्म,इन सबके हेतु,आत्रेय भगवान्का मत और भरद्वाजका प्रस्ताव, प्रतिज्ञा, प्रतिबंध, स्पष्ट निर्णय, यह सब विधिवत् वर्णन कियेगयेहैं ॥ ३५ ॥ ॥ ३६ ॥

इति श्रीमहर्षिचरक० शारीरस्थाने भाषा० खुड्डीकागर्भावक्रान्तिशारीरंनाम
तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ।

अथातो महतींगर्भावक्रांतिंशारीरंव्याख्यास्याम इति हस्मा-
हभगवानात्रेयः ।

अब हम महती गर्भावक्रांति शारीरकी व्याख्या करते हैं इसप्रकार भगवान्
आत्रेयजी कथन करनेलगे ।

आत्रेयजीकी प्रतिज्ञा ।

यतश्चगर्भःसम्भवतियस्मिंश्चगर्भसंज्ञायद्विकारश्चगर्भोयथाचा-
नुपूर्व्याभिनिर्वर्त्ततेकुक्षौयश्चास्यवृद्धिहेतुर्यतश्चास्यावृद्धिर्भव-
तियतश्चजायमानःकुक्षौविनाशंप्राप्नोतियतश्चकार्त्स्न्येनाविन-
श्यन्विकृतिमापद्यतेतदनुव्याख्यास्यामः ॥ १ ॥

जिससे गर्भ उत्पन्न होताहै जिसलिये उसकी गर्भसंज्ञाहै, जिन द्रव्योंके रूपान्तर होनेको गर्भ कहतेहैं, जिस प्रकार कुक्षीमें गर्भ प्राप्त होताहै, जो उसके बढनेके हेतु हैं जिसप्रकार वह वृद्धिको प्राप्त नहीं होता, जिनकारणोंसे गर्भ उत्पन्न होकर भी कुक्षीमें ही नष्ट होजाताहै, जिनकारणोंसे सम्पूर्ण नष्ट न होकर विकृत होजाताहै इनसवको हम क्रमपूर्वक वर्णन करतेहैं ॥ १ ॥

गर्भकी उत्पत्तिका कारण ।

मातृतःपितृतआत्मतःसात्म्यतो रसतःसत्त्वतइत्येतेभ्योभावे-
भ्यःसमुदितेभ्योगर्भःसम्भवति । तस्ययेयेऽवयवायतोयतः
सम्भवतःसम्भवन्तितान्विभज्यमातजादीनवयवान्पृथक्पृथ-
गुक्तमग्रे । शुक्रशोणितजीवसंयोगेतुखलुकुक्षिगतेगर्भसंज्ञा
भवति ॥ २ ॥

यह गर्भ माता, पिता, आत्मा, सात्म्य और रस तथा सत्त्व इन सव भावोंसेहीं उत्पन्न होताहै । उस गर्भके जो २ अवयव जिसजिस प्रकार जैसे २ उत्पन्न होतेहैं उनसवके मातृज आदि अवयवोंको विभागपूर्वक अलग अलग प्रथम कथन कर-चुकेहैं । वीर्य और रजके तथा जीवका संयोग होकर कुक्षीमें प्राप्त होनेका नामही गर्भ है ॥ २ ॥

गर्भके वैकारिक द्रव्य ।

गर्भस्तुखलुअन्तरिक्षवाय्वग्नितोयभूमिविकारश्चेतनाधिष्ठान-भूतएवमनयैवयुक्त्यापञ्चमहाभूतविकारसमुदायात्मकोगर्भ-श्चेतनाधातुरधिष्ठानभूतःसह्यस्यषष्ठोधातुरुक्तः ॥ ३ ॥

वह गर्भ-आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी और चेतनाका अधिष्ठानभूत है।इस लिये गर्भ-पञ्चमहाभूतोंके विकारोंका समुदायात्मक है और चेतनाधातुका अधिष्ठानभूत है। वह चेतनाही गर्भकी छठी धातु मानीजातीहै ॥ ३ ॥

गर्भकी आनुपूर्विक उत्पत्ति ।

यथात्वानुपूर्व्याभिनिर्वर्त्ततेकुक्षौतदनुव्याख्यास्यामः । गते पुराणेरजसिनवेचअवस्थितेपुनःशुद्धस्नातांस्त्रियमव्यापन्नयोनि-शोणितगर्भाशयामृतुमतीमाचक्ष्महेतयासहतथाभूतयायदा पु-मानव्यापन्नबीजोमिश्रीभावंगच्छतितस्यहर्षोदीरितःपरःशरी-रधात्वात्माशुक्रभूतोऽङ्गादङ्गात्सम्भवति । स तथाहर्षभूतेना-त्मनोदीरितश्चअधिष्ठितबीजधातुःपुरुषशरीरादभिनिष्पद्योचि-तेनहितेनपथागर्भाशयमनुप्रविश्यार्त्तवेनाभिसंसर्गमेति । तत्र पर्वंचेतनाधातुःसत्त्वकरणोगुणग्रहणायपुनःप्रवर्त्तते । सहिहेतुः-कारणंनिमित्तमक्षरंकर्त्तामन्तावेदिताबोद्धाद्रष्टाधाताब्रह्मावि-श्वकर्माविश्वरूपःपुरुषःप्रभवोऽव्ययोनित्यःगुणीग्रहणंप्राधान्य-मव्यक्तंजीवोज्ञःप्रकुलश्चेतनावान्विभुर्भूतात्माचेन्द्रियात्माचा-न्तरात्माचेति ॥ ४ ॥

जिसप्रकार आनुपूर्विक क्रमसे कुक्षीमें गर्भ उत्पन्न होकर परिणत होताहुआ वृद्धिको प्राप्त होताहै अब उसका वर्णन करतेहैं । जब स्त्री प्राचीन रजके निवृत्त होनेसे नवीन रजोदर्शन होनेके अनन्तर शुद्धस्नान करलेतीहै और रजके साफ होजानेसे उसकी योनि स्रावरहित होकर गर्भाशय शुद्ध होताहै । उससमय वह स्त्री गमनीया अर्थात् पुरुषके सहवासयोग्य होतीहै । उस स्त्रीके साथ शुद्धवीर्यवाले पुरुषका संयोग होकर शरीरकी सम्पूर्ण धातुओंका सारभूत वीर्य आनन्दके कारण शरीरमेंसे प्रचलित होताहै । वह वीर्य आनन्दयुक्त आत्मासे उदीरित हुआ जीवधातु पुरुषके शरीरसे निकलकर उसी रास्तेसे गर्भाशयमें प्रवेश हो शुद्धआर्तव

(मासिक ऋतुका शुद्धरज) से मिलजाताहै। वह चेतनाधातु सत्त्वसंज्ञक मनरूप करणसे युक्त होकर गुण ग्रहण करनेमें प्रथम प्रवृत्त होताहै । इसीलिये वह कारण, निमित्त, अक्षर, कर्त्ता, मंता, वेदिता, वोद्धा, द्रष्टा, धाता, ब्रह्मा, विश्वकर्मा, विश्वरूप, प्रभव, अव्यय, नित्य,गुणी, ग्रहणकर्त्ता. प्रधान, अव्यक्त, जीव, ज्ञाता, प्रकुल, चेतनावान्, विभु, भूतात्मा इन्द्रियात्मा और अन्तरात्मा कहाजाताहै ॥४॥

सगुणोपादानकालेऽन्तरिक्षंपूर्वतरमन्येभ्योगुणेभ्यउपादत्तेयथा प्रलयात्ययेसिसृक्षुर्भूतान्यक्षरभूतःसत्त्वोपादानंपूर्वतरमाकाशं सृजति । ततःक्रमेणव्यक्ततरगुणान्धातून् वाय्वादींश्चतुरः । तथादेहग्रहणेऽपिप्रवर्त्तमानःपूर्वतरमाकाशमेवोपादत्तेततःक्रमेणव्यक्ततरगुणान्धातून्वाय्वादींश्चतुरः । सर्वमपितुखल्वेतद्गुणोपादानमणुनाकालेनभवति ॥ ५ ॥

वह चेतनाधातु गुण ग्रहण करनेके समय और अन्य गुण ग्रहण करनेसे प्रथम आकाशको ग्रहण करके रहताहै । जैसे–विधाता प्रलयके अनन्तर सृष्टि रचना करनेकी इच्छासे सत्त्वोत्पादन करनेसे प्रथम आकाशको रचताहै फिर उस आकाशमें क्रमपूर्वक वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी इन व्यक्तगुणोंवाली धातुओंको रचताहै । इसीप्रकार देहको ग्रहण करनेमें प्रवृत्त होनेकी इच्छावाला आत्मा पहिले आकाशको ग्रहण करताहै फिर क्रमसे वायु,आदि चार व्यक्तधातुओंके गुणोंको ग्रहण करताहै। यह संपूर्णही गुणोंका उपादान अर्थात् ग्रहण करना अणुकाल द्वारा होताहै ॥ ५॥

गर्भकी पहिली अवस्था ।

ससर्गगुणवान्गर्भत्वमापन्नःप्रथमेमासिसंमूर्च्छितःसर्वधातुकलुषीकृतःखेटभूतोभवतिअव्यक्तविग्रहःसचसदसद्भूतांगावयवः ॥ ६ ॥

वह चेतनाधातु इसप्रकार गुणोंको ग्रहण कर गर्भत्वको प्राप्त होजाताहै महीनेमें संमूर्च्छित हुआ संपूर्ण धातुओंसे कलुषित होकर कफके समा होताहै । इस अवस्थामें इसका शरीर दिखाई नहीं देता । वह प्रथम म लभूत गाढासा क्लेद अंगावयवकी सूक्ष्म सत्तासे युक्त होताहै ॥ ६ ॥

द्वितीयेमासिघनःसम्पद्यतेपिण्डंपेश्यर्बुदंवातत्रघनःपु पेशीअर्बुदंनपुंसकम् ॥ ७ ॥

ोजा
उन मे
हैं। जो नन्म
आदि। इनके
न्द्रयहानि आदि
से अनित्य होतेहैं।
लक्षण दिखाई देते
होतेहैं ॥ १६ ॥

दूसरे महीनेमें घन होकर पिंडके आकारका बनजाताहै । यदि पुरुषका शरीर होना हो तो वह पिंड गोल होजाताहै। और स्त्रीका हो तो लम्बी मांसपेशीसी हो जाती है । और नपुंसक होना हो तो अर्बुद (बुलबुला) के समान होताहै ॥ ७ ॥

तृतीयेमासिसर्वेन्द्रियाणिसर्वाङ्गावयवाश्चयौगपद्येनअभिनिर्वर्त्तन्ते ॥ ८ ॥

तीसरे महीनेमें सम्पूर्ण इन्द्रियां और सर्वांगावयव एककालमें ही प्रगट होजातेहैं ॥ ८ ॥

तत्रास्यकेचिदङ्गावयवामातृजादीनवयवान्विभज्यपूर्वमुक्तायथावन्महाभूतविकारप्रविभागेनतुइदानीमस्यतांश्चैवअङ्गावयवान्कांश्चित्पर्यायान्तरेणपरांश्चअनुव्याख्यास्यामः ॥ ९ ॥

उनसब अंगावयवोंमें जो मातृज आदिक अंगावयव होतेहैं उनको तो हम क्रमपूर्वक प्रथमही कथन करचुकेहैं । अब पांचमहाभूतोंके क्रमसे आकाशादिकोंके जो जो अंग उत्पन्न होतेहैं तथा अन्य भी जो अंग जिसप्रकार उत्पन्न होते हैं उनका वर्णन करतेहैं ॥ ९ ॥

गर्भका आकाशात्मक अवयव ।

मातृजादयोऽप्यस्यमहाभूतविकारा एवतत्रास्याकाशात्मकंशब्दःश्रोत्रंलाघवंसौक्ष्म्यंविवेकश्च ॥ १० ॥

मातृज आदिक जितने गर्भके अंग होतेहैं वह सब पांचमहाभूतोंकेही विकार हैं उन पांचोंमें शब्द, श्रोत्र, लघुता, सूक्ष्मता और विभाग अथवा छिद्र यह सब आकाशके विकार होतेहैं । अर्थात् आकाशसे उत्पन्न होतेहैं ॥ १० ॥

गर्भका वाय्वात्मक अवयव ।

वाय्वात्मकंस्पर्शःस्पर्शनञ्चरौक्ष्यं प्रेरणंधातुव्यूहनंचेष्टाश्चशारीर्यः ॥ ११ ॥

स्पर्श, स्पर्शनेंद्रिय, रूक्षता, प्रेरणा, धातुओंकी रचना और शरीरकी चेष्टा यह सब वायुके विकार हैं ॥ ११ ॥

गर्भका अग्न्यात्मक अवयव ।

अग्न्यात्मकंरूपंदर्शनंप्रकाशःपक्तिरौष्ण्यञ्च ॥ १२ ॥

रूप, चक्षुइन्द्रिय, प्रकाश, जठराग्नि और गर्मी यह सब अग्निके विकार हैं॥१२॥

गर्भका जलात्मक अवयव ।

अब्‌ात्मकंरसोरसनंशैत्यंमार्दवःस्नेहःक्लेदश्च ॥ १३ ॥

रस, जिह्वा, शीतलता,मृदुता, चिकनाई और गीलापन यह सब जलके विकार होतेहैं ॥ १३ ॥

गर्भका पृथिव्यात्मक अवयव ।

पार्थिव्यात्मकोगन्धःघ्राणंगौरवस्थैर्य्यंमूर्त्तिश्च ॥ १४ ॥

गन्ध, घ्राणेन्द्रिय, भारीपन, स्थिरता और मूर्त्तता यह सब पृथिव्यात्मक विकार हैं ॥ १४ ॥

एवमयंलोकसम्मतःपुरुषः । यावन्तोहिलोकेभावविशेषाःतावन्तः पुरुषेयावन्तः पुरुषेतावन्तोलोकेइतिबुधास्त्वेवंद्रष्टुमिच्छंति ॥ १५ ॥

इसप्रकार यावन्मात्र लोकसंमित पुरुष हैं और जितने भाव विशेष जिसजिस प्रकार जिसजिस महाभूतके पूर्वमें होतेहैं वह सब बाह्यजगत्‌में देखेजातेहैं । ज्ञानियोंने इस प्रकार पंचभौतिक विकारोंका दृश्य कथन कियाहै ॥ १५ ॥

एवमस्येन्द्रियाणिअङ्गावयवाश्चयौगपद्येनाभिनिर्वर्त्तन्तेअन्यत्र तेभ्योभावेभ्योयेऽस्यजातस्योत्तरकालंजायन्तेतद्यथा, दन्ताव्यञ्जनानिव्यक्तिभावःतथायुक्तानिचापराणिएषाप्रकृतिविकृतिः पुनरतोऽन्यथासंतिखलअस्मिन्गर्भेनित्याभावाःसंतिचानित्याः तस्ययएवाङ्गावयवाःसंतिष्ठन्तेतएवस्त्रीलिङ्गंपुरुषलिङ्गंनपुंसकलिङ्गंवाबिभ्राति ॥ १६ ॥

इसप्रकार सम्पूर्ण इन्द्रियां और अंगावयव एकही कालमें उत्पन्न होजातेहैं परन्तु कुछ भाव इसप्रकारके होतेहैं जो इसके जन्म लेनेके अनन्तर होतेहैं।उन भावोंके सिवाय और सम्पूर्ण अंगावयव क्रमपूर्वक गर्भमेंही परिपूर्ण होजातेहैं। जो जन्म लेने उपरान्त भाव उत्पन्न होतेहैं वह इसप्रकार हैं जैसे-दांत,दाढी,मूंछ आदि। इनके सिवाय अन्य भी प्राकृतिकभाव उत्पन्न होतेहैं । इससे विपरीत इन्द्रियहानि आदि विकृतभाव उत्पन्न होतेहैं । गर्भके बहुतसे भाव नित्य होतेहैं। बहुतसे अनित्य होतेहैं। जिस अंगावयवोंसे स्त्रीके लक्षण पुरुषके लक्षण और नपुंसकके लक्षण दिखाई देते हैं । वह गर्भके भाव नित्य हैं और दांत आदि भाव अनित्य होतेहैं ॥ १६ ॥

कन्या आदिका विशेषभाव।

तत्रस्त्रीपुरुषयोर्येवैशेषिकाभावाःप्रधानसंश्रयागुणसंश्रयाश्चतेषां यतोभूयस्त्वंततोऽन्यतरभावः।तद्यथाक्लैब्यंभीरुत्वमवैशारद्यंमोहोऽवस्थानमधोगुरुत्वमसंहननंशैथिल्यंमार्दवंगर्भाशयबीजभागस्तथायुक्तानिचापराणिस्त्रीकराणि। अतोविपरीतानिपुरुषकराणिउभयभागभावान्नपुंसककराणि। यस्ययत्कालमेवइन्द्रियाणिसंतिष्ठन्तेतत्कालमेवास्यचेतसिवेदनानिबंधंप्राप्नोति। तस्मात्तदाप्रभृतिगर्भःस्पन्दतेप्रार्थयतेचजन्मान्तरानुभूतमिहयत्किञ्चित्तद्द्वैहृदय्यमाचक्षतेवृद्धाः।मातृजञ्चास्यहृदयंमातृहृदयाभिसम्बद्धंरसवाहिनीभिःसंवाहिनीभिस्तस्मात्तयोस्ताभिर्भक्तिःसम्पद्यते। तच्चैवकारणमवेक्षमाणानद्वैहृदय्यंविमानितंगर्भमिच्छन्तिकर्तुंविमानेह्यस्यदृश्यतेविनाशोविकृतिर्वा॥ १७॥

गर्भमें स्त्रीपुरुषके रज और वीर्याश्रित भावोंमें स्त्रीके भावोंकी अधिकता होनेसे कन्या उत्पन्न होतीहै और पुरुषके भावोंकी अधिकता होनेसे पुत्र उत्पन्न होताहै। एवं दोनोंके बरावर होनेसे नपुंसक सन्तान होती है। उनमें कन्याके उत्पन्न करनेवाले ये भाव होतेहैं। जैसे कातरता,भीरुता, अचतुरता, मोह, चञ्चलता, अधोगुरुता, अदृढता, शिथिलता, मृदुता, और रजकी आधिक्यता आदिक भाव कन्याके उत्पन्न करनेवाले होतेहैं। इससे विपरीत सब भाव जैसे शौर्यता, शुक्राधिक्यता, धैर्य, दृढता आदि पुत्र उत्पन्न करनेवाले भाव होतेहैं। दोनोंके बरावर होनेसे नपुंसक सन्तान होतीहै।जब गर्भमें इन्द्रियें उत्पन्न होजातीहैं उसी समयसे चित्तमें पीडा आदि जाननेका संबंध उत्पन्न होजाताहै। जबसे इसको गर्भमें पीडा आदि प्रतीत होने लगतीहै औरगर्भ फडकने लगजाताहै उसी समयसे यह जन्मांतरमें होनेवाले सुख दुःखोंका अनुभव करने लगजाताहै और जिस२ प्रकारकी इच्छा करताहै वह इच्छा माताके हृदयमें पहुंचकर मातासेही उसी प्रकारकी इच्छाको उत्पन्न कराताहै। गर्भका हृदय माता के हृदयके साथ रसवाहिनी नाडियोंद्वारा संबंध रखताहै उन्ही रसवाहिनी नाडियोंके संयोगसे गर्भके हृदयकी इच्छा माताके हृदयमें पहुंचतीहै। उन भावोंको देखकरही गर्भवती स्त्रीको दौर्हृद (दोहृदयोंवाली) कहाजाताहै। जिस प्रकारकी गर्भके हृदयमें इच्छा उत्पन्न होतीहै माता उसी प्रकारकी इच्छाको

प्रगट करतीहै।इसलिये बुद्धिमान् गर्भकी इच्छाका व्याघात कभी नहीं करते अर्थात् गर्भवती जिस पदार्थको चाहतीहै उसको वही देतेहैं । दौहृदके समय माताके इच्छित पदार्थ न मिलनेसे गर्भमें विकार उत्पन्न होताहै।अथवा गर्भनाश होजाताहै ॥ १७॥

समानयोगक्षेमाहिमातातदागर्भेणकेपुचिदर्थेषुतस्मात्प्रियहि-
ताभ्यांगार्भिणींविशेषेणोपचरन्तिकुशलाः ॥ १८ ॥

माता और गर्भ यह , दोनों समान योगक्षेम हैं अर्थात् माताका हित होनेसे गर्भका भी हित होताहै और माताका अहित होनेसे गर्भमें भी विकार उत्पन्न होजाताहै । इसलिये बुद्धिमान् मनुष्य गर्भवती स्त्रीके प्रियकर्त्ता पदार्थोंसे और हित उपचारसे इच्छा पूर्ण करते रहते हैं ॥ १८ ॥

दौर्हृदलक्षण ।

तस्याद्दौर्हृदय्यस्यचविज्ञानार्थंलिङ्गानिसमासेनउपदेक्ष्यामः १९॥

उस स्त्रीके दौहृद जाननेके लिये लक्षण और उसकी रक्षाके लिये हितउपायोंका संक्षेपसे वर्णन करतेहैं ॥ १९ ॥

उपचारसंबोधनंह्यस्याज्ञानेदोषज्ञानश्चलिङ्गतस्तस्मादिष्टोलि-
ङ्गोपदेशस्तद्यथाआर्त्तवादर्शनमास्यसंस्रवणमनन्नाभिलाषश्छ-
र्दिररोचकोऽम्लकामताचविशेषेण । श्रद्धाप्रणयनश्चोच्चावचेषु
भावेषुगुरुगात्रत्वंचक्षुषोर्ग्लानिःस्तनयोःस्तन्यमोष्ठयोःस्तनम-
ण्डलयोश्चकाष्ण्र्यमत्यर्थंश्वयथुः पादयोरीषल्लोमराज्युद्गमोयो-
न्याश्चाटालत्वमितिगर्भेपर्य्यागतेरूपाणिभवंति ॥ २० ॥

क्योंकि गर्भवतीके लक्षणोंको न जाननेसे और उपचारको न जाननेसे गर्भमें अनेक प्रकारकी बाधायें होसकतीहैं । इसलिये लक्षणोंसे ज्ञानकी उत्पत्तिके लिये उन लक्षणोंका वर्णन करतेहैं अर्थात् गर्भवती स्त्रीके यह लक्षण होतेहैं । जैसे-मासिकऋतुका न दीखना, मुखसे पानीका गिरना, अन्न अच्छा न लगना, छर्दी होना, अरुचि और खट्टे पदार्थोंकी इच्छा होना, ऊंच और नीचभावोंमें श्रद्धा होना और इच्छा होना, शरीरका भारी होना, नेत्रोंमें ग्लानि होना, स्तनोंमें दूधकी प्रवृत्ति होना, दोनों ओष्ठ और स्तनोंके मुख काले होना, पावोंपर सूजन होना, योनिका बंद होना, किंचित् रोमांच होना यह सब लक्षण पूर्णगर्भवतीके होतेहैं ॥ २० ॥

गर्भनाशक भाव ।

सा यद्यदिच्छेतुत्तदस्यैदद्यादन्यत्र गर्भोपघातकरेभ्योभावे-

न्यः गर्भोपघातकरास्त्विमे भावाः तद्यथा सर्वमतिगुरूष्णतीक्ष्णदारुणाश्चचेष्टाइमांश्चान्यानुपदिशन्तिवृद्धाः । देवतारक्षोऽनुचरपरिरक्षणार्थंनरक्तानिवासांसिबिभृयान्नमदकराणि चाद्यान्नाभ्यवहरेन्नयानमधिरोहेन्नमांसमश्नीयात्सर्वेन्द्रियप्रतिकलांश्चभावान्दूरतःपरिवर्जयेत् ॥ २१ ॥

वह गर्भवती जिनजिन पदार्थोंकी इच्छा करे उसको वही पदार्थ देने चाहिये । परन्तु जो द्रव्य गर्भको हानि पहुंचानेवाले हों वह नहीं देने चाहिये । गर्भको हानि पहुंचानेवाले यह भाव हैं । जैसे अत्यन्तभारी, तीक्ष्ण और दारुण द्रव्योंका सेवन और उलटीपुलटी चेष्टा करना । इनके सिवाय और भी भावोंको गर्भके हानिकारक कथन कियाहै । जैसे देवता और राक्षस तथा उनके अनुचर भी गर्भमें हानि पहुंचातेहैं । इसलिये वृद्धजनोंने कहा है कि गर्भवती स्त्रीको रक्तवस्त्र धारण नहीं करने चाहिये और मदकारक द्रव्योंका सेवन नहीं करना चाहिये तथा सवारी आदिमें चढना, अतिवेगसे चलना, मांस खाना, एवम् इन्द्रियोंके प्रतिकूल संपूर्ण भावोंको दूरसेंही त्याग देना चाहिये ॥ २१ ॥

यच्चान्यदपिकिञ्चित्स्त्रियोविदुस्तीव्रायान्तुखलुप्रार्थनायांकाममहितमप्यस्यैहितेनोपसंहितंदद्यात्प्रार्थनाविलयनार्थम् । प्रार्थनासन्धारणाद्धिवायुःकुपितोऽन्तःशरीरमनुचरन्गर्भस्यापद्यमानस्यविनाशंवैरूप्यंवाकुर्य्यात् ॥ २२ ॥

यदि किसी अहितकारक द्रव्यके ऊपर स्त्रीकी बहुत इच्छा चलती हो तो उसको वह द्रव्य किसी हितकारी द्रव्यके संयोगसे जिसप्रकार वह हानि न करसके दे देना चाहिये । क्योंकि गर्भवतीस्त्रीकी तीव्र इच्छाको रोकनेसे गर्भमें दोष उत्पन्न होताहै और वायु कुपित होकर बिगाड देताहै ॥ २२ ॥

चौथे महीनेमें गर्भके लक्षण ।

चतुर्थेमासिस्थिरत्वमापद्यतेगर्भस्तस्मात्तदागर्भिणीगुरुगात्रत्वमधिकमापद्यतेविशेषेण ॥ २३ ॥

चौथे महीनेमें वह गर्भ दृढ होजाताहै इसलिये गर्भवती स्त्रीका विशेषरूपसे शरीर भी भारी होजाताहै ॥ २३ ॥

पांचवें महीनेमें गर्भका लक्षण ।

पञ्चमेमासिगर्भस्यमांसशोणितोपचयोभवतिअधिकमन्येभ्यो मासेभ्यस्तस्मात्तदागर्भिणीकार्श्यमापद्यतेविशेषेण ॥ २४ ॥

पांचवें महीनेमें गर्भके मांस और रक्तकी वृद्धि अन्य महीनोंसे अधिक होतीहै । इसलिये गर्भवती स्त्रीका शरीर विशेषतासे कृश होनेलगताहै ॥ २४ ॥

छठे महीनेमें गर्भका लक्षण ।

षष्ठेमासिगर्भस्यबलवर्णोपचयोभवातिअधिकमन्येभ्योमासेभ्य-स्तस्मात्तदागर्भिणीबलवर्णहानिमापद्यतेविशेषेण ॥ २५ ॥

छठवें महीनेमें गर्भके बल और वर्णकी अन्य महीनोंसे अधिक वृद्धि होतीहै । इसलिये गर्भवती स्त्रीके बल और वर्णकी हानि विशेषरूपसे होतीहै ॥ २५ ॥

सातवें महीनेमें गर्भलक्षण ।

सप्तमेमासिगर्भःसर्वभावैराप्यायतेऽस्याः ।
तस्मात्तदागर्भिणीसर्वाकारैःक्लान्ततमाभवाति ॥ २६ ॥

सातवें महीनेमें संपूर्ण भावोंसे गर्भ पुष्ट होजाताहै । इसलिये गर्भिणी सवप्रकारसे क्लान्त अर्थात् व्याकुलसी रहतीहै ॥ २६ ॥

आठवें महीनेमें गर्भके लक्षण ।

अष्टमेमासिगर्भश्चमातृतोगर्भतश्चमातारसवाहिनीभिःसंवाहि-नीभिर्मुहुर्मुहुरोजःपरस्परतआददातिगर्भस्यासम्पूर्णत्वात्तस्मा-त्तदागर्भिणीमुहुर्मुहुःमुदायुक्ताभवतिमुहुर्मुहुश्चग्लानातस्मात्त-दागर्भस्यजन्मव्यापत्तिमद्भवत्योजसोनवस्थितत्वात्तञ्चैवम-भिसमीक्ष्याष्टमंमासमगर्भण्यमित्याचक्षतेकुशलाः ॥ २७ ॥

आठवें महीनेमें गर्भ मातासे और माता गर्भसे रस वहन करनेवाली नाडियों द्वारा परस्पर ओजको ग्रहण करतेहैं । और गर्भ संपूर्ण होताहै । इसलिये गर्भवती स्त्री वारंवार आनन्दयुक्त और वारंवार ग्लानियुक्त होती जातीहै। उससमय गर्भमें ओज स्थिरभावसे नहीं होता । इसीलिये बुद्धिमानोंने अष्टम महीना बालकके उत्पन्न होनेका नहीं मानाहै । क्योंकि आठवें महीनेका उत्पन्न हुआ बालक जीता नहीं है ॥ २७ ॥

प्रसवका समय ।

तस्मिन्नेकदिवसातिक्रान्तेऽपिनवमंमासमुपादायप्रसवकालमि-
त्याहुरादशमान्मासादेतावान्कालोवैकारिकम् ॥ २८ ॥

आठवें महीनेके उपरान्त नवम महीनेका एकदिन व्यतीत होनेपर भी नवां महीनाही गिनाजाता है और वह प्रसवका समय मानाजाताहै । नवमें मासके प्रथम दिनसे लेकर दशम महीनेके अंततक प्रसूतका प्राकृत (ठीक) अर्थात् योग्य समय मानाजाताहै । फिर दशवेंके उपरान्त सब दिन वैकारिक समय माना जाता है ॥ २८ ॥

अतःपरंकुक्षौस्थानंगर्भस्य । एवमनयानुपूर्व्याभिनिर्वर्तते
कुक्षौ ॥ २९ ॥

गर्भका निवासस्थान कुक्षी है और उस कुक्षीमेंही इस पूर्वोक्त क्रमसे गर्भ प्रकट होताहै ॥ २९ ॥

मात्रादीनान्तुखलुगर्भकराणांभावानांसम्पदस्तथातिवृत्तस्य
सौष्ठवान्मातृतश्चैवोपस्नेहोपस्वेदाभ्यांकालपरिणामात्स्वभाव-
संसिद्धेश्चकुक्षौवृद्धिंप्राप्नोति । मात्रादीनान्तुखलुगर्भकराणां
भावानांव्यापत्तिनिमित्तमस्याजन्मभवति ॥ ३० ॥

माता आदिके गर्भकारक भावोंका सम्पन्न होनेसे तथा हित आचारादिकोंके सेवनसे, उपस्नेह और उपस्वेदके योगसे, तथा काल और स्वभावके प्रभावसे गर्भ कुक्षीमें वृद्धिको प्राप्त होता है। और माता आदिके भावोंकेही संपन्न न होनेसे अथवा अनाचारके होनेसे गर्भका जन्म नहीं होता ॥ ३० ॥

येत्वस्यकुक्षौवृद्धिहेतुसमाख्याताभावास्तेषांविपर्य्ययादुदरेवि-
नाशमापद्यतेऽथवाप्याचिरजातःस्यात् ॥ ३१ ॥

गर्भको बढानेवाले भावोंकी प्राप्ति न होनेसे गर्भ पेटमेंही नष्ट होजाताहै । यदि नष्ट न हो तो बहुत विलंबसे उत्पन्न होताहै ॥ ३१ ॥

यतस्तुकार्त्स्न्येनाविनश्यन्विकृतिमापद्यतेतदनुव्याख्यास्यामः॥३२॥

जिन कारणोंसे गर्भ सर्वथा नष्ट न होकर विकारको प्राप्त होजाताहै उनको कथन करते हैं ॥ ३२ ॥

दूषितरक्तजन्य विकृतावयव ।

यदास्त्रियादोषप्रकोपनोक्तान्यासेवमानायादोषाःप्रकुपिताःश-

रीरमुपसर्पन्तः शोणितगर्भाशयौदूषयन्तितदायंगर्भंलभतेस्त्री
तदागर्भस्यमातृजानामवयवानामन्यतमोऽवयवोविकृतिमापद्य-
तेएकोथवानेकः ॥ ३३ ॥

जब स्त्री दोषोंके कुपित करनेवाले पदार्थोंको सेवन करतीहै तब उसके शरीरमें दोष कुपित होकर रक्तको और गर्भाशयको दूषित कर देतेहैं । फिर जब वह गर्भको धारण करतीहै तो उस गर्भके मातृज अवयव अथवा अन्य अवयव एक अथवा अनेक अवयव विकृत होजाते हैं ॥ ३३ ॥

यस्ययस्यह्यवयवस्यवीजेवीजभागेवादोषाःप्रकोपमापद्यन्तेतंत-
मवयवंविकृतिराविशति ॥ ३४ ॥

गर्भके जिस २ वीजावयवको दोष दूषित करते हैं वही २ अवयव अर्थात् वही२ हिस्सा विगड जाताहै । ॥ ३४ ॥

यदाह्यस्याःशोणितगर्भाशयवीजभागःप्रदोषमापद्यतेतदाव-
न्ध्यांजनयति । यदापुनरस्याःशोणितेगर्भाशयवीजभागावय-
वःप्रदोषमापद्यतेतदापूतिप्रजांजनयति ॥ ३५ ॥

जब गर्भमें दोष वीर्यके रजभाग और गर्भाशयकर्त्ता वीजके भागको दोष दूषितकर देते हैं तो इसको वन्ध्या कन्या उत्पन्न होती है। जब दोष स्त्रीके रजमें गर्भाशयके वीजभाव अवयवको दूषित कर देताहै तब उस स्त्रीको दुर्गंधित संतान उत्पन्न होतीहै अथवा सडी गली होतीहै ॥ ३५ ॥

यदात्वस्याःशोणितगर्भाशयवीजभागावयवःस्त्रीकराणाञ्चशरी-
रवीजभागानामेकदेशःप्रदोषमापद्यतेतदास्त्र्याकृतिभूयिष्ठाम-
स्त्रियंवार्त्तानामजनयतितांस्त्रीव्यापदमाचक्षते ॥ ३६ ॥

जब उसके रजमें गर्भाशय वीजभागको दूषित कर स्त्रीके शरीरके एकदेश भागको दूषितकर देताहै तो योनिरहित स्त्रीके आकारवाली वार्ताक नामकी सन्तान उत्पन्न होतीहै इसप्रकार स्त्रीके गर्भाशयमें दोष कुपित होकर गर्भको हानि पहुंचातेहैं ॥ ३६ ॥

दूषित शुक्रजन्य विकृतावयव ।

एवमेवपुरुषस्यवीजदोषेपितृजावयवविकृतिंविद्याद्यदापुनरस्य
वीजेवीजभागावयवःप्रदोषमापद्यतेतदापूतिप्रजांजनयति ॥ ३७ ॥

---

१ रान्ता इतिपाठान्तरम् ।

इसीप्रकार पिताके बीज दोषसे पितृज अवयवोंमें विकृति होती है। जब पुरुषके बीजमें बीजभागके अवयव दूषित होजाते हैं तब दुर्गंधित, सडीहुई, अथवा मरीहुई संतान उत्पन्न होतीहै ॥ ३७ ॥

यदास्वस्यबीजेबीजभागावयवःपुरुषकराणाञ्चशरीरबीजभागानामेकदेशः प्रदोषमापद्यतेतदापुरुषाकृतिभूयिष्ठमपुरुषंतृणपूलिकंनामजनयातितांपुरुषव्यापदमाचक्षते ॥ ३८ ॥

जब मनुष्यके बीजमें पुरुषकारक शरीरके बीजभागके एकदेशको दोष दूषित कर देतेहैं तब इस पुरुषके चिह्नरहित और वीर्यरहित पुरुषके आकारवाला तृणपूलक नामकी संतान उत्पन्न होती है॥ इसप्रकार पुरुषके बीजावयवसे गर्भमें विकार होनेका कथन कियागया । पुरुषके बीजका जो अंश दूषित होता है सन्तानके शरीरमें उसी २ भागमें विकृति होजाती है ॥ ३८ ॥

एतेनमातृजानांपितृजानाञ्चावयवानांविकृतिर्व्याख्यानेनसात्म्यजानांरसजानांसत्त्वजानाञ्चावयवानांविकृतिर्व्याख्याता ३९॥

इस कथनसे माता और पिताके बीजमें होनेवाले विकार आदिकोंका वर्णन कियागया और सात्म्यज रसज तथा सत्त्वज विकृतियोंका भी निर्देश किया गया ॥ ३९ ॥

निर्विकारःपरस्त्वात्मासर्वभूतानांनिर्विशेषःसत्त्वशरीरयोस्तुविशेषाद्विशेषोपलब्धिः ॥ ४० ॥

परमात्मा निर्विकार है वह आत्मा सर्वभूतोंमें समानभावसे वर्तमान है । इसलिये उसमें किसी प्रकारकी विकृति नहीं होती। मन और शरीर सबके एक बराबर नहीं होते इसलिये उनमें दोषादिकोंकी उपलब्धि है ॥४०॥

तत्रत्रयस्तुशारीरदोषावातपित्तश्लेष्माणस्तेशरीरंदूषयन्ति॥४१॥

द्वौपुनःसत्त्वदोषौरजस्तमश्चतौसत्त्वंदूषयतस्ताभ्याञ्चसत्त्वशरीराभ्यांदुष्टाभ्यांविकृतिरुपजायतेनोपजायतेचाप्रदुष्टाभ्याम् ४२॥

वात, पित्त और कफ यह तीनों शारीरिक दोषहैं । यह दोष शारीरिक होनेसे शरीरावयवोंको अथवा शरीरको दूषित करते हैं । रज और तम यह दो मनके दोष हैं। यह दोनों मनको दूषित करतेहैं । इसप्रकार शारीरिक और मानसिक भेदसे दो प्रकारके दोष होतेहैं। यह दोनों प्रकारके दोष दुष्ट होनेसे शरीर और मनको विकृत करदेतेहैं।और दुष्ट न होनेसे विकृत नहीं करते। तात्पर्य यह हुआ

कि आत्मा तो निर्दोष है इसलिये आत्मामें कोई विकृति भी नहीं होती । परन्तु शारीरिक और मानसिक दो प्रकारके दोष होते हैं। सो शरीर और मनको दूषित करते हैं यदि उनका कोई गर्भसे सम्बन्ध होजाताहै, तो जिसप्रकार जिस अवयव और जिस अंशमें उनका दुष्ट होकर प्रवेश होताहै उसीको विगाड देते हैं।यादि वह कुपित नहीं होते किंवा दुष्ट नहीं होते तो किसी प्रकारके उपद्रवको भी नहीं करते ॥४१ ॥ ४२ ॥

तत्रशरीरंयोनिविशेषाच्चतुर्विधमुक्तमग्रेत्रिविधंखलुसत्त्वंशुद्धं राजसतामसमिति । तत्रशुद्धमदोषमाख्यातंकल्याणांशत्वा-त् । राजसंसदोषमाख्यातंरोषांशत्वात् । तथातामसमपिसदो-षमाख्यातंमोहांशत्वात् ॥४३ ॥

शरीरकी चार प्रकारकी योनिका पहिले कथन करचुकेहैं । मन तीन प्रकार-का होताहै । सात्त्विक, राजस और तामस । इनमें सात्त्विक मन निर्दोष होताहै । इसलिये वह कल्याणयुक्त कहाजाताहै। और यह मोक्षसाधनादि कार्यको करनेवाला होताहै ।राजस मन रोषका अंशवाला होनेसे दोषयुक्त कहाजाताहै । तामस मन मोहका अंश अधिक होनेसे अतिदोषयुक्त होताहै ॥ ४३ ॥

सत्त्वके अनेक भेद ।

तेषान्तुत्रयाणामपिसत्त्वानामेकैकस्यभेदाग्रमपरिसंख्येयंतरत-मयोगाच्छरीरयोनिविशेषेभ्यश्चान्योन्यानुविधानत्वाच्च। शरी-रमपिसत्त्वमनुविधीयतेसत्त्वञ्चशरीरंतस्मात्कतिंचिच्चसत्त्वभे-दाननूकसादृश्याभिनिर्देशेननिदर्शनार्थमनुव्याख्यास्यामः ॥ ४४ ॥

इन तीनों प्रकारके मनोंमें एकएकका भेद भी असंख्य होताहै । क्योंकि एकएक-की अधिकता और न्यूनता आदि भेदसे और शरीरयोनि विशेषसे तथा इनके परस्पर अनुसंधान विशेषसे असंख्य होजातेहैं । शरीर भी सत्त्वकेही अनुरूप होताहै और सत्त्व शरीरके अनुरूप होताहै । इन दोनोंके सादृश्यके अनुसार कितने प्रकारके पुरुष विशेष होतेहैं उनके निदर्शनके लिये वर्णन करतेहैं ॥ ४४ ॥

ब्राह्मका लक्षण ।

तद्यथाशुचिंसत्याभिसन्धंजितात्मानंसंविभागिज्ञानविज्ञान-

---

१ जरायुज अण्डज उद्भिज स्वेदज ।

वचनप्रतिवचनशक्तिसम्पन्नंस्मृतिमन्तंकामक्रोधलोभमानमो-
हेर्ष्याहर्षोपेतंसमंसर्वभूतेषुब्राह्मंविद्यात् ॥ ४५ ॥

जिस मनुष्यमें पवित्रता, सत्यता, जितात्मता, विचार, ज्ञान, विज्ञान, वचनशक्ति, प्रतिवचनशक्ति, स्मृति यह सब सम्पत्तियें होतीहैं तथा काम, क्रोध, लोभ, मान, मोह, राग, और द्वेष यह नहीं होते और सम्पूर्ण जीवमात्रमें एकसी दृष्टि रखते हैं उनको ब्राह्मयमनुष्य कहतेहैं ॥ ४५ ॥

आर्षका लक्षण ।

इज्याध्ययनव्रतहोमब्रह्मचर्यपरमतिथिव्रतमुपशान्तमदमानराग-
द्वेषमोहलोभरोषंप्रतिभावचनविज्ञानोपधारणशक्तिसम्पन्नमा-
र्षंविद्यात् ॥ ४६ ॥

जो मनुष्य—यजन, अध्ययन, व्रत, होम, ब्रह्मचर्य, अतिथिव्रतका पालन करतेहैं और मद, मान, द्वेष, राग, मोह, लोभ, रोष रहित हों तथा प्रतिवचन, विज्ञान, उपधारणशक्तिसंपन्न होतेहैं उनको आर्ष जानना ॥ ४६ ॥

ऐन्द्रका लक्षण ।

ऐश्वर्यवन्तमादेयवाक्यंयज्वानंशूरमोजस्विनंतेजसोपेतमक्लि-
ष्टकर्माणंदीर्घदर्शिनंधर्मार्थकामाभिरतमैन्द्रंविद्यात् ॥ ४७ ॥

जो मनुष्य ऐश्वर्ययुक्त हों, जिनकी आज्ञाको लोग मानतेहों, यज्ञ आदि करतेहों एवम् शूर, ओजस्वी, तेजस्वी, अनिन्दितकर्मा, दीर्घदर्शी, धर्म अर्थ और काममें प्रवृत्त हों उनको ऐन्द्र जानना ॥ ४७ ॥

याम्यके लक्षण ।

लेखास्थवृत्तंप्राप्तकारिणमसंहार्य्यमुत्थानवन्तंस्मृतिमन्तमैश्व-
र्य्यालम्बिनंव्यपगतरागद्वेषमोहंयाम्यंविद्यात् ॥ ४८ ॥

जो मनुष्य शास्त्रके माननेवाले हों, कर्त्तव्य, अकर्त्तव्यको विचारकर करनेवाले हों, समयपर चूकनेवाले न हों, जिनका कार्य अप्रतिहत हो । उत्थानवान् हों, स्मृतियुक्त हों, ऐश्वर्यावलम्बी हों और राग, द्वेष तथा मोहसे रहित हों उनको याम्यशरीर कहतेहैं ॥ ४८ ॥

वारुणके लक्षण ।

शूरंधीरंशुचिमशुचिद्वेषिणंयज्वानमम्भोविहाररतिमक्लिष्टकर्मा-
णंस्थानकोपप्रसादंवारुणंविद्यात् ॥ ४९ ॥

जो मनुष्य शूरवीर हों,शुद्ध हों, अपवित्रतासे द्वेष करनेवाले हों, यजन करनेवाले हों, जलमें विहार करनेवाले हों, अनिन्दितकर्मा हों, उचित समयपर क्रोध और प्रसन्नता करनेवाले हों उनको वारुणशरीर कहतेहैं ॥ ४९ ॥

कौबेरका लक्षण ।

स्थानमानोपभोगंपरिवारसम्पन्नंसुखविहारंधर्मार्थकामानित्यंशु-
चिंव्यक्तकोपप्रसादंकौबेरंविद्यात् ॥ ५० ॥

जो मनुष्य यथास्थानमें मान,और भोगको सेवन करनेवाले हों परिवारयुक्त हों, सुखपूर्वक विहार करनेवाले हों, धर्म, अर्थ और कामसाधनमें तत्पर हों, पवित्र हों, जिनका क्रोध और प्रसन्नता प्रगट हो उनको कौबेरशरीर जानना ॥ ५० ॥

गांधर्वका लक्षण ।

प्रियनृत्यगीतवादित्रोल्लापकंश्लोकाख्यायिकेतिहासपुराणेषुकु-
शलंगन्धमाल्यानुलेपनवसनस्त्रीविहारकामनित्यमनसूयकंगा-
न्धर्वंविद्यात् ॥ ५१ ॥

जिन मनुष्योंको नाचना,गाना, बाजा बजाना और स्तुति करना यह सब प्यारा लगताहो, जो श्लोक, कहानियां, इतिहास और पुराणमें कुशल हों, गंध, माला, अनुलेपन,वस्त्र, स्त्री इनमें नित्य आसक्त रहतेहों, निन्दारहित हों उनको गांधर्वकाय कहतेहैं ॥ ५१ ॥

ब्राह्मकी उत्कृष्टता ।

इत्येवंशुद्धस्यसत्त्वस्यसप्तविधंभेदांशंविद्यात्कल्याणांशत्वात्तत्सं-
योगात्तुब्राह्ममत्यन्तशुद्धंव्यवस्येत् ॥ ५२ ॥

इसप्रकार सतोगुणप्रधान मनके सातभेदके अंशविशेषसे सातप्रकारके मनुष्योंका वर्णन कियाहै । उनमें कल्याणका अंश होनेसे यह सातों सात्त्विक मनुष्य कहेजाते हैं । सतोगुणका अधिक संबंध होनेसे ब्राह्मशरीर सबसे उत्तम है ॥ ५२ ॥

आसुरके लक्षण ।

शूरंचण्डमसूयकमैश्वर्यवन्तमौदरिकंरौद्रमननुक्रोशकमात्म-
पूजकमासुरंविद्यात् ॥ ५३ ॥

शूर, चण्ड, साहसी, निंदक, ऐश्वर्यवान्, पेटपालक, उग्रस्वभाववाला, निर्दयी और अपनेको पूजन करने तथा करानेवाला अर्थात् आत्मश्लाघी, आसुर मनुष्य जानना ॥ ५३ ॥

राक्षसके लक्षण ।

अमर्षिणमनुबन्धकोपंछिद्रप्रहारिणंक्रूरमाहारातिमात्ररुचिमा-
मिषप्रियतमंस्वप्नायासबहुलमीर्षुंराक्षसंविद्यात् ॥ ५४ ॥

जो मनुष्य अपने अपमानको न सह सके, जिसके शरीरमें बहुत कालतक क्रोध बनारहे, जो छिद्र पाकर प्रहार करनेवाला हो, क्रूर स्वभाव हो बहुत आहार करने-वाला हो, मांस खानेमें प्रेम रखनेवाला हो, अधिक सोनेवाला हो, अधिक परिश्रम कर सकता हो और ईर्षायुक्त हो उसको राक्षसकाय जानना ॥ ५४ ॥

पिशाच के लक्षण ।

महाशनंस्त्रैणंस्त्रीरहस्कामंअशुचिंशुचिद्वेषिणंभीरुंभीषयिता-
रंविकृतिविहाराहारशीलंपैशाचंविद्यात् ॥ ५५ ॥

जो मनुष्य अत्यन्त आलसी हो, स्त्रियोंमें बैठा रहता हो, स्त्री भोगकी इच्छा-वाला हो, अपवित्र हो, शुद्धतासे द्वेष रखनेवाला हो, डरनेवालेको डराता हो, विकृत आहार विहारका सेवन करनेवाला हो, उसको पैशाचकाय कहते हैं ॥ ५५ ॥

सार्पके लक्षण ।

क्रुद्धंशूरंअक्रुद्धंभीरुंतीक्ष्णमायासबहुलंसन्त्रस्तगोचरमाहारवि-
हारपरंसार्पंविद्यात् ॥ ५६ ॥

जो मनुष्य क्रोधी, शूर, कठोर, डरपोक, तीक्ष्णस्वभाववाला, अधिक परिश्रम करनेवाला, थोडा कहेको समझ जानेवाला, आहार और विहारसे युक्त हो उसको सार्पकाय कहते हैं ॥ ५६ ॥

प्रेतके लक्षण ।

आहारकाममतिदुःखशीलाचारोपचारमसूयकमसंविभागिन-
मतिलोलुपमकर्मशीलंप्रैतंविद्यात् ॥ ५७ ॥

जो मनुष्य अत्यन्त भोजनकी इच्छा रखता हो, जिसका स्वभाव, आचार और उपचार यह सब दुःखितसे हों एवम् निन्दक बिना विचारे करनेवाला अतिलोलुप और अकर्मोंको करनेवाला हो उसको प्रेतकाय जानना ॥ ५७ ॥

शाकुनके लक्षण ।

अनुषक्तकाममजस्रमाहारविहारपरमनवस्थितममर्षिणमसञ्च-
यंशाकुनंविद्यात् ॥ ५८ ॥

जो मनुष्य निरन्तर इच्छावाला हो, कामनामें आसक्त हो,हरसमय अपने खाने कमानेकी चिन्तामें लगा रहताहो, अनवस्थित चित्त हो, क्रोधी हो और संचय न करता हो उसको शाकुन अर्थात् पक्षीकाय कहतेहैं ॥ ५८ ॥

इत्येवंखलुराजसस्यसत्त्वस्यषड्विधंभेदांशंविद्याद्रोषांशत्वात्५९॥

इसप्रकार रोषांशयुक्त होनेसे राजस मनके छः भेद अंशभेदसे जानने ॥ ५९ ॥

पाशवके लक्षण ।

निराकरिष्णुमधमवेषमजुगुप्सितारम् ।
आहारविहारमैथुनपरं स्वप्नशीलंपाशवंविद्यात् ॥ ६० ॥

हरएकको तुच्छ समझनेवाला,अधमवेष धारण करनेवाला, निन्दारहित, आहार विहार और मैथुनमें आसक्त रहनेवाला एवम् अधिक सोनेवाला पाशव शरीर जानना ॥ ६० ॥

मात्स्यके लक्षण ।

भीरुमबुधमाहारलुब्धमनवस्थितमनुषक्तकामक्रोधंसरणशी-
लंतोयकामंमात्स्यंविद्यात् ॥ ६१ ॥

डरपोक, मूर्ख, आहारलोभी, असावधान, कामक्रोधमें आसक्त, इधर उधर फिरनेके स्वभाववाला, जलमें फिरनेकी इच्छावाला मनुष्य मत्स्यकाय जानना ६१

वानस्पत्यके लक्षण ।

अलसंकेवलमभिनिविष्टमाहारेसर्वबुद्ध्यङ्गहीनंवानस्पत्यंवि-
द्यात् ॥ ६२ ॥

आलसी, केवल भोजनमें ही चित्त लगानेवाला, सब प्रकारसे बुद्धिहीन मनुष्य वानस्पत्यकाय जानना ॥ ६२ ॥

इत्येवंखलुतामसस्यसत्त्वस्यत्रिविधंभेदांशंविद्यान्मोहांशत्वात्६३।

इसप्रकार तामस सत्त्वके विधिभेदसे, और मोहांशयुक्त होनेसे तीन प्रकारके तामसी मनुष्य होते हैं ॥ ६३ ॥

इत्यपरिसंख्येयभेदानांखलुत्रयाणामपिसत्त्वानांभेदैकदेशोव्या-
ख्यातः ॥ ६४ ॥

इसप्रकार तीनों प्रकारके सत्त्वोंके अंश भेदसे असंख्य भेद होजातेहैं । इस स्थानमें केवल निदर्शन मात्र कथन कियाहै ॥ ६४ ॥

सत्त्वके भेदोंका संक्षिप्त वर्णन ।

शुद्धस्यसत्त्वस्यसप्तविधोब्रह्मर्षिशक्रवरुणयमकुवेरगन्धर्वसत्त्वानुकारेण । राजसस्यषड्विधोदैत्यराक्षसपिशाचसर्पप्रेतशकुनिसत्त्वानुकारेण । तामसस्यत्रिविधःपशुमत्स्यवनस्पतिसत्त्वानुकारेण । कथञ्चयथासत्त्वमुपचारःस्यादिति । केवलश्चायमुद्देशःयथोद्देशमभिनिर्दिष्टोभवति । गर्भावक्रान्तिसंप्रयुक्तस्यार्थस्यविज्ञानेसामर्थ्यंगर्भकराणाञ्चभावानामनुसमाधिर्विघातश्च विघातकराणांभावानामिति ॥ ६५ ॥

शुद्ध सत्त्वके-ब्रह्म, ऋषि, इन्द्र, वरुण, यम, कुवेर और गंधर्व सत्त्वानुक्रमसे सत्त्वके सातभेद कथन कियेहैं । रजोगुण प्रधान दैत्य, राक्षस, पिशाच, सर्प, प्रेत, पक्षी यह छः प्रकारके भेद राजसमनके कथन कियेहैं । तामस सत्त्वके अनुक्रमसे पशु, मत्स्य, वनस्पति यह तीन भेद कथन कियेहैं । जिस गर्भमें जिस सत्त्वके लक्षण पाये जायँ उसका उसी प्रकार पालन पोषण आदि उपचार करना चाहिये । यह उपरोक्त लक्षण यदि दौहृदकी समय गर्भवती स्त्रीमें हो तो जिस प्रकारके लक्षण हों उसको उसी प्रकारकी संतान होगी । इस स्थानमें इन तीनप्रकारके सत्त्वोंका इसी उद्देशसे वर्णन कियागया है । इस संपूर्ण विवरणके जानलेनेसे किससमय गर्भमें किस प्रकारक द्रव्योंका प्रयोग करना और गर्भमें हितकारक तथा गर्भकारण द्रव्योंका अनुयोजन एवम् गर्भविघातक कारणोंके प्रतिविधानमें योग्यता उत्पन्न होजातीहै ॥ ६९ ॥

अध्यायका उपसंहार ।

तत्रश्लोकाः ।

निमित्तमात्माप्रकृतिर्वृद्धिःकुक्षौक्रमेणच ।
वृद्धिहेतुश्चगर्भस्यपञ्चार्थाःशुभसंज्ञिताः ॥ ६६ ॥

यहांपर श्लोक हैं-कि निमित्त, आत्मा, प्रकृति, गर्भक्रम और गर्भका कुक्षीमें क्रमपूर्वक बढना, उसके बढनेके हेतु, गर्भके उत्पन्न करनेवाले पांच शुभ अर्थ, वर्णन कियेगयेहैं ॥ ६६ ॥

यज्जन्मनिचयोहेतुर्विनाशोविकृतावपि ।
इमांस्त्रीनशुभान्भावानाहुर्गर्भविघातकान् ॥ ६७ ॥

तथा जन्मके न होनेमें एवम् गर्भके नाश होजानेमें और विकृत होजानेमें जो हेतु हैं उन गर्भविनाशक तीन प्रकारके अशुभ हेतुओंको वर्णन कियागया ॥ ६७ ॥

शुभाशुभसमाख्यातानष्टौभावानिमान्भिषक् ।
सर्वथावेदयःसर्वान्सराज्ञःकर्त्तुमर्हति ॥ ६८ ॥

जो वैद्य इन शुभ और अशुभ आठभावोंको संपूर्णरूपसे जानलेताहै वही राजाओंके चिकित्सा करने योग्य उत्तम वैद्य होताहै ॥ ६८ ॥

अवाप्त्युपायान्गर्भस्यसएवंज्ञातुमर्हति ।
येचगर्भविघातोक्ताभावास्तांश्चाप्युदारधीः ॥ ६९ ॥

इतिचरकसंहितायांशारीरस्थानेमहतीगर्भावक्रान्तिःशारीरंसमाप्तम् ४

योग्य वैद्यको चाहिये कि गर्भके उत्पन्न करनेके उपाय तथा गर्भके उत्पन्न करनेवाले भाव एवम् गर्भविघातक भाव इन सबको बुद्धिपूर्वक पूर्णरूपसे जानलेवे॥६९॥

इति श्रीचरक० आ० वै० सं० शारीरस्थाने भाषाटीकायां महतीगर्भावक्रांतिः शारीरं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः ।

अथातःपुरुषविचयंशारीरं व्याख्यास्याम इति हस्माह भगवानात्रेयः ।

अब हम पुरुषविचय शारीरकी व्याख्या करते हैं इसप्रकार भगवान् आत्रेयजी कथन करनेलगे ।

पुरुषोऽयंलोकसम्मितइत्युवाचभगवान्पुनर्वसुरात्रेयः।यावन्तो हिमूर्त्तिमन्तोलोकेभावाविशेषास्तावन्तःपुरुषे यावन्तः पुरुषे, तावन्तोलोके ॥ १ ॥

यह पुरुष लोकसंमित अर्थात् जगत्के समान है । इसप्रकार भगवान् पुनर्वसु आत्रेयजी कथन करनेलगे।यह जितना मूर्त्तिमान् लोकमें भावविशेष है वह सब पुरुषमें होताहै और जो पुरुषमें है वह इस मूर्त्तिमान् जगत्में पायाजाताहै ॥ १ ॥

इत्येवंवादिनंभगवन्तमात्रेयमग्निवेशउवाच । नैतावतावाक्येनोक्तंवाक्यार्थमवगाहामहे । भगवताबुद्ध्याभूयस्तरमतोऽनुव्याख्यायमानंशुश्रूषामहे ॥ २ ॥

इसप्रकार कहतेहुये भगवान् आत्रेयजीसे अग्निवेश बोले कि हे भगवन् ! इतनेही कथनसे आपके वाक्यके अर्थको नहीं जानसकते । इसलिये आप कृपाकरके इस विषयकी विस्तारपूर्वक व्याख्या कीजिये हमको इसके सुननेकी इच्छा है ॥ २ ॥

और जगत् तथा पुरुषकी तुल्यता ।

इति तमुवाचभगवानात्रेयः । अपरिसंख्येयालोकावयवविशेषाःपुरुषावयवविशेषाअप्यपरिसंख्येयाःयथायथाप्रधानस्तेषांयथास्थूलंभावान्सामान्यमभिप्रेत्योदाहरिष्यामःतानेकमनानिबोधसम्यगुपवर्ण्यमानानग्निवेश ! षड्धातवःसमुदिता लोकइतिशब्दंलभन्ते । तद्यथा-पृथिव्यापस्तेजोवायुराकाशं ब्रह्मचाव्यक्तमित्येतएवचषड्धातवःसमुदिताःपुरुषइतिशब्दं लभन्ते । तस्यपुरुषस्यपृथिवीमूर्त्तिरापःक्लेदस्तेजोऽभिसन्तापोवायुःप्राणोवियच्छिद्राणिब्रह्मान्तरात्मा ॥ ३ ॥

यह सुनकर भगवान् आत्रेयजी बोले कि जगत्के अवयवविशेष और पुरुषके अवयवविशेष अपरिसंख्येय हैं अर्थात् गणनामें नहीं आसकते।उनमें जो २ जैसे २ प्रधान और स्थूल भाव हैं उनको सामान्यतासे उदाहरणके लिये वर्णन करतेहैं । हेअग्निवेश ! उन भलेप्रकार वर्णन कियेहुए भावोंको एकाग्रचित्त होकर श्रवण करो। छः धातुओंसे मिलाहुआ जगत् है ऐसा सुननेमें आता है वह छः धातुएँ इसप्रकार हैं । जैसे-पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश और अव्यक्तब्रह्म इनसे सम्मिलित मूर्त्तिमान् जगत् है इसीप्रकार पुरुष भी यही छः धातुओंसे सम्मिलित है । जैसे-पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश तथा आत्मा यह दोनों धारा बराबर देखनेमें आती हैं । जैसे मूर्त्तिमान् जगत्में यह मूर्त्तिमान्पृथ्वी देखनेमें आतीहै उसीप्रकार दूसरीओर पुरुषका शरीर पृथ्वी है । जैसे एकओर जगत्में जलका प्रवाह है वैसेही पुरुषके शरीरमें क्लेदरूप जल है । जैसे जगत्में एकओर अग्नि है उसीप्रकार दूसरीओर पुरुषमें जठराग्नि है जैसे जगत्में एकओर पूर्वपश्चिमकी वायुका गमन है वैसेही दूसरीओर पुरुषके शरीरमें प्राण और अपानवायुका गमन होताहै । जैसे मूर्त्तिमान् जगत्में एकओर आकाश है ऐसे ही दूसरीओर शरीरमें छिद्रसमूहरूपी आकाश है । जैसे मूर्त्तिमान् जगत्में एकओर जगत्का प्रकाशक ब्रह्म है उसीप्रकार दूसरीओर शरीररूपी जगत्को प्रकाश करनेवाला आत्मा है। इसप्रकार दोनोंओर दोनों धारा देखनेमें बराबर आती हैं ॥ ३ ॥

यथाखलुब्राह्मीविभूतिर्लोकेतथापुरुषेऽप्यान्तरात्मिकीविभूति-र्ब्रह्मणोविभूतिर्लोकेप्रजापतिरन्तरात्मनोविभूतिःपुरुषेसत्त्वम्। यस्त्विन्द्रोलोकेसपुरुषेऽहङ्कारःआदित्यास्तुआदानंरुद्रोरोषः सोमःप्रसादोवसवःसुखमश्विनौकान्तिर्मरुदुत्साहोविश्वेदेवाः सर्वेन्द्रियाणिसर्वेन्द्रियार्थाश्चतमोमोहोज्योतिर्ज्ञानम् । यथा लोकस्यस्वर्गादिस्तथापुरुषस्यगर्भाधानंयथाकृतयुगमेवंबाल्य-म् । यथात्रेतातथायौवनंयथाद्वापरस्तथास्थाविर्य्यंयथाकलि-रेवमातुर्य्यंयथायुगान्तस्तथामरणमित्येवमनुमानेनानुक्ताना-मपिलोकपुरुषयोरवयवविशेषाणामग्निवेश ! सामान्यंविद्यात्॥४॥

जैसे जगत्में ब्राह्मीविभूति है उसी प्रकार पुरुषमें भी आत्मिकी विभूति हैजैसे जगत्में ब्रह्मकी विभूति प्रजापति है उसी प्रकार अन्तरात्माकी विभूति सत्त्व है । जगत्में जैसे इन्द्र है उसीप्रकार पुरुषमें अहंकार है जैसे जगत्में सूर्य है वैसेही पुरुषमें आदान (ग्रहणशक्ति) है । जैसे जगत्में रुद्र है वैसेही पुरुषमें क्रोध है ।जैसे जगत्में चन्द्रमा है उसीप्रकार पुरुषमें प्रसन्नता है जैसे जगत्में वसु है उसीप्रकार पुरुषमें सुख है।जैसे जगत्में अश्विनीकुमार हैं वैसे दूसरी ओर पुरुषमें कांति है। जैसे एक-ओर जगत्में वायु देवता है वैसेही दूसरी ओर पुरुषमें उत्साह है । जैसे जगत्में देवता हैं उसीप्रकार पुरुषमें इन्द्रियें और इंद्रियार्थ हैं । जैसे जगत्में तम है उसीप्र-कार पुरुषमें मोह है। जैसे एकओर जगत्में ज्योति है उसीप्रकार दूसरीओर पुरुषमें ज्ञान है । जैसे जगत्में स्वर्गादि हैं वैसेही पुरुषमें रतिसुख है । जैसे जगत्में सत्य-युग है उसीप्रकार पुरुषमें बाल्यावस्था है । जैसे जगत्में त्रेतायुग है वैसेही पुरुषमें यौवनावस्था है जैसे जगत्में द्वापर है उसीप्रकार पुरुषमें बुढापा है । जैसे जगत्में कलियुग है उसीप्रकार पुरुषमें रोगग्रस्त अवस्था है । जैसे एकओर जगत्की प्रलय होताहै वैसेही दूसरीओर पुरुषका मरण होताहै। हे अग्निवेश!यह दोनों धारा पुरुष और जगत्में बराबर देखनेमें आती हैं इनके सिवाय और भी सम्पूर्णभावोंको इसीप्रकार जगत् और पुरुषमें समान जानलेना चाहिये ॥ ४ ॥

अग्निवेशका प्रश्न ।

इत्येवंवादिनंभगवन्तमात्रेयमग्निवेशउवाच। एवमेतत्सर्वमन-

---

१ अनुक्तानामित्यनेन मतिर्धृतिः कामो गन्धर्व इत्यादि ।

एवमेतदिति यथोक्तंभगवतालोकपुरुषयोः सामान्यंकिन्तुअस्यसामान्योपदेशस्यप्रयोजनमिति ॥ ५ ॥

इसप्रकार कथन करतेहुए भगवान् आत्रेयजीसे अग्निवेश कहने लगे कि हे भगवन् ! आपने जिसप्रकार जगत् और पुरुषकी समानताको वर्णन कियाहै यह सर्वथा यथार्थ है और निर्विवाद है । परन्तु इन दोनोंकी समानता वर्णन करनेसे यहां आयुर्वेदमें क्या प्रयोजन सिद्ध हुआ सो कृपा कर वर्णन कीजिये ॥ ५ ॥

आत्रेयजीका उत्तर ।

भगवानुवाच । कथमग्निवेश! सर्वलोकमात्मन्यात्मानञ्चसर्वलोकेसमनुपश्यतस्तस्यात्मबुद्धिरुत्पद्यतेइति । सर्वलोकंहिआत्मनिपश्यतोभवतिआत्मैवसुखदुःखयोः कर्त्तानान्यइतिकर्मात्मकत्वाच्च । हेत्वादिभिरयुक्तसर्वलोकोऽहमितिविदित्वाज्ञानंपूर्वमुत्थाप्यतेऽपवर्गायेति ॥ ६ ॥

आत्रेयजी कहनेलगे कि हे अग्निवेश! जो मनुष्य सम्पूर्ण जगत्के भावोंको अपने शरीरमें देखता है और अपने शरीरके सम्पूर्णभावोंको जगत्में देखता है उस मनुष्यको आत्मबुद्धि उत्पन्न होजातीहै,सम्पूर्णजगत्को आत्मामें देखता हुआ आत्मा ही सुखदुःखका कर्त्ता है और कोई कर्त्ता नहीं है । क्योंकि कर्म आत्माही करताहै। सम्पूर्ण हेतु आदिकोंसे आत्मा अलग है केवल कर्मवशसे जगत्में मिलाहुआ है । कर्मक्षय होनेसे आत्मा इन सब भावोंसे अलग होजाताहै । इसप्रकारका ज्ञान उत्पन्न होकर मैं इन संपूर्णभावोंसे अलग हूं यह ज्ञान उत्पन्न होजाताहै और साक्षात् आत्मज्ञान प्राप्त होजानेसे मोक्षको प्राप्त होजाताहै ॥ ६ ॥

तत्रसंयोगापेक्षीलोकशब्दः षड्धातुसमुदायोहिसामान्यतःसर्वलोकःतस्यहेतुरुत्पत्तिर्वृद्धिरुपप्लवोवियोगश्च । तत्रहेतुरुत्पत्तिकारणमुत्पत्तिर्जन्मवृद्धिराप्यायनमुपप्लवो दुःखागमः षड्धातु-

---

१ सर्वलोकमात्मनि पश्यत इति आत्मनोऽभेदेन पश्यतः आत्मशब्दे षड्धातुसमुदायात्मकः पुरुष इहोच्यते । यत्किञ्चिल्लोकगतं सुखदुःखजनकं तदध्यात्मस्वरूपमित्यनेन बाह्यलोकभूतमध्यात्मकृतमेव वैषयिकं नित्यदुःखानुयुक्तं सुखं हेयं, तथा निसर्गाद्धेयं दुःखञ्च पश्यन् रागद्वेषनिर्मुक्तः सन् सत्यज्ञानवान् भवति अथ सत्यज्ञानस्यादावपवर्गानुष्ठानप्रयोजनमिति । २ कर्मवशः सन् हेत्वादिभिर्युक्तोऽयमात्मा प्रवर्तते, कर्मातत्त्वज्ञानात् प्रवृत्त्युपरमे सति कारणाभावान्नोत्पद्यते । तदात्यन्तिककर्मक्षयात् आत्यंतिककर्मफलाभावरूपो मोक्षो भवतीति भावः ।

वियोगः । सजीवापगमःसप्राणानिरोधःसभंगः सलोकस्वभावः ॥ ७ ॥

इस स्थानमें लोकशब्द संयोगकी अपेक्षा करताहै।सामान्यतासे छः धातुओंका समुदाय संपूर्ण लोक है।इस जगह लोकशब्दसे पुरुष और जगत् दोनोंका ग्रहण है। उस लोकके हेतु, उत्पत्ति, वृद्धि, उपप्लव और वियोग यह सब होतेहैं। इसजगह हेतुशब्द उत्पत्तिमें कारण जानना।जन्मको उत्पत्ति कहतेहैं।वृद्धिशब्दसे बढना और पुष्ट होना जानना।उपप्लव शब्द दुःखकी प्राप्तिका वाचकहै। छः धातुओंका पृथक्कर होजाना वियोग कहाजाताहै। वह वियोग जीवापगम, (जीवनत्याग) प्राणनिरोध, भंग, लोकस्वभाव, नामसे उच्चारण कियाजाताहै ॥ ७ ॥

वियोगका कथन ।

तस्यमूलंसर्वोपप्लवानाञ्चप्रवृत्तिर्निवृत्तिरुपरमश्चप्रवृत्तिर्दुःखंनिवृत्तिःसुखमितियज्ज्ञानमुत्पद्यतेतत्सत्यम्। तस्यहेतुःसर्वलोकसामान्यज्ञानमेतत्प्रयोजनंसामान्योपदेशस्येति ॥ ८ ॥

इस वियोगका मूल प्रवृत्तिही है। प्रवृत्ति ही संपूर्ण दुःखोंका मूल है और निवृत्ति संपूर्ण सुखोंका मूल है। तब यह सिद्ध हुआ कि प्रवृत्ति दुःख और निवृत्ति सुख है। इसप्रकारका जो ज्ञान उत्पन्न होताहै वह सत्य है। इस सत्यज्ञानके उत्पन्न होनेका कारण संपूणजगत् और पुरुषकी समानताका ज्ञान होनाही है। सो समानतासे जगत् और पुरुषकी तुल्यताके वर्णनका प्रयोजन कथन कर दियाहै ॥ ८ ॥

अग्निवेशका प्रश्न ।

अथाग्निवेशउवाच । किंमूला भगवन् । प्रवृत्तिर्निवृत्तौवाउपाय इति ॥ ९ ॥

यह सुनकर अग्निवेश कहनेलगे कि हे भगवन् ! प्रवृत्तिका क्या कारण है और निवृत्तिका क्या उपाय है ॥ ९ ॥

प्रवृत्तिके मूलका वर्णन ।

भगवानुवाच । मोहेच्छाद्वेषकर्ममूलाप्रवृत्तिस्तज्जाह्यहङ्कारसङ्गसन्देहाभिसंप्लवाभ्यवपातविप्रत्ययाविशेषानुपायाः । तरुणमिवद्रुममतिविपुलशाखास्तरवोऽभिभूयपुरुषमवतत्योत्तिष्ठन्ते यैरभिभूतोनसत्तामतिवर्त्तते ॥ १० ॥

यह सुनकर भगवान् आत्रेयजी कहनेलगे कि मोह, इच्छा, द्वेष और कर्महीं प्रवृत्तिका मूल अर्थात् कारण हैं। उस प्रवृत्तिके होनेसे अहंकार, संग, संदेह, अभिसंप्लव, अभ्यवपात, विप्रत्यय, विशेष और अनुपाय यह उपस्थित होजातेहैं । जैसे-तरुण वृक्षमें शाखा आदि निकलकर बडी २ टहनी वढकर होजातीहै और वृक्षसे सब टहनी व्याप्त रहतीहै उसीप्रकार अहंकारादि वढकर पुरुषसे व्याप्त रहतेहैं । उन अहंकार आदिकोंसे व्याप्त हुआ पुरुष आत्मज्ञानको नहीं जानसकता ॥ १० ॥

अहंकारका लक्षण ।

तत्रैवंजातिरूपवित्तबुद्धिशीलविद्याभिजनवयोवीर्य्यप्रभावस-म्पन्नोऽहमित्यहङ्कारः ॥ ११ ॥

मैं अच्छी जातिका हूं, मेरा रूप वहुत उत्तम है एवम् मैं बुद्धि, शील, विद्या, कुल, यौवन, वीर्य और प्रभाववाला हूं इस प्रकार चित्तमें अहंभाव आनेको अहंकार कहतेहैं ॥ ११ ॥

संगलक्षण ।

यन्मनोवाक्कायकर्मनापवर्गायससङ्गः ॥ १२ ॥

मन, वाणी, देह और कर्म इनका इसप्रकार उपयोग करना जिससें मोक्षको प्राप्त न होसके उसको संग कहतेहैं ॥ १२ ॥

संदेहका लक्षण ।

कर्मफलमोक्षपुरुषप्रेत्यभावादयःसन्तिवानेतिसंशयः ॥ १३ ॥

कर्मका फल और मोक्ष तथा आत्मा एवं पुनर्जन्म है या नहीं इसप्रकार बुद्धि होनेको संशय कहतेहैं ॥ १३ ॥

अभिसंप्लवका लक्षण ।

सर्वास्ववस्थास्वनन्योऽहमहंस्रष्टास्वभावसंसिद्धोऽहमहंशरीरे-न्द्रियबुद्धिस्मृतिविशेषराशिरितिग्रहणमभिसंप्लवः ॥ १४ ॥

जो कुछ हूं सो मैंही हूं, सब अवस्थाओंमें अनन्य हूं अर्थात् मेरे समान कोई नहीं मैं श्रेष्ठ हूं मेरा स्वभाव वहुत अच्छा और ठीक है, मैं शरीर, इन्द्रिय, बुद्धि, और स्मृति विशेषका राशि हूं ऐसी बुद्धि होनेका नाम संप्लव है ॥ १४ ॥

अभ्यवपातका लक्षण ।

ममनमातृपितृभ्रातृदारापत्यबन्धुमित्रभृत्यगणोगणस्यचाहमि-त्यभ्यवपातः ॥ १५ ॥

माता, पिता, भाई, स्त्री, संतान, बंधु, मित्र, नौकर आदि सब मेरे हैं और मैं उनका हूं इसप्रकारकी बुद्धि होनेको अभ्यवपात कहतेहैं ॥ १५ ॥

विप्रत्ययका लक्षण ।

कार्य्याकार्य्यहिताहितेशुभाशुभेषुविपरीताभिनिवेशोविप्रत्ययः १६

कार्य और अकार्य,हित और अहित शुभ और अशुभ,इन सबमें विपरीतभावसे प्रवृत्त होना । जैसे अकार्यको कार्य हितको अहित और अहितको हित मानना आदि इस बुद्धिको विप्रत्यय कहतेहैं ॥ १६ ॥

विशेषका लक्षण ।

ज्ञाज्ञयोःप्रकृतिविकारयोःप्रवृत्तिनिवृत्त्योश्चासामान्यदर्शनंवि-शेषः ॥ १७ ॥

यह अज्ञ है,यह ज्ञानी है, यह प्रकृति है यह विकार है,यह प्रवृत्ति है,यह निवृत्ति है, इनसबको असामान्यदृष्टिसे देखना विशेष कहाजाताहै ॥ १७ ॥

अनुपायका लक्षण ।

प्रोक्षणानशनाग्निहोत्रत्रिषवणाभ्युक्षणवाहनयजनयाजनया-चनसलिलहुताशनप्रवेशनादयःसमारम्भाः प्रोच्यन्तेह्यनुपा-याः ॥ १८ ॥

प्रोक्षण, उपवास, अग्निहोत्र, त्रिषवण, अभ्युक्षण, आवाहन, यजन, याजन, याचन, इनका करना तथा जल वा अग्निमें प्रवेश आदि यह मोक्षलाभका अनुपाय है । अर्थात् मोक्षकी ओरसे हटकर स्वर्गादिकोंकी कामनासे प्रवृत्त होना अनुपाय कहाजाताहै ॥ १८ ॥

एवमयमधीधृतिस्मृतिरहङ्काराभिनिविष्टःसंसक्तःससंशयोऽभि-संप्लुतबुद्धिरभ्यवपतितोऽन्यथादृष्टिर्विशेषग्राहीविमार्गगतिर्नि-वासवृक्षःसत्त्वशरीरदोषमूलानांमूलंसर्वदुःखानांभवति ॥ १९ ॥

यह पुरुष इसप्रकार बुद्धि,धृति और स्मृतिसे रहित होकर अहंकारी, आसक्त, संशयी,प्लुतचित्तवृत्ति,अभ्यवपतित,अन्यथादृष्टि, विशेषग्राही कुमार्गगामी होजाता है । सत्त्वदोष अर्थात् मनके दोष और शरीरके दोषसे बढेहुए दुःखरूपी वृक्षका मूल होजाताहै । इसप्रकार अहंकार आदिकोंसे दुःखोंकी उत्पत्ति होतीहै ॥ १९ ॥

इत्येवमहंकारादिभिर्दोषैर्भ्राम्यमाणोनातिवर्त्ततेप्रवृत्तिःसा मूलमघस्य ॥ २० ॥

इसप्रकार अहंकार आदि दोषोंसे भ्रमवाला हुआ मनुष्य निवृत्त नहीं होसकता और प्रवृत्तिमें आकर स्थित होजाताहै । यह प्रवृत्तिही सम्पूर्ण दुःखोंका मूल है ॥ २० ॥

मोक्षसाधनका क्रम ।

निवृत्तिरपवर्गस्तत्परंप्रशान्तंतदक्षरंतद्ब्रह्मसमोक्षः । तत्रमुमुक्षूणामुदयनानिव्याख्यास्यामः । तत्रलोकदोषदर्शिनोमुमुक्षोरादितएवाचार्य्याभिगमनंतस्योपदेशानुष्ठानम् ॥ २१ ॥

निवृत्तिही मोक्ष है, निवृत्तिही अपवर्ग और शान्ति है, और अक्षर है, निवृत्तिही ब्रह्म है । मोक्षके इच्छावालोंके उपयोगी विषयका वर्णन करतेहैं । जगत्में दोषदृष्टिसे देखनेवाला मुमुक्षु अर्थात् मोक्षकी इच्छा करताहुआ गुरुके पास जाय और उसके उपदेशको श्रवण करके तदनुसार वर्ताव करे ॥ २१ ॥

अग्नेरेवोपचर्य्याधर्मशास्त्रानुगमनंतदर्थावबोधस्तेनावष्टम्भःतत्रयथोक्ताःक्रियाःसतामुपासनमसतांपरिवर्जनंनसङ्गतिर्दुर्जनेनसत्यंसर्वभूतहितमपरुषमनतिकालेपरीक्ष्यवचनंसर्वप्राणिषु आत्मनीवावेक्षासर्वासामस्मरणमसंकल्पनमप्रार्थनाअनभिभाषणञ्चस्त्रीणांसर्वपरिग्रहत्यागःकौपीनंप्रच्छादनार्थंधातुरागनिवसनंकन्थासीवनहेतोःसूचीपिप्पलकंशौचाधानहेतोःजलकुण्डिकादण्डधारणंभैक्ष्यचर्य्यार्थंपात्रंप्राणधारणार्थमेककालमग्राम्योयथोपपन्नएवाभ्यवहारः । श्रमापनयनार्थंशीर्णशुष्कपर्णतृणास्तरणोपधानंध्यानहेतोःकायानिबन्धनंवनेषुअनिकेतवासस्तन्द्रानिद्रालस्यादिकर्मवर्जनमिन्द्रियार्थेषुअनुरागोपतापनिग्रहःसुप्तास्थितगतप्रेक्षिताहारविहारप्रत्यङ्गचेष्टादिकेषुआरम्भेषुस्मृतिपूर्विकाप्रवृत्तिःसत्कारस्तुतिगर्हावमानक्षमत्वंक्षुत्पिपासायासश्रमशीतोष्णवातवर्षासुखदुःखसंस्पर्शसहत्वंशोकदैन्यद्वेषमदमानलोभरागेर्ष्याभयक्रोधादिभिरसञ्चलनमहङ्कारादिषूपसर्गसंज्ञालोकपुरुषयोःसर्गादिसामान्यावेक्षणंकार्य्यकालात्ययभयंयोगारम्भेसततमनिर्वेदःसत्त्वोत्साहापवर्गायधीधृत-

स्मृतिबलाधानंनियमनमिन्द्रियाणांचेतसिचेतसआत्मन्यात्म-
नश्चधातुभेदेनशरीरावयवसंख्यानामभीक्ष्णंसर्वंकारणवदुःख-
मस्वमनित्यमित्यभ्युपगमः । सर्वप्रवृत्तिषुदुःखसंज्ञासर्वसंन्या-
सेसुखमित्यभिनिवेशएषमार्गोऽपवर्गायअतोऽन्यथाबध्यतेइत्यु-
दयनानिठयाख्यातानि ॥ २२ ॥

और अग्निसेवन धर्मशास्त्रका पढना और उसके अर्थको जानना तथा धर्मशास्त्रका आश्रय लेना और जो २ उसमें क्रिया कथन की हों उनको करना । श्रेष्ठ पुरुषोंकी सेवा करना । खोटे पुरुषोंको त्याग देना, दुर्जनोंसे संगति न करना, सत्य बोलना, संपूर्ण जीवोंका हित चाहना, विनासमय विनाविचारे तथा कठोर वाक्योंको न बोलना, सब प्राणियोंको अपनी आत्माके समान जानना, विषयोंका स्मरण न करना, विषयोंका संकल्प तथा इच्छा न करना, स्त्रियोंसे भाषण और प्रेम न करना तथा स्त्रियोंसे सब प्रकारके संबंधोंको त्यागदेना । गुह्यस्थान ढकनेके लिये कौपीन, गेरुए कपडे, गुदडी, सूई सीनेके लिये तुंबा (जलपात्र) शौचके लिये दण्डधारण, दांतन, भिक्षा मांगनेका पात्र, प्राणधारणके लिये एकसमय वनके कंद मूलादिक सेवन, यथाप्राप्ति भोजन, थकावट दूर करनेको ऊपरसे सूखकर गिरेहुए पत्रोंका आश्रय तथा घासका आसन। ध्यान लगानेके लिये योगपट्ट, वनवृक्षोंके नीचे निवास, तंद्रा, निद्रा और आलस्यादि कर्मोंका वर्जन, इन्द्रियोंके विषयोंसे उपताप रखना तथा इंद्रियोंको वशमें रखना, निद्रा, स्थिति, गति, दृष्टि, आहार, विहार तथा अंगादिकोंकी चेष्टामें विचारपूर्वक प्रवृत्त होना । तथा सत्कार, स्तुति, निन्दा और अपमान आदिकोंमें प्रसन्न तथा रंज न होना । श्रम, सर्दी, गर्मी, पवन, वृष्टि, सुख और दुःखको सहन करना । शोक, दीनता, द्वेष, मद, मान, लोभ, राग, इर्षा, भय, और क्रोध आदिकोंसे चलायमान न होना । अहंकारादिकोंको उपद्रव समझकर त्याग देना । आत्मामें और लोकपुरुषमें तुल्य दृष्टिसे देखना, अपने योगादिक या समाधि आदिक किसी कालको बिगडने नहीं देना । योगके आरम्भमें सदैव प्रेम लगाये रहे । अपने मनको सदैव सात्त्विक बनाता रहे । मोक्षके लिये बुद्धि, धृति, स्मृति इनके बलको ग्रहण करे । इन्द्रियोंका नियमन करे अर्थात् जीते । अथवा इन्द्रियोंको चित्तमें और चित्तको आत्मामें स्थापन करे। शरीरावयवोंको धातु भेदसे जाने । यह शरीर धातुभेदसे बनाहुआ है और निरन्तर संपूर्ण कार्य, कारण इसीसे होतेहैं । यह संयोगही दुःखका कारण है । यह शरीर अनित्य है । सब प्रकारकी प्रवृत्ति दुःखको देनेवाली है और संपूर्ण सुखोंका

अभिनिवेष त्यागमें है । इसप्रकारका निश्चय करे । यही मोक्षका सीधा मार्ग है । इससे विपरीत प्रवृत्तिमार्ग है । उससे मनुष्य दुःखसे वंधजाता है मोक्षका सुख प्राप्त करनेके लिये इन निवृत्ति मार्गोका कथन किया है ॥ २२ ॥

भवन्तिचात्र ।

एतैरविमलंसत्त्वंशुद्ध्युपायैर्विशुध्यति । मृज्यमानइवादर्शस्तैलचैलकचादिभिः॥२३॥ ग्रहाम्बुदरजोधूमनीहारैरसमावृतम् । यथार्कमण्डलंभातिभातिसत्त्वंतथामलम् ॥२४॥ ज्वलत्यात्मनिसंरुद्धंतत्सत्त्वंसंवृतायने । शुद्धःस्थिरःप्रसन्नार्चिर्दीपोदीपाशयेयथा ॥ २५ ॥

इन सब शुद्ध उपायोंद्वारा मन निर्मल होजाताहै । जैसे—तैल, वस्त्र और वाल आदिकोंसे साफ कियाजानेपर शीशा निर्मल होजाताहै तथा घर, वादल, धूल, धूम, निहार इनसे ढका हुआ सूर्यमण्डल प्रतीत नहीं होता उसीप्रकार अहंकारादिकोंसे व्याप्त हुआ मन होनेपर ज्ञानका प्रकाश नहीं होता।और उन वादलादिकोंके उडजानेसे सूर्यका स्वच्छ प्रकाश दिखाई देने लगताहै उसीप्रकार अहंकार आदिकोंके चले जानेसे मन स्वच्छ होजाताहै । जिस प्रकार स्थिर और प्रसन्न दीपककी ज्योति शुद्ध रीतिसे टिकाई जानेपर निर्मल टिका हुआ प्रकाश करतीहै उसीप्रकार शुद्धसत्त्व आत्मामें ज्ञानका प्रकाश करता है ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥

शुद्धसत्त्वबुद्धिका कथन ।

शुद्धसत्त्वस्ययाशुद्धासत्याबुद्धिःप्रवर्त्तते । ययाभिनत्त्यतिबलंमहामोहमयंतमः ॥ २६ ॥

शुद्ध सत्त्वसे शुद्ध सत्य जो बुद्धि उत्पन्न होतीहै । जिस बुद्धिसे महामोहरूपी अतिबलवान् अंधकार दूर होजाताहै ॥ २६ ॥

सर्वभावस्वभावज्ञोययाभवतिनिस्पृहः । योगंययासाधयतेसांख्यःसम्पद्यतेयया ॥ २७ ॥ यया नोपैत्यहंकारंनोपास्तेकारणं यया । ययानालम्बतेकिञ्चित्सर्वंसंन्यस्यतेयया ॥ २८ ॥ यातिब्रह्मययानित्यमजरःशान्तमक्षरम् । विद्यासिद्धिर्मतिर्मेधाप्रज्ञाज्ञानञ्चसामता ॥ २९ ॥

जिस बुद्धिके द्वारा मनुष्य संपूर्ण भावोंके स्वभावोंको जानताहुआ निष्क्रिय

होजाताहै। जिस बुद्धिके द्वारा योग साधन कियाजाता है तथा सांख्यके जानने-वाले सांख्यके ज्ञाता होतेहैं। जिससे अहंकार उत्पन्न नहीं होता और दुःखसुखके कारण आकर प्राप्त नहीं होते। जिस बुद्धिके होनेसे अन्य किसी विषयकी इच्छा नहीं रहती है जिस बुद्धिसे मनुष्य संपूर्ण त्याग करताहै और नित्य, अजर, शान्त, अक्षर ब्रह्मको प्राप्त होजाता है। वह बुद्धिही विद्या, सिद्धि, मति, मेधा, प्रज्ञा, ज्ञान, स्वरूप कही जाती है ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥

लोकेविततमात्मानंलोकञ्चात्मनिपश्यतः।
परावरदृशःशान्तिर्ज्ञानमूलाननश्यति ॥ ३० ॥

जो मनुष्य संपूर्ण जगत्में अपने आपको देखताहै और अपनेमें संपूर्ण जगत्को देखताहै उस मनुष्यकी परावरदृष्टि और ज्ञानमूला शान्ति कभी नष्ट नहीं होती है ॥ ३० ॥

पश्यतःसर्वभूतानिसर्वावस्थासुसर्वदा।
ब्रह्मभूतस्यसंयोगोनशुद्धस्योपपद्यते ॥ ३१ ॥

संपूर्ण प्राणियोंमें ब्रह्ममयी दृष्टिसे देखताहुआ और संपूर्ण अवस्था तथा संपूर्ण कालोंमें उस ब्रह्मभूत ज्ञानीको पुनर्जन्मके कारण उपस्थित नहीं होतेहैं ॥ ३१ ॥

मुक्तका लक्षण।

नात्मनःकारणाभावाल्लिङ्गमप्युपलभ्यते। ससर्वकारणत्यागा-न्मुक्तइत्यभिधीयते ॥ ३२ ॥ विपापंविरजःशान्तंपरमक्षरम-व्ययम्। अमृतंब्रह्मनिर्वाणंपर्य्यायैःशान्तिरुच्यते ॥ ३३ ॥

जब आत्माके कारण भावसे और कोई चिह्न प्रतीत नहीं होता तो वह सम्पूर्ण कारणोंके त्यागसे मुक्त है ऐसा कहाजाताहै। विपाक, विरज, शान्त, पर, अक्षर, अव्यय, अमृत, ब्रह्म और निर्वाण यह सब शान्ति अर्थात् मोक्षके पर्यायवाचक शब्द हैं ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

एतत्तत्सौम्यविज्ञानंयज्ज्ञात्वामुक्तसंशयाः।
मुनयःप्रशमंजग्मुर्वीतमोहरजःस्पृहाः ॥ ३४ ॥

हे सौम्य! इस विज्ञानके जाननेसे ही मुनीश्वर संशयरहित और मोह राग तथा स्पृहारहित हुएहैं। और मोक्षको प्राप्त हुए हैं ॥ ३४ ॥

अध्यायका उपसंहार।

सप्रयोजनमुद्दिष्टंलोकस्यपुरुषस्य च। सामान्यंमूलमुत्पत्तौनि-

वृत्तौमार्गएवच ॥ ३५ ॥ शुद्धसत्त्वसमाधानं सत्याबुद्धिश्चनै-ष्ठिकी । विचयेपुरुषस्योक्तानिष्ठाचपरमर्षिणा ॥ ३६ ॥

इति चरकसंहितायां शारीरस्थाने पुरुषविचयं शारीरं समाप्तम् ॥५॥

यहां अध्यायके उपसंहारमें श्लोक हैं-इस पुरुषविचयशारीरनामक अध्यायमें जगत् और पुरुषकी सामान्यताका विचार तथा उसका प्रयोजन, दुःखोंकी उत्पत्तिका मूल और निवृत्ति मार्ग, शुद्ध सत्त्वका समाधान, मोक्ष प्राप्त करनेवाली सत्यबुद्धि तथा मोक्ष इन सबका महर्षि आत्रेयजीने वर्णन किया है ॥ ३५ ॥ ३६॥

इति श्रीमहर्षिचरक०शारीरस्थाने भाषाटीकायां पुरुषविचयशारीरंनाम पंचमोऽध्यायः ॥५॥

षष्ठोऽध्यायः ।

अथातः शरीरविचयशारीरंव्याख्यास्याम इति हस्माह भगवानात्रेयः।

अब हम शरीरविचय नामक शारीरकी व्याख्या करते हैं इसप्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे ।

शरीरविचयका प्रयोजन ।

शरीरविचयःशरीरोपकारार्थमिष्यतेभिषग्विद्यायाम् । ज्ञात्वा हिशरीरतत्त्वंशरीरोपकारकरेषुभावेषुज्ञानमुत्पद्यतेतस्माच्छरीरविचयंप्रशंसन्तिकुशलाः ॥ १ ॥

हे अग्निवेश ! वैद्यक शास्त्रमें शरीरके उपकारके लिये शरीर विचय जानना चाहिये शरीरतत्त्वको जाननेसेही शरीरके उपकारक भावोंमें ज्ञान उत्पन्न हो सकता है । इसलिये शरीरविचयके जाननेकी विद्वान्लोग प्रशंसा करते हैं ॥ १ ॥

शरीरका वर्णन ।

तत्रशरीरंनामचेतनाधिष्ठानभूतंपञ्चमहाभूतविकारसमुदायात्मकम्॥२॥

शरीर चेतनाके अधिष्ठानभूत पांच महाभूतोंके विकारोंका समुदाय है ॥ २ ॥

समयोगवाहिनोयदाह्यस्मिञ्छरीरेधातवोवैषम्यमापद्यन्तेतदायंक्लेशंविनाशंवाप्राप्नोतिवैषम्यगमनंवापुनर्धातूनांवृद्धिह्रासगमनमकार्त्स्न्येन ॥ ३ ॥

शरीरकी सम्पूर्ण धातुएँ समयोगवाही हैं।जब यह धातुएँ शरीरमें विषमताको प्राप्त होजाती हैं। तब यह मनुष्य कष्टको पाताहै अथवा विनाशको प्राप्त होजाताहै धातुओंका अपने परिमाणसे बढजाना या कम होजानाही विषमताको प्राप्त होना कहा जाताहै॥ ३ ॥

प्रकृत्याचयोगपद्येनतुविरोधिनांधातूनांवृद्धिह्रासौभवतः॥४॥

प्रायः यह स्वभावसेही धातुओंका गुण है कि जब एक धातु वृद्धिको प्राप्त होती है तो उससे विपरीत दूसरी धातु हीनताको प्राप्त होजातीहै ॥ ४ ॥

यद्धियस्यधातोर्वृद्धिकरंतत्ततोविपरीतगुणस्यधातोःप्रत्यवायक-रन्तुसम्पद्यते। तदेवतस्माद्भेषजंसम्यगवधार्यमाणंयुगप-न्न्यूनातिरिक्तानांधातूनांसाम्यकरंभवतिअधिकमपकर्षतिन्यू-नमाप्याययति।एतावदेवाहिभैषज्यप्रयोगेफलमिष्टंस्वस्थवृत्ता-नुष्ठानञ्चयावद्धातूनांसाम्यंस्यात्॥ ५ ॥

जो द्रव्य एक धातुको बढानेवाला होताहै वह उससे विपरीत गुणवाली दूसरी धातुको हीन करनेवाला होताहै। इसलिये वह एकही औषधी विधिवत् सेवन की हुई न्यून और अधिकहुई धातुओंको साम्यावस्थामें करदेती है'क्योंकि जो धातु बढी हुई होती है उसको अपकर्षण करके घटा देती है और घटीहुईको बढा देतीहै। इसप्रकार औषधीका प्रयोग करनेका श्रेष्ठ फल है। और मनुष्यको स्वस्थवृत्तका अनुष्ठान करना चाहिये जिससे सम्पूर्ण धातुओंकी साम्यता बनीरहे ॥ ५ ॥

धातुसाम्यकी विधि।

स्वस्थस्यापिसमधातूनांसाम्यानुग्रहार्थमेवकुशलारसगुणानाहा-रविकारांश्चपर्य्यायेणेच्छन्तिउपयोक्तुम्। सात्म्यसमाख्यातांने-कप्रकारभूयिष्ठांश्चोपयुञ्जानास्तद्विपरीतकरणलक्षणसमाख्या-तचेष्टयासममिच्छन्तिकर्त्तुम्॥ ६ ॥

स्वस्थ मनुष्योंको भी समधातुओंकी साम्यता रखनेके लिये रस, गुण आदि आहारके विकारोंको उनके पर्यायक्रमसे निश्चय कर देना उचित समझतेहैं। क्योंकि एक प्रकारका रस सात्म्य होनेपर भी बहुत खायाजाय तो उससे जो धातुओंमें विषमता होनेवाली हो उसके विपरीत कार्य करनेवाले द्रव्यके उपयोगसे धातुओंमें समता रहती है और सात्म्यतामें कोई विघ्न उपस्थित नहीं होता। इसलिये अनेक प्रकारके रसोंका भोजन करतेहुए उनके गुणादिकोंसे उनको धातुसात्म्य बना,सेवन

करना अथवा जिसप्रकार सेवन करनेसे धातुएं साम्य रहें उसप्रकार साधन करना उचित है। तथा जिसके सेवनसे जो धातु अधिक होनेवाली हो उससे विपरीत द्रव्यका सेवन करना और चेष्टा करना धातुओंको साम्य रखताहै ॥ ६ ॥

स्वस्थके धातुसाम्य रखनेका उपदेश ।

देशकालात्मगुणविपरीतानांहिकर्मणामाहारविकाराणाञ्चक्रमेणोपयोगःसम्यक् । सर्वाभियोगोनुदीर्णानांसन्धारणमसन्धारणमुदीर्णानाञ्चगतिमतांसाहसानाञ्चवर्जनम् । स्वस्थवृत्तमेतावद्धातूनांसाम्यानुग्रहार्थमुपदिश्यते ॥ ७ ॥

देश, काल और आत्मगुणसे विपरीतकर्मोंका तथा आहारसमूहोंका क्रमपूर्वक उपयोग करना अर्थात् शीतदेशमें गर्म वस्तुओंका उपयोग और उष्णदेशमें शीत वस्तुओंका उपयोग करना । इसीप्रकार शीतकालमें उष्णपदार्थोंका सेवन और उष्णकालमें शीतपदार्थोंका सेवन एवम् रूक्ष प्रकृतिको स्निग्ध द्रव्योंका सेवन करना और स्निग्धको रूक्षका सेवन करना इत्यादि कर्म तथा जो वेग आयेहुए हैं उनको धारण न करना और नहीं आयेहुए वेगोंको धारण करना, साहसीकर्मोंको छोडदेना यह सब स्वस्थ मनुष्योंकी धातुओंको साम्य रखनेके लिये कथन कियेगयेहैं ॥७॥

धातुओंकी वृद्धि और ह्रासका कारण ।

धातवःपुनःशारीराःसमानगुणैःसमानगुणभूयिष्ठैर्वाप्याहारविहारैरभ्यस्यमानैर्वृद्धिंप्राप्नुवन्तिह्रासन्तुविपरीतगुणैर्विपरीतगुणभूयिष्ठैर्वाप्याहारैरभ्यस्यमानैः ॥ ८ ॥

शरीरकी धातुएँ अपने समान गुणवाले तथा समानगुणविशेषवाले आहारविहारोंके सेवनसे वृद्धिको प्राप्त होतीहैं । और विपरीतगुणवाले तथा विपरीतप्रभाववाले आहार, विहारसे धातुएँ ह्रासको प्राप्त होतीहैं ॥ ८ ॥

धातुओंके गुण ।

तत्रेमेशरीरधातुगुणाःसंख्यासामर्थ्यरूपकरास्तद्यथागुरुलघुशीतोष्णस्निग्धरूक्षमन्दतीक्ष्णस्थिरसरमृदुकठिनविशदपिच्छिलश्लक्ष्णखरसूक्ष्मस्थूलसान्द्रद्रवाः ॥ ९ ॥

उन शारीरिक धातुओंके गुण इसप्रकार हैं और वह संख्या, सामर्थ्य और रूपके विभागसे जानने चाहिये।जैसे गुरु,लघु,शीत,उष्ण,स्निग्ध,रूक्ष,मंद, तीक्ष्ण, स्थिर,सर,मृदु,कठिन,विशद,पिच्छिल,श्लक्ष्ण,खर,सूक्ष्म,सान्द्र,स्थूल और द्रव॥९॥

गुरु और लघुधातुओंका वर्णन।

तेषुयेगुरवोधातवोगुरुभिराहारविकारगुणैरभ्यस्यमानैराप्याय्यन्तेलघवश्चह्रसन्ति । लघवस्तुलघुभिरेवाप्याय्यन्तेगुरवश्चह्रसन्त्येवमेवसर्वधातुगुणानांसामान्ययोगाद्वृद्धिविपर्य्ययाद्ध्रासः ॥ १० ॥

इनमें जो गुरु धातु हैं वह गुरुगुणवाले आहारके सेवनसे बढतेहैं और लघुधातुएं ह्रास होती हैं। इसप्रकार लघुगुणवाले द्रव्योंके सेवन करनेसे लघुधातुएँ पुष्ट होतीहैं। और गुरुधातुएँ ह्रास होती हैं। इसप्रकार सम्पूर्ण धातुओंकी समानगुणवाले द्रव्यसे वृद्धि और विपरीत गुणवाले द्रव्योंसे ह्रास होताहै ॥ १० ॥

प्रतिधातुओंकी वृद्धिका हेतु।

तस्मान्मांसमाप्याय्यतेमांसेनभूयोन्येभ्यःशरीरधातुभ्यः। तथा लोहितंलोहितेनमेदोमेदसावसावसयाअस्थितरुणास्थ्नामज्जासज्जयाशुक्रंशुक्रेणगर्भस्त्वामगर्भेण ॥ ११ ॥

इसलिये और धातुओंकी अपेक्षा मांसके खानेसे मांस। रुधिरसे रुधिर। चर्बीसे चर्बी। कोमल अस्थियोंसे अस्थियें। मज्जासे मज्जा। वार्यसे वीर्य बढताहै। इसीप्रकार गर्भ–आमगर्भके सेवनसे बढताहै ॥ ११ ॥

समानकी अप्राप्तिमें उपाय।

यत्रतुएवंलक्षणेनसामान्येनसामान्यवतामाहारविकाराणामसान्निध्यंस्यात्। सान्निहितानांवापिअयुक्तत्वान्नोपयोगोघृणित्वादन्यस्माद्वाकारणात्सचधातुरभिवर्द्धयितव्यःस्यात्। तस्य येसमानगुणाःस्युः आहारविकारा असेव्याश्चतत्रसमानगणमूयिष्ठानामन्यप्रकृतीनामपिआहारविकाराणामुपयोगःस्यात्

इस स्थानमें इस सामान्य निर्देशसे संपूर्ण आहार आदिकोंका भाव जानना। शरीरके धातुओंके समानगुणवाले मांसआदि आहारसे मांस आदिकोंकाही आवश्यक कथन नहीं है किन्तु मांस आदि आहार बढानेवाले जो आहारविशेष हैं उनका प्रयोजन है। जिनको मांस आदिकोंसे घृणा है अथवा न मिलनेसे वा अन्य किसी कारणसे वह असेवनीय है उनको मांस आदिके बढानेवाले अन्य दूध, दाल आदि पदार्थ सेवन करने चाहिये ॥ १२ ॥

तद्यथा--शुक्रक्षयेक्षीरसर्पिषोरुपयोगोमधुरस्निग्धसमाख्याता-नाञ्चापरेषामेवद्रव्याणाम् मूत्रक्षयेपुनरिक्षुरसवारुणीमण्डद्रवमधुराम्ललवणोपक्लेदिनाम् । पुरीषक्षयेकुल्माषमाषकष्माण्डाजमध्ययवशाकधान्याम्लानाम् । वातक्षयेकटुतिक्तकषायरूक्षलघुशीतानाञ्च । पित्तक्षयेम्ललवणकटुकक्षारोष्णतीक्ष्णानाम् ।श्लेष्मक्षयेस्निग्धगुरुमधुरसान्द्रापिच्छिलानांद्रव्याणांकर्माण्यपिचयद्यद्यस्यधातोर्वृद्धिकरंतत्तदनुसेव्यम् ॥ १३ ॥

वह इसप्रकार जानना । जैसे शुक्रके क्षीण होनेपर दूध, घृतका उपयोग करना, मधुर तथा चिकने एवम् अन्य वीर्यवर्द्धक पदार्थोंका सेवन करना उचित है।मूत्रक्षय होनेपर ईखका रस, वारुणी, मण्ड तथा पतले और मधुर,अम्ल,लवण,एवम् मूत्रके लानेवाले अन्य पदार्थ सेवन करने चाहिये । मलके क्षय होनेपर कुल्माष (मटर) उडद, कूष्माण्ड,बडी सेमफली, यव, शाक, धान्याम्ल सेवन करना चाहिये।वातके क्षीण होनेपर कडुवे, चरपरे, कसैले, रूक्ष, हलके तथा शीतल द्रव्य सेवन करना चाहिये । पित्तके क्षय होनेपर खट्टे, नमकीन, चरपरे, क्षार, उष्ण तथा तीक्ष्ण द्रव्योंका सेवन करना चाहिये । कफके क्षीण होनेपर स्निग्ध, भारी, मधुर, सान्द्र, पिच्छिल द्रव्योंका सेवन करना चाहिये । इसी प्रकार जो कर्म भी जिस २ धातुको बढानेवाला हो उसका सेवन करना चाहिये ॥ १३ ॥

एवमन्येषामपिशरीरधातूनांसामान्यविपर्य्ययाभ्यांवृद्धिह्रासौ यथाकालंकार्य्याविति । सर्वधातूनामेकैकशोऽतिदेशतश्चवृद्धिह्रासकराणिव्याख्यातानिभवन्ति ॥ १४ ॥

एवम् अन्य भी जो शरीरकी धातुएँ हैं उनके समान और विपर्यय करनेवाले द्रव्योंसे धातुओंका वृद्धि और ह्रास होताहै। उनसबका धातुओंको साम्य रखनेके लिये यथासमय सेवन करना चाहिये । इसप्रकार संक्षेपसे संपूर्ण धातुओंके वृद्धि और ह्रास करनेवाले भावोंका एकएक करके वर्णन कियागयाहै ॥ १४ ॥

कृत्स्नशरीरपुष्टिकरास्त्विमेभावाःकालयोगःस्वभावसिद्धिराहारसौष्ठवमविघातश्चेतिबलवृद्धिकरास्त्विमेभावाभवन्ति । तद्यथा–बलवत्पुरुषेदेशेजन्मबलवत्पुरुषेचकाले । सुखश्चकालयोगो

बीजक्षेत्रगुणसम्पच्चाहारसंपच्चशरीरसम्पच्चसात्म्यसंपच्चस-
त्त्वसंपच्चस्वभावसंसिद्धिश्चयौवनञ्चकर्मचसंहर्षश्चेति ॥ १५ ॥

संपूर्ण मनुष्योंके सब धातुओंको पुष्ट करनेवाले यह भाव होतेहैं। जैसे-समयका उत्तमयोग, स्वभावसिद्धि, आहारकी उत्तमता, किसीप्रकारका विघात न पहुंचना यह मनुष्योंके बलके बढानेवाले भाव होतेहैं। जैसे-बलवान् पुरुषसे बलवान् स्त्रीमें और बलवान् देशमें, तथा बलवान् समयमें जन्म होना। सुखकारक कालका योग, बीज और क्षेत्रकी उत्तमता, सत्त्वकी उत्तमता, व्यायाम आदि बलकारक कर्म, यौवनावस्था, अपना किया कर्म और प्रसन्नता यह सब मनुष्योंके शरीरको पुष्ट तथा बल और धातुओंकी वृद्धिके करनेवाले भाव हैं ॥ १५ ॥

आहारपरिणामकरास्तुइमेभावाभवन्ति।तद्यथा-उष्मा, वायुः, क्लेदः, स्नेहः, कालः, संयोगश्चेति ॥ १६ ॥ तत्रतुखल्वेषामुष्मादीनामाहारपरिणामकराणांभावानामिमे कर्मविशेषाभवन्तितद्यथा। उष्मापचतिवायुरपकर्षतिक्लेदःशैथिल्यमापादयतिस्नेहोमार्दवंजनयतिकालःपर्य्याप्तिमभिनिर्वर्त्तयतिसंयोगस्तुएषांपरिणामधातुसाम्यकरःसम्पद्यते ॥ १७ ॥

आहारको पाचन करनेवाले यह भाव होतेहैं। जैसे-गर्मी, वायु, क्लेद, स्नेह, काल, और संयोग। इन गर्मी आदि आहारके पाचन करनेवाले भावोंके आहारके पाचन करनेमें पृथक् २ कर्म हैं। जैसे-गर्मी पचानेवाली है। वायु आकर्षण करतीहै। क्लेद आहारको शिथिल करता है। स्नेह मृदु अर्थात् आहारको नरम बनाताहै। काल पर्याप्ति करताहै अर्थात् ठीक समयपर उचित २ कार्योंको करताहै। समयपर भोजन न होनेसे परिपाकमें भी विघ्न होताहै। संयोग इन सबके परिणामसे धातुओंको साम्य करताहै ॥ १६ ॥ १७ ॥

परिणामतस्त्वाहारस्यगुणाःशरीरगुणभावमापद्यन्तेयथास्वमविरुद्धाविरुद्धाश्चविहन्युर्विहताश्चविरोधिभिःशरीरम् ॥ १८ ॥

जब आहार पाचन होजाताहै तो उसके गुण शरीरके गुण भावोंमें प्राप्त होजातेहैं यदि आहार अविरुद्ध गुणवाला हो तो शरीरको पुष्ट करताहै और विरोधी गुणवाला होनेसे शरीरको नष्ट करदेताहै ॥ १८ ॥

शरीरधातुके भेद।

शरीरधातवस्त्वेवंद्विविधाः संग्रहेणमलभूताः प्रसादभूताश्च।

तत्रमलभूतास्तेशरीरस्यथेबाधकराःस्युस्तद्यथाशरीराच्छिद्रेषुउ-पदेहाःपृथग्जन्मानोबहिर्मुखाःपरिपक्वाश्चधातवः । प्रकुपिता-श्चवातपित्तश्लेष्माणोयेचान्येऽपिकेचिच्छरीरेतिष्ठन्तिभावाः शा-रीरस्योपघातायोपपद्यन्तेसर्वांस्तान्मलान्संप्रचक्ष्महे । इतरां-स्तुप्रसादेगुर्वादींश्चद्रव्यान्तान्गुणभेदेनरसादींश्चशुक्रान्तान्द्र-व्यभेदेन ॥ १९ ॥

शारीरिक धातुएं सामान्यतासे दो प्रकारकी होती हैं। १ मलभूत २ प्रसादभूत उनमें जो शरीरको बाधा करनेवाली हैं उनको मलभूत धातु कहतेहैं । वह इस प्रकार हैं । जैसे–शरीरछिद्रोंमें भरा हुआ क्लेद और जो शरीरसे पृथक् उत्पन्न होनेवाले हों अर्थात् शरीरमें न मिलकर फोकट रूपसे अलग निकल जानेवाली हों और परि-पाकको प्राप्त हो अपने छिद्रोंद्वारा बाहर निकल जानेवाली हों (विष्ठाआदि) इनको मल कहते हैं तथा कुपित हुए वात, पित्त, कफ और इनके सिवाय भी जो शरीरको बिगाडनेवाले भाव हैं उन सबको मलभूत धातु कहते हैं । इनके सिवाय गुरु आदि गुणसे लेकर द्रव पर्यन्त गुण भेदसे, और रससे लेकर शुक्रपर्यन्त द्रवभेदसे सब-धातुयें प्रसादसंज्ञक होतीहैं ॥ १९ ॥

तेषांसर्वेषामेववातपित्तश्लेष्माणोदुष्टादूषयितारोभवंतिदोषस्वा-द्वातादीनांपुनर्धात्वन्तरेकालान्तरेप्रदुष्टानांविविधाशितपीतीये-ऽध्यायेविज्ञानान्युक्तानिएतावत्येवदुष्टदोषगतिर्यावत्संस्पर्शना-च्छरीरधातूनाम् । प्रकृतिभूतानान्तुखलुवातादीनांफलमारो-ग्यंतस्मादेषांप्रकृतिभावेप्रयतितव्यंबुद्धिमाद्भिः ॥ २० ॥

उन सब धातुओंकोही दुष्ट हुए वात, पित्त, कफ दूषित करनेवाले होतेहैं । दोष होनेसे वातादिकोंद्वारा जो संपूर्ण धातु दूषित होकर जिन २ लक्षणोंको धारण करतीहैं वह सब विविधाशितपीतीयाध्यायमें विशेषरूपसे कथन कर चुकेहैं।दोष दुष्ट होकर शरीरकी धातुओंको संस्पर्श करतेही दूषित करदेतेहैं । जब यह वातादि दोष अपनी प्रकृतिमें स्थिर रहें तो इनका फल आरोग्यता होताहै । इसलिये बुद्धिमान् दोषोंको प्रकृतिस्थ रखनेमें यत्नवान् रहते हैं ॥ २० ॥

पूर्णवैद्यके लक्षण ।

सर्वदासर्वथासर्वंशरीरंवेदयोभिषक् ।
आयुर्वेदंसकार्त्स्न्येनवेदलोकसुखप्रदम् ॥ २१ ॥

यहांपर श्लोक हैं । जो वैद्य सबप्रकारसे सबकालमें संपूर्ण शरीरके संपूर्णभावोंको यथावत् जानताहै वह लोकको सुख देनेवाले आयुर्वेदको संपूर्णरूपसे जानताहै॥२१॥

तमेवमुक्तवन्तंभगवन्तमात्रेयमाग्निवेशउवाच । श्रुतमेतद्यदुक्तंभगवताशरीराधिकारेवचः । किन्नखलुगर्भस्याङ्गंपूर्वमभिनिर्वर्त्ततेकुक्षौकुतोमुखंकथंवाचान्तर्गतस्तिष्ठति । किमाहारश्चवर्त्तयतिकथंभूतश्चनिष्क्रामतिकैश्चायमाहारोपचारैर्जातस्त्वव्याधिरभिवर्द्धतेसद्योहन्यतेकैःकथञ्चास्यदेवादिप्रकोपनिमित्ताविकाराउपलभ्यन्तेआहोस्विन्नकिञ्चास्यकालाकालमृत्योर्भावाभावयोर्भगवानध्यवस्यति । किञ्चास्यपरमायुःकानिचास्यपरमायुषोनिमित्तानीति ॥ २२ ॥

इसप्रकार कहतेहुए भगवान् आत्रेयजीसे अग्निवेश कहनेलगे कि हेभगवन्! शरीरसंबंधी जो विषय आपने कथन कियाहै वह हमने श्रवण किया । अब कृपा कर यह कथन कीजिये कि गर्भका प्रथम कौनसा अंग उत्पन्न होताहै और गर्भमें बालक किसओर मुखकरके किस प्रकार गर्भाशयके भीतर रहताहै । और क्या आहारकर जीताहै,किसप्रकार निकलताहै,कैसे आहार और उपचारके होनेसे आरोग्य रहकर वृद्धिको प्राप्त होताहै । किन कारणोंसे शीघ्र नष्ट होजाताहै । देव आदिकोंके कोपसें उत्पन्न हुए विकार कैसे जानेजातेहैं । हे भगवन्! आप इसके काल और अकालमृत्युके भाव और अभावका क्या निश्चय करतेहो अर्थात् भावाभावमें कौनसी अकालमृत्यु और कौनसी कालमृत्यु होतीहै तथा उनके कारण क्या है । इसकी परमआयु कितनी है और उसके निमित्त क्या हैं ॥ २२ ॥

तमेवमुक्तवन्तमग्निवेशंभगवान्पुनर्वसुरात्रेयउवाच। पूर्वमुक्तमेतद्गर्भावक्रान्तौयथायमभिनिर्वर्त्ततेकुक्षौयच्चास्ययदासन्तिष्ठतेऽङ्गजातम् । विप्रतिपत्तिवादास्त्वत्रबहुविधाःसूत्रकारिणामृषीणांसन्तिसर्वेषांतानपिनिबोधउच्यमानान् । शिरःपूर्वमभिनिर्वर्त्ततेकुक्षाविंतिकुमारशिराभरद्वाजः पश्यतिसर्वेन्द्रियाणांतदधिष्ठानमितिहृदयमितिकाङ्कायनोबाह्लीकभिषक्चेतनाधिष्ठानत्वात् । नाभिरितिभद्रकाप्यआहारागमइतिकृत्वा पक्वगुदमितिभद्रशौनकोमारुताधिष्ठानत्वात् । हस्तपादमितिबडि-

शस्तत्करणत्वात्पुरुषस्य इन्द्रियाणीतिजनकोवैदेहस्तान्यस्यबु-द्ध्यधिष्ठानानीतिकृत्वा । परोक्षत्वादचिन्त्यमितिमारीचिः कश्यपः सर्वाङ्गनिर्वृत्तियुगपदितिधन्वंतरिः । तदुपपन्नंसर्वाङ्गानांतुल्यकालाभिनिर्वृत्तत्वाद्धृदयप्रभृतीनांसर्वाङ्गानांह्यस्यहृदयंमूलमधिष्ठानञ्चकेषाञ्चिद्भावानांनचतस्मात्पूर्वाभिनिर्वृत्तिरेषान्तस्माद्धृदयपूर्वाणांसर्वाङ्गानांतुल्यकालाभिनिर्वृत्तिः सर्वभावाह्यन्योन्यप्रतिबद्धास्तस्माद्यथाभूतंदर्शनम् ॥ २३ ॥

इसप्रकार अग्निवेशके कथनको सुनकर भगवान् आत्रेयजी कहनेलगे कि हे अग्निवेश ! जिसप्रकार कुक्षीमें गर्भ उत्पन्न होताहै उसका वर्णन तो हम गर्भावक्रांति अध्यायमें करही चुकेहैं और गर्भका जो अंग जिससमय उत्पन्न होताहै यह भी उसीस्थानमें कहचुकेहैं परन्तु जिसप्रकार बहुतसे सूत्रकार ऋषियोंका इस विषयमें पृथक् २ मत है उसको श्रवण करो । कुमारशिरा भरद्वाज कहतेहैं कि पहिले गर्भमें मस्तक उत्पन्न होताहै । क्योंकि मस्तक संपूर्ण इन्द्रियोंका निवासस्थान है।कांकायनवाह्लीक वैद्यका मत है कि प्रथम हृदय उत्पन्न होताहै । क्योंकि चेतनाशक्तिका स्थान हृदयही है भद्रकाप्य कहतेहैं कि पहिले नाभि उत्पन्न होतीहै । क्योंकि गर्भको पालनकरनेके लिये आहार नाभिद्वाराही पहुंचताहै । भद्रशौनक कहनेलगे कि पहिले पक्वाशय उत्पन्न हुआ क्योंकि शारीरिक वायुका प्रधान स्थान पक्वाशयही है।वडिश ऋषिका मत है कि पहिले हाथपैर उत्पन्न होतेहैं क्योंकि हाथपैरही मनुष्यके करण अर्थात् कार्य करनेवाले हैं । विदेह देशके पति जनकका मत है कि पहिले इंद्रियें उत्पन्न होतीहैं क्योंकि इन्द्रियेंही बुद्धिके अधिष्ठान हैं। मारीच कश्यप कहते हैं कि यह सब अपरोक्ष है इसके विषयमें यह जाना नहीं जाता कि कौन पहिले तथा कौन पीछे उत्पन्न होतेहैं ।और धन्वतरीजी कहते हैं कि संपूर्णअंग एकही समयमें उत्पन्न होतेहैं सो-हमारे मतम भी हृदय प्रभृति संपूर्ण अंग एकहीसाथ उत्पन्न होतेहैं । संपूर्ण अंगोंका मूलअधिष्ठान हृदय है । किसी भावकी भी हृदयसे प्रथम उत्पत्ति नहीं होती।संपूर्णभावही आपसमें परस्पर उत्पत्तिके विषयमें अपेक्षा रखतेहैं । इसलिये हे अग्निवेश!सब अंगोंका एकही कालमें उत्पन्न होना युक्तिसिद्ध है ॥ २३ ॥

गर्भस्तुखलुमातुःपृष्ठाभिमुखऊर्द्धशिराः संकुच्याङ्गान्यास्तेजरायुवृतःकुक्षौ । व्यपगतपिपासाबुभुक्षुस्तुखलुगर्भःपरतन्त्रवृत्ति-

मातरमाश्रित्यवर्त्तयतिउपस्नेहोपस्वेदाभ्याम्।गर्भस्तुसदसङ्कू-
तांगावयवस्तदन्तरंह्यस्यलोमकूपायनैरुपस्नेहःकश्चिन्नाभिना-
ड्ययनैः नाभ्यांह्यस्यनाडीप्रसक्तासानाभ्याश्चामराचास्यमातुः
प्रसक्ताहृदयेमातृहृदयंह्यस्यताममरामभिसंप्लवतेशिराभिः-
स्यन्दमानाभिः ॥ २४ ॥

गर्भ माताके पीठकी ओर मुखकरके ऊपरको सिर कियेहुए सब अंगोंको संकोच करके जरायुसे लिपटाहुआ कुक्षीमें रहताहै । और यह भूख प्याससे रहित रहताहै । यह गर्भ परतंत्रवृत्ति है।माताके कियेहुए आहारके उपस्वेद और उपस्नेहसे पलताहै। तथा इसका-जीवन माताके आहारके आश्रय है । गर्भके अंगावयव जबतक नहीं होते तबतक माताके गर्भाशयके सूक्ष्म रूपसे उपस्नेहको प्राप्त होता रहता है । फिर रोममार्गद्वारा गर्भका उपस्नेह होताहै । गर्भकी नाभिसे एक नाडी लगी हुई है जिसको नालवा कहते हैं। यही नाडी माताकी नाडियोंसे मिली हुई है।यह गर्भकी नाभिकी नाल माताके हृदय और गर्भके हृदयसे मिलहुई है। इस नाडीको अमरा कहते हैं। रसके स्यंदन करनेवाली नाडियोंसे यह नाभिकी नाडी रस लेकर गर्भको पुष्ट करती रहती है ॥ २४ ॥

सतस्यरसोसर्वबलवर्णकरःसम्पद्यतेच। सचसर्वरसवानाहारः
स्त्रियाह्यापन्नगर्भायास्त्रिधारसःप्रतिपद्यते स्वशरीरपुष्टयेस्त-
न्यायगर्भवृद्धयेचसतेनाहारेणोपस्तब्धोवर्त्तयतिअन्तर्गतः ॥२५॥

वही रस गर्भको सब प्रकार बल और वर्ण उत्पन्न करताहै । गर्भवती स्त्री सब प्रकारक रस जो आहार करतीहै उसका तीन प्रकारका रस होताहै । उनमेंसे एक रससे गर्भवतीके शरीरकी पुष्टि होतीहै दूसरे प्रकारके रस स्तनोंमें दूध प्रकट करते हैं । तीसरे प्रकारका रस अंतर्गत हो गर्भको पालन करता है ॥ २५ ॥

गर्भके बाहर आनेका वृत्तांत ।

सचोपस्थितकालेजन्मनिप्रसूतिमारुतयोगात्परिवृत्त्याऽवाक्-
शिरानिष्क्रामत्यपत्यपथेन । एषाप्रकृतिर्विकृतिरंतोऽन्यथापर-
न्त्वतएवस्वतन्त्रवृत्तिर्भवति ॥ २६ ॥

फिर वह गर्भ पूर्ण हो सर्वांगसम्पन्न होकर जन्मके समय प्रसूत वायुके वेगसे परिवृत्त हो नीचेको सिर किये संतानमार्ग द्वारा बाहर गिरजाताहै । यह गर्भकी

प्रकृति (स्वाभाविक धर्म) है । इससे अन्यथा विकृति (वैकारिक धर्म) होतीहैं । गर्भाशयसे बाहर होकर अर्थात् जन्मलेनेके अनन्तर इस बालककी वृत्ति स्वतंत्र होजातीहै ॥ २६ ॥

बालकके आहार व उपचार ।

तस्याहारोपचारौजातिसूत्रीयोपदिष्टौअविकारकरौचाभिवृद्धि-करामवतः । ताभ्यामेवचसेविताभ्यांविषमाभ्यांजातंसद्य अपहन्यते तरुरिवाचिरव्यपरोपितोवातातपाभ्यामप्रतिष्ठित-मूलः ॥ २७ ॥

गर्भका जिसप्रकार आहार और उपचार करना चाहिये उसको आगे जातिसूत्रीय नामक आठवें अध्यायमें कथन करेंगे । किसप्रकारका आहार और आचार करनेसे आहार और उपचार निर्विकार होते हुए गर्भको बढानेवाले होतेहैं । उन्हीं आहार और उपचारोंके विषम होनेसे गर्भ अथवा जन्महुआ बालक इसप्रकार नष्ट होजाताहै जैसे-नया लगाया हुआ छोटासा वृक्ष जिसकी जडोंको पृथ्वीने पकडा न हो वह अधिक वायुके लगनेसे और तेज धूपके पडनेसे जडसे नष्ट होजाताहै ॥२७॥

आप्तोपदेशादद्भुतरूपदर्शनात्समुत्थानलिङ्गचिकित्सितविशे-षाच्चदोषप्रकोपानुरूपाश्चदेवादिप्रकोपनिमित्ताश्चविकाराः स-मुपलभ्यन्ते ॥ २८ ॥

आप्तपुरुषोंके रचे हुए बालतंत्रोंके उपदेशसे और अद्भुतरूपोंके देखनेसे विचित्र रूपके अर्थात् दैवी कारण और लक्षणोंके देखनेसे,यथोचित रीतिपर निदान,लक्षण और चिकित्साका ज्ञान होनेसे,दोषोंके कोपसे और देवादिकोंके कोपसे उत्पन्न हुए विकार जानेजासकतेहैं ॥ २८ ॥

कालाकाल मृत्युवर्णन ।

कालाकालमृत्य्वोस्तुखलुभावाभावयोरिदमध्यवसितंनः। यःक-श्चिन्म्रियतेसर्वःकालएवसम्रियतेनहिकालच्छिद्रमस्तीत्येके भाषन्ते । तच्च सम्यक्नह्यच्छिद्रतासच्छिद्रतावाकालस्योपप-द्यते कालस्यलक्षणभावात् ॥ २९ ॥

कालमृत्यु और अकालमृत्युके होने न होनेमें हमारा मंतव्य सुनो कोई कहता है कि जब मनुष्य मारता है वह किसी प्रकारसे भी कभी मरे परन्तु उसका वही

कालहै ।कोई कहताहै कि काल छिद्र प्राप्त होनेसे घात पाकर आक्रमण करताहै । अर्थात् मृत्युके लिये मनुष्यमें जब जो अवकाश होताहै वही उसका मृत्युकाल है । परन्तु यह कथन सत्य नहीं क्योंकि कालके लिये कोई छिद्रता और अच्छिद्रता नहीं है । काल तो स्वयं स्वलक्षण सिद्ध है । उसमें कोई छिद्रता और अच्छिद्रता नहीं होसकती ॥ २९ ॥

तथाहुरपरेयोयदाम्रियतेसतस्यनियतोमृत्युकालःससर्वभूतानां सत्यःसमक्रियत्वादिति । तदपिचान्यथार्थग्रहणंनहिकश्चिन्न म्रियतेइतिसमक्रियःकालःपुनरायुषःप्रमाणमधिकृत्योच्यते ॥३०॥

अन्य इसप्रकार कहतेहैं कि जो जब मरताहै उसका वही मृत्युकाल है । क्योंकि काल सत्य है और रागद्वेष रहित है। सबके लिये एकसी क्रिया करनेवाला है।परंतु यह भी ठीक नहीं देखनेमें आताहै कि बहुतसे मरजातेहैं और बहुतसे नहीं मरते इसलिये काल समक्रिय अर्थात् एकसी क्रिया करनेवाला नहीं है। यदि सबके लिये एककाल एकसाही होय तो उस कालमें या तो सबकी मृत्युही होजाती अथवा कोई भी न मरता । यदि आयुके प्रमाणसे काल मानाजाय तो सौवर्षसे पहिले किसीको मरनाही नहीं चाहिये इसलिये कालको आयुके प्रमाणसे भी समक्रिय नहीं कहा जासकता ॥ ३० ॥

यस्यचेष्टंयोयदाम्रियतेतस्यसानियतमृत्युकालइतितस्यसर्वेभावायथास्वंनियतकालाभविष्यन्ति । तच्चनोपपद्यतेप्रत्यक्षंह्यकालाहारवचनकर्मणांफलमनिष्टविपर्य्ययेचेष्टम् । प्रत्यक्षतश्चोपलभ्यतेखलुकालाकालयुक्तिस्तासुतासुअवस्थासुतंतमर्थमभिसमीक्ष्य । तद्यथाकालोऽयमस्यतुव्याधेराहारस्यौषधस्य प्रतिकर्मणोविसर्गस्यचाकालोवेतिलोकेऽप्येतद्भवति । कालेदेवोवर्षत्यकालेदेवोवर्षतिकालेशीतमकालेशीतंकालेतपत्यकालेतपतिकालेपुष्पफलमकालेपुष्पफलमितितस्मादुभयमस्ति कालेमृत्युरकालेचनैकान्तिकमत्र । यदिह्यकालेमृत्युर्नस्यान्नियतकालप्रमाणमायुःसर्वस्यात् ॥ ३१ ॥

यदि कहो कि जो जिससमय मरे उसका वही मृत्युकाल निश्चित है । तो उसके जितने भाव हैं वह सबही मृत्युके सम्बन्धमें निश्चित काल मानने पडेंगे सो ऐसा भी

नहीं होसकता । क्योंकि प्रत्यक्ष देखनेमें आता है कि काल और अकालकी व्यव-स्थामें जिस २ समय जैसे २ भले या बुरे आहारविहारादि कियेजातेहैं उनका वैसाही वैसा फल होताहै । जैसे इस व्याधीमें आहारे अथवा औषधका यह काल है, चिकित्साका यह समय है, व्याधीका यह समय है अथवा असमय है । इसीप्रकार लोकमें भी देखा जाता है कि अपने ठीक समयपर ऋतुकालमें वर्षा होना और अकालमें वर्षा होना, शीतकालमें शीतपडना और अकालमें शीत पडना, उष्ण-कालमें उष्णता होनी तथा अकालमें उष्णता होनी । समयपर फूलफल आना और बेसमय फूलफल आना।इस प्रकार काल और अकाल युक्तिसिद्ध है।इसलिये दोनों हो सकते हैं । कालमें भी मृत्यु होतीहै और अकाल मृत्यु भी होसकतीहै यह दोनों एक नहीं मानी जासकती । यदि अकालमृत्यु न होती तो सबही मनुष्य आयुके प्रमाणसे निश्चित समयपर मराकरते ॥ ३१ ॥

एवंगतेहिताहितज्ञानमकारणंस्यात्प्रत्यक्षानुमानोपदेशाश्चाप्रमाणस्युःयेप्रमाणभूताःसर्वतन्त्रेषुयैरायुष्याण्यनायुष्याणिचोपलभ्यन्तेवाग्वस्तुमेतद्वादमृषयोमन्यन्तेनाकालमृत्युरस्तीति॥ ३२ ॥

यदि अकालमृत्यु न होती तो हिताहित जाननेकी कोई आवश्यकता न रहती और प्रत्यक्ष तथा अनुमान एवम् आप्तोपदेश इन तीनों प्रमाणोंकी भी प्रमाणता नहीं रहेगी । तथा ऋषियोंके शास्त्रोंमें जो आयुष्य और अनायुष्यकर्त्ता प्रयोग आदि कथन किये गये हैं वह सब बकवादमात्र होजायगे । इसलिये कालमृत्यु और अकालमृत्यु दोनों होती हैं ऐसा निश्चय है ॥ ३२ ॥

आयुका प्रमाण ।

वर्षशतंखलुआयुषःप्रमाणमस्मिन्कालेतस्यनिमित्तंप्रकृतिगुणात्मसम्पत्सात्म्योपसेवनञ्चेति ॥ ३३ ॥

वह कालमृत्यु आर अकालमृत्यु इसप्रकार है कि इससमय आयुका प्रमाण १०० वर्षका है उस सौवर्षकी आयु होनेका कारण मातापिताके रज वीर्यकी उत्तमता, प्रकृतिके गुण और आत्मकृत कर्मोंका उत्तम होना, सात्म्यका सेवनहै अर्थात् इन सबके उत्तम होनेसे आयु सौवर्षकी होती है । उस सौवर्षकी आयुको भोगकर मरनेको कालमृत्यु कहते हैं । इससे विपरीत अकालमृत्यु होतीहै ॥ ३३ ॥

अध्यायका उपसंहार ।

शरीरंयद्यथातच्चवर्त्ततेक्लिष्टमामयैः । यथाक्लेशंविनाशश्चयातियेचास्यधातवः॥ ३४ ॥वृद्धिह्रासौतथाचैषांक्षीणानामौषध-

श्रयत् । देहवृद्धिकराभावाबलवृद्धिकराश्रये ॥ ३५ ॥पारिणामकराभावायाचतेषांपृथक्क्रिया । मलाख्याःसम्प्रसादाख्या धातवःप्रश्नएवच ॥३६॥ नवकोनिर्णयश्चास्यविधिवत्सम्प्रकाशितः । तथाशरीरविचयेशारीरेपरमर्षिणा ॥ ३७ ॥

इतिचरकसंहितायांशारीरस्थानेशरीरविचयःशारीरःसमाप्तः ॥ ६ ॥

यहांपर श्लोक हैं कि इस शरीरविचयशारीर अध्यायमें शरीरका रूप तथा जो गर्भ जिसप्रकार जीताहै जिसप्रकार रोगोंसे क्लेशित होताहै, जिसप्रकार क्लेश तथा विनाशको प्राप्त होता है और इसके सम्पूर्णधातुओंकी वृद्धि और ह्रास,क्षीण धातुओंके बढानेकी औषधी, देह वृद्धि करनेवाले भाव तथा बलवृद्धि करनेवाले भाव, भोजनके परिणाम करनेवाले भाव और उनकी भिन्न २ क्रिया मल संज्ञक धातुयें तथा प्रसाद संज्ञक धातुयें, नौ प्रश्न, उन प्रश्नोंका निर्णय यह सब महर्षि आत्रेयजीने वर्णन किया है ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदसंहितायां शारीरस्थाने पं०रामप्रसादवैद्योपाध्यायविरचित-प्रसादन्याख्यभाषाटीकायामपस्मारनिदानं नामषष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः ।

अथातः शारीरसंख्यानाम शारीराध्यायंव्याख्यास्याम इति हस्माह भगवानात्रेयः ।

अब हम शरीरसंख्या नामक शारीराध्यायकी व्याख्या करतेहैं इसप्रकार भगवान् आत्रेयजी कथन करने लगे ।

शरीरसंख्यामवयवशःकृत्स्नंशरीरंप्रविभज्यसर्वशरीरसंख्यानप्रमाणज्ञानहेतोर्भगवन्तमात्रेयमग्निवेशःपप्रच्छ ॥ १ ॥

संपूर्ण शरीरके अवयवोंके विभागसे संपूर्ण शरीरके अवयवोंकी संख्याको अग्निवेश आत्रेयजीसे पूछनेलगे ॥ १ ॥

तमुवाचभगवानात्रेयः । शृणुमत्तोऽग्निवेश ! सर्वशरीरमभिचक्षाणाद्यथाप्रश्नमेकमनाः ॥ २ ॥

भगवान् आत्रेयजी कथन करनेलगे कि हे अग्निवेश ! संपूर्ण शरीरके अवयवोंकी व्याख्या एकाग्रचित्त होकर मुझसे यथा प्रश्न श्रवण करो ॥ २ ॥

त्वचाके भेद ।

यथावच्छरीरेषट्त्वचस्तद्यथा-उदकधरात्वग्बाह्याद्वितीयात्व-
गसृग्धरातृतीयासिध्मकिलाससम्भवाधिष्ठानाचतुर्थीकुष्ठसम्भ-
वाधिष्ठानापञ्चमीअलजीविद्रधीसम्भवाधिष्ठानाषष्ठीतुयस्यां
छिन्नायांताम्यत्यन्धइवचतमःप्रविशातियांचाप्याधिष्ठायारूंषि
जायन्तेपर्वसन्धिषुकृष्णरक्तानिस्थूलमूलानिदुश्चिकित्स्यतमा-
नीतिषट्त्वचएताःषडङ्गंशरीरमवतत्यतिष्ठन्ति ॥ ३ ॥

यथावत् शरीरमें छः त्वचा होती हैं । वह इसप्रकार हैं । जैसे-पहिली उदकधरा त्वचा अर्थात् ऊपरवाली बाहरी त्वचा, दूसरी असृग्धरा, तीसरी त्वचा सिध्म(छीम) यह किलास रोगके उत्पन्न होनेका स्थान है, चौथी त्वचामें कुष्ठ आदि रोग उत्पन्न होतेहैं, पांचवी त्वचामें अलजी, विद्रधी आदि रोग उत्पन्न होतेहैं, छठी त्वचा वह है जिसके फटजानेसे मनुष्यको मूर्च्छा उत्पन्न होजातीहै, नेत्रोंमें अंधकार आजाताहै । इसीके आश्रयसे जोडोंकी संधियोंमें काला, तथा लालवर्णके अत्यंत दुश्चिकित्स्य व्रण प्रगट होतेहैं । यह त्वचा षडंग शरीरको लपेटकर रहतीहै ॥ ३ ॥

शारीरके अंगविभाग ।

तत्रायंशरीरस्याङ्गविभागःतद्यथा--द्वौबाहूद्वेसक्थिनीशिरोग्रीव-
मन्तराधिरितिषडङ्गमङ्गम् ॥ ४ ॥

यह शरीर छः अंगोंमें विभक्त है । जैसे-दो बाहें और दो ऊरू (टांगें) तथा एक गर्दनसहित शिर एवम् छठा मध्यभाग ॥ ४ ॥

शरीरकी हड्डियोंकी संख्या ।

त्रीणिषष्ट्यधिकानिशतान्यस्थ्नांसहदन्तोलूखलनखैस्तद्यथा-
द्वात्रिंशद्दन्तोलूखलानिद्वात्रिंशद्दन्ताविंशतिर्नखाविंशातिः पा-
णिपादशलाकाश्चत्वार्यधिष्ठानान्यासांचत्वारिपाणिपादपृष्ठा-
निषष्टिरंगुल्यस्थीनिद्वेपार्ष्ण्योर्द्वेकूर्चाधश्चत्वारःपाण्योर्मणिका-
श्चत्वारःपादयोर्गुल्फाःचत्वार्यरत्न्योरस्थीनिचत्वारिजंघयो-
र्द्वेजानुनोर्द्वेकूर्परयोर्द्वेऊर्वोर्द्वेबाह्वोःसांसयोःद्वावक्षकौद्वेतालूनिद्वे
श्रोणिफलकेएकंभगास्थिपुंसांमेढ्रास्थिएकांत्रिकसंश्रितमेकंगु-

दास्थिपृष्ठगतानिपञ्चत्रिंशत्पञ्चदशास्थीनिग्रीवायांद्वेजत्रुण्येकं हन्वस्थिद्वेहनुमूलबन्धनेद्वेललाटेद्वेअक्ष्णोर्द्वेगण्डयोर्नासिकायां त्रीणिघोणाख्यानिद्वयोःपार्श्वयोश्चतुर्विंशतिश्चतुर्विंशतिःपञ्जरा-स्थीनिचपार्श्वकानि । तावन्तिचैषांस्थालिकान्यर्बुदाकाराणि तानिद्विसप्ततिर्द्वौशंखकौचत्वारिशिरःकपालानिवक्षसिसप्तद-शेतित्रीणिषष्ट्यधिकानिशतान्यस्थ्नामिति ॥ ५ ॥

दांतों और उलूखलों (जिसमें दांत जडे रहतेहैं) सहित संपूर्ण शरीरमें तीनसौ साठ ३६० हड्डियें हैं । जैसे बत्तीस ३२दांत ३२ बत्तीस उलूखल । २० बीस नख २० बीस हाथपावोंकी शलाका । ४ चार उन शलाकाओंके अधिष्ठान । ४ चार हाथ पावोंके पृष्ठस्थान।६०साठ अंगुलियोंकी हड्डियें । २ पार्ष्णी।२दो कूर्चके अधो-भाग। दोनों हाथोंकी ४ चार मानिका । दोनों पैरोंके ४ चार गुल्फ । ४ चार अरत्नी । चार जंघाकी हड्डियें । २ दो जानुकी हड्डियें । २ दो कोहनीकी हड्डियें । दो २ ऊरूकी हड्डियें । २ दो बाहुकी हड्डियें । दो २ कंधेकी हड्डियें । दो २ दोनों जत्रुसंधियोंमें अक्षक (कीलक) । दो २ तालुकी हड्डियें । दो २ श्रोणी फलक (दोनों चूतडोंके ऊपरकी हड्डी)।१एक भगकी हड्डी।१ पुरुषके लिंगकी हड्डी। एक १ त्रिकस्थानकी हड्डी । १ एक गुदाकी हड्डी । ३५ पैंतीस पीठकी हड्डियें । १५ पंद्रह गर्दनकी हड्डियें । २ दो जत्रुकी हड्डियें । १ एक ठोडीकी हड्डी । २ दो ठोडीके मूलबंधकी ।दो २ ललाटकी हड्डियें । दो २ नेत्रोंकी हड्डियें । दो गण्डस्थलकी हड्डियें । ३ तीन नासिकाकी हड्डियें । २४ चौबीस दोनों पार्श्वभागकी हड्डियें । २४ चौबीस दोनोंतरफ पंजरकी हड्डियें।२४चौबीस ही इनके अर्बुदाकार स्थालिक । २ दोनों संखोंकी हड्डियां । ४ चार कपालकी हड्डियां । १७ सत्रह वक्षस्थलकी हड्डियां इसप्रकार सब मिलकर संपूर्ण शरीरकी हड्डियें ३६० होती हैं ॥ ५ ॥

इंद्रियें और इंद्रियोंके अधिष्ठान आदि ।

पञ्चेंद्रियाधिष्ठानानितद्यथा--त्वग्जिह्वानासिकाक्षिणीकर्णौच॥ ६॥

पांच इंद्रियोंके अधिष्ठान हैं जैसे—त्वचा, जिह्वा, नासिका, आंख, कान ॥ ६ ॥

पञ्चबुद्धीन्द्रियाणितद्यथा--स्पर्शनंरसनंघ्राणंदर्शनंश्रोत्रमिति ॥७॥

पांच बुद्धि इन्द्रियें अर्थात् ज्ञान इन्द्रिय होतीहैं । जैसे—स्पर्शन, रसन, घ्राण, दर्शन और श्रोत्र इन्द्रिय ॥ ७ ॥

पञ्चकर्मेन्द्रियाणितद्यथाहस्तौपादौपायुरुपस्थोजिह्वाचेति ॥ ८ ॥

पांच कर्म इंद्रिय हैं जैसे हाथ, पांव, पायु (गुदा), उपस्थ (भग या लिंग) और जिह्वा ॥ ८ ॥

हृदयंचेतनाधिष्ठानमेकम् ॥ ९ ॥

चेतनाका अधिष्ठान हृदय है ॥ ९ ॥

१० प्राणायतन और मर्म ।

दशप्राणायतनानितयथामूर्द्धाकण्ठोहृदयंनाभिर्गुदबस्तिरोजः शुक्रंशोणितंमांसमिति । तेषुषट्पूर्वाणिमर्मसंख्यातानि ॥ १० ॥

दश प्राणायतन हैं । जैसे मस्तक, कण्ठ, हृदय, नाभि, गुदा, वस्ती, ओज, शुक्र, रुधिर और मांस । इन दश स्थानोंमें प्राण रहनेसे इनको प्राणायतन अर्थात् प्राणोंके रहनेके स्थान कहते हैं । इनमें कण्ठ, मस्तक, हृदय, नाभि, गुदा, वास्ति इन छओंको मर्मस्थान भी कहतेहैं ॥ १० ॥

१५ कोष्ठ ।

पञ्चदशकोष्ठांगानितयथानाभिश्चहृदयञ्चक्लोमचयकृच्चप्लीहाचवृक्कौचबस्तिश्चपुरीषाधानञ्चामाशयश्चेतिपक्काशयश्चोत्तरगुदश्चाधरगुदश्चक्षुद्रान्त्रञ्चस्थूलान्त्रञ्चवपावहनञ्चेति॥ ११ ॥

कोष्ठांग (कोठे) पंद्रह हैं । जैसे—नाभि, हृदय, क्लोम, यकृत, प्लीहा, वृक, वस्ती, मलाशय, आमाशय पक्काशय, उत्तरगुद, अधोगुद, क्षुद्रांत्र, स्थूलांत्र, वपावहन ॥ ११ ॥

प्रत्यङ्गोंके नाम ।

षट्पञ्चाशत्प्रत्यङ्गानिषट्सुअंगेषुउपनिबद्धानियान्यपरिसंख्यातानिपूर्वमंगेषुपरिसंख्यायमानेषुतान्यन्यैःपर्य्यायैरिहप्रकाश्य व्याख्यातानिभवन्ति । तद्यथा- द्वेजंघापिण्डिकेद्वेऊरुपिण्डिके द्वौस्फिचौद्वौवृषणौएकंशेफःद्वेउखेद्वौवंक्षणौद्वौकुकुन्दरौएकंबस्तिशीर्षमेकमुदरंद्वौस्तनौद्वौभुजौद्वेबाहुपिण्डिकेचिबुकमेकंद्वावोष्ठौद्वेसृक्कण्यौद्वौदन्तवेष्टकौएकंतालुएकागलशुण्डिकाद्वेउपजिह्विकेएकागोजिह्विकाद्वौगण्डौद्वेकर्णशष्कुलिकेद्वौकर्णपत्रकौद्वेअक्षिकूटेचत्वारिअक्षिवर्त्मानिद्वेअक्षिकनीनिकेद्वेभ्रुवौएकमवटुचत्वारिपाणिपादहृदयानिनवमहान्तिछिद्राणिसप्तशिरासिद्वेचाधः ॥ १२ ॥

छप्पन ५६ प्रत्यंग (उपांग) हैं । वह पूर्व कहेहुए छः अंगोंमें बंधे हैं जिनका पहिले छः अंगोंका कथन करते समय कथन नहीं कियागयाथा। अब उन छप्पन अंगोंका कथन करते हैं । जैसे–२ जंघाओंकी पिंडलियें। २ ऊरुस्थलकी पिंडलियें २ स्फिक्।२ वृषण । १ लिंग । १ आमाशय । १ ग्रहणी । २ वंक्षण । २ कुकुन्दर । १ बस्तिशीर्ष । १ उदर । २ स्तन ।२ भुजा । २ कुहुनियां । १ ठोंडी । २ होठ । २ सृक्कणी । २ दंतवेष्ट । १ तालु । १ गलशुण्डिक । २ उपजिह्व । १ गोजिह्विका । २ गण्डस्थल । २ कर्णशष्कुलिका । २ कर्णपत्र । २ अक्षिकूट । ४ अक्षीवर्त्म । २ अक्षीकनीनिका । २ भौंहें । १ गर्दन । २ हथेली । २ तलवे । ९ महाछिद्र । उन नवोंमें सात छिद्र गर्दनसे ऊपर और दो नीचेके भागमें ॥ १२ ॥

अदृश्य अंगोंके नाम ।

एतावद्दृश्यंशक्यमपिनिर्देष्टुमनिर्देश्यमतःपरंतर्क्यमेवतद्यथा नवस्नायुशतानिसप्तशिराशतानिद्वेधमनीशतेपञ्चपेशीशतानि सप्तोत्तरंमर्मशतंद्वेपुनःसन्धिशते ॥ १३ ॥

यह सब अंग दृश्य अर्थात् देखनेमें आतेहैं और बहुतसे ऐसे अंग भी हैं जो अदृश्य हैं वह केवल तर्कद्वाराही जाने जासकतेहैं । जैसे–नौसौ ९०० स्नायु । सात सौ ७०० शिरा दोसौ २०० धमनियां । पांचसौ ५०० पेशियां । एकसौ सात १०७ मर्म दोसौ २०० संधियां होतीहैं ॥ १३ ॥

त्रिंशच्छतसहस्राणिनवचशतानिषट्पञ्चाशतसहस्राणिशिराधमनीनामणुशःप्रविभज्यमानानांमुखाग्रपरिमाणम् । तावन्ति चैवकेशश्मश्रुलोमानीत्येतद्यथावद्यत्संख्यातंत्वक्प्रभृतिदृश्यमतःपरंतर्क्यम् ॥ १४ ॥

इन शिरा और धमनियोंके सूक्ष्म विभाग करनेसे इनके मुखाग्रभागका परिमाण अर्थात् संख्या ३० तीस लाख ५६ छप्पन हजार ९ नौसो होतीहै । उतनेही केश, श्मश्रु और रोम होते हैं । इसप्रकार इनकी यथावत् संख्याका वर्णन किया गयाहै । त्वचा प्रभृति जो दीखनेमें आतेहैं उनको दृश्य कहतेहैं तथा अन्यको तर्क्य कहते हैं ॥ १४ ॥

एकेतदुभयमपिनविकल्पयन्तेप्रकृतिभावाच्छरीरस्ययत्त्वञ्जलिसंख्येयंतदुपदेक्ष्याम ।तत्परंप्रमाणमभिज्ञेयंतच्चवृद्धिह्रासयोगितर्क्यमेवतद्यथादशोदकस्याञ्जलयःशरीरेस्वेनाञ्जलिप्रमाणेय-

तुप्रच्यवमानंपुरीषमनुबध्नातिअतियोगेन । तथामूत्रंरुधिर-मन्यांश्चशरीरधातून् यत्तुसर्वशरीरचरंबाह्यत्वग्विभर्त्तियत्तुत्व-गन्तरेव्रणगतंलसीकाशब्दंलभतेयच्चोष्मणानुबद्धंलोमकूपे-भ्योनिष्पतत्स्वेदशब्दमवाप्नोतितदुदकंदशाञ्जलिप्रमाणम्॥१५॥ नवाञ्जलयःपूर्वस्याहारपरिणामधातोर्यद्रसमित्याचक्षते । अष्टौ शोणितस्यसप्तपुरीषस्यषट्श्लेष्मणःपञ्चपित्तस्यचत्वारोमूत्रस्य त्रयोवसायाद्वौमेदसःएकोमज्ज्ञः । मास्तिष्कस्यअर्द्धाञ्जलिः शुक्रस्यतावदेवप्रमाणंतावदेवश्लेष्मणश्चोजसइत्येतच्छरीरत-त्त्वमुक्तम् ॥ १६ ॥

कोई कहतेहैं कि अंगोंका विभाग प्रत्यक्ष और अनुमानद्वारा दोनों प्रकार नहीं होसकता । वह शरीरके स्वभावसेही है । शरीरके धातुओंका अंजली द्वारा परिमाण कथन करतेहैं । वह परिमाण प्रत्येक मनुष्यकी अपनी अंजलीपर निर्भर है। अत्यंत तीक्ष्ण विरेचन देनेसे जो जल विरेचन द्वारा पुरीषसे मिलकर निकल जाताहै वह दश अंजली प्रमाण होताहै । तथा जो जल मूत्र द्वारा, रुधिर द्वारा निकलताहै एवम् संपूर्ण शरीरमें विचरण करनेवाला त्वचाको पालन करनेवाला, जो त्वचामें व्रण होजानेसे लसीका कहाजाताहै, जो गर्मीके आनेसे रोमकूपों द्वारा निकलताहै । यह सब दश अंजली प्रमाण जल होताहै । जो आहार किया जाताहै उसका परिमाण धातु, रस नौ अंजली होताहै । रक्त आठ अंजली होताहै । पुरीष सात अंजली होताहै । कफ छः अंजली होताहै । पित्त पांच अंजली होताहै । मूत्र चारअंजली होताहै । वसा तीन अंजली होताहै । दो अंजली मेद । एक अंजली मज्जा । आधी अंजली मस्तिष्क । आधी अंजली शुक्र । आधी अंजली श्लेष्मका ओज। इसप्रकार शरीरमें अंजलियोंका प्रमाण जानना ॥ १५ ॥ १६ ॥

पार्थिव द्रव्योंका वर्णन ।

तत्रयद्विशेषतःस्थूलंस्थिरंमूर्त्तिमद्गुरुखरकठिनमङ्गंनखास्थिद-न्तमांसचर्मवर्चःकेशश्मश्रुनखलोमकण्डरादितत्पार्थिवंगन्धो घ्राणञ्च ॥ १७ ॥

उन सब अंगोंमें जो विशेषकरके स्थूल, स्थिर, मूर्त्तिमान्, भारी, खर, कठोर, अंग होताहै तथा दांत, नख, हड्डी, मांस, चर्म, मल, केश, श्मश्रु,रोम और कण्डरा

आदि पार्थिवअंग होतेहैं तथा गंध और घ्राणेन्द्रिय भी पार्थिव अर्थात् पृथ्वीके अंग हैं ॥ १७ ॥

आप्यद्रव्योंके नाम ।

यद्द्रवसरमन्दस्निग्धमृदुपिच्छिलरसरुधिरवसाकफपित्तमूत्रस्वेदादितदाप्यंरसोरसनञ्च ॥ १८ ॥

जो विशेषरूपसे द्रव, सर, मंद, स्निग्ध, मृदु, पिच्छिल, अवयव हैं तथा रस, रुधिर, वसा, कफ, पित्त, मूत्र स्वेद आदिक जलके अंग हैं । एवम् रस और रसना भी जलके अंग हैं ॥ १८ ॥

आग्नेयद्रव्योंके नाम ।

यत्पित्तमुष्माचयोयाचभाःशरीरेतत्सर्वमाग्नेयंरूपंदर्शनञ्च॥१९॥

शरीरमें पित्त, उष्णता, प्रकाश, पाचनशक्ति, रूप और दर्शनेन्द्रिय यह सव आग्नेय अर्थात् अग्निके अंग हैं ॥ १९ ॥

वायवीय द्रव्योंके नाम ।

यदुच्छ्वासप्रश्वासोन्मेषनिमेषाकुञ्चनप्रसारणगमनप्रेरणधारणादितद्वायवीयंस्पर्शःस्पर्शनञ्च ॥ २० ॥

उच्छ्वास, निःश्वास, प्राण, अपान, उन्मेष, निमेष, आकुञ्चन, प्रसारण, गमन, प्रेरण, धारण और स्पर्श तथा स्पर्शनेन्द्रिय यह सब वायवीय अर्थात् पवनके अंग हैं२०॥

आन्तरिक्षद्रव्योंके नाम ।

यद्विविक्तमुच्यतेमहान्तिचाणूनिचस्रोतांसितदान्तरिक्षंशब्दः श्रोत्रञ्च ॥ २१ ॥

शरीरके बडे छोटे सब छिद्र, स्रोत, शब्द और श्रोत्रइन्द्रिय यह सब आकाशके अंग हैं ॥ २१ ॥

यत्प्रयोक्तृतत्तत्प्रधानंबुद्धिर्मनश्चेतिशरीरावयवसंख्यायथास्थूलभेदेनावयवानांनिर्दिष्टा ॥ २२ ॥

जो प्रयोग करनेवाला है उसको प्रयोक्ता कहतेहैं । मन और बुद्धि प्रयोक्ता हैं इसलिये प्रधान हैं । इसप्रकार शरीरके अवयवोंकी संख्याका भेद, अवयवोंका स्थूल भेद वर्णन किया गयाहै ॥ २२ ॥

शरीरावयवास्तुपरमाणुभेदेनापरिसंख्येयाभवन्त्यतिबहुत्वाद्-

तिसौक्ष्म्यादतीन्द्रियत्वाच्च । तेषांसंयोगविभागेवायुःपरमाणूनांकारणंकर्मस्वभावश्चतदेतच्छरीरसंख्यातमनेकावयवंदृष्टमेकत्वेनसङ्गःसंख्यातम् । पृथक्त्वेनापवर्गःतत्रप्रधानमशक्तंसर्वसत्त्वानिवृत्तौनिवर्त्तते इति ॥ २३ ॥

परमाणु भेदसे शरीरके अवयव असंख्य होतेहैं क्योंकि वह भेद अत्यन्त अधिक अत्यन्त सूक्ष्म और अतीन्द्रिय होते हैं। उन परमाणुओंके संयोग विभागमें वायु कर्म और स्वभावही कारण होताहै। इसप्रकार शरीरकी संख्याका वर्णन किया गया। उन अनेक अवयवोंसे बनाहुआ यह शरीर एक दिखाई देताहै और यह कर्माधीन मोहवश एकत्वके संगको प्राप्त हुवा है। इन सब भावोंके पृथक् २ विचारनेसे और असंगसे मोक्ष प्राप्त होताहै।सम्पूर्ण अवयवोंमें यथोचित दृष्टि देनेसे ज्ञान उत्पन्न होकर सम्पूर्ण भावोंकी निवृत्ति होजाती है ॥ २३ ॥

अध्यायका उपसंहार ।

शरीरसंख्यांयोवेदसर्वावयवशोभिषक् । तदज्ञाननिमित्तेनसमोहेननयुज्यते ॥ २४ ॥ अमूढोमोहमूलैश्चनदोषैरभिभूयते । निर्दोषोनिःस्पृहःशान्तःप्रशाम्यत्यपुनर्भवः ॥ २५ ॥

इति चरकसं० शारीर० शरीरसंख्यः शारीरः समाप्तः ॥ ७ ॥

यहांपर अध्यायके उपसंहारमें श्लोक हैं। जो वैद्य सम्पूर्ण अवयवोंसे शरीरकी संख्याको जान लेताहै वह अज्ञाननिमित्तक मोहसे युक्त नहीं होता। वह बुद्धिमान् मूढतारहित मोहमूलक दोषोंसे दूषित नहीं होसकता तथा निर्दोष निःस्पृह और शान्तिको प्राप्त होकर मोक्षको प्राप्त होते हैं ॥ २४ ॥ २५ ॥

इति श्रीमहर्षिचरक० शारीरस्थाने०भाषाटीकायांशरीरसंख्याशारीरं नामसप्तमोऽध्यायः॥७॥

अष्टमोऽध्यायः ।

अथातोजातिसूत्रीयंशारीरंव्याख्यास्यामइतिहस्माहभगवानात्रेयः ।

अब हम जातिसूत्रीय शारीरकी व्याख्या करते हैं इसप्रकार भगवान् आत्रेयजी कथन करने लगे ।

उत्तम संतान होनेका उपाय ।

स्त्रीपुरुषयोरव्यापन्नशुक्रशोणितयोनिगर्भाशययोःश्रेयसींप्रजामिच्छतोस्तन्निर्वृत्तिकरंकर्मोपदेक्ष्यामः ॥ १ ॥

स्त्री और पुरुषका रज, वीर्य, योनि और गर्भाशय निर्दोष होनेपर उत्तम संतान उत्पन्न करनेकी इच्छावाले स्त्री पुरुषोंको जो कर्म करना चाहिये उसका वर्णन करते हैं ॥ १ ॥

अथाप्येतौस्त्रीपुरुषौस्नेहस्वेदाभ्यामुपपाद्यवमनविरेचनाभ्यांसं-
शोध्यक्रमात्प्रकृतिमापादयेत्संशुद्धौचास्थापनानुवासनाभ्यामु-
पाचरेदुपाचरेच्चमधुरौषधसंस्कृताभ्यांघृतक्षीराभ्यांपुरुषंस्त्रिय-
न्तुतैलमांसाभ्याम् ॥ २ ॥

प्रथम स्त्री और पुरुष स्नेहन स्वेदनसे शरीरको नरम बनाकर क्रमपूर्वक वमन, विरेचन द्वारा संशोधनकर शरीरको उत्तम बनावे और दोषादिकोंसे शुद्ध शरीर होनेपर मधुर द्रव्योंसे और घृत दूधसे पुरुषको आस्थापन और अनुवासन करे । स्त्रीको तैल और मांसरससे अनुवासन करे ॥ २ ॥

स्त्रीपुरुषका कर्त्तव्य कर्म ।

ततःपुष्पात्प्रभृतित्रिरात्रमासीद्ब्रह्मचारिण्यधःशायिनीपाणि-
भ्यामन्नमजर्जरपात्रेभुञ्जानानचकाञ्चिदेवमृजामापद्येत ॥ ३ ॥

इनके अनन्तर जब स्त्री ऋतुमती हो तो जिस समयसे रजोदर्शन हो उसी समयसे तीन रात्रितक ब्रह्मचर्यमें स्थित रहे और पृथ्वीमें शयन करे, पुराने बर्तन अथवा मट्टीके पात्रमें या हाथोंपर लेकर भोजन किया करे किसीसे स्पर्श न करे और किसी प्रकारका भी अहित कार्य न करे ॥ ३ ॥

ततश्चतुर्थेऽहन्येनामुत्साद्यसशिरस्कंस्नापयित्वाशुक्लानिवासां-
स्याच्छादयेत्पुरुषञ्च ॥ ४ ॥

इसके अनन्तर चौथे दिन शरीरमें तैलकी मालिशकर उबटन लगा शिरसहित स्नान करे । स्वच्छ सुन्दर वस्त्र तथा फूलमाला आदि धारण करे । और पुरुषकोभी स्नान करा गंधादि लेपन करा, श्वेत स्वच्छ वस्त्रोंको धारण करावे ॥ ४ ॥

ततःशुक्लवाससौचस्रग्विणौसुमनसावन्योन्यमभिकामौसंवसे-
तामितिब्रूयात् ॥ ५ ॥

फिर वैद्य इन दोनों शुद्ध पवित्र वस्त्र धारण कियेहुए, फूलमालासे विभूषित शुद्धमनवाले, परस्पर सहवासकी इच्छावाले स्त्री पुरुषोंसे कहे कि तुम दोनों संतानकी कामनासे जाकर सहवास करो ॥ ५ ॥

स्त्रीसहवास करनेके दिन ।

स्नानात्प्रभृतियुग्मेष्वहःसुसंवसेतांपुत्रकामौतौचायुग्मेषुदुहितृकामौ ॥ ६ ॥

स्नानके दिनसे अर्थात् चौथेदिनके उपरान्त युग्म (६, ८, १२, १४) रात्रियोंमें पुत्रकी कामनासे सहवास करे । अर्थात् इन रात्रियोंमें गमन करनेसे पुत्र उत्पन्न होताहै । और अयुग्म अर्थात् (५, ७, ९, ११, १३, १५,) इन रात्रियोंमें गमन करनेसे कन्या उत्पन्न होतीहै ॥ ६ ॥

सहवासकी विधि ।

नचन्युब्जापार्श्वगतांवासंसेवेत। न्युब्जायावातोबलवान्सयोनिंपीडयति। पार्श्वगतायादक्षिणेपार्श्वेश्लेष्मासंच्युतोऽपिदधातिगर्भाशयम्। वामेपार्श्वेपित्तंतदस्यांपीडितंविदहातिरक्तशुक्रंतस्मादुत्तानासतीबीजंगृह्णीयात्। तस्याहियथास्थानमवतिष्ठन्तेदोषापर्य्याप्तेचैनांशीतोदकेनपरिषिञ्चेत् ॥ ७ ॥

स्त्री औंधी लेटकर अथवा वामे दहिने करवट लेकर सहवास न करे । क्योंकि औंधी होनेसे बलवान् वायु योनिको पीडित करताहै । दहिने पंसवाडे करवट लेकर सहवास करनेसे कफ टपककर गर्भाशयको आच्छादन कर देताहै । और वायीं करवट लेकर सहवास करनेसे पीडितहुआ पित्त रज और शुक्रको दूषित कर देताहै इसलिये सीधी उत्तान लेटकर पुरुषके वीर्यको ग्रहण करे। ऐसा होनेसे संपूर्ण दोष अपने२स्थानोंमें स्थित रहतेहैं।गर्भ ग्रहण करनेके एक प्रहर वाद शीतलजलसे अपने नेत्रों, मुख तथा योनिको धोवे ॥ ७ ॥

गर्भधारण के अयोग्य स्त्री ।

तत्रात्याशिताक्षुधितापिपासिताभीताविमनाःशोकार्त्ताक्रुद्धा चान्यश्चपुमांसमिच्छन्तीमैथुनेचातिकामावानारीगर्भंनधत्ते विगुणांवाप्रजांजनयति ॥ ८ ॥

गर्भाधानमें इसप्रकारकी स्त्री निषिद्ध होती है।जिसने अधिक भोजन किया हो अथवा भूखी, तृषातुर, भयभीत, जिसका चित्त मैथुनमें न हो या अन्यप्रकारसे मन विगडा हो, शोक अथवा क्रोधवाली,दूसरे पुरुषकी इच्छा रखनेवाली एवम् जो मैथुनसे तृप्तही न होतीहो । ऐसी स्त्रियें गर्भको धारण नहीं करतीं । अर्थात् इनको गर्भ नहीं रहता यदि रहे भी तो कुरूप, और विगुण संतान उत्पन्न होतीहै ॥ ८ ॥

अतिबालामतिवृद्धांदीर्घरोगिणीमन्येनवाविकारेणोपसृष्टांवर्जयेत् ॥ ९ ॥

अत्यन्त छोटी अवस्थाकी, अत्यन्त वृद्धा, जिसके शरीर और योनिपर अत्यन्त बाल हों अथवा और किसी विकारसे युक्त हो ऐसी स्त्री मैथुनमें त्याज्य है ॥ ९ ॥

पुरुषेऽप्येतएवदोषाः।अतःसर्वदोषवर्जितौस्त्रीपुरुषौसंसृज्येयाताम् ॥ १० ॥

पुरुषमें भी यदि इसीप्रकार कोई दोष हो तो उसको भी मैथुनमें त्याज्य जानना इसलिये संपूर्ण दोषोंसे रहित स्त्री पुरुषोंको संतानकी कामनासे मैथुन करना चाहिये ॥ १० ॥

स्त्रीगमनविधि।

सञ्जातहर्षौमैथुनेचानुकूलाविष्टगन्धंसास्तीर्णंसुखंशयनमुपकल्प्यमनोज्ञंहितमशनमशित्वादक्षिणपादेनपुमान्वामपादेनस्त्रीचारोहेत्तत्रमंत्रंप्रयुञ्जीत (अहिरसिआयुरसिसर्वतः प्रतिष्ठासिधातात्वादधातुविधातात्वादधातुब्रह्मवर्चसाभवेदिति ॥ ब्रह्माबृहस्पतिर्विष्णुःसोमःसूर्य्यस्तथाश्विनौ । भगोऽथामित्रावरुणौपुत्रंवीरंदधातुमे) इत्युक्त्वासंवसेताम् ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥

स्त्री और पुरुष हर्षसहित मैथुनाभिलाषी प्रीतिपूर्वक दोनों सुन्दर सुसज्जित ऐसे शय्यापर जिसमें तकिया, स्वच्छ चद्दर, तथा गद्दा बिछा हो मनको प्यारी लगनेवाली हो ऐसी शय्यापर पुरुष दाहिने पांवसे और स्त्री पहिले वामपांवसे आरोहित होवें (इन स्त्री पुरुषोंके उसदिन हित भोजन करना चाहिये । फिर उस शय्यापर दोनों बैठकर इस मन्त्रको पढे "अहिरसि आयुरसि सर्वतः प्रतिष्ठासि" आदि "पुत्रं वीरं दधातु मे" पर्यन्त। ऊपरके मूलमें लिखेहुए मंत्रको पढकर शयन करे ११–१३॥

उत्तम पुत्र उत्पन्न करनेकी विधि।

साचेदेवमासीतवृहन्तमवदातंहर्य्यक्षमोजस्विनंशुचिंसत्त्वसम्पन्नंपुत्रमिच्छेयमिति । शुद्धस्नानात् प्रभृत्यस्यैमन्थमवदातं यवानांमधुसर्पिभ्र्यांसंसृज्यश्वेतायागोःसरूपवत्सायाःपयसालोड्यराजतेकांस्येवापात्रेकालेकालेसप्ताहंसततंप्रयच्छेत्पाना-

यप्रातश्चशालियवान्नविकारान्दधिमधुसर्पिर्भिःपयोभिर्वासंसृ-ज्यभुञ्जीत ॥१४ ॥

यदि उस स्त्रीको गौरवर्ण,सिंहके समान पराक्रमी, तेजस्वी, पवित्र, सत्त्वसंपन्न पुत्र उत्पन्न करनेकी इच्छा हो तो ऋतुस्नानसे शुद्ध होकर यवके सत्तुओंका मंथ वना, मधु घृतयुक्तकर,सफेदरंगके बछडेवाली सफेद गौके दूधके साथ चांदी या कांसेके पात्रमें घोलकर नित्यम्प्रति प्रातःकाल सातरोजतक पीया करे और भोजन भी शालिचावल,यवके मैदसे बनाहुआ पदार्थ, दही, मधु, घृत, दूध इन सवको मिलाकर खाया करे ॥ १४ ॥

तथासायमवदातशरणशयनासनयानवसनभूषणवेषाचस्यात् १५

फिर सायंकालमें सुन्दर सुसज्जित घरमें उत्तम शय्या, आसन आदिपर आराम करे एवम् उत्तम वस्त्र, भूषण और वेषको धारण करे ॥ १५ ॥

सायंप्रातश्चशश्वत्श्वेतंमहान्तं ऋषभम्आजानेयंहरिचन्दनाङ्कितंपश्येत् । सौम्याभिश्चैनांकथाभिर्मनोऽनुकूलाभिरुपासीत । सौम्याकृतिवचनोपचारचेष्टांश्चस्त्रीपुरुषानितरानपिचेन्द्रियार्थानवदातान्पश्येत् । सहचर्य्यश्चैनांप्रियहिताभ्यांसततमुपचरेयुःतथाभर्त्तानचमिश्रीभावमापद्येयाताम् ॥ १६ ॥

तथा सायंकाल और प्रातःकाल नित्य सफेद्वर्णके वडेभारी बैलको और पीले चन्दनसे चर्चितहुए उत्तम सफेद घोडेको देखा करे। और उस स्त्रीके चित्तको सुन्दर मनोहर, पवित्र वचन, उपचार, चेष्टा आदिसे प्रसन्न रक्खे तथा पुरुषका भी ऐसाही आचरण रहना चाहिये। एवं इन दोनोंको सुन्दर दैवी वस्तुओंका दर्शन कराना चाहिये। इस स्त्रीके समीप रहनेवाली उत्तम सहचारिणी स्त्रियें उसको हित और प्रिय आचरणसे सेवा करती रहैं। और इन सातदिनोंमें उस स्त्रीका पति भी उत्तम आचारोंका सेवन करे परन्तु यह दोनों आपसमें सहवास न करें ॥ १६ ॥

इत्यनेनविधिनासप्तरात्रंस्थित्वाष्टमेऽहन्याप्लुत्याद्भिःसशिरस्कं सहभर्त्राचाहतानिवस्त्राणिआच्छादयेदवदातानिअवदाताश्च स्रजोभूषणानिबिभृयात् ॥ १७ ॥

इस विधीसे सात रात्रि व्यतीत होनेके अनन्तर आठवें दिन प्रातःकाल शिरसहित स्नानकर यह दोनों स्त्री पुरुष पवित्र सुन्दर नवीन वस्त्रोंको धारण कर उत्तम भूषण और सुन्दर फूलोंकी मालाओंको धारण करें ॥ १७ ॥

उत्तम पुत्रके लिये हवन विधि।

ततऋत्विक्प्रागुत्तरस्यांदिशिअगारस्यप्राक्प्रवणमुदक्प्रवणंवा प्रदेशमभिसमीक्ष्यगोमयोदकाभ्यांस्थण्डिलमुपसंलिप्यप्रोक्ष्य चोदकेनवेदिमास्मिन्स्थापयेत्। तांपश्चिमेनानाहतवस्त्रसञ्चये श्वेतार्षभेवाप्यजिनउपाविशेद्ब्राह्मणप्रयुक्तोराजन्यप्रयुक्तस्तुवैया-घ्रेचर्मण्यानडुहेवावैश्यप्रयुक्तस्तुरौरवेबास्तेवा। तत्रोपविष्टः पालाशीभिरैंगुदीभिरौदुम्बरीभिर्माधूकीभिर्वासमिद्भिरग्निमु-पसमाधायकुशैःपरिस्तीर्य्यपरिधिभिश्चपरिधायलाजैःशुक्लाभि-श्चगन्धवतीभिः सुमनोभिरुपकिरेत्। तत्रप्रणीतोदपात्रपवित्रंपू-तपुपसंस्कृत्यसर्पिराज्यार्थंयथोक्तवर्णानाजानेयादीन्समन्ततः स्थापयेत् ॥ १८ ॥

फिर ऋत्विज(यज्ञकरानेवाला पुरोहित)पूर्वकी दिशामें अथवा उत्तरकी दिशाम या घरसे जिस ओर जल पूर्व या उत्तरको ढलताहो उस स्थानमें गोवरस लीपकर वेदीको वनावे। उस वेदीको जलसे छिडककर ग्रहादिकोंको यथास्थान स्थापित करे। फिर उस स्त्रीको वेदीसे पश्चिमकी ओर शुद्ध विछेहुए वस्त्रके ऊपर या सफेद वृषभके अजिनके ऊपर अथवा मृगछालापर विठावे। ब्राह्मण हो तो इस विधिसे विठावे, क्षत्री होतो व्याघ्रके चर्मपर,वैश्य होय तो रुरु मृगके चर्मपर अथवा बकरेके चर्मपर विठावे। फिर पलाश, इंगुदी, औदुम्बर महुआ आदिकी समिधोंसे अग्निको स्थापन करे और कुशकण्डी कर्म विधिसे कुशाको विस्तीर्ण करे। फिर वेदीकी परिधि स्थापन होनेके अनन्तर सफेद धानकी खील, सफेद सुगंधित फूलोंसे स्वस्तिवाचनपूर्वक वेदीको सुशोभित करे एवम् प्रणीता पात्र, उदकपात्र, पवित्रा, पवित्र घृतपात्र, तथा पुत्रेष्टी यज्ञविधिसे वरण आदि संपूर्ण सामग्रीको विधिवत् स्थापन करे ॥ १८ ॥

ततःपुत्रकामापश्चिमतोऽग्निंदक्षिणतोब्राह्मणमुपवेश्यअन्वालभे-तसहभर्त्रायथेष्टंपुत्रमाशासाना। ततः तस्याआशासानाया ऋत्विक्प्रजापतिमभिनिर्दिश्ययोनौतस्याःकामपरिपूरणार्थंका-म्यामिष्टिंनिर्वपेद्विष्णुर्योनिंकल्पयात्वित्यन्वयाचार्ततश्चैवाज्ये-

नस्थालीपाकमभिसंसाध्य्त्रिर्जुहुयात् । यथाम्नायञ्चोपमन्त्रि-
तमुदकपात्रंतस्यैदद्यात् सर्वोदकार्थान्कुरुष्वेति ॥ १९ ॥

इसके अनन्तर इस पुत्रकी कामनावाली स्त्रीको अग्निसे पश्चिमकी ओर और ब्रह्माको अग्निसे दक्षिण ओर स्थापन करे । और उस स्त्रीके भर्त्ताको यथेष्ट पुत्रके उत्पन्न होनेकी इच्छासे इसके पास बैठावे। फिर आचार्य प्रजापतिके उद्देशसे अथवा "प्रजापति"आदि मंत्रका निर्देशकर उस स्त्रीके पतिका हाथ स्त्रीकी योनिसे स्पर्श कराकर "विष्णुर्योनिं कल्पयतु" इसको पढतेहुए पुत्रेष्टी यज्ञ करावे और घृतके साथ चरु मिलाकर स्थालीपाक बनाकर तीनवार हवन करावे ।फिर वेदोक्त मंत्रोंसे उपमंत्रित किया हुआ जलपूर्ण कलश उस स्त्रीको देवे । और यह कहे कि, संपूर्ण जलके कार्य इस जलसे करना ॥ १९ ॥

यज्ञके अंतमें कर्म ।

ततःसमाप्तेकर्मणिपूर्वंदक्षिणपादमभिहरन्तीप्रदक्षिणमग्निम-
नुपरिक्रामेत्ततोब्राह्मणान्स्वास्तिवाचयित्वासहभर्त्राऽऽज्यशेषंप्रा-
श्नीयात् । पूर्वंपुमान्पश्चात्स्त्रीनचउच्छिष्टमवशेषयेत्ततस्तौस-
हसंवसेतामष्टरात्रंतथाविधपरिच्छदावेवचस्यातांतथेष्टपुत्रंज-
नयेताम् ॥ २० ॥

फिर इस कर्मके समाप्त होनके अनन्तर पहिले दक्षिण पावोंको आगे रखतीहुई अग्निकी क्रमपूर्वक प्रदक्षिणा करे ।फिर ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराकर यज्ञसे वचे-हुए घृतको और स्थालीपाक चरुको पतिसहित स्त्री भक्षण करे अर्थात् पहिले उसको पति भक्षण करे फिर स्त्री भक्षण करे परन्तु उसमेंसे वाकी जूठा न छोडे फिर वह इस आठवीं रात्रिमें पूर्वोक्त उत्तम शय्यापर पूर्वोक्त विधिसे सहवास करावे। इसप्रकार करनेसे इच्छानुरूप पुत्र उत्पन्न होताहै ॥ २० ॥

यातुस्त्रीश्यामंलोहिताक्षंव्यूढोरस्कंमहाबाहुंपुत्रमाशासीत
यावाकृष्णंकृष्णमृदुदीर्घकेशंशुक्लाक्षंशुक्लदन्तंतेजस्विनमात्म-
वन्तम् एषएवानयोरपिहोमविधिःकिन्तुपरिबर्हंवर्णवर्ज्यंस्यात्
पुत्रवर्णानुरूपस्तुयथाशीरेवतयोःपरिबर्होऽन्यःकार्य्यःस्यात्॥२१॥

जिस स्त्रीको लालनेत्र, श्यामवर्ण, बडेरकंधे, विशाल छाती और महावाहु पुत्रके उत्पन्न करनेकी इच्छा हो अथवा कृष्णवर्ण नम्र,दीर्घ कालेकेशोंवाले श्वेत नेत्रोंवाले, श्वेत दंत पंक्तीवाले,तेजस्वी,ज्ञानसंपन्न पुत्र उत्पन्न करनेकी इच्छा हो तो इन दोनों

स्त्री पुरुषोंको उपरोक्त विधिसे यत्न करना चाहिये। परन्तु श्वेतवस्त्र और श्वेतवर्ण आदिकोंको त्यागकर जैसा पुत्र उत्पन्न करना हो उसीके अनुरूप भोजन, परिवर्तन, होम आदि करना चाहिये ॥ २१ ॥

द्विजेभ्यः शूद्रातुनमस्कारमेवकुर्य्याद्देवगुरुतपस्विसिद्धेभ्यश्च॥२२॥

शूद्रकी स्त्रीको वेदोक्त मंत्रोंसे यज्ञ करनेका निषेध है इसलिये वह देवता गुरु तपस्वी सिद्ध और ब्राह्मणोंको नमस्कारपूर्वक पुत्रेष्टिको करे ॥ २२ ॥

यायाचयथाविधंपुत्रमाशासीततस्यास्तस्यास्तांतांपुत्राशिषम-
नुनिशम्यतांस्ताञ्जनपदानांमनुष्याणामनुरूपंपुत्रमाशासीत
सातेषांतेषांजनपदानामाहारविहारोपचारपरिच्छदाननुविधी-
यस्वेतिवाच्यास्यात् । इत्येतत्सर्वंपुत्राशिषांसमृद्धिकरंकर्मव्या-
ख्यातंभवति ॥ २३ ॥

जो जो स्त्री पुरुष जैसेजैसे पुत्रोंको उत्पन्न करनेकी इच्छा करतेहों उसी उसी प्रकार ब्राह्मणोंके आशीर्वादोंको श्रवण करें तथा तदनुरूप मनसे स्मरण करें और जिस२ देशके मनुष्योंके जैसे पराक्रमी पुत्रोंको उत्पन्न करना चाहे वैसे २ देश, आहार, विहार उपचर्या वस्त्र शय्या आदिकोंका सेवन करे। ऐसा करनेसे उनकी इच्छानुसार संतान उत्पन्न होतीहै इसप्रकार इच्छानुरूप पुत्रके उत्पन्न करनेकी शिक्षा और समृद्धिका करनेवाला कर्म कथन कियाजाताहै ॥ २३ ॥

नतुखलुकेवलमेतदेवकर्मवर्णानांवैशेष्यकरमपितुतेजोधातुर-
प्युदकान्तरिक्षधातुप्रायोऽवदातवर्णकरोभवति । पृथिवीवायु-
धातुप्रायःकृष्णवर्णकरःसमसर्वधातुप्रायःश्यामवर्णकरः॥२४॥

स्त्रीकी इच्छानुरूप पुत्रका वर्ण रूप होनेमें केवल इतनाही नहीं किन्तु और भी ऐसे भाव होतेहैं जो पुत्रके श्याम गौर आदि वर्णको उत्पन्न करते हैं जैसे-तेजधातु और उदकधातु तथा अंतरिक्षधातु अधिक होनेसे गौरवर्ण होताहै । पृथ्वी और वायु धातु अधिक होनेसे कृष्णवर्ण होताहै। सब धातुएँ समान होनेसे श्यामवर्ण होताहै ॥ २४ ॥

सत्त्वभेदका कारण।

सत्त्ववैशेष्यकराणिपुनस्तेषांतेषांप्राणिनांमातापितृसत्त्वान्यन्त-
र्वत्न्याःश्रुतयश्चाभीक्ष्णंस्वोचितञ्चकर्मसत्त्वविशेषाभ्यास-
श्चेति ॥ २५ ॥

अब गर्भके मनके विषयमें श्रवण करो जैसे माता और पिताका गर्भाधानके समय जैसा मन होताहै वैसाही संतानका भी मन होताहै । तथा गर्भवती स्त्री जिस-प्रकारके नित्यप्रति कथा आदि श्रवण किया करे और जिसप्रकारके कर्मोंमें चित्त लगाय रक्खे प्रायः गर्भका मन उसीप्रकारका होताहै ॥ २५ ॥

यथोक्तेनविधिनोपसंस्कृतशरीरयोःस्त्रीपुरुषयोस्तुमिश्रीभाव-मापन्नयोःशुक्रंशोणितेनसहसंयोगेसमेत्याऽव्यापन्नमऽव्यापन्नेनं योनावनुपहतायामप्रदुष्टेगर्भाशयेगर्भमभिनिर्वर्त्तयतिएकान्ते-न । यथानिर्मलेवाससीसुपरिकल्पतेरञ्जनंसमुदितगुणमुपनि-पातादेवरागमभिनिर्वर्त्तयातितद्वत् । यथावाक्षीरंदध्नाभियुत-मभिषवणाद्विहायस्वभावमापद्यतेदधिभावंशुक्रंतद्वत् ॥२६ ॥

पूर्वोक्त विधिसे संस्कार कियेहुए शरीरोंवाले स्त्रीपुरुषोंका जब विधिवत् आपसमें संयोग होताहै तब दोषरहित पुरुषके वीर्य और स्त्रीके रजका संयोग होकर गर्भ उत्पन्न होजाताहै।यदि योनिमें किसीप्रकारका विकार न हो और गर्भाशय शुद्ध हो एवम् रज वीर्य भी निर्दोष हों तो अवश्यही स्त्री गर्भको धारण कर लेतीहै । जैसे निर्मल वस्तुमें जिसप्रकारका रंग चढाना चाहते हो उसीप्रकारका रंग वस्तुको रंगमें डालतेही चढजाताहै। उसीप्रकार शुद्ध शुक्र और रजके संयोगसे गर्भाशय झट गर्भको धारण कर लेताहै । जैसे दूध दहीके साथ मिलजानेसे अपने स्वभावको छोड दहीके अनुरूप होजाताहै उसी प्रकार वीर्य भी शुद्ध रजके संयोगसे गर्भाशयमें प्राप्त हो गर्भको प्रगट कर देताहै ॥ २६ ॥

एवमभिनिर्वर्त्तमानस्यगर्भस्यतुस्त्रीपुरुषत्वेहेतुःपूर्वमुक्तः॥२७॥

इसप्रकार गर्भके उत्पन्न करनेमें जिसप्रकारके स्त्रीपुरुष होने चाहिये सो पहिले कथन कर चुकेहैं ॥ २७ ॥

यथाहिबीजमनुपतप्तमुप्तंस्वांस्वांप्रकृतिमनुविधीयतेव्रीहिर्वाव्री-हित्वंयवोवायवत्वंतथास्त्रीपुरुषावपियथोक्तंहेतुविभागमनुवि-धीयते ॥ २८ ॥

जैसे जो२ बीज बोया जाय वह अपनी अपनी प्रकृतिके अनुरूप उत्पन्न होताहै। जैसे धानका बीज धानको उत्पन्न करताहै । यवसे यव उत्पन्न होताहै और वह भी बीज, पृथ्वी तथा समयके अनुरूप होताहै उसीप्रकार स्त्रीपुरुषोंके बीजके अनुरूप संतान होतेहै ॥ २८ ॥

तयोःकर्मणावेदोक्तेनविवर्त्तनमुपदिश्यतेप्राग्व्यक्तीभावात् ॥२९॥

उन स्त्रीपुरुषोंको गर्भके प्रगट होनेसे पहिले जिसप्रकारका वर्त्ताव करना चाहिये उनको वेदोक्तरीतिसें वर्णन करतेहैं ॥ २९ ॥

प्रयुक्तेनसम्यक्कर्मणांहिदेशकालसम्पदुपेतानांनियतमिष्टफलत्वंतथेतरेषामितरत्वम् । तस्मादापन्नगर्भांस्त्रियमभिसमीक्ष्य प्राग्व्यक्तीभावाद्गर्भस्यपुंसवनमस्यैदद्यात् ॥ ३० ॥

जो कर्म जैसे देश, जैसे समयमें जैसी सामग्रीसे विधिवत् किया जाता है उसका वैसा फल होताहै इसलिये जो कर्म उत्तम रीतिसे उत्तम सामग्रीद्वारा उत्तम समयपर कियाजाताहै उसका उत्तम फल प्राप्त होताहै तथा इसके विपरीत करनेसे उसका अनिष्ट फल प्राप्त होताहै । अतएव गर्भवती स्त्रीको दूसरे महीनेमें पुंसवन कर्म करना चाहिये ॥ ३० ॥

पुंसवनविधि ।

गोष्ठेजातस्यन्यग्रोधस्यप्रागुत्तराभ्यांशाखाभ्यांशुङ्गेऽनुपहते आदाय द्वाभ्यांधान्यमाषाभ्यांसम्पदुपेताभ्यांगौरसर्षपाभ्यां वासहदध्निप्रक्षिप्यपुष्येणपिबेत् ॥ ३१ ॥

गौओंके विश्राम करनेकी जगहके वट वृक्षोंका जो टहना पूर्व और उत्तरकी ओर हो उसमेंसे निर्दोष उत्तम दो शृंग (अंकुर या कली) तोडलावे और दो स्वच्छ मोटे चावल तथा दो उडद उन दोनों अंकुरोंमें मिलाकर अथवा दो सफेद सरसोंके दाने मिलाकर दहीमें मिलाकर वह गर्भवती स्त्री पुष्यनक्षत्रमें पीवे ॥ ३१ ॥

तथैवअपराजीवकर्षभकापामार्गसहचरकल्कांश्चयुगपदेकैकशोयथेष्टंवाप्युपसंस्कृत्यपयसा ॥ ३२ ॥ कुडयकीटकंमत्स्यकश्चोदकाञ्जलौप्रक्षिप्यपुष्येणापिबेत् ॥ ३३ ॥

अथवा जीवक, ऋषभक, सफेद अपामार्ग, सफेद सहचर, इन सबका कल्क बना अथवा इनमेंसे किसी एकका कल्क बनाकर गौके दूधके संग पुष्यनक्षत्रमें पान करे अथवा कुडयकीट (दीवारमें होनेवाला धन्वी कीट विशेष) उसको अथवा छोटीसी मछलीको पुष्यनक्षत्रमें एक अंजली जलके साथ पीवे ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

तथाकनकमयान्राजतानायसांश्चपुरुषकानग्निवर्णाननुप्रमाणान्दध्निपयसिउदकाञ्जलौवाप्रक्षिप्यापिबेदनवशेषतःपुष्येण ॥३४॥

अथवा सुवर्ण, चांदी या लोहेकी उत्तम भस्म लेकर अपने अग्नि वर्णके समान सूक्ष्म मात्रासे दही अथवा दूध या एक अंजली जलके साथ पुष्यनक्षत्रमें पीवे । (वाग्भटने लिखा है कि सोने चांदी अथवा लोहेका एक छोटासा पुरुष बना उसको अग्निमें तपा एक अंजली जलमें अथवा दूध या दहीमें बुझाकर उस जल या दूध दहीको पीवे) ॥ ३४ ॥

पुष्योद्धृतलक्ष्मणामूलस्यपयसापुत्रकामोऽस्यदक्षिणनासापुटे कन्याकामस्य वामनासापुटेऽसिंचेत् । एवं श्वेतकंटकार्यारस- सिंचनेनपुत्रावाप्तिः । पुष्येणैवचपिष्टस्यपच्यमानस्योष्माणमु- पघ्रायतस्यैवचपिष्टस्योदकसंसृष्टस्यरसंदेहलीमुपनिधायदक्षि- णेनासापुटेस्वयमासिञ्चेत्पिचुना ॥ ३५ ॥ इतिपुंसवनानि यच्चान्यदपिब्राह्मणाब्रूयुराप्तावापुंसवनमिष्टंतच्चानुष्ठेयम् ॥ ३६ ॥

अथवा पुष्यनक्षत्रमें उखाडीहुई लक्ष्मणाकी जडको दूधमें घोटकर पुत्रकी इच्छावाली स्त्री नाकके दहिनेनथने और कन्याकी कामनावाली बायें नथने द्वारा पीवे। या नस्यके प्रकारसे टपकावे । इसीप्रकार रविवार पुष्यमें उखाडीहुई सफेद कटे- लीका रस भी पुत्रको देनेवाला होताहै । लक्ष्मणाकी पुष्य नक्षत्रमें उखाडी हुई जडको दूधमें पीसकर उसके रसको वा दूधमें पकाकर उसकी भांफको सूर्यके सामने प्रातःकाल खडे हो नासिकाद्वारा सूंघे अथवा केवल लक्ष्मणाको पीस उसका रस निकाल पूर्वको मुख कर अपने दक्षिण नथनेमें घरकी देहलीपर खडे होकर अपने हाथसेही टपकावे । यह सब कर्म अथवा अन्य पुंसवन कर्म ब्राह्मणोंके और आप्त पुरुषोंके आज्ञानुसार अनुष्ठान करने चाहिये ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

गर्भस्थापन औषध ।

अतऊर्द्ध्वंगर्भस्थापनानिव्याख्यास्यामः ॥ ३७ ॥

अब गर्भके स्थापन करनेकी विधिको कथन करते हैं ॥ ३७ ॥

ऐन्द्रीब्राह्मीशतवीर्य्यासहस्रवीर्य्याअमोघाअव्यथाशिवाबला आरिष्टावाटथपुष्पीविष्वक्सेनाकान्ताचआसामोषधीनांशिरसा दक्षिणेनपाणिनाधारणमेताभिश्चैवासिद्धस्यपयसःसर्पिषोवापा- नमेताभिश्चैवपुष्येपुष्येस्नानंसदाचैताभिः समालभेत ॥ ३८ ॥

तथासर्वासांजीवनीयोक्तानामोषधीनांसदोपयोगस्तैस्तैरुपयो-गविधिभिरितिगर्भास्थापनानिव्याख्यातानिभवन्ति ॥ ३९ ॥

इन्द्रायण, ब्राह्मी, सफेद दूब, काली दूब, अमोघा, अव्यथा (गेंदा), हरड, बला, नीम, कुटकी, गंगेरण, प्रियंगु, शतावर इन औषधोंमेंसे किसी एक औषधीको पुष्यनक्षत्रमें उखाडकर उसके स्वरसको दक्षिण हाथसे दहिनी नासामें टपकावे और शिरको दहिनी ओर दाहिने हाथसे धारणकर रक्खे तथा इन्हीं सब औषधियोंके साथ सिद्ध किये हुए दूध और घृतको पान करे। एवम् इन्हींसे औटाये जलसे हरएक पुष्य नक्षत्रमें स्नान किया करे इनके उपयोगसे गर्भस्थापन होताहै। अथवा जीवनीयगणकी संपूर्ण औषधोंके उपयोगसे सिद्ध किये दूध, घृत आदिक और पूर्वोक्त विधानसे पुष्पनक्षत्रमें सब उपयोग करनेसे गर्भस्थापन होताहै ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

गर्भनाशक भाव।

गर्भोपघातकरास्त्विमेभावाभवन्तितद्यथाउत्कटुकविषमस्थान-कठिनासनसेविन्यावातमूत्रपुरीषवेगानुपरुन्धत्यादारुणानुचि-तव्यायामसेविन्यास्तीक्ष्णोष्णातिमात्रसेविन्याःप्रमिताशनसेवि-न्यागर्भोम्रियतेऽन्तःकुक्षेरकालेवास्रंसतेशोषीवाभवति ॥ ४० ॥

गर्भके उपघात करनेवाले यह भाव हैं। जैसे गर्भवती स्त्रीका उत्कट रीतिसे बैठना अथवा ऊंचेनीचे तथा विषमस्थानमें फिरना, कठिन आसन आदिसे बैठना, वात, मूत्र और पुरीषके वेगको रोकना, दारुण और अनुचित परिश्रम आदि करना, तीक्ष्ण तथा उष्ण द्रव्योंका अधिक सेवन करना, बहुत भूखे रहना इत्यादि कारणोंसे गर्भ कुक्षीमेंही मरजाताहै अथवा स्राव होजाताहै या सूखजाता है ॥ ४० ॥

तथाभिघातप्रपीडनैः श्वभ्रकूपप्रपातदेशावलोकनैर्वाभीक्ष्णंमा-तुःप्रपतत्यकाले । तथातिमात्रसंक्षोभिभिर्यानैरप्रियातिमात्र-श्रवणैर्वा । प्रततोत्तानशायिन्याःपुनर्गर्भस्यनाभ्याश्रयानाडी कण्ठमनुवेष्टयाति ॥ ४१ ॥

इसप्रकार चोट आदि लगनेसे, किसीप्रकारसे गर्भके दबजानेसे तथा अत्यंत भयंकर, गढे, कूप, पहाडके विकट गिरेहुए किनारोंका देखना आदि भयकारक स्थानोंको देखनेसे भी गर्भपात होजाताहै । अथवा गर्भवतीके शरीरमें किसीप्रकार अत्यन्त हलचल होजानेसे वा किसी विकट सवारीपर चढनेसे एवं अत्यन्त भयंकर

और बहुत ऊंचा शब्द सुननेसे भयंकर अप्रिय शब्दके सुननेसे भी अकालमें गर्भ- अर्थ होजाताहै। और सदैव सीधी उत्तान पडी रहनेसे गर्भकी नाभिसे आश्रित नाडी गर्भके कण्ठमें लिपट जातीहै। इसलिये गर्भका उपघात होताहै ॥४१॥

विवृतशायिनीनक्तञ्चारिणीचोन्मत्तंजनयत्यपस्मारिणंपुनःक- लिकलहाचारशीला। व्यवायशीलादुर्वपुषमह्रीकंस्त्रैणंवाशो- कनित्याभीतमपचितमल्पायुषंवा। अभिध्यात्रीपरोपतापिन- मीर्ष्युंस्त्रैणंवालेनात्यायासबहुलमतिद्रोहिणमकर्मशीलंवा।अ- मर्षिणीचण्डमौपाधिकमसूयकंवा। स्वप्ननित्यातन्द्रालुमबुध- मल्पाग्निंवा। मद्यनित्यापिपासालुमनवस्थितचित्तंवा। गोधा- मांसप्रियाशर्कारिणमश्मरिणंशनैर्मेहिनंवा। वराहमांसप्रियार- क्ताक्षंक्रथनमनतिपरुषरोमाणंवा। मत्स्यमांसनित्याचिरानि- मिषं स्तब्धाक्षंवा। मधुरनित्याप्रमेहिणंमूकमतिस्थूलंवा। अम्लनित्यारक्तपित्तिनंत्वगक्षिरोगिणंवा। लवणनित्याशीघ्र- वलीपलितखालित्यरोगिणंवा कटुकनित्यादुर्बलमल्पशुक्रमन- पत्यंवा। तिक्तनित्याशोषिणमबलमपचितंवा। कषायनित्या श्यावमानाहिनमुदावर्त्तिनंवा ॥ ४२ ॥

यदि गर्भवती स्त्री नग्न होकर सोया करे अथवा इधर उधर अधिक फिरे तो उसके गर्भसे उन्मत्त (पगली) संतान होती है। गर्भवती स्त्री यदि अधिक कलह और उपद्रव करनेवाली हो तो मृगीरोगवाली संतान होती है। यदि गर्भवती स्त्री अधिक मैथुन करे तो विकल और निर्लज्ज अथवा स्त्रैण (स्त्रियोंकेसे कृत्यवाली) संतान उत्पन्न होती है।यदि गर्भवती निरन्तर शोकसे व्याकुल रहा करे तो उसकी संतान भयातुर, क्षीण और अल्पायु होती है। यदि गर्भके समय स्त्री परधनके लेनेकी इच्छा रखती हो तो उसकी सन्तान परायी सम्पत्तिको देखकर जलनेवाली और ईर्ष्यायुक्त तथा स्त्रैण सन्तान होतीहै। अथवा चोर, आलसी, अतिद्रोही, कुकर्म करनेवाली सन्तान होती है। गर्भवती स्त्री, अत्यन्त क्रोध किया करे तो उसकी सन्तान अत्यन्त क्रोधी, छली और चुगलखोर उत्पन्न होती है। अत्यन्त सोनेवाली गर्भवती स्त्रीकी सन्तान निद्रालु,आलसी, मूर्ख मन्दाग्निवाली उत्पन्न होती है। यदि गर्भवती स्त्री मद्य पीये तो तृषार्त और विकलचित्त संतान होती है। जो स्त्री गौका

मांस खाय उसके गर्भसे शर्करा, पथरी और शनैर्मेहवाली सन्तान उत्पन्न होतीहै। घराहका मांस खानेवाली गर्भवतीके गर्भसे लालनेत्रोंवाला और हत्यारा तथा कठोर रोमोंवाला पुत्र उत्पन्न होता है। मछली खानेवाली गर्भवतीकी संतान बहुत देरमें पलक झपकनेवाली तथा टेढे नेत्रोंवाली होती है। गर्भवतीके अत्यन्त मीठा खानेसे प्रमेही, गूंगी और अधिक स्थूल सन्तान उत्पन्न होतीहै। गर्भवतीके अधिक खट्टा खानेसे रक्तपित्त रोगवाली, त्वचाके रोग तथा नेत्ररोगवाली सन्तान होती है। गर्भवतीके अत्यन्त लवणरस सेवनसे अकालमें सफेद बाल होजानेवाली, सलवटवाली तथा गंजी सन्तान उत्पन्न होती है। गर्भवतीके चरपरे रसके अत्यन्त सेवनसे दुर्बल अल्पशुक्र तथा अनपत्य सन्तान उत्पन्न होती है। गर्भवतीके अत्यन्त कडुआ रस सेवनसे सूखेहुए शरीरवाली अथवा शोथरोगी, निर्बल और कृश सन्तान उत्पन्नहोती है। गर्भवतीके अत्यन्त कषायरस सेवनसे काले वर्णकी अफारा रोगवाली और उदावर्त्त रोगवाली सन्तान उत्पन्न होती है ॥ ४२ ॥

यद्यच्चयस्ययस्यव्याधेर्निदानमुक्तंतत्तदासेवमानान्तर्वत्नीतद्विकारबहुलमपत्यंजनयति ॥ ४३ ॥

गर्भवती स्त्री जो २ द्रव्य जिन २ रोगोंके उत्पन्न करनेके कारण कहे गये हैं उनके अधिक सेवनसे उन २ रोगोंसे ग्रसित संतान उत्पन्न करती है ॥ ४३ ॥

पितृजास्तुशुक्रदोषामातृजैरपचारैर्व्याख्याताइतिगर्भोपघातकराभावाव्याख्याताः ॥ ४४ ॥

पिताके जो शुक्र दोष हैं माताके अपचारोंसे उनका भी निर्देश जान लेना। इस प्रकार गर्भ उपघातकारक भावोंका वर्णन कियागया ॥ ४४ ॥

गर्भिणीकी उपचारविधि ।

तस्मादहितानाहारविहारान्प्रजासम्पदमिच्छन्तीस्त्रीविशेषेण वर्जयेत्साध्वाचाराचारमानमुपचरेद्धिताभ्यामाहारविहाराभ्याम् ॥ ४५ ॥

इस लिये संतानके हितकी इच्छा करती हुई गर्भवती स्त्री अहित आहार विहारोंको त्याग देवै तथा श्रेष्ठ आचार और हित आहार विहारसे शरीरकी रक्षा करती रहे ॥ ४५ ॥

व्याधींश्चास्यामृदुमधुरशिशिरसुखसुकुमारप्रायैरौषधाहारोपचारैरुपचरेत् । नचास्यावमनविरेचनशिरोविरेचनानिप्रयोज-

येन्नरक्तमवसेचयेत् । सर्वकालञ्चनास्थापनमनुवासनंवाकु-र्य्यादन्यत्रात्ययिकाद्व्याधेः । अष्टमंमासमुपादायवमनादि-साध्येषुपुनर्विकारेषुआत्ययिकेषुमृदुभिर्वमनादिभिर्वोपचारः स्यात् ॥ ४६ ॥

यदि गर्भवती स्त्रीको किसीप्रकारका रोग उत्पन्न होजाय तो वैद्यको चाहिये कि नरम, मधुर, शीतल, सुखदायक और सुकुमार औषधियोंसे विधिवत् चिकित्सा करे और गर्भवतीको वमन, विरेचन, शिरोविरेचन तथा रक्तमोक्षण कभी न करावे। और गर्भकी सब अवस्थामें आस्थापन बस्ति तथा अनुवासन बस्ति भी न करावे यादि कोई शीघ्र प्राणनाशक व्याधि उपस्थित न हो जब गर्भके आठवें महीनेमें प्राप्त होनेपर यादि कोई ऐसा विकार हो कि जिसमें वमनादिकोंके विना प्राणही न बच सकतेहों तो युक्तिपूर्वक बहुत नम्र और हितकारी औषधियों द्वारा नरम वमनादि उपचार करें ॥ ४६ ॥

गर्भिणीके उपचारमें मुख्य कर्म ।

पूर्णमिवतैलपात्रमसंक्षोभ्याऽन्तर्वत्नीभवत्युचपर्य्या ॥ ४७ ॥

जिसप्रकार तैलसे मुखपर्यन्त पूर्ण भराहुआ पात्र इधर उधर उठाने धरनेमें उसके गिरनेका भय रहताहै उसीप्रकार थोडी भी असावधानी और अहित उपचार होनेसे गर्भके गिरनेका भय रहताहै ॥ ४७ ॥

साचेदपचाराद्द्वयोस्त्रिषुमासेषुपुष्पंपश्येन्नास्यागर्भःस्थास्यतीतिविद्यात् । अजातसाराहितास्मिन्कालेभवन्तिगर्भाः ॥ ४८ ॥

यादि किसी कुपथ्यके करनेसे गर्भवतीको दूसरे या तीसरे महीनेमें मासिकऋतुके समान रक्तस्राव होने लगे तो उसको वह गर्भ नहीं रहसकता क्योंकि इसकालतक गर्भ साररहित होताहै । इस लिये कुपथ्य आदिसे शीघ्र स्राव होजात है ॥ ४८ ॥

साचेच्चतुष्प्रभृतिषुमासेषुक्रोधशोकासूयेर्ष्याभयत्रासव्यवाय-व्यायामसंक्षोभसन्धारणविषमाशनशयनस्थानक्षुत्पिपासाद्य-तियोगात्कदाहाराद्वापुष्पंपश्येत्तस्यागर्भस्थापनविधिमुपदे-क्ष्यामः ॥ ४९ ॥

यदि गर्भवती स्त्री चौथे आदि महीनोंमें क्रोध, शोक अथवा असूया, ईर्षा, भय, त्रास, मैथुन, परिश्रम, संक्षोभ, वेगावरोध, विषमाशन और विषमरीतिसे शयन तथा विषमभावसे विषम स्थानोंमें रहे एवं अधिक भूख प्यासके समय अधिक

भोजन करे अथवा भूखी रहे या दुष्ट आहार व्यवहार करे तो इनसे उसके गर्भके पतन होनेका भय है। इसलिये गर्भवती स्त्रीको हित आहार और हित आचार एवं शुद्ध प्रसन्न मन रहना चाहिये । यदि ऐसे कार्योंसे गर्भका पात या स्राव होनेलगे तो उसमें जो उपाय करने चाहिये उनका वर्णन करते हैं ॥ ४९ ॥

गर्भकी रक्षाविधि ।

पुष्पदर्शनादेवैनांब्रूयाच्छयनंतावन्मृदुसुखशिशिरास्तरणसंस्तीर्णमीषदवनतशिरस्कंप्रतिपद्यस्वेति । ततोयष्टिमधुकसर्पिर्भ्यांपरमशिशिरवारिणिसंस्थिताभ्यांपिचुमाप्लाव्योपस्थसमीपे स्थापयेत् । तस्याः तथाशतधौतसहस्रधौताभ्यांसर्पिर्भ्यामधोनाभेःसर्वतःप्रदिह्यात् । गव्येनचैनांपयसासुशीतेनमधुकाम्बुनावान्यग्रोधादिकषायेणवापरिषेचयेदधोनाभेः । उदकंवा सुशीतमवगाहयेत्क्षीरिणांकषायद्रुमाणाश्वस्वरसपरिपीतानि चेलानिग्राहयेत् । न्यग्रोधादिसिद्धयोर्वाक्षीरसर्पिषोःपिचुंग्राहयेदतश्चैवाक्षमात्रंप्राशयेत्प्राशयेद्वाकेवलञ्चक्षीरसर्पिः ॥ ५० ॥

जिससमय गर्भवतीकी योनिसे रजस्राव होने लगे उसको उसीसमय कहे कि तूं नरम सुखकारी शीतल विछीहुई शय्यापर मस्तकको कुछ नीचाकर लेटजा । इसके अनन्तर मुलहठी और घृतको मिलाकर शीतल पानीके संयोगसे शीतलकर एक रुईका फोहा बना किसी नरमवस्त्रसे भिगोकर और लपेटकर उस फोहेको स्त्रीकी योनिमें रखदे । तथा एकसौ वार या हजारवार धोयेहुए मक्खनको नाभिसे नीचे शीतल २ लेप कर देवे । और शीतल गौका दूध, अथवा मुलहठीका क्वाथ या न्यग्रोधादिगणका क्वाथ शीतलकरके उससे मंदमंद तरडे नाभिके नीचे देवे । अथवा शीतल जलकीही धारा डाले । अथवा वड आदि क्षीरी वृक्षोंके कषाय और कसैले रसवाले वृक्षोंके स्वरसमें छोटासा नम्रवस्त्रका टुकडा भिगो योनिमें रक्खे अथवा वड आदिके क्वाथसे सिद्धकिये दूध या घृतमें भिगोया हुआ फोहा योनिमें रक्खे और इस घृत और दूधमेंसे दो तोला पीनेको भी दे देवे । अथवा इन औषधियोंसे सिद्ध किये घृत और दूध पिलावे ॥ ५० ॥

पद्मोत्पलकुमुदकिञ्जल्कांश्चास्यैसमधुशर्करांल्लेहार्थंदद्यात् । शृङ्गाटकपुष्करबीजकशेरुकान्भक्षणार्थम् । गन्धप्रियंगुवासितो-

त्पलशालुकोदुम्बरशलाटुन्यग्रोधशुङ्गानिवापाययेदेनामाजेन पयसा ॥ ५१ ॥

कमल और कमोदनीको केशर अथवा फूलही शहद और मिसरीके साथ पीसकर चटावे । और सिंघाडे, कमलगट्टे, तथा कसेरू ये खानेके लिये देवे अथवा गर्के प्रियंगु, नीलोफर, कमलकी जड, गुलडक कच्चे फल, वडके अंकुर इनको बकरीके दूधमें घोटकर पिलावे ॥ ५१ ॥

पयसा चैनां बलातिबलाशालिषष्टिकेक्षुमूलकाकोलीशृतेन समधुशर्करं रक्तशालीनामोदनं मृदुसुरभिशीतं भोजयेत् । लावककपिञ्जलकुरङ्गशम्बरशशहरिणैणकालपुच्छकरसेन वा घृतसलिलसिद्धेन सुखशिशिरोपवातदेशस्थां भोजयेत् ॥ ५२ ॥

अथवा बला, अतिबला, शालीचावल, साठीके चावल, ईखकी जड, काकोली इनसबसे सिद्धकिये दूधमें मिसरी मिला सेवन करावे । तथा शालिचावलोंको नर्मसे पकाकर शीतल होनेपर उनमें शहद, मिसरी और दूध मिला भोजन करनेको देवे । अथवा लवा, कंपिंजल, कुरंग, सांभर, शशा, हरिण, कालपुच्छक इनके मांसरसको घृत और जलसे सिद्ध कर सुशीतल हवाके स्थानमें उस रसके संग भातका भोजन करावे ॥ ५२ ॥

तथा क्रोधशोकायासव्यवायव्यायामतश्चाभिरक्षेत्सौम्याभिश्चैनां कथाभिर्मनोऽनुकूलाभिरुपासीत तथास्या गर्भस्तिष्ठति ॥ ५३ ॥

और ऐसी अवस्थामें उस गर्भवती स्त्रीको क्रोध, शोक, परिश्रम, मैथुन, देहका हिलाना आदि कर्म नहीं करना चाहिये । तथा सुन्दर पवित्र मनके हरनेवाली बातोंसे उस गर्भवती स्त्रीके चित्तको प्रसन्न रखना चाहिये । इन उपायोंके करनेसे गर्भ अपने स्थानमें टिका रहताहै ॥ ५३ ॥

आमगर्भमें पुष्पदर्शन ।

यस्याः पुनरामान्वयात्पुष्पदर्शनं स्यात्प्रायस्तस्यास्तद्गर्भबाधकं भवति विरुद्धोपक्रमत्वात्तयोः ॥ ५४

जिस गर्भवतीके आमदोषसे रज दिखाईदेने लगजाय उससमय उसकी चिकित्सामें विरोधी औषधियोंका उपयोग होनेसे प्रायः गर्भको हानि होती है । परन्तु विधिवत् समयानुकूल उससमय भी उपचार करना चाहिये ॥ ५४ ॥

यस्याःपुनरुष्णतीक्ष्णोपयोगाद्गर्भिण्यामहतिसंजातसारेगर्भेपुष्पदर्शनंस्यादन्योवायोनिप्रस्रावः। तस्यागर्भोवृद्धिंनप्राप्नोति निःसृतत्वात्सकालान्तरमवतिष्ठतेऽतिमात्रंतमुपविष्टकमित्याचक्षतेकेचित् ॥ ५५ ॥

अब गर्भवती स्त्रीके उष्ण तीक्ष्ण पदार्थोंके सेवनसें मासिकऋतु अथवा अन्य प्रकारसे योनिस्राव होजाय तो उसके होनेसे जातसार गर्भ भी अर्थात् चौथे महीनेका गर्भ भी बढनेसे बंद होजाताहै और अपूर्ण रहताहै इसलिये वह बहुतकाल पेटमेंही रहताहै यदि यह बहुत रोजतक पेटमेंही रहे तो इस गर्भको कोई आचार्य उपविष्टक कहतेहैं ॥ ५५ ॥

नागोदरगर्भके लक्षण ।

उपवासव्रतकर्मपरायाःपुनःकदाहारायाःस्नेहद्वेषिण्यावातप्रकोपनोक्तान्यासेवमानायागर्भोनवृद्धिंप्राप्नोतिपरिशुष्कत्वात् । सचाधिकालान्तरमवतिष्ठतेऽतिमात्रंस्पन्दनश्चभवति । तन्तु नागोदरमित्याचक्षते ॥ ५६ ॥

उपवास, व्रत, कर्मपरायण स्त्री जब रूक्ष आदि आहारको करतीहै और चिकनाई नहीं खाती और वायुके कुपित करनेवाले रूक्ष पदार्थोंको सेवन करतीहै तो कुपितहुआ वायु गर्भको बढने नहीं देता तथा सुखा देताहै।वह सूखाहुआ गर्भ भी बहुतकालतक पेटमें स्थिर रहताहै और अधिक फडकताहै । इस गर्भको नागोदर कहतेहैं ॥५६॥

नार्य्योस्तयोरुभयोरपिचिकित्सितविशेषमुपदेक्ष्यामः ॥५७ ॥

अब नागोदर और उपविष्टक गर्भवाली स्त्रियोंकी चिकित्साको कथन करतेहैं ॥ ५७ ॥

उक्तगर्भमें चिकित्सा ।

भौतिकजीवनीयबृंहणीयमधुरवातहरसिद्धानांसर्पिषामुपयोगः । नागोदरेतुयोनिव्यापन्निर्दिष्टंपयसामामगर्भाणाश्चगर्भवृद्धिकराणाञ्चसम्भोजनमेतैरेवसिद्धैश्चघृतादिभिःसुबुभुक्षायामभीक्ष्णंयानवाहनापमार्जनावजृम्भणैरुपपादनमिति ॥ ५८ ॥

उपविष्टक गर्भ होनेपर भौतिक अर्थात् गर्भमें पार्थिव आदि गुण बढानेवाले द्रव्य अथवा भूतहर लाक्षादि द्रव्य और जीवनीयगण तथा बृंहणीयगण, मधुरगण

और वातहरगणोंसे सिद्धकिया घृत पिलाना चाहिये । नागोदर होजानेपर योनि-व्यापत् चिकित्सामें कहे फलघृतादि तथा जिन द्रव्योंसे स्निग्ध होकर वह प्रगट होजाय अर्थात् उस बालकका जन्म होजाय वैसी क्रिया करनी चाहिये । और गर्भके बढानेवाले द्रव्योंसे सिद्ध कियेहुए दूध तथा घृत हमेशा भूखके समय देने चाहिये । तथा इस नागोदर गर्भवाली स्त्रीको सदैव पालकी आदि सवारीमें बैठाना, स्नान कराना, उत्तम बातोंका सुनाना हितकर होताहै । जो गर्भ वातकारक कारणोंसे रूक्ष होकर बहुत कालतक अर्थात् ग्यारहवें या बारहवें महीनेतक प्रगट न हो उसको नागोदर कहतेहैं) ॥ ५८ ॥

प्रसुप्तगर्भमें चिकित्सा ।

यस्याःपुनर्गर्भःप्रसुप्तोनस्पन्दतेतांश्येनमत्स्यगवयातित्तिरताम्रचूडशिखिनामन्यतमस्यसर्पिष्मतारसेनमाषयूषेणवाप्रभूतसर्पिषामूलकयूषेणवारक्तशालीनामोदनंमृदुमधुरशीतंभोजयेत् । तैलाभ्यंगेनास्याश्चाभीक्ष्णमुदरवंक्षणोरुकटिपार्श्वपृष्ठप्रदेशानीषदुष्णेनोपाचरेत् ॥ ५९ ॥

जिस स्त्रीका गर्भ सोयाहुआसा स्थिर रहे और फडके नहीं उस स्त्रीको सिकरा, मछली, रोझ, तीतर, मुर्गा और मोरके मांसरसको घृतयुक्त कर पिलावे अथवा उडदके यूषको घृतयुक्त करके या सलजमका यूष अधिक घीके संयोगसे पिलावे अथवा लाल शालिचावलोंको मिसरीके साथ वा अन्य मधुर शीतल द्रव्योंके साथ भोजनके लिये देवे । तथा किसी उत्तम उष्ण तेलद्वारा पेट, वंक्षण, पसली और पीठको सदैव नरमहाथसे मालिश कराया करे ॥ ५९ ॥

उदावर्त्तरुद्धगर्भवतीकी चिकित्सा ।

यस्याःपुनरुदावर्त्तविबन्धःस्यादष्टमेमासेनचानुवासनसाध्यंमन्यतेततस्तस्यास्तद्विकारप्रशमनमुपकल्पयेन्निरूहमुदावर्तोह्युपेक्षितः सगर्भंसगर्भांगर्भिणींवानिपातयेत् ॥ ६० ॥

यदि आठवें महीनेमें स्त्रीको उदावर्त्तरोगसे बंध पडजाय और वह अनुवासनबस्ति द्वारा शान्ति होता न दिखाई दे तो निरूहण बस्ति द्वारा विधिवत् चिकित्साकर्म करे क्योंकि उससमय उदावर्त्तकी चिकित्सा न करनेसे वह उदावर्त्तरोग गर्भको अथवा गर्भसहित गर्भवती स्त्रीको भी नष्ट कर डालताहै ॥ ६० ॥

तत्रवीरणशालिषष्टिककुशकाशेक्षुबालिकावेतसपरिव्याधमूला-

नांभूतौकानन्ताकाश्मर्य्यपरूषकमधुकमृद्वीकानाञ्चपयसार्द्धो-
दकेनोद्गमय्यरसंप्रियालविभीतकमज्जातिलकल्कसम्प्रयुक्तमी-
षल्लवणमनत्युष्णंनिरूहंदद्यात् ॥ ६१ ॥

ऐसे समयमें वीरणतृण, शालि, और षष्टिक चावल, कुशा, कांस,इक्षुबालिका, बेंत,व्यूंस इन सबकी जड लेकर अथवा अजवायन,सारिवा, कुम्हार वृक्ष,फालसा मुलहठी,मुनक्का इन सबको बराबरके जलयुक्त दूधमें पकावे फिर उस दूधमें चिरौंजी, बहेडेकी मज्जा, तिलोंका कल्क और बहुत थोडा सेंधानमक मिला इससे निरूहण बस्ति देवे ॥ ६१ ॥

व्यपगतविबन्धाश्चैनांसुखसलिलपरिषिक्तांगींस्थैर्य्यकरमविदा-
हिनमाहारंभुक्तवतींसायंमधुरकसिद्धेनतैलेनानुवासयेन्न्युब्जा-
न्त्वेनामास्थापनानुवासनाभ्यामुपचरेत् ॥ ६२ ॥

जब विंबध खुलजाय तो उस गर्भवती स्त्रीको सुखोष्ण गर्म जलसे परिसेचन कर शान्तिदायक तथा अविदाही आहारको देवे । और सायंकालके समय मधुरगणसे सिद्ध कियेहुए तैलद्वारा अनुवासन कर्म करे । तथा उस गर्भवतीको जब अनुवासन और आस्थापन करे तो औंधे (मूंधे) लेटाकर करे । क्योंकि अन्य पुरुषोंके समान सीधी लेटाकर आस्थापनकर्म करनेसे गर्भ हिलजाताहै ॥ ६२ ॥

मृतगर्भका लक्षण ।

यस्याःपुनरतिमात्रदोषोपचयाद्वातीक्ष्णोष्णातिमात्रसेवनाद्वा-
तमूत्रपुरीषवेगधारणैर्वाविषमाशनशयनस्थानसंपीडनैर्वाक्रोध-
शोकेर्ष्यासूयाभयत्रासादिभिर्वापरैःकर्मभिरन्तःकुक्षौगर्भोम्रि-
यते । तस्याःस्तिमितस्तब्धमुदरमाततंशीतमश्मान्तर्गतमि-
वभवत्यस्पन्दनोगर्भः शूलमधिकमुपजायतेनचाव्यःप्रादुर्भव-
न्तियोनिर्नप्रस्रवत्यक्षिणीचास्याःस्रस्तेभवतः ताम्यतिव्यथते
भ्रमतेश्वसित्यरतिबहुलाचभवतिनचास्यावेगप्रादुर्भावोयथाय-
थावदुपलभ्यतेइत्येवंलक्षणांस्त्रियंमृतगर्भयमितिविद्यात् ॥ ६३ ॥

गर्भवतीके शरीरमें दोषोंका अत्यन्त सञ्चय होनेसे अथवा अत्यन्त तीक्ष्ण और गरम द्रव्योंके सेवनसे तथा अधोवात और मलमूत्रके आये वेगोंको रोकनेसे एवम् विषम रीतिपर भोजन, शयन और उठने बैठने आदिसे ऊंचे नीचे पांव रखनेसे या

किसी प्रकार गर्भके संपीडन होनेसे अथवा अत्यन्त क्रोध, शोक, भय, ईर्षा, असूया और त्रास आदिसे या अन्य किसी दुष्ट कर्मके योगसे गर्भ कुक्षीमेंही मरजाताहै। उसके ये लक्षण है। पेट–स्तिमित, स्तब्ध और विस्तृतसा होजाय और शीतल पडजाय तथा ऐसा प्रतीत हो कि पेटमें पत्थरसा रक्खा है, गर्भ फडके नहीं अत्यंत दर्द हो, पीडा अत्यन्त हो पर प्रसूतकालसी न हो, योनिसे पानीका स्राव हो, दोनों नेत्र शिथिल होजायँ, गर्भवती स्त्री ग्रस्तसी होजाय, शरीरमें अत्यन्त व्यथा हो, भ्रांति हो, श्वास अधिक चलनेलगे, व्याकुलता अत्यन्त बढजाय, मलमूत्र आदि वेगके उपस्थित होनेपर भी यथावत् न आसकै। इन लक्षणोंसे गर्भवतीके गर्भमें बालककी मृत्यु हो गई है ऐसा जानना ॥ ६३ ॥

मृतगर्भमें उपाय।

तस्यगर्भशल्यस्यजरायुप्रपातनेकर्मसंशमनमित्याहुरेके । म-न्त्रादिकमथर्ववेदविहितमित्येके । परिदृष्टकर्मणाशल्यहर्त्रा हरणमित्येके ॥ ६४ ॥

ऐसे समय किसी २ आचार्यका मत है कि औषधों द्वारा वा अन्य प्रकार जरायुको निकालदेनाही उत्तम उपाय है क्योंकि जरायुके साथही मराहुआ गर्भभी बाहर आजाताहै। कोई आचार्य कहते हैं कि अथर्ववेदके मन्त्रोंद्वारा मार्जन करनेसे मराहुआ गर्भ निकलजाता है कोई आचार्य कहते हैं कि जो वैद्य शस्त्रकर्ममें दृष्टकर्मा (तजुर्वेकार) हो उससे शस्त्रद्वारा जिसप्रकार निकल सके मृतगर्भको शीघ्र निकाल देना चाहिये ॥ ६४ ॥

व्यपगतगर्भशल्यान्तुस्त्रियमामगर्भांसुराशीध्वरिष्टमधुमदिरास-वानामन्यतममग्रेसामर्थ्यतःपाययेत् गर्भकोष्ठविशुद्ध्यर्थमार्त्ते-विस्मरणार्थंप्रहर्षणार्थञ्च ॥ ६५ ॥

जब उस स्त्रीका मराहुआ गर्भ निकलजाय तो उसको उसी समय सुरा, सीधु, अरिष्ट, मधुनामक मद्य, मदिरा और आसव सामर्थ्यानुसार पिला देवे। उससमय नशेवाली मद्यके पिलादेनेसे उसके गर्भ कोष्ठकी शुद्धि होती है और स्त्री दुःखको भूलजाती है और उसको आनन्द उत्पन्न होजाताहै ॥ ६५ ॥

अतःपरंबृंहणैर्बलानुरक्षिभिःस्नेहसम्प्रयुक्तैर्यवाग्वादिभिर्विले-प्यादिभिर्वातत्कालयोगिभिराहारैरुपाचरेद्दोषधातुक्लेदविशो-षणमात्रंतत्कालम् ॥ ६६ ॥

इसके उपरान्त उस स्त्रीको बृंहण बलकी रक्षा करनेवाली स्नेहयुक्त यवागू पिलाना चाहिये। फिर यथाक्रम विलेपी अथवा उस समय जो उचित हो उस रस या आहारका सेवन कराना चाहिये। जबतक उस स्त्रीके शरीरमें दोष और धातुओंके क्लेद उत्पन्न न होजांय तबतक स्निग्ध हलके और बलकारक आहारोंसे उसकी रक्षा करनी चाहिये ॥ ६६ ॥

अतःपरंस्नेहपानैर्वस्तिभिराहारविधिभिश्चदीपनीयजीवनीयबृंहणीयमधुरवातहरसमाख्यातैरुपचारैरुपाचरेत् ॥ ६७ ॥

इसके उपरान्त स्नेहपान द्वारा एवं स्नेहनवस्तिद्वारा तथा दीपनीय, जीवनीय, बृंहणीय और मधुर तथा वातनाशक आहार द्वारा उपचार करना चाहिये ॥ ६७ ॥

परिपक्वगर्भशल्यायाः पुनर्विमुक्तगर्भशल्यायास्तदहरेवस्नेहोपचारःस्यात् ॥ ६८ ॥

यदि गर्भ पूरे दिनोंका पूर्णांग होकर मरे तो उस गर्भके निकालनेके अनन्तर उसी दिन स्नेहद्रव्योंसे उपचार करना चाहिये ॥ ६८ ॥

परमतोनिर्विकारमाप्यायमानस्यगर्भस्यमासेमासेकर्मोपदेक्ष्यामः ॥ ६९ ॥

अब इसके उपरान्त जिसप्रकार गर्भ निर्विकार होकर वृद्धिको प्राप्त हो उस प्रकार प्रथम महीनेसे लेकर महीने २ जो कर्म करना चाहिये उनका उपदेश करते हैं ॥ ६९ ॥

गर्भकी मासपरत्वरक्षणविधि।

प्रथमेमासेशङ्किताचेद्गर्भमापन्नाक्षीरमनुपस्कृतंमात्रावच्छीतंकालेपिबेत्सात्म्यञ्चभोजनंसायंप्रातश्चभुञ्जीत ॥ ७० ॥

प्रथम महीनेमें जब स्त्रीको यह प्रतीत होजाय कि गर्भ रहगया तो विना औषधीसे केवल दूध मात्र, शीतल उचित मात्रासे पीयाकरे। और प्रातः तथा सायंकाल दोनों समय सात्म्य भोजनको कियाकरे ॥ ७० ॥

द्वितीयेमासेक्षीरमेवचमधुरौषधसिद्धम्। तृतीयेमासेक्षीरंमधुसर्पिर्भ्यामुपसंसृज्य। चतुर्थेमासेतुक्षीरनवनीतमक्षमात्रमश्नीयात्। पञ्चमेमासेक्षीरसर्पिः। षष्ठेमासेक्षीरसर्पिर्मधुरौषधसिद्धंतदेवसप्तमेमासे ॥ ७१ ॥

दूसरे महीनेमें मधुरगणकी औषधियोंसे सिद्ध कियाहुआ दूध पीना चाहिये। तीसरे महीनेमें शहद और घृतयुक्त दूध पीना चाहिये। चौथे महीनेमें ताजे दूधमें एकतोला ताजा मक्खन मिला पीना चाहिये। पांचवे महीनेमें घी और दूध मिला पीना चाहिये। छठवें महीनेमें मधुर आदि गणसे सिद्धकिये दूधमें घी मिला पीना चाहिये। और सातवें महीनेमें भी यही करना चाहिये ॥ ७१ ॥

सप्तममासमें अन्य उपचार।

तत्रगर्भस्यकेशाजायमानामातुर्विदाहंजनयन्तीतिस्त्रियोभाषन्ते तन्नेतिभगवानात्रेयः । किन्तुगर्भोत्पीडनाद्वातपित्तश्लेष्माण उरःप्राप्यविदहन्तिततःकण्डूरुपजायतेकण्डूमूलाचकिक्काशावाप्तिर्भवतितत्रकोलोदकेननवनीतस्यमधुरौषधसिद्धस्यपाणितलमात्रंकालेऽस्यैदद्यात् । चन्दनमृणालकल्कैश्चास्याःस्तनोदरंविमृद्नीयात्।शिरीषधातकीसर्षपमधुकचूर्णैःकुटजार्जकबीजमुस्तहरिद्राकल्कैर्वानिम्बकोलसुरसमञ्जिष्ठाकल्कैर्वा । पृषद्धरिणशशरुधिरयुतयात्रिफलयावाकरवीरकपत्रसिद्धेनवातैलेनाभ्यङ्गः । परिषेकःपुनर्मालतीमधुकसिद्धेनाम्भसाजातकण्डूयाचकण्डूयनंवर्जयेत्त्वग्भेदनवैरूप्यपरिहारार्थमशक्यायान्तु कण्डामुन्मर्दनोद्धर्षणाभ्यांपरिहारःस्यात् । मधुरमाहारजातं वातहरमल्पमल्पस्नेहलवणमल्पोदकानुपानञ्चभुञ्जीत ॥ ७२ ॥

स्त्रियें कहा करतीहैं कि सातवें महीनेमें गर्भमें बालकको केश उत्पन्न हो जाते हैं उसके कारण माताके कुक्षिमें दाह उत्पन्न हुआ करतीहै। परन्तु भगवान् आत्रेयजी कहतेहैं कि ऐसा नहीं होता। उससमय गर्भके उत्पीडन होनेसे वात, पित्त, कफ वक्षस्थलमें प्राप्त हो दाहको उत्पन्न करतेहैं। इसीलिये उससमय खाजसी भी प्रतीत होतीहै। और उस खाजके होतेही पेटके त्वचाको फाडदेनेवाली किक्स खाजकी अधिकतासे त्वचाका फटना उत्पन्न होतीहै। उससमय इस स्त्रीको बेरके क्वाथमें मधुरगणकी औषधियोंको सिद्धकर उन औषधियोंसे सिद्ध कियाहुआ मक्खन दो तोला मात्र समयसमयपर खिलाया करे। चंदन और कमलके कल्कको उस स्त्रीके स्तनों तथा पेटपर मालिश करना चाहिये अथवा सिरसका छिलका, धावेके फूल, सरसों और मुलहठीके चूर्णसे सिद्ध किया तैल या कुडा, वनतुलसीके बीज, नागर

मोथा और हल्दीके कल्कसे सिद्ध किया हुआ तैल अथवा नीम, बेर, तुलसी और मंजीठके कल्कसे सिद्ध किया तैल अथवा पृषतहारिण या खरगोशके रुधिरयुक्त त्रिफलेके कल्कसे या कनेरके पत्तोंसे सिद्ध कियेहुए तेलकी स्तनों और पेटपर मालिश करावे यदि स्तनोंमें खुजली होय तो उनको खुजलाना नहीं चाहिये। मालतीके फूल और मुलहठीके क्वाथसे स्तनोंको धो डालना चाहिये। उस समय खुजलानेसे पेटकी चमडी फट जाती है तथा त्वचा बिगड जाती है। यदि उस समय खुजलीको सह न सके तो मर्दन और त्वचाको हाथसे घिसे। परन्तु नाखूनोंसे खाज न करे। उस समय मधुर तथा वातनाशक आहारको थोडी चिकनाई मिला खाया करे और नमक बहुत थोडा खावे। तथा जल भी थोडा २ पीया करे ॥ ७२ ॥

आठवें मासमें गर्भरक्षणविधि।

अष्टमेतुमासेक्षीरयवागूंसर्पिष्मतींकालेकालेपिबेत्। तन्नेतिभद्रकाप्यः,पैङ्गल्याबाधोह्यस्यागर्भमागच्छेदिति। अस्त्वत्रपैङ्गल्याबाधइत्याहभगवान्पुनर्वसुरात्रेयोनह्येतदकार्य्यमेवंकुर्वतीह्यारोग्यबलवर्णस्वरसंहननसम्पदुपेतंज्ञातीनामपिश्रेष्ठमपत्यं जनयति ॥ ७३ ॥

आठवें महीनेमें दूधमें सिद्ध की हुई यवागूको घृतयुक्त कर समय समयपर पीया करे। इस विषयमें भद्रकाप्य ऋषि कहनेलगे यदि गर्भवती स्त्री इस प्रकार पथ्य सेवन करने लगेगी तो उसकी संतान पंगुला होगी। यह सुनकर भगवान् पुनर्वसु आत्रेयजी कहनेलगे कि ऐसा नहीं होता बल्कि इसप्रकार पथ्य सेवन करनेसे संतान आरोग्य, बलवर्णयुक्त, स्वरयुक्त, दृढ अंगोंवाली तथा अपने अन्य भाइयोंमें भी श्रेष्ठ संतान उत्पन्न होती है ॥ ७३ ॥

नवममासके गर्भकी रक्षणविधि।

नवमेतुखलुएनांमासेमधुरौषधसिद्धेनतैलेनानुवासयेत्। अतश्चास्यास्तैलंपिचमिश्रंयोनौप्रणयेद्गर्भस्थानमार्गस्नेहनार्थम् ॥७४॥

नवम महीनेमें मधुर द्रव्योंसे सिद्धकिये तैल द्वारा इस स्त्रीको अनुवासन करना चाहिये और गर्भमार्गको चिकना करनेके लिये इस तैलका फोहा योनिमें रखना चाहिये ॥ ७४ ॥

यदिदंकर्मप्रथममासमुपादायोपदिष्टमानवमान्मासात्। तेन गर्भिण्यागर्भसमयेगर्भधारणेकुक्षिकटिपार्श्वपृष्ठंमृदुभवतिवात-

श्चानुलोमःसम्पद्यतेमूत्रपुरीषेचप्रकृतिभूतेसुखेनमार्गमनुपद्ये-
तचर्मनखानिचमार्दवमुपयान्तिबलवर्णौचोपचीयेतेपुत्रंचेष्टस-
म्पदुपेतंसुखिनंसुखेनैषाकालेनप्रजायतइति ॥ ७५ ॥

इसप्रकार प्रथम महीनेसे लेकर नवम महीने पर्यन्त जो इस क्रियाका वर्णन किया है इसके करनेसे गर्भवती स्त्रीके कूख, कमर, पसली और पीठ यह नरम रहती हैं। तथा धारण किया गर्भ सुखपूर्वक पुष्ट होता है।एवं वायुका अनुलोम होता है।मल मूत्र का त्याग ठीक समयपर उचित रीतिसे होजाताहै नख और त्वचा नरम रहती हैं। बल वर्णकी वृद्धि होती है। और उत्तम सुन्दर शरीरवाले, बलयुक्त पुत्रको सुखपूर्वक ठीकसमयपर प्रसव करती है ॥ ७५ ॥

सूतिकागारकी विधि ।

प्राक्चैवास्यानवमान्मासात्सूतिकागारंकारयेदपहृतास्थिशर्करा-
कपालंदेशंप्रशस्तरूपरसगन्धायांभूमौप्राग्द्वारमुदग्द्वारंवा॥७६॥

गर्भको नवम महीना प्रवेश होनेसे प्रथमही सूतिकागार (प्रसूतिस्थान) बनाना चाहिये। वह ऐसी उत्तम भूमिमें हो जिसमें हड्डी, कंकड,ठिकरे आदि न हों तथा रूप,रस,गन्धयुक्त पवित्र भूमि हो उस भूमिमें पूर्व या उत्तरको द्वार रखकर प्रसवके लिये घर बनवावे ॥ ७६ ॥

तत्रबैल्वानांकाष्ठानांतिन्दुकैंगुदानांभल्लातकानांवारुणानांख-
दिराणांवा यानिचान्यान्यपिब्राह्मणाः शंसेयुरथर्ववेदविदस्त-
द्वसनालेपनाच्छादनापिधानसम्पदुपेतंवास्तुविद्यात्। हृदययो-
गेनाग्निसलिलोलूखलवर्च्चःस्थानस्नानभूमिमहानसमृतुसुखञ्च ७७

उस स्थानमें बिल्व, तेंदु, गोंदनी, भिलावा,वर्णवृक्ष और खैरकी लकड़ियें तथा अन्य सर्व प्रकारकी लकडियोंको मँगावे। फिर अथर्ववेदको जाननेवाला ब्राह्मण जो २ वस्तुयें बतावे उन सबको संचय करे और वस्त्र, आलेपन तथा बिछानेके कपडे और ओढनेके कपडे आदि वस्तुओंको उस घरमें स्थापन करे और जिन २ पदार्थोंकी गर्भवती इच्छा करे अथवा उसके लिये उचित हों उनउनको समयके अनुसार जिस ऋतुमें जैसे द्रव्योंकी आवश्यकता हो वैसे २ द्रव्य, अग्नि,जल,ओखली मल मूत्रके त्यागनेका स्थान,स्नान करनेका स्थान,भोजन बनानेका स्थान इन सबको जिस ऋतुमें जिसप्रकार उचित हो बनावे ॥ ७७ ॥

सूतिकागृहका सामान ।

तत्रसर्पिस्तैलमधुसैन्धवसौवर्चलकाललवणविडङ्गगुडकुष्ठकिलिमनागरपिप्पलीमूलहस्तिपिप्पलीमण्डूकपर्ण्येलालाङ्गलीवचाचव्यचित्रकचिराबिल्वहिंगुसर्षपलशुनकणकाणेकानीपातसीबल्वजभूर्जाःकुलत्थमैरेयसुरासवाःसन्निहिताः स्युः ॥ ७८ ॥

उस घरमें घी, तेल, शहद, सेंधानमक, संचरनमक, कालानमक, वायविडंग, गुड,कुडा, देवदार,सोंठ,पिपलामूल, गजपीपल, मण्डूकपर्णी, इलायची,लांगुलीकंद, बच, चीता, चव्य, लताकरंज, हींग,सरसों,लहसुन,कनकवृक्ष, गेहूं,कदम्ब,अलसी, पेठा, भोजपत्र, कुलथी, मैरेय, सुरा और आसव इन सबको संग्रहकरके यथास्थान रक्खे ॥ ७८ ॥

तथाश्मानौद्वौद्वेचण्डमुसलेद्वेउलूखलेखरोवृषभश्चद्वौचतीक्ष्णौसूचीपिप्पलकौसौवर्णराजतौद्वेशस्त्राणिचतीक्ष्णायसानिद्वौचबिल्वमयौपर्य्यंकौतन्दुकैंगुदानिचकाष्ठानिअग्निसन्धुक्षणानिस्त्रियश्चबह्वचोबहुशःप्रजाताःसौहार्दयुक्ताःसततमनुरक्ताःप्रदक्षिणाचाराः प्रतिपत्तिकुशलाःप्रकृतिवत्सलास्त्यक्तविषादाःक्लेशसहिष्णवोऽभिमताब्राह्मणाश्चाथर्ववेदविदोयच्चान्यदपितत्रसमर्थं मन्येतयच्चब्राह्मणाब्रूयुःस्त्रियश्चवृद्धास्तत्कार्य्यम् ॥ ७९ ॥

तथा दो पत्थर,दो मूसल,दो ऊखल,एक गधा,एक बैल,दो तीक्ष्ण सूइयें,सुवर्ण, चांदीकी, धागेकी गोली,लोहेके तीक्ष्ण शस्त्र,सोना,चांदी,बिल्वकी लकडीकी बनी चारपाई, तेंदु और इंगुदीकी लकडियें आगजलानेके लिये। जिन स्त्रियोंनेअनेकवार प्रसव करायाहो ऐसी हितके रखनेवाली जो गर्भवतीसे अत्यन्त प्रेम रखतीहों ऐसी स्त्रियें रखनी चाहिये परन्तु वह स्त्रियें बच्चा पैदा करानेमें अत्यन्त चतुर, चित्तकी बातको समझनेवाली, विषादरहित और स्वभावसे ही दयालु कष्टके सहन करनेवाली होनी चाहिये। तथा अथर्ववेदके जाननेवाले ब्राह्मण तथा अन्य भी जो २ वस्तुयें आवश्यक प्रतीत हों और जिन वस्तुओंको वह ब्राह्मण कहे सबको उपस्थित करना चाहिये। जिस २ बातको वृद्धास्त्रियें और वह अथर्ववेदी ब्राह्मण कहें सो उस स्थानमें रखना चाहिये तथा उसीप्रकार करना चाहिये ॥ ७९ ॥

ततःप्रवृत्तेनवमेमासिपुण्येऽहनिप्रशस्तनक्षत्रयोगमुपगतेभगवतिशशिनिकल्याणेकरणेमैत्रेमुहूर्तेशान्तिङ्कृत्वागोब्राह्मणमग्नि-

मुदकश्चादौप्रवेश्यगोभ्यस्तृणोदकंमधुलाजांश्चप्रदायब्राह्मणेभ्योऽक्षतान्सुमनसोनान्दीमुखानिचफलानीष्टानिदत्त्वाउदक्पूर्वमासनस्थेभ्योऽभिवाद्यपुनराचम्यस्वस्तिवाचयेत्ततःपुण्याहशब्देनगोब्राह्मणमन्वावर्त्तमानाप्रविशेत्सूतिकागारम् । तत्रस्थाचप्रसवकालंप्रतीक्षेत ॥ ८० ॥

फिर नवम महीना प्रवेश होतेही उत्तम दिन,नक्षत्र चन्द्रमा और शुभ करण तथा मैत्र मुहूर्त्तमें शान्तिकर्म कर,गौ, ब्राह्मण,अग्नि और जलके भरेहुए कलशको पहिले प्रवेश कर गौओंको घास जल और शहद तथा धानकी खील दे। फिर ब्राह्मणोंको चावल और फूल देकर नान्दीमुखके योग्य उत्तम फलोंको देकर उत्तर या पूर्वमें आसनोंपर बिठाकर प्रणाम करे।और उनके चरणादि प्रक्षालनकर फिर आचमन करे तदनन्तर स्वस्तिवाचन और पुण्याहवाचनपूर्वक गौ ब्राह्मणोंको आगे कर सूतिका स्थानमें प्रवेश करे। फिर उसी स्थानमें रहतीहुई प्रसवकालकी प्रतीक्षा करे ॥८०॥

प्रसवकालके चिह्न ।

तस्यास्तुखलुइमानिलिङ्गानिप्रजननकालमभितोभवन्तितद्यथाक्लमोगात्राणांग्लानिराननस्यअक्ष्णोःशैथिल्यंविमुक्तबंधनत्वमिववक्षसःकुक्षेरवस्त्रंसनमधोगुरुत्वंवंक्षणवस्तिकटिपार्श्वपृष्ठनिस्तोदोयोनेःप्रस्रवणमनन्नाभिलाषश्चेति । ततोऽनन्तरमावीनांप्रादुर्भावःप्रसेकश्चगर्भोदकस्य ॥ ८१ ॥

प्रसवकालके समय स्त्रीके ये लक्षण होते हैं। जैसे क्लम, अंगोंमें ग्लानि, मुख और नेत्रोंकी शिथिलता,वक्षस्थलके बन्धन खुलगयेसे प्रतीत होना,कुक्षिका नीचेकी ओर जाना, नीचेका भाग भारी प्रतीत होना, वस्ति, वंक्षण, कमर, पसवाडे और पीठमें चमकके साथ पीडा होना,योनिका स्राव होना,अन्नमें रुचि न होना, उसके अनन्तर जिस झिल्लीमें गर्भ होताहै उस थैलीका दिखाई देना उससे गर्भका जल निकलने लगना ॥ ८१ ॥

प्रसववेदनामें कर्त्तव्यकर्म ।

आवीप्रादुर्भावेतुभूमौशयनंविदध्यान्मृद्वास्तरणोपपन्नंतदध्यासीनांततः समन्ततःपारिवार्य्ययथोक्तगुणाःस्त्रियःपर्य्युपा-

सीरन्नाश्वासयन्त्योवाग्भिर्ग्राहिणीभिरुपदिष्टवदर्थाभिधायिनीभिः ॥ ८२ ॥

प्रसवकी पीडा उत्पन्न होकर जब आवीसे गर्भका जल स्राव होने लगे तो उस स्त्रीको पृथ्वीपर नरम बिछीहुई शय्यापर लेटजाना चाहिये और योग्य गुणोंवाली जिनका पाहिले वर्णन किया जा चुकाहै उन सब स्त्रियोंको उसके चारोंओर बैठकर मीठे २ वाक्योंसे धैर्य देतेहुए उसके चित्तको शान्त करते रहना चाहिये ॥ ८२ ॥

साचेदावीभिःसंक्लिश्यमानानप्रजायेताथैनांब्रूयादुत्तिष्ठमुसलमन्यतरञ्चगृह्णीष्वानेनैतदुलूखलंधान्यपूर्णंमुहुर्मुहुरभिजहिमुहुर्मुहुरवजृम्भस्वचंक्रमस्वचान्तरान्तराइत्येवमुपदिशन्त्येके ॥८३ ॥

कोई कहते हैं कि यादि वह गर्भवती प्रसववेदनासे पीडित होतेहुए भी प्रसव न करे तो उसको कहना चाहिये कि तूं उठकर बैठजा और दो मूसल या एक मूसल लेकर ऊखलीमें भरेहुए धानोंको कूट और वारवार हाथपावोंको हिला वारवार जंभाई ले इधरउधर फिर ॥ ८३ ॥

आत्रेयजीका मत ।

तन्नेत्याहभगवानात्रेयः । दारुणव्यायामवर्जनंहिगर्भिण्याः सततमुपदिश्यते । विशेषतश्चप्रजननकालेप्रचलितसर्वधातुदोषायाःसुकुमार्य्यानार्य्यामुसलव्यायामसमीरितोवायुरन्तरंलब्ध्वाप्राणान्हिंस्याद्दुष्प्रतीकारतमाहितास्मिन्कालेविशेषेणभवतिगर्भिणी । तस्मान्मुसलग्रहणंपरिहार्य्यमृषयोमन्यन्ते जम्भणञ्चंक्रमणञ्चपुनरनुष्ठेयामिति ॥ ८४ ॥

इसपर भगवान् आत्रेयजी कहनेलगे कि ऐसा कभी नहीं करना चाहिये।गर्भवती स्त्रीको दारुण परिश्रम करना किसीकालमें भी उचित नहीं है और विशेषकर प्रसवकालमें तो सब धातु और वातादि दोष शीघ्रही प्रचलित होजातेहैं । यदि सुकुमार स्त्री ऊखलमें धान कूटने लगेगी तो इस परिश्रमसे कुपितहुआ वायु छिद्रको प्राप्त हो प्राणोंको नष्टकर देताहै और वह समय भी ऐसा होताहै कि चिकित्सा करनेमें बडीभारी कठिनाई पडतीहै।उससमय किसीप्रकारका उपद्रव होजानेसे उसकी शान्ति नहीं होती।इसलिये ऋषिलोग मूसल लेकर धान कूटना उचित नहीं समझते किन्तु जँभाईलेना और इधर उधर टहलना यह क्रम अच्छा प्रतीत होताहै ॥८४॥

प्रसवकालमें औषध ।

अथास्यै दद्यात्कुष्ठैलालाङ्गलिकीवचाचित्रकाचिरबिल्वचूर्णमुपघ्रातुं सा तन्मुहुर्मुहुरुपाजिघ्रेत् । तथा भूर्जपत्रधूमं शिंशपासारधूमं तस्याश्चान्तरान्तरा । कटिपार्श्वपृष्ठसक्थिदेशादीषदुष्णेन तैलेनाभ्यज्यानुसुखमवमृद्नीयादित्यनेन तु कर्मणा गर्भोऽवाक् प्रतिपद्यते । स यदा जानीयाद्विमुच्य हृदयमुदरमस्यास्त्वाविशति बस्तिशिरोऽवगृह्णाति त्वरयन्त्येनामाव्यः परिवर्त्तते अस्या अवाग्गर्भ इत्यस्यामवस्थायां पर्य्यंकमेनामारोप्य प्रवाहितमुपक्रमेत कर्णे चास्या मन्त्रमिममनुकूला स्त्री जपेत् ॥ ८५ ॥

ऐसे समय गर्भवती स्त्रीको कूट,इलायची,लागुलीकंद, वच,चित्रक और कंजेका चूर्ण कर वारंवार सुंघाना चाहिये ।तथा भोजपत्रकी और शीशमकी गोंदकी धूनी थोडे थोडे देरके बाद योनिमें देनी चाहिये।तथा कमर, दोनों पसवाड, पीठ और नितम्ब आदि स्थानोंको सुखोष्ण तैल लगाकर धीरे २ मालिश करना चाहिये । ऐसा करनेसे गर्भकी नीचेकी ओर प्रवृत्ति होजातीहै । जव ऐसा प्रतीत हो कि गर्भ हृदयकी ओरसे पेटमें आय गयाहै और योनिद्वारमें पहुंचनाही चाहताहै और प्रसवकी वेदना अत्यंत शीघ्र शीघ्र होने लगतीहै तव जानना कि इसका गर्भ अधोमुख होकर,बाहर आनाही चाहताहै तो इसको शय्यापर विठाकर कहे कि तू अव भीतरसे गर्भको बाहर ढकेलनेका यत्न कर और इधर उधरसे मालिशपूर्वक नरम हाथसें उस गर्भके बाहर निकालनेका यत्न कराना चाहिये।जव देखे कि अव बालक प्रगट होनेहीवाला है तो योग्य स्त्री उसके कानमें यह मंत्र पढे ॥ ८५ ॥

प्रसवकालका मंत्र ।

(क्षितिर्जलं वियत्तेजो वायुर्विष्णुः प्रजापतिः । सगर्भां त्वां सदा पान्तु वैशल्यञ्चादिशन्तु ते ॥ ८६ ॥ प्रसुवत्वमविक्लिष्टमविक्लिष्टा शुभानने ! । कार्तिकेयद्युतिं पुत्रं कार्त्तिकेयाभिरक्षितमिति)॥८७॥

८६ और ८७ का श्लोक मंत्र है । इस मंत्रका यह अर्थ है । हे गर्भवती स्त्री ! पृथ्वी, जल, आकाश,तेज,वायु, विष्णु,और प्रजापति यह तुम्हारी सदा रक्षा करें। और तुम्हारे गर्भमें किसी प्रकारका उपद्रव न होने देवें । हे शुभानने !तू क्लेशरहित पुत्रको उत्पन्न कर तथा स्वामी कार्तिकके समान कान्तिवाला और स्वामीकार्त्तिकसे अभिरक्षित पुत्रको प्रगट कर ॥ ८६ ॥ ८७ ॥

ताश्चैनांयथोक्तगुणाःस्त्रियोऽनुशिष्युरनागतावीमांप्रवाहिष्ठाः याह्यनागतावीःप्रवाहयतेव्यर्थमेवास्यास्तत्कर्मभवति । प्रजा चास्याविकृतिमापन्नाचश्वासकासशोषप्लीहप्रसक्तावाभवतिय- थाहिक्षवथूद्गारवातमूत्रपुरीषवेगान्प्रयतमानोऽप्यप्राप्तकालान्न लभतेकृच्छ्रेणव्याप्यवाप्नोतितथानागतकालंगर्भमपिप्रवाहमा- णायथाचैषामेवक्षवथ्वादीनांसन्धारणमुपघातायोपपद्यतेतथा प्राप्तकालस्यगर्भस्याप्रवहणमिति । सायथानिर्देशंकुरुष्वेतिव- क्तव्यास्यात् । तथाचकुर्वतीशनैःशनैःपूर्वंप्रवाहेततोऽनन्तरं बलवत्तरामितितस्याश्चप्रवाहमाणयांस्त्रियःशब्दंकुर्य्युःप्रजाता- प्रजाताधन्यंधन्यंपुत्रामितितथास्याहर्षेणाप्यायन्तेप्राणाः ॥ ८८ ॥

यदि उससमय बालक प्रगट न हो तो यथोक्त गुणसंपन्न स्त्रियें इस गर्भवती स्त्रीको कहें कि यदि इससमय तुम्हारे प्रसवकी पीडा न होती हो तो अधिक जोर लगाकर ढकेलनेमें यत्न मत कर । क्योंकि प्रसव वेदनाके विनाही जो स्त्री गर्भको ढकेलनेके लिये यत्न करतीहै तो वह इसका यत्न व्यर्थही जाताहै । और इसकी संतान भी विकृतिको प्राप्त होजातीहै । अथवा उस स्त्रीको विकृति होकर श्वास, खांसी, राजयक्ष्मा और प्लीहा रोग उत्पन्न होजाताहै । जैसे—छींक,डकार,वात,मूत्र, पुरीष इनका वेग यत्न करनेपर भी विना समय नहीं होसकता अर्थात् विना समय पेटको कितनाही दवा दिया जाये परन्तु कभी मल, मूत्र नहीं आता उसीप्रकार विना प्रसवके समय उपस्थित होनेके कितनेही जोरसे प्रसव होनेका यत्न किया जाय परन्तु वह अपने समयके विना प्रगट नहीं होता। वैसेही आयेहुए छींक आदि वेगोंको रोकनेसे जिस प्रकार रोगादि उत्पन्न होतेहैं उसी प्रकार प्रसवकाल प्राप्त होनेपर उसको निकालनेका यत्न न करनेसे भयंकर परिणाम होताहै । समीपवाली स्त्रियोंको गर्भवतीसे कहना चाहिये कि जिसतरह हम कहें उसीप्रकार तुम करना । और उस गर्भवतीको भी उनकी आज्ञानुसार करना चाहिये । फिर प्रसव वेदना उप- स्थित होनेपर उसको धीरे २ बालक बाहरको ढकेलना चाहिये । जब बालक प्रकट होतेहुए उसके शरीरमें बालकके प्रगट होनेकी योनिमें पीडा होनेसे व्याकुलता उत्पन्न होनेलगे तो उससमय उसकी समीपवाली सब स्त्रियें कहें कि धन्य है धन्यहै लडका पैदा हुआहै।लडका पैदा हुआहै।ऐसा कहनेसे उस स्त्रीके शरीरमें हर्ष उत्पन्न होकर प्राण प्रफुल्लित होजातेहैं ॥ ८८ ॥

प्रसवके उपरांत कर्म ।

यदा च प्रजातास्यात्तदैनामवेक्षेत काचिदस्या अमरा प्रपन्ना वा प्रपन्ना नेति । तस्याश्चेदमरा न प्रपन्नास्यादथैनामन्यतमा स्त्री दक्षिणेन पाणिना नाभेरुपरिष्टाद्बलवन्निपीड्य सव्येन पाणिना पृष्ठत उपसंगृह्य सुनिर्धूतं निर्धूनुयात् । अथास्याः पादपार्ष्ण्या श्रोणीमाकोटयेदस्याः स्फिचावुपसंगृह्य सुपीडितं पीडयेत् । अथास्या बालवेण्या कण्ठतालू परिमृशेत् ॥ ८९ ॥

बालकका जन्म होनेके अनन्तर देखे कि अमरा अर्थात् जेर निकल गई है कि नहीं। यदि अमरा न निकली हो तो एक स्त्री प्रसूताकी नाभिके ऊपर दहिना हाथ रखकर उससे नाभिको दवावे और वायें हाथसे पीठको वलपूर्वक दवावे और हिलावे फिर पांवकी एडियोंको नाभिके समीप लेजाकर उसके दोनों नितम्बोंको अच्छी तरहसे पीडन करे । फिर उस वेणीको (गूंथको) मुखमें प्रवेश करके कंठ और तालु पर फेरे ॥ ८९ ॥

भूर्जपत्रकाचमणिसर्पनिर्मोकैश्चास्या योनिं धूपयेत् । कुष्ठतालीसकल्कं बल्वजयूषैमैरेयसुरामण्डे वा कौलत्थे वा मण्डूकपर्णीपिप्पलीक्वाथे वा संप्लाव्य पाययेदेनाम् ॥ ९० ॥

फिर भोजपत्र, कांच, मणि और सांपके कांचुलीकी इसकी योनिमें धूनी देवे तथा बल्वज बूटीके जडका क्वाथ, मैरेय मद्य, सुरामण्ड, कुलथीका यूष अथवा पीपलके क्वाथके साथ कुष्ठ और तालीशपत्रके कल्कको मिलाकर पीनेके लिये देवे ॥ ९० ॥

अमरा निकालनेकी विधि ।

तथा सूक्ष्मैलाकिलिमकुष्ठनागरविडङ्गकालविडचव्यपिप्पलीचित्रकोपकुञ्चिकाकल्कं खरवृषभस्य जरतो वा दक्षिणं कर्णमुत्कृत्य दृषदि जर्जरीकृत्य बल्वजयूषादीनामन्यतमस्मिन्प्रक्षिप्य मुहूर्त्तस्थितमुद्धृत्य तदाप्लावनं पाययेदेनाम् ॥ ९१ ॥

तथा छोटी इलायची, देवदारु, कूट, सोंठ, वायविडंग, विडनमक, चव्य, पीपल, चित्रक और कालाजीरा इनके कल्कको विल्वजतृणके क्वाथ आदिमें मिलाकर पिलावे । और वृद्ध खर तथा वृषभके दक्षिण कर्णको जरासा काटकर पत्थरके

ऊपर जरजरी बना बल्वज आदि काथमें दो घडी भिगो रक्खे फिर वह क्वाथ छानकर इस प्रसूतास्त्रीको पिलाना चाहिये ॥ ९१ ॥

शतपुष्पाकुष्ठमदनहिंगुसिद्धस्यचैनांतैलस्यपिचुंग्राहयेदतश्चैवा-नुवासयेदेतैरेवचाप्लावनैःफलजीमूतकेक्ष्वाकुधामार्गवकुटजकृ-तवेधनहस्तिपर्ण्युपहितैरास्थापयेत् ॥ ९२ ॥

फिर सौंफ, कूट, मैनफल, हींग इनसे सिद्धकिया तिलोंके तैलका फोहा प्रसू-ताकी योनिमें रक्खे । इसके उपरांत मैनफल, नागरमोथा, कडुवी तुंवी, कुडा, कडवी तोरी और हस्तिपर्णी इन सबके कल्कको उपरोक्त बल्वज आदिके काथमें मिला आस्थापन बस्ति करे ॥ ९२ ॥

तदास्थापनमस्याहिसहवातमूत्रपुरीषैर्निर्हरत्यमरामासक्तांवा-योरनुलोमगमनात् । अमरांहिवातमूत्रमपुरीषाण्यन्यानिचान्त-र्बहिर्मुखानिसृजन्ति ॥ ९३ ॥

उस आस्थापन वस्तिके करनेसे वायु अनुलोम होकर वात, मूत्र और मल साफ निकलतेहैं और साथही अमरा भी निकल जातीहै । क्योंकि वात, मूत्र, पुरीष तथा अन्य भी सब अमराके साथहि खिंचेहुए होनेसे अन्तर्मुख और बहिर्मुख होतेहैं । आस्थापन द्वारा पुरीष आदिकोंके बहिर्मुख होनेसे अमरा (आंवल) भी बाहर निकल आतीहै ॥ ९३ ॥

कुमारके कर्म ।

तस्यान्तुखल्वमरायाःप्रपतनार्थेखल्वेवमेवकर्माणिक्रियमाणे जातमात्रेऽस्यैवकुमारस्यकार्य्याण्येतानिकर्माणिभवन्तितद्य-था—अश्मनोःसंघट्टनंकर्णयोर्मूलेशीतोदकेनोष्णोदकेनवामुख-परिषेकः । तथासंक्लेशविहतान्प्राणान्पुनर्लभेतकृष्णकपालि-काशूर्पेणचैनमभिनिष्पुणीयाद्यच्चेष्टंस्याद्यावत्प्राणानांप्रत्याग-मनात्तत्तत्सर्वमेवकुर्य्युः ॥ ९४ ॥

यह सब कर्म तो अमरा (आंवल) गिरानेके लिये किये जातेहैं । अब बालकके संबंधमें जो कर्म करने चाहिये उनको वर्णन करतेहैं । जैसे-जब बालक उत्पन्न हो तो उस बालकके कानके समीप दो पत्थरोंको बजाना और शीतल अथवा गरम जलसे धीरेधीरे मुखको धोना और मुखपर छींटे देना जिससे प्रसवसमयके कष्टसे

उत्पन्न हुई मूर्च्छा दूर होकर बालकके प्राण प्रफुल्लित हों अर्थात् शरीरमें फिर आजांय फिर एक काले बडे शरावसे अथवा छाजसे इस बालकको धीरे २ हवा करे तथा बालककी मूर्च्छा दूर करनेके लिये और उनके शरीरमें प्राणोंका आगमन होनेके लिये जो २ उपाय उचित हों करने चाहिये ॥ ९४ ॥

ततःप्रत्यागतप्राणंप्रकृतिभूतमभिसमीक्ष्यस्नानोदकग्रहणाभ्यामुपपादयेत्।अथास्यताल्वोष्ठकण्ठजिह्वाप्रमार्जनमारभेतअंगुल्यामुपरिलिखितनखयासुप्रक्षालितोपधानकार्पासपिचुमत्या प्रथमंप्रमार्जितस्यास्यचशिरस्तालुकार्पासपिचुनास्नेहगर्भेणप्रतिच्छादयेत् । ततोऽस्यानन्तरंकार्य्यंसैन्धवोपहितेनसर्पिषा प्रच्छर्दनम् ॥ ९५ ॥

जब बालक होशमें आकर रोनेलगे और स्वस्थवृत्ति होजाय फिर उसको स्नान करावे तथा हाथ आदिसे स्वच्छ करे। उसके उपरान्त कोई स्त्री हाथकी अंगुलीको साफकरके उस अंगुलीका नख उत्तमतासे कटाहोना चाहिये फिर उस अंगुलीपर उत्तम साफ धुनीहुई रुईके फोहेको लपेट उस बालकके तालू, होंठ और कण्ठको साफ करे । फिर रुईके फोहेको तैलमें भिगोकर बालकके तालुवेपर रक्खे । फिर इसके उपरान्त सेंधानमक और घीसे बालकको वमन करावे ॥ ९५ ॥

नालुवाछेदन विधि ।

नाड्यास्तस्याःकल्पनविधिमुपदेक्ष्यामः । नाभिबन्धनात्प्रभृतिहित्वाष्टांगुलमभिज्ञानंकृत्वाछेदनावकाशस्यद्वयोरन्तरयोः शनैर्गृहीत्वातीक्ष्णेनरौक्मराजतायसानांछेदनानामन्यतमेनोर्द्ध्वधारेणछेदयेत्तामग्रेसूत्रेणोपनिबध्यकण्ठेचास्यशिथिलमवसृजेत् ॥ ९६ ॥

अब बालककी नाल काटनेकी विधि कथन करतेहैं । नाभिसे आठ अंगुल लम्बी छोडकर जिस स्थानपरसे काटनी हो उसके दोनों ओर ऊपर और नीचेसे धागेके साथ बांधदेना चाहिये । फिर उन दोनों बंधनोंके बीचमेंसे सोना,चांदी अथवा लोहेकी तीक्ष्ण (पैनी) धारवाली छूरीसे नालको काटदेना चाहिये । फिर जो नाल नाभिसे आठ अंगुल लगीहुई है उसको सूतके डोरेसे बांधकर बालकके गलेमें इसप्रकार ढीली बांधदेनी चाहिये जिससे वह खिचे नहीं और डोरा भी ऐसी युक्तिसे

और नरम बांधना चाहिये कि जिससे उस बालकके नरम शरीरमें कहीं अपना असर न दिखावे ॥ ९६ ॥

नाभिपाकका यत्न ।

तस्यचेन्नाभिःपच्येत्तांलोध्रमधुकप्रियंगुदारुहरिद्राकल्कासिद्धेन तैलेनाभ्यज्यादेषामेवतैलौषधानांचूर्णेनावचूर्णयेदेषनाडिकल्पन-विधिरुक्तःसम्यक् ॥ ९७ ॥

यदि बालककी नाभि पकजाय तो पठानी लोध, मुलहठी, प्रियंगु, हल्दी और दारुहल्दी इनके कल्क द्वारा सिद्ध कियाहुआ तैल उस नाभिपर लगाना चाहिये अथवा इन उपरोक्त औषधियोंके बारीक चूर्णको तैलमें मिलाकर नाभिपर लगादेना चाहिये इसप्रकार नालवाकल्पनविधि कथन की गई है ॥ ९७ ॥

असम्यक्कल्पेनहिनाडयाआयामव्यायामोत्तुण्डितपिण्डालिकावि-नामिकाविजृम्भिकाबाधेभ्योभयम् ॥ ९८ ॥तत्राविदाहिभिर्वात-पित्तप्रशमनैरभ्यङ्गोत्सादनपरिषेकैःसर्पिर्भिश्चोपक्रमेतगुरुलाघव-मभिसमीक्ष्यकुमारस्य ॥ ९९॥

यदि नालवेका उत्तमप्रकारसे छेदन न कियाजायगा तो उस बालकको आयाम, व्यायाम उत्तुण्डिका, पिण्डालिका, विमानिका और विजृम्भिका नामक व्याधियोंके उस नाभीमें उत्पन्न होनेका भय है ॥ ९८ ॥ इनके उत्पन्न होनेपर इन व्याधियोंकी लघुता, गुरुता आदि देखकर अविदाही वातपित्तनाशक, उत्सादन और परिषेकों द्वारा तथा सिद्ध घृत द्वारा चिकित्सा करना चाहिये ।(इसकी विशेष चिकित्सा चिकित्सास्थान १२ वें अध्यायमें देखना ॥ ९९ ॥

जातकर्मविधि ।

प्रागतोजातकर्मकार्य्यंततोमधुसर्पिषीमन्त्रोपमन्त्रितेयथान्यायं प्राशितुमस्मैदद्यात् । स्तनमतऊर्द्ध्वमनेनैवविधिनादक्षिणंपातुंपु-रस्तात्प्रयच्छेत् । अथातःशीर्षतःस्थापयेदुदकुम्भंमन्त्रोपम-न्त्रितम् ॥ १०० ॥

प्रथम बालकका जातकर्म करना चाहिये । वेदोक्त मन्त्रोंद्वारा मंत्रित किया-हुआ घृत और मधु विषमभाग मिलाकर बालकको चटाना चाहिये।इसके उपरान्त इसी विधिसे पहिले दाहिना स्तन पीनेके लिये देना चाहिये । फिर उसके सिरके समीप मंत्रोंसे मन्त्रित किया जलका कलश रखना चाहिये ॥ १०० ॥

रक्षाविधि ।

अथास्यरक्षांविदध्यादादानीखादिरकर्कन्धूपीलुपरूषकशाखाभि- रस्यागृहंभिषक्समन्ततःपरिवारयेत्।सर्वतश्चसूतिकागारस्यसर्षपा- तसीतण्डुलकाणिकाःप्रकिरेत्।तथातण्डुलबालिमङ्गलहोमःसत- तमुभयकालंक्रियतेप्राङ्नामकर्मणोद्वारेचमुसलमनुतिरश्चीनंन्य- स्तंकुर्य्यात् ।वचाकुष्ठक्षौमकहिंगुसर्षपातसीलशुनकणकणिकानां रक्षोघ्नसमाख्यातानाञ्चऔषधीनांपोट्टलिकांबद्ध्वासूतिकागारस्यो त्तरदेहल्यामासृजेत्।तथासूतिकायाःकण्ठेसपुत्रायाःस्थाल्युदककु- म्भपर्य्यङ्केष्वपितथैवचद्वयोर्द्वारपक्षयोःसकणकुम्भकेन्धनाग्निस्ति- न्दुककाष्ठेन्धनश्चाग्निःसूतिकागारस्याभ्यन्तरतोनित्यंस्यात् । स्त्रि- यश्चैनांयथोक्तगुणाःसुहृदश्चानुजागृयुर्दशाहंद्वादशाहंवानुपरतप्र- दानमङ्गलाशीःस्तुतिगीतवादित्रमन्नपानविशदमनुरक्तप्रहृष्टजन- सम्पूर्णंतद्वेश्मकार्य्यम्। ब्राह्मणश्चाथर्ववेदवित्सततमुभयकालंशा- न्तिंजुहुयात्स्वस्त्ययनार्थंकुमारस्यतथासूतिकायाइत्येतद्रक्षावि- धानमुक्तम् ॥ १०१ ॥

इसके उपरान्त इस बालककी रक्षा करे। उस रक्षाविधिका वर्णन करते हैं जैसे– आदानी (घोषक) खैर, बेर पीलू, फालसा इन सब वृक्षोंकी शाखाओंको घरके चारों ओर लटका देवे। और उस प्रसूत घरमें सफेद सरसों, अलसी और चावलोंके दाने बखेरदेवे। प्रातःकाल और सायंकाल दोनों समय चावलोंका बलिदान और मंगलकर्म, हवन, आदि नित्यम्प्रति करना चाहिये। तथा नामकरण संस्कार होनेसे प्रथम द्वारमें एक लोहेका मूसल टेढाकर रखदेना चाहिये। और वच, कूट, अजवा- यन, हींग, सफेद सरसों, अलसी, लहसुन, चावल इनसबकी पोटली बांधकर तथा भूतादिनाशकऔषधियोंकी पोटली बांधकर प्रसूतघरके उत्तरके द्वारकी देहलीपर रख देना चाहिये। या चौकटमें बांधकर लटका देना चाहिये। इसीप्रकार इन भूतनाशक द्रव्योंकी छोटी२पोटली बना प्रसूता स्त्री और बालकके गलेसे बांधदेना चाहिये। एवं प्रसूताके भोजनकरनेके पात्रमें और जल पनिके घटमें तथा चारपाईमें और दोनों ओरके किवाडोंमें भी बांधना चाहिये। इस प्रसूताके घरमें सरसों आदिके कणके, चावल, जलका घडा, लकडियें, अग्नि, तेंदुकी लकडीसे प्रज्वालित हुई अग्नि सदैव

रखनी चाहिये। और यथोक्तगुणसंपन्न तथा इससे स्नेह रखनेवाली स्त्रियें और सुहृद्गण इसकी सबप्रकारसे सेवामें सावधानीसें लगे रहें। इस प्रकार दश बारह दिन व्यतीत करना चाहिये। इसके अनन्तर भी दान देना, मंगलकर्म, आशीर्वाद लेना, वेदध्वनि, गीत और बाजे आदि शुभकर्मोंको करतेरहना चाहिये। अथर्ववेदके जाननेवाले ब्राह्मण दोनों समय इस बालककी रक्षाके लिये और प्रसूताकी रक्षाके लिये दोनों समय कल्याणकारी शान्तिपाठ और होमादिक किया करें। इस प्रकार रक्षाविधिका कथन कियागया ॥ १०१ ॥

प्रसूतिकाका आहारविहार वर्णन।

सूतिकान्तुखलुबुभुक्षितांविदित्वास्नेहंपाययेत्प्रथमंपरमयाशक्त्या सर्पिस्तैलंवसांमज्जानंवासात्म्यीभावमभिसमीक्ष्यभिषक्।पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकशृङ्गवेरचूर्णसहितंस्नेहंपीतवत्याश्चसर्पिस्तैलाभ्यामभ्यज्यवेष्टयेदुदरंमहतावाससातथातस्यानवायुरुदरेविकृतिमुत्पादयत्यनवकाशत्वात् । जीर्णेतुस्नेहेपिप्पल्यादिभिरेवासिद्धांयवागूंसुस्निग्धांद्रवांमात्रशःपाययेतोभयकालञ्चोष्णोदकेनपरिषेचयेत्प्राक्स्नेहयवागूपानाभ्याम्।एवंपञ्चरात्रंसप्तरात्रञ्चानुपाल्यततःक्रमेणाप्याययेत्स्वस्थवृत्तमेतत्सूतिकायाः ॥ १०२ ॥

प्रसूता स्त्रीको जिससमय क्षुधा लगे तो उसको उसकी सामर्थ्यानुसार उत्तम मात्रासे स्नेहपान करावे। और उसका सात्म्य विचार करके जिस देशमें उसके लिये जो हितकारी हो सो घृत तैल अथवा वसा या मज्जा पान करावे। तथा पीपलामूल, चव्य चित्रक और सोंठ इनका चूर्ण मिलाकर स्नेहपान कराना चाहिये। और उस स्त्रीके पेटपर घृत और तैल दोनों मिलाकर चोपड देवे। इसके उपरान्त पेटपर कोई लम्बा कपडा लपेट देवे। ऐसा करनेसे उसके पेटमें वायु प्रवेश होकर अवकाश न मिलनेसे विकार नहीं करसकता। जब स्नेहपान कियाहुआ जीर्ण होजाय फिर पीपल, पिपलामूल, चव्य, चित्रक और सोंठ यह मिलाकर सिद्ध कीहुई चिकनी यवागू पतलीसी बनाकर मात्रानुसार दोनों समय पीनेको देवे। स्नेह और यवागू पान करनेके पहिलेही प्रसूता स्त्रीको गर्मजलसे परिषेक करादेना चाहिये। फिर पांच या सात रात्रिपर्यन्त इसी नियमको पालन करे और फिर क्रमसे इसको पुष्ट करताजाय। यह प्रसूताके स्वास्थ्य अर्थात् तन्दुरुस्त अवस्थाके क्रमका वर्णन किया है ॥ १०२ ॥

प्रसूताका रोगावस्थामें उपाय ।

तस्यास्तुखलुयोऽव्याधिरुत्पद्यतेसकृच्छ्रसाध्योभवत्यसाध्योवा । गर्भवृद्धिक्षयितशिथिलसर्वशरीरधातुत्वात्प्रवाहणवेदनाक्लेदनरक्तनिःसृतिविशेषशून्यशरीरत्वाच्चतस्मात्तांयथोक्तेनविधिनोपचरेद्भौतिकजीवनीयबृंहणीयमधुरवातहरासिद्धैरभ्यङ्गोत्सादनपरिषेकावगाहनान्नपानविधिभिर्विशेषतश्चोपचरेद्विशेषतोहिशून्यशरीराःस्त्रियःप्रजाताभवन्ति ॥ १०३ ॥

यदि प्रसूता स्त्रीको किसीप्रकारकी व्याधि उत्पन्न होजाय तो वह व्याधि कष्टसाध्य अथवा असाध्य होजातीहै । क्योंकि उससमय गर्भके बढनेके कारण स्त्रीका शरीर और संपूर्ण धातुएँ क्षीण और शिथिल होतीहैं और प्रसवके समय प्रसूतकी पीडा और शरीरसे क्लेद और रक्तके निकलजानेसे शरीर और भी विशेषरूपसे शून्य होजाताहै । इसलिये सावधान होकर प्रसूतके समय पूर्वोक्त विधिका पालन करे । और विशेषकर भूतनाशकगण, जीवनीयगण, बृंहणीयगण और वातनाशक द्रव्योंसे सिद्धकिये तैलकी मालिश, उत्सादन, परिषेचन अवगाहन और अन्नपानोंका उपयोग करे।क्योंकि प्रसव होनेसे स्त्रियोंका शरीर विशेषरूपसे शून्य(खाली) होता है ॥ १०३ ॥

बालक होनेपर दशमादिनकी विधि ।

दशम्यांनिश्यतीतायांसपुत्रास्त्रीसर्वगन्धौषधैर्गौरसर्षपलोध्रैश्चस्नातालघ्वहतवस्त्रंपरिधायपवित्रेष्टलघुविचित्रभूषणवतीसंस्पृश्यमङ्गलान्युचितामर्चयित्वाचदेवतांशिखिनःशुक्लवाससोऽव्यङ्गाश्चब्राह्मणान्स्वस्तिवाचयित्वाकुमारमहतेनशुचिवाससाच्छादयेत् । प्राक्शिरसमुदक्शिरसंवासंवेश्यदेवतापूर्वंद्विजातिभ्यःप्रणमतीत्युक्त्वाकुमारस्यपिताद्वेनामनीकारयेत्नाक्षत्रिकंनामाभिप्रायिकञ्च।तत्राभिप्रायिकंनामघोषवदाद्यन्तस्थान्तमूष्मान्तञ्चवृद्धंत्रिपुरुषान्तरमनवप्रतिष्ठितम् । नाक्षत्रिकन्तुनक्षत्रदेवतासंयुक्तंकृतंद्व्यक्षरंचतुरक्षरंवा ॥ १०४ ॥

दशरात्रि व्यतीत होनेके अनन्तर ग्यारहवें दिन प्रसूता स्त्री और उस बालकका

सर्वौषधी तथा सर्वगंध, सफेद सरसों और पठानी लोध इनसबका कल्क शरीरमें लगा फिर उष्णजलसे स्नान करावे। तदनंतर स्वच्छ,हलके और नये वस्त्रोंको धारण करके मंगलद्रव्योंका स्पर्श करावे। और इष्टदेवताओंका पूजन करावे। फिर शिखासूत्र धारणकियें श्वेत वस्त्रोंवाले सर्वांगसंपन्न योग्य ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन करावे तथा उस बालकको निर्मल कोमल नवीन सफेद वस्त्र धारण करावे। फिर उस बालकको पूर्व अथवा उत्तरकी ओर मुख कर लेटादेवे। फिर उस बालकका पिता प्रथम देवता और ब्राह्मणोंको प्रणाम करके उस लडकेके नक्षत्रसंबंधी और अपना इच्छित दो नाम रक्खे। उनमें बोलनेका अर्थात् अपनी इच्छानुसार जो नाम रक्खा जाय उस नामके आदि और अन्तमें क्रमसे घोषवान् और अन्तस्थ अक्षर होने चाहिये। अथवा अन्तमें ऊष्मा अक्षर होना चाहिये। पुत्रका नाम रखते समय अपने पिता पितामह आदि तीन पीढीके नाम बचाकर और अपने गुरु आदिका नाम बचा और कोई नाम रखना चाहिये। वह नाम भी वर्तमान समयका कल्पना किया न होना चाहिये किन्तु पुराने समयके देवता या ऋषियोंकासा नाम होना चाहिये। तथा नाक्षत्रिक अर्थात् जन्म नक्षत्रके चरणगत अक्षरसे जो नाम रक्खाजाय वह दो अक्षरोंवाला अथवा चार अक्षरोंवाला होना चाहिये ॥ १०४ ॥

कृतेचनामकर्मणिकुमारंपरीक्षितुमुपक्रामेदायुषःप्रमाणज्ञानहेतोः। तत्रेमानिआयुष्मतांकुमाराणांलक्षणानिभवन्ति। तद्यथा—एकैकजामृदवोऽल्पाःस्निग्धाःसुबद्धमूलाःकृष्णाःकेशाःप्रशस्यंते। स्थिरा बहलात्वक्प्रत्याकृतिसुसम्पन्नमीषत्प्रमाणातिरिक्तमनुरूपमातपत्रोपमंशिरःप्रशस्यते। व्यूढंदृढंसमंसुश्लिष्टशंखसन्ध्यूर्द्ध्वव्यञ्जनमुपचितंवलिनमर्द्धचन्द्राकृतिललाटंबहलौविपुलसमपीठौसमौनीचौवृद्धौपृष्ठतोऽवनतौसुश्लिष्टकर्णपुटकौमहाच्छिद्रौकर्णौईषत्प्रलम्बिन्यावसङ्गतेसमेसंहतेमहत्यौभ्रुवौ। समेसमाहितदर्शनेव्यक्तभागविभागेबलवतितेजसोपपन्नेस्वाङ्गोपाङ्गेचक्षुषी। ऋज्वीमहोच्छ्वासावंशसम्पन्नेषदवनताग्रानासिकामहदृजुसुनिविष्टदन्तमास्यमायामविस्तरोपपन्नाश्लक्ष्णातन्वी प्रकृतियुक्तापाटलवर्णाजिह्वा। श्लक्ष्णंयुक्तोपचयमूष्मोपपन्नंरक्तंतालुमहानदीनःस्निग्धोऽ-

नुनादीगम्भीरसमुत्थोधीरःस्वरः।नातिस्थूलौनातिकृशौविस्तारो-
पपन्नावास्यप्रच्छादनौरक्तावोष्ठौ।महत्यौहनूवृत्तौनातिमहतीग्री-
वाव्यूढमुपचितमुरोदृढंजत्रुपृष्ठवंशश्च।विकृष्टान्तरौस्तनौअंसपा-
तिनीस्थिरेपार्श्वेवृत्तपरिपूर्णायतौबाहूसक्थिनीअंगुलयश्चमहदुप-
चितंपाणिपादम् । स्थिरावृत्ताः स्निग्धास्ताम्रास्तुङ्गाःकूर्माकाराः
करजाः । प्रदक्षिणावर्त्तासोत्सङ्गाचनाभिः । नाभ्युरस्त्रिभागहीना
समासमुपचितमांसाकटीवृत्तौस्थिरोपचितमांसौनात्युन्नतौनात्य-
वनतौस्फिचावनुपूर्ववृत्तौउपचययुक्तावूरू। नात्युपचितेनात्यपचि-
तेएणीपदेप्रगूढशिरास्थिसन्धीज ेनात्युपचितौनात्यपचितौगु-
ल्फौपूर्वोपदिष्टगुणौपादौकूर्माकारौ । प्रकृतियुक्तानिवातमूत्रपुरीष-
गुह्यानितथास्वप्नजागरणायासास्मितरुदितस्तनग्रहणानि।यच्चकिं-
चिदन्यदपिअनुक्तमस्तितदपिसर्वंप्रकृतिसम्पन्नमिष्टंविपरीतंपुन-
रनिष्टमितिदीर्घायुर्लक्षणानि ॥ १०५ ॥

नामकरण करनेके अनन्तर उस बालककी आयुका प्रमाण जाननेके लिये उसकी परीक्षा करे। उनमें दीर्घजीवी अर्थात् दीर्घायु होनेवाले बालकोंके यह लक्षण होते हैं। जैसे सिरके बाल अलग २ नरम, चिकने, थोडे,काले और दृढ,बद्धमूल,अच्छे होतेहैं ।त्वचा स्थिर और पुष्ट उत्तम होतीहै । शिर स्वभावसेही सुन्दर आकारका प्रमाणसे किंचित् बडा, सुन्दर, लक्षणोंवाला, अनुरूप, तथा छत्रके समान उत्तम होताहै। ललाट विशाल, दृढ, सुडौल, सुन्दर, उत्तम कनपटियोंकी संधियुक्त, कुछ ऊंचा और कुछ ढलाहुआसा उत्तम आकारवाला उपचित, वलियुक्त और अर्धचन्द्रके समान आकारवाला होना श्रेष्ठ होताहै।दोनों कान पुष्ट,कानोंके पीछेका भाग विपुल और सुडौल तथा दोनों कान ऊंचे नीचे समान और पीछेको नवेहुए-से दोनों कर्णपुट सुश्लिष्ट तथा कानोंके छिद्र अर्थात् कोकरू बडे होना श्रेष्ठ मानेजातेहैं। भौंहें लंबी परस्पर मिलीहुईं एकसी घनकी और बडी२ होना उत्तम होताहै। दोनों नेत्र एकसे देखनेवाले सुडौल, अलग २ सीधे, तेजयुक्त, पलक आदि सुन्दर उपांगयुक्त उत्तम होते हैं । नाक, सुडौल, लम्बी श्वासयुक्त, लम्बे बांसवाली,कुछ कुछ आगेको झुकीहुई उत्तम होती है । मुख बडा सुडौल, सुन्दर जिसके दोनों ओर सुन्दरतायुक्त हों तथा दंतपंक्ति सुन्दरतायुक्त हो वह मुख उत्तम होताहै।जिह्वा

लम्बी, चिकनी, पतली, सुडौल, गुलाबी रंगकी और अपने गुणोंसे संपन्न उत्तम होतीहै । तालु मसृण, पुष्ट, ऊंचा, तथा, लालवर्णका उत्तम होताहै । स्वर बडा, दीनता रहित, चिकना, प्रतिध्वनियुक्त, गंभीर तथा धीर उत्तम होता है । होठ न बहुत मोठे न अधिक पतले, विस्तारयुक्त, मुखको ढकेहुए और लालवर्णके उत्तम होतेहैं । ठोडी गोल अधिक लम्बी न होना उत्तम होता है। गर्दन दृढ और थोडी लम्बी उत्तम होती है।दोनों कंधे, व्यूढ और दृढ तथा ऊंचे उत्तम होते हैं । हंसुली दृढ और छातीमें मिली हुई उत्तम होती है । पीठका बांस मांसमें छिपाहुआ उत्तम होता है । स्तनोंके बीचका भाग फैलाहुआ चौडा अच्छा होता है । दोनों पार्श्व दोनों कंधोंकी ओर ढलेहुए और दृढ उत्तम होते हैं । दोनों बाहु, नितम्ब और अंगुलियें लम्बी, गोल, परिपूर्ण और दृढ होना उत्तम है। हाथ और पांव-पुष्ट, दृढ, और लम्बे उत्तम होते हैं । नख चिकने, ताम्रवर्ण, ऊंचे कछुएकी पीठके समान, सुडौल उत्तम होते हैं । नाभि-दक्षिणावर्त्त और बीचमेंसे गहरी किनारेसे ऊंची उत्तम होती है।नाभि और उरस्थलके बीचमें चौथा भाग प्रमाणसे सुडौल और पुष्ट कमर उत्तम होतीहै।दोनों नितम्ब गोल,दृढ मांससे पुष्ट न अति ऊंचे और न अधिक नीचे उत्तम होते हैं, दोनों ऊरुस्थल गोल, पुष्ट और मोटे उत्तम होते हैं। दोनों जानु गोल और पुष्ट उत्तम होती हैं दोनों जांघ-हिरणीके पैरके समान और पुष्ट छिपीहुई हड्डियोंवाली जिनमें कोई नाडी दिखाई न देतीहो और उनकी संधियें भी छिपीहों ऐसी उत्तम होती हैं।दोनों गुल्फ न बहु पुष्ट और न अधिक कृश उत्तम होते हैं । दोनों पांव पूर्वोक्त लक्षणवाले कछुएकी पीठके समान सुडौल उत्तम होतेहैं इनके सिवाय वायु, मूत्र, मल, गुह्यावयव, निद्रा, जागरण आदि अन्य व्यवहार तथा हास्य और रोदन तथा स्तनोंका पीना स्वाभाविक ठीक होने उत्तम होतेहैं । यह लक्षण दीर्घायु कुमारके होते हैं इससे विपरीत लक्षण अल्पायु बालकोंके होते हैं । इसप्रकार दीर्घजीवी बालकोंके लक्षण कथन कियेगये ॥ १०५ ॥

धात्रीपरीक्षा ।

अतोधात्रीपरीक्षामुपदेक्ष्यामः ॥ १०६ ॥

अब धात्रिकी परीक्षाका वर्णन करते हैं ॥ १०६ ॥

अथब्रूयाद्धात्रीमानयेतिसमानवर्णांयौवनस्थांनिभृतामनातुराम-व्यङ्गामव्यसनामविरूपामजुगुप्सितांदेशजातीयामक्षुद्रामक्षुद्रक-र्मिणींकुलेजातांवत्सलामरोगजीवद्वत्सांपुंवत्सांदोग्ध्रीमप्रमत्ता-मशायिनीमनुच्चारशायिनीमनन्तावशायिनींकुशलोपचारांशु-चिमशुचिद्वेषिणींस्तन्यसम्पदुपेतामिति ॥ १०७ ॥

इसके अनन्तर एक मनुष्यको कहे कि धात्री(धाय)को लावो । वह धात्री अपने समान वर्णकी हो,युवा हो, अयोग्य न हो, रोगरहित हो, सर्वांगसंपन्न हो, कुरूप और कुचरित्र न हो,निंदनीय न हो, अपने देशकी हो, नीच न हो, उत्तम स्वभाव व कर्मवाली हो,अच्छे कुलकी हो,बालकको प्यार करनेवाली हो,जिसको अपने बच्चे जीते हों अर्थात् मृतवत्सा न हो और लडकेवाली हो, जिसके स्तनोंमें बहुतसा दूध हो, असावधान न हो, बहुत सोनेवाली न हो तथा विना कहे कहीं एकान्तमें सोनेवाली न हो, जातिसे पतित न हो, चतुर उपचार करनेवाली हो, पवित्र हो,अपवित्रतासे द्वेष रखतीहो, जिसका दूध उत्तम हो ऐसे गुणोंवाली धात्री उत्तम होतीहै ॥ १०७ ॥

उत्तम स्तनके लक्षण ।

नत्रेयंस्तनसम्पन्नात्यूर्ध्वौनातिलम्बौअनातिकृशौअनतिपीनौयुक्तपिप्पलकौसुखप्रपानौचेतिस्तनसम्पत् ॥ १०८ ॥

स्तनोंके यह लक्षण उत्तम होतेहैं।अर्थात् धायके स्तन ऐसे होने चाहिये ।अधिक ऊँचे, अधिक लम्बे, अधिक कृश और अधिक मोटे न हों । अनुरूप लक्षणवाले खूबसूरत पीपलके पत्तेके समान पीछेसे चौडे और आगेसे नोंकीले जिनमेंसे बालक सुखपूर्वक दूध पी सके ऐसे उत्तम होतेहैं ॥ १०८ ॥

उत्तमदूधके लक्षण ।

स्तन्यसम्पत्तुप्रकृतिवर्णगन्धरसस्पर्शमुदपात्रेचदुह्यमानंदुग्धमुदकं वेतिप्रकृतिभतत्वात्तत्पुष्टिकरमारोग्यकरश्चेतिस्तन्यसम्पदतोऽन्यथाव्यापन्नंज्ञेयम् ॥ १०९ ॥

अब दूधके लक्षणोंका वर्णन करतेहैं । स्तनोंका दूध वर्ण, गंध, रस और स्पर्शमें स्वाभाविक गुणोंवाला होना चाहिये । स्वाभाविक गुणके ये लक्षण हैं कि जो दूध जलके पात्रमें डालनेसे जलके साथही मिलजाय वही दूध पुष्टिकारक, आरोग्य रखनेवाला तथा उत्तम होताहै । इन लक्षणोंसे विपरीत लक्षणोंवाला दूध दूषित जानना ॥ १०९ ॥

वातदूषित दूध ।

तस्याविशेषाःश्यावारुणवर्णंकषायानुरसंविशदमनातिलक्ष्यगन्धं रूक्षंद्रवंफेनिलंलघुअतृप्तिकरंकर्षणंवातविकाराणांकर्तृवातोपसृष्टंक्षीरमभिज्ञेयम् ॥ ११० ॥

दूषित दूधके ये लक्षण हैं। जो दूध काले या लालवर्णका हो कसैले रसयुक्त हो जिसमेंसे कुछ २ गंध आतीहो, जो अत्यंत रूखा हो, चंचल तथा झागयुक्त हो, जिसके पीनेसे तृप्ति न होतीहो, बहुत हलका हो, जिसके पीनेसे बालक कृश होजाय तथा वायुके विकारोंको उत्पन्न करताहो वह वातदूषित दूध जानना ॥ ११० ॥

पित्तदूषित दूध।

कृष्णनीलपीतताम्रावभासंतिक्ताम्लकटुकानुरसंकुणपरुधिरगंधि भृशोष्णंपित्तविकाराणांकर्तृपित्तोपसृष्टंक्षीरमभिज्ञेयम् ॥ १११ ॥

जो दूध कृष्ण तथा नीलवर्णका अथवा पीले या तांबेके वर्णका हो और उस दूधका कडुआ, खट्टा, अथवा चरपरा अनुरस हो, मुर्देकीसी गंध आतीहो, अथवा रुधिरकीसी गंध हो और अत्यंत गरम हो एवम् पित्तके रोगोंको उत्पन्न करनेवाला हो उसको पित्तदूषित जानना ॥ १११ ॥

कफदूषित दूध।

अत्यर्थंशुक्लमतिमाधुर्य्योपपन्नंलवणानुरसंघृततैलवसामज्जगंधि पिच्छिलंतन्तुमदुदकपात्रेऽवसीदातिश्लेष्मविकाराणांकर्तृश्ले-ष्मोपसृष्टंक्षीरमभिज्ञेयम् ॥ ११२ ॥

जो दूध अत्यन्त श्वेतवर्ण हो, अधिक मीठा हो, लवण अनुरसयुक्त हो, घृत, तैल, वसा, मज्जाकीसी गंधवाला हो, गाढा हो, तारयुक्त हो, जलमें डालनेसे डूब जाताहो एवम् कफरोगोंको उत्पन्न करनेवाला हो उसको कफदूषित जानना ॥ ११२ ॥

तेषान्तुत्रयाणामपिक्षीरदोषाणांप्रकृतिविशेषमभिसमीक्ष्यय-थास्वं यथादोषञ्चवमनविरेचनास्थापनानुवासनानिविभज्य कृतानिप्रशमनायभवन्ति ॥ ११३ ॥

उन तीनों प्रकारके दूषित दूधोंको शुद्ध करनेके लिये धायको वमन, विरेचन और आस्थापन तथा अनुवासन कर्म यथायोग्य रीतिपर दोषानुसार विभागपूर्वक करना चाहिये ॥ ११३ ॥

धात्रीके खानेपीनेकी विधि।

पानाशनविधिस्तुदुष्टक्षीरायायवगोधूमशालिषष्टिकमुद्गहरेणुककु-लत्थसुरासौवीरकतुषोदकमैरेयमेदकलशुनकरञ्जप्रायःस्यात् ॥ ११४ ॥

उस दूषित दूधवाली धायको खानेपीनेके लिये प्रायः यव, गेहूं, उत्तम शालिचा-वल, साठीचावल, मूंग, हरेणु, कुलथी, सुरा, सावीरै, मैरेय, तुषोदक, मेदक, लहसुन और करंज आदि द्रव्योंको देना चाहिये ॥ ११४ ॥

क्षीरदोषविशेषांश्चावेक्ष्यावेक्ष्यतत्तद्विधानंकार्य्यंस्यात् ॥११५॥

क्षीर (दूध) के दोषोंको विशेषरूपसे विचारकर और उनमें वातादि दोषोंकी पृथक् २ परीक्षा कर चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ११५ ॥

दुग्धशोधक उपाय ।

पाठामहौषध- सुरदारु-मुस्तमूर्वागुडूची--वत्सकफल-किराततिक्तकटुरोहिणीशारिवाकषायाणाञ्चपानंप्रशस्यते । तथान्येषांतिक्तकषायकटुमधुराणांद्रव्याणांप्रयोगः । इतिक्षीरशोधनान्युक्तानिभवन्ति । क्षीरविकारविशेषानभिसमीक्ष्यमात्राकालञ्चेति क्षीरविशोधनानि ॥ ११६ ॥

धात्रीके दूधको शुद्ध करनेके लिये पाठा,सोंठ,देवदारु,नागरमोथा,मूर्वा,गिलोय, इन्द्रयव, चिरायता, कुटकी और सारिवाका क्वाथ बना पिलाना चाहिये । तथा दोषोंके अनुसार विचारपूर्वक कडुवे, कसैले, चरपरे तथा मधुर द्रव्योंका प्रयोग करना चाहिये । इसप्रकार क्षीरके शोधनेके उपाय कहेगये। और क्षीरके विकारोंको पृथक् पृथक् विचार कर मात्रा तथा कालका ध्यान रखकर उचित रीतिसे उचित द्रव्योंद्वारा शोधन करना चाहिये यह दूधशोधनकी विधि कहीगई ॥ ११६ ॥

दुग्धोत्पादकविधि ।

क्षीरजननानितुमद्यानिसीधुवर्ज्यानिग्राम्यानूपौदकानिचशाकधान्यमांसानिद्रवमधुराम्लभूयिष्ठाश्चाहाराःक्षीरिण्यश्चौषधयः क्षीरपानञ्चानायासश्चेतिवीरणषष्टिशालिकेक्षुबालिकादर्भकुशकाशगुन्द्रोत्कटमूलकषायाणाञ्चपानमितिक्षीरजननान्युक्तानि ॥ ११७ ॥

स्तन्य अर्थात् स्तनोंमें दूध बढानेवाले यह द्रव्य हैं । जैसे शीधुमद्यके सिवाय अन्य सब प्रकारके मद्य,ग्राम्य और अनूप तथा जलमें होनेवाले शाक धान्य और मांस, पतले पदार्थ,मधुरऔर खटमीठे द्रव्य,गुलड आदि क्षीरीगण,दूधका पीना, परिश्रम न करना,वीरणतृण,साठीचावल,इक्षुबालिका दर्भ,कुशा,काश,गुन्द्रपटेर और उत्कट इन सबकी जडोंका क्वाथ बना मिसरी मिला पीना स्तनोंमें दूधको बढाताहै ॥ ११७ ॥

शुद्धदूधवालीका कर्त्तव्य कर्म ।

धात्रीतुयदास्वादुबहुलशुद्धदुग्धास्यात्तदास्नातानुलिप्ताशुक्लवस्त्रंपरिधायैन्द्रींब्राह्मींशतवीर्य्यांसहस्रवीर्य्याममोघामव्यथांशिवामरि-

ष्टांवाठयपुष्पींविष्वक्सेनकान्तामितिबिभ्रत्यौषधीःकुमारंप्राङ्मु-खंप्रथमंदक्षिणंस्तनंपाययेदितिधात्रीकर्म ॥ ११८ ॥

जब देखे कि धायका दूध स्वादिष्ठ, बहुत और शुद्ध होगयाहै तब इस धायको स्नान कराकर चन्दनादिसे सुशोभित करा स्वच्छ निर्मल वस्त्र पहिना इन्द्रायण, ब्राह्मी, सफेद और हरी दूब, पाढ, हरड, आमले, नीम, बला, प्रियंगु, रेंडुका, इन सब औषधियोंको एक धागेमें मालाके समान बांध गलेमें धारण करे फिर पूर्वकी ओर मुखकर बालकको पहिले दाहिना स्तन पान करावे ॥ ११८ ॥

कुमारागारविधि ।

अतोऽनन्तरंकुमारागारविधिमनुव्याख्यास्यामः।वास्तुविद्याकुश-लः प्रशस्तरम्यमतमस्कंनिवातंप्रवातैकदेशंदृढमपगतश्वापदप-शुदंष्ट्रिमूषिकपतंगंसुसंविभक्तसलिलोलूखलमूत्रवर्चःस्थानस्नान-भूमिमहानसमृतुसुखंयथर्तुशयनास्तरणसम्पन्नंकुर्यात्।तथासु-विहितरक्षाविधानबलिमङ्गलहोमप्रायश्चित्तंशुचिवृद्धवैद्यानुरक्त-जनसम्पूर्णमिति कुमारागारविधिः ॥ ११९ ॥

इसके उपरान्त अब बालकके रहनेका स्थान बनानेकी विधिका कथन करतेहैं। उत्तम वास्तुविद्याको जाननेवाला चतुर पुरुष उत्तम इधर उधर फिरने योग्य अंधकार रहित, जिसस्थानमें अधिक वायु न आतीहो तथा एक ओर सुन्दर पवन आती भी हो ऐसा दृढ अर्थात् पक्का मकान बनावे । जिस मकानमें कुत्ते, काटनेवाले पशु, अन्य दांतोंवाले जानवर तथा हिंसक जीव, मच्छर, मूषक, पतंग आदि न आसकें और उस घरमें विधिपूर्वक यथास्थान जल, ऊखल मलमूत्र त्यागनका स्थान, स्नान करनेका स्थान भोजन बनानेका स्थान यथाऋतु शयन करने और बैठनेके लिये तथा बिछाने और ओढनेके लिये सुखदायी वस्त्र एवं इस घरमें संपूर्ण रक्षाके विधान, बलिदान, मंगल कर्म, होम और प्रायश्चित्तकी सामग्री तथा पवित्र, वृद्धवैद्य और बालकसे प्रीति रखनेवाले मनुष्य रहने चाहिये। इस प्रकार कुमारागारकी विधि वर्णन कीगई ॥ ११९ ॥

शयनास्तरणप्रावरणानिकुमारस्यमृदुलघुशुचिसुगन्धीनिस्युःस्वेद-मलजन्तुमन्तिमूत्रपुरीषोपसृष्टानिचवर्ज्यानिस्युः ॥ १२० ॥

बालकके सोनेकी शय्या और बिछानेके वस्त्र और ओढनेके वस्त्र हलके, सुन्दर,

नरम, पवित्र और सुगंधित होने चाहिये। उनमें पसीना, मल, मूत्र, जीव, विष्ठा आदि किसीसमय भी न रहना चाहिये ॥ १२० ॥

असतिसम्भवेऽन्येषां तान्येवचसुप्रक्षालितोपधानानिसुधूपितानि सुशुद्धशुष्काण्युपयोगंगच्छेयुः ॥ १२१ ॥

यदि बारबार नय और स्वच्छ वस्त्र प्राप्त न करसकें तो उन्हीं वस्त्रोंको उत्तम रीतिसे धोकर स्वच्छ करे और अच्छीतरह सुखा शुद्ध सूखे होनेपर सुगंधित धूप आदि दे उन्हींका वर्ताव करे। अर्थात् पहिले बदल दिया करे और दूसरे धुलेहुओंको उपयोग किया करे ॥ १२१ ॥

वस्त्रोंमें धूप देनेवाली औषधी ।

धूपनानिपुनर्वाससांशयनास्तरणप्रावरणानाञ्चयवसर्षपातसीहिंगु-गुग्गुलु-वचाचोरकवय-स्थागोलोमीजटिला-पलङ्कषाशोक-रोहिणीसर्पनिर्मोकाणिघृतसपृक्तानिस्युः ॥ १२२ ॥

धूपनद्रव्य अर्थात् बालकोंके वस्त्रोंको धुनी देनेके यह द्रव्य हैं। जैसे यव, सरसों, अलसी, हींग, गूगल, वच, गठिविन, हरड, बालछड, जटामांसी, लाख, अशोक, कुटकी और सांपकी कांचुली इनसबके बारीक चूर्णको घृतमें मिला बालकके वस्त्र, शय्या आदि सबको धुनी देनीचाहिये ॥ १२२ ॥

कुमारकी अन्यरक्षा विधि ।

मणयश्चधारणीयाः कुमारस्यखड्गरुरुगवयवृषभाणांजीवतामेवदक्षिणेभ्योविषाणेभ्योऽग्राणिगृहीतानिस्युः। मन्त्राद्याश्चौषधयोजीवकर्षभकौचयान्यपिअन्यानिब्राह्मणाःप्रशंसेयुः ॥ १२३ ॥

इस बालकको मणि धारण कराना चाहिये। और गैंडा, रुरु, गज, अथवा रोझ या वृषभ इन जीतेहुओंमेंसे किसीका दहिनी सींगका अग्रभाग या इनसबकेही दहिनी सींगका अग्रभाग और मंत्रादिकोंसे अभिमंत्रित औषधियें, जीवक, ऋषभक, अन्य वच, सीप आदि जिन द्रव्योंको ब्राह्मण अच्छा कहतेहों वह सब इस बालकको धारण कराना चाहिये ॥ १२३ ॥

बालकके खिलौने ।

क्रीडनकानिखल्वस्यतुविचित्राणिघोषवन्त्यभिरामाणिअगुरूण्यतीक्ष्णाग्राणिअनास्यप्रवेशीनिअप्राणहराणिअवित्रासनानिस्युः १२४॥

इस बालकके खेलनेके लिये चित्र विचित्र शब्द करनेवाले अर्थात् बजनेवाले

सुन्दर खिलौने रखने चाहिये। वह खिलौने हलके, जिनके हाथ पावोंपर गिरजानेसे चोट न लगे तथा आगेसे पैनें न हों एवं मुखमें न चुभजांय, ऐसे तीक्ष्ण न हों जो बालकके प्राणोंको लेलें या कष्ट देवें। इसप्रकारके हलके खिलौने होने चाहिये १२४

नहिअस्यवित्रासनंसाधुतस्मात्तस्मिन्रुदत्यभुञ्जानेवाअन्यत्रविधेयतामगच्छतिराक्षसपिशाचपूतनाद्यानांनामान्याह्वयताकुमारस्य वित्रासनार्थंनामग्रहणंनकार्य्यंस्यात् ॥ १२५ ॥

बालकको कभी भी डराना नहीं चाहिये। यदि बालक रोता हो और खाता न हो वा अन्य उपद्रव करताहो तौभी उसको भयभीत नहीं करना चाहिये और उसको डरानेके लिये किसी राक्षस, पिशाच, पूतना आदिका नामतक नहीं लेना चाहिये। तथा उस बालकको डरानेके लिये वह देख! भूत आया इत्यादि शब्द कभी भी नहीं कहना चाहिये ॥ १२५ ॥

कुमारके रोगोंका उपचार।

यदितुआतुर्य्यंकिञ्चित्कुमारमागच्छेत्तत्प्रकृतिनिमित्तपूर्वरूपलिङ्गोपशयविशेषैस्तत्त्वतोनुबुध्यसर्वविशेषानातुरौषधदेशकालात्मान-वेक्षमाणश्चिकित्सितुमारभेतैनंमधुरमृदुलघुसुरभिशीतसङ्करंकर्म्म प्रवर्त्तयेन्नेवंसात्म्याहिकुमाराभवन्तितथातेशर्मलभन्तेआचिराय रोगेतुअरोगवृत्तमातिष्ठेद्देशकालात्मगुणविपर्य्ययेणवर्त्तमानः १२६॥

यदि बालकको किसीप्रकारकी व्याधि उत्पन्न होजाय तो उस रोगकी प्रकृति, निमित्त, पूर्वरूप, रूप; उपशयके भेदसे रोगके तत्त्वको निश्चय करके फिर रोगी औषधी, देश, काल और आश्रय इनको विशेषरूपसे विचारकर मधुर, नरम, लघु, सुगंधित, तथा शीतल द्रव्ययुक्त कर विधिपूर्वक चिकित्सा करे। इसप्रकारकी चिकित्सा करना बालकोंको सात्म्य होतीहै। और इसप्रकारकी चिकित्सासे बालकको शीघ्र आराम होजाताहै। जब बालकको व्याधी हो तो देश, काल और शारीरिक स्वभाव देखकर उनसे विपरीत गुण करनेवाली जैसे शीतकालमें उष्ण, उष्णमें शीतलक्रिया व्याधिको शीघ्र नाश करनेके लिये युक्तिपूर्वक करना चाहिये ॥ १२६ ॥

क्रमेणासात्म्यानिपरिवर्त्त्योपयुञ्जानःसर्वाणिअहितानिवर्जयेत्तथा बलवर्णशरीरायुषांसम्पदमवाप्नोतीति ॥ १२७ ॥

असात्म्यद्रव्य तथा अहितकर्त्ता सबपदार्थोंका बालकसे क्रमपूर्वक त्याग करादेना चाहिये।ऐसा करनेसे बालकके बल, वर्ण, शरीर और आयुकी वृद्धि होतीहै॥ १२७॥

एवमेनंकुमारमायौवनप्राप्तेर्धर्मार्थकुशलागमनाच्चानुपालयेदिति पुत्राशिषांसमृद्धिकरंकर्मव्याख्यातम्।तदाचरन्यथोक्तैर्विधिभिः पूजांयथेष्टंलभतेऽनसूयकइति ॥ १२८ ॥

जबतक यह बालक युवा न होजाय तबतक इस बालकको धर्म और अर्थकी योग्यता प्राप्त करनेके लिये इस विधिसे पालन करना चाहिये।बालकके हित और शुभकी इच्छाके लिये तथा समृद्धिके करनेवाले यह कर्म कहेगयेहैं । जो मनुष्य निन्दा द्वेष आदिको त्यागकर इस कथन कीहुई विधिका पालन करतेहैं वह अपनी इच्छानुरूप प्रतिष्ठाको प्राप्त होतेहैं ॥ १२८ ॥

अध्यायका उपसंहार ।

पुत्राशिषांकर्मसमृद्धिकारकंयदुक्तमेतन्महदर्थसंहितम्।तदाचरञ्ज्ञो विधिभिर्यथातथंपूजांयथेष्टंलभतेऽनसूयकः ॥१२९॥ शरीरचिन्त्यतेसर्वंदैवमानुषसम्पदा।सर्वभावैर्यतस्तस्माच्छारीरंस्थानमुच्यते ॥ १३० ॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदसंहितायां शारीरस्थानं समाप्तम्॥

अब अध्यायके उपसंहारमें दो श्लोक हैं कि पुत्रके हितके लिये और पुत्रकी समृद्धिके करनेवाला जो यह महान् अर्थका संग्रह कथन कियाहै इस विधिको ईर्षा, द्वेष तथा निन्दारहित ज्ञानी वैद्यके करनेसे अपनी इच्छानुरूप प्रतिष्ठाको प्राप्त होताहै । शरीरको लक्ष्य रखकर दैवी और मानुषी संपत्तिका संपूर्णभावोंसे इस स्थानमेंही सबप्रकारसे चिन्तन कियागयाहै इसलिये इस स्थानको शारीरस्थान कहतेहैं ॥ १२९ ॥ १३० ॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदीयसंहितायां शारीरस्थाने टकसालनिवासिपं०रामप्रसाद-वैद्योपाध्यायविरचितभाषाटीकायां जातिसूत्रीयशारीरं नामाऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

शारीरिक निर्देशसों, मनुज सृष्टि विज्ञान ॥
संख्या नाडी मर्मयुत, यथा शरीर विधान ॥ १ ॥
आत्मजगत् अध्यात्म यह, द्विविध विश्व सामान ॥
साधन मोक्ष शरीर सब, कथन कियो भगवान् ॥ २ ॥
चरकरचित शुभतंत्रमें, भयो चतुर्थस्थान ॥
सो प्रसादनीयुत कियो, रामप्रसाद सुजान ॥ ३ ॥

॥ समाप्तमिदं शारीरस्थानम् ॥

इन्द्रियस्थानम्।

प्रथमोऽध्यायः।

अथातोवर्णस्वरीयमिन्द्रियंव्याख्यास्याम इतिहस्माहभगवानात्रेयः॥

अब हम वर्णस्वरीय इन्द्रियकी व्याख्या करते हैं इसप्रकार भगवान् आत्रेयजी कथन करनेलगे। शारीरस्थानमें चिकित्साका अधिकरण शारीर कथन कर अब चिकित्सास्थानसे पहिले रोगीकी साध्यासाध्य अवस्थाका वर्णन करतेहैं। क्योंकि असाध्यरोगकी चिकित्सा करनेसे यशादिकी हानि होकर क्रिया निष्फल होती है इसलिये पहले साध्यासाध्य विज्ञानके लिये इन्द्रियस्थानका वर्णन करतेहैं।

आयुके प्रमाण जाननेकी रीति।

इहखलुवर्णश्चस्वरश्चगन्धश्चरसश्चस्पर्शश्चचक्षुश्चश्रोत्रञ्चघ्राणञ्चर॰

१ इन्द्रियस्थानप्रतिपाद्यं कृत्स्नं विषयमाह इह इन्द्रियस्थाने, 'खलु' शब्दो वाक्यालंकारे, इह यद्यपीन्द्रियाण्येव विषयवर्णादिग्राहकतया अग्रे वक्तुं युज्यते, तथापि तेषामतीन्द्रियत्वेन न तदाश्रयरिष्टानां व्यक्तत्वम्, तेन प्रव्यक्तानि वर्णादीन्येवेति प्रव्यक्तरिष्टाधिकरणान्यग्रेऽभिधीयन्ते, वर्णादिष्वपि च यथा व्यक्तत्वम् तथा पूर्वनिपातः, मेघादिशब्दस्तु यद्यपि वर्णादपि व्यक्तस्तथापि शब्दविशेष एवेह चात्मादिसम्भाद्यः 'स्वरशब्दाभिधेयो रिष्टाधिकरणत्वेनाभिमतः, स च वर्णापेक्षयाऽव्यक्त एव, इहेत्यादावसमासेन प्रत्येकमपि वर्णादीनां रिष्टाधिकरणत्वं दर्शयति, समासे हि समुदायस्य रिष्टाधिकरणकतया परीक्षितव्यत्वं शङ्केत, वर्णशब्देन च वर्णसहचारिताश्चक्षुर्ग्राह्या रौक्षादयोपि गृह्यन्ते, अतएव वर्णप्रस्ताव एव वक्ष्यति—यत्—'वर्णग्रहणेन ग्लानिहर्षरौक्षस्नेहा व्याख्याता' इति, स्वरादिग्रहणेन च स्वराद्यभावोऽपि गृह्यते, तेन अंगुलिकर्णशब्दाभावगन्धाभावादयो रिष्टान्यवरुध्यन्ते, स्पर्शग्रहणेन च स्पर्शोपलभ्यकाठिन्याद्यवरोधः, सत्त्वं मनः, सत्त्वविकृतेरुदाहरणम्—यथा,—"औत्सुक्यं भजते सत्त्वं चेतोभिराविशत्यपि" इत्यादि, भक्तिरिच्छा, शीलं सहजवृत्तम्, आचारः शास्त्रशिक्षाकृतो व्यवहारः; भक्त्यादयो यद्यपि सत्त्वविकारत्वेन सत्त्वग्रहणेनैव लभ्यन्ते, यदुक्तम्—"भक्तिः शीलं शौचं द्वेषः स्मृतिर्मोहस्त्यागो मात्सर्यं भयं क्रोधस्तन्द्रोत्साहस्तैक्ष्ण्यं मार्दवं गाम्भीर्यमनवस्थितत्वमित्येवमादयः सत्त्वविकाराः" इति तथापि भक्त्यादीनामपि पृथगरिष्टाधिकरणत्वेन इह पृथक्करणम्, निद्रादौर्बल्यात्तन्द्रेति "तन्द्रा" शब्देन निद्रोच्यते, अत्र च रिष्टमुक्तम्, यथा-"निद्रा नित्या भवति न वा" इति, आरम्भ इति आरिष्टव्याध्युत्पादारम्भः, यदुक्तम्,-"श्वयथुर्यस्य कुक्षिस्थो हस्तपादं तु धावति" इत्यादि, गौरवे रिष्टं यथा—"निष्ठ्यूतञ्च पुरीषञ्च रेतश्चाम्भसि मज्जति" इत्यादि, लाघवे रिष्टं—गुरूणामंगानां लाघवं ज्ञेयम्, गुणारिष्टम् यथा—"गुणाः शरीरदेशानां शीतोष्णमृदुदारुणाः। विपर्यासेन लक्ष्यन्ते स्थानेष्वन्येषु तद्विधाः" इति, आहारारिष्टं यथा—"आहारमुपयुञ्जानो भिषजा सूपकल्पितम्" इत्यादि, आहारपरिणामारिष्टं यथा—"दुर्बलो बहु भुङ्क्ते प्रागमुक्त्वान्नमातुरः। अल्पमूत्रपुरीषश्च" इति, उपाय उपगमनं व्याधिमेलक इत्यर्थः,—

सनश्चस्पर्शनश्चसत्त्वञ्चभक्तिश्चशौचञ्चशीलश्चाचारश्चस्मृतिश्चा-कृतिश्चबलश्चग्लानिश्चतन्द्राचारम्भश्चगौरवञ्चलाघवञ्चआहारश्च विहारश्चाहारपरिणामश्चोपायश्चापायश्चव्याधिश्चव्याधिपूर्वरूप-श्चवेदनाश्चोपद्रवाश्चछायाचप्रतिच्छायाचस्वप्नदर्शनश्चदूताधि-कारश्चपथिचौत्पातिकश्चातुरकुलेभावावस्थान्तराणिचभेषजसं-वृत्तिश्चभेषजविकारयुक्तिश्चेतिपरीक्ष्याणिप्रत्यक्षानुमानोपदेशै-रायुषःप्रमाणविशेषंजिज्ञासमानेनभिषजा ॥ १ ॥

वैद्यको रोगीके वर्ण, स्वर, गंध, स्पर्श, नेत्र, कान, नासिका, जि ा, त्वचा, सत्त्व, इच्छा शौच, शील, आचार, स्मृति, आकृति, बल, ग्लानि, तंद्रा, कर्म, शरीरकी गौरवता और लाघवता, आहार, विहार, आहारका परिणाम, रोगकी शान्तिका उपाय, अपाय, व्याधि, व्याधिके पूर्वरूप, वेदना, उपद्रव, छाया, प्रतिच्छाया, स्वप्न देखना, दूतकी योग्यता, रोगीको देखनेके लिये जातेहुए रास्तेमें औत्पादिक भाव, रोगीके घरवालोंकी अवस्था विशेष, तथा अन्य अवस्था, औषधीके गुण विशेष, औषधीके दोष, रोगमें किसप्रकारसे किस औषधका प्रयोग करना इन सबको

—यदुक्तम्—"सहसा ज्वरसन्तापस्तृष्णा मूर्च्छा बलक्षयः । विश्लेषणं च सन्धीनाम्" इति, व्याध्यपगमनमपायः यदुक्तम्—"यं नरं सहसा रोगो दुर्बलं परिमुञ्चति" इत्यादि, व्याधिश्चेति व्याधिरेव रिष्टं यथा "वाताष्ठीला सुसंवृत्ता दारुणा हृदि तिष्ठति" इति, छाया भौतिकी पञ्चरूपा, प्रतिच्छाया तु देहच्छायावत् नेत्रकुमारिकापि प्रतिच्छायारूपापि ग्रहीतव्या, अयं च छायादिभेदः पत्ररूपीयेन्द्रिये दर्शयितव्यः आतुरकुलेव भावावस्थारिष्टं यथा—"अग्निपूर्णानि पात्राणि भिन्नानि विशिखानि च । भिषङ्मुमूर्षतां वेश्म प्रविशन्नेव पश्यति" इत्यादि, भेषजसंवृत्तौ रिष्टं यथा—"यमुद्दिश्यातुरं वैद्यः सम्वर्तयितुमौषधम् । यतमानो न शक्नोति दुर्लभं तस्य जीवितम्" भेषजस्य विकारेण समं या युक्तिः तत्र रिष्टं यथा—"विज्ञातं बहुशः सिद्धं विधिवच्चावचारितम्। न सिध्यत्यौषधं यस्य तस्य नास्ति चिकित्सितम्:"शेषे बहुरिष्टोदाहरणमुक्तम्, इति समासौ, प्रत्यक्षपूर्वकत्वात् सर्वप्रमाणानामिहादौ प्रत्यक्षं कृतम् । यद्यपि वर्णादयः आयुर्लक्षणप्रतिपादिता दीर्घायुःप्रमाणजिज्ञासायामेव परीक्ष्यन्ते, तथापीह प्रकरणे आयुःप्रमाणा विशेषज्ञानार्थमेव परीक्षणीयाः, अत उक्तम्—'प्रमाणविशेषं जिज्ञासमानेन' इति । पुरुषमनाश्रयाणि दूताद्याश्रयाणि रिष्टानि । युक्तितश्चेत्यनुमानत इत्यर्थः, अत्र युक्तेरपि रिष्टत्वावधारणे क्षमत्वात्, प्रत्यक्षं हि दूतादीनां स्वरूपमात्रं गृह्णाति, रिष्टन्तु दूतादीनामागमादेव ज्ञायते; पुरुषाश्रयिवर्णादिगतरिष्टग्रहणे तु प्रत्यक्षमपि तत्तदरिष्टविशेषग्रहणे तद्विशेषेण व्याभियत इति मत्वा तत् प्रतिषिद्धम्, अनुमानन्तु रिष्टत्वेन प्रतिपादितमानैमित्तत्वादिति धर्म्मविचारे व्याप्रियते, एवं सर्वत्र, प्रकृतिश्चेति विकृतिज्ञानहेतुतया प्रकृतौ रिष्टज्ञाने व्याप्रियते, प्रकृतिज्ञानाधीनं विकृतिज्ञानं भवति, परीक्षा त्वत्राधिकृता प्राधिर्द्धः प्रत्यक्षादिभिरेव ज्ञेया ।

रोगीके जीवन, मरण तथा आयु विशेषके प्रमाण जाननेकी इच्छा करनेवाले वैद्यको योग्य है कि, प्रत्यक्ष; अनुमान और आप्तोपदेशके द्वारा परीक्षा करे ॥ १ ॥

परीक्ष्यवस्तुओंके भेद।

तत्रतुखलुएषांपरीक्ष्याणांकानिचित्पुरुषमनाश्रितानिकानिचित्पुरुषसंश्रयाणि। तत्रयानिपुरुषमनाश्रितानितानिउपदेशतोयुक्तितश्चपरीक्षेत। पुरुषसंश्रयाणिपुनःप्रकृतितश्चविकृतितश्च ॥ २ ॥

इन सब प्रकारकी परीक्षाओंमें बहुतसी परीक्षा तो पुरुषके आश्रय होती हैं और बहुतसी ऐसी हैं जो पुरुषाश्रित नहीं हैं। उनमें जो पुरुषाश्रित नहीं हैं उनकी उपदेश और युक्ति अर्थात् अनुमान और आप्तोपदेशके द्वारा परीक्षा करनीं चाहिये। एवम् जो पुरुषाश्रित हैं उनकी प्रकृति और विकृतिद्वारा परीक्षा करनीं चाहिये ॥ २ ॥

प्रकृतिवर्णन।

तत्रप्रकृतिर्जातिप्रसक्ताकुलप्रसक्ताचदेशानुपातिनीचकालानुपातिनीचवयोऽनुपातिनीचप्रत्यात्मनियताचेति। एतावज्जातिकुलदेशकालवयःप्रत्यात्मनियताहितेषांतेषांपुरुषाणांतेतेभावाविशेषाभवन्ति ॥ ३ ॥

प्रकृति (स्वभाव) की परीक्षा इतने प्रकारकी होतीहै। जैसे-जातिगत प्रकृति, कुलगत प्रकृति, देशके अनुरूप प्रकृति, तथा समयानुरूप प्रकृति और प्रतिपुरुषमें उसकी आत्मनियत प्रकृति इसप्रकार पुरुषकी जाति, कुल, देश, काल, अवस्था और शरीरभेदसे प्रकृति अर्थात् स्वभाव प्रत्येक पुरुषका उसके अनुरूप होताहै सो इन भेदोंसे और पुरुषभेदसे मनुष्योंमें भाव विशेष होतेहैं। इन सब भावोंका अपने अपने ठीक स्वभावमें रहना प्रकृति कहाजाताहै ॥ ३ ॥

विकृतिका वर्णन।

विकृतिःपुनर्लक्षणनिमित्ताचलक्ष्यनिमित्ताचनिमित्तानुरूपाच। तत्रलक्षणनिमित्तानामसायस्याःशरीरेलक्षणान्येवहेतुभूतानिभवन्ति। लक्षणानिहिकानिचिच्छरीरोपनिबद्धानिभवन्तियानिहितस्मिंस्तस्मिंस्तत्राधिष्ठानमासाद्यतांतांविकृतिमुत्पादयन्ति ॥ ४ ॥

और विकृति तीन प्रकारकी होतीहै। जैसे-लक्षणनिमित्ता विकृति, लक्ष्यनिमित्ता विकृति और निमित्तानुरूपा विकृति। शरीरकी आरोग्यताके हेतुभूत जो

लक्षण होतेहैं उनके विकृत होजानेसे वह विकृतिके निमित्त मानेजातेहैं उनको लक्ष-णानिमित्ता विकृति कहतेहैं क्योंकि कोई २ लक्षणही इसप्रकार शरीरसे बंधेहुए हैं समय समयपर प्रगट होकर जिस २ समयमें जिस २ प्रकारसे शरीरमें वह लक्षण होतेहैं उस उस प्रकारकी विकृति (विकार) को उत्पन्न करतेहैं ॥ ४ ॥

लक्ष्यनिमित्तातुसायस्याउपलभ्यतेनिमित्तंयथोक्तंनिदानेषु ॥ ५ ॥

रोगका निदान कथन करनेके समय लक्ष्यनिमित्ता विकृतिका कथन करचुकेहैं अर्थात् रोगोंके निमित्तरूप वातादिकोंकी विकृतिको लक्ष्यनिमित्ता विकृति कहतेहैं ॥ ५ ॥

निमित्तानुरूपाके लक्षण ।

निमित्तानुरूपातुनिमित्तार्थानुकारिणीयातामनिमित्तांनिमित्तमायु-षःप्रमाणज्ञानस्येच्छन्तिभिषजोभूयश्चायुषःक्षयनिमित्तांप्रेतलिङ्गा-नुरूपांयासायुषोऽन्तर्गतस्यज्ञानार्थमुपदिशन्तिधीराः ॥ ६ ॥

निमित्तकी अर्थानुरूपा विकृतिको निमित्तानुरूपा विकृति कहतेहैं अर्थात् विनाही कारणके स्वभावादिकोंमें विकृति होजाना निमित्तानुरूपा विकृति कही-जातीहै । इसी विकृतिको वैद्यलोग अनिमित्त होनेसे आयुकी परीक्षाका निमित्त मानते हैं । बुद्धिमान् इसी विकृतिको आयुके क्षयका निमित्त और प्रेतत्वका चिह्न, मानतेहैं । तथा गतायु मनुष्यकी आयुनाशके ज्ञानके लिये इसी विकृतिको कथन करतेहैं ॥ ६ ॥

यामधिकृत्यपुरुषसंश्रयाणिमुमूर्षतांलक्षणानिउपदेक्ष्यामः । इत्युद्देशः । तद्विस्तरेणानुव्याख्यास्यामः ॥ ७ ॥

इस विकृतिके आश्रयसेही मरनेवाले पुरुषके लक्षणोंका उपदेश करेंगे । यह उद्देश है । पुरुषके जिन लक्षणोंको देखकर उसके मरनेका ज्ञान होसकता है उन्हीं विकृति आदिकोंको विशेषरूपसे वर्णन करतेहैं ॥ ७ ॥

प्रकृतिवर्ण ।

तत्रादितएववर्णाधिकारस्तद्यथाकृष्णःकृष्णश्यामःश्यामावदा-तोवदातश्चइतिप्रकृतिवर्णाःशरीरस्य ॥ ८ ॥

उनमें पहिले वर्णकी प्रकृति और विकृतिका वर्णन करतेहैं । जैसे-कृष्णवर्ण, कृष्ण श्यामवर्ण, श्याम गौरवर्ण और गौरवर्ण यह शरीरके प्रकृतिवर्ण अर्थात् स्वाभाविक वर्ण होतेहैं ॥ ८ ॥

यांश्चापरानुपेक्षमाणोविद्यादनूकतोऽन्यथावापिनिर्दिश्यमानां स्तज्ज्ञैः ॥ ९ ॥

इनके सिवाय और भी जो शरीरके वर्ण (रंग) होतेहैं वह सब इन ऊपर कहे हुए वर्णोंकी न्यूनाधिक्यतासे और वर्णविशेषको जानलेना चाहिये । वर्णके जाननेवाले बुद्धिमान् इसप्रकार उपदेश करतेहैं और यह शरीरके स्वाभाविक वर्ण हैं ॥ ९ ॥

वैकारिकवर्ण ।

नीलश्यामताम्रहरितशुक्लाश्चवर्णाःशरीरस्यवैकारिकाभवन्ति। यांश्चापरानुपेक्षमाणोविद्यात्प्राग्विकृतानभूत्वोत्पन्नानितिप्रकृतिविकृतिवर्णाभवन्त्युक्ताःशरीरस्य ॥ १० ॥

नील, श्याम, ताम्र, हरित और सफेद, यह शरीरके विकृति वर्ण हैं । इनके सिवाय और भी जैसे कि जो वर्ण पहिले देखा न हो अथवा पहिलेसे दूसरे प्रकारका होजाय उनको भी विकृतवर्ण कहतेहैं बुद्धिमानोंको पहिले शरीरको प्रकृतिवर्ण और विकृत वर्णकी परीक्षा करनी चाहिये । इसप्रकार शरीरके वर्णकी प्रकृति और विकृति वर्णन कीगईहै । १० ॥

वर्णजन्यअरिष्टलक्षण ।

तत्रप्रकृतिवर्णोऽर्द्धशरीरेविकृतिवर्णोऽर्द्धशरीरेद्वावपिवर्णौमर्य्यादाविभक्तौदृश्यायद्येवंसव्यदक्षिणविभागेनयद्येवंपूर्वपश्चिमविभागेन यद्युत्तराधरविभागेनयद्यन्तर्बहिर्विभागेनआतुरस्यारिष्टमितिविद्यात् ॥ ११ ॥

यदि प्रकृतिवर्णवाले मनुष्यके शरीरमें वामभाग अथवा दक्षिण भाग या आगे पीछे दोनों ओर या केवल पीछे तथा केवल आगे या किसी अंगमें स्वाभाविक और किसी अंगमें वैकारिक वर्ण दिखाई देवे तो उस रोगीको अरिष्ट लक्षण जानना ॥ ११ ॥

एवमेववर्णभेदोमुखेऽप्यन्यतोवर्त्तमानोमरणायभवति ॥ १२ ॥

यदि रोगीके मुखका वर्ण पहिलेसे बिलकुल बदलजाय अथवा और प्रकार स्वाभाविक वर्ण एकदम पलटजाय तो यह मृत्युका चिह्न जानना ॥ १२ ॥

वर्णभेदेनग्लानिहर्षरौक्ष्यस्नेहाव्याख्याताः ॥ १३ ॥

वर्णभेदसे ग्लानि, हर्ष, रूक्षता और स्नेह इनसबका निर्देश कियागयाहै॥ १३॥

तथापिप्लवव्यंगतिलकालकापिडकानामन्यतमस्याननेजन्मातुरस्यैवमेवअप्रशस्तंविद्यात् ॥ १४ ॥

तथा प्लव (लहसन) व्यंग, तिल, कालक, पिडका इनका बेसमय एकाएक रोगीके मुखपर प्रगट होजाना रोगीके लिये अशुभ कहाजाताहै ॥ १४ ॥

नखनयनवदनमूत्रपुरीषहस्तपादौष्ठादिष्वपिचवैकारिकोक्तानां वर्णानामन्यतमस्यप्रादुर्भावोहीनबलवर्णेन्द्रियेषुलक्षणमायुषः क्षयस्यभवति । यच्चान्यदपिकिञ्चिद्वर्णवैकृतमभूतपूर्वंसहसोत्पद्येतानिमित्तमेवहीयमानस्यातुरस्यतच्चारिष्टमितिवर्णाधिकारः ॥ १५ ॥

रोगीके नख, नेत्र,मुख,मूत्र,मल और हाथ पैरोंके वर्ण एकाएक विकृत होजायँ तथा स्वाभाविक नष्ट होकर और प्रकारके वैकारिक वर्ण उत्पन्न होजायँ अथवा बल, वर्ण और इन्द्रियोंमें एकाएक हीनता उत्पन्न होजाय तो यह रोगीके आयुनाशक चिह्न जानने चाहिये इनके सिवाय भी और जो कभी पहिले न देखाहो उस प्रकारके वर्ण विकारका एकाएक उत्पन्न होजाना भी रोगीकी मृत्युका चिह्न होताहै।इसप्रकार अरिष्टकारक वर्णाधिकारका वर्णन कियागया ॥ १५ ॥

स्वराधिकारः ।

स्वराधिकारस्तुहंसक्रौञ्चनेमिदुन्दुभिकलविंककाककपोतझर्झरानुकराःप्रकृतिस्वराः । यांश्चापरानुपेक्षमाणोऽपिविद्यादनूक्तान्यथावापिनिर्दिश्यमानांस्तज्ज्ञैः ॥ १६ ॥

अब स्वराधिकार वर्णन करतेहैं । हंस,बगुला, चकवा, नगारा, चिडा, कौआ, कबूतर और झींगुर इनके समान स्वर होनेसे प्रकृतिस्वर अर्थात् स्वाभाविक स्वर है इनके सिवाय जिनका कथन यहांपर नहीं कियाः गयाहै उनको भी जिसप्रकार स्वरके जाननेवालोंने कथन कियाहो उस प्रकारसे जानलेना चाहिये । यह स्वाभाविक स्वर वर्णन कियागया ॥ १६ ॥

वैकृतिकस्वरका लक्षण ।

एडकग्रस्ताव्यक्तगद्गदक्षामदीनानुकीर्णास्तुआतुराणांस्वरावैकारिकाः । यांश्चापरानुपेक्षमाणोऽपिविद्यात्प्राग्विकृतानभूत्वोत्पन्नानितिप्रकृतिविकृतिस्वराव्याख्याताः ॥ १७ ॥

यदि रोगियोंका स्वर मेंढेके समान अथवा जो समझा न जाय इसप्रकारका या गद्गद स्वर अथवा शान्त और हीनशब्द या फटाहुआ हो तो वैकारिकस्वर जानना। इसके सिवाय जो पहिले श्रवण न कियाहो इसप्रकारका अभूतपूर्व स्वर भी वैकारिक होताहै। यह स्वरोंकी प्रकृति और विकृतिका वर्णन कियागया ॥ १७ ॥

आसन्नमृत्युरोगीका लक्षण।

तत्रप्रकृतिवैकारिकाणांस्वराणामाश्वभिनिर्वृत्तिःस्वरानेकत्वमेकस्यचानेकत्वमप्रशस्तमितिस्वराधिकारः। इतिवर्णस्वराधिकारौ यथावदुक्तौमुमूर्षतांज्ञानार्थमिति ॥ १८ ॥

रोगियोंके स्वरका एकाएकी बदलजाना और अनेक प्रकारका स्वर होना तथा अनेक प्रकारसे फटाहुआसा होजाना यह रोगियोंके अरिष्टका चिह्न है। इस प्रकार मरनेवाले रोगियोंके स्वर और वर्णका उनके मृत्युज्ञानके लिये वर्णन किया गया ॥ १८ ॥

तत्रश्लोकाः।

यस्यवैकारिकोवर्णःशरीरउपजायते।
अर्द्धेवायदिवाकृत्स्नेऽनिमित्तंनचनास्तिसः ॥ १९ ॥

यहांपर श्लोक हैं-जिस मनुष्यके शरीरमें आधेमें संपूर्णमें वा एकाएकी वैकारिक वर्ण प्रगट होजाय वह मनुष्य अवश्य मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ १९ ॥

नीलंवायदिवाश्यावंताम्रंवायदिवारुणम्।
मुखार्द्धमन्यथावर्णोमुखार्द्धेऽरिष्टमुच्यते ॥ २० ॥

यदि रोगीके आधेमुखका वर्ण नीला,श्याम,ताम्रवर्ण या लालवर्ण होजाय और आधा अन्य वर्णका हो तो यह अरिष्टकारक लक्षण होतेहैं ॥ २० ॥

स्नेहोमुखार्द्धेसुव्यक्तोरौक्ष्यमर्द्धमुखंभृशम्।
ग्लानिरर्द्धेतथाहर्षोमुखार्द्धेप्रेतलक्षणम् ॥ २१ ॥

आधा मुख चिकना हो अर्थात् तेलसे भिगाहुआसा प्रतीत होताहो तथा आधा मुख बिलकुल रूक्ष हो तथा आधे चेहरेमें ग्लानि और आधेमें हर्ष प्रतीत होता हो तो यह रोगीकी मृत्यु होनेके लक्षण हैं ॥ २१ ॥

तिलकापिप्लवोव्यङ्गाराजयश्चपृथग्विधाः।
आतुरस्याशुजायन्तेमुखेप्राणान्मुमुक्षतः ॥ २२ ॥

जिस रोगीके मुखपर एकाएकी तिल पिप्लव (लहसुन), व्यंग, (झाई)तथा

अनेक प्रकारकी रेखा आदि विचित्ररूपसे प्रगट होजायँ तो उसके मरणव्यापक लक्षण जानना ॥ २२ ॥

पुष्पाणिनखदन्तेषुपङ्कोवादन्तसंस्थितः ।
चूर्णकोवापिदन्तेषुलक्षणंमरणस्यतत् ॥ २३ ॥

जिस रोगीके नख और दांतोंपर रंगविरंगे फूलसे पडजायँ अथवा दांतोंपर बहुत गाढी मैल जमजाय एवं दांतोंमें चूर्णसा लगा हुआ प्रतीत हो तो उस रोगीके मरणके लक्षण जानना ॥ २३ ॥

ओष्ठयोः पादयोः पाण्योरक्ष्णोर्मूत्रपुरीषयोः।
नखेष्वपिचवैवर्ण्यमेतत्क्षीणबलेऽन्तकृत् ॥ २४ ॥

जिस रोगीके दोनों, होठ दोनों पाँ , हाथ, नेत्र, मूत्र, पुरीष और नख इन, सबमें एकाएकी विवर्णता उत्पन्न होजाय और वह रोगी क्षीणबल हो तो उसकी मृत्युके लक्षण जानना ॥ २४ ॥

यस्यनीलावुभावोष्ठौपक्वजाम्बवसन्निभौ ।
मुमूर्षुरितितंविद्यान्नरोधीरोगतायुषम् ॥ २५ ॥

जिस रोगीके दोनों होठ नीले या पकीहुई जामुनके समान होजायँ तो उस रोगीको बुद्धिमान् मनुष्य गतायु जाने ॥ २५ ॥

एकोवायदिवानेकोयस्यवैकारिकःस्वरः ।
सहसोत्पद्यतेजन्तोर्हीयमानस्यनास्तिसः ॥ २६ ॥

जिस रोगीका एकाएकी स्वर बदल जाय अथवा अनेक प्रकारका वैकारिक होंजाय उस नष्ट आयु रोगीको नहीं है ऐसा जानना ॥ २६ ॥

यच्चान्यदपिकिंचित्स्याद्वैकृतंस्वरवर्णयोः ।
बलमांसविहीनस्यतत्सर्वंमरणोदयम् ॥ २७ ॥

बल और मांसहीन रोगीके स्वर और वर्णमें अन्य किसीप्रकारकी विकृति होना भी उसके मरणका चिह्न जानना ॥ २७ ॥

इतिवर्णस्वरावुक्तौलक्षणाथमुमूर्षताम् ।
यस्तुसम्यग्विजानातिनायुर्ज्ञानेसमुह्यति ॥ २८ ॥

इति चरकसंहितायामिन्द्रियस्थाने वर्णस्वरीयमिंद्रियम् ॥ १ ॥

इसप्रकार मरणाभिमुख मनुष्योंके लक्षणोंको जाननेके लिये वर्ण और स्वरका कथन कियाहै। जो वैद्य इनके ज्ञान को भलेप्रकार जानताहै वह आयुके जाननेमें मोहको प्राप्त नहीं होता ॥ २८ ॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदसंहितायामिन्द्रियस्थाने टकसालनिवासिपं०रामप्रसादवैद्योपाध्यायविरचितप्रसादन्याख्यभाषाटीकायां वर्णस्वरीयमिन्द्रियं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः ।

अथातो पुष्पितमिन्द्रियं व्याख्यास्याम इति हस्माह भगवानात्रेयः ॥

अब हम पुष्पित इन्द्रियकी व्याख्या करतेहैं इसप्रकार भगवान् आत्रेयजी कथन करनेलगे ॥

पुष्पंयथापूर्वरूपंफलस्येहभविष्यतः ।
तथालिङ्गमरिष्टाख्यंपूर्वरूपंमरिष्यतः ॥ १ ॥

जैसे—जगत्में होनेवाले फलका पूर्वरूप फूल देखाजाताहै वैसेही मरनेहारे मनुष्यका पूर्वरूप अरिष्टनामक लक्षण भी है ॥ १ ॥

अप्येवन्तुभवेत्पुष्पंफलेनाननुबन्धियत्।फलञ्चापिभवेत्किञ्चिद्य-

---

१ ननु पुष्पफलव्यभिचारमपि शिष्यो गृह्णीयादिति तन्निरासार्थमाह—फलेनाननुबन्धीति, यथा वेतसपुष्पम्, यस्य पुष्पं न पूर्वजमपि शाखादेव फलम्;जातस्येति सम्पूर्णस्य; किञ्चिदुदिते ह्यरिष्टेऽसम्पूर्णे नावश्यं मृत्युः, अन्ये तु जातस्य नियतस्येति वर्णयन्ति। द्विविधं हि रिष्टं नियतञ्चानियतं च; तत्र नियतम्, "मृतमेव तमात्रेयो व्याचक्षेच पुनर्वसुः"इत्यादि। अनियतं,यथा—"संशयप्राप्तमात्रेयो मन्यते तस्य जीवितम्। अरोगः संशयं मत्वा कश्चिदेव प्रमुच्यते" इति। तथा नियतारिष्टाभिप्रायेणैव सुश्रुतेप्युक्तम्—"ध्रुवं त्वारिष्टे मरणं ब्राह्मणैस्तत् किलामलैः। रसायनतपोजप्यतत्परैर्वा निवार्यते" एतच्चान्येन मन्यन्ते,आचार्य्येण रिष्टमरणयोरव्यभिचारस्य महता प्रयत्नेन दर्शितत्वात्।"संशयप्राप्तम्" इति वचनं मरणप्रतिपादकमेवाचार्येण भंग्यन्तरेणोक्तम् यथाऽऽचार्य्यस्यारिष्टार्थस्तथा तद्ग्रन्थ एव व्याख्यास्यामः। यत्तु रसायनादिसाध्यत्वं रिष्टस्य तदनुमतमेव रसायनमहेश्वरप्रसादादयो हि सर्वलोकमर्यादामपि हन्तुं क्षमाः। तेन, तद्व्यभिचारमपेक्ष्य ग्रन्थः क्रियते। महेश्वरो हि भस्मीभूतं कामं पुनर्जीवयाति स्म, तपसा च रामेण मृतोपि विप्रपुत्रः पुनर्जीवित इत्याद्यनुकरणीयम्। अन्ये तु कालमृत्यावेव रिष्टपूर्वकं मरणं भवति इति वर्णयन्ति वदन्ति च "यद्यकालमृत्यो रिष्टं भवति,तदा वर्णाद्यं मृत्यु—

स्यपुष्पंनपूर्वजम् ॥ २ ॥ नत्वरिष्टस्यजातस्यनाशोऽस्तिमरणा-
दृते । मरणञ्चापितन्नास्तियन्नारिष्टपुरःसरम् ॥ ३ ॥

यद्यपि इसप्रकारके भी बहुतसे फूल होतेहैं जिनसे फलकी उत्पत्ति नहीं होती और ऐसे फल भी बहुतसे हैं जिनके फूल नहीं होते परन्तु ऐसा कोई अरिष्ट नहीं होता जो मृत्युको उत्पन्न न करताहो और ऐसा मृत्यु भी नहीं होता जिससे पहिले अरिष्ट न होताहो ॥ २ ॥ ॥ ३ ॥

मिथ्यादृष्टमरिष्टाभमनरिष्टमजानता ।
अरिष्टञ्चाप्यसम्बुद्धमेतत्प्रज्ञापराधजम् ॥ ४ ॥

प्रायः बहुत स्थानोंमें अरिष्टके न जाननेवाले मनुष्य विनाही अरिष्टके लक्षणोंसे अरिष्ट मानलेतेहैं।और बहुतसी जगह अरिष्टके लक्षण होतेहुए भी अपनी बुद्धिके दोषसे अरिष्टको नहीं समझते ॥ ४ ॥

ज्ञानसम्बोधनार्थन्तुलिङ्गैर्मरणपूर्वकैः ।
पुष्पितानुपदेक्ष्यामोनरान्बहुविधाञ्छृणु ॥ ५ ॥

ऐसे बुद्धिहीन वैद्योंकी बुद्धिको चैतन्य करनेके लिये मृत्युसे प्रथम होनेवाले मरणव्यापक[1] पुष्पितनामक चिह्नोंको कथन करतेहैं उन अनेक प्रकारके लक्षणोंको श्रवण करो । (निश्चय नियत मरणके बतलानेवाले लक्षणको अरिष्ट कहतेहैं)॥५॥

पुष्पितके लक्षण ।

नानापुष्पोपमोगन्धोयस्यवातिदिवानिशम् । पुष्पितस्यवनस्येव
नानाद्रुमलतावतः ॥६॥ तमाहुःपुष्पितंधीरानरंमरणलक्षणैः ।
सवैसंवत्सरादेहंजहातीतिविनिश्चयः ॥ ७ ॥

जिस शरीरमें अनेक प्रकारके पुष्पित वनके समान अनेक वृक्ष, लताके फूलोंके समान सुगंध दिनरात बराबर आनेलगे उस मनुष्यको बुद्धिमान् मनुष्य मरणके लक्षणोंसे पुष्पित समझे और वह मनुष्य एकवर्षके अन्दर निश्चयही देहको त्याग कर देताहै ॥ ६ ॥ ७ ॥

—यदं रिष्टम् तत् विफलं स्यात् येन कालमृत्युरुचितमाचरतोऽपि परं मृत्युर्भवति,तत्र रिष्टे जाते यद्युचिता क्रिया क्रियते तदा मृत्युर्भवितुमर्हति, तेन कालगतमेव रिष्टम्" इति, तच्च न, अविशेषेण काला-कालमरणे रिष्टप्रादुर्भावनियमात्, अकालमृत्यौ च कालमृत्यौ च यदेव क्रियापथमतिक्रान्तोऽपचार-जनितो व्याधिर्भवति, तदेव परं रिष्टं भवति, अतएवोक्तम् "सर्वेषामेव रिष्टाः प्रादुर्भवन्ति"इति। यश्चैवं न स्वीकरोति, तस्य नियतायुषोऽपचारजन्यव्याधेरेष्टता कदापि न स्यात्, येन यथापचारजा दोषा अतिशयप्रमादादसाध्यव्याधिजनका भवन्ति तथा मरणपूर्वरिष्टजनका अपि भवन्ति ।

[1] मरणव्यापक चिह्न ।

एवमेकैकशःपुष्पैर्यस्यगन्धःसमोभवेत्। इष्टैर्वायदिवानिष्टैःसच पुष्पितउच्यते ॥ ८ ॥ समासेनाशुभान्गन्धानेकत्वेनाथवापुमान्। आजिघ्रेद्यस्यगात्रेषुतंविद्यात्पुष्पितंभिषक् ॥ ९ ॥ आप्लुतानाप्लुतेकायेयस्यगन्धाःशुभाशुभाः । व्यत्यासेनानिमित्ताःस्युःस चपुष्पितउच्यते ॥ १० ॥

जिस मनुष्यके शरीरमें किसी एकएक फूलकी गंध आतीहो वह गंध सुगंधित हो अथवा दुर्गंधित हो परन्तु उसको पुष्पित कहते हैं । अथवा जिस मनुष्यके शरीरमें एक अथवा अनेक प्रकारकी अशुभ गंध आतीहो उसको भी वद्य पुष्पित जाने।अथवा जिस मनुष्यके स्नान न करनेपर अथवा स्नान करनेपर भी बिनाही कारण अशुभगंध आतीहो उसको भी पुष्पित कहतेहैं ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥

तद्यथाचन्दनंकुष्ठंतगरागुरुणीमधु । माल्यंमूत्रपुरीषेवामृतानि कुणपानिवा ॥ ११ ॥ येचान्येविविधात्मानोगन्धाविविधयोनयः । तेऽप्यनेनानुमानेनविज्ञेयाविकृतिंगताः ॥ १२ ॥इदंत्वाप्यतिदेशार्थंलक्षणंगन्धसंश्रयम् । वक्ष्यामोयदभिज्ञायभिषङ्मरणमादिशेत् ॥ १३ ॥

जिसके शरीरमें चंदन, कूट, तगर, अगर,शहद,माला,मूत्र, मल और मुर्देकीसी तथा अनेक प्रकारकी अनेक कारणोंवाली गंधें आतीहों वह मनुष्य भी विकृतिको प्राप्तहुआ जानलेना चाहिये । इसप्रकार अनुमान द्वारा गंधज्ञानसे मरणके लक्षण जाननेके लिये यह निर्देश किया गयाहै और भी गंधाश्रित लक्षणोंको कथन करतेहैं जिनको जानकर वैद्य मनुष्यके मृत्युका कथन कर सकताहै ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥

गंधका ज्ञान ।

वियोनिर्विदुरोयस्यगन्धोगात्रेषुदृश्यते ।
इष्टोवायदिवानिष्टोनसजीवतितांसमाम् ॥ १४ ॥

जिस मनुष्यकी देहमें विनाही कारण पशु पक्षियोंकीसी सुगंधि अथवा दुर्गंधि आनेलगे वह मनुष्य उसीवर्षमें मृत्युको प्राप्त होजाताहै ॥ १४ ॥

एतावद्गन्धविज्ञानंरसज्ञानमतःपरम् ।
आतुराणांशरीरेषुवक्ष्यामोविधिपूर्वकम् ॥ १५ ॥

इसप्रकार गंधके विज्ञानको वर्णन करचुके अब इससे आगे रसके ज्ञानको कथन करते हैं, जिसप्रकार रोगियोंके शरीरमें विधिपूर्वक रस जानना चाहिये ॥ १९ ॥

रसज्ञान ।

योरसःप्रकृतिस्थानांनराणांदेहसम्भवः ।
सएषांचरमेकालेविकारान्भजतेद्वयम् ॥ १६ ॥

जो रस प्रकृतिस्थ मनुष्योंकी देहमें उत्पन्न होताहै वह मरनेके समय दो प्रकारकी विकृतिको धारण करता है ॥ १६ ॥

कश्चिदेवास्यवैरस्यमत्यर्थमुपपद्यते ।
स्वादुत्वमपरश्चापिविपुलंभजतेरसः ॥ १७ ॥

कोई रस तो अत्यन्तही विरसताको प्राप्त होजाताहै और कोई अत्यन्त भारी स्वादुताको प्राप्त होजाताहै । यदि मरणके समय रसके दो भेद होते हैं ॥ १७ ॥

तमनेनानुमानेनविद्याद्विकृतिमागतम् ।
मनुष्योहिमनुष्यस्यकथंरसमवाप्नुयात् ॥ १८ ॥

मनुष्य मनुष्यके शरीरके रसको किसप्रकार जान सकताहै सो कहते हैं कि शरीरके विकृतहुए रसको इसप्रकार अनुमानसे जाने कि मनुष्यके मरणासन्न होनेसे जब शरीरका रस विकृत होजाताहै अर्थात् बहुत बदजायका होजाताहै ॥ १८ ॥

विरसताका ज्ञान ।

मक्षिकाश्चैवयूकाश्चदंशाश्चमशकैःसह ।
विरसादपसर्पन्तिजन्तोःकायान्मुमूर्षतः ॥ १९ ॥

तो उसके शरीरपर मक्खी, जूआँ, दंश, मच्छर आदि कोई भी स्पर्श नहीं करते अर्थात् अलग होजातेहैं ॥ १९ ॥

मधुरताका ज्ञान ।

अत्यर्थरसिकंकायंकालपक्वस्यमक्षिकाः ।
अपिस्नातानुलिप्तस्यभृशमायान्तिसर्वशः ॥ २० ॥

तथा जिसके शरीरमें कालके परिपाकसे अर्थात् मरणासन्न समयमें रस अत्यन्त सुस्वादु होजाताहै तो वह मनुष्य यदि स्नान आदि कर और चंदनका लेपन करनेसे शुद्ध भी हो तो भी उसके शरीरपर चारों ओरसे बहुतही मक्खियें, मच्छर, आ आकर पडते हैं ॥ २० ॥

तत्रश्लोकः।

यान्येतानिमयोक्तानिलिङ्गानिरसगन्धयोः।
पुष्पितस्यनरस्यैतैःफलंमरणमादिशेत् ॥ २१ ॥
इति चरकसं०इन्द्रि०पुष्पितमिंद्रियं समाप्तम् ॥ २ ॥

यहांपर श्लोक है-कि जो वैद्य इन हमारे कहेहुए रस और गन्धके लक्षणोंसे पुष्पित (मरणासन्न) मनुष्यके लक्षणोंको जानलेता है वह मृत्युके लक्षणोंको कथन कर सकता है ॥ २१ ॥

इति श्रीमहर्षिचरक० इंद्रियस्थाने भाषाटीकायां पुष्पितमिन्द्रियंनाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः।

अथातःपरिमर्षणीयमिन्द्रियंव्याख्यास्यामइतिहस्माहभगवानात्रेयः।

अब हम परिमर्षणीय इन्द्रियाध्यायकी व्याख्या करते हैं इसप्रकार भगवान् आत्रेयजी कथन करनेलगे।

वर्णेस्वरेचगन्धेचरसेचोक्तंपृथक्पृथक्।
लिङ्गंमुमूर्षतांसम्यक्स्पर्शेष्वपिनिबोधत ॥ १ ॥

हे अग्निवेश! वर्ण, स्वर और गंध तथा रसविज्ञानसे मरणासन्न मनुष्योंके लक्षण कथन किये गयेहैं। अब स्पर्शसे भी मरनेवाले मनुष्योंके लक्षणोंको श्रवण करो॥१॥

स्पर्शप्राधान्येनआतुरस्यायुषःप्रमाणविशेषंजिज्ञासुःप्रकृतिस्थे-
नपाणिनाकेवलमस्यशरीरंस्पृशेत्। परिमर्षयेद्वान्येन ॥ २ ॥

रोगीको:स्पर्शद्वारा उसकी आयुका विशेषरूपसे प्रमाण जाना जासकताहै इसलिये रोगीकी आयु जाननेकी इच्छावाला रोगरहित मनुष्यके हाथसे केवल इसके शरीरका स्पर्श करावे अथवा स्वयं करे ॥ २ ॥

स्पर्शके लक्षण.।

परिमृषतातुखलुआतुरशरीरमिमेभावास्तत्रावबोद्धव्याः।
तद्यथा सततंस्पन्दनानांशरीरोद्देशानांस्तम्भः। नित्योष्मणां
शीतीभावः। मृदूनांदारुणत्वम्। श्लक्ष्णानांखरत्वम्। सता-

मसद्भावःसन्धीनांस्रंसभ्रंशच्यवनानि । मांसशोणितयोर्वीती-
भावः । दारुणत्वंस्वेदानुबन्धःस्तम्भोवायच्चान्यदपिकिञ्चिद्भ्र-
शविकृतमनिमित्तंस्यादितिलक्षणंस्पृश्यानांभावानाम् ॥ ३ ॥

स्पर्श करनेवाले मनुष्यको स्पर्शद्वारा रोगीके यह भाव जानने चाहिये । जैसे-जा शरीरके अंग निरंतर फडकनेवाले हों उनका स्थिर होकर स्तंभ होजाना । जो अंग नित्य गरम रहनेवाले हैं उनका शीत होजाना।जो नरम हों उनका कठिन होजाना। जो चिकने हों उनका खरदरे होजाना।जिनका जिस स्थानमें होना उचित हो उनका उसस्थानमें न रहना । संधियोंका ढीला पडजाना या विगडजाना तथा नष्ट हो-जाना । मांस और रक्तका देहसे हीन होजाना । शरीरका कठिन होजाना ।पसीना अधिक आना अथवा बिल्कुल न आना । शरीरका स्तंभ होजाना । इनके सिवाय विनाही कारण एकाएकी स्पृश्य भावोंके जो लक्षण उत्पन्न हों उनको भी जान· लेना चाहिये । इन स्पर्शजनित लक्षणोंसे रोगीको कालग्रस्त जानना चाहिये.॥ ३॥

विस्तारपूर्वक स्पर्शका लक्षण ।

तद्यथासतोऽनुव्याख्यास्यामः।तस्यचेत्परिदृश्यमानंपृथक्त्वेन
पादजंघोरुस्फिंगुदरपार्श्वयष्टिकापाणिग्रीवाताल्वोष्ठललाटं
स्विन्नंशीतंप्रस्तब्धंदारुणंवीतमांसशोणितंवास्यात्परासुरयंपुरु-
षोनचिरात्कालंकरिष्यतीतिविद्यात् ॥ ४ ॥

उन्हीं स्पृश्यभावोंको विस्तारपूर्वक वर्णन करतेहैं।यदि उस रोगीके संपूर्ण दृश्य-मान अंगोंको एक एक कर देखाजाय पांव, जंघा, घुटना, पार्श्वभाग, कुल्हे. गुदा, उदर, पीठका बांस, हाथ, गर्दन, तालु, होठ और ललाट यह शीतल, पसीनेयुक्त, स्तब्ध,कठोर, मांस और रक्तरहित होजायँ तो इस गतायु मनुष्यको तत्काल मरजा-नेवाला जानना चाहिये ॥ ४ ॥

तस्यचेत्परिमृश्यमानानिपृथक्त्वेनगुल्फजानुवंक्षणगुदवृषणमे-
ढ्रनाभ्यंसस्तनमणिकहनुस्पर्शुकानासिकाकर्णाक्षिभ्रूशंखादी-
निस्रस्तानिव्यस्तानिच्युतानिस्थानेभ्यःस्युःपरासुरयंपुरुषोन
चिरात्कालंकरिष्यतीतिविद्यात्

यदि रोगीके यह अंग पृथक्२देखे जायँ जैसे गुल्फ,घुटने,वंक्षण,गुदा,अण्डकोष, लिंग,नाभि, कंधे, स्तन,दोनों हाथोंके पहुँचे, ठोढी, पसली, नाक, कान, नेत्र,भौंह

और कनपटी आदि अंग अलग २ अपने स्थानसे छूटजायँ और हटजायं तो उस मनुष्यको गतायु अर्थात् शीघ्र मरनेवाला जानना चाहिये ॥ ५ ॥

तथास्योच्छ्वासमन्यादन्तपक्ष्मचक्षुःकेशलोमोदरनखांगुलीरालक्षयेत् ।तस्यचेदुच्छ्वासोऽतिदीर्घःअतिह्रस्वोवास्यात्परासुरितिविद्यात् । तस्यचेन्मन्येपरिद्दश्यमानेनस्पन्देयातांपरासुरितिविद्यात् । तस्यचेद्दन्ताःप्रतिकीर्णाःश्वेतजातशर्कराःस्युःपरासुरितिविद्यात् । तस्यचेत्पक्ष्माणिजटावद्धानिस्युःपरासुरितिविद्यात् । तस्यचेच्चक्षुषीप्रकृतिहीनेविकृतियुक्तेअत्युत्पिण्डितेअतिप्रविष्टेअतिजिह्मेअतिविषमेअतिप्रस्रुतेअतिविमुक्तवन्धनेसततोन्मेषितेसततनिमेषितेर्निमेषोन्मेषातिप्रवृत्ताविभ्रान्तदृष्टिकेतिपरीतदृष्टिकेहीनदृष्टिकेव्यस्तदृष्टिकेनकुलान्धेकपोतान्धेअलातवर्णेकृष्णनीलपीतश्यावताम्रहरितहारिद्रशुक्लैकारिकाणांवर्णानामन्यतमेनाभिसंप्लुतेवास्यातांपरासुरितिविद्यात् ६॥

तथा रोगीके उच्छ्वास,ठोडी,दांत,पलकें,नेत्र, केश,लोम,उदर, नख और अंगुली इनकी भी परीक्षा करनी चाहिये । यदि रोगीका उच्छ्वास अत्यंत लंबा या बहुतही ह्रस्व चलनेलगे तो रोगीको प्राणरहित होनेवाला जानना चाहिये । जिस रोगीकी दोनों तरफसे ठोढीकी नाडें फडकनेलगें और ठोडी हिलनेलगे उस रोगीको भी गतायु जानना चाहिये ।जिस रोगीके दांत अधिक मैले विखरेहुए और सफेद शर्करायुक्त हों उसको भी शीघ्र मृत्युग्रस्त होनेवाला जानना चाहिये । जिस रोगीकी पलकें जटाके समान वंधजायँ वह भी गतायु होताहै।जिस रोगीके नेत्र अपने स्वभावसे हीन होकर विकृत होजायँ अत्यंत वाहर निकल आवें अथवा अधिक भीतरको वढजायँ या टेढे होजायँ या एक वडा एक छोटा होजाय अथवा एक वंद होजाय एक खुला रहे एवम् अत्यंत पानी वहना, वहुत ही शिथिल होजाना,बिलकुल वंद होजाना या खुलेही रहना या थोडी २ देरमें खुलना या वंद होवें अथवा फटेसे होजायँ या भयानक रीतिसे देखे या दृष्टिहीन होजायँ या अपूर्वदृष्टि होजायँ, दिनमें सव वस्तुएं साधारण देखना अथवा सव वस्तुयें काली देखना अंगारके समान काले, नीले, पीले, श्याम, ताम्रवर्ण,हरे,हल्दीके रंगके या सफेद इन सव वर्णोंमेंसे अत्यन्त विकृत होकर किसी वर्णका होना यह सव लक्षण गतायु मनुष्यके हैं॥ ६॥

केशपरीक्षा ।

अथास्यकेशलोमान्यायच्छेत्तस्यचेत्केशलोमान्यायस्यमाना-
निप्रलुच्येरन्नचेद्वेदयेत्परासुरितिविद्यात् ॥ ७ ॥

रोगी मनुष्यके केश और रोमोंकी भी परीक्षा करनी चाहिये ।जिस रोगीके केश या रोम खींचनेसे उखडजायं और उस रोगीको किंचित् पीडा भी प्रतीत न हों उसको गतायु जानना ॥ ७ ॥

उदरपरीक्षा ।

तस्यचेदुदरेशिराः प्रदृश्येरन्, श्यावताम्रनीलहारिद्रशुक्ला
वास्युःपरासुरितिविद्यात् ॥ ८ ॥

जिस रोगीके पेटपर काली, लाल, पीत और श्वेत नसें दीखनेलगें उसको भी गतप्राण जानना चाहिये ॥८ ॥

नखपरीक्षा ।

तस्यचेन्नखावीतमांसशोणिताःपक्वजाम्बववर्णाःस्युःपरासुरि-
तिविद्यात् ॥ ९ ॥

जिस रोगीके नख मांसरहित तथा रुधिररहित होजायं और पकेहुये जामुनके समान काले वर्णके होजायँ उसको भी गतप्राण जानना चाहिये ॥ ९ ॥

अंगुलीपरीक्षा ।

अथास्यांगुलीरायच्छेत्तस्यचेदंगुलयआयस्यमानानचेत्स्फुटेयुः
परासुरितिविद्यात् ॥ १० ॥

इसके उपरांत इसकी अंगुलियोंकी भी परीक्षा करनी चाहिये । यदि रोगीकी अंगुलियें खचिनेसे शब्द नहीं करें तो उस रोगीको भी मरणासन्न जानना चाहिये १०

भवतिचात्र ।

एतान्स्पृश्यान्बहून्भावान्यःस्पृशन्नावबुध्यते ।
आतुरेनससम्मोहमायुर्ज्ञानस्यगच्छति ॥ ११ ॥

इति चरकसंहितायामिन्द्रियस्थाने परिमर्षणीयमिंद्रियं
समाप्तम् ॥ ३ ॥

यहांपर अध्यायके उपसंहारमें श्लोकहै जो वैद्य इन अनेक प्रकारके स्पृश्यभावों-को स्पर्शद्वारा जानलेताहै वह रोगीके आयुर्ज्ञानमें मोहको प्राप्त नहीं होता ॥११॥

इति श्रीमहाषचरक०इन्द्रियस्थाने भाषाटीकायांपरिमर्षणीयमिन्द्रियंनाम तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

चतुर्थोऽध्यायः ।

अथात इन्द्रियानीकमिद्रियंव्याख्यास्याम इतिहस्माह भगवानात्रेयः ।

अब हम इंद्रियानीक इंद्रियकी व्याख्या करतेहैं इसप्रकार भगवान् आत्रेयजी कथन करनेलगे ।

इन्द्रियाणियथाजन्तोःपरीक्षेतविशेषवित् ।
ज्ञातुमिच्छन्भिषङ्मानमायुषस्तन्निबोधमे ॥ १ ॥

हे अग्निवेश ! बुद्धिमान् वैद्यको आयुका प्रमाण जाननेकी इच्छासे जिसप्रकार मनुष्यके इंद्रियोंकी परीक्षा करना चाहिये सो तुम श्रवण करो ॥ १ ॥

अनुमानात्परीक्षेतदर्शनादीनितत्त्वतः ।
अद्धाहिविदितंज्ञानमिन्द्रियाणामतीन्द्रियम् ॥ २ ॥
अथवाविकृतंयस्यज्ञानमिन्द्रियसम्भवम् ।
आलक्ष्येतानिमित्तेनलक्षणंमरणस्यतत् ॥ ३ ॥

मनुष्यकी दर्शनादिक संपूर्ण इंद्रियोंके तत्त्वको अनुमान द्वारा परीक्षा करनी चाहिये जिसको अकस्मात् अतीन्द्रिय ज्ञान इन्द्रियोंद्वारा साक्षात् होनेलगे । अथवा जिस मनुष्यके इंद्रियोंका ज्ञान विनाकारणही सहसा विकृत होजाय तो यह लक्षण मृत्युका पूर्वरूप है ॥ २ ॥ ३ ॥

इत्युक्तंलक्षणंसर्वमिन्द्रियेष्वशुभोदयम् ।
तदेवतुपुनर्भूयोविस्तरेणानिबोधत ॥ ४ ॥

इसप्रकार संक्षेपसे सब इन्द्रियोंमें होनेवाले अशुभ लक्षण कथन कियेगयेहैं ! अब उनको ही विस्तारसे वर्णन करतेहैं ॥ ४ ॥

नेत्रइन्द्रियद्वारा परीक्षा ।

घनीभूतमिवाकाशमाकाशमिवमेदिनीम् ।
विगीतंह्युभयंह्येतत्पश्यन्मरणमृच्छति ॥ ५ ॥

जिस मनुष्यको आकाश पृथ्वीके समान घनीभूत (कठोर) दिखाई देवे और पृथ्वी आकाशके समान खाली दिखाई देनेलगे इसप्रकार विपरीतभाव दोनोंमें प्रतीत हो तो वह मनुष्य मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ ५ ॥

यस्यदर्शनमायातिमारुतोऽम्बरगोचरः ।
अग्निर्नायातिवादीप्तस्तस्यायुःक्षयमादिशेत् ॥ ६ ॥

जिस रोगीको आकाशमें विचरनेवाली वायु मूर्तिमान् दिखाई देनेलगे अथवा प्रज्वलित अग्नि दिखाई न देवे उसकी शीघ्र मृत्यु होजातीहै ॥ ६ ॥

जलेसुविमलेजालमजालावततेतथा ।
स्थितेगच्छतिवादृष्ट्वाजीवितात्परिमुच्यते ॥ ७ ॥

जिस रोगीको निर्मल जलमें जिसमें जाल न पडा हो उसमें जाल प्रतीत हो और जो स्थिरजलको चंचल समझे वह मनुष्य मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ ७ ॥

जाग्रत्पश्यतियःप्रेतान्रक्षांसिविविधानिच ।
अन्यद्वाप्यद्भुतंकिंचिन्नसजीवितुमर्हति ॥ ८ ॥

जिस रोगीको जाग्रत् अवस्थामेंही अनेक प्रकारके प्रेत और राक्षस दिखाई देने अथवा अन्य इसीप्रकार अद्भुत सामान प्रतीत होनेलगे वह जीता नहीं रहसकता अर्थात् मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ ८ ॥

योऽग्निंप्रकृतिवर्णस्थंनीलंपश्यतिनिष्प्रभम् ।
कृष्णंवायादिवाशुक्लंनिशांवसतिसप्तमीम् ॥ ९ ॥

जो रोगी अपने ठीक स्वभाव और वर्णमें स्थित अग्निको नीले रंग और कांति-रहित अथवा कृष्ण या श्वेत देखे वह आठदिनके बीचमें मृत्युको प्राप्त होताहै॥९॥

मरीचीन्नसतोमेघान्मेघान्वाप्यसतोऽम्बरे ।
विद्युतोवाविनामेघैः पश्यन्मरणमृच्छति ॥१०॥

जिस रोगीको विना प्रकाशके आकाशमें प्रकाश प्रतीत होताहो अथवा विनाही बादलोंके आकाश मेघाच्छन्न प्रतीत होताहो अथवा विनाही मेघोंके बिजली चमकती दिखाई देतीहो वह अवश्य मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ १० ॥

मृण्मयीमिवयःपात्रींकृष्णाम्बरसमावृताम् ।
आदित्यमीक्षतेशुद्धंचन्द्रंवानसजीवति ॥ ११ ॥

जिस रोगीको स्वच्छ सूर्य अथवा चन्द्रमा काले कपडेसे लिपटाहुआ या मट्टीके पात्रके समान दिखाई देवे वह मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ ११ ॥

अपर्वणियदापश्येत्सूर्य्याचन्द्रमसोर्ग्रहम् ।
अव्याधितोव्याधितोवातदन्तंतस्यजीवनम् ॥ १२ ॥

जिस मनुष्यको पर्वके विनाही सूर्य और चन्द्रमाका ग्रहण दिखाई देताहो वह रोगी हो अथवा निरोगी हो अवश्य मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ १२ ॥

नक्तंसूर्य्यमहश्चन्द्रमनग्नौधममुत्थितम् ।
अग्निंवानिष्प्रभंरात्रौदृष्ट्वामरणमृच्छति॥१३ ॥

जिस मनुष्यको रात्रिको सूर्य और दिनमें चंद्रमाका प्रकाश दिखाई देताहो और अग्निके विना ही धुआँ उठता दिखाई देताहो अथवा रात्रिके समय प्रकाशमान अग्नि भी प्रभारहित दिखाई देतीहो वह मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ १३ ॥

प्रभावतःप्रभाहीनान्निष्प्रभावान्प्रभावतः ।
नराविलिङ्गान्पश्यन्तिभावान्प्राणाञ्जिहासवः ॥ १४ ॥

जिस मनुष्यको प्रकाशमान वस्तुयें निस्तेज प्रतीत होतीहों और प्रकाश रहित प्रकाशमान दिखाई देती हों । इसी प्रकार अन्य द्रव्योंमें भी विपरीत लक्षणोंको देखे उस मनुष्यकी अवश्य मृत्यु होती है ॥ १४ ॥

व्याकृतानिविवर्णानिविसंख्योपगतानिच ।
विनिमित्तानिपश्यन्तिरूपाण्यायुःक्षयेनराः ॥ १५ ॥

जिस रोगीकी आयु नष्ट होगयीहो वह संपूर्ण वस्तुओंको विकृतिरूपसे विकृत-वर्णवाली और विपरीत संख्यावाली तथा कारणसे विपरीत ही देखताहै ॥ १५ ॥

यश्चपश्यत्यदृश्यान्वैदृश्यान्यश्चनपश्यति ।
तावुभौपश्यतः क्षिप्रंयमक्षयमसंशयम् ॥ १६ ॥

जो मनुष्य अदृश्य वस्तुओंको देखे और जो दृश्योंको भी न देखे यह दोनों निश्चय मृत्युको प्राप्त होतेहैं ॥ १६ ॥

कर्णेन्द्रियद्वारा परीक्षा ।

अशब्दस्यचयःश्रोताशब्दान्यश्चनबुध्यते ।
द्वावप्येतौयथाप्रेतौतथाज्ञेयौविजानता ॥ १७ ॥

जब रोगी शब्दोंको श्रवण न करे और जो विना ही शब्द होनेके शब्दोंको सुने यह दोनों मृत्युके मुखमें पडे जानना चाहिये ॥ १७ ॥

संवृत्याङ्गुलिभिःकर्णौज्वालाशब्दंयआतुरः ।
नशृणोतिगतासुतंबुद्धिमान्परिवर्जयेत् ॥ १८ ॥

जो रोगी अपने दोनों कानोंको अंगुलियोंसे दवाकर वन्द कर लेनेपर साँय साँयें

सुनाई पडनेवाला अनाहत शब्द जो होताहै उसको न सुनसके उसकी अवश्य मृत्यु होतीहै । बुद्धिमान् वैद्य ऐसे रोगियोंको मृतप्राय समझकर त्याग देवे ॥ १८ ॥

नासिकाद्वारा परीक्षा।

विपर्ययेणयोविद्याद्गंधानांसाध्वसाधुताम् ।
नवातान्सर्वशोविद्यात्तंविद्याद्विगतायुषम् ॥ १९ ॥

जो रोगी उत्तम सुगंधिको दुर्गंध और दुर्गंधको उत्तम सुगंध प्रतीत करे अथवा बिलकुल गंधज्ञानरहित होजाय उसको गतायु जानना चाहिये ॥ १९ ॥

त्वचाद्वारा परीक्षा ।

योरसान्नविजानातिनवाजानातितत्त्वतः ।
मुखपाकादृतेपक्वंतमाहुःकुशलानरम् ॥ २० ॥

जिस रोगीको विना किसी मुखके विकारके किसी प्रकारके भी मीठे, खट्टे रसका ज्ञान हो अथवा रसके तत्त्वको न जानसके उस मनुष्यको मरणासन्न जानना चाहिये ॥ २० ॥

उष्णाञ्छीतान्खराञ्छ्लक्ष्णान्मृदूनपिचदारुणान् ।
स्पर्शान्स्पृष्ट्वाततोऽन्यत्वंमुमूर्षुस्तेषुमन्यते ॥ २१ ॥

जो मनुष्य उष्ण द्रव्योंको शीतल, खरदरे द्रव्योंको चिकने, नरम द्रव्योंको कठोर इनके सिवाय अन्य भी स्पृश्य वस्तुओंको स्पर्श कर विपरीत प्रतीत करे उसको भी मरनेवाला जानना चाहिये ॥ २१ ॥

अन्तरेणतपस्तीव्रंयोगंवाविधिपूर्वकम् ।
इन्द्रियैरधिकंपश्यन्पञ्चत्वमधिगच्छति ॥ २२ ॥

जो मनुष्य तीव्र तपस्याके विना अथवा विधिवत् योगसाधन विना अतीन्द्रिय विषयोंको जानने लगजाय अथवा इन्द्रियोंसे देखने लगजाय वह मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ २२ ॥

इन्द्रियाणामृतेदृष्टेरिन्द्रियार्थान्नपश्यति ।
विपर्ययेणयोविद्यात्तंविद्याद्विगतायुषम् ॥ २३ ॥

जो मनुष्य दृष्टिके विना अन्य इंद्रियोंके शब्दादि ज्ञानको न जानसके परन्तु दृष्टिद्वारा अन्य इन्द्रियोंके विषयोंको भी जानने लगजाय अथवा संपूर्ण इन्द्रियोंके ज्ञानको विपरीत भावसे जाने वह मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ २३ ॥

स्वस्थाःप्रज्ञाविपर्य्यासैरिन्द्रियार्थेषुवैकृतम् ।
पश्यन्तियेऽसद्बहुशस्तेषांमरणमादिशेत् ॥ २४ ॥

यदि स्वस्थ मनुष्य भी बुद्धिके विपरीत भावसे संपूर्ण इन्द्रियोंके विषयोंको विपरीत देखे एवम् अच्छेको बुरा और बुरेको अच्छा प्रतीत करे वह भी मरणासन्न जानना चाहिये ॥ २४ ॥

तत्रश्लोकः ।

एतदिन्द्रियविज्ञानंयःपश्यतियथातथा ।
मरणंजीवितंचैतत्सभिषक्ज्ञातुमर्हति ॥ २५ ॥

इति चरकसंहितायामिन्द्रि० इंद्रियानीकमिंद्रियं समाप्तम् ॥ ४ ॥

यहां अध्यायके उपसंहारमें एक श्लोक है-कि जो वैद्य इस इन्द्रियविज्ञानको यथोचित रीतिपर ठीक परीक्षा करना जानता है वही वैद्य मनुष्यके जीवन और मरणको जान सकता है ॥ २५ ॥

इति श्रीमहर्षिचरक० इन्द्रियस्थाने भाषाटीकायामिन्द्रियानकिमिन्द्रियंनाम चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

पञ्चमोऽध्यायः ।

अथातः पूर्वरूपीयमिंद्रियं व्याख्यास्याम इति हस्माह भगवानात्रेयः ।

अब हम पूर्वरूपीय इन्द्रियकी व्याख्या करतेहैं इसप्रकार भगवान् आत्रेयजी कथन करनेलगे ।

पूर्वरूपाण्यसाध्यानांविकाराणांपृथक्पृथक् ।
भिन्नाभिन्नानिवक्ष्यामोभिषजांज्ञानवृद्धये ॥ १ ॥

वैद्यजनोंके ज्ञानवृद्धिके लिये पृथक् २ रोगोंके असाध्य पूर्वरूपोंको अलग २ करके वर्णन करतेहैं ॥ १ ॥

पूर्वरूपाणिसर्वाणिज्वरोक्तान्यतिमात्रया ।
यंविशन्तिविशत्येनंमृत्युर्ज्वरपुरःसरः ॥ २ ॥

यदि ज्वरके संपूण पूर्वरूप बलवान् होकर अधिकतासे जिस रोगीका आश्रय लेवें तो उस रोगीके शरीरमें ज्वरको आगेकर मृत्यु प्रवेश करताहै ॥ २ ॥

अन्यस्यापिचरोगस्यपूर्वरूपाणियं नरम् ।
विशन्त्येतेनकल्पेनतस्यापिमरणंध्रुवम् ॥ ३ ॥

अन्य रोगोंमें भी यदि किसी रोगके संपूर्ण पूर्वरूप बलवान् होकर अधिकरूपसे जिस मनुष्यके शरीरमें प्रवेश करतेहैं तो उसकी अवश्य मृत्यु होजातीहै ॥ ३ ॥

पूर्वरूपैकदेशांस्तुवक्ष्यामोऽन्यान् सुदारुणान् ।
येरोगाननुबध्नान्तिमृत्युर्यैरनुबध्यते ॥ ४ ॥

अब अन्य रोगोंमें भी जो दारुण पूर्वरूप होनेसे रोग मनुष्यकी मृत्यु कर देतेहैं उन पूर्वरूपोंका वर्णन करते हैं ॥ ४ ॥

भिन्न २ मृत्युकारक रोग ।

बलञ्चहीयतेयस्यप्रतिश्यायश्चवर्द्धते ।
तस्यनारीप्रसक्तस्यशोषोन्तायोपजायते ॥ ५ ॥

जिस मनुष्यका बल क्षीण होगयाहो और प्रतिश्याय बहुत जोरसे बढाहुआ हो वह मनुष्य यदि स्त्रीसंगमें आसक्त रहे तो उस मनुष्यको शोषरोग अवश्य नष्ट करदेताहै ॥ ५ ॥

श्वभिरुष्ट्रैःखरैर्वापियातियोदक्षिणांदिशम् ।
स्वप्नेयक्ष्माणमासाद्यजीवितंसविमुञ्चति ॥ ६ ॥

जो मनुष्य स्वप्नमें कुत्ता, ऊंट वा गधेके ऊपर चढकर दक्षिणकी ओर गमन करे उस मनुष्यको राजयक्ष्मा रोग प्रवेश कर उसके जीवनको नष्ट करदेताहै ॥६॥

प्रेतैःसहपिबेन्मद्यंस्वप्नेयःकृष्यतेशुना ।
सघोरंज्वरमासाद्यनजीवेन्नचसृज्यते ॥ ७ ॥

जो मनुष्य स्वप्नमें प्रेतों (मरेहुए) के साथ मिलकर मद्यको पीताहै अथवा जिसको स्वप्नमें कुत्ते घसीटते हैं उस मनुष्यको घोर ज्वर उत्पन्न होकर नष्ट करदेताहै ॥ ७ ॥

लाक्षारक्ताम्बराभं यःपश्यत्यम्बरमन्तिकात् ।
सरक्तपित्तमासाद्यतेनैवान्तायनीयते ॥ ८ ॥

जिस मनुष्यको अपने समीपका आकाश लाखके रंगसे रंगाहुआसा प्रतीत होवे उस मनुष्यको रक्तपित्त रोग होकर शीघ्र यमलोकको लेजाताहै ॥ ८ ॥

रक्तस्रग्रक्तसर्वाङ्गीरक्तवासामुहुर्हसन् ।
यःस्वप्नेह्रियतेनार्य्यासरक्तंप्राप्यसीदति ॥ ९ ॥

जिस मनुष्यको स्वप्नमें लाल वस्त्र, लालफूलोंकी माला पहिनेहुए सम्पूर्ण लाल अंगोंवाली स्त्री वारंवार हंसतीहुई आकर हरण करती है, उसको रक्तपित्त रोग होकर मृत्युको प्राप्त करदेताहै ॥ ९ ॥

शूलाटोपान्त्रकूजाश्चदौर्बल्यंचातिमात्रया ।
नखादिषुचवैवर्ण्यंगुल्मेनान्तकरोग्रहः ॥ १० ॥

जिस मनुष्यको अत्यन्त शूल, अफारा, आंतोंका कूजन, दुर्बलता यह अधिक होजायं और नखादिकोंमें विवर्णता होजाय उस मनुष्यकी गुल्मरोग द्वारा मृत्यु होजाती है ॥ १० ॥

लताकण्टकिनीयस्यदारुणाहृदिजायते ।
स्वप्नेगुल्मस्तमन्तायक्रूरोविशतिमानवम् ॥ ११ ॥

जिस मनुष्यको स्वप्नमें अत्यन्त कांटोंसे युक्त बेल अपने गलेमें पडीहुई छातीपर लटकती दिखाई दे उसकी गुल्मरोगसे मृत्यु होजातीहै ॥ ११ ॥

कायेऽल्पमपिसंस्पृष्टंसुभृशंयस्यदीर्य्यते ।
क्षतानिचनरोहन्तिकुष्ठैर्मृत्युर्हिनास्तितम् ॥ १२ ॥

जिस मनुष्यके शरीरमें थोडासा स्पर्श करनेसे भी शरीर फटजाय और जो शरीरमें घाव उत्पन्न हों वह हटे नहीं तो उस मनुष्यकी कुष्ठरोगसे मृत्यु होजातीहै १२॥

नग्नस्याज्यावसिक्तस्यजुह्वतोऽग्निमनर्चिषम् ।
पद्मान्युरसिजायन्तेस्वप्नेकुष्ठैर्मरिष्यतः ॥ १३ ॥

जो मनुष्य स्वप्नमें नग्न होकर सम्पूर्ण देहमें घी लगा ज्वालारहित अग्निमें हवन करे अथवा अपने छातीमें कमल उत्पन्न हुआ देखे तो उस मनुष्यकी कुष्ठरोगसे मृत्यु होती है ॥ १३ ॥

स्नातानुलिप्तगात्रेऽपियस्मिन्गृध्नन्तिमक्षिकाः ।
सप्रमेहेणसंस्पर्शंप्राप्यतेनैवहन्यते ॥ १४ ॥

जिस मनुष्यके शरीरपर स्नानकर चन्दन आदि लगा लेनेपर भी बहुतसी मक्खियें आकर बैठें उस मनुष्यकी प्रमेह रोगसे मृत्यु होती है ॥ १४ ॥

स्नेहंबहुविधंस्वप्नेचण्डालैःसहयःपिबेत् ।
बुध्यतेसप्रमेहेणस्पृश्यतेऽन्तायमानवः ॥ १५ ॥

जो मनुष्य स्वप्नमें चाण्डालोंके साथ मिलकर अनेक प्रकारके घृत, तेल आदिकोंका पान करताहै उसकी प्रमेह रोगसे मृत्यु होती है ॥ १५ ॥

ध्यानायासौतथोद्वेगोमोहश्चास्थानसम्भवः ।
अरतिर्बलहानिश्चमृत्युरुन्मादपूर्वकः ॥ १६ ॥

जिस मनुष्यको ध्यान, थकावट, घबराहट, भ्रम, उद्वेग और मोह तथा चित्तका न लगना यह सब एकही कालमें उत्पन्न होजायँ उसकी उन्माद रोगसे मृत्यु होती है ॥ १६ ॥

आहारद्वेषिणंपश्यल्लुँसचित्तमुदार्दितम् ।
विद्याद्धीरोमुमर्षुंतमुन्मादेनातिपातिना ॥ १७ ॥

जिस मनुष्यको भोजनके सब पदार्थ बुरे प्रतीत होतेहों और ज्ञान जातारहे, उदर्द रोग हो उस मनुष्यको बुद्धिमान् उन्माद रोगसे मृत्यु होनेवाला जाने ॥ १७ ॥

क्रोधनत्रासबहुलंसकृत्प्रहसिताननम् ।
मूर्च्छापिपासाबहुलंहन्त्युन्मादःशरीरिणम् ॥ १८ ॥

जिस मनुष्यको अत्यन्त क्रोध, त्रास, और हास्य ये एककालमें ही प्रगट होजायँ तथा बारबार मूर्च्छा और प्यासकी अधिकता हो उसकी उन्माद रोगसे मृत्यु होतीहै ॥ १८ ॥

नृत्यन्रक्षोगणैःसार्द्धंयःस्वप्नेऽम्भसिसीदति ।
सप्राप्यभृशमुन्मादंयातिलोकमतःपरम् ॥ १९ ॥

जो मनुष्य स्वप्नमें राक्षसोंके साथ नाच करता हुआ जलमें डूबजाय वह उन्माद रोगसे ग्रसित होकर परलोकको प्राप्त होताहै ॥ १९ ॥

असत्तमःपश्यतियःशृणोत्यप्यसतःस्वरान् ।
बहून्बहुविधाञ्जाग्रत्सोऽपस्मारेणबध्यते ॥ २० ॥

जिस मनुष्यको विना अंधकारके अंधकार प्रतीत होताहो और विना ही किसी प्रकारकी आवाजसे अनेक प्रकारके गायनके स्वरोंको श्रवण करे वह मनुष्य मृगी रोगसे मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ २० ॥

मत्तंनृत्यन्तमाविध्यप्रेतोहरतियंनरम् ।
स्वप्नेहरातितंमृत्युरपस्मारपुरःसरः ॥ २१ ॥

जो मनुष्य स्वप्नमें अपनेको उन्मत्त होकर नाचताहुआ देखे और उस नाचतीहुई अवस्थामें उसको प्रेत उठाकर लेजावे । ऐसा स्वप्न आनेवाले मनुष्यको अपस्मार (मृगी) रोगको आगेकर मृत्यु प्रवेश करताहै ॥ २१ ॥

स्तुभ्येतेप्रतिबुद्धस्यहनुमन्येतथाक्षिणी ।
यस्यतंबहिरायामोगृहीत्वाहन्त्यसंशयम् ॥ २२ ॥

जिस मनुष्यके ठोडी,गर्दन और दोनों नेत्र अकडजायँ उसको बहिरायाम नामक वातव्याधि प्राप्त होकर नष्ट करदेतीहै ॥ २२ ॥

शष्कुलीरप्यपूपान्वैस्वप्नेखादतियोनरः ।
सचेत्तादृक्छर्दयतिप्रतिबुद्धोनजीवति ॥ २३ ॥

जो मनुष्य स्वप्नमें पूडियें और पूवोंको खाताहै और जागकर उन्हींके समान वमन कर देताहै वह मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ २३ ॥

एतानिपर्वरूपाणियःसम्यगवबुद्ध्यते ।
सएषामनुबन्धञ्चफलञ्चज्ञातुमर्हति ॥ २४ ॥

इन सब प्रकारके पूर्वरूपोंको जो वैद्य भलेप्रकार जानताहै वह ही इस अनुबंधके फलको जानताहै । अर्थात् मनुष्यकी रोगों द्वारा मृत्युको कहसकताहै ॥ २४ ॥

यइमांश्चापरान्स्वप्नान्दारुणानुपलक्षयेत् ।
व्याधितानांविनाशायक्लेशायमहतेऽपिवा ॥ २५ ॥

जो मनुष्य इन आगे कहे दारुण स्वप्नोंको देखताहै वह यदि रुग्णावस्थामें देखें तो अवश्य मृत्यु होतीहै और यदि स्वस्थावस्थामें देखे तो महान् कष्ट उपस्थित होताहै ॥ २५ ॥

यस्योत्तमाङ्गेजायन्तेवंशगुल्मलतादयः । वयांसिचविलीयन्ते स्वप्ने मौढ्यामियाच्चयः ॥२६॥ गृध्रोलूकश्वकाकाद्यैःस्वप्नेयःपरिवार्य्यते । रक्षःप्रेतपिशाचस्त्रीचण्डालद्रविडान्धकैः ॥ २७ ॥ वंशवेत्रलतापाशतृणकण्टकसंकटे । प्रमुह्यतिहियःस्वप्नेलगतिप्रपतत्यपि ॥ २८ ॥

जिस मनुष्यके स्वप्नमें शिरपर बांस, गुल्म, बेलें आदि प्रकट होजायँ और कौआ आदि पक्षी मुख आदि किसी अंगमें छिपजावें अथवा स्वप्नमें जिसका शिर मुण्डन कियाजावे अथवा गीध, उल्लू, कुत्ते, काग, राक्षस, प्रेत, पिशाच, स्त्रियें, चाण्डाल और दैत्य आदि चारों तरफसे घेरे हुए हों अथवा बांस, वेत, लता, फांसी, तृण, कांटे आदिके संकटमें फसजाय और उन्हींमें फंसकर वेहोश हो गिरजाय तो यदि यह स्वप्न रोगीको आवे तो उसकी मृत्यु होय और स्वस्थ अवस्थामें आवे तो वह महान् संकटमें पडे ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥

भूमौपांशूपधानायांवल्मीकेवाथभस्मनि। श्मशानायतनेश्वभ्रेस्व-प्नेयःप्रपतत्यपि ॥ २९ ॥ कलुषेऽम्भसिपंकेचकूपेवातमसावृते । स्वप्नेमज्जतिशीघ्रेणस्त्रोतसाह्रियतेचयः ॥ ३० ॥ स्नेहपानंतथा-भ्यङ्गःस्वप्नेबन्धपराजयौ । हिरण्यलाभःकलहःप्रच्छर्दनविरेचने ॥ ३१ ॥ उपानद्युगनाशश्चप्रपातःपांशुचर्मणोः । हर्षःस्वप्नेप्रकुपि-तैःपितृभिश्चापिभर्त्सनम् ॥ ३२ ॥ दन्तचन्द्रार्कनक्षत्रदेवतादीप-चक्षुषाम् । पतनंवाविनाशोवास्वप्नेभेदोनगस्यवा ॥ ३३ ॥

जो मनुष्य स्वप्नमें धूलियुक्त पृथ्वीमें अथवा सांपकी बाँवीमें या भस्ममें या श्मशानमें या गढेमें गिरजाय अथवा मलिन जलमें, कीचडमें, कुएमें, या अन्धका-रमें डूबजाताहै या नदीके प्रवाहमें बहजाता है अथवा स्नेहपान या अपने शरीरपर तैल मर्दन करताहै या बन्धनमें फँसजाय अथवा शत्रुओंसे हारजाय या जिसको स्व-प्नमें सुवर्ण मिले या कलह हो वमन अथवा विरेचन हो अथवा दोनों जूते नष्ट होकर शरीरपर बालू और चमडेकी स्वप्नमें वृष्टि हो स्वप्नमें हँसना और कुपित हुए पितरोंसे ताडित होना या स्वप्नमें दांत, चन्द्रमा, सूर्य, नक्षत्र, देवता, दीपक और नेत्रोंका गिरजाना देखे या नष्ट होते देखे एवं पर्वतका फटना देखे तो वह यदि रोगी हो तो मृत्युको प्राप्त होताहै और आरोग्य हो तो संकटमें पडताहै २९॥ ३०॥ ३१॥ ३२॥ ३३॥

रक्तपुष्पंवनंभूमिंपापकर्मालयंचिताम् । गुहान्धकारसम्बाधंस्वप्ने यः प्रविशत्यपि ॥ ३४ ॥ रक्तमालीहसन्नुच्चैर्दिग्वासादक्षिणांदि-शम्।दारुणामटवींस्वप्ने कपियुक्तःप्रयातिवा॥३५ ॥कषायिणाम-सौम्यानांनग्नानांदण्डधारिणाम्।कृष्णानांरक्तनेत्राणांस्वप्नेनेच्छ-न्तिदर्शनम्॥३६॥कृष्णापापानिराचारादीर्घकेशनखस्तनी।विराग-

माल्यवसनास्वप्नेकालनिशामता ॥ ३७ ॥इत्यन्येदारुणाःस्वप्ना रोगीयैर्यातिपञ्चताम् । अरोगःसंशयंगत्वाकश्चिदेवविमुच्यते॥३८॥

जो मनुष्य स्वप्नमें लाल फूलोंके वनमें तथा पापकर्म होतेहुए स्थानमें, अंधकार-युक्त गुफामें प्रवेश करता है अथवा लाल फूलोंका हार धारण किये हुए हंसता २ दक्षिण दिशामें या बन्दरके ऊपर चढकर घोर जंगलमें प्रवेश करताहै अथवा भगूएं वस्त्र पहिने विकराल रूपवाले नग्न,हाथोंमें डण्डे लियेहुए कृष्णवर्ण और लाल नेत्रोंवाले दूतोंको स्वप्नमें देखकर डरता है अथवा कालेवर्णकी पापाचारिणी लम्बे बालोंवाली तथा लंबे नख और स्तनोंवाली मलिन माला और मलिन वस्त्रोंवाली काली निशाचरीको देखताहै अथवा अन्य इसप्रकारके दारुण स्वप्नोंको देखता है तो वह यदि रोगी हो तो मृत्युको प्राप्त होताहै और निरोगी मनुष्यभी ऐसे स्व-प्नोंको देख महान् कष्टको प्राप्त होताहै ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

मनोवहानांपूर्णत्वाद्दोषैरतिबलैस्त्रिभिः । स्रोतसांदारुणान्स्वप्ना-न्कालेपश्यतिदारुणे ॥ ३९ ॥ नातिप्रसुप्तःपुरुषःसफलानफलान-पि । इन्द्रियेशेनमनसास्वप्नान्पश्यत्यनेकधा ॥ ४० ॥

जब वातादि तीनों दोष बलवान् होकर मनकी वहन करनेवाली नाडियोंमें प्राप्त होजाते हैं तब उस समयमें वह मनुष्य शुभ और अशुभ स्वप्नोंको देखताहै । जिस समय मनुष्य अधिक निद्रामें नहीं होता उस समय इन्द्रियोंके पति मनके द्वारा अनेक प्रकारके स्वप्नोंको देखताहै वह स्वप्न कोई सफल होतेहैं कोई निष्फल होतेहैं ३९॥४०॥

स्वप्नके भेद ।

दृष्टंश्रुतानुभूतञ्चप्रार्थितंकल्पितंतथा ।
भाविकंदोषजञ्चैवस्वप्नंसप्तविधंविदुः ॥ ४१ ॥

सुनेहुए,देखेहुए,अनुभव कियेहुए,इच्छा कियेहुए,कल्पना किये हुए,भावी फलके करनेवाले और तीनों दोषोंसे होनेवाले इन भेदोंसे स्वप्न सात प्रकारके होतेहैं॥४१॥

तत्रपञ्चविधंपूर्वमफलंभिषगादिशेत् ।
दिवास्वप्नमतिह्रस्वमतिदीर्घञ्चबुद्धिमान् ॥ ४२ ॥

इनमें पहिले पांच प्रकारके स्वप्नोंको वैद्य निष्फल कथन करे।अथवा जो स्वप्न दिनमें देखा गया या बहुत छोटासा हो या बहुत लम्बा हो उसको भी बुद्धिमान् निष्फल जाने ॥ ४२ ॥

दृष्टःप्रथमरात्रेयःस्वप्नःसोऽल्पफलोभवेत् ।
नस्वपेद्यःपुनर्दृष्ट्वाससद्यःस्यान्महाफलः ॥ ४३ ॥

जो स्वप्न रात्रिके प्रथम प्रहरमें दिखाई देताहै वह अल्प फलको करनेवाला होताहै जिस स्वप्नको देखकर मनुष्यको फिर निद्रा न आवे वह स्वप्न महाफलको देनेवाला होताहै ॥ ४३ ॥

अकल्याणमपिस्वप्नंदृष्टातत्रैवयःपुनः ।
पश्येत्सौम्यंशुभाकारंतस्यविद्याच्छुभंफलम् ॥ ४४ ॥

यदि प्रथम अशुभ स्वप्नको देखकर फिर उसी समय शुभ स्वप्नको देखे तो उसका शुभही फल होताहै ॥ ४४ ॥

तत्रश्लोकः ।

पूर्वरूपाण्यथस्वप्नान्यइमान्वेत्तिदारुणान् ।
नसमोहादसाध्येषुकर्माण्यारभतेभिषक् ॥ ४५ ॥

इति चरकसंहितायामिन्द्रियस्थाने पूर्वरूपीयमिंद्रियंसमाप्तम् ॥५॥

जो वैद्य इन संपूर्ण पूर्वरूपोंको तथा इन दारुण स्वप्नोंको भलेप्रकार जानताहै वह असाध्यरोगोंमें मोहके वश चिकित्सा करनेके लिये नहीं फँसता ॥ ४५ ॥

इति श्रीमहर्षिचर० इन्द्रियस्थाने भाषाटीकायां पूर्वरूपीयमिंद्रियं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

षष्ठोऽध्यायः ।

अथातः कतमानिशरीरीयमिन्द्रियंव्याख्यास्याम इतिहस्माह भगवानात्रेयः ।

अब हम कतमानिशरीरीय इन्द्रियाध्यायकी व्याख्या करतेहैं इसप्रकार भगवान् आत्रेयजी कथन करनेलगे ।

कतमानिशरीराणिव्याधिमन्तिमहामुने ।
यानिवैद्यःपरिहरेद्येषुकर्मनसिध्यति ॥ १ ॥

अग्निवेश कहनेलगे कि हे महामुने ! कितने प्रकारकी व्याधियोंवाले रोगियोंके शरीर ऐसे होते हैं जिनको वैद्य त्याग देवे और जिनमें चिकित्सा कीहुई सफल नहीं होती ॥ १ ॥

इत्यात्रेयोऽग्निवेशेनप्रश्नंपृष्टःसुदुर्वचम् ।
आचचक्षेयथातस्मैभगवंस्तन्निबोधमे ॥ २ ॥

इसप्रकार यह गहन विषय अग्निवेशके पूछनेपर भगवान् आत्रेयजीने जिसप्रकार अग्निवेशके प्रति वर्णन किया उसको श्रवण करो ॥ २ ॥

त्याज्यरोगोंके लक्षण ।

यस्यवैभाषमाणस्यरुजत्यूर्ध्वमुरोभृशम् । अन्नञ्चच्यवतेभुक्तंस्थितञ्चापिनजीर्य्यति ॥ ३ ॥ बलञ्चहीयतेयस्यतृष्णाचाभिप्रवर्द्धते ।
जायतेहृदिशूलञ्चतंभिषक्‌परिवर्जयेत् ॥ ४ ॥

जिस रोगीके बोलते समय छातीके ऊपरके भागमें अत्यंत पीडा हो और भोजन कियाहुआ उसी समय निकलजाया करे अर्थात् उदरमें ठहर नहीं सके यदि ठहरे भी तो पचे नहीं और जिसका प्रतिदिन बल क्षीण होता जाय तथा प्यास बढती चलीजाय हृदयमें शूल हो उसको वैद्य त्याग देवे ॥ ३ ॥ ४ ॥

हिक्कागम्भीरजायस्यशोणितञ्चातिसार्य्यते ।
नतस्मैभेषजंदद्यात्स्मरन्नात्रेयशासनम् ॥ ५ ॥

जिस रोगीको गंभीरनामक हिचकी आनेलगे और अत्यंत रुधिर निकलताहो उसको आत्रेयजीकी आज्ञाका स्मरण करताहुआ कोई औषध न देवे ॥ ५ ॥

आनाहश्चातिसारश्चयमेतौदुर्बलंनरम् ।
व्याधितंविशतोरोगौदुर्लभंतस्यजीवितम् ॥ ६ ॥

जो रोगी अत्यंत दुर्बल होजाय और उस क्षीण अवस्थामें अफारा और अतिसार भी आकर प्रवेश होजायं तो उस रोगीके जीवनको दुर्लभ जानना चाहिये । अर्थात् उसकी अवश्य मृत्यु होजायगी ॥ ६ ॥

आनाहश्चैवतृष्णाचयमेतौदुर्बलंनरम् ।
विशतोविजहत्येनंप्राणानातिचिरान्नरम् ॥ ७ ॥

जिस रोगीको अफारा और तृष्णा यह दोनों अत्यंत बढजायँ और वह रोगी अधिक दिनोंसे बीमार होनेके कारण अत्यंत दुर्बल हो तो यह रोग उस मनुष्यके प्राणोंको थोडे ही समयमें नष्ट कर डालतेहैं ॥ ७ ॥

ज्वरःपौर्वाह्निकोयस्यशुष्कः कासश्चदारुणः । ज्वरोयस्यापराह्णेतु श्लेष्मकासश्चदारुणः । बलमांसविहीनस्ययथाप्रेतस्तथैवसः ॥८॥

जिस मनुष्यको प्रातःकालमें ज्वर चढजायाकरै और साथ ही साथ दारुण सूखी खांसी भी होजाय और इस ज्वर तथा खांसीसे बल और मांस क्षीण होजायँ तो इस मनुष्यकी मृत्यु होनेवाली है ऐसा जानना अथवा अपराह्नमें नित्य ज्वर उत्पन्न होताहो और कफकी खांसी अत्यंत दारुण हो तथा इसी ज्वर, खांसीसे बल और मांस क्षीण होजायँ तो वह रोगी भी अवश्य मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ ८ ॥

यस्यमूत्रंपुरीषञ्चग्रथितंसम्प्रवर्तते ।
निरुष्मिणोजठरिणःश्वसनोनसजीवति ॥ ९ ॥

जिस रोगीका मल और मूत्र गांठदार निकले और शरीरमें गर्मी बिल्कुल न रहे तथा उदररोग हो और श्वासका रोग हो वह रोगी अवश्य मृत्युको प्राप्त होताहै॥९॥

श्वयथुर्यस्यकुक्षिस्थोहस्तपादंविसर्पति ।
ज्ञातिसंघंससंक्लिश्यतेनरोगेणहन्यते ॥ १० ॥

जिस रोगीके कुक्षि (कोख) से आरम्भ होकर संपूर्ण हाथपावोंपर सूजन पहुँच जाय वह सूजन उसके ज्ञातिसमूहको कष्ट देता रोगीको नष्ट करडालताहै ॥ १० ॥

श्वयथुर्यस्यपादस्थस्तथास्रस्तेचपिण्डिके ।
सीदतश्चाप्युभेजंघेतंभिषक्परिवर्जयेत् ॥ ११ ॥

जिस रोगीके पैरोंमें सूजन उत्पन्न हो जाय और दोनों पिण्डालियें शिथिल पड जायँ तथा दोनों जंघा हिल न सकें उस रोगीको वैद्य त्याग देवे ॥ ११ ॥

शूनहस्तंशूनपादंशूनगुह्योदरंनरम् ।
हीनवर्णबलाहारमौषधैर्नोपपादयेत् ॥ १२ ॥

जिस रोगीके हाथपांव सूख जायँ तथा गुह्यस्थान और उदरपर सूजन होजाय, वर्ण और बल तथा आहार हीन होजाय उस रोगीकी औषधों द्वारा चिकित्सा नहीं करनी चाहिये क्योंकि वह अवश्य मरजानेवाला है ॥ १२ ॥

उरोयुक्तोबहुश्लेष्मानीलःपीतःसलोहितः ।
सततंच्यवतेयस्यदूरात्तंपरिवर्जयेत् ॥ १३ ॥

जिस पुराने रोगीकी छातीमेंसे नीलवर्ण और पीला तथा लालीयुक्त बहुतसा बलगम आताहो तो उस रोगीको दूरसेही त्याग देवे ॥ १३ ॥

हृष्टरोमासान्द्रमूत्रःशूनःकासज्वरार्दितः ।
क्षीणमांसोनरोदूराद्वर्ज्योवैद्येनजानता ॥ १४ ॥

जिस रोगीके रोम खडे हों, मूत्र आंत्रसहित आताहो, शरीरपर सूजन हो तथा खांसी और ज्वरसे पीडित हो, मांस क्षीण होगयाहो उसका ज्ञानी वैद्य दूरसे ही त्याग देवे ॥ १४ ॥

त्रयःप्रकुपितायस्यदोषाःकोष्ठेऽभिलाक्षिताः ।
कृशस्यबलहीनस्यनास्तितस्यचिकित्सितम् ॥ १५ ॥

जिस बलहीन दुर्बल रोगीके कोष्ठमें वातादि तीनों दोष कुपित होकर प्राप्त होजायँ उस रोगीकी कोई चिकित्सा नहीं है अर्थात् वह अवश्य मरेगा ॥ १५ ॥

ज्वरातिसारौशोफान्तेश्वयथुर्वातयोःक्षये ।
दुर्बलस्यविशेषेणनरस्यान्तायजायते ॥ १६ ॥

जिस मनुष्यको ज्वर और अतिसारके अन्तमें सूजन उत्पन्न होजाय अथवा सूजनके अन्तमें ज्वर और अतिसार उत्पन्न होजायँ और वह मनुष्य विशेषरूपसे बलहीन हो तो उसकी अवश्य मृत्यु होती है ॥ १६ ॥

पाण्डूदरःकृशोऽत्यर्थंतृष्णयाभिपरिप्लुतः ।
डम्बरीकुपितोच्छ्वासःप्रत्याख्येयोविजानता ॥ १७ ॥

जो रोगी पांडुरोग सहित उदर रोगसे पीडित हो और अत्यन्त कृश तथा तृषासे व्याकुल हो, दोनों नेत्र जिसके बैठजावें और वेगसे श्वास चलनेलगे तो उस रोगीको प्रत्याख्येय जानना अर्थात् यह नहीं बचेगा इसप्रकार कहदेने योग्य जानना ॥ १७ ॥

हनुमन्याग्रहस्तृणाबलह्रासोऽतिमात्रया ।
प्राणाश्चोरसिवर्त्तन्तेयस्यतंपरिवर्जयेत् ॥ १८ ॥

जिस रोगीकी ठोडी और मन्या यह दोनों अकड गई हों प्यासकी अधिकता हो, बल अत्यन्त क्षीण होगयाहो और प्राण केवल छातीमें आगये हों उस रोगीको त्यागदेना चाहिये ॥ १८ ॥

ताम्यत्यायच्छतेशर्मनकिञ्चिदपिविन्दति ।
क्षीणमांसबलाहारोमुमूर्षुरचिरान्नरः ॥ १९ ॥

जो रोगी अत्यन्त व्याकुल होगयाहो और उसको किसीप्रकारभी शान्ति प्राप्त न होती हो, ज्ञान एकदम नष्ट होगयाहो एवं मांस बल और आहार क्षीण होगये हों उसको थोडे ही समयमें मरनेवाला जानना चाहिये ॥ १९ ॥

विरुद्धयोनयोयस्यविरुद्धोपक्रमाभृशम् ।
वर्द्धन्तेदारुणारोगाःशीघ्रंशीघ्रंसहन्यते ॥ २० ॥

सब रोग परस्पर विरोधी कारणोंके उत्पन्न होनेसे तथा विरोधी चिकित्सा होनेसे शीघ्र २ वृद्धिको प्राप्त होकर मनुष्यको मारडालते हैं ॥ २० ॥

बलंविज्ञानमारोग्यंग्रहणीमांसशोणितम् ।
एतानियस्यक्षीयन्तेक्षिप्रंक्षिप्रंसहन्यते ॥ २१ ॥

जिस मनुष्यका बल, ज्ञान, आरोग्य, ग्रहणी, मांस और रक्त वह क्षीण होगये हों वह रोगी शीघ्र मृत्युको प्राप्त होता है ॥ २१ ॥

विकारायस्यवर्द्धन्तेप्रकृतिःपरिहीयते ।
सहसासहसातस्यमृत्युर्हरतिजीविनम् ॥ २२ ॥

जिस रोगीके शरीरमें विकार बढते चलेजायँ और स्वाभाविक प्रकृति नष्ट होती चलीजाय उस रोगीके जीवितको मृत्यु शीघ्र हरलेती है ॥ २२ ॥

तत्रश्लोकः ।

इत्येतानिशरीराणिव्याधिमन्तिविवर्जयेत् ।
नह्येषुधीराःपश्यन्तिसिद्धिंकाञ्चिदुपक्रमात् ॥ २३ ॥

इति चरकसंहितायामिंद्रि०कतमानिशरीरीयमिंद्रियं समाप्तम् ॥६॥

अब अध्यायके उपसंहारमें एक श्लोक है इसप्रकार ऊपर कहे लक्षणोंवाले रोगियोंको त्यागदेना चाहिये क्योंकि इसप्रकारके रोगियोंकी किसीप्रकार चिकित्सा करनेमें बुद्धिमान् सिद्धिको नहीं देखते ॥ २३ ॥

इति श्रीमहर्षिचरक०इन्द्रियस्थाने भाषा०कतमानिशरीरीयमिन्द्रियं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

सप्तमोऽध्यायः ।

अथातःपन्नरूपीयमिंद्रियंव्याख्यास्याम इतिहस्माहभगवानात्रेयः ।

अब हम पन्नरूपीय इन्द्रियनामक अध्यायकी व्याख्या करतेहैं इसप्रकार भगवान् आत्रेयजी कथन करनेलगे ।

दृष्ट्वायस्यविजानीयात्पन्नरूपांकुमारिकाम् ।
प्रतिच्छायामयीमक्ष्णोर्नैनमिच्छेच्चिकित्सितुम् ॥ १ ॥

जिस रोगीकी छाया विकृतिरूप दिखाई दें अथवा दिखाई न देवे या उस रोगीको अपनी छाया न दिखाई देती हो या वह किसीकी छाया न देखसकता हो तो वैद्य उसकी चिकित्सा करनेमें यत्नवान् न होवे ॥ १ ॥

ज्योत्स्नायामातपेदीपेसलिलादर्शयोरपि ।
अङ्गेषुविकृतायस्यछायाप्रेतस्तथैवसः ॥ २ ॥

जिसको चंद्रमाकी चांदनी, धूप, दीपक इनके आगे खडे होनेसे अपनी छाया विकृतांग दिखाई देतीहो अथवा जल या शीशेमें अपने प्रतिबिम्बको विकृतांग देखे तो वह मनुष्य अवश्य मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ २ ॥

छिन्नाभिन्नाकुलाछायाहीनावाप्यधिकापिवा।नष्टातन्वीद्विधाछायाविशिराविस्तृताचया॥३॥एताश्चान्याश्चयाःकाश्चित्प्रतिच्छायाविगर्हिताः। सर्वामुमूर्षतांज्ञेयानचेल्लक्ष्यनिमित्तजाः ॥ ४॥

जिस मनुष्यकी छाया छिन्न, भिन्न, व्याकुल, हीन, अधिक, नष्ट, बारीक, दो भागोंमें कटीहुई,मस्तकरहित और बडे विस्तार पूर्वक दिखाई देतीहो इनके सिवाय अन्य निंदित प्रकारकी या छिद्रयुक्त दिखाई देतीहो वह छाया भी यदि किसी पवन आदि निमित्तसे, या ऊंचे नीचे स्थान आदि किसी कारणसे विकृत नहीं है तो अवश्य मृत्यु होनेवाले मनुष्यकी जाननी ॥ ३ ॥ ४ ॥

संस्थानेनप्रमाणेनवर्णेनप्रभयातथा ।
छायाविवर्त्ततेयस्यस्वप्नेऽपिप्रेतएवसः ॥ ५ ॥

जिस मनुष्यकी आकृति,वर्ण, प्रमाण, कांति आदिसे छाया विकृत हुई स्वप्नमें भी दिखाई दे वह अवश्य मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ ५ ॥

छायाके भेद ।

संस्थानमाकृतिर्ज्ञेयासुषमाविषमाचया।मध्यमल्पंमहच्चोक्तंप्रमाणंत्रिविधंनृणाम् ॥६॥ प्रतिप्रमाणसंस्थानाजलादर्शातपादिषु ।
छायायासाप्रतिच्छायायाचवर्णप्रभाश्रया ॥ ७ ॥

स्थान आकृतिको कहतेहैं वह आकृति सुषमा (सुन्दरता) और विषमा इन दो भेदोंसे दो प्रकारकी होतीहै और मनुष्योंका प्रमाण अल्प,मध्य और बृहत्के भेदसे तीन प्रकारका होताहै ॥ ६ ॥ प्रत्येक मनुष्यके अपने प्रमाण और आकृतिके अनुसार जल दर्पण और धूप आदिमें जो छाया पडतीहै उसीको छाया कहतेहैं । छायामें वर्ण और प्रभा रहनेसे उसको प्रतिच्छाया तथा कांति कहतेहैं ॥ ७ ॥

पंचभूतात्मक छायाका लक्षण।

खादीनांपञ्चपञ्चानांछायाविविधलक्षणाः।
नाभसीनिर्मलानीलासस्नेहासप्रभेवच ॥ ८ ॥

आकाशादि पांच महाभूतोंकी अनेक प्रकारके लक्षणोंवाली छाया होतीहै उनमें नीलवर्णकी और निर्मल तथा चिकनी और कांतियुक्त छाया आकाशीय होतीहै॥८॥

रूक्षाऽश्यावारुणायातुवायवीसाहतप्रभा।
विशुद्धरक्तात्वाग्नेयीदीप्ताभादर्शनाप्रिया ॥ ९ ॥

रूक्ष, काली, लाल, प्रभारहित छाया वायवीय होती है। विशुद्ध, लालवर्णकी, कांतियुक्त, देखनेमें प्रिय इन लक्षणोंवाली आग्नेयी छाया होतीहै ॥ ९ ॥

शुद्धवैदूर्य्यविमलासुस्निग्धाचाम्भसीमता।
स्थिरास्निग्धाघनाश्लक्ष्णाश्यामाश्वेताचपार्थिवी ॥ १० ॥

स्वच्छ, वैदूर्य मणिके समान निर्मल और चिकनी जलकी छाया होतीहै। स्थिर, चिकनी, घनी, श्लक्ष्ण, श्याम और श्वेत पार्थिवी छाया होतीहै ॥ १० ॥

वायवीगर्हितात्वासांचतस्रःस्युःशुभोदयाः।
वायवीतुविनाशायक्लेशायमहतेऽपिवा ॥ ११ ॥

इन सब छायाओंमें वायवीय छाया निन्दनीय होतीहै। और चार प्रकारकी छाया सुखदायक होती हैं। वायवीय छाया तो मृत्युको करनेवाली अथवा महाकष्ट देनेवाली होतीहै ॥ ११ ॥

तैजसी प्रभाका वर्णन।

स्यात्तैजसीप्रभासर्वासातुसप्तविधास्मृता।
रक्तापीतासिताश्यावाहारितापाण्डुराऽसिता ॥ १२ ॥

सब प्रकारकी प्रभा तैजसी होतीहै और उस प्रभाके सात भेद हैं। जैसे लाल, पीली, सफेद, श्याम, हरित, पाण्डुर और काली ॥ १२ ॥

तासांयाःस्युर्विकासिन्यःस्निग्धाश्चविपुलाश्चयाः।
ताःशुभारूक्षमलिनाःसंक्षिप्ताश्चाशुभोदयाः ॥ १३ ॥

उनमें जो प्रभा विकाशवाली, चिकनी और विपुल होतीहै वह तीन प्रकारकी प्रभा शुभ होतीहै। और रूक्ष, मलिन, संक्षिप्त यह तीन प्रकारकी अशुभ होतीहै॥ १३॥

वर्णमाक्रामतिच्छायाभास्तुवर्णप्रकाशिनी ।
आसन्नालक्ष्यतेछायाभाःप्रकृष्टाप्रकाशते ॥ १४ ॥

छाया वर्णको छिपा लेतीहै अथवा यों कहिये कि वर्णरहित प्रतिबिम्बको छाया कहतेहैं। और वर्ण प्रकाशयुक्त प्रतिबिम्बको प्रभा कहतेहैं। छाया समीपके मनुष्यकी दिखाई देतीहै और प्रभा दूरके मनुष्यकी भी दिखाई देतीहै ॥ १४ ॥

नाच्छायोनाप्रभःकश्चिद्विशेषाश्चिह्नयन्तितु ।
नृणांशुभाशुभोत्पत्तिंकालेछायाःप्रभाश्रिताः ॥ १५ ॥

किसी मनुष्यकी भी प्रभा और छाया विशेषरूपसे विकृत नहीं होती न कभी किसी मनुष्यको छायामें किसी प्रकारकी विशेषता देखनेमें आतीहै परन्तु जब किसी प्रकारका शुभ अथवा अशुभ होनेवाला होताहै तब ही छाया और प्रभामें किसीप्रकारके विशेष लक्षण दिखाई पडतेहैं ॥ १५ ॥

कामलाक्ष्णोर्मुखंपूर्णंगण्डयोर्युक्तमांसता ।
सन्त्रासश्चोष्णगात्रश्चयस्यतंपरिवर्जयेत् ॥ १६ ॥

जिस रोगीके दोनों नेत्र कामलारोगसे पीले पडगयेहों, मुख बहुत भारी होगयाहो और दोनों कपोल मांससे फुले हुएसे होगये हों, अंगोंमें त्रास तथा उष्णता अधिक हो उस रोगीको त्याग देना चाहिये ॥ १६ ॥

उत्थाप्यमानःशयनात्प्रमोहंयातियोनरः ।
मुहुर्मुहुर्नसप्ताहंसजीवतिविकत्थनः ॥ १७ ॥

जो मनुष्य शय्यासे उठाया हुआ झट वेहोश होजाय और वारम्बार इसीप्रकार हो तथा प्रलाप अर्थात् अंटसंट बकता हो वह मनुष्य सात दिनकी आयुवाला होताहै अर्थात् सातरोजमें मरजाताहै ॥ १७ ॥

संसृष्टाव्याधयोयस्यप्रातिलोमानुलोमगाः ।
व्यापन्नाग्रहणीप्रायःसोऽर्द्धमासंनजीवति ॥ १८ ॥

जिसके शरीरमें प्रतिलोमगामी अर्थात् उलटी चलनेवाली और अनुलोमगामी अर्थात् सीधी चलनेवाली दोनों प्रकारकी व्याधियें आपसमें मिलजावें और जिसकी ग्रहणी दोषोंसे युक्त हो वह मनुष्य प्रायः पंद्रह दिनमें मरजाताहै ॥ १८ ॥

उपद्रुतस्यरोगेणकर्षितस्याल्पमश्नतः ।
बहुमूत्रपुरीषंस्याद्यस्यतंपरिवर्जयेत् ॥ १९ ॥

जो रोग रोगोंसे ग्रसाहुआ हो,जिसका शरीर कृश होगया हो तथा भोजन वहुत ही थोडा करता हो और मल मूत्र वहुत अधिक आताहो उस रोगीको त्यागदेना चाहिये ॥ १९ ॥

दुर्बलोबहुभुङ्क्तेयःप्राग्भुक्तादन्नमातुरः ।
अल्पमूत्रपुरीषश्चयथाप्रेतस्तथैवसः ॥ २० ॥

जो रोगी दुर्वल हो और उस रोगग्रस्त दुर्वल अवस्थामें यदि रोगी पाहिलेसे भी अर्थात् अपनी स्वस्थ अवस्थासे भी वहुत अधिक खानेलगे और मलमूत्र भी वहुत कम त्याग करे तो उसको प्रेत (मरेहुए) के समान जानना चाहिये ॥ २० ॥

वर्द्धिष्णुगुणसम्पन्नमन्नमश्नातियोनरः ।
शश्वच्चबलवर्णाभ्यांहीयतेनसजीवति ॥ २१ ॥

जो मनुष्य पुष्टिकारक पदार्थोंको भोजन करताहुआ भी प्रतिदिन वल, वर्णसे हीन होता चलाजाय वह मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ २१ ॥

प्रकूजातिप्रश्वसितिशिथिलश्चातिसार्य्यते ।
बलहीनःपिपासार्त्तःशुष्कास्योनसजीवति ॥ २२ ॥

जिस रोगीका कण्ठ गूंजे और श्वास अधिक आवे,शरीर शिथिल होजाय तथा अतिसार हो, वलहीन हो, प्यास अधिक लगे, मुख सूखजाय वह मनुष्य अवश्य मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ २२ ॥

ह्रस्वञ्चयःप्रश्वसितिव्याविद्धंस्पन्दतेचयः ।
मृतमेवतमात्रेयोव्याचचक्षेपुनर्वसुः ॥ २३ ॥

जिसका श्वास अत्यंत हीन होजाय और विंधे हुएकी समान खडकने लगे भगवान् पुनर्वसुजी कहतेहैं कि, उस मनुष्यको मराहुआही समझना चाहिये ॥ २३ ॥

ऊर्द्ध्वञ्चयःप्रश्वसितिश्लेष्मणाचाभिभूयते ।
हीनवर्णबलाहारोयोनरोनसजीवति ॥ २४ ॥

जिस मनुष्यका ऊर्द्ध्वश्वास जल्दी जल्दी चले और कफ अधिक वोलनेलगे । वल, वर्ण और आहार हीन होगयेहों वह मनुष्य मृत्युको प्राप्त होता है ॥ २४ ॥

उद्धुग्रेनयनेयस्यमन्येचानतकम्पने ।
बलहीनःपिपासार्त्तःशुष्कास्योनसजीवति ॥ २५ ॥

जिस रोगीके नेत्रोंके अग्रभाग ऊपरको होगये हों और ठोडीकी दोनों संधियें

नीचेको होकर कांपने लग बलसे हीन हो,प्याससे व्याकुल हो और मुख सूखजाय तो वह मृत्युको प्राप्त होताहै ॥२५॥

यस्यगण्डावुपचितौज्वरकासौचदारुणौ ।
शूलीप्रद्वेष्टिचाप्यन्नंतस्मिन्कर्मनासिद्ध्यति ॥ २६ ॥

जिस रोगीके दोनों गण्डस्थल(गडवाले)फूलजायँ,ज्वर और खांसी अत्यंत दारुण हो,छातीमें शूल तथा अन्नसे द्वेष हो तो उस रोगीकी चिकित्सा करना वृथा है२६॥

व्यावृत्तमर्द्धनिह्वाक्षोभ्रुवौयस्यचविच्युते ।
कण्टकैश्चाचिताजिह्वायथाप्रेतस्तथैवसः ॥ २७ ॥

जिस रोगीके मस्तक,जीभ और दोनों भौंहें टेढी अथवा ऊपरको उलटीसी होगई हों तथा जीभके ऊपर वहुत कांटेसे होगयेहों उसको मरेहुएके समान जानना॥२७॥

शेफश्चात्यर्थमुत्सिक्तंनिसृतौवृषणौभृशम् ।
अतश्चैवविपर्यासाविकृत्याप्रेतलक्षणम् ॥ २८ ॥

जिस मनुष्यका लिंग पीछेको हटगया हो और दोनों फोते लटक आये हों अथवा इससे विपरीत होगये हों या स्वभावसे विपरीत होगये हों यह मरनेवाले मनुष्यके लक्षण जानना ॥ २८ ॥

निचितंयस्यमांसंस्यात्त्वगस्थिचैवदृश्यते ।
क्षीणस्यानश्नतस्तस्यमासमायुःपरंभवेत् ॥ २९ ॥

जिस मनुष्यके शरीरमें मांस विलकुल क्षीण होगयाहो,केवल त्वचा और अस्थि मात्र दिखाई देतेहों तथा वह आहार न करताहो इसप्रकारके क्षीण मनुष्यकी एक महीनेकी परमआयु समझना चाहिये ॥ २९ ॥

तत्र श्लोकः ।

इदंलिंगमरिष्टाख्यमनेकमभिजज्ञिवान् ।
आयुर्वेदविदित्याख्यांलभतेकुशलोनरः ॥ ३० ॥

इति चरकसंहितायामिन्द्रि० पूर्वरूपीयमिन्द्रियं समाप्तम् ॥ ७ ॥

अब अध्यायके उपसंहारमें एक श्लोक है कि, जो वैद्य इन अरिष्टनामक अनेक प्रकारके लक्षणोंको भलेप्रकार जानताहै उसी कुशल पुरुषको आयुर्वेदका जानने-वाला कहना चाहिये ॥ ३० ॥

इति श्रीमहर्षिचरक० इन्द्रियस्थाने भाषाटीकायां पूर्वरूपीयमिन्द्रियं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

अष्टमोऽध्यायः ।

अथातोऽवाक्शिरसीयमिन्द्रियं व्याख्यास्याम इति हस्माह भगवानात्रेयः ।

अब हम अवाक्शिरसीय नामक इंद्रियाध्यायकी व्याख्या करतेहैं इसप्रकार भगवान् आत्रेयजी कथन करनेलगे ।

अवाक्शिरावाजिह्मावायस्यवाविशिराभवेत् ।
जन्तोरूपप्रतिच्छायानैनमिच्छेच्चिकित्सितुम् ॥ १ ॥

जो मनुष्य अपनी छायाका नीचेको शिर देखे अथवा टेढा देखे या विना शिरके देखे उस मनुष्यकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये ॥ १ ॥

जटीभूतानिपक्ष्माणिदृष्टिश्चापिनिगृह्यते ।
यस्यजन्तोर्नतंधीरोभेषजेनोपपादयेत् ॥ २ ॥

जिस मनुष्यकी पलकें जटाओंके समान बँधजायँ और दृष्टि जाती रहे उस मनुष्यकी बुद्धिमान् वैद्य चिकित्सा न करे ॥ २ ॥

यस्यशूनानिवर्त्माणिनसमायान्तिशुष्यतः ।
चक्षुषीचोपदह्येतेयथाप्रेतस्तथैवसः ॥ ३ ॥

जिस रोगीकी दोनों पलकें सूज जावें और दोनों पलकें आपसमें न मिलसकें नेत्रोंमें अत्यंत दाह होताहो और वह पलकें सूखनेमें न आवें वह रोगी भी मृत्युके वश जानना ॥ ३ ॥

भ्रुवोर्वायदिवामूर्ध्निसीमन्तावर्त्तकान्बहून् । अपूर्वानकृतान्व्यक्तान्दृष्ट्वामरणमादिशेत् ॥ ४ ॥ त्र्यहमेतेनजीवन्तिलक्षणेनातुरा नराः । अरोगाणांपुनस्त्वेतत्षड्रात्रंपरमुच्यते ॥ ५ ॥

जिस रोगीकी दोनों भौंहें या मस्तकमें अपूर्व जटासी होजायँ तो इन अपूर्व किसीकी बनाई प्रगट भंवरियोंको देखकर रोगीकी मृत्यु जानलेना चाहिये यदि यह लक्षण रोगी मनुष्यके हों तो वह तीन दिनमें मरजाताहै और रोगरहितके होजायँ तो वह छः दिनमें मरजाताहै ॥ ४ ॥ ५ ॥

आयम्योत्पाटितान्केशान्योनरोनावबुध्यते ।
अनातुरोवारोगीवाषड्रात्रंनातिवर्त्तते ॥ ६ ॥

जिस मनुष्यके बालोंको खींचकर उखाड दियाजाय और वह उसके किसी प्रकारके दुःखको प्रतीत न करसके तो यदि वह रोगी हो तो तीन दिनमें और रोगरहित हो तो छः दिनमें मृत्युके वश होजाताहै ॥ ६ ॥

यस्यकेशानिरभ्यक्तादृश्यन्तेभ्यक्तसन्निभाः ।
उपरुद्धायुषंज्ञात्वातंधीरःपरिवर्जयेत् ॥ ७ ॥

जिस मनुष्यके केश विनाही तेलके लगाये तेलसे भिगेहुएसे प्रतीत हों तो उस रोगीको गतायु समझकर धीर वैद्य त्याग देवे ॥ ७ ॥

ग्लायतोनासिकावंशःपृथुत्वंयस्यगच्छति ।
अशूनःशूनसङ्काशःप्रत्याख्येयःसजानता ॥ ८ ॥

जिस रोगी मनुष्यके नाकका बांस मोटा होजाय और सूजनके विनाही सूजा हुआसा दिखाई दे और वह पुराना रोगी तथा कृश शरीर हो तो उसको मरनेवाला जानना चाहिये ॥ ८ ॥

अत्यर्थंविवृतायस्ययस्यचात्यर्थसंवृता ।
जिह्वावापरिशुष्कावानासिकानसजीवति ॥ ९ ॥

जिस रोगीकी जीभ अधिक बाहर निकल आवे अथवा अधिक भीतर चली जाय तथा नाक सूखजाय उस रोगीकी अवश्य मृत्यु होतीहै ॥ ९ ॥

मुखंशब्दस्त्रवावोष्ठौशुक्लश्यावातिलोहितौ ।
विकृतौयस्यवानीलौनसरोगाद्विमुच्यते ॥ १० ॥

जिस मनुष्यके मुखसे अवध्य शब्द निकलें अथवा मुख, कान, दोनों होंठ यह काले या अत्यंत लाल, नीले एवं विकृत होजायँ वह रोगी मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ १० ॥

अस्थिश्वेताद्विजायस्यपुष्पिताःपङ्कसंवृताः ।
विकृत्यानसरोगंतंविहायारोग्यमश्नुते ॥ ११ ॥

जिस रोगीके दांत विकृत होजायँ और श्वेत तथा फुलडीयुक्त, हड्डियोंके बुरादे-युक्त एवं कीचडयुक्त होजायँ वह मनुष्य कभी रोगोंसे मुक्त नहीं होता अर्थात् मर-जाताहै ॥ ११ ॥

स्तब्धानिश्चेतनागुर्वीकण्टकोपचिताभृशम् ।
श्यावाशुष्काथवाशूनाप्रेतजिह्वाविसर्पिणी ॥ १२ ॥

जिस रोगीकी जीभ टेढी, बाहरको निकलीहुई, चैतन्यता रहित,भारी, काँटेयुक्त, काली, सूखी या सूजीहुई हो वह अवश्य मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ १२ ॥

दीर्घमुच्छ्वस्ययोह्रस्वंनरोनिश्वस्यताम्यति ।
उपरुद्धायुषंज्ञात्वातंधीरःपरिवर्जयेत् ॥ १३ ॥

जिस मनुष्यका श्वास लम्बा लम्बा आताहुआ क्रमसे धीरेधीरे अत्यंत हीन होजाय और वह मनुष्य बेहोश होजाय उसको गतायु जानकर त्यागदेना चाहिये ॥ १३ ॥

हस्तौपादौचमन्येचतालुचैवातिशीतलम् ।
भवत्यायुःक्षयेक्रूरमथवापिभवेन्मृदु ॥ १४ ॥

जिस रोगीके हाथ, पांव, मन्या और तालु यह सब अत्यंत शीतल अथवा क्रूर या बहुत नरम पडजाय उस रोगीका आयु क्षीण हुआ जानना ॥ १४ ॥

घट्टयञ्जानुनाजानुपादावुद्यम्यपातयन् ।
योऽप्यास्यातिमुहुर्वक्त्रमातुरोनसजीवति ॥ १५ ॥

जो रोगी अपनी दोनों जंघाओंको कटकट बजावे और पांवको उठा २ जमीनपर फेंके और अपने मुखको बारबार फिरावे वह रोगी अवश्य मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ १५ ॥

दन्तैश्छिन्दन्नखाग्राणिनखैश्छिन्दञ्शिरोरुहान् ।
काष्ठेनभूमिंविलिखन्नरोगात्परिमुच्यते ॥ १६ ॥

जो रोगी दांतोंसे अपने नखोंको काटे और नखोंसे अपने शिरके वालोंको उखाडे एवं लकडीसें जमीनको खुरेदे वह रोगी अवश्य मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ १६ ॥

दन्तान्खादतियोजाग्रदसाम्नाविरुदन्हसन् ।
विजानातिनचेद्दुःखंनसरोगाद्विमुच्यते ॥ १७ ॥

जो रोगी अपनी जाग्रत् अवस्थामें दांतोंको पीसे और ऊंचे स्वरसे रोवें तथा हँसे और अपने शरीरके किसीप्रकारके दुःखोंका होश न हो वह रोगी रोगसे नहीं बचसकता अर्थात् मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ १७ ॥

मुहुर्हसन्मुहुःक्ष्वेडञ्शय्यांपादेनहन्तियः ।
उच्चैश्छिद्राणिविमृशन्नातुरोनसजीवति ॥ १८ ॥

जो रोगी बारबार हंसे और चीख मारे,पैरोंसे अपनी शय्याको खराब करे तथा

अपने हाथोंसे नाक कान आंख आदि छिद्रोंको मर्दन करे या छूता जाय उसको मरणासन्न जानना चाहिये ॥ १८ ॥

यैर्विन्दतिपुराभावैःसमेतैःपरमांरतिम् ।
तैरेवारममाणस्यग्लास्नोर्मरणमादिशेत् ॥ १९ ॥

जो भाव रोगीको अपनी रोगावस्थासे पहिले उत्तम प्रतीत होते हों, जो २ वस्तुएँ अत्यन्त प्रिय हों वह सब जिस रोगीको बुरी और ग्लानिकारक प्रतीत होनेलगें उसकी अवश्य मृत्यु होती है ॥ १९ ॥

नबिभर्तिशिरोग्रीवांनपृष्ठंभारमात्मनः ।
नहनूपिण्डमास्यस्थमातुरस्यमुमूर्षतः ॥ २० ॥

जिस रोगीकी गर्दन शिरके भारको न संभाल सके और पीठ शरीरके भारको न संभाल सके और ठोडी मुखके भारको न सँभालसके वह रोगी अवश्य मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ २० ॥

सहसाज्वरसन्तापस्तृष्णामूर्च्छाबलक्षयः ।
विश्लेषणञ्चसन्धीनांमुमूर्षोरुपजायते ॥ २१ ॥

जिस रोगीको एकाएकी ज्वर, संताप, प्यास, मूर्च्छा, बलकी क्षीणता, संधियोंका ढीला हो जाना यह सब लक्षण होजायँ उसकी मृत्यु होतीहै ॥ २१ ॥

गोसर्गेवदनाद्यस्यस्वेदःप्रच्यवतेभृशम् ।
लेपज्वरोपतप्तस्यदुर्लभंतस्यजीवितम् ॥ २२ ॥

जिस प्रलेपक ज्वरवाले रोगीके मुखसे प्रातःकाल गौओंको छोडनेके समय अत्यंत पसीना टपकने लगे और वह प्रलेपक ज्वरसे पीडित हो तो उसका जीता रहना कठिन है ॥ २२ ॥

नोपैतिकण्ठमाहारोजिह्वाकण्ठमुपैति च ।
आयुष्यन्तंगतेजन्तोर्बलञ्चपरिहीयते ॥ २३ ॥

जिस रोगीकी जीभ कण्ठमें चलीगई हो, बल क्षीण होगया हो और आहार कण्ठसे नीचे न जा सकता हो उस रोगीकी आयुको नष्ट जानना चाहिये ॥ २३ ॥

शिरोविक्षिपतेकृच्छ्रान्मुञ्चयित्वाप्रपाणिकौ ।
ललाटप्रस्रुतस्वेदोमुमूर्षुःश्लथबन्धनः ॥ २४ ॥

जो रोगी बडी कठिनतासे अपने दोनों हाथोंको शिरके ऊपर रखकर शिरको

बडे कष्टसे इधर उधर हिलासके और उसके मस्तकसे अत्यन्त पसीना निकलने लगे, शरीरके बंधन ढीले पडजायँ तो उस रोगीको मृत्युवश जानना ॥ २४ ॥

तत्रश्लोकः ।

इमानिलिङ्गानि नरेषुबुद्धिमान्विभावयेतावहितोमुहुर्मुहुः ।
क्षणेनभूत्वाह्यपयान्तिकानिचिन्नचाफलंलिङ्गमिहास्तिकिञ्चन ॥ २५ ॥

इति चरकसंहितायामिन्द्रियस्थानेऽवाक्शिरसीयमिन्द्रियं समाप्तम् ॥ ८ ॥

अब अध्यायके उपसंहारमें एक श्लोक है बुद्धिमान् वैद्य मनुष्योंमें इन लक्षणोंको देखकर वारवार अपने अनुभवको सावधानीसे पुष्ट करता जाय क्योंकि बहुतसे ऐसेभी लक्षण होते हैं जो थोडेसे काल रहकर फिर नष्ट होजाते हैं । और कोई लक्षण ऐसे होतेहैं जो निष्फल नहीं जाते अर्थात् अवश्य मृत्युके करनेवाले होते हैं इसलिये सावधानीसे परीक्षा करतेहुए अपने अनुभवको पुष्ट कर लेना चाहिये २५॥

इति श्रीमहर्षिचरक० इन्द्रियस्थाने भाषाटीकायामवाक्शिरधीयमिन्द्रियं नामाष्टमोऽध्यायः ८॥

नवमोऽध्यायः ।

अथातोयस्यश्यावनिमित्तीयमिन्द्रियंव्याख्यास्याम इति हस्माह भगवानात्रेयः ।

अब हम यस्यश्यावनिमित्तीय इन्द्रियाध्यायकी व्याख्या करते हैं इसप्रकार भगवान् आत्रेयजी कथन करनेलगे ।

यस्यश्यावेपरिध्वस्तेहारितेचापिदर्शने ।
आपन्नोव्याधिरन्तायज्ञेयस्तस्यविजानता ॥ १ ॥

जिस रोगीके दोनों नेत्र श्याम, अथवा हरे और टेढे अथवा शिथिल होजायँ बुद्धिमान् वैद्य उसकी व्याधिको उसके नाशके लिये उपस्थित जाने ॥ १ ॥

निःसंज्ञःपरिशुष्कास्यःसंविद्धोव्याधिभिश्चयः ।
उपरुद्धायुषंज्ञात्वातंधीरःपरिवर्जयेत् ॥ २॥

जिस रोगीकी संज्ञा (होश) नष्ट होजाय, मुख सूखजाय और व्याधियोंसे अत्यन्त संविद्ध हो उस रोगीको गतायु समझ लेना चाहिये ॥ २ ॥

हरिताश्चशिरायस्यलोमकपाश्चसंवृताः ।
सोऽम्लाभिलाषीपुरुषःपित्तान्मरणमश्नुते ॥ ३ ॥

जिस रोगीकी सब नसें हरी होगई हों और संपूर्ण रोममार्ग बंद होगये हों और खटाई खानेकी इच्छा रखता हो वह मनुष्य पित्तरोगसे मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ ३ ॥

शरीरान्ताश्चशोभन्तेशरीरञ्चोपशुष्यति ।
बलञ्चहीयतेयस्यराजयक्ष्माहिनास्तितम् ॥ ४ ॥

जिस रोगीके शरीरके सब अंग शोभायुक्त प्रतीत हों और शरीर सूखा हो तथा उस मनुष्यका बल नष्ट होगया हो वह राजयक्ष्मावाला रोगी अवश्य मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ ४ ॥

अंसाभितापोहिक्काचछर्दनंशोणितस्यच ।
आनाहःपार्श्वशूलश्चभवत्यन्तायशोषिणः ॥ ५ ॥

जिस शोषरोगीके दोनों पार्श्वभागोंमें शूल होता हो तथा अफारा, हिचकी, रुधिरकी छर्दि और कंधोंमें पीडा होती हो वह अवश्य मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ ५ ॥

वातव्याधिरपस्मारीकुष्ठीशोफीतथोदरी । गुल्मीचमधुमेहीचराजयक्ष्मीचयोनरः ॥ ६ ॥ अचिकित्स्याभवन्त्येतेबलमांसक्षयेसति । अन्येष्वपिविकारेषुतान्भिषक्परिवर्जयेत् ॥ ७ ॥

वातव्याधि, अपस्मार, कुष्ठ, सूजन, उदर, गुल्म, मधुमेह और राजयक्ष्मा इन रोगोंमेंसे किसी एक रोगवालेका बल और मांस क्षीण होजायँ तो वह चिकित्साके योग्य नहीं रहता। इसीप्रकार अन्य विकारोंमें भी बल और मांसके क्षीण होजानेपर प्रायः रोग असाध्य होजातेहैं ॥ ६ ॥ ७ ॥

विरेचनहृतानाहोयस्तृष्णानुगतोनरः ।
विरिक्तःपुनराध्मातियथाप्रेतस्तथैवसः ॥ ८ ॥

जिस रोगीको विरेचन होनेके अनन्तर अफारा दूर होनेपर अधिक प्यास लगे अथवा विरेचन होनेके पीछे फिर अफारा उत्पन्न होजाय वह रोगी अवश्य मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ ८ ॥

पेयंपातुंनशक्नोतिकण्ठस्यचमुखस्यच ।
उरसश्चविबद्धत्वाद्योनरोनसजीवति ॥ ९ ॥

जिस रोगीका कण्ठ, मुख और छाती यह बिलकुल रुकजायँ और वह जल, दूध आदि पतले पदार्थोंको भी न पीसकें उसकी अवश्य मृत्यु होतीहै ॥ ९ ॥

स्वरस्यदुर्बलीभावंहानिश्चबलवर्णयोः ।
रोगवृद्धिमयुक्त्याचदृष्ट्वामरणमादिशेत् ॥ १० ॥

जिस रोगीका स्वर हीन होजाय, बल और वर्ण नष्ट होजायँ और रोगकी वृद्धि होतीचलीजाय उसको विनाही किसी परीक्षाके मरनेवाला जानना चाहिये ॥१०॥

ऊर्द्ध्वश्वासंगतोष्माणंशूलोपहतवंक्षणम् ।
शर्मचानधिगच्छन्तंबुद्धिमान्परिवर्जयेत् ॥ ११ ॥

जिस रोगीके ऊर्द्ध्वश्वास चलनेलगे शरीर शीतल पडजाय, दोनों वंक्षणोंमें अत्यंत शूल होनेलगे और किसीप्रकार भी शान्तिको प्राप्त न हो ऐसे रोगीको बुद्धिमान् त्याग देवे ॥ ११ ॥

अपस्वरंभाषमाणंप्राप्तंमरणमात्मनः ।
श्रोतारश्चाप्यशब्दस्यदूरतःपरिवर्जयेत् ॥ १२ ॥

जो रोगी अनेक प्रकारके विनाहुए शब्दोंको सुने और अपने मुखसे आप ही अपनी मृत्युको हतस्वरसे होनेवाली कथन करताहो उस रोगीको त्याग देना चाहिये॥१२॥

यंनरंसहसारोगोदुर्बलंपरिमुञ्चति । संशयप्राप्तमात्रेयोजीवितंतस्य मन्यते॥१३॥अथचेज्ज्ञातयस्तस्ययाचेरन्प्रणिपातत: । रसेनाद्या- दितिब्रूयान्नास्मैदद्याद्विशोधनम् ॥१४॥ मासेनचेन्नदृश्येतविशेष- स्तस्यशोभनः । रसैश्चान्यैर्बहुविधैर्दुर्लभंतस्यजीवितम् ॥ १५ ॥

जिस अत्यंत दुर्बल रोगीको झट एकसाथ रोग छोडकर अलग होजाय उसका जीवन संशययुक्त ही जानना चाहिये यदि ऐसे समय रोगीके घरवाले वैद्यसे अधिक प्रार्थना करें कि, इसकी चिकित्सा कीजिये तो उनको कहे कि इसको मांसरस या विधिवत् बनायाहुआ यवोंका रस पीनेको दो परंतु ऐसे मनुष्यको विशोधन नहीं देना चाहिये । यदि उस रोगीको अनेक प्रकारके रस आदिकोंके सेवनसे एक महीने भी कुछ फायदा प्रतीत न हो तो उसका जीवन दुर्लभ समझकर त्याग देवे ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥

निष्ठ्यूतञ्चपुरीषञ्चरेतश्चाम्भसिमज्जति ।
यस्यतस्यायुषःप्राप्तमन्तमाहुर्मनीषिणः ॥ १६ ॥

जिस रोगीका थूक, पुरीष और वीर्य जलमें डूबजाय बुद्धिमान् उस रोगीका अंत आयाहुआ कथन करतेहैं ॥ १६ ॥

निष्ठ्यूतेयस्यदृश्यन्तेवर्णाबहुविधाः पृथक् ।
तच्चसीदत्यपःप्राप्यनसजीवितुमर्हति ॥ १७ ॥

जिस रोगीका थूक अलग २ अनेक वर्णोंवाला दिखाई दे और जलमें डालनेसे डूबजाय वह रोगी अवश्य मृत्युको प्राप्त होता है ॥ १७ ॥

पित्तमुष्मानुगंयस्यशंखौप्राप्यविमूर्च्छति ।
सरोगःशंखकोनाम्नात्रिरात्राद्धन्तिजीवितम् ॥ १८ ॥

जिसके पित्त ऊष्माको लेकर दोनों कनपटियोंमें प्राप्त होकर विमूर्च्छित होजाय उसको शंखके रोग कहतेहैं । (इस रोगमें कनपटियें अत्यंत चटकती हैं और उनमें अत्यंत दारुण शूल उत्पन्न होजाताहै) इससे रोगी तीन दिनमें मरजाताहै ॥ १८॥

सफेनंरुधिरंयस्यमुहुरास्यात्प्रमुच्यते ।
शूलैश्चतुद्यतेकुक्षिःप्रत्याख्येयःसतादृशः ॥ १९ ॥

जिस रोगीके मुखसे झाग मिलाहुआ रक्त वारंवार गिरे और उस रोगीकी कूखमें अत्यंत शूल होता हो उस रोगीको मरजानेवाला जानना चाहिये ॥ १९ ॥

बलमांसक्षयस्तीव्रोरोगवृद्धिररोचकः ।
यस्यातुरस्यलक्ष्यन्तेत्रीनहान्नसजीवति ॥ २० ॥

जिस रोगीका बल और मांस क्षीण होगया हो और रोग सहसा बढकर तीव्र होजाय तथा अरुचि हो वह रोगी तीन दिनमें मरजाताहै ॥ २० ॥

तत्रश्लोकौ ।

विज्ञानानिमनुष्याणांमरणेप्रत्युपस्थिते । भवन्त्येतानिसम्पश्ये-दन्यान्येवंविधानिच ॥ २१ ॥ तानिसर्वाणिलक्ष्यन्तेनतुसर्वाणि मानवम् । विशन्तिविनशिष्यन्तंतस्माद्बोध्यानिसर्वशः ॥ २२ ॥

इति चरकसंहितायामिन्द्रियस्थाने यस्यश्यावनिमित्तीयमिंद्रियं समाप्तम्॥९॥

यहां अध्यायके उपसंहारमें दो श्लोक हैं जब मनुष्योंका मरणसमय आजाता है उस समय ऐसे२ लक्षण उत्पन्न होतेहैं तथा इसी प्रकारके और भी लक्षण उत्पन्न होतेहैं सो वैद्यको चाहिये कि इन मरणरूपावरक सब प्रकारके लक्षणोंको विज्ञानपू-

र्वक सावधानीसे देखा करें । सब लक्षण एक ही मनुष्यमें नहीं होसकते इसलिये अनेक मरणासन्न मनुष्योंमें सब प्रकारके लक्षणोंको सावधानीसे देखना चाहिये ॥ २१ ॥ २२ ॥

इति श्रीमहर्षिचरक० इन्द्रि० स्था० भाषाटी० यस्यश्यावनिमित्तीयं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः ।

अथातः सद्योमरणीयमिन्द्रियंव्याख्यास्याम इतिहस्माहभगवानात्रेयः ।

अब हम सद्योमरणीय इन्द्रियाध्यायकी व्याख्या करते हैं इसप्रकार भगवान् आत्रेयजी कथन करनेलगे ।

सद्यस्तितिक्षतःप्राणान्लक्षणानिपृथक्पृथक् ।
अग्निवेश ! प्रवक्ष्यामिसंस्पृष्टोयैर्नजीवति ॥ १ ॥

हे अग्निवेश! जिन लक्षणोंके स्पर्शमात्रसे ही मनुष्यकी शीघ्र मृत्यु होजातीहै उन् प्राणोंके नष्ट करनेवाले लक्षणोंको हम अलग २ वर्णन करतेहैं ॥ १ ॥

वाताष्ठीलाः सुसंवृत्तास्तिष्ठन्तिदारुणाहृदि ।
तृष्णयाभिपरीतस्यसद्योमुष्णातिजीवितम् ॥ २ ॥

जिस मनुष्यके शरीरमें वाताष्ठीला रोग बढकर हृदयमें दारुणभावसे स्थित होजाय तथा उसको अधिक प्यास लगनेलगे तो वह रोगी शीघ्र मरजाताहै ॥२॥

पिण्डिकेशिथिलीकृत्यजिह्मीकृत्यचनासिकाम् ।
वायुःशरीरेविचरन्सद्योमुष्णातिजीवितम् ॥ ३ ॥

जिस रोगीके शरीरमें वायु दोनों पिण्डालियोंको शिथिल करके नाकको टेढा बनादेवे तथा शरीरमें विचरण करनेलगजाय वह रोगी शीघ्र मृत्युको प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

भ्रुवौयस्यच्युतेस्थानादन्तर्दाहश्चदारुणः ।
तस्यहिक्काकरोरोगस्सद्योमुष्णातिजीवितम् ॥ ४ ॥

जिस रोगीकी दोनों भौंहें अपने स्थानसे हटजांय शरीरमें अत्यंत दारुण अन्तर्दाह हो और हिचकी अधिक आनेलगे वह रोगी शीघ्र मरजाताहै ॥ ४ ॥

क्षीणशोणितमांसस्यवायुरूर्द्धगतिश्चरन् ।
उभेमन्येसमेयस्यसद्योमुष्णातिजीवितम् ॥ ५ ॥

जिस रोगीके रक्त और मांस क्षीण होगये हों तथा वायु ऊर्ध्वगतिसे चलनेलगें और दोनों मन्या (ठोडीकी दोनों ओरकी नाडियें) अकडजायँ वह मनुष्य शीघ्र मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ ५ ॥

अन्तरेणगुदंगच्छन्नाभिश्चसहसानिलः ।
कृशस्यवंक्षणौगृह्णन्सद्योमुष्णातिजीवितम् ॥ ६ ॥

यदि क्षीण रोगीके शरीरमें वायु गुदासे नाभिमें होतीहुई दोनों वंक्षणोंको ग्रहण करे अर्थात् गुदामेंसे वायु उठकर नाभिमें प्रवेश करतीहुई दोनों वंक्षणों (वंक्षी) है। दारुण पीडाको उत्पन्न करे तो वह मनुष्य शीघ्र मरजाताहै ॥ ६ ॥

वितत्यपर्शुकाग्राणिगृहीत्वोरश्चमारुतः ।
स्तिमितस्यायताक्षस्यसद्योमुष्णाति जीवितम् ॥ ७ ॥

जिस रोगीके दोनों पांसुओंका अग्रभाग वायुसे फैलजाय तथा उसकी छातीको वायु रुककर अत्यन्त पीडा उत्पन्न करे उस पीडासे रोगीका संपूर्ण शरीर गीला होजाय और आंखें वडी २ खुलजायँ तो उस रोगीका शीघ्र मरण होताहै ॥७ ॥

हृदयञ्चगुदञ्चोभेगृहीत्वामारुतोबली ।
दुर्बलस्यविशेषेणसद्योमुष्णातिजीवितम् ॥ ८ ॥

यदि दुर्बल रोगीके हृदयको और गुदाको रोककर बलवान् वायु अत्यंत पीडा उत्पन्न करे तो वह रोगी शीघ्र अपने जीवनको त्यागदेताहै ॥ ८ ॥

वंक्षणौचगुदञ्चोभेगृहीत्वामारुतोबली ।
श्वासंसञ्जनयञ्जन्तोःसद्योमुष्णातिजीवितम् ॥ ९ ॥

यदि बलवान् वायु दोनों वंक्षण और उत्तरगुद तथा अधोगुदको रोककर उनमें अत्यंत पीडा करताहुआ श्वासको उत्पन्नकर देवे तो रोगीके प्राणोंको शीघ्र नष्टकर देताहै ॥ ९ ॥

नाभिंवस्तिंशिरोमूत्रं पुरीषञ्चापिमारुतः ।
विबध्यजनयञ्छूलंसद्योमुष्णातिजीवितम् ॥ १० ॥

यदि बलवान् वायु मनुष्यके नाभि, बस्ति, शिर, मूत्र और पुरीषको रोककर दारुण शूलको उत्पन्न करदेवे तो मनुष्यका जीवन शीघ्र नष्ट होजाताहै ॥ १० ॥

भिद्येतवंक्षणौयस्यवातशूलैःसमन्ततः ।
भिन्नंपुरीषंतृष्णाचसद्यःप्राणाञ्जहातिसः ॥ ११ ॥

जिस रोगीके दोनों वंक्षणों जांघोंकी सन्धियोंमें वायुके शूलोंसे सर्वतः अत्यन्त भेद (काटनेकीसी पीडा) होतीहो तथा साथही दस्तोंका लगना, और दारुण प्यास भी हो वह मनुष्य शीघ्र अपने जीवनको त्याग देताहै ॥ ११ ॥

आप्लुतंमारुतेनेहशरीरंयस्यकेवलम् ।
भिन्नंपुरीषंतृष्णाचसद्योजह्यात्सजीवितम् ॥ १२ ॥

जिस मनुष्यका शरीर केवल वायुके वेगसेही पसीनेसे भीग जाय और साथमें दस्तोंका वेग तथा प्यास भी हो वह शीघ्र अपने जीवनको त्याग देताहै ॥ १२ ॥

शरीरंशोफितंयस्यवातशोफेनदेहिनः ।
भिन्नंपुरीषंतृष्णाचसद्योजह्यात्सजीवितम् ॥ १३ ॥

जिस मनुष्यका शरीर वायुकी सूजनसे सूजाहुआ हो और उसको दस्त तथा प्यासकी भी अधिकता होजाय तो वह मनुष्य शीघ्र ही मृत्युको प्राप्त होताहै॥१३

आमाशयसमुत्थानायस्यस्यात्परिकर्तिका ।
तृष्णागुदग्रहश्चोग्रःसद्योजह्यात्सजीवितम् ॥ १४ ॥

जिस मनुष्यके आमाशयमें मांस काटनेकी सी पीडा हो और अधिक प्यास तथा गुदामें उग्र पीडा भी साथमें प्रगट होजाय वह मनुष्य शीघ्र ही मरजाताहै॥१४॥

पक्वाशयमधिष्ठायहत्वासंज्ञांश्चमारुतः ।
कण्ठेघुर्घुरकंकृत्वासद्योहरतिजीवितम् ॥ १५॥

जिस मनुष्यके पक्वाशयमें बलवान् वायु प्रविष्ट होकर संज्ञाको नष्ट कर देताहै अर्थात् बेहोश करदेताहै और कण्ठमें घुरघुर शब्द करने लगताहै वह मनुष्य शीघ्र मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ १५ ॥

दन्ताःकर्दमवर्णाभामुखंचूर्णकसन्निभम् ।
शिप्रायन्तेचगात्राणिलिङ्गंसद्योमरिष्यतः ॥ १६ ॥

जिस रोगीके दांतोंपर कीचडसा लगा हो और सफेद चूनासा बुरका प्रतीत होता हो तथा मुख भी चूनेके समानसफेत होगया हो तथा सब अंग पसीनेसे युक्त हों और शिथिल होजायँ उसे शीघ्र मरनेवाला जानना ॥ १६ ॥

तृष्णाश्वासशिरोरोगमोहदौर्बल्यकूजनैः ।
स्पृष्टःप्राणाञ्जहात्याशुशकृद्भेदेनचातुरः ॥ १७ ॥

यदि दुर्बल रोगीको प्यास, श्वास, शिरोरोग, मोह, क्षीणिता, कण्ठका कूजन एक साथ होजायँ तथा दस्त लगनेलगे वह रोगी शीघ्र अपने प्राणोंको त्याग देताहै ॥ १७ ॥

तत्रश्लोकः ।

एतानिखलुलिङ्गानियःसम्यगवबुध्यते ।
सजीवितञ्चमर्त्यानांमरणञ्चावबुध्यते ॥ १८ ॥

इति चरकसंहितायामिन्द्रिय० सद्योमरणीयमिंद्रियं समाप्तम् ॥१०॥

यहां अध्यायके उपसंहारमें एक श्लोक है । जो वैद्य इन संपूर्ण लक्षणोंको भले प्रकार जानताहै वह मनुष्योंके जीवन और मरणको भी अच्छीतरह जानलेताहै १८

इति श्रीमहर्षिचरक० इंद्रियस्थाने भा०टी० सद्योमरणीयमिन्द्रियं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः ।

अथातोऽणुज्योतीयमिन्द्रियं व्याख्यास्याम इति हस्माह भगवानात्रेयः ।

अब हम अणुज्योतीय इन्द्रियनामक अध्यायकी व्याख्या करतेहैं इसप्रकार भगवान् आत्रेयजी कहनेलगे ।

अणुज्योतिरनेकाग्रोदुश्छायोदुर्मनाःसदा ।
रतिंनलभतेयातिपरलोकंसमान्तरे ॥ १ ॥

जिस मनुष्यकी ज्योति (कान्ति) क्षीण होजाय, चित्तमें अनेक प्रकारके संकल्प विकल्प उत्पन्न हों, शरीरकी छाया हीन लक्षणोंवाली होजाय, मन खिन्नसा रहे, किसी समय किसी वस्तुमें भी प्रीति न हो वह मनुष्य एक वर्षके भीतर परलोककी यात्रा करताहै ॥ १ ॥

बलिंबलिभुजोयस्यप्रणीतंनोपभुञ्जते ।
लोकान्तरगतःपिण्डंभुङ्क्तेसंवत्सरेणसः ॥ २ ॥

जिस मनुष्यके हाथकी दी हुई बालि काग, कुत्ते आदि न खातेहों वह मनुष्य एक वर्षके भीतरही परलोकमें प्राप्त हो प्रेतत्वके पिंडको ग्रहण करताहै ॥ २ ॥

सप्तर्षीणांसमीपस्थांयोनपश्यत्यरुन्धतीम् ।
संवत्सरान्तेजन्तुःससम्पश्यतिमहत्तमः ॥ ३ ॥

जो मनुष्य सामने आये हुए सप्तऋषियों (तुलालग्नमें उदय होनेवाले साततारों) को और अरुंधतीको नहीं देखसकता वह मनुष्य एक वर्षके भीतरही यमलोकका दर्शन करताहै ॥ ३ ॥

विकृत्याविनिमित्तंयःशोभामुपचयंधनम् ।
प्राप्नोत्यतोवाविभ्रंशसमान्तंनसजीवति ॥ ४ ॥

जिस मनुष्यके शोभा, स्वभाव, पुष्टि, धन, विना ही कारणसे एकाएक अपने स्वभावको छोडकर बदलजायँ अर्थात् विकृत होजायँ वह मनुष्य एक वर्षके भीतर मृत्युको प्राप्त होजाताहै ॥ ४ ॥

भक्तिःशीलंस्मृतिस्त्यागोबुद्धिर्बलमहेतुकम् ।
षडेतानिनिवर्त्तन्तेषड्भिर्मासैर्मरिष्यतः ॥ ५ ॥

जिस मनुष्यके भक्ति, शील (स्वभाव), स्मृति, त्याग, बुद्धि और बल यह विनाही कारणसे बदलजायँ उस मनुष्यकी छः महीनेके भीतर मृत्यु होतीहै ॥ ५ ॥

धमनीनामपूर्वाणांजालमत्यर्थशोभनम् ।
ललाटेदृश्यतेयस्यषण्मासान्नसजीवति ॥ ६ ॥

जिस मनुष्यके ललाटपर अपूर्व और सुन्दर नसोंका जाल दिखाई देने लगताहै वह मनुष्य छः महीनेमें मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ ६ ॥

लेखाभिश्चन्द्रवक्राभिर्ललाटमुपचीयते ।
यस्यतस्यायुषः षड्भिर्मासैरन्तंसमादिशेत् ॥ ७ ॥

जिस मनुष्यके मस्तकमें चन्द्रमाके समान एक ऊंची रेखासी उठ खडी हो वह मनुष्य छः महीनेमें मरजाताहै ॥ ७ ॥

शरीरकम्पःसंमोहोगतिर्वचनमेवच ।
मत्तस्येवोपलक्ष्यन्तेयस्यमासंनजीवति ॥ ८ ॥

जिस मनुष्यका शरीर कांपने लगजाय और बेहोशी उत्पन्न होजाय तथा चलने और बोलनेकी गति विगडजाय वह मनुष्य एक महीनेमें मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ ८ ॥

रेतोमूत्रपुरीषाणियस्यमज्जान्तिचाम्भसि ।
समासात्स्वजनद्वेष्टामृत्युवारिणिमज्जति ॥ ९ ॥

जिस मनुष्यका वीर्य, मूत्र और मल जलमें डूबजाताहै और अपने मित्रोंको भी द्वेषभावसे देखने लगताहै वह मनुष्य एक महीनेमें मृत्युको प्राप्त होजाताहै ॥ ९ ॥

हस्तपादंमुखञ्चोभौविशेषाद्यस्यशुष्यतः ।
शूयेतेवाविनादेहात्सचमासंनजीवति ॥ १० ॥

जिस मनुष्यके हाथ, पांव, मुख यह विशेषकर सूखजायँ अथवा इनमें सूजन उत्पन्न होजाय परन्तु वह सूजन और देहमें न हो वह मनुष्य एक महीनेमें मृत्युको प्राप्त होजाताहै ॥ १० ॥

ललाटेमूर्ध्निबस्तौवानीलायस्यप्रकाशते ।
राजीबालेन्दुकुटिलानसजीवितुमर्हति ॥ ११ ॥

जिस मनुष्यके ललाट और मूर्धा (शिर) तथा वस्तिमें बालचंद्रमाके समान नीले रंगकी और टेढी रेखा उत्पन्न होजाय वह मनुष्य अवश्य मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ ११ ॥

प्रवालगुटिकाभासायस्यगात्रमसूरिकाः ।
उत्पाद्याशुविनश्यन्तिनाचिरात्सविनश्यति ॥ १२ ॥

जिस मनुष्यके शरीरमें मूंगेके वर्णवाली गोल मसूरिका (शीतल,) बहुतसी निकल आवें और वह जल्दी सूखें नहीं तो वह रोगी अवश्य मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ १२ ॥

ग्रीवावमर्दोबलवाञ्जिह्वाश्वयथुरेवच ।
ब्रध्नास्यगलपाकश्चयस्यपक्षंतमादिशेत् ॥ १३ ॥

जिस मनुष्यकी गर्दनमें अत्यंत पीडा होती हो तथा जीभ सूजजाय, बधें निकल आवें गला पकजाय वह मनुष्य अवश्यही शरीरके अंतको प्राप्त होताहै ॥ १३ ॥

संभ्रमोऽतिप्रलापोऽतिभेदोऽस्थ्नामतिदारुणः ।
कालपाशपरीतस्यत्रयमेतत्प्रवर्तते ॥ १४ ॥

जो रोगी कालरूपी फं[illegible]से बंधजाताहै उसको भ्रम, प्रलाप, और हड्डियोंका टना यह तीनोंही अति[illegible]रुणरूपसे प्रगट होजाते हैं ॥ १४ ॥

प्रमुह्यल्लुँञ्चयेत्केशान्परान्गृह्णात्यतीवच ।
नरःस्वस्थवदाहारमबलः कालचोदितः ॥ १५ ॥

जो मनुष्य बेहोशीको प्राप्त होकर अपने केशोंको उखाडता है तथा अन्य मनुष्योंसे लिपट जाताहै एवं रुग्णावस्थामें भी रोगरहित मनुष्योंके समान बहुत भोजन करताहै वह क्षीण मनुष्य अवश्य मृत्युको प्राप्त होता है ॥ १५ ॥

समीपेचक्षुषोःकृत्वामृगयेतांगुलीयकम्। स्मयतेऽपिचकालान्धऊर्द्ध्वाक्षोऽनिमिषेक्षणः ॥ १६ ॥ शयनाद्रसनादङ्गात्काष्ठात्कुड्यादथापिवा । असन्मृगयतेकिञ्चित्ससुह्यन्कालचोदितः ॥ १७ ॥

जो रोगी अपने हाथोंकी अंगुलियोंको नेत्रोंके समीप लेजाकर उनको वारवार देखे और विस्मितके समान ऊपरको नेत्र करके किसी विचित्र अवस्थाको देखे तथा पलक न झपके अथवा अपनी शय्यामें वा अंगोंमें अथवा किसी काष्ठ या दीवार आदिमें जैसे किसी खोयी हुई वस्तुको ढूंढा करते हैं इस तरह वारवार टटोलें और बेहोश होजाय वह मनुष्य कालका प्रेरा हुआ जानना चाहिये ॥ १६ ॥१७॥

आहास्यहसनोमुह्यन्प्रलेढिदशनच्छदौ ।
शीतपादकरोच्छ्वासोयोनरोनसजीवति ॥ १८ ॥

जो रोगी विना ही कारण हंसे, विना ही किसी कारणके बेहोश होजाय तथा अपने दांतोंको और होठोंको जीभसे चाटे, जिसके हाथ और पांव ठण्डे हों तथा जो दीर्घ श्वास लेता हो वह मनुष्य अवश्य मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ १८ ॥

आह्वायन्तंसमीपस्थंस्वजनंजनमेववा ।
महामोहावृतमनाःपश्यन्नपिनपश्यति ॥ १९ ॥

जो रोगी अपने समीप बैठेहुए बांधवोंको भी अमुक कहां हैं अमुक कहां हैं इस प्रकार बुलावे और मनके महामोहावृत होनेके कारण देखता हुआ भी न देखे अथवा अपने पास बैठे हुए बांधवोंको भी न देखकर महामोहसे व्याकुल हो और वारंवार बुलावे वह अवश्य मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ १९ ॥

अयोगमतियोगंवाशरीरेमतिमान्भिषक् ।
खादीनांयुगपद्दृष्ट्वाभेषजंनावचारयेत् ॥ २० ॥

जिस रोगीके शरीरमें पांचभौतिक पदार्थोंको हीन देखे अथवा अत्यंत बढे देखे उसकी चिकित्सा न करे ॥ २० ॥

अतिप्रवृद्धयारोगाणांमनसश्चबलक्षयात् ।
वासमुत्सृजातिक्षिप्रंशरीरीदेहसंज्ञकम् ॥ २१ ॥

रोगोंके अत्यंत बढकर बलवान् होनेसे, मन और बलके क्षीण हो जानेसे जीव देहरूपी घरको छोडकर शीघ्र बाहर होजाताहै ॥ २१ ॥

वर्णस्वरावग्निबलंवागिन्द्रियमनोबलम् ।
हीयतेऽसुक्षयेनिद्रानित्याभवतिवानवा ॥ २२ ॥

जब मनुष्यके वर्ण, स्वर, अग्नि, बल, वाणी, इन्द्रिय और मन इनका बल क्षीण होजाताहै तब वह मनुष्य या तो अधिक सोता ही रहताहै अथवा जागताही रहता है तब इस मनुष्यके प्राण शीघ्र नष्ट होजाते हैं ॥ २२ ॥

भिषग्भेषजपानान्नगुरुमित्राद्विषश्चये ।
वशगाःसर्वएवैतेबोद्धव्याःसमवर्त्तिनः ॥ २३ ॥

जो मनुष्य-वैद्य, औषधि, अन्न, पान, माता, पिता आदि गुरुजन, और मित्र आदिकोंसे द्वेष करने लगते हैं कालवश हुए इस प्रकारके मनुष्य एक वर्षके भीतर मृत्युको प्राप्त होजाते हैं ॥ २३ ॥

एतेषुरोगःक्रमतेभेषजंप्रतिहन्यते ।
नैषामन्नानिभुञ्जीतनचोदकमपिस्पृशेत् ॥ २४ ॥

इस प्रकार असाध्य रोगियोंको औषध नहीं देना चाहिये और न इनके अन्न और जलका स्पर्श करना चाहिये ॥ २४ ॥

पादाःसमेताश्चत्वारःसम्पन्नाःसाधकैर्गुणैः ।
व्यर्थागतायुषोद्रव्याद्विनानास्तिगुणोदयः ॥ २५ ॥

यदि एकत्रित औषध, वैद्य, परिचारक, रोगी यह सब चिकित्साके चारों पाद साधकगुणोंसे सम्पन्न भी हों तो भी आयुरहित मनुष्यकी चिकित्सा करना वृथा है । जैसे-औषधके विना गुण नहीं रह सकता उसी प्रकार आयुके विना चिकित्सा भी निष्फल है ॥ २५ ॥

परीक्ष्यमायुर्भिषजानीरुजस्यातुरस्यच ।
आयुर्वेदफलंकृत्स्नमायुर्देह्यनुवर्त्तते ॥ २६ ॥

वैद्यको चाहिये कि रोगी तथा नीरोग मनुष्यके आयुकी परीक्षा करके ही चिकित्सा करे । क्योंकि सम्पूर्ण आयुर्वेदका फल आयु ही है । वह आयु देहके

अधीन है इसलिये रोगीका देह तथा आयुकी परीक्षा कर चिकित्सामें प्रवृत्त होना चाहिये ॥ २६ ॥

तत्रश्लोकः ।

क्रियापथमतिक्रान्ताःकेवलंदेहमाप्लुताः ।
चिह्नंकुर्वंतियद्दोषास्तदरिष्टंनिरुच्यते ॥ २७ ॥

इति चरकसंहितायामिन्द्रियस्थानेऽणुज्योतीयमिंद्रियं समाप्तम्॥११॥

यके उपसंहारमें श्लोक है-कि वातादि दोष क्रियामार्गसे अतिक्रान्त हों अर्थात् चिकित्सा द्वारा सिद्ध होनेवाले न रहकर केवल शरीरमें प्राप्त होकर जिन लक्षणोंको करते हैं उनको अरिष्ट कहते हैं । अर्थात् अवश्य मृत्यु करनेवाले लक्षणोंको अरिष्ट कहते हैं ॥ २७ ॥

इति श्रीमहर्षिचरक० इन्द्रियस्थाने भा० टी० अणुज्योतीयमिन्द्रियं नामैकादशोऽध्यायः॥११॥

द्वादशोऽध्यायः ।

अथातो गोमयचूर्णीयमिन्द्रियं व्याख्यास्यामः इति हस्माह भगवानात्रेयः ।

अब हम गोमयचूर्णीय नामक इन्द्रियाध्यायकी व्याख्या करते हैं इसप्रकार भगवान् आत्रेयजी कथन करने लगे ।

यस्यगोमयचूर्णाभंचूर्णमूर्द्धनिजायते ।
सस्नेहंभ्रश्यतेचैवमासान्तंतस्यजीवितम् ॥ १ ॥

जिस रोगीके मस्तकमें गोबरके चूर्णके समान (चूर्णसा) उत्पन्न होजाय तथा वह चूर्ण चिकनाई युक्त होकर झडे तो उस रोगीका जीवन एक महीनेके भितर नष्ट होजाताहै ॥ १ ॥

निर्घर्षन्निवयःपादौच्युतांसःपरिधावति ।
विकृत्यानसलोकेऽस्मिंश्चिरंवसातिमानवः ॥ २ ॥

जिस रोगीको अपने दोनों पांव आपसमें घिसतेहुएसे भागते प्रतीत होते हों और दोनों कन्धे या छातीके अंश ढीले पडकर गिरेहुएसे प्रतीत हों वह मनुष्य इस विकृतिसे मनुष्यलोकमें अधिक नहीं रह सकता ॥ २ ॥

यस्यस्नातानुलिप्तस्यपूर्वंशुष्यत्युरो भृशम् ।
आर्द्रेषुसर्वगात्रेषुसोऽर्द्धमासंनजीवति ॥ ३ ॥

जिस मनुष्यके स्नान करनेपर अथवा चन्दनादि लेपन करनेपर सम्पूर्ण अंग गीले रहते हुए भी छाती झटपट सूखजाय वह मनुष्य पन्द्रह दिनके भीतरमें मृत्युको प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

यमुद्दिश्यातुरंवैद्यःसंवर्त्तयितुमौषधम् ।
यतमानोनशक्नोतिदुर्लभंतस्यजीवितम् ॥ ४ ॥

जिस रोगीकी योग्य वैद्योंसे अनेक प्रकार चिकित्सा कराई जानेपर भी औष-धियें अपना कुछ गुण न करसकें उस मनुष्यका जीवन दुर्लभ ही जानना चाहिये४॥

विज्ञातंबहुशःसिद्धंविधिवच्चावचारितम् ।
नासिध्यत्यौषधंयस्यनास्तितस्यचिकित्सितम् ॥ ५ ॥

जिन औषधियोंका अनेक रोगियोंपर अनेक प्रकारसे अनुभव करचुके हैं और वह तत्काल फल दिखानेवाली हों उन औषधियोंसे योग्य वैद्य विधिपूर्वक अनेक प्रकारसे जिसकी चिकित्सा करे उनसे भी उसको किञ्चित लाभ न पहुँचे तो उस रोगीकी चिकित्साही नहीं है ॥ ५ ॥

आहारमुपयुञ्जानोभिषजासूपकल्पितम् ।
यःफलंतस्यनाप्नोतिदुर्लभंतस्यजीवितम् ॥ ६ ॥

जिस रोगीको वैद्यकशास्त्रके अनुसार विधिवत् पथ्य आहार दिया जावे और उस पथ्यका कुछ भी फल न होकर विपरीत गुण उत्पन्न होवे उस रोगीका जीवन दुर्लभ जानना चाहिये ॥ ६ ॥

दूतपरीक्षा ।

दूताधिकारेवक्ष्यामोलक्षणानिमुमूर्षताम् ।
यानिदृष्ट्वाभिषक्प्राज्ञःप्रत्याख्येयादसंशयम् ॥ ७ ॥

अब दूतपरीक्षा वर्णन करते हैं । इस दूताधिकारमें मरनेवाले रोगियोंके लक्ष-णोंको दूतको देखनेसेही जानकर रोगीको प्रत्याख्येय (चिकित्सा न करनेयोग्य) कह सकताहै ॥ ७ ॥

मुक्तकेशोऽथवानग्नोरुदत्यप्रयतोऽथवा ।
भिषगभ्यागतंदृष्ट्वादूतंमरणमादिशेत् ॥ ८ ॥

यदि दूत शिरके बालोंको छोडाये हुए, नंगेशिर, अथवा नंगा हाथसे अपने मुखपर पवन करता हुआ, अपवित्र अवस्थामें वैद्यको बुलाने आवे तो उसको देखकर रोगी मरजावेगा ऐसा समझ लेवे ॥ ८ ॥

सुप्तेभिषाजि ये दूताश्छिन्दत्यपिचभिन्दति ।
आगच्छन्तिभिषक्तेषांनभर्त्तारमनुव्रजेत् ॥ ९ ॥

यदि वैद्य सो रहा हो, अथवा कुछ काट रहा हो या कुछ छेदन कर रहा हो उस समय जो दूत वैद्यको बुलाने आवे तो उसके मालिककी चिकित्सा करने नहीं जाना चाहिये ॥ ९ ॥

जुह्वत्यग्निंतथापिण्डांपितृभ्योनिर्वपत्यपि ।
वैद्येदूतायआयान्तितेघ्नन्तिप्रजिघांसवः ॥ १० ॥

जब वैद्य अग्निमें हवन कररहाहो अथवा पितरोंके अर्पण श्राद्ध कररहाहो तो ऐसे समय यदि रोगीका दूत बुलाने आवे तो जानलेना चाहिये कि यह दूत रोगीके प्राणोंका नाशक है ॥ १० ॥

कथयत्यप्रशस्तानिचिन्तयत्यथवापुनः ।
वैद्येदूतामनुष्याणामागच्छन्तिमुमूर्षताम् ॥ ११ ॥

यदि वैद्य किसी प्रकारकी अशुभ वातें कररहा हो अथवा किसी प्रकारकी चिंतामें मग्न हो तो उस समय जो किसी रोगीका दूत आवे तो वह दूत रोगीके मृत्युका पूर्वरूप जानना ॥ ११ ॥

मृतदग्धविनष्टानिभजतिव्याहरत्यपि ।
अप्रशस्तानिचान्यानिवैद्येदूतामुमूर्षताम् ॥ १२ ॥

जब वैद्य किसी मरी अथवा जली या नष्ट हुई वस्तुके विषयमें शोचता हो अथवा उसी विषयमें कुछ कार्य करता हो या अन्य किसी निंदित कर्मकी बातचीत कररहा हो उस समय रोगीका दूत वैद्यको बुलाने आवे तो वह रोगीके मृत्युका कारण होताहै ॥ १२ ॥

विकारसामान्यगुणेदेशकालेऽथवाभिषक् ।
दूतमभ्यागतंदृष्ट्वानातुरंतमुपाचरेत् ॥ १३ ॥

अथवा रोगके समान गुणवाले देश, कालमें अर्थात् जिस प्रकृतिका रोगी हो उस रोगको बढानेवालाही देश और काल हो तो ऐसे समयमें यदि रोगीका दूत

वैद्यको बुलाने आवे तो वैद्यको उस समय उसकी चिकित्सा करनेके लिये नहीं जाना चाहिये ॥ १३ ॥

दीनभीतद्रुतत्रस्तांमलिनामसतींस्त्रियम् ।
त्रीन्व्याकृतांश्चपण्डांश्चदूतान्विद्यान्मुमूर्षताम् ॥ १४॥

यदि वैद्यको बुलाने रजस्वला अथवा व्यभिचारिणी, मलिन, दीन, भयभीत स्त्री अथवा तीन स्त्रियें मिलकर या जल्दी २ भागीहुई स्त्रियें बुलाने आवें अथवा बुलानेके लिये तीन दूत इकट्ठे होजायं, या विकृत अंगवाला दूत हो अथवा नपुंसक दूत बुलाने आवे तो वैसे दूतोंको देखकर रोगीकी मृत्यु जानना चाहिये ॥ १४ ॥

अङ्गव्यसनिनंदूतंलिङ्गिनंव्याधितंतथा ।
संप्रेक्ष्यचोग्रकर्माणंनवैद्योगन्तुमर्हति ॥ १५ ॥

यदि वैद्यको बुलानेके लिये अंगहीन अथवा कोई संन्यास आदिका चिह्न धारणकिये या रोगी अथवा किसी विकट कर्मको करनेवाला रोगीका दूत आवे तो ऐसे दूतको देखकर वैद्यको चिकित्सा करनेके लिये जाना उचित नहीं ॥ १५ ॥

आतुरार्थमनुप्राप्तंखरोष्ट्रमथवाहनम् ।
दूतंदृष्टाभिषग्विद्यादातुरस्यपराभवम् ॥ १६ ॥

यदि दूत वैद्यको बुलानेके लिये गधा, ऊंट आदि निंदित सवारियोंपर चढकर आवे तो ऐसे दूतको देखकर वैद्य रोगीके मरणको जान लेवे ॥ १६ ॥

पलालबुषमांसास्थिकेशलोमनखद्विजान् । मार्जनींमुसलंशूर्पमुपानद्चर्मविच्युते ॥१७॥ तृणकाष्ठतुषाङ्गारंस्पृशन्तोलोष्टभस्मच । तत्पूर्वंदर्शनेदूताव्याहरन्तिमुमूर्षताम् ॥ १८ ॥

जब रोगीका दूत वैद्यको बुलाने आवे और वह आतेही पहिले पराली, तुष, मांस, हड्डी, केश, लोम, नख, दांत, झाड, मूसल, सूप (छाज), जूता अथवा जूतेका टूटाहुआ चमडा, घास, लकडी, किसी प्रकारके अन्नका छिलका या अंगार, मिट्टीका डला अथवा पत्थरका स्पर्श करे या इनके ऊपर हाथ रक्खे तो ऐसे दूतको देखतेही रोगीका मरण जान लेना चाहिये ॥ १७ ॥ १८ ॥

यस्मिंश्चदूतेब्रुवतिवाक्यमातुरसंश्रयम् ।
पश्येन्निमित्तमशुभंतंचनानुव्रजेद्भिषक् ॥ १९ ॥

यदि वैद्य दूतसे रोगीके संबन्धमें बातचीत करतेहुए अशुभ शकुनोंको देखे तो उस दूतके साथमें नहीं जाना चाहिये ॥ १९ ॥

यथाव्यसनिनंप्रेतंप्रेतालङ्कारमेववा।भिन्नंदग्धंविनष्टंवातद्वादीनि वचांसिवा ॥ २० ॥ रसोवाकटुकस्तीव्रोगन्धोवाकौणपोमहान् । स्पर्शोवांविपुलःक्रूरोयद्वान्यदशुभंभवेत् ॥ २१ ॥ तत्पूर्वमभितो वाक्यंवाक्यकालेऽथवा पुनः । दूतानांव्याहृतंश्रुत्वाधीरोमरणमा- दिशेत् ॥ २२ ॥

जब दूत वैद्यके पास बुलानेके लिये आवे और वैद्यसे रोगीके संबंधमें कुछ बात- चीत करना चाहे तो उसी समय वैद्यके समीप बात करनेसे प्रथमही किसी व्यसन अथवा प्रेतकी बात चलपड अथवा कटेहुए,जलेहुए या किसी नष्ट हुएके विषयकी बात चलपडे । अथवा कडुए और तीव्ररस तथा मुर्देकी दुर्गंध या किसी दुष्ट और क्रूर वस्तुका स्पर्श होजाय या अन्य किसी प्रकारका अशुभ हो अथवा कोई सर्प बिच्छू आदि क्रूर जानवर दिखाई दे जायँ तो यह अशुभ शकुन दूतके आनके समय या दूतसे बात चीत करनेसे प्रथम अथवा दूतसे बोलते समय वा दूतकी बात सुननेके अनन्तर हो जाय तो बुद्धिमान् रोगीके मरणको कथन करे अर्थात् ऐसी अवस्थामें रोगीको मरनेवाला जानकर दूतके साथ न जावे ॥ २० ॥ २१ ॥ २२॥

इतिदूताधिकारोऽयमुक्तःकृत्स्नोमुमूर्षताम् ।
पथ्यातुरकुलानाञ्चवक्ष्याम्यौत्पातिकं पुनः ॥ २३ ॥

इस प्रकार मरनेवाले रोगियोंके विषयमें सम्पूर्णरूपसे दूताधिकार वर्णन करदिया गया है।अब मरनेवाले रोगीको देखनेके लिये जातेहुए मार्गमें होनेवाले तथा रोगी- के घरमें होनेवाले अशुभ उत्पातोंका वर्णन करतेहैं ॥ २३ ॥

अशुभशकुन ।

अवक्षुतमथोत्क्रुष्टंस्खलनंपतनंतथा । आक्रोशःसंप्रहारोवाप्रतिषे- धोविगर्हणम्॥२४ ॥ वस्त्रोष्णीषोत्तरासङ्गछत्रोपानद्युगाश्रयम् । व्यसनंदर्शनञ्चापिमृतव्यसनिनंतथा ॥२५ ॥

जब वैद्य रोगीको देखनेके लिये चले तो रास्तेमें सामनेसे छींक होना अथवा अशुभ किलकारीका सुनना या पांवका स्खलन होना अथवा ठोकर खाकर गिर-

जाना या चिघाड वा गालीका सुनना या चोट लगना या चलते हुए कोई रोके अथवा आगेसे कोई ताडना करे या कोई मनुष्य आगेसे कपडा, पगडी, चद्दर, छतरी, जूता, आदि मृतशय्याका सामान लिये मिले अथवा इनमेंसे किसी एक वस्तुको भी लेकर मिले या रास्तेमें किसी प्रकारके व्यसनका दर्शन हो अथवा किसी मरेहुए मनुष्यका रोदन आदि सुनाई पडे या लाश दिखाई देवे तो रोगीको देखनेके लिये नहीं जाना चाहिये ॥ २४ ॥ २५ ॥

चैत्यध्वजपताकानांचूर्णानांपतनानिच । हतानिष्टप्रवादाश्चदर्शनं भस्मपांसुभिः ॥ २६ ॥ पथच्छेदोबिडालेनशुनासर्पेणवापुनः । मृगद्विजानांक्रूराणांगिरोदीप्तांदिशंप्रति॥ २७ ॥ शयनासनयाना-नामुत्तानानांप्रदर्शनम् । इत्येतान्यप्रशस्तानिसर्वाण्याहुर्मनी-षिणः ॥ २८ ॥

अथवा वौद्धोंका मन्दिर या देवस्थान,देववृक्ष या ध्वजा,पताका वा चूना रास्तेमें गिराहुआ हो या गिरताहुआ दिखाईदे किसीकी मारनेकी अथवा अन्य प्रकारकी अनिष्ट आवाज सुनाईदे वा रास्तेमें राख या धूल उडती हो या बिल्ली, कुत्ता अथवा सांप वैद्यके आगे रास्ता काटकर निकलजावे या मृग अथवा पक्षियोंका सूर्यके सन्मुख दूर शब्द करना अथवा शय्या, आसन, यान रास्तेमें उलटे पडे देखना इत्यादि सब प्रकारके अशुभोंको बुद्धिमान् वैद्य रोगीको देखनेके लिये जाते समय अशुभ शकुन कहतेहैं ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥

एतानिपथिवैद्येनपश्यतातुरवर्त्मनि ।
शृण्वताचनगन्तव्यंतदागारंविपश्चिता ॥ २९ ॥

वैद्य मार्गमें इस प्रकारके अशुभ शकुनोंको देखकर अथवा अशुभ शब्दोंको सुनकर रोगीके घरको न जावे ॥ २९ ॥

इत्यौत्पातिकमाख्यातंपथिवैद्यविगर्हितम् ।
इमामपिचबुध्येतगृहावस्थांमुमूर्षताम् ॥ ३० ॥

इसप्रकार रोगीको देखने जातेहुए मार्गमें होनेवाले अशुभ उत्पातोंका वर्णन कर दियागया है । अब रोगीके घर पहुंचनेपर जो मरनेवालेके उत्पात होतेहैं उनको भी श्रवण करो ॥ ३० ॥

प्रवेशेपूर्णकुम्भाग्निमृद्बीजफलसर्पिषाम् । वृषब्राह्मणरत्नानांदेवतानांविनिर्गतिम् ॥ ३१ ॥ अग्निपूर्णानिपात्राणिभिन्नानिविशिखानिच । भिषङ्मुमूर्षतांवेश्मप्रविशन्नेवपश्यति ॥ ३२ ॥

जब वैद्य रोगीके घरमें प्रवेश करे उस समय रोगीके घरसे जलका भरा कलश अग्नि, मृत्तिका, फल, बीज, घृत, बैल, ब्राह्मण, रत्न और देवता आदिको बाहर निकलते देखे तथा उसके घरके पात्रोंको अग्निसे भरेहुए, फूटेहुए, विना गलेके देखे तो समझे कि इस रोगीका मरण होनेवाला है ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

छिन्नभिन्नविदग्धानिभग्नानिमृदितानिच ।
दुर्बलानिचसेवन्तेमुमूर्षोर्वेश्मिकाजनाः ॥ ३३ ॥

अथवा रोगीके घरके मनुष्य-छिन्न, भिन्न (फूटे टूटे), जलेहुए; फटेहुए, मलिन और दुर्बल वस्त्र आदि अशुभ द्रव्योंको धारण किये बैठे हों एवं अशुभ शब्दोंको करते हों तो रोगीका मृत्यु समीप जानना ॥ ३३ ॥

शयनंवसनंयानंगमनंभोजनंरुतम् ।
श्रूयतेऽमङ्गलंयस्यनास्तितस्यचिकित्सितम् ॥ ३४ ॥

जिस रोगीकी शय्या बिछाते समय, वस्त्र पहिनाते समय अथवा बैठते, उठते, चलते, फिरते, भोजनकरते समय रोनेकी अथवा अशुभ आवाज आती हो उस रोगीकी कोई चिकित्सा नहीं है ॥ ३४ ॥

शयनंवसनंयानमन्यद्वापिपरिच्छदम् ।
प्रेतवद्यस्यकुर्वन्तिसुहृदःप्रेतएवसः ॥ ३५ ॥

जिस रोगीके सुहृद्गण सोना, बैठना, उठना, वस्त्र पहिनाना, वा अन्य सब कर्म मरे हुएके समान करते हों उसको मराहि जानना चाहिये ॥ ३५ ॥

अन्नंव्यापद्यतेऽत्यर्थंज्योतिश्चैवोपशाम्यति ।
निवातेसेन्धनंयस्यतस्यनास्तिचिकित्सितम् ॥ ३६ ॥

जिस रोगीके लिये पथ्य आदि बनाते हुए किसी न किसी प्रकारका अशुभ उपद्रव होजाय जिससे पथ्य बननेमें कोई विघ्न होजाय तथा विनाही पवनके लगे लकड़ी आदि रहते हुए भी अग्नि बुझजाय अथवा तेल बत्ती रहतेहुए भी बिनाही कारण दीपक बुझजाय उस रोगीकी चिकित्सा नहीं है अर्थात् वह मरजानेवाला है ॥ ३६ ॥

आतुरस्यगृहेयस्यभिद्यन्तेवापतन्तिवा ।
अतिमात्रममत्राणिदुर्लभतस्यजीवितम् ॥ ३७ ॥

जब वैद्य रोगीके घरमें पहुंचे तब यदि किसी बर्तन आदिका फूटना अथवा मट्टी, पत्थर बरसना आदि अत्यंत अमंगल उत्पात हों तो उस रोगीका बचना दुर्लभ जाने ॥ ३७ ॥

भवतिचात्र ।

यद्द्वादशभिरध्यायैर्व्यासतःपरिकीर्त्तितम् । मुमूर्षतांमनुष्याणांलक्षणंजीवितान्तकृत् ॥ ३८ ॥ तत्समासेनवक्ष्यामिपर्य्यायान्तरमाश्रितम् । पर्य्यायवचनंह्यर्थविज्ञानायोपपद्यते ॥ ३९ ॥

अब यहां कहतेहैं कि, मरणासन्न मनुष्योंके जीवनका अंत करनेवाले जो लक्षण इन बारह अध्यायोंमें विस्तारपूर्वक कथन करचुकेहैं उनको स्थानकी समाप्तिमें पर्याय भेदसे संक्षेप रूपमें वर्णन करतेहैं । क्योंकि पर्यायद्वारा दूसरीवार कहाजानेसे पढनेवालोंको अर्थविज्ञानका सहज उपाय होजाता है ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

इत्यर्थंपुनरेवेयंविवक्षानोविधीयते ।
तस्मिन्नेवाधिकरणेयत्पूर्वमभिदर्शितम् ॥ ४० ॥

जिस विषयको हम पहिलेही इस इन्द्रियस्थानमें वर्णन करचुके हैं उसी विषयको फिर वर्णन करतेहैं ॥ ४० ॥

वसतांचरमेकालेशरीरेषुशरीरिणाम् । अत्युग्राणांविनाशायदेहेभ्यः प्रविवत्सताम् ॥ ४१ ॥ इष्टांस्तितिक्षतांप्राणान्कान्तंवासंजिहासताम् । तन्त्रयन्त्रेषुभिन्नेषुतमोऽन्त्यंप्रविविक्षताम् ॥ ४२ ॥ विनाशायेहरूपाणियान्यवस्थान्तराणिच । भवन्तितानिवक्ष्यामियथोद्देशंयथागमम् ॥ ४३ ॥

शरीरमें रहते हुए शरीरियोंके अन्तकालके समय शरीरके नष्ट करनेके लिये जो अत्यंत उग्र विकृतियां उत्पन्न होती हैं और देहरूपी यंत्रमें छिन्नभिन्नता उत्पन्न होकर प्राणोंको त्यागनेवाले और शरीररूपी घरको छोडकर प्रस्थान करनेवाले,अपने प्रिय शरीरको छोड देनेवाले,कालके मुखमें पडनेवाले, प्राणोंको त्यागनेवाले,प्राणियोंके शरीरमें वा इन्द्रियोंमें अथवा अन्य शरीर संबंधी तंत्रोंमें शरीरके विनाशके

लिये जो रूपांतर उत्पन्न होते हैं उन सबको शास्त्रानुसार यथा उद्देश वर्णन करते हैं ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

प्राणाःसमुपतप्यन्तेविज्ञानमुपरुध्यते। वमन्तिबलमङ्गानिचेष्टा व्युपरमन्तिच॥४४॥इन्द्रियाणिविनश्यन्तिखिलीभूतेवचेतना। औत्सुक्यंभजतेसत्त्वंचेतोभीराविशत्यपि ॥ ४५॥स्मृतिस्त्यजति मेधाचह्रीश्रियौचापसर्पतः । उपप्लवन्तेपाप्मानओजस्तेजश्चन-श्यति ॥ ४६ ॥

जैसे–प्राणोंको उपताप हो, ज्ञान नष्ट हो जाय, अंग बलहीन होजायँ, संपूर्ण चेष्टा जातीरहे, इन्द्रियें नष्ट होजायँ, चैतन्यता जाती रहे, मन व्याकुल होजाय, चित्त भयातुर होजाय, स्मृति जाती रहे तथा मेधा, कांति, लज्जा यह सब नष्ट होजायँ उपद्रवरूपी पापोंका प्रवेश हो, ओज और तेज सब नष्ट होजायँ यह सब यमलोक जानेवाले मनुष्योंके लक्षण होते हैं ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

शीलंव्यावर्त्ततेऽत्यर्थंभक्तिःश्चपरिसर्पते । विक्रियन्तेप्रतिच्छाया-श्छायाश्चविकृतिंगताः ॥ ४७ ॥शुक्रंप्रच्यवतेस्थानादुन्मार्गंभज-तेऽनिलः। क्षयंमांसानिगच्छन्तिगच्छत्यसृगुपक्षयम् ॥४८॥ ऊ-ष्माणःप्रलयंयान्तिविश्लेषंयान्तिसन्धयः।गन्धाविकृततांयान्ति भेदंवर्णस्वरौतथा॥४९॥वैरस्यंभजतेकायःकायच्छिद्रंविशुष्यति। धूमःसञ्जायतेमूर्ध्निदारुणाख्यश्चचूर्णकः ॥ ५० ॥

स्वभाव अत्यंत बिगडजाय, भक्ति जातीरहे, छाया और प्रतिच्छायामें विकारयुक्त लक्षण होनेलगें अथवा स्थानसे वीर्य गिरताहो वायु अपने स्थानोंको छोड उलट मार्गोंसे गमन करने लगजाय, मांस क्षीण होजाय, रक्त नष्ट होजाय, शरीरकी गरमी शान्त होजाय, संपूर्ण संधियें ढीली पडजायँ, गंधमें विकृति होजाय, वर्ण और स्वर बिगडजायँ, शरीर विरस होजाय, संपूर्ण शरीरमें छिद्रोंकी उत्पत्ति होजाय अथवा शरीरके छिद्र सूखजायँ, मस्तकसे धुआंसा निकले और मस्तकपर गोबरके चूर्णके समान दारुण चूर्णसा उत्पन्न होजाय यह सब शरीर त्याग करनेवाले रोगियोंके लक्षण हैं ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥

सततस्पन्दनादेशाःशरीरेयेऽभिलक्षिताः। तेस्तम्भानुगताःसर्वेन चलन्तिकथञ्चन॥५१॥गुणाःशरीरदेशानांशीतोष्णमृदुदारुणाः

विपर्य्यासेनवर्त्तन्तेस्थानेष्वन्येषुतद्विधाः ॥ ५२ ॥ नखेषुजायते पुष्पंपङ्कोदन्तेषुजायते। जटाःपक्ष्मसुजायन्तेसीमन्ताश्चापिमूर्द्ध-नि ॥५३॥भेषजानिनसंवृत्तिंप्राप्नुवन्तितथारुचिम्। यानिचा-प्युपपद्यन्तेतेषांवीर्य्यंनसिध्यति॥५४॥ नानाप्रकृतयःक्रूराविका-राविविधौषधाः ॥ ५५ ॥

शरीरके कई भागोंमें फडकन उत्पन्न होजाय अथवा शरीरके कई स्थान सोयेहुएसे सुन्न रहजायँ,हृदयकी गति अथवा धमनीकी गति बंद होजाय,या देहके सब अंगोंका स्तंभ होकर हिलने चलनेसे बंद होजायँ,शरीरके सब अंगोंकी शीतलता गरमी,नरमाई, कठोरपन यह सब विपरीत भावको प्राप्त होजायँ, अपने २ स्थानोंके गुणोंको छोड देवें । दूसरे अंगोंमें अन्य प्रकारके गुण उत्पन्न होजायँ, नखोंपर फुलडियेंसी पडजायँ, दांतोंपर कीचसा जमजाय; पलकोंकी जटेंसी बंधजायँ, शिरके केशोंमें अपूर्व भौरियेंसी पडजायँ,जिन औषधियोंको लेने जाय वह न मिलें अथवा अपना गुण न करें या उनके अनुरूप क्रिया न होसके तथा जो औषधियोंके द्वारा साध्य न हों ऐसे अनेक प्रकारके उपद्रव होजायँ । अथवा जिनमें अनेक प्रकारकी अलभ्य औषधियोंकी आवश्यकता पडे इस प्रकारके भयंकर और विरोधी विकार उत्पन्न होजायँ तो ऐसे लक्षणवाले रोगी प्रायः अवश्यही कालके मुखमें पडनेवाले होतेहैं ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥

क्षिप्रंसमभिवर्त्तन्तेप्रतिहत्यबलौजसी।शब्दःस्पर्शोरसोरूपंगन्ध-श्चेष्टाविचिन्तितम् ॥ ५६ ॥ उत्पद्यन्तेऽशुभान्येवप्रतिकर्मप्रवृत्ते-षु । दृश्यन्तेदारुणाःस्वप्नादौरात्म्यमुपजायते ॥ ५७ ॥ प्रेष्याः प्रतीपतांयान्तिप्रेताकृतिरुदीर्य्यते।प्रकृतिर्हीयतेऽत्यर्थंविकृतिश्चा-भिवर्द्धते ॥ ५८ ॥

रोगीके शब्द,स्पर्श,रस, रूप, गंध, और चेष्टा तथा अपकर्म यह सब अपनी २ शीघ्र गतिसे प्रवृत्त होजायँ जिससे रोगीका बल और ओज नष्ट होजाय । चिकित्सा करनेके लिये प्रवृत्त होनेके समय अनेक प्रकारके अशुभ उपद्रव उत्पन्न होजायँ तथा खोटे दारुण स्वप्न दिखाई देनेलगें । और रोगी सबसे विनाही कारण द्वेष करनेलगे तथा प्रेष्य (नौकर चाकर) सब प्रतिकूल होजायँ, रोगीके सब लक्षण मरेहुएके समान होजायँ,शरीरके सब स्वभाव बिगडजायँ, वैकारिक स्वभाव उत्पन्न होजायँ । यह सब मृत्युके ग्रास होनेवाले रोगियोंके लक्षण होतेहैं ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

कृत्स्नमौत्पातिकंघोरमरिष्टमुपलक्ष्यते ।
इत्येतानिमनुष्याणांभवन्तिविनाशिष्यताम् ॥ ५९ ॥

तथा संपूर्ण लक्षण घोर उत्पातकेसे होने लग जायँ । यह संपूर्ण लक्षण विनाशको प्राप्त होनेवाले मनुष्यके होतेहैं ॥ ५९ ॥

लक्षणानियथोद्देशंयान्युक्तानियथागमम् । मरणायेहरूपाणिपश्यतापिभिषग्विदा ॥ ६० ॥ अपृष्टेननवक्तव्यंमरणंप्रत्युपस्थितम् । पृष्टेनापिनवक्तव्यंतत्रयत्रोपघातकम् ॥ ६१ ॥ आतुरस्यभवेद्दुःखमथवान्यस्यकस्यचित् । अध्रुवंमरणंयस्यनैनमिच्छेच्चिकित्सितुम् । यस्यपश्येद्विनाशायलिङ्गानिकुशलोभिषक् ॥ ६२ ॥

यह सम्पूर्णलक्षण शास्त्रानुकूल और अपने उद्देश्यके अनुसार कथन करदियेगये हैं । इन मरणख्यापक रूपोंको देखतेहुए भी विना पूछे वैद्यको किसीके पास नहीं कहना चाहिये । और पूछनेपर भी यह अवश्य मरजायगा इस प्रकार नहीं कहना चाहिये और खासकर जिस जगह रोगी और रोगीके घरवाले हों उस स्थानमें तो कहनाही नहीं चाहिये क्योंकि ऐसा खोटा शब्द कहनेसे रोगीको अत्यन्त दुःख होताहै और उसके घरवालोंमें भी व्याकुलता उत्पन्न होजातीहै। जब वैद्य किसीको मरनेके लक्षणोंवाला देखे तो कहे कि इस समय हम इसकी चिकित्सा नहीं करसकते परन्तु यह कभी न कहे कि यह मरजायगा क्योंकि यदि दैवयोगसे वह बचजाय तो वैद्यको बडीभारी हानि पहुंचती है इसलिये कुशलवैद्य अपने मुखसे रोगीके पास व रोगियोंके संबन्धियोंके पास उसके मरणकी बात न कहे ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

साध्यरोगीके लक्षण ।

लिङ्गेभ्योमरणाख्येभ्योविपरीतानिपश्यता । लिङ्गान्यारोग्यमागन्तुर्वक्तव्यंभिषजाध्रुवम् ॥ ६३ ॥ दूतैरौत्पातिकैर्भावैःपथ्यातुरकुलाश्रयैः । आतुराचारशीलेष्टद्रव्यसम्पत्तिलक्षणैः ॥ ६४ ॥

जिस रोगीके कोई लक्षण उपरोक्त लक्षणोंमेंसे न हों अर्थात् ऊपर कहेहुए सब अशुभ लक्षणोंसे विपरीत शुभ लक्षण दिखाई देते हों तथा अन्य किसी प्रकारके उत्पात न होते हों एवं दूतसम्बन्धी वा मार्गसम्बन्धी, कुलसम्बन्धी, पथ्यसम्बन्धी किसी प्रकारके अशुभ लक्षण न हों तथा रोगीके आचार, स्वभाव, इन्द्रियादि द्रष्टव्य विषय और शारीरिक सम्पत्ति इन सबके शुभ लक्षण हों तो वह रोगी अवश्य नीराग होजाताहै ऐसा वैद्यको कहना चाहिये ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

स्वाचारंहृष्टमव्यङ्गंयशस्यंशुक्लवाससम्।अमुण्डमजटंदूतंजाति-
वेशक्रियासमम् ॥ ६५ ॥ अनुष्ट्रखरयानस्थमसन्ध्यास्वग्रहेषुच ।
अदारुणेषुनक्षत्रेष्वनुग्रेषुध्रुवेषुच ॥ ६६ ॥ विनाचतुर्थींनवमींवि-
नारिक्ताश्चतुर्दशीम्।मध्याह्नश्चार्द्धरात्रश्चभूकम्पंराहुदर्शनम् ॥ ६७ ॥

यदि दूत शुद्ध आचारवाला,प्रसन्न, सर्वांगसम्पन्न, यशस्वी, श्वेत वस्त्रोंको धारणकिये, न शिर मुंडा और न जटोंवाला, अपनी जातिके अनुकूल वेष और क्रियावाला हो तथा गधे,ऊँट आदि सवारियों पर न चढा हो,संध्याके समय अथवा क्रूरसमयमें न आया हो, खोटे नक्षत्रमें, उग्रनक्षत्रोंमें ध्रुवसंज्ञक नक्षत्रोंमें (ज्येष्ठा, मूल, आदि उग्रनक्षत्र एवं उत्तराभाद्रपद, उत्तराषाढा आदि नक्षत्रोंके उदयमें) न आया हो तथा चतुर्थी नवमी, चतुर्दशी इन रिक्ता तिथियोंमें मध्याह्नके समय अथवा आधीरात्रिमें जब भूकम्प होरहा हो उस सयय तथा ग्रहणकालमें न आया हो तो वह दूत शुभ जानना ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥

विनादेशमशस्तञ्चशस्तौत्पातिकलक्षणम् ।
दूतंप्रशस्तमव्यग्रंनिर्दिशेदागतंभिषक् ॥ ६८ ॥

तथा वेसमय, निन्दितस्थानमें और निन्दित वस्तुओंको बिनाछुए, उत्पातके लक्षणोंके बिना शुभ समयमें शुभदेशमें शुद्ध चित्तवाला दूत यदि वैद्यको बुलाने आवे तो उत्तम जानना चाहिये ॥ ६८ ॥

दध्यक्षतद्विजातीनांवृषभाणांनृपस्यच । रत्नानांपूर्णकुम्भानांसि
तस्यतुरगस्यच ॥ ६९ ॥ सुरध्वजपताकानांफलानांयाचकस्यच ।
कन्यानांवर्द्धमानानांबद्धस्यैकपशोस्तथा ॥ ७० ॥ पृथिव्याउद्धृ-
तायाश्चवह्नेःप्रज्वलितस्यच । मोदकानांसुमनसांशुक्लानांचन्दन-
स्यच ॥७१॥मनोज्ञस्यान्नपानस्यपूर्णस्यशकटस्यच । नृभिर्धेन्वाः
सवत्सायावडवायाःस्त्रियास्तथा ॥ ७२ ॥

रागार्क घरको जातेसमय वैद्यको दही, अक्षत, ब्राह्मण, बल, राजा, रत्न जलभरे घट, सफेद घोडा, आगे मिलें अथवा इन्द्रधनुष, ध्वजा, पताका, हल,याचक, बढनेवाली कन्या, बंधाहुआ पशु, खुदीहुई भूमि,प्रज्वलित अग्नि, मोदक, सफेदफूल, सफेद चंदन, मनोज्ञ अन्नपान और मनुष्योंसे भराहुआ शकट (छकडा) वछडे-

वाली गौओंको आगे किये मनुष्य,बच्चेवाली घोडी,लडकेको गोदमें लिये स्त्री इन सबका आगे मिलना रोगीकी आरोग्यताके लिये शुभ होताहै६९॥७०॥७१॥७२॥

जीवञ्जीवकसिद्धार्थसारसप्रियवादिनाम् । हंसानांशतपत्राणांचाषाणांशिखिनांतथा ॥ ७३ ॥ मत्स्याजद्विजशंखानांप्रियङ्गूनांघृतस्यच । रोचिष्कादर्शसिद्धानांरोचनायाश्चदर्शनम् ॥७४ ॥

तथा जविन्तशाक, जीवक, सफेद सरसों अथवा सारस पक्षी, चकोर,चातक, हंस, शतपत्र (खुटकबडहिया) पक्षी,या गुलाबके फूल अथवा शतपत्री (कमल), नीलकण्ठ, मोर,मछली,बकरी, श्वेतवस्त्रोंको धारणकिये ब्राह्मण,शंख, प्रियंगु, घृत, नमक, दर्पण, सिद्ध, गोरोचन इनका दर्शन होना रोगीको आरोग्य करनेवाला शुभ लक्षण जानना ॥ ७३ ॥ ७४ ॥

गन्धःसुरभिवर्णश्चसुशुक्लोमधुरोरसः । मृगपक्षिमनुष्याणांप्रशस्ताश्चगिरःशुभाः ॥७५॥ छत्रध्वजपताकानामुत्क्षेपणमभिप्लुतिः । भेरीमृदङ्गशंखानांशब्दाःपुण्याहनिस्वनाः ॥७६॥ वेदाध्ययनशब्दाश्चसुखोवायुःप्रदाक्षिणः । पथिवेश्मप्रवेशेतुविद्यादारोग्यलक्षणम् ॥ ७७ ॥

सुगंधित पदार्थ, सुन्दर वर्णवाले श्वेत पदार्थ, मीठे रस, मृग, पक्षी और मनुष्योंकी शुभवाणी, छत्र, ध्वजा और पताकाका ऊपरको उठाना, भेरी और मृदंग आदिका शब्द, शंखध्वनि, पुण्याहवाचन आदिका मधुरस्वर, वेदाध्ययनका शब्द, सुन्दर सुखदायी दहिनी ओरका पवन यह सब शकुन वैद्यको रोगीके घरको जाते हुए या रोगीके घरमें प्रवेश करते हुए होना रोगीकी आरोग्यताका लक्षण जानना चाहिये ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ ७७ ॥

मङ्गलाचारसम्पन्नःसातुरोवैश्मिकोजनः । श्रद्दधानोऽनुकूलश्चप्रभूतद्रव्यसंग्रहः ॥ ७८ ॥ धनैश्वर्य्यसुखावाप्तिरिष्टलाभःसुखेनच । द्रव्याणांतत्रयोग्यानांयोजनासिद्धिरेवच ॥ ७९ ॥

रोगीके घरमें संपूर्ण मनुष्य मंगलाचारसे संपन्न हों और सब श्रद्धावान् हों और अनुकूल हों तथा चिकित्साके उपयोगी सब द्रव्य विधिवत् संग्रह किये हों

और रोगी भी शुभगुणसंपन्न हो एवं धन, ऐश्वर्य, सुख इनसे संपन्न हो और जिस वस्तुकी उस जगह इच्छा की जाय वह सुखपूर्वक झट प्राप्त होसकती हो ऐसे स्थानमें वैद्य योग्य औषधियोंके द्वारा चिकित्सा करे तो शीघ्र सिद्धिको प्राप्त होता है ॥ ७८ ॥ ७९ ॥

गृहप्रासादशैलानांनागानांवृषभस्यच । हयानांपुरुषाणाञ्चस्वप्ने समधिरोहणम् ॥८०॥ सोमार्काग्निद्विजातीनांगवांनृणांयशस्विनाम् । अर्णवानांप्रतरणंवृद्धिःसम्बाधनिःसृतिः ॥ ८१ ॥

जो रोगी स्वप्नमें घर, महल, पर्वत,हाथी, बैल, अथवा घोडेके ऊपर चढे तथा चंद्रमा, सूर्य, अग्नि, ब्राह्मण और गौको देखे एवं यशस्वी पुरुषोंसे मिलाप करे, समुद्रको तैरकर पार हो किसी बडे भारी संकटमेंसे छूटे तो अवश्य आरोग्यताको प्राप्त होताहै ॥ ८० ॥ ८१ ॥

स्वप्नेदेवैःसपितृभिःप्रसन्नैश्चाभिभाषणम् । दर्शनंशुक्लवस्त्राणांह्रदस्यविमलस्यच ॥ ८२ ॥ मांसमत्स्यविषामेध्यच्छत्रादर्शपरिग्रहः । स्वप्नेसुमनसाञ्चैवशुक्लानांदर्शनंशुभम् ॥ ८३ ॥

एवं स्वप्नमें देवता और पितरगणोंको प्रसन्न देखना और प्रसन्नतापूर्वक भाषण सुनना, सफेद वस्त्रोंका देखना, निर्मल तालावका देखना, मांस, मछली, विष और अपवित्र वस्तुओंको, तथा छत्री और दर्पणको ग्रहण करना, सफेद फूलोंको देखना यह स्वप्न रोगीके लिये शुभकारक होतेहैं ॥ ८२ ॥ ८३ ॥

अश्वगोरथयानञ्चयानंपूर्वोत्तरेणच ।
रोदनंपतितोत्थानंद्विषताञ्चावमर्दनम् ॥ ८४ ॥

इसी प्रकार घोडा, गौ, और रथमें चढना तथा उनपर चढकर पूर्व या उत्तरकी दिशामें जाना, रोना और शत्रुको जीतना यह सब स्वप्न शुभकारक होतेहैं ॥८४॥

रोगमुक्तलक्षण ।

सत्त्वलक्षणसंयोगाभक्तिर्वैद्यद्विजातिषु ।
साध्यत्वंनचनिर्वेदस्तदारोग्यस्यलक्षणम् ॥ ८५ ॥

अब रोग मुक्तके लक्षणोंको कहते हैं । मन प्रसन्न होना, शरीरमें चैतन्यता प्रतीत होना; वैद्य और ब्राह्मणोंमें भक्ति होना, रोगमें साध्यता उत्पन्न होकर शरीरमें किसी प्रकारकी पीडा या ग्लानि न होना यह आरोग्यताके लक्षण हैं । अर्थात् जब मनुष्य रोगसे छूटकर आरोग्य होजाताहै तब उसके यह लक्षण होतेहैं ॥८५॥

आरोग्याद्बलमायुश्चसुखञ्चलभतेमहत् ।
इष्टांश्चाप्यपरान्भावान्पुरुषःशुभलक्षणः ॥ ८६ ॥

आरोग्य होनेसे मनुष्य बल आयु तथा महान् सुखके लाभको प्राप्त होताहै । तथा अन्य भी उत्तम २ भावोंको वह शुभलक्षण पुरुष प्राप्त होताहै ॥ ८६ ॥

तत्रश्लोकः ।

उक्तंगोमयचूर्णीयेमरणारोग्यलक्षणम् ।
दूतस्वप्नातुरोत्पातयुक्तिसिद्ध्यपाश्रयम् ॥ ८७ ॥

यहां अध्यायके उपसंहारमें एक श्लोक है कि, इस गोमयचूर्णीय नामक अध्यायमें रोगीके मरनेके और आरोग्यताके लक्षणोंका कथन कियागयाहै तथा दूत और स्वप्न और उत्पात तथा वैद्यकी सिद्धिके आश्रित लक्षणोंका कथन कियागयाहै ॥ ८७ ॥

भवतिचात्र ।

इतीदमुक्तंप्रकृतंयथातथातदन्ववेक्ष्यंसततंभिषग्विदा ।
तथाहिसिद्धिश्चयशश्चशाश्वतंसासिद्धकर्मालभतेधनानिच ॥८८॥

इति चरकसंहितायामिन्द्रियस्थानं समाप्तम् ॥

यहां यह श्लोक है कि,इस इन्द्रियस्थानमें जो संपूर्ण तत्त्व जिसप्रकार मनुष्यकी प्रकृति और विकृतिके विषयमें वर्णन कियागयाहै । वैद्यलोगोंको यह सब जिस २ प्रकार वर्णन कियागया है उसको जानकर इन संपूर्ण लक्षणोंको देखना चाहिये । इस प्रकार करनेसे वैद्यको सिद्धि और स्वच्छ यश तथा धनकी प्राप्ति होतीहै और वह सिद्धकर्मा होजाताहै ॥ ८८ ॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदसंहितायामिन्द्रियस्थाने टकसालनिवासिपं०रामप्रसादवैद्योपाध्यायविरचितप्रसादन्याख्यभाषाटीकायां गोमयचूर्णीयमिन्द्रियं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

जाहिरात।

नाम.	की. रु. आ.
इलाजुलगुरबा–नूतन मथुराका छपा है	२–०
औषधीक्रिया–मराठी भाषाटीकासमेत । "आर्यभिषक्पुस्तकावली" मेंसे यह स्वतन्त्र निकालागया है । मराठी भाषा जाननेवालोंको परमोपयोगी है.	०–४
अंजननिदान–भाषाटीकासमेत । इसमें सुगमतासे रोगोंका निदान लिखा है, ...	०–१०
कल्पपञ्चकप्रयोग–भाषाटीकासमेत । इस ग्रन्थमें चोपचीनीकल्प रुद्रवन्तीकल्प, रागदमनीयकल्प, शिवलिङ्गीकल्प, तथा पलाशकल्पात्मक भी हैं, ...	०–३
करिकल्पलता–छन्दोबद्ध–हिन्दीभाषामें । केशवसिंहजी तअल्लुकेदार रचित । इसमें–हाथियोंके शुभाशुभलक्षण व उनके रोगनाशार्थ अनेक औषधिविधान चित्रोंसमेत वर्णित हैं	१–१२
कामकुतूहल–भाषाटीकासमेत । इसमें शरीरकी क्षीणतादिमें अपूर्व दवाइयोंका संग्रह है.	०–६
कामरत्न–योगेश्वर नित्यनाथप्रणीत और विद्यावारिधि पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्रकृत भाषाटीकासमेत । इस ग्रन्थमें कामशास्त्रादि विषय और रोगोंकी औषधि तथा वाजीकरण औषधी अनुभूत हैं और वशीकरणादि प्रयोगभी हैं	२–४
कालज्ञान–भाषाटीकासमेत इस ग्रन्थका सम्पूर्ण अभ्यास करनेसे भूत, भविष्य, वर्त्तमानका ज्ञान होता है	०–४
क्याखूबडिबिया–(जर्राहीयोग) चौबे क्याखूबजीकी बनाई हुई हमेशा पास रखने योग्य है देखनेसे मालूम होसकेगा, ...	०–८
कुमारतन्त्र–रावणकृत मूल तथा भाषाटीकासमेत। इसमें बालकोंकी दवाइयोंका अपूर्व वर्णन है.	०–८
कूटमुद्गर–सटीक संस्कृत.	०–३
कूटमुद्गर–भाषाटीकासमेत.	०–३
गुणोंकी पिटारी–काशीनिवासी स्वामी परमानन्दने बडे परिश्रमसे हिन्दीभाषामें बनाई है । इसमें–अनेक प्रकारकी धातुओंके फूंकने व सेवन करने व सिन्दूरादिके बनाने तथा साबुन, पारा, गन्धक और सिंगरफ वगैरहके वर्तनोंके बनानेके परमोपयोगी नानाप्रकारके तरीके भी लिखेगये हैं	१–०